अकशेरुकी जन्तु-विज्ञान

(INVERTEBRATE ZOOLOGY)

[Questions with Answers]

(उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर एवं राजस्थान विश्वविद्यालयों की स्नातक कक्षाओं के पाठ्यक्रमानुसार)

लेखिका

वीर बाला रस्तोगी

एम. एस-सी.

भूतपूर्व लेक्चरार

मेरठ कॉलिज मेरठ

संशोधित तथा परिवर्धित षष्ठम् संस्करण

केदार नाथ राम नाथ

प्रकाशक — मेरठ

प्रकाशक :

केदार नाथ राम नाथ

१३२, कालिज रोड, मेरठ–२५०००१

दूरभाष : ७३५७५, ७३१३४, ७४६६५

अकशेरुकी जन्तु-विज्ञान

षष्ठम संस्करण १९७८–७९

मूल्य रुपये २८·००

लेखिका की अन्य कृतियाँ

1. कोशिका जीव-विज्ञान
2. जैव विकास तथा प्राणि भूगोल
3. प्रायोगिक अकशेरुकी प्राणि-विज्ञान
4. प्रायोगिक कशेरुकी प्राणि-विज्ञान
5. प्रायोगिक प्राणि-विज्ञान
6. प्रायोगिक जीव विज्ञान
7. माध्यमिक जन्तु विज्ञान
8. जन्तु विज्ञान
9. अकशेरुकी जन्तु-विज्ञान
10. कशेरुकी जन्तु विज्ञान
11. सरल जन्तु विज्ञान
12. Introductory Cytology
13. Invertebrate Practical Zoology
14. Vertebrate Practical Zoology
15. Organic Evolution
16. Invertebrate Zoology
17. Vertebrate Zoology
18. Essentials of Zoology
19. A Guide to Laboratory Zoology
20. Principles of Genetics
21. Animal Ecology (In Press)

अकशेरुकी जन्तु-विज्ञान

(Invertebrate Zoology)

विषय-सूची

निम्न नॉनकॉर्डेट्स (Lower Nonchordates) १–३२०

प्राणि-भूगोल (Zoo-Geography) १–१३

पारिस्थितिकी (Ecology)

निम्न नॉनकॉर्डेट्स
(LOWER NONCHORDATES)

फाइलम प्रोटोजोआ
(Phylum Protozoa)

(Gr., *Protos*, first or primitive ; *zoon*, animal)

प्रश्न 1. फाइलम प्रोटोजोआ के विशिष्ट लक्षण बताइए तथा प्रत्येक क्लास एवम् आर्डर के गुण तथा उदाहरण देते हुए इसका वर्गीकरण कीजिये।

Mention the distinguishing features of Phylum Protozoa and give an outline classification of the same with characters and examples of each class and order. *(Agra 1967 ; Ranchi 71)*

प्रत्येक आर्डर के विशिष्ट गुण एवम् उदाहरण देते हुए फाइलम प्रोटोजोआ का वर्गीकरण कीजिये।

Classify Protozoa giving chief characters and examples of each group. *(Nagpur 1968 ; Lucknow 56, 68, 69)*

प्रोटोजोआ का इतिहास सन् 1674 से आरम्भ होता है जबकि डच वैज्ञानिक ल्युवनहॉक (Leeuwenhoeck) ने सर्वप्रथम सूक्ष्म जन्तु या जन्तुक (animalcule) के नाम से इनका वर्णन किया। प्रोटोजोआ शब्द (Gr. *Protos*, primitive or first ; *zoon*, animal) गोल्डफस (Goldfus) ने 1820 में इन जन्तुओं के लिए प्रथम बार प्रयोग किया।

फाइलम प्रोटोजोआ की साधारण विशेषताएँ

(1) फाइलम प्रोटोजोआ के जन्तु अति सूक्ष्म तथा अधिकतर सूक्ष्मदर्शी (microscopic) होते हैं। इनकी रचना अत्यन्त सरल होती है।

(2) इनका शरीर एककोशिकीय या अकोशिकीय (unicellular or acellular) होता है। इनमें एक या एक से अधिक केन्द्रक होते हैं।

(3) इनके शरीर का वाह्य आवरण अधिकतर **पेलीकल** (pellicle) होता है किन्तु कुछ में इसके वाहर वाह्यकंकाल (exoskeleton) होता है जिसको **टैस्ट** (test) या **सिस्ट** (cyst) कहते हैं।

(4) शरीर की एक कोशिका में ही समस्त जीवन-क्रियाएं पूर्ण होती हैं अतः इनमें **क्रियात्मक भिन्नन** (physiological differentiation) नहीं होता।

(5) ये जन्तु स्वतन्त्रजीवी (free-living), सहभोजी (commensal) या परजीवी (parasitic) हो सकते हैं। स्वतन्त्रजीवी जन्तु अधिकतर स्वच्छ पानी में पाये जाते हैं किन्तु कुछ समुद्री पानी में भी रहते हैं। ये अलग-अलग (solitary) अथवा संघ (colonies) बनाकर रहते हैं। परजीवी जन्तु दूसरे जन्तुओं और पौधों के शरीर के भीतर अथवा ऊपर निवास करते हैं।

(6) इनमें जन्तुओं की भाँति या **प्राणी सदृश** (holozoic) **पोषण**, पौधों की भाँति या **वनस्पति सदृश** (holophytic) **पोषण, मृतोपजीवी** (saprozoic) **पोषण** अथवा **परजीवी पोषण** (parasitic nutirtion) होता है। पाचन-क्रिया आन्तर-

कोशिकीय (intracellular) होती है और खाद्यधानी के भीतर पूर्ण होती है।

(7) चलन के लिए विशेष पादाभ (pseudopodia), फ्लेजेला (flagella) तथा सीलिया (cilia) होते हैं। कुछ जन्तुओं में चलन अंग नहीं होते किन्तु कोशिकाद्रव्य में पायी जाने वाली मायोनिमी (myonemes) के द्वारा सिकुड़ने तथा फैलने की क्रिया होती है।

(8) श्वसन तथा उत्सर्जन शरीर की सतह से होता है।

(9) उत्सर्जन में कुञ्चनशील धानियाँ (contractile vacuoles) भी सहायता करती हैं। ये शरीर में पानी की मात्रा का भी नियमन करती हैं।

(10) इनमें जनन लैंगिक या अलैंगिक दोनों विधियों द्वारा होता है। अलैंगिक प्रजनन द्विखण्डन (binary fission) तथा बहुखण्डन (multiple fission) द्वारा होता है। लैंगिक जनन गैमीटों के युग्मन तथा कान्जुगेशन (conjugation) द्वारा होता है।

(11) प्रतिकूल परिस्थितियों से बचने के लिए इन जन्तुओं में परिकोष्ठन (encystment) भी पाया जाता है। परिकोष्ठित अवस्था (encysted condition) में ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक बड़ी सरलता से पहुँच सकते हैं।

(12) कुछ जन्तुओं के जीवन-इतिहास में 'पीढ़ियों का एकान्तरण' होता है।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम प्रोटोजोआ को दो सबफाइलमों में बाँटा गया है :—

सबफाइलम प्लाज्मोड्रोमा (Plasmodroma)

1. चलन अंग पादाभ या कशाभ (pseudopodia or flagella) होते हैं।
2. केन्द्रक एक या एक से अधिक हो सकते हैं किन्तु ये सभी समान होते हैं।
3. अलैंगिक जनन द्विखण्डन (binary fission) तथा बहुखण्डन (multiple fission) द्वारा होता है।
4. लैंगिक जनन युग्मकों के पूर्ण संयुग्मन (complete fusion of gametes) से होता है तथा जीवन-इतिहास में जननों का एकान्तरण (alternation of generations) भी पाया जा सकता है।

क्लास 1. सारकोडिना या राइजोपोडा (Sarcodina or Rhizopoda)

(Gr., *Sarcodes*, fleshy and Gr., *rhiza*, root ; *podos*, foot)

1. चलन अंग पादाभ होते हैं।
2. इनमें निश्चित मुख (definite mouth) का अभाव होता है तथा भोजन का अन्तर्ग्रहण पादाभ द्वारा होता है।
3. इनके शरीर पर बाह्य या आन्तरिक कवच (external or internal shell) हो सकता है और नहीं भी।
4. जनन द्विभाजन विधि द्वारा होता है।

इस क्लास को छः आर्डरों (orders) में बाँटा गया है :—

आर्डर 1. अमीबिना या लोबोसा (Amoebina or Lobosa)

1. चलन अंग छोटे किन्तु मोटे प्रकार के पादाभ (short and blunt pseudopodia) हैं जो लोबोपोडिया (lobopodia) कहलाते हैं।
2. कोशिकाद्रव्य बाह्य-द्रव्य (ectoplasm) तथा आन्तर-द्रव्य (endoplasm) में विभाजित किया जा सकता है।

उदाहरण : *अमीबा तथा एण्टअमीबा।*

जालाकार पादाभ (rhizopodia) पाये जाते हैं। प्रत्येक कक्ष में कोशिकाद्रव्य समान होता है जिसके बाह्य और आन्तरिक स्तर में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु जीवद्रव्य का एक पतला स्तर खोल के बाहर भी होता है। कोशिकाद्रव्य में असंख्य दाने के आकार के उत्सर्जी पदार्थ तथा एक या एक से अधिक केन्द्रक पाये जाते है।

भोजन पादाभों द्वारा पकड़ा जाता है और खोल के बाहर उसका पाचन होता है। *पोलीस्टोमेला* के जीवन-इतिहास में **'जननों का एकान्तरण'** (alternation of generations) पाया जाता है। इसमें जन्तु द्विरूपी (dimorphic) होते हैं। कुछ जन्तुओं में केन्द्रीय कक्ष (central chamber) छोटा होता है। इसमें बहुत-से केन्द्रक होते हैं जो क्रोमिडियल कणों (chromidial granules) से घिरे रहते हैं। ये माइक्रोस्फेरिक (microspheric) होते हैं और बहुविभाजन विधि द्वारा अमीबुली बनाकर संख्या में बढ़ते हैं। अत: इनमें केवल अलैंगिक जनन होता है। प्रत्येक अमीबुला बहुकक्षीय कवच (multicellular shell) बनाकर मैगेलोस्फेरिक जन्तु (megalospheric form) बनाते है। इनका केन्द्रीय कक्ष बड़ा तथा एक केन्द्रकयुक्त होता है और इसमें क्रोमिडियल दाने नहीं होते। इनमें लैंगिक जनन होता है तथा कशाभीय युग्मक बनते हैं। युग्मज से केवल माइक्रोस्फेरिक जन्तु ही बनते हैं।

3. ग्रीगेरिना (Gregarina) (*Lucknow 1957*)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास	—	स्पोरोजोआ (*Sporozoa*)
आर्डर	—	ग्रीगेरिनिडा (*Gregarinida*)
जीनस	—	ग्रीगेरिना (*Gregarina*)

ग्रीगेरिना (*Gregarina*) मोनोसिस्टिस के समान ही परजीवी स्पोरोजोआ है। यह काकरोच, टिड्डों तथा झींगुरों इत्यादि की आंत्र में पाया जाता है।

युवा ट्रोफोजॉयट आन्तरकोशिक परजीवी है जो आंत्र की एपिथीलियम कोशिकाओं में रहता है, परन्तु प्रौढ़ जन्तु **स्पोरॉण्ट** (sporont) कहलाता है और आंत्र गुहा में पाया जाता है स्पोरॉण्ट का शरीर लगभग 1/10 इंच लम्बा तथा द्वितीय खण्ड ड्यूटोमेराइट (deutomerite) कहलाता है। प्रथम खण्ड प्रोटोमेराइट (protomerite) कहलाता है तथा इसमें केन्द्रक होता है। युवा ट्रोफोजॉयट में शरीर के अग्रिम सिरे पर अग्रिम टोपी के समान इपिमेराइट (epimerite) होता है, अत: यह सिफेलॉण्ट (cephalont) भी कहलाता है। इस पर पोषक की आंत्र की दीवार से चिपकने के लिए हुक होते हैं। प्रौढ जन्तु में इपिमेराइट नष्ट हो जाता है।

स्पोरॉण्ट में मुख, कुञ्चनशील धानी तथा चलन अंगकों का अभाव होता है परन्तु इसमें विशेष प्रकार की ग्रीगेरिन गति (gregarine movement) पायी जाती है। यह गति लम्बवत् मायोनीमीज के द्वारा होती है। यह पोषक की आंत्र में पाये जाने वाले कार्बोहाइड्रेट तथा पेपटोन मृतजीवी विधि द्वारा ग्रहण करता है। बहुधा दो या दो से अधिक स्पोरॉण्ट एक साथ जुड़े रहते हैं। इनका इस प्रकार जुड़ना साइजायगी (syzygy) कहलाता है।

ग्रीगेरिना में परिकोष्ठित अवस्था में लैंगिक विधि से जनन होता है। दो स्पोरॉण्ट एक सिस्ट में बन्द हो जाते है तथा पोषक की विष्ठा के साथ शरीर के बाहर आ जाते हैं। ये गैमोण्ट या गैमीटोसाइट (gamonts or gametocytes) कहलाते है। दोनो गैमॉण्ट्स में बहुत-से आइसोगैमीट (isogametes) बनते हैं।

कोशिकीय (intracellular) होती है और खाद्यधानी के भीतर पूर्ण होती है।

(7) चलन के लिए विशेष **पादाभ** (pseudopodia), **फ्लेजेला** (flagella) तथा **सीलिया** (cilia) होते हैं। कुछ जन्तुओं में चलन अंग नहीं होते किन्तु कोशिकाद्रव्य में पायी जाने वाली मायोनिमी (myonemes) के द्वारा सिकुड़ने तथा फैलने की क्रिया होती है।

(8) श्वसन तथा उत्सर्जन शरीर की सतह से होता है।

(9) उत्सर्जन में कुञ्चनशील धानियाँ (contractile vacuoles) भी सहायता करती है। ये शरीर में पानी की मात्रा का भी नियमन करती हैं।

(10) इनमें जनन लैंगिक या अलैंगिक दोनों विधियों द्वारा होता है। अलैंगिक प्रजनन द्विखण्डन (binary fission) तथा बहुखण्डन (multiple fission) द्वारा होता है। लैंगिक जनन गैमीटों के युग्मन तथा काञ्जुगेशन (conjugation) द्वारा होता है।

(11) प्रतिकूल परिस्थितियो से बचने के लिए इन जन्तुओं में परिकोष्ठन (encystment) भी पाया जाता है। परिकोष्ठित अवस्था (encysted condition) में ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक बड़ी सरलता से पहुँच सकते है।

(12) कुछ जन्तुओं के जीवन-इतिहास मे 'पीढियों का एकान्तरण' होता है।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम प्रोटोजोआ को दो सबफाइलमों मे बाँटा गया है :—

सबफाइलम प्लाज्मोड्रोमा (Plasmodroma)

1. चलन अंग पादाभ या कशाभ (pseudopodia or flagella) होते है।
2. केन्द्रक एक या एक से अधिक हो सकते है किन्तु ये सभी समान होते है।
3. अलैंगिक जनन द्विखण्डन (binary fission) तथा बहुखण्डन (multiple fission) द्वारा होता है।
4. लैंगिक जनन युग्मकों के पूर्ण संयुग्मन (complete fusion of gametes) से होता है तथा जीवन-इतिहास मे जननों का एकान्तरण (alternation of generations) भी पाया जा सकता है।

क्लास 1. सारकोडिना या राइजोपोडा (Sarcodina or Rhizopoda)

(Gr., *Sarcodes*, fleshy and Gr., *rhiza*, root ; *podos*, foot)

1. चलन अंग पादाभ होते है।
2. इनमे निश्चित मुख (definite mouth) का अभाव होता है तथा भोजन का अन्तर्ग्रहण पादाभ द्वारा होता है।
3. इनके शरीर पर वाह्य या आन्तरिक कवच (external or internal shell) हो सकता है और नहीं भी।
4. जनन द्विभाजन विधि द्वारा होता है।

इस क्लास को छ: आर्डरों (orders) मे बाँटा गया है :—

आर्डर 1. अमीबिना या लोबोसा (Amoebina or Lobosa)

1. चलन अंग छोटे किन्तु मोटे प्रकार के पादाभ (short and blunt pseudopodia) है जो **लोबोपोडिया** (lobopodia) कहलाते हैं।
2. कोशिकाद्रव्य **वाह्य-द्रव्य** (ectoplasm) तथा **आन्तर-द्रव्य** (endoplasm) मे विभाजित किया जा सकता है।

उदाहरण . *अमीबा* तथा *एण्टअमीबा*।

जालाकार पादाभ (rhizopodia) पाये जाते हैं। प्रत्येक कक्ष में कोशिकाद्रव्य समान होता है जिसके वाह्य और आन्तरिक स्तर में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु जीवद्रव्य का एक पतला स्तर खोल के बाहर भी होता है। कोशिकाद्रव्य में असंख्य दाने के आकार के उत्सर्जी पदार्थ तथा एक या एक से अधिक केन्द्रक पाये जाते है।

भोजन पादाभों द्वारा पकड़ा जाता है और खोल के बाहर उसका पाचन होता है। *पोलीस्टोमेला* के जीवन-इतिहास में 'जननों का एकान्तरण' (alternation of generations) पाया जाता है। इसमें जन्तु द्विरूपी (dimorphic) होते है। कुछ जन्तुओं में केन्द्रीय कक्ष (central chamber) छोटा होता है। इसमें बहुत-से केन्द्रक होते हैं जो क्रोमिडियल कणों (chromidial granules) से घिरे रहते हैं। ये माइक्रोस्फेरिक (microspheric) होते हैं और बहुविभाजन विधि द्वारा अमीबुली बनाकर संख्या में बढ़ते हैं। अतः इनमें केवल अलैंगिक जनन होता है। प्रत्येक अमीबुला बहुकक्षीय कवच (multicellular shell) बनाकर मैगेलोस्फेरिक जन्तु (megalospheric form) बनाते हैं। इनका केन्द्रीय कक्ष बड़ा तथा एक केन्द्रकयुक्त होता है और इसमें क्रोमिडियल दाने नहीं होते। इनमें लैंगिक जनन होता है तथा कशाभीय युग्मक बनते हैं। युग्मज से केवल माइक्रोस्फेरिक जन्तु ही बनते हैं।

3. ग्रीगेरिना (Gregarina) (*Lucknow 1957*)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास	—	स्पोरोजोआ (*Sporozoa*)
आर्डर	—	ग्रीगेरिनिडा (*Gregarinida*)
जीनस	—	ग्रीगेरिना (*Gregarina*)

ग्रीगेरिना (*Gregarina*) मोनोसिस्टिस के समान ही परजीवी स्पोरोजोआ है। यह काकरोच, टिड्डों तथा झींगुरों इत्यादि की आंत्र में पाया जाता है।

युवा ट्रोफोजॉयट आन्तरकोशिक परजीवी है जो आंत्र की एपिथीलियम कोशिकाओं में रहता है, परन्तु प्रौढ़ जन्तु **स्पोरॉण्ट** (sporont) कहलाता है और आंत्र गुहा में पाया जाता है स्पोरॉण्ट का शरीर लगभग 1/10 इंच लम्बा तथा द्वितीय खण्ड ड्यूटोमेराइट (deutomerite) कहलाता है। प्रथम खण्ड प्रोटोमेराइट (protomerite) कहलाता है तथा इसमें केन्द्रक होता है। युवा ट्रोफोजॉयट में शरीर के अग्रिम सिरे पर अग्रिम टोपी के समान इपिमेराइट (epimerite) होता है, अतः यह सिफेलॉण्ट (cephalont) भी कहलाता है। इस पर पोषक की आंत्र की दीवार से चिपकने के लिए हुक होते हैं। प्रौढ जन्तु में इपिमेराइट नष्ट हो जाता है।

स्पोरॉण्ट में मुख, कुञ्चनशील धानी तथा चलन अंगकों का अभाव होता है परन्तु इसमें विशेष प्रकार की ग्रीगेरिन गति (gregarine movement) पायी जाती है। यह गति लम्बवत् मायोनीमीज के द्वारा होती है। यह पोषक की आंत्र में पाये जाने वाले कार्बोहाइड्रेट तथा पेपटोन मृतजीवी विधि द्वारा ग्रहण करता है। बहुधा दो या दो से अधिक स्पोरॉण्ट एक साथ जुड़े रहते हैं। इनका इस प्रकार जुड़ना साइजायगी (syzygy) कहलाता है।

ग्रीगेरिना में परिकोष्ठित अवस्था में लैंगिक विधि से जनन होता है। दो स्पोरॉण्ट एक सिस्ट में बन्द हो जाते है तथा पोषक की विष्ठा के साथ शरीर के बाहर आ जाते है। ये गैमोण्ट या गैमीटोसाइट (gamonts or gametocytes) कहलाते हैं। दोनो गैमॉण्ट्स में बहुत-से आइसोगैमीट (isogametes) बनते हैं।

चित्र १·३. ग्रीगेरिना के जीवन-इतिहास की विभिन्न अवस्थाएँ
(Various stages in the life-cycle of *Gregarina*)

ये जोड़ों मे समेकित होकर युग्मनज (zygote) बनाते है। प्रत्येक युग्मज अपने चारों ओर स्पोरोसिस्ट बनाकर स्पोर मे बदल जाता है। प्रत्येक स्पोर मे 8 स्पोरोजॉयट (sporozoites) बनते है। स्पोरोजॉयट सिस्ट में पायी जाने वाली वाहिनियों में से बाहर निकल आते है तथा भोजन के साथ आहार-नाल में पहुँचकर नये पोषक को सक्रमित करते हैं। ये एपिथीलियल कोशिकाओं के भीतर पहुँचकर अन्तरकोशिका जीवन व्यतीत करते है।

4. मोनोसिस्टिस (Monocystis) (*Nagpur 1961*)

कृपया प्रश्न 6 देखिये।

5. ट्रिपेनोसोमा (*Trypanosoma*) (*Vikram 1968 ; Jiwaji 71*)

कृपया प्रश्न 13 देखिये।

6. सीरेशियम (Ceratium) (*Lucknow 1964*)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास	—	फ्लेजेलेटा (*Flagellata*)
सबक्लास	—	फाइटोमेस्टिजिना (*Phytomastigina*)
आर्डर	—	डायनोफ्लेजेलेटा (*Dinoflagellata*)
जीनस	—	सीरेशियम (*Ceratium*)

सीरेशियम (*Ceratium*) समुद्र में पाया जाने वाला स्वतन्त्र-जीवी डायनोफ्लेजेलेट है किन्तु यह किसी सीमा तक शुद्ध जल मे पाये जाने वाले प्लेंकटन (plankton) का भाग भी बनाता है। इसका शरीर लगभग गोल होता है जो एक मोटे, कठोर, मजबूत तथा रेटिक्यूलेट खोल (shell or theca) मे बन्द रहता है। खोल बहुत-सी पट्टियों का बना होता है जिनकी संख्या सीरेशियम की विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न होती है। खोल आगे की ओर एक शीर्ष प्रवर्ध (apical process) तथा पीछे की ओर 2 से 4 एण्टएपिकल प्रवर्धो (antapical processes) मे निकला रहता है। खोल मे एक अनुप्रस्थ तथा एक लम्बवत् खाई होती है। प्रत्येक खाई में एक कशाभ (flagellum) स्थित होता है। अनुप्रस्थ खाई शरीर के चारों ओर
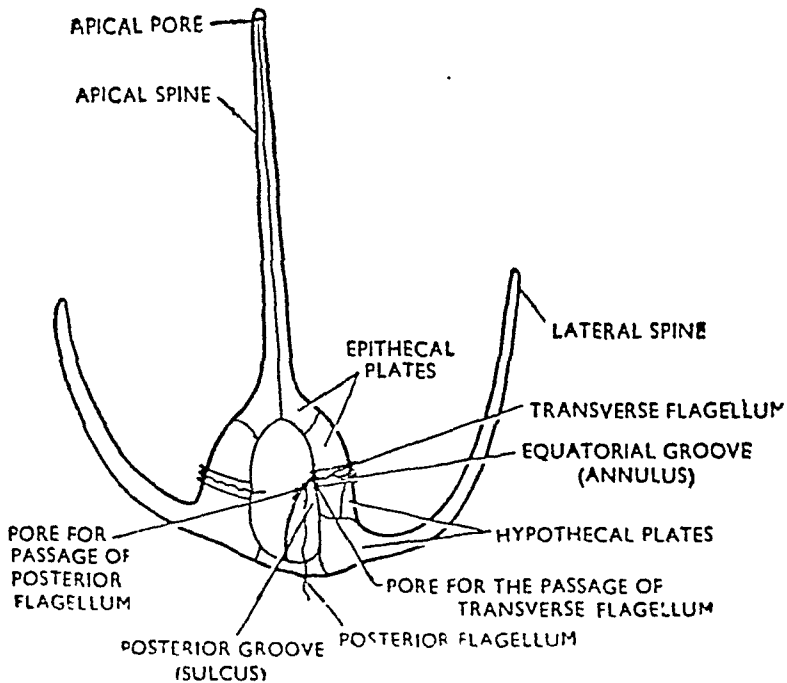
चित्र. १·४. सीरेशियम (*Ceratium*)

एक घेरा बनाती है जो एन्युलस (annulus) कहलाती है। एन्युलस के ऊपर वाला शरीर का भाग इपिकोन (epicone) तथा इससे नीचे का पिछला भाग हाइपोकोन (hypocone) कहलाता है। लम्ववत् खाई शरीर के पिछले सिरे की ओर टेढ़ी होकर बढ़ती है और सल्कस (sulcus) कहलाती है। यह अपेक्षाकृत अधिक चौड़ी होती है। इसमें स्थित कशाभ भी अपेक्षाकृत लम्बा होता है। सीरेशियम के शरीर के केन्द्र पर एक बड़ा केन्द्रक होता है जिसमें एण्डोसोम बहुत स्पष्ट होता है। कोशिकाद्रव्य में क्रोमेटोफोर स्थित होते हैं।

क्रोमेटोफोर की उपस्थिति के कारण इसमें वनस्पति-सदृश पोषण होता है किन्तु इसकी कुछ जातियाँ जन्तु के समान भोजन ग्रहण करती हैं। अधिकतर जन्तुओं में एक stigma तथा अकुञ्चनशील धानियों (noncontractile vacuoles) का जटिल तन्त्र-सा होता है जो pusule कहलाता है। सीरेशियम में द्विखण्डन विधि द्वारा जनन होता है किन्तु कभी-कभी परिकोष्ठन क्रिया भी पायी जाती है। सीरेशियम की बहुत-सी जातियाँ स्फुरदीप्त (luminescent) होती हैं।

7. नॉक्टिल्युका (Noctiluca) (*Lucknow 1955*)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास	—	फ्लेजेलेटा (*Flagellata*)
आर्डर	—	डायनोफ्लेजेलेटा (*Dinoflagellata*)
जीनस	—	नॉक्टिल्यूका (*Noctiluca*)

नॉक्टिल्युका समुद्री डायनोफ्लेजेलेट है जो समुद्र की सतह पर तैरता हुआ पाया जाता है। कभी-कभी यह इतनी अधिक संख्या में होता है कि समुद्र की सतह पर पर्त-सी बना लेता है जो टमाटर के रस के समान दृष्टिगत होती है। नॉक्टि-

ल्युका का शरीर छोटा, गोल तथा जैली के समान होता है तथा इसका रंग हल्का गुलाबी होता है। इसका व्यास लगभग 1 mm. होता है। कोशिकाग्रसनी (cytopharynx) बड़ी थैले के समान गर्त (depression) के रूप में होती है तथा लम्बे मुख में खुलती है। कोशिकाग्रसनी में एक छोटा, मुलायम कशाभ तथा एक बड़ा एवम् मोटा स्पर्शक होता है। इसका कोशिकाद्रव्य अत्यधिक धानीयुक्त होता है तथा परिधीय एवम् केन्द्रीय भागों में बँटा रहता है।

चित्र १·५ नॉक्टिल्युका (*Noctiluca*)
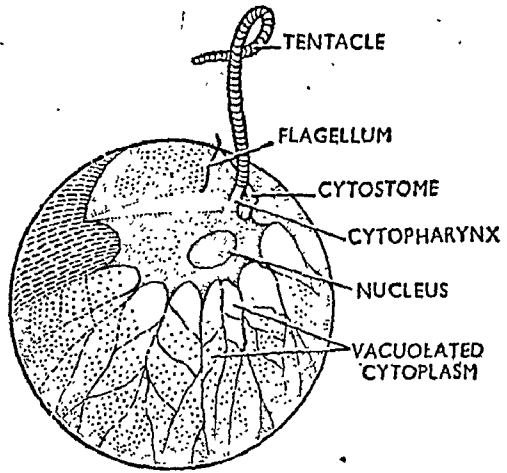
नॉक्टिल्युका में स्पर्शकों की तरंगित गति द्वारा चलन होता है। पोषण जन्तु-सदृश होता है तथा भोजन कशाभ द्वारा एकत्रित किया जाता है। इसमें अलैंगिक जनन द्विखण्डन तथा स्पोर-निर्माण विधियों द्वारा होता है। इसकी विभिन्न जातियाँ स्फुरदीप्ति के लिये प्रसिद्ध हैं।

8. निक्टोथेरस (Nyctotherus) (*Lucknow 1956*)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	सिलियोफोरा (*Ciliophora*)
क्लास	—	सिलिएटा (*Ciliata*)
सबक्लास	—	यूसिलिएटा (*Euciliata*)
आर्डर	—	स्पाइरोट्राइका (*Spirotricha*)
टाइप	—	निक्टोथेरस (*Nyctotherus*)
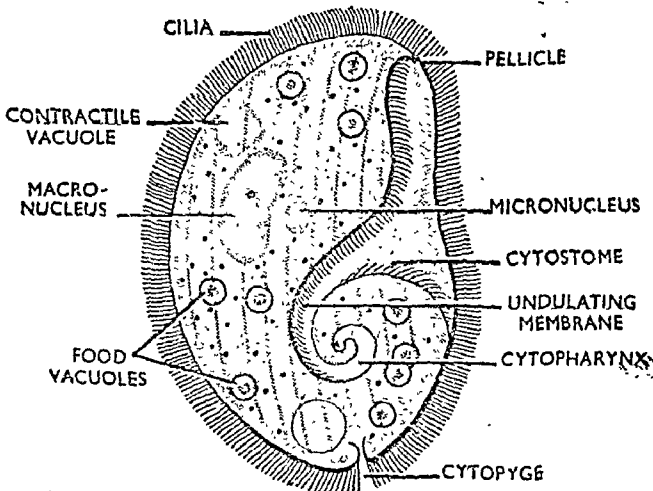
चित्र १·६. निक्टोथेरस (*Nyctotherus*)

निक्टोथेरस सहजीवी जीवन व्यतीत करने वाला कशेरुकदण्डियों व अकशेरुक-दण्डियों की आंत्र का परजीवी है। *N. cardiformis* मेंढक एवम् टेडपोल की आंत्र में पाया जाने वाला सामान्य प्रोटोजोअन-परजीवी है। इसका शरीर सेम के बीज के समान तथा पृष्ठ-अधर से संपीडित होता है और इसका आकार 60μ–120μ तक होता है। इसके समस्त शरीर पर समान आकार के रोमकों की लम्बवत् कतारें होती हैं। मुख झिर्री (oral groove) पार्श्व में स्थित होती है और शरीर के मध्य तक फैली रहती है। **कोशिकामुख** (cytostome) में डर्मिल झिल्ली होती है तथा **कोशिकाग्रसनी** (cytopharynx) घड़ी के स्प्रिंग की भाँति होती है। एण्डोप्लाज्म (endoplasm) में एक **गुरुकेन्द्रक** (meganucleus), एक **लघु-केन्द्रक** (micronucleus), एक **आकुंचनशील धानी** (contractile vacuole), **खाद्य धानियाँ** (food vacuoles) तथा **ग्लाइकोजन कणिकाएँ** (glycogen granules) होती हैं। **गुदा मार्ग** (anal pore) स्थायी छिद्र के रूप में होता है।

निक्टोथेरस द्विखण्डन द्वारा अलैंगिक जनन करता है। टेडपोल के मलाशय में यह preconjugants बनाता है जो टेडपोल के कायान्तरण (metamorphosis) के समय संयुग्मन करते हैं। शिशु मेंढक में ये सामान्य आकार ग्रहण कर लेते हैं और सिस्ट (cysts) के रूप में मल के साथ बाहर निकल आते हैं। इनका संक्रमण पुटियों या सिस्ट से संक्रमित भोजन व जल ग्रहण करने से होता है।

9. वैलेण्टिडियम (Balantidium)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	सिलियोफोरा (*Ciliophora*)
क्लास	—	सिलिएटा (*Ciliata*)
सबक्लास	—	यूसिलिएटा (*Euciliata*)
आर्डर	—	हेटरोट्राइका (*Heterotricha*)
जीनस	—	वैलेण्टिडियम (*Balantidium*)

वैलेण्टिडियम कशेरुकदण्डियों (vertebrates) की आंत्र में पाया जाने वाला आन्तर-परजीवी है जो अधिकतर एम्फीबिया तथा मैमेलिया (Amphibia and Mammalia) क्लास के जन्तुओं में रहता है। यह अण्डाकार या नाशपाती के आकार का जन्तु है जिसका अग्रिम सिरा कुछ नुकीला तथा पश्च सिरा लगभग गोल होता है। यह 10 से 36μ तक लम्बा होता है। इसके शरीर की समस्त सतह एक ही लम्बाई के रोमकों द्वारा ढकी रहती है। रोमक लम्बवत् तथा वर्तुल पंक्तियों में लगे रहते हैं। शरीर के अगले सिरे पर फनल के आकार की गहरी गर्त होती है जो **पेरिस्टोमियल गर्त** (peristomial groove) कहलाती है। इस पर रोमकों के एक पंक्ति में समेकित होने से बनी एडोरल झिल्ली (adoral membrane) पायी जाती है। पैरिस्टोमियल गर्त पीछे की ओर कोशिका-मुख तथा साइटोफैरिंक्स द्वारा आन्तर-द्रव्य (endoplasm) में खुलती है। आन्तर-द्रव्य में एक बड़ा सेम के बीज के आकार का गुरु-केन्द्रक (macronucleus) तथा एक छोटा लघु-केन्द्रक (micronucleus) पाया जाता है। इसके अतिरिक्त एक या दो अकुञ्चनशील धानियाँ भी होती हैं जो सदैव निश्चित स्थानों पर पायी जाती हैं। साइटोपाइग एक निश्चित तथा स्थिर छिद्र है जो शरीर के पिछले सिरे पर स्थित होता है।

वैलेण्टिडियम मृतजीवी (saprophytic) विधि से आन्त्र में पाये जाने वाले पदार्थों को ग्रहण करता है। इसमें अनुप्रस्थ द्विखण्डन विधि द्वारा अलैंगिक जनन होता है। सिस्ट बनने के पश्चात् कॉन्जुगेशन विधि द्वारा लैंगिक जनन

होता है। सिस्ट (cyst) दोहरी भित्ति का बना होता है। परिकोष्ठित अवस्था में ही यह एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचता है।
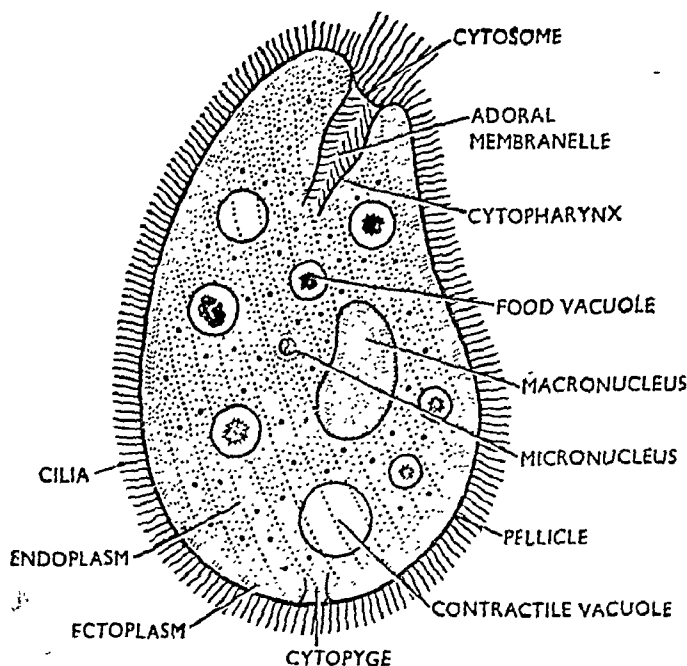
चित्र १·७. बैलेण्टिडियम (*Balantidium*)

बैलेण्टिडियम की बहुत-सी जातियाँ मेंढक की आन्त्र में पायी जाती हैं। *B. coli* मनुष्य की आन्त्र में रहता है और आंत्र की दीवार में प्रवेश करके फोड़े बनाता है और इस प्रकार **बैलेण्टिडियोसिस** (balantidiosis) नामक रोग उत्पन्न करता है।

अध्याय 2

अमीबा
(Amoeba)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास	—	सारकोडिना या राइजोपोडा (*Sarcodina*)
आर्डर	—	लोबोसा या अमीबिना (*Lobosa*)
जीनस	—	अमीबा (*Amoeba*)

प्रश्न 3. अमीबा की संरचना एवम् कायिकी का वर्णन कीजिये तथा समझाइये कि यह जीव-विज्ञान के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों को किस प्रकार प्रदर्शित करता है।

Give an account of the structure and physiology of *Amoeba* and show how it explains some of the basic principles of Zoology.

(Kerala 1967 ; Gorakhpur 68 ; Agra 51, 61, 67 ; Saugar 61, 65 ; Nagpur 68 ; Ranchi 71)

अमीबा में चलन विधि का वर्णन करिये।

Describe the mode of locomotion in Amoeba. *(Rewa 1972)*

प्रकृति तथा वास (Habit and habitat)—अमीबा का वर्णन सर्वप्रथम **Roesel Von Rosenhof** द्वारा सन् 1775 में किया गया था। यह अतिसूक्ष्म व स्वतन्त्र-जीवी (free-living) जन्तु है जिसका शरीर एककोशीय (unicellular) होता है तथा उसी कोशिका में समस्त जैविक क्रियायें पूर्ण होती हैं। यह अधिकतर ताजे पानी वाले गड्ढों, तालावों, पोखरों, नदियों इत्यादि के धरातल पर पायी जाने वाली कीचड़ में, छोटे-छोटे पौधों की जड़ों तथा पत्तियों पर पाये जाते हैं। अमीबा की कुछ जातियाँ समुद्री पानी में तथा कुछ परजीवी की भाँति भी रहती हैं।

संरचना (Structure)

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—*अमीबा* एककोशिकीय जन्तु है जो सूक्ष्मदर्शी (microscope) द्वारा रंगहीन, पारदर्शी तथा जिलेटिन के समान (colourless, transparent and gelatinous) दिखायी देता है। इसका आकार सदैव परिवर्तित होता रहता है। यह लगभग 1/100 इंच या ·25 mm. होता है किन्तु *अ० प्रोटियस* के कुछ वड़े जन्तु लगभग ·5 mm. तक नापे गये हैं। इसके शरीर से वहुत-से छोटे-छोटे अंगुली के आकार के तथा चपटे प्रवर्ध निकले रहते हैं जो जीवद्रव्य के वने होते है तथा **पादाभ** (pseudopodia) कहलाते हैं। इनकी संख्या कभी भी निश्चित नहीं होती क्योंकि लगभग हर समय ये शरीर के एक भाग में वनते रहते हैं तो दूसरे भाग में समाप्त होते रहते हैं। इसी कारण *अमीबा* का आकार अनियमित होता है। पादाभ चौड़े तथा वेलनाकार होते हैं और प्रत्येक में **वाह्य-द्रव्य** (ectoplasm) तथा **आन्तर-द्रव्य** (endoplasm) दोनों ही पाये जाते हैं। अतः इस प्रकार के पादाभ **लोवोपोडिया** (lobopodia) कहलाते हैं।
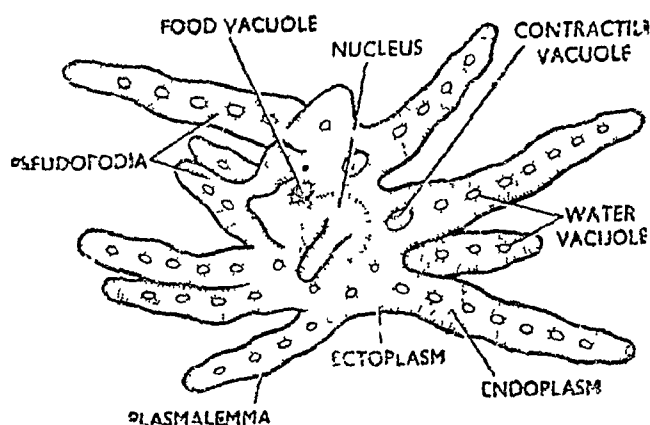
चित्र २·१. अमीबा की सरचना (Structure of *Amoeba*)

द्रव्यकला या प्लैज्मालेमा (Plasmalemma)—*अमीबा* का शरीर एक बहुत ही पतली, लचीली, पारदर्शी तथा अर्धपारगम्य (semipermeable) झिल्ली द्वारा ढका रहता है। यह द्रव्य-कला या प्लैज्मालेमा कहलाती है। यह पादाभ को बनने देती है तथा पानी मे घुले पदार्थों के शरीर के भीतर आने तथा शरीर मे पाये जाने वाले पदार्थों के शरीर से बाहर जाने की क्रिया का नियमन (control) करती है।

जीवद्रव्य (Protoplasm)—द्रव्य-कला के भीतर पाया जाने वाला पदार्थ जीवद्रव्य कहलाता है। यह दो भागो में बँटा होता है :—

(अ) बाह्यद्रव्य (Ectoplasm ; *Gr*., *ektos*, **outside**)—यह जीवद्रव्य का बाहरी भाग है जो द्रव्य-कला के ठीक नीचे स्थित होता है। यह साफ, अल्पपारदर्शी, गाढा तथा बिना दानेदार (clear, translucent and non-granular) होता है। नये बनने वाले पादाभ के सिरो पर यह अपेक्षाकृत मोटी पर्त बनाता है जो **हायलाइन टोपी** (hyaline cap) कहलाती है।

(ब) आन्तर-द्रव्य (Endoplasm : *Gr*., *endon*, **within**)—यह दानेदार, अर्ध-पारदर्शी (semi-transparent) तथा अधिक द्रवीय (more fluid-like) अवस्था मे होता है और कोशिका का मुख्य भाग बनाता है। **मास्ट** (Mast) के अनुसार यह पुन: दो भागो मे बाँटा जा सकता है :—

(*i*) बाह्य अपेक्षाकृत गाढा (more solid) तथा जेली के समान—**प्लैज्मा-जेल** (plasmagel)।

(*ii*) भीतर अपेक्षाकृत पतला (more liquid-like)—**प्लैज्मासोल** (plasmasol)—जिसमे धारागति (streaming movement) होती है।

जीवद्रव्य के अन्तर्वेशन
(Protoplasmic Inclusions)

1. केन्द्रक (Nucleus)—*अमीबा* मे एक बडा, उभयोत्तल (biconvex), डिस्क के समान (disc-like) या गोलाकार (spherical) केन्द्रक पाया जाता है जो आन्तर-द्रव्य मे किसी भी स्थान पर हो सकता है। जीवित *अमीबा* मे इसको पहचानना कठिन है किन्तु अभिरंजन के पश्चात् (after staining) यह बहुत स्पष्ट

हो जाता है। इसके चारों ओर एक **केन्द्रक कला** (nuclear membrane) होती है जिसके भीतर के खाली स्थान में क्रोमेटिन-रहित (achromatin) पदार्थ केन्द्रकद्रव्य (nucleoplasm) होता है। केन्द्र में **रंज्याकरण** (chromatin granules) समान रूप से छितरे रहते हैं।

2. खाद्य धानियाँ (Food vacuoles)—आन्तर-द्रव्य में बहुत-सी अकुञ्चनशील (noncontractile) खाद्य-धानियाँ फैली रहती हैं। इनका आकार तथा नाप भिन्न-भिन्न होता है। भोजन के टुकड़े के अनुरूप ये छोटी-बड़ी, गोल, लम्बी अथवा चपटी हो सकती हैं। प्रत्येक खाद्यधानी मे भोजन का एक-टुकड़ा थोड़े-से पानी के साथ बन्द रहता है।

3. कुञ्चनशील धानी (Contractile vacuole)—आन्तर-द्रव्य के पास एक बड़ी, लगभग गोल पानी से भरी **कुञ्चनशील धानी** पायी जाती है। यह जीवद्रव्य से पानी एकत्रित कर आकार मे बड़ी होती जाती है और शरीर की सतह की ओर बढ़ती जाती है। शरीर की सतह पर पहुँचकर यह पास के पर्यावरण में फट जाती है। यह उत्सर्जन (excretion) तथा शरीर से अनावश्यक जल को बाहर निकालने (osmoregulation) में सहायता करती है।

4. जल धानियाँ (Water vacuoles)—जल से भरी बूंदों के समान असंख्य छोटी-छोटी जल धानियाँ *अमीवा* के आन्तर-द्रव्य में पड़ी रहती हैं। ये रंगहीन, पारदर्शी तथा अकुञ्चनशील होती हैं।

कायिकी या फिजिओलोजी (Physiology)

चलन (Locomotion)

अमीवा में चलन के लिए निश्चित अंगों का अभाव होता है किन्तु शरीर से निकलने वाले अंगुली के आकार के पादाभ (pseudopodia) द्वारा यह धीरे-धीरे खिसक सकता है। पादाभ शरीर के किसी भाग से तथा किसी भी दिशा में बन सकते है तथा इनका आकार एवम् परिमाण सदैव परिवर्तित होता रहता है। जब किसी एक दिशा में नया पादाभ बनता है तो शरीर के अन्य भागों में बने पुराने पादाभ समाप्त होते रहते हैं तथा शरीर का समस्त जीवद्रव्य धीरे-धीरे नये बने पादाभ में आ जाता है। इस विधि के बार-बार दुहराने पर *अमीवा* अपनी स्थिति से हटता है। चलन की यह क्रिया **अमीबॉयड मूवमैण्ट** (amoeboid movement) कहलाती है तथा अमीवा तथा अमीवा-सदृश जन्तुओं की विशेषता है।

पादाभ बनने की विधि तथा चलन को समझने के लिए बहुत-से सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। उनमें से कुछ निम्न है :—

1. जेंनिग का गोलाकार गति सिद्धान्त (Rolling movement theory of **Jenning**)—**जेंनिग** के अनुसार *अमीवा वेरुकोसा* (*Amoeba verrucosa*) मे शरीर की पृष्ठ सतह पर का कोई दिया हुआ बिन्दु उस सतह पर आगे की ओर बढ़ता है। सिरों पर पहुँचकर यह नीचे या अधर सतह की ओर चलता है तथा आधार के सम्पर्क में आने पर स्थित हो जाता है। यह बिन्दु आधार पर तब तक चिपका रहता है जब तक कि शरीर का समस्त प्रोटोप्लाज्म इस बिन्दु पर से होकर न चला जाये। अब यह बिन्दु अधर तल पर से होता हुआ पुनः पृष्ठ तल की ओर बढ़ता है। इस प्रकार जन्तु धीरे-धीरे फिसलता हुआ आगे बढ़ता है।

2. अभिलाग सिद्धान्त (Adhesion theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार गति की दिशा में *अमीवा* पादाभ निकालता है जो जीवद्रव्य के फैलने से बनता है।

यह नया बना पादाभ आधार से चिपक जाता है तथा शरीर का शेष जीवद्रव्य अधिक अभिलाग (greater adhesion) की दिशा में वह जाता है और *अमीवा* आगे बढ़ता है।

3. डेलिञ्जर का सिकुड़ने का सिद्धान्त (Contraction theory of **Dillinger**)—डेलिञ्जर के अनुसार, नया बना पादाभ अपने सिरे द्वारा आधार से चिपक जाता है। अन्तरद्रव्य में पाये जाने वाले किसी कुञ्चनशील पदार्थ के सिकुड़ने के कारण यह सिकुड़ता है जिससे सारा शरीर आगे बढ़ता है।

4. रम्बलर तथा अन्य वैज्ञानिकों का तल तनाव सिद्धान्त (Surface tension theory of **Rhumbler** and others)—इस सिद्धान्त के अनुसार किसी एक विन्दु पर प्रोटोप्लाज्म के बाहर वह निकलने से पादाभ बनता है। इस विन्दु पर बाह्य या आन्तरिक प्रभाव के कारण तल तनाव कम हो जाता है। प्लाज्मा मेम्ब्रैन के तनाव के कारण शरीर का समस्त कोशिकाद्रव्य इसी विन्दु में से आगे बढ़ जाता है जिससे नया बना पादाभ आकार में बढ़ता है।

5. मास्ट तथा पेटिन का सोल-जैल सिद्धान्त (Sol-gel theory of **Mast** and **Patin**)—सोल-जैल सिद्धान्त **हाइमन** (Hymen) द्वारा प्रतिपादित किया गया था तथा बाद में **मास्ट** (Mast) एवम् **पेटिन** (Patin) ने इसका समर्थन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, *अमीवा* का कोशिकाद्रव्य दो प्रकार का होता है: (*i*) बाहर का गाढ़ा, कठोर तथा गतिहीन **प्लाज्माजैल**, तथा (*ii*) भीतर का पतला द्रव के समान गतिशील—**प्लाज्मासोल**।

प्लाज्मासोल में धारा-गति होती है। अमीबॉयड गति द्वारा चलन की विधि को चार पदों में बाँटा जा सकता है :—

(*i*) प्लाज्मालेमा आधार से चिपक जाता है।

(*ii*) अमीवा का प्लाज़्मासोल (plasmasol) गति की दिशा में आगे बढ़ता
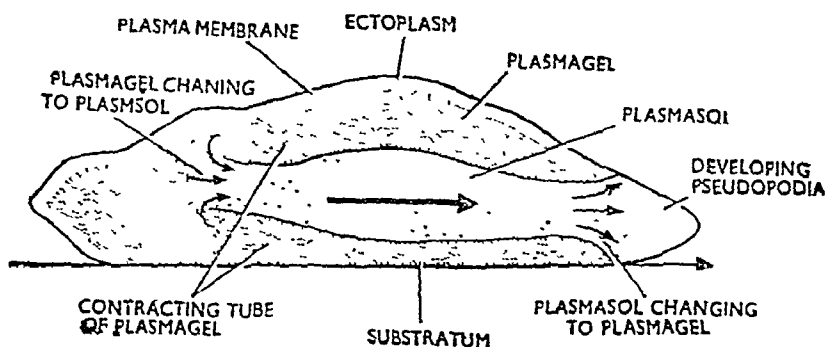
चित्र २·२. सोल-जैल सिद्धान्त द्वारा अमीवा की अमीबॉयड चलन (amoeboid movement) विधि का स्पष्टीकरण

है और प्लाज्मालेमा को कमजोर विन्दु पर तोड़कर उससे बाहर निकल आता है तथा इस प्रकार एक छोटा-सा नया पादाभ बना लेता है। इस नये बने पादाभ में प्लाज्मा-सोल, प्लाज्मालेमा में बदल जाता है जिससे यह पादाभ एक मजबूत जिलेटिन की नलिका (gelatinised tube) बना लेता है।

(*iii*) इसी समय शरीर के पिछले सिरे पर का प्लाज्माजैल पानी सोखकर प्लाज्मासोल में परिवर्तित होता रहता है। यह प्लाज्मासोल नये बने पादाभ की ओर

बढ़ता रहता है यहाँ तक कि शरीर का समस्त जीवद्रव्य बहकर एक पादाभ में आ जाता है।

(*iv*) अब प्लाज्माजैल की नलिका सिकुड़ती है और शरीर आगे बढ़ता है। तत्पश्चात् एक नया पादाभ पुनः इसी दिशा में बनता है और ये सभी क्रियाएँ फिर बार-बार दोहरायी जाती हैं जिससे *अमीबा* धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।

6. एक्टोप्लाज्म संकुचन सिद्धान्त (Ectoplasm contraction theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार *अमीबा* का कोशिकाद्रव्य बाह्य **जैल भाग** (एक्टोप्लाज्म) तथा आन्तरिक **सोल भाग** (एण्डोप्लाज्म) में भिन्नित होता है। *अमीबा* में चलन कॉर्टिकल जेल में संकुचन के फलस्वरूप होता है। **गोल्डेकर** (Goldacre) के अनुसार शरीर के पिछले भाग में जैल संकुचन करता है जिसके फलस्वरूप सोल पर दबाव पड़ता है और यह आगे की ओर बह निकलता है। अग्र सिरे पर पहुँचने पर सोल, जैल में बदल जाता है।

7. ऐलेन का अग्र-संकुचन सिद्धान्त (Allen's front contraction theory)—**ऐलेन** (1962) के मतानुसार एक्टोप्लाज्म में दो स्तर होते हैं (*i*) बाहरी हायलाइन स्तर, तथा (*ii*) भीतरी जैल स्तर।

एण्डोप्लाज्म प्लैज्मासोल का बना होता है तथा इसके अक्षीय भाग में प्लैज्मा-जेल होता है। शरीर के अगले भाग में स्थित कॉर्टिकल जैल के संकुचन से एण्डोप्लाज्म आगे की ओर खिचता है। पादाभ के अगले सिरे पर हायलाइन टोपी से टकराकर पार्श्व में यह एक्टोप्लाज्म से मिल जाता है। विजैलन (solation) पिछले सिरे पर ही होता है।

जैल संकुचन की विधि (Mechanism of Contraction of Gel)

जैल-संकुचन के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं :—

1. आणविक वलन-खुलन सिद्धान्त (Molecular folding unfolding theory)—**गोल्डेकर एवम् लॉर्क (Goldacre and Lorch)** के मतानुसार प्लैज्मा-सॉल का प्लैज्माजैल में तथा प्लैज्माजैल का प्लैज्मासोल में परिवर्तन प्रोटीन अणुओं की पोलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं के वलन एवम् खुलन (कुंडलित होने एवम् फैलने) पर
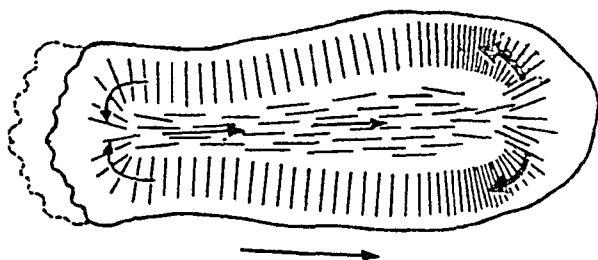
चित्र २·३. गोल्डेकर के एक्टोप्लाज्म संकुचन सिद्धान्त का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of ectoplasmic contraction theory of Goldacre)

निर्भर करता है। चलन के समय *अमीबा* के पिछले भाग में जैल संकुचित होता है तथा उसमें उपस्थित प्रोटीन श्रृंखलायें कुंडलित होकर जैल को सॉल में बदल देती हैं। यह प्लैज्मासोल *अमीबा* के अक्षीय भाग (central part) में बहता हुआ अगले सिरे पर पहुँच जाता है। यहाँ पर प्रोटीन श्रृंखलाएँ फैल जाती हैं जिससे अगले सिरे

पर प्लैज्मासोल प्लैज्माजैल में बदल जाता है। इस प्रकार नया पादाभ बनता है तथा अमीबा गति करता है।

चित्र २·४. आधुनिक आणविक वलन-खुलन सिद्धान्त द्वारा अमीबॉयड गति का चित्रण (Diagrammatic representation of folding and unfolding theory of cytoplasmic streaming)

2. जैल एण्डोप्लाज्म अपरूपण या सर्पण सिद्धान्त (Gel and endoplasm shearing or sliding theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार *अमीबा* में संकुचन की क्रिया-विधि उच्च प्राणियों की पेशियों में संकुचन के समान होती है। **हक्सले** (1954)
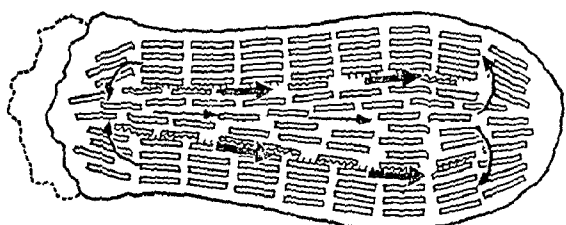
चित्र २·५. कोशिकाद्रव्यक प्रवाह के रासायनिक रैंचेट सिद्धान्त का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of chemical ratchet theory of cytoplasmic streaming)

ने एक्टिन-मायोसीन तन्तुओं के सर्पण की विधि प्रस्तुत की। इसके अनुसार एक सेट के तन्तु दूसरे सेट के तन्तुओं से रैंचेट की भाँति अन्तरग्रथित होते व खुलते हैं। ठीक इसी प्रकार *अमीबा* के जैल एक्टोप्लाज्म के भीतरी उपांत पर रासायनिक रैंचेट होते हैं। ये रैंचेट एण्डोप्लाज्म अणुओं को आगे की ओर धकेलते हैं।

पोषण (Nutrition)

अमीबा में पोषण विधि **जन्तु-सदृश** (holozoic or zootrophic) होती है। *सूक्ष्मजन्तु* (micro-organisms), *बैक्टीरिया, डायेटम, डेस्मिड्स तथा सूक्ष्म जलीय पौधे तथा शैवाल इत्यादि* इसका भोजन है। पोषण-विधि का निम्न पदों में अध्ययन किया जाता है :—

भोजन पकड़ना तथा अन्तर्ग्रहण (Food capture and ingestion)—*अमीबा* में मुख नहीं होता अतः शरीर के किसी भी स्थान पर भोजन ग्रहण कर लिया जाता है। पादाभ भोजन पकड़ने में सहायता पहुँचाते हैं। भोजन की प्रकृति के अनुसार अन्तर्ग्रहण निम्न में से किसी एक विधि द्वारा पूर्ण होता है।

(*i*) **सरकमवेलेशन** (Circumvallation)—*अमीबा* जब किसी तेजी से घूमने वाले जन्तु के सम्पर्क में आता है तो उसको वह दोनों ओर से अपने पादाभों द्वारा

घेर लेता है। धीरे-धीरे दोनों ओर के पादाभ आगे की ओर मिल जाते हैं और भोजन को आगे से घेर लेते हैं। इस प्रकार ये फूड कप (food cup) बनाते है। अन्त में दोनों पादाभों के सिरे आपस में मिल जाते हैं और खाद्य धानी (food vacuole) का निर्माण पूर्ण हो जाता है।
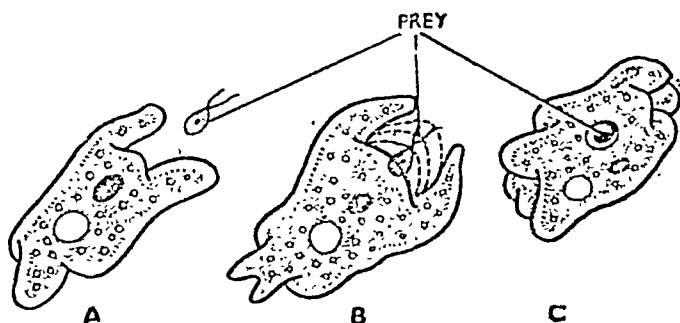
चित्र २·६. अमीवा में सरकमवैलेशन विधि द्वारा भोजन का अन्तर्ग्रहण (Circumvallation in *Amoeba*)

(*ii*) सरकमफ्लूयेन्स (Circumfluence)—धीरे-धीरे चलने वाले भोजन योग्य जन्तुओं को *अमीवा* इस विधि द्वारा ग्रहण करता है। इसमें *अमीवा* का जीवद्रव्य भोजन के ऊपर से वहकर उसको घेर लेता है और खाद्यधानी बना लेता है।
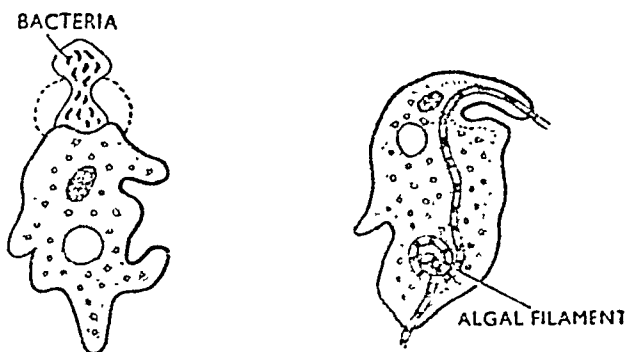
चित्र २·७. अमीवा में सरकमफ्लूयेन्स (circumfluence) विधि द्वारा भोजन का अन्तर्ग्रहण

चित्र २·८. अमीवा में इम्पोर्ट (import) विधि द्वारा भोजन का अन्तर्ग्रहण

(*iii*) इम्पोर्ट (Import)—काई के समान जीव इत्यादि *अमीवा* के शरीर में धीरे-धीरे डूबते चले जाते हैं। इसमें न ही *अमीवा* कोई गति करता है और न भोजन।

(*iv*) अन्तर्गमन या इन्वेजिनेशन (Invagination)—इस विधि में खाद्य पदार्थ को जहरीले पदार्थों द्वारा मार दिया जाता है। ये जहरीले पदार्थ पादाभों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। इसके पश्चात् वाह्य द्रव्य तथा आन्तरद्रव्य में एक दरार बनने लगती है जिसमें से होता हुआ भोजन शरीर के भीतर पहुँचता है और खाद्यधानी बना लेता है।

2. पाचन (Digestion)—*अमीवा* में पाचन आन्तरकोशीय (intracellular) होता है तथा खाद्यधानी (food vacuole) के भीतर पूर्ण होता है। अन्नधानी

के चारों ओर का जीवद्रव्य एन्जाइम उत्पन्न करता है जो खाद्यधानी के भीतर पहुँचकर पाचन में सहायता पहुँचाते हैं। खाद्यधानी का माध्यम पहले अम्लीय होता है जिससे कि शिकार मर जाता है। इसके पश्चात् यह क्षारकीय हो जाता है जिससे इसमें प्रोटीन, शर्करा तथा सेलूलोस का पाचन होता है। वसा तथा माण्ड विना पचे ही शरीर से वाहर निकाल दिये जाते हैं।
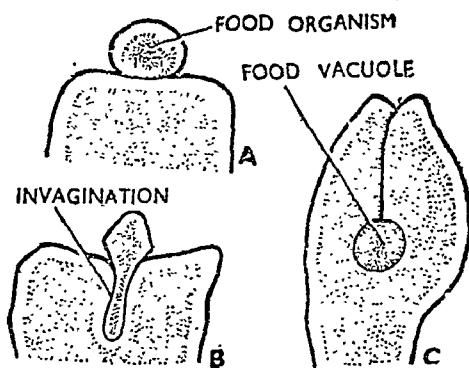
चित्र २·९. अमीवा में अन्तर्गमन विधि (Invagination) द्वारा भोजन का अन्तर्ग्रहण

3. स्वांगीकरण (Assimilation)—आन्तरद्रव्य की धारागति के द्वारा खाद्यधानियाँ कोशिका के भीतर घूमती हैं और पचे हुए भोजन को शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचाती हैं। पचा हुआ भोजन विसरण विधि द्वारा जीवद्रव्य में मिल जाता है।

4. वहिष्करण (Egestion)—अपच भोजन का वहिष्कार शरीर के किसी भी भाग से हो सकता है क्योंकि इसमें कोई निश्चित छिद्र नहीं होता है। अपच भोजन धीरे-धीरे शरीर की सतह पर पहुँचता है और अन्त में शरीर से वाहर निकाल दिया जाता है।
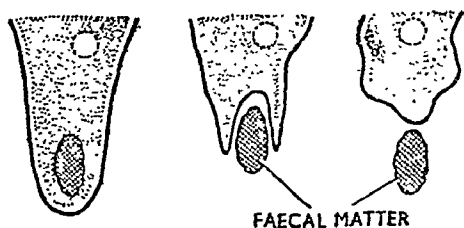
चित्र २·१०. अमीवा में वहिष्करण क्रिया (Egestion in *Amoeba*)

ऑस्मो-रेग्यूलेशन या ऑस्मोटिक कण्ट्रोल
(Osmo-regulation or Osmotic Control)

जीवद्रव्य में पानी की मात्रा के नियन्त्रण की क्रिया को ऑस्मो-रेग्यूलेशन कहते हैं। यह क्रिया स्वच्छ पानी से भरी हुई कुन्चनशील धानी (contractile vacuole) के द्वारा होती है। यह शरीर से पानी की अधिकता को दूर करती है। कुन्चनशील धानी केन्द्रक के समीप एक छोटी-सी बूँद के रूप में बनना आरम्भ करती है। यह अपने पास के कोशिकाद्रव्य से पानी एकत्रित करके धीरे-धीरे आकार में बढ़ती जाती है और साथ ही सतह की ओर बढ़ती है। शरीर की सतह पर पहुँच कर यह फट जाती है और अपने भीतर के पानी को वाहर फेंक देती है। जिस समय पुरानी कुन्चनशील धानी फटती है, एक नयी धानी केन्द्रक के समीप बनना आरम्भ कर देती है।

श्वसन (Respiration)

श्वसन के लिए विशेष अंग नहीं होते। जल में घुली आक्सीजन प्रसरण द्वारा कोशिकाद्रव्य में पहुँचती है। इसी प्रकार CO_2 शरीर की सतह से विसरित हो जाती है। आक्सीजन कोशिकाद्रव्य में पहुँचकर भोजन को आक्सीकृत करती है जिससे ऊर्जा उत्पन्न होती है।

उत्सर्जन (Excretion)

भोजन के आक्सीकरण से जो नाइट्रोजिनस पदार्थ जैसे यूरिया तथा यूरिक
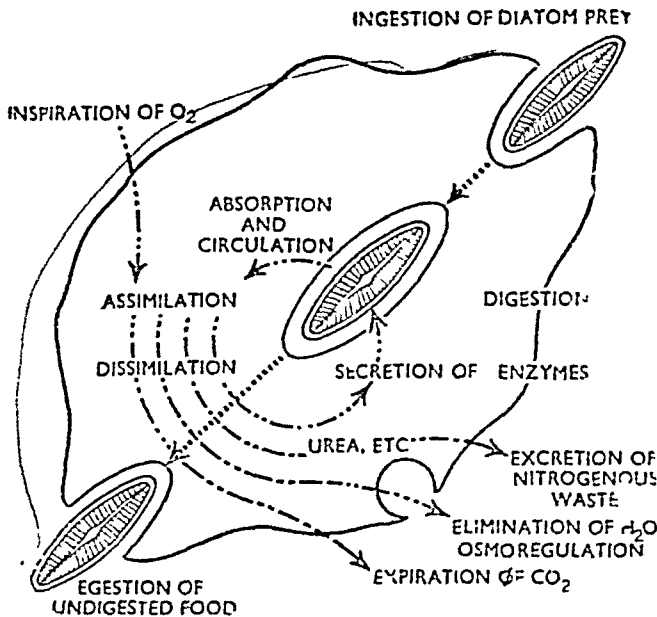
चित्र २·११. अमीवा मे होने वाली जैविक क्रियाओं का चित्रीय निरूपण

अम्ल वनते है । ये पानी में घुलकर शरीर की सतह से वाहर निकल जाते है । CO_2 भी प्लाज्मालेमा में से विसरित हो जाती है। कुञ्चनशील वानी भी इस कार्य में सहायता करती है क्योंकि इसके जल मे उत्सर्जी पदार्थ कुछ मात्रा मे घुले रहते हैं ।

उत्तेजनशीलता तथा संवेदनशीलता (Irritability and Sensitivity)

अमीवा मे मस्तिष्क तथा सवेदी अग (brain and sense organs) नही
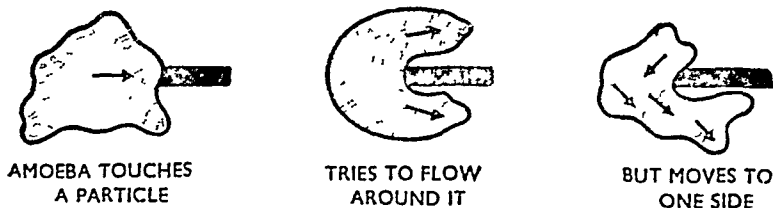
चित्र २·१२ अमीवा मे स्पर्श-सम्वन्धी ज्ञान (sense of touch)

होते, फिर भी वह विभिन्न प्रकार की वायुमण्डलीय उत्तेजनाओ (जैसे गर्मी, प्रकाश, रासायनिक पदार्थ तथा भोजन इत्यादि) को ग्रहण करता है तथा आवश्यकता के अनुरूप ही व्यवहार करता है । जव *अमीवा* अम्लों, क्षारों तथा लवणो के घोल के सम्पर्क मे लाया जाता है तो उनसे दूर भागता है । इसी प्रकार यह अन्धकार तथा वहुत तीव्र प्रकाश से भी वचता है । इसके विपरीत यह मध्यम प्रकाश तथा भोजन के कणो की ओर अग्रसर होता है । *अमीवा* में स्पर्श-सम्वन्धी ज्ञान (sense of touch) भी होता है । यदि *अमीवा* के पादाभ के सम्पर्क मे कोई रेत के कण आ जायें या पादाभ को सूई की नोक से छू दिया जाये तो पादाभ तुरन्त ही विलुप्त हो जाता है तथा *अमीवा* इसके विरुद्ध दिशा की ओर वढने लगता है, किन्तु भोजन के सम्पर्क मे आते ही इसको पकड़ने का प्रयत्न करता है ।

अमीबा में उत्तेजना के प्रति प्रक्रिया उसके जीवद्रव्य की एक विशेषता है।

जनन (Reproduction)

1. द्विविभाजन (Binary fission)—वातावरण की अनुकूल परिस्थितियो मे जब भोजन, ताप एवम् जल उचित मात्रा में उपलब्ध होते है तो अमीबा पूर्ण वृद्धि प्राप्त करके प्रौढ बन जाता हे। तब यह द्विविभाजन (binary fission) द्वारा दो अमीबाओं मे विभाजित हो जाता है। सर्वप्रथम अमीबा अपने पादाभो को सिकोड-कर गोल हो जाता है। तत्पश्चात् इसका समस्त शरीर छोटे-छोटे पादाभों से ढक जाता है। अब केन्द्रक लम्बा होकर समसूत्रण द्वारा दो केन्द्रको मे बँट जाता है। ये कोशिका के विमुख सिरो पर पहुँच जाते है। अन्त मे कोशिका के मध्य मे एक खाई (constriction) बनने लगती है जो धीरे-धीरे बढ़कर उस कोशिका से दो
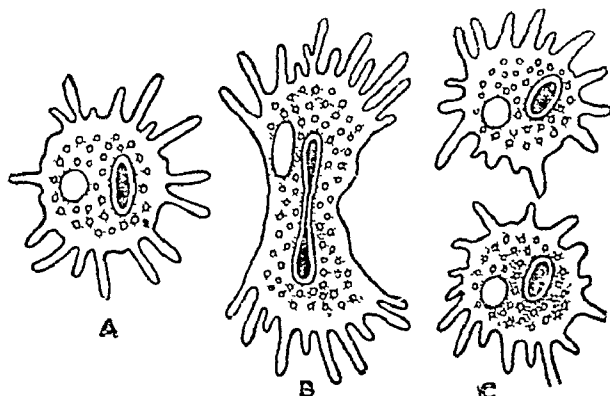
चित्र २·१३. अमीबा-मे द्विविभाजन (Binary fission in *Amoeba*)

कोशिकाएँ बना देती हे। ये दोनो सन्तति अमीबी (daughter *amoebae*) कहलाती
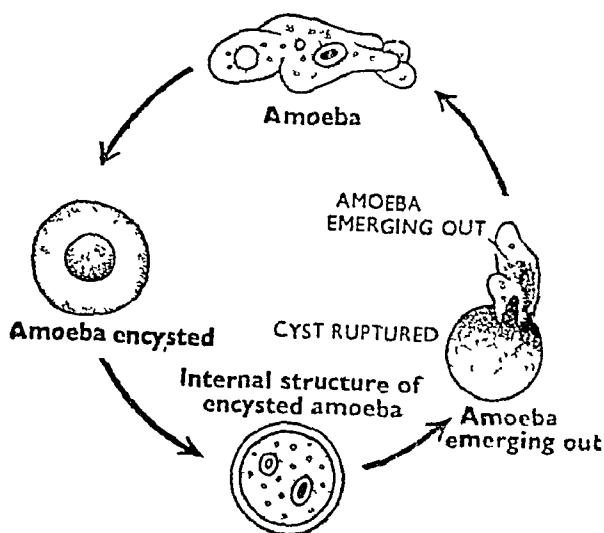
चित्र २·१४. अमीबा मे पुटीभवन (Encystment in *Amoeba*)

हैं और अलग होकर *अमीवा* की भाँति जीवन-यापन करने लगती हैं। इस पूरी क्रिया में लगभग आधा घण्टा लगता है। पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के पश्चात् *अमीवा* पुनः इसी प्रकार विभाजित होता है।

2. पुटीभवन तथा वहुखण्डन (Encystment and multiple fission)—पर्यावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों (adverse environmental conditions) को सहन करने के लिए *अमीवा* गोल होकर अपने चारों ओर काइटिन की एक तीन पर्त्त वाली मोटी पुटी वना लेता है जो उसके लिए रक्षात्मक खोल का कार्य करती है। पुटी के भीतर *अमीवा* अक्रियाशील, किन्तु जीवित वना रहता है और अनुकूल वातावरण आने पर पुटी को तोड़कर वाहर निकल आता है। पुटीभवन की अवस्था में अमीवा एक स्थान से दूसरे स्थान तक वायु द्वारा ले जाया जा सकता है।

कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार, पुटीभवन अवस्था में *अमीवा* का केन्द्रक वार-वार असमसूत्रण (amitosis) द्वारा विभाजित होता है। इसके फलस्वरूप लगभग 600 छोटे-छोटे सन्तति केन्द्रक वन जाते हैं। ये पुटी की परिधि के साथ-साथ फैल जाते हैं। प्रत्येक केन्द्रक के चारों ओर कोशिकाद्रव्य की थोड़ी-सी मात्रा एकत्रित हो जाती है तथा रक्षात्मक आवरण भी वन जाता है। इस प्रकार की रचनाएँ अमीवाणु (pseudopodispore) कहलाती हैं। अनुकूल वातावरण आने पर पुटी फट जाती
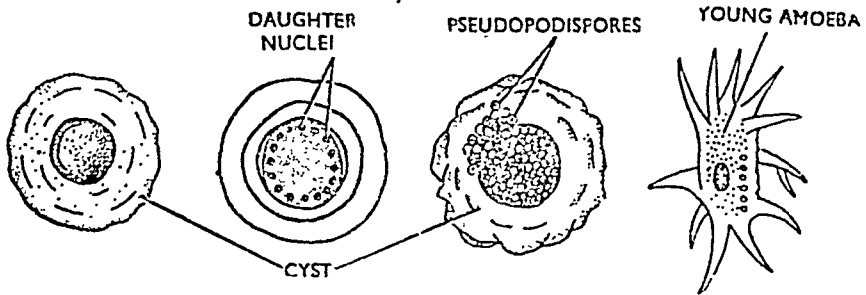
चित्र २·१५. अमीवा में वहुविभाजन (Multiple fission in *Amoeba*)

है और प्रत्येक अमीवाणु *अमीवा* की भाँति स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगता है। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार पुटीभवन अवस्था में वहुविभाजन नहीं होता।

3. वीजाणु-उत्पत्ति (Sporulation)—प्रतिकूल परिस्थितियों में *अमीवा* में वीजाणु-उत्पत्ति होती है। *अमीवा* की केन्द्रक कला नष्ट हो जाती है और केन्द्रक से वहुत-से छोटे-छोटे क्रोमेटिन के टुकड़े (chromatin blocks) अलग होकर आन्तर-

चित्र २·१६. अमीवा में वीजाणु उत्पत्ति (Sporulation in *Amoeba*)
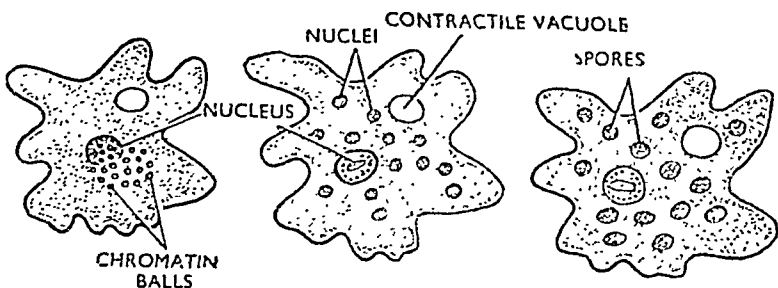
द्रव्य में इकट्ठे हो जाते हैं। प्रत्येक क्रोमेटिन ब्लॉक अपने चारों ओर केन्द्रक कला बनाकर एक स्वतन्त्र केन्द्रक बना लेता है। प्रत्येक नये केन्द्रक के चारों ओर कोशिका-द्रव्य इकट्ठा हो जाता है। तत्पश्चात् स्पोर केस (spore case) भी बन जाता है। इस प्रकार एक *अमीबा* में लगभग 200 बीजाणु (spore) बन जाते हैं जो पैतृक शरीर के नष्ट होने पर स्वतन्त्र हो जाते हैं। ये बीजाणु तालाब की सतह पर पड़े रहकर प्रतिकूल परिस्थितियों को पार कर जाते हैं। अनुकूल वातावरण के आने पर स्पोर केस फट जाता है और एक बीजाणु से एक *अमीबा* निकलता है जो वृद्धि करके प्रौढ़ *अमीबा* बन जाता है।

संयुग्मन (Conjugation)—कुछ वैज्ञानिकों का कथन है कि कभी-कभी दो *अमीबा* कुछ समय के लिए संयुग्मित हो जाते हैं और फिर अलग होकर अपना-अपना स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगते हैं। यह माना जाता है कि इससे इनकी कार्य-क्षमता बढ़ जाती है। यद्यपि संयुग्मन के विषय में अभी कोई निश्चित मत नहीं है और इसके महत्त्व को भी अभी नहीं समझा गया है, किन्तु ऐसा माना जाता है कि इससे *अमीबा* अपनी खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त करते हैं।

पुनर्जनन (Regeneration)—*अमीबा* में अपने नष्ट हुए भागों के पुनः निर्माण करने की क्षमता होती है। यदि *अमीबा* को दो या अधिक टुकड़ों में बाँट दिया जाय तो प्रत्येक टुकड़ा जिसमें केन्द्रक का थोड़ा-सा भाग हो वृद्धि करके एक पूर्ण *अमीबा* बन जाता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि *अमीबा* भी एक जन्तु है जिसमें जीव-धारियों के समस्त लक्षण पाये जाते हैं। यह जन्तु-जगत् के अन्य जटिल जन्तुओं से भिन्न है क्योंकि यह अत्यन्त सरल रचना वाला अकोशीय जन्तु है जिसकी एक कोशिका में ही जीवन की समस्त क्रियाएँ होती हैं और ये सरलतम विधि से पूर्ण की जाती हैं।

प्रश्न 4. जनन से आप क्या समझते हैं ? अमीबा में जनन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये।

What do you understand by reproduction ? Describe the different methods of reproduction in *Amoeba.* (*Vikram 1963*)

जनन (Reproduction)

एक प्रकार के जन्तुओं से अपनी जाति की वृद्धि के लिए उन्हीं के समान नये जन्तुओं की उत्पत्ति को जनन कहते हैं, या जनन जीवों की वह क्षमता है जिससे वे गुणोत्तर वृद्धि करते है। प्रत्येक जन्तु निश्चित ही नष्ट होता है और उसके जीवन-इतिहास में जन्म व मरण दो मुख्य घटनाओं का होना आवश्यक है; अतः जातीय अविच्छिन्नता के लिए तथा उसको पूर्णतया नष्ट हो जाने से बचाने के लिए प्रत्येक जन्तु में अपनी जाति की वृद्धि के लिए अलग-अलग तत्त्व होते हैं। वे या तो अलैंगिक जनन द्वारा वृद्धि करते हैं, जैसे द्विविभाजन (binary fission) द्वारा एवम् बहुविभाजन द्वारा या उनमें लैंगिक जनन पाया जाता है।

अमीबा में जनन-विधि के लिए कृपया प्रश्न 3 देखिये।

प्रश्न 5. "अमीबा एक कोशिका है" इस कथन की पुष्टि कीजिये।

Amoeba **is a cell. Justify this statement.** (*Kanpur 1972*)

अमीबा तथा फाइलम प्रोटोजोआ के अन्य सभी प्राणी एककोशिक अथवा अकोशिक प्राणी कहे जाते हैं। '*अमीबा* अकोशिक जीव है' इस कथन की व्याख्या

कोशिका शब्द द्वारा ही भली प्रकार समझाया जा सकता है। कोशिका संरचना एवम् कार्यों की सबसे छोटी किन्तु पूर्ण अभिव्यक्ति है।

संरचनात्मक दृष्टि से कोशिका निम्नलिखित भागों से निर्मित होती है :— **केन्द्रक, कोशिकाद्रव्य** तथा कोशिका भित्ति या **प्लाज्मा मेम्ब्रेन**। *अमीबा* का शरीर भी इन्हीं तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है। अतः अमीबा को कोशिका से अधिक कुछ नहीं माना जा सकता। इसके कोशिकाद्रव्य में किसी भी प्रकार की संरचनात्मक जटिलता नहीं पायी जाती। इसमें कोशिका-अंगकों (cell organelle or organoids) का पूर्ण अभाव होता है। अतः अमीबा में किसी भी आधार पर प्राणियों के सम्पूर्ण शरीर से समानता नहीं खोजी जा सकती अपितु इसको प्राणियों के शरीर की सरलतम कोशिका के समरूप माना जा सकता है। इतना ही नहीं अमीबा के केन्द्रक एवम् कोशिकाद्रव्य का संघटन (composition) भी प्राणियों की कोशिका के समतुल्य है।

यह निश्चित ही है कि क्रियात्मक दृष्टि से प्रत्येक कोशिका में चाहे उसका स्वतन्त्र अस्तित्व हो अथवा फिर वह प्राणियों के बहुकोशिक शरीर के एक एकक के रूप में हो, कुछ महत्त्वपूर्ण एवम् आवश्यक क्रियाओं की पूर्ति अवश्य ही होती है तथा ये क्रियाएँ वही हैं जिनका विवेचन जीवों के जैविक लक्षणों के अन्तर्गत किया गया है। पोषण, अवशोषित भोजन का ऑक्सीकरण तथा ऊर्जा की विमुक्ति (metabolism), नये कोशिकाद्रव्य के निर्माण (growth), विभाजन अथवा जनन, उत्सर्जन तथा नॉइट्रोजिनस उत्सर्जी पदार्थों का निष्कासन, आदि वे जैविक क्रियाएँ हैं जो समस्त जीवों में पायी जाती हैं। उपर्युक्त सभी क्रियाएँ *अमीबा* के अकोशिक शरीर में पूर्ण होती हैं।

अमीबा में पोषण, उत्सर्जन, श्वसन, उपापचय तथा जनन के लिए कृपया प्रश्न 3 देखिये।

अध्याय 3

एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका
(Entamoeba histolytica)

प्रश्न 6. खून-आँव या अमीबिक पेचिश उत्पन्न करने वाले परजीवी प्रोटोजोआ की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये।

Describe the morphology and life-cycle of the parasitic protozoa which causes amoebic dysentery.

(*Ranchi 1966 ; Magadh 63 ; Nagpur 68*)

एण्टअमीबा के जीवन-चक्र, संरचना, पारिस्थितिकी एवम् आर्थिक महत्त्व का वर्णन कीजिये।

Give an account of the life-history, morphology, bionomics and the economic importance of *Entamoeba*. (*Meerut 1968*)

एण्टअमीबा की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन करिये।

Describe the structure and life-cycle of Entamoeba histolytica.

(*Bihar 1973*)

मनुष्य मे आँव-खून की पेचिश या अमीबा-पेचिश एक अमीबॉयड प्रोटोजोआ पराश्रयी—*एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका* (*Entamoeba histolytica*) द्वारा होती है जो क्लास सारकोडाइना तथा अर्डर **लोबोसा** का जन्तु है। यह मनुष्य की बड़ी आँत (colon) के ऊपरी भाग मे पाया जाता है। यद्यपि यह दुनिया के सभी देशों के मनुष्यों मे रहता है किन्तु उष्ण कटिबन्धीय (tropical) देशों मे अधिकता से मिलता है।

आँत्र मे यह दो प्रकार से रह सकता है :—

(*i*) **आंत्रगुहा** (intestinal cavity) **में स्वतन्त्र रूप में**—यहाँ यह आंत्रगुहा मे पाये जाने वाले बैक्टीरिया इत्यादि को खाता है तथा पोपक को कोई हानि नही पहुँचाता।

(*ii*) **आंत्र की दीवार में**—यहाँ यह आंत्र की म्यूकोसा की कोशिकाओ, लाल रक्त कणिकाओं इत्यादि को अपना भोजन बनाता है। अत: आंत्र की दीवार की म्यूकोसा को नष्ट करके आँव-खून की पेचिश उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त **एण्टअमीबा** आत्र की दीवार, फेफड़ों, मस्तिष्क तथा यकृत इत्यादि मे फोड़े (abscesses) भी बना लेता है।

रचना तथा आकारिकी (Structure and Morphology)

प्रौढ एण्टअमीबा बहुत फुर्तीला परजीवी है जो जन्तु की ट्राफिक (trophic) अवस्था प्रदर्शित करता है। यह आकार तथा रचना मे *अमीबा* से बहुत अधिक मिलता है। आत्र के भीतर यह दो रूपों मे मिलता है :—

(*i*) **ट्रॉफिक फार्म** (Trophic form)—ये आंत्र की दीवार मे म्यूकोसा की कोशिकाओ के नीचे रहते है, अत: इन्हे ऊतक रहने वाले (tissue-

dwelling) भी कहा जाता है। ये आकार में अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। ये ऊतक कोशिकाओं, R.B.C. तथा बैक्टीरिया इत्यादि का सेवन करते हैं तथा केवल द्विविभाजन द्वारा वृद्धि करते हैं।
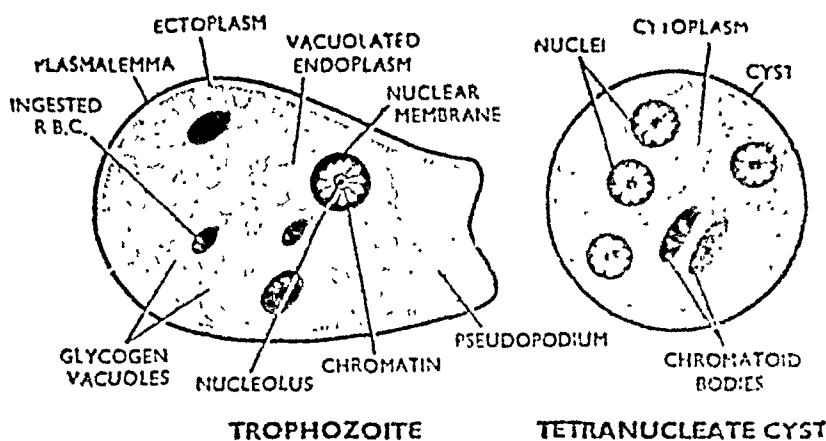
चित्र ३·१. एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका (*Entamoeba histolytica*) की संरचना

(*ii*) माइन्युटा फॉर्म (Minuta form)—ये आकार में अपेक्षाकृत छोटे होते हैं तथा आन्त्र की गुहा में रहते हैं। ये ऊतक कोशिकाओं तथा R.B.C. को नहीं खाते; केवल बैक्टीरिया ही इनका भोजन हैं। माइन्युटा फॉर्म आंत-गुहा में परिकोष्ठित हो जाते हैं और इस दशा में एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचते हैं। अतः ये परजीवी की संक्रामक अवस्था (infectious stage) प्रदर्शित करते हैं।

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—*एण्टअमीबा* एक अकोशीय तथा सूक्ष्मदर्शी जन्तु है। इसकी ट्राफिक अवस्थाएँ 20 से 30μ तक नापी गई हैं जबकि माइन्युटा अवस्था का परिमाण केवल 12 से 15μ तक ही होता है। सूक्ष्मदर्शी द्वारा प्रत्येक एण्टअमीबा जीवद्रव्य का एक अनियमित आकार का रंगहीन तथा पारदर्शी टुकड़ा-सा दिखाई देता है। गतिशील अवस्था में इनके शरीर से केवल एक पादाभ निकला रहता है जो गति की दिशा में होता है, किन्तु कुछ समय तक मल (stool) में पाये जाने वाले *एण्टअमीबा* का शरीर बहुत से बड़े गुम्बदाकार (dome-shaped) पादाभों से ढका रहता है जो शरीर के विभिन्न भागों से निकलते हैं।

द्रव्यकला (Plasmalemma)—*एण्टअमीबा* के शरीर का बाह्य आवरण एक बहुत ही पतली, लचीली तथा पारदर्शी अर्धपारगम्य झिल्ली के रूप में होता है, जो द्रव्यकला या प्लाज्मालेमा कहलाती है। इसके उपस्थित होने पर भी जन्तु के आकार में परिवर्तन हो सकता है, किन्तु इसके द्वारा जन्तु का कोशिकाद्रव्य बाह्य पदार्थों से अलग रहता है।

कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)—इसका कोशिकाद्रव्य रंगहीन होता है तथा दो पर्तों में दृष्टिगत होता है।

(*i*) बाह्यद्रव्य (Ectoplasm)—यह कोशिकाद्रव्य की बाहरी पर्त है जो स्वच्छ, हायलाइन (hyaline), अकणिक (nongranular) तथा अधिक श्यान होती है तथा पूर्ण कोशिकाद्रव्य का भाग बनाती है।

(*ii*) आन्तर-द्रव्य (Endoplasm)—यह मध्य का दानेदार या कणिकायुक्त (granular) द्रवीय भाग है जो कोशिकाद्रव्य का $\frac{2}{3}$ भाग बनाता है।

अंतर्द्रव्यी रचनाएँ
(Endoplasmic Inclusions)

1. केन्द्रक (Nucleus)—*एण्टअमीबा* के अंतर्द्रव्य में एक बड़ा, लगभग गोल वेसिकुलर केन्द्रक (vesicular nucleus) पाया जाता है। इसमें एक बिन्दु के समान (dot-like) **एण्डोसोम*** या केन्द्रिक (nucleolus) होता है जो एक स्थिर रचना है और केन्द्रक में सदा उपस्थित रहता है। एण्डोसोम के चारों ओर रिक्तिका के समान एक स्पष्ट halo होता है जिसकी परिधि पर क्रोमेटिन कण (chromatin granules) एकसमान (uniformly) लगे रहते हैं। इस रचना के बाहर एक केन्द्रकीय झिल्ली (nuclear membrane) होती है। एण्डोसोम तथा केन्द्रक झिल्ली के बीच के स्थान में क्रोमेटिन (cromatin) का जाल होता है।

2. भोजन के टुकड़े (Food particles)—*एण्टअमीबा* में खाद्यधानियाँ नहीं होतीं किन्तु इसके आन्तर-द्रव्य में बहुत-से पचे तथा अधपचे बैक्टीरिया, R.B.C., इत्यादि पाये जाते हैं। दो प्रत्यावर्तित (refractile) क्रोमेटॉयड बॉडी (chromatoid bodies) तथा बहुत-सी ग्लाइकोजन रिक्तिकाएँ (glycogen vacuoles) भी पायी जाती हैं। ये अधिकतर प्रीसिस्टिक फॉर्म तथा नये-नये सिस्टों (precystic forms and young cysts) में ही मिलती हैं। प्रौढ़ सिस्ट में ये नष्ट हो जाती हैं।

एण्टअमीबा में कुञ्चनशील रिक्तिकाएँ नहीं होतीं।

जीवन-चक्र (Life-Cycle)

एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका का जीवन-चक्र एक-पोषदिक (monogenetic) होता है अर्थात् इनका जीवन-चक्र एक ही पोषक मे पूर्ण होता है। यह प्राथमिक पोषक (primary host) मनुष्य है। परिकोष्ठित अवस्था में यह एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचता है। गन्दे भोजन अथवा पानी के साथ या मक्खियों तथा कॉकरोचों द्वारा यह नये पोषकों को संक्रमित (infect) करता है। इसमें केवल अलैंगिक जनन होता है। *एण्टअमीबा* के जीवन-चक्र का निम्न पंदों में अध्ययन कर सकते हैं :—

1. गुणन (Multiplication)—*एण्टअमीबा* की ट्रॉफिक फॉर्म (trophic form) पोषक के भीतर सरल द्विविभाजन विधि (simple binary fission) द्वारा गुणोत्तर वृद्धि करती है। इस विधि में इसका केन्द्रक एक विशेष प्रकार के समसूत्रण विभाजन से दो भागों में बंट जाता है। केन्द्रक के साथ ही जन्तु का शरीर भी एक खाई द्वारा दो भागों में बँट जाता है। इस प्रकार बने नये ट्रोफोजॉयट्स (trophozoites) आंत्र की दीवार की कोशिकाओं, R.B.Cs., बैक्टीरिया आदि का भक्षण करते और आकार में बढ़ते जाते हैं। ट्रॉफिक फॉर्म इसी भाँति पोषण तथा जनन में बहुत समय तक व्यस्त रह सकती है। इस दिशा में ये आन्त्र की दीवार में घुसकर उसकी एपिथीलियम को नष्ट करते है। ऊतकों को घोलनें वाले (tissue dissolving) एन्जाइम्स के द्वारा ये आंत्र की दीवार में पर्याप्त भीतर तक पहुँच जाते हैं तथा रक्त से भरे हुए फोड़े (bleeding ulcers) बना लेते हैं।

2. सिस्ट का बनना (Cyst formation)—फोड़ों में से कुछ ऊतकों में रहने वाले ट्रोफोजॉयट्स आंत्र की गुहा में आ जाते हैं। ये अपेक्षाकृत छोटे, गोल तथा फुर्तीले होते है। ये प्रीसिस्टिक फॉर्म (precystic forms) कहलाते है। इनके कोशिकाद्रव्य में **दो क्रोमेटॉयड काय** (chromatoid bodies) तथा बहुत-सी

---

* एण्डोसोम उस केन्द्रिक (nucleolus) को कहते हैं जो केन्द्रक मे सदैव उपस्थित होता है अर्थात् यह permanent structure है।

ग्लाइकोजन रिक्तिकाएं (glycogen vacuoles) होती हैं किन्तु इनमें लाल रक्त कणिकाएँ नहीं होतीं। ये प्रीसिस्टिक फॉर्म अपने चारों ओर एक पतला, मुलायम, रंगहीन तथा पारदर्शी सिस्ट बना लेते हैं। सिस्ट के भीतर जन्तु का केन्द्रक दो बार
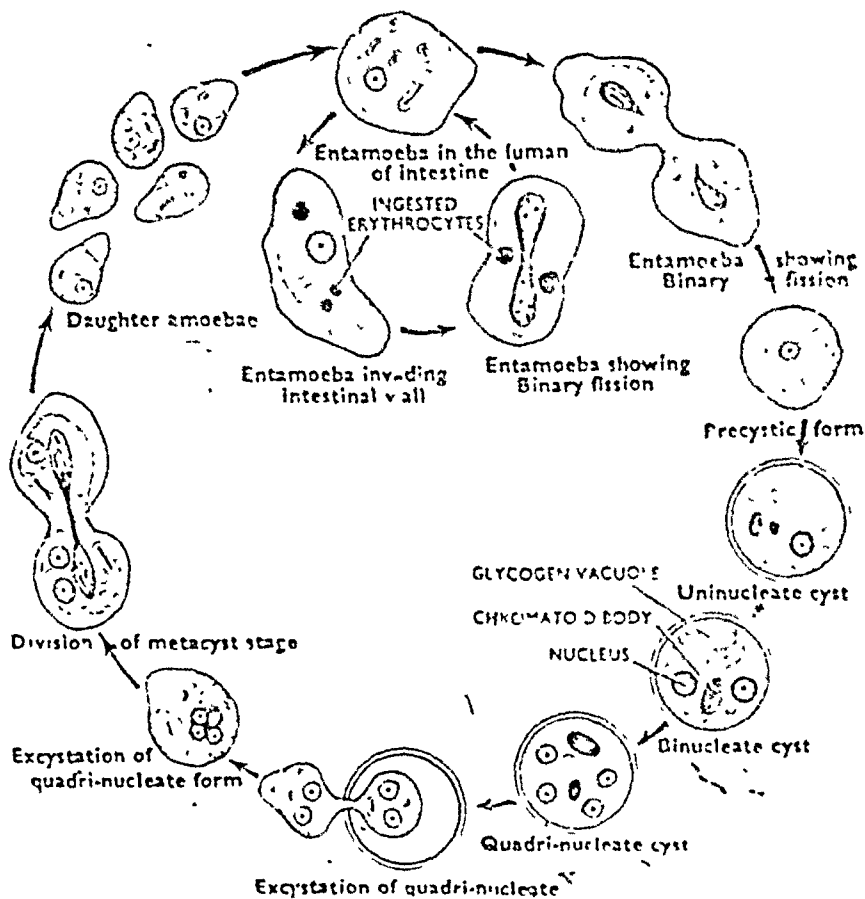
चित्र ३·२. एण्टअमीवा हिस्टोलाइटिका का जीवन-इतिहास
(Life-cycle of *Entamoeba histolytica*)

विभाजित होता है। अतः चार केन्द्रकों वाले सिस्ट बन जाते हैं। एक तथा दो केन्द्रक वाले सिस्टों में छड़ के समान परिवर्तित क्रोमेटॉयड रचनाएं तथा ग्लाइकोजन रिक्तिकाएं होती हैं किन्तु परिपक्व सिस्टों में जिनमें चार केन्द्रक होते हैं, ये रचनाएं नष्ट हो जाती हैं। एक प्रौढ़ सिस्ट का नाप 5–10μ तक होता है। वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में सिस्ट विष्ठा या मल (faeces) के साथ पोषक के शरीर के बाहर आ जाते हैं। ताजे सिस्ट हरे तथा चमकदार गोलों के समान दिखलायी देते हैं।

यद्यपि सिस्ट पोषक के शरीर के भीतर वृद्धि करते हैं, किन्तु ये वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में (under different stages of development) पोषक के शरीर से बाहर आ जाते हैं। अतः इनका वर्धन पोषक के शरीर के बाहर भी पूर्ण हो जाता है। सिस्ट हफ्तों तक पोषक के शरीर के बाहर जीवित रह सकते हैं जब तक कि ये नये पोषक में नहीं पहुँच पाते।

3. सिस्ट का नये पोषक में पहुँचना (Transmission of cysts into

fresh hosts) **या नये पोषकों का संक्रमण** (infection of new hosts)—सिस्ट संदूषित (contaminated) भोजन अथवा पानी के साथ नये पोषक की आहारनाल में पहुँचते हैं। भोजन का संदूषण (contamination) निम्न प्रकार से हो सकता है :—

(*i*) चिड़ियों, मक्खियों अथवा तिलचट्टों के सिस्टों के भोज्य पदार्थों पर इकट्ठे होने से,

(*ii*) भोजन पकड़ने की गन्दी आदतों से, तथा

(*iii*) संदूषित पानी के सम्पर्क में आने से।

4. सिस्ट का फटना तथा पोषक का संक्रमित होना (Excystation and infection)—संदूषित भोजन तथा पानी के साथ सिस्ट पोषक की आहारनाल में पहुँच जाते हैं। आमाशय तक इनका कोई प्रभाव नहीं होता। छोटी आंत्र में पाचक रस ट्रिप्सिन के प्रभाव से सिस्ट की दीवार घुल जाती है तथा चार केन्द्रकों वाली **मेटासिस्ट फार्म** आंत्र की गुहा में निकल आती है। इसके चारों केन्द्रक एक बार विभाजित होते हैं जिससे आठ केन्द्रक बन जाते हैं। *एण्टअमीवा* का शरीर भी आठ छोटे-छोटे अमीबी में बँट जाता है। प्रत्येक में एक केन्द्रक होता है। ये ट्रोफोजॉयट अवस्था को प्रदर्शित करते हैं तथा बड़ी आंत्र में पहुँचकर अपना जीवन-चक्र प्रारम्भ कर देते हैं।

अध्याय 4

मोनोसिस्टिस
(Monocystis)

फाइलम — प्रोटजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम — प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास — स्पोरोजोआ (*Sporozoa*)
आर्डर — ग्रीगेरिनिडा (*Gregarinida*)
जीनस — मोनोसिस्टिस (*Monocystis*)

प्रश्न 7. केंचुए के शुक्राशय में रहने वाले प्रोटोजोअन परजीवी की संरचना एवम् जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये।

Describe the structure and life-history of a protozoan parasite in seminal vesicles of earthworm. (*Punjab 1968*)

मोनोसिस्टिस की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये। इसका जीवन-चक्र मलेरिया परजीवी के जीवन-चक्र से किस प्रकार भिन्न होता है ?

Give an account of the structure and life-history of *Monocystis*. How does its life-history differ from that of malarial parasite ?
(*Agra 1960, 61, 63, 65 ; Allahabad 1956, 59 ; Punjab 1966 ; Lucknow 1955, 58, 68 ; Vikram 1965, 69 ; Delhi 1970 ; Gorakhpur 1959, 61, 63*)

मोनोसिस्टिस की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये।

Give an account of the structure and life-history of *Monocystis*. (*Agra 1957, 65 ; Allahabad 1954, Gorakhpur 71 ; Ranchi 71 ; Lucknow 58, 68 ; Vikram 1965, 69 ; Tribhuvan 1966*) *Sivaji 71 ; Indore 71 ; Jiwaji 72 ; Jabalpur 73*)

मोनोसिस्टिस एक बाह्यकोशिक परजीवी (extracellular parasite) है जो केंचुए की सेमिनल वेसिकिल्स (seminal vesicles) में रहता है। यह **एसिफेलिन ग्रीगेरिनिड** (acephaline gregarinid) है क्योंकि इसमें सिफेलॉण्ट (cephalont) नहीं होता।

संरचना (Structure)

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—*मोनोसिस्टिस* की प्रौढ़ अवस्था जो पोषक के तन्तुओं को खाकर वृद्धि प्राप्त करती है **पोषज या ट्रोफोजॉयट** (trophozoite) कहलाती है। नया बना पोषक छोटी गोलाकार रचना है जो नये बनते हुए शुक्राणुओं (developing spermatozoa) से घिरा रहता है और उनको खाकर बड़ा होता है। मृत शुक्राणुओं की पूँछ इसके चारों ओर लगी होने के कारण यह सिलियेटेड (ciliated) हो जाता है।

पूर्ण परिपक्व पोषज लम्बा, तर्क्वाकार (spindle-shaped), पृष्ठ-अधरतल से (dorso-ventrally) चपटा तथा कृमिवत् (worm-like) जन्तु है। यह एक बड़ा अकोशीय (acellular) जन्तु है जो सफेद धागे के समान दिखाई देता है। मोनो-

सिस्टिस की विभिन्न जातियों में इसका आकार तथा परिमाण भिन्न-भिन्न होता है। साथ ही विभिन्न परिस्थितियों में भी यह परिवर्तनशील होता है।

पेलिकल (Pellicle)—शरीर का वाह्य आवरण क्यूटिकल की बनी मोटी चिकनी तथा लचीली अर्ध-प्रवेशीय झिल्ली होती है जो पेलिकल कहलाती है। यह नाइट्रोजिनस पदार्थों (nitrogenous matter) की बनी होती है तथा इसमें बहुत-से सूक्ष्म छिद्र होते हैं। यह पोषक की ऊतक कोशिकाओं से जन्तु के कोशिकाद्रव्य को अलग रखती है तथा शरीर की रक्षा करती है। लचीला होने के कारण यह चलन में सहायता पहुँचाती है।

कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)—कोशिका द्रव्य दो स्तरों का बना होता है :—

1. कॉर्टेक्स या अन्तस्त्वचिका (Cortex)—यह कोशिकाद्रव्य की बाहरी पर्त है तथा अपेक्षाकृत अधिक श्यान होती है। यह पुनः दो पर्तों में बँटी रहती है :—

(*i*) **सारकोसाइट** (Sarcocyte)—यह वाह्य स्पष्ट पर्त है जिसमें कोई रचना नहीं होती।

(*ii*) **मायोसाइट** (Myocyte)—यह कॉर्टेक्स की भीतरी पर्त है जिसमें लम्बवत् तथा अनुप्रस्थ लचीले तन्तु मायोनीमी (longitudinal and transverse myonemes) फैले रहते है। ये माँसपेशियों के समान कार्य करते हैं और शरीर को सिकोड़ने तथा फैलाने में सहायता करते हैं। इन्हीं की सहायता से मोनोसिस्टिस कीड़ों के समान रेंग कर चल सकता है।

2. मेडूला या अन्तस्था या मज्जा (Medulla)—यह कोशिकाद्रव्य के भीतर का द्रवीय अपारदर्शी दानेदार भाग है जिसमें पैराग्लाइकोजन के असंख्य कण पाये जाते हैं। इस रूप में भोजन एकत्रित रहता है।

केन्द्रक (Nucleus)—शरीर के अगले सिरे के समीप मेडूला में एक बड़ा अण्डाकार वेसिकूलर केन्द्रक (vesicular nucleus) पाया जाता है। इसके चारों ओर एक केन्द्रकीय झिल्ली होती है तथा मध्य में एक एण्डोसोम (endosome) पाया जाता है।

चित्र ४·१. मोनोसिस्टिस के ट्रोफोजॉयट की संरचना (Structure of trophozoite of *Monocystis*)

परजीवी होने के कारण *मोनोसिस्टिस* में पादाभ, सीलिया, फ्लेजेला, मुख, गला तथा रिक्तिकाएँ नहीं होतीं।

जीवन-इतिहास (Life-history)

मोनोसिस्टिस का जीवन-इतिहास **एकपोषदिक** (monogenetic) होता है अर्थात् यह एक ही पोषक में पूर्ण होता है। स्पोर अवस्था में यह एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचता है। मैथुन (copulation) क्रिया के समय या पोषक के मरने पर नये पोषकों में पहुँच जाता है, किन्तु चिड़ियाएँ भी इस कार्य

में सहायता करती हैं। पोषज या ट्रोफोजॉयट पोषक के शरीर के भीतर रहकर पोषक से भोजन लेता है और आकार में बढ़ता है। वहाँ यह लैंगिक विधि द्वारा
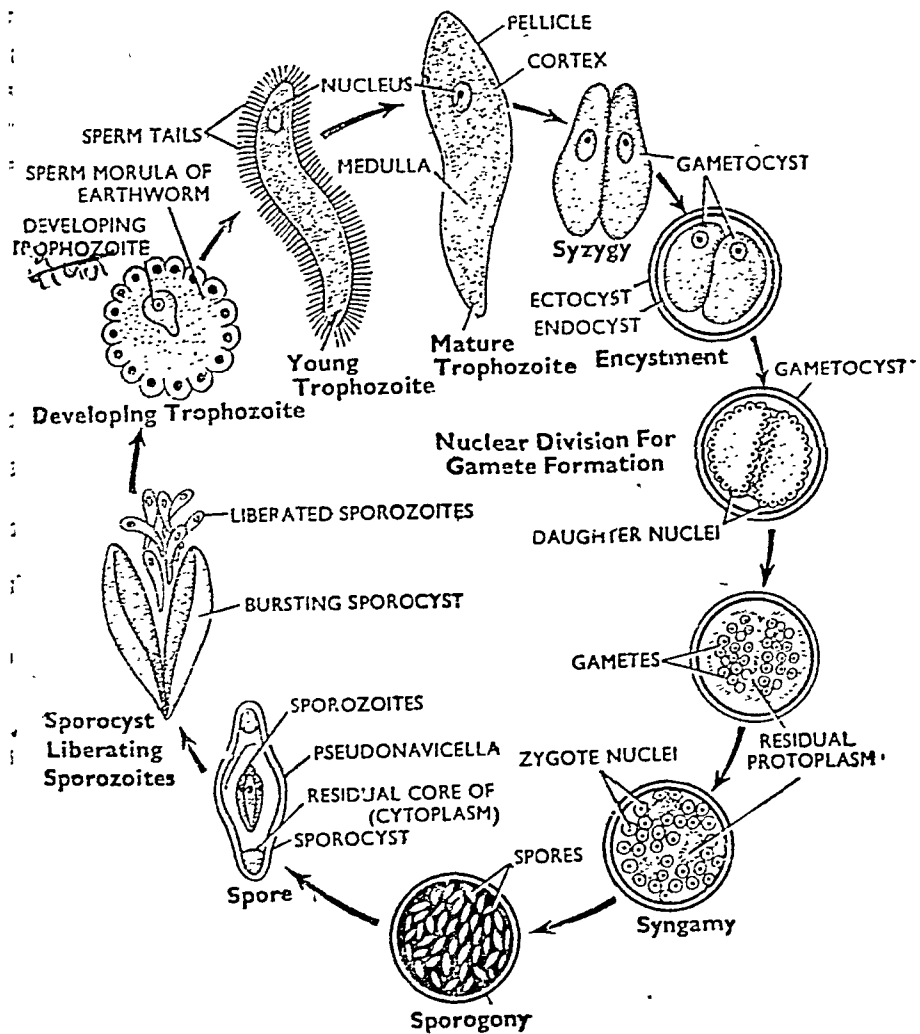
चित्र ४·२. मोनोसिस्टिस का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Monocystis*)

अपनी जाति की वृद्धि करता है। इसके जीवन-इतिहास को तीन प्रावस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है :—

1. युग्मकजनन या गैमीटोगोनी (Gametogony)
2. संयुग्मन या सिनगैमी (Syngamy)
3. बीजाणुजनन या स्पोरोगोनी (Sporogony)

1. युग्मकजनन या गैमीटोगोनी (Gametogony)—कुछ समय तक केंचुए की सेमिनल वेसिकल्स (seminal vesicles) में रहने के पश्चात् पोषज (tropho-zoite) युग्मकजनक (gamont or gametocyte) में बदल जाता है। दो युग्मक-जनक या गैमोण्ट पास आकर एक जोड़ा बना लेते हैं। इसके पश्चात् ये लम्बाई में छोटे तथा आकार में लगभग गोल या अण्डाकार हो जाते हैं। अब ये एक-दूसरे

से चिपक जाते हैं किन्तु युग्मित नहीं होते (*i.e.* these pair but never fuse) युग्मकजनक के जोड़े (paired gametocytes) के चारों ओर काइटिन का बना हुआ एक सुदृढ़, मोटा तथा रक्षात्मक कवच वन जाता है। यह [illegible] (gametocyst) कहलाता है। इसकी बाहरी दीवार मोटी तथा कठोर होती है तथा **एक्टोसिस्ट** (ectocyst) बनाती है किन्तु भीतर की दीवार पतली झिल्ली के समान होती है और **एन्डोसिस्ट** (endocyst) कहलाती है। गैमीटोसिस्ट के भीतर युग्मकजनन या गैमीटोसाइट्स एक-दूसरे से चिपके रहते हैं तथा उनका जीवद्रव्य एक स्पष्ट दीवार द्वारा अलग रहता है। युग्मकजनकों का इस प्रकार समेकित होना **संयुग्मन** (syngamy) कहलाता है।

प्रत्येक युग्मकजनक में केन्द्रक वार-वार समसूत्रण विधि से विभाजित होता है किन्तु अन्तिम विभाजन अर्धसूत्री (reduction) होता है। फलस्वरूप प्रत्येक युग्मकजनक में वहुत-से अगुणित (haploid) केन्द्रक वन जाते हैं। ये अव युग्मकजनक की सतह की ओर वढ़ते हैं तथा परिधि के साथ लग जाते हैं। ये उसकी सतह पर उभार वना लेते हैं जिससे ये भरी या वैरी (berry) के समान दिखाई देने लगते हैं। प्रत्येक अगुणित केन्द्रक के चारों ओर कोशिकाद्रव्य इकट्ठा हो जाता है। इस प्रकार युग्मक (gametes) वन जाते हैं। वचा हुआ कोशिकाद्रव्य या तो नष्ट हो जाता है अथवा युग्मकों द्वारा भोजन के रूप में प्रयोग में ले लिया जाता है। युग्मकजनकों के वीच की दीवार फटने से युग्मक गैमीटोसिस्ट में आ जाते हैं।

दोनों युग्मकजनकों में वने युग्मक आकार की विशेषताओं (morphological details) में पूर्णतया समान होते हैं, अतः ये **समयुग्मक** (isogametes) कहलाते हैं।

2. संयुग्मन (Syngamy)—इस प्रकार वने युग्मक कुछ समय तक स्वतन्त्रतापूर्वक घूमते हैं। फिर एक युग्मकजनक के युग्मक दूसरे युग्मकजनक के युग्मकों के साथ समेकित (fuse) हो जाते हैं। समेकन की यह क्रिया संयुग्मन (syngamy) या समयुग्मन (isogamy) कहलाती है। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिकों ने मोनोसिस्टिस में दो प्रकार के युग्मकों का वर्णन किया है :—

(*i*) छोटे गतिशील **लघुयुग्मक** (microgametes), तथा

(*ii*) वड़े कम गतिशील **गुरुयुग्मक या स्त्री युग्मक** (macrogametes)।

लघु युग्मकों तथा गुरु युग्मकों के समेकन से युग्मज (zygotes) वनते हैं जिनमें गुण-सूत्रों की संख्या पुनः द्विगुणित (diploid) हो जाती है।

3. बीजाणु जनन या स्पोरोगोनी (Sporogony)—युग्मनज भी गैमीटोसिस्ट के भीतर ही वृद्धि करते हैं। प्रत्येक युग्मनज **स्पोरोब्लास्ट** (sporoblast) कहलाता है। यह लगभग अण्डाकार होता है तथा अपने चारों ओर काइटिन का एक मजवूत स्तर वना लेता है। इसे **बीजाणुपुटी** (sporocyst) या स्पोर केस (spores case) कहते हैं। इस प्रकार स्पोरोब्लास्ट (sporoblasts) वीजाणुओं (spore) में वदल जाते हैं। कुछ समय पश्चात् वीजाणुपुटियाँ (sporocysts) नौकाकार (boatshaped) वन जाती हैं और स्यूडोनेविसेला (pseudonavicella) कहलाती हैं। प्रत्येक वीजाणुपुटी के भीतर केन्द्रक तीन वार समसूत्रण विधि से विभाजित होता है। फलस्वरूप 8 केन्द्रक वन जाते हैं। प्रत्येक केन्द्रक के चारों ओर कोशिकाद्रव्य एकत्रित होकर **बीजाणुज** (sporozoite) वना लेता है। अतः एक वीजाणुपुटी

में 8 बीजाणुज बनते हैं। ये लम्बे तथा दराँती या हँसिये के आकार के (sickle-shaped) होते हैं।

गैमीटोसिस्ट के फटने पर बीजाणु (spores) सेमीनल वेसिकल में स्वतन्त्र हो जाते हैं। स्पोर का फटना तथा बीजाणुओं का पुन: वर्धन (further development) केंचुए की आहार-नाल में ही सम्भव है। अत: बीजाणु संक्रामी अवस्था (infective stage) प्रदर्शित करते हैं।

बीजाणुओं का नये पोषक में पहुँचना तथा नये पोषक का संक्रमण
(Transmission of Spores and Infection of New Host)

संक्रमित पोषक से बीजाणु नये पोषक में निम्न किसी एक विधि द्वारा पहुँच सकते हैं :—

1. मैथुन द्वारा (By copulation)—शुक्राणु के साथ ही बीजाणु भी केंचुए की स्पर्मडक्ट (sperm ducts) तथा कोकून में देखे गये हैं, अत: यह माना जाता है कि मैथुन के समय बीजाणु (spores) एक केंचुए से दूसरे केंचुए में पहुँच जाते हैं।

2. पोषक की मृत्यु द्वारा (Due to the death of host)—पोषक की मृत्यु तथा उनके शरीर के नष्ट होकर मिट्टी में मिलने पर बीजाणु भी मिट्टी में आ जाते हैं। जब दूसरे केंचुए इस संक्रमित मिट्टी को खाते हैं तो बीजाणु उनकी आहार-नाल में पहुँच जाते हैं।

3. चिड़ियों द्वारा (By birds)—जब संक्रमित केंचुए को कोई चिड़िया खा लेती है तो केंचुआ उसकी आहार-नाल में पच जाता है तथा बीजाणु स्वतन्त्र हो जाते हैं। इन पर पाचक-रसों का कोई प्रभाव नहीं होता और ये बिना किसी परिवर्तन के उसके मल (faeces) के साथ बाहर आ जाते हैं। ये मिट्टी में मिल जाते हैं और उसी के साथ पोषक की आहार-नाल में पहुँच जाते हैं।

केंचुए की आहार-नाल में पाचक-रसों के प्रभाव से सिस्ट की दीवार घुल जाती है तथा बीज़ाणुज (sporozoites) आन्त्र की गुहा में आ जाते हैं। ये आहार-नाल की दीवार को फ़ोड़ते हुए सेमिनल वेसिकल्स में पहुँच जाते हैं। यहाँ एक बीजाणुज (sporozoite) एक स्पर्म मोरुला (sperm morulla) में पहुँच जाते हैं और पोषज प्रावस्था प्रारम्भ हो जाती है।

मोनोसिस्टिस तथा प्लाज्मोडियम के जीवन-इतिहास में अन्तर
(Differences Between the Life-history of *Monocystis* and *Plasmodium*)

मोनोसिस्टिस (Monocystis)	प्लाज्मोडियम (Plasmodium)
1. मोनोसिस्टिस केंचुए की सेमिनल वेसिकल में पाया जाने वाला बाह्यकोशिक परजीवी (extracellular parasite) है।	1. प्लाज्मोडियम मनुष्य की लाल रुधिर-कणिकाओं में आन्तरकोशिक परजीवी (intracellular parasite) है जो एनोफिलीज मादा मच्छर की आहार-नाल में बाह्यकोशिक (extracellular) जीवन व्यतीत करता है।
2. इसका जीवन-इतिहास सरल तथा एकपोषदिक (monogenetic) होता है।	2. इसका जीवन-इतिहास जटिल तथा द्विपोषदिक (digenetic) होता है, अत: इसमें दो पोषक होते हैं—पहला प्राथमिक (primary मनुष्य, तथा दूसरा द्वितीयक (secondary) मादा एनोफिलीज।

मोनोसिस्टिस (Monocystis)	प्लाज्मोडियम (Plasmodium)
3. इनमें लैंगिक तथा अलैंगिक जननों का एकान्तरण (alternation of sexual and asexual generations) नहीं होता।	3. इसमें मनुष्य के अन्दर पूर्ण होने वाली अलैंगिक प्रावस्था (asexual phase) तथा मच्छर में पायी जाने वाली लैंगिक प्रावस्था (sexual generation) का एकान्तरण होता है, अतः इसमें जननों का एकान्तरण पाया जाता है।
4. मोनोसिस्टस का प्रौढ़ पोपज (adult trophozoite) एक बड़ा, लम्बा तथा कृमिवत् (worm-like) फुर्तीला जन्तु है जो केंचुए की सेमिनल वेसिकल के ऊतकों में स्वतन्त्रता से घूमता है।	4. प्रौढ़ पोपज एक छोटा, गोल तथा अचल (non-motile) जीव है जो मनुष्य की लाल रक्त-कणिकाओं में रहता है।
5. ये अवस्थाएँ नहीं पायी जाती।	5. पोपज, सिगनेट रिंग अवस्था (signet ring stage) तथा अमीबॉयड अवस्था (amoeboid stage) में से होता हुआ बीजाणुजनक या शाइजॉण्ट (schizont) बनता है।
6. इसमें अलैंगिक गुणन (asexual multiplication) नहीं होता।	6. बीजाणुजनक (schizont) खण्ड-विभाजन (schizogony) द्वारा अलैंगिक विधि से संख्या में बढ़ता है और खण्डज (merozoites) बनाता है।
7. युग्मकजनक (gametocytes) समान होते हैं तथा युग्मक भी समयुग्मी (isogamous) प्रकार के होते हैं।	7. युग्मकजनक (gametocytes) तथा युग्मक (gametes) दोनों ही असमयुग्मी (anisogamous) होते हैं। नर छोटे तथा चल (motile) होते हैं तथा मादा बड़े तथा अचल (stationary)।
8. युग्मकजनक पोपक के रूपान्तरण (modification) से बनता है।	8. युग्मकजनक खण्डजों (merozoites) से बनते हैं।
9. युग्मकजनक से युग्मक उसी पोपक के भीतर बनते हैं।	9. युग्मकजनक मनुष्य के भीतर आगे वृद्धि नहीं कर सकते। इनसे युग्मक एनोफिलीज मादा की आहार-नाल में ही बनते हैं, अतः युग्मकजनकों का द्वितीय पोपक में पहुँचना अत्यन्त आवश्यक है।
10. युग्मकजनक जोड़ों में मिल जाते हैं और प्रत्येक जोड़े के चारों ओर एक परिवेष्ठन या कोष्ठ बन जाता है।	10. युग्मकजनक जोड़े नहीं बनाते तथा इनमें सिस्ट भी नहीं बनता।
11. दोनों युग्मकजनकों में बने युग्मक आकार तथा रचना में समान होते हैं। ये अचल (non-motile) तथा संख्या में भी लगभग समान होते हैं।	11. यहाँ नर तथा मादा युग्मक अलग-अलग आकार तथा परिमाण के होते हैं। मादा युग्मक नर की अपेक्षा कई गुना बड़े होते हैं क्योंकि एक गुरु-युग्मक से केवल एक मादा युग्मक बनता है

मोनोसिस्टिस (Monocystis)	प्लाज्मोडियम (Plasmodium)
	तथा एक लघु युग्मक से 2 से 8 तक नर युग्मक बनते हैं। नर युग्मक चल (motile) तथा मादा युग्मक अचल (non-motile) होते हैं।
12. युग्मकों का समेकन गैमीटोसिस्ट के भीतर होता है।	12. युग्मकों का समेकन (fusion) मच्छर की आहार-नाल में स्वतन्त्रता से पड़े युग्मकों के बीच होता है।
13. युग्मक अचल (non-motile) होता है और स्पोरोब्लास्ट (sporoblast) कहलाता है।	13. युग्मक चल (motile) होता है तथा चलयुग्म (ookinete) या कृमिवत् (vermicule) कहलाता है।
14. स्पोरोब्लास्ट अपने चारों ओर काइटिन का बना एक मोटा रक्षात्मक खोल बना लेता है जिसे स्पोर केस या बीजाणुपुटी (sporocyst) कहते हैं। इस प्रकार एक स्पोरोब्लास्ट एक बीजाणु में परिवर्तित होता है।	14. स्पोरोब्लास्ट अवस्था नही होती।
15. इसमें ऐसा नही होता।	15. चलयुग्म (ookinete) आमाशय की दीवार को छेदकर आमाशय की बाहरी सतह पर आ जाता है। यहां यह अपने चारों ओर सिस्ट बना लेता है—इस प्रकार चलयुग्म अचल ऊसिस्ट (oocyst) या स्पोरोण्ट (sporont) में बदल जाता है।
16. एक जोड़ी युग्मकजनक से बहुत बड़ी संख्या में बीजाणु (spores) बनते हैं।	16. एक जोड़ी गैमीटोसाइट्स से केवल एक ऊसाइट बनता है।
17. बीजाणुपुटी (sporocyst) मोटी तथा मजबूत होती है जो प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन कर सकती है ; अतः स्पोर एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुंच जाते हैं।	17. ऊसिस्ट (oocyst) पतला तथा कोमल होता है, अतः यह प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन नहीं कर सकता, इसीलिए ऊसाइट भी पोषक के शरीर से बाहर नहीं निकलता।
18. पोषक की मृत्यु से तथा उसके शरीर के नष्ट होने से बीजाणु (spores) स्वतन्त्र हो जाते हैं और तब वे मिट्टी को संक्रमित करते हैं।	18. परजीवी बीजाणुज अवस्था में पोषक के शरीर से बाहर नही निकलता। यह मच्छर द्वारा सीधे ही पोषक के शरीर में पहुंचा दिया जाता है।
19. बीजाणु संक्रामी अवस्था (infective stage) प्रदर्शित करता है।	19. बीजाणुज (sporozoites) मलेरियाणु की संक्रामी अवस्था प्रदर्शित करते हैं।
20. प्रत्येक बीजाणु में 8 बीजाणुज होते हैं जो सिस्ट के घुलने पर नये पोषक की आंत्र में आ जाते हैं।	20. ऊसाइट से बहुत-से बीजाणु (sporozoites) बनते हैं जो सिस्ट के फटने पर मच्छर की देहगुहा में आ जाते हैं।

मोनोसिस्टिस (Monocystis)	प्लाज्मोडियम (Plasmodium)
21. बीजाणुज सेमिनल वेसिकल में पहुँच जाते हैं।	21. देहगुहा से स्पोरोजॉयट लार ग्रन्थियो में पहुँच जाते हैं तथा द्वितीय पोषक मे रह कर नये प्रथम पोषक मे पहुँचने की प्रतीक्षा करते हैं।
22. यहां कोई उद्भवन काल (incubation period) नही होता क्योकि परजीवी में तब तक गुणन नही होता जब तक कि वह सेमिनल वेसिकल्स मे नही पहुँच जाता।	22. परजीवी नये पोषक मे पहुँच कर कुछ काल तक यकृत कोशिकाओ मे वृद्धि करता है और सख्या मे बढता है। तब ये R.B.Cs. मे पहुँचते हैं। परजीवी के जीवन इतिहास का वह समय जो यकृत मे रह कर गुजरता है उद्भवन काल (incubation period) कहलाता है।
23. परजीवी की उपस्थिति का पोषक पर कोई बुरा प्रभाव नही पड़ता।	23 परजीवी द्वितीय पोषक को कोई हानि नही पहुँचाता किन्तु प्राथमिक पोषक मे रह कर मलेरिया बुखार उत्पन्न करता है।

प्लाज्मोडियम या मलेरिया परजीवी
(Plasmodium or Malarial Parasite)

फाइलम — प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम— प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास — स्पोरोजोआ (*Sporozoa*)
सबक्लास —होमोस्पोरोडिया (*Hemosporidia*)
जीनस — प्लाज्मोडियम (*Plasmodium*)

प्रश्न 8. मलेरिया परजीवी के जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये।
Describe the life-history of malarial parasite.
(*Patna 1964 ; Vikram 63 ; Punjab 66 ; Magadh 68 ; Rewa 72*)

मनुष्य में किसी परजीवी प्रोटोजोआ के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये।
Describe the life-history of a parasitic protozoa of man.
(*Meerut 1967*)

तुम्हारे द्वारा अध्ययन किये गये रुधिर में रहने वाले किसी परजीवी प्रोटोजोआ के जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये।

Describe in detail the life-history of any blood-dwelling protozoan parasite you have studied. (*Nagpur 1961*)

प्लाज्मोडियम में युग्मजनन एवं बीजाणु-जनन का वर्णन करिये।
Give an account of gamogony and sporogony in Plasmodium.
(*Saurashtra 1973*)

मलेरिया परजीवी या *प्लाज्मोडियम* मनुष्य तथा अन्य कशेरुकदण्डियों के रक्त में रहने वाला **आन्तर-कोशिक परजीवी** (intracellular parasite) है। इसका जीवन-इतिहास जटिल तथा **द्विपोषदिक** (digenetic) होता है। इसमें दो पोषक होते हैं—**मनुष्य** प्राथमिक पोषक (primary host) कहलाता है तथा मादा **एनोफिलीज** द्वितीयक पोषक (secondary host) कहलाता है। द्वितीयक पोषक केवल वाहक (vector) की भाँति कार्य नहीं करता किन्तु परजीवी को एक प्राथमिक पोषक से दूसरे प्राथमिक पोषक में पहुँचाने के साथ-साथ यह परजीवी के लिए वह माध्यम प्रदान करता है जहाँ यह अपने जीवन-इतिहास का लैंगिक-चक्र पूरा कर सके। अतः मलेरिया परजीवी का जीवन-इतिहास दो प्रावस्थाओं में बाँटा जा सकता है :—

I. मानव में—अन्तर्जनित अथवा अलैंगिक प्रावस्था (Endogenous or asexual phase)।

II. मादा एनोफिलीज में—बहिर्जनित अथवा लैंगिक प्रावस्था (Exogenous or sexual phase)।

1. अन्तर्जनित या अन्तर्जात अथवा अलैंगिक प्रावस्था
(Endogenous or Sexual phase)

1. संक्रमण (Inoculation)—जब एक संक्रमित (infected) मादा
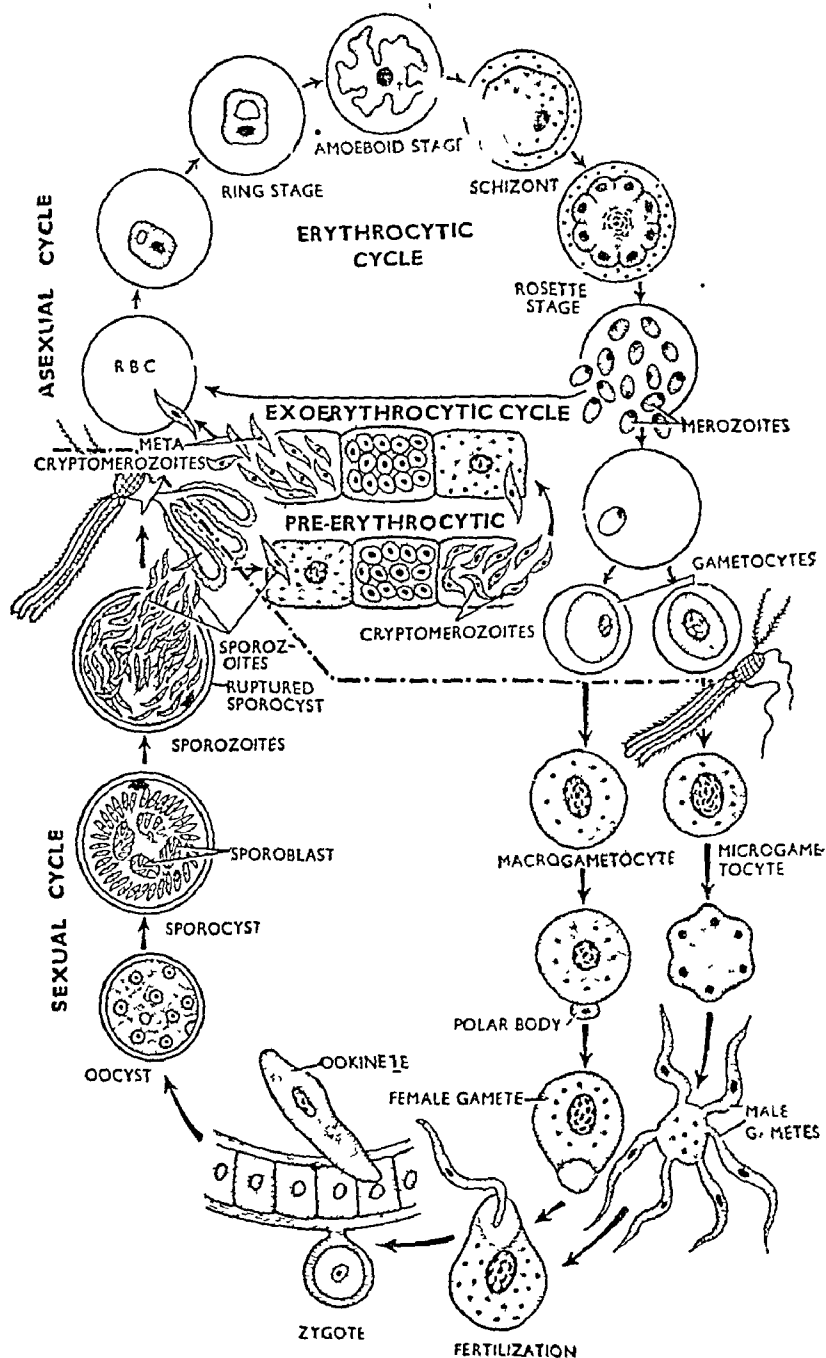
चित्र ५·१. मलेरिया परजीवी का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Malarial parasite*)

एनोफिलीज रक्त चूसने के लिए एक स्वस्थ मनुष्य को काटती है तो अपनी लार के साथ असंख्य परजीवी बीजाणुओं (sporozoites) को पोषक के रुधिर में पहुँचा देती है। बीजाणुज सूक्ष्म, कुछ मुड़े हुए, तर्क्वाकार या हँसिये के आकार के (spindle-

shaped or sickle-shaped) होते है जिनके दोनों सिरे पतले होते हैं। इनके शरीर के चारो ओर एक मजवूत किन्तु लचीली क्युटिकल होती है तथा शरीर के चौड़े मध्य भाग में एक केन्द्रक होता है।

2. एक्सो-एरिथ्रोसाइटिक चक्र (Exo-erythrocytic cycle)—मच्छर के काटने के लगभग आधे घण्टे पश्चात् समस्त वीजाणुज रक्त से निकल कर यकृत में पहुँच जाते हैं। यहाँ ये यकृत की कोशिकाओं में पहुँचकर खण्ड-विभाजन या शाइजोगोनी (schizogony) द्वारा अलैंगिक विधि से जनन करते है। यकृत कोशिकाओं में परजीवी का यह गुणन-चक्र (multiplication cycle) **एक्सो-एरिथ्रोसाइटिक चक्र** कहलाता है। यह दो चक्रों में वाँटा जा सकता है :—

(*i*) **प्री-एरिथ्रोसाइटिक चक्र** (Pre-erythrocytic cycle)—यह वीजाणुजों की यकृत कोशिकाओं में प्रथम वर्धन क्रिया है जो इसके R.B.Cs. में पहुँचने से पहले होती है। वीजाणुज यकृत कोशिकाओं में पहुँचकर गोल जाते हैं और **क्रिप्टोजॉयट** (cryptozoites) कहलाते है। प्रत्येक क्रिप्टोजॉयट यकृत कोशिका के जीवद्रव्य का भक्षण कर वड़ा होता है और **वीजाणुजनक** (schizont) वनाता है। अव यह **खण्ड-विभाजन** (schizogony) द्वारा लगभग 10000 क्रिप्टोमीरोजॉयट्स (cryptomerozoites) वनाता है। यह चक्र **प्री-एरिथ्रोसाइटिक चक्र** कहलाता है और लगभग 10 दिन में पूर्ण होता है। इस चक्र को पूर्ण होने में लगा समय इन्क्यूवेशन काल (incubation period) कहलाता है।

स्वतन्त्र क्रिप्टोमीरोजॉयट्स या तो रक्त-कणिकाओं में पहुँचकर एरिथ्रोसाइटिक चक्र प्रारम्भ कर देते हैं या यकृत कोशिकाओं में पहुँचकर पुन: एक्सो-एरिथ्रोसाइटिक चक्र प्रारम्भ कर देते हैं। यह **पोस्ट-एरिथ्रोसाइटिक चक्र** कहलाता है।

(*ii*) **पोस्ट-एरिथ्रोसाइटिक चक्र** (Post-erythrocytic cycle)—क्रिप्टोमीरोजॉयट्स नयी यकृत कोशिकाओं में पहुँचकर पुन: खण्ड-विभाजन द्वारा संख्या में वढ़ते हैं तथा लगभग 1000 मैटाक्रिप्टोमीरोजॉयट्स (metacryptomerozoites) वनाते हैं। ये दो प्रकार के होते है—वड़े **मैटाक्रिप्टोमीरोजॉयट्स** यकृत कोशिकाओं में वार-वार पोस्ट-एरिथ्रोसाइटिक चक्र चलाते है तथा छोटे **मैटाक्रिप्टोजॉयट्स** R.B.Cs. में पहुँचकर एरिथ्रोसाइटिक चक्र चलाते है।

एक्सो-एरिथ्रोसाइटिक अवस्था में परजीवी पर दवाइयों का कोई प्रभाव नहीं होता तथा परजीवी वहुत वर्षो तक यकृत में पोपक पर विना कोई प्रभाव दिखाये जीवित रह सकता है।

3. एरिथ्रोसाइटिक चक्र (Ertyhrocytic cycle)—क्रिप्टोमीरोजॉयट्स या मैटाक्रिप्टोजॉयट रक्त में पहुँचकर R.B.Cs. में घुस जाते हैं। R.B.C. के भीतर प्रत्येक परजीवी लगभग गोल या डिस्क के समान हो जाता है। यह परजीवी की **पोषण अवस्था** (trophozoite stage) है। इसके कोशिकाद्रव्य में एक कुन्चनशील रिक्तिका वन जाती है जिससे केन्द्रक एक किनारे पर पहुँच जाता है, अत: यह अंगूठी का आकार प्रस्तुत करता है। इसलिए इस अवस्था को signet-ring stage कहते हैं। कुछ समय पश्चात् रिक्तिका छिप जाती है तथा परजीवी अमीवॉयड आकार ग्रहण कर लेता है। इसे **अमीवॉयड अवस्था** (amoeboid stage) कहते हैं। अपने पादाभों की सहायता से वह R.B.C. के कोशिकाद्रव्य को खाकर आकार में वढ़ता है तथा पूरे R.B.C. को घेर लेता है। अव यह **वीजाणुजनक** (schizont) कहलाता है। इसके कोशिकाद्रव्य में वहुत-सी पीली, भूरे या काले रंग

की कणिकाएँ जमा हो जाती हैं। ये हीमोजॉयन या मिलेनिन (haemozoin or melanin) की बनी होती हैं जो पोषक के हीमोग्लोबिन से बनता है। अब परजीवी आकार में न बढ़कर संख्या में बढ़ने के लिए अलैंगिक जनन करता है।

4. खण्ड-जनन (Schizogony or merogony)—बीजाणुजनक के केन्द्रक से बहुखण्डन (multiple fission) द्वारा 6 से 24 तक सन्तति केन्द्रक बन जाते हैं। ये परिधि के साथ फैल जाते है। प्रत्येक केन्द्रक के चारों ओर कोशिकाद्रव्य एकत्रित हो जाता है और इस प्रकार 6 से 24 तक खण्डज (merozoites) बन जाते हैं। कुछ समय पश्चात् R.B.C. की दीवार फटने पर खण्डज तथा हीमोजॉइन नामक विषैला पदार्थ रक्त में आ जाते है। खण्डज नये R.B.C. में पहुँचकर पुनः एरिथ्रोसाइटिक चक्र प्रारम्भ कर देते है। एक चक्र के पूरा होने में 48 से 72 घण्टे का समय लगता है।

पोषक के R.B.Cs. के लगातार नष्ट होने से उसके रुधिर में R.B.C. की कमी होती जाती है तथा विषैले पदार्थों की मात्रा बढ़ती जाती है, जिसके फलस्वरूप लगभग 5 चक्रों के पश्चात् पोषक में मलेरिया के लक्षण दिखाई देने लगते है। प्रत्येक चक्र के अन्त में R.B.Cs. के फटने पर पोषक को ठण्ड लगती है तथा फिर बुखार आ जाता है।

5. युग्मकजनकों का निर्माण (Formation of gametocytes)—खण्ड-जनक द्वारा बार-बार विभाजित होने से रुधिर मे परजीवी की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है तथा R.B.Cs. की कमी के कारण R.B.Cs. सरलता से नहीं मिल पाते। साथ ही बार-बार अलैंगिक विधि से विभाजित होने के कारण स्वयं परजीवी की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। अतः परजीवी की उपस्थिति संकट में आ जाती है। फलस्वरूप परजीवी गैमीटोसाइट बनाकर नये पोषक में जाने की तैयारी करता है। ये युग्मकजनक (gametocytes) दो प्रकार के होते है :—

(*i*) **लघु-युग्मकजनक** (Microgametes)—ये आकार में छोटे किन्तु संख्या में अधिक होते है तथा इनका केन्द्रक बड़ा होता है। ये नर युग्मक बनाते हैं।

(*ii*) **दीर्घ युग्मकजनक** (Macrogametocytes)—ये आकार में बड़े किन्तु संख्या मे कम होते है। इनका केन्द्रक छोटा होता है और कोशिकाद्रव्य में भोजन संचित रहता है। ये मादा युग्मक बनाते है।

परिपक्व युग्मकजनक (mature gametocytes) मनुष्य में आगे वृद्धि नहीं कर सकते तथा केवल एक या दो दिन ही जीवित रह सकते है। ये शरीर की सतह पर पायी जाने वाली रुधिर-वाहिनियो मे पहुँच कर मादा मच्छर के काटने की प्रतीक्षा करते है।

2. बहिर्जनित या बहिर्जात या लैंगिक चक्र
(Exogenous or Sexual Cycle)

जब एनोफिलीज मादा किसी संक्रमित या बीमार मनुष्य का रुधिर चूसती है तो उसके साथ ही परजीवी भी जीवन-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में मच्छर की आहार-नाल मे पहुँच जाते है। आहार-नाल में युग्मकजनक को छोड़कर अन्य सभी अवस्थाएँ पच जाती है। R.B.C. के फटने से युग्मकजनक बाहर निकलते है तथा युग्मक बनते है।

1. नर युग्मकों का बनना (Formation of male gametes)—लघु युग्मकजनक का केन्द्रक 6 से 8 अगुणित केन्द्रकों (haploid nuclei) मे बँट जाता है। प्रत्येक केन्द्रक के चारो ओर थोड़ा-सा कोशिकाद्रव्य इकट्ठा हो जाता है जो बाद में

एक शुक्राणु बनाता है। प्रत्येक शुक्राणु या नर युग्मक के शरीर में एक छोटा-सा केन्द्रक तथा कोशिकाद्रव्य से बना एक कशाभ (flagellum) होता है। इसकी सहायता से नर युग्मक आमाशयिक द्रव में से होता हुआ मादा युग्मक के पास पहुँचता है।

2. **मादा युग्मक का बनना** (Formation of female gamete)—गुरु युग्मकजनक का केन्द्रक अर्धसूत्रण विधि द्वारा दो केन्द्रकों में बँट जाता है उनमें से एक ध्रुव कोशिका में रूप में बाहर निकाल दिया जाता है। दूसरा केन्द्रक युग्मक में बने उभार में आ जाता है। यह उभार **रिसेप्शन कोन** (reception cone) कहलाता है।

3. **निषेचन** (Fertilization)—नर युग्मक मादा युग्मक की ओर आकर्षित होता है तथा उसके रिसेप्शन कोन में से भीतर घुसता है। दोनों युग्मकों के केन्द्रक आपस में मिल जाते हैं तथा **सिनकेरियोन** (synkaryon) बनाते हैं। इस प्रकार बना युग्मनज (zygote) गोल तथा अचल होता है। शीघ्र ही यह लम्बा होकर कृमिवत् (vermicule) या चलयुग्म (ookinete) कहलाने लगता है। इसका अगला सिरा नुकीला होता है जिसकी सहायता से यह आमाशय की दीवार को छेदकर उसकी बाहरी सतह पर सबएपिथीलियल ऊतकों (subepithelial tissues) में आ जाता है। यहाँ यह गोल होकर अपने चारों ओर एक पतली झिल्ली के समान परिकोष्ठ या सिस्ट (cyst) बना लेता है तथा **ऊसिस्ट** (oocyst) अथवा sporont कहलाता है। यह धीरे-धीरे आकार में बढ़ता है।

हॉवर्ड (Howard, 1960) के अनुसार चलयुग्मज (ookinete) आमाशय के दीवार को नहीं वेधता। वरन् यह मृत होते हुए परजीवी को प्रदर्शित करता है जो मच्छर की विष्ठा के साथ बाहर निकल जाता है। उसके अनुसार गोलाकार व अक्रिय युग्मनज (zygote) आमाशय की भित्ति की कोशिकाओं के बीच परिधि पर स्थित होता है। ऐसे युग्मज जो आमाशय की दीवार तक नहीं पहुँच पाते, लम्बे होकर चलयुग्मज बनाते हैं।

4. **बीजाणुजनन** (Sporogony)—पूर्ण वृद्धिप्राप्त ऊसिस्ट का केन्द्रक माइटोसिस द्वारा बहुत-से संतति केन्द्रकों में बँट जाता है। इसके चारों ओर जीवद्रव्य एकत्रित हो जाता है जिससे अनेक अनियमित आकार की एक-केन्द्रित (uninucleate) रचनाएँ बन जाती हैं जो **स्पोरोब्लास्ट** (sporoblasts) कहलाती हैं। प्रत्येक स्पोरोब्लास्ट का केन्द्रक पुनः समसूत्रण विधि से बार-बार विभाजित होता है। प्रत्येक केन्द्रक अब एक तर्क्वाकार स्पोरोजोइट बना लेता है। सिस्ट की दीवार के फटने पर ये देहगुहा में आ जाते हैं और विभिन्न दिशाओं में आगे बढ़ते हैं। इनमें से कुछ लार ग्रन्थियों में भी पहुँच जाते हैं।

बीजाणुजों (sporozoite) के लार ग्रन्थियों में पहुँचते ही मादा एनोफिलीज पुनः संक्रमित हो जाती है, और यह स्वस्थ मनुष्यों के रुधिर में परजीवी को पहुँचा देती है।

प्रश्न 9. मलेरिया परजीवी के जीवन-चक्र में होने वाली मुख्य घटनाओं का वर्णन कीजिये। इसके जीवन-चक्र में दो पोषकों की आवश्यकता क्यों होती है?

Describe the main facts of the life-history of malarial parasite. Why are two alternative hosts necessary for completion of life-cycle?

(*Bhagalpur 1963 ; Madras 68*)

जीवन-इतिहास (Life-history)

कृपया प्रश्न 8 देखिये ।

दो एकान्तरित पोषकों की आवश्यकता (Necessity of Two Alternative Hosts)

मलेरिया परजीवी का जीवन-इतिहास द्विपोपदिक (digenetic) होता है अर्थात् इसमें एक **निश्चित या प्रमुख पोषक** (definitive or primary host) मनुष्य होता है तथा दूसरा **द्वितीयक या मध्य पोषक** (secondary or intermediate host) एनोफिलीज जाति की मादा होती है । प्रमुख पोषक में परजीवी के जीवन-इतिहास का अधिकांश भाग पूर्ण होता है । प्रमुख पोषक में वह खाता है, वृद्धि करता है तथा अलैंगिक विधि द्वारा अपनी जाति (race) में वृद्धि करता है । अतः प्रमुख पोषक तो परजीवी के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ही, द्वितीयक पोपक के भी निम्न महत्त्व हैं:—

1. प्लाज्मोडियम एक **आन्तरकोशिक परजीवी** (endoparasite) है जो R.B.Cs. के भीतर रहता है । एक पोषक से अन्य पोषकों में जाने के लिए इसे रुधिर चूसने वाले द्वितीयक पोषक (secondary host) की आवश्यकता होती है जो परजीवी को रुधिर के साथ पोषक के शरीर से चूस ले तथा नये पोषकों में पहुँचा सके, अतः द्वितीयक पोपक परजीवी के लिए **वाहक** (vector) का कार्य करता है ।

2. परजीवी के बार-बार विभाजित होने से रुधिर में इसकी संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है । साथ ही R.B.Cs. के नष्ट होते रहने से नये R.B.Cs. की संख्या बहुत कम हो जाती है, अतः परजीवी को R.B.Cs. नहीं मिल पाते । पोषक की सहनशक्ति (resistance power) भी समाप्त हो जाती है तथा इसकी अधिक वृद्धि पोषक की मृत्यु भी कर सकती है । अतः प्रथम पोपक में परजीवी को अपनी उपस्थिति का डर हो जाता है । फलस्वरूप इसका दूसरे पोषकों में पहुँचना अत्यन्त आवश्यक है वरना परजीवी की जाति ही समाप्त हो जायेगी । अतः द्वितीय पोपक परजीवी की जाति को बचाये रखता है तथा उसको पोषक के साथ नष्ट होने से बचा लेता है ।

3. बार-बार विभाजित होने से परजीवी की शक्ति स्वयं क्षीण होने लगती है । लैंगिक जनन के फलस्वरूप वह शक्ति पुनः प्राप्त कर ली जाती है । मच्छर के आमाशय में परजीवी के जीवन-इतिहास का लैंगिक-चक्र पूर्ण होता है जो इसको खोई हुई शक्ति तथा क्रियाशीलता प्रदान करता है ।

अतः मलेरिया परजीवी के जीवन-इतिहास में रक्त चूसने वाली मादा *एनोफिलीज* का पाया जाना एक बुद्धिमानी का कदम है जो परजीवी को एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचाता है, जाति-वृद्धि में सहायता करता है तथा जाति को नष्ट होने से बचाने में सहायता करता है ।

प्रश्न 10. मलेरिया परजीवी के जीवन-इतिहास का संक्षेप में वर्णन कीजिये तथा मोनोसिस्टिस के साथ इसकी तुलना कीजिये ।

Describe briefly the life-history of malarial parasite and compare it with that of *Monocystis*. (*Vikram 1963*)

मलेरिया परजीवी का जीवन-इतिहास (Life-history of Malarial Parasite)

कृपया प्रश्न 8 देखिये ।

मलेरिया परजीवी तथा मोनोसिस्टिस के जीवन-चक्रों की तुलना
(Comparison Between the Life-history of Malarial Parasite and Monocystis)

कृपया प्रश्न 7 देखिये ।

प्रश्न 11. मध्य पोषक से आप क्या तात्पर्य समझते हैं ? मच्छर के अन्दर मलेरिया परजीवी के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये । मलेरिया की रोकथाम के लिए कुछ ठोस उपाय बताइये ।

What do you understand by intermediate host ? Describe the life-cycle of malarial parasite in mosquito. Suggest some important measures to control malaria.

(*Nagpur 1968, 73 ; Agra 58, 66, 68*)

कुछ परजीवियों का जीवन-इतिहास एक से अधिक पोषकों पर पूर्ण होता है । अधिकतर इनकी संख्या दो होती है । इनमें केवल एक पोषक पर परजीवी की उपस्थिति का बुरा प्रभाव पड़ता है, इसी पोषक में परजीवी के जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत होता है । यह पोषक प्राथमिक या प्रभावी पोषक कहलाता है । दूसरा पोषक परजीवी की उपस्थिति से प्रभावित नहीं होता, यद्यपि परजीवी उसमें कुछ समय के लिए रहता है तथा कभी-कभी वृद्धि भी करता है । यह दूसरा पोषक द्वितीयक या **मध्य पोषक** कहलाता है । यह परजीवी के लिए वाहक (vector) का कार्य करता है ।

जीवन इतिहास (Life-history)

कृपया प्रश्न 8 देखिये ।

मलेरिया की रोकथाम
(Control over Malaria)

मलेरिया की रोकथाम के लिए उपयोगी उपायों को तीन पदों में बाँटा जा सकता है :—

1. मध्य पोषक को नष्ट करना (Destruction of primary host)
2. संक्रमण को रोकना (Prevention of infection)
3. रोग का इलाज (Treatment of disease)

1. मध्य पोषक को नष्ट करना (Destruction of Secondary Host)

(अ) प्रौढ़ मच्छर को नष्ट करना (Destruction of adult mosquito)—

(*i*) घरों में D.D.T., फ्लिट, पाइरीथ्रम (pyrethrum) अथवा अन्य किसी कीटनाशक दवाई को छिड़कने से,

(*ii*) पाइरीथ्रम, क्रीसोल, नेप्था के यौगिकों इत्यादि का धुआँ करने से,

(*iii*) मच्छर पकड़ने वाले जाल से मच्छर पकड़कर मारने से ।

(ब) लारवा तथा प्यूपा को नष्ट करना (Destruction of larvae and pupae)—मच्छर के लारवा तथा प्यूपा रुके हुए पानी में रहते हैं, अतः

(*i*) गन्दे पानी को एक स्थान पर रुकने नहीं देना चाहिये ।

(*ii*) पानी के छोटे-छोटे गड्ढों इत्यादि को सुखा देना चाहिये ।

(*iii*) बड़े तालाबों इत्यादि में पानी की सतह पर मिट्टी का तेल फैला देना चाहिये ।

(*iv*) लारवीसाइड (larvicides) तथा लारवीसाइडल मछलियों (larvicidal

fishes) को पानी के तालावों या पोखरों में छोड़ देना चाहिये ।

2. संक्रमण को रोकना (Prevention of Infection)

(*i*) मच्छर के काटने से बचने के लिए मकान मच्छर-प्रूफ होने चाहियें, अतः दरवाजों तथा खिड़कियों पर जाली लगी होनी चाहिये ।

(*ii*) रात को सोते समय मच्छरदानी लगाकर सोना चाहिये ।

(*iii*) शरीर के खुले भागों पर एण्टी-मोस्क्युटो क्रीम (anti-mosquito cream) अथवा सरसों का तेल इत्यादि लगाकर सोना चाहिये ।

(*iv*) शरीर के खुले भागों को कपड़े से ढकना चाहिये । मोजे, जूतों तथा दस्तानों का प्रयोग करना चाहिये ।

(*v*) बीमारी के संक्रमण से बचने के लिए नियमित रूप से बीमारी रोकने की दवाई खा लेनी चाहिये । ये दवाइयाँ क्वीनीन (quinine) पेलूड्रिन (paludrine) तथा डेराप्रिम (daraprime) इत्यादि हैं ।

3. मलेरिया का इलाज (Treatment of Malaria)

क्वीनीन (quinine), एटाब्रिना (atabrina), कैमोक्वीनीन (camoquinine), क्लोरोक्युइन (chloroquine), पेलूड्रिन (paludrine), तथा पेण्टाक्युइन (pentaquine) इत्यादि औषधियाँ मलेरिया बुखार को रोकती हैं ।

प्रश्न 12. मलेरिया परजीवी के मनुष्य में जीवन-चक्र का विस्तार से वर्णन करिये तथा मलेरिया की रोकथाम के लिए कुछ उपाय बताइये ।

Give an illustrated account of the life-history of malarial parasite in man and suggest methods for controlling malaria.

(*Agra 1955, 63 ; Nagpur 68 ; Lucknow 59 ; Banaras 63 ; Kanpur 71*)

कृपया प्रश्न 8 तथा 11 देखिये ।

प्रश्न 13. मनुष्य में प्लाजमोडियम के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिए । इसके जीवन-चक्र में इनवर्टिब्रेट पोषक के महत्त्व को समझाइये ।

Describe the life-history of *Plasmodium* in man. What is the importance of the invertebrate host ? (*Nagpur 1970*)

मनुष्य में पाये जाने वाले किसी परजीवी प्रोटाजोआ के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये ।

Describe the life-history of any parasite protozoon. (*Meerut 1963*)

कृपया प्रश्न 8 तथा 9 देखिये ।

प्रश्न 14. आपके द्वारा पढ़े हुए, मानव शरीर में परजीवी, किसी प्रोटोजोआ के अलैंगिक जनन का विस्तार से वर्णन करो ।

Describe in detail asexual reproduction of a protozoan parasite in human being that you have studied. (*Rajasthan 1972*)

कृपया प्रश्न 8 देखिये ।

अध्याय 6

युग्लीना (Euglena)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास	—	मेस्टीगोफोरा या फ्लेजेलेटा (*Mastigophora or Flagellata*)
सबक्लास	—	फाइटोमेस्टिजाइना (*Phytomastigina*)
आर्डर	—	युग्लीनोइडिया (*Euglenoidea*)
जीनस	—	युग्लीना (*Euglena*)

प्रश्न 15. युग्लीना की संरचना तथा चलन, पोषण एवम् जनन विधि का वर्णन कीजिये। इसे मेस्टीगोफोरा में रखने के कारण वताइये।

Give an account of the structure, mode of locomotion, nutrition and reproduction of *Euglena*. Give reasons for including it among Mastigophora. (*Kanpur 1969 ; Agra 66 ; Bombay 69 ; Utkal 67 ; Patna 69 ; Vikram 62 ; Tribh. 63 ; Jiwaji 69*)

युग्लीना की संरचना का वर्णन करिये तथा पोषण व चलन विधि पर नोट लिखिये।

Describe the structure of *Euglena* and write notes on its mode of nutrition and locomotion. (*Tribhuvan 1968 ; Luck. 68*)

युग्लीना के वर्गीकरण, स्वभाव, संरचना एवम् कार्यिकी का वर्णन कीजिये।

Give an account of the systematic position, habits, structure and physiology of *Euglena*. (*B.H.U. 1969*)

युग्लीना की संरचना तथा जनन का वर्णन कीजिये।

Give an account of the structure and reproduction of *Euglena*. (*Allahabad 1961 ; Agra 67*)

युग्लीना की संरचना का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। इसे जन्तु-जगत् में रखने के कारणों पर प्रकाश डालिये।

Give a detailed account of the structure of *Euglena*. Give reasons for including it in kingdom Animalia. (*Magadh 1963 ; Gorakhpur 73 ; Jiwaji 73*)

युग्लीना क्लास मेस्टीगोफोरा का स्वतन्त्रजीवी प्राणी है, जो तालावों, पोखरों तथा गड्ढों के रुके हुए पानी में पाया जाता है। वर्षा काल में जब ये बहुत अधिक संख्या में होते हैं तो पानी की सतह को हरा बना देते हैं।

संरचना (Structure)

बाह्य संरचना (External Structure)

1. आकार तथा परिमाण (Shape and size)—*युग्लीना* लगभग अण्डाकार

या तर्क्वाकार (oval or spindle-shaped) किन्तु कुछ लम्बा जन्तु है जिसका अगला सिरा चपटा तथा लगभग गोल और पिछला नुकीला होता है। इसकी लम्बाई 20–100μ तथा चौड़ाई 15μ होती।

चित्र ६·१. युग्लीना के शरीर का अग्रिम भाग (Anterior part of *Euglena*)

2. अग्रिम सिरा (Anterior end)—शरीर के अगले चपटे सिरे पर फनल के आकार की या फ्लास्क के आकार की एक छिछली गर्त (depression) होती है। इसका शीर्ष छिद्र **कोशिकामुख** (cytostome) कहलाता है। कोशिकामुख एक गोल संरचना में खुलता है जो **रिजरवायर** (reservoir) कहलाती है। कोशिका-मुख तथा रिजरवायर को जोड़ते हुए एक नलिका के समान **कोशिकाग्रसनी** या साइटोफेरिंक्स (cytopharynx) होती है।

फ्लेजेलम (Flagellum)—रिजरवायर के आधार से एक कोड़े के समान (whip-like) फ्लेजेलम या कशाभ (flagellum : L., *flagellum*, whip) निकलता
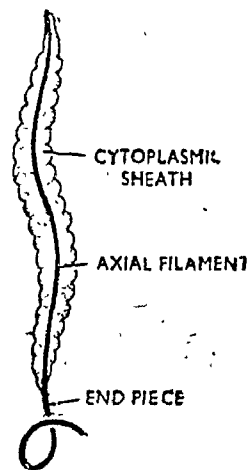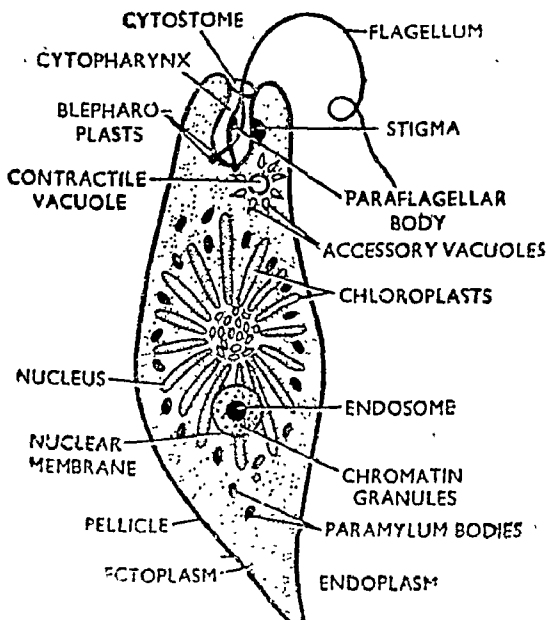
चित्र ६·३. युग्लीना का कशाभ (Flagellum of *Euglena*)

चित्र ६·२. युग्लीना की संरचना (Structure of *Euglena*)

है जो कोशिकाद्रव्य का वना होता है। यह कोशिका-ग्रसनी में से होता हुआ शरीर के अगले सिरे से वाहर निकला रहता है। इसके मध्य में एक तन्तु होता है जो **अक्षीय तन्तु** (axial filament) या एक्जोनीमी (axoneme) कहलाता है। इसके चारों ओर कोशिकाद्रव्य की पतली पर्त होती है। अक्षीय तन्तु में मायोनीमीस (myonemes) की संख्या *युग्लीना* की विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न होती है। *E. viridis* में ये दो होते हैं। फ्लेजेलम में दो मूल होती हैं। ये दोनों मूल (roots) अलग-अलग गोल रचनाओं से निकलती हैं जिन्हें **ब्लीफेरोप्लास्ट** (blepheroplasts) कहते हैं। ये कोशिकाद्रव्य में स्थित होती हैं। दोनों मूलों के मिलने के स्थान पर या दोनों में से किसी एक पर **पैरापलेजेलर** (paraflagellar) नामक एक रचना होती है जो **प्रकाश-ग्राहक** (photoreceptor) की भाँति कार्य करती है। फ्लेजेलम शरीर को आगे खींचता है तथा इस प्रकार चलन में सहायता करता है।

आन्तरिक रचना (Internal Structure)

पेलिकल (Pellicle)—शरीर की वाहरी रक्षात्मक पर्त काइटिन की वनी मजवूत किन्तु लचीली झिल्ली के रूप में होती है तथा **पेलीकल** (pellicle) या पेरिप्लास्ट (periplast) कहलाती है। यह जन्तु को निश्चित आकार प्रदान करती है। पेलीकल प्रोटीन्स की वनी होती है तथा इसमें समान्तर या स्पाइरल धारियाँ (parallel or spiral striations) होती हैं। उनकी उपस्थिति के कारण शरीर को सिकोड़ा या फैलाया जा सकता है जिससे जन्तु **युग्लीनायड गति** (euglenoid movement) उत्पन्न करता हे।

कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)—कोशिकाद्रव्य दो पर्तों का वना होता है। वाहरी पर्त पतली तथा सघन होती है और **वाह्यद्रव्य** (ectoplasm) कहलाती है तथा भीतर का दानेदार, द्रवीय भाग **आन्तरद्रव्य** (endoplasm) वनाता है। वाह्यद्रव्य में वहुत-सी आड़ी तथा लम्बी (oblique and longitudinal) मायोनीमी होती हैं।

कोशिकाद्रव्य में पायी जाने वाली रचनाएँ (Cytoplasmic Inclusions)

1. केन्द्रक (Nucleus)—शरीर के मध्य से थोड़ा पीछे की ओर एक वड़ा अण्डाकार वेसिकुलर केन्द्रक होता है। इसके मध्य में एक **एण्डोसोम** (endosome) होता है जिसके चारों ओर केन्द्रकद्रव्य मे वहुत-से **क्रोमेटिन कण** (chromatin granules) होते हैं तथा इनके वाहर एक केन्द्रक कला (nuclear membrane) होती है।

2. रंज्या लवक या क्रोमेटोफोर (Chromatophores)—कोशिकाद्रव्य में वहुत संख्या में हरे रंग के अण्डाकार डिस्क या प्लेट के समान या छड़ के समान **क्रोमेटोफोर** (chromatophores) पाये जाते हैं। इनमें पर्णहरिम (chlorophyll) होता है जो स्टार्च वनाने में सहायता करता है। *युग्लीना* की विभिन्न जातियों में क्रोमेटोफोर की संख्या, रचना तथा विन्यास भिन्न-भिन्न होता है।
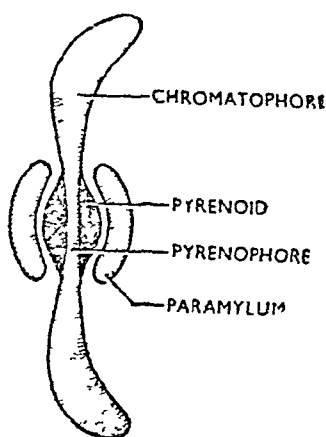
चित्र ६·४. *E. virdis* के एक क्रोमेटोफोर की सरचना

E. viridis में ये छड के समा (rod-shaped) होती है जो एक स्थान से चारों ओर को फैली रहती है। प्रत्येक क्रोमेटोफोर के मध्य मे एक पतला, रंगहीन (non-pigmented) भाग **पाइरीनोफोर** (pyrenophore) होता है जिसको घेरे हुए प्रोटीन की बनी एक या दो अण्डाकार या उभयोत्तल (biconvex) **प्रोभुजक** या **पाइरीनॉयड काय** (pyrenoid bodies) होती है। पाइरीनॉयड काय पर **पैरालइम आवरण** (paramylum sheath) होता हे। यह पैरामाइलम ग्लाइकोजन प्रकार के कार्बोहाइड्रेट का बना होता है।

3. पैरामाइलम काय (Paramylum bodies)—सचित कार्बोहाइड्रेट विभिन्न आकार तथा परिमाण की **वर्तनशील काय** (refractile bodies) के रूप में एकत्रित रहता है। ये पैरामाइलम नामक स्टार्च की बनी होती है जो ग्लाइकोजन से मिलता-जुलता होता है। ये रचनाएँ कोशिकाद्रव्य मे फैली रहती है तथा क्रोमेटोफोर को घेरे रहती है।

4. कुञ्चनशील रिक्तिका (Contractile vacuole)—रिजरवायर के बहुत समीप एक ओर एक बड़ी कुञ्चनशील रिक्तिका होती है जिसके चारो ओर बहुत-सी छोटी-छोटी सहायक कुञ्चनशील रिक्तिकाएँ (accessory contractile vacuoles) होती है। ये अपना एकत्रित किया हुआ जल कुञ्चनशील रिक्तिका मे डालती है जो रिजरवायर मे फट जाती है तथा अपना पानी बाहर फेक देती है।

5. नेत्र-विन्दु या प्रकाश बिन्दु (Stigma or eye-spot)—रिजरवायर के सम्पर्क मे एक स्पष्ट, नारगी-लाल रग का **नेत्र-बिन्दु** या प्रकाश-विन्दु स्थित होता है। यह **हीमेटोक्रोम** (haematochrome) का बना होता है तथा प्रकाश के लिए सवेदनशील होता है।

कार्यिकी (Physiology)

चलन (Locomotion)—युग्लीना मे दो प्रकार से चलन होता है :—

1. कशाभ गति या फ्लेजेलर गति (Flagellar movement)—लम्बा, अत्यन्त कुञ्चनशील (highly contractile) कशाभ या फ्लेजेलम चलन अग का कार्य करता हे। तैरते समय इसकी कशाघातीय गति (lashing movement) मे
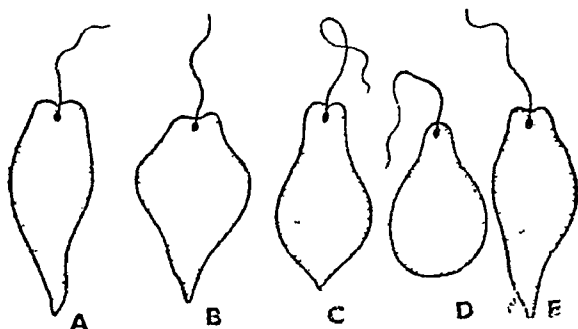
चित्र ६ ५ युग्लीनायड गति की विभिन्न अवस्थायें
(Various stages in euglenoid movement)

गति की धाराओ का क्रम वन जाता है जो शरीर को आगे की ओर धक्का देती हे। आगे वढते समय जन्तु अपने अक्ष के चारों ओर घूमता है (gyrates or spirally rotates along the axis)।

2. युग्लीनॉयड गति (Euglenoid movement)—शरीर के सिकुड़ने तथा फैलने से *युग्लीना* कीड़ों के समान परिसर्पण गति (wriggling movement) उत्पन्न करता है। लचीली पेलीकल तथा वाह्यद्रव्य की मायोनीमी इस गति में सहायक होती हैं। सिकुड़ने तथा फैलने की लहरें क्रमवत् शरीर के अगले सिरे से पिछले सिरे की ओर वढ़ती हैं तथा जन्तु धीरे-धीरे आगे की ओर वढ़ता है। (चित्र 6·5)

पोषण (Nutrition)—*युग्लीना* में एक से अधिक पोषण विधियाँ पायी जाती हैं, किन्तु अधिकतर यह निम्न तीनों में से किसी एक विधि द्वारा भोजन लेता है :—

(*i*) **वनस्पति सदृश पोषण** (Plant-like nutrition)—सूर्य के तेज प्रकाश में *युग्लीना* CO_2 तथा पानी से क्लोरोफिल की उपस्थिति में अपना भोजन स्वयं वनाता है। इस क्रिया को **प्रकाश-संश्लेषण** (photosynthesis) कहते हैं। पर्ण-हरिम (chlorophyll) सूर्य के प्रकाश में CO_2 को कार्वन तथा आक्सीजन में तोड़ देता है। यह कार्वन पानी के साथ संयोग करके स्टार्च वनाता है जो **पैरामाइलम** (paramylum) कहलाता है। आवश्यकता से अधिक स्टार्च प्रोभुजक काय (pyrenoid bodies) में एकत्रित रहता है।

(*ii*) **मृतजीवी पोषण** (Saprozoic or saprophytic nutrition)—प्रकाश की अनुपस्थिति में युग्लीना पानी में घुले व क्षय होते हुए कार्वनिक पदार्थों (decaying organic matter) को अपना भोजन वनाता है। ये पदार्थ शरीर की सतह द्वारा सोख लिये जाते हैं। यह भी माना जाता है कि *युग्लीना* जन्तुओं के समान कुछ पाचक-रस भी उत्पन्न करता है।

(*iii*) **जन्तु-सदृश पोषण** (Holozoic nutrition)—*युग्लीना* की कुछ जातियों में जन्तु-सदृश पोषण भी देखा गया है। कभी-कभी *युग्लीना* ठोस भोजन के कण पकड़ लेता है, किन्तु इस विधि द्वारा पोषण निश्चित नहीं कहा जा सकता।

जनन (Reproduction)—*युग्लीना* में केवल अलैंगिक जनन होता है जो निम्न प्रकार का होता है :—

(*i*) द्विविभाजन, (*ii*) वहुविभाजन, (*iii*) परिकोष्ठन।

(*i*) **द्विविभाजन** (Binary fission)—पर्यावरण की अनुकूल परिस्थितियों में इस विधि द्वारा जनन होता है। केन्द्रक समसूत्रण विधि से दो लम्बवत् भागों में वँट जाता है। इसके साथ ही कोशिकाग्रसनी, रिजरवायर, नेत्र-विन्दु, व्लीफेरोप्लास्ट
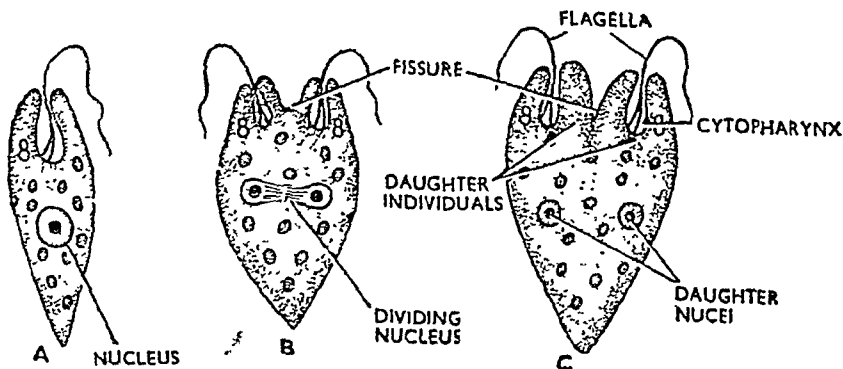
चित्र ६·६. युग्लीना मे द्विविभाजन (Binary fission in *Euglena*)

तथा कुञ्चनशील रिक्तिका भी दो भागों में बँट जाती हैं। अब अगले सिरे से एक खाई (constriction) बननी प्रारम्भ होती है और धीरे-धीरे पीछे की ओर बढ़ती जाती है। फलस्वरूप जन्तु लम्बाई में दो भागों में बँट जाता है। इस प्रकार का विभाजन **लम्बवत् द्विविभाजन** (longitudinal binary fission) कहलाता है। नयी बनी संतति कोशिकाओं में से एक पर पैतृक कशाभ (parental flagellum) रह जाता है तथा दूसरी कोशिका नया कशाभ बना लेती है।

कुछ जातियों में द्विविभाजन के समय जन्तु निष्क्रिय हो जाते हैं। वे तैरना बन्द कर देते हैं तथा कशाभ को भीतर खींचकर म्यूसिलेज का आवरण अपने चारों ओर बना लेते हैं। इसके पश्चात् केन्द्रक तथा शरीर दो भागों में बँट जाता है।

(*ii*) **बहुविभाजन** (Multiple fission)—प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने के लिए *युग्लीना* कशाभ फेंक कर गोल हो जाता है तथा अपने चारों ओर जिलेटिन का सिस्ट बना लेता है। परिकोष्ठित अवस्था में यह लम्बाई में एक या कई बार विभाजित होता है। फलस्वरूप सिस्ट के भीतर 2, 4, 16 या 32 संतति युग्लीना बन जाते हैं। समस्त संतति युग्लीना सिस्ट के भीतर रहकर **पामेला**
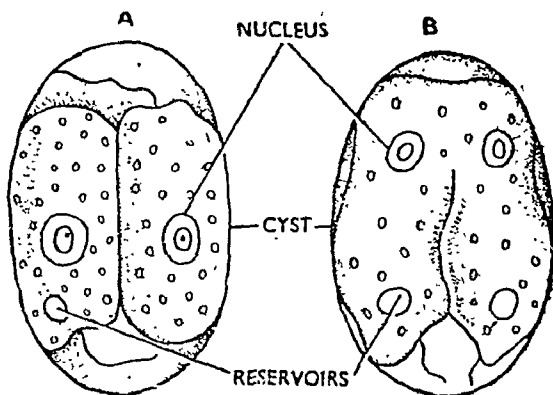
चित्र ६·७. परिकोष्ठित अवस्था में युग्लीना में द्विविभाजन
(Binary fission within cyst in *Euglena*)

अवस्था (palmella stage) प्रदर्शित करते हैं। अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर सिस्ट घुल जाता है तथा संतति *युग्लीना* कशाभ बनाकर स्वतन्त्र जीवन-यापन करने लगते हैं।

(*iii*) **परिकोष्ठन** (Encystment)—प्रतिकूल पर्यावरण परिस्थितियों को सहन करने के लिए *युग्लीना* अपने चारों ओर एक मोटा, गोल, पीले-भूरे रंग का सिस्ट (cyst) बना लेता है जो विशेष प्रकार के कार्बोहाइड्रेट का बना होता है। सिस्ट मोटा होता है तथा इसमें डण्ठल (stalk) या ढक्कन (operculum) भी हो सकता है। सिस्ट प्रतिकूल परिस्थितियों में जन्तु की रक्षा ही नहीं करता वरन् उसको एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में भी सहायता करता है। अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर सिस्ट फट जाता है और जन्तु पुनः सक्रिय जीवन प्रारम्भ कर देता है।

युग्लीना का जन्तु जगत् में स्थान
(Position of Euglena in Animal Kingdom)

युग्लीना की स्थिति अभी तक वाद-विवाद का प्रश्न बनी हुई है क्योंकि जूलो-

जिस्ट (Zoologists) इसे जन्तु-जगत् में तथा वनस्पतिज्ञ (Botanists) इसे वनस्पति-जगत् में रखते हैं। निम्नलिखित गुणों के कारण *युग्लीना* को जन्तु माना जाता है तथा जन्तु-जगत् में रखा जाता है :—

(*i*) पेलीकल का प्रोटीन का बना होना तथा शरीर के आवरण में सेलूलोस का अनुपस्थित होना,

(*ii*) कुञ्चनशील रिक्तिका की उपस्थिति,

(*iii*) प्रकाश-संवेदी (photosensitive) नेत्र-विन्दु या प्रकाश-विन्दु की उपस्थिति,

(*iv*) मृतजीवी पोषण-विधि तथा कुछ जातियों में जन्तु-सदृश पोषण-विधि का होना,

(*v*) स्थानान्तरण की शक्ति अर्थात् प्रचलन गुण,

(*vi*) शरीर का विभाजन लम्बवत् दिशा में होना।

एककोशिकीय शरीर होने के कारण *युग्लीना* को प्रोटोजोआ समुदाय में रखा जाता है। अंकुश के समान कशाभ (flagellum) की उपस्थिति के कारण यह क्लास मेस्टीगोफोरा का सदस्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त मेस्टीगोफोरा के अन्य जन्तुओं के समान इसमें भी एक बड़ा वैसीकुलर केन्द्रक होता है, जिसमें एक एण्डोसोम होता है। इसमें केवल अलैंगिक विधि द्वारा जनन होता है।
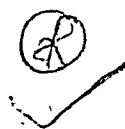
ट्रिपेनोसोमा (Trypanosoma)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	प्लाज्मोड्रोमा (*Plasmodroma*)
क्लास	—	मेस्टीगोफोरा (*Mastigophora*)
सबक्लास	—	जूमेस्टीजाइना (*Zoomastigina*)
आर्डर	—	प्रोटोमोनाडाइना (*Protomonadina*)
टाइप	—	ट्रिपेनोसोमा (*Trypanosoma*)

प्रश्न 16. ट्रिपेनोसोमा के जीवन-चक्र का वर्णन करिये और इसको वर्गीकरण की स्थिति में रखिये।

Give an account of the life-history of *Trypanosoma* and place it in the scheme of classification.

ट्रिपेनोसोमा की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये।

Describe the structure and life-history of *Trypanosoma*.

(Karnatak 1968 ; Tribhuwan 58, 63 ; Ranchi 70 ; Agra 71)

ट्रिपेनोसोमा के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये। यह मनुष्य में किस प्रकार रोग फैलाता है ? रोग को फैलने से रोकने के लिए कौन-कौन से उपाय काम में लाये जा सकते हैं ?

Describe the life-history of *Trypanosoma*. How does it cause disease in man ? What methods would you employ to prevent the spread of disease ?

क्लास फ्लेजेलेटा (class Flagellata) की बहुत-सी जातियाँ मनुष्य तथा अन्य उच्च कशेरुकदण्डियों के रक्त में परजीवी होती हैं। इन्हें साधारण तौर पर हीमोफ्लेजेलेट्स (haemoflagellates) कहते हैं। *ट्रिपेनोसोमा* भी उनमें से एक है। इसके जीवन-इतिहास का एक भाग कशेरुकदण्डियों के रक्त में तथा शेष भाग रक्त चूसने वाले अपृष्ठवंशियों (invertebrates) की आहार-नाल में व्यतीत होता है। अपृष्ठवंशी पोषक (invertebrate hosts) जैसे जोंक (leeches), किलनी (ticks) तथा मच्छर इत्यादि वेक्टर (vector) की भाँति परजीवी को एक पृष्ठवंशी पोषक से दूसरे पोषक तक ले जाने का कार्य भी करते हैं।

रचना (Structure)—*ट्रिपेनोसोमा* एक अकोशिकीय, सूक्ष्मदर्शी तथा कृमि के समान (acellular, microscopic and worm-like) प्रोटोजोआ है। इसका शरीर रंगहीन, लम्बा, पत्ती के समान चपटा तथा तर्कु के आकार का (spindle-shaped) होता है। इसका अगला सिरा धीरे-धीरे सँकरा होकर एक बिन्दु पर समाप्त होता है, लेकिन पिछला सिरा अपेक्षाकृत चौड़ा होता है। पूर्ण वृद्धि प्राप्त जन्तु की लम्बाई 15 से 62μ तक होती है। रक्षा हेतु मोटी तथा मजबूत पेलीकल (pellicle) इसके शरीर को ढकती है। इसी के कारण इसका आकार निश्चित रहता है। शरीर के लगभग मध्य में एक बड़ा तथा गोल केन्द्रक होता है। केन्द्रक के पीछे

तथा पिछले सिरे के पास में एक लम्बी छड़ के समान अथवा गोल (rod-shaped or spherical) पैरावेसल वॉडी (parabasal body) पायी जाती है। पैरावेसल वॉडी के सामने एक छोटा-सा कण होता है जिसे ब्लीफेरोप्लास्ट (blepharoplast) कहते हैं। उपर्युक्त दोनों रचनाएँ एक पतले धागे के समान राइजोप्लास्ट (rhizoplast) द्वारा जुड़ी रहती हैं। ब्लीफेरोप्लास्ट से एक मजबूत तथा लम्बा फ्लेजेलम (flagellum) निकलता है जो शरीर की लगभग पूरी लम्बाई के साथ होता हुआ अगले सिरे तक पहुँचता है। यह शरीर से अण्डयुलेटिंग झिल्ली (undulating membrane) द्वारा जुड़ा रहता है, किन्तु इसका कुछ भाग आगे की ओर स्वतन्त्र रहता है।

चित्र ७·१. ट्रिपेनोसोमा की रचना (Structure of *Trypanosoma*)
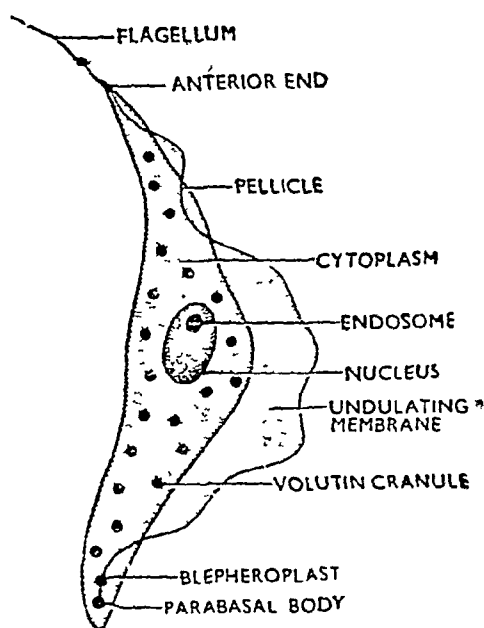
बड़े जन्तुओं में लचीले मायोनीमी (myonemes) भी स्पष्ट दिखाई
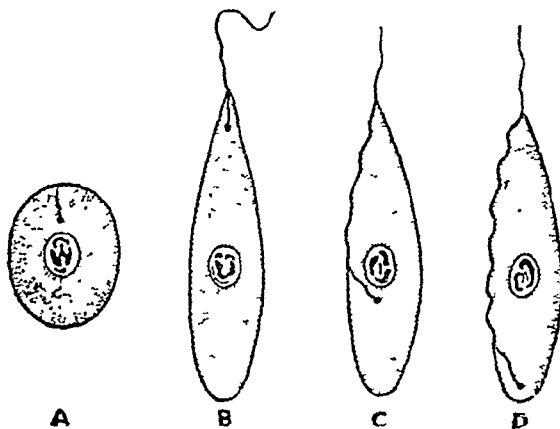
चित्र ७·२. ट्रिपेनोसोमा के जीवन इतिहास की विभिन्न अवस्थायें
A. लीशमानिया अवस्था, B. लेप्टोमोनाड अवस्था, C. क्रिथिडियल अवस्था
D. ट्रिपेनोसोम अवस्था

(Various forms of *Trypanosoma* : A Leishmania stage,
B. Leptomonad stage, C. Crithidial stage,
D. Trypanosome stage)

देते हैं, किन्तु छोटे ट्रिपेनोसोम्स में इनकी उपस्थिति का अनुमान उनके चलन द्वारा किया जा सकता है। इसमें कुचनशील रिक्तिका नहीं होती तथा कोशिकाद्रव्य में हरे रंग के वोलूटिन दाने (volutin granules) भी पाये जाते हैं।

ट्रिपेनोसोम्स बहुरूपी (polymorphic) जन्तु हैं। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में तथा जीवन-इतिहास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में इनका आकार तथा रचना भिन्न-भिन्न होती है। *ट्रिपेनोसोमा* के जीवन-इतिहास में इस प्रकार की चार अवस्थाएँ पायी जाती हैं :—

(*i*) **लीशमानिया** (Leishmania) अवस्था में इसका शरीर गोलाकार होता है। इसमें काइनेटोप्लास्ट (kinetoplast) केन्द्रक के आगे स्थित होता है, किन्तु फ्लेजेलम नहीं होता।

(*ii*) **लेप्टोमोनाड** (Leptomonad) अवस्था में शरीर लम्बा तथा आगे से चौड़ा होता है। काइनेटोप्लास्ट तथा फ्लेजेलम केन्द्रक के आगे तथा अगले सिरे के पास पाये जाते हैं।

(*iii*) **क्रिथिडियल** (Crithidial) अवस्था में काइनेटोप्लास्ट तथा फ्लेजेलम का प्रारम्भिक सिरा शरीर के लगभग मध्य में किन्तु केन्द्रक के आगे स्थित होता है।

(*iv*) **ट्रिपेनोसोम** (Trypanosome) अवस्था में काइनेटोप्लास्ट तथा फ्लेजेलम का प्रारम्भिक सिरा शरीर के पिछले भाग में स्थित होता है।

रोग उत्पन्न करना (Pathogenecity)—यद्यपि भिन्न-भिन्न पृष्ठवंशियों के रक्त में तथा रक्त चूसने वाले अपृष्ठवंशियों की आहारनाल में ट्रिपेनोसोम की कई जातियाँ पायी जाती हैं, किन्तु ये मनुष्य में तथा पालतू जन्तुओं में ही बीमारी उत्पन्न करती हैं। *ट्रिपेनोसोमा* की कुछ हानिकारक जातियाँ निम्नलिखित हैं :—

रोग का संक्रमण—मनुष्य में पाये जाने वाले ट्रिपेनोसोम *ग्लोसाइना* जाति की मक्खी (*Glossina palpalis*) द्वारा एक पोषक से दूसरे पोषक में ले जाये

जातियाँ (Species)	पृष्ठवंशी पोषक (Vertebrate host)	अपृष्ठवंशी पोषक (Invertebrate host)	बीमारी (Disease)
1. ट्रिपेनोसोमा गैमवियन्सी (T. gambiense)	मनुष्य	ग्लोसीना पाल्पेलिस मच्छर (*Glossina palpalis*)	निद्रा रोग (sleeping sickness)
2. ट्रि० क्रुजाई (T. cruzi)	मनुष्य	ट्रायटोमा जाति का खटमल	बूढ़े तथा बच्चों की 'चागाज' (chagas) नामक बीमारी
3. ट्रि० ब्रुसाई (T. bruci)	पालतू पशु	ग्लोसीना जाति के खटमल	घोड़ो तथा गाय-भैंसो की नागना (nagana) नामक बीमारी
4. ट्रि० इवेन्साई (T. evansi)	पालतू पशु	टेवेनस	घोड़ों तथा गाय-भैंसों में 'सुर्रा' (surra) नामक बीमारी
5. ट्रि० इक्वीपरडम (T. equiperdum)	घोड़ा	—	डूरीन (dourine)

जाते हैं। जब यह मक्खी किसी संक्रमित मनुष्य (पोषक) को चूसती है तो रक्त के साथ ट्रिपेनोसोम भी मक्खी की आहार-नाल में पहुँच जाते हैं। आहार-नाल में ये अपने जीवन-इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं में गुजरते हैं। क्राइथीडियल अवस्था (crithidial stage) से होते हुए, ये लार-ग्रन्थियों में **मेटासाइक्लिक ट्रिपेनोसोम्स** (metacyclic trypanosomes) बनाते हैं जो रक्त में पाये जाने वाले किन्तु नये मनुष्य पोषक पर अतिक्रमण करते हैं, अत: यही परजीवी की संक्रामक अवस्था होती है। मेटासाइक्लिक ट्रिपेनोसोम बनने से पहले मक्खी संक्रामक नहीं होती। मक्खी के काटने पर परजीवी संक्रामक अवस्था में पोषक के रक्त तथा लिम्फ ग्रन्थियों में पहुँच जाते हैं। धीरे-धीरे ये मस्तिष्क तथा केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र में भी पहुँच जाते हैं। परजीवी जब रक्त में रहता है तो गेम्बियन बुखार (gambien fever) उत्पन्न करता है। लिम्फ ग्रन्थियाँ बढ जाती हैं। रोगी रक्त की कमी के कारण पीला दिखाई देने लगता है। रोग की अन्तिम अवस्था में रोगी बेहोश रहता है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है।
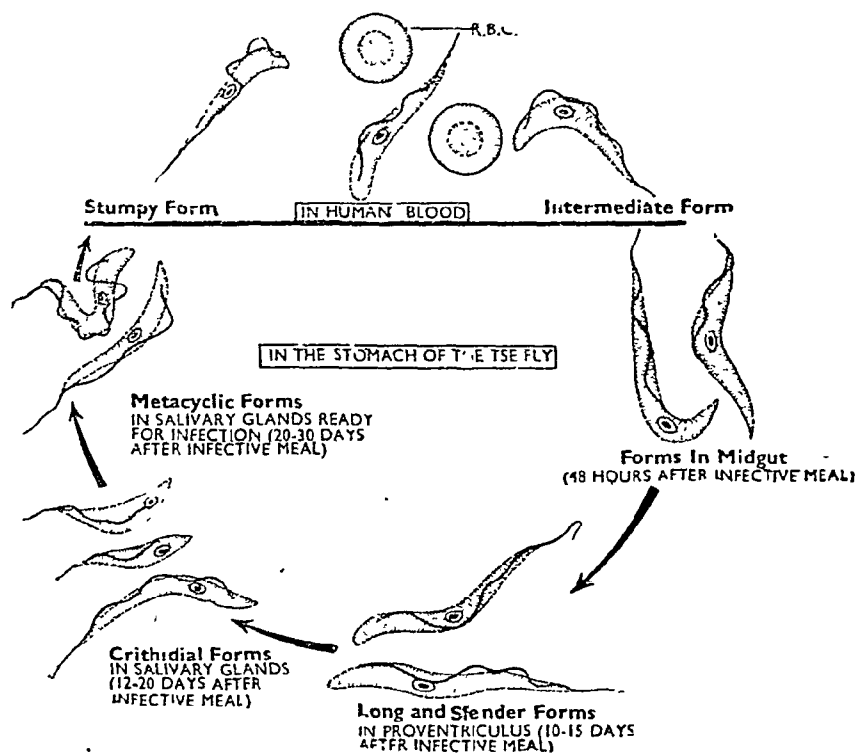
चित्र ७·३. ट्रिपेनोसोमा गैम्बियन्स का जीवन-इतिहास (Life-history of *Trypanosoma gambiense*)

रोग की उत्पत्ति (Pathogenecity)

ट्रिपेनोसोम द्वारा उत्पन्न होने वाली बीमारी के कारणों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकाश डाला गया है। यह माना जाता है कि ट्रिपेनोसोम की उपस्थिति के कारण रक्त में शक्कर की मात्रा कम हो जाती है तथा शक्कर के आक्सीकरण से लेक्टिक एसिड (lactic acid) बनता है जो पोषक के श्वसन में बाधा उत्पन्न करता

है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि पल्मोनरी कोशिकाओं के छिद्र बन्द हो जाते है जिससे रोगी की मृत्यु हो जाती है।

रोक-थाम—रोग को फैलने से रोकने के लिए परजीवी के द्वितीयक पोषक (secondary host) को नष्ट करना आवश्यक है। अतः—

1. नदी के किनारे पायी जाने वाली इन मक्खियों से बचने के लिए नदी से दूर रहना चाहिये।
2. नदी के किनारों की झाड़ियों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिये।
3. D.D.T. पाउडर को घरों में तथा झाड़ियों पर छिड़कना चाहिये।

प्रश्न 17. ट्रिपेनोसोम के जीवन-वृत्त का वर्णन कीजिये और उसे वर्गीकरण विन्यास में उपयुक्त स्थान दीजिये।

Give an account of the life-history of *Trypanosome* and place it in the scheme of classification. *(Agra 1971)*

कृपया प्रश्न 16 देखिये।

पैरामीसियम
(Paramecium)

	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
	—	सिलियोफोरा (*Ciliophora*)
क्लास	—	सिलिएटा (*Ciliata*)
आर्डर	—	होलोट्राइका (*Holotricha*)
जीनस	—	पैरामीसियम (*Paramecium*)

प्रश्न 18. पैरामीसियम की संरचना का वर्णन कीजिये।

Describe the structure of *Paramecium*.

(*Rajasthan 1970 ; Kanpur 70 ; Lucknow 70*)

पैरामीसियम की संरचना एवम् कार्यिकी का वर्णन कीजिये। प्रयोग के लिए आप कहाँ से पैरामीसियम एकत्रित करेंगे ?

Give an account of the structure and physiology of *Paramecium*. How would you collect paramecia for the purpose of demonstration ? (*Allahabad 1952*)

पैरामीसियम क्लास सिलिएटा का सर्वसाधारण जन्तु है जो तालावों, पोखरों, पानी के गड्ढों इत्यादि के रुके हुए उस पानी में पाया जाता है जिसमें क्षीण होते हुए कार्वनिक पदार्थ बहुतायत से पाये जाते है, किन्तु कुछ जातियाँ खारे या समुद्री पानी में भी रहती हैं।

संरचना (Structure)

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—*पैरामीसियम* (Paramecium : Gr., *paramekosa* or *parmeces*, oblong) लम्बा, सिगार के आकार का या स्लीपर के आकार का (cigar-shaped or slipper-shaped) जन्तु है। इसका शरीर असममित (asymmetrical) होता है। इसका **मुखतल** (oral surface) या **अधर तल** (ventral surface) चपटा तथा **अपमुखीय तल** (aboral surface) या **पृष्ठ तल** (dorsal surface) उत्तल (convex) होता है। अगला सिरा (anterior end) चपटा या लगभग गोल होता है तथा पिछला सिरा मोटा, नुकीला तथा शकु के आकार का होता है। विना सूक्ष्मदर्शी के पैरामीसियम एक सफेद या स्लेटी रंग के विन्दु के समान दिखाई देता है। इसकी लम्बाई विभिन्न जातियों मे अलग-अलग होती है तथा 70μ से 300μ के वीच पायी जाती है।

वाह्य रचना (External Structure)

कुछ अंगको के वन जाने से *पैरामीसियम* की रचना अपेक्षाकृत जटिल होती है। ये रचनाएँ निम्न है :—

1. मुखझिर्री तथा सम्वन्धित रचनाएँ (Oral groove and associated structures)—मुखतल या अधर तल पर एक चौडे तथा छिछले गर्त या अवनमन
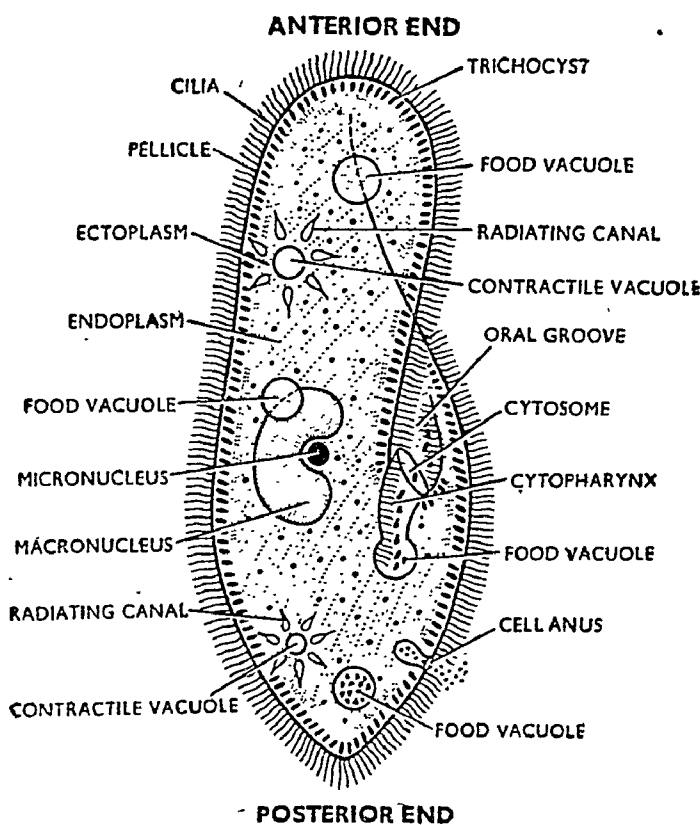
चित्र ८·१. पैरामीसियम (*Paramecium*) की संरचना

(broad and shallow depression) के रूप में मुखझिर्री होती है जो तिरछी होकर शरीर के अगले छोर से पीछे की ओर बढ़ती है और शरीर के मध्य से कुछ पीछे हटकर चौड़ी हो जाती हैं। इस चौड़े भाग का छिद्र **कोशिकामुख** (cytostome) कहलाता है। यह 'S' के आकार की चौड़ी मुड़ी हुई फनल में खुलता है जो **कोशिकाग्रसनी** (cytopharynx) कहलाती है। यह भी तिरछी दिशा में पीछे की ओर सँकरे **गले** (oesophagus or gullet) में खुलती है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार, गले के पिछले सिरे से एक बन्द थैले के समान (blind, pouch-like) **ईसोफेजियल प्रवर्ध** (oesophageal process) निकलता है, किन्तु इसकी उपस्थिति अभी निश्चित नहीं है।

2. साइटोपाइग या गुदा मार्ग (Cytopyge or anal spot)—यह भी शरीर के अधर तल व मुख पर लगभग पीछे स्थित होता है, किन्तु यह केवल जीवित अवस्था में ही देखा जा सकता है जबकि इसके अपच पदार्थ बाहर निकल रहे हों।

3. रोमक विन्यास या सिलियेशन (Ciliation)—*पैरामीसियम* के शरीर की समस्त सतह असंख्य छोटे-छोटे बालों के समान उपांगों द्वारा समान रूप से ढकी रहती है। ये छोटे-छोटे प्रवर्ध कोशिकाद्रव्य के बने होते हैं तथा **रोमक** या **पक्ष्म** (cilia : L., *cilium*, an eyelash) कहलाते हैं। ये पेलीकल में बने षट्भुजाकार

प्रकोष्ठों (hexagonal facets) के केन्द्रकों से वाहर निकले रहते हैं तथा समान्तर पंक्तियाँ वनाते हैं। सभी सीलिया या रोमक एक ही लम्वाई के होते हैं, किन्तु पिछले सिरे के कुछ रोमक अपेक्षाकृत लम्वे होते हैं तथा पुच्छक समूह (caudal tuft) वनाते हैं। प्रत्येक रोमक एक गोल आधार-कणिका (basal granule) से निकलता है जो एक्टोप्लाज्म में स्थित होता है। प्रत्येक रोमक में 7 से 11 तक तन्तुक (fibrils)
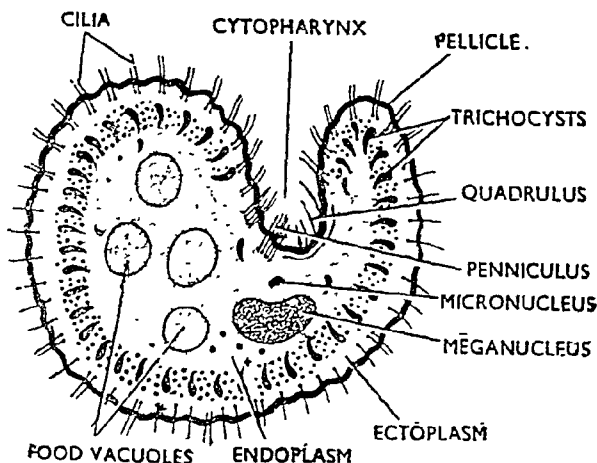
चित्र ८·२. पैरामीसियम की कोशिकाग्रसनी के अनुप्रस्थ काट का चित्रीय निरूपण (T.S. Cytopharynx of *Paramecium*)

पाये जाते हैं जो **एक्जोनीमी** (axoneme) वनाते हैं। इसके चारों ओर एक पतली झिल्ली होती है जिसे **कोशिकाद्रव्य झिल्ली** (cytoplasmic membrane) कहते हैं। कोशिकाग्रसनी में भी रोमकों का विन्यास जटिल होता है। इसकी पृष्ठ दीवार (dorsal wall) पर ब्रुश के समान शक्तिशाली रोमकों की चार पंक्तियाँ होती हैं, ये **क्वाड्रुलस** (quadrulus) के नाम से जाने जाते हैं। इसी प्रकार ग्रसनी की वाम दीवार (left wall) पर रोमकों की आठ पंक्तियाँ होती हैं जो दो समूहों में बँधी रहती हैं। ये **पैनीक्युलस** (penniculus) कहलाते हैं। ग्रसनी की दाहिनी दीवार पर सिलिया नहीं होते।

रोमक चलन तथा भोजन पकड़ने में सहायता करते हैं तथा स्पर्श अंगों की भाँति कार्य करते हैं।

आन्तरिक रचना (Internal Structure)

पेलीकल (Pellicle)—शरीर का वाह्य आवरण क्युटिकल की वनी पतली, मजवूत किन्तु लचीली **पेलीकल** (pellicle) या **पेरिप्लास्ट** (periplast) का होता है जो शरीर को निश्चित आकार प्रदान करती है। यह वाह्यद्रव्य द्वारा वनती है। पेलीकल असंख्य वहुभुजीय या षट्भुजीय कोष्ठों (polygonal or hexagonal facets) में विभाजित रहती है। ये कोष्ठ तिरछे उभारों (oblique ridges) के एक-दूसरे को काटने पर वनते हैं। ये धारियाँ या उभार महीन खाइयों से वने होते हैं। प्रत्येक षट्भुजीय कोष्ठ के मध्य में एक छिद्र होता है जिसमें से एक रोमक वाहर निकला रहता है तथा प्रत्येक उभार पर ट्राइकोसिस्ट खुलते हैं।

कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)—कोशिकाद्रव्य में दो स्तर होते हैं :—

(*i*) वाह्यद्रव्य (Ectoplasm or cortex)—यह कोशिकाद्रव्य का बाहरी, मजबूत तथा घना स्तर है जो पेलीकल के नीचे स्थित होता है।

(*ii*) आन्तरद्रव्य (Endoplasm or medulla)—यह कोशिकाद्रव्य का भीतर वाला भाग है जो अपेक्षाकृत पतला, अर्धतरल तथा दानेदार होता है। यह मधुमक्खी के छत्ते के समान (alveolar) प्रतीत होता है।

वाह्यद्रव्य में पायी जाने वाली रचनाएँ (Ectoplasmic Inclusions)

1. आधार-कणिकाएँ (Basal granules)—ये लगभग गोल कणिकाएँ हैं जो वाह्यद्रव्य में ठीक पेलीकल के नीचे स्थित होती हैं। प्रत्येक आधार-कणिका एक **गतिज ऊर्जा केन्द्र या काइनेटोसोम** (kinetosome) को प्रदर्शित करती है तथा इससे एक सिलिया या रोमक निकलता है।
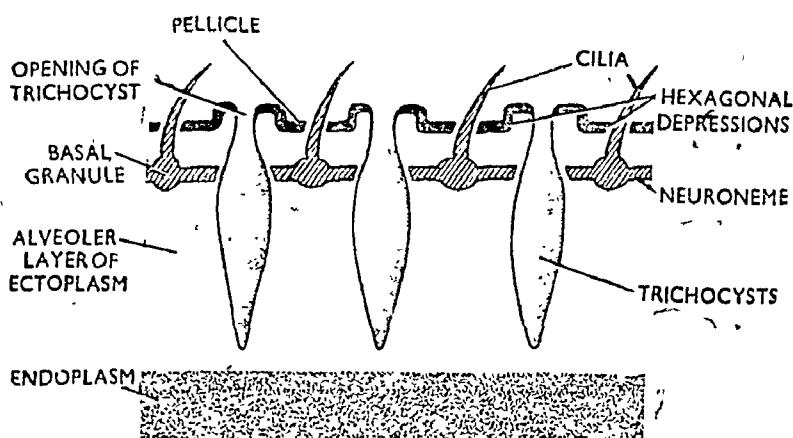
चित्र ८·३. पैरामीसियम के वाह्यद्रव्य की खड़ी काट का चित्रीय निरूपण
(L.S. through ectoplasmic region of *Paramecium*)

2. न्यूरोमोटर संस्थान (Neuromotor system)—समस्त आधार-कणिकाएँ एक-दूसरे से लम्बवत् तन्तुओं (longitudinal fibrils) या **मायोनीमी** (myonemes) द्वारा जुड़ी रहती हैं। ये सूत्र या तन्तु अत्यन्त लचीले होते हैं तथा रोमकों की गति का नियन्त्रण करते हैं। शरीर के समस्त मायोनीमी या न्यूरोनीमी एक गहरे रंग की **द्विखण्डीय काय** (bilobed body) पर एकत्रित होते हैं। यह काय **मोटोरियम** (motorium) कहलाती है तथा कोशिकाग्रसनी (cytopharynx) के समीप स्थित होती है। आधार कणिकाएँ मायोनीमी तथा मोटोरियम से मिल कर **न्यूरोमोटर संस्थान** (neuromotor system) बनाती हैं। ये शरीर को आकुंचन क्षमता, संवाहकता तथा लोच (contractility, conductivity and elasticity) प्रदान करती हैं।

3. ट्राइकोसिस्ट (Trichocyst)—ट्राइकोसिस्ट वाह्यद्रव्य में पाये जाने वाले छोटे, तर्कुाकार, थैले के सामान खाली स्थान (cavities) हैं जिनमें एक प्रकार का वर्तनशील अर्ध-द्रवीय पदार्थ (refractile semiliquid substance) भरा रहता है। ये शरीर की सतह के लम्बरूप स्थित होते हैं तथा प्रत्येक दो ट्राइकोसिस्ट के बीच में एक आधारकणिका स्थित होती है। ट्राइकोसिस्ट पेलीकल के उभारों

में स्थित छिद्रों द्वारा वाहर को खुलते हैं। उत्तेजित किये जाने पर ये अपने पदार्थ को लम्बे धागों के रूप में वाहर निकाल देते हैं। ट्राइकोसिस्ट आत्म-रक्षा (offence and defence) के अंग माने जाते हैं, किन्तु आधुनिक मत के अनुसार ये जन्तु के आवार से चिपकने में सहायक होते हैं।

आन्तर द्रव्य में पायी जाने वाली रचनाएँ (Endoplasmic Inclusions)

1. केन्द्रक साधित्र (Nuclear apparatus)—पैरामीसियम में एक बड़ा वृक्काकार (kidney-shaped) **गुरुकेन्द्रक** (meganucleus or macronucleus) होता है जो कोशिकामुख (cytostome) के समीप स्थित होता है। गुरुकेन्द्रक के अवनमन भाग (concavity) में छोटा तथा गोलाकार **लघुकेन्द्रक** (micronucleus) होता है। दोनों केन्द्रक एण्डोप्लाज्म में स्थित रहते हैं। गुरुकेन्द्रक पर केन्द्रक-कला नहीं होती तथा यह ट्रोफोक्रोमेटिन (trophochromatin) का वना होता है, अतः यह शरीर की उपापचय क्रियाओं (metabolic activities) का नियमन करता है और **ट्रोफोन्युक्लियस** (trophonucleus) भी कहलाता है। लघुकेन्द्रक (micronucleus) पर निश्चित केन्द्रक-कला होती है तथा यह जन्तु की जनन क्रियाओं पर नियन्त्रण रखता है।

2. कुञ्चनशील रिक्तिकाएँ (Contractile vacuoles)—आन्तरद्रव्य में शरीर के दोनों सिरों पर एक-एक कुञ्चनशील रिक्तिका स्थित होती है। प्रत्येक कुञ्चनशील रिक्तिका एक वड़ी, लगभग गोल तथा अत्यन्त लचीली पानी से भरी रचना है जो लम्बी, सँकरी तथा तर्क्वाकार नलियों से घिरी रहती है। इन नलिकाओं की संख्या 6 से 10 तक होती है तथा ये रेडियेटिंग कैनाल (radiating canals) कहलाती हैं। ये नलिकाएँ शरीर के आन्तरद्रव्य से पानी इकट्ठा करके कुञ्चनशील रिक्तिकाओं में डालती हैं जो क्रमशः वाहर की ओर खुलकर जल को शरीर से वाहर निकाल देती हैं।

3. खाद्यरिक्तिकाएँ (Food vacuoles)—पैरामीसियम के आन्तरद्रव्य में वहुत-सी विभिन्न आकार तथा परिमाण की खाद्यरिक्तिकाएँ दिखाई देती हैं। ये कोशिकाद्रव्य की धारा गति के कारण शरीर में घूमती रहती हैं। प्रत्येक खाद्यरिक्तिका आन्तरद्रव्य में वन्द भोजन का एक टुकड़ा है जिसके साथ पानी की एक वूंद भी रहती है। इनका आकार तथा परिमाण भोजन के टुकड़े के आकार तथा परिमाण पर निर्भर करता है।

कायिकी (Physiology)

चलन (Locomotion)—पैरामीसियम में निम्न दो प्रकार से चलन होता है :—

1. पक्ष्मी गति (Ciliary movement)—पैरामीसियम में पक्ष्म या रोमक (cilia) ही मुख्य चलन अंग हैं। ये पतले, वाल के समान जीव-द्रव्यक प्रवर्ध (hair-like protoplasmic processes) हैं जो समस्त शरीर को ढके रहते हैं। अधिकतर पक्ष्म पीछे की ओर झुके हो सकते हैं तथा इनकी गति से जन्तु आगे की ओर वढ़ता है, किन्तु ये आगे की ओर भी झुके हो सकते हैं। उस दशा में इनकी गति से जन्तु पीछे को चलता है। शरीर के समस्त रोमक या पक्ष्म एक साथ गति नहीं कर सकते तथा गति करने के लिए स्वतन्त्र भी नहीं होते। एक लम्बी पंक्ति (longitudinal row) में लगे हुए रोमक इस प्रकार दोलन करते हैं कि आगे वाला रोमक अपने

पीछे वाले रोमक से कुछ आगे होता है, अतः एक लम्बी पंक्ति के रोमक आगे से पीछे की ओर एक के बाद एक गति करते है। यह गति मेटाक्रोनस गति (metachronous rhythm) कहलाती है। इसके विपरीत एक अनुप्रस्थ पंक्ति के सभी

चित्र ८·४. एक पंक्ति के रोमको की मेटाक्रोनस गति
(Metachronous movement of cilia of *Paramecium*)

रोमक एक साथ गति करते है (synchronously)। यह गति सिनक्रोनस रिदम (synchronous rhythm) कहलाती है। रोमको की गति न्यूरोमोटर तन्त्र द्वारा नियन्त्रित रहती है।

रोमक के दोलन (oscillation) में दो आघात या स्ट्रोक (strokes) होते है :—

(*i*) **प्रभावी आघात** (Effective stroke)—इसमें रोमक कुछ झुका हुआ किन्तु दृढ होता है जिससे कि यह पानी पर पतवार की तरह आघात करता है।

(*ii*) **उपलब्धि आघात** (Recovery-stroke)—इस अवस्था में रोमक पूर्णतया झुका रहता है जिससे वह पानी की लहर के साथ कम से कम प्रतिरोध उत्पन्न करे।

चित्र ८·५. पक्ष्म गति (Ciliary movement) की अवस्थाएँ :
(अ) प्रभावी अघात (effective stroke)
(ब) उपलब्धि आघात (recovery stroke)

रोमकों की गति सीधी पंक्ति में नहीं होती। यह थोड़ी दाहिनी ओर को होती है, अतः *पैरामीसियम* बायी ओर को घूमता है तथा सर्पिल मार्ग (spiral path) में आगे बढ़ता है। साथ ही मुखझिर्री (oral groove) के रोमक शरीर के अन्य रोमकों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से गति करते है।
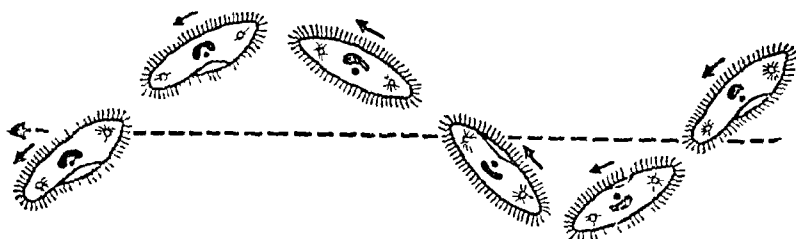
चित्र ८·६. पैरामीसियम में तैरते समय का पथ
(Path of paramecium during swimming)

2. शारीरिक संकुचन या मेटाबोली (*Body contraction or metaboly*)—*पैरामीसियम* शरीर को सिकोड़ कर अपने से कम चौड़े स्थानों में से जा सकता है।

पोषण (Nutrition)

पैरामीशियम मे जन्तु-सदृश (holozoic) विधि द्वारा पोषण होता है। यह

निम्न पदों में पूरा होता है :—

(*i*) **भोजन तथा उसको ग्रहण करना** (Food and its ingestion)—पैरामीसियम के भोजन में अधिकतर बैक्टीरिया, काई, डायेटम्स (diatoms), यीस्ट तथा अन्य जीवाणु आते हैं। भोजन एक निश्चित स्थान पर कोशिकामुख द्वारा कोशिका में पहुँचता है। मुख-झिर्री के रोमकों की अविरत गति के फलस्वरूप पानी की अविच्छिन्न धारा उत्पन्न होती है जो भोजन के कणों को कोशिकामुख की ओर ले जाती है जो यहाँ से कोशिकाग्रसनी में पहुँचते हैं। कोशिकाग्रसनी में ये कण पेनिक्युलस तथा क्वाड्रूलस रोमकों द्वारा भोजन की एक गोल गेंद के रूप में एकत्रित कर दिये जाते हैं। यह पिण्ड ग्रसनी के पिछले सिरे से एक खाद्यरिक्तिका के रूप में अलग होकर कोशिकाद्रव्य में पहुँच जाता है।

(*ii*) **पाचन तथा स्वांगीकरण** (Digestion and assimilation)—इस प्रकार की बनी हुई खाद्य-रिक्तिकाएँ कोशिकाद्रव्य की धारागति के कारण एक निश्चित पथ पर समस्त शरीर में घूमती हैं। खाद्यरिक्तिका की इस गति को **साइक्लोसिस** (cyclosis) कहते हैं। कोशिका-ग्रसनी से अलग होने पर खाद्य-रिक्तिका पहले शरीर के पिछले सिरे की ओर ले जायी जाती है। इसके पश्चात् यह पृष्ठतल के साथ आगे की ओर ले जायी जाती है जहाँ से यह पुनः अधर तल के साथ मुख की ओर चलती है।

भोजन का पाचन खाद्य-रिक्तिका के भीतर होता है तथा आन्तर-द्रव्य द्वारा पाचन-रस खाद्य-रिक्तिका में डाले जाते हैं। खाद्य-रिक्तिका का माध्यम पहले अम्लीय किन्तु बाद में क्षारीय हो जाता है। पैरामीसियम में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा का पाचन होता है। पचा हुआ भोजन जीवद्रव्य में मिल जाता है।
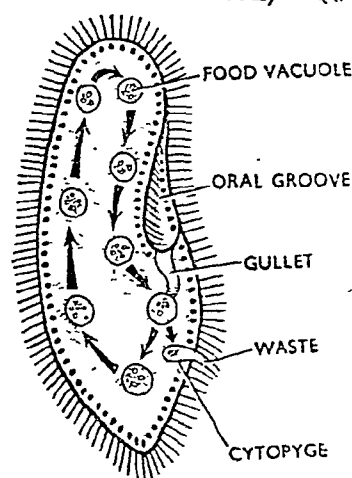
चित्र ८.९ पैरामीसियम की खाद्य-रिक्तिका का पथ तथा साइक्लोसिस (Path of food vacuole and cyclosis)

(*ii*) **बहिष्करण** (Egestion)—अपच खाद्य पदार्थ शरीर के पिछले भाग में स्थित निश्चित छिद्र गुदा-मार्ग (anal spot) से बाहर निकाल दिया जाता है।

श्वसन (Respiration)

रिक्तिका में घुली आक्सीजन विसरण द्वारा शरीर में पहुँचती है तथा CO_2 उसी प्रकार सतह से बाहर की ओर विसरित हो जाती है।

उत्सर्जन (Excretion)

शरीर की उपापचय क्रियाओं के फलस्वरूप बने हुए हानिकारक पदार्थ जैसे यूरिया, यूरिक अम्ल तथा अमोनिया इत्यादि शरीर की सतह से विसरण द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

जल-नियन्त्रण (Osmoregulation)

शरीर के भीतर पानी की मात्रा का नियन्त्रण दो कुन्चनशील रिक्तिकाओं द्वारा किया जाता है जो शरीर के दोनों सिरों पर पायी जाती हैं। प्रत्येक कुन्चनशील रिक्तिका के चारों ओर जीवद्रव्य में बहुत-सी कुल्यायें (canals) फैली रहती हैं

जो कुञ्चनशील रिक्तिका मे खुलती है। जीवद्रव्य का आवश्यकता से अधिक पानी रेडयेटिंग कुल्याओं (canals) द्वारा एकत्रित किया जाता है और अन्त में कुञ्चनशील रिक्तिका मे डाल दिया जाता है। कुञ्चनशील रिक्तिका पानी एकत्रित करके आकार मे बढ़ती है और अन्त मे शरीर की सतह पर फट जाती है जिससे उसका सारा पानी शरीर से बाहर निकल जाता है। इस पानी मे कुछ मात्रा में CO_2 तथा नाइट्रोजन के यौगिक घुले रहते हैं, अतः कुञ्चनशील रिक्तिकाएँ उत्सर्जन मे भी सहायक होती है।

उत्तेजनशीलता तथा संवेदनशीलता (Irritability and Sensitivity)

पैरामीसियम विभिन्न उत्तेजनाओ के प्रति अत्यन्त सवेदनशील तथा इसकी प्रतिक्रियाएँ अधिक सुनिश्चित तथा स्पष्ट होती हैं तथा हानिकारक उत्तेजनाओं के लिए इसकी प्रतिक्रियाएँ विपरीत होती है तथा हानिकारक उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया अनुकूल दिशा मे होती है। यदि *पैरामीसियम* के अगले सिरे को सुई की नोक से छू दिया जाये या उस पर कोई तेज अम्ल या क्षार डाला जाये तो यह उत्तेजना से दूर भागने लगता है। इसी प्रकार तेज प्रकाश, अल्ट्रावायलेट किरणों (ultraviolet rays) तथा ऊँचे तापक्रम से भी यह दूर भागता है। पानी की धाराओ तथा हल्की विद्युतधाराओ की ओर यह अग्रसित होता है।

जनन (Reproduction)

पैरामीसियम में अलैगिक तथा लैंगिक दोनों प्रकार का जनन होता है। अलैगिक जनन **द्विविभाजन** विधि द्वारा तथा लैंगिक जनन **संयुग्मन** (conjugation) द्वारा होना है। इसके अतिरिक्त इसमे कई प्रकार के केन्द्रक पुनर्गठन (nuclear reorganisations) भी पाये जाते है। ये **एण्डोमिक्सिस, हेमीमिक्सिस, साइटोगैमी** तथा **ऑटोगैमी** हैं।

1. द्विविभाजन (Binary fission)—पर्यावरण की अनुकूल परिस्थितियो में *पैरामीसियम* पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के पश्चात् द्विविभाजन विधि द्वारा अनुप्रस्थ दिशा मे दो
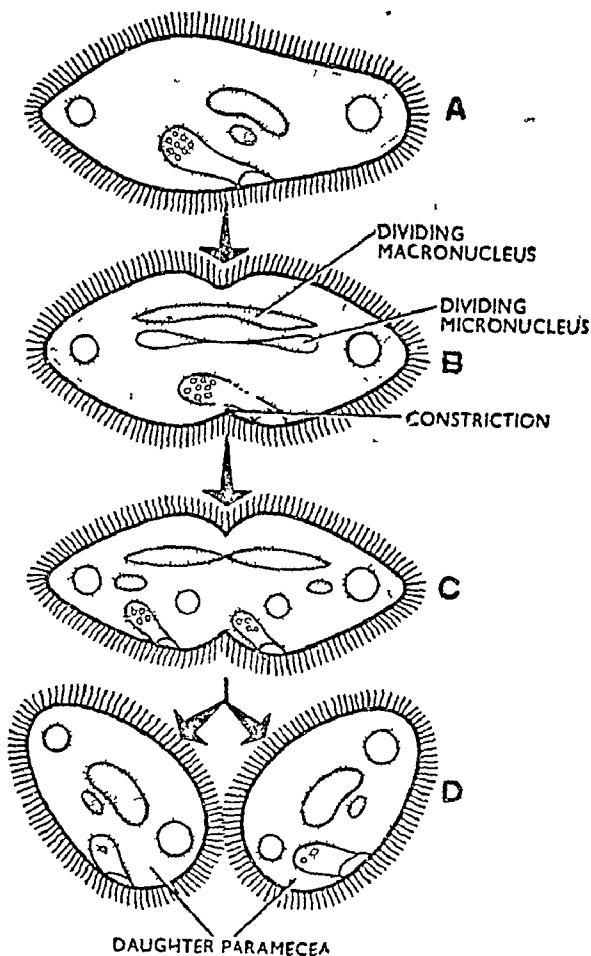
चित्र ८·९. पैरामीसियम मे द्विविभाजन (Binary fission in *Paramecium*

भागों में बँट जाता है। इनका गुरुकेन्द्रक लम्बा होकर असमसूत्रण (amitosis) विधि द्वारा दो भागों में बँट जाता है तथा लघुकेन्द्रक समसूत्रण विधि से दो-दो केन्द्रक बना लेता है। दोनों संतति केन्द्रक शरीर के अलग-अलग सिरों की ओर बढ़ते हैं। केन्द्रक विभाजन के तुरन्त बाद ही शरीर के मध्य में एक अनुप्रस्थ खाई बननी प्रारम्भ होती है जो धीरे-धीरे गहरी होकर शरीर को दो बराबर भागों में बाँट देती है। इस प्रकार दो संतति *पैरामीसियम* बन जाती हैं। पुरानी कोशिका-ग्रसनी से एक ओर कोशिका-ग्रसनी बन जाती है जो नयी कोशिका में पहुँच जाती है। मुख-झिर्री पुरानी कोशिका-ग्रसनी के साथ रह जाती है तथा नयी कोशिका-ग्रसनी अपने लिए मुख-झिर्री बना लेती है। प्रत्येक पुत्री *पैरामीसियम* में एक-एक कुञ्चनशील रिक्तिका बन जाती है। इस प्रकार *पैरामीसियम* का बनना पूर्ण हो जाता है जो स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगता है।

2. संयुग्मन (Conjugation)—द्विविभाजन विधि द्वारा वर्धन क्रिया के बीच कभी-कभी **संयुग्मन** (conjugation) भी देखा जाता है। **संयुग्मन** एक ही जाति के किन्तु दो भिन्न-भिन्न मैटिंग टाइप (mating type) के दो जन्तुओं के बीच अस्थायी मिलन है जिसके फलस्वरूप दोनों में केन्द्रक पदार्थ (nuclear material) का आदान-प्रदान (exchange) होता है। इस क्रिया को निम्न पदों में बाँटा जा सकता है :—

(*i*) संयुग्मन के लिए तैयार दोनों पैरामीसिया अपने मुखतल द्वारा एक-दूसरे से चिपक जाते हैं तथा उनके बीच की पेलीकल एवम् बाह्य-द्रव्य नष्ट हो जाते हैं जिससे दोनों जन्तुओं के कोशिकाद्रव्य में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

(*ii*) प्रत्येक जन्तु में गुरुकेन्द्रक नष्ट होने लगता है तथा लघुकेन्द्रक दो बार विभाजित होता है जिससे चार लघुकेन्द्रक बन जाते हैं।

(*iii*) इन नये बने चार केन्द्रकों में से तीन नष्ट हो जाते हैं।

(*iv*) प्रत्येक जन्तु में बचा हुआ एक लघुकेन्द्रक असमान रूप से दो में बँट जाता है। इस प्रकार बना छोटा, चल **नर पूर्वकेन्द्रक** (small, migratory male pronucleus) होता है तथा बड़ा अचल या स्थिर **मादा पूर्वकेन्द्रक** (stationary female pronucleus) कहलाता है।

(*v*) एक संयुग्मी (conjugant) का नर पूर्वकेन्द्रक दूसरे जन्तु में पहुँच कर उसके मादा पूर्वकेन्द्रक से समेकित हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक संयुग्मी में एक-एक संयुग्मज केन्द्रक या सिनकेरियन (synkaryon) बन जाता है।

(*vi*) अब दोनों सयुग्मी अलग हो जाते हैं तथा पूर्वसयुग्मी (exconjugants) कहलाते हैं।

(*vii*) प्रत्येक पूर्वसंयुग्मी में युग्मनज केन्द्रक तीन बार विभाजित होता है। फलस्वरूप 8 केन्द्रक बनते हैं। इनमें चार लघु तथा चार गुरु केन्द्रक बन जाते हैं।

(*viii*) चार लघु केन्द्रकों में से तीन नष्ट हो जाते हैं।

(*ix*) प्रत्येक पूर्वसंयुग्मी में बाकी बचा एक लघुकेन्द्रक दो बार बँटता है और उसी के साथ-साथ पूर्वसंयुग्मी का शरीर भी दो बार विभाजित होता है। फलस्वरूप एक पूर्वसंयुग्मी पैरामीसियम से चार संतति पैरामीसिया बन जाती हैं।

संयुग्मन की विशेषताएँ (Special Features of Conjugation)

(*i*) संयुग्मन में भाग लेने वाले पैरामीसिया **संयुग्मी** (conjugants) कहलाते हैं जो साधारण पैरामीसियम से भिन्न होते हैं। ये अपेक्षाकृत छोटे तथा चिपचिपे

होते हैं।

(*ii*) संयुग्मन के समय ये सक्रियता से तैरते हैं।

(*iii*) संयुग्मन एक ही जाति के दो आकार तथा रचना में समान किन्तु भिन्न-भिन्न स्ट्रेन (strains) वाले जन्तुओं में होता है।
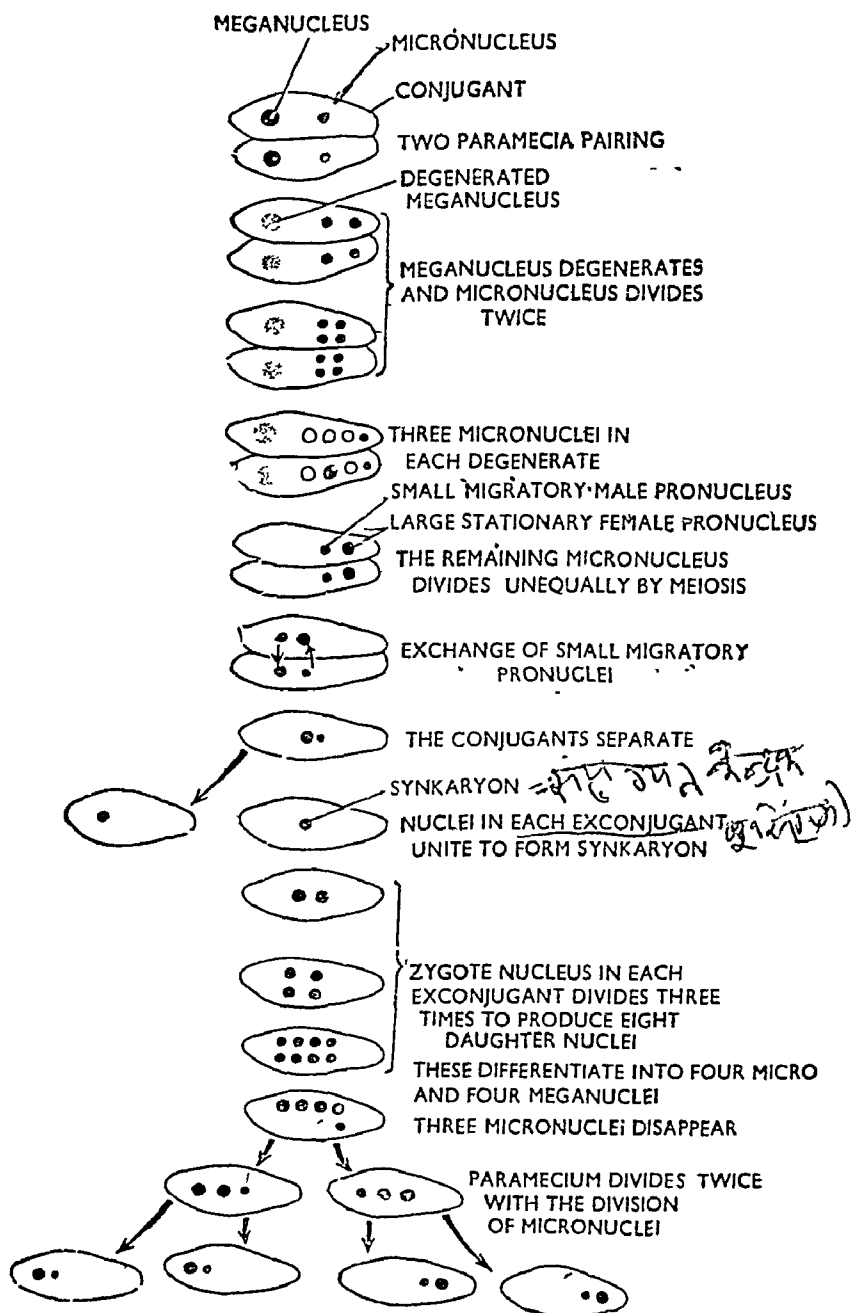
चित्र ८·१०. पैरामीशियम कॉडेटम में संयुग्मन (Conjugation in *P. caudatum*)

(*iv*) संयुग्मन में दो जन्तुओं का अस्थायी समेकन (temporary union of two entire individuals) होता है।

(*v*) संयुग्मन में दोनों जन्तुओं के केन्द्रक पदार्थों का आदान-प्रदान होता है जिसके पश्चात् संयुग्मी अलग हो जाते हैं।

(*vi*) इसके पश्चात् प्रत्येक पूर्वसंयुग्मी अलैंगिक विधि द्वारा संख्या में बढ़ते हैं।

संयुग्मन का महत्त्व (Significance of conjugation)—संयुग्मन केन्द्रकीय परिवर्तन तथा केन्द्रकीय पुनर्गठन (nuclear change and nuclear regorganisation) की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जो अलैंगिक जनन के बीच में कभी-कभी घटित होती है। यद्यपि यह कुछ सीमा तक दूसरे जन्तुओं के लैंगिक जनन के समान है किन्तु इसके अन्त में 8 संतति पैरामीसिया बनती है, अतः इसमें लैंगिक परिवर्तनों के साथ ही अलैंगिक गुणन भी होता है। लैंगिक प्रक्रिया युग्मक केन्द्रों के समेकन के साथ ही समाप्त हो जाती है। यह समेकन जन्तु को अलैंगिक विधि से वृद्धि करने की शक्ति प्रदान करता है। अतः संयुग्मन जनन में एक उपघटना (episode) है जिससे जन्तु को निम्न लाभ हैं :—

(*i*) **पुनर्नवीकरण या कायाकल्प** (Rejuvenation)—अलैंगिक विधि द्वारा बारम्बार विभाजित होने पर जन्तु की शक्ति का ह्रास होने लगता है। उसकी क्रियाशीलता (vigour) कम हो जाती है तथा उसकी विभाजन-क्षमता (rate of fission) घटने लगती है। अन्त में जन्तु की मृत्यु भी हो सकती है। संयुग्मन के फलस्वरूप जन्तु को खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त हो जाती है तथा उसकी नष्ट हुई क्रियाशीलता का पुनर्नवीकरण हो जाता है। इस प्रकार संयुग्मन जन्तु की जाति का ह्रास होने से बचाता है।

(*ii*) **केन्द्रकीय पुनर्गठन** (Nuclear reorganization)—जन्तु का गुरुकेन्द्रक ट्रोफोक्रोमेटिन का बना होता है जो शरीर की उपापचय क्रियाओं (metabolic activities) को नियन्त्रित करता है। कुछ समय पश्चात् तथा बार-बार विभाजित होने पर इसकी कार्य-क्षमता कम हो जाती है, अतः यह पूर्ण क्षमता से शारीरिक क्रियाओं का नियमन नहीं कर पाता। फलस्वरूप जन्तु की शारीरिक क्रियाओं की गति धीरे-धीरे कम होने लगती है और ऐसा प्रतीत होता है कि जन्तु की मृत्यु समीप है। संयुग्मन के फलस्वरूप पुराना तथा क्षीण होता हुआ गुरुकेन्द्रक नष्ट हो जाता है और उसके स्थान पर नया तथा पूर्ण क्षमता वाला केन्द्रक बन जाता है। इस प्रकार संयुग्मन द्वारा जन्तु को नया जीवन प्राप्त होता है।

(*iii*) **आनुवंशिक विभिन्नताएँ** (Hereditary variations)—संयुग्मन में एक जन्तु का नर पूर्वकेन्द्रक दूसरे जन्तु के मादा पूर्वकेन्द्रक से समेकित होता है जिससे दो जन्तुओं के नाभिक पदार्थ का आदान-प्रदान होता है। फलस्वरूप दोनों जन्तुओं में नये आनुवंशिक गुणों का समावेश होता है। नये आनुवंशिक गुणों के सम्मिश्रण से बने जन्तु अपनी परिस्थितियों के अधिक अनुकूल होते हैं तथा उनमें नयी आनुवंशिक विशेषताएँ पायी जाती हैं।

एण्डोमिक्सिस (Endomixis)—एण्डोमिक्सिस एक ही जन्तु में केन्द्रक पुनर्गठन (nuclear reorganization) की एक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसके पश्चात् जन्तु का शरीर पुत्री पैरामीसिया में बँट जाता है। यह केवल संयुग्मन की अनुपस्थिति में *P. aurelia* में **वुडरफ तथा एर्डमान्** (Woodruff and Erdmann)
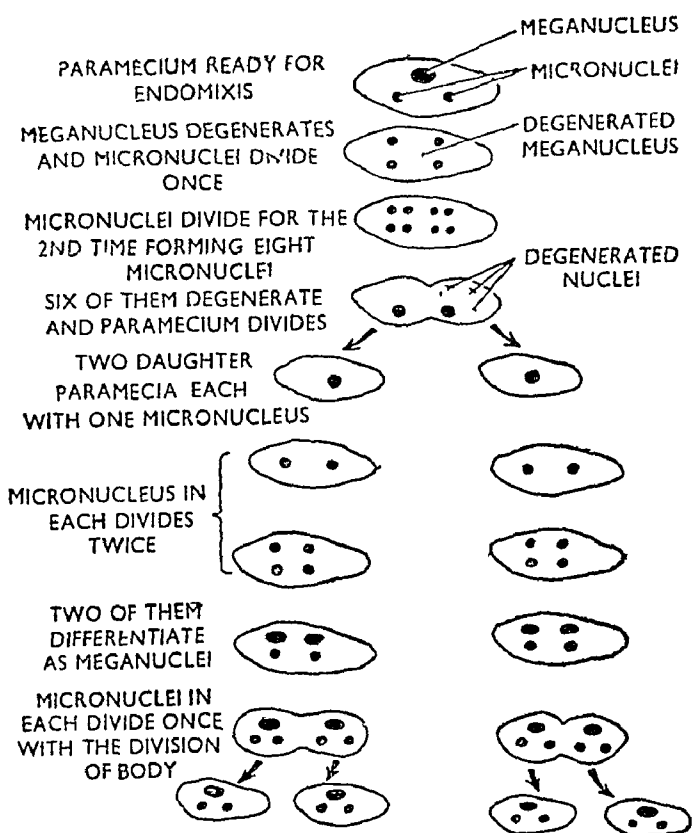
चित्र ८·११. पैरामीसियम मे एण्डोमिक्सिस (Endomixis in *Paramecium*)

द्वारा देखा गया है। इसमें निम्नलिखित परिवर्तन होते है :—

(*i*) गुरुकेन्द्रक (macronucleus) क्षीण होता जाता है और कोशिकाद्रव्य मे विलय हो जाता है।

(*ii*) जन्तु के दोनों लघुकेन्द्रक (micronuclei) दो बार विभाजित होते है जिससे 8 सतति लघुकेन्द्रक बनते है।

(*iii*) इनमें से 6 केन्द्रक पुन: नष्ट हो जाते है।

(*iv*) बचे हुए लघुकेन्द्रकों वाला जन्तु दो भागों मे बँट जाता है जिससे दो सतति पैरामीसिया बनते है और प्रत्येक मे एक केन्द्रक होता है।

(*v*) प्रत्येक संतति पैरामीसियम का केन्द्रक दो बार विभाजित होता है।

(*vi*) इस प्रकार बने चार केन्द्रको मे से दो बड़े होकर गुरुकेन्द्रक बना लेते है तथा शेप दो लघुकेन्द्रक कहलाते है।

(*vii*) प्रत्येक सतति पैरामीसियम के दोनो लघुकेन्द्रक पुन: विभाजित होते है। साथ ही जन्तु का शरीर भी दो मे बँट जाता हे।

इस प्रकार एक जन्तु से चार पैरामीसिया बनती है तथा प्रत्येक में एक नया गुरुकेन्द्रक होता है।

एण्डोमिक्सिस का महत्त्व (Significance of Endomixis)

(*i*) एण्डोमिक्सिस के अन्त मे एक जन्तु से चार जन्तु बनते है; अत: यह

जाति की गुणोत्तर वृद्धि का एक साधन है।

(*ii*) एण्डोमिक्सिस का प्रभाव संयुग्मन के समान ही होता है क्योंकि पुराना तथा जीर्ण गुरुकेन्द्रक नये गुरुकेन्द्रक से स्थानान्तरित कर दिया जाता है जिससे जन्तु की क्षीण होती हुई क्षमता पुनः वापस लौट आती है अर्थात् उसका कायाकल्प हो जाता है।

(*iii*) एण्डोमिक्सिस किसी कारणवश संयुग्मन न होने पर उसकी कमी को पूरा करता है।

4. हेमीमिक्सस (Hemimixis)—हेमीमिक्सिस भी गुरुकेन्द्रक पुनर्गठन की एक सरल घटना है जिसमें लघुकेन्द्रक में कोई-परिवर्तन नहीं होता। इसको हर्टमान (Hartman) नामक वैज्ञानिक ने *P. aurelia* में देखा था तथा डिलर (Diller) ने इसका समर्थन किया था। गुरुकेन्द्रक से दो या दो से अधिक क्रोमेटिन पदार्थ के टुकड़े (fragments of chromatin material) अलग होकर कोशिका-द्रव्य में शोपित हो जाते हैं। बचा हुआ गुरुकेन्द्रक पुनः क्षमता से कार्य करने लगता
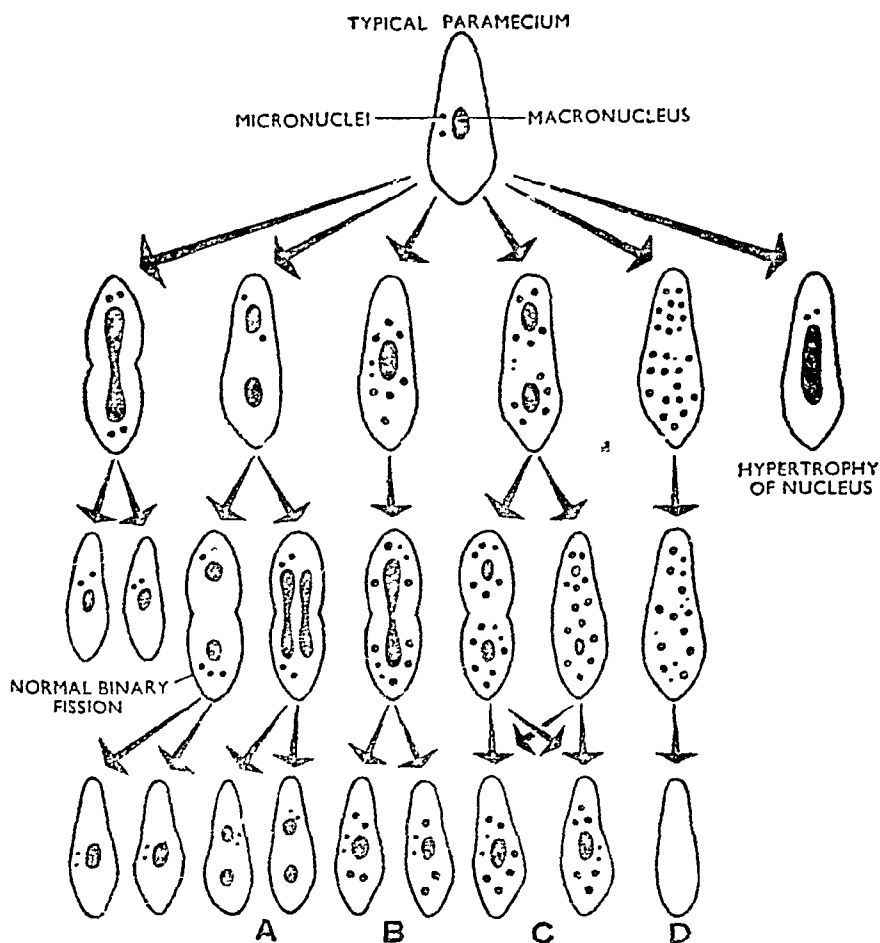
चित्र ८·१२. पैरामीसियम में हेमीमिक्सिस (Hemimixis in *Paramecium*)

है, अतः हेमीमिक्सिस गुरुकेन्द्रक के लिए एक प्रकार की शुद्धिकरण की क्रिया (act of purification) मानी जाती है तथा उससे निकले क्रोमेटिन के टुकड़े व्यर्थ एवम् हानिकारक कहे जाते है।

5. एकजयुग्मन या ऑटोगैमी (Autogamy)—यह संयुग्मन के समान ही एक प्रकार की केन्द्रक-पुनर्गठन क्रिया है किन्तु इसमें केवल एक ही जन्तु के दो लघु केन्द्रकों का समेकन होता है। इसमें निम्नलिखित घटनाएँ होती हैं :—

(*i*) गुरुकेन्द्रक वढ़कर एक वहुत वड़ी अनियमित रचना वना लेता है और वाद में छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो जाता है। ये टुकड़े कोशिकाद्रव्य में मिल जाते है।

(*ii*) जन्तु के दोनों लघुकेन्द्रक दो वार विभाजित होते हैं जिससे 8 केन्द्रक वनते है।

(*iii*) इन आठ केन्द्रकों में से कुछ नष्ट हो जाते हैं। वचे हुए केन्द्रक तीसरी वार विभाजित होते है।

(*iv*) दो केन्द्रकों को छोड़कर अन्य सभी केन्द्रक नष्ट हो जाते है। इनमें से एक नर तथा दूसरा मादा पूर्वकेन्द्रक कहलाता है।

(*v*) दोनो युग्मक केन्द्रक कोशिकामुख के समीप कोशिकाद्रव्य से वने उभारों मे पहुँच जाते है। यहाँ पर दोनों केन्द्रक समेकित होकर युग्मनज केन्द्रक (synkaryon or zygote nucleus) वनाते है।

(*vi*) युग्मनज केन्द्रक दो वार विभाजित होता है। फलस्वरूप वने चारों
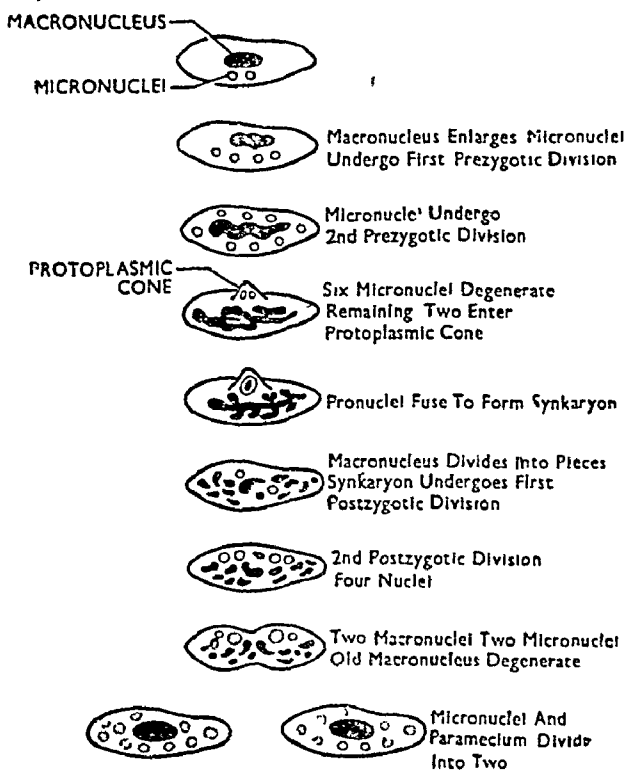
चित्र ८·१३. पैरामीसियम मे ऑटोगैमी (Autogamy in *Paramecium*)

केन्द्रको मे से दो लघु तथा दो गुरुकेन्द्रक वन जाते हैं।

(*vii*) अव जन्तु के लघु केन्द्रक एक वार पुनः विभाजित होते हैं। साथ ही जन्तु का शरीर भी दो मे वँट जाता है। इस प्रकार दो पुत्री पैरामीसिया वनती है।

6. कोशिका-संगम (Cytogamy)—कोशिका-संगम **विचरमान** (Wicherman) द्वारा *P. caudatum* मे देखा गया है। इसमें दो पैरामीसिया अपने मुखतलों द्वारा कुछ समय के लिए मिल जाते है। उनके केन्द्रकों में सयुग्मन के समान ही कुछ परिवर्तन होते है, किन्तु इसके पश्चात् उनमें केन्द्रको का आदात-प्रदान नही होता, परन्तु एक ही जन्तु के नर तथा मादा पूर्वकेन्द्रक आपस में समेकित होकर युग्मनज केन्द्रक (synkaryon) वनाते है। अव दोनों जन्तु अलग होकर विभाजित होते है और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते हैं।
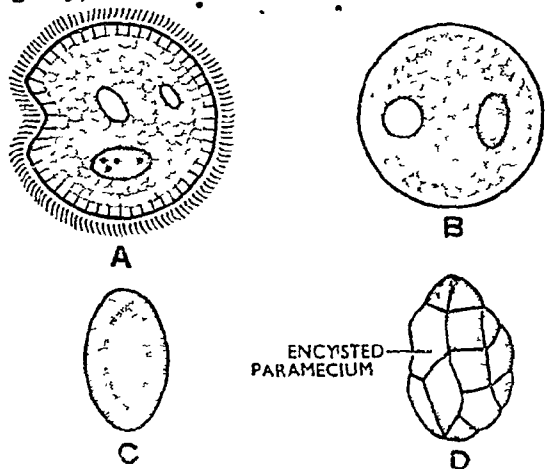
चित्र ८·१४. पैरामीसियम मे पुटीभवन (Encystment in *Paramecium*)

7. पुटीभवन (Encystment)—केवल *P. bursaria* में ही पुटीभवन देखा गया है। प्रतिकूल परिस्थितियों मे यह गोलाकार हो जाता है तथा अपने शरीर के चारों ओर रक्षात्मक सिस्ट या पुटी स्रावित करता है। पुटी रेत के कणों के समान प्रतीत होती है।

प्रश्न 19. पैरामीसियम में जनन-क्रियाओं का वर्णन करिये।

Give an account of the reproductive processes in *Paramecium*.

(*Agra 1950, 59, 61 ; Vikram 62, 65, 69 ; Jabalpur 72 ; Allahabad 55 ; Jiwaji 68, 71*)

पैरामीसियम में जनन की विभिन्न विधियों का वर्णन करिये तथा इनके महत्त्व को समझाइये।

Describe the different modes of reproduction found in *Paramecium*. What is their significance ? (*Lucknow 1955 ; Raj. 63*)

पैरामीसियम में जनन का वर्णन कीजिये।

Give an account of reproduction in *Paramecium*.

(*Aligarh 1955, 58*)

पैरामीसियम की जनन-विधियों का वर्णन कीजिये। इस जन्तु में संयुग्मन का क्या महत्त्व है ?

Give an account of reproductive processes in *Paramecium*. Discuss the significance of conjugation in this animal.

(*Agra 1959 ; Allahabad 53 ; Lucknow 55 ; Vikram 62 ; Punjab 60 ; Raj. 68 ; Ravishanker 65*)

पैरामीसियम में जनन के वारे में आप क्या जानते है ?

Write what you know about reproduction in *Paramecium.*

(*Vikram 1968*)

कृपया प्रश्न 18 देखिये।

प्रश्न 20. पैरामीसियम में संयुग्मन की क्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

Give an illustrated account of the phenomenon of conjugation in *Paramecium.* (*Agra 1956*)

पैरामीसियम में संयुग्मन की क्रिया का वर्णन कीजिये तथा पुनर्नवीकरण या कायाकल्प की ओर विशेष ध्यान रखते हुए इस क्रिया का महत्त्व समझाइये।

Describe the process of conjugation of *Paramecium* and discuss its significance with special reference to the phenomenon of rejuvenation in this animal. (*Allahabad 1958*)

कृपया प्रश्न 18 देखिये।

प्रश्न 21. पैरामीसियम में लैंगिक जनन का वर्णन कीजिये।

Describe sexual reproduction in *Paramecium.*

(*Meerut 1967 ; Gorakhpur 71*)

कृपया प्रश्न 18 देखिये।

प्रश्न 22. पैरामीसियम की संरचना एवम् जनन का वर्णन कीजिये।

Describe the structure and reproduction in *Paramecium.*

(*Patna 1967*)

कृपया प्रश्न 18 देखिये।

वॉर्टिसीला
(Vorticella)

फाइलम	—	प्रोटोजोआ (*Protozoa*)
सबफाइलम	—	सिलियोफोरा (*Ciliophora*)
क्लास	—	सिलिएटा (*Ciliata*)
आर्डर	—	पैरिट्राइका (*Peritricha*)
जीनस	—	वॉर्टिसीला (*Vorticella*)

प्रश्न 23. वॉर्टिसीला की संरचना एवम् जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये।
Give an account of the structure and life-history of *Vorticella*.
(*Allahabad 1954, 60 ; Vikram 62, 63 ; Jabalpur 70*)
वॉर्टिसीला की संरचना का वर्णन कीजिये।
Describe fully the structure of *Vorticella*. (*Lucknow 1957*)
वॉर्टिसीला में जनन का वर्णन कीजिये।
Describe reproduction in *Vorticella*. (*Agra 1968 ; Nagpur 61*)

साधारणतया *वॉर्टिसीला* स्वच्छ जल में पाया जाने वाला पैरिट्राइकस सिलिएट (peritrichous ciliate) है जो उन नदी, तालावों, पोखरों तथा झरनों के पानी में पाया जाता है जहाँ लवण-मिश्रित या खारा पानी (mineral water) हो तथा जहाँ किसी प्रकार की सड़ने की कोई क्रिया न होती हो।

संरचना (Structure)

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—*वॉर्टिसीला* एक ठोस, उलटी घण्टी के आकार का (solid, inverted, bell-shaped) जन्तु है जिसके पिछले सिरे पर एक लम्बी तथा अत्यन्त कुञ्चनशील वृन्त (stalk) के समान रचना लगी होती है। इसका आकार इसके अचल या स्थावर (sedentary) स्वभाव के अनुरूप विशेष रूप से रूपान्तरित (specially modified) होता है। यह भी एककोशिकीय, सूक्ष्मदर्शी जन्तु है। यह रंगहीन या सफेद रंग का होता है, किन्तु कभी-कभी पीला या हरा-सा भी दिखाई देता है।

बाह्य रचना (External structure)—*वॉर्टिसीला* का वृन्तयुक्त (stalked) शरीर दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. मुख्य शरीर (Main body or body proper)
2. वृन्त (Stalk)

मुख्य शरीर (Main body)—इसका शरीर एक उल्टी घण्टी के समान होता है जिसका अगला सिरा (anterior end) चौड़ा तथा स्वतन्त्र होता है तथा उसके पिछले या दूरस्थ सिरे (posterior or distal end) से एक लम्बा अखण्डीय वृन्त (stalk) निकलता है। कुछ अंगकों की उपस्थिति के कारण शरीर की रचना जटिल होती है।

शरीर के अगले चौड़े सिरे का किनारा (margin) मोटा होता है तथा यह शरीर के बाहर एक हँसली या कॉलर (collar) के समान निकला रहता है। इसका
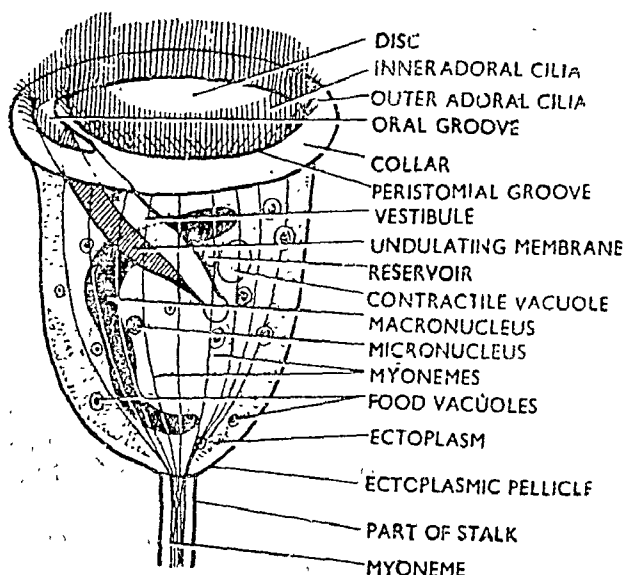
चित्र ६·१. वॉर्टिसीला (*Vorticella*) की संरचना

मध्य का मोटा भाग उत्तल (convex) तथा डिस्क के समान होता है। यह **पेरिस्टोमी बिम्ब** (peristomial disc) कहलाता है तथा इसका बाहर निकला हुआ हँसली के समान कॉलर **पेरिस्टोमी ओष्ठ** (peristomial lip) कहलाता है। पेरिस्टोमी ओष्ठ, पेरिस्टोमी डिस्क से एक गोल चक्करदार खाई या गर्त (cricular depression) द्वारा अलग रहता है। यह गर्त **मुख झिर्री** (oral groove) या पेरिस्टोम या **परितुण्ड** (peristome) कहलाती है।

पेरिस्टोमियल डिस्क में बायीं ओर (left side) एक खाँच (groove or depression) पायी जाती है जो **इन्फण्डीबुलम** या **वेस्टिबूल** (infundibulum or vestibule) बनाती है। इसके आधार पर **कोशिकामुख** (cytostome) स्थित होता है। कोशिकामुख एक कोमल **कोशिकाग्रसनी** (cytopharynx) में खुलता हुआ माना जाता है।

वृन्त (Stalk)—वृन्त लम्बा, पतला तथा अत्यन्त लचीला होता है। यह शरीर के पिछले या आधार भाग के लम्बे होने से बनता है। इसके भीतर एक अक्षीय तन्तु (axial filament) होता है जो **वृन्त-पेशी** (stalk-muscle) या **स्पाज्मोनीमी** (spasmoneme) कहलाता है। यह शरीर की मायोनीमी के प्रवर्धों से ही बना होता है जो वृन्त के भीतर सर्पिल रूप में लिपटी रहती हैं और वृन्त का केन्द्रीय अक्ष (central axis) बनाती हैं। इसके चारों ओर कोशिकाद्रव्य की एक पतली पर्त्त होती है। सबसे बाहर पेलीकल का आवरण होता है। थोड़ी-सी उत्तेजना प्राप्त होने पर वृन्त की स्पाज्मोनीमी स्प्रिंग के समान सर्पिल रचना बना लेती है और वृन्त सिकुड़कर छोटा हो जाता है। साथ ही शरीर अपने पहले स्थान से खींच लिया जाता है।

रोमक (Cilia)—*वॉर्टिसीला* के समस्त शरीर पर रोमक नहीं होते। ये केवल मुखसमीपी भाग (adoral zone) में ही पाये जाते हैं। पेरिस्टोमियल खात (peristomial groove) में रोमकों के तीन एककेन्द्रक वलय (concentric rings) होते हैं। ये वामावर्त क्रम से (anticlockwise) लगे होते हैं तथा आधार पर सभी रोमक जुड़े रहते हैं। ये डिस्क के चारों ओर $1\frac{1}{2}$ चक्र बनाते हैं और इसके पश्चात् वेस्टिब्यूल में पहुँच जाते हैं। वेस्टिब्यूल के भीतर बाहरी पंक्ति के रोमक अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं तथा समेकित होकर (on fusion) एक तिकोनी ऊर्मिल झिल्ली या तरंगित झिल्ली (undulating membrane) बनाते हैं। बाहरी पंक्ति के रोमक बाहर की ओर झुके होते हैं तथा भोजन पदार्थों को वेस्टिब्यूल की ओर पहुँचाते हैं।

साइटोपाइग या गुदा छिद्र (Cytopyge or anal spot)—यह वेस्टिब्यूल में खुलने वाला अस्थायी छिद्र है जिससे अपच भोजन शरीर से बाहर फेंका जाता है।

आन्तरिक रचना (Internal Structure)

1. पेलीकल (Pellicle)—*वॉर्टिसीला* का बाहरी आवरण क्यूटिकल की बनी एक मोटी झिल्ली-सदृश होता है। यह शरीर के पिछले सिरे पर अपेक्षाकृत बहुत अधिक मोटा होता है। समस्त पेलीकल पर **अनुप्रस्थ धारियाँ** (transverse striations) पायी जाती हैं जो एक-दूसरे के समानान्तर होती हैं। इनको रोमकों के शरीर से जुड़े होने के निशान माना जाता है। यह माना जाता है कि प्रारम्भ में जन्तु का समस्त शरीर रोमकों से ढका रहता है, किन्तु इसके पश्चात् ये रोमक नष्ट हो जाते हैं और उनके जुड़ने के स्थान धारियों के रूप में दृष्टिगत होते हैं। वृन्त में पेलीकल के बाहर एक ओर क्युटिकल की पर्त्त होती है।

2. कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)—घण्टी के समान शरीर भीतर से रंगहीन कोशिकाद्रव्य से भरा रहता है जो बाहरी मजबूत तथा गाढ़े **बाह्यद्रव्य स्तर** या आन्तर-त्वचा (cortex) तथा भीतर के दानेदार द्रवीय **आन्तरद्रव्य स्तर** (medulla) में बँटा होता है।

3. कोशिकाद्रव्य में पायी जाने वाली रचनाएँ (Cytoplasmic Inclusions)

(*i*) **मायोनीमीज** (Myonemes)—कोशिकाद्रव्य में असंख्य मायोनीमी तन्तु पाये जाते हैं जो सीधे तथा आड़े दोनों प्रकार से पड़े रहते हैं तथा शरीर की लम्बाई और चौड़ाई में भी फैले रहते हैं। शरीर के समस्त मायोनीमी तन्तु आधार पर केन्द्रित या अभिसृत (converge) होते हैं। ये सभी वृन्त में पहुँचकर एक स्पाज्मोनीमी (spasmoneme) बनाते हैं। ये तन्तु अत्यन्त कुञ्चनशील होते हैं।

(*ii*) **केन्द्रक साधित्र** (Nuclear apparatus)—आन्तरद्रव्य के भीतर एक घोड़े की नाल के आकार का (horse-shoe-shaped) अथवा तश्तरी के आकार का (saucer-shaped) **गुरुकेन्द्रक** होता है तथा उसी के समीप एक छोटा गोलाकार लघुकेन्द्रक भी स्थित होता है।

(*iii*) **खाद्य रिक्तिकाएँ** (Food vacuoles)—आन्तरद्रव्य में बहुत-सी खाद्य रिक्तिकाएँ भी अनियमित रूप में पड़ी रहती हैं।

(*iv*) **कुञ्चनशील रिक्तिका** (Contractile vacuole)—*वॉर्टिसीला* में केवल एक गोल कुञ्चनशील रिक्तिका होती है जो स्थायी छिद्र द्वारा रिजरवायर में खुलती है।

जीवन-इतिहास (Life-history)

वॉर्टिसीला में द्विविभाजन विधि (binary fission) द्वारा अलैंगिक (asexual) तथा संयुग्मन (conjugation) द्वारा लैंगिक (sexual) जनन होता है।
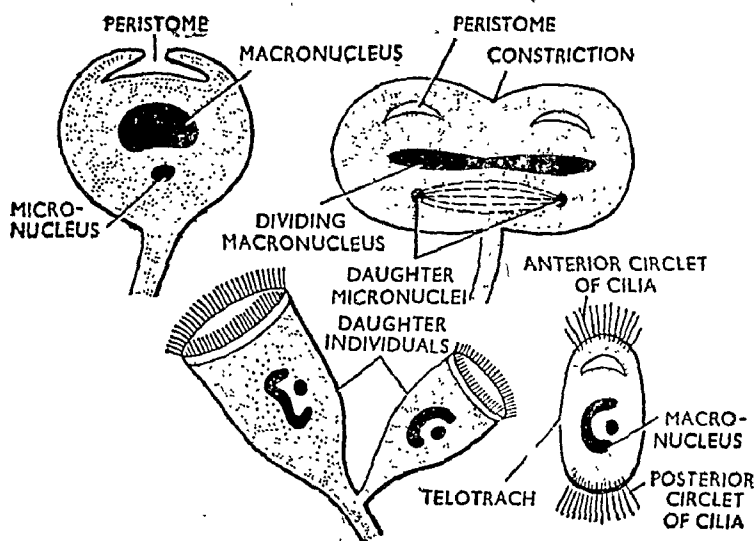
चित्र ६·२. वॉर्टिसीला में द्विविभाजन की प्रावस्थाएँ
(Stages of binary fission in *Vorticella*)

1. लम्बवत् द्विविभाजन (Longitudinal binary fission)—अनुकूल परिस्थितियों में *वॉर्टिसीला* का शरीर लम्बाई में दो भागों में बँट जाता है। प्रारम्भ में कालर (collar) या पेरिस्टोमियल लिप, डिस्क के ऊपर से बन्द हो जाता है। अब जन्तु लम्बाई में छोटा होता जाता है तथा अनुप्रस्थ दिशा में अर्थात् चौड़ाई में फैलता है। गुरुकेन्द्रक एक अण्डाकार रचना बना लेता है तथा शरीर के मध्य में अनुप्रस्थ रूप में स्थित हो जाता है। यह असमसूत्रण (amitosis) द्वारा लम्बवत् दिशा में दो भागों में बँट जाता है, साथ ही लघुकेन्द्रक भी समसूत्रण विधि द्वारा दो भागों में बँट जाता है। अब पेरिस्टोम के मध्य में एक खाई-सी बननी प्रारम्भ होती है जो धीरे-धीरे गहरी होकर शरीर को लम्बाई में दो भागों में बाँट देती है। इस प्रकार बने दोनों जन्तु आकार में समान नहीं होते। बड़ी सन्तति वॉर्टिसीला में पैतृक वृन्त आ जाता है तथा छोटी सन्तति वॉर्टिसीला लगभग बेलनाकार हो जाती है। इसके पिछले भाग में रोमकों का एक चक्र (circlet of cilia) बन जाता है। अब यह टीलोट्रेक (telotrach) कहलाता है। यह पैतृक वृन्त से अलग होकर स्वतन्त्रतापूर्वक तैरता है तथा अपने अपमुखीय सिरे (aboral end) से किसी आधार पर चिपक जाता है। एक नया वृन्त बनाकर यह पूर्ण *वॉर्टिसीला* बना लेता है।

2. संयुग्मन (Conjugation)

Vorticella nebulifera में **मौपास** (Maupas) द्वारा संयुग्मन की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

(*i*) **लघुयुग्मकों का बनना** (Formation of microgametes)—एक जन्तु दो बार विभाजित होकर चार सन्तति कोशिकाएँ बनाता है जो लघुयुग्मक या

माइक्रोजूऑयड (microgametes or microzooids) कहलाते हैं। ये अपने पिछले भाग में रोमकों का एक चक्र बना लेते हैं और पैतृक वृन्त से अलग होकर तैरना आरम्भ कर देते हैं। ये टीलोट्रेक (telotrach) की अपेक्षा छोटे होते हैं तथा प्रौढ़ जन्तु में रूपान्तिरत नहीं हो सकते। यदि ये गुरुयुग्मक तक नहीं पहुँच पाते तो 24 घण्टे पश्चात् नष्ट हो जाते हैं।
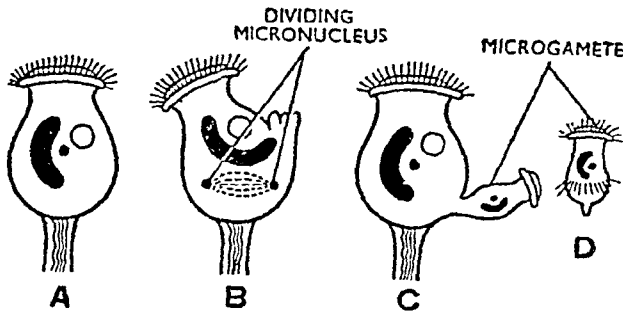
चित्र ६·३. वॉर्टिसीला में लघुयुग्मकों का निर्माण
(Formation of microgametes in *Vorticella*)

(*ii*) **गुरुयुग्मकों का बनना** (Formation of macrogametes)—ट्राफिक जन्तु कुछ केन्द्रकीय परिवर्तनों (nuclear modifications) के पश्चात् गुरुयुग्मक बन जाता है। संरचना में गुरुयुग्मक प्रौढ़ जन्तु के समान ही होते हैं, किन्तु उनमें कायिकी भिन्नताएँ होती हैं। यह लघुयुग्मकों को अपनी ओर आकर्षित करता है।

(*iii*) **युग्मकों का संयुग्मन** (Pairing of gametes)—लघुयुग्मक गुरुयुग्मक के पिछले 1/3 भाग में चिपक जाता है। यह अपना पेलिकल आवरण तथा रोमक चक्र (ciliary ring) उतार फेंकता है। इसके पश्चात् उनके केन्द्रकों में निम्नलिखित परिवर्तन एक साथ होने प्रारम्भ होते हैं :—

(*a*) दोनों में गुरु केन्द्रक (macronuclei) नष्ट हो जाते हैं तथा कोशिका-द्रव्य में मिल जाते हैं।

(*b*) लघुयुग्मक का लघुकेन्द्रक तीन बार विभाजित होता है जिससे 8 लघुकेन्द्रक बन जाते हैं। गुरुयुग्मक का लघुकेन्द्रक दो बार बँटकर चार केन्द्रक बनाता है।

(*c*) लघुयुग्मक में 7 तथा गुरुयुग्मक में 3 केन्द्रक नष्ट हो जाते हैं।

(*d*) दोनो युग्मकों में बचा एक-एक केन्द्रक दोनों युग्मकों के बीच की विभाजित दीवार की ओर अग्रसित होते हैं।

(*e*) इसी बीच विभाजन दीवार नष्ट हो जाती है तथा दोनों युग्मक एक हो जाते हैं।

(*f*) दोनों युग्मकों के केन्द्रक अब अर्धसूत्रण विधि (reduction division) द्वारा विभाजित होते हैं। इस प्रकार बने दो केन्द्रकों में से एक-एक नष्ट हो जाता है। अब नर या लघु युग्मक का केन्द्रक चलनशील **नर पूर्वकेन्द्रक** (migratory male pronucleus) तथा मादा युग्मक का केन्द्रक अचल या स्थिर **मादा पूर्वकेन्द्रक** (stationary female pronucleus) कहलाता है।

(*g*) नर तथा मादा पूर्वकेन्द्रक समेकित होकर **युग्मनज केन्द्रक** (synkaryon or zygote nucleus) बनाते हैं।

(*h*) नर युग्मक के शरीर का समस्त पदार्थ मादा युग्मक में पहुँच जाता है, अतः नर युग्मक सिकुड़कर मादा युग्मक से अलग हो जाता है और अन्त में नष्ट हो जाता है।
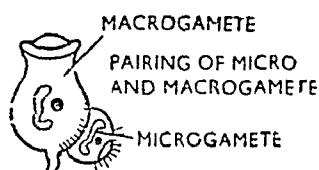
(*iv*) **युग्मनज केन्द्रक का विभाजन** (Division of synkaryon)—मादा युग्मक अब युग्मनज (zygote) बन जाता है।

(*a*) इसका केन्द्रक या युग्मनज केन्द्रक तीन बार समसूत्रण द्वारा विभाजित होकर 8 केन्द्रक बनाता है।
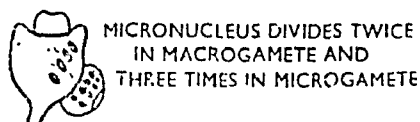
(*b*) इनमें से सात बड़े होकर गुरुकेन्द्रक बना लेते हैं तथा बचा हुआ एक लघुकेन्द्रक कहलाता है।
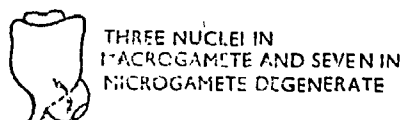
(*c*) लघुकेन्द्रक तथा जन्तु के शरीर का विभाजन इस प्रकार होता है कि एक सन्तति कोशिका में चार गुरुकेन्द्रक तथा एक लघुकेन्द्रक होता है तथा दूसरी सतति कोशिका में तीन गुरुकेन्द्रक एवम् एक लघुकेन्द्रक पहुँचता है।
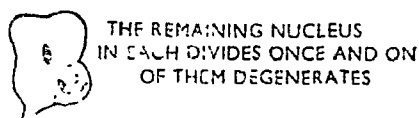
(*d*) अब वह सन्तति कोशिका जिसमें चार गुरुकेन्द्रक हैं दो बार विभाजित होकर चार सन्तति कोशिकाएँ बनाती हैं तथा तीन गुरुकेन्द्रकों वाली कोशिका
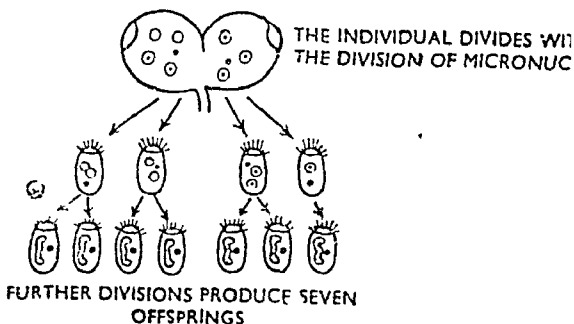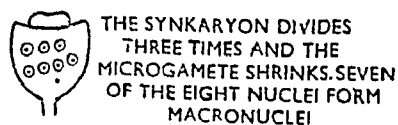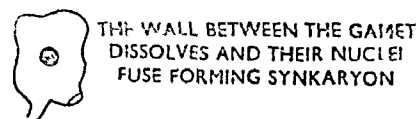
चित्र ६·४. वॉर्टिसीला में संयुग्मन (Conjugation in *Vorticella*)

केवल तीन सन्तति कोशिकाएँ बनाती है। इस प्रकार एक जन्तु से सात सन्तति वॉर्टिसीली (vorticellae) बन जाती हैं। प्रत्येक अपना वृन्त बनाकर पूर्ण वृद्धि को प्राप्त होती है।

3. परिकोष्ठन (Encystment)—प्रतिकूल परिस्थितियों में जब सूखा या अधिक ठण्ड होती है तो वॉर्टिसीला या तो शरीर के पिछले भाग में रोमक चक्र (girdle of cilia) बना लेता है या अपने शरीर के चारों ओर सिस्ट (cyst) बना लेता है। अब यह वृन्त से अलग हो जाता है। परिकोष्ठित अवस्था में जन्तु समस्त प्रतिकूल समय को व्यतीत कर देता है तथा अनुकूल समय आने पर सिस्ट को फाड़कर बाहर निकल आता है।

प्रश्न 24. वॉर्टिसीला में संयुग्मन क्रिया का वर्णन करिये। यह पैरामीसियम से किस प्रकार भिन्न होती है?

Describe the process of conjugation in *Vorticella* and state in what respects it differs from that in *Paramecium*.

(*Poona 1955 ; Patna 68*)

वॉर्टिसीला में संयुग्मन (Conjugation in Vorticella)

कृपया प्रश्न 23 देखिये।

वॉर्टिसीला तथा पैरामीसियम के संयुग्मन में भिन्नताएँ (Differences in the Conjugation of Vorticella and Paramecium)

वॉर्टिसीला (*Vorticella*)	पैरामीसियम (*Paramecium*)
1. वॉर्टिसीला में नर तथा मादा या लघुयुग्मक तथा गुरुयुग्मक के बीच ही संयुग्मन होता है।	1. पैरामीसियम में संयुग्मन दो सम्पूर्ण जन्तुओं के बीच होता है। ये दोनों एक ही जाति किन्तु भिन्न-भिन्न मेटिंग टाइप (mating type) के होते है और संयुग्मी (conjugants) कहलाते हैं। संयुग्मी ट्रॉफिक जन्तुओं (trophic forms) से कुछ छोटे होते है।
2. लघुयुग्मक छोटे तथा गतिशील होते है तथा इनके पिछले भाग में एक रोमक चक्र (circlet of cilia) होता है, जबकि गुरुयुग्मक प्रौढ़ जन्तु के समान होते हैं। अत: वॉर्टिसीला मे संयुग्मन असयुग्मी (anisogamous) होता है।	2. नर तथा मादा युग्मको का निर्माण नही होता तथा दोनों संयुग्मी पूर्णतया एक दूसरे के समान होते है, अत: इसमें संयुग्मन संयुग्मी (isogamous) होता है।
3. एक जन्तु से चार लघुयुग्मक (microgametes) बनते है किन्तु एक जन्तु से केवल एक ही गुरुयुग्मक (macrogametes) बनता है।	3. ऐसा नही होता।
4, लघुयुग्मक गुरुयुग्मक के पिछले भाग से जुड़ता है।	4. दोनो संयुग्मी अपने मुख-तलों द्वारा एक-दूसरे से चिपके रहते हैं।

वॉर्टिसीला (*Vorticella*)	पैरामीसियम (*Paramecium*)
5. लघुयुग्मक के केन्द्रक से 8 सतति केन्द्रक बनते हैं जबकि गुरुयुग्मक के केन्द्रक से केवल 4 सतति केन्द्रक ही बनते हैं।	5. प्रत्येक सयुग्मी में लघुकेन्द्रक दो बार विभाजित होकर 4 सतति केन्द्रक बनाता है।
6. लघुयुग्मक के सात तथा गुरुयुग्मक के तीन केन्द्रक नष्ट हो जाते हैं। बचा हुआ एक-एक केन्द्रक दोनो मे तर्कुाकार होता है तथा दोनो के केन्द्रक विभाजन दीवार की ओर अग्रसित होते हैं।	6. प्रत्येक सयुग्मी में 3 केन्द्रक नष्ट हो जाते है तथा बचा हुआ एक-एक केन्द्रक लगभग गोल होते है। ये अपनी स्थिति से नही हटते।
7. प्रत्येक युग्मक से बना हुआ एक केन्द्रक दो मे विभाजित होता है जिनमे से एक-एक केन्द्रक पुन नष्ट हो जाता है। फलस्वरूप दोनो युग्मकों से पूर्वकेन्द्रक (pronuclei) बन जाते हैं। मादा युग्मक का केन्द्रक मादा पूर्वकेन्द्रक (female pronucleus) तथा लघुयुग्मक का केन्द्रक नर पूर्वकेन्द्रक (male pronucleus) कहलाता है।	7. प्रत्येक सयुग्मी मे जो केन्द्रक बचता है उसके असमान विभाजन से छोटा नर पूर्व-केन्द्रक तथा बडा मादा पूर्वकेन्द्रक बनता है। अत. दोनो सयुग्मियो मे दोनो प्रकार के केन्द्रक बनते हैं।
8. इसमे केवल एक जोडी नर तथा मादा पूर्वकेन्द्रक बनते है।	8. इसमे दो जोडी नर तथा मादा पूर्व-केन्द्रक बनते है।
9. इसमे नर युग्मक का नर पूर्वकेन्द्रक मादा युग्मक मे चला जाता है।	9 इसमें दोनो सयुग्मियो मे नर पूर्वकेन्द्रक का आदान-प्रदान होता है।
10 इसमे नर तथा मादा पूर्वकेन्द्रको के समेकन से एक युग्मनज केन्द्रक (synkaryon) बनता है जो मादा युग्मक के भीतर रहता है। नर युग्मक सूखकर नष्ट हो जाता है।	10 इसमे प्रत्येक समयुग्मी में एक-एक युग्मनज केन्द्रक (synkaryon) बनता है, अत. दो युग्मनज केन्द्रक बनते हैं। इसके पश्चात् दोनो सयुग्मी अलग होकर पूर्व सयुग्मी कहलाते है।
11. ऐसा नही होता।	11 दोनो पूर्व सयुग्मियो मे समान केन्द्रकीय परिवर्तन (nuclear changes) होते है तथा दोनो समान रूप से विभाजित होते हैं।
12 अलैंगिक विभाजन के फलस्वरूप एक युग्मक केन्द्रक से सात सतति वॉर्टिसीला बनते है।	12 अलैंगिक विभाजन के फलस्वरूप दोनो पूर्व सयुग्मियो से कुल मिलाकर आठ सतति पैरामीसिया बनती है।
13 सयुग्मन के युग्मको का स्थायी समेकन (permanent union) होता है।	13 सयुग्मन मे दोनो जन्तु अस्थायी रूप से समेकित होते है।

प्रश्न 25. वॉर्टिसीला में जनन क्रिया का वर्णन कीजिये। उन लक्षणों का विवरण दीजिये जिनमें यह पैरामीसियन से अधिक विकसित है।

Describe reproduction in *Vorticella*. Discuss features in which it shows an advance over Paramecium. (*Patna 1969*)

वॉर्टिसीला में जनन

कृपया प्रश्न 23 देखिये ।

पैरामीसियम की अपेक्षा अधिक विकसित लक्षण

निम्नलिखित विशेषताओं में *वॉर्टिसीला* में जनन क्रिया पैरामीसियम की अपेक्षा अधिक विकसित है :—

1. *वॉर्टिसीला* में जनन हेतु युग्मकों का निर्माण होता है। युग्मक भी **असमयुग्मक** होते हैं। मादा युग्मक **गुरुयुग्मक** (macrogamete) तथा नर युग्मक **लघुयुग्मक** (microgametes) होते हैं। *पैरामीसियम* में युग्मकों तथा ट्राफिक जन्तुओं में कोई भिन्नता दृष्टिगत नहीं होती तथा ये युग्मक नर तथा मादा में भिन्नित नहीं होते, अतः इसमें युग्मक **समयुग्मक** होते है। *वॉर्टिसीला* की असम-युग्मकता सम-युग्मकता की अपेक्षा अधिक विकसित है।

2. *वॉर्टिसीला* में नर युग्मक मादा युग्मक से पूर्णतया समेकित हो जाता है, जैसा कि उच्च वर्गीय जन्तुओं के लैंगिक जनन में होता है। *पैरामीसियम* में संयुग्मक संयुग्मन के पश्चात् अलग होकर स्वतन्त्र रूप से वर्धन करते हैं।

अध्याय 10

विविध प्रश्न
(Miscellaneous Questions)

प्रश्न 26. अमीबा, युग्लीना, पैरामीसियम तथा मोनोसिस्टिस के चलन अंगों का वर्णन करिये तथा प्रोटोजोआ के वर्गीकरण मे इनके महत्त्व को समझाइये ।

Describe the organs of locomotion in *Amoeba*, *Euglena*, *Paramecium* and *Monocystis*, and discuss their importance in the classification of Protozoa. (*Vikram 1966 ; Lucknow 53, 58*)

प्रोटोजोआ के चलन अंगों का वर्णन करिये ।

Give an account of the locomotor organelle in Protozoa.
(*Karnatak 1968*)

प्रोटोजोअन्स (Protozoans) मे विभिन्न प्रकार के चलन अगक (locomotory organelle) पाये जाते है । यह एक विशेष बात हे कि एक विशेप प्रकार के चलन अगक एक श्रेणी की विशेषता हे । प्रोटोजोआ समुदाय मे पाये जाने वाले चलन अगक निम्नलिखित है :—

1. पादाभ (Pseudopodia)
2. कशाभ (*Flagella*)
3. रोमक (Cilia)
4. मायोनीमीज (Myonemes)

पादाभ (Pseudopodia)

पादाभ बाह्य-द्रव्य के अस्थायी प्रवर्ध है जो अनावृत प्रोटोजोआ (naked protozoa) (अर्थात् उन प्रोटोजोआ मे जिनके शरीर पर पेलीकल का आवरण नही होता) के शरीर के किसी भी भाग से निकल आते है । अत. ये अधिकाशत: सारकोडिना, बहुत-से मेस्टीगोफोरा तथा कुछ स्पोरोजोआ जन्तुओ मे पाये जाते है । अधिकतर ये बाह्य-द्रव्य के बने होते हे, किन्तु कुछ आन्तर-द्रव्य भी इनके बीच मे रहता है । विभिन्न वर्गो मे इनका आकार, परिमाण एवम् रचना भिन्न-भिन्न होती है तथा इनको चार भागो मे बाँटा जा सकता है :—

1. लोबोपोडिया (Lobopodia)—छोटे (blunt) तथा अगुली के आकार के बाह्य-द्रव्य से निकले हुए प्रवर्ध है जिनके मध्य मे आन्तर-द्रव्य होता है । इनके स्वतन्त्र सिरे सदैव गोल होते है । उदाहरण : *अमीबा, आरसीला* (*Amoeba* and *Arcella*) (आर्डर—**लोबोसा**) ।

चित्र १०·१. आरसीला में लोबोपोडिया
(Lobopodia in *Arcella*)

2. फाइलोपोडिया (Filopodia)—फाइलोपोडिया छोटे, पतले तथा धागे के समान तन्तुमय (filamentous)

हायलाइन प्रवर्ध हैं जो केवल वाह्य-द्रव्य के बने होते हैं। इनके अन्तिम सिरे नुकीले होते है और ये विभाजित होकर चारों ओर विभिन्न दिशाओं में फैले रहते हैं। उदाहरण : यूग्लाइफा (*Euglypha*) (आर्डर—फाइलोसा)।
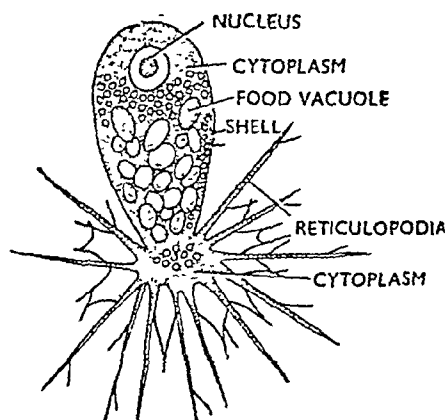
चित्र १०·२. युग्लाइफा में फाइलोपोडिया (Filopodia in *Euglypha*)
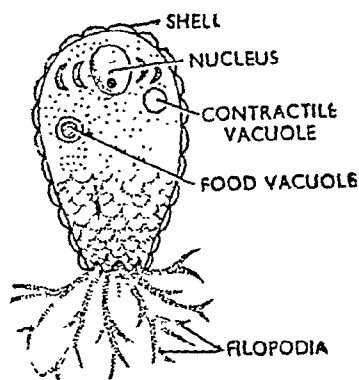
चित्र १०·३. क्लैमाइडोफ्रिस में रेटिक्युलोपोडिया (Reticulopodia in *Chlamydophrys*)

3. राइजोपोडिया या रेटिक्युलोपोडिया (Rhizopodia or reticulopodia)—ये भी वाह्य-द्रव्य के तन्तुमय उभार हैं जो बार-बार विभाजित होकर तथा एक-दूसरे से जुड़कर जटिल जाल के समान रचना बना लेते हैं।। उदाहरण : पोलीस्टोमेला (*Polvstomella*) तथा क्लेमाइडोफ्रिस (*Chlamydophrys*) : (गण—फोरामिनिफैरा)।

चित्र १०·४. एक्टिनोफ्रिस में एक्सोपोडिया (Axopodia in *Actinophrys*)

4. एक्सोपोडिया (Axopodia)—एक्सोपोडिया या एक्टीनोपोडिया लम्बे, कठोर या शक्तिशाली अर्धपारदर्शी प्रवर्ध हैं जो कोशिकाद्रव्य के बने होते हैं। इनके स्वतन्त्र सिरे नुकीले होते हैं। ये जन्तु के गोलाकार शरीर के चारों ओर निकले रहते हैं। प्रत्येक एक्सोपोडियम के मध्य में एक **अक्षीय छड़** (axial rod) होती है जिसके चारों ओर कोशिकाद्रव्य का स्तर होता है। अक्षीय छड़ इच्छानुसार बनाई एवम् नष्ट की जा सकती है। उदाहरण : रेडियोलेरिया तथा हीलियोजोआ (*Radiolaria* and *Heliozoa*) (श्रेणी —सारकोडाइना)।

2. कशाभ (Flagella)

कशाभ लम्बे, अत्यन्त पतले तथा कम्पनशील (vibratile) धागे के समान

रचनाएँ है जो अधिकांश **मेस्टीगोफोरा** तथा **सारकोडिना** एवम् **स्पोरोजोआ** की कुछ कशाभीय अवस्थाओ (flagellated development stages) मे पाये जाते है। प्रत्येक कशाभ के मध्य मे एक शक्तिशाली, किन्तु लचीला **अक्षीय तन्तु** (axial filament) या **एक्सोनीमी** (axoneme) होता है। अक्षीय तन्तु सीधा या सर्पिलाकार (straight or spirally coiled) होता है तथा इसके बाहर **जीवद्रव्य का आवरण** (protoplasmic sheath) होता है। अक्षीय तन्तु बहुत-से **तन्तुकों** fibrils) का बना होता है जो एक विशेष गोलाकार रचना से निकलते है। यह रचना **आधार कणिका** (basal granule) अथवा **ब्लीफेरोप्लास्ट** (blepharoplast) कहलाती है। ब्लीफेरोप्लास्ट एक अन्य रचना **राइजोप्लास्ट** (rhizoplast) द्वारा केन्द्रक से जुड़ा रहता है। कभी-कभी ब्लीफेरोप्लास्ट पेराबेसल काय (parabasal body) से जुडा रहता है। एक अक्षीय तन्तु मे तन्तुओं की सख्या निश्चित् नही होती। इसी प्रकार के तन्तु जीवद्रव्य आवरण मे भी पाये जाते है तथा कभी-कभी ये दोनों पार्श्व दिशाओ मे निकले रहते है। ये मेस्टीगोनीमीज (mastigonemes) कहलाते है। इनके विन्यास (arrangement) के आधार पर कशाभ निम्न प्रकार के हो सकते है :—
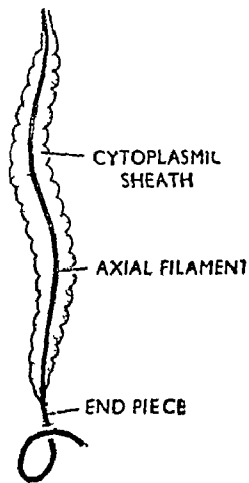
चित्र १०·५ एक कशाभ (Flagellum)

(*i*) **स्टीकोनीमेटिक** (Stichonematic)—इस प्रकार के कशाभ मे मेस्टीगोनीमीज कशाभ के केवल एक ओर एक पंक्ति मे लगी रहती है ; उदाहरण : *युग्लीना* (*Euglena*)।

(*ii*) **पेन्टोनीमेटिक** (Pantonematic)—इसमे मेस्टीगोनीमीज दो या दो से अधिक पक्तियों मे लगी रहती है ; उदाहरण : *पैरानीमा* (*Paranema*)।

(*iii*) **एक्रोनीमेटिक** (Acronematic)—इस प्रकार के कशाभ मे पार्श्व मेस्टीगोनीमीज नही पायी जाती, किन्तु उनके स्वतन्त्र सिरे पर एक **शीर्ष तन्तु** (terminal filament) होता है जिससे कशाभ कोडे के समान (whip-like) प्रतीत होता है ; उदाहरण : *क्लेमाइडोमोनास* (*Chlamydomonas*)।

चित्र १०.६. विभिन्न प्रकार के कशाभ
A. स्टीकोनीमेटिक (Stichonematic)
B. पेण्टोनीमेटिक (Pantonematic)
C. एक्रोनीमेटिक (Acronematic)
D. पेण्टेक्रोनीमेटिक (Pentachronematic)

(*iv*) **पेण्टेक्रोनीमेटिक** (Pentachronematic)—इसमे शीर्ष तन्तु व मेस्टीगोनीमीज दोनो पाये जाते है।

(*v*) सरल (Simple)—इस प्रकार के कशाभ मे मेस्टीगोनीमीज तथा शीर्ष तन्तु (terminal filament) दोनो मे से कोई भी रचना नही पायी जाती।

उदाहरण : डाइनोफ्लेजेलेटा (*Dinoflagellata*) तथा क्रिप्टोमोनेडाइना (*Cryptomonadina*) ।

कशाभीय जन्तुओं या फ्लेजेलेटेड जन्तुओं में कशाभों की संख्या स्थिर नहीं होती। एक जन्तु में एक से चार तक कशाभ पाये जाते है, किन्तु कुछ परजीवी जन्तुओं में इनकी संख्या बहुत अधिक होती है। जब भी किसी जन्तु में एक से अधिक कशाभ पाये जाते है तो उनमें से एक **मुख्य कशाभ** (main flagellum) होता है तथा अन्य अपेक्षाकृत छोटे कशाभ **अतिरिक्त कशाभ** (accessory flagella) कहलाते है। साधारणतया जन्तु के अगले सिरे से केवल एक कशाभ निकलता है जो शरीर को खीचता है, किन्तु कुछ जन्तुओं में अगले सिरे से दो कशाभ निकलते हैं, जैसे बोडो (*Bodo*) तथा एइसोनीमा (*Aesonema*)। इसमे से एक कशाभ आगे की ओर निकला रहता है तथा शरीर को आगे की ओर खींचता है। यह **ट्रैक्टेलम** (tractellum) कहलाता है तथा दूसरा कशाभ पीछे की ओर को होता है और शरीर की दाहिनी या बाँयी ओर पड़ा रहता है। यह शरीर को आगे की ओर धक्का देता है। इसे **ट्रेलिंग कशाभ** (trailing flagellum) कहते हे। कुछ अन्य कशाभीय जन्तुओं में शरीर के पिछले भाग से भी एक और कशाभ निकलता है जो शरीर को आगे को ओर धक्का देता है। यह **पल्सेलम** (pulselum) कहलाता है।
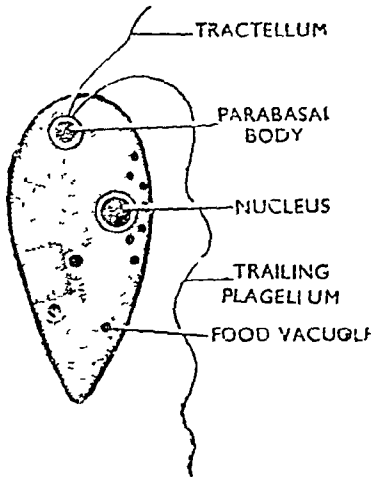
चित्र १०·७. बोडो में ट्रेक्टेलम तथा ट्रेलिंग कशाभ
(Tractellum and trailing flagellum of *Bodo*)
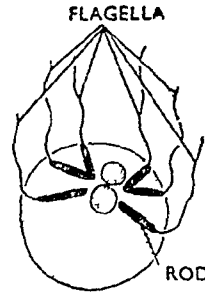
चित्र १०·८. हेक्जामीटस में 6 कशाभ तथा छड़ के आकार की आधार कणिकाएँ
(*Hexamitus* with flagellum having rod-like basal portion)

कशाभ शरीर के अगले भाग से सीधे ही या किसी खात अथवा गर्त (groove or depression) से निकलता है किन्तु डाइनोफ्लेजेलेटा में यह शरीर के पार्श्व तल (lateral side) से तथा ट्राइपेनोसोमा (*Trypanosoma*) में शरीर के पिछले सिरे से निकलता है। ट्राइपेनोसोमा में फ्लैजेलम शरीर की एक पार्श्व सतह के साथ-साथ आगे बढता है तथा शरीर उर्मिल झिल्ली (undulating membrane) द्वारा जुड़ा रहता है।

3. रोमक (Cilia)

रोमक अत्यन्त महीन, पतले तथा सूक्ष्म धागे के समान रचनाएँ है जो जन्तु के वाह्य-द्रव्य में पायी जाने वाली आधार कणिकाओं (basal granules) से निकलते है। यह क्लास **सिलियेटा** की विशेषता है। इसके अतिरिक्त ये कुछ **सक्टोरिया** की लारवा अवस्था मे भी मिलते है। ये साधारणतया लम्बी, तिरछी तथा सर्पिल कतारों (longitudinal, diagonal and spiral rows) में लगे होते है। ये या तो समस्त शरीर पर समान रूप से फैले रहते है, जैसे *ओपेलिना* अथवा केवल शरीर के विशेष भागों में ही पाये जाते हैं, जैसे *वॉर्टिसीला* (*Vorticella*)। शरीर पर पाये जाने वाले समस्त रोमक एक ही लम्बाई के हो सकते है, अथवा विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले रोमकों की लम्बाई भिन्न-भिन्न होती है।

चित्र १०·९. ट्राइपेनोसोम में अण्ड्यूलेटिंग झिल्ली (Undulating membiane of *Trypanosoma*)

रोमकों की रचना तथा गति का सिद्धान्त कशाभ के समान ही होता है किन्तु रोमकों और कशाभ में निम्नलिखित भिन्नताएँ होती हैं :—

(*i*) रोमक अपेक्षाकृत छोटे होते है।

(*ii*) रोमकों की संख्या वहुत अधिक होती है।

(*iii*) रोमकों की आधार कणिकाओं का सम्वन्ध केन्द्रक से नही होता।

(*iv*) रोमकों मे मैगस्टीगोनिमी नही पाये जाते।
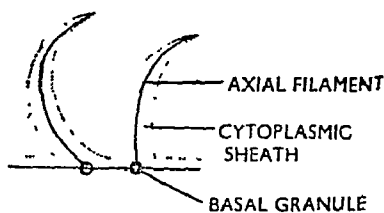
१० १०. रोमक की सरचना (Structure of cilia)

प्रत्येक रोमक में एक केन्द्रीय या अक्षीय तन्तु (axial filament) होता है जिसके चारों ओर कोशिकाद्रव्य का आवरण होता है। एक-अक्षीय तन्तु वहुत-से तन्तुओं (fibrils) के मिलने से वनता है। एक तन्तु के सभी तन्तुक एक आधार-कणिका से निकलते हैं। न्यूरोमोटर तन्तुकों का जटिल सस्थान आधार-कणिकाओं से सम्वन्धित रहता है। यह इनकी कार्य-गति को नियन्त्रित रखता है।

सिलिएटा के कुछ आर्डरों में सिलिया जटिल अंगकों (complex organelle) का निर्माण करते हैं। **होलोट्राइका**
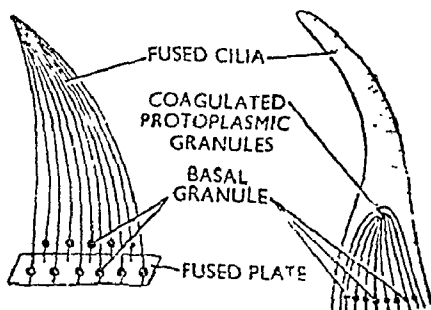
चित्र १०·११. युप्लोटीस मे कलाभ (membranelle) तथा रोमगुच्छ

(holotricha) में उर्मिल झिल्ली (undulating membrane), स्पाइरोट्राइका तथा **पेरिट्राइका** (Spirotricha and Peritricha) में **कलाभ** या **मेम्ब्रेनेल** (membranelle) तथा हाइपोट्राइका (hypotricha) में **रोमगुच्छ** (cirri) बनाते हैं।

4. मायोनीमीज (Myonemes)

मायोनीमी अत्यन्त सूक्ष्म तन्तुक हैं जो **फ्लेजेलेट, सिलिएटा,** स्पोरोजोआ तथा **इन्फ्यूसोरियन** जन्तुओं के बाह्य-द्रव्य में पाये जाते हैं तथा कुछ जटिल **सिलिएट्स** तथा **ग्रीगेरिन्स** में ये आन्तर-द्रव्य में भी फैले रहते हैं। ये विभिन्न दिशाओं में फैले रहते हैं तथा लम्बी, आड़ी-तिरछी और सर्पिल कतारों में समायोजित रहते हैं। मायोनीमीज चलन में सहायता करते हैं, किन्तु अधिकतर ये बाह्य प्रभावों से उत्तेजित होकर शरीर को सिकोड़ने का कार्य करते हैं।

प्रोटोजोआ के वर्गीकरण में चलन अंगों का महत्त्व
(Importance of Locomotory Organelle in the Classification of Protozoa)

प्रोटोजोआ में पाये जाने वाले विभिन्न चलन अंगक (locomotory organelle) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इन्हीं के आधार पर फाइलम प्रोटोजोआ का वर्गीकरण किया गया है जो निम्न प्रकार है :—

सबफाइलम 1. **प्लाज्मोड्रोमा (Plasmodroma)**—चलन अंगक—**पादाभ** अथवा कशाभ

क्लास 1. **फ्लेजेलेटा** या **मेस्टीगोफोरा** (Flagellata or Mastigophora)—चलन अंगक —**कशाभ**

क्लास 2. **सारकोडिना** या **राइजोपोडा** (Sarcodina or Rhizopoda)—चलन अगक —**पादाभ**

आर्डर 1. **लोबोसा** या **अमीबिना** (Lobosa or Amoebina)—पादाभ छोटे तथा अंगुलाकार—**लोबोपोडिया**

आर्डर 2. **फाइलोसा** (Filosa)—पादाभ तन्तुकाकार (filliform)—**फाइलोपोडिया**

आर्डर 3. **फोरामिनिफेरा** (Foraminifera)—पादाभ जालाकार—**रेटिक्युलोपोडिया या राइजोपोडिया**

आर्डर 4. हीलीओजोआ (Heliozoa)—पादाभ **एक्सोपोडिया**, मजबूत तथा किरणों के आकार के और प्रत्येक में एक अक्षीय तन्तु होता है।

आर्डर 5. **रेडियोलेरिया** (Radiolaria)—पादाभ **एक्सोपोडिया**, किन्तु इसमें अक्षीय तन्तु नहीं होता।

क्लास 3. स्पोरोजोआ (Sporozoa)—चलन अंगक अनुपस्थित। **मायोनीमीज** चलन में सहायता करते है।

सबफाइलम 2. **सीलियोफोरा (Ciliophora)**—चलन अंगक **रोमक**—जो जन्तुओं में सम्पूर्ण जीवन भर पाये जाते है अथवा केवल प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही मिलते हैं।

क्लास 4. सिलिएटा (Ciliata)—जन्तु के सम्पूर्ण जीवनकाल में **सीलिया** रहते हैं।

सबक्लास (अ) प्रोटोसिलिएटा (Protociliata)—समस्त रोमक एक ही परिमाण के होते हैं तथा शरीर पर समान रूप से फैले रहते हैं।

सबक्लास (ब) यूसिलिएटा (Euciliata)—रोमक भिन्न-भिन्न लम्बाई के होते है तथा शरीर पर समान रूप से फैले रहते हैं।

क्लास 5. सक्टोरिया (Suctoria)—सीलिया जन्तु की केवल प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही मिलते है तथा प्रौढ़ जन्तु में स्पर्शक होते हैं।

प्रश्न 27. आपके द्वारा अध्ययन किये गये प्रोटोजोआ में विभिन्न प्रकार की चलन विधियों का वर्णन करिये।

Describe various modes of locomotion in protozoan types studied by you. (*Gorakhpur 1965 ; Agra 58, 64, 65 ; Luck. 62, 68 ; Vikram 67 ; Shivaji 71 ; Gujrat 73*)

अमीवा, युग्लीना, पैरामीसियम एवम् मोनोसिस्टिस में चलन विधि का वर्णन कीजिये।

Describe the process of locomotion in *Amoeba, Euglena, Paramecium* **and** *Monocystis.* (*Luck. 1954, 61, 66 ; Punjab 64 ; Gorakhpur 61 ; Vikram 64 ; Allahabad 55, 60*)

प्रोटोजोआ समुदाय के अन्तर्गत आने वाले जन्तुओं में तीन विधियों द्वारा चलन होता है। प्रत्येक चलन विधि के लिए विशेष प्रकार के अंगकों की आवश्यकता होती है जो एक-एक क्लास की विशेषता बताते हैं। चलन विधियाँ निम्न है :—

1. अमीबॉयड (Amoeboid movement)
2. तैरना (Swimming)
   (अ) सिलियरी चलन (Ciliary locomotion)
   (ब) फ्लैजेलर चलन (Flagellar locomotion)
3. ग्लाइडिंग या मेटाबोली (Gliding or metaboly)

1. अमीबॉयड गति (Amoeboid Movement)

अमीबॉयड गति का सबसे अच्छा उदाहरण *अमीबा* है। इस गति में जन्तु के कोशिकाद्रव्य से अस्थायी प्रवर्ध निकलते है जो **पादाभ** कहलाते है। तत्पश्चात् जन्तु का समस्त कोशिकाद्रव्य बहकर इन नये पादाभों में पहुँच जाता है तथा जन्तु आगे
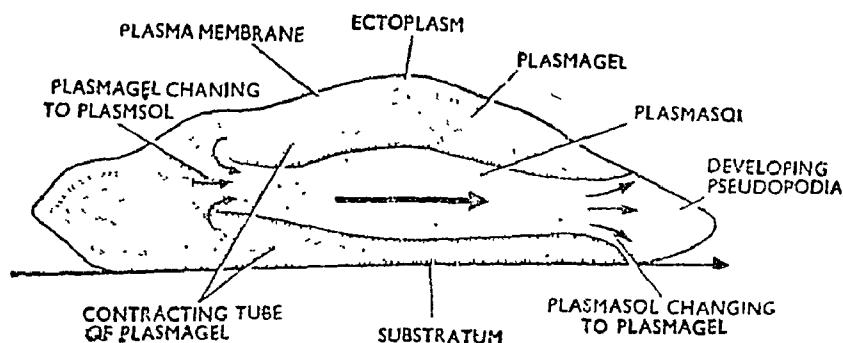
चित्र १०·१२. सोल-जैल द्वारा अमीवा की (अमीबॉयड) चलन विधि का स्पष्टीकरण (Diagrammatic representation of sol-gel theory of locomotion)

की ओर बढ़ता है। पादाभ दो प्रकार से बनते है :—

1. प्रोफ्लुएण्ट टाइप (Profluent type)—इस विधि में पादाभ बाह्य-द्रव्य

के उभरने से बनता है। इस नये बने छोटे तथा चपटे उभार में जन्तु का आन्तर-द्रव्य बहकर आ जाता है।

2. इरप्टिव टाइप (Eruptive type)—इसमें जन्तु के शरीर की सतह को तोड़कर उसका बाह्य-द्रव्य तथा आन्तर-द्रव्य वह निकलता है जिससे गोल पादाभ बन जाता है।

प्रोफ्लुएण्ट विधि द्वारा चलन **लोबोस प्रकार** (lobose type) का हो सकता है जिससे बहुत-से पादाभ एक ही दिशा में तथा एक साथ बनते हैं अथवा **लाइमेक्स प्रकार** (limax type) का जिसमें एक वार में केवल एक पादाभ बनता है। **इरप्टिव विधि** में केवल एक-एक पादाभ बनता है।

जीवद्रव्य के बहने से पादाभों के बनने तथा इसके फलस्वरूप जन्तु के स्थानान्तरण को **सोल-जेल सिद्धान्त** (sol-gel theory) द्वारा अथवा **श्यानता में परिवर्तन** (change in viscosity) द्वारा समझाया जा सकता है। यह सिद्धान्त **हाइमन** (Hymen) ने सन् 1917 में प्रतिपादित किया तथा **पेटिन** (Patin) एवम् **मास्ट** (Mast) ने उसका समर्थन किया। इसके अनुसार जन्तु का जीवद्रव्य दो स्तरों में बाँटा जा सकता है। बाहरी स्तर **प्लाज्माजेल** (plasmagel) का तथा भीतर का स्तर **प्लाज्मासोल** (plasmasol) का बना होता है। प्लाज्मासोल द्रवीय होता है और वह सकता है। जन्तु की अमीबॉयड गति जीवद्रव्य के बहने के कारण होती है और जीवद्रव्य के बहने की गति प्लाज्माजेल के प्लाज्मासोल में तथा प्लाज्मासोल के प्लाज्माजेल में परिवर्तित होने से होती है। इस प्रक्रिया को निम्न पदों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. पादाभ के अगले सिरे की प्लाज्मा मैम्ब्रेन पादाभ द्वारा निकले विशेष चिपकने वाले पदार्थ द्वारा आधार से चिपक जाती है।

2. पादाभ के अगले सिरे पर प्लाज्माजेल, प्लाज्मासोल में परिवर्तित हो जाता है।

3. प्लाज्मासोल इस कमजोर विन्दु पर से बाहर की ओर वह निकलता है और प्लाज्माजेल में बदलकर एक जिलेटिन की बनी नलिका (gelatinized tube) बना लेता है। यह पादाभ प्रवर्ध कहलाती है।

4. शरीर के पिछले सिरे पर प्लाज्माजेल, प्लाज्मासोल में परिवर्तित होकर नये बने पादाभ में बहता है, जहाँ यह पुनः प्लाज्माजेल में परिवर्तित हो जाता है।

यही क्रिया बार-बार दोहराई जाती है तथा जन्तु धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ता है। अमीबॉयड गति सबसे प्रारम्भिक (most primitive) प्रकार की गति है। इसके फलस्वरूप जन्तु एक सेकेण्ड में 2μ से 3μ तक आगे बढ़ता है।

अमीबा में चलन के विभिन्न सिद्धान्तों के लिए प्रश्न 3 देखिये।

तैरना (Swimming)

तैरने की क्रिया दो प्रकार के अंगकों से होती है :—

(अ) कशाभों या कशाभ द्वारा (by flagella)

(ब) सिलिया या पक्ष्मों द्वारा (by cilia)

(अ) कशाभ गति (Flagellar movement)—कशाभ गति पतले, लम्बे तथा अत्यन्त कुञ्चनशील कशाभ के लगातार निस्पंदन (beating) द्वारा उत्पन्न होती है। इसके फलस्वरूप जन्तु अपने लम्बवत् अक्ष (longitudinal axis) के चारों ओर घूमता है। कशाभ गति की क्रिया को वैज्ञानिको ने विभिन्न प्रकार से

समझाया है। इनमें से कुछ सिद्धान्त निम्न हैं :—

(*i*) **Screw propeller theory—Butschlli** के अनुसार, कशाभ की पार्श्व तथा सर्पिल गति एक चूड़ीदार पेच की गति के समान होती है। इस गति से जिस प्रकार पेच आगे बढ़ता है उसी प्रकार जन्तु भी आगे बढ़ता है।
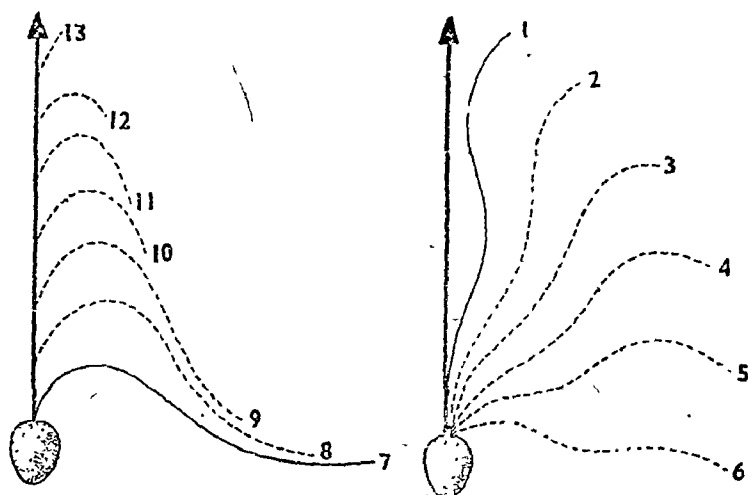
चित्र १०·१३. कशाभ गति में दो प्रावस्थाएँ
(अ) प्रभावी आघात (Effective stroke) (ब) उपलब्धि आघात (Recovery stroke)

(*ii*) **Circular beat theory—Metzner** के अनुसार, कशाभ की गति चक्रीय होती है। चक्र नीचे की ओर छोटे किन्तु ऊपर की ओर बड़े होते हैं, जिससे चक्र एक कोन (cone) के रूप में होते हैं। इनसे जो पानी की धारा उत्पन्न होती है वह शरीर को आगे धकेलती है।

(*iii*) **Sidewise lashing movement theory—Ulehla and Krijsmann** (1928) के अनुसार, कशाभ दोनों पार्श्व तलों में कोड़े के समान गति करता है, जिसमें दो आघात (strokes) होते हैं ; प्रथम प्रभावकारी अधोआघात या डाउन स्ट्रोक (down stroke) या **प्रभावी आघात** (effective stroke) तथा द्वितीय **उपलब्धि आघात** (recovery stroke)। प्रथम अवस्था में कशाभ झुका होता है तथा द्वितीय अवस्था में कशाभ सीधा हो जाता है। प्रभावी आघात में कशाभ थोड़ा-सा उत्तल होता है तथा कठोरता से आघात की दिशा में बाहर निकला रहता है। **उपलब्धि आघात** में कशाभ ढीला पड़ा रहता है तथा बहुत अधिक मुड़ा (strongly curved) होता है। इन्हीं आघातों के फलस्वरूप जन्तु आगे बढ़ता है। अधिकतर कशाभ थोड़ी-सी टेढ़ी दिशा में गति करता है जिससे कि आगे बढ़ने में जन्तु अपने लम्बवत् अक्ष के चारों ओर घूमता है।

कुछ एककशाभीय जन्तुओं (uniflagellate animals) की तीव्र गति कशाभ की सम्पूर्ण लम्बाई के साथ तरंगित गति के कारण होती है। इससे प्रणोदन बल (force of propulsion) उत्पन्न होता है तथा जन्तु आगे की ओर धकेल दिया जाता है। इसी प्रकार जब जन्तु पीछे की ओर चलता है तो कशाभ में तरंगों की दिशा आधार से शीर्ष की ओर हो जाती है। कशाभ के शीर्ष की तरंगों से जन्तु

धीरे-धीरे आगे बढ़ता है, किन्तु इसकी सर्पिल तरंगों से जन्तु अक्ष के चारों ओर घूमता है।

(ब) पक्ष्माभिकी गति (Ciliary movement)—पक्ष्माभिकी गति जीवद्रव्य से बने अत्यन्त सूक्ष्म धागे के समान प्रवर्धों से होती है तथा सिलिएट्स एवम् क्लास सक्टोरिया में देखने को मिलती है। पक्ष्माभिकी गति कशाभ गति के ही समान होती है। इसमे वही प्रभावी आघात एवम् उपलब्धि आघात होते है, किन्तु पक्ष्म अपनी पूरी लम्बाई में झुकता है। पानी उसी दिशा में चलता है जिस दिशा में पक्ष्म गति करता है, किन्तु जन्तु इसके विपरीत दिशा में चलता है।

चित्र १०·१४. पक्ष्म गति की अवस्थाएँ (Stages of ciliary movement)
A. प्रभावी आघात (effective stroke)
B. उपलब्धि आघात (recovery stroke)

शरीर के प्रत्येक पक्ष्म की गति स्वतन्त्र होती है। लम्बाई मे लगे एक पंक्ति के समस्त पक्ष्म एक साथ गति नही करते परन्तु इनकी गति मेटाक्रोनस (metachronous) होती है, अतः ये एक के पश्चात् एक गति करते है और गति की यह लहर आगे से पीछे की ओर चलती जाती है। इस प्रकार प्रणोदन (propulsion) की लहर शरीर के एक सिरे से प्रारम्भ होती है तथा दूसरे सिरे पर आकर समाप्त हो जाती है, किन्तु अनुप्रस्थ पंक्ति (transverse row) के समस्त पक्ष्म एक साथ (synchronous) गति करते हैं। जन्तु सर्पिलाकार रूप से आगे बढ़ता है तथा चलन की गति 40 से 200μ प्रति सैकेण्ड होती है। पक्ष्मों की गति मायोनीमीज या मायोफाइब्रिल (myonemes or myofibrillae) के जटिल संस्थान द्वारा नियन्त्रित की जाती है।

मेटाबॉली या ग्लाईडिंग गति (Metaboly or Gliding Movement)

स्पोरोजोआ जन्तुओं मे जिनमें कोई चलन अंग नहीं होते तथा कुछ अन्य जन्तुओं मे जिनमे मायोनीमीज पाये जाते है इस प्रकार की गति पायी जाती है। ये जन्तु शरीर के सकुचन से आगे बढ़ते है। वृन्तयुक्त जन्तु वृन्त के सिकुड़ने से स्थानान्तरण करते है। शरीर की मायोनीमीज सिकुड़ कर जन्तु का आकार परिवर्तित कर देती हैं तथा जन्तु अपने स्थान से कुछ आगे बढ़ जाता है। इन्ही मायोनीमीज की सहायता से
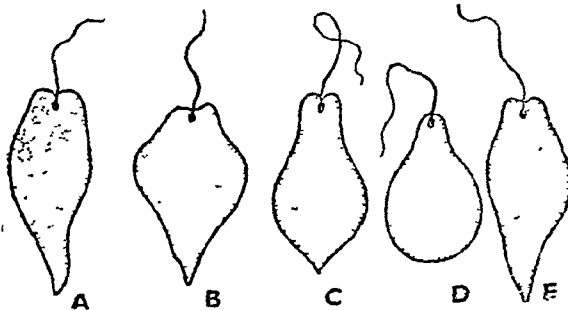
चित्र १०·१५. युग्लीनायड गति की विभिन्न अवस्थाएँ (Various stages in euglenoid movement)

परजीवी जन्तु पोषक के द्रव्य में तैरते हुए आगे बढ़ते है।

युग्लीना में शरीर के सिकुड़ने-फैलने का क्रमिक एकान्तरण क्रिया से **परिसर्पण गति** (wriggling movement) उत्पन्न होती है जिससे जन्तु आगे बढ़ता है। यह गति **युग्लीनायड गति** (euglenoid movement) कहलाती है।

प्रश्न 28. आपके द्वारा अध्ययन किये गये प्रोटोजोआ में विभिन्न प्रकार की पोषण विधियों पर एक निबन्ध लिखिये।

Write an essay on the modes of nutrition in Protozoa studied by you. *(Agra 1962 ; Gorakhpur 60, 62 ; Indore 67 ; Patna 69 ; Rajasthan 69 ; Nagpur 69)*

प्रोटोजोआ में विभिन्न प्रकार की पोषण विधियों का वर्णन करिये।

Describe the various modes of nutrition in Protozoa.

(Kerala 1969 ; Lucknow 59, 64 ; Agra 55, 58, 69)

उन विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये जिनके द्वारा वे प्रोटाजोआ जिनका आपने अध्ययन किया है भोजन ग्रहण करते हैं।

Describe the various modes by which the protozoan types studied by you receive their nutrition. *(Vikram 1969 ; Agra 54)*

अमीबा, युग्लीना, पैरामीसियम तथा मोनोसिस्टिस में भोजन क्रियाओं का वर्णन कीजिये।

Describe the modes of nutrition in ***Amoeba, Euglena, Paramecium*** **and** ***Monocystis.*** *(Jiwaji 1970 ; Kanpur 68)*

भोजन को ग्रहण करने, उसके पाचन तथा स्वांगीकरण की क्रिया को **पोषण** (Nutrition ; Lt., *nutrimentum*) कहते हैं। प्रोटोजोआ में निम्न छः प्रकार की पोषण विधियाँ देखी गई है।

1. जन्तु-सदृश (Holozoic or Zootrophic)
2. वनस्पति सदृश (Holophytic or Autotrophic)
3. मृतोपजीवी (Saprozoic or Saprophytic)
4. परजीवी (Parasitic)
5. कोपरोजोइक (Coprozoic)
6. मिक्जोट्राफिक (Mixotrophic)

1. जन्तु-सदृश पोषण (Holozoic nutrition)—अधिकांश स्वतन्त्रजीवी (free-living) प्रोटोजोआ में जन्तु-सदृश विधि से पोषण होता है जिसमें पहले से तैयार ठोस भोजन-पदार्थ के रूप में माइक्रो-ऑरगेनिज्म (micro-organisms), शैवाल, बैक्टीरिया, यीस्ट, प्रोटोजोआ तथा अन्य सूक्ष्म मेटाजोआ ग्रहण किये जाते हैं। *अमीबा, पैरामीशियम,* आदि इस विधि द्वारा पोषण के अच्छे उदाहरण है। पोषण प्रकिया में तीन निश्चित पद होते हैं।

(*i*) भोजन पकड़ना तथा उसका अन्तर्ग्रहण (food capture and its ingestion)

(*ii*) पाचन तथा स्वांगीकरण (digestion and assimilation)

(*iii*) वहिष्करण (egestion)

भोजन पकड़ना तथा उसका अन्तर्ग्रहण (Food capture and its ingestion)—जन्तु-सदृश पोषण विधि में भोजन पकड़ने के लिए जन्तुओं में विशेष अंगक पाये जाते हैं, किन्तु अधिकतर चलन अंग ही भोजन पकड़ने का भी कार्य करते है।

अमीवा में मुख तथा भोजन पकड़ने के लिए विशेष अंग नहीं होते, अत: भोजन शरीर के किसी भी भाग द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। पादाभ ही भोजन पकड़ने का कार्य करते हैं। अन्तर्ग्रहण निम्न विधियों द्वारा होता है :—

(*i*) **सरकमवैलेशन** (Circumvallation)—इस विधि द्वारा *अमीवा* फुर्तीले शिकारों को पकड़ता है। भोज्य-जन्तु के सम्पर्क में आने पर *अमीवा* पादाभ बनाकर उसको दोनों ओर से घेर लेता है और इस प्रकार वह एक प्याले के समान रचना बना लेता है। इसके दोनों सिरे मिलकर भोजन को चारों ओर से घेर लेते हैं और खाद्यरिक्तिका (food vacuole) बनाते हैं।

(*ii*) **सरकमफ्लूयेन्स** (Circumfluence)—इस विधि में *अमीवा* का जीवद्रव्य अचल खाद्य पदार्थों के ऊपर से बहकर भोजन को चारों ओर से घेर लेता है। **हीलिओजोआ** (*Heliozoa*) तथा **रेडियोलेरिया** (*Radiolaria*) के एक्सोपोडिया तथा रेटिक्युलोपोडिया इस विधि द्वारा भोजन पकड़ते हैं।

(*iii*) **इन्वेजिनेशन** (Invagination)—पादाभों द्वारा उत्पन्न विषैले पदार्थ से अमीवा खाद्य पदार्थ को मार देता है और इसके पश्चात् सम्पर्क बिन्दु के पास बाह्यद्रव्य में खाई बननी प्रारम्भ हो जाती है जो धीरे-धीरे आन्तर-द्रव्य में बढ़ती चली जाती है। इसी खाई के साथ-साथ खाद्य-पदार्थ डूबता चला जाता है और आन्तर-द्रव्य में पहुँचकर खाद्यरिक्तिका बन जाती है।

(*iv*) **इम्पोर्ट** (Import)—शैवाल के तन्तु इत्यादि को *अमीवा* इस विधि द्वारा ग्रहण करता है।

मेस्टीगोफोरा में भोजन का अन्तर्ग्रहण एक निश्चित बिन्दु पर होता है। यह बिन्दु कशाभ के आधार पर स्थित होता है—जैसे *मोनास* (*Monas*) में; अथवा एक सरल द्वार कोशिकामुख (cytostome) होता है जो नालाकार कोशिकाग्रसनी द्वारा आन्तर-द्रव्य में खुलता है; उदाहरण : *युग्लीना* (*Euglena*)। कशाभ की गति द्वारा खाद्य-पदार्थ मुख की ओर पहुँचते हैं। **हाइपरमेस्टिजिना** (*Hypermastigina*) के फ्लैजेलेट्स में भोजन पादाभों द्वारा पकड़ा जाता है।

सिलिएटा में भोजन पकड़ने के अंगक अत्यन्त जटिल होते हैं तथा इनमें निश्चित **कोशिका-मुख** (cytostome) होता है। कुछ जन्तुओं (*पैरामीसियम*) में भोजन-मार्ग (food passage) के विशेष रोमक **फैरिन्जियल बास्केट** (pharyngeal basket) बनाते हैं। *वार्टिसीला* में एकमात्र पेरिस्टोम या परितुण्ड (peristome) नामक रचना बनती है जो खाद्य-पदार्थों को कोशिकाग्रसनी में पहुँचाती है। फैरिन्जयल या ग्रसनी बास्केट तथा परितुण्ड या पेरिस्टोम पर विशेष प्रकार के पक्ष्म अथवा ऊर्मिल झिल्ली पायी जाती है जो जलधाराएँ पैदा करती है और इस प्रकार खाद्य पदार्थों को कोशिकाग्रसनी में पहुँचाती है।

सक्टोरिया में स्पर्शक ही भोजन पकड़ने में सहायक होते हैं। ये शिकार को बेहोश कर उसके द्रवीय पदार्थ को शोषित कर लेते हैं।

पाचन (Digestion)—इन जन्तुओं में पाचन **आन्तर-कोशीय** (intra-cellular) होता है। पाचन क्रिया या तो आन्तर-द्रव्य में अन्यथा खाद्यरिक्तिका में होती है। खाद्यरिक्तिका के चारों ओर का आन्तर-द्रव्य एन्जाइम उत्पन्न करता है जो खाद्यरिक्तिका में पहुँचकर भोजन से मिल जाता है। खाद्यरिक्तिका का माध्यम पहले अम्लीय होता है जिसमें शिकार मर जाता है। इसके पश्चात् यह क्षारीय हो जाता है जिसमें भोजन के विभिन्न अवयवों का पाचन होता है। फाइलम प्रोटोजोआ

के जन्तुओं में ट्रिपसिन, पेपसिन, अमाइलेज इत्यादि के समान एन्जाइम देखे गये हैं, जिनके द्वारा कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा सेलूलोस का पाचन होता है। कुछ जन्तुओं में वसा का पाचन भी होता है।

स्वांगीकरण (Assimilation)—पचा हुआ भोजन वितरण द्वारा (by diffusion) कोशिकाद्रव्य में मिल जाता है। कोशिकाद्रव्य की तरंगित गति (streaming movement) के द्वारा खाद्यरिक्तिकाएँ कोशिकाद्रव्य में घूम-घूम कर शरीर के प्रत्येक भाग को भोजन वितरित करती हैं। *पैरामीसियम* मे कोशिकाद्रव्य के भीतर खाद्यरिक्तिका निश्चित मार्ग अपनाती है तथा *अमीबा* में इसका मार्ग अनिश्चित होता है।

बहिष्करण (Egestion)—*अमीबा* के समान जन्तुओं में अपच भोजन पदार्थ शरीर के किसी भाग से बाहर फेंक दिया जाता है। *पैरामीसियम* तथा सिलिएट्स में एक निश्चित **गुदाद्वार** (anal spot or cytopyge) होता है। यह रचना एक अस्थिर छिद्र हो सकता है जो केवल बहिष्करण के समय ही दिखाई देता है (*पैरामीसियम*), अथवा एक स्थिर या निश्चित छिद्र होता है जिसके साथ एक छोटी **रेक्टल कैनाल** (rectal canal) या **साइटोप्रोक्ट** (cytoproct) होती है ; उदाहरण : *बैलेण्टिडियम* तथा *निक्टोथीरस* (*Balantidium* and *Nyctotherus*)।

2. वनस्पति-सदृश पोषण (Holophytic nutrition)—वनस्पति-सदृश पोषण केवल **फाइटोमेस्टिजिना** (phytomastigina) क्लास के जन्तुओं में देखा गया है जिनके कोशिकाद्रव्य में क्लोरोप्लास्ट होते हैं। क्लोरोफिल की उपस्थिति में ये CO_2 तथा पानी से सूर्य के प्रकाश में विशेष प्रकार का स्टार्च पैराग्लाइकोजन (paraglycogen) बनाते हैं। इस क्रिया में CO_2 कार्बन तथा आक्सीजन में टूट जाती है। कार्बन तथा अन्य अकार्बनिक पदार्थों के साथ संयोग करके प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं तथा O_2 शरीर के बाहर निकाल दी जाती है।

3. मृतजीवी पोषण (Saprozoic nutrition)—विभिन्न परजीवी तथा कुछ स्वतन्त्रजीवी प्रोटोजोआ, जो कार्बनिक यौगिकों के घोल में रहते हैं इस विधि द्वारा पोषण करते है। इनमें भोजन पकड़ने तथा अन्तर्ग्रहण के लिए कोई विशेष अंग नहीं होते। पानी में घुले कार्बनिक यौगिक विसरण विधि द्वारा कोशिका में पहुँचते हैं। *एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका*, *बैलेण्टिडियम* तथा अन्य परजीवी प्रोटोजोआ में मृतजीवी तथा जन्तु-सदृश दोनों प्रकार का पोषण पाया जाता है।

4. परजीवी पोषण (Parasitic nutrition)—परजीवी प्रोटोजोआ अपना भोजन जन्तु-सदृश अथवा मृतजीवी विधि द्वारा पोषक के पूर्ण या अधपचे भोज्य पदार्थों से लेते हैं। भोज्य पदार्थ की किस्मों के अनुसार परजीवी प्रोटोजोआ दो प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **भोजन चुराने वाले** (Food robbers)—इस क्लास के जन्तु पोषक की आहार-नाल में पाये जाने वाले पचे हुए भोजन को जन्तु-सदृश विधि द्वारा खाते है [*e.g. बैलेण्टिडियम* (*Balantidium*) तथा *निक्टोथीरस* (*Nyctotherus*)] अथवा मृतजीवी विधि द्वारा [(*e.g. ओपेलिना* (*Opalina*)]।

(*ii*) **रोगजनक** (Pathogenic)—इस क्लास के जन्तु पोषक के जीवित ऊतकों को खाते है तथा विभिन्न प्रकार की भयानक बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं। इनमे से कुछ जैसे *एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका* जन्तु-सदृश विधि द्वारा भोजन लेते हैं तथा कुछ जैसे *प्लाज्मोडियम* तथा *ट्राइपेनोसोमा* (*Plasmodium* and *Trypanosoma*)

मृतजीवी विधि द्वारा।

अन्य पोषण विधियाँ (Other Modes of Nutrition)

(*i*) कोपरोजोइक (Coprozoic)—कुछ स्वतन्त्रजीवी प्रोटोजोआ अन्य जन्तुओं के अपच भोज्य पदार्थों या विष्ठा को अपना भोजन वनाते हैं।

(*ii*) मिक्जोट्रॉफिक (Mixotrophic)—कुछ प्रोटोजोआ में एक से अधिक पोषण विधियाँ पायी जाती हैं। ये जन्तु मिक्जोट्राफिक कहलाते हैं।

प्रश्न 29. आपके द्वारा अध्ययन किये गये प्रोटोजोआ में विभिन्न जनन विधियों का वर्णन करिये।

Describe the various modes of reproduction found in Protozoa studied by you. (*Agra 1957, 70 ; Gorakhpur 59, 63 ; Lucknow 57, 58 ; Bombay 69*)

उन प्रोटोजोआ में जिनका आपने अध्ययन किया है, जनन विधियों का वर्णन करिये।

Describe in brief the various modes by which the Protozoa studied by you propagate their kinds. (*Agra 1965*)

प्रोटोजोआ में विभिन्न अलैंगिक जनन विधियों का वर्णन करिये।

Describe the different types of asexual reproduction in Protozoa. (*Lucknow 1971*)

जनन (Reproduction)

प्रत्येक जन्तु की यह सहज इच्छा होती है कि वह जनन द्वारा अपनी जाति की वृद्धि करे। जन्तु-जगत् के विभिन्न समुदायों के जन्तुओं में जनन की विभिन्न विधियाँ पायी जाती हैं, किन्तु केवल प्रोटोजोआ समुदाय में वहुत-सी विधियों द्वारा जनन होता है। यह कुछ जन्तुओं में अत्यन्त सरल तथा अन्यों में अत्यन्त जटिल होता है, किन्तु प्रत्येक दिशा में यह उच्च श्रेणी के जन्तुओं मे पाये जाने वाले कोशिका-भाजन के समरूप है तथा सदैव ही केन्द्रक भाजन से प्रारम्भ होता है।

प्रोटोजोआ में पायी जाने वाली विभिन्न जनन विधियाँ चार श्रेणियों में वाँटी जा सकती हैं—

1. अलैंगिक जनन (Asexual reproduction)
2. लैंगिक जनन (Sexual reproduction)
3. केन्द्रक पुनर्गठन (Nuclear reorganisation)
4. जनन की अन्य विधियाँ (Other methods of reproduction)

1. अलैंगिक जनन (Asexual reproduction)

साधारणतया समस्त प्रोटोजोआ अपने जीवन-चक्र में कभी न कभी अलैंगिक विधि द्वारा अवश्य विभाजित होते हैं। अलैंगिक जनन निम्न पाँच प्रकार का होता है :—

(*i*) **द्विविभाजन** (Binary fission)—एक पैतृक कोशिका का दो लगभग समान संतति-कोशिकाओं में विभाजित होना **द्विविभाजन** (binary fission) कहलाता है। सर्वप्रथम केन्द्रक विभाजित होता है, उसके पश्चात् जन्तु का शरीर। कोशिका-द्रव्य में पायी जाने वाली रचनाएँ या तो विभाजित होकर दो संतति अंगक वना लेती हैं, या किसी एक संतति कोशिका द्वारा रख ली जाती हैं तथा दूसरी संतति कोशिका में ये नयी वना ली जाती हैं अथवा दोनों संतति कोशिकाओं द्वारा आधी-आधी रख ली जाती हैं तथा शेष अपूर्ण भाग वाद में पूर्ण कर लिये जाते हैं, किन्तु कुछ दशाओं में

रचनाएँ पूर्णतया कोशिका-द्रव्य में शोषित कर ली जाती है तथा बाद में दोनों संतति कोशिकाओं में नयी बनती हैं।

शरीर के कोशिकाद्रव्य के विभाजन का अक्ष विभिन्न जन्तुओं तथा विभिन्न समुदायों में भिन्न-भिन्न होता है। इसी के आधार पर द्विविभाजन निम्न प्रकार का होता है :—

(*a*) **सरल द्विविभाजन** (Simple binary fission)—*अमीबा* तथा सारकोडाइना क्लास के जन्तुओं में विभाजन के अक्ष को निश्चित नही किया जा सकता तथा इसमें विभाजन के समय कोई विशेष घटना नही होती।

(*b*) **लम्बवत् द्विविभाजन** (Longitudinal binary fission)—फ्लैजेलेट्स (flagellates), *युग्लीना* तथा पेरीट्राइकस सिलिएट्स (peritrichous ciliates)—*वॉर्टिसीला*, आदि में विभाजन अक्ष तन्तु की लम्बाई के समान्तर होता है।
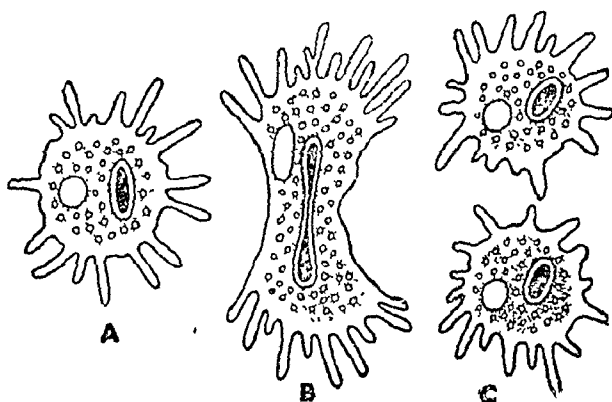
चित्र १०·१६. अमीबा में सरल द्विविभाजन (Simple binary fission in *Amoeba*)

(*c*) **अनुप्रस्थ द्विविभाजन** (Transverse binary fission)—अधिकांश सिलिएट्स जैसे *पैरामीसियम* में शरीर अनुप्रस्थ दिशा में दो भागों में बँट जाता है।

चित्र १०·१७ वॉर्टिसीला में लम्बवत् द्विविभाजन (Longitudinal binary fission in *Vorticella*)

(*d*) **तिरछा द्विविभाजन** (Oblique binary fission)—डायनोफ्लैजेलेटा (Dinoflagellata)—*सिरेसियम* (*Ceratium*) में जन्तु का विभाजन अक्ष तिरछा होता है।

(*e*) कुछ जन्तुओं जैसे *क्लेमाइडोमोनास* (*Chlamydomonas*) में पहले द्विविभाजन से बने दोनों संतति जन्तु अलग न होकर बार-बार द्विविभाजन विधि से विभाजित होते रहते है जिससे चार या चार से अधिक जन्तुओं का समुदाय-सा बन जाता है।

(*f*) **परिकोष्ठित द्विविभाजन** (Encysted binary fission)—कुछ सिलिएट्स जैसे—*कोलपोडा* (*Colpoda*), *टिलिना* (*Tillina*) इत्यादि परिकोष्ठित अवस्था

में विभाजित होते हैं।

(*ii*) **बहुविभाजन** (Multiple fission)—बहुविभाजन में जन्तु का केन्द्रक बार-बार समसूत्रण विभाजन द्वारा या खंडीभवन (fragmentation) द्वारा बहुत-से छोटे-छोटे केन्द्रकों में बँट जाता है। ये संतति केन्द्रक जन्तु की परिधि पर फैल जाते हैं और प्रत्येक केन्द्रक के चारों ओर कोशिकाद्रव्य एकत्रित हो जाता है। इस प्रकार बनी रचनाएँ **स्यूडोपोडीस्पोर** (pseudopodispore) कहलाती हैं। इनकी संख्या विभिन्न जन्तुओं में भिन्न-भिन्न होती है तथा यह संख्या हजारों तक पहुँच सकती है। पैतृक शरीर के फटने पर ये स्वतन्त्र हो जाते हैं और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते हैं।
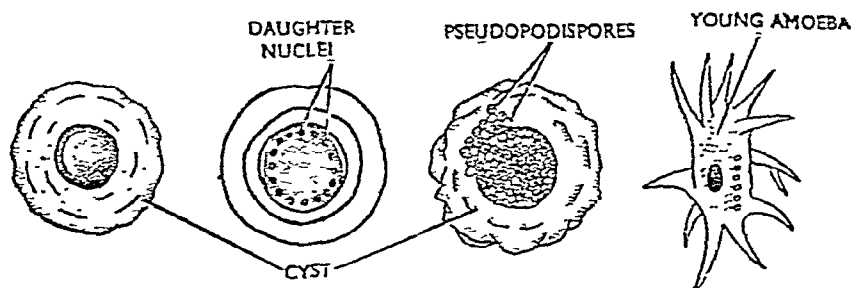
चित्र १०·१८. अमीबा में बहुविभाजन (Multiple fission in *Ameoba*)

जीवन-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में बहुविभाजन पाया जाता है तथा संतति कोशिकाएँ उसी के अनुसार नामांकित की जाती हैं।

(*a*) **खण्ड विभाजन या अयुग्मकजनन** (Schizogony or agamogony)—बहुविभाजन जब लैंगिक चक्र में होता है तो खण्ड विभाजन कहलाता है। इसके फलस्वरूप बनी संतति कोशिकाएँ **बीजाणुजनक** (schizogonts) या **अयुग्मकजनक** (agamogonts) कहलाती हैं तथा नीचे ही प्रौढ़ जन्तु में रूपान्तरित हो जाती हैं। उदाहरण : *प्लाज्मोडियम* (*Plasmodium*)।

(*b*) **युग्मकजनन** (Gamogony)—जब बहुविभाजन के फलस्वरूप युग्मक (gametes or sex cells) बनते हैं तो यह विभाजन युग्मकजनन कहलाता है।

(*c*) **बीजाणुजनन** (Sporogony)—जब युग्मज अर्थात् जाइगोट का केन्द्रक बहुविभाजन विधि से बँटता है तो यह विभाजन **बीजाणुजनन** कहलाता है तथा इस प्रकार बनी सतति कोशिकाएँ **बीजाणु** (spores) कहलाती हैं। इनका बाहरी आवरण मोटा तथा काइटिन का बना होता है।

जब बहुविभाजन विधि से बने जन्तु चलनशील (motile) होते हैं तो **स्वार्मर** (swarmer) या **स्वार्मस्पोर** (swarmspore) कहलाते हैं। जिन पर कशाभ होते हैं वे **फ्लेजेलोस्पोर** (flagellospore) तथा जिनमें पादाभ होते हैं वे **स्यूडोपोडीस्पोर** या **अमीबोस्पोर** (pseudopodispore or amoebospore) कहलाते हैं।

(*iii*) **कलिकोत्पादन** (Budding)—कलिकोत्पादन एक प्रकार का विभाजन है जिसमें एक या एक से अधिक छोटे जन्तु पैतृक कोशिका से अलग होते हैं तथा पैतृक कोशिका से अलग होकर या उससे जुड़े हुए ही प्रौढ़ जन्तु बना लेते हैं। **सक्टोरिया** (Suctoria) में कलिकोत्पादन नियमित रूप से होता है, किन्तु कुछ अन्य जन्तुओं में यह कभी-कभी पाया जाता है। जब एक बार में केवल एक कली बनती है तो यह क्रिया **एकल जेम्मेशन** (single gemmation) कहलाती है, किन्तु जब

एक वार में वहुत-सी कलिकाएँ वनती हैं तो यह क्रिया **बहुगुणित जेम्मेशन** (multiple gemmation) कहलाती है। ये कलिकाएँ जब शरीर की वाहरी सतह से वनती है
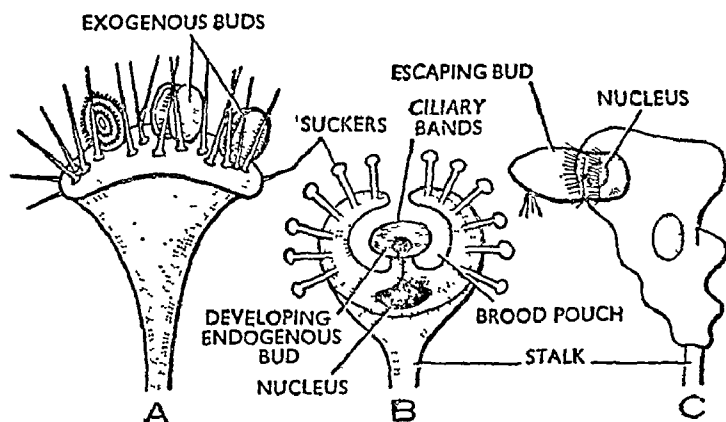
चित्र १०·१९. एफीलोटा में कलिकोत्पादन (Budding in *Ephelota*)

तो **वहिर्जात कलिकाएँ** (exogenous buds) कहलाती हैं ; उदाहरण : *अकेन्थोसिस्टिस* (*Acanthocystis*), *नाक्टिल्युका* (*Noctiluca*) तथा *एण्टअमीवा* (*Entamoeba*)। जब कलिकाएँ शरीर के भीतर पाये जाने वाले विशेष स्थानों में वनती हैं तो ये **आन्तर्जात कलिकाएँ** (endogenous buds) कहलाती है। ये विशेष स्थान ब्रूड चैम्वर (brood chambers) कहलाते है ; उदाहरण *टेस्टेसिया* (*Testacea*), *स्पोरोजोआ* (*Sporozoa*) तथा *सक्टोरिया* (*Suctoria*)।

(*iv*) **प्लाज्मोटोमी** (Plasmotomy)—कुछ वहुकेन्द्रक प्रोटोजोआ (multinuclear protozoa), जैसे *ओपेलिना* (*Opalina*), कुछ सारकोडिना (Sarcodina) तथा वहुत-से आन्त्र मे पाये जाने वाले मिक्जोस्पोरिडिया (Myxosporidia) में इस विधि द्वारा जनन होता है। इस विधि में जन्तु का वहुकेन्द्रक शरीर दो या दो से अधिक वहुकेन्द्रक जन्तुओं में वँट जाता है। इसमें केन्द्रक विभाजन (nuclear division) नहीं होता है। इस प्रकार वने संतति जन्तुओं में विभाजन द्वारा केन्द्रकों की पुनः प्रारम्भिक संख्या प्राप्त कर ली जाती है।
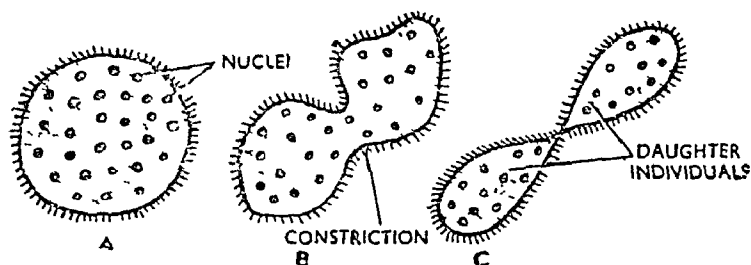
चित्र १०·२०. ओपेलिना में प्लाज्मोटोमी (Plasmotomy in *Opalina*)

2. लैंगिक जनन (Sexual Reproduction)

अधिकांश प्रोटोजोआ में अलैंगिक विधि के अतिरिक्त मेटाजोआ के समान लैंगिक जनन भी होता है। यह जनन तीन प्रकार का होता है :—

(*i*) सिनगैमी (Syngamy)
(*ii*) कॉन्जूगेशन (Conjugation)
(*iii*) ग्राटोमिक्सिस (Automixis)

(*i*) **सिनगैमी या युग्मक-संलयन** (Syngamy)—यह दो युग्मकों (gametes) या लिंग कोशिकाओं का पूर्ण मिलन (complete fusion) या समेकन है जिससे युग्मज का निर्माण होता है। समेकित युग्मक (fusing gametes) देखने में एक समान या अनेक प्रकार से भिन्न हो सकते हैं। इस आधार पर सिनगैमी निम्न प्रकार की हो सकती है :—

(*a*) **होलोगैमी** (Hologamy)—इसमें दो पूर्ण परिपक्व जन्तुओं का संलयन होता है जो रचना तथा अन्य विशेषताओं में साधारण जन्तु के समान होते हुए भी युग्मक कहलाते हैं क्योंकि उनका व्यवहार साधारण जन्तुओं से भिन्न होता है। उदाहरण : क्लास **राइजोपोडा** तथा **फ्लैजेलेटा** के जन्तु।

(*b*) **पीडोगैमी** (Paedogamy)—यदि समेकित जन्तु किशोर अथवा नये बने हों अर्थात् प्रौढ़ जन्तु की अपेक्षा छोटे तथा कम आयु के हों तो उनका समेकन **पीडोगैमी** कहलाता है।

(*c*) **मीरोगैमी** (Merogamy)—इसमें लिंग कोशिकाएँ या युग्मक (sex cells or gametes) साधारण जन्तु के विभाजन से बनते हैं। ये युग्मक आकार तथा रचना में साधारण जन्तु से भिन्न होते हैं।

(*d*) **समयुग्मन या आइसोगैमी** (Isogamy)—इसमें समेकित युग्मक आकार, परिमाण तथा रचना में समान होते हैं तथा आइसोगैमीट या समयुग्मक कहलाते हैं। ये अधिकतर फोरामिनिफेरा (*Foraminifera*), फाइटोमोनेडिना (*Phytomonadina*) तथा ग्रीगेरिनिडा (*Gregarinida*) में पाये जाते हैं।

(*e*) **असमयुग्मन या एनाइसोगैमी** (Anisogamy)—एनाइसोगैमी में समेकित होने वाले युग्मक आकार, रचना तथा व्यवहार में भिन्न-भिन्न होते हैं तथा एनाइसोगैमीट या असमयुग्मक (anisogametes) कहलाते हैं। उनका समेकित होना एनाइसोगैमी होता है। अधिकतर नर युग्मक छोटे, गतिशील होते हैं तथा उन पर फ्लैजेला होते हैं। ये **लघुयुग्मक** (microgametes) कहलाते हैं। मादा युग्मक बड़े और गतिहीन होते हैं। इनमें भोजन एकत्रित रहता है। *एनाइसोगैमीट, स्पोरोजोआ* (*Sporozoa*) तथा फाइटोमोनेडिना (*Phytomonadina*) में होते हैं।

(*f*) **लघुयुग्मक संयुग्मन या माइक्रोगैमी** (Microgamy)—कुछ फोरामिनिफेरा (Foraminifera) तथा आरसेला (*Arcella*) में दो प्रकार के युग्मक बनते हैं। जब एक जन्तु के लघुयुग्मक दूसरे जन्तु के लघुयुग्मक से संयोग करते हैं तो यह **समेकन लघुयुग्मक जनन** कहलाता है।

(*g*) **गुरुयुग्मक जनन या मैक्रोगैमी** (Macrogamy)—जब किसी जाति के गुरुयुग्मक समेकित होते हैं तो उनका संयुग्मन गुरुयुग्मकजनन कहलाता है।

(*h*) **स्वसंयुग्मन** (Autogamy)—एक पैतृक कोशिका से बने दो युग्मकों का स्थायी समेकन (fusion) **स्वसंयुग्मन** (autogamy) कहलाता है। उदाहरण : ए क्टिनोफ्रिस (*Actinophrys*) तथा एक्टिनोस्फीरियम (*Actinosphaerium*)।

(*i*) **एक्सोगैमी** (Axogamy)—यह एक ही जाति के दो भिन्न-भिन्न जन्तुओं के बने युग्मकों के मिलन की क्रिया है।

सिनगैमी का महत्त्व (Significance of syngamy)—सिनगैमी से दो

विभिन्न जन्तुओं के केन्द्रको का मिलन होता है, अतः

(क) इसमे दो विभिन्न प्रकार के आनुवंशिक गुण एक साथ आ जाते है ।

(ख) इससे सन्तानो (offsprings) मे भिन्नताएँ बढती है ।

(ग) बार-बार अलैंगिक द्विविभाजन से जन्तु की जो शक्ति तथा कार्यक्षमता क्षीण हो जाती है, सिनगैमी के फलस्वरूप पुनः प्राप्त कर ली जाती है ।

(घ) केन्द्रकों के समेकन के फलस्वरूप अण्डे का वर्धन प्रारम्भ होता है ।

(ii) **कञ्जूगेशन या संयुग्मन** (Conjugation)—कञ्जूगेशन एक ही जाति के किन्तु दो विभिन्न समागम करने वाले (mating type) जन्तुओं का अस्थायी सयुग्मन है जिससे कि उनके केन्द्रक पदार्थो का आदान-प्रदान हो सके । कञ्जूगेशन के समय दोनो जन्तु अलग-अलग दृष्टिगत होते है तथा केन्द्रक पदार्थ के आदान-प्रदान के पश्चात् अलग हो जाते है । ये जन्तु **संयुग्मी** (conjugants) कहलाते है । ये एक समान (isogamous) भी हो सकते है, जैसे—*वॉर्टिसीला* (*Vorticella*) । कञ्जूगेशन केवल *यूसिलिएटा* (*Euciliata*) तथा *सक्टोरिया* (*Suctoria*) मे पाया जाता है ।

कञ्जूगेशन का महत्त्व (Significance of conjugation)—कञ्जूगेशन जाति की वृद्धि न होकर एक प्रकार की जनन क्रिया है । इसके फलस्वरूप :

(क) केन्द्रक पदार्थो (nuclear materials) के संयुग्मन से नये आनुवंशिक गुणों का समेकन होता है ।

(ख) कॉञ्जूगेशन द्वारा जन्तु अपनी खोई शक्ति पुनः प्राप्त कर लेता है ।

(ग) पुराने गुरुकेन्द्रक के स्थान पर नये गुरुकेन्द्रक के बनने से जन्तु की उपापचय क्रियाओ की गति तीव्र हो जाती है ।

(iii) **एकजयुग्मन** (Automixis)—एक ही केन्द्रक के विभाजन से बने दो सतति केन्द्रकों के संयुग्मन की क्रिया को **एकजयुग्मन** कहते है । यह निम्न प्रकार का होता है :—

(a) **स्वयुग्मन** (Autogamy) इसमे समेकित होने वाले केन्द्रक एक ही कोशिका केन्द्रक से बनते है । उदाहरण : *पैरामीशियम ओरेलिया* (*Paramecium aurelia*) । इसके केन्द्रक मे होने वाले परिवर्तन कञ्जूगेशन के समान ही होते है किन्तु एक ही जन्तु के दोनों पूर्वकेन्द्रक समेकित होते है ।

(b) **पीडोगैमी** (Paedogamy)—इसमे एक ही जन्तु की दो विभिन्न कोशिकाओ से आने वाले केन्द्रको मे समेकन होता है । **बेलर** (Belar) ने *एक्टिनोफ्रिस* (*Actinophrys*) मे इसका वर्णन किया है ।

एक जन्तु परिकोष्ठित होकर दो या दो से अधिक युग्मकजनक (gametocytes) बना लेता है । इन युग्मकजनको के केन्द्रक अर्धसूत्रण विधि द्वारा विभाजित होकर युग्मक बनाते हें जो समेकन द्वारा युग्मज बनाते है ।

(c) **साइटोगैमी या कोशिका-संगम** (Cytogamy)—*पैरामीसियम* की विभिन्न जातियो मे साइटोगैमी विधि द्वारा जनन होता है । यह ऑटोगैमी तथा कञ्जूगेशन के बीच की अवस्था प्रदर्शित करती है । इसमे दो जन्तु अपने मुख-तल द्वारा एक-दूसरे के सम्पर्क मे आते है । इनके केन्द्रकों में कञ्जूगेशन के समान ही परिवर्तन होते है, किन्तु उसके पश्चात् केन्द्रक पदार्थ का आदान-प्रदान नही होता है । एक ही जन्तु के दोनो युग्मक केन्द्रक एक साथ मिलकर युग्मज बनाते है ।

3. केन्द्रक पुनर्गठन (Nuclear Reorganisation)

कुछ जन्तुओं, जैसे पैरामीसियम में लैंगिक जनन की अनुपस्थिति में कुछ केन्द्रक पुनर्गठन की क्रियाएँ होती हैं, जैसे—

(*i*) **एण्डोमिक्सिस** (Endomixis)—एण्डोमिक्सस एक प्रकार का केन्द्रक पुनर्गठन है जिसमें अर्ध-सूत्रण विभाजन (meiosis) तथा केन्द्रकों का समेकन (fusion) नहीं होता। *पैरामीसियम ओरेलिया* (*Paramecium aurelia*) में यह नियमित रूप से पाया जाता है, किन्तु यह अधिकतर कन्जूगेशन की अनुपस्थिति में अथवा उसमें कारणवश देर हो जाने पर होता है। इसमें केवल एक ही जन्तु के भीतर केन्द्रक परिवर्तन होते हैं। केन्द्रक परिवर्तनों के फलस्वरूप लघुकेन्द्रक से नया गुरुकेन्द्रक बनता है जिससे जन्तु की उपापचय क्रियाओं की गति तीव्र हो जाती है तथा क्षीण होती हुई शक्ति जन्तु को पुनः प्राप्त हो जाती है।

(*ii*) **हेमिक्सिस** (Hemixis)—*पैरामीसियम* की कुछ जातियों में गुरुकेन्द्रक से क्रोमेटिन के छोटे-छोटे टुकड़े अलग होकर कोशिकाद्रव्य में मिल जाते हैं तथा बचा हुआ गुरुकेन्द्रक पुनः अपना कार्य आरम्भ कर देता है।

4. जनन की अन्य विधियाँ (Other Methods of Reproduction)

(*i*) **पुनर्जनन** (Regeneration)—प्रोटोजोआ में शरीर के नष्ट हुए भागों के पुनर्निमाण की क्षमता होती है, किन्तु परजीवी प्रोटोजोआ में यह शक्ति बहुत कम या नहीं के बराबर होती है। शरीर का कोई भी छोटे से छोटा टुकड़ा जिसमें जीवद्रव्य के दोनों स्तर हों तथा केन्द्रक का खंड हो पूर्ण नये जन्तु का निर्माण कर सकता है।

(*ii*) **असेचनजनन** (Parthenogenesis)—*एक्टीनोफ्रिस* (*Actinophrys*) तथा *क्लैमाइडोमोनास* (*Chlamydomonas*) इत्यादि के जिन युग्मकों में निषेचन नहीं हो पाता वे बिना निषेचन के ही प्रौढ़ जन्तु में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार का जनन **असेचन जनन** कहलाता है।

(*iii*) **प्लाज्मोगैमी** (Plasmogamy)—राइजोपोडा के कुछ जन्तुओं में यह देखा गया है कि दो जन्तु अपूर्ण रूप से एक दूसरे में मिल जाते हैं, उनका कोशिका-द्रव्य एकरस हो जाता है, किन्तु उनके केन्द्रक अलग रहते हैं। कुछ समय पश्चात् ये जन्तु बिना किसी परिवर्तन के अलग हो जाते हैं। यह क्रिया **प्लाज्मोगैमी** कहलाती है।

प्रश्न 30. प्रोटोजोआ के आर्थिक महत्त्व पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on the economic importance of Protozoa.

(*Punjab 1969 ; Gorakhpur 65 ; Raj. 69 ; Meerut 69*)

प्रोटोजोअन्स (protozoans) एककोशिकीय सूक्ष्मदर्शी जन्तु हैं जो पानी के अन्दर, भूमि, वायु तथा अन्य सभी स्थानों और पौधों एवम् जन्तुओं के शरीर में पाये जाते हैं। ये लाभदायक एवम् हानिप्रद दोनों प्रकार के होते हैं। इनकी अनेक जातियाँ मनुष्य, मवेशियों, मुर्गियों एवम् मछलियों में घातक रोग उत्पन्न करती हैं। कुछ प्रोटोजोआ लाभदायक होते हैं क्योंकि ये स्वच्छता रखने में सहायक होते हैं, भोजन प्रदान करते हैं, समुद्रगामी मृदुपंक (oceanic ooze) बनाते हैं तथा जीव-सम्बन्धी क्रियाओं (biological processes) का अध्ययन करने में सहायक होते हैं।

अन्त:कला कोशिकाओं में रहता है और **ओरियण्टल सोर** (oriental sore) नामक रोग उत्पन्न करता है। यह एक पोषक से दूसरे पोषक में **सैण्डफ्लाई** द्वारा पारेषित होता है।

इसकी अन्य दो जातियाँ *लीशमानिया इन्फेण्टम* (*L. infantum*) एवम् *लीशमानिया ब्राजिलिएन्सिस* (*L. braziliansis*) हैं।

(*iii*) *प्लैज्मोडियम* (*Plasmodium* sp.) ; क्लास **स्पोरोजोआ**—*प्लैज्मोडियम* की अनेक जातियाँ मनुष्य की लाल रक्त-कणिकाओं में अन्त:कोशिकी (intracellular) परजीवी के रूप में मिलती हैं। ये *प्लैज्मोडियम वाइवैक्स* (*Plasmodium vivax*), *प्लैज्मोडियम फाल्सिपैरम* (*Plasmodium falciparum*) तथा *प्लैज्मोडियम ओवेल* (*P. ovale*) हैं। ये **मलेरिया** नामक रोग उत्पन्न करते हैं और मादा *एनोफिलीज* (*Anopheles*) मच्छर द्वारा एक पोषक से दूसरे पोषक में पारेषित होते हैं।

(*iv*) *बवेसिया* (*Bavasia sp.*) ; क्लास **स्पोरोजोआ**—इसकी तीन जातियाँ घोड़ों, कुत्तों एवम् मवेशियों की लाल रुधिर-कणिकाओं (R.B.Cs.) मे पायी जाती हैं। परजीवी का संक्रमण चीचड़ी (tick) के काटने से होता है और **टैक्सास बुखार** (texas' fever) उत्पन्न करता है।

4. मूत्र-जनन वाहिनी के परजीवी (Parasites of Urinogenital Duct)

(*i*) *ट्राइकोमोनास वेजाइनेलिस* (*Trichomonas vaginalis*) ; क्लास **मेस्टीगोफोरा**—यह नर एवम् मादा जनन-मूत्र तन्त्रों में पाया जाता है जिसके फलस्वरूप खुजली एवम् अत्यधिक प्रस्राव होता है। पारेषण मैथुन द्वारा होता है।

(*ii*) *ट्राइकोमोनास फीटस* (*T. foetus*) ; क्लास **मेस्टीगोफोरा**—यह भेड़ो, मवेशियों एवम् घोड़ों के मूत्र-जनन तन्त्रों मे पाया जाता है। इसके सक्रमण से गर्भ-स्राव, देरी से गर्भ-धारण तथा मुण्डच्छद कोष (preputial sac) में सूजन आ जाती है। यह मैथुन के समय एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचता है।

(*iii*) *आइमिरिया ट्रन्केटा* (*Eimeria truncata*) ; क्लास **स्पोरोजोआ**—यह हंस के वृक्कों को संक्रमित करता है और बहुधा पोषक की मृत्यु हो जाती है।

अन्य हानिकारक प्रोटोजोआ (Other Harmful Protozoa)

सामान्य परिस्थितियों में प्रजीवाणुओ की अत्यधिक संख्या वर्धन एवम् कार्बनिक पदार्थो के विघटन द्वारा सगन्ध तेल बनाकर स्वच्छ एवम् ताजे पानी को पीने के अयोग्य बना देती है। *बरसेरिया* (*Bursaria*) खारी एवम् दलदली भूमि की तरह की दुर्गन्ध उत्पन्न करता है। *सीरेशियम* (*Ceratium*) भी पानी मे दुर्गन्ध उत्पन्न करता है। *यूडोराइना* (*Eudorina*), *पोन्डोराइना* (*Pondorina*) तथा *वॉल्वॉक्स* (*Volvox*), आदि पानी में सड़े हुए खीरे की दुर्गन्ध उत्पन्न करते है।

भूमि में रहने वाले कुछ प्रोटोजोआ भूमि के नाइट्रीकृत जीवाणुओं का भक्षण करते हैं और इस प्रकार भूमि की उपजाऊ शक्ति को कम करते है।

लाभदायक प्रोटोजोआ (Beneficial Protozoa)

प्रोटोजोआ द्वारा पहुँचाये जाने वाले लाभों का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया जा सकता है :—

1. स्वच्छता में लाभकारी (Helpful in sanitation)—दूषित जल में रहने वाले बहुत-से प्रोटोजोआ वर्ज्य कार्बनिक पदार्थों का शोषण करके पानी को स्वच्छ करते हैं। अनेक प्राणी-सदृश (holozoic) प्रोटोजोआ जीवाणुओं का भक्षण

करते हैं और इस प्रकार स्वच्छता वनाये रखते हैं और पानी को स्वच्छ एवम् पीने के योग्य वनाये रखने में सहायक होते है।

2. भोजन के रूप में (As food)—यद्यपि प्रोटोजोआ सूक्ष्म जन्तु है, किन्तु वहुत अधिक संख्या में होने के कारण ये प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में मनुष्य को भोजन प्रदान करते हैं। प्रोटोजोआ कीटों के लारवी, क्रस्टेशियन व कीड़ों तथा अन्य प्राणियों का भोजन बनाते हैं जिनको मछली व अन्य जन्तु खाते हैं और ये सभी मनुष्य का भोजन बनाते है।

तलप्लावी (pelagic) **फोरामिनिफेरा तथा रेडियोलेरिया** मृत्यु के वाद समुद्र के तल पर बैठ जाते हैं और मृतक जन्तुओं के साथ एकत्रित होकर अन्य जीवों का भोजन वनाते हैं। डाइनोफ्लैजेलेट्स प्लैक्टन (plankton) का अधिकांश भाग वनाते है जो जलीय जन्तुओं के उपयोग में आता है।

3. सहजीवी प्रोटोजोआ (Symbiotic protozoa)—ट्राइकोनिम्फा (*Trichonympha*) तथा कोलोनिम्फा (*Colonympha*) आदि दीमक की आंत्र में रहते हैं और सेलूलोस को ग्लाइकोजन में वदलकर पोषक को पाचन में मदद पहुँचाते हैं।

4. प्रोटोजोआ के कंकाल का व्यापारिक महत्त्व (Commercial uses of protozoan skeletons)—**फोरामिनिफेरा** तथा **रेडियोलेरिया** के कंकालीय निक्षेप (skeletal deposits) समुद्रगामी **मृदुपंक** (oceanic ooze) बनाते है जो एकत्रित होकर चट्टानों का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार के कुछ निक्षेप इंगलैंड में डोवर की सफेद चाक-क्लिफ (White Chalk-cliff of Dover) तथा पेरिस, काहिरा एवम् उत्तरी अमेरिका के चूने के पत्थर के भण्डार हैं। पेरिस में अधिकांश भवन मुख्य रूप से *मिलिओलाइना* की विभिन्न जातियों के खोल से वने चूने के पत्थर के वने हुए हैं। इसी प्रकार मिस्र के पिरामिड्स भी न्यूमुलाइट (*Nummulite*) नामक प्रोटोजोआ के खोलों से वने चूने के पत्थर के वने हुए हैं। इसके अतिरिक्त कंकालीय निक्षेप अपघर्षकों के रूप में उपयुक्त होते हैं।

5. अध्ययन में प्रोटोजोआ का महत्त्व (Protozoa in study)—प्रोटोजोआ भूमि पर आने वाले प्रथम जन्तु समझे जाते हैं जिनसे मेटाजोआ का विकास हुआ है। ये सरलतम रचना वाले जीव हैं जिनमें जीवन की समस्त क्रियाएँ एक ही कोशिका में होती हैं। प्रयोगशाला में विभिन्न क्रियाओं का प्रदर्शन करने के लिए इनका अध्ययन किया जाता है। जनन काल सूक्ष्म होने के कारण इन पर आनुवंशिक प्रयोग किये जाते हैं।

प्रश्न 31. प्रोटोजोआ एवम् रोग पर एक निवन्ध लिखिये।

Write an essay on Protozoa and Disease.

(*Kanpur 1970 ; Gorakhpur 68 ; Jiwaji 73*)

कृपया प्रश्न 30 देखिये।

प्रश्न 32. रोग उत्पन्न करने वाले किन्हीं तीन प्रोटोजोआ का वर्गीकरण करिये। प्रत्येक पर एक पृष्ठ लिखिये।

Locate the systematic position of any three disease producing *Protozoa* and write a page on each. (*Meerut 1969*)

कृपया प्रश्न 6, 7, 8, तथा 16 देखिये।

प्रश्न 33. निम्नलिखित के स्वच्छ व नामांकित चित्र वनाइये (विवरण की आवश्यकता नहीं है) :—

Draw well labelled diagrams of the following (no description is needed) :—

(i)	**Life-history of** *Monocystis*	(*Luck. 1961, 63, 65*)
(ii)	**Life-cycle of malarial parasite.**	(*Luck. 1961*)
(iii)	**Conjugation in** *Paramecium.*	(*Luck. 1964, 71*)
(iv)	**Binary fission in** *Euglena.*	(*Luck. 1964*)
(v)	*Trypanosome.*	(*Vikram 1961, Kanpur 72*)
(vi)	*Vorticella.*	(*Vikram 1963*)
(vii)	**Zygote formation in** *Monocystis.*	(*Luck. 1964*)

(*i*)	मोनोसिस्टिस का जीवन-इतिहास	(कृपया चित्र 4·2 देखिये ।)
(*ii*)	मलेरिया परजीवी का जीवन-चक्र	(कृपया चित्र 5·1 देखिये ।)
(*iii*)	पैरामीसियम में युग्मन	(कृपया चित्र 8·9 देखिये ।)
(*iv*)	युग्लीना में द्विविभाजन	(कृपया चित्र 6·6 देखिये ।)
(*v*)	ट्राइपेनोसोम	(कृपया चित्र 7·1 देखिये ।)
(*vi*)	मोनोसिस्टिस में युग्मनज का बनना	
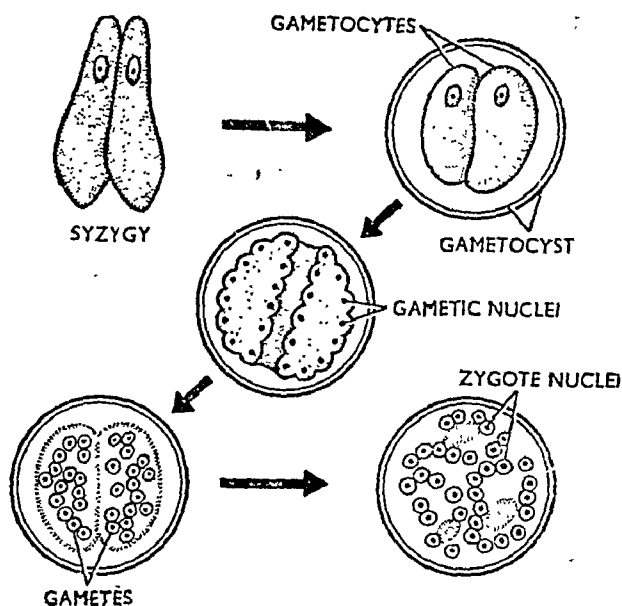
चित्र १०.२१. मोनोसिस्टिस में युग्मनज का बनना (Formation of zygote in *Monocystis*)

(*vii*) वॉर्टिसीला (कृपया चित्र 9·1 देखिये ।)

प्रश्न 34. अमीबा एवम् पैरामीसियम की संरचना का तुलनात्मक वर्णन कीजिये ।

Give a comparative account of the organisation of *Amoeba* **and** *Paramecium.*

अमीवा तथा पैरामीसियम की रचना की तुलना
(Comparison Between the Organisation of *Amoeba* and *Paramecium*)

अमीवा (*Amoeba*)	पैरामीशियम (*Paramecium*)
1. अमीवा एककोशीय या अकोशीय सूक्ष्म-दर्शी व सरलतम रचना वाला जन्तु है।	2. पैरामीसियम भी अकोशीय, सूक्ष्मदर्शी जन्तु है किन्तु इसकी शारीरिक रचना अपेक्षाकृत जटिल होती है तथा शरीर में कुछ विशेष अंगक पाये जाते हैं।
2. यह अनियमित आकार का जन्तु है जिसका आकार पादाभों के बनते तथा बिगड़ते रहने से तथा कोशिकाद्रव्य की गति के कारण बदलता रहता है।	2. शरीर लम्बा, बेलनाकार तथा सिगार के आकार का होता है।
3. ऐसा नहीं होता।	3. इसमें निश्चित अगले तथा पिछले सिरे तथा स्पष्ट पृष्ठ तथा अधर तल पाये जाते हैं।
4. अधिकतर जन्तुओं का परिमाण ·25 से ·5 mm. तक होता है।	4. ये 80 से 300μ तक नापे गये हैं।
5. बिना सूक्ष्मदर्शी के अमीबा दिखाई नहीं देता, किन्तु बड़े जन्तु छोटे सफेद बिन्दु के समान दिखायी देते हैं।	5. बिना सूक्ष्मदर्शी के पैरामीसियम एक सफेद या सलेटी बिन्दु के समान लगता है।
6. शरीर पर पेलीकल या कोशिका कला नहीं होती। शरीर का बाह्य आवरण द्रव्य-कला या प्लाज्मालेमा (plasmalemma) होता है। इसके फलस्वरूप यह आन्तर-द्रव्य गति कर सकता है तथा पादाभ बन सकते हैं।	6. शरीर पर पतली, मजबूत, लचीली तथा रंगहीन क्यूटिकल की बनी पेलीकल (pellicle) होती है जो शरीर को निश्चित आकार प्रदान करती है। इसकी उपस्थिति के कारण जीवद्रव्य पादाभ नहीं बना सकता।
7. प्लाज्मालेमा चिकना स्तर है।	7. पेलीकल में षट्भुजाकार (hexagonal) फेसेट होते हैं जिनमें ट्राइकोसिस्ट के छिद्र होते हैं।
8. शरीर की सतह पर कोई रचना नहीं होती।	8. शरीर की सतह लगभग एक ही आकार के पक्ष्मों (cilia) से ढकी रहती है।
9. मुख-झिर्री नही होती।	9. मुख-झिर्री शरीर की अधर सतह पर टेढ़ी झिर्री के रूप में पायी जाती है जो शरीर के अगले सिरे से मध्य भाग के कुछ पीछे तक फैली रहती है।
10. कोशिका-मुख तथा कोशिका-ग्रसनी नही होती।	10. मुख-झिर्री के आधार पर कोशिकामुख होता है जो 'S' के आकार की कोशिका-ग्रसनी में खुलता है।
11. अमीबा में ऐसी कोई रचना नही होती, अतः पादाभ ही भोजन पकड़ने में सहायता करते हैं।	11. कोशिका-ग्रसनी के पक्ष्म अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं जो दो पट्टियों में लगे रहते हैं। ये क्वाड्रूलस (quadrulus) तथा पेनीक्यूलस

अमीबा (*Amoeba*)	पैरामीसियम (*Paramecium*)
	(penniculus) कहलाते है। भोजन के कण इन पक्ष्मो मे उलझकर एकत्रित हो जाते है तथा खाद्य रिक्तिका बनाते है।
12. साइटोपाइग या गुदा-विन्दु (anal spot) नही होता, अत. भोजन का वहिष्करण शरीर के किसी भी भाग से हो सकता है।	12 अपच भोजन को निकालने के लिए मुख-झिर्री के पीछे साइटोपाइग (cytopyge) नामक निश्चित छिद्र होता है।
13. जीव-द्रव्य या कोशिकाद्रव्य वाह्य-द्रव्य तथा आन्तर-द्रव्य में बँटा रहता है।	13. इसमे भी बाह्य-द्रव्य तथा आन्तर-द्रव्य होते है किन्तु कुछ विशेष अगको के कारण बाह्य द्रव्य की रचना अत्यन्त जटिल होती है।
14. अमीवा मे ऐसा नही होता।	14. वाह्य-द्रव्य मे आधार कणिकाएँ (basal granules) पायी जाती है जिनसे पक्ष्म निकले रहते है।
15. मायोनीमीज नही होते।	15. बाह्य-द्रव्य में मायोफाइब्रिल्स (myofibrils) फैले रहते हैं। ये मायोनीमीज या न्यूरोनीमीज (myonemes or neuronemes) भी कहलाते है। ये लचीले तन्तु है जो पक्ष्म की गति का नियमन करते है।
16. ट्राइकोसिस्ट नही होते।	16. वाह्य-द्रव्य मे प्रत्येक दो आधार-कणिकाओ के बीच एक ट्राइकोसिस्ट (trichocyst) नामक रचना होती है।
17. अमीबा में केवल एक बड़ा तथा उभयोत्तल (biconvex) केन्द्रक होता है जो जन्तु की उपापचय तथा जनन दोनो प्रकार की क्रियाओ का नियमन करता है।	17. आन्तर-द्रव्य में वृक्काकार गुरुकेन्द्रक तथा छोटा गोल लघुकेन्द्रक पाया जाता है। गुरुकेन्द्रक जन्तु की उपापचय क्रियाओ का तथा लघुकेन्द्रक जनन क्रियाओ का नियमन करता है।
18. अमीवा मे अधिकतर एक कुञ्चनशील रिक्तिका होती है जिसका कोई निश्चित स्थान नही होता तथा यह किसी निश्चित छिद्र द्वारा बाहर नही खुलती। यह शरीर के किसी भी भाग मे किसी भी विन्दु पर शरीर की सतह पर फूट जाती है।	18. पैरामीशियम मे दो कुञ्चनशील रिक्तिकाएँ होती हैं जो शरीर के अगले तथा पिछले सिरो पर स्थित होती हैं। प्रत्येक रिक्तिका के चारों ओर 6 से 11 छोटी-छोटी अतिरिक्त रिक्तिकाएँ होती है जिससे प्रत्येक कुञ्चनशील रिक्तिका सितारे के समान दिखाई देती है। प्रत्येक कुञ्चनशील रिक्तिका निश्चित छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है। यह छिद्र केवल रिक्तिका के सिकुड़ने के समय ही दृष्टिगत होता है।
19. खाद्य रिक्तिका की गति निश्चित नही होती।	19. खाद्य रिक्तिकाएँ कोशिकाद्रव्य में एक निश्चित पथ पर चलती हैं।
चित्र २·१ देखिये।	चित्र ८·१ देखिये।

प्रश्न 35. युग्लीना अपना भोजन किस प्रकार ग्रहण करता है? इसकी पोषण-विधि की अमीबा, पैरामीसियम एवम् मोनोसिस्टिस से तुलना कीजिये।

How does *Euglena* take its nourishment? Compare its mode of nutrition with that of *Amoeba*, *Paramecium* and *Monocystis*.

(*Agra 1952, 60, 63 ; Punjab 71*)

युग्लीना, अमीवा तथा मोनोसिस्टिस में पोषण विधियों का उल्लेख करिये।

Describe the mode of feeding in *Amoeba*, *Euglena* and *Monocystis*.

(*Kanpur 1971*)

अमीबा, युग्लीना, पैरामीसियम तथा मोनोसिस्टिस की पोषण-विधियों की तुलना
(Comparison of the modes of Nutrition in Amoeba, Euglena, Paramecium and Monocystis)

अमीबा (*Amoeba*)	युग्लीना (*Euglena*)	पैरामीसियम (*Paramecium*)	मोनोसिस्टिस (*Monocystis*)
पोषण विधि (Mode of Nutrition) 1. पोषण विधि जन्तु-सदृश (holozoic) होती है।	1. युग्लीना में वनस्पति-सदृश (holophytic), जन्तु-सदृश (holozoic) तथा मृतजीवी (saprophytic) पोषण होता है।	1. जन्तु-सदृश पोषण होता है।	1. इसमें परजीवी (parasitic) अथवा मृतजीवी (saprozoic) पोषण पाया जाता है।
भोजन (Food) 2. सूक्ष्म जन्तु, डायेटम, काई तथा बैक्टीरिया इत्यादि अमीबा का भोजन हैं।	2. वनस्पति-सदृश पोषण में जन्तु को CO_2 तथा H_2O की आवश्यकता होती है जो सूर्य के प्रकाश तथा क्लोरोफिल की उपस्थिति में स्टार्च बनाते हैं। जन्तु-सदृश पोषण का पाया जाना अभी निश्चित नहीं है। मृतजीवी पोषण विधि में यह पानी में घुले तथा क्षय होते हुए कार्बनिक पदार्थों के घोल को पेलीकल द्वारा सोखता है।	2. यह एककोशीय सूक्ष्म जन्तुओं, पौधों, काई, डायेटम, यीस्ट तथा बैक्टीरिया इत्यादि को खाता है।	2. पोषक की कोशिकाओं का जीवद्रव्य जन्तु का भोजन है।
अन्तर्ग्रहण के अंग (Organs of Ingestion) 3. पादाभ भोजन के अन्तर्ग्रहण के अंग हैं।	3. युग्लीना में भोजन ग्रहण करने के लिए अंगक नहीं होते क्योंकि भोजन शरीर की सतह द्वारा शोषित किया जाता है या जन्तु द्वारा स्वयं	3. कोशिकाग्रसनी के रूपान्तरित पक्ष्म (specialized or modified cilia) भोजन ग्रहण करने में सहायक होते हैं।	3. भोजन शरीर की सतह द्वारा शोषित किया जाता है, अतः भोजन के ग्रहण करने के लिए कोई विशेष अंग नहीं होते हैं।

अमीबा (*Amoeba*)	युग्लीना (*Euglena*)	पैरामीसियम (*Paramecium*)	मोनासिस्टिस (*Monocystis*)
	बनाया जाता है। अतः इनके आन्तर-द्रव्य मे क्लोरोप्लास्ट पाये जाते हैं।		
अन्तर्ग्रहण का स्थान (Point of Ingestion) 4. अमीबा मे मुख नही होता अत भोजन शरीर के किसी भी भाग मे तथा किसी भी स्थान से भीतर जा सकता है।	4. क्योकि युग्लीना में अन्तर्ग्रहण ही नही होता, अतः मुख भी नही पाया जाता। इसमे भोजन शरीर की सतह द्वारा शोपित होता है।	4. पैरामीसियम में भोजन एक निश्चित छिद्र अर्थात् कोशिकामुख मे से होकर शरीर के भीतर पहुँचता है। कोशिका-मुख, मुख-झिर्री (oral-groove) के आधार पर स्थित होता है।	4. शरीर की सतह द्वारा भोजन का अवशोषण होता है।
पोषण विधि (Process of Ingestion) 5. अमीबा मे भोजन निम्न चार प्रकार से पकडा जाता है :— (*i*) सरकमवैलेशन (Circumvallation) (*ii*) सरकमफ्लूयेन्स (Circumfluence) (*iii*) इन्वेजिनेशन (Invagination) (*iv*) इम्पोर्ट (Import)	5. युग्लीना मे अन्तर्ग्रहण की विशेप विधि नही होती।	5. मुख-झिर्री के पक्ष्मों की गति से पानी में भँवर (whirlpool) से बन जाते हैं जिनके द्वारा भोजन-कण कोशिका-ग्रसनी के पिछले सिरे पर एकत्रित होकर खाद्य रिक्तिका बनाते हैं।	5. इसमें भी कोई विशेप प्रतिक्रया नही होती तथा भोजन प्रसरण द्वारा शरीर के भीतर पहुँचता है।
पाचन (Digestion) 6. भोजन का पाचन एककोशीय शरीर में खाद्य रिक्तिका के भीतर होता है, अतः यह आन्तर-कोशीय पाचन (intracellular digestion) कह-	6. सूर्य के प्रकाश में क्लोरोफिल की सहायता से वायु-मण्डल की CO_2 तथा H_2O से जन्तु द्वारा स्वयं भोजन तैयार किया जाता है। यह	6. इसमें भी पाचन आन्तर-कोशीय होता है तथा अमीबा के समान ही खाद्य रिक्तिका में पूर्ण होता है।	6. इसमें पाचन रस पोपक के ऊतको मे डाला जाता है जिससे उनका जीवद्रव्य पच जाता है तथा त्वचा द्वारा शोपित कर लिया जाता

लाता है। खाद्य रिक्तिका के चारों ओर का जीव-द्रव्य खाद्य रिक्तिका में पाचक रस डालता है।	एक विशेष प्रकार का स्टार्च है जो पैरामाइलम कहलाता है। मृतजीवी (saprophytic) पोषण में जन्तु अपने चारों ओर के द्रव्य में पाचक रस डालता है तथा पचे हुए भोजन का त्वचा द्वारा अवशोषण करता है।		है, अतः इसमें पाचन वाह्यकोशीय (extracellular) होता है।
स्वांगीकरण (Assimilation) 7. खाद्य रिक्तिका की गति के कारण पचा हुआ भोजन कोशिकाद्रव्य में समान रूप से प्रसारित किया जाता है। खाद्य रिक्तिका कोशिकाद्रव्य की धारा गति द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाती है। खाद्य रिक्तिका का मार्ग निश्चित नहीं होता।	7. वनस्पति-सदृश पाचन में भोजन समान रूप से कोशिकाद्रव्य में बनता है तथा एकत्रित रहता है। मृतजीवी विधि से भोजन समस्त कोशिकाद्रव्य में समान रूप से प्रसारित होता है।	7. भोजन का स्वांगीकरण अमीबा के समान ही होता है। किन्तु इस में खाद्य रिक्तिका एक निश्चित मार्ग पर कोशिकाद्रव्य में घूमती है।	7. स्वांगीकरण नहीं होता।
वहिष्करण (Excretion) 8. शरीर की सतह पर किसी भी विन्दु से अपच भोजन वाहर निकाल दिया जाता है।	8. वहिष्करण की क्रिया नहीं होती क्योंकि भोजन ठोस रूप में नहीं लिया जाता।	8. वहिष्करण की क्रिया साइटोपाइग नामक निश्चित स्थान से होती है जो मुख-तल पर मुख झिर्री से कुछ पीछे स्थित होता है।	8. वहिष्करण नहीं होता।
संचित भोजन (Reserve food) 9. भोजन संचित नहीं किया जाता है।	9 संचित भोजन पैरामाइलम (paramylum) के रूप में पाया जाता है जो वर्तनशील काय (refractile bodies) के रूप में कोशिकाद्रव्य में पाया जाता है अथवा पाइरीनॉयड नामक रचनाओं के चारों ओर एकत्रित रहता है।	9. भोजन संचित रूप में नहीं रहता।	9. संचित भोजन पैरामाइलम या पैराग्लाइकोजन कणिकाओं (paramylum or paraglycogen granules) के रूप में एकत्रित रहता है।

प्रश्न 36. अमीबा, युग्लीना एवम् पैरामीसियम की जनन विधियों का तुलनात्मक विवरण दीजिये ।

Give a comparative account of the modes of reproduction in the types *Amoeba, Euglena* and *Paramecium*. *(Jodhpur 1965)*

अमीबा, युग्लीना तथा पैरामीसियम की जनन विधियों की तुलना
(Comparison of the Modes of Reproduction of Amoeba, Euglena and Paramecium)

अमीबा (*Amoeba*)	युग्लीना (*Euglena*)	पैरामीसियम (*Paramecium*)
1. अमीबा मे केवल अलैगिक विधि द्वारा जनन होता है।	1. युग्लीना मे भी केवल अलैगिक विधि द्वारा जनन होता है।	1. पैरामीसियम मे जनन की अलैगिक तथा लैगिक दोनो विधियाँ पायी जाती हैं।
2. अमीबा मे अलैगिक जनन। (*i*) द्विविभाजन, तथा (*ii*) स्पोरुलेशन द्वारा होता है।	2. युग्लीना मे जनन की (*i*) द्विविभाजन, तथा (*ii*) बहुविभाजन विधियाँ पायी जाती हैं।	2. पैरामीसियम मे अलैगिक जनन द्विविभाजन विधि द्वारा होता है।
1. द्विविभाजन (Binary fision)		
3 द्विविभाजन विधि सरल (simple) होती है तथा इसमे कोई अक्ष निश्चित नही किया जा सकता।	3. द्विविभाजन मे जन्तु का शरीर लम्बवत् अक्ष मे बँटता है।	3. द्विविभाजन विधि मे जन्तु का शरीर अनुप्रस्थ दिशा मे बँटता है।
4. केन्द्रक का विभाजन समसूत्रण विधि द्वारा होता है।	4. केन्द्रक समसूत्रण विधि द्वारा विभाजित होता है।	4. लघुकेन्द्रक का विभाजन समसूत्रण से होता है किन्तु गुरु-केन्द्रक असमसूत्रण (amitosis) द्वारा दो भागो मे बँट जाता है।
5. ऐसी कोई क्रिया नही होती।	5. केन्द्रक विभाजन के पश्चात् शरीर के समस्त अगक (organelle) भी दो भागो मे विभाजित हो जाते हैं।	5. शरीर के कुछ अगक विभाजन द्वारा दो भागो मे बँट जाते है तथा कुछ नये बनते हैं।
6. द्विविभाजन विधि के पूर्ण होने मे आधे घण्टे का समय लगता है।	—	6 द्विविभाजन विधि ½ से 2 घण्टे मे पूर्ण होती है।
7. परिकोष्ठित अवस्था मे द्विविभाजन नही होता।	7. परिकोष्ठित अवस्था मे भी जन्तु द्विविभाजन विधि द्वारा विभाजित होता है।	7. परिकोष्ठन नही होता।

अमीबा (*Amoeba*)	युग्लीना (*Euglena*)	पैरामीसियम (*Paramecium*)
2. बहुविभाजन (Multiple Fission)		
8. अमीबा में बहुविभाजन परिकोष्ठित अवस्था में होता हुआ माना गया है किन्तु अभी इसकी उपस्थिति निश्चित नहीं है।	8. बहुविभाजन परिकोष्ठित अवस्था में होता है।	8. बहुविभाजन नहीं होता।
9. परिकोष्ठ (cyst) काइटिन का बना होता है जिसमें तीन पर्तें पायी जाती हैं।	9. सिस्ट सेलूलोस का बना होता है।	9. सिस्ट नही पाया जाता।
10. इस विभाजन के अन्त में बहुत-से स्यूडोपोडीस्पोर (pseudopodispores) या अमीबूली (amoebulae) बनते हैं। प्रत्येक स्यूडोपोडीस्पोर में 5 पादाभ होते हैं।	10. बहुविभाजन के अन्त में दो युग्लीना बनते हैं किन्तु किन्हीं परिस्थितियों में 16 से 32 संतति युग्लीना भी बनते हैं जो पालमेला अवस्था (palmella stage) प्रदर्शित करते हैं।	—
3. बीजाणु उत्पत्ति (Sporulation)		
11. प्रतिकूल परिस्थितियों में मोटी दीवार वाले बीजाणु (spores) बनते हैं।	11. नहीं होता।	11. ऐसा नहीं होता।
4. लैंगिक जनन (Sexual Reproduction)		
12. नहीं होता।	12. ऐसा नहीं होता।	12. लैंगिक जनन संयुग्मन विधि द्वारा होता है।
5. केन्द्रकीय पुनर्गठन (Nuclear Reorganisation)		
13. अनुपस्थित।	13. अनुपस्थित।	13. पैरामीसियम में केन्द्रकीय पुनर्गठन में निम्नलिखित विधियाँ पायी जाती हैं :— (*i*) एण्डोमिक्सिस (Endomixis) (*ii*) हेमिक्सिस (Hemixis)

अमीबा (*Amoeba*)	युग्लीना (*Euglena*)	पैरामीसियम (*Paramecium*)
		(*iii*) स्वयं संयुग्मन या ऑटोगैमी (Autogamy) (*iv*) साइटोगैमी या कोशिका-संगम (Cytogamy)
6. परिकोष्ठन (Encystment) 14. प्रतिकूल वायुमण्डल की परिस्थितियों को सहन करने के लिए अमीबा अपने चारों ओर एक मोटा, कठोर, अपारगम्य (impervious) रक्षात्मक खोल या सिस्ट बना लेता है जो जन्तु की रक्षा करता है तथा अनुकूल वातावरण आने पर फटकर जन्तु को स्वछन्द जीवन यापन करने के लिए स्वतन्त्र कर देता है।	14. युग्लीना मे पीले या भूरे रंग का (gelatinous) सिस्ट होता है। यह विशेष प्रकार के कार्बोहाइड्रेट (स्टार्च) का बना होता है।	14. कोई सिस्ट नहीं बनता।

प्रश्न 37. युग्लीना एवम् पैरामीसिया में चलन, पोषण एवम् जनन-विधियों का वर्णन करिये।

Describe locomotion, nutrition, and reproduction in *Euglena* and *Paramecium*, (*Gorakhpur 1969, 73*)

कृपया प्रश्न 15 तथा 18 देखिये।

अध्याय 11

फाइलम पोरीफेरा
(Phylum Porifera)
(L., *Porous*, pore ; *fera*, bearing)

प्रश्न 38. प्रत्येक क्लास के विशिष्ट गुण एवम् उदाहरण देकर फाइलम पोरीफेरा का वर्गीकरण करिये ।

Classify phylum Porifera giving distinctive features of each class with examples. (*Vikram 1968 ; Raj 69 ; Bhagalpur 63; Saurashtra 73*)

फाइलम पोरीफेरा के विशिष्ट गुणों का उल्लेख करिये । प्रत्येक क्लास के उदाहरण एवम् विशिष्ट गुण देते हुए इसका वर्गीकरण करिये ।

Enumerate the distinguishing features of the phylum Porifera. Classify it giving chief characters and examples of each group.
(*Lucknow 1957, 61, 66 ; Patna 67 ; Bombay 59 ; Jiwaji 71*)

स्पंजों पर अध्ययन 1686 में प्रारम्भ हुआ था परन्तु **रोबर्ट ग्राण्ट** (Robert Grant) ने 1836 में इनको प्रथम बार जन्तु-जगत् में स्थान दिया तथा इनकी सरन्ध्र (porous) शरीर-रचना के आधार पर इन्हें **पोरीफेरा** (Latin, *porous*, pore ; *fera*, bearing) नाम दिया गया ।

फाइलम पोरीफेरा के विशिष्ट गुण
(Distinguishing Features of Phylum Porifera)

1. ये बहुकोशीय (multicellular) जन्तु हैं जिनकी शारीरिक रचना cellular grade* की होती है ।

2. समस्त जन्तु पौधों के समान (plant-like) स्थिर जन्तु हैं जो आधार से चिपके रहते हैं ।

3. सभी जलीय जीव (aquatic animals) हैं । ये अधिकतर समुद्र में पाये जाते हैं किन्तु कुछ ताजे पानी में भी पाये जाते हैं ।

4. इनके आकार भिन्न-भिन्न होते हैं तथा शरीर या तो असममित (asymmetrical) अथवा **अरीय सममित** (radially symmetrical) होता है ।

5. शरीर की सतह पर असंख्य छोटे-छोटे छिद्र होते हैं जो पानी को शरीर के भीतर पहुँचाते हैं तथा **ऑस्यक** (ostia) कहलाते हैं । पानी की धारा ऑस्यक में से होती हुई कुल्याओं (canals), कक्षों (chambers) तथा मध्य गुहा (central cavity) में से जाती है और अन्त में शीर्ष छिद्र—**अपवाही रन्ध्र** या **ऑस्कुलम** (osculum) द्वारा बाहर निकलती है ।

* *Cellular grade* वाले जन्तुओं में कोशिकाएँ ऊतक, अंग तथा तन्त्र (tissues, organs and systems) न बनाकर केवल समूहों या स्तरों के रूप में पायी जाती हैं ।

6. स्पंजों में निश्चित अंग तथा तन्त्र या संहति नहीं पाये जाते। पाचन आन्तरकोशिक (intracellular) होता है। पानी की धारा अपने साथ ही भोज्य पदार्थ या भोज्य जीव तथा ऑक्सीजन को जन्तुओं के शरीर में लाती है तथा उत्सर्जन पदार्थ एवम् जनन अंगकों को अपने साथ् ले जाती है।

7. शरीर के स्तरों के भीतर $CaCO_3$ अथवा सिलिका की बनी कण्टिकाओं अथवा स्पंजिन तन्तुओं (spongin fibres) का अन्तःकंकाल (internal skeleton) पाया जाता है।

8. इनमें विशेष प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती हैं जो कीप कोशिकाएँ (choanocytes) कहलाती हैं। इनमें कॉलर तथा फ्लेजेला होते हैं।

9. इनमें संवेदी कोशिकाएँ तथा तन्त्रिका कोशिकाएँ नहीं होतीं, परन्तु प्रत्येक कोशिका अकेले ही स्वतन्त्र रूप से उत्तेजित होती है तथा इन उत्तेजनाओं को दूसरी कोशिकाओं मे पहुँचा देती है।

10. ये जन्तु एकलिंगी (unisexual) अथवा द्विलिंगी (bisexual) हो सकते है। जनन अलैंगिक तथा लैंगिक दोनों प्रकार का होता है, किन्तु निश्चित जनद या जनद पिण्ड (gonads) अनुपस्थित होते हैं। अलैंगिक जनन मुकुलकों अथवा जेम्युल के बनने (formation of gemmules) तथा कलिकोत्पादन द्वारा होता है और लैंगिक जनन में शुक्राणु तथा अण्डप बनते हैं।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम पोरीफेरा को अन्तःकंकाल के आधार पर तीन क्लासों में बाँटा गया है।

क्लास 1. कैल्केरिया या कैलिकोस्पोञ्जीयाई
(Calcaria or Calicospongiae)

(*L.*, *Calcarious*, limy)

1. ये छोटे स्पंज हैं जो समुद्र के उथले जल में मिलते हैं।

2. ये लगभग बेलनाकर (cylindrical) होते हैं तथा इनके शरीर की सतह पर काँटे पाये जाते हैं।

3. इनका कंकाल $CaCO_3$ का बना होता है जो कण्टिकाओं (spicules) का बना होता है तथा कण्टिकाओं में एक, तीन या चार अक्ष (axes) अथवा किरणें (rays) पायी जाती है। ये कण्टिकाएँ दो प्रकार की होती हैं: गुरु कण्टिकाएँ (megascleres) तथा लघु कण्टिकाएँ (microscleres)।

4. इनका रंग सफेद अथवा भूरा होता है।

5. इनका कैनाल तन्त्र (canal system) एस्कन, साइकन अथवा सरल रेहगान (ascon, sycon or simple rhagon) प्रकार का होता है।

उदाहरण: ल्युकोसोलिनिया (*Leucosolenia*), साइकन (*Sycon*) तथा ग्रेन्शिया (*Grantia*)।

क्लास 2. हैक्सेक्टिनेलिडा (Hexactinellida)

(*Gr.*, *hexa*, six ; *actins*, ray)

1. ये बड़े आकार के स्पंज हैं जो समुद्र के गहरे पानी में उगते हैं।

2. इनका कंकाल तीन-अक्षीय (triaxon) अथवा छः सिरों वाली सिलिका की बनी कण्टिकाओं (spicules) का बना होता है।

3. इनका शरीर वेलनाकार, प्याले के समान अथवा फनल के आकार का होता है। कुछ में वृन्त भी होता है। इनमें वाह्य अधिछद (surface epithelium) नहीं होता।

4. इनका कैनाल तन्त्र (canal system) सरल रेहगान प्रकार का होता है, जिसमें कीप कोशिकाएँ (choanocytes) अंगुली के आकार के कक्षों को आस्तारित करती हैं।

उदाहरण : *हायलोनीमा* (*Hyalonema*) तथा *यूप्लेक्टेला* (*Euplectella*)।

क्लास 3. डीमोस्पोञ्जिया (Demospongia)

(*G.*, *demos*, people ; *spongos*, sponge)

1. ये जटिल रचना वाले अधिकांशत: समुद्री जीव हैं, किन्तु कुछ ताजे पानी में भी पाये जाते हैं। ये गहरे तथा उथले दोनों प्रकार के पानी में रहते हैं।

2. शरीर का आकार विभिन्न जन्तुओं में भिन्न-भिन्न होता है ; जैसे गोल या ब्रुश के आकार के, गद्दे के समान, कीप के आकार के, मुग्दर के आकार के या प्याले के समान।

3. इनका कंकाल सिलिका की बनी कण्टिकाओं (siliceous spicules) या स्पंजी तन्तुओं (spongin fibres) या दोनों का हो सकता है, किन्तु कुछ जन्तुओं में कंकाल होता ही नहीं। कण्टिकाओं में कभी भी तीन अक्ष नहीं होते तथा ये अधिकतर लघु एवम् दीर्घ कण्टिकाओं के रूप में पाये जाते हैं।

4. कंकाल तन्त्र अत्यन्त जटिल होता है तथा रेहगान प्रकार (leuconoid type) का होता है। कशाभी कक्ष (flagellated chambers) छोटे तथा गोल होते हैं।

यह क्लास तीन सबक्लासों में बाँटी गई है :—

सबक्लास 1. टैट्रैक्टिनेलिडा (Tetractinellida)

1. इनका कंकाल या तो **चार-अक्षीय कण्टिकाओं—टैट्राक्सॉन** (tetraxon spicules) का बना होता है अथवा होता ही नहीं।

2. स्पंजी तन्तु अनुपस्थित होते है।

उदाहरण : *कॉण्ड्रोसिया* (*Chondrosia*), *आस्केरेला* (*Oscarella*) तथा *कोण्ड्रिला* (*Chondrilla*)।

सबक्लास 2. मोनेक्सोनिडा (Monaxonida)

1. इनका कंकाल मोनेक्सोन कण्टिकाओं (monaxon spicules) का बना होता है जो लघु कण्टिकाओं तथा दीर्घ कण्टिकाओं के रूप में पायी जाती हैं।

2. स्पंजी तन्तु उपस्थित अथवा अनुपस्थित भी हो सकते हैं।

उदाहरण : *क्लायोना* (*Cliona*), *हेलिकॉण्ड्रिया* (*Halichondria*)।

सबक्लास 3. केरेटोसा (Keratosa)

1. इनमें कण्टिकाओं का पूर्ण अभाव होता है तथा कंकाल स्पंजी तन्तुओं का बना होता है।

उदाहरण : *यूस्पंजिया* या बाथ स्पंज।

प्रश्न 39. फाइलम पोरीफेरा के विशिष्ट गुणों का वर्णन कीजिये। साइकन में पोषण एवम् पाचन विधियों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the characteristic features of phylum Porifera. Discuss the mechanism of feeding and digestion in *Sycon*.

(*Gorakhpur 1969*)

पोरीफेरा के विभेदक गुण—कृपया प्रश्न 37 देखिये ।
साइकन की पोषण विधि—कृपया प्रश्न 43 देखिये ।

प्रश्न 40. निम्नलिखित प्राणियों को उनके वर्गीकरण के क्रम में रखिये तथा उनके विशिष्ट लक्षणों पर टिप्पणी करिये ।

Put the following animals in their systematic position, giving their distinguishing features.

1. ल्युकोसोलेनिया (Leucosolenia)

(*Lucknow 1954, 58, 62 ; Ranchi 66 ; Calcuta 70*)

कृपया प्रश्न 49 देखिये ।

2. यूप्लैक्टेला (Euplectella) (*Agra 1967 ; Lucknow 69*)

फाइलम	—	पोरीफेरा (*Porifera*)
क्लास	—	हैक्साक्टिनैलिडा (*Hexactinellida*)
आर्डर	—	हैक्सास्टिरोफोरा (*Hexasterophora*)
टाइप	—	यूप्लैक्टेला (*Euplectella*)

यूप्लैक्टेला, जिसे साधारणतः **वीनस फ्लावर बास्केट** (Venus's flower basket) कहते हैं, एक सुन्दर व आकर्षक समुद्री स्पंज है जो **फिलिपाइन, वेस्ट इण्डीज** तथा प्रशान्त महासागर के द्वीपसमूहों के आस-पास पाया जाता है यह 300 फीट से 3 मील की गहराई तक समुद्र के तल से आलग्न पाया जाता है ।

इसका शरीर घुमावदार, बेलनाकार व सुदृढ़ तथा 6–11 इंच तक लम्बा होता है । इसके अग्र सिरे पर **ऑस्कुलम** (osculum) होता है जिसके ऊपर एक छलनी (sieve plate) होती है तथा पश्च सिरे पर सिलिका की बनी हुई **मूल कण्टिकाओं** (root spicules) का एक झुण्ड होता है । इसका नाल तन्त्र **साइकोनॉयड** (syconoid) प्रकार का होता है किन्तु वास्तविक ऑस्टिया (ostia) का अभाव होता है तथा शरीर पर **पार्श्विक झिरियाँ** (parietal gaps) होती है । इसका शुष्क कंकाल सजावट के काम आता है ।

चित्र ११·१. यूप्लैक्टेला (*Euplectella*)

कुछ क्रस्टेशियन्स, विशेषकर **स्पंजिकोला** जैनेरा के शिशु-श्रिम्प जल की धारा के साथ स्पंज गुहा में पहुँच जाते है । ऑस्कुलम पर स्थित छलनीयुक्त उपान्त के कारण ये बाहर नही निकल पाते तथा वहीं रहकर मादा व नर श्रिम्प वृद्धि करके परिपक्व होते है ओर जनन करके अन्त में स्पंज के शरीर के भीतर ही मृत्युग्रस्त हो जाते हैं । अतः ये श्रिम्प जीवन पर्यन्त एक साथ रहते है । जापानी लोग इसीलिए इसे शादी के समय उपहार के रूप में देते है जिसका अर्थ होता है कि नवयुगल "बुढ़ापे एवम् मृत्यु के बाद कब्र में भी एक साथ रहें ।"
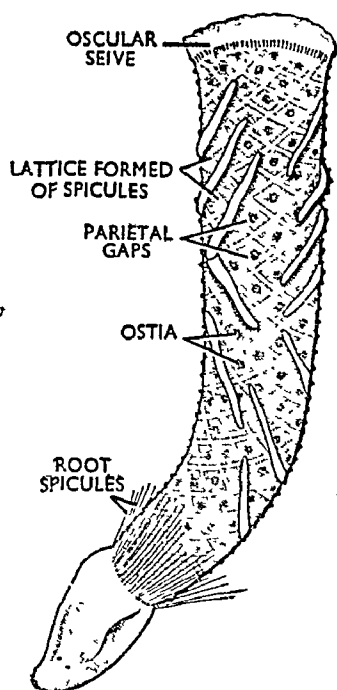
3. ऑस्कैरेला (Oscarella)

फाइलम	—	पोरीफेरा (*Porifera*)
क्लास	—	डीमोस्पंजिया (*Demospongia*)
सबक्लास	—	टैट्रैक्टिनैलिडा (*Tetractinellida*)
आर्डर	—	मिक्सोस्पंजिया (*Myxospongia*)

यह समुद्र के उथले जल में चट्टानों आदि से चिपका हुआ पाया जाता है। यह आदिम प्रकार का छोटे आकार वाला स्पंज है जिसका शरीर चमकीले रंग का होता है। शरीर में कण्टिकाओं का पूर्ण अभाव होता है। इसकी ऊपरी सतह अत्यधिक पालिमय होती है तथा प्रत्येक पालि में एक **अपवाही नाल** (excurrent canal) होती है जिसके चारों ओर **कशाभी कक्ष** (flagellated chambers) होते हैं। पालियों के बीच के अवनमन **आवाही नालों** (incurrent canals) को प्रदर्शित करते हैं। इसका नाल तन्त्र **एफोडल** (aphodal) प्रकार का होता है। इसके आधार भाग में **जनद** (gonads) एवम् **भ्रूण** (embryos) स्थित होते हैं। जनन अलैंगिक एवम् लैंगिक प्रकार का होता है।
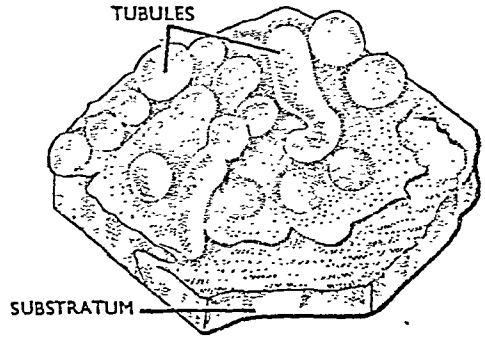
चित्र ११·२. ऑस्कैरेला (*Oscarella*)

4. स्पंजिला (Spongilla)

फाइलम	—	पोरीफेरा (*Porifera*)
क्लास	—	डीमोस्पंजिया (*Demospongia*)
सबक्लास	—	मोनेक्सोनिडा (*Monaxonida*)
आर्डर	—	हैप्लोस्क्लेराइना (*Haplosclerina*)
टाइप	—	स्पंजिला (*Spongilla*)

यह स्वच्छ पानी में सर्वसामान्य रूप से पाया जाने वाला **संघजीवी** (colonial) स्पंज है। यह स्वच्छ पानी के जोहड़ों, तालावों एवम् सरिताओं में पत्थरों,
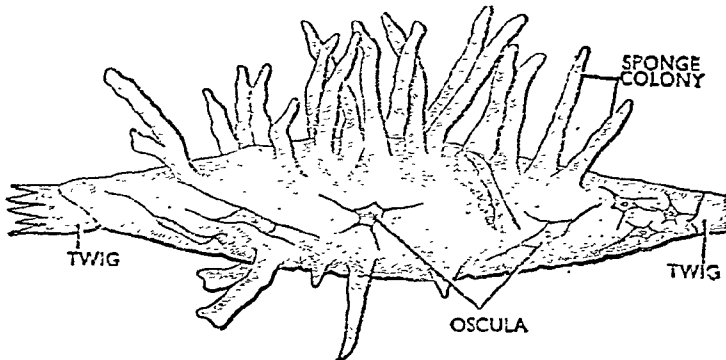
चित्र ११·३. स्पंजिला (*Spongilla*)

चट्टानों व जलीय पेड़-पौधों से चिपका हुआ पाया जाता है। इसका शरीर पीले-कत्थई रंग का होता है किन्तु सहजीवी शैवाल की उपस्थिति के कारण यह गहरे हरे रंग का प्रतीत होता है। स्पंज की कॉलोनी से अनेक शाखाएँ निकली रहती हैं तथा पूर्ण शरीर पर **ऑस्टिया** (ostia) छितरे रहते हैं। इसका नाल तन्त्र रेहगॉन (rhagon) प्रकार का होता है।

स्पंजिला का कंकाल सिलिका की बनी कण्टिकाओं के जाल के रूप में होता है। कण्टिकाएँ मोनेक्सॉन (monaxon), लघुकण्टिकाएँ (microscleres) तथा गुरु-कण्टिकाएँ *(megascleres) प्रकार की होती हैं जो स्पंजिन में सन्निहित रहती हैं।* जनन **अलैंगिक** एवम् **लैंगिक** दोनों प्रकार का होता है। अलैंगिक जनन **जेम्यूल** (gemmules) द्वारा होता है। लैंगिक जनन के फलस्वरूप एक स्वच्छन्द तैरने वाला लारवा बनता है।

5. कैलाइना (Chalina)

(मरमेड का ग्लव या फिंगर स्पंज—Mermaid's glove or Finger sponge)

फाइलम	—	**पोरीफेरा** (*Porifera*)
क्लास	—	**डीमोस्पंजिया** (*Demospongia*)
सबक्लास	—	**मोनेक्सोनिडा** (*Monaxonida*)
आर्डर	—	**हैप्लोस्क्लेराइना** (*Haplosclerina*)
टाइप	—	**कैलाइना** (*Chalina*)

चित्र ११·४. कैलाइना (*Chalina*)

यह यूरोप एवम् अमेरिका के समुद्रों के गहरे पानी में पाया जाने वाला स्पंज है। इसका शरीर सन्तरी-लाल या पीले-कत्थई रंग का होता है। यह पादप के समान व अचल जीव है जिसमें एक उभयनिष्ठ स्कन्ध से चपटी तथा अंगुलाकार शाखाएँ निकली होती है। चपटे व हाथ के समान दृष्टिगत होने के कारण इसको **Dead man's finger** या **Mermaid's glove** भी कहते हैं। इसका कंकाल **एकअक्षीय कण्टिकाओं** (monaxon spicules) तथा **स्पंजिन तन्तुओं** (spongin fibres) का बना होता है। यह पुनर्गठन एवम् मुकुलन द्वारा अलैंगिक जनन करता है तथा लैंगिक जनन के फलस्वरूप स्वच्छन्द तैरने वाला लारवा बनाता है।

5. यूस्पंजिया (Euspongia)

(बाथ स्पंज—Bath sponge)

फाइलम	—	**पोरीफेरा** (*Porifera*)
क्लास	—	**डीमोस्पंजिया** (*Demospongia*)
सबक्लास	—	**केरेटोसा** (*Keratosa*)
टाइप	—	**यूस्पंजिया** (*Euspongia*)

चित्र ११·५. यूस्पंजिया (*Euspongia*)

यह अधिकांशत: पश्चिमी भारत व अमेरिका के समुद्री तट तथा भूमध्य सागर के उथले जल में चट्टानों से आलग्न पाया जाता है। शरीर पिंडक के समान या प्याले-नुमा होता है जिस पर अनेक उभार होते है। इन उभारों पर **ऑस्कुला** या **अपवाही रन्ध्र** स्थित होते है। इसका ककाल स्पंजिन तन्तुओं के जालक का बना होता है जो अत्यन्त कोमल एवम् लचीले होते है।

यूस्पंजिया आर्थिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण स्पंज है। इसके शुष्क ककाल को **बाथ स्पंज** (bath sponge) कहते हैं। यह गद्दे आदि बनाने के काम आता है।

अध्याय 12
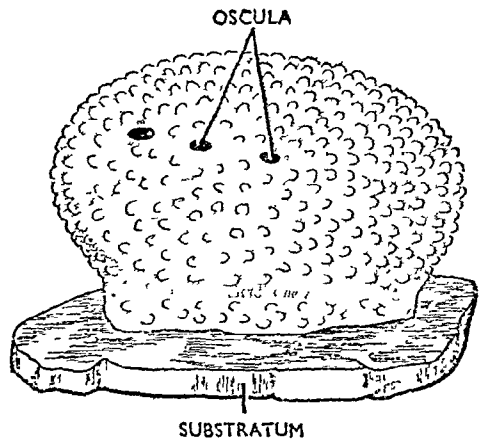
साइकन
(Sycon)

फाइलम	—	पोरीफेरा (*Porifera*)
क्लास	—	कैलकेरिया (*Calcaria*)
आर्डर	—	हेटरोसीला (*Heterocoela*)
टाइप	—	साइकन (*Sycon*)

प्रश्न 41. किसी स्पंज की सामान्य औतिकी का वर्णन करिये।

Give an illustrated account of the general anatomy of a sponge. (*Kerala 1967 ; Agra 56, 64, 68 ; Vikram 61*)

किसी स्पंज की सामान्य संरचना का वर्णन कीजिये।

Describe the general organization of a sponge. (*Nagpur 1960*)

किसी स्पंज की सामान्य औतिकी का उल्लेख कीजिये।

Describe the general anatomy of a sponge.
(*Luck. 1959, 64 ; Agra 67*)

साइकन की संरचना का वर्णन कीजिये।

Describe the structure of *Sycon*.
(*Raj. 1968 ; Agra 58 ; Nagpur 69 ; Jiwaji 70*)

किसी स्पंज की संरचनात्मक विशेषताओं का उल्लेख करिये।

Mention the structural peculiarities of any sponge.
(*Vikram 1964*)

साइकन जो आजकल *स्काइफा* के नाम से पुकारा जाता है फाइलम पोरीफेरा के उदाहरण के रूप में अध्ययन किया जाता है। यह समुद्र में पाया जाने वाला कैलकेरियस (calcareous) स्पंज है जो समुद्री किनारे के उथले पानी में डूबी हुई चट्टानों अथवा अन्य पदार्थों से चिपका रहता है। यह अचल (sedentary), सुस्त (sluggish) तथा देखने में अक्रियशील (inactive) आदतों वाला जन्तु है। यह संघवासी (colonial) जन्तु है जिसमें संघ (colony) शाखान्वित (branched) होता है, किन्तु कुछ जन्तु अकेले भी देखे गये है।

आकार (Shape)—*साइकन* के संघ (colony) का आकार एक शाखान्वित वृक्ष (branched tree) के सामान होता है। इसमें दो या दो से अधिक बेलनाकार ऊर्ध्व (cylindrical vertical) शाखाएँ होती हैं जो अपने आधार पर **स्टोलन** (stolon) नामक रचना से जुड़ी रहती है। स्टोलन आधार से चिपककर स्पंज को आधार से लगाये रखता है।

संघ का प्रत्येक बेलन (cylinder) लम्बा तथा फूलदान के आकार का (vase-like) होता है जो मध्य मे थोड़ा-सा उभरा रहता है। प्रत्येक कोशिका के लचीलेपन से ये अत्यन्त लचीले (flexible) होते है, अन्यथा इनकी रचना पर्याप्त दृढ होती है।

परिमाण (Size)—प्रत्येक वेलन का परिमाण 2 से 8 cm. तक होता है तथा एक संघ अधिक से अधिक 2·5 से 8 cm. तक हो सकता है।

रंग (Colour)—स्पंज स्लेटी तथा हल्के भूरे रंग की विभिन्न आभाओं के रंगों में पाये जाते हैं।

वाह्य रचना (External Appearance)

अपवाही छिद्र तथा अपवाही फ्रिंज अथवा धारियाँ (Osculum and oscular fringe)—प्रत्येक वेलन का दूरस्थ स्वतन्त्र सिरा अपेक्षाकृत सँकरा होता है तथा इसमें एक चौड़ा छिद्र **अपवाही छिद्र** अथवा **ऑस्कुलम** (osculum or exhalent pore) होता है। इसके द्वारा **जठराभ गुहा** या **पेरागैस्ट्रिक गुहा** (paragastric cavity) वाहर खुलती है। आस्कुलम सूई के समान असख्य सीधी तथा कैल्केरियस रचनाओं द्वारा चारो ओर से घिरा रहता है। ये कण्टिकाएँ एक-अक्षीय या मोनेक्सोन होती है तथा एक चक्र मे एकत्रित हो कर ऑस्कुलर फ्रिंज (oscular fringe) बनाती है।

चित्र १२·१. साइकन (*Sycon*) की वाह्य रचना

ऑस्यक या चर्मरन्ध्र (Ostia or dermal pores)—लेंस द्वारा देखने पर साइकन के शरीर की सतह पर असख्य, नियमित रूप से लगे हुए वहुभुजाकार (polygonal) उभार (elevations) दिखाई देते है जो दबी हुई लाइनों या खाँचो (furrows) द्वारा अलग रहते है। इन खाँचो में असख्य सूक्ष्मदर्शी छिद्र स्थित होते हैं। ये **ऑस्यक या अपवाही छिद्र या चर्मरन्ध्र** (ostia or incurrent pores or dermal pores) कहलाते है। ये छिद्र अपवाही नाल (incurrent canal) में खुलते हैं। ज़न्तु के समस्त शरीर पर छोटे-छोटे काँटे दिखाई देते हैं। ये **मोनेक्सोन कण्टिकाएँ** हैं जो त्वचा से वाहर निकली रहती है।

आन्तरिक रचना (Internal Structure)

जठराभ गुहा (Paragastric cavity)—यदि साइकन के शरीर को लम्बाई मे दो भागो मे काट दिया जाय तो उसका प्रत्येक वेलन एक खोखले वर्तन के रूप मे दिखाई देता है। इसके मध्य में एक बड़ी गुहा नाल होती है जो **जठराभ गुहा** (paragastric cavity) या **स्पंज गुहा** (spongocoel) कहलाती है। यह जन्तु के शरीर की लम्बाई मे स्थित होती है। यह gastric epithelinm द्वारा आस्तारित होती है तथा एक वड़े छिद्र, **ऑस्कुलम**, द्वारा वाहर को खुलती है।

नाल तन्त्र (Canal system)—**मेसोग्लीया** (mesogloea) के मोटे होने से प्रत्येक वेलन की दीवार भी वहुत मोटी होती है। दीवार मे अनुप्रस्थ वलन (folds) पाये जाते है जिनका विन्यास इस प्रकार होता है कि दीवार मे वहुत-से कक्ष एक-दूसरे के समानान्तर किन्तु वेलन के अक्ष के लम्बवत् (at right angles to the axis of cylinder) स्थित होते है। ये कक्ष दो प्रकार के होते है—
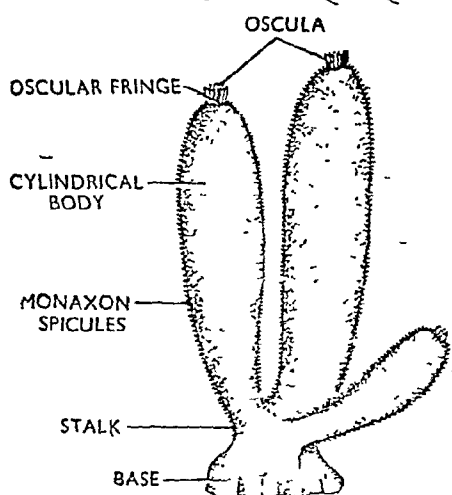
1. आवाही नाल (incurrent canals)

2. कशाभी कक्ष या आराभ नाल (flagellated chambers or radia canals)

ये कशाभ कक्ष या आराभ नाल अपने दूरस्थ सिरे पर अपवाही नाल (ex current canals) से सम्बन्धित होते हैं।
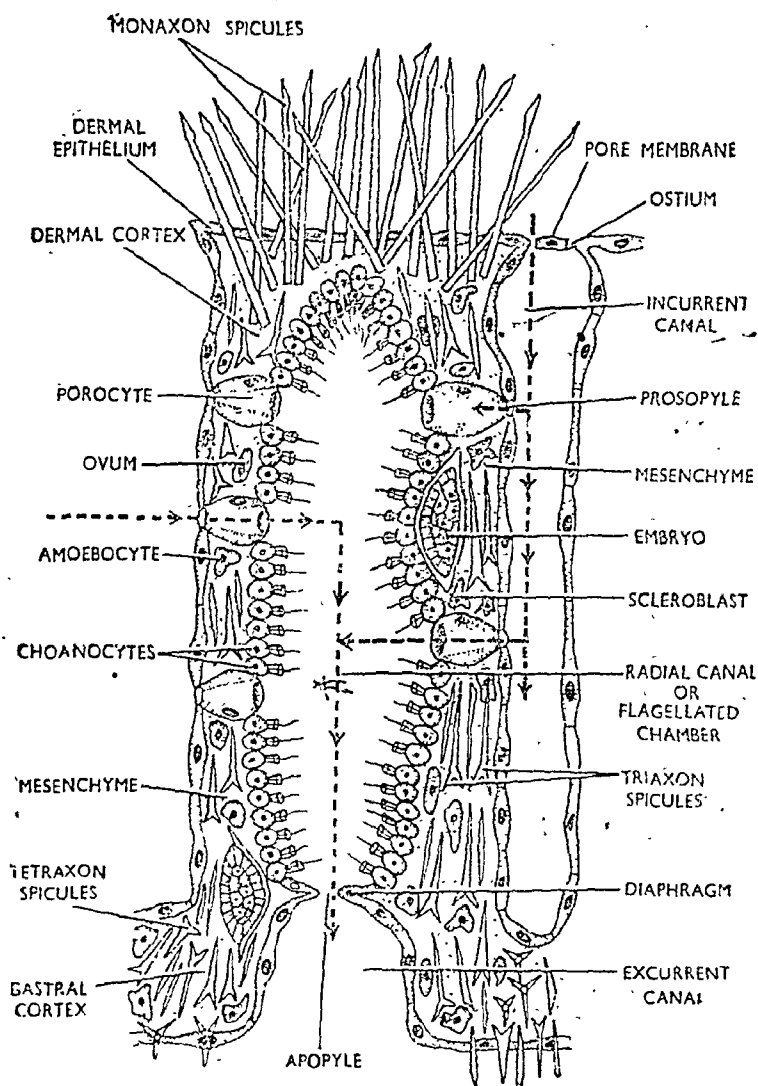
चित्र १२·२. साइकन की देहभित्ति की अनुप्रस्थ काट (T.S. body wall of *Sycon*)

1. आवाही नाल (Incurrent canals)—अपवाही नाल दो आराभ नालों के बीच में स्थित एक सँकरा स्थान है जिसका बाहरी सिरा चौड़ा तथा पिछला सिरा सँकरा होता है। इसका बाहरी सिरा रन्ध्र झिल्ली (pore membrane) द्वारा ढका होता है। रन्ध्र झिल्ली में तीन से चार तक आन्तर-कोशिक छिद्र या रन्ध्र (inter-

cellular openings) होते हैं जो **ऑस्यक** (ostia) कहलाते हैं। ये छिद्र बाहर से सम्बन्धित होते हैं तथा इनके द्वारा पानी आवाही नाल में आता है। आवाही नाल का पिछला सिरा बन्द होता है। आवाही नालों की संख्या आराभ नालों अथवा कशाभ कक्षों की संख्या के बराबर होती है। किन्तु ये dermal epithelium की चपटी कोशिकाओं से आस्तारित होती हैं। ये कोशिकाएँ **पिनेकोसाइट** (pinacocytes) कहलाती हैं।

2. आराभी नाल या कशाभ कक्ष (Radial canals or flagellated chambers)—ये भी शरीर की दीवार में पाये जाने वाले चौड़े अष्टभुजी (octagonal) कक्ष हैं जो अरीय दिशा में (radially arranged) लगे रहते हैं। ये बेलन के अक्ष के लम्बवृत् स्थित होते हैं तथा कीप-कोशिकाओं (choanocytes) द्वारा आस्तारित होते हैं। प्रत्येक आराभी नाल का बाहरी सिरा बन्द होता है तथा भीतर वाला सिरा **निर्गम द्वार** या एपोपाइल (apopyle) नामक छिद्र द्वारा अपवाही नाल (excurrent canal) में खुलता है। आराभी नाल असंख्य छोटे रन्ध्रों द्वारा अपवाही नाल में खुलती है। ये छिद्र **आगम द्वार** (prosopyle) कहलाते हैं। प्रत्येक आगम द्वार (prosopyle) छिद्र कोशिका में स्थित एक सँकरी नाल है।

3. अपवाही नाल (Excurrent canal)—अपवाही नाल आराभी नाल के भीतर के सिरे से सम्बन्धित छोटी तथा चौड़ी नलिकाएँ हैं जो आराभी नाल के साथ उसी कक्ष में स्थित होती हैं। प्रत्येक अपवाही नाल आराभी नाल से एक पतले पर्दे (diaphragm) द्वारा अलग रहती है। डायफ्राम में बड़ा गोल छिद्र होता है जिसके द्वारा यह आराभी नाल में खुलती है। यह छिद्र निर्गम द्वार (apopyle) कहलाता है। निर्गम द्वार पेशी कोशिकाओं (myocytes) द्वारा घिरा रहता है। अतः इसमे सिकुड़ने तथा फैलने की क्षमता होती है। अपवाही नाल भीतर की ओर एक चौड़े छिद्र द्वारा जठराभ गुहा (paragastric cavity) में खुलती है। यह छिद्र **जठराभ ऑस्यक** (gastral ostium) कहलाता है। अपवाही नाल का आन्तरिक स्तर एक्टोडर्मल कोशिकाओं (ectodermal cells) अथवा पिनेकोसाइट (pinacocytes) का बना होता है।

औतिकी (Histology)

स्पंज द्विस्तरीय (diploblastic) जन्तु है जिसमें बाह्य स्तर **एक्टोडर्म** (ectoderm) तथा आन्तर-स्तर **एण्डोडर्म** (endoderm) का बना होता है। इन दोनों के बीच में मीसेनकाइम (mesenchyme) नामक अकोशीय स्तर होता है।

1. बहिर्जन स्तर या एक्टोडर्म (Ectoderm)—साइकन में एक्टोडर्म शरीर की बाहरी सतह को पूर्णतया ढकता है तथा जठराभ गुहा (paragastric cavity), अपवाही नाल (excurrent canals) एवम् आवाही नाल (incurrent canals) को आस्तारित करता है। इसकी कोशिकाएँ बड़ी, चपटी तथा शल्क के समान (scale-like) होती है जो एक-दूसरे से चिपकी रहती हैं, अर्थात् कोशिकाओं के बीच आन्तर-कोशिक स्थान (intercellular space) नहीं होता। ये कोशिकाओं के **पिनेकोसाइट** (pinacocytes) कहलाती है। ये अत्यधिक लचीली होती हैं और स्पंज की सतह को कम और अधिक कर सकती हैं। शरीर की बाह्य सतह को ढकने वाले तथा अपवाही नाल को आस्तारित करने वाले पिनेकोसाइट dermal epithelium बनाते हैं तथा जठराभ गुहा को आस्तारित करने वाले पिनेकोसाइट gastral epithelium बनाते हैं।

2. **अन्तर्जन स्तर या एण्डोडर्म** (Endoderm)—अन्तर्जन केवल कशाभ कक्षों में पाया जाता है। इसकी कोशिकाएँ **कशाभ कोशिकाएँ** (flagellated cells) या **कीप कोशिकाएँ** (choanocytes) कहलाती है। ये एक पंक्ति में विन्यसित होती है और स्पंज के शरीर में जलधारा का बहाव अनवरत बनाये रखती हैं।

3. **मीसेनकाइम** (Mesenchyme)—एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म के बीच का स्थान अकोशीय (noncellulaı), पारदर्शी (transparent) तथा जिलेटिन के समान (gelatinous) पदार्थ से भरा होता है जो **मेसोग्लीया** (mesogloea) अथवा **मीसेनकाइम** (mesenchyme) नामक स्तर बनाता है। इसमें कई प्रकार की कोशिकाएँ तथा बहुत-सी कैल्केरियस कण्टिकाएँ (calcareous spicules) छितरी रहती है। इसमें पायी जाने वाली कोशिकाएँ **अमीबोसाइट** (amoebocyte), **कोलेनोसाइट** (collenocytes), **स्क्लीरोब्लास्ट** (scleroblasts) तथा **आरकियोसाइट** (archeocytes) होती हैं। आकार तथा परिमाण के आधार पर कण्टिकाएँ निम्न प्रकार की हो सकती है :—

(*i*) **मोनेक्सान कण्टिकाएँ** (Monaxon spicules)—ये लम्बी, सीधी तथा छड़ के आकार की (rod-shaped) कण्टिकाएँ है जिनमें केवल एक अक्ष होता है। ये दो प्रकार की होती हैं—

(*a*) **बड़ी एक-अक्षीय मोनेक्सान कण्टिकाएँ** (Large monactinal monaxon spicules)—ये कण्टिकाएँ केवल एक दिशा मे वृद्धि करती है ; अतः इनमे एक अक्ष होता है। ये अपवाही रन्ध्र (osculum) के चारों ओर घेरे में पायी जाती हैं।

(*b*) **छोटी, सरल तथा कुल्हाड़ी या मुग्दर के आकार की मोनेक्सॉन कण्टिकाएँ** (small spear-shaped or club-shaped monaxon spicules)—ये मेसोग्लीया में पड़ी रहती है तथा शरीर की सतह से बाहर निकली होती है।
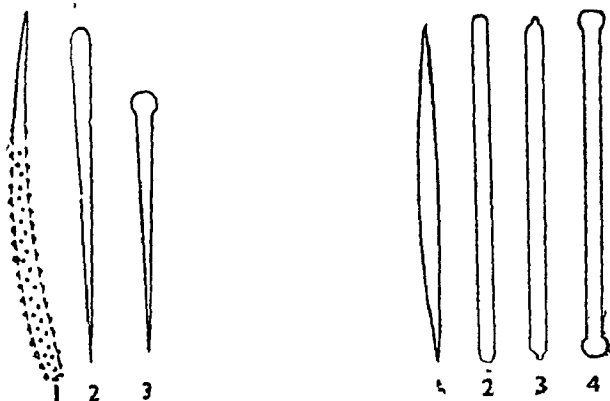
चित्र १२·३. एक-अक्षीय मोनेक्सॉन कण्टिकाएँ
(Monactinal monaxon spicules)

चित्र १२·४. द्वि-अक्षीय मोनेक्सॉन कण्टिकाएँ
(Diactinal spicules)

(*ii*) **ट्राइएक्सान कण्टिकाएँ** (Triaxon spicules)—इसमें तीन अक्ष होते है तथा ये कशाभ-कक्षों के समीप पायी जाती है।

(*iii*) **टेट्राक्सॉन कण्टिकाएँ** (Tetraxon spicules)—इनमें चार अक्ष होते है तथा ये स्पंज गुहा के चारों ओर की मोटी व जठर आन्तस्-त्वचा (gastral cortex)—में पड़े रहते है।
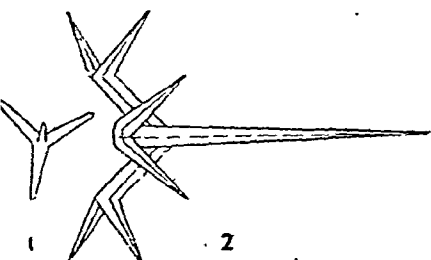
चित्र १२·५. ट्राइएक्सॉन कण्टिकाएँ
(Triaxon spicules)
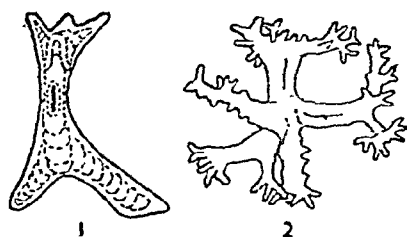
चित्र १२·६. टेट्राक्सॉन कण्टिकाएँ
(Tetraxon spicules)

प्रश्न 42. साइकन की लम्बवत् काट का स्वच्छ एवं नामांकित चित्र बनाइये। इसमें पायी जाने वाली विभिन्न कोशिकाओं का वर्णन कीजिये।

Draw a neat and labelled diagram of the L.S. of *Sycon*. Describe the structure and function of different types of cells in it.
(*Agra 1956, 68 ; Vikram 63 ; Punjab 68 ; Jiwaji 73*)

स्पंज के शरीर में पायी जाने वाली विभिन्न कोशिकाओं का वर्णन कीजिये।

Give an account of different types of cells met within the body of a sponge. (*Gorakhpur 1961 ; Lucknow 51, 54, 58, 62, 65, 66 ; Agra 64 ; Ravishankar 65*)

साइकन में पाये जाने वाले मुख्य ऊतक तत्वों का वर्णन कीजिये एवं उनके कार्य बताइये।

Describe the main histological elements found in *Sycon* and indicate their functions. (*Gorakhpur 1969 ; Agra 51 ; Allahabad 51, 55, 63 ; Delhi 70 ; Kanpur 68 ; Utkal 68 ; Jabalpur 72*)

साइकन की देहभित्ति की संरचना का वर्णन कीजिये।

Describe the structure of body wall of *Sycon*.
(*Allahabad 1966*)

ऊतक तत्व (Histological Elements)

साइकन में रचना का cellular grade होता है। यही द्विस्तरीय (diploblastic) जन्तु है जिसमें दो भ्रूण-कलाएँ (embryonic membranes) एक्टोडर्म (ectoderm) तथा एण्डोडर्म (endoderm) होती हैं। ये दोनों स्तर मेसोग्लीया (mesoglea) द्वारा जुड़े रहते हैं। स्पंज के शरीर में पायी जाने वाली कोशिकाएँ दो भ्रूण-कलाओं में ही नहीं लगी रहतीं किन्तु मेसोग्लीया में भी पड़ी रहती हैं। ये कोशिकाएँ अत्यन्त सरल रचना वाली होती हैं। कीप कोशिकाओं (choanocytes) के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की कोशिकाएँ कार्य के अनुरूप अमीबोसाइट (amoebocytes) के परिवर्तित रूप प्रदर्शित करती हैं। ये कोशिकाएँ एक साथ एकत्रित रहती हैं, किन्तु ऊतक अंग या तन्त्र नहीं बनातीं।

बहिर्जन स्तर की कोशिकाएँ (Cells of Ectoderm)

1. पिनेकोसाइट (Pinacocytes)—पिनेकोसाइट बड़ी, चपटी तथा बहुभुजाकार (polygonal) एपिथीलियल कोशिकाएँ (epithelial cells) हैं जो अपने पतले किनारे (margins) द्वारा एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं तथा समस्त शरीर को ढके रहती हैं। इनके अतिरिक्त ये आवाही नालों (incurrent canals), अपवाही

नालों (excurrent canals) तथा स्पंज गुहा (spongocoel) को आस्तारित करती हैं। प्रत्येक पिनेकोसाइट, शल्क (scale) के समान पतला तथा चपटा होता है तथा इसके मध्य में एक उभार होता है। इस उभार में केन्द्रक स्थित रहता है। पिनेकोसाइट अत्यधिक कुञ्चनशील होते हैं तथा स्पंज की सतह को बहुत अधिक घटा-बढ़ा सकते हैं। सिकुड़ते समय इनके पतले किनारे मध्य में उभरे हुए भाग में सिकोड़ लिये जाते हैं।

2. रन्ध्र कोशिकाएँ (Porocytes)—ये लम्बी नालाकार (tubular) कोशिकाएँ हैं जिनके मध्य में लम्बाई के साथ एक नाल (hollow cavity or canal) होती है। ये पिनकोसाइट कोशिकाओं के मध्य में निश्चित दूरी पर स्थित होती हैं तथा इनके द्वारा आवाही नालें कशाभ कक्ष मे खुलती है। ये अत्यन्त कुञ्चनशील होती हैं तथा सिकुड़ने पर कोशिकाद्रव्य की पतली झिल्ली आगम द्वार पर फैला देती है जिससे आगम द्वार वन्द हो जाता है। छिद्र कोशिकाएँ पिनेकोसाइट्स के रूपान्तरण से वनती है किन्तु प्रीनेण्ट (Prenant) के अनुसार ये परिवर्तित अमीवोसाइट्स हैं।

अन्तर्जन स्तर की कोशिकाएँ (Cells of Endoderm)

3. कीप-कोशिकाएँ (Choanocytes)—कीप-कोशिकाएँ गोल या अण्डाकार कोशिकाएँ हैं जो कशाभ कक्षों (flagellated chambers) में पायी जाती है। ये जन्तु के भ्रूणीय अन्तर्जन स्तर (embroyonic endoderm) से वनती हैं। ये अपने चौड़े आधार (broad base) द्वारा मीसेनकाइम पर आधारित रहती है। प्रत्येक के अगले सिरे पर एक मुलायम, पारदर्शी तथा लचीला कॉलर (collar) होता है। कॉलर एक लम्बे कोड़े के समान तथा शक्तिशाली कशाभ के आधार को घेरे रहता है। प्रत्येक कशाभ एक आधार-कणिका (basal granule) से निकलता है। प्रत्येक कीप-कोशिका के आधार या शीर्ष के समीप एक केन्द्रक स्थित होता है तथा इसके कोशिकाद्रव्य में एक या दो रिक्तिकाएँ भी पायी जाती हैं। कीप-कोशिकाओं के कशाभ अनवरत क्रियाशील रहते हैं और पानी की धारा को शरीर के भीतर खींचकर लाते हैं। इसके अतिरिक्त कीप-कोशिकाएँ पाचन, उत्सर्जन तथा जनन में भी मुख्य कार्य करती है।

मीसेनकाइम में पायी जाने वाली कोशिकाएँ (Cells in Mesenchyme)

4. अमीबाभ कोशिकाएँ या अमीबोसाइट (Amoebocytes)—ये अमीबा के समान अनियमित आकार की कोशिकाएँ है जो मीसेनकाइम के पारदर्शी पदार्थ में पायी जाती है। पादाभ की उपस्थिति के कारण ये मीसेनकाइम में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमती है। आकार, परिमाण, पादाभों की प्रकृति तथा इसमें उपस्थित पदार्थों के आधार पर अमीबाभ कोशिकाएँ कई प्रकार की होती हैं :—

(*i*) **संयोजी कोशिकाएँ** (Collenocytes)—ये छोटी अमीबाभ कोशिकाएँ है जिनके पादाभ लम्बे, पतले तथा शाखान्वित होते हैं। पादाभों की शाखाएँ बहुधा एक-दूसरी से मिलकर शाखा-जाल वना लेती है। ये अन्य जन्तुओ की संयोजी ऊतक कोशिकाओं (connective tissue cells) के समान होती है।

(*ii*) **रंग कोशिकाएँ या वर्ण कोशिकाएँ** (Chromocytes)—ये भी अमीबाभ कोशिकाएँ है जिनके पादाभ लोवोस प्रकार के होते है तथा इनके कोशिकाद्रव्य में रंग कणिकाएँ पायी जाती हैं।

(*iii*) **थीसोसाइट** (Thesocytes)—इन अमीबाभ कोशिकाओं के पादाभ चौड़े
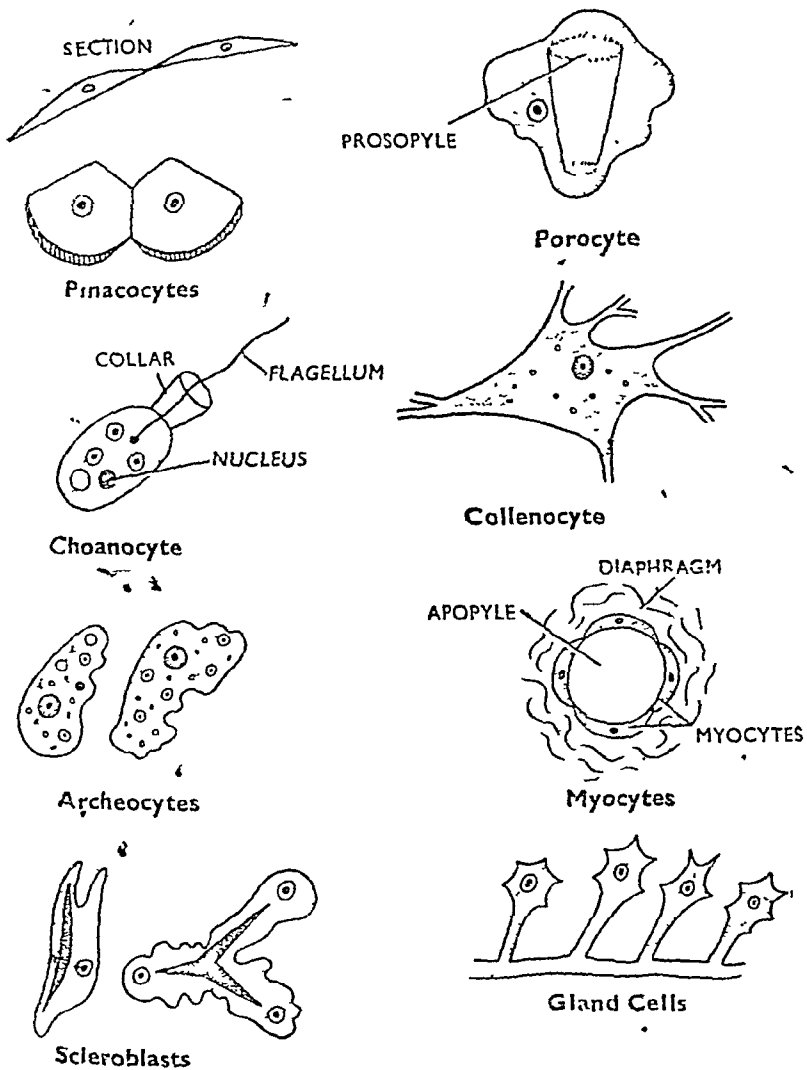
चित्र १२·७. स्पंज मे पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ
(Various types of cells found in sponge)

होते है और उनमे भोजन एकत्रित रहता है ।

(*iv*) कंकजन कोशिकाएँ या स्क्लीरोब्लास्ट (Scleroblast)—ये कोशिकाएँ जन्तु के कंकाल की कण्टिकाएँ (spicules) स्रावित (secrete) करती है । स्रावित किये पदार्थ की प्रकृति के आधार पर ककजन कोशिकाएँ निम्न प्रकार की होती हैं :—

(*a*) कैल्कोब्लास्ट (Calcoblasts)—ये $CaCO_3$ की बनी कण्टिकाएँ बनाते हैं जो क्लास कैल्केरिया मे पायी जाती है ।

(*b*) सिलिकोब्लास्ट (Silicoblasts)—ये सिलिका (silica) की कण्टिकाएँ स्रावित (secrete) करते है । ये हैक्सेक्टिनेलिडा तथा कुछ डीमोस्पोंजिया में पाये जाते है ।

(*c*) स्पोंजियोब्लास्ट (Spongioblasts)—ये स्पंजी तन्तु उत्पन्न करते है तथा केरेटोसा उपश्रेणी मे पाये जाते हैं।

(*v*) आद्य कोशिकाएँ (Archaeocytes)—आद्य कोशिकाएँ अभिन्नित (undifferentiated) भ्रूण कोशिकाएँ (embryonic cells) मानी जाती हैं जो पुनर्जनन क्रिया मे मुख्य भाग लेती है। इन्ही से जनन कोशिकाएँ बनती है। ये साधारण प्रकार की अमीबाभ कोशिकाएँ है जिनके पादाभ चपटे तथा केन्द्रक बड़ा होता है। केन्द्रक मे केन्द्रिक (nucleolus) अत्यन्त स्पष्ट होता है। कभी-कभी इनके कोशिकाद्रव्य मे बहुत से पदार्थ एकत्रित रहते है। ये कोशिकाएँ भोजन तथा उत्सर्जी पदार्थो को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाती है तथा अन्य प्रकार की अमीबाभ कोशिकाओ एवम् जनन-कोशिकाओं को जन्म देती हैं।

(*vi*) पेशी कोशिकाएँ (Myocytes)—ये तर्कुरूपी (fusiform) कुञ्चनशील कोशिकाएँ हैं जो अन्य जन्तुओं की पेशी कोशिकाओ के समान होती है। ऑस्कुलम तथा अन्य छिद्रो के चारो ओर वलय के रूप मे समायोजित होती है तथा एक प्रकार की सवरणी अथवा सकोचक पेशी (sphincter) के समान कार्य करती है। ये छिद्रों के खुलने तथा बन्द होने को नियन्त्रित करती हैं।

प्रश्न 43. साइकन के नाल-तन्त्र का वर्णन कीजिये तथा इसमें जल की परिवहन विधि एवम् उसके महत्त्व का उल्लेख करिये।

Give an account of canal system of *Sycon* and explain the mechanism and importance of circulation of water through it.

(*Agra 1965, 71 ; Gorakhpur 62, 71 ; Punjab 66, 71 ; Jiwaji 68 ; Patna 69 ; Indore 72 ; Meerut 71 ; Vikram 72 ; Ranchi 73*)

साइकन के नाल-तन्त्र का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

Give an illustrated account of the canal system of *Sycon*.

(*Luck. 1958, 62, 66 ; B.H.U. 66 ; Vikrnm 62, 65, 69 ; Gorakhpur 68 ; Jiwaji 68 ; Meerut 67 ; Tribhuwan 66, 67*)

साइकन के नाल-तन्त्र का सविस्तार वर्णन कीजिये तथा इसकी क्रिया-विधि को समझाइये।

Describe in detail the structure of canal system in *Sycon* and explain its working.

(*Agra 1971, 73 ; Jabalpur 73 ; Calcutta 73 ; Bihar 73*)

किसी प्रारूपी स्पंज के नाल-तन्त्र का वर्णन कीजिये। फाइलम पोरीफेरा के विशिष्ट गुणों पर एक नोट लिखिये।

Describe the canal system of a typical sponge. Write a paragraph about the distinguishing features of this group.

(*Luck. 1968 ; Agra 55, 60, 63 ; Gorakhpur 59, 63*)

स्पंजों के नाल-तन्त्र के कायिकी महत्त्व का वर्णन कीजिये। साइकन के नाल-तन्त्र का उल्लेख करिये।

Explain the physiological importance of canal system in sponges. Describe the canal system of *Sycon*. (*Luck. 1952*)

स्पज की मोटी देह-भित्ति मे अनेक वलन (folds) पाये जाते है जिनसे अनेकानेक नालो (canals) के समान रचनाएँ बन जाती है। इन नालो में से होता हुआ पानी जन्तु के शरीर मे पहुँचता है। नालो का यह निश्चित विन्यास नाल-तन्त्र

(canal system) कहलाता है। इन्हीं नालों के विन्यास के अनुसार नाल-तन्त्र कई प्रकार का होता है। साइकन में साइकन प्रकार (syconoid type) का नाल-तन्त्र मिलता है। इसमें तीन प्रकार की नाल (canals) पायी जाती हैं :—

(*i*) आवाही नाल (incurrent canals)

(*ii*) आराभ नाल या कशाभ कक्ष (*radial canals or flagellated* chambers)

(*iii*) अपवाही नाल (excurrent canals)

1. आवाही नाल (Incurrent canals)—आवाही नाल आराभी नालों के बीच अरीय (radial) दिशा में स्थित अपेक्षाकृत सँकरे स्थान हैं जो आकार तथा परिमाण में आराभी नालों के ही समान होती हैं। इनका भीतर का स्तर चपटी
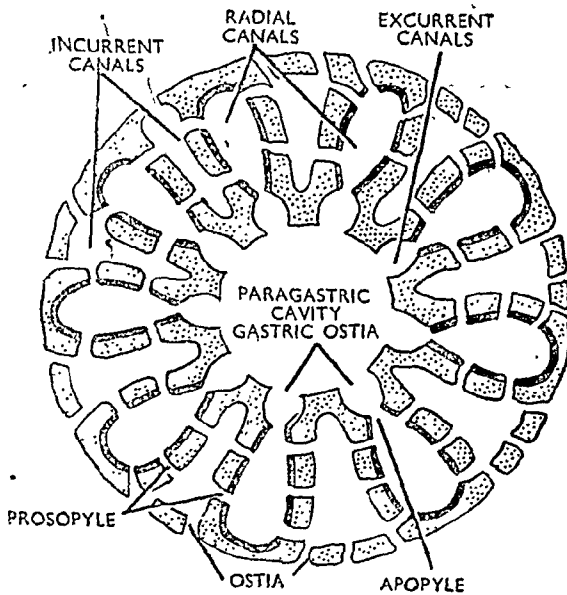
चित्र १२·८. साइकन की देह-भित्ति की अनुप्रस्थ काट (T.S. body wall)

कोशिकाओं **पिनेकोसाइट्स** (pinacocytes) का बना होता है। इनके भीतर के सिरे अपेक्षाकृत कम चौड़े होते हैं तथा जठराभ गुहा (gastric cavity) की ओर बन्द होते हैं। ये जठराभ गुहा तक नहीं पहुँचते। प्रत्येक आवाही नाल का बाहरी स्वतन्त्र सिरा कुछ फूला तथा खुला हुआ होता है तथा एक पतली रन्ध्र-झिल्ली (pore membrane) द्वारा ढका रहता है। रन्ध्र-झिल्ली में 3 से 4 तक सूक्ष्म छिद्र पाये जाते हैं। ये **ऑस्यक** (ostia) या **चर्म-छिद्र** (dermal pores) कहलाते हैं। इनमें से होकर पानी आवाही नाल में पहुँचता है।

2. आराभी नाल या कशाभ कक्ष (Radial canals or flagellated chambers)—आराभी नाल सीधे, लम्बे तथा अष्टभुजी (octagonal) स्थान हैं जो जठराभ गुहा से अनुप्रस्थ रूप में निकले रहते हैं तथा आवाही नाल के बीच स्थित होते हैं। इनके बाहरी सिरे बन्द होते हैं किन्तु भीतर के सिरे छोटे तथा चौड़े कक्षों में खुलते हैं जो अपवाही नाल कहलाते हैं। आराभी नाल को अपवाही नाल से

मिलाने वाले छिद्र **निर्गमन द्वार** (apopyles) कहलाते हैं। आराभी नाल तथा अपवाही नाल एक-दूसरे के समान्तर ऊपर-नीचे स्थित होते है। ये एक-दूसरे से मीसेनकाइम द्वारा अलग रहते हैं किन्तु कुछ स्थानों पर ये सूक्ष्म छिद्रों द्वारा एक-दूसरे में खुलते हैं। ये छिद्र **आगम द्वार** (prosopyles) कहलाते हैं। प्रत्येक **आगम द्वार** छिद्र-कोशिका (porocytes) के भीतर स्थित लम्बी नाल (elongated canal or tube) है। आराभी नाल का आन्तरिक स्तर कीप-कोशिकाओं (flagellated cells or choanocytes) का बना होता है। कीप-कोशिकाओं के कशाभ अनवरत गति करते रहते हैं तथा पानी की धारा की दिशा को नियन्त्रित करते हैं जिससे पानी जठराभ गुहा की ओर अग्रसित हो सके। **आगम द्वार** (prosopyle) के समीप की कीप-कोशिकाओं के कशाभ निर्गम द्वार की ओर होते हैं जिससे पानी निर्गम द्वार की ओर जा सके।

कृपया चित्र 12·8 देखिये।

3. अपवाही नाल (Excurrent canals)—प्रत्येक अपवाही नाल एक छोटी किन्तु चौड़ी नलिका है जो आराभी नाल के भीतर के सिरे पर स्थित होती है तथा उससे सम्बन्धित होती हैं। इसके द्वारा आराभी नाल जठराभ गुहा में खुलती है। प्रत्येक अपवाही नाल का बाहरी सिरा आराभी नाल के भीतर के सिरे से एक पतले तथा लचीले आवरण या डायफ्राम (diaphragm) द्वारा अलग रहता है। इस डायफ्राम के मध्य में एक बड़ा अण्डाकार छिद्र स्थित होता है जो **निर्गम द्वार** (apopyle) कहलाता है। निर्गम द्वार पेशी-कोशिकाओं (myocytes) से घिरा रहता है। अतः यह फैलकर चौड़ा तथा सिकुड़कर छोटा हो सकता है। इसी छिद्र के द्वारा आराभी नाल अपवाही नाल में खुलती है। अपवाही नाल का भीतरी सिरा चौड़े छिद्र द्वारा जठराभ गुहा में खुलता है। ये छिद्र **जठर ऑस्यक** (gastral ostia) कहलाते हैं।

जठराभ गुहा (Paragastric cavity)—जठराभ गुहा या स्पंज गुहा स्पंज के शरीर के मध्य में पायी जाने वाली मध्य गुहा (central cavity) है जो जन्तु के अक्ष के साथ अथवा जन्तु की लम्बाई में स्थित होती है। यह देहभित्ति द्वारा घिरी रहती है जो असंख्य रन्ध्रों द्वारा छिद्रित होती है। यह अपने अगले अथवा दूरस्थ स्वतन्त्र सिरे (anterior or distal free end) पर **अपवाही छिद्र** (osculum) द्वारा बाहर को खुलती है। अपवाही छिद्र शीर्ष पर स्थित सवरणीय छिद्र (terminal sphinctered) है जिसके द्वारा जठराभ गुहा में आया हुआ पानी शरीर से बाहर निकाला जाता है। जठराभ गुहा भीतर पिनकोसाइट कोशिकाओं से आस्तारित होती है।

जल परिवहन की प्रक्रिया (Mechanism of Water Circulation)

कीप-कोशिकाओं में कशाभों की गति के कारण पानी की धारा (water current) उत्पन्न की जाती है तथा पानी जन्तु के शरीर में पहुँचाया जाता है। ये कीप कोशिकाएँ स्पंज की आराभी नालों में पाई जाती हैं। सर्पिल तरंगों (spiral undulations) की एक धारा प्रत्येक कशाभ के आधार से शीर्ष की ओर बढ़ती है। सभी कशाभों की स्वतन्त्र किन्तु समान गति के द्वारा पानी गति की दिशा में बहता है तथा ऑस्यकों द्वारा जन्तु के शरीर में पहुँचता है। ऑस्यकों में से होता हुआ पानी आवाही नालों में भरता है। यहाँ से यह आगम द्वार द्वारा आराभी नालों या कशाभी कक्षों में पहुँचता है। इसके पश्चात निर्गम द्वार में से होता हुआ जल अप-

वाही नालों और फिर वहाँ से जठराभ गुहा में पहुँचता है। जठराभ गुहा से यह अपवाही छिद्र में से होकर वाहर फेंक दिया जाता है। पानी की धारा का मार्ग निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है।

वाहर (ऑस्यक)→अभिवाही नाल—(आगम द्वार)→आरीय नाल—(निर्गमन द्वार)→ अपवाही नाल—(जठर-ऑस्यक)→जठराभ गुहा—(अपवाही छिद्र)→वाहर।

जल-परिवहन का महत्त्व या नाल-तन्त्र का महत्त्व

(Importance of Water Circulation or Canal System)

पानी की धारा जन्तु के शरीर में नाल-तन्त्र में होकर पहुँचती है। यह अत्यन्त कार्यिकी महत्त्व (physiological importance) की होती है, क्योंकि यह निम्नलिखित कार्य करती है :—

1. पोषण (Nutrition)—जल की धारा के साथ सूक्ष्म जीव भी आते हैं जो साइकन का भोजन बनाते हैं। अतः यह जन्तु के पोषण में सहायता करती है।

2. श्वसन (Respiration)—जन्तु के शरीर में पहुँचने वाली जल की धारा में आक्सीजन अधिक मात्रा में होती है जो कोशिकाओं को आक्सीजन प्रदान करती है।

3. उत्सर्जन (Excretion)—स्पंज के शरीर से निकलने वाली जल की धारा में उत्सर्जी पदार्थ तथा CO_2 घुले रहते हैं, अतः यह अपने साथ इन पदार्थों को भी शरीर से वाहर पहुँचा देती है।

पोरीफेरा के विभेदक गुण

(Distinguishing Features of Porifera)

प्रश्न 37 देखिये।

प्रश्न 44. स्पंज अपना भोजन किस प्रकार ग्रहण करते हैं? साइकन में पोषण विधि का वर्णन कीजिये।

How do sponges take nourishment ? Give a detailed account of feeding in *Sycon*. *(Agra 1961)*

फाइलम पोरीफेरा के विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख कीजिये। साइकन में पोषण एवम् पाचन किया का वर्णन कीजिये।

Give an account of the characteristic features of phylum porifera. Discuss the mechanism of feeding and digestion in *Sycon*. *(Gorakhpur 1969 ; Luck. 70)*

पोरीफेरा के विशिष्ट लक्षण

कृपया प्रश्न 37 देखिये।

साइकन में पोषण (Nutrition in Sycon)

भोजन—साइकन का भोजन पानी में पाये जाने वाले सूक्ष्म जन्तु, जैसे—बैक्टीरिया, डायटम तथा प्रोटोजोआ जन्तु एवम् अन्य कार्वनिक पदार्थ हैं। ये पानी की धारा के साथ ऑयस्कों में से होते हुए जन्तु के शरीर में पहुँचते हैं। पानी में घुले पोषित पदार्थ भी जन्तु द्वारा ग्रहण कर लिये जाते है।

अन्तर्ग्रहण (Ingestion)—स्पंज में भोजन के अन्तर्ग्रहण तथा पाचन क्रिया के अध्ययन के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं। इसके लिए पानी में कारमाइन (carmine), दूध तथा स्टार्च के दाने तथा वैक्टीरिया इत्यादि डालकर देखा गया किन्तु फल उत्साहजनक नहीं है। भोजन पदार्थ जन्तु के शरीर में जल की धारा के

साथ पहुँचते हैं। जब जल की धारा कशाभ कक्षों में पहुँचती है तो भोज्य पदार्थ कीप कोशिकाओं के कॉलर की बाहरी सतह पर चिपक जाते हैं या ये कॉलर के बीच में पकड़ लिये जाते हैं। अन्त में ये कीप-कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य में पहुँच जाते हैं।

पाचन (Digestion)—भोजन का पाचन पूर्ण या अपूर्ण रूप से कीप-कोशिका के भीतर होता है किन्तु अधिकतर पकड़े हुए भोजन-कण मीसेनकाइमा की अमीबाभ कोशिकाओं में पहुँच जाते हैं। अमीबाभ कोशिकाएँ (amoeboid cells) पचे हुए भोजन को विभिन्न कोशिकाओं में पहुँचाती हैं। भोजन का पाचन कीप-कोशिकाओं में हो अथवा अमीबाभ कोशिका में, किन्तु पाचन सदैव आन्तर-कोशिक (intracellular) होता है। पाचन खाद्य रिक्तिका के भीतर होता है। खाद्य रिक्तिकाएँ पहले अम्लीय, किन्तु बाद में क्षारीय (alkaline) होती हैं। पाचक रस खाद्य रिक्तिका के चारों ओर कोशिकाद्रव्य से खाद्य रिक्तिका में डाला जाता है। ट्रिपसिन, पेपसिन, रेनिन, इरेप्सिन, लाइपेज, इनवरटेज तथा एमाइलेज इत्यादि विभिन्न पाचक रस खाद्य रिक्तिका में पाये जाते हैं। स्पंज में सभी प्रकार के भोज्य पदार्थों का पाचन होता है।

स्वांगीकरण (Assimilation)—भ्रमण करने वाली अमीबाभ कोशिकाओं द्वारा पचा हुआ भोजन जन्तु की विभिन्न कोशिकाओं को बाँट दिया जाता है। पचा हुआ भोजन अमीबाभ कोशिका में ग्लाइकोजन, वसा, ग्लाइको-प्रोटीन इत्यादि के रूप में संचित रहता है।

वहिष्करण (Egestion)—बचा हुआ अपच भोजन अमीबाभ कोशिकाओं द्वारा शरीर के बाहर जाने वाली पानी की धारा में डाल दिया जाता है और जन्तु के शरीर से बाहर फेंक दिया जाता है।

प्रश्न 45. साइकन कहाँ पाया जाता है ? साइकन के नाल-तन्त्र का विस्तार में वर्णन कीजिये तथा इस जन्तु में पाचन का उल्लेख करिये।

Where is *Sycon* found ? Give a detailed account of the canal system in *Sycon* and indicate also the mechanism of digestion in the animal. (*Banaras 1969*)

साइकन का प्राप्ति स्थान—कृपया प्रश्न 41 देखिये।

साइकन का नाल-तन्त्र—कृपया प्रश्न 43 देखिये।

साइकन में पोषण—कृपया प्रश्न 44 देखिये।

प्रश्न 46. साइकन की सूक्ष्मदर्शी संरचना, पोषण विधि एवम् पाचन क्रिया का वर्णन कीजिये।

Give an account of the microscopic structure, mechanism of feeding and digestive process in *Sycon*. (*Meerut 1969*)

कृपया प्रश्न 43 तथा 44 देखिये।

प्रश्न 47. साइकन के नाल-तन्त्र का वर्णन कीजिये। यह किस प्रकार स्पंज की पोषण-विधि से सम्बन्धित है ?

Describe the canal system of *Sycon*. State how it is related with the process of nutrition in the sponge. (*Luck. 1954*)

नाल-तन्त्र के लिए कृपया प्रश्न 43 देखिये तथा पोषण के लिए प्रश्न 44 देखिये।

प्रश्न 48. साइकन या अन्य किसी स्पंज में जिसका आपने अध्ययन किया हो जनन विधि का वर्णन करिये।

Describe how reproduction takes place in *Sycon* or any other Sponge studied by you. (*Agra 1959, 65 ; Indore 69*)

आपके द्वारा अध्ययन किये गये किसी स्पंज में जनन का वर्णन कीजिये।

Give an account of reproduction in the sponge types that you have studied. (*Allahabad 1952 ; Jodhpur 65*)

साइकन में जनन तथा परिवर्धन का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

Give a detailed account of reproduction and development in *Sycon*.

साइकन में लैंगिक जनन का पूर्ण विवरण दीजिये।

Give an illustrated account of sexual reproduction in *Sycon*. (*Kanpur 1970 ; Rajasthan 69 ; Agra 60 ; Patna 69 ; Jiwaji 72 ; Indore 71 ; R.S. 71*)

साइकन में जनन (Reproduction in Sycon)

साइकन में अलैंगिक तथा लैंगिक दोनों विधियों द्वारा जनन होता है :—

अलैंगिक जनन (Asexual Reproduction)

अलैंगिक जनन निम्नलिखित विधियों द्वारा होता है :—

1. कलिकोत्पादन (Budding)
2. पुनर्जनन (Regeneration)
3. मुकुलक या जेम्यूल का बनना (Gemmule formation)

1. कलिकोत्पादन (Budding)—अनुकूल परिस्थितियों में साइकन में इस विधि द्वारा जनन होता है। जिस स्थान पर साइकन आधार से जुड़ा रहता है उसी के समीप सिलिण्डर के आधार से कलिकाएँ (buds) निकलती हैं। कुछ समय पश्चात् कलिकाएँ आधार से अलग होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर देती हैं। परन्तु कभी-कभी ये आधार से लगी रहकर आकार तथा परिमाण में बढ़ती जाती हैं और स्पंज के आकार में वृद्धि करती हैं।

2. पुनर्जनन (Regeneration)—सरल रचना के होने के कारण स्पंजों में पुनर्जनन की बड़ी क्षमता होती है। ये केवल अपने नष्ट हुए या टूटे-फूटे भागों की ही मरम्मत नहीं कर सकते अपितु एक छोटे-से टुकड़े से पूर्ण स्पंज बना सकते हैं। किन्तु पुनर्जनन प्रक्रिया अत्यन्त धीमी होती है तथा पूर्ण वर्धन में महीनों अथवा वर्षों लग जाते हैं।

3. मुकुलक या जेम्यूल का बनना (Gemmule formation)—मुकुलक जन्तु की आन्तरिक कलिकाएँ (internal buds) मानी जाती हैं जो स्वच्छ जल में पाये जाने वाले अधिकांश स्पंजों के जीवन-इतिहास में नियमित रूप से बनती हैं। प्रतिकूल वातावरण को सहन करने के लिए कुछ समुद्री स्पंजों में भी इनका निर्माण होता है। ये आद्य-कोशिकाओं (archeocytes) के समूह से बनते हैं जो एकत्रित होकर गोल रचना बना लेते हैं। इसके चारों ओर एक पतली **आन्तरिक झिल्ली** (inner membrane) होती है तथा इसके बाहर एक मोटी **बाह्य झिल्ली** (outer membrane) होती है जिसमें एम्फीडिस्क (amphidisc) नामक कण्टिकाएँ पायी जाती हैं। यह रक्षात्मक खोल बनाती है। स्पंज के शरीर के नष्ट होने पर मुकुलक

उस अवस्था में स्वतन्त्र हो जाते है और पानी के धरातल पर पड़े रहते है। वसन्त ऋतु में ये कोशिकाएँ झिल्लियों में बने एक छिद्र द्वारा बाहर आ जाती है तथा क्रमानुसार समायोजित होकर प्रौढ़ जन्तु का शरीर बनाती है। समुद्री स्पंजों के मुकुलकों की बाहरी सतह पर पक्ष्म पाये जाते है।

लैंगिक जनन (Sexual Reproduction)

युग्मकों के बनने तथा उनके संयुग्मन द्वारा लैंगिक जनन होता है। नर तथा मादा दोनों प्रकार के युग्मक एक ही जन्तु के शरीर में बनते है, परन्तु उनके बनने के लिए निश्चित अंग नही होते। ये मेसोग्लिया में पायी जाने वाली अमीबा के समान (amoeboid) अर्थात् आद्य-कोशिकाओं (archeocytes) से बनते है।
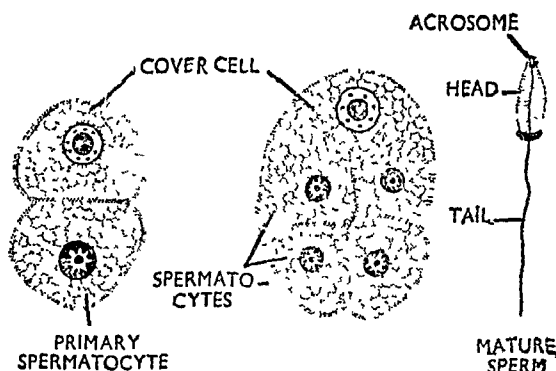
चित्र 12·9. साइकन मे शुक्राणुजनन (Spermatogenesis in *Sycon*)

शुक्राणुजनन (Spermatogenesis)—शुक्राणु बडे आकार की आद्य-कोशिका या अमीबाभ कोशिका से बनते है। यह कोशिका शुक्राणु-कोशिकाजन (spermatogonium) कहलाती है। यह कीप-कोशिकाओं के ठीक नीचे मीसेनकाइम में स्थित होती है। इसके चारों ओर एक या दो चपटी कवर-कोशिकाएँ (cover cells) बन जाती है। ये कोशिकाएँ या तो शुक्राणु-कोशिकाजन के विभाजन से बनती है अथवा रूपान्तरित अमीबाभ-कोशिकाएँ (modified amoeboid cells) होती है। इस प्रकार एक शुक्राणु-कोशिका (spermatocyte) का निर्माण होता है। शुक्राणु-कोशिकाजन (spermatogonium) दो या तीन बार विभाजित होती है तथा प्रत्येक संतति-कोशिका एक **शुक्राणु** बनाती है। पूर्ण परिपक्व शुक्राणु मे लगभग गोल सिर होता है जिसमे एक केन्द्रक स्थित होता है तथा एक लम्बी पूँछ होती है।

अण्डजनन (Oogenesis)—अण्डाणु जनन-कोशिका (egg mother cell) या डिम्ब-कोशिका (oocyte) से अण्डे या डिम्ब का निर्माण होता है। प्रत्येक डिम्ब-कोशिका मे एक बडी अमीबाभ कोशिका (amoebocyte) होती है जिसमें एक बड़ा केन्द्रक होता है। यह विशेष प्रकार की कीप-कोशिकाओं द्वारा भोजन ग्रहण कर भोजन एकत्रित करके आकार मे बढ़ती है। ये कीप-कोशिकाएँ **ट्रोफोसाइट्स** (trophocytes) या नर्स-कोशिकाएँ (nurse cells) कहलाती है। पूर्ण वर्धन प्राप्त करने के लिए प्रत्येक अमीबोसाइट का केन्द्रक दो बार विभाजित होता है जिसमे से एक विभाजन अर्धसूत्रण (meiosis) होता है। फलस्वरूप अगुणित क्रोमोसोम्स वाला डिम्ब या अण्डा बन जाता है जो आराभी नाल में उभरा रहता है।

निषेचन (Fertilization)—साइकन तथा अन्य सभी स्पंजों में

आन्तरिक निषेचन (internal fertilization) होता है तथा यह सदैव ही दो भिन्न जन्तुओं के अण्डे व शुक्राणु में संयुग्मन (cross-fertilization) द्वारा होता है। एक जन्तु का शुक्राणु पानी की धारा के साथ दूसरे जन्तु की अराभी नाल
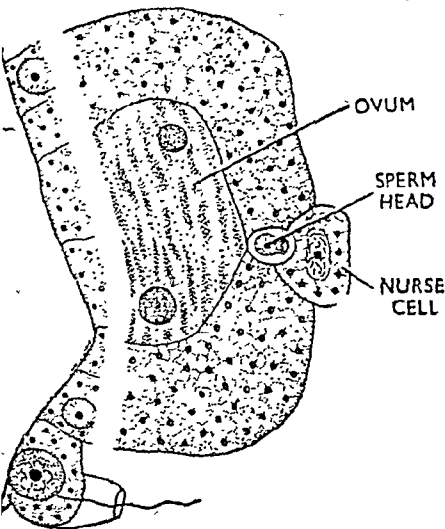
चित्र १२·१०. साइकन में अण्डजनन (Oogenesis in *Sycon*)
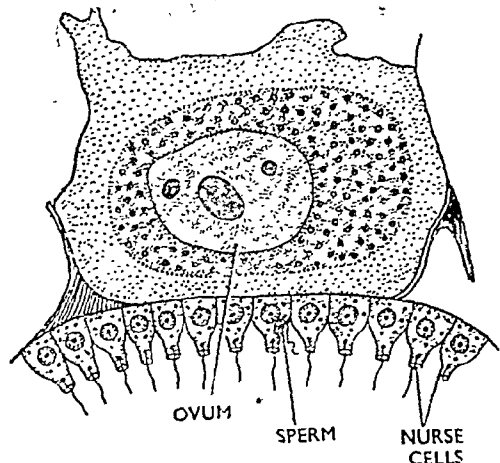
चित्र १२·११. साइकन में अण्ड निषेचन क्रिया (Fertilization in *Sycon*)

(radial canal) में पहुँचता है। यहाँ यह तुरन्त ही नर्स कोशिका में घुस जाता है अथवा अण्डे के पास की किसी कीप-कोशिका में पहुँचता है जो शुक्राणु के आने पर अमीबॉयड हो जाती है। यह कोशिका अण्डे के साथ मिलकर शुक्राणु को स्वतन्त्र कर देती है। अन्त में शुक्राणु तथा अण्डे के केन्द्रक समेकित होकर युग्मनज (zygote) बनाते हैं।
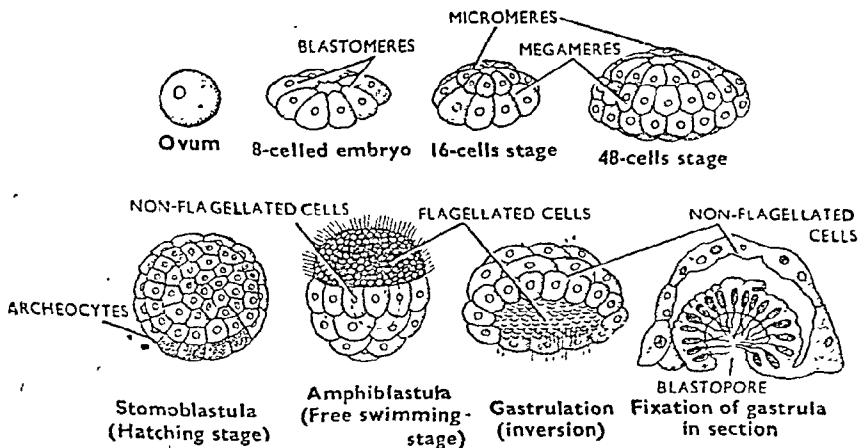
चित्र १२·१२. साइकन में वर्धन की विभिन्न अवस्थाएँ (Stages in the development of *Sycon*)

वर्धन (Development)—युग्मनज का विभाजन पूर्णभंजी (holoblastic cleavage) होता है तथा वर्धन पैतृक स्पंज के शरीर के भीतर होता है। पहले तीन
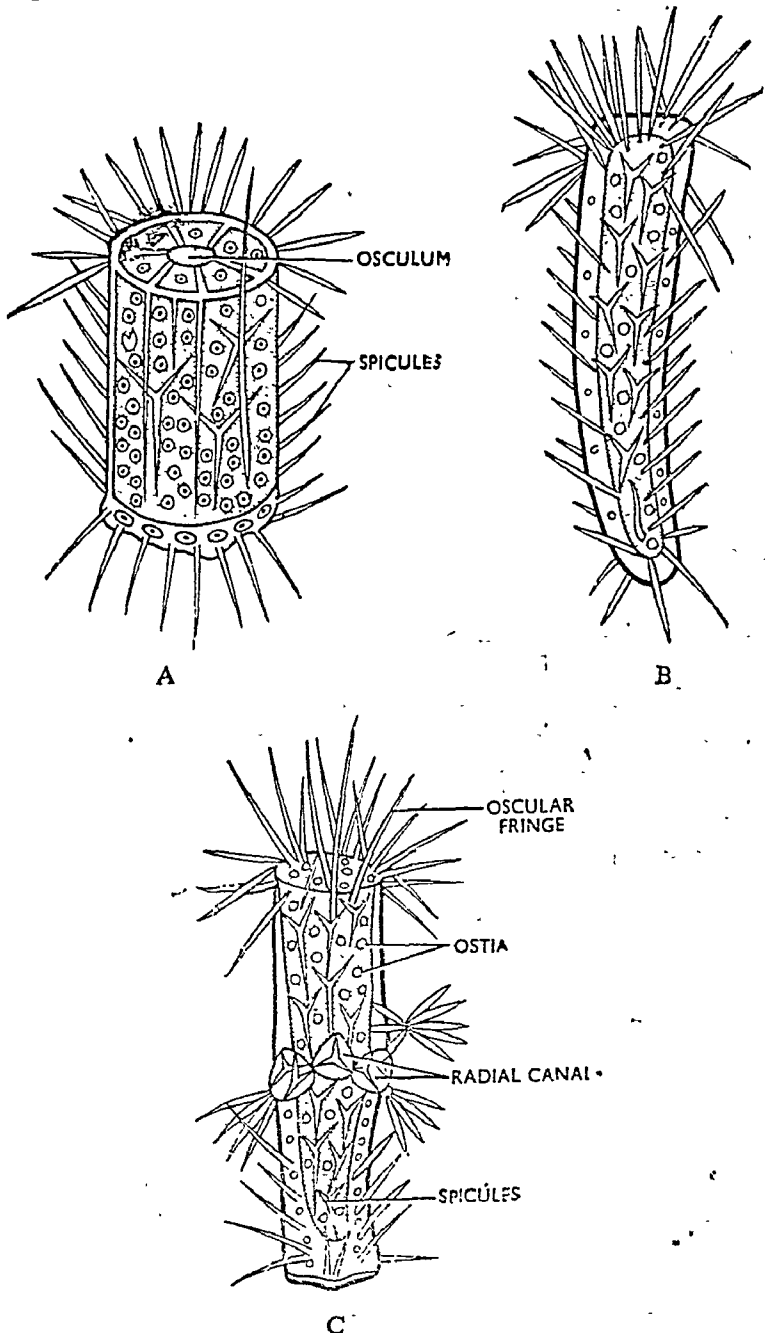
चित्र १२·१३. साइकन के वर्धन में विभिन्न प्रावस्थाएँ (Various stages in the development of *Sycon*): A. युवावस्था (Young stage) B. ओलिन्थस प्रावस्था (Olynthus stage) C. साइकन प्रावस्था (Syconoid stage)

विभाजन ऊर्ध्व दिशा (vertical direction) में होते हैं जिससे आठ कोशिकाओं वाली पिरामिड के आकार की (pyramidal) रचना बन जाती है। चौथा विभाजन क्षैतिज (horizontal) होता है और ब्लास्टोमीयर्स को असमान भागों में बाँट देता है। ऊपर के आठ छोटे ब्लास्टोमीयर्स लघुखण्ड (micromeres) तथा नीचे के बड़े आठ ब्लास्टोमीयर्स दीर्घखण्ड (macromeres) कहलाते हैं। इन दोनों के बीच एक गुहा बन जाती है तथा भ्रूण **ब्लास्टुला अवस्था** (blastula stage) में पहुँच जाता है। लघुखण्ड अपेक्षाकृत अधिक तेजी से बँटते हैं और इनके स्वतन्त्र सिरों पर कशाभ (flagella) बन जाते हैं। इनके विरुद्ध दीर्घखण्ड गोल तथा दानेदार हो जाते हैं। इस प्रकार बना भ्रूण **स्टोमोब्लास्टुला** (stomoblastula) कहलाता है।

स्टोमोब्लास्टुला में अन्तर्गमन (inversion) की क्रिया होती है। फलस्वरूप कशाभ कोशिकाओं (flagellated cells) के कशाभीय सिरे (flagellated ends) बाहर की ओर आ जाते हैं। इस प्रकार बना कशाभीय स्टोमोब्लास्टुला (flagellated stomoblastula) अब **ऐम्फीब्लास्टुला** (amphiblastula) लारवा कहलाता है। पूर्ण परिपक्व एम्फीब्लास्टुला अराभी नाल (radial canal) में स्वतन्त्र कर दिया जाता है। यह अपवाही छिद्र (osculum) में से होता हुआ पानी की धारा के साथ बाहर आ जाता है। अब यह तैरकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता है। कुछ समय पश्चात् अन्तर्गमन (invagination) तथा एम्बोली (emboly) की क्रियाओं के फलस्वरूप ऐम्फीब्लास्टुला, **गैस्ट्रूला** (gastrula) में परिवर्तित हो जाता है। कशाभ कोशिकाएँ ब्लास्टोसील की गुहा में चली जाती हैं तथा दीर्घखण्ड में फैल जाती हैं तथा शीघ्रता से विभाजित होकर इनको पूर्णतया ढक लेती हैं। अतः गैस्ट्रूला में दो भ्रूण स्तर (embryonic layers) होते हैं। बाह्य दानेदार कोशिकाओं का स्तर **एक्टोडर्म** (ectoderm) बनाता है तथा भीतर का कशाभ कोशिकाओं का स्तर एण्डोडर्म (endoderm) कहलाता है। इसकी केन्द्रीय गुहा (central cavity) एक चौड़े छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है जो **ब्लास्टोपोर** (blastopore) कहलाता है।

गैस्ट्रूला ब्लास्टोपोर वाले छिद्र द्वारा किसी आधार से चिपक जाता है और प्रौढ़ साइकन में रूपान्तरित हो जाता है। लारवा लम्बा होकर एक बेलन (cylinder) बना लेता है जिसके दूरस्थ स्वतन्त्र सिरे पर ऑस्क्युलम (osculum) बन जाता है। कणिकाविहीन कशाभ कोशिकाएँ endoderm बनाती हैं और कीप-कोशिकाओं में रूपान्तरित हो जाती हैं। इसके विपरीत दानेदार कशाभ कोशिकाएँ (nonflagellated cells) पिनेकोसाइट बनाती हैं जो डर्मल एपिथीलियम (dermal epithelium) का निर्माण करती हैं। मीसेनकाइम तथा उसकी कोशिकाएँ दोनों स्तरों से बनती हैं। अन्त में देह-भित्ति में ऑस्टिया (ostia) छिद्र बन जाते हैं तथा लारवा ओलिन्थस अवस्था (olynthus stage) में पहुँच जाता है। पुनः परिवर्तनों के फलस्वरूप साइकन का निर्माण पूर्ण हो जाता है। ये जन्तु कलिकोत्पादन (अलैंगिक जनन) के फलस्वरूप संघ बना लेते हैं।

प्रश्न 49. स्पंज के विकास का वर्णन कीजिये और उसका वर्गीकरण योजना में स्थान बताइये।

Give an account of the development of a sponge and place it in the scheme of classification. *(Agra 1970)*

स्पंज का विकास (Development of Sponge)

कृपया प्रश्न 48 देखिये।

वर्गीकरण में स्थान (Systematic Position)

कृपया प्रश्न 46 देखिये ।

प्रश्न 50. साइकन की देह के अनुप्रस्थ काट का चित्र बनाइये तथा उसमें पायी जाने वाली विभिन्न कोशिकाओं का वर्णन कीजिये ।

Draw a transverse section through the body of *Sycon*. Give an account of different kinds of cells found in it. *(Jabalpur 1970)*

साइकन की देह की अनुप्रस्थ काट
(T. S. Body of Sycon)

कृपया चित्र 12·7 व 12·8 देखिये ।

देह की औतिकीय संरचना
(Anatomy of Body)

कृपया प्रश्न 41 देखिये ।

अध्याय 13

ल्यूकोसोलिनिया (Leucosolenia)

फाइलम— पोरीफेरा (*Porifera*)
आर्डर — कैलकेरिया (*Calcarea*)
क्लास — होमोसीला (*Homocoela*)
जीनस — ल्यूकोसोलिनिया (*Leucosolenia*)

प्रश्न 51. किसी सरल स्पंज की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये।
Give an account of structure and life-cycle of simple sponge.
(*Gorakhpur 1960*)

जीनस ल्यूकोसोलिनिया से सम्बन्धित स्पंज अत्यधिक सरल रचना वाला स्पंज है। यह मुलायम शाखान्वित निवहों के रूप में समुद्र के किनारे के उथले पानी में पाया जाता है।

संरचना (Structure)

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—ल्यूकोसोलिनिया के निवह (colonies) असंख्य वेलनाकार रचनाओं के बने होते है। प्रत्येक वेलन (cylinder) एक जन्तु को प्रदर्शित करता है तथा खोखले वर्तन के समान अरीय सममित (radially symmetrical) होता है। सभी वेलन आधार पर एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं जिससे निवह स्थूल, झाड़ी के समान (bushy) तथा शाखान्वित रचना उपस्थित करता है। प्रत्येक वेलन लगभग 25 mm. लम्बा तथा लगभग सफेद या पीले-से रंग का होता है।
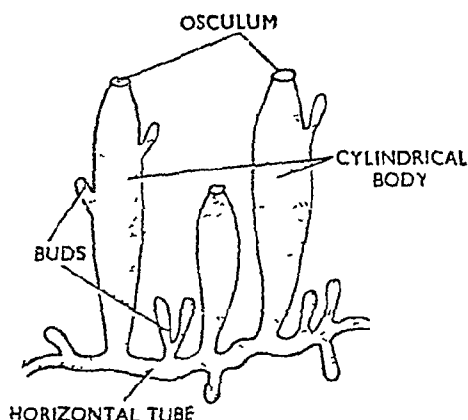
चित्र १३·१. ल्यूकोसोलिनिया (*Leucosolenia*) की वाह्य रचना

रचना—ल्यूकोसोलिनिया के वेलन अरीय सममित (radially symmetrical) पतली दीवारों वाली नलिकाएँ (tubes) है जो ओलिन्थस अवस्था (olynthus stage) प्रदर्शित करती हैं। इनकी रचना एसकन के समान (asconoid) होती है। वेलन के मध्य में एक गुहा होती है जो **स्पंज गुहा** (spongocoel) अथवा **जठराभ गुहा** (paragastric cavity) कहलाती है। यह वेलन के शीर्ष पर स्थित एक बड़े छिद्र **अपवाही रन्ध्र** (osculum) द्वारा वाहर को खुलती है। वेलन की दीवार असंख्य सूक्ष्म रन्ध्रों द्वारा छिद्रित होती है। ये रन्ध्र आन्तर-कोशिक (intracellular) होते हैं तथा **आवाही रन्ध्र** (incurrent pores) अथवा **ऑस्यक** (ostia) कहलाते हैं। ये शरीर की वाह्य सतह से स्पंज गुहा में खुलते है तथा पोरोसाइट्स (porocytes)

में स्थित नाल को प्रदर्शित करते हैं। पोरोसाइट्स अत्यधिक लचीले होते हैं और सिकुड़कर ऑस्यकों को बन्द कर देते हैं।
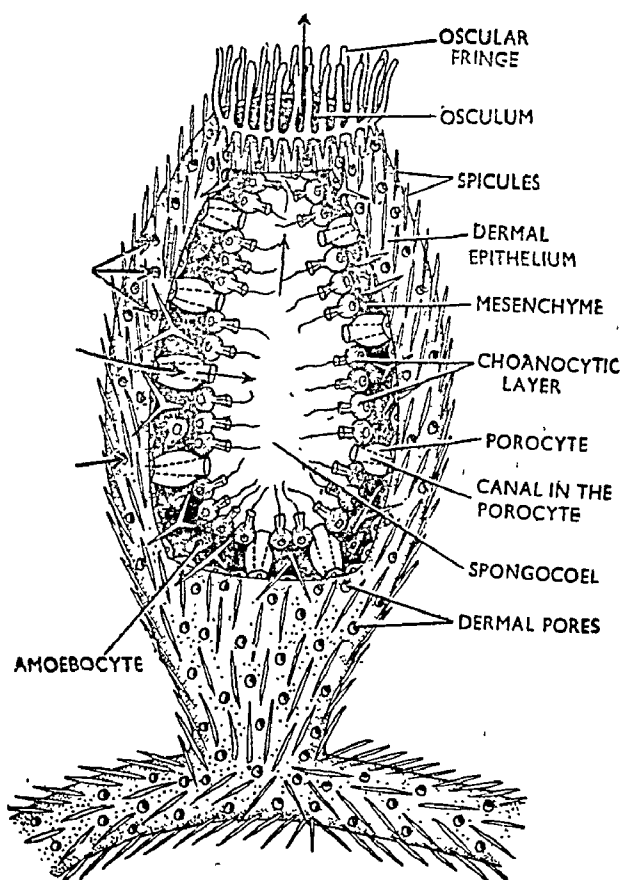
चित्र १३·२. आन्तरिक संरचना के लिए ल्यूकोसोलिनिया की खड़ी काट (L.S. *Leucosolenia*)

पानी की धारा ऑस्यक में से होती हुई स्पंज गुहा में पहुँचती है। स्पंजगुहा में कीप-कोशिकाओं का स्तर होता है। कीप-कोशिकाओं के कशाभों की गति के कारण स्पंजगुहा का पानी अपवाही छिद्र से बाहर निकाल दिया जाता है। अतः *ल्यूकोसोलिनिया* की संरचना अत्यन्त सरल होती है।

ल्यूकोसोलिनिया की देहभित्ति में कोशिकाओं के दो स्तर होते हैं :—

1. डर्मल एपिथीलियम का स्तर (Outer layer of dermal epithelium)

2. कशाभ एपिथीलियम का आन्तरिक स्तर (Inner layer of flagellated epithelium).

3. दोनों स्तरों के बीच पाया जाने वाला अजीवित, जिलेटिन का बना स्तर मेसोग्लिया (mesogloea) अथवा मीसेनकाइम (mesenchyme)।

डर्मल एपिथीलियम बाहर का रक्षात्मक आवरण बनाती है तथा चपटी एपिथीलियल कोशिकाओं (epithelial cells) के एक स्तर की बनी होती है। ये कोशिकाएँ पिनेकोसाइट (pinacocytes) कहलाती हैं।

फ्लैजेलेटेड या कशाभ एपिथीलियम (flagellated epithelium) स्पंज की गुहा को आस्तारित करती है तथा गोल या अण्डाकार कशाभी कीप-कोशिकाओं
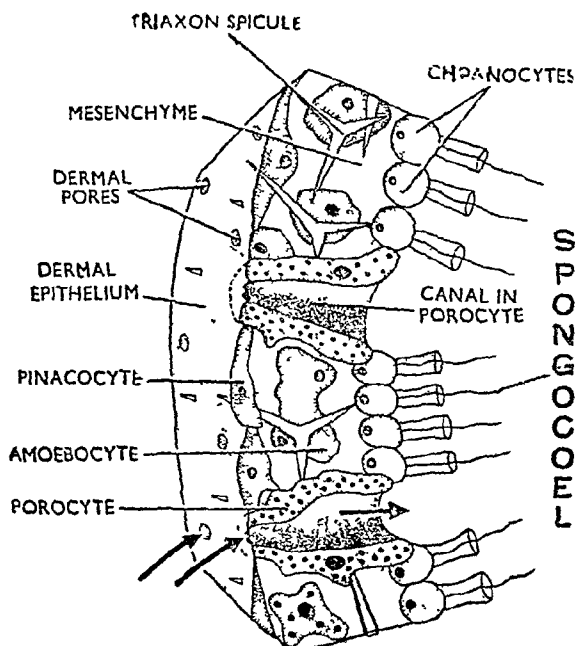
चित्र १२·३. ल्यूकोसोलिनिया की अनुप्रस्थ काट (T.S *Leucosolenia*)

(flagellated collared cells) की पंक्ति से बनी होती है। प्रत्येक कीप-कोशिका (choanocyte) को निम्न भागो मे बाँटा जा सकता है :—

गोलाकार शरीर (rounded body), **एक कॉलर** (collar) तथा एक **कशाभ** (flagellum)। कशाभ कीप-कोशिका के स्वतन्त्र सिरे से निकलता है। कीप-कोशिका के कशाभ सदैव गतिशील होते है तथा पानी की धारा उत्पन्न करते है।

मीसेनकाइम अकोशीय (noncelluar) जिलेटिन का बना स्तर है जो दोनों एपिथीलियल स्तरों के बीच स्थित होता है। इसके पदार्थ मे विभिन्न प्रकार की अमीबाभ कोशिकाएँ (amoebocytes) तथा $CaCO_3$ की बनी कण्टिकाएँ (spicules) पायी जाती है। कण्टिकाएँ दो प्रकार की होती है :—

(*i*) छड़ के समान मोनेक्सॉन कण्टिकाएँ (Rod-like monaxon spicules),

(*ii*) तीन या चार अक्ष वाली (triaxon or tetraxon) कण्टिकाएँ।

जनन (Reproduction)

अलैंगिक जनन (Asexual Reproduction)

इसमे **कलिकोत्पादन** (budding), **विशाखन** (branching) तथा **पुनर्जनन** द्वारा अलैंगिक जनन होता है। सर्वप्रथम नयी क्षैतिज शाखाएँ विभिन्न दशाओं में बनना प्रारम्भ करती है। इनसे छोटी-छोटी कलिकाएँ बनती है जो वृद्धि कर ऊर्ध्व शाखाओं या वेलनो (vertical cylinders) का रूप धारण कर लेती है। इन

शाखाओं के निश्चित आकार ग्रहण करने पर शीर्ष-छिद्र (terminal opening) या **अपवाही रन्ध्र** (oscula) बन जाते हैं जिससे प्रत्येक शाखा एक खोखले बेलन का आकार ग्रहण कर पूर्ण स्पंज जन्तु बनाती है।

ल्यूकोसोलिनिया में पुनर्जनन की शक्ति पायी जाती है तथा एक छोटे-से टुकड़े से पूरा संघ बन जाता है।

लैंगिक जनन (Sexual Reporduction)

लैंगिक जनन अण्डप (ovum) तथा शुक्राणु के बनने तथा उनके समेकित होने से पूर्ण होता है। मीसेनकाइम में पायी जाने वाली अमीबाभ-कोशिकाओं से युग्मक बनते हैं। इनमें अन्तःनिषेचन (internal fertilization) होता है तथा शुक्राणु जन्तु के शरीर में पानी की धारा के साथ पहुँचते हैं। निषेचित अण्डे का वर्धन भी पैतृक जन्तु के शरीर के भीतर होता है। इसमें पूर्ण भेदन (holoblastic cleavage) द्वारा अण्डा बार-बार विभाजित होता है तथा एक अण्डाकार भ्रूण बनाता है। इसकी भित्ति एक कोशिका मोटी होती है तथा बीच में एक केन्द्रीय गुहा (central cavity) पायी जाती है। इस दशा में भ्रूण सीलोब्लास्टुला (coeloblastula) कहलाता है। इसकी भित्ति लम्बी तथा स्तम्भी-कोशिकाओं की बनी होती है जिनके बाहरी सिरों पर कशाभ पाये जाते हैं। लारवा के पिछले सिरे पर कुछ गोल दानेदार तथा कशाभरहित (nonflagellated) कोशिकाएँ पायी जाती हैं जो आद्य-कोशिकाएँ प्रदर्शित करती हैं। कुछ समय पश्चात् ये कोशिकाएँ आन्तरिक गुहा में पहुँच जाती हैं। साथ ही इनके पास की कुछ कशाभ कोशिकाएँ (archeocytes) भी अमीबायड होकर आन्तरिक गुहा में पहुँच जाती हैं और आन्तरिक गुहा को पूरा भर देती हैं। फलस्वरूप एक ठोस **पैरनकाइमुला** (parenchymula) लारवा बन जाता है।

पैरनकाइमुला लारवा स्वतन्त्रता से पानी में तैरता है तथा कुछ घण्टों पश्चात् अगले सिरे द्वारा आधार से चिपक जाता है। अब यह एक अनियमित आकार की चपटी प्लेट (flat plate) में बदल जाता है। अमीबाभ-कोशिकाएँ आन्तर-गुहा में से बाहर निकल आती हैं और कशाभ-कोशिकाओं के ऊपर फलकर डर्मल एपिथीलियम बना लेती हैं। कशाभ-कोशिकाएँ कीप-कोशिकाओं में परिवर्तित होकर गैस्ट्रल एपिथीलियम बनाती हैं। दोनों स्तरों के रिसने से मीसेनकाइम बन जाती है। इसके मध्य में एक गुहा बन जाती है जो ऑस्क्युलम (osculum) द्वारा बाहर खुलती है। कुछ अमीबाभ-कोशिकाएँ रन्ध्र-कोशिकाओं में बदल जाती हैं तथा **ऑयस्क** (ostia) बनाती हैं। अन्त में मीसेनकाइम की कुछ विशेष अमीबाभ-कोशिकाओं के रिसने से कण्टिकाएँ बनती हैं। इस प्रकार प्रौढ़ स्पंज बन जाता है।
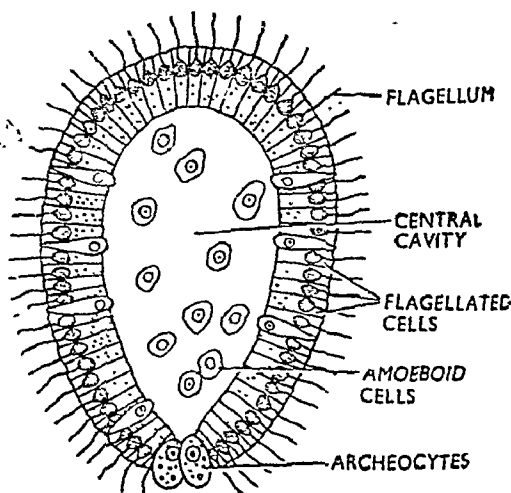
चित्र १३·४. पेरनकाइमुला लारवा (Parenchymula larva)

अध्याय 14

पोरीफेरा—विविध प्रश्न
(Porifera—Miscellaneous Questions)

प्रश्न 52. पोरीफेरा में पाये जाने वाले मुख्य नाल-तन्त्रों का वर्णन कीजिये।
Give an account of the main types of canal system in Porifera.
(*Agra 1966 ; Bombay 59 : Lucknow 63, 65 ; Gorakhpur 73*)
स्पंजों में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के नाल-तन्त्रों का उल्लेख करिये।
Describe the various types of canal system found in sponges.
(*Karnatak 1968 ; Lucknow 64 ; Allahabad 67*)

स्पंजों का नाल-तन्त्र (Canal System in Sponges)

अधिकांश स्पजों की देहभित्ति में पर्त के समान रचनाएँ पायी जाती हैं जिनके फलस्वरूप इनकी देहभित्ति में असंख्य नाल या पथों (canals or passages) का जटिल तन्त्र-सा बन जाता है। नालों का यह तन्त्र **नाल-तन्त्र** कहलाता है। विभिन्न स्पंजों में पाये जाने वाले नाल-तन्त्रों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :—

1. एस्कन प्रकार का नाल-तन्त्र (Asconoid or ascon type of canal system)
2. साइकन प्रकार का नाल-तन्त्र (Syconoid or sycon type of canal system)
3. ल्युकोन प्रकार का नाल-तन्त्र (Leuconoid or Leucon type of canal system)

1. एस्कन प्रकार का नाल-तन्त्र (Asconoid or Ascon type of canal system)—यह सरलतम रचना वाला नाल-तन्त्र है जो द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical) पतली दीवार वाले वर्तन के आकार के शरीर वाले जन्तुओं में पाया जाता है और भीतर से लम्बी केन्द्रीय गुहा द्वारा खोखला रहता है। यह गुहा स्पंज-गुहा (spongocoel) अथवा जठराभ गुहा कहलाती है। जठराभ गुहा एक सँकरे गोल छिद्र **ऑस्क्युलम** द्वारा बाहर खुलती है। यह रन्ध्र वेलन (cylinder) के दूरस्थ स्वतन्त्र सिरे पर स्थित होता है। वेलन की पतली दीवार में भी असंख्य सूक्ष्म छिद्र ऑस्यक होते हैं। ये अत्यन्त सूक्ष्म तथा नियमित रूप से विन्यसित आन्तर-कोशिकीय रन्ध्र है जिनमें से प्रत्येक एक नालाकार रन्ध्र-कोशिका के भीतर स्थित नाल के समान रचना है जो देहभित्ति की बाहरी सतह से स्पंज-गुहा तक फैली होती है। पानी की धारा ऑस्यकों में से होती हुई स्पंज गुहा में पहुँचती है तथा अन्त में अपवाही छिद्र (osculum) में से होकर बाहर निकल जाती है। एस्कन प्रकार के स्पंजों की देहभित्ति दो स्तरों की बनी होती है। बाहरी स्तर **एक्टोडर्म** (ectoderm) तथा भीतर वाला स्तर **एण्डोडर्म** (endoderm) कहलाता है। एक्टोडर्म पतली चपटी अविछद कोशिकाओं का बना होता है। ये कोशिकाएँ पिनेकोसाइट कहलाती हैं। एण्डोडर्म कीप-कोशिकाओं से मिलकर बनता है तथा
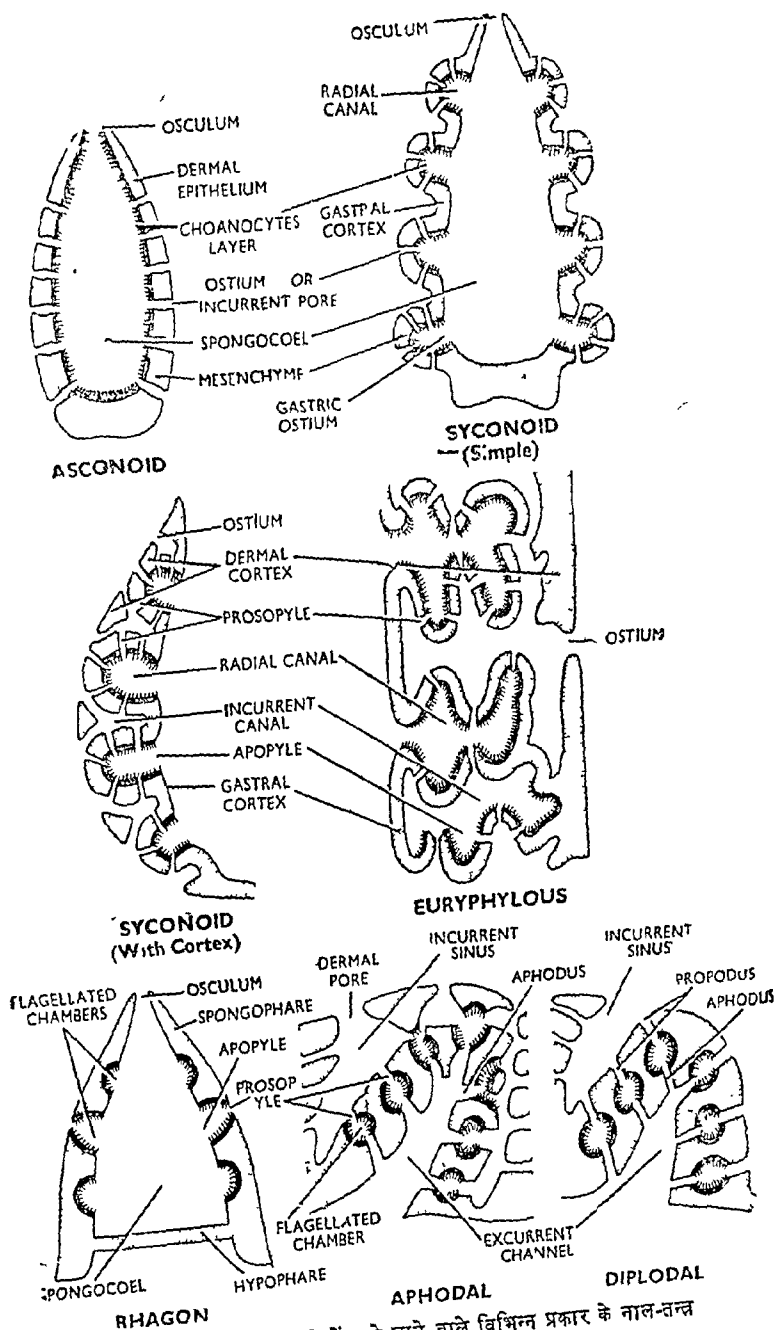
चित्र १४·१ स्पंजो में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के नाल-तन्त्र (various types of canal systems found in Sponges)

स्पंज-गुहा को आस्तारित करता है। इन दोनो स्तरो के बीच एक पतले अजीवित पदार्थ जिलेटिन की बनी मेसोग्लिया (mesogloea) होती है जिसमें विभिन्न प्रकार

की अमीवाभ-कोशिकाएँ तथा तीन-अक्षीय (triradiate) $CaCO_3$ की बनी कण्टिकाएँ पायी जाती हैं।

एस्कन प्रकार का नाल-तन्त्र कुछ कैल्केरियस स्पंजों के वर्धन की ओलिन्थस (olynthus) अवस्था में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त *ल्यूकोसोलिनिया* नामक स्पंज तथा कुछ अन्य सरल रचना वाले स्पंजों की यही रचना होती है।

साइकन प्रकार का नाल तन्त्र (Syconoid or sycon type of canal system)—साइकन प्रकार का तन्त्र स्पंजों में नाल-तन्त्र के विकास में अगला कदम है तथा सिद्धान्त रूप में एस्कन प्रकार के नाल-तन्त्र से प्राप्त किया जा सकता है। यदि एक एस्कन स्पंज की देहभित्ति से अंगुली के आकार के (finger-like) उभार निकल आयें तो इस प्रकार की बनी नालों के विन्यास से बना तन्त्र साइकन प्रकार को प्रदर्शित करता है। साइकन प्रकार की रचना देहभित्ति के अधिकाधिक मोटे होने तथा उसके पर्तों के रूप में बन जाने से बनती है। ये अंगुलाकार उभार कीपकोशिकाओं द्वारा आस्तारित होते हैं तथा **आराभी नाल** या **कशाभ कक्ष** (radial canals or flagellated chambers) कहलाते हैं। क्योंकि कीप-कोशिकाएँ आराभी नाल में पहुँच जाती हैं, अतः स्पंज गुहा पर एपिथीलियम की चपटी पिनेकोसाइट कोशिकाओं का स्तर होता है। दो समीपस्थ आराभी नालों के बीच का बड़ा-सा छिद्र ऑस्यक (ostium) बन जाता है तथा उनके बीच का स्थान या नलिका आवाही नाल (incurrent canal) कहलाता है। एस्कन प्रकार के नाल-तन्त्र में पाये जाने वाले ऑयस्क अब आगम द्वार (prosopyles) बना लेते हैं जो आन्तरकोशिक नलिका के रूप में पाये जाते हैं।

साइकन प्रकार की रचना (syconoid structure) दो अवस्थाओं में मिलती है :—

(*i*) प्रथम अथवा सरलतम दशा—यह हैटेरोसीलस (heterocelous) स्पंज जैसे *साइकेटा* (*Sycetta*), में पायी जाती है जहाँ आराभी नाल स्वतन्त्र रूप से बाहर की ओर निकली रहती है तथा एक-दूसरे को किसी भी स्थान पर नहीं छूती। अतः पानी स्पंज की समस्त देहभित्ति की पूरी लम्बाई के साथ सीधे सम्पर्क में रहता है।

(*ii*) द्वितीय तथा अधिक जटिल अवस्था में एपिडर्मिस (epidermis) तथा मीसेनकाइम शरीर की बाहरी सतह के ऊपर फैल जाती हैं और कॉर्टेक्स (cortex) बनाती हैं। सरल रचना वाले जन्तुओं में कॉर्टेक्स का स्तर पतला होता है किन्तु अपेक्षाकृत जटिल रचना वाले जन्तुओं में यह मोटी हो जाती है जिससे दो आराभी नालों के बीच का चौड़ा स्थान निश्चित नली का आकार धारण कर लेता है तथा आवाही नाल (incurrent canal) बन जाती है। अतः प्रत्येक आवाही नाल का स्तर पिनेकोसाइट का बना होता है। इसके बाहरी स्वतन्त्र सिरे पर एपिडर्मिस में एक छोटा छिद्र होता है जो आवाही रन्ध्र या ऑयस्क कहलाता है। इन्हीं छिद्रों द्वारा पानी की धारा आवाही नाल में पहुँचती है। इस प्रकार की रचना *साइकन* तथा *ग्रान्शिया* (*Sycon* and *Grantia*) में पायी जाती है। इनमें जल की धारा का मार्ग निम्नलिखित होता है।

—बाहर पानी—(ऑयस्क)→आवाही नाल—आगम द्वार→आराभी नाल—निर्गमन द्वार→अपवाही नाल—जठर आयस्क→स्पंज गुहा—अपवाही रन्ध्र→बाहर।

ल्युकन प्रकार का नाल तन्त्र (Leuconoid or Leucon type of canal

system)—यह साइकन प्रकार से भी अधिक जटिल नाल-तन्त्र है तथा साइकन प्रकार के नाल-तन्त्र की आराभी नालों के पुनः फोल्ड होने तथा मीसेनाकाइम के और अधिक मोटी होने से बनता है। ल्युकन प्रकार के नाल-तन्त्र में आराभी नाल (radial canal) के स्थान पर बहुत-से छोटे-छोटे कशाभ कक्षों (flagellated chambers) का समूह होता है जो समस्त देहभित्ति में अनियमित रूप से फैले होते हैं। इनके बीच के स्थान में मीसेनकाइम भरी रहती है। स्पंज की स्पंज गुहा बहुत छोटी हो जाती है। फलस्वरूप स्पंज का आकार तथा रचना अनियमित हो जाती है तथा देहभित्ति के भीतर के भाग में नालों का जाल-सा बिछ जाता है। ये नाल अपवाही नालें (excurrent canals) होती है जो आराभी नालों को स्पंज गुहा से जोड़ती हैं। विभिन्न आराभी नालों से निकली हुई अपवाही नाल अपने से बड़ी तथा चौड़ी नाल (channels) में खुलती हैं तथा अन्त में ऑस्क्युलम द्वारा बाहर को खुलती है। इसी प्रकार अपवाही नाल भी विभाजित होकर अनियमित हो जाती हैं। ऑस्यक या तो सीधे आवाही नाल में खुलते है अथवा उपचर्म स्थानों (subdermal spaces) में खुलते है।

ल्युकन प्रकार का नाल-तन्त्र जटिलता के आधार पर पुनः तीन प्रकार का हो सकता है :—

1. यूरीफाइलस नाल-तन्त्र (Euryphylous canal system)—यह सबसे सरल ल्युकन प्रकार का नाल-तन्त्र है। इसकी रचना पीछे दी जा चुकी है। इसमें आराभी नाल अपवाही नालों में चौड़े छिद्रों (apopyles) द्वारा खुलती है तथा पानी का पथ निम्न होता है :—

बाहर—(आस्य)→उपचर्म स्थान तथा आवाही नाल—आगम द्वार→आराभी नाल—निर्गमन द्वार→आवाही नाल→बड़ी चैनल्स—अपवाही रन्ध्र→बाहर।

2. एफोडल नाल-तन्त्र (Aphodal canal system)—कुछ ल्युकोनॉयड स्पंजों (जैसे *Stelleta* and *Gendia*) में निर्गमन द्वार छोटा-सा रन्ध्र न रहकर सँकरी नली के रूप में पाया जाता है। ये नलियाँ निर्गमन नली (aphodus) कहलाती है।

3. डिप्लोडल नाल-तन्त्र (Diplodal canal system)—कोण्ड्रोसिना (*Chondrosina*) तथा कोर्टिकम (*Corticum*) नामक ल्युकोनायड स्पंजों में आगम तथा निर्गमन द्वार दोनों ही नलिकाओं का रूप धारण कर लेते है जो क्रमशः प्रोपोडस (propodus) तथा एफोडस (aphodus) कहलाते हैं। इस प्रकार का नाल-तन्त्र डिप्लोडल कहलाता है।

रहगोन (Rhagon)

बिना $CaCO_3$ वाले डीमोस्पंजिया (non-calcareous Demospongia) के जन्तुओं का ल्यकोनॉयड नाल-तन्त्र लारवा अवस्था से बना हुआ माना जा सकता है। यह लारवा अवस्था रहगोन कहलाती है तथा इसका नाल-तन्त्र **रहगोन प्रकार का नाल-तन्त्र** कहा जाता है। इसका आकार चपटे पिरामिड के समान होता है जिसका चौड़ा आधार **हाइपोफेयर** (hypophare) कहलाता है। इसकी दोनों पार्श्व दीवारें (lateral walls) स्पंजोफेयर (spongophare) कहलाती हैं। इनमें छोटे तथा गोल कशाभ कक्षों की एक-एक पंक्ति होती है। इसकी स्पंज गुहा बहुत चौड़ी होती है। इसकी दीवारों में पाये जाने वाले रन्ध्र सीधे कशाभ कक्षों में खुलते हैं और आगम द्वार कहलाते हैं। इस प्रकार जिन छिद्रों द्वारा कशाभ कक्ष स्पंज गुहा में खुलते

हैं वे निर्गमन द्वार (apopyle) कहलाते हैं। स्पंज गुहा अपवाही छिद्र द्वारा वाहर खुलती है।

प्रश्न 53. स्पंजों में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की कण्टिकाओं का वर्णन कीजिये तथा वर्गीकरण में इनके महत्त्व को समझाइये।

Give an account of different types of spicules met within sponges and comment on their taxonomic importance.

(*Lucknow 1958 ; Poona 65 ; Calcutta 73*)

स्पंजों में कंकाल कण्टिकाओं (spicules) अथवा स्पंजी तन्तुओं का वना होता है या दोनों ही प्रकार का होता है। कण्टिकाएँ छोटी, सूच्याकार (needle-like) चमकीली रचनाएँ हैं। इनमें कार्वनिक पदार्थ का वना केन्द्रीय अक्ष (central axis) होता है जिसके चारों ओर अकार्वनिक पदार्थ (inorganic matter) जमा रहता है तथा सवसे वाहर एक कार्वनिक आवरण (carbonic sheath) होता है। कण्टिकाओं का कार्वनिक पदार्थ कुछ स्थानों पर जन्तु के कार्वनिक पदार्थ से सम्पर्क रखता है। इनमें पाया जाने वाला अकार्वनिक पदार्थ $CaCO_3$ या सिलिका (silica) होता है। सिलिसियस स्पंजों में (in siliceous sponges) कार्वनिक अक्ष चौड़ा तथा स्पष्ट होता है और खनिज पदार्थ (mineral matter) अक्ष के चारों ओर संकेन्द्रीय लैमेली (concentric lamellae) के रूप में एकत्रित होता है। खनिज पदार्थों के लैमेली तथा कार्वनिक पदार्थों के लैमेली का क्रमिक एकान्तरण होता है। कैल्केरियस स्पंजों में $CaCO_3$ रवेदार या मणिभीय होता है तथा इनमें कार्वनिक पदार्थ नहीं होता।

कण्टिकाएँ विभिन्न आकार तथा परिमाण की होती हैं, फिर भी ये निम्न दो प्रकार की होती हैं :—

1. दीर्घकण्टिकाएँ (Megascleres)
2. लघुकण्टिकाएँ (Microscleres)

दीर्घकण्टिकाएँ (Megascleres)

दीर्घकण्टिकाएँ वड़ी कंकाल कण्टिकाएँ हैं। इनके अक्षों (axes) में axon तथा इनकी शाखाओं (rays) को actine अथवा actinal शव्द जोड़कर प्रदर्शित किया जाता है। ये निम्न प्रकार की होती हैं :—

एकाक्ष कण्टिकाएँ (Monaxon Spicules)

ये सीधी या मुड़ी हुई छड़ों या सुइयों के आकार की होती हैं जिनमें केवल एक अक्ष होता है तथा कण्टिका के आकार में वृद्धि अक्ष की एक या दोनों दिशाओं में होती है। अत: ये निम्न दो प्रकार की हो सकती हैं :—

(अ) एकदिशी एकाक्ष (Monactinal monaxon)—जव कण्टिका में वृद्धि अक्ष के केवल एक सिरे पर होती है तो ये एकदिशी एकाक्ष कण्टिकाएँ अथवा स्टाइल्स कहलाती हैं। इनका गोल सिरा **स्ट्रोंगाइलोट** (strongylote) तथा नुकीला **ऑक्सिओट** (oxeote) कहलाता है।

(*i*) **टाइलोस्टाइल** (Tylostyle)—इनका गोल सिरा **स्ट्रोंगाइलोट** एक गाँठ (knob) के आकार का होता है।

(*ii*) **कण्टकस्टाइल या एकैन्थोस्टाइल** (Acanthostyle)—एक कण्टिका के ऊपर वहुत से छोटे-छोटे काँटे होते हैं।

(व) द्विदिशी एकाक्ष (Diactinal monaxon)—जव एक अक्षीय कण्टिकाओं

में दोनों सिरो पर वृद्धि होती है तो वे द्विदिशी एकाक्ष (diactinal monaxon) अथवा द्विआरिक (diactine) या रहेब्ड (rhabds) कहलाती है।

(*i*) **ऑक्सिआज** (Oxeas)—इनके दोनों सिरे नुकीले होते है।

(*ii*) **टोरनोट्स** (Tornotes)—इनके सिरे वल्लम के आकार के होते है।

(*iii*) **स्ट्रॉन्जिल्स** (Strongyles) —ये दोनों सिरों पर गोल होते है।

(*iv*) **टाइलोट्स** (Tylotes)—दोनों सिरो पर आलपिन के समान गोल उभार होता है।
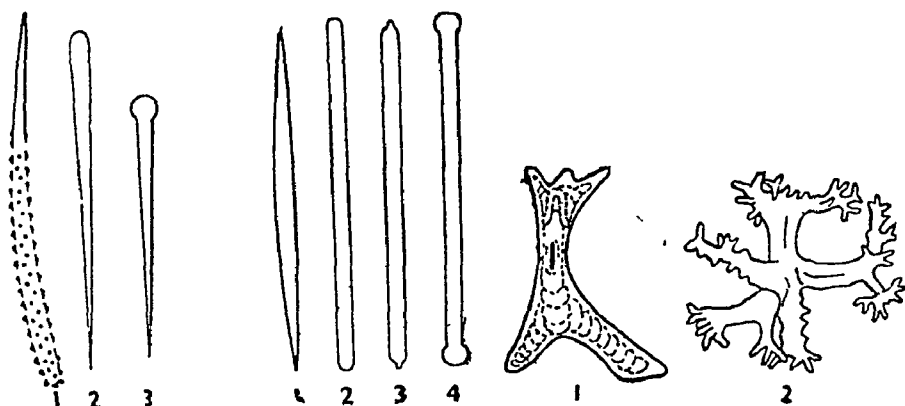
चित्र १४·२. एकदिशी एकाक्ष (*i*) ऐकेन्थोस्टाइल (*ii*) स्टाइल (*iii*) टाइलोस्टाइल

चित्र १४·३. द्विदिशी एकाक्ष (*i*) ऑक्सिआज (*ii*) टोरनोट्स (*iii*) स्ट्राञ्जिल्स (*iv*) टाइलोट्स

चित्र १४·४. टेट्राक्सन कण्टिकाएँ (*i*) टैट्राक्टाइन (*ii*) ट्राइईन्स

टेट्राक्सन कण्टिकाएँ (Tetraxon Spicules)

इन कण्टिकाओं में चार भुजाएँ या चार रे (rays) होती हैं; किन्तु वर्धन में एक, दो या तीन भुजाएँ नष्ट भी हो सकती है। ये अधिकतर कैल्केरियस स्पंजों में पायी जाती हैं और $CaCO_3$ की बनी होती है। अक्षों की संख्या तथा आकार के आधार पर ये कण्टिकाएँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं :—

(*i*) **कैलोथ्राप्स** (Calothrops)—इनमे चार भुजाएँ होती हैं जिनकी लम्बाई लगभग समान होती है।

(*ii*) **ट्राइईन्स** (Triaenes)—ट्राइईन्स में चार भुजाओं में से एक भुजा बहुत लम्बी हो जाती है तथा रहेब्डोम (rhabdome) बनाती है और शेष तीन भुजाएँ छोटी एवम् लगभग समान नाप की होती है और क्लेडोम (cladome) कहलाती है। अतः ट्राइईन में एक लम्बी भुजा पर तीन छोटी भुजाओं का ताज-सा बना होता है।

(*iii*) **डाइईन** (Diaene)—ट्राइईन के तीन क्लेडोमों मे से एक के नष्ट होने पर डाइईन बनता है।

(*iv*) **एम्फीडिस्क** (Amphidisc)—जब रहेब्डोम के दोनों सिरो पर एक-एक डिस्क के समान रचना होती है तो वह एम्फीडिस्क बनाता है।

त्रिअक्ष कण्टिकाएँ (Triaxon Spicules)

ये छः अरीय (hexactinal) या छः भुजाओं वाली कण्टिकाएँ है जो
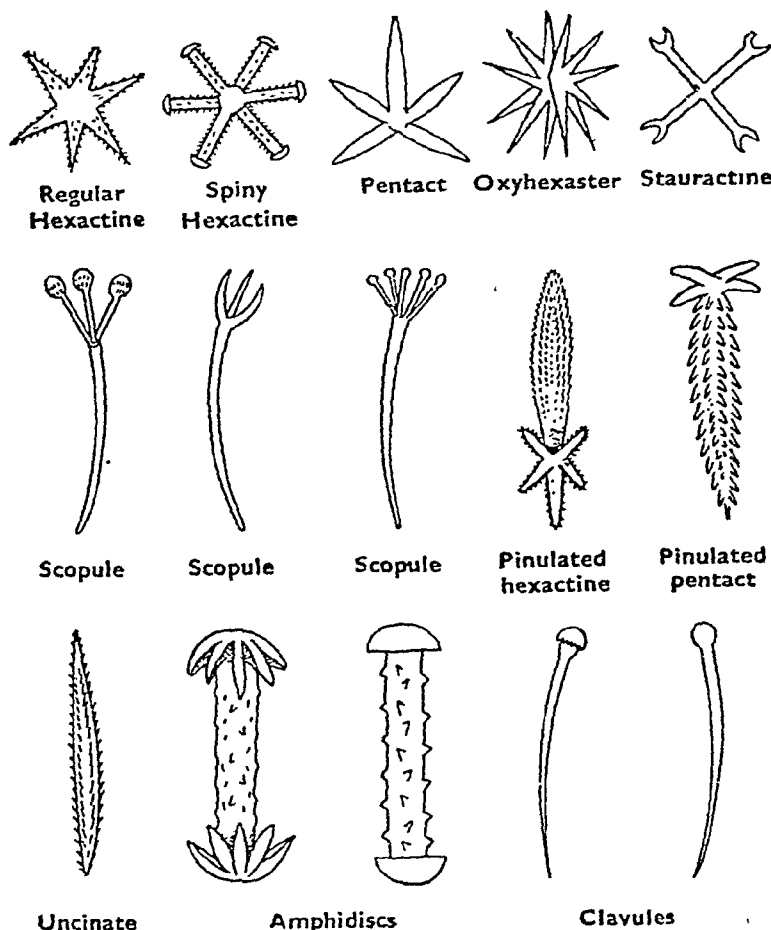
चित्र १४ ५. त्रिअक्षीय कण्टिकाएँ (Triaxon spicules)

हैक्सेक्टिनेलिडा (*Hexactinellida*) में पायी जाती हैं। इसमें तीन अक्ष (three axes) होते हैं जो एक-दूसरे के लम्बरूप स्थित होते हैं तथा एक मध्य विन्दु से निकलते हैं। ये कण्टिकाएँ भी भुजाओं के छोटे होने, नष्ट होने, विभाजित होने तथा मुड़ने से अथवा काँटों या गाँठों के बनने से विभिन्न प्रकार की हो जाती हैं।

बहुअक्षीय कण्टिकाएँ (Polyaxon Spicules)

जब एक केन्द्रक विन्दु से बहुत-सी भुजाएँ विभिन्न दिशाओं में निकलती हैं तो वे बहु-अक्ष कण्टिकाएँ कहलाती हैं।

स्फीयर्स (Spheres)

ये गोलाकार कण्टिकाएँ हैं जो एक केन्द्र के चारों ओर केन्द्रीय चक्रों के रूप में पदार्थ के एकत्रित होने से आकार में बढ़ती हैं।

डेस्मास (Desmas)

डेस्मा विशेष प्रकार की परिवर्तित एकाक्ष, त्रिअक्ष अथवा चार अक्ष वाली कण्टिकाएँ हैं जिन पर अनियमित पर्तों के रूप में सिलिका जमा हो जाता है। अन्य

शाखाओं, गाँठों अथवा जालकों (nets) के बनने से इनकी रचना अधिक जटिल हो जाती है।

लघुकण्टिकाएँ (Microscleres)

लघुकण्टिकाएँ सूक्ष्म कण्टिकाएँ हैं जो मीसेनकाइम में फैली रहती हैं तथा कभी-कभी नालों में से निकली होती हैं। ये रचना में दीर्घकण्टिकाओं के समान ही होती है किन्तु आकार में छोटी होती है। ये निम्न दो प्रकार की होती हैं :—

1. एकाक्ष लघुकण्टिकाएँ (Monaxon microscleres)
2. बहुअक्ष लघुकण्टिकाएँ (Polyaxon microscleres)

एकाक्ष लघुकण्टिकाएँ (Monaxon Microscleres)

एकाक्ष लघुकण्टिकाएँ केवल द्विदिशी (diactinal) होती हैं। ये सरल, सीधी अथवा मुड़ी हुई छड़ों के रूप में मिलती हैं। सीधी द्विदिशी लघुकण्टिकाएँ माइक्रो रहेब्ड (microrhabds) कहलाती है। ये निम्न प्रकार की हो सकती हैं :—

(*i*) माइक्रोक्सिआस (Microxeas)—इनके दोनों सिरे नुकीले होते हैं।

(*ii*) माइक्रोस्ट्रांगाइल्स (Microstrongyles)—इनके दोनों सिरे गोल होते हैं। ये मुड़ी हुई द्विदिशी लघुकण्टिकाएँ हैं। ये निम्न प्रकार की होती है :—

(*i*) सिग्मा (Sigma)—ये 'C' के आकार की लघु कण्टिकाएँ है।

(*ii*) धनुषाभ कण्टिकाएँ या टॉक्सास (Toxas)—ये धनुष के आकार की होती हैं।

(*iii*) कीलास (Chelas)—इनमें अक्ष के दोनों सिरों पर मुड़े हुए हुक या प्लेट होती हैं।

चित्र १४·६. विशेष प्रकार का मुड़ी हुई द्विअक्षीय लघु कण्टिकाएँ : १. सिग्मा २. टॉक्सास ३. कीलास

(*iv*) सिग्मास्पाइर (Sigmaspires)—ये सर्पिल आकार की मुड़ी हुई कण्टिकाएँ होती हैं।

(*v*) स्ट्रेप्टेस्टर (Streptasters)—ये छोटी काँटेदार कण्टिकाएँ हैं।

बहुअक्ष लघुकण्टिकाएँ (Polyaxon Microscleres)

इन कण्टिकाओं में बहुत-सी भुजाएँ एक मध्य बिन्दु या केन्द्र बिन्दु से निकल कर चारों ओर को फैली होती हैं। ये कण्टिकाएँ बहुअक्ष दीर्घकण्टिकाओं की अपेक्षा अधिक संख्या में पायी जाती हैं। साधारणतया ये एस्टर (aster) कहलाती हैं। ये निम्न प्रकार की होती हैं :—

(*a*) बड़े केन्द्र वाली कण्टिकाएँ (Large Centred Spicules)

(*i*) स्फीरैस्टर (Spherasters)—इनमें निश्चित भुजाएँ होती है।

(*ii*) स्टीरैस्टर (Sterraster)—इनकी भुजाएँ छोटी होकर केवल उभारों के रूप में दिखाई देती हैं।

(*b*) छोटे केन्द्र वाली कण्टिकाएँ (Small-centred Spicules)

(*i*) ऑक्सीएस्टर (Oxyasters)—इनकी भुजाएँ नुकीली होती है।

(*ii*) ट्रॉगिलैस्टर (Trongylasters)—इनकी भुजाओं के सिरे गोल होते हैं।

(*iii*) स्टाइलैस्टर (Stylaster)—इनके सिरों पर गाँठ के समान रचनाएँ होती हैं।

कण्टिकाओं का वर्गीकरण में महत्त्व
(Significance of Spicules in Taxonomy
Or
Taxonomic Importance of Spicules)

स्पंजों में कण्टिकाओं का रूप, आकार एवम् रचना अत्यन्त परिवर्तनशील होती हैं। विभिन्न जन्तुओं में यह भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, किन्तु किसी एक जाति के समस्त जन्तुओं में इनका आकार समान होता है। अत: ये स्पंजों को पहचानने के लिए अत्यन्त लाभप्रद हैं। इसके अतिरिक्त फाइलम पोरीफेरा का वर्गीकरण भी किसी सीमा तक कण्टिकाओं की रचना एवम् विन्यास पर आधारित है। फाइलम पोरीफेरा को तीन क्लासों में बाँटा गया है :—

1. हैक्सेक्टिनेलिडा (Hexactinellida)—इसमें छः अक्ष वाली सिलिका की बनी कण्टिकाएँ पायी जाती हैं।

2. कैल्केरिया (Calcarea)—इस क्लास के जीवों में कण्टिकाएँ $CaCO_3$ की बनी होती हैं।

3. डीमोस्पंजिया (Demospongia)—डीमोस्पंजिया में हार्नी स्पंज आते है जिनका कंकाल स्पंजी तन्तुओं (spongin fibres) का बना होता है तथा यदि कण्टिकाएँ उपस्थित होती हैं तो केवल $CaCO_3$ की बनी होती हैं।

प्रश्न 54. साइकन या अन्य किसी स्पंज में, जिसका आपने अध्ययन किया हो, जनन का वर्णन कीजिये। पैराजोआ की बन्धुता का उल्लेख करिये।

Describe how reproduction takes place in *Sycon* or any other sponge studied by you. Discuss the affinities of Parazoa.

(*Agra 1959 ; Ranchi 71*)

स्पंजों को प्राणि-जगत में सम्मिलित करने के कारण बताइये।

Give reasons for including sponges in the animal kingdom.

(*Gorakhpur 1973 ; Gujrat 73*)

जनन (Reproduction)

कृपया प्रश्न 49 देखिये।

पैराजोआ की बन्धुता
(Affinities of Parazoa)

382–322 B.C. से स्पंज देखे तथा पहचाने गये हैं किन्तु पहले ये पौधे समझे जाते थे। सन् 1765 में **Ellis** ने इनको जन्तु कहा। **Linnaeus, Lamarck** तथा **Cuvier** ने इनको सीलेन्ट्रेटा समुदाय के साथ जूफाइटा (Zoophyta) में रखा। **Robert Grant** (1836) ने इनको एक अलग फाइलम पोरीफेरा (Porifera) का नाम दिया।

प्रोटोजोआ से बन्धुता (Affinities with Protozoa)

समानताएँ

क्लास मैस्टीगोफोरा के कशाभीय जन्तुओं के आर्डर प्रोटीरोस्पंजिया

(Proterospongia) से स्पंज की निम्न समानताएँ दिखाई गयी हैं :—

(i) आन्तर-कोशिक पाचन (intercellular digestion),

(ii) अमीबाभ-कोशिकाओं तथा कीप-कोशिकाओं या कॉलर-कोशिकाओं (amoeboid and collared cells) की उपस्थिति,

(iii) स्वतन्त्र कोशिकाओं (independent cells) द्वारा कंकाल कण्टिकाओं का निर्माण करना,

(iv) दोनों प्रकार के जन्तुओं में प्रत्येक कोशिका अपने कार्य से लिए स्वतन्त्र होती है तथा अलग-अलग कार्य करती है।

भिन्नताएँ

स्पंज प्रोटोजोआ से निम्न बातों में भिन्न हैं :—

(i) स्पंजों में नाल-तन्त्र की उपस्थिति।

(ii) स्पंजों में विशेष प्रकार का कंकाल पाया जाता है।

(iii) एक ही निषेचित अण्डे से स्पंज का बहुकोशिक शरीर बनता है।

ऊपर की तीसरी भिन्नता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें पोरीफेरा प्रोटोजोआ से बिल्कुल भिन्न हैं। अतः दोनों समुदायों की समानताओं को नहीं माना जाता।

मेटाजोआ के साथ बन्धुता (Affinities with Metazoa)

समानताएँ

निम्नलिखित समानताओं के कारण स्पंज कभी-कभी सीलेन्ट्रेटा के साथ रखे जाते हैं :—

(i) स्थिर स्वभाव (sedentary habit)।

(ii) द्विस्तरीय (diploblastic), एसीलोमेट (acoelomate) जन्तु हैं। इनमें कोशिक (cellular) मीसोडर्म नहीं होता।

(iii) इनकी रचना सरल होती है। शरीर के मध्य में एक गुहा (cavity) होती है जो केवल एक छिद्र द्वारा बाहर खुलती है।

(iv) ये कलिकोत्पादन द्वारा संघ बनाते हैं।

(v) पोरीफेरा की लारवा अवस्थाएँ सीलेन्ट्रेटा के लारवा से मिलती-जुलती होती हैं।

भिन्नताएँ

(i) स्पंज में कोशिकाएँ कम विशेषीकृत (less specialised) तथा पूर्णतया स्वतन्त्र होती हैं जबकि मेटाजोआ में कोशिकाएँ अधिक परिवर्तित होती है और एक-दूसरे पर निर्भर रहती है।

(ii) स्पंजों में ऊतकों का निर्माण नहीं होता ; केवल सतह की एपिथीलियम झिल्लियाँ ही होती है जो कोशिकाओं के निश्चित विन्यास से बनती हैं।

(iii) स्पंज द्विस्तरीय होते हैं जबकि मेटाजोआ की देहभित्ति में तीन स्तर होते है।

(iv) स्पंजों का अपवाही छिद्र (osculum) सीलेन्ट्रेटा के मुख के समान नही होता। अपवाही छिद्र से केवल जल की धारा बाहर निकलती है।

(v) सीलेन्ट्रेटा में पायी जाने वाली दंश-कोशिकाएँ (stinging cells) स्पंजों में अनुपस्थित होती हैं।

(*iv*) स्पंजों के शरीर की सतह पर असंख्य सूक्ष्म छिद्र **ऑस्यक** (ostia) होते हैं जो सीलेन्ट्रेटा में नहीं होते।

(*vii*) स्पंज की देहभित्ति में असंख्य पानी से भरी नाल (channels) होती हैं। ये नाल स्पंज गुहा से सम्बन्धित होती हैं।

(*viii*) इनमें कीप-कोशिकाएँ होती हैं जो सीलेन्ट्रेटा में नहीं पायी जातीं।

उपर्युक्त भिन्नताओं के कारण पोरीफेरा तथा सीलेन्ट्रेटा के जन्तुओं को एक साथ एक फाइलम में रखना असम्भव है, अतः दोनों को अलग-अलग फाइलम में रखा गया है।

स्पंज तथा फाइलम सीलेन्ट्रेटा में भ्रूण झिल्लियों के वर्धन की प्रक्रिया के अध्ययन से पता चलता है कि दोनों में बहुत-सी भिन्नताएँ हैं जिससे यह भी पता चलता है कि स्पंज तथा सीलेन्ट्रेटा प्रोटोजोआ से अलग-अलग विकसित हुए हैं। इसी कारण स्पंजों को एक अलग उपजगत् (subkingdom) पैराजोआ (parazoa) में रखा गया है।

प्रश्न 55. निम्नलिखित के सुन्दर एवम् नामांकित चित्र बनाइये :—

Draw neat and labelled sketches of the following (no description is needed) :—

(*i*) **साइकन का अनुप्रस्थ काट (T.S. Sycon)**

(*Lucknow 1963 ; Raj. 70*)

चित्र 12·7 देखिये।

(*ii*) **स्पंजिला का जैम्यूल (Gemmule of Spongilla)**

(*Lucknow 1962, 63, 64*)
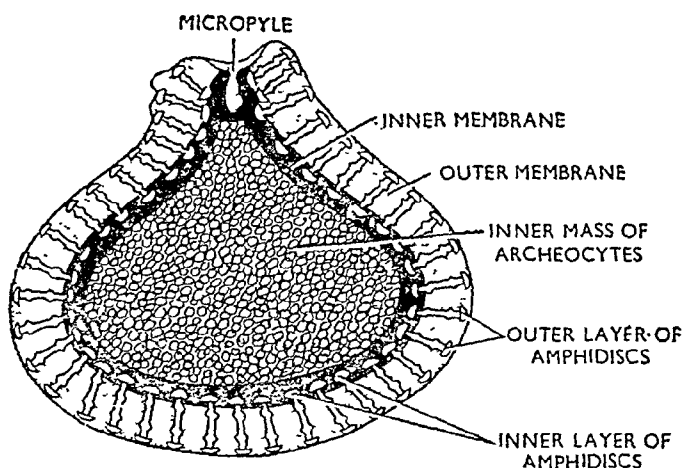
चित्र १४·७. स्पंजिला का जैम्यूल (Gemmule of *Spongilla*)

अध्याय 15

फाइलम सीलेन्ट्रेटा
(Phylum Coelenterata)
(Gr., *Koilos*, hollow ; *enteron*, intestine)

प्रश्न 56. फाइलम सीलेन्ट्रेटा के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कीजिये । प्रत्येक क्लास के विशिष्ट गुणों एवम् उचित उदाहरणों की सहायता से इसके वर्गीकरण की रूपरेखा दीजिये ।

Mention the distinguishing features of Phylum Coelenterata. Give its outline classification with general characters and classification of each class. (*Vikram 1967 ; Kanpur 68, 70 ; Agra 57, 60, 68, 73 ; Jiwaji 70 ; Luck. 63, 66, 68 ; Gauhati 73 ; Shivaji 73*)

प्रत्येक क्लास के विशिष्ट गुण एवम् उचित उदाहरण देकर सीलेन्ट्रेटा का वर्गीकरण करिये ।

Classify Coelenterata giving the characters and examples of each class. (*Meerut 1969*)

सीलेन्ट्रेटा (Coelenterata : Gr. *koilos*, cavity ; *enteron*, intestine) शब्द सर्वप्रथम ल्यूकार्ट (Leukart) ने सन् 1847 में उन जन्तुओं के लिए प्रयोग किया था जिनमें आन्त्र-गुहा (enteric cavtıy) ही उनकी देहगुहा (body cavity) बनाती है ।

विशिष्ट लक्षण (General Characters)

1. ये सरल या आदिम मेटाजोआ हैं जिनमें low grade of tissue construction पाया जाता है, अर्थात् जिनमें ऊतक बनने की प्रारम्भिक अवस्था देखी जा सकती है ।

2. शरीर का आकार निश्चित होता है, तथा इनमें मुखवर्ती तथा अपमुख-वर्ती अक्ष (oral-aboral axis) होते हैं ।

3. जन्तु **अरीय सममित** (radially symmetrical) तथा द्विस्तरीय (diploblastic) होते हैं । इनका वाह्य-स्तर **बहिर्जन स्तर** या **एक्टोडर्म** (ectoderm) तथा भीतर का स्तर **अन्तर्जन स्तर** या **एण्डोडर्म** (endoderm) कहलाता है । इन दोनों स्तरों के बीच अकोशिक (non cellular) जिलेटिन की बनी **मेसोग्लिया** (mesogloea) होती है । यह तन्तुमय (fibrous) भी हो सकती है या इसमें अमीबाभ कोशिकाएँ भी मिल सकती हैं ।

4. देहभित्ति के भीतर केवल एक-मात्र मध्य गुहा (central cavity) होती है जो **गैस्ट्रो-वैस्क्युलर** गुहा (gastro-vascular cavity) कहलाती है । यह पाचन नली के समान कार्य करती है तथा शीर्ष छिद्र (terminal aperture) द्वारा बाहर से सम्बन्धित रहती है । यह छिद्र मुख (mouth) कहलाता है । यह भोजन

ग्रहण करने तथा अपच भोजन को शरीर से बाहर निकालने का कार्य करती है। इसमें गुदाद्वार (anus) नहीं होता।

5. मुख शरीर के उभरे हुए अगले भाग के शीर्ष पर स्थित होता है। यह तिकोने आकार का होता है और **हाइपोस्टोम** (hypostome) कहलाता है। मुख के चारों ओर **स्पर्शक** या **टैण्टेकल्स** (tentacles) पाये जाते हैं।

6. देहभित्ति में अभिन्नित **अन्तराल कोशिकाएँ** या **इण्टरस्टिशियल कोशिकाएँ** (interstitial cells) तथा **दंश-कोशिकाओं की बैटरी** (batteries of nematocysts) पायी जाती है। ये आधार से चिपकने, आत्म-रक्षा तथा भोजन पकड़ने में सहायता पहुँचाती हैं।

7. इनमें देहगुहा, परिवहन तन्त्र, उत्सर्जन तन्त्र तथा श्वसन अंग नहीं होते।

8. चलन देहभित्ति के मांस-पेशीय तन्तुओं (muscle fibres) के सिकुड़ने तथा फैलने से होता है।

9. तन्त्रिका-तन्त्र तन्त्रिका कोशिकाओं का बना होता है जो देहभित्ति में फैलकर जाल-सा बनाती हैं।

10. कंकाल $CaCO_3$ का अथवा हार्नी होता है। यह जन्तु के शरीर के बाहर या भीतर स्थित हो सकता है, किन्तु कुछ में यह पूर्णत: अनुपस्थित होता है।

11. इन जन्तुओं में बहुरूपता या बहुआकृतिकता (polymorphism) पायी जाती है। अत: ये जन्तु एक से अधिक शक्लों या रूपों में मिलते हैं। अधिकतर ये **पॉलीपायड** (polypoid) तथा **मेड्युसॉयड** (medusoid) रूपों में मिलते हैं। पॉलिप वृन्तविहीन (sessile), लम्बे तथा बेलनाकार होते हैं जो अपमुखीय सिरे (aboral end) द्वारा जुड़े रहते हैं। मेड्यूसा स्वतन्त्रता से तैरने वाले घण्टी के आकार के (bell-shaped) अथवा तस्तरी के आकार के (saucer-shaped) होते हैं।

12. इनमें कलिकोत्पादन द्वारा अलैंगिक जनन होता है जिससे संघ (colonies) बन जाते हैं। लैंगिक जनन में शुक्राणु तथा अण्डाणुओं का निर्माण होता है। लारवा **स्टीरोगेस्ट्रुला** (sterogastrula) अथवा **प्लैनुला** (planula) कहलाता है।

13. इनमें **'जननों का एकान्तरण'** (alternation of generations) या मेटाजेनेसिस (metagenesis) पाया जाता है। यहाँ अलैंगिक पॉलीपायड जन्तु तथा लैंगिक मेड्युसायड जन्तुओं में एकान्तरण होता है।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम सीलेन्ट्रेटा को तीन क्लासों में बाँटा गया है—

1. हाइड्रोजोआ (Hydrozoa)
2. स्काइफोजोआ (Scyphozoa)
3. एन्थोजोआ या एक्टीनोजोआ (Anthozoa)

क्लास 1. हाइड्रोजोआ (Hydrozoa)

[illegible]: 1. मेसोग्लिया अकोशीय तथा जैली के समान होती है

2. अधिकांश बहुरूपी जन्तु हैं जिनमें **पॉलिप** तथा **मेड्यूसा** नामक प्रावस्थाएँ होती हैं। इन प्रावस्थाओं में एकान्तरण पाया जाता है।

3. मेड्यूसा में वास्तविक **वीलम** (velum) होता है।

Phylum : Coelenterata
Class (i) Hydrozoa
Orders
Hydroidea e.g. Hydra, Obelia
Hydrocorallina e.g. Millepora
Trachylina e.g. Aegina
Stylasterina e.g. Stylaster
Siphonophora e.g. 1. Porpita 2. Physalia 3. Velella
(ii) Scyphozoa
Orders
Stauromedusae e.g. Leucernaia
Cubomedusae Tomopa
Coronatae Pericolpa
Semaeostomeae Aurelia
Rhizostomeae Rhizostoma
(iii) Anthozoa or Actinozoa
Subclasses
Alcyonaria
Orders
Stolonifera e.g Clavularia
Telestacea e.g. Telesto
Alcyonacea e.g. Alcyonium
Gorgonacea e.g. Gorgonia Corallium
Coenothecalia e.g. Heliopora
Pennatulacea e.g. Pennatula
Zoantharia
Orders
Actiniaria Actinia
Zoanthidae e.g. Zoanthus
Ceriantharia e.g. Cerianthus
Antipatharia e.g. Antipathes
Madreporaria e.g. Oculina, Astraea, Madrepora, Favia

4. **गैस्ट्रो-वैस्क्युलर गुहा** (gastro-vascular cavity) सरल होती है तथा इसमें **अग्रांत्र या स्टोमोडियम** (stomodium) नहीं होता।

5. इनमें गैस्ट्रिक फिलामेंट (gastric filament), खड़े विभाजन या सेप्टा (vertical partition or septa) तथा मीसेण्ट्रॉन का अभाव होता है।

6. इनका पेरिसार्क हार्नी, क्यूटिकल अथवा $CaCO_3$ का बना होता है जो एक्टोडर्म के रिसने से बनता है।

7. **जनद** (gonads) एक्टोडर्म स्तर की कोशिकाओं से बनते है।

8. ये अधिकतर संघीय (colonial) तथा समुद्री जीव हैं किन्तु कुछ अकेले भी रहते है और ताजे पानी में पाये जाते है।

उदाहरण : हाइड्रा (*Hydra*), ओबेलिया (*Obelia*), मिलीपोरा (*Millepora*), फाइसेलिया (*Physalia*), पोर्पिटा (*Porpita*) तथा वलेला (*Velella*) इत्यादि।

क्लास 2. स्काइफोजोआ (Scyphozoa)

1, मेसोग्लिया में कोशिकाएँ पायी जाती हैं।

2. इनमें केवल मेड्यूसा अवस्था प्रमुख (dominant) होती है। पॉलिप अवस्था का या तो पूर्ण अभाव होता है अन्यथा यह केवल **स्काइफिस्टोमा** (scyphistoma) द्वारा प्रदर्शित होती है।

3. मेड्यूसा घण्टी के समान (bell-shaped) या छतरी के आकार की (umbrella-shaped) होती है तथा इसमें वीलम नहीं होता।

3. **गैस्ट्रोवैस्क्युलर गुहा** में स्टोमोडियम नही होता किन्तु इसमें गैस्ट्रिक स्पर्शक (gastric tentacles) होते है तथा गुहा चार उभारों या सेप्टा (ridges or septa) द्वारा चार आन्तर-अरीय कक्षों (inter-radial pockets) में बँटी होती है।

5. पेरिसार्क (perisarc) अनुपस्थित होती है।

6. जनद अन्तर्जन स्तर से बनते हैं।

7. ये मुख्यतः समुद्री जीव है।

उदाहरण : ऑरेलिया (*Aurelia*), साइयेनिया (*Cyanea*), राइजोस्टोमा (*Rhizostoma*) तथा कैसीओपिया (*Cassiopia*)।

क्लास 3. एन्थोजोआ या एक्टिनोजोआ (Anthozoa or Actinozoa)

1. शरीर बेलनाकार तथा हेक्सामेरस (hexamerous), ओक्टोमेरस (octomerous) या पॉलीमेरस (polymerous) अथवा द्विअरीय (biradial) या radio-bilateral सममित होता है।

2. मेसोग्लिया तन्तुमय संयोजी ऊतक (fibrous connective tissue) के रूप में होता है।

3. जन्तु केवल **पॉलिप** (polyp) प्रावस्था में पाये जाते हैं तथा इनमें मेड्यूसा प्रावस्था नही होती।

4. मुखवर्ती सिरा (oral end) चौड़ा होकर ओरल डिस्क (oral disc) बनाता है जिस पर बहुत-से स्पर्शक (tentacles) लगे होते हैं जो मुख को चारों ओर से घेरे रहते है। इनकी संख्या 6 अथवा 8 के गुणन में होती है।

5. गैस्ट्रो-वैस्क्यूलर गुहा का अगला सिरा स्टोमोडियम बनाता है जो बहुत

अधिक स्पष्ट होता है। इनमें एक या एक से अधिक **साइफोनोग्लाइफ** (siphonoglyphs) होते हैं। पूर्ण या अपूर्ण सेप्टा द्वारा गैस्ट्रो-वेस्क्युलर गुहा कक्षों (compartments) में विभाजित होती है। प्रत्येक सेप्टा पर दंश-कोशिकाएँ पायी जाती हैं। ये सेप्टा **मीसेण्ट्री** (mesentery) कहलाते हैं। इससे मीसेण्ट्रिक सूत्र (mesenteric filaments) लगे रहते हैं।

6. एक्टोडर्म (ectoderm) के स्राव से $CaCO_3$ अथवा किरेटिन का वहिः-कंकाल (exoskeleton) वनता है। यह कंकाल सामूहिक रूप में **कोरल** वनाता है। कुछ जन्तुओं में अन्तःकाल (endoskeleton) भी पाया जाता है।

7. जनद एण्डोडर्म (endoderm) की कोशिकाओं से वनते हैं।

8. ये पूर्णरूपेण समुद्री जीव हैं। कुछ अकेले रहते हैं किन्तु अधिकतर संघ वनाते हैं।

उदाहरण : कोरल (*Corals*), *ट्यूवीपोरा* (*Tubipora*), *कोरेलियम* (*Corallium*), *एल्सायोनियम* (*Alcyonium*), *गोरगोनिया* (*Gorgonia*), *पेनेट्युला* (*Pennatula*) तथा टैरॉइड्स (*Pteroides*) इत्यादि।

प्रश्न 57. निम्नलिखित प्राणियों को उनके वर्गीकरण के क्रम में रखिये तथा प्रत्येक पर एक टिप्पणी लिखिये।

Assign the following animals to their respective systematic position and add a note on each of them.

1. हाइड्रा (Hydra) (*Jiwaji 1970*)

कृपया प्रश्न 58 देखिये।

2. फाइसेलिया (Physalia) (*Lucknow 1956, 68* ; *Shiuaji 71* ; *Meerut 71* ; *Agra 73*)

(पुर्तगीज़ मैन ऑफ वार—Portuguese man of war)

फाइलम — सीलेन्ट्रेटा (*Coelenterata*)
क्लास — हाइड्रोजोआ (*Hydrozoa*)
आर्डर — साइफोनोफोरा (*Siphonophora*)
सवआर्डर — फाइजोफोरिडा (*Phpsophorida*)

यह वहुरूपी व कॉलोनी में रहने वाला प्राणी है जो उष्ण एवम् उपोष्ण जल में तैरता हुआ पाया जाता है। यह भड़कीले रंग का होता है तथा इसमें नेपोलियन के टोप से मिलता जुलता एक-कक्षीय **न्युमेटोफोर** (pneumetophore) होता है। इसमें वायु के समान गैस भरी रहती है। न्युमेटोफोर जल **स्थैतिक अंग** का कार्य करता है तथा इसमें भरी हुई गैस, **गैस ग्रन्थि** द्वारा स्रावित होती है।

फाइसेलिया की कॉलोनी वहुरूपी होती है जिसमें तीन प्रकार के **जुऑइड** (zooid) होते हैं :—

(1) गैस्ट्रोजूऑइड्स या पोषक जूऑइड्स (Gastrozooids or nutritive zooids)—इनमे मुख होता है और ये कॉलोनी का पोषण करते है, किन्तु इनमें स्पर्शकों का अभाव होता है।

(2) डैक्टिलोजूऑइड्स या रक्षात्मक जूऑइड्स (Dactylozooids)—इनमें शिकार करने के लिए स्पर्शक होते हैं। ये दो आकार के होते हैं **वड़े** व **छोटे**। वड़े डैक्टिलोजूऑइड्स के स्पर्शक 60 फीट तक लम्वे होते है। इन पर निमेटोसिस्ट कोशिकाओं के अनेक गुच्छे होते हैं। ये शत्रु के शरीर में घुसकर उसे वेहोश
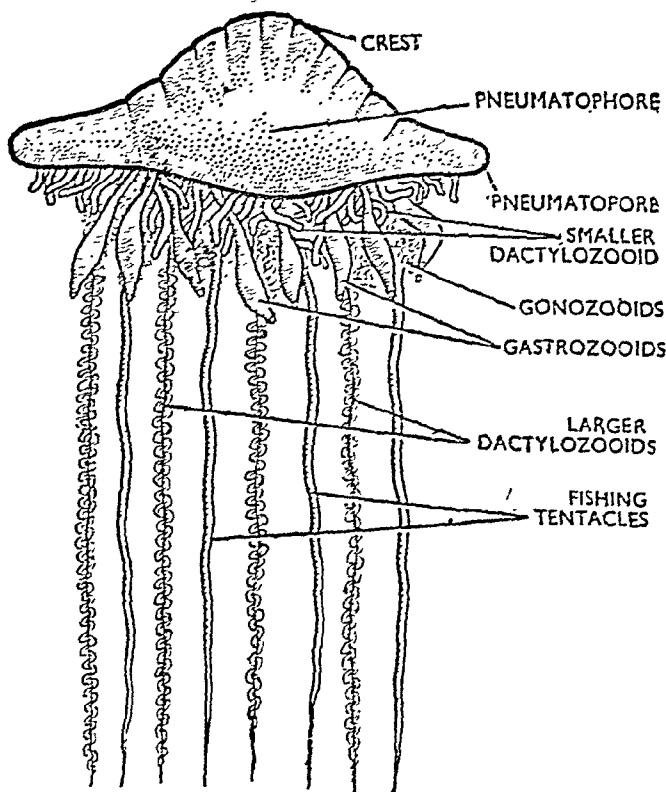
चित्र १५·१. फाइसेलिया (*Physalia*)

कर देती हैं। अतः इनका कार्य रक्षात्मक है। बड़े डैक्टिलोज़ूऑइड्स के स्पर्शक कभी-कभी मनुष्य के लिए भी घातक होते हैं।

(3) ब्लास्टोस्टाइल्स या जनन ज़ूऑइड्स (Blastostyles or gonodendra)—ये लैंगिक ज़ूऑइड्स हैं जिनमें मेडयूसॉइड गोनोफोर (medusoid gonophores) के गुच्छे होते हैं। ये अंगूर के गुच्छों के सदृश होते हैं जो पत्ती के समान gonopalpones द्वारा आरक्षित रहते हैं। मनुष्य में पीड़ादायक घाव करने और इसका float नेपोलियन के टोप के समान होने के कारण इसे "Portuguese man of war" भी कहते हैं।

3. पोर्पिटा (Porpita)

फाइलम	—	सीलेन्ट्रेटा (*Coelenterata*)
क्लास	—	हाइड्रोजोआ (*Hydrozoa*)
आर्डर	—	साइफोनोफोरा (*Siphonophora*)
सबआर्डर	—	फाइसोफोरिडा (*Physophorida*)

यह समुद्री बहुरूपी व कॉलोनी बनाकर रहने वाला प्राणी है जो मेड्यूसा के समान प्रतीत होता है और दक्षिणी एटलाण्टिक तट के साथ-साथ पाया जाता है। इसका शरीर बिम्बाभी (discoidal) होता है जिसमें एक न्युमेटोफोर (pneumatophore) होता है जिसके अन्दर एक बहुकक्षीय व छिद्रयुक्त खोल होता है। इसमें

वायु भरी रहती है और यह तैरने में सहायता करता है। बहुरूपी (polymorphic) कॉलोनी के अवर तल पर तीन प्रकार के जूऑइड्स (zooid) होते हैं।
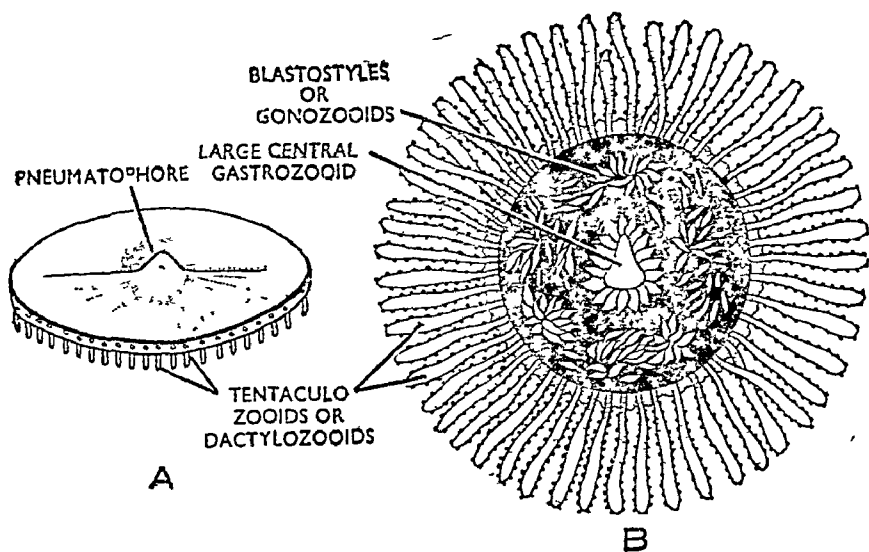
चित्र १५·२. पॉर्पिटा (*Porpita*)

A. पृष्ठ दृश्य B. अधर दृश्य

(1) एक बड़ा केन्द्रीय **गैस्ट्रोजूऑइड** (gastrozooids)—यह एक खोखला पॉलिप है जिसके अन्दर आमाशय तथा एक अग्रीय मुखछिद्र होता है।

(2) गैस्ट्रोजूऑइड के चारों ओर अनेक **ब्लास्टोस्टाइल्स** (blastostyles) होते हैं। ये मेड्यूसा धारण किये होते हैं।

(3) डिस्क के उपान्त के साथ-साथ गोलाई में अनेक **डैक्टिलोजूऑइड्स** (dactylozooids) होते हैं। ये सुविकसित स्पर्शकों एवं दंशकोशिकाओं (nematocysts) युक्त होते है।

गैस्ट्रोजूऑइड की गैस्ट्रिक गुहा तथा न्युमेटोफोर के बीच एक मोटी कोशिकीय संहति होती है जो यकृत (liver) बनाती है। ऐसा माना जाता है कि यह उत्सर्जन का कार्य करती है। यकृत में दो प्रकार की नलिकाएँ होती है—**एण्डोडर्मल नलिकाएँ** जूऑइड्स की गैस्ट्रोवेस्कुलर गुहाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है तथा **ट्रेकिया नलिकाएँ** वायु-विवरों का बाहर से सम्बन्ध बनाती है। प्रत्येक वायु-विवर अनेक छिद्रों द्वारा बाहर खुलता है।

4. वेलेला (Vallela)

फाइलम	—	सीलेन्ट्रेटा (*Coelenterata*)
क्लास	—	हाइड्रोजोआ (*Hydrozoa*)
आर्डर	—	साइफोनोफोरा (*Siphonophora*)
सबआर्डर	—	फाइसोफोरिडा (*Physophorida*)

यह कॉलोनी में रहने वाला आकर्षक रंग का समुद्री हाइड्रोजोअन प्राणी है जो उष्ण समुद्रों के जल मे पाया जाता है। कॉलोनी एक चपटे अण्डाकार या समचतुर्भजाकार व मेड्यूसा के समान तथा भड़कीले नीले रंग की होती है। **न्युमेटोफोर**

में काइटिन की बनी हुई एक बहुकक्षीय डिस्क होती है जिसकी ऊपरी सतह पर एक सीधा उद्रेख होता है। डिस्क के अवर तल के केन्द्रीय भाग से एक बड़ा गैस्ट्रोज़ूऑइड लटका रहता है। इसके चारों ओर अनेक ब्लास्टोस्टाइल्स लगे रहते हैं। डिस्क के उपान्त के साथ-साथ स्पर्शकों की झालर बनाते हुए अनेक **डैक्टिलोज़ूऑइड्स** लटके रहते हैं। **गोनोज़ूऑइड्स** से कलिकाएँ बनती है जो पृथक् होकर स्वच्छन्द रूप से मेड्यूसी के रूप में बाहर निकल आती हैं।
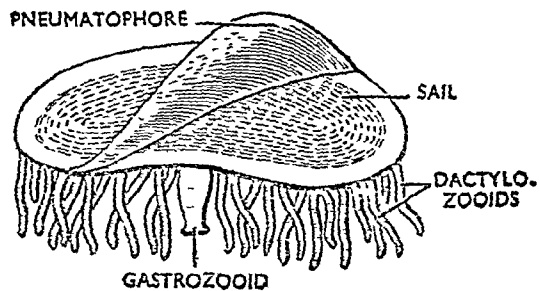
चित्र १५·३. वेलेला (*Vallela*)

5. राइजोस्टोमा (Rhizostoma)

फाइलम	—	सीलेन्ट्रेटा (*Coelenterata*)
क्लास	—	स्काइफोजोआ (*Scyphozoa*)
आर्डर	—	राइजोस्टोमी (*Rhizostomae*)

राइजोस्टोमा हिन्द एवम् प्रशान्त महासागर के तट के साथ-साथ उथले जल में पाया जाता है। इसका शरीर या अम्ब्रैला अर्ध-गोलाकार होता है तथा सीमान्त कटावदार नहीं होता और इस पर स्पर्शकों एवम् लैपेट्स का पूर्ण अभाव होता है। प्रौढ़ राइजोस्टोमा में आठ लम्बी व पालिमय मुखवर्ती भुजाएँ होती है जो अम्ब्रैला की निचली सतह के केन्द्रीय भाग से लटकी रहती हैं। मुखवर्ती भुजाओं की अतिवृद्धि के कारण मुख अवरुद्ध हो जाता है किन्तु भुजाओं के सीमान्तों के साथ-साथ कीप की आकृति के अनेक **चषक मुख** (suctorial mouth) होते हैं। मुखवर्ती भुजाओं की बाहरी सतह पर अतिरिक्त मुखों से युक्त झालरदार उद्वर्ध होते है। इनको **स्कैप्युलेट्स** (scapulets) कहते हैं। ये संख्या में 16 तथा प्रत्येक भुजा में दो होते हैं। **जनन धानियाँ** (genital pouches) समेकित होकर आमाशय के नीचे एक उभयनिष्ठ कक्ष बनाती है।
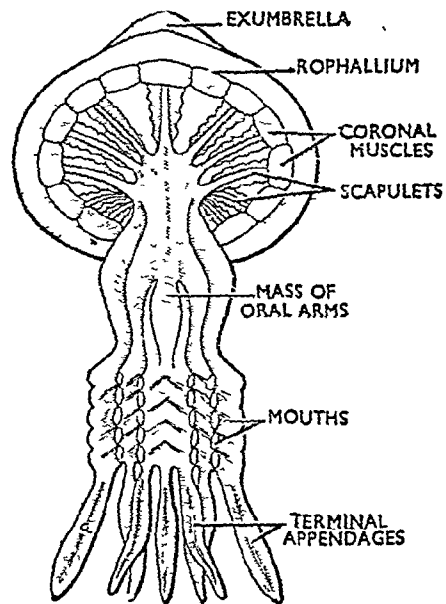
चित्र १५·४. राइजोस्टोमा (*Rhizostoma*)

6. पेनेट्युला (Pennatula) (*Agra 1961, 68 : Magadh 65 ; Punjab '69 ; Luck. 71*)

फाइलम	—	सीलेन्ट्रेटा (*Coelenterata*)
श्रेणी	—	एक्टिनोजोआ (*Actinozoa*)
उप-श्रेणी	—	एल्सायोनेरिया (*Alcyonaria*)
गण	—	पेनेट्युलेसिया (*Pennatulacea*)
जीनस	—	पेनेट्युला (*Pennatula*)

पेनेट्युला साधारणतया समुद्री पंख (sea feather) या समुद्री कलम (sea-pen) कहलाता है। यह एक संघजीवी (colonial) तथा स्थिर (sedentary) समुद्री जीव है जो तटीय जल में पाया जाता है। यह पीले, नारंगी या लाल रंग का होता है। संघ में एक लम्बे तने के समान रचना होती है जो दो भागों में बँटी रहती है। समीपस्थ आधार भाग **डण्ठल** (peduncle or stalk) कहलाता है तथा ऊपर का दूरस्थ भाग रेकिस (rachis) कहलाता है। डण्ठल वाला भाग समुद्री रेत या मिट्टी में धँसा रहता है तथा रेकिस पर दो पंक्तियों में लम्बी व चपटी पर्त के समान मांसीली पार्श्व शाखाएँ होती हैं जो पिन्यूल या पत्तियाँ कहलाती हैं। इन पर दो प्रकार के जन्तुभ (zooids) लगे रहते हैं। साधारण पोषक जन्तुभ **एन्थोजूऑइड** (anthozooid) अथवा **एन्थोकोडिया** (anthocodia) पिन्यूल के ऊपरी किनारे के साथ एक पंक्ति में लगे रहते हैं। छोटे **साइफोनोजूऑइड** रेकिस के पार्श्व किनारे के साथ स्थित होते है। साइफोनोजूऑइड में स्पर्शक तथा जनद नहीं होते तथा इनकी मीसेण्ट्रियाँ विकसित होती हैं परन्तु साइफोनोग्लाइफ बहुत बड़े होते है। इनका मुख्य कार्य कॉलोनी की एण्डोडर्मल नालों के भीतर पानी की नियमित धारा बनाये रखना है।

चित्र १५·५. पेनेट्युला (*Pennatula*)

7. कोरेलियम (Corallium)
(Red coral)
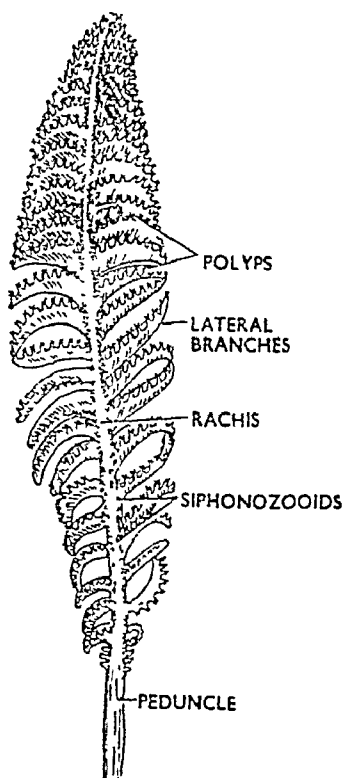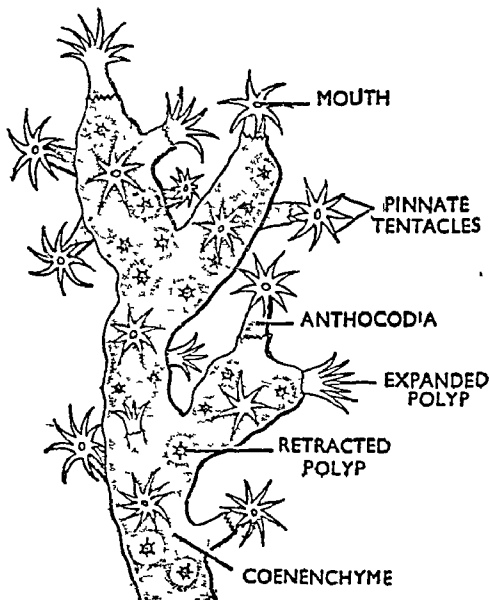
चित्र १५·६. कोरेलियम रबरम (*Corallium rubrum*)

यह कॉलोनी में रहने वाला तटवर्ती प्राणी है जिसको **red coral** या **coral**

stone भी कहते हैं। कॉलोनी सीधी व अत्यधिक विशाखित होती है। पॉलिप सफेद व द्विरूपी होते हैं जो **ऑटोजूऑइड्स** (autozooids) या **ऐंथोकोडिया** (anthocodia) तथा **साइफोनोजूऑइड्स** (siphonozooids) कहलाते हैं। इसका कंकाल लाल रंग का होता है जो सीनोसार्क में संयोजित लाल कैल्केरिअस कण्टिकाओं का बना होता है। इसके कंकाल के टुकड़ों से माला के दानों के समान लाल मूंगा बनाया जाता है।

8. मैट्रिडियम (Metridium)

फाइलम	—	सीलेन्ट्रेटा (*Coelenterata*)
क्लास	—	ऐंथोजोआ (*Anthozoa*)
सबक्लास	—	हैक्सेकोरेलिया (*Hexacorallia*)
आर्डर	—	ऐक्टिनेरिया (*Actinaria*)

यह प्रशान्त महासागर तथा अटलाण्टिक महासागर के तटों के साथ-साथ पाया जाने वाला बड़े आकार का व चमकीले रंग का सी-एनीमोन है। इसका शरीर **ओरल या मुखवर्ती डिस्क, आधार या बेसल डिस्क** तथा दण्ड में भिन्नित होता है। ओरल डिस्क पर मुख तथा **स्पर्शकों का एक चक्र** होता है। दण्ड पतली दीवार वाले दूरस्थ भाग **केपिटुलम** (capitulum) तथा मोटी दीवार वाले भाग **स्केपस** (scapus) में भिन्नित होता है। ये दोनों भाग एक कॉलर द्वारा अलग रहते हैं। बेसल डिस्क चौड़ी व पेशीय होती है जो शरीर को अधोस्तर से चिपकाने से सहायक होती है। नर एवम् मादा जननांग अलग-अलग जन्तुओं में होते हैं और ये mesenteries पर स्थित होते हैं।
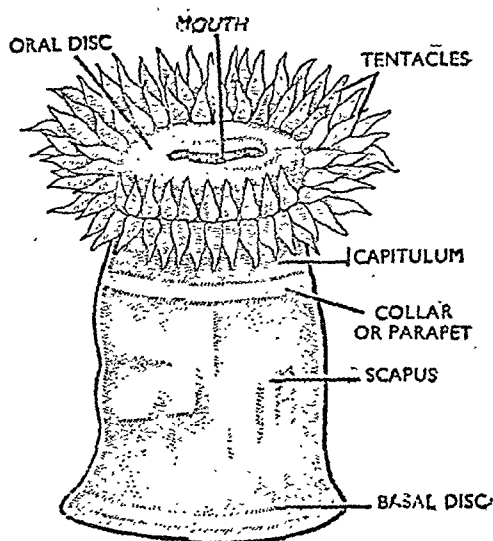
चित्र १५·७. मैट्रिडियम (*Metrid;um*)

हाइड्रा
(Hydra)

फाइलम	—	सीलेन्ट्रेटा (*Coelenterata*)
क्लास	—	हाइड्रोजोआ (*Hydrozoa*)
ऑर्डर	—	हाइड्रोइडिया (*Hydroidea*)
जीनस	—	हाइड्रा (*Hydra*)

प्रश्न 58. हाइड्रा की संरचना का वर्णन कीजिये तथा ओवेलिया से इसकी तुलना कीजिये।

Give an account of the structure of *Hydra* and compare with tha *lia.*

हाइड्रा की संरचना (Structure of Hydra)

हाइड्रा एक वहुकोशिक (multicellular), द्विस्तरीय (diploblastic) जन्तु है जो फाइलम सीलेन्ट्रेटा की सरलतम रचना प्रदर्शित करता है। यह हाइड्रायड अथवा पॉलिप अवस्था (hydroid or polyp stage) में पाया जाता है तथा केवल उस स्वच्छ व ताजे पानी मे रहता है जहाँ जलीय पौधे अधिक मात्रा में मिलते है।

चित्र १६ १. हाइड्रा की वाह्य रचना
(External Features of *Hydra*)

आकार एवम् परिमाण (Shape and size)—हाइड्रा मैक्रोस्कोपिक (macroscopic) जन्तु है जो विना सूक्ष्मदर्शी के एक सफेद वेलनाकार नली के समान दिखाई देता है। यह अत्यन्त कुञ्चनशील होता है तथा थोड़ी-सी वाधा (disturbance) पर यह सिकुड़कर गेंद के समान आकार ग्रहण कर लेता है। हाइड्रा की लम्वाई 2 से 30 mm. तक हो सकती है।

वाह्य रचना (External structure)—
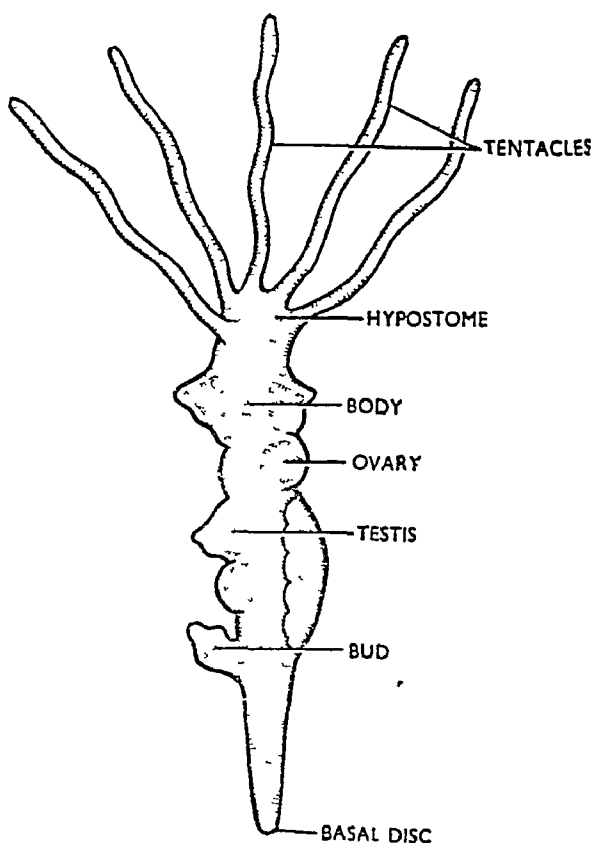
हाइड्रा का शरीर द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical), पतला तथा कोमल होता है। इसका अगला स्वतन्त्र सिरा लगभग तिकोना या कोन के समान (conical) होता है तथा मुखाधार या **हाइपोस्टोम** (hypostome) या **मुखीय शंकु** (oral cone) कहलाता है। इसके आधार पर 6 से 10 खोखले स्पर्शकों का एक घेरा होता है तथा सिर पर एक गोल छिद्र होता है जो **मुख-द्वार** कहलाता है। हाइपोस्टोम की कोशिकाएँ अत्यन्त लचीली होती हैं तथा इनके सिकुड़ने तथा फैलने से मुख-द्वार फैलकर चौड़ा अथवा सिकुड़कर वन्द हो जाता है। स्पर्शक सदैव पानी में घूमते रहते हैं। ये चलन एवम् भोजन ग्रहण करने के मुख्य अंग हैं। शरीर का पिछला अथवा दूरस्थ सिरा चौड़ा तथा डिस्क के समान होता है तथा **आधार तल** (basal disc) बनाता है। इसके द्वारा जन्तु अस्थायी रूप से किसी आधार इत्यादि से चिपक जाता है।

कभी-कभी जन्तु के शरीर की पार्श्व सतह से एक या एक से अधिक खोखले उभार निकले रहते हैं। ये उभार **कलिकाएँ** कहलाते हैं। पुनः वर्धन के फलस्वरूप ये नये हाइड्रा में वदल जाते हैं। शरदकाल में जन्तु के शरीर में ठोस उभार देखे गये हैं जो **जनद** (gonads) को प्रदर्शित करते हैं।

आन्तरिक रचना (Internal structure)—हाइड्रा द्विस्तरीय जन्तु है क्योंकि इसकी देहभित्ति कोशिकाओं के दो स्तरों की वनी होती है। इसके वाहर की ओर पारदर्शी **क्यूटिकल** (cuticle) का पतला स्तर होता है जो एक्टोडर्म के स्राव से बनता है। क्यूटिकल आधार तल पर अनुपस्थित होता है। देहभित्ति से घिरी हुई एक मध्य गुहा (central space) होती है जो आहार-नली या **एण्टेरोन** (enteron) या **आन्तर-गुहा** (coelenteron) अथवा **गेस्ट्रो-वैस्क्युलर गुहा** (gastro-vascular cavity) कहलाती है। यह गुहा मुख द्वारा वाहर को खुलती है। मुख जन्तु के सिर पर स्थित होता है। आन्तर-गुहा स्पर्शकों तथा कलिकाओं में भी पायी जाती है।

देहभित्ति की रचना (Structure of body wall)—देहभित्ति दो स्तरों की वनी होती है :—

(*i*) एक्टोडर्म (Ectoderm)

(*ii*) एण्डोडर्म (Endoderm)

दोनों स्तरों के वीच मेसोग्लिया का अत्यन्त पतला, पारदर्शी, अकोशिक तथा जैली के समान पर्त या स्तर पाया जाता है।

एक्टोडर्म या वाह्य-त्वचा (Ectoderm or Epidermis)

यह देहभित्ति का वाहरी स्तर है तथा इसका कार्य शरीर की रक्षा करना एवम् संवेदनाओं को ग्रहण करना है। एक्टोडर्म में पायी जाने वाली कोशिकाएँ निम्न प्रकार की होती हैं :—

1. एपिथीलियम-पेशी कोशिकाएँ (Epithelio-muscular cells)—ये लगभग शंक्वाकार (conical) या नाशपाती के आकार की (pear-shaped) कोशिकाएँ हैं जो एक्टोडर्म का अधिकांश भाग वनाती हैं। इनके वाहरी या दूरस्थ सिरे चौड़े तथा भीतर के अथवा समीपस्थ सिरे सँकरे या कम चौड़े होते हैं। प्रत्येक कोशिका का आन्तरिक सिरा **पेशी-पुच्छ** (*muscle tail*) के रूप में निकला रहता है। इसके भीतर **मायोनीमी** (myonemes) पाये जाते हैं। समस्त एपिथीलियल कोशिकाओं के पेशी-पुछ शरीर की लम्वाई के साथ लगे रहते हैं तथा

इनके मायोनीमीज सामूहिक रूप से लम्बवत् पेशी (longitudinal muscles) बनाते हैं। इनके सिकुड़ने से जन्तु का शरीर छोटा हो जाता है। कोशिका के लगभग मध्य में एक केन्द्रक पाया जाता है तथा इसके कोशिकाद्रव्य में रिक्तिकाएँ पायी जाती हैं।
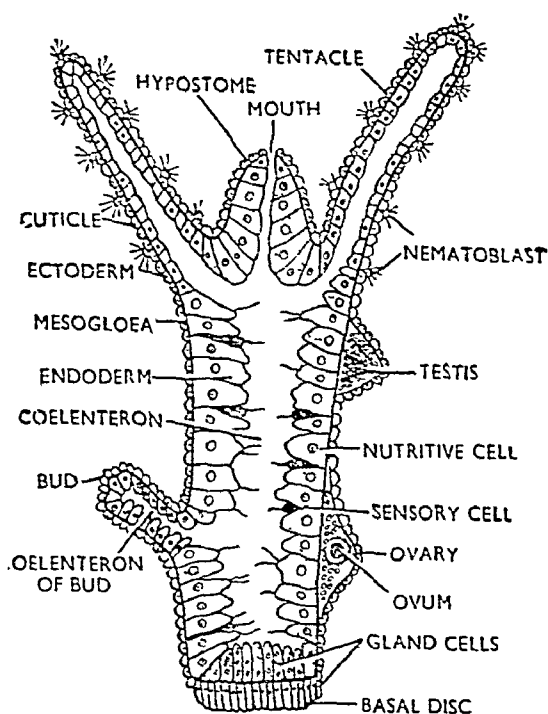
चित्र १६·२ हाइड्रा की लम्बवत् काट का चित्रीय निरूपण (L.S. *Hydra*)
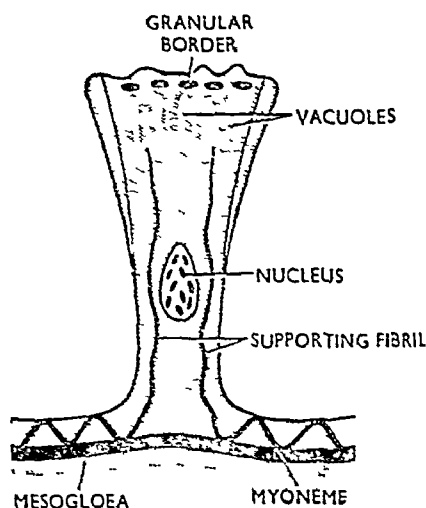
चित्र १६·३. हाइड्रा की एपिथीलियो-मस्क्युलर कोशिका (epithelio-muscular cell of *Hydra*)

2. अन्तराल कोशिकाएँ (Interstitial cells)—एपिथीलियम-पेशी कोशिकाओं के संकरे सिरे के बीच के के आन्तर-कोशिक स्थान मे अन्तराल कोशिकाएँ स्थित होती है। ये छोटी, लगभग अण्डाकार व अभिन्नित (undifferentiated) कोशिकाएँ है जो संग्रह-कोशिकाएँ भी कहलाती है। ये परिवर्तित होकर शरीर मे पायी जाने वाली अन्य प्रकार की कोशिकाओं को जन्म देती है।

3. दंश-कोशिकाएँ (Nematocysts)—दंश-कोशिकाएँ (stinging cells) विशेष प्रकार की अन्तराल कोशिकाएँ हैं जो जन्तु की आत्म-रक्षा हेतु विशेप आकार ग्रहण कर लेती हैं। इसके अतिरिक्त ये जन्तु को भोजन ग्रहण करने तथा चलन मे भी सहायता करती हैं। स्पर्शको में ये अपेक्षाकृत अधिक संख्या मे पायी जाती हैं जहाँ ये एपिथीलियल पेशी कोशिकाओं के बीच से बाहर निकली रहती हैं। शरीर के पिछले भाग मे इनका पूर्ण अभाव होता है। प्रत्येक दंश-कोशिका के मध्य मे स्थित एक नाशपाती के आकार का कोप (pyriform capsule) होता है जो हाइपोटॉक्सिन (hypotoxin) नामक विषैले द्रव से भरा रहता है। इसके चारो ओर कोशिकाद्रव्य की पतली पर्त होती है जिसमे एक बडा-सा केन्द्रक होता है। कोप (capsule) का अगला सिरा एक लम्बे तथा खोखले धागे के रूप मे निकला
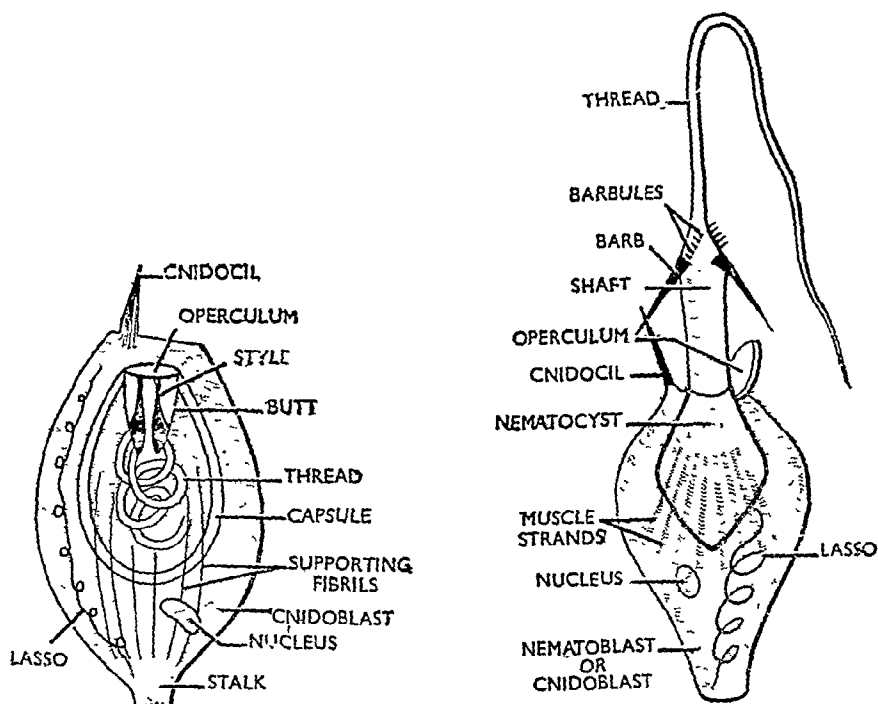
चित्र १६·४. हाइड्रा की दंश-कोशिका (nematocyst)—A. अस्खलित B. स्खलित

रहता है। विश्रामावस्था में यह कोष के भीतर मुड़ा-तुड़ा पड़ा रहता है। धागे के आधार पर तीन पुच्छ दण्ड (barbs) तथा छोटे काँटों की तीन पंक्तियाँ पायी जाती हैं। निमेटोसिस्ट का छिद्र क्लोमच्छद अथवा **ओपर्कुलम** (operculum) द्वारा ढका रहता है।

आकार तथा परिमाण के आधार पर दंश-कोशिकाएँ चार प्रकार की होती हैं :—

(*i*) **पेनीट्रेण्ट निमेटोसिस्ट** (Penetrant nematocysts)—इनका धागा लम्बा व मुड़ा होता है तथा धागे या तन्तु के आधार पर बार्ब तथा काँटे (barbs and spines) होते हैं। ये शिकार को मारकर उन्हें पकड़ने में सहायता करते हैं।

(*ii*) **वॉल्वेण्ट निमेटोसिस्ट** (Volvent nematocysts)—ये नाशपाती के आकार की दंश-कोशिकाएँ हैं जिनका धागा छोटा तथा मोटा होता है तथा इनमें केवल एक ऐंठन होती है।

(*iii*) **स्ट्रेप्टोलाइन ग्लूटिनेण्ट्स** (Streptoline glutinants)—इनका आकार वेलन के समान (cylindrical) होता है तथा धागे की लम्बाई के साथ सर्पिल पंक्तियों में काँटे लगे रहते है।

(*iv*) **स्टीरोलाइन ग्लूटिनेण्ट्स** (Steroline glutinants)—ये अण्डाकार दंश-कोशिकाएँ हैं जिनका धागा ऐंठा हुआ किन्तु चिकना होता है। यह जन्तु को आधार से चिपकने में सहायता करता है।

4. संवेदी कोशिकाएँ (Sensory cells)—ये सँकरी तथा स्तम्भाकार (columnar cells) या धागे के समान कोशिकाएँ है जिनका बाहरी स्वतन्त्र सिरा संवेदी तन्तु (sensory hair) के रूप में बाहर निकलता है तथा वातावरण से
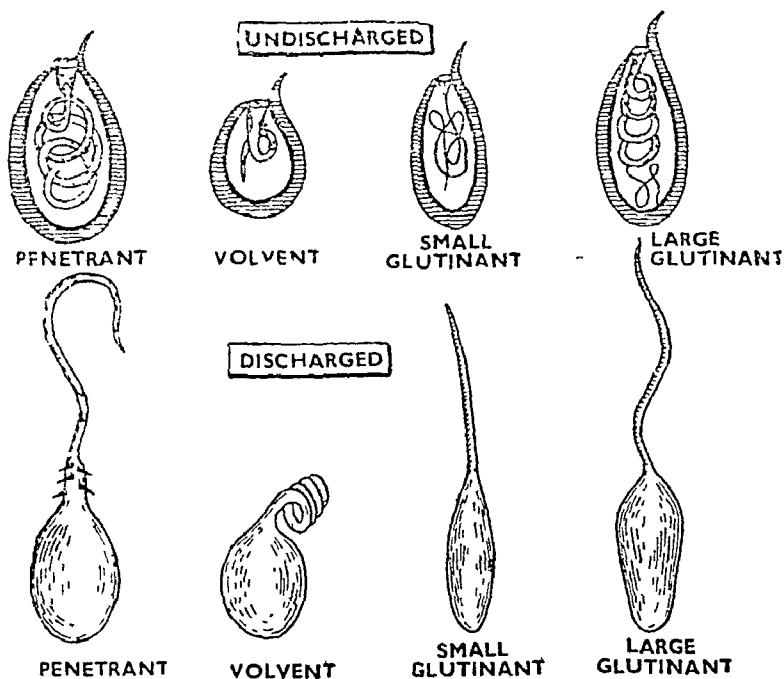
चित्र १६·५. हाइड्रा की विभिन्न प्रकार की दंश कोशिकाएँ
(*Various types of nematocysts of Hydra*)

संवेदनाएँ ग्रहण करता है। संवेदी कोशिकाएँ एपिथीलियल-पेशी कोशिकाओं के बीच समस्त एक्टोडर्म में फैली रहती है किन्तु इनकी संख्या स्पर्शकों तथा हाइपोस्टोम से अधिक होती है।

5. तन्त्रिका कोशिकाएँ (Nerve cells)—ये द्विध्रुवीय या बहुध्रुवीय कोशिकाएँ हैं जो एक्टोडर्म की अन्तराल कोशिकाओं से बनती है तथा बाद में मेसोग्लिया मे पहुँचकर एक्टोडर्म के आधार पर मेसोग्लिया में जाल-सा बना लेती है। ये संवेदी कोशिकाओं से सम्बन्धित रहती हैं तथा सभी तन्त्रिका कोशिकाएँ आपस में भी एक-दूसरे से जुड़ी रहती है। संवेदी कोशिकाओं से ग्रहण की हुई उत्तेजनाओं को ये जन्तु के शरीर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचाती है।

6. ग्रन्थि कोशिकाएँ (Gland cells)—ये जन्तु के आधार-बिम्ब (basal disc) की एक्टोडर्म में पायी जाने वाली लम्बी स्तम्भी कोशिकाएँ हैं जिनका कोशिकाद्रव्य कणिकामय (granular)
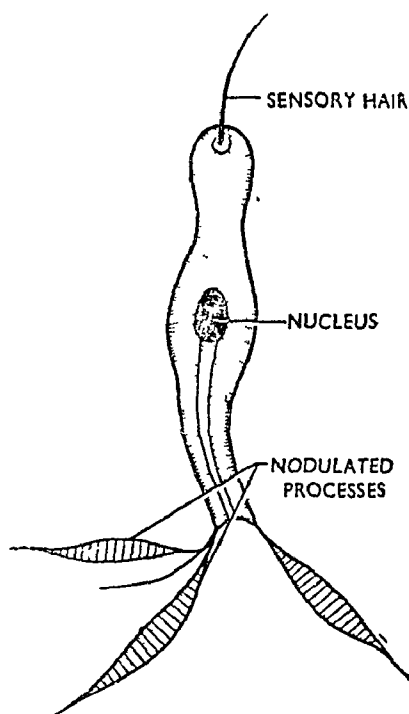
चित्र १६·६. हाइड्रा की तन्त्रिका कोशिका
(Nerve cell of *Hydra*)

होता है। ये कोशिकाएँ एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकालती हैं जिसकी सहायता से हाइड्रा आधार से चिपक सकता है। इन पर क्यूटिकल (cuticle) नहीं होता; अत: ये पादाभ बनाकर चलन में सहायता करती हैं। इनके द्वारा जन्तु ग्लाइडिंग गति द्वारा चलता है।

7. जनन कोशिकाएँ (Germ cells)—जनन कोशिकाएँ एक्टोडर्म की
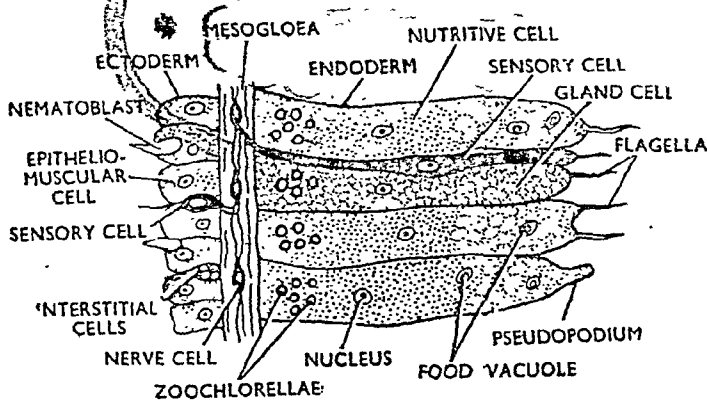
चित्र १६·७. हाइड्रा की देहभित्ति की अनुप्रस्थ काट (V.S. Body wall of *Hydra*)

अन्तराल कोशिकाओं के विभाजन से बनने वाली अस्थायी रचनाएँ हैं जो जनन-काल में एकत्रित होकर जनद (gonads) बनाती हैं जो वृषण तथा अण्डाशय बनाते हैं।

एण्डोडर्म या गैस्ट्रोडर्मिस (Endoderm or Gastrodermis)

गैस्ट्रोडर्मिस देहभित्ति का आन्तरिक स्तर है जो गैस्ट्रोवैस्क्युलर गुहा को आस्तारित करता है। यह देहभित्ति का लगभग 2/3 भाग बनाती है। इसमें निम्न प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती हैं :—

1. पोषक कोशिकाएँ या मस्क्युलो-एण्डोथीलियल कोशिकाएँ (Nutritive or musculo-endothelial cells)—पोषक कोशिकाएँ अथवा पोषक-पेशी कोशिकाएँ (nutritive muscular cells) लम्बी तथा मुग्दर के आकार की (club-shaped) कोशिकाएँ हैं जिनका अगला अथवा आधार भाग पेशी-पुच्छों (muscular processes) के रूप में निकला रहता है। इनके स्वतन्त्र दूरस्थ सिरों पर कशाभ (flagella) अथवा पादाभ पाये जाते हैं। पेशी पुच्छ में मायोनीमीज होते हैं। समस्त पोषक कोशिकाओं के मायोनीमीज मिलकर जन्तु की वर्तुल-पेशी (circular muscles) बनाते हैं। इनके कोशिकाद्रव्य में खाद्य रिक्तिकाएँ भी पायी जाती हैं।

चित्र १६·८. मस्क्युलो-एण्डोथीलियल कोशिका (Musculo-endothelial cell)

पोषक-पेशी कोशिकाएँ चलन तथा पोषण का कार्य करती हैं।

2. स्राव कोशिकाएँ (Secretory cells)—स्राव कोशिकाएँ छोटी तथा मुग्दर के आकार की (club-shaped) ग्रन्थि कोशिकाएँ हैं जिनमें पेशी-पुच्छ नहीं होते किन्तु एक या दो कशाभ पाये जाते हैं। इनका कोशिकाद्रव्य पाचक रस उत्पन्न करता है जो आन्तर-गुहा (coelenteron) में पहुँचकर भोजन को चिकना करता है और पाचन में सहायता करता है।

3. अन्तराल कोशिकाएँ (Interstitial cells)—ये पोषक-पेशी कोशिकाओं के बीच में कहीं-कहीं पायी जाती हैं। ये संख्या में बहुत कम तथा रचना एवम् कार्य में एक्टोडर्म की अन्तराल कोशिकाओं के समान होती हैं।

4. संवेदी कोशिकाएँ (Sensory cells)—इन कोशिकाओं की रचना एक्टोडर्म की संवेदी कोशिकाओं के समान होती है किन्तु उनकी अपेक्षा ये अधिक लम्बी होती हैं और आन्तर-गुहा में संवेदनाएँ ग्रहण करती है।

5. तन्त्रिका कोशिकाएँ (Nerve cells)—ये मेसोग्लिया के भीतर की सतह पर जाल-सा बनाती है।

हाइड्रा तथा ओबेलिया की संरचना की तुलना
(Comparison Between the Structure of Hydra aud Obelia)

यद्यपि हाइड्रा तथा ओबेलिया दोनों एक ही क्लास तथा एक ही आर्डर के जन्तु हैं किन्तु इनकी रचना में लिम्नलिखित अन्तर पाये जाते हैं :—

हाइड्रा (*Hydra*)	ओबेलिया (*Obelia*)
1. हाइड्रा एकचर (solitary) जन्तु है किन्तु कलिकाओ की उपस्थिति के कारण कभी-कभी शाखान्वित भी हो सकता है। तत्पश्चात् ये कलिकाएँ पैतृक शरीर से अलग होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगती हैं।	1. ओबेलिया जन्तु संघीय (colonial form) है। यह शाखान्वित पौधे के समान दिखाई देता है क्योंकि इससे निकली पार्श्व शाखाएँ अलग नही होती।
2. यह अर्ध-स्थिर (semi-sedentary) होता है तथा पौधों, पत्थरों अथवा तालाब की दीवारों इत्यादि पर अस्थायी रूप से चिपका रहता है। बहुधा यह आधार से अलग होकर पानी मे बहता हुआ भी देखा जा सकता है। आधारतल जन्तु को आधार से चिपकने में सहायता करता है।	2. यह पूर्ण स्थिर (sendentary) जन्तु है जो चट्टानों तथा समुद्री पौधों पर स्थायी रूप से चिपका रहता है। इनको आधार से चिपकाने के लिए विशेष रचनाएँ हाइड्रोराइजा (hydrorhiza) होती हैं।
3. इनमें बहुरूपता (polymorphism) नही होती। केवल पॉलिप अथवा हाइड्रेन्थ (polyp or hydranth) अवस्था होती है।	3. ये बहुरूपी जन्तु हैं जो तीन रूपों में मिलते हैं :— (अ) पॉलिप (polyp) या हाइड्रेन्थ (ब) ब्लास्टोस्टाइल (blastostyle) (स) मेड्यूसा (medusa)
4. पॉलिप के चारों ओर कोई आवरण नही होता।	4. पॉलिप एक शंक्वाकार (conical) या कलश के आकार के (vase-shaped) आवरण से ढका रहता है। यह हाइड्रोथीका (hydrotheca) कहलाता है।

हाइड्रा (*Hydra*)	ओबेलिया (*Obelia*)
5. पॉलिप लम्वा तथा वेलनाकार होता है तथा इसका आधार भाग वन्द होकर आधार-विम्व (basal disc) वनाता है जिसके द्वारा जन्तु आधार से चिपकता है।	5. पॉलिप लम्वा तथा वाइन-ग्लास (wine-glass) के आकार का होता है। इसके दोनों सिरे खुले होते हैं तथा पिछला सिरा वर्तुल पट्टी (circular shelf) द्वारा हाइड्रोकॉलस (hydrocaulus) से सम्वन्धित रहता है।
6. हाइड्रा का स्वतन्त्र दूरस्थ सिरा शंक्वाकार (conical) होता है और हाइपोस्टोम (hypostome) कहलाता है। इसमें मुख-द्वार होता है।	6. हाइपोस्टोम पॉलिप का 1/3 भाग वनाता है तथा इसके शीर्ष पर मुख स्थित होता है।
7. हाइपोस्टोम पर मुख के चारों ओर 6 से 11 तक स्पर्शक होते हैं। इनके भीतर भी आन्तरगुहा रहती है; अतः स्पर्शक खोखले होते हैं।	7. स्पर्शकों की संख्या 24 होती है तथा ये ठोस होते हैं क्योंकि इनमे आन्तर-गुहा नही होती।
8. हाइड्रा के शरीर पर वाह्य-चर्म या क्यूटिकल (cuticle) की एक पतली पारदर्शी झिल्ली सवसे वाहरी आवरण वनाती है। पेरीसार्क (perisarc) का अभाव होता है।	8. इसमें क्यूटिकल नही होती तथा सम्पूर्ण संघ एक मोटे तथा मजवूत आवरण द्वारा ढका रहता है जो पेरीसार्कल झिल्ली (perisarcal membrane) कहलाती है।
9. हाइड्रा की देहभित्ति दो स्तरों की वनी होती है। वाहरी स्तर वहिर्जन स्तर या एक्टोडर्म तथा भीतर का अन्तर्जन स्तर या एण्डोडर्म कहलाता है।	9. इसमें भी वही दो स्तर पाये जाते हैं।
10. दोनों स्तरों के वीच में अकोशिक जिलेटिन की वनी मेसोग्लिया होती है।	10. इसमें मेसोग्लिया अकोशिक होती है।
11. ऐसा नही होता।	11. पॉलिप की देहभित्ति के दोनों स्तर हाइड्रोकॉलस (hydrocaulus) की सीनोसार्क (coenosarc) के दोनों समान स्तरों से सम्वन्धित होते हैं।
12. गैस्ट्रो-वैस्क्युलर गुहा उपस्थित होती है किन्तु आधार या निचले सिरे पर वन्द होती है।	12. पॉलिप की गैस्ट्रो-वैस्क्युलर गुहा हाइड्रोकॉलस तथा हाइड्रोराइजा (hydrocaulus and hydrorhiza) की सीनोसार्क गुहा (coenosarcal cavity) से सम्वन्धित होती है।
13. एक्टोडर्म में निम्नलिखित सात प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती हैं :— (अ) एपिथीलियल कोशिकाएँ (व) अन्तराल कोशिकाएँ (स) दंश कोशिकाएँ (द) संवेदी कोशिकाएँ	13. पॉलिप के वहिर्जन स्तर में केवल पांच प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती है। इसमें ग्रन्थि कोशिकाएँ तथा जनन कोशिकाएँ नही होतीं।

हाइड्रा (*Hydra*)	ओवेलिया (*Obelia*)
(य) तन्त्रिका कोशिकाएँ (र) ग्रन्थि कोशिकाएँ (ल) जनन कोशिकाएँ	
14. पोषण तथा जनन दोनों प्रकार की क्रियायें पॉलिप द्वारा ही पूर्ण की जाती हैं। हाइड्रा में ब्लास्टोस्टाइल तथा मेड्यूसा नहीं होते।	14. ओवेलिया में पॉलिप केवल पोषक जन्तुभ (nutritive zooid) होता है जो संघ को भोजन पहुँचाता है। इसका जनन क्रियाओ से कोई सम्बन्ध नही होता। जनन के लिए इसमे ब्लास्टोस्टाइल तथा मेड्यूसा नामक रचनाएँ होती हैं।

प्रश्न 59. हाइड्रा की देहभित्ति में पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं की संरचना एवम् कार्यों का वर्णन कीजिये।

Describe the structure and functions of the various types of cells found in the body wall of *Hydra*. (*Sagar 1958, 65 ; Luck. 60 ; Delhi 62 ; B.H.U. 66 ; Nagpur 68*)

हाइड्रा की देहभित्ति का वर्णन कीजिये तथा हाइड्रा के जीवन में इण्टरस्टीशियल कोशिकाओं के महत्त्व को समझाइये।

Give an account of the body wall of *Hydra* and mention the part played by the interstitial cells in the life of *Hydra*. (*Banaras 1969*)

आपके द्वारा अध्ययन किये गये किसी सीलेन्ट्रेट के शरीर में पायी जाने वाली विभिन्न कोशिकाओं का वर्णन कीजिये।

Describe different types of cells found in the body of any coelenterate studed by you. (*Kanpur 1970*)

कृपया प्रश्न ५८ देखिये।

प्रश्न 60. दंश-कोशिका का वर्णन कीजिये। यह किस प्रकार कार्य करती है ?

Describe a nematocyst. How does it work ? (*Meerut 1967*)

दंश कोशिकाएँ (Nematocysts)

दंश-कोशिकाएँ फाइलम सीलेन्ट्रेटा के जन्तुओं में पायी जाने वाली विशेष रचनाएँ है। ये जन्तु की आत्म-रक्षा करने, भोजन ग्रहण करने तथा चलन में सहायता करती है। हाइड्रा में ये आधारतल अथवा वेसल डिस्क (basal disc) को छोड़कर शरीर की एक्टोडर्म के सभी भागों में पायी जाती है। स्पर्शकों में ये अपेक्षाकृत अधिक संख्या मे पायी जाती है जहाँ ये एपिथीलियम पेशी-कोशिकाओ के बीच से बाहर निकली रहती है।

संरचना (Structure)

प्रत्येक दंश-कोशिका एक कोष तथा तन्तु की वनी होती है जो **अन्तराल या इण्टरस्टीशियल कोशिका** से बनती है। ऐसी कोशिका को **निडोब्लास्ट** (cnidoblast) या **निमेटोब्लास्ट** (nematoblast) कहते हैं। प्रत्येक निमेटोब्लास्ट का जीवद्रव्य

इसके अन्दर दंश कोशिका का निर्माण करता है। सर्वप्रथम इण्टरस्टीशियल-कोशिका का जीवद्रव्य रिक्तिका के अन्दर कोप की भीतरी दीवार बनाता है। इसके बाद बाहरी दीवार भी बन जाती है। धागा या तन्तु भी इस बीच विकसित हो जाता है। अतः एक परिपक्व निमेटोब्लास्ट में नाशपाती के आकार का एक छोटा कोप, जिसे **दंश-कोशिका** कहते हैं, और एक लम्बा नालाकार सूत्र होते हैं। सूत्र का आधार कुछ फूला हुआ होता है जिसे कीप या **बट** (butt) कहते हैं। इसी कीपरूपी संरचना की भीतरी सतह पर तीन **पुच्छ-दण्ड** (barbs) तथा छोटे काँटों की तीन पंक्तियाँ पायी जाती हैं। सूत्र या धागा एक लम्बी नालाकार रचना है जिसका केन्द्रीय भाग खोखला होता है। यह पिचकारी या सिरिंज की तरह कार्य करता है। विश्रामावस्था में सूत्र कोप में कुण्डलित दशा में पड़ा रहता है किन्तु उद्दीपन मिलने पर बाहर निकल आता है। दंश-कोशिका का कोप **हाइपोटॉक्सिन** (hypotoxin) नामक विषैले द्रव से भरा रहता है। इसका छिद्र **क्लोमछद या छदिका** (operculum) द्वारा ढका रहता है। नीडोब्लास्ट के एक तरफ काँटे के समान एक उद्वर्ध मुक्त रूप से विस्तारित रहता है, जिसे **निडोसिल या ट्रिगर** (trigger) कहते हैं। दंश-कोशिका तथा निमेटोब्लास्ट के बीच के स्थान में कोशिकाद्रव्य होता है जिसमें एक बड़ा-सा केन्द्रक होता है। कैप्सूल या कोष की बाहरी सतह पर **कुंचनशील सूत्र** (contractile fibres) चिपके रहते हैं, जिनका एक सिरा निमेटोब्लास्ट कोशिका के जीवद्रव्य में उतराता रहता है। सूत्र दंश-कोशिकाओं के स्खलन (discharge) का नियमन करते हैं।

दंश-कोशिकाओं के रूप (Kinds of Nematocysts)

हाइड्रा में निम्न चार प्रकार की दंश-कोशिकाएँ पायी जाती हैं :—

1. पैनिट्रेण्ट दंश-कोशिकाएँ या स्टीनोटील्स (Penetrant nematocysts or stenoteles)—इस प्रकार की दंश-कोशिकाओं का कैप्सूल या कोप नाशपाती के आकार का या गोलाकार होता है। प्रत्येक दंश-कोशिका के मुख पर ओपर्कुलम या क्लोमछद होता है। बट सुदृढ़, मोटा तथा कैप्सूल के बराबर ही लम्बा होता है। सूत्र लम्बा होता है जो विश्रामावस्था में कोष के भीतर कुण्डलित दशा में पड़ा रहता है। सूत्र के आधार पर तीन बड़े शल्य या **स्टाइलेट** (stylets) तथा छोटे-छोटे काँटों की सर्पिलाकार क्रम में तीन पंक्तियाँ लगी रहती हैं। स्टाइलेट वेधन करके शिकार को पकड़े रहते हैं और सूत्र खोखला तथा नुकीला होने के कारण उसके शरीर में चुभ कर विषैले हाइपोटॉक्सिन को डाल देता है। निमैटोब्लास्ट के आधार से एक सूत्र निकलता है, जिसे **लैसो** (lasso) कहते हैं। लैसो दंश-कोशिका के स्खलन (discharge) होने पर कैप्सूल को बाहर की ओर उलट जाने से रोकता है। इस प्रकार दंश-कोशिकाएँ शत्रुओं से बचने, उन पर आक्रमण करने तथा सजीव भोजन को अचेत करने में सहायक होती हैं।

2. वॉलवेण्ट दंश-कोशिकाएँ अथवा डेस्मोनीम्स (Volvent nematocysts or desmonemes)—ये छोटी तथा नाशपाती के आकार की दंश-कोशिकाएँ हैं। इनका सूत्र छोटा, मोटा तथा नग्न होता है जो फन्दे के रूप में पड़ा रहता है। स्खलित (discharge) होने पर सूत्र शिकार के रोमों या काँटों (bristles) पर दृढ़ता से लिपटकर उनको जकड़ लेता है।

3. बड़ी ग्लूटीनेन्ट अथवा होलोट्राइकस आइसोराइजा (Large glutinants or holotrichous isorhiza)—इनका कैप्सूल लम्बा तथा अण्डाकार होता है। बट पतला तथा सूत्र लम्बा होता है जो तीन या चार वलों (coils) में कोप के अन्दर

पड़ा रहता है। सूत्र तथा वट दोनों पर छोटे-छोटे काँटे लगे रहते हैं। इनका कार्य निश्चित रूप से ज्ञात नहीं, किन्तु ये शत्रु से रक्षा तथा उस पर आक्रमण करने में काम आते हैं।
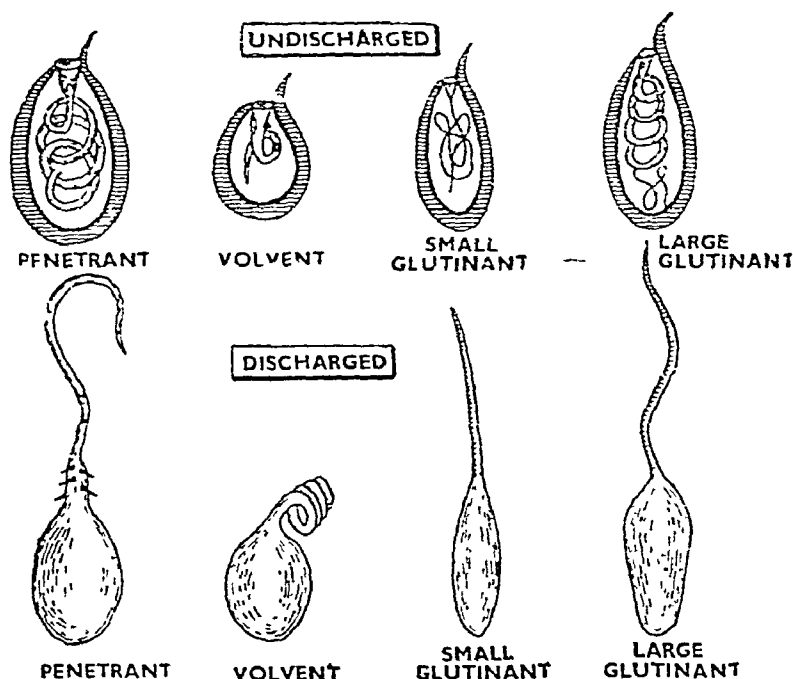
चित्र १६·६. हाइड्रा की दंश कोशिकाएँ (Nematocysts of Hydra)

4. छोटा ग्लूटीनेण्ट अथवा एट्राइकस आइसोराइजा (small glutinant or atrichous isorhiza)—ये सबसे छोटी दंश-कोशिकाएँ हैं जिनका कैप्सूल या कोष अण्डाकार तथा कुछ लम्बा होता है। इनमें वट का अभाव होता है। सूत्र लम्बा एवम् सीधा होता है तथा इस पर काँटे नहीं होते। सूत्र से एक प्रकार का श्लेष्मिक पदार्थ स्रावित होता है जो चलन में सहायक होता है।

कृपया चित्र 115 व 116 देखिये।

स्खलन (Discharge)—पानी में एसिटिक अम्ल या मिथाइल ग्रीन की थोड़ी-सी मात्रा डालने पर दंश-कोशिकाएँ फट जाती हैं। क्लोमछद या ओपर्कुलम तुरन्त एक ओर हट जाता है और सूत्र तेजी से उलटकर बाहर आता है। सर्वप्रथम सूत्र का आधार या वट और फिर बाकी का सूत्र भीतर से उलट कर बाहर आता है। सूत्र इतनी तेजी से बाहर आता है कि शत्रु या शिकार के शरीर में सुई की तरह चुभ जाता है। कुंचनशील सूत्रों के संकुचन से विषैले द्रव पर दबाव पड़ता है जो सूत्र की नाल में से होता हुआ शिकार के शरीर में चला जाता है।

स्खलन की क्रिया (Mechanism of discharge)—निडोब्लास्ट से दंश-कोशिकाओं के स्खलन (discharge) की क्रिया के बारे में दो वाद हैं :—

1. काफी समय तक यह प्रकल्पित किया जाता रहा कि निडोसिल को छूने मात्र से दंश-कोशिकाएँ फट जाती हैं। अतः निडोसिल को ट्रिगर भी कहा जाने लगा। इस प्रकार कोशिका का निडोसिल के सम्पर्क में आना प्राथमिक उद्दीपन माना

जाने लगा तथा रासायनिक उद्दीपन द्वितीयक उद्दीपन । किन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि यान्त्रिक झटकों या उद्दीपन का दंश-कोशिकाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । दंश-कोशिकाएँ निडोसिल पर केवल रासायनिक उद्दीपन के फलस्वरूप ही फटती हैं ।

उद्दीपन से कैप्सूल या कोप की पानी के लिए पारगम्यता (permeability) बढ़ जाती है जिससे और अधिक पानी अन्दर चला जाता है । अतिरिक्त पानी के अन्दर कैप्सूल में द्रव का दबाव अब इतना अधिक हो जाता है कि सम्पूर्ण कीप तथा इसके नीचे का लिपटा हुआ सूत्र सभी कैंप्सूल के बाहर बड़ी तेजी से उलट जाते हैं । तेजी से बाहर आने के कारण सूत्र शिकार अथवा शत्रु के शरीर में सुई की भाँति चुभ जाता है और साथ ही विषैला द्रव खोखले सूत्र से होता हुआ उसके शरीर में पहुँच जाता है ।

2. दूसरे वाद के अनुसार दंश-कोशिकाओं का स्खलन (discharge) कैप्सूल के चारों ओर स्थित कुंचनशील सूत्रों के सिकुड़ने से होता है । इनके सिकुड़ने से कैंप्सूल पर दबाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप सूत्र उलटकर बाहर आ जाता है ।

ऊपर के दोनों वादों का समेकन (combination) ही दंश-कोशिकाओं के स्खलन (discharge) की उचित व्याख्या करता है ।

दंश-कोशिकाएँ तन्त्रिका-तन्त्र के अधीन नहीं होतीं, क्योंकि ये स्वतन्त्र रूप से उद्दीपन ग्रहण करती हैं और फिर स्वतन्त्र रूप से इन पर इसकी प्रक्रिया होती है ।

प्रश्न 61. उचित कारण बताइये कि ग्रीन हाइड्रा को वनस्पति जगत् में क्यों नह ा जाता । इस जन्तु के ऊतकीय अवयवों का वर्णन कीजिये ।

Give good reasons why a green *Hydra* cannot be regarded as a plant. Describe the histological elements found in the animal.

(*Gorakhpur 1968 ; Vikram 65 ; Punjab 64 ; Agra 68*)

यद्यपि ग्रीन हाइड्रा हरे रंग का होता है किन्तु इसके शरीर की कोशिकाओं में क्लोरोफिल का अभाव होता है । *हाइड्रा* की दैहिक कोशिकाओं में सहजीवी रूप से रहने वाला हरा शैवाल इसकी दैहिक कोशिकाओं को हरा रंग प्रदान करता है । क्योंकि ग्रीन *हाइड्रा* की पोषण विधि प्राणिसदृश (holozoic) होती है तथा यह पौधों के समान अपना भोजन संश्लेषित नहीं करता, अतः इसे वनस्पति-जगत् में न रखकर प्राणी-जगत् के अन्तर्गत ही रखा गया है ।

हाइड्रा के ऊतकीय अवयव
(Histological Elements of Hydra)

कृपया प्रश्न 58 देखिये ।

प्रश्न 62. हाइड्रा में जनन एवम् इसके जीवन-चक्र की ओबेलिया के साथ तुलना कीजिये ।

Compare the reproduction and life-history of *Hydra* with that of *Obelia*.

(*Agra 1958, 67 ; Raj. 68 ; Allahabad 52 ; Vikram 67*)

हाइड्रा तथा ओबेलिया दोनों ही आर्डर हाइड्रोइडिया, क्लास हाइड्रोजोआ तथा फाइलम सीलेन्ट्रेटा के जन्तु हैं जिससे यह प्रदर्शित होता है कि इनकी रचना एवम् जीवन-इतिहास में बहुत-सी समानताएँ होनी चाहियें किन्तु फिर भी दोनों में बहुत-सी असमानताएँ हैं । इनके जीवन-इतिहास में निम्नलिखित अन्तर पाये जाते हैं :—

हाइड्रा तथा ओबेलिया के जनन तथा जीवन-इतिहास में भिन्नताएँ
(Differences Between the Reproduction and the Life-history of *Hydra* and *Obelia*)

हाइड्रा (*Hydra*)	ओबेलिया (*Obelia*)
(अ) जनन (Reproduction)	
1. हाइड्रा मे जनन दो विधियो द्वारा होता है— (अ) अलैंगिक (ब) लैंगिक	1. ओबेलिया मे केवल लैंगिक जनन होता है। यद्यपि पूर्ण संघ कलिकोत्पादन द्वारा अलैंगिक विधि से आकार मे बढता है।
2. अलैंगिक जनन अधिकतर कलिकोत्पादन द्वारा होता है। हाइड्रा मे विभाजन (fission) तथा पुनर्जनन की क्षमता भी होती है। कलिकाएँ कुछ समय पश्चात् पैतृक जन्तु से अलग होकर स्वतन्त्र जीवन प्रारम्भ कर देती हैं।	2. अलैंगिक जनन में कलिकोत्पादन द्वारा संघ आकार मे बढता है तथा नये जीवक (zooid) बनते हैं। ये जीवक संघ से अलग नही होते।
3. अलैंगिक जनन युग्मकों के निर्माण द्वारा होता है।	3. इसमें भी युग्मक बनते हैं।
4. पॉलिप प्रावस्था में ही हाइड्रा में जनद (gonads) बन जाते हैं। अतः पॉलिप ही जनक जीवक (reproductive zooid) का भी कार्य करता है।	4. ओबेलिया मे मेड्युसा नामक जीवक पर जनद बनते हैं।
5. हाइड्रा अधिकतर द्विलिंगी (bisexual) होते हैं किन्तु ये एकलिंगी भी होते हैं।	5. मेड्यूसा सदैव एकलिंगी होता है।
6. जनद (gonads) अस्थायी रचनाएँ हैं जो केवल शिशिर ऋतु मे बनते हैं।	6. जनद स्थायी रचनाएँ हैं।
7. जनद एक्टोडर्म की अन्तराल कोशिकाओं से बनते हैं तथा देहभित्ति से बाहर निकले रहते हैं। इनके बाहर की ओर केवल एक्टोडर्म का एक स्तर ही होता है।	7. जनद मेड्यूसा की सबअम्ब्रेलर सतह (subumbreller surface) पर बनते है तथा एक्टोडर्म व एण्डोडर्म के बीच मेसोग्लिया में स्थित रहते हैं।
8. जनदो की संख्या निश्चित नही होती।	8. एक मेड्युसा पर केवल चार जनद होते है।
9. नर जनद अथवा वृषण शरीर के अगले भाग में पाये जाते हैं तथा मादा जनद आधार के समीप शरीर के पिछले भाग मे स्थित होते हैं।	9. एक मेड्यूसा मे केवल एक ही लिंग के अर्थात् नर अथवा मादा जनद होते है तथा ये अरीय (radial) होते है।
10. जनन कोशिकाएँ अन्तराल कोशिकाओ के विभाजन से बनती हैं तथा एक साथ एकत्रित होकर जनद बनाती हैं।	10 जनन कोशिकाएँ मैन्युब्रियम की एक्टोडर्म से बनती हैं तथा वहाँ से चलकर मेसोग्लिया मे एकत्रित होती है और जनद बनाती है।
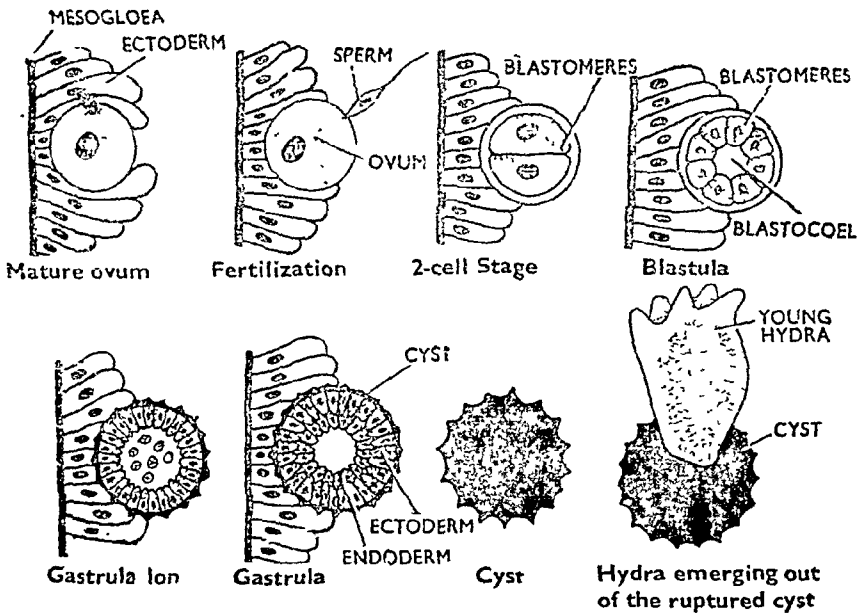
चित्र १६·१०. हाइड्रा का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Hydra*)

हाइड्रा (*Hydra*)	ओबेलिया (*Obelia*)
11. परिपक्व (mature) नर तथा मादा युग्मक पैतृक शरीर से अलग होकर पानी में नहीं आते हैं।	11. नर तथा मादा दोनों प्रकार के युग्मक पूर्ण वर्धन के पश्चात् पैतृक शरीर से अलग होकर पानी में तैरते हैं।
(ब) जीवन-इतिहास (Life-history)	
12. निषेचन वाह्य (external fertilization) होता है तथा अण्डे के पैतृक शरीर से लगे होने पर ही पूर्ण हो जाता है।	12. निषेचन वाह्य होता है तथा अण्डों के पानी में तैरते समय होता है।
13. युग्मनज (zygote) का वर्धन पैतृक शरीर में ही होता है।	13. युग्मनज का वर्धन पानी के भीतर होता है।
14. युग्मनज में विभाजन सम्पूर्ण खण्डन (holoblastic segmentation) प्रकार के तथा समान होते हैं।	14. ओवेलिया के युग्मनजों में भी सम्पूर्ण खण्डन होता है।
15. विभाजन के फलस्वरूप कोशिकाओं की ठोस गेंद के समान रचना मोरूला (morulla) बनती है। बाद में ब्लास्टोसील के बनने से आठ ब्लास्टोमीयर्स वाला ब्लास्टुला (blastula) बनता है।	15. विभाजन के फलस्वरूप ठोस मोरुला बनता है जो बाद में एकस्तरीय खोखले ब्लास्टुला में बदल जाता है।
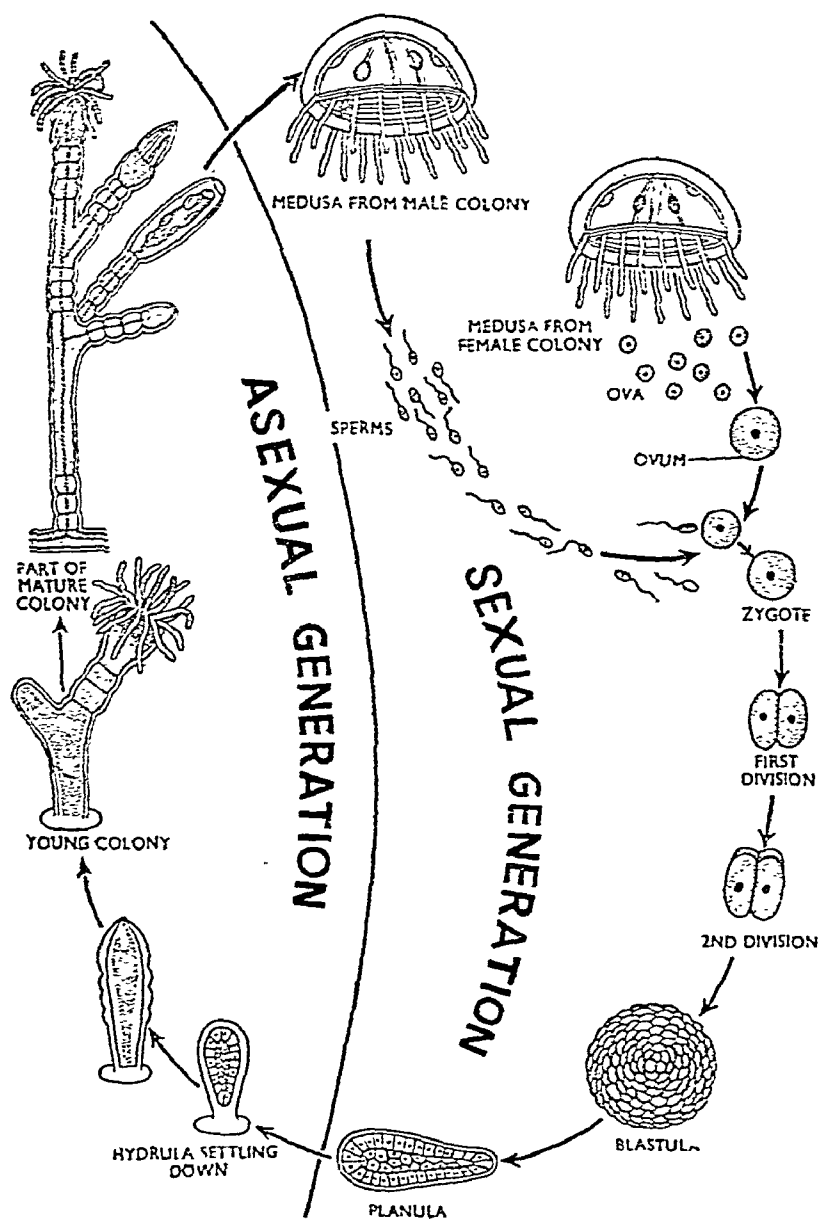
चित्र १६·११ ओबेलिया का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Obelia*)

हाइड्रा (*Hydra*)	ओबेलिया (*Obelia*)
16. डीलेमिनेशन (delamination) की क्रिया के फलस्वरूप एकस्तरीय ब्लास्टुला द्विस्तरीय गैस्ट्रूला (gastrula) में परिवर्तित हो जाता है।	16. डीलेमिनेशन की क्रिया से ब्लास्टुला एक ठोस गैस्ट्रूला में बदल जाता है।
17. गैस्ट्रूला के बहिर्जन स्तर के स्राव से भ्रूण के चारों ओर द्विस्तरीय सिस्ट बन जाता है। एक्टोसिस्ट (ectocyst) मोटा, कठोर तथा काँटेदार होता है, किन्तु एण्डोसिस्ट (endocyst) पतला तथा जिलेटिन का बना होता है।	17. गैस्ट्रूला की एक्टोडर्म कोशिकाओं पर पक्ष्म (cilia) बन जाते हैं जिससे एक अण्डाकार पक्ष्मयुक्त प्लैन्यूला लारवा (planula larva) बनता है।
18. परिकोष्टित अवस्था में भ्रूण पैतृक शरीर से अलग होकर पास की कीचड़ अथवा गीली मिट्टी में पड़ जाता है। वहाँ यह प्रसुप्तावस्था में रहता है।	18. प्लैन्यूला लारवा अण्डे से बाहर आता है तथा तैरकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता है। यह विश्राम नहीं करता।
19. बसन्त का अनुकूल वातावरण आने पर सिस्ट फट जाता है तथा छोटा-सा हाइड्रा बाहर निकलता है जो वृद्धि कर प्रौढ़ हाइड्रा बनाता है।	19. कुछ समय तक स्वतन्त्र जीवन-यापन के पश्चात् प्लैन्यूला किसी आधार से चिपक जाता है और कायान्तरण एवम् वर्धन के फलस्वरूप पूर्ण प्रौढ़ संघ बनाता है। प्लैन्यूला पहले हाइड्रूला (hydrula) बनाता है जो कलिकोत्पादन द्वारा संघ के विभिन्न जीवक बनाता है।
20. हाइड्रा के जीवन-इतिहास में जननों का एकान्तरण (alternation of generations) नहीं पाया जाता क्योंकि इसमें केवल एक ही प्रावस्था के जीवक होते हैं।	20. ओबेलिया के जीवन-इतिहास में जननों का एकान्तरण या मेटाजेनेसिस पाया जाता है क्योंकि इसमें दो स्पष्ट प्रावस्थाएँ होती हैं—अलैंगिक तथा लैंगिक। इन दोनों प्रावस्थाओं में क्रमिक एकान्तरण पाया जाता है।

प्रश्न 63. हाइड्रा और ओबेलिया के पॉलिप का तुलनात्मक विवेचन करिये।

Compare Hydra with an Obelia polyp. (*Meerut 1971*)

कृपया प्रश्न 62 देखिये।

अध्याय 17

ओबेलिया
(Obelia)

फाइलम	—	सीलेण्ट्रेटा (*Coelenterata*)
क्लास	—	हाइड्रोजोआ (*Hydrozoa*)
आर्डर	—	हाइड्रोइडिया (*Hydroidea*)
जीनस	—	ओवेलिया (*Obelia*)

प्रश्न 64. ओवेलिया मण्डल में पाये जाने वाले विभिन्न जीवकों का वर्णन करिये।

Give an account of various types of zooids found in *Obelia* colony. (*Gorakhpur 1962, 71 ; Vikram 64, 68, 72 ; Agra 67, 69, 71 ; Jiwaji 69 ; Jodhpur 65 ; Bihar 73 ; Indore 72*)

ओवेलिया को ट्राइमोर्फिक क्यों कहते हैं ? ओवेलिया मण्डल में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के जीवकों का वर्णन करिये।

Why is *Obelia* called trimorphic ? Give an account of different types of zooids found in *Obelia* colony.

(*Vikram 1969 ; Banaras 65*)

ओवेलिया के पॉलिप एवम् मेड्युसा की संरचना का वर्णन करिये।

Give an account of the structure of polyp and medusa of *Obelia*.

(*Lucknow 1966*)

बहुरूपता से आप क्या समझते हैं ? ओवेलिया मण्डल में विभिन्न प्रकार के जीवकों का वर्णन करिये।

What do you understand by polymorphism ? Describe the various types of zooids found in the *Obelia* colony. (*Jiwaji 1973*)

ओवेलिया उन सामान्य सीलेन्ट्रेट्स में से एक है जो प्रारूपिक हाइड्रॉइड संरचना (hydroid organization) प्रदर्शित करते है। यह अधोस्तर पर सफेद फर के समान (fur-like) आवरण बनाता है तथा उथले समुद्री पानी में चट्टानों एवम् अन्य पदार्थों पर चिपका हुआ मिलता है।

ओवेलिया एक मण्डलीय जन्तु है जिसमें एक खोखला मुख्य तना (main stem) विरोहक या स्टोलन (stolon) अथवा हाइड्रोराइजा होता है जो आधार के समानान्तर फैला रहता है तथा इससे जुड़ा होता है। निश्चित दूरी पर हाइड्रोराइजा में पतली ऊर्ध्व शाखाएँ (vertical branches) निकली रहती है। ये हाइड्रोकॉलाई (hydrocauli) कहलाती है। प्रत्येक हाइड्रोकॉलस (hydrocaulus) में एकान्तरित रूप में पार्श्व शाखाएँ निकलती है। इन शाखाओं से पुनः इसी क्रम मे द्वितीयक शाखाएँ भी निकली हो सकती है। इनके आधार पर छल्ले के समान रचनाएँ होती है तथा इनका स्वतन्त्र दूरस्थ सिरा चौड़ा होकर हाइड्रा के समान **पॉलिप**

या हाइड्रेन्थ (polyp or hydranth) बनाता है। हाइड्रेन्थ के कक्ष (axil) में ब्लास्टोस्टाइल (blastostyle) नामक रचनाएँ पायी जाती हैं। प्रत्येक ब्लास्टोस्टाइल पर घण्टी के आकार की (bell-shaped) मेड्यूसा नलिकाएँ (medusa buds) लगी होती हैं। हाइड्रेन्थ, मेड्यूसा तथा ब्लास्टोस्टाइल मण्डल में पाये जाने वाले विभिन्न आकार तथा प्रकार के जीवक हैं जो विभिन्न कार्यों के अनुसार आकार में परिवर्तित हो गये हैं तथा प्रत्येक जन्तु जीवक (zooid) कहलाता है। अतः ओवेलिया में तीन प्रकार के जीवक पाये जाते हैं :—

1. पोषक या जीवक पॉलिप या हाइड्रेन्थ (polyp or hydranth),

2. जनक जीवक (reproductive zooids) या ब्लास्टोस्टाइल अथवा गोनैन्जिया (blastostyle or gonangia),

3. लैंगिक जीवक (sexual zooids) या मेड्यूसा (medusa)।

तीन प्रकार के जीवकों की उपस्थिति के कारण ओवेलिया मंडल ट्राइमॉर्फिक (trimorphic : *tri*, three ; *morph*, form) होता है ; अतः यह बहुरूपी जन्तु (polymorphic animal) है।
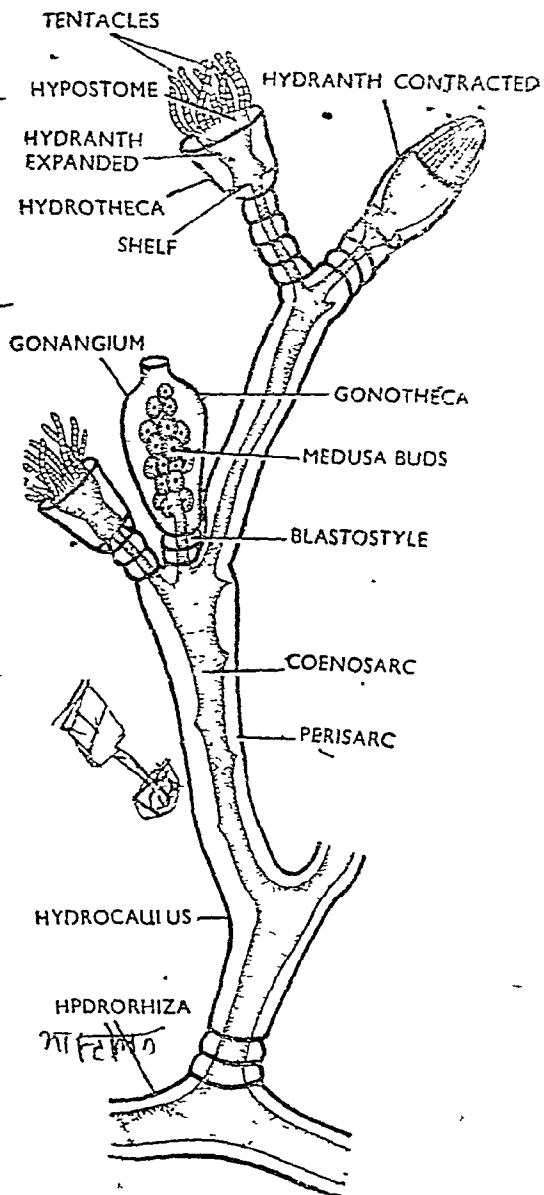
चित्र १७·१. ओवेलिया मण्डल का एक भाग (Portion of a colony of *Obelia*)

पॉलिप या हाइड्रेन्थ (Polyp or Hydranth)

ओवेलिया के पोषक जीवक (nutritive zooid) या हाइड्रेन्थ हाइड्रोकोलाई या उनकी शाखाओं के स्वतन्त्र सिरों से जुड़े रहते हैं।

आकार तथा परिमाण—प्रत्येक पॉलिप या हाइड्रेन्थ एक वेलनाकार शंकु के

आकार अथवा बर्तन के आकार के खोखले थैले के समान रचना है जो दोनों सिरों पर खुला होता है। यह हल्के पीले रंग का होता है। यह छोटे-से हाइड्रा के समान होता है।

संरचना—हाइड्रेन्थ के शरीर को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. वृन्त (Stalk)—हाइड्रेन्थ का आधार भाग खोखले वृन्त के रूप में होता है तथा हाइड्रोकोलस से जुड़ा रहता है।

2. हाइपोस्टोम (Hypostome)—शरीर का अगला या दूरस्थ 1/3 भाग शंक्वाकार होता है तथा **हाइपोस्टोम, ओरल कोन** अथवा **मैनुब्रियम** (hypostome, oral cone or manubrium) कहलाता है। इसके शीर्ष पर एक छिद्र-मुख होता है। छिद्र-मुख को छोटा अथवा बड़ा किया जा सकता है। मुख को घेरे हुए 28 **स्पर्शकों** का एक चक्र अथवा घेरा होता है। प्रत्येक स्पर्शक लम्बा, ठोस तथा फिलिफॉर्म (filliform) होता है। मुख भीतर की ओर हाइड्रेन्थ की एक चौड़ी मध्य गुहा में खुलता है। यह गुहा **गैस्ट्रोवैस्क्युलर गुहा** (gastrovascular cavity)

जीवक
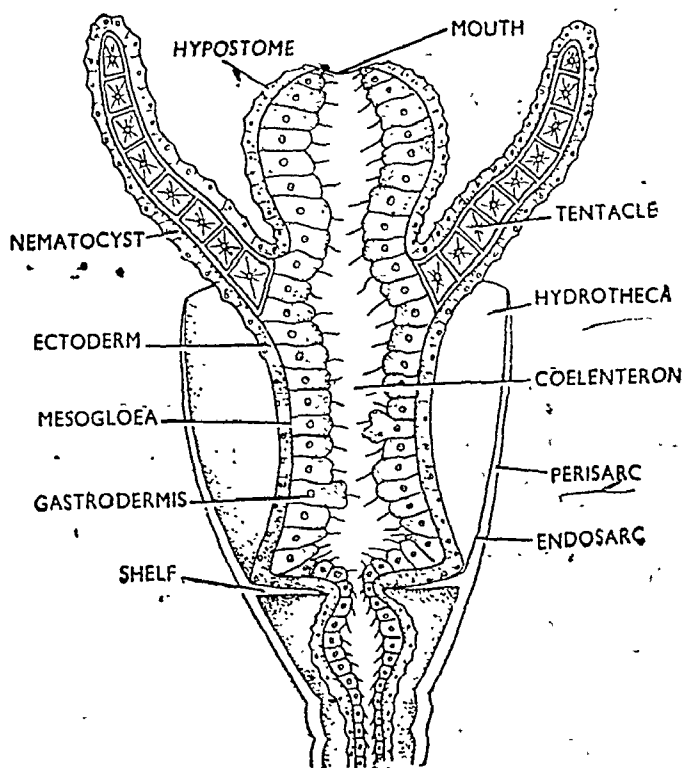
चित्र १७·२. ओबेलिया के हाइड्रेन्थ की खड़ी काट
(L.S. Hydranth of *Obelia*)

अथवा **आन्तर गुहा** (coelenteron) कहलाती है। यह हाइड्रोकोलस की सीनोसार्क गुहा से सम्बन्धित होती है।

औतिकी (Histology)

हाइड्रेन्थ की देहभित्ति दो स्तरों की बनी होती है :—

1. वाह्य वहिर्जन स्तर या एक्टोडर्म (Ectoderm),
2. भीतर का अन्तर्जन स्तर या एण्डोडर्म (Endoderm)।

मुख के समीप दोनों स्तर एक-दूसरे से मिल जाते हैं तथा शरीर के शेष भाग में अकोशीय, जिलेटिन की वनी मेसोग्लिया द्वारा अलग रहते है। पॉलिप के चारों ओर एक पतला रक्षात्मक आवरण पेरिसार्क (perisarc) होता है। पेरिसार्क फैलकर एक पारदर्शी शंक्वाकार प्याले के समान रचना वना लेता है जो हाइड्रोथीका (hydrotheca) कहलाता है। हाइड्रेन्थ के आधार पर हाइड्रोथीका भीतर की ओर क्षैतिज पट्टि (horizontal shelf) वनाता है। यह पॉलिप के लिए प्लेटफॉर्म वनाता है जिस पर पॉलिप स्थिर रहता है। क्षैतिज पट्टि सिकुड़कर पॉलिप को सीनोसार्क के भीतर जाने से रोकती है।

हाइड्रेन्थ पोपक जीवक (feeding or nutritive zooids) हैं जिनका मुख्य कार्य मण्डल को पोपित करना है। ये मांसभक्षी (carnivorous) जीवक हैं जो पानी में पाये जाने वाले सूक्ष्म जन्तुओं को खाते है। भोजन स्पर्शकों द्वारा पकड़ा जाता है तथा मुख द्वारा आन्त्र-गुहा या आन्तर-गुहा में पहुँचता है जहाँ इसका पाचन होता है। अपच भोजन मुख द्वारा वाहर निकाल दिया जाता है।

ब्लास्टोस्टाइल या गोनेन्जिया (Blastostyle or Gonangia)

ब्लास्टोस्टाइल विशेप वेलनाकार जीवक है जो अलैंगिक जनन के लिए विशेप आकार ग्रहण कर लेते है। ये हाइड्रोराइजा तथा पॉलिप के वीच के कक्ष में स्थित होते हैं। प्रत्येक ब्लास्टोस्टाइल एक सँकरी, लम्वी तथा खोखली नली के रूप में
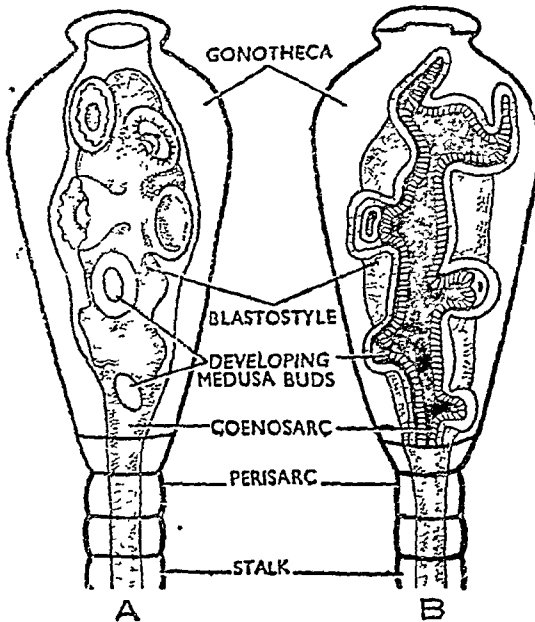
चित्र १७·३. ओवेलिया का ब्लास्टोस्टाइल (Blastostyle of *Obelia*)
A. सम्पूर्ण (Entire) B. उदग्र काट में (In V.L. Section)

होता है जिसकी देहभित्ति दोहरी दीवार की बनी होती है तथा इसके मध्य में एक खोखला स्थान होता है जो आन्तर-गुहा या गैस्ट्रोवैस्क्युलर गुहा कहलाता है। आन्तर-गुहा बहुत छोटी तथा प्रारम्भिक अवस्था में होती है तथा बाहर को नहीं खुलती। इसका दूरस्थ स्वतन्त्र सिरा एक चपटी पट्टी (flattened disc) द्वारा बन्द होता है। मुख तथा स्पर्शक अनुपस्थित होते हैं; अतः यह भोजन ग्रहण नहीं करता। प्रत्येक ब्लास्टोस्टाइल के चारों ओर एक ढीला व शीशे के समान पारदर्शी पेरिसार्क का आवरण होता है। यह **गोनोथीका** (gonotheca) कहलाता है।

ब्लास्टोस्टाइल अलैंगिक जनन द्वारा बहुत-सी तश्तरी के आकार की (saucer-shaped) रचनाएँ बनाता है जो वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में मध्य डण्डी (central rod) पर लगी रहती हैं। ये **मेड्यूसा कलिकाएँ** (medusa buds) कहलाती हैं। ये ब्लास्टोस्टाइल की दीवार से छोटी-सी कलिका अथवा उभार के रूप में बनना प्रारम्भ करती हैं। पूर्ण वर्धन के पश्चात् मेड्यूसा अक्ष से अलग होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती हैं।

मेड्यूसा अथवा लैंगिक जीवक (Medusae or Sexual Zooids)

मेड्यूसा ओबेलिया मण्डल के लैंगिक जीवक हैं। ये तश्तरी के आकार की (saucer-shaped) रचनाएँ हैं जो ब्लास्टोस्टाइल के अक्ष से जुड़ी रहती हैं। बसन्त तथा ग्रीष्म में ये ब्लास्टोस्टाइल के सीनोसार्क से खोखली कलिकाओं के रूप में निकलती हैं। पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने पर इनका व्यास (diameter) लगभग 1/4″ होता है।

प्रत्येक मेड्यूसा तश्तरी के आकार की (saucer-shaped) अथवा घण्टी के आकार की (bell-shaped) रचना है जिसकी बाहरी सतह उत्तल (convex) तथा भीतर की अवतल (concave) होती है। इसकी उत्तल सतह exumbreller
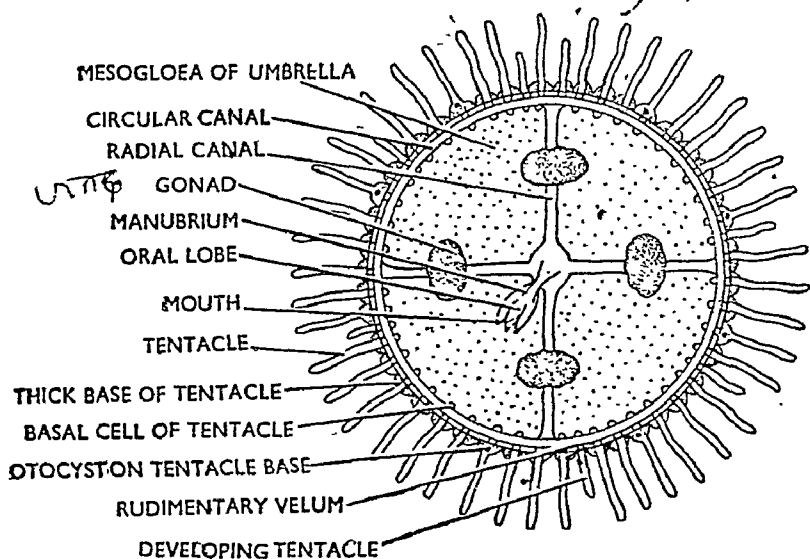
चित्र १७·४. ओबेलिया के मेड्यूसा का ओरल दृश्य (Oral view of medusa of *Obelia*)

surface तथा अवतल सतह subumbreller surface कहलाती है। सबअम्ब्रेलर सतह के मध्य से एक छोटी, खोखली रचना **मैनुब्रियम** (manubrium) लगी होती

है। इसके दूरस्थ स्वतन्त्र सिरे पर एक चौकोर मुख होता है। अम्ब्रेला का स्वतन्त्र किनारा भीतर की ओर एक पतली पर्त्त के रूप में उभरा रहता है तथा **वीलम** (velum) कहलाता है। यह प्रारम्भिक अवस्था (rudimentary condition) में होता है। वीलम के किनारे से बहुत-से छोटे, ठोस तथा अत्यन्त लचीले **स्पर्शक** लगे होते हैं। प्रारम्भ में इन स्पर्शकों की संख्या 16 होती है किन्तु बाद में मेड्यूसा की आयु के साथ इनकी संख्या बढ़ती जाती है। प्रारम्भिक 16 स्पर्शकों का विन्यास निश्चित होता है। इनमें से चार स्पर्शक **पर-रेडियल** (perradial) होते हैं जो चारों रेडियल नालों के साथ लगे रहते हैं। चार स्पर्शक **इन्टर-रेडियल** (inter-radial) होते है जो पर-रेडियल स्पर्शकों के बीच स्थित होते हैं तथा शेष आठ स्पर्शक **एड्रेडियल** (adradial) होते है जो प्रत्येक पर-रेडियल तथा इण्टर-रेडियल स्पर्शकों के बीच स्थित होते हैं। सभी आठ एड्रेडियल स्पर्शकों के आधार फूलकर द्रव से भरे हुए थैले के समान रचना बनाते है। ये **स्टेटोसिस्ट** (statocyst) कहलाते है। ये संवेदी अंग है तथा इनकी खोखली गुहा में $CaCO_3$ के कण पाये जाते हैं। ये कण लिथोसिस्ट (lithocyst) या **स्टेटोलिथ** (statoliths) कहलाते हैं। सभी 16 स्पर्शकों के आधार अन्तराल कोशिकाओं के एकत्रित होने से फूलकर बल्ब के समान हो जाते है।

मैनुब्रियम पर स्थित मुख भीतर की ओर जठर-गुहा या आमाशय (gastric cavity or stomach) में खुलता है। यह मैनुब्रियम तथा अम्ब्रेला के मध्य भाग में स्थित होता है। आमाशय से चार सँकरी अरीय नाल (radial canals) निकलती हैं। ये एक-दूसरे के लम्बरूप स्थित होती हैं तथा अम्ब्रेला के किनारों की ओर बढ़ती है और वर्तुल नाल (circular canal) में खुलती है। वर्तुल नाल अम्ब्रेला
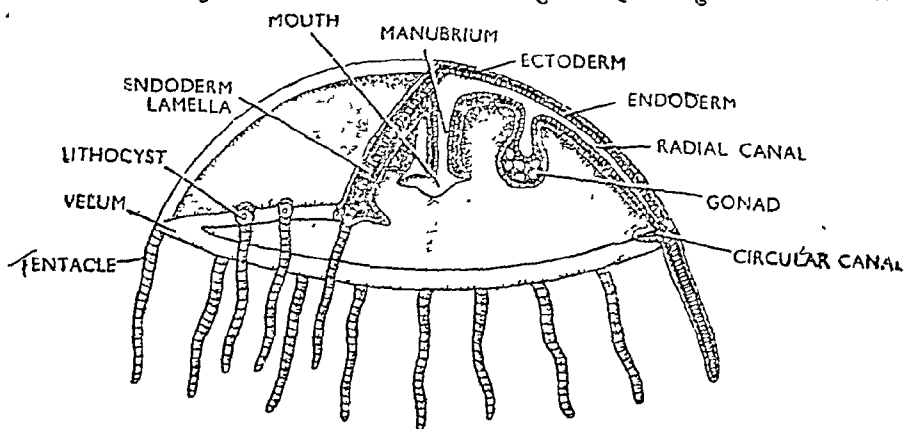
चित्र १७·५. ओबेलिया के मेड्यूसा का सेक्शन (Section of medusa of *Obelia*)

के किनारों के साथ-साथ फैली होती है। लैंगिक रूप से परिपक्व मेड्यूसा में जनद के चार समूह होते हैं जो मेड्यूसा की सब-अम्ब्रेलर सतह पर स्थित होते है तथा चारों अरीय नालों (radial canals) के बीच स्थित होते हैं। मेड्यूसा एकलिंगी होते है। एक मेड्यूसा में केवल वृषण या अण्डप ही पाये जाते है।

मेड्यूसा भी द्विस्तरीय जीवक है। इसमें एक्टोडर्म, एण्डोडर्म तथा मेसोग्लिया के स्तर होते हैं। मेसोग्लिया अकोशीय है। अम्ब्रेला की दोनों सतह एक्टोडर्म की

बनी होती हैं तथा एण्डोडर्म केवल जठर-गुहा, अरीय नाल तथा वर्तुल नाल को आस्तरित करती है। यह सब-अम्ब्रेलर तथा एक्स-अम्ब्रेलर सतह की एक्टोडर्म तथा रेडियल नाल के बीच एण्डोडर्म लैमिला (endoderm lamella) बनाती है। वीलम एक्टोडर्म का दुहरा स्तर है जिनके बीच मेसोग्लिया होती है।

प्रश्न 65. ओबेलिया के मेड्यूसा की संरचना, वर्धन एवम् कार्यों का वर्णन कीजिये।

Describe the structure, development and function of a medusa of *Obelia*. (*Banaras 1969*)

कृपया प्रश्न 64 देखिये।

प्रश्न 66. ओबेलिया के जीवन-चक्र का सचित्र वर्णन कीजिये।

Give an illustrated account of the life-history of *Obelia*.
(*Agra 1957, 60, 62 ; Magadh 63 ; Bhagalpur 63 ; Meerut 68 ; Vikram 68 ; Allahabad 58, 65*)

ओबेलिया के जीवन-चक्र का वर्णन करिये तथा "जननों का एकान्तरण" का तात्पर्य समझाइये।

Describe the life-history of *Obelia* and explain what is meant by alternation of generations. (*Rajasthan 1953 ; Lucknow 66*)

जन्तुओं में जननों के एकान्तरण से आप क्या समझते हैं ? ओबेलिया के जीवन-चक्र से अपने उत्तर की पुष्टि कीजिये।

What do you understand by alternation of generation in animals ? Explain it with reference to the life-history of *Obelia*.
(*Agra 1955 ; Tribhuvan 63 ; Punjab 62, 71 ; Allahabad 58 ; Jabalpur 70 ; Gorakhpur 59, 63 ; Vikram 63 ; Lucknow 54 ; Jiwaji 73*)

ओबेलिया के जीवन-चक्र का हवाला देते हुए मेटाजेनेसिस को समझाइये।

Explain what is meant by metagenesis by reference to life-history of *Obelia*. (*Punjab 1967*)

ओबेलिया में जननों के एकान्तरण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये एवम् इसके महत्त्व को स्पष्ट कीजिये।

Describe the phenomenon of alternation of generations in *Obelia* and explain its significance. (*Lucknow 1959, 64 ; Agra 72*)

ओबेलिया का जीवन-इतिहास
(Life-history of Obelia)

ओबेलिया में अलैंगिक जनन कलिकोत्पादन द्वारा होता है जिसके फलस्वरूप हाइड्रैन्थ तथा ब्लास्टोस्टाइल बनते हैं। ये अलैंगिक पीढ़ी (asexual generation) को प्रदर्शित करते हैं। ब्लास्टोस्टाइल पर मेड्यूसी (medusae) लगते हैं जो *ओबेलिया* के लैंगिक जीवक (sexual zooids) कहलाते हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक पर चार समूहों में जनद पाये जाते हैं। एक मेड्यूसा में पाये जाने वाले सभी जनद एक ही लिंग (sex) के होते हैं।

जनद (Gonads)—जनद सब-अम्ब्रेलर सतह (sub-umbrellar surface) पर पर-रेडियल (per-radial) स्थिति में होते हैं। प्रत्येक जनद अण्डाकार (oval) रचना है जो एक्टोडर्म तथा एण्डोडर्म स्तरों के बीच मेसोग्लिया में स्थित अभिन्नित

अन्तराल कोशिकाओं (undifferentiated interstitial cells) का समूह होता है। जनद के ऊपर की एक्टोडर्म सब-अम्ब्रेलर सतह की एक्टोडर्म से तथा एण्डोडर्म रेडियल नाल (radial canal) की एण्डोडर्मल स्तर से सम्बन्धित होती है। जनद की अन्तराल कोशिकाएँ मादा मेड्यूसा में अण्डाणु तथा नर मेड्यूसा में शुक्राणु (sperms) बनाती हैं। ये मैनुब्रियम की एक्टोडर्म कोशिकाओं से बनती हैं। युग्मकों के परिपक्व होने पर जनद के ऊपर की एक्टोडर्म फट जाती है तथा युग्मकों को समुद्र के पानी में स्वतन्त्र कर देती है।

निषेचन (Fertilization)—*ओबेलिया* में सदैव cross-fertilization होता है। अण्डों का निषेचन या तो मादा मेड्यूसा के शरीर में अथवा समुद्री पानी में होता है। शुक्राणु अण्डे के समीप पानी की धारा के साथ बहते चले आते हैं।

वर्धन (Development)—युग्मनज बराबर तथा पूर्ण विभाजनों (holoblastic and complete divisions) द्वारा बार-बार विभाजित होता है तथा **ब्लास्टुला** (blastula) बना लेता है। ब्लास्टुला खोखला होता है तथा इसकी गुहा ब्लास्टोसील (blastocoel) कहलाती है। यह कोशिकाओं के स्तर से घिरी रहती है। शीघ्र ही ब्लास्टुला की दीवार से कोशिकाएँ अलग होकर ब्लास्टोसील में एकत्रित होना आरम्भ कर देती हैं जिससे यह गुहा पूर्णतया भर जाती है; अतः डीलेमिनेशन (delamination) तथा एक्टोडर्म कोशिकाओं के बहुध्रुवीय आप्रवसन (multipolar immigration of ectodermal cells) के फलस्वरूप एक ठोस **गैस्ट्रूला** (solid gastrula) बनता है। गैस्ट्रूला का बाहरी कोशिका स्तर (outer cellular layer) प्रौढ़ जन्तु की एक्टोडर्म बनाता है तथा इसका आन्तरिक कोशिका स्तर (inner cellular layer) प्रौढ़ जन्तु की एक्टोडर्म बनाता है। इसके कुछ समय पश्चात् ही एक्टोडर्म की कोशिकाओं पर पक्ष्म (cilia) आ जाते हैं। साथ ही एण्डोडर्म की स्तर में डीलेमीनेशन से आन्त्र-गुहा (coelenteron) भी बन जाती है। इस अवस्था में गैस्ट्रूला का नाम **प्लैन्यूला लारवा** (planula larva) रख दिया जाता है। यह भ्रूण कोष (brood pouch) को तोड़कर बाहर निकल आता है और स्वतन्त्रतापूर्वक तैरकर जीवन व्यतीत करता है।

रूपान्तरण (Metamorphosis)—कुछ समय तक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के पश्चात् प्लैन्यूला किसी ठोस आधार से चिपक जाता है और उसमें रूपान्तरण (metamorphosis) प्रारम्भ हो जाता है। इसका अगला सिरा (anterior end) **आधार डिस्क** (basal disc) बनाता है जिससे जन्तु आधार से चिपका रहता है तथा पिछला सिरा **मैनुब्रियम** (manubrium) बनाता है। मैनुब्रियम के स्वतन्त्र सिरे पर मुख (mouth) बन जाता है जिसके चारों ओर स्पर्शकों का एक घेरा होता है। इस प्रकार एक सरल पॉलिप के समान रचना बन जाती है जो हाइड्रूला अवस्था (hydrula stage) कहलाती है। हाइड्रूला का आधार भाग लम्बा होकर हाइड्रोराइजा (hydrorhiza) बनाता है जिससे ऊर्ध्व तथा पार्श्व शाखाएँ (vertical and lateral branches) निकलकर प्रौढ़ ओबेलिया मण्डल का निर्माण करती हैं। पुनः इस मण्डल के ब्लास्टोस्टाइल्स पर मेड्यूसा कलिकाएँ (medusa buds) बनकर लैंगिक पीढ़ी प्रारम्भ करती हैं।

ओबेलिया के समान स्थिर जन्तुओं में स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने वाला मेड्यूसा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह उनको दूर-दूर तक फैलाने में सहायता करता है
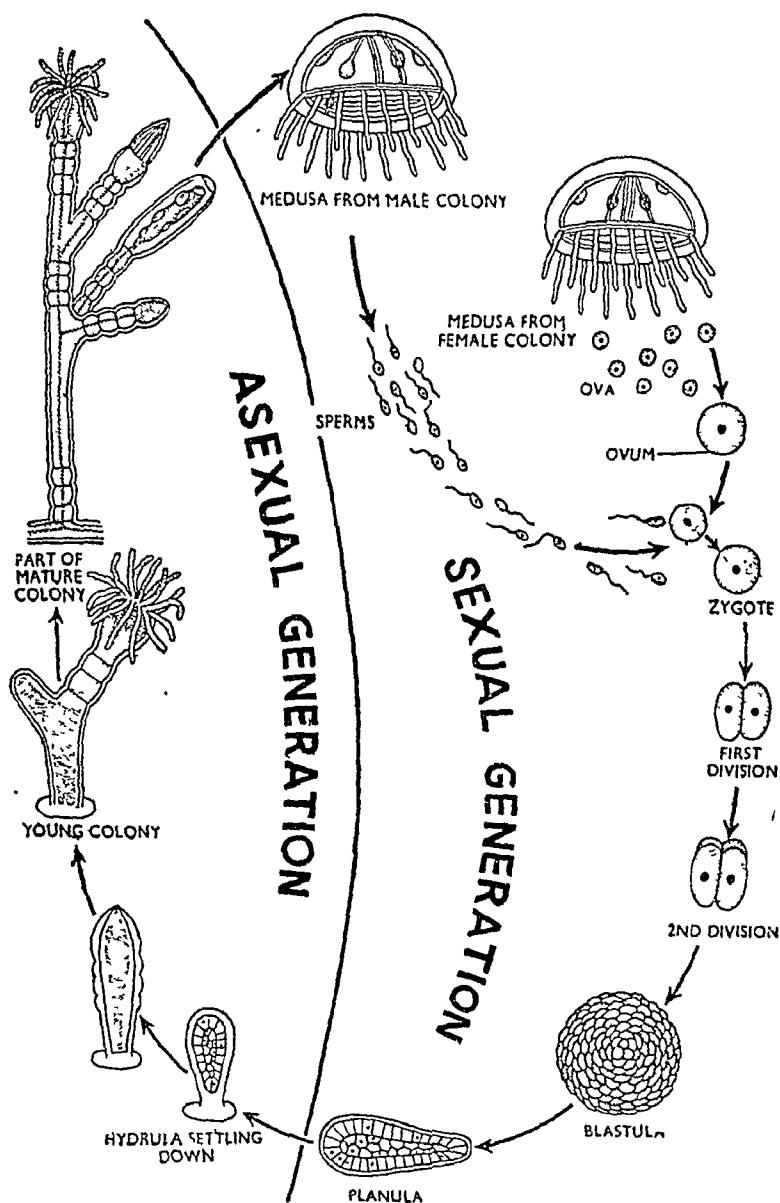
चित्र १७·६. ओवेलिया का जीवन-चक्र (Life-history of *Obelia*)

जिससे उन्हें अधिक सुविधाएं प्राप्त हो सकें।

जननों का एकान्तरण या मेटाजेनेसिस
(Alternation of Generations or Metagenesis)

कुछ जन्तुओं के जीवन-इतिहास में यह देखा गया है कि उसमें लैंगिक तथा अलैंगिक पीढियों का एकान्तरण (alternation) होता है अर्थात् प्रत्येक लैंगिक पीढ़ी के पश्चात् अलैंगिक पीढ़ी आती है। लैंगिक पीढ़ी के जन्तुओं में जनद (gonads)

बनते हैं जिनमें युग्मकों (gametes) का निर्माण होता है। ये लैंगिक जन्तु पैतृक शरीर से अलैंगिक विधि द्वारा बनते हैं ; अतः अलैंगिक पीढ़ी के जन्तुओं में जनद (gonads) नहीं होते और अलैंगिक जन्तु वर्धन द्वारा लैंगिक जन्तुओं को जन्म देते हैं। लैंगिक तथा अलैंगिक पीढ़ियों के इस एकान्तरण को मेटाजेनेसिस (metagenesis) कहते हैं।

ओबेलिया मण्डल का जीवन-इतिहास जननों के एकान्तरण या मेटाजेनेसिस का एक अच्छा उदाहरण है क्योंकि इसमें सदैव लैंगिक तथा अलैंगिक पीढ़ियों का नियमित एकान्तरण (regular alternation) होता है। *ओबेलिया* के हाइड्रॉइड मण्डल (hydroid colony of *Obelia*) पर जनद नहीं होते तथा यह कलिकोत्पादन द्वारा अलैंगिक विधि से पॉलिप तथा ब्लास्टोस्टाइल बनाता है और मण्डल की वृद्धि करता है। ब्लास्टोस्टाइल से भी अलैंगिक विधि से मेड्यूसा नामक कलिकाएँ (medusoid buds) बनती हैं। मेड्यूसा पर जनद बनते हैं जिनमें युग्मकों का निर्माण होता है ; अतः ये लैंगिक जन्तु हैं। युग्मकों के संयुग्मन से युग्मनज (zygote) बनता है जो पुनः अलैंगिक वर्धन द्वारा ओबेलिया मण्डल का निर्माण करता है। अतः *ओबेलिया* में अलैंगिक हाइड्राइड (asexual hydroid) तथा लैंगिक मेड्यूसाइड (sexual medusoid) जीवकों का एकान्तरण होता है।

किन्तु ओबेलिया मण्डल के जीवकों में पाया जाने वाला जननों का एकान्तरण वास्तविक (true) तथा प्रारूपिक (typical) नहीं है क्योंकि इसमें अगुणित (haploid) तथा द्विगुणित (diploid) पीढ़ियों का एकान्तरण नहीं होता। वास्तविक रूप से जननों के एकान्तरण में एक द्विगुणित (diploid) तथा एक अगुणित (haploid) पीढ़ियों में एकान्तरण होता है। *ओबेलिया* में केवल युग्मक ही अगुणित होते हैं तथा जनद ग्रहण किये हुए लैंगिक मेड्यूसाइड एवम् अलैंगिक हाइड्रॉइड दोनों ही जीवक द्विगुणित होते हैं। जननों के एकान्तरण की एक विशेषता यह भी है कि लैंगिक प्रावस्था का जीवक केवल एक ही कोशिका से बनता है जिसमें क्रोमोसोम्स की संख्या अगुणित होती है किन्तु *ओबेलिया* में लैंगिक मेड्यूसायड द्विगुणित हाइड्रॉइड से बनता है न कि केवल एक कोशिका से। अतः वास्तव में *ओबेलिया* में जननों का एकान्तरण नहीं पाया जाता। इसके लैंगिक मेड्यूसायड जीवक जनन के लिए विशेष रूप से रूपान्तरित जीवक (specially modified zooids for reproduction) हैं जिन पर जनद पाये जाते हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक तैर सकते हैं जिससे कि युग्मक एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकें। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि *ओबेलिया* के जीवन-इतिहास में लैंगिक तथा अलैंगिक पीढ़ियाँ स्पष्ट नहीं होतीं बल्कि इनमें केवल एक ही पीढी होती है जिसमें स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने वाली मेड्यूसा प्रावस्था के कारण लैंगिक प्रजनन कुछ देर से होता है।

प्रश्न 67. ओबेलिया निवह की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये।

Describe in detail the structure of *Obelia* colony and give an account of its life-history. (*Aligarh 1958, 65, 61; Jiwaji 71*)

ओबेलिया निवह की रचना
(Structure of Obelia Colony)

कृपया प्रश्न 60 देखिये।

ओबेलिया का जीवन-इतिहास
(Life history of Obelia)

कृपया प्रश्न 66 देखिये ।

प्रश्न 68. पॉलिप एवम् मेड्यूसा की संरचना की तुलना कीजिये एवम् उनके वैकासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिये ।

Compare the structure of polyp and medusa, and add a note on their evolutionary significance. *(Poona 1965 ; Luck. 58)*

ओबेलिया के हाइड्रैन्थ के आकार एवम् संरचना का वर्णन कीजिये । मेड्यूसा के साथ इसकी तुलना कीजिये तथा समझाइये कि पॉलिप से मेड्यूसा किस प्रकार बनता है ।

Describe the form and structure of a hydranth in *Obelia*. Compare it with a medusa. How can the latter be derived from the former ? *(Punjab 1964, 69 ; Agra 55 ; Kanpur 72 ; Rewa 72)*

हाइड्रैन्थ की संरचना (Structure of Hydranth)

कृपया प्रश्न 64 देखिये ।

पॉलिप तथा मेड्यूसा की तुलना
(Comparison of Polyp and Medusa of Obelia)

पॉलिप तथा मेड्यूसा ओबेलिया मण्डल में पाये जाने वाले दो विभिन्न जीवक हैं । ये रचना तथा आकार में बहुत-सी बातों में भिन्न है किन्तु ये विभिन्नताएँ इनके द्वारा किये जाने वाले कार्यो में अन्तर के कारण होती है अर्थात् इनकी रचना अपने कार्य के अनुरूप होती है । पॉलिप या हाइड्रॉइड जीवक का कार्य मण्डल का पोषण करना है तथा मेड्यूसा द्वारा जनन कार्य होता है । अपने-अपने कार्यो के अनुसार ये आकार में भिन्न होते है किन्तु इनकी रचना एक ही आधार पर होती है ; अतः इनमें कुछ समानता भी पायी जाती है । फलस्वरूप पॉलिप तथा मेड्यूसा की तुलना समानताओं तथा असमानताओं के आधार पर की जा सकती है—

(अ) पॉलिप तथा मेड्यूसा में अन्तर
(Differences Between Polyp and Medusa)

पॉलिप (*Polyp*)	मेड्यूसा (*Medusa*)
(क) प्रकृति या स्वभाव (Habit) (*i*) स्थिर (fixed), कभी-कभी या किसी विशेष प्रावस्था मे स्वतन्त्र ।	(*i*) पूर्ण परिपक्व मेड्यूसा सदैव स्वतन्त्र होता है और तैरता रहता है ।
(ख) स्थिति (Position) (*ii*) पॉलिप मण्डल की ऊर्ध्व शाखाओ (vertical branches of the colony) पर लगे होते हैं ।	(*ii*) मेड्यूसा ब्लास्टोस्टाइल के केन्द्रीय या अक्षीय बेलन (central or axial cylinder) से कलिकाओ के रूप मे बनते है तथा परिपक्व होने पर बेलन से अलग होकर स्वतन्त्रतापूर्वक तैरकर जीवन व्यतीत करते है ।

पॉलिप (*Polyp*)	मेड्यूसा (*Medusa*)
(ग) आकार (Shape)	
(*iii*) प्रत्येक पॉलिप एक खोखले शंक्वाकार थैले अथवा वर्तन के समान आकार की (hollow conical sac-like or vase-like) रचना होती है।	(*iii*) मेड्यूसा तश्तरी या छाते के आकार का (saucer-shaped or umbrella-shaped) होता है।
(घ) रचना (Structure)	
(*iv*) हाइपोस्टोम या मैनुब्रियम शंक्वाकार रचना है जो पॉलिप के सम्पूर्ण शरीर का लगभग 1/3 भाग बनाता है। यह ऊपर की ओर उन्मुख रहता है।	(*iv*) मेड्यूसा का मैनुब्रियम अपेक्षाकृत छोटा तथा आकार में चौकोर होता है। यह नीचे की ओर उन्मुख होता है।
(*v*) मुख गोल होता है।	(*v*) मुख चौकोर होता है।
(*vi*) हाइपोस्टोम पर 24 स्पर्शक होते हैं जो मुख के चारों ओर एक चक्र या घेरा बनाते हैं।	(*vi*) मेड्यूसा में स्पर्शक अम्ब्रेला के किनारे पर लगे रहते हैं तथा प्रारम्भ में इनकी संख्या 16 होती है। बाद में ये 16 के गुणन में संख्या में बढ़ते जाते हैं।
(*vii*) स्पर्शक के आधार फूले हुए नहीं होते।	(*vii*) प्रत्येक स्पर्शक का आधार फूलकर थैले के समान रचना बनाता है। यह अन्तराल कोशिकाओं (interstitial cells) के इकट्ठा होने से बनता है।
(*viii*) वीलम (velum) अनुपस्थित होता है।	(*viii*) अम्ब्रेला के किनारे के साथ-साथ एक पर्त के रूप में वीलम (velum) होता है।
(*ix*) स्टेटोसिस्ट (statocysts) नहीं होते।	(*ix*) मेड्यूसा के संवेदी अंग आठ स्टेटोसिस्ट या लिथोसिस्ट (statocysts or lithocysts or lithostyles) हैं जो एडरेडियल स्पर्शकों के आधार पर स्थित होते हैं।
(*x*) पॉलिप की देहभित्ति में मेसोग्लीया बहुत कम विकसित (poorly developed) होती है तथा पतली पर्त के रूप में पायी जाती है।	(*x*) मेड्यूसा में मेसोग्लिया बहुत मोटी पर्त बनाती है।
(*xi*) एण्डोडर्म लेमिली (lamellae) नहीं बनाता।	(*xi*) मुखीय या अपमुखीय भागों का एण्डोडर्म लेमिली (lamellae) बनाता है। इसमें दोनों ओर के एण्डोडर्म के स्तर मिलकर एक पर्त बनाते हैं।
(*xii*) सीलेन्ट्रॉन या गैस्ट्रोवैस्क्युलर गुहा	(*xii*) सीलेन्ट्रॉन एक छोटे कक्ष (short
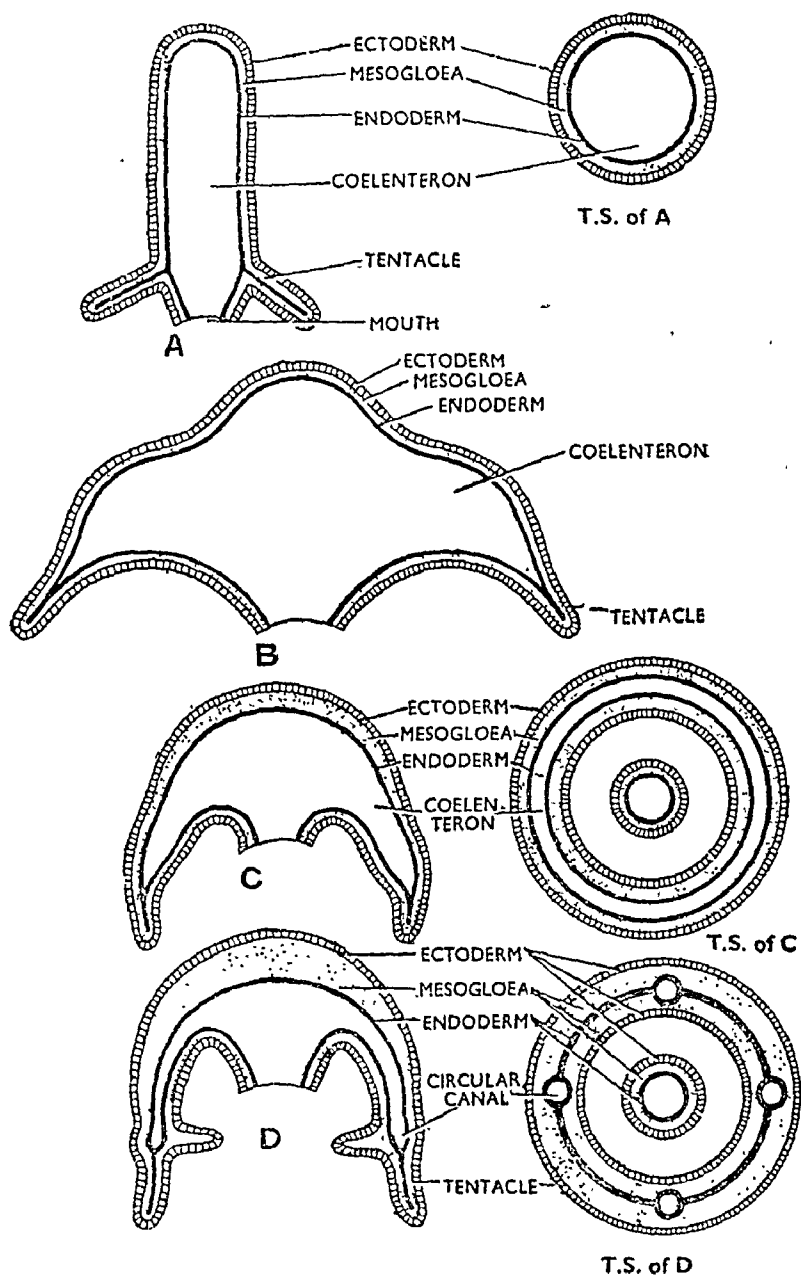
चित्र १७·७. पॉलिप से मेड्यूसा बनने का चित्रीय निरूपण
(Various stages in the development of medusa from polyp)
A. पॉलिप की खड़ी काट, B. उल्टा पॉलिप जिसमें टेन्टेकिल वाला भाग फैला हुआ है, C. घण्टाकार पॉलिप की खड़ी काट, D. मेड्यूसा की खड़ी काट ।

पॉलिप (*Polyp*)	मेड्यूसा (*Medusa*)
चौड़ी होती है तथा इसमें अरीय नाल (radial canals) तथा वर्तुल नाल (circular canals) नहीं होतीं। यह गुहा मण्डल की शाखाओं की सीनोसार्क (coenosarc) नामक गुहा से सम्बन्धित होती है।	chamber) के रूप में पायी जाती है और आमाशय (stomach) द्वारा प्रदर्शित की जाती है। यह चार अरीय नालों तथा एक वर्तुल नाल के रूप में निकली रहती है।
(*xiii*) तन्त्रिका तन्त्र बहुत कम विकसित (poorly developed) होता है तथा शरीर एवम् स्पर्शकों में तन्त्रिका कोशिकाओं (nerve cells) के जाल से बनता है।	(*xiii*) तन्त्रिका तन्त्र अपेक्षाकृत अधिक विकसित होता है। यह तन्त्रिका कोशिकाओं के दुहरे घेरे (double rings) के रूप में होता है।
(*xiv*) जनद अनुपस्थित होते हैं।	(*xiv*) जनद अरीय नाल (radial canals) के ऊपर चार समूहों में पाये जाते हैं।
(*xv*) पॉलिप पोषक जीवक (nutritive zooid) है तथा मण्डल की अलैंगिक पीढ़ी को प्रदर्शित करता है।	(*xv*) मेड्यूसा जनन जीवक (reproductive zooids) हैं जो जन्तु की लैंगिक पीढ़ी प्रदर्शित करते हैं।
(*xvi*) इनमें कलिकोत्पादन द्वारा अलैंगिक विधि से जनन होता है।	(*xvi*) युग्मकों के बनने के कारण इनमें लैंगिक जनन होता है।

(ब) पॉलिप तथा मेड्यूसा में समानताएँ
(Similarities Between Polyp and Medusa)

यद्यपि पॉलिप तथा मेड्यूसा में बहुत-सी भिन्नताएँ हैं किन्तु फिर भी ये अत्यधिक समजात (strictly homologous) जीवक हैं क्योंकि वे एक ही समान आधारभूत रचना के बने होते हैं। इनकी संरचना में निम्नलिखित समानताएँ पायी जाती हैं:—

1. दोनों का शरीर द्विपार्श्वीय सममित होता है।
2. देहभित्ति द्विस्तरीय होती है।
3. पॉलिप का मुख तथा हाइपोस्टोम मेड्यूसा के मुख तथा मैनुब्रियम के समजात होते हैं।
4. मेड्यूसा का आमाशय, अरीय नाल तथा वर्तुल नाल पॉलिप की गैस्ट्रो-वैस्क्युलर गुहा के समान होते हैं।
5. दोनों ही मांस-भक्षी (carnivorous) होते हैं।
6. मेड्यूसा के अम्ब्रेला की बाहरी उत्तल सतह हाइड्रेन्थ के आधार के समान होती है।

इसके साथ ही कुछ परिवर्तनों के पश्चात् पॉलिप से मेड्यूसा की रचना प्राप्त की जा सकती है ; अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि पॉलिप तथा मेड्युसा में यद्यपि आकार तथा बाह्य रचना में बहुत अन्तर है तथापि ये निश्चित रूप से समजात जीवक (homologous zooids) हैं। इनके आधार में अन्तर इनके द्वारा

किये जाने वाले विभिन्न कार्यों के कारण होता है। अतः *ओबेलिया* में बहुरूपता (polymorphism) पायी जाती है।

वैकासिक महत्त्व (Evolutionary Significance)

ओबेलिया के मेड्यूसा में पेशी-तन्त्र तथा पाचन-तन्त्र पॉलिप की अपेक्षा अधिक विकसित होते है। मेड्यूसा में स्पष्ट संवेदी अंग होते है तथा इसमें मेसोग्लिया का स्तर बहुत मोटा होता है। किन्तु मेड्यूसा को एक परिवर्तित पॉलिप (modified polyp) कहा जा सकता है। यदि यह मान लें कि पॉलिप उल्टा हो गया है और उसका स्पर्शक वाला भाग (tentacular region) खिंच गया है तो पॉलिप मेड्यूसा बन जाता है। इसका परिणाम यह होगा कि पॉलिप का मुख जो पहले ऊपर की ओर था अब नीचे की ओर पहुँच जायेगा तथा मैनुब्रियम उलटा लटक जायेगा तथा पॉलिप का समस्त शरीर चकती के आकार का (disc-shaped) हो जायेगा (चित्र १७·७)। आधार भाग को और अधिक दबाने पर तश्तरी के समान (saucer-shaped) रचना बन जाती है (चित्र १७·७)। अतः अब इनमें दो सतह बन जाती है। बाहरी उत्तल सतह मेड्यूसा के अम्ब्रेला की एक्स-अम्ब्रेलर सतह (exumbreller surface) के समान है तथा भीतर की अवतल सतह उसकी सब-अम्ब्रेलर सतह (subumbreller surface) के समान है। पॉलिप की गैस्ट्रोवैस्क्युलर गुहा मेड्यूसा की गैस्ट्रोवैस्क्युलर गुहा बनाती है।

प्रश्न 69. समजात अंगों से आप क्या समझते हैं ? स्वच्छ एवम् नामांकित चित्रों की सहायता से समझाइये कि ओबेलिया का पॉलिप अपने मेड्यूसा के समजात है।

What are homologous structures ? Show by means of neat and labelled diagrams that the polyp of *Obelia* is homologous with its medusa. *(Allahabad 1963 ; Agra 52, 62)*

समजातीयता का क्या अभिप्राय है ? ओबेलिया के पॉलिप एवम् मेड्यूसा की तुलना कीजिये तथा समझाइये कि ये दोनों समजात अंग हैं।

Define homology. Compare the polyp and medusa of *Obelia* showing that the two are homologous structures. *(Tribhuvan 1968)*

"पॉलिप तथा मेड्यूसा में भिन्नताएँ होने पर भी ये समजात रचनाएँ हैं।" इस कथन की पुष्टि कीजिये।

Justify the statement : "Striking though the difference between polyp and medusa, they are strictly homologous structures.
(Agra 1959, 61, 63 ; Gorakhpur 60 ; Magadh 63 ; Jiwaji 68 ; Punjab 63 ; Rajasthan 62, 63)

समजात अंग (Homologous organs)—आधुनिक जन्तुओं में कुछ अंग ऐसे होते है जो मूल रचना एवम् उद्‌भव के समान होते है किन्तु कार्यों के अनुरूप बाह्य रचना मे भिन्न-भिन्न होते है। ऐसे अंग **समजात् अंग** (homologous structures) कहलाते है तथा यह समानता **समजातीयता** (homology) कहलाती है। समजातीयता यह प्रमाणित करती है कि इन जन्तुओं का विकास एक ही प्रकार के पूर्वजों से हुआ है किन्तु कार्य के अनुरूप इनके अंगों ने विभिन्न रूप धारण कर लिये हैं।

पॉलिप तथा मेड्यूसा की तुलना

कृपया प्रश्न 68 देखिये।

प्रश्न 70. ओबेलिया के मेड्यूसा की संरचना एवम् वर्धन का वर्णन कीजिये। यह पॉलिप से किस प्रकार भिन्न है ?

Describe the structure and development of a medusa of *Obelia*. How does it differ from a polyp ? (*Ranchi 1970*)

कृपया प्रश्न 64, 66 तथा 68 देखिये।

प्रश्न 71. ओबेलिया के मेड्यूसा की संरचना का सविस्तार वर्णन कीजिये तथा पॉलिप के साथ इसकी समानताओं का उल्लेख कीजिये।

Give a detailed account of the structure of medusa of *Obelia* and discuss its homologies with polyp. (*Ranchi 1968*)

ओबेलिया के मेड्यूसा की संरचना
(Structure of Medusa of Obelia)

कृपया प्रश्न 64 देखिये।

पॉलिप के साथ समानताएँ
(Homologies with polyp)

कृपया प्रश्न 68 देखिये।

प्रश्न 72. ओबेलिया के मेड्यूसा की रचना का वर्णन कीजिये तथा इसके महत्त्व को समझाइये।

Describe the structure of *Obelia* medusa and state its significance. (*Patna 1968*)

ओबेलिया मेड्यूसा की संरचना का पूर्ण वर्णन कीजिये।

Describe in detail the structure of *Obelia* medusa. (*Raj 1970*)

ओबेलिया के मेड्यूसा की संरचना

कृपया प्रश्न 68 देखिये।

मेड्यूसा का महत्त्व

कृपया प्रश्न 64 देखिये।

अध्याय 18

ओरेलिया
(Aurelia)

फाइलम	—	सीलेन्ट्रेटा (*Coelenterata*)
क्लास	—	स्काइफोजोआ (*Scyphozoa*)
आर्डर	—	सीमीयोस्टोमी (*Semaeostomeae*)
जीनस	—	ओरेलिया ऑरिटा (*Aurelia aurita*)

प्रश्न 73. ओरेलिया की संरचना का वर्णन कीजिये तथा ओबेलिया मेड्यूसा के साथ इसकी तुलना कीजिये।

Give an account of the structure of *Aurelia* and compare it with that of *Obelia medusa*. (*Luck. 1956 ; Punjab 66*)

ओरेलिया सर्वसाधारण जैली फिश (jelly fish) है जो संसार के सभी समुद्रों में पानी के किनारे पायी जाती है। इसमें मेड्यूसाइड प्रावस्था प्रधान होती है जो जीवन-इतिहास का अधिकांश भाग बनाती है। पॉलिपॉइड प्रावस्था का समय अत्यन्त छोटा हाता है तथा यह तुरही के आकार के (trumpet-shaped) स्काइफिस्टोमा (scyphistoma) द्वारा प्रदर्शित होती है।

वाह्य रचना (External Structure)

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—आकार में *ओरेलिया* हाइड्रोजोअन मेड्युसा (hydrozoan medusa) के समान होता है। इसका शरीर जिलेटिन का बना होता है तथा तश्तरी अथवा छत्राकार (छाते के आकार का—saucer-shaped or umbrella-shaped) होता है। यह चतुष्टयी सममित (tetramerous symmetrical) होता है। इसका आधार 4" से 12" तक होता है। अम्ब्रेला पारदर्शी तथा नीले, सफेद रंग का होता है तथा इसमें से लाल या गुलाबी रंग के जनद gonads) दृष्टिगत होते रहते है।

संरचना (Structure)—छत्राकार (umbrella-shaped) शरीर का किनारा गोल किन्तु कटा-फटा (scalloped) होता है। इसमें आठ गड्ढे होते हैं जो बराबर दूरी पर स्थित होते हैं और छाते की सतह को आठ समान पिण्डकों (lobes) में बाँट देते हैं। प्रत्येक गड्ढे में एक संवेदी अंग स्थित होता है जो **टेण्टाक्युलोसिस्ट या रोपेलियम** (tentaculocyst or rhopalium) कहलाता है। इसके ऊपर दो मुलायम **मार्जिनल लैपेट** (marginal lappets) होते हैं जो इसकी रक्षा करते हैं। प्रत्येक दो गड्ढों के बीच का अम्ब्रेला का किनारा खोखले स्पर्शकों की एक पंक्ति से ढका रहता है। टेण्टाक्युलोसिस्ट, मार्जिनल लैपेट तथा स्पर्शक सभी सब-अम्ब्रेला के एक मुलायम वलन (fold) पर लगे होते हैं जो अत्यन्त लचीला तटीय पर्त (flexible marginal flap) बनाता है तथा **वीलेरियम** (velarium) कहलाता है। *ओरेलिया* में वास्तविक वीलम (true velum) नहीं होता।

तश्तरी के आकार की अम्ब्रेला में निम्न दो सतह होती हैं :—बाहरी या ऊपरी उत्तल एक्स-अम्ब्रेलर सतह (ex-umbreller surface) तथा भीतर की अवतल सब-अम्ब्रेलर सतह (sub-umbreller surface) कहलाती है। अम्ब्रेला की सब-अम्ब्रेलर सतह पर निम्न रचनाएँ पायी जाती हैं :—
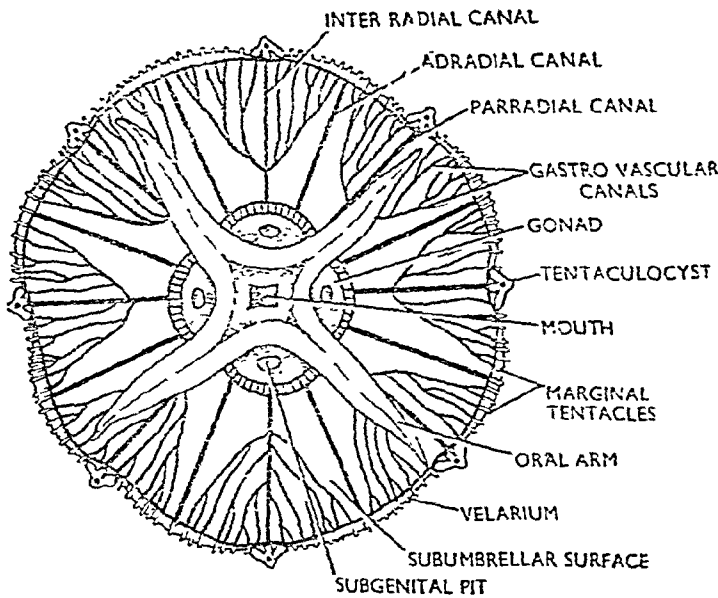
चित्र १८·१ ओरेलिया का अधर दृश्य (Ventral view of *Aurelia*)

1. मैनुब्रियम (Manubrium)—सब-अम्ब्रेलर सतह के मध्य में मैनुब्रियम लटका रहता है जिसके शीर्ष पर चौकोर मुखद्वार स्थित होता है। मैनुब्रियम बहुत छोटा तथा अस्पष्ट होता है।

2. मुखवर्ती भुजाएँ (Oral arms)—मुख-द्वार के चारों कोने एक भुजा के रूप में बढ़े रहते हैं। प्रत्येक भुजा लम्बी, कोमल, लहरदार (frilled) होती है और इसकी लम्बाई के साथ मध्य अधर रेखा (mid-ventral line) पर एक खाई तथा पक्ष्म (cilia) होते हैं। प्रत्येक भुजा का किनारा वलित (convoluted) होता है तथा इस पर बहुत-सी दंश-कोशिकाएँ स्थित होती हैं।

3. उपजनन गड्ढे तथा जनद (Sub-genital pits and gonads)—सब-अम्ब्रेलर सतह के अधर-तल पर मुख से कुछ दूरी पर तथा भुजाओं के बीच चार गोल छिद्र होते हैं। ये छिद्र उपजनन गड्ढों में खुलते हैं। प्रत्येक उपजनन गड्ढा एक खोखली तथा उथली गुहा है जो जनद के नीचे स्थित होती है।

जनद की संख्या भी चार होती है। ये घोड़े की नाल के आकार की (horse-shoe-shaped) गुलाबी या लाल रंग की रचनाएँ हैं जो इण्टररेडियल स्थिति (inter-radial position) में स्थित होती हैं।

आन्तरिक संरचना (Internal Anatomy)

1. देहभित्ति (Body wall)—ओरेलिया द्विस्तरीय (diploblastic) जन्तु है। इसकी देहभित्ति में बाहरी **एक्टोडर्म**[1] (ectoderm) तथा आन्तरिक **एण्डोडर्म**

(endoderm) का स्तर होता है। इन दोनों के बीच में मेसोग्लिया का मोटा स्तर होता है। देहभित्ति के दोनों स्तरों का विन्यास *ओबेलिया* के हायड्रॉइड मेड्यूसा के समान ही होता है। देहभित्ति की मोटाई का मुख्य भाग मेसोग्लिया का बना होता है जो पारदर्शी तथा जिलेटिनस होती है। मेसोग्लिया में एण्डोडर्म से बनी **अमीबाभ कोशिकाएँ** तथा **शाखान्वित तन्तु** (branching fibres) पाये जाते है। अम्ब्रेला की सब-अम्ब्रेलर तथा एक्स-अम्ब्रेलर सतह एक्टोडर्म से ढकी रहती हैं, जबकि गला (gullet), आमाशय (stomach) और आमाशयिक कोप (gastric pouches) तथा रेडियल या अरीय नाल एवम् वर्तुल नाल इत्यादि एण्डोडर्म से आस्तारित होते है। गैस्ट्रोवैस्क्युलर गुहा की एण्डोडर्म कोशिकाएँ रोमाभी (ciliated) होती है। एक्टोडर्म में दश-कोशिकाएँ, पेशी तन्तु, पेशी कोशिकाएँ एवम् तन्त्रिका कोशिकाएँ पायी जाती है।
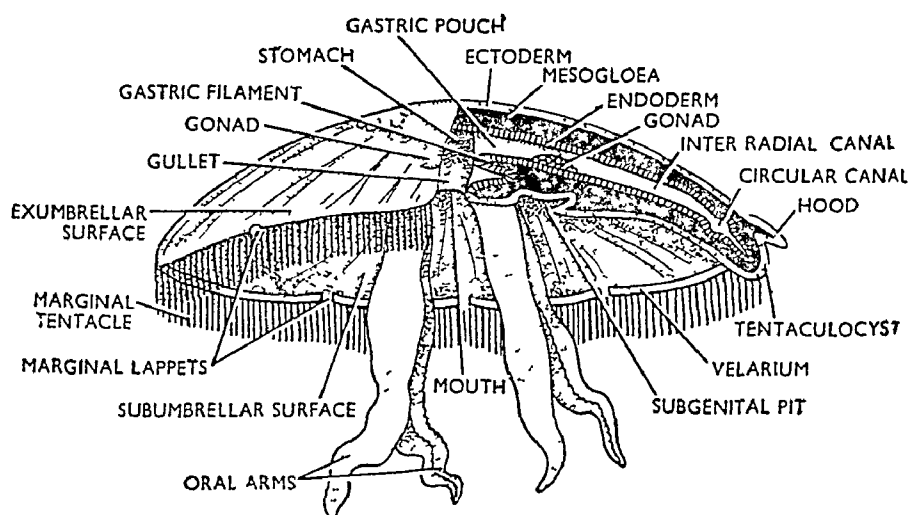
चित्र १८·२. ओरेलिया का पार्श्व दृश्य जिसमे 1/4 भाग काटकर दिखाया गया है
(Lateral view of *Aurelia* in which 1/4 portion has been cut open)

2. पेशी तन्त्र तथा चलन (Muscular system and locomotion)—शरीर की पेशियाँ ऐच्छिक तथा अनैच्छिक (striated and non-striated) दोनों प्रकार के पेशी तन्तुओं की बनी होती है। ये तन्तु एक्टोडर्म से बनते है तथा मेसोग्लिया में पड़े रहते है। स्पर्शकों, मैनुब्रियम तथा मुखवर्ती भुजाओं मे पेशी तन्तु लम्बरूप मे (longitudinal) विन्यसित होते है किन्तु अम्ब्रेला में गोलाकार रूप मे लगे होते है। सब-अम्ब्रेलर मेसोग्लिया (subumbreller mesogloea) में पेशी-तन्तु ऐच्छिक होते हैं तथा एक मजबूत चौड़ी एवम् गोलाकार पट्टी (band) बनाते हैं जो कोरोनल पेशी (coronal muscle) कहलाती है। इन पेशियों के क्रमवत् संकुचन से जन्तु में चलन क्रिया होती है तथा अम्ब्रेला तैर सकती है।

3. गैस्ट्रोवैस्क्युलर तन्त्र (Gastrovascular system)—इन जन्तुओं में बचा हुआ भोजन पाचन-तन्त्र द्वारा ही सारे शरीर में पहुँचता है; अतः इनमें स्वतन्त्र परिवहन तन्त्र (circulatory system) नही होता।

पाचन-तन्त्र एक **चौकोर मुख** (rectangular mouth) से प्रारम्भ होता है

जो मैनुब्रियम के शीर्ष पर स्थित होता है। यह एक चौड़े **आमाशय** में खुलता है। आमाशय अम्ब्रेला के पूरे मध्य भाग में स्थित होता है तथा यह चार चौड़े **आमाशयिक कोष्ठों** (gastric pouches) के रूप में निकला रहता है। ये आमाशयिक कोष्ठ इण्टर-रेडियल होते हैं। ये अम्ब्रेला के केन्द्र से परिधि के बीच आधी दूरी तक फैले होते हैं तथा खम्भे के समान (pillar-shaped) मेसोग्लिया द्वारा एक-दूसरे से अलग रहते हैं। इन कोष्ठों के फर्श पर असंख्य **आमाशयिक तन्तु** (gastric filaments) फैले रहते हैं। ये तन्तु खोखले तथा एण्डोडर्म के बने होते हैं जिनके मध्य में मेसोग्लिया होती है। इनमें असंख्य रोमाभी (ciliated), ग्रंथिल (glandular), पेशीय (muscular) दंश-कोशिकाएँ पायी जाती हैं। प्रत्येक दो समीपस्थ आमाशयिक कोष्ठों के बीच के मेसोग्लिया में **पर-रेडियल नाल** (per-radial canal) होती है जो एक छिद्र द्वारा आमाशयिक कोष्ठ में खुलती है। प्रत्येक पर-रेडियल नाल तीन शाखाओं में बँट जाती है और पुनः विभाजित होकर अन्त में वर्तुल नाल (circular canals) मे खुलता है जो अम्ब्रेला के किनारे के साथ पायी जाती है। प्रत्येक गैस्ट्रिक कोष्ठ की बाहरी दीवार पर तीन सूक्ष्म छिद्र होते हैं जिनमें से मध्य छिद्र आन्तर-अरीय नाल या **इण्टर-रेडियल नाल** (inter-radial canal) में खुलता है। इण्टर-रेडियल नाल भी पर-रेडियल नाल के समान ही बार-बार विभाजित होकर अन्त में वर्तुल नाल (circular canal) में खुलती है। साथ के दोनों पार्श्व छिद्र एडरेडियल नाल (adradial canals) में खुलते है। ये सीधी होती हैं और बिना शाखान्वित हुए भी वर्तुल नाल में खुलती हैं। ये सभी नाल, आमाशय तथा गैस्ट्रिक पाउच भीतर से रोमाभी एण्डोडर्म (ciliated endoderm) से आस्तारित होते हैं।

4. तन्त्रिका तन्त्र (Nervous system)—*ओरेलिया* के तन्त्रिका तन्त्र में निम्नलिखित रचनाएँ होती है :—

(*i*) सब-अम्ब्रेलर प्लैक्सस (Subumbreller plexus)

(*ii*) रोपेलियल गैंग्लिया (Rhopalial ganglia)

(*i*) **सब-अम्ब्रेलर प्लैक्सस** (Subumbreller plexus)—यह बहुत अधिक लम्बी **द्विध्रुवीय** (bipolar) **तन्त्रिका कोशिकाओं** तथा तन्त्रिका तन्तुओं का बना होता है जो सब-अम्ब्रेलर सतह पर एक्टोडर्म तथा ऊपरी पेशी स्तर के बीच फैला रहता है। इसमें दो विभिन्न एवम् निश्चित प्रकार के प्लैक्सस होते हैं—**(a) उपअधिचर्म जालक** या सब-एपिडर्मल प्लैक्सस (subepidermal plexus), तथा **(b) उप-गैस्ट्रोडर्मल जालक** (subgastrodermal plexus)

सब-एपिडर्मल जालक मैनुब्रियम, मुख पाली (oral lobes) तथा स्पर्शकों में फैला होता है तथा उप-गैस्ट्रोडर्मल जालक गैस्ट्रोवैस्क्युलर तन्त्र की दीवार में पाया जाता है। तन्त्रिका तन्त्र अरीय स्थानों (radial position) पर मोटा होता है किन्तु पररेडियाई तथा इण्टर-रेडियाई वाले स्थानों पर और भी अधिक मोटा तथा स्पष्ट होता है। ये स्थान मार्जिनल गड्ढों (marginal notches) तथा संवेदी अंगों के समीप होते हैं।

(*ii*) **रोपेलियल गैंगलिया** (Rhopalial ganglia)—मार्जिनल संवेदी अंगों के आधार पर तन्त्रिका कोशिकाओं के विशेष समूह पाये जाते हैं। ये समूह रोपेलिया (rhopalia) अथवा **टेंटेक्युलोसिस्ट** (tentaculocysts) कहलाते हैं।

अम्ब्रेला के किनारे के साथ तन्त्रिका कोशिकाओं का बना एक गोल चक्कर होता है। यह मार्जिनल कैनाल के साथ-साथ स्थित होता है।

5. संवेदी अंग (Sensory organs)—ओरेलिया के संवेदी अंग निम्न-लिखित हैं :—

(i) टैण्टेक्यूलोसिस्ट (tentaculocyst) या रोपेलिया (rhopalia)

(ii) नेत्रिकाएँ या ओसेलाई (ocelli)

(iii) घ्राण गड्ढे या ऑल्फैक्ट्री पिट्स (olfactory pits)
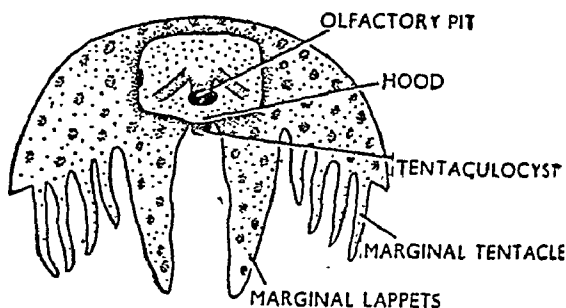
चित्र १८·३. टैण्टेक्यूलोसिस्ट की स्थिति दिखाने के लिए अम्ब्रेला के किनारे की सतह का दृश्य (Surface view of the margin of umbrella showing the position of tentaculocyst)

(i) **टैण्टेक्यूलोसिस्ट** (Tentaculocysts)–ये *ओरेलिया* में पाये जाने वाले विशेष संवेदी अंग हैं जिनकी संख्या आठ होती है। ये छोटे तथा विशेष रूप से परिवर्तित संवेदी स्पर्शक हैं जो मार्जिनल गड्ढों (marginal notches) में स्थित होते हैं तथा एक जोड़ी मार्जिनल लैपेट्स (marginal lappets) द्वारा ढके रहते हैं। इनमें से चार रेडियल तथा चार इण्टर-रेडियल होते हैं। प्रत्येक टैण्टेक्यूलोसिस्ट में मुग्दर के आकार का उभार (club-shaped projection)—**लिथोस्टाइल या स्टेटोसिस्ट** (lithostyle or statocyst) होता है जिसके दूरस्थ सिरे पर $CaCO_3$ का वना एक ऑटोलिथ (otolith) होता है। इसका उद्भव एण्डोडर्म से होता है। स्टेटोसिस्ट के ऊपर अम्ब्रेला का किनारा हुड के आकार का (hood-like) उभार वनाता है जो उसकी रक्षा करता है। हुड मार्जिनल लैपेट से भी जुड़ा होता है। लिथोस्टाइल के भीतर की ओर संवेदी कोशिकाओं की गद्दी के समान रचना होती है।
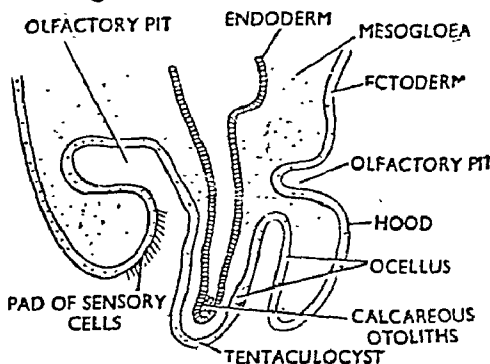
चित्र १८·४. ओरेलिया के टैण्टेक्यूलोसिस्ट (*tentaculocyst*) की खड़ी काट

(ii) **नेत्रिकाएँ** (Ocelli)—प्रत्येक टैण्टेक्यूलोसिस्ट के वाह्य ओर एक्टोडर्म में एक रंगीन धव्वा होता है जो **ओसेलस** कहलाता है। यह वायुमण्डल के प्रकाश को ग्रहण करता है।

(iii) **घ्राण गड्ढे** (Olfactory pits)—*ओरेलिया* में प्रत्येक टैण्टेक्यूलोसिस्ट के समीप दो हल्की गर्तों (shallow depressions) के रूप में **ऑल्फैक्ट्री पिट्स** (olfactory pits) पाये जाते हैं। वाहरी गर्त एक्स-अम्ब्रेलर सतह पर टैण्टेक्यूलोसिस्ट के समीप स्थित होती है तथा आन्तरिक स्टेटोसिस्ट के ठीक भीतर की ओर पायी जाती है। प्रत्येक **गर्त** (depression) या गड्ढा संवेदी एपिथीलियम का वना होता है तथा रासायनिक उत्तेजनाओं को ग्रहण करता है।

जनन अंग (Reproductive organs)—नर तथा मादा जनन अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं किन्तु नर तथा मादा जन्तुओं के आकार में कोई अन्तर नहीं होता। प्रत्येक जनद घोड़े की नाल के आकार की (horse-shoe-shaped) पर्त्तदार (plaited or frilled) रचना है जिसका रंग चमकीला गुलाबी या लाल जामुनी होता है। *ओरेलिया* में जनन अंग अम्ब्रेला की अर्ध-पारदर्शी झिल्ली में से दिखाई देते हैं। ये आन्तर-अरीय (inter-radial) स्थिति में पाये जाते हैं तथा एक्टोडर्म स्तर की कोशिकाओं से बनते हैं। परिपक्व युग्मक (mature gametes) स्वतन्त्र होकर आमाशय में आते हैं तथा मुख द्वारा बाहर निकलते हैं।

ओरेलिया तथा ओबेलिया मेड्यूसा की रचना की तुलना
(Comparison of Structure of Aurelia and Obelia medusa)

प्रौढ़ *ओरेलिया* मेड्युसाइड प्रारूप (medusoid form) प्रदर्शित करता है। अत: इसकी तथा *ओबेलिया* मेड्युसा की मूल रचना (fundamental structure) समान है परन्तु *ओरेलिया* की रचना में कुछ जटिलताएँ पायी जाती हैं। फलस्वरूप निम्न बातों में यह ओबेलिया मेड्युसा से भिन्न है :—

ओरेलिया (*Aurelia*)	ओबेलिया मेड्युसा (*Obelia medusa*)
1. ओरेलिया मेड्युसा-प्रारूप (medusoid form) इफाइरा लारवा (ephyra larva) के रूपान्तरण से बनता है। इफाइरा लारवा साइफिस्टोमा (scyphistoma) नामक पॉलिप के खण्डन (strobilation) से बनता है।	1. ओबेलिया का मेड्युसा पॉलिपायड मण्डल के ब्लास्टोस्टाइल नामक जीवकों के केन्द्रीय अक्षों पर कलिकाओं के रूप में बनता है।
2. यह बड़े आकार का, छिछला तथा छाते के समान (umbrella-shaped) होता है और साधारणतया जैली-फिश कहलाता है।	2. यह छोटे छाते के या उल्टी घण्टी के समान होता है तथा साधारणतया तैरने वाली घण्टी (swimming bell) कहलाता है।
3. ओरेलिया की अम्ब्रेला का व्यास लगभग चार इन्च या उससे अधिक होता है।	3. पूर्ण परिपक्व मेड्यूसा का व्यास लगभग 1/4 इंच होता है।
4. अम्ब्रेला का किनारा 8 गड्ढों द्वारा समान लम्बाई वाले पिण्डकों (lobes) में बँटा रहता है।	4. अम्ब्रेला का किनारा एकसार (smooth) तथा गोल होता है।
5. इसमें वास्तविक वीलम (true velum) नही होता, किन्तु उसके स्थान पर एक अस्पष्ट-सा (inconspicuous) वीलेरियम (velarium) होता है। यह सब-अम्ब्रेला का बढ़ा हुआ भाग है जो एण्डोडर्मल नाल (endodermal canal) की उपस्थिति के कारण खोखला होता है।	5. इसमें वास्तविक वीलम होता है जो घण्टी (bell) के किनारे से भीतर की ओर निकला रहता है। एण्डोडर्मल नाल की अनुपस्थिति के कारण यह ठोस होता है। यह एक्टोडर्म की दो पर्तो का बना होता है। इन दोनों के बीच में मेसोग्लिया पायी जाती है।
6. अम्ब्रेला के किनारे के साथ लगे हुए स्पर्शक असंख्य तथा खोखले होते हैं।	6. एक अम्ब्रेला में पाये जाने वाले स्पर्शकों की संख्या नये बने मेड्युसा में 16 होती है किन्तु प्रौढ मेड्युसा में ये असंख्य तथा स्पर्शक ठोस होते हैं।

ऑरेलिया (*Aurelia*)	ओबेलिया मेड्यूसा (*Obelia medusa*)
7. मुख को घेरे हुए चार मुखवर्ती भुजाएँ होती है।	7. मुखवर्ती भुजाएँ नही होती।
8. मैनुब्रियम छोटा तथा अस्पष्ट होता है।	8. मैनुब्रियम बड़ा तथा स्पष्ट होता है तथा अपेक्षाकृत लम्वा भी होता है।
9. आमाशय चार पिण्डकों का बना होता है तथा इससे चार आमायशिक कोष्ठ या गैस्ट्रिक पाउच (gastric pouches) निकले रहते है।	9. गैस्ट्रिक पाउच नहीं होते तथा आमाशय में पिण्डक भी नही पाये जाते।
10. आमाशयिक कोष्ठों या गैस्ट्रिक पाउचों के फर्श पर गैस्ट्रिक तन्तु (gastric filaments) तथा गैस्ट्रिक उभार (gastric ridges) होते हैं।	10. ओबेलिया मेड्यूसा में ऐसा नही होता।
11. नाल-तन्त्र (canal system) जटिल होता है। इसमें चार पर-रेडियल, चार इण्टर-रेडियल तथा आठ एड-रेडियल एवम् एक वर्तुल-नाल होती है। प्रथम दो नाल शाखान्वित होती हैं।	11. नाल तन्त्र सरल होता है तथा इसमें केवल चार रेडियल एवम् एक वर्तुल नाल (circular canal) होती हैं।
12. मेसोग्लिया का स्तर वहुत मोटा होता है। यह जिलेटिन के समान अर्ध-पारदर्शी होता है तथा इसमें तन्तु (fibres) एवम् अमीबाभ कोशिकाएँ (amoeboid cells) पड़ी रहती हैं।	12. मेसोग्लिया अपेक्षाकृत पतला तथा अकोशीय होता है। इसमें किसी प्रकार की कोई भी रचना नही मिलती।
13. ऐच्छिक तथा अनैच्छिक दोनों प्रकार के पेशी तन्तु होते हैं तथा ये केवल एक्टोडर्म से ही वनते हैं।	13. पेशी तन्तु एक्टोडर्म एवम् एण्डोडर्म दोनों से ही वनते हैं।
14. तन्त्रिका तन्त्र सव-अम्ब्रेलर जालक (sub-umbreller plexus) तथा आठ रोपेलियल गैंगलिया (rhopalial ganglia) के रूप में पाया जाता है।	14. ओवेलिया मेड्यूसा में केवल सव-अम्ब्रेलर जालक ही होता है। गैंगलिया नहीं पाये जाते।
15. सव-अम्ब्रेलर जालक रेडियल दिशा (radial directions) में मोटा होकर रेडियल स्थलन (radial thickenings) वनाता है।	15. ऐसा नहीं होता।
16. अम्ब्रेला के किनारे के साथ पाया जाने वाला मार्जिनल तन्त्रिका वलय (marginal nerve ring) या तो वहुत अस्पष्ट होता है या होता ही नही।	16. घण्टी के किनारे के साथ दो तन्त्रिका वलय (double nerve rings) होते है।
17. टण्टेक्यूलोसिस्ट की संख्या आठ होती	17. टेण्टेक्यूलोसिस्ट, स्टेटोसिस्ट या लियो-

ओरेलिया (*Aurelia*)	ओबेलिया मेड्युसा (*Obelia medusa*)
है। ये अम्ब्रेला के किनारे पर स्थित गड्ढों में स्थित होते हैं।	स्टाइल की संख्या आठ होती है जो आठ एड-रेडियल स्पर्शकों के आधार पर स्थित होते हैं।
18. टेण्टेक्युलोसिस्ट एण्डोडर्म से बनते हैं। प्रत्येक के ऊपर एक हुड स्थित होता है तथा पार्श्व-तलों पर एक जोड़ी मार्जिनल लैपेट (marginal lappets) होते हैं।	18. ये एक्टोडर्म से बनते हैं तथा इनमें हुड तथा लैपेट नहीं होते।
19. इसमें नेत्रिकाएँ (ocelli) तथा घ्राण गड्ढे (olfactory pits) नामक संवेदी अंग होते हैं।	19. संवेदी अंग नहीं पाये जाते।
20. जनद गैस्ट्रिक पाउचों के फर्श पर स्थित होते हैं तथा इण्टर रेडियल स्थिति में बाहर को उभरे रहते हैं।	20. जनद मेसोग्लिया में स्थित होते हैं तथा बाहर से एक्टोडर्म द्वारा आस्तारित होते हैं। इनकी स्थिति पर-रेडियल (per-radial) होती है तथा प्रत्येक जनद एक अरीय नाल के मध्य में जुड़ा रहता है।
21. जनद घोड़े की नाल के आकार के होते हैं तथा इनमें बहुत-सी पर्तें होती हैं (frilled or plaited)।	21. जनद अण्डाकार तथा गाँठ के आकार के होते हैं।
22. जनन कोशिकाएँ एक्टोडर्म, से बनती हैं।	22. जनन कोशिकाएँ एक्टोडर्म से बनती हैं।

प्रश्न 74. ओरेलिया तथा ओबेलिया के मेड्यूसा का तुलनात्मक विवरण दीजिये।

Give a comparative account of the structure of *Aurelia* and *Obelia* medusa. (*Luck. 1968 ; Kanpur 68 ; Patna 67, 69*)

कृपया प्रश्न 73 देखिये।

प्रश्न 75. ओरेलिया के गैस्ट्रोवैस्क्युलर तन्त्र की संरचना का वर्णन कीजिये।

Give an account of the structure of the gastro-vascular system in *Aurelia*. (*Luck. 1958*)

कृपया प्रश्न 73 देखिये।

प्रश्न 76. ओरेलिया के ग्राहक अंगों का वर्णन कीजिये तथा इसकी पोषण विधि का उल्लेख कीजिये।

Give an account of the receptor organs in *Aurelia* and describe its mode of feeding. (*Lucknow 1954*)

संवेदी अंग (Receptor Organs)

कृपया प्रश्न 73 देखिये।

पोषण क्रिया (Mode of Feeding)

ओरेलिया पूर्णतया माँसाहारी जन्तु है। छोटे-छोटे अपृष्ठवंशी (inverte-

brates) जैसे क्रस्टेशिया तथा कीड़े इसका भोजन हैं। भोजन मुखवर्ती भुजाओं तथा स्पर्शकों द्वारा पकड़ा जाता है। इन पर पायी जाने वाली दंश-कोशिकाएँ (nematocysts) शिकार को बेहोश करने, मारने तथा पकड़ने में सहायता करती हैं। अन्त में यह पकड़ा हुआ शिकार मुखवर्ती भुजाओं द्वारा मुख तक ले जाया जाता है। गैस्ट्रिक तन्तुओं (gastric filaments) की दंश-कोशिकाएँ भी शिकार को मारने का कार्य करती हैं।

भोजन का पाचन आमाशय तथा गैस्ट्रिक कोष्ठों में होता है। आमाशय तथा गैस्ट्रिक तन्तुओं की एण्डोडर्म कोशिकाएं पाचन-रस उत्पन्न करती हैं जो भोजन में मिलकर उसका पाचन करता है। इस प्रकार **बाह्य-कोशिका पाचन** (extra-cellular digestion) पूर्ण होता है। अधपचा भोजन जो छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा होता है। रोमकों की अविरत गति द्वारा गैस्ट्रोवैस्क्युलर द्रव के साथ नालों में पहुँचता है। यहाँ पर भोजन के टुकड़े नाल की एण्डोडर्म कोशिकाओं द्वारा ग्रहण कर लिये जाते है। इनके भीतर पहुँचकर भोजन के कण खाद्य रिक्तिका बनाते हैं। यहाँ पर **आन्तर-कोशिका पाचन** (intracullar digestion) होता है। यहाँ प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट का पाचन होता है। पचा हुआ भोजन गैस्ट्रोवैस्क्युलर द्रव के साथ गैस्ट्रोवैस्क्युलर तन्त्र में घूमता है तथा अशाखान्वित एडरेडियल नालों में से होता हुआ वर्तुल नाल में पहुँचता है। अपच भोजन इण्टर-रेडियल तथा पर-रेडियल नालों द्वारा गैस्ट्रिक कोष्ठों में वापस आ जाता है एवम् मुख द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। यह मुखवर्ती भुजाओं पर पायी जाने वाली अपवाही झिर्री (exhalent groove) के साथ आगे बढ़ता है। पचा हुआ भोजन अमीबाभ कोशिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाया जाता है।

प्रश्न 77. ओरेलिया के जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये।

Describe the life-history of *Aurelia*.

(Jodhpur 1965 ; Vikram 64 ; Banaras 61 ; Gorakhpur 69 ; Kerala 68 ; Karnatak 68 ; Luck. 60, 62, 64, 65 ; Punjab 66 ; Rajasthan 62 ; Indore 67 ; Jabalpur 72)

जननों के एकान्तरण का अर्थ क्या है? ओरेलिया के जीवन-इतिहास के सन्दर्भ में समझाइये।

What is meant by alternation of generations? Explain it with reference to the life-history of *Aurelia*. *(Poona 1965)*

ओरेलिया के जीवन इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। क्या यह जननों का एकान्तरण प्रदर्शित करता है?

Give an illustrated account of the life-history of *Aurelia*. Does it exhibit alternation of generations? *(Luck. 1966 ; Patna 69 ; Ranchi 73)*

ओरेलिया में जनन एवम् स्ट्रोबाइलेशन प्रक्रिया का वर्णन करिये।

Describe the process of reproduction and strobilation in *Aurelia*. *(Vikram 1964)*

ओरेलिया का जीवन-इतिहास
(Life-history of Aurelia)

1. निषेचन (Fertilization)—नर तथा मादा युग्मक अलग-अलग

अलग जन्तुओं में बनते हैं ; अतः इनमें cross-fertilization होता है । निषेचन की क्रिया मादा के गैस्ट्रिक कोष्ठ के भीतर होती है । परिपक्व अण्डे गैस्ट्रिक कोष्ठ में आकर एकत्रित होते हैं । यहाँ पर ये पानी की धारा के साथ आने वाले किसी दूसरे नर जन्तु के नर युग्मकों या शुक्राणुओं के सम्पर्क में आते हैं । निषेचित अण्डे शरीर को छोड़ने वाली पानी की धारा के साथ मुखद्वार से बाहर निकल आते हैं । ये मुख-वर्ती भुजाओं की अपवाही झिर्री (exhalent groove) से चिपक जाते हैं । प्रत्येक अण्डे के चारों ओर एक कोष्ठ (pouch) बन जाता है जिसके भीतर अण्डे में वर्धन (development) होता है ।

2. खण्डीभवन (Segmentation)—कोष्ठ के भीतर प्रत्येक निषेचित अण्डे या युग्मज में सम्पूर्ण किन्तु असमान (holoblastic but unequal) विभाजन होता है । बार-बार विभाजित होने पर कोशिकाओं की ठोस गेंद के समान रचना बन जाती है जो **मोरुला** (morula) कहलाती है । अब इसके भीतर द्रव से भरी एक गुहा-सी बन जाती है । यह गुहा **ब्लास्टोसील** (blastocoel) कहलाती है । इसके फलस्वरूप मोरुला एक स्तर वाला खोखले थैले के समान **ब्लास्टुला** (blastula) बन जाता है । विभाजन तथा कोशिकाओं के अन्तर्गमन के फलस्वरूप एक-स्तरीय ब्लास्टुला (single-layered blastula), द्विस्तरीय **गैस्ट्रूला** (two-layered gas-trula) में बदल जाता है । गैस्ट्रूला का बाहरी स्तर एक्टोडर्म तथा भीतर का स्तर एण्डोडर्म बनाता है । इसमें एक मध्य गुहा (central cavity) होती है । यह एण्डोडर्म से आस्तारित होती है तथा सीलेन्ट्रॉन (coelenteron) कहलाती है । सीलेन्ट्रॉन एक चौड़े छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है । यह छिद्र ब्लास्टोपोर (blastopore) कहलाता है ।

3. प्लैन्यूला लारवा (Planula larva)—कुछ समय पश्चात् ही गैस्ट्रूला का ब्लास्टोपोर बन्द हो जाता है तथा बाहरी एक्टोडर्म के स्तर पर पक्ष्म (cilia) बन जाते हैं । अब भ्रूण लम्बा हो जाता है और प्लैन्यूला लारवा का निर्माण पूर्ण हो जाता है । एक *ओरेलिया* पर एक समय में ही बहुत बड़ी संख्या में प्लैन्यूला लार्वी छोटे अपारदर्शी (opaque) धब्बों (patches) के रूप में देखे जा सकते हैं । ये पैतृक शरीर से अलग होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगते हैं ।

4. प्लैन्यूला का साइफिस्टोमा में कायान्तरण (Metamorphosis of planula into scyphistoma)—कुछ समय तक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के पश्चात् प्लैन्यूला के पक्ष्म नष्ट हो जाते हैं और अपने अगले चौड़े सिरे द्वारा यह किसी आधार (जैसे—समुद्री पौधे या पत्थर) से चिपक जाता है । इसका चौड़ा आधार भाग एक पतले वृन्त (narrow stalk) के समान **आधार तल** (basal disc) में बदल जाता है । लारवा का शरीर भी लम्बा हो जाता है तथा इसके दूरस्थ सिरे पर मुख-द्वार बन जाता है । इसके पश्चात् मुख के चारों ओर स्पर्शक भी बन जाते हैं । सबसे पहले दो पर-रेडियल (per-radial) स्पर्शक कलिका के रूप में बनना प्रारम्भ करते हैं । कुछ समय पश्चात् इन दो पर-रेडियल स्पर्शकों के लम्बरूप दो अन्य पर-रेडियल स्पर्शक भी बन जाते हैं, पुनः चार इण्टर-रेडियल तथा आठ एडरेडियल स्पर्शक भी बन जाते हैं । इन परिवर्तनों के फलस्वरूप प्लैन्यूला एक तुरही के आकार का (trumpet-shaped) **साइफिस्टोमा** (scyphistoma) या **हाइड्रेट्यूबा** (hydratuba) नामक पॉलिप बन जाता है । यह पॉलिप *हाइड्रा* के समान होता है । इसी समय सीलेन्ट्रॉन का एण्डोडर्म स्तर चार इण्टर-रेडियल स्थानों

पर लम्ववत् उभारों (longitudinal ridges) के रूप में उभर आता है। ये उभार गैस्ट्रिक उभार (gastric ridges), सेप्टा या टीनिओल्स (septa or taenioles) कहलाते हैं। गोल मुख भी अव चौकोर हो जाता है तथा इसके किनारे उभर कर
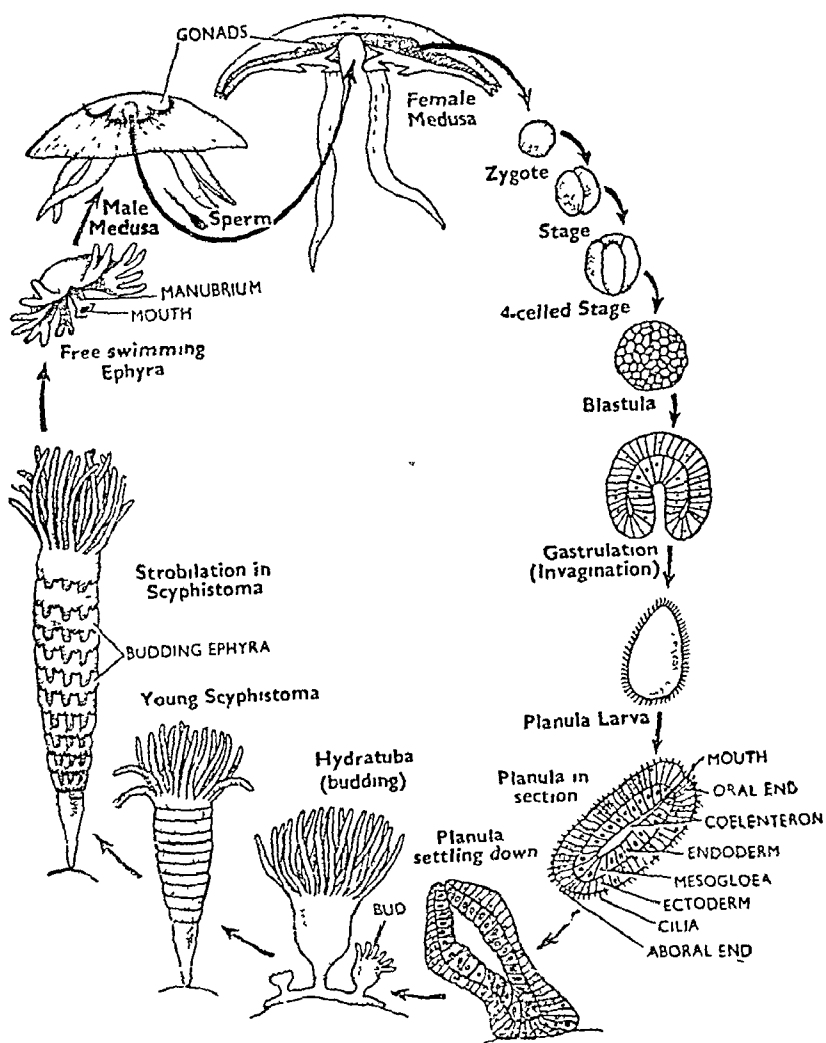
चित्र १८·५. ओरेलिया का जीवन-चक्र (life-cycle of *Aurelia*)

छोटा तथा अस्पष्ट-सा मैनुव्रियम (manubrium) वना लेते है। मुखवर्ती भाग (oral region) का एक्टोडर्म भीतर की ओर धँसकर फनल के समान चार गड्ढे वनाता है। ये गड्ढे इण्टर-रेडियल होते है तथा सेप्टल फनल या इनफण्डिवुला (septal funnel's or infundibula) वनाते हैं। ये गैस्ट्रिक उभारो (gastric ridges) के ठीक ऊपर स्थित होते हैं।

साइफिस्टोमा भोजन खाकर लम्वाइ में वढ़ता है तथा लगभग 12 mm. लम्वा हो जाता है। कभी-कभी इसमें कलिकोत्पादन द्वारा अलैंगिक विधि से जनन

होता है। इसमें पार्श्व कलिकाएँ बनती हैं जो अलग होकर **हाइड्रेट्यूबा** बनाती हैं।

5. साइफिस्टोमा से स्ट्रोबाइला का बनना (Strobilation in scyphistoma)—शरद् तथा शिशिर ऋतु में साइफिस्टोमा का शरीर बहुत-सी छल्ले के समान अनुप्रस्थ दरारों (ring-like transverse constrictions) से विभाजित हो जाता है। ये दरारें धीरे-धीरे गहरी होती जाती हैं जिससे साइफिस्टोमा का शरीर ऐसा दिखाई देता है जैसे कि बहुत-सी तश्तरियाँ एक के ऊपर एक उल्टी रखी हों। विभाजन की यह क्रिया **स्ट्रोबाइलेशन** कहलाती है तथा इस प्रकार बना प्रत्येक खण्ड एक **इफाइरा** (ephyra) तथा लारवा का शरीर **स्ट्रोबाइला** (strobila) कहलाता है। स्ट्रोबाइलेशन के फलस्वरूप एक स्ट्रोबाइला से लगभग एक दर्जन इफाइरा बनते हैं। पूर्ण परिपक्व होने पर इफाइरा एक-एक करके अलग हो जाते हैं और उल्टे होकर स्वतन्त्रतापूर्वक तैरना प्रारम्भ कर देते हैं। साइफिस्टोमा का आधार भाग नये स्पर्शक बनाकर नया हाइड्रेट्यूबा (hydratuba) बना लेता है जो ग्रीष्म ऋतु में पुन: कलिकोत्पादन द्वारा तथा शिशिर में स्ट्रोबाइलेशन द्वारा नये जन्तु बनाता है।

6. इफाइरा (Ephyra)—इफाइरा नयी बनी या अपरिपक्व मेडयूसा को प्रदर्शित करता है। इसमें एक उथली तश्तरी के आकार की अम्ब्रेला होती है जिसका किनारा आठ द्विखण्डित पिण्डकों (bifid lobes) या भुजाओं के रूप में होता है। इसमें से चार भुजाएँ पर-रेडियल तथा चार इण्टर-रेडियल होती हैं। प्रत्येक द्विखण्डित पिण्डक का दूरस्थ स्वतन्त्र सिरा मार्जिनल लैपेट (marginal lappet) बनाता है तथा इसके गड्ढे में एक **टैण्टैक्युलोसिस्ट** (tentaculocyst) या **रोपैलियम** (rhopalium) होता है। इफाइरा में सब-अम्ब्रेलर सतह पर छोटा-सा आमाशय, मैनुब्रियम तथा चौकोर मुख होता है। आमाशय से नालें निकलकर भुजाओं में जाती हैं। ये पर-रेडियल तथा इण्टर-रेडियल नाल प्रदर्शित करती हैं। आमाशय में गैस्ट्रिक उभारों के स्थान पर गैस्ट्रिक तन्तु पाये जाते हैं।

इफाइरा का ओरेलिया में कायान्तरण (Metamorphosis of ephyra into Aurelia)—इफाइरा भोजन ग्रहण कर आकार में बढ़ता जाता है और पूर्ण *ओरेलिया* के आकार का हो जाता है। इसकी मेसोग्लिया बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसका एडरेडियल भाग अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से बढ़ता है जिससे गड्ढे भर जाते हैं तथा अम्ब्रेला का किनारा लगभग गोल हो जाता है। चार मुखीय भुजाएँ तथा असंख्य मार्जिनल स्पर्शक भी बन जाते हैं। कुछ समय पश्चात् एडरेडियल नाल (adradial canals) भी स्पष्ट हो जाती हैं। इफाइरा की चार इण्टर-रेडियल सेप्टल फनल, सब-जेनाइटल पिट (sub-genital pit) के रूप में रह जाती हैं। इस प्रकार पूर्ण परिपक्व *ओरेलिया* का निर्माण होता है।

जननों का एकान्तरण (Alternation of Generations)

ओरेलिया के जीवन-इतिहास में **'जननों का एकान्तरण'** पाया जाता है क्योंकि इसमें लैंगिक मेड्युसॉइड प्रावस्था के पश्चात् सदैव ही अलैंगिक पॉलिपॉयड प्रावस्था आती है। अत: इसमें लैंगिक तथा अलैंगिक प्रारूपों का क्रमिक एकान्तरण पाया जाता है। स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने वाला प्रौढ़ *ओरेलिया* (मेड्युसायड प्रावस्था) लैंगिक पीढ़ी को प्रदर्शित करता है तथा इसमें युग्मकों का निर्माण होता है। निषेचित अण्डे से स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने वाले लारवा बनने के पश्चात् स्थिर पॉलिपायड साइ-

फिस्टोमा (scyphistoma) बनता है। साइफिस्टोमा अलैंगिक पीढ़ी प्रदर्शित करता है तथा इसमें कलिकोत्पादन द्वारा जनन होता है।

किन्तु *ओरेलिया* के जीवन-इतिहास में पाया जाने वाला जननों का एकान्तरण वास्तविक जननों के एकान्तरण से भिन्न है, क्योंकि इसका मेड्यूसॉयड प्रारूप (medusoid form) अलैंगिक पॉलिप से कलिका के रूप में उत्पन्न होने के स्थान पर इफायरा के कायान्तरण से बनता है। इफायरा स्वयं पॉलिपॉयड साइफिस्टोमा के स्ट्रोबाइलेशन अथवा अनुप्रस्थ खण्डन (transverse fission) के द्वारा बनती है। अत: इसको जननों का एकान्तरण न मानकर विलम्बित कायान्तरण (prolonged metamorphosis) कहा जाता है जिसमें लारवा अवस्था (साइफिस्टोमा) में गुणन (multiplication) होता है।

प्रश्न 78. ओरेलिया के जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये तथा ओबेलिया से इसकी तुलना करिये।

Give an account of the life-history of *Aurelia* and compare it with that of *Obelia*. *(Lucknow 1951)*

ओरेलिया तथा ओबेलिया में जनन एवम् जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये।

Compare the reproduction and development of *Aurelia* and *Obelia*. *(Ranchi 1971)*

ओरेलिया का जीवन-इतिहास
(Life-history of Aurelia)

कृपया प्रश्न 77 देखिये।

ओरेलिया तथा ओबेलिया के जीवन-इतिहास की तुलना
(Comparison of Life-history of Aurelia and Obelia)

ओरेलिया (*Aurelia*)	ओबेलिया (*Obelia*)
1. ओरेलिया के जीवन-इतिहास में मेड्यूसायड प्रावस्था बड़ी तथा प्रभावी होती है।	1. पॉलिपायड प्रावस्था प्रभावी (dominant) होती है तथा मेड्यूसायड प्रावस्था बहुत कम समय के लिए होती है।
2. जनद (gonads) परिपक्व ओरेलिया पर बनते हैं।	2. जनद मेड्यूसा पर बनते हैं जो स्वयं पॉलिपायड ओबेलिया संघ से कलिका के रूप में अलग होता है।
3. नर तथा मादा जनद अलग-अलग जन्तुओं में बनते हैं।	3. नर तथा मादा जनद अलग-अलग मेड्यूसा पर बनते हैं।
4. निषेचन आन्तरिक (internal fertilization) होता है तथा यह मादा की आमाशयिक थैली (gastric pouches) के भीतर होता है।	4. निषेचन बाह्य (external fertilization) होता है तथा चारों ओर समुद्री पानी होता है।
5. युग्मनज में पूर्ण तथा असमान (holoblastic and unequal) विभाजन होते हैं।	5. युग्मनज के विभाजन पूर्ण तथा समान होते हैं।

ओरेलिया (*Aurelia*)	ओबेलिया (*Obelia*)
6. ब्लास्टुला में अन्तर्गमन (invagination) की क्रिया के फलस्वरूप गैस्ट्रुला का निर्माण होता है।	6. ओबेलिया में गैस्ट्रुला का निर्माण एक्टोडर्म की कोशिकाओं के आप्रवास (immigration) से होता है।
7. प्लैन्युला लारवा में ब्लास्टोपोर नामक छिद्र होता है। इसके द्वारा आन्त्र-गुहा (coelenteron) बाहर की ओर खुलती है। अतः इसमें अगला तथा पिछला सिरा निश्चित होता है।	7. प्लैन्युला लारवा प्रारम्भ में ठोस रचना होती है जिसमें ब्लास्टोपोर नहीं होता।
8. प्लैन्यूला वर्धन के पश्चात् हाइड्रेट्यूबा (hydratuba) या साइफिस्टोमा बनाता है जो पॉलिपॉयड प्रावस्था प्रदर्शित करता है। यह छोटा, अपविकसित (reduced) तथा अकेला होता है।	8. प्लैन्युला हाइड्रुला (hydrula) प्रावस्था में परिवर्तित हो जाता है। प्रत्येक हाइड्रुला द्वारा पूर्ण संघ का निर्माण होता है। पॉलिपायड प्रावस्था प्रभावी होती है।
9. साइफिस्टोमा में स्ट्रोबाइलेशन की क्रिया द्वारा बहुत-से तश्तरी के आकार के इफायरा बनते हैं जो अलग होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते हैं।	9. ओबेलिया संघ से ब्लास्टोजुऑड (blastozooids) तथा मेड्यूसा कलिकोत्पादन द्वारा बनते हैं।
10. इसमें अलैंगिक विधि द्वारा पैतृक हाइड्रेट्यूबा से सन्तति हाइड्रेट्यूबी (daughter hydratubae) बनते हैं।	10. कलिकोत्पादन की क्रिया के फलस्वरूप संघ में तीन प्रकार के जीवक (zooids) बनते हैं जिनके द्वारा ओबेलिया संघ बढ़ता है।
11. इफायरा प्रौढ़ मेड्यूसायड जीवक बनाते हैं।	11. मेड्युसा ब्लास्टोस्टाइल के अक्ष पर कलिका के रूप में, लगते हैं। इसमें इफायरा के समान कोई इण्टरमीडियेट (intermediate) प्रावस्था नहीं होती।
12. वास्तविक जननों का एकान्तरण या मेटाजेनेसिस नहीं होता।	12. ओबेलिया के जीवन-इतिहास में वास्तविक जननों का एकान्तरण नहीं होता।

प्रश्न 79. ओरेलिया की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन करिये।
Give an account of the structure and life-history of *Aurelia*.

(*Lucknow 1953*)

कृपया प्रश्न 73 व 77 देखिये।

प्रश्न 80. केवल चित्रों द्वारा ओरेलिया की संरचना एवम् जीवन-इतिहास का निरूपण कीजिये।

Illustrate the structure and life-history of *Aurelia* by means of suitable sketches alone. Add a note on metagenesis.

(*Lucknow 1957 ; Utkal 68*)

कृपया चित्र 18·1, 18·2 तथा 18·5. देखिये।

प्रश्न 81. साइफोजोअन पॉलिप का वर्णन कीजिये तथा सी-एनीमोन के साथ इसकी तुलना करिये।

Describe the scyphozoan polyp and compare it with that of a sea anemone. (*Poona 1964*)

साइफोजोअन पॉलिप (Scyphozoan Polyp)

साइफोजोअन पॉलिप हाइड्रेट्यूबा (hydratuba) या साइफिस्टोमा (scyphistoma) अवस्था द्वारा प्रदर्शित होता है। यह प्लैन्यूला लारवा से विकसित होता है। साइफिस्टोमा एक छोटी तुरही के समान (trumpet-shaped) अथवा हाइड्रा के समान पॉलिप है जो लगभग 5 से 12 mm. लम्बा होता है। इसका शरीर कोमल होता है और इस पर पैरिसार्क (perisarc) नामक स्तर नही होता। इसका शरीर तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(*i*) सँकरा व वृन्त के समान **आधार बिम्ब** (basal disc) जो आधार से चिपकता है, (*ii*) तुरही के आकार का शरीर, तथा (*iii*) छोटा-सा मैनुब्रियम जो एक्टोडर्म से आस्तारित होता है। मैनुब्रियम के दूरस्थ स्वतन्त्र सिरे पर मुख स्थित होता है। यह चौकोर (rectangular) रचना है जिसको घेरे हुए स्पर्शक होते है। प्रारम्भ में मुख के चारों ओर केवल चार पर-रेडियल स्पर्शक होते है किन्तु बाद में इण्टर-रेडियल तथा एडरेडियल स्पर्शक और बन जाते है जिनके फलस्वरूप परिपक्व साइफिस्टोमा के मुख के चारों ओर 16 स्पर्शकों का घेरा होता है। मुख के पास के एक्टोडर्म के अन्तर्गमन (invagination) से कीप के आकार के (funnel-shaped) चार गड्ढे बन जाते हैं। ये **सेप्टल फनल** (septal funnels) तथा **इनफन्डिबुला** (infundibula) कहलाते हैं और आन्तर-अरीय (inter-radial) होते है। चारों सेप्टल फनल भीतर की ओर गैस्ट्रिक उभारों (gastric ridges) में खुलते है। गैस्ट्रिक उभार या सेप्टा (septa) या मीसेण्ट्रीज (mesenteries) चार आन्तर-अरीय लम्बवत् उभार (four inter-radial longitudinal ridges) हैं जो आन्त्र-गुहा को आस्तारित करने वाले एण्डोडर्म के मोटे होने से बनते है। एण्डोडर्म के साथ मेसोग्लिया भी सेप्टा बनाता है। सेप्टा से बने हुए चार एक्टोडर्म कोशिकाओं के समूह सेप्टल पेशियों (septal muscles) का
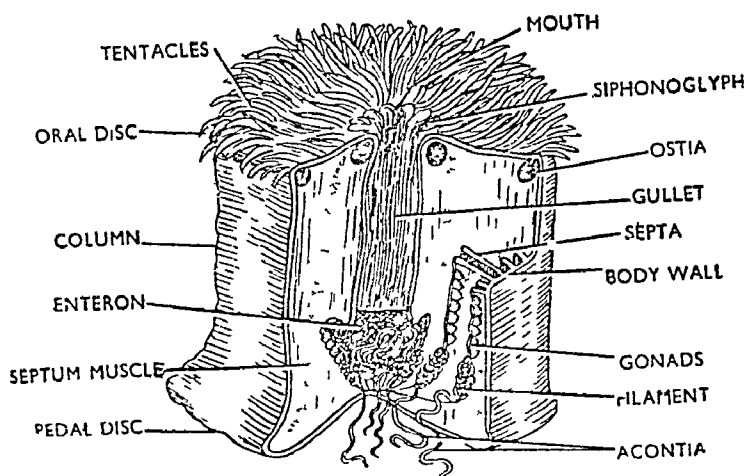
चित्र १८९. सी एनीमोन की आन्तरिक तचना (internal structure of sea-anemone)

निर्माण करते हैं। सेप्टा की उपस्थिति के कारण आंत्र-गुहा चार पर-रेडियल कोष्ठों या **गैस्ट्रिक थैलियों** (gastric pouches) में बँटी रहती है। किनारों के साथ-साथ प्रत्येक सेप्टम के बाहरी भाग में **सेप्टल ओस्टियम** (septal ostium) नामक छिद्र होता है।

साइफिस्टोमा में पार्श्व कलिकोत्पादन (lateral budding) द्वारा अलैंगिक जनन होता है जिससे सन्तति हाइड्रैट्यूबी या सन्तति साइफिस्टोमी बनते हैं परन्तु अन्त में शरद् तथा शिशिर ऋतु में इनमें स्ट्रोबाइलेशन (strobilation) की क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप इफायरा (ephyra) बनते हैं।

साइफोजोअन पॉलिप तथा सी-एनीमोन में तुलना
(Comparison Between the Scyphozoan Polyp and Sea-anemone)

साइफोजोअन पॉलिप (*Scyphozoan Polyp*)	सी-एनीमोन (*Sea-anemone*)
1. यह तुरही के आकार का अथवा अजीव आकृति (bizarre appearance) वाला जन्तु है।	1. सी-एनीमोन का शरीर छोटा तथा बेलनाकार होता है और यह फूल के समान प्रतीत होता है।
2. यह एकल जीवक है।	2 यह एकल जन्तु (solitary animal) है जिसकी रचना पॉलिप के समान होती है।
3. शरीर तीन भागों में बाँटा जा सकता है :— (*i*) आधार बिम्ब (basal disc) (*ii*) दण्ड (column) (*iii*) मैनुब्रियम (manubrium) इनको अलग करने के लिए खाँच (grooves) नही होती।	3. इसका शरीर भी तीन भागों में बाँटा जा सकता है। :— (*i*) मुखवर्ती बिम्ब (oral disc) (*ii*) दण्ड (column) (*iii*) आधार बिम्ब (basal disc) समस्त भाग एक-दूसरे से खाँचों द्वारा अलग रहते है।
4. मुख चौकोर (four-sided) छिद्र है जो एक उभरी हुइ रचना मैन्युब्रियम पर स्थित होता है।	4. मुख एक लम्बी दरार के समान छिद्र है जो फैले हुए मुखवर्ती बिम्ब (oral disc) के मध्य में स्थित होता है।
5. मुख के चारो ओर 16 स्पर्शकों का एक घेरा होता है ये कभी भी शाखान्वित नही होते।	5. स्पर्शक संख्या में अनेक होते हैं तथा बहुत-से घेरों (circlets) में लगे रहते हैं। ये कभी-कभी शाखान्वित भी होते हैं।
6. मैन्युब्रियम के भीतर का स्तर एण्डोडर्म का बना होता है।	6. परितुण्ड या पैरिस्टोम (peristome) पर एक्टोडर्म का स्तर होता है।
7. सिलियेटेड ग्रूव (ciliated grooves) नही पाये जाते।	7. गले में एक या दो सिलियेटेड ग्रूव या साइफोनोग्लाइफ (ciliated grooves or siphonoglyphs) होते है।
8. देहभित्ति से केवल चार आन्तर-आरीय सेप्टा निकलकर आंत्र-गुहा में लटके रहते है। ये सभी एक ही आकार तथा परिमाण (shape	8. देहभित्ति से बहुत-से सेप्टा आंत्र-गुहा में लटके रहते है। ये भिन्न-भिन्न आकार तथा परिमाण (different shapes and sizes) के

साइफोजोअन पॉलिप (*Scyphozoan Polyp*)	सी-एनीमोन (*Sea-anemone*)
and size) के होते हैं ; अतः ये प्राथमिक, द्वितीयक या तृतीयक (primary, secondary or tertiary) सेप्टा मे विभक्त नही किये जा सकते ।	होते है । ये प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक जोड़ो मे बाँटे जा सकते है ।
9. प्रत्येक सेप्टम मे केवल एक ही सेप्टल ऑस्टियम (septal ostium) पाया जाता है ।	9. प्राथमिक मीसेण्ट्री मे एक जोडी छिद्र या ऑस्टिया पाये जाते है जिसमें से एक मार्जिनल (marginal) तथा दूसरा अक्षीय (axial) होता है ।
10. जनद नही पाये जाते ।	10. जनद मीसेण्ट्रीज के ऊपर पाये जाते है ।

अध्याय 19

विविध प्रश्न
(Miscellaneous Questions)

प्रश्न 82. प्रवाल भित्तियों एवम् प्रवाल वलयों पर एक निवन्ध लिखिये।
Write an essay on coral reefs and atolls. (*Bombay 1961*)
प्रवाल भित्तियाँ क्या होती हैं ? ये किस प्रकार वनती हैं ? इनके प्रसार के बारे में वताइये।

What are coral reefs ? Explain how they are formed and indicate their geographical distribution. (*Madras 1958*)

प्रवाल भित्ति (Coral Reefs)

परिभाषा (Definition)—प्रवाल-भित्ति समुद्र में पायी जाने वाली $CaCO_3$ की वनी मेंड़ (ridges) अथवा टीले (mounds) के समान रचनाएँ हैं। ये उन जन्तुओं के वाह्य-कंकाल तथा खोलों के अवशेष प्रदर्शित करती हैं जो साधारणतया स्टोनी-कोरल (stony corals) कहलाते हैं। ये फाइलम सीलेन्ट्रेटा की क्लास एक्टीनोजोआ (actinozoa) के सदस्य हैं। स्टोनी-कोरल के अतिरिक्त कुछ अन्य जन्तुओं जैसे—नलीपोर (nullipores), कोरेलाइन एलगी (coralline algae), कार्वोनिट युक्त शाखान्वित एलगी, ट्यूवीपोरा (*Tubipora*), मिलिपोरा (*Millepora*), हेलिपोरा (*Helipora*), गोरगोनिया (*Gorgonia*) तथा फोरामिनिफेरा इत्यादि के वाह्य-कंकाल प्रवाल-भित्ति वनाने में सहयोग प्रदान करते हैं वैंगहेन (Vaughan) के अनुसार "**प्रवाल-भित्ति चूने की वनी एक मेंड़ या टीला है जिसकी वाहरी सतह समुद्री तल के समीप होती है और कोरल जन्तुओं द्वारा स्रावित $CaCO_3$ से वनती है।**"

प्रसार (Distribution)—प्रवाल-भित्तियाँ उष्ण तथा उपोष्ण-कटिवन्धीय प्रदेशों के समुद्र में पायी जाती है, और समशीतोष्ण कटिवन्ध के जल में भी वन जाती हैं। किन्तु कोरल जीवक 70°F से कम तापक्रम पर जीवित नहीं रह सकते। ये केवल उथले समुद्री जल में ही उग सकते हैं। अत: प्रवाल-भित्तियाँ अधिकतर हिन्द महासागर के मालदीव द्वीप (Maldive Island) में तथा प्रशान्त महासागर के मार्शल, फिजि एवम् वेक द्वीप (Marshal, Fizi and Wake Islands) में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ह्वाइट द्वीप (White Sunday Island), वेहोमा (Bahoema) द्वीप तथा आस्ट्रेलिया की ग्रेट वेरियर रीफ (Great Barrier Reef) भी प्रवाल-भित्तियाँ हैं।

किस्में (Types)

प्रवाल-भित्तियाँ तीन प्रकार की होती है :—

1. तटीय प्रवाल-भित्ति
2. रोवी प्रवाल-भित्ति
3. प्रवाल-वलय
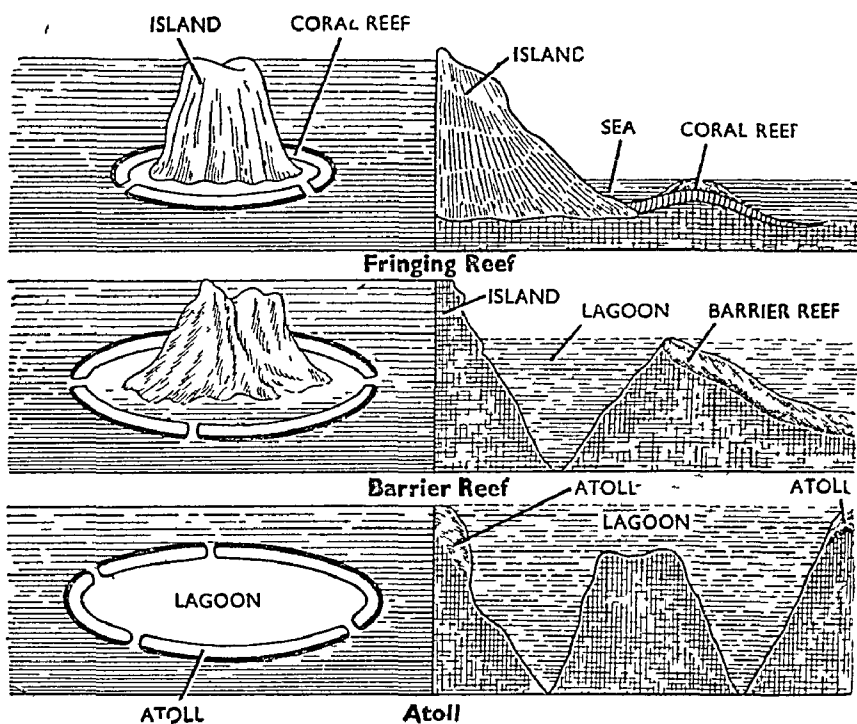
चित्र १६·१. विभिन्न प्रकार के प्रवाल—पूर्ण व सेक्शन मे (Different types of reefs—entire as well as in cross-section)

1. तटीय प्रवाल-भित्ति (Fringing reef)—तटीय प्रवाल-भित्ति किसी ज्वालामुखी द्वीप के तट अथवा महाद्वीप के तट से एक प्लेटफार्म के रूप में वनती है। तटीय प्रवाल-भित्ति तथा द्वीप के बीच की दूरी कुछ फीट से लेकर 1/4 मील तक होती है। इसमे निम्नलिखित भाग होते है :—

(*i*) **समुद्र की ओर का ढलान वाला भाग या अपतट ढलान** (seaward slope)—जिस पर प्रवाल उगते हैं।

(*ii*) **प्रवाल कोर** (Coral edge)—जहाँ प्रवाल के निर्माण एवम् ध्वंस की क्रियाएँ साथ-साथ चलती है।

(*iii*) **प्रवाल-भित्ति का चपटा भाग** (Reef edge)—यह प्रवाल कोर की अपेक्षा कुछ नीचा होता है और प्रवालीय मिट्टी, कीचड़ तथा मृतक कंकाल जन्तुओ का वना होता है। इसमे कुछ जीवित प्रवाल-सघ (coral colonies) भी पाये जाते है। द्वीप का चट्टानी या रेतीला किनारा प्रवाल भित्ति के अपतट ढलान से जुडा हो सकता है किन्तु अधिकतर दोनों के बीच गोलाश्म भाग (boulder zone) होता है। कभी-कभी द्वीप तथा गोलाश्म भाग के बीच आन्तरिक चपटा स्थान (inner flat area) भी पाया जाता है जिसमें समुद्री जल भरा होता है।

2. रोधी प्रवाल-भित्ति (Barrier reef)—रोधी प्रवाल-भित्ति तटीय प्रवाल-भित्ति के समान होती है किन्तु यह द्वीप या महाद्वीप के तट से लगभग 1000 फीट चौड़े समुद्र द्वारा अलग रहती है। इसकी गहराई इतनी अधिक

होती है कि इसमें से बड़े से बड़ा जहाज आ-जा सकता है। यह जलीय भाग **लैगून** (lagoon) कहलाता है। यह 60–1000 फीट गहरा तथा 1/2 से 10 मील या इससे भी अधिक चौड़ा होता है। संसार की सर्वप्रसिद्ध रोधी प्रवाल-भित्ति **ग्रेट बैरियर रीफ** (Great Barrier Reef) है जो ऑस्ट्रेलिया के उत्तरी-पूर्वी तट के साथ 1,200 मील तक फैली हुई है।

3. प्रवाल-वलय (Atoll)—ये अनियमित किन्तु लगभग गोल, छल्लेनुमा या घोड़े की नाल के आकार की प्रवाल-भित्तियाँ हैं जिनके बीच के खाली स्थान में समुद्री जल भरा होता है। यह जलीय भाग लैगून (lagoon) कहलाता है। मालदीव द्वीप की भाषा में राज्य का प्रत्येक प्रदेश अटोलू (atolu) तथा उसका अधिकारी
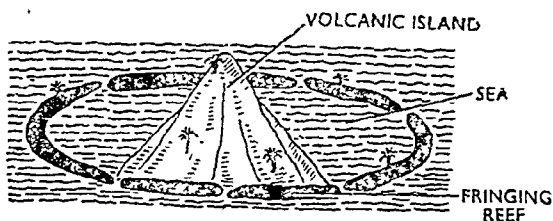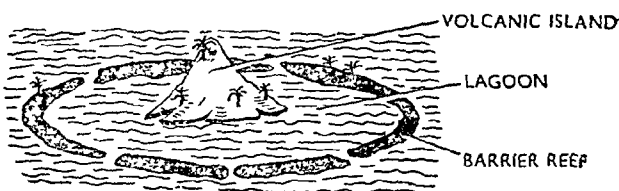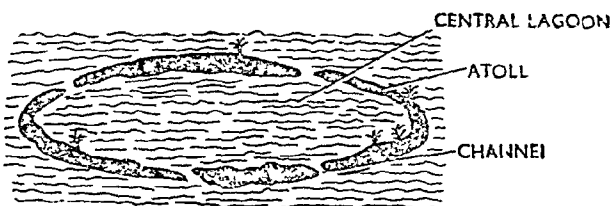
चित्र १६·२. (A) तटीय प्रवाल भित्ति (A fringing reef), (B) रोधी प्रवाल-भित्ति (A barrier reef), (C) प्रवाल-वलय (Atoll)

या गवर्नर अटोलवराई (atoluveri) कहलाता है। प्रत्येक प्रदेश आकार में गोल होता है तथा जगह-जगह पर नालों द्वारा विभाजित होता है। अतः प्रवाल-वलय में बहुत-से कोरल के बने भूमि-भाग होते हैं जिनके बीच में समुद्री जल की कुल्याएँ होती हैं। इसी रचना के आधार पर ये अटोल या प्रवाल-वलय (atolls) कहलाते हैं।

प्रवाल-भित्ति के निर्माण के सिद्धान्त
(Theories of Reef-formation)

प्रवाल-भित्ति बनाने वाले प्रवाल तटवर्ती होते हैं और 150 फीट से अधिक गहरे समुद्र में नही उग सकते। इस कारण प्रवाल-भित्तियों की अत्यधिक ऊँचाई का कारण समझ मे नही आता, यद्यपि प्राचीन काल से ही प्रवाल-भित्तियों के निर्माण के सम्बन्ध में बहुत-से सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। उनमें से मुख्य सिद्धान्त निम्न है :—

1. स्ट्रसबरी का ज्वालामुखी चषक सिद्धान्त (Struchbury's volcanic crater theory)—प्रवाल-वलय का छल्लेनुमा आकार देखकर **स्ट्रसबरी** (Strutchbury) ने इसके उद्‌गम के लिए निम्न अनुमान प्रतिपादित किया। प्रशान्त महासागर में प्रवाल-वलय ज्वालामुखी चषक के किनारों पर बने थे। ज्वालामुखी चषक के पानी में डूबने पर लैगून बना तथा इसी के पहाड़ी भागों पर प्रवाल वृद्धि करते रहे और अन्त में पानी की सतह के ऊपर निकल आये। लेकिन प्रवाल-वलय के विभिन्न आकार तथा निश्चित गहराई के लैगून की उपस्थिति के कारण इस सिद्धान्त को नहीं माना जाता।

2. डार्विन तथा डाना का अवतलन सिद्धान्त (Darwin and Dana's theory of subsidence)—डार्विन के मतानुसार प्रवाल तटीय भित्ति के रूप में द्वीप के किनारे पर उगना प्रारम्भ करते है। द्वीप के किनारों के धीरे-धीरे पानी में धँसने पर (subsidence of the edges) तटीय प्रवाल-भित्ति रोधी प्रवाल-भित्ति में बदल जाती है और अन्त में पूर्ण-रूप से समुद्र में धँस जाने पर प्रवाल-वलय बनता है। द्वीप के जल में धँसने की गति अत्यन्त धीमी होती है एवम् अवतलन गति प्रवाल के उगने की गति के बराबर होती है। अतः प्रवाल-भित्ति का तल सदैव समुद्री तल के साथ रहता है। धँसता हुआ द्वीप धीरे-धीरे छोटा होता जाता है और अन्त में पूर्णतया लुप्त हो जाता है। फलस्वरूप छल्लेनुमा प्रवाल-वलय का निर्माण होता है।

डार्विन के मतानुसार समस्त प्रशान्त महासागर के अवतलन की क्रिया एक साथ हुई किन्तु ऐसा असम्भव है। अतः आधुनिक मत के अनुसार प्रत्येक द्वीप का अवतलन स्वतन्त्र रूप से हुआ है। **डाना** (Dana) तथा **डेविस** (Davis) का अध्ययन डार्विन के इस सिद्धान्त का समर्थन करता है।

3. सेम्पर-मुर्रे का सिद्धान्त (Semper-Murry's theory)—जॉन मुर्रे (Sir John Murray) के अनुसार समुद्र के आधार तल पर अनेकानेक समूहों के जन्तुओं के चूने के बने बाह्य-ककाल के एकत्रित होने पर टीला-सा बन जाता है। बाह्य-कंकाल फाइलम मौलस्का के जन्तुओं के खोल, फोरामिनिफेरा मृदुपंक (foraminifera ooze) तथा सितारा मछली इत्यादि का होता है। 50 फैदम की गहराई तक पहुँचने पर भित्ति-निर्माण करने वाले प्रवाल वृद्धि करके पानी की सतह पर पहुँच जाते है और प्रवाल-भित्ति बनाते हैं। भित्ति के बाहरी किनारे पर प्रवाल की अधिक वृद्धि के द्वारा रोधी प्रवाल-भित्ति का निर्माण होता है तथा प्रवाल की चट्टानों के समुद्री पानी में घुलने से प्रवाल वलय बनता है।

4. किनारे के अवतलन का सिद्धान्त (Submerged bank theory)—आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार प्रवाल केवल उन्हीं चपटी सतहों पर उगते हैं जो

द्वीपों के अवतलन से समुद्र के अन्दर या समुद्र की सतह पर पायी जाती हैं। द्वीपों का अवतलन कटाव (erosion) अथवा अनाच्छादन (denudation) की क्रियाओं द्वारा होता है।

5. डेली का ग्लेशियर नियमन सिद्धान्त (Daly's glacial control theory)—डेली (Daly) का अनुमान था कि अन्तिम-हिम-काल में पृथ्वी के दोनों ध्रुवों पर लगभग एक-एक मील मोटी वर्फ जम गई जिसके फलस्वरूप समुद्रतल लगभग 150 फीट नीचे आ गया। इसके फलस्वरूप आन्तर-हिम-काल में बने मिट्टी तथा रेत के बने चपटे ढेर पानी के तल से ऊपर उठ आये। ये द्वीप प्रवालों के उगने के लिए उपयुक्त थे किन्तु हिम-काल में तापक्रम कम होने के कारण ये उग नहीं सके। आने वाले आन्तर-हिम-काल में वर्फ के पिघलने से समुद्रतल ऊपर उठने लगा तथा उसने इन द्वीपों को ढक लिया। इस काल में समुद्री जल के तापक्रम में वृद्धि होने पर समस्त समुद्री द्वीप जो समुद्रतल से कुछ ही गहराई पर थे प्रवालोत्पादन के लिए उपयुक्त हो गये। यह माना जाता है कि प्रवालों की वृद्धि की गति तथा समुद्रतल के ऊपर उठने की गति लगभग समान थी जिसके फलस्वरूप इन पर सदैव ही प्रवाल वृद्धि करते रहे। ग्लेशियर सिद्धान्त उचित ज्ञान एवं परिशुद्ध गणना पर आधारित है।

डेली का ग्लेशियर नियमन सिद्धान्त तथा किनारे के अवतलन का सिद्धान्त जो एक-दूसरे के पूरक हैं, अधिक मान्य हैं। असंख्य अध्ययनों से यही ज्ञात होता है कि प्रवाल भित्तियाँ सदैव ही पहले से डूबी हुई भूमि, चट्टानों तथा घाटियों इत्यादि पर बनती हैं। किन्तु अनेक स्थानों पर किये गये वेधन प्रयोग (boring experiments) डार्विन के अवतलन सिद्धान्त (Darwin's subsidence theory) के पक्ष में हैं।

प्रश्न 83. सीलेन्ट्रेट में बहुरूपता पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on polymorphism in coelenterates.
(*Jabalpur 1972 ; Kerela 73*)

बहुरूपता (Polymorphism)

जब कोई जीव अलग-अलग कार्य करने वाले एक-से अधिक रूपों में मिलता है तो इस प्रक्रम को **बहुरूपता** (polymorphism) कहते हैं।

सीलेन्ट्रेट प्राणियों में बहुरूपता का पाया जाना उनकी एक विशिष्टता है। क्लास **हाइड्रोजोआ** में बहुरूपता के कुछ सर्वोचित उदाहरण देखने को मिलते हैं। एक बहुरूपी सीलेन्ट्रेट में एक से अधिक प्रकार के **जीवक** (zooids) मिलते हैं जैसे *ओबेलिया* (*Obelia*) में। ये मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है :—**पॉलिप** (polyp) तथा **मेडूसा** (medusa)। इन दोनों रूपों को एक-दूसरे से व्युत्पन्न किया जा सकता है। पॉलिप अवृंत, लम्बा एवम् वेलनाकार होता है जिसके स्वतन्त्र मुखवर्ती सिरे पर मुख व स्पर्शक होते है तथा मेडूसा स्वतन्त्र तैरने वाला एवम् छत्र (umbrella) के समान होता है और इसके उपान्तों पर स्पर्शक होते हैं। पॉलिप पोषण व श्वसन इत्यादि कार्य करता है जबकि मेडूसा मुख्यत: जननीय होता है। जीवकों की संख्या तीन या चार तथा कभी-कभी छ: तक होती है जैसे हेलीस्टेमा (*Helistemma*) में।

वास्तव में बहुरूपता श्रम-विभाजन का एक प्रक्रम है जिसमें विभिन्न जीव अलग-अलग कार्य करते है। क्लास हाइड्रोजोआ के आर्डर साइफोनोफोरा (siphono-

phora) में बहुरूपता की उच्चतम सीमा देखने को मिलती है (चित्र 19·3)। इसमे पॉलिप जीवक तीन प्रकार के होते हैं—
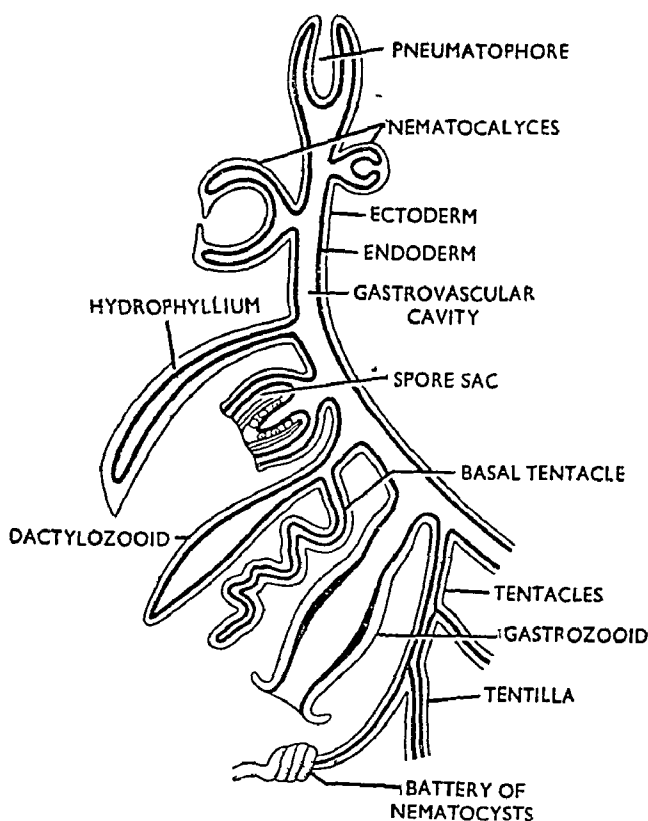
चित्र १९·३. एकसाइफोनोफोर का सामान्यकृत
(Generalised diagram of a siphonophore)

पोषजीवक (gastrozooids), **जननजीवक** (gonozoids) तथा **डैक्टिलोजोआॅयड** (dactylozooids) और मेडूसा जीवक चार प्रकार के—**न्यूमेटोफार** (pneumatophores), **नैक्टोकैलिसिज** (nectocalyces), **ब्रैक्ट्स** (bracts) तथा **जननधर या गोनोफोर** (gonophores)।

1. पॉलिप जीवक (Polypoid Zooids)

(1) पोषजीवक या गैस्ट्रोजुआॅइड्स (Gastrozooids)—पोषजीवक मण्डल के पोषक या भोजन का अन्तरग्रहण करने वाले जीवक है। प्रत्येक पोषजीवक या गैस्ट्रोजुआॅइड एक नालाकार सरचना है जिसके सिरे पर मुख स्थित होता है। पोपजीवक के आधार से एक लम्बा, सकुचनशील व खोखला स्पर्शक विकसित होता है। इस पर अनेक पार्श्व सकुचनशील शाखाएँ होती है जिन्हें **स्पर्शशाखाएँ या टेन्टिला** (tentilla) कहते है। इनमे से प्रत्येक स्पर्शशाखा (tentillium) के सिरे पर दंश-कोशिकाओं (nematocyts) की कुन्डलिनी या घुन्डी होती है।

2. डैक्टिलोजुआॅइड्स (Dactylozooids)—ये मण्डल के रक्षात्मक पॉलिप हैं जिन्हें **स्पर्शकहनु या पेल्पॉन** (palpon), **स्वादक** (*tasters*) या **स्पर्शक** (*feelers*)

कहते हैं। प्ररूपी रूप से ये पोषजीवकों (gastrozooids) के समान होते हैं किन्तु इनमें मुख नहीं होता और ये अशाखित होते हैं। *वलैला* (*Vallela*) तथा *पॉर्पिटा* (*Porpita*) में डैक्टिलोजुऑइड्स मण्डल के उपान्त से लम्बे, खोखले व स्पर्शक के समान कायों के रूप में विकसित होते हैं जिन्हें **स्पर्शजीवक** (tentaculozooids) कहते हैं। जनन-घरों या **गोनोफोर** (gonophores) से सम्बद्ध होने पर स्पर्शक के समान डैक्टिलोजुऑइड्स **जननस्पर्शक** या **गोनोपेलपॉन** (gonopalpons) कहलाते हैं। फाइसेलिया (*Physalia*) में डैक्टिलोजुऑइड अत्यधिक लम्बे होते हैं।
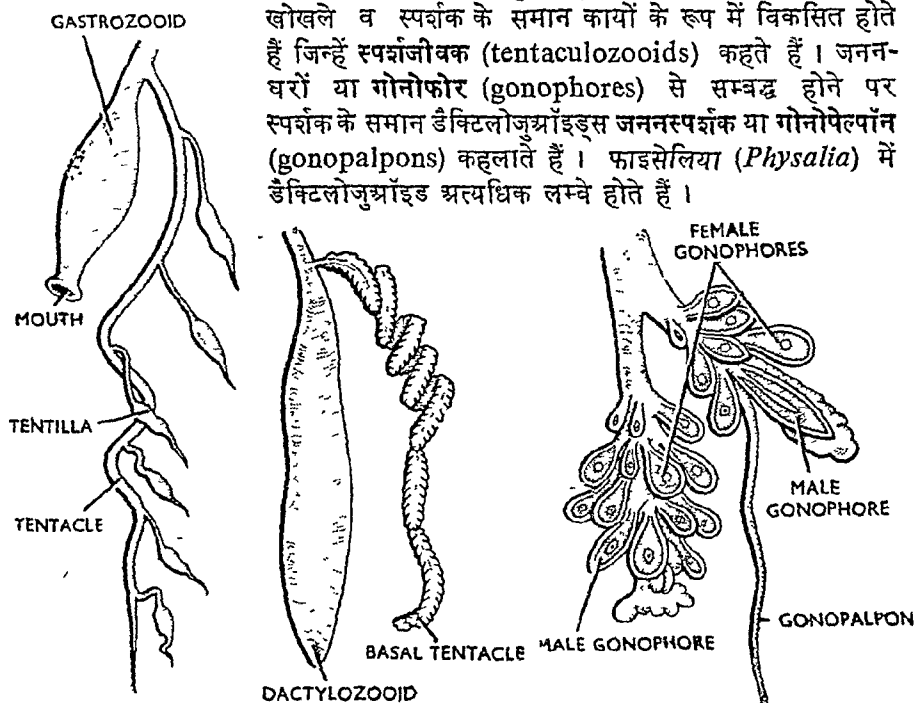
चित्र १९·४. स्पर्शक व स्पर्शशाखाओं युक्त एक पोषजीवक (Gastrozooid with tentacle and tentilla)

जित्र १९·५. स्पर्शक युक्त डैक्टिलोजुऑइड (Dactylozooid with tentacle)

चित्र १९·६. जननस्पर्शक एवम् नर व मादा जननघरों युक्त गोनोडेन्ड्रोन (Gonodendron with gonopalpon and male and female gonophores)

3. **जननजीवक या गोनोजुऑइड्स** (Gonozooids)—ये जननीय जीवक हैं जिनको **कोरकस्तम्भ** या **ब्लास्टोस्टाइल्स** (blastostyles) कहते हैं। इनमें मुख व स्पर्शक नहीं होते। ये मुकुलन एवम् मेडूसी द्वारा अलैंगिक जनन करते हैं। *वलैला* तथा *पॉर्पिटा* में ये पोषजीवक (gastrozooid) के समान होते हैं और इनमें मुख होता है। प्राय: पोपजीवक शाखित वृंतों का रूप ले लेते है जिन्हें **गोनोडेन्ड्रा** (gonodendra) कहते हैं। इन पर अंगूरों के गुच्छे के समान जननघर या गोनोफोर (gonophores) होते हैं। प्राय: *फाइसेलिया* (*Physalia*) में ये **जननस्पर्शक** (गोनोपेलपॉन) युक्त होते है।

2. मेडूसॉइड जीवक (Medusoid Zooids).

4. **तरण घण्टिका** (Swimmnig bell)—तरण घण्टिकाएँ जिनको **नेक्रोकैलिसिज** (necrocalyces), **नेक्टोफोर** (nectophores) या **नेक्टोजुऑइड** (nectozooid) भी कहते हैं, मेडूसा जीवक हैं। इनमें एक **घण्टिका,** एक **वीलम,**

चार अरीय नाल तथा एक वलय नाल होती हैं। किन्तु इनमें मुख, मैनुब्रियम, स्पर्शकों एवम् संवेदी अंगों का अभाव होता है। तरण घण्टिका की आकृति में विविधता होती है और यह द्विपार्श्व सममित, प्रिज्मीय, लम्बी या चपटी होती है। पेशियों के विकसित होने के कारण तरण घण्टिकाएँ अत्युत्तम तरण अंगों का कार्य करती हैं और मण्डल के चलन में सहायक होती हैं।

5. न्यूमेटोफोर (Neumatophores)—न्यूमेटोफोर या **प्लव** (floats) गुब्बारे नुमा या आशयी रचनाएँ हैं जिनमें गैस भरी रहती है जो मण्डल को तैरने में सहायता करती है। प्रत्येक न्यूमेटोफोर एक उल्टी मेडूसा-घण्टिका को प्रदर्शित करता है जिसमें एक वाह्य वहिःछत्र (exumbreller) अधिचर्म, **न्यूमेटोकोडॉन** (pneumatocodon) तथा एक भीतरी अवछत्रीय (subumbrellar) अधिचर्म, **न्यूमेटोसैकस** (pneumatosaccus) या **वायु-आशय** (air sac) होता है। ये दोनों द्विस्तरीय एवम् पेशीय होती हैं। इन दोनों के बीच के द्विक स्थान को **गैस्ट्रोवैस्कुलर गुहा** (gestrovascular cavity) कहते है।
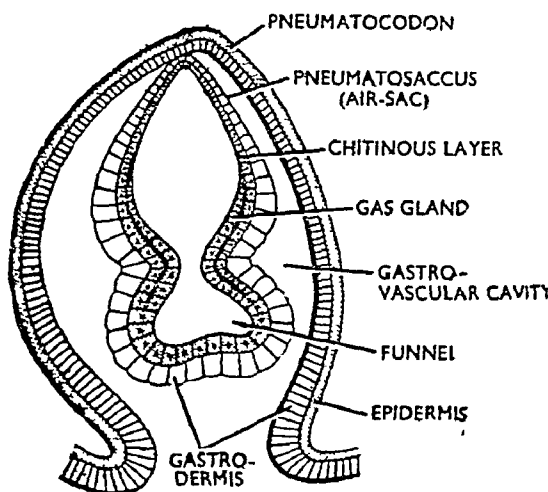
चित्र १९·७. न्यूमेटोफोर की खड़ी काट (V.S. neumatophore)

आकार एवम् आकृति में विविवता की पराकाष्ठा विभिन्न साइफोनोफोर्स में देखने को मिलती है। एगेलमा (*Agalma*) में प्लव सरल होता है और इसका
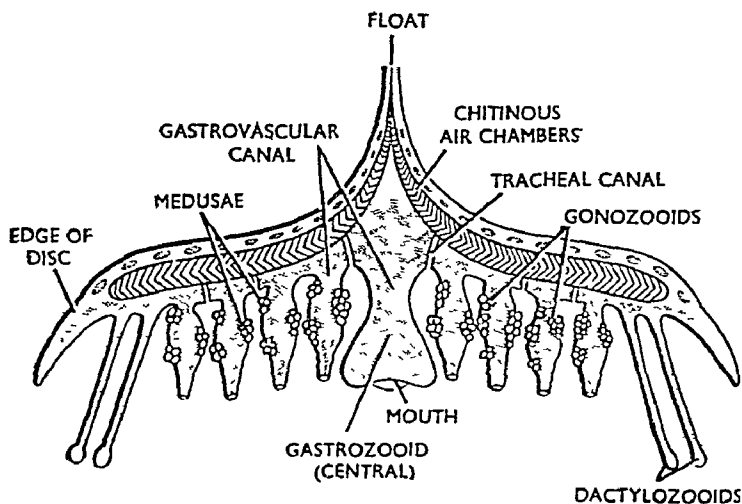
१९·८. वलेला मण्डल का ऊर्ध्वाधर सेक्शन (Valiela colony in V.S.)

वायु-आशय एपिडर्मिस द्वारा स्रावित काइटिन के स्तर का बना होता है।

हेलीस्टेमा (*Helistemma*) में न्यूमेटोफोर अतिसूक्ष्म होता है किन्तु फाइसेलिया व कुछ अन्यों में यह अत्यधिक बड़ा व फूला हुआ होता है। पॉपिटा में डिस्क-के समान होता है और एक तल में विन्यसित काइटिन के अनेक कक्षों का बना होता है। इनकी दीवारों में छिद्रों द्वारा ये एक-दूसरे तथा केन्द्रीय कक्षों से संचारित रहते है। वलेला का प्लव (float) महीन व ऊर्ध्वाधर होता है। वायु-आशय खुला या वन्द प्रकार का होता है। खुले प्रकार का होने पर यह एक अग्रस्थ छिद्र द्वारा (राइजोफाइसा : *Rhizophysa*) या आधार छिद्र द्वारा (स्टीफेलिआ : *Stephalia*) अथवा फिर अनेक छिद्रों द्वारा वाहर से संचारित रहता है जैसे वलेला एवम् पॉपिटा मे। स्टिफेलिआ मे प्लव का कुछ भाग आंशिक रूप से संकीर्ण होकर अण्डाभ मेडूसा के समान काय वनाता है जिसे **ऑरोफोर** (aurophore) कहते है।

चित्र १६·६ स्टीफेलिया में ऑरोफोर (Aurophore in *Stephalia*)

6. ब्रैक्ट्स (Bracts)—ब्रैक्ट्स जिनको **पर्णजीवक** (phyllozooids) या **हाइड्रोफाइलिया** (hydrophyllia) भी कहते हैं स्थूलित, जिलेटिन के समान तथा मेसोग्लिया की वक्रिक पट्टिकाओं के बने होते है। ये प्रिज्म के समान, पर्णाभ, ढालनुमा या टोप-के समान होते हैं। ये मेडूसी से भिन्न होते है और इनमें एक सरल या शाखित गैस्ट्रोवेस्कुलर नाल होती है।

7. जनकधर या गोनोफोर (Gonophore)—ये जननीय मेडूसी हैं जो पृथक वृंतों पर एकल रूप से, गुच्छो मे या पॉलिपॉइड जननजीवकों (gonozooids) जैसे वलेला में अथवा फिर सरल या शाखित गोनोडेन्ड्रा पर स्थित होते है। जनकधरों या गोनोफोर (gonophores) मे भी मेडूसा के समान एक घण्टिका, वीलम, अरीय नाले तथा जनदों को धारण किये हुए एक मैनुब्रियम आदि रचनाएँ होती है। किन्तु मुख सवेदी, स्पर्शकों तथा संवेदी अगों का पूर्ण अभाव होता है। अनेक हाइड्रोजोअन्स जैसे फाइसेलिया (*Physalia*) मे मादा जनकधर (गोनोफोर) मेडूसा के समान और नर जनकधर (गोनोफोर) कोष या थैली के रूप में होते हैं। फाइसेलिया (नर) के समान

चित्र १६·१०. गोनोफोर या जनकधर (gonophores)
A. नर (male), B. मादा (female)

प्राणियों के जनकधर या गोनोफोर मण्डल से जुड़े रहते है अथवा फिर मुक्त होकर रहते हैं जैसे मादा *फाइसेलिया, पॉपिटा* तथा *वलेला* में। क्योंकि ये पोषण करने में असमर्थ होते हैं अतः लिंग-कोशिकाओं के स्खलन के बाद ये नष्ट हो जाते हैं। जनकधर या गोनोफोर एकलिंगाश्रयी (dioecious) होते हैं किन्तु मण्डल उभयलिंगी (hermaphrodite) होते हैं जिनमें एक ही या अलग-अलग गुच्छों में दोनों प्रकार के जनकधर (गोनोफोर) होते हैं। जनकधर (गोनोफोर) या तो पोषजीवक (गैस्ट्रोजुआॅइड) के वृन्त से विकसित होते हैं जैसे *डाइफीस (Diphyes)* में, अथवा ब्लास्टोस्टाइल से जैसे *वलेला* में या फिर सीनोसार्क से जैसे *एगेलमॉप्सिस (Agalmopsis)* में।

बहुरूपता एवम् पीढ़ियों का एकान्तरण
(Polymorphism and Alternation of Generations)

बहुरूपता का जीवों के जीवन-चक्र से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। *हाइड्रा* आदि एक रूपी जीवों में जीवन-चक्र सरल होता है और इसमें लारवा अवस्था नहीं होती। अतः इसके जीवन चक्र को **पॉलिप-अण्डा-पॉलिप** सूत्र द्वारा निरूपित कर सकते हैं। बहुरूपता के उदय होने के साथ जननीय सामर्थ्य का मण्डल के विभिन्न जीवों में विभाजन हो जाता है। इन जीवों में पॉलिप अलैंगिक जनन द्वारा मेडूसॉइड **गोनोफोर** या **जनकधर** (gonophore) उत्पन्न करते हैं। गोनोफोर लैंगिक जनन द्वारा **पॉलिप** उत्पन्न करता है। इस प्रकार के जीवों के जीवन-चक्र को **मेडूसा-अण्डा-प्लैनुला-पॉलिप** सूत्र द्वारा प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार इन जीवों के जीवन-चक्र में **पीढ़ियों का एकान्तरण** या **मेटाजेनेसिस** (metagenesis) का विकास होता है और अलैंगी पॉलिपॉइड पीढ़ी लिंगी मेडूसाइड पीढ़ी से एकान्तरण करती है।

बहुरूपता के उद्‌गम के सिद्धान्त
(Theories of Origin of Polymorphism)

सीलेन्ट्रेटा प्राणियों के पॉलिपॉइड एवम् मेडूसॉइड जीवों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के अनेक सिद्धान्त या वाद प्रस्तुत करते हैं।

1. **बहु-अंग या पॉलि-ऑर्गन सिद्धान्त** (Poly-organ theory)—यह सिद्धान्त **Huxley, schscholtz** तथा **Metshnikoff** द्वारा प्रस्तावित किया गया है। इसके अनुसार बहुरूपी मण्डल वास्तव में एक एकल मेडुसॉइड जीव है तथा इसके विभिन्न घटक जीव वास्तविक रूप से मेडूसा के विभिन्न रूपान्तरित अंग है। मेडूसा के विभिन्न भाग जैसे मैनुब्रियम, स्पर्शक तथा छत्र ने स्वतन्त्र रूप से गुणित होकर विभिन्न कार्यो के अनुरूप अलग-अलग रूप धारण कर लिये हैं।

2. **बहु-व्यक्ति या पॉलि-पर्सन सिद्धान्त** (Poly-person theory)—यह सिद्धान्त **Leuckert, Vogt** तथा **Metshnikoff** द्वारा प्रस्तावित किया गया है। इसके वाद के अनुसार बहुरूपी जीव यथार्थ में एक मण्डलीय रूप है जिसमें विभिन्न कार्य करने के लिए भिन्न प्रकार के जीवों का सामुच्चय हो गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार बहुरूपी मण्डल में पॉलिप या मेडूसी होते है किन्तु मण्डल का आदिम जीवक पॉलिप था।

3. **Sedgwick, Balfour** तथा **Hackel** के अनुसार poly-person theory अधिक उपयुक्त है किन्तु इनके अनुसार मण्डल का आदिम जीवक मेडूसा था जिससे मुकुलन द्वारा अन्य प्रकार के मेडूसी विकसित हुए। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार रूपान्तरित पॉलिप वास्तव में मेडूसीफॉर्म जीवों के वे अंग है जिन्होंने विभिन्न कार्यों की पूर्ति के लिए अपने आसंजन की स्थिति को स्थानान्तरित कर लिया है।

4. कुछ समय पूर्व Moser ने पुराने पॉलिप-ऑर्गन सिद्धान्त का पुनः सर्वेक्षण किया है। उसके अनुसार साइफोनोफोर मण्डल के विभिन्न जीवक (zooids) वे अंग हैं जो वहुरूपी जीवों की श्रेणी तक नहीं पहुँच पाये हैं। अतः साइफोनोफोर सर्वाधिक प्राचीन सीलेन्ट्रेट प्राणी हैं। किन्तु इस सिद्धान्त को पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं हो सका है क्योंकि यह साइफोनोफोर प्राणियों की वास्तविक मण्डलीय अवस्था के विपक्ष में जाता है।

प्रश्न 84. निम्नलिखित के सुन्दर एवम् नामांकित चित्र वनाइये (विवरण की आवश्यकता नहीं है) :—

(*i*) हाइड्रा की लम्ववत् काट
(*ii*) हाइड्रा के मध्य भाग का अनुप्रस्थ काट
(*iii*) ओवेलिया का मेडूसा
(*iv*) ओरेलिया का मुखवर्ती दृश्य
(*v*) फाइसेलिया
(*vi*) ओरेलिया का इफायरा
(*vii*) दंशकोशिका

Draw neat and labelled diagrams of the following (no description is needed) :

(i) L.S. Hydra. (*Vikram 1962*)
(ii) T.S. through the middle of the body ef Hydra. (*Lucknow 1965, 62*)
(iii) Obelia Colony (*Lucknow 1971*)
(iv) Obelia Medusa (*Lucknow 1963, 65*)
(v) Oral view of Aurelia (*Lucknow 1961, 63, 65*)
(vi) Physalia (*Lucknow 1966, 70*)
(vii) Ephyra of Aurelia (*Lucknow 1959*)
(viii) Nematocysts (*Agra 1972*)

(*i*) हाइड्रा की खड़ी काट (कृपया चित्र 16·2 देखिये।)
(*ii*) हाइड्रा के शरीर के मध्य से अनुप्रस्थ काट (कृपया चित्र 1·63 देखिये।)
(*iii*) ओवेलिया संघ (कृपया चित्र 17·1 देखिये।)
(*iv*) ओवेलिया मेडूसा (कृपया चित्र 17·4 देखिये।)
(*v*) ओरेलिया का ओरल दृश्य (कृपया चित्र 18·1 देखिये।)
(*vi*) दंश-कोशिका (कृपया चित्र 16·4 देखिये।)
(*vii*) फाइसेलिया (कृपया चित्र 19·11 देखिए)
(*viii*) ऑरेलिया का ऊर्ध्वाधर सेक्शन **(V.S. Aurelia).** (*Gorakhpur 1973*)

कृपया चित्र 19·11 देखिये।

(*ix*) ओरेलिया का इफायरा

कृपया चित्र 19·12 देखिये।
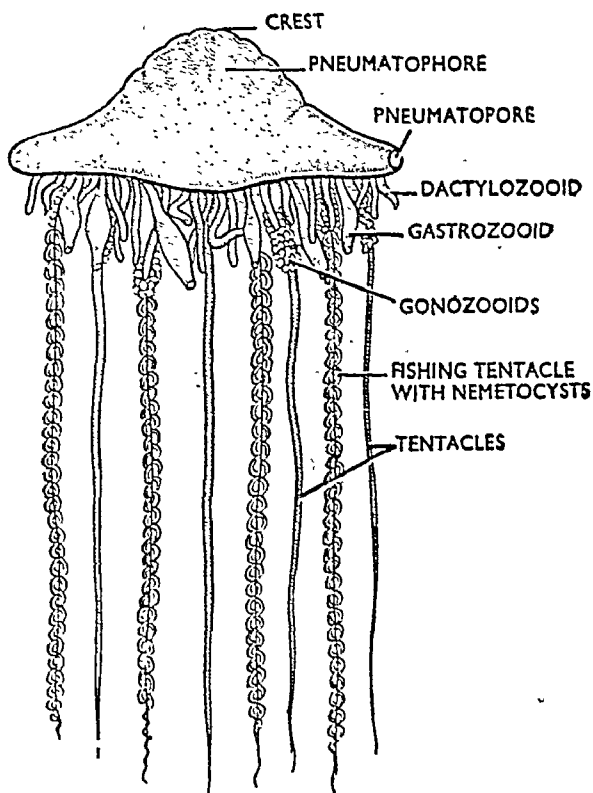
चित्र १६·११. फाइसेलिया का पार्श्व दृश्य (Leteral view of *Physalia*)
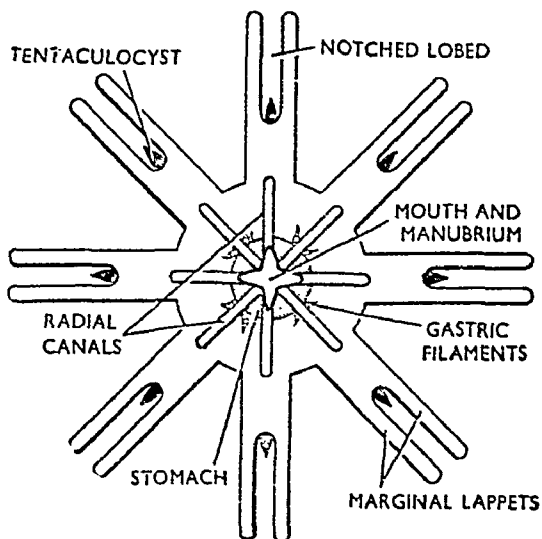
चित्र १६·१२ ओरेलिया का इफायरा (Ephyra of *Aurelia*)

अध्याय 20

फाइलम प्लेटीहेल्मिन्थीस
(Phylum Platyhelminthes)
(G., *Platos*, flat ; *helminthes*, worms)

प्रश्न 85. प्लेटीहेल्मिन्थीस के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन करिये। विभिन्न क्लासों के गुण एवम् उदाहरण देकर इसका वर्गीकरण करिये।

Mention the distinguishing characters of Phylum Platyhelminthes. Classify giving characters and examples of different classes.
(Agra 1961 ; Gorakhpur 59 ; Jiwaji 72)

उदाहरणों सहित प्लेटीहेल्मिन्थीस का वर्गीकरण करिये।

Give the classification of Platyhelminthes with examples.
(Jodhpur 1965)

फाइलम प्लेटीहेल्मिन्थीस का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीनकाल में ही इस फाइलम के जन्तुओं को पहचान लिया गया था किन्तु ये जन्तु केवल कुछ वाह्य परजीवी ही थे। सर्वप्रथम इन जीवों को Linnaeus (1735) ने कृमि वर्ग (Annelida) के साथ 'Vermes' नामक फाइलम में रखा था। किन्तु Gegenbaur (1859) ने इनको एक अलग फाइलम 'Platyhelminthes' में रखा। इसी फाइलम में अब केवल वास्तविक चपटे कीड़े (true flatworms) तथा एकेन्थोसिफेलेन्स (acanthocephalans) को रखा गया है।

विभेदक लक्षण (Distinguishing Characters)

1. ये कोमल शरीर वाले, अखण्डीय कीड़े हैं (soft-bodied and unsegmented worms)। यदि कभी शरीर खण्डयुक्त होता है तो ये खण्ड वास्तविक नहीं होते।

2. ये द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical) तथा पृष्ठ-अधर से चपटे (dorso-ventrally flattened) होते हैं।

3. इनमें तीन भ्रूण स्तर (embryonic layers) : एक्टोडर्म, मीसोडर्म तथा ऐण्डोडर्म होते हैं।

4. इनमें वाह्य तथा आन्तरिक कंकाल दोनों ही अनुपस्थित होते हैं। इनमें पाये जाने वाले काँटे तथा हुक या अंकुश स्क्लेरोप्रोटीन (scleroprotein) के बने होते हैं।

5. एपिडर्मिस कोमल तथा बहुकेन्द्रिक (syncytial) होती है। *Turbelaria* में यह सीलियेटेड (ciliated) होती है किन्तु *Trematoda* तथा *Cestoda* में इस पर क्यूटिकल का स्तर होता है।

6. पोषक के शरीर से चिपकने के लिए इनके शरीर पर चूषक (suckers), हुक तथा काँटे पाये जाते हैं।

7. इनमें वास्तविक देहगुहा या सीलोम (true body cavity or coelom) अनुपस्थित होता है तथा शरीर के विभिन्न अंगों के बीच का स्थान पैरनकाइमा (parenchyma) या मीसेनकाइमा से भरा रहता है।

8. इनमें आहार-नाल या तो पूर्णतया अनुपस्थित (*e.g. Acoela* and *Tapeworm*) अथवा बहुत अधिक शाखान्वित तथा अपूर्ण होती है। इनमें गुदाद्वार (anus) नहीं होता।

9. श्वसन तथा परिवहन तन्त्र का अभाव होता है।

10. उत्सर्जन तन्त्र में **शिखा कोशिकाएँ** (flame cells) अथवा प्रोटोनेफ्रीडिया पाये जाते हैं जो शाखाओं द्वारा उत्सर्जन नलिका से सम्बन्धित रहते हैं।

11. तन्त्रिका-तन्त्र तथा संवेदी अंग बहुत कम विकसित होते हैं।

12. जन्तु अधिकतर द्विलिंगी (hermaphrodite) होते हैं। निषेचन आन्तरिक तथा वर्धन बिना लारवा के (*e.g. Turbellaria* and monogenetic *Trematoda*) अथवा लारवा अवस्थाओं के साथ होता है (*e.g.* Digenetic trematodes and cestodes)।

13. कुछ जन्तुओं में लैंगिक जनन तथा जननों का एकान्तरण भी पाया जाता है।

14. ये स्वतन्त्रजीवी (*e.g. Turbellaria*), बाह्य परजीवी या अन्त: परजीवी हो सकते हैं। इनमें से कुछ सहभोजी (commensals) भी होते हैं।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम प्लेटीहेल्मिन्थीस को तीन क्लासों में बाँटा गया है :—

क्लास 1. टरबेलेरिया (Turbellaria)

1. अधिकांशत: स्वतन्त्रजीवी जन्तु हैं जो स्वच्छ मीठे तथा समुद्री पानी में या भूमि पर निवास करते हैं। इनमें से कुछ सहभोजी तथा परजीवी भी होते हैं।

2. शरीर खण्डविहीन (unsegmented) या अखण्डीय, पत्ती के समान चपटा गोल या अण्डाकार होता है।

3. बाह्य त्वचा या एपीडर्मिस कोशिकायुक्त (cellular), बहुकेन्द्रिक (syncytial) तथा पूर्णतया या अपूर्णतया रोमाभी (ciliated) होती है। इनमें रेहब्डाइट (rhabdites) नाम की बहुत-सी छड़ों के आकार की हायलाइन रचनाएँ पायी जाती हैं। ये विशेष प्रकार का रासायनिक द्रव बनाती हैं। इसके अतिरिक्त बाह्य त्वचा में सायनोफिलस तथा इयोसिनोफिलस (cyanophilous and eosinophilous) नामक एककोशिक ग्रन्थियां भी पायी जाती हैं।

4. चूषक अनुपस्थित होते है किन्तु glandulo-epidermal तथा glandulo-muscular नामक रचनाओं के रूप में चिपकने के अंग पाये जाते है।

5. आन्त्र या तो अनुपस्थित होती है अथवा अत्यन्त सरल, थैले के समान या शाखान्वित होती है।

6. त्वचा में विभिन्न प्रकार के रंग तथा रंग कणिकाएँ पायी जाती है।

7. वर्धन सरल होता है।

उदाहरण : माइक्रोस्टोमम (*Microstomum*), रिनकोस्कोलेक्स (*Rhynchoscolex*) तथा प्लैनेरिया (*Planaria*)।

क्लास 2. ट्रीमेटोडा (Trematoda)
(G., *trema*, hole)

1. वाह्य या आन्तर परजीवी के रूप में पाये जाते हैं।

2. शरीर अखण्डीय तथा अधिकतर लम्बा होता है।

3. एपिडर्मिस तथा पक्ष्म अनुपस्थित होते हैं तथा शरीर का वाह्य आवरण मोटी क्यूटिकल का बना होता है।

4. पोषक के शरीर से चिपके रहने के लिए चूषक (suckers) पाये जाते हैं। काँटे या हुक नहीं होते।

5. आहार-नाल द्विशाखान्वित (bifurcated) होती है तथा इससे बहुत-से अपवर्ध (diverticula) निकले रहते हैं। गुदाद्वार (anus) नहीं होता।

6. जन्तु द्विलिंगी होते है किन्तु निषेचन दो विभिन्न जन्तुओं के युग्मकों के बीच होता है। वर्धन में लारवा अवस्था हो भी सकती है और नहीं भी।

7. ये साधारण भाषा में पर्णाभ (flukes ; *floak*, flat) कहलाते हैं।

उदाहरण : फेशियोला (*Fasciola*), सिस्टोसोमा (*Schistosoma*), पोलीस्टोमम (*Polystomum*) तथा क्लोनारकिस (*Chlonarchis*) इत्यादि।

क्लास 3. सेस्टोडा (Cestoda)
(L., *cestus*, girdle (ribbon-like ; *oid*, like)

1. ये पूर्णतया अन्तः परजीवी (endoparasitės) होते हैं।

2. शरीर अधिकतर बहुत-से खण्डों या देहखण्डों (proglottids) का बना होता है किन्तु अखण्डीय भी हो सकता है। ये पतले, चपटे तथा रिबन के आकार के या धागे के समान होते हैं।

3. शरीर पर मोटी क्यूटिकल का आवरण होता है। इनमें एपिडर्मिस तथा पक्ष्मों का अभाव होता है।

4. शरीर को तीन भागों में बाँटा जा सकता है : घुण्डी के आकार का अगला सिरा शीर्ष या **स्कोलैक्स** (scolex) कहलाता है जिस पर चूषक तथा हुक लगे रहते है और इनसे जन्तु पोषक के शरीर से चिपका रहता है ; शीर्ष के पीछे का छोटा **गर्दन** का भाग जिससे जन्तु के सम्पूर्ण जीवन-काल में देहखण्ड कटते रहते हैं तथा अन्तिम देहखण्डों का बना हुआ शरीर।

5. इनमें मुख, आहर-नाल तथा संवेदी अंग नही होते।

6. नर तथा मादा जनन अंग एक ही जन्तु मे पाये जाते है। तथा इनमें आन्तरिक तथा स्वयं-निषेचन (internal and self-fertilization) होता है

7. जीवन-इतिहास में एक या दो या उससे अधिक मध्य पोषक (intermediate hosts) भी पाये जाते है :—

उदाहरण : एम्फीलिना (*Amphilina*), गायरोकोटाइलस (*Gyrocotylus*) डाइफाइलोबोथ्रियम (*Diphillobothrium*), टीनिया (*Taenia*), इकाइनोकोकस (*Echinococcus*) तथा टेट्रारिनकस (*Tetrarhynchus*) इत्यादि।

प्रश्न 86. निम्नलिखित प्राणियों को वर्गीकरण के क्रम में रखिये तथा विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख करिये।

Classify the following animals, giving their distinguishing characters.

इकाइनोकोकस (Echinococcus)

फाइलम	—	प्लेटीहेल्मिन्थीस (*Platyhelminthes*)
क्लास	—	सेस्टोडा (*Cestoda*)
सबक्लास	—	यूसेस्टोडा (*Eucestoda*)
आर्डर	—	टीनियोडिया (*Taeniodea*)
टाइप	—	इकाइनोकोकस (*Echinococcus*)

इकाइनोकोकस लोमड़ी, कुत्ते, भेड़ व बिल्लियों की आंत्र में पाया जाने वाला रोगजनक अन्त:परजीवी प्राणी है। इसे सामान्य भाषा में **हाइडेटिड वर्म** (hydatid worm) या **कुत्ते का टेपवर्म** (dog tapeworm) भी कहते हैं। यह द्विपोपदिक (digenetic) परजीवी है जिसमें मनुष्य **मध्य पोषक** होता है। मनुष्य में लारवा विकसित होकर **हाइडेटिड सिस्ट** (hydatid cyst) बनाता है और यकृत एवम् मस्तिष्क में घातक विकार उत्पन्न करता है।

चित्र २०·१. इकाइनोकोकस (*Echinococcus*)

प्रौढ़ वर्म रचना में *टीनिया* के समान होता है किन्तु इसका आकार बहुत छोटा 2–8 mm. तक होता है। शरीर स्कोलेक्स (scolex), ग्रीवा (neck) तथा तीन या चार प्रोग्लोटिड्स (proglottids) का बना होता है।

(*i*) **स्कोलेक्स** (Scolex)—यह नाशपाती के समान होता है जिस पर चार **चूषक** (suckers) तथा **अंकुशों** (hooks) की दो कतारों युक्त एक बहि:सारी **रोस्टेलम** (rostellum) होता है।

(*ii*) **ग्रीवा** (Neck)—यह स्कोलेक्स को शरीर से जोड़ने वाला संकीर्ण भाग है।

(*iii*) **प्रथम खण्ड** (First segment)—यह प्राय: छोटा, अस्पष्ट तथा अपरिपक्व होता है जिसमें विभिन्न संरचनाएँ लुप्तावेशी रूप मे होती हैं।

(*iv*) **द्वितीय खण्ड** (Second segment)—यह परिपक्व खण्ड है जिसमें नर एवम् मादा जननांगों का एक-एक सेट होता है।

(*v*) **तृतीय खण्ड** (Third segment)—यह सगर्भ (gravid) व सर्वाधिक बड़ा खण्ड है जिसमे विशाखित गर्भाशय होता है। इसमें वर्धन की विभिन्न प्रावस्थाओं मे अण्डे होते हैं।

2. सिस्टोसोमा (Schistosoma)

(ब्लड-फ्लूक (Blood Fluke)

फाइलम	—	प्लेटीहेल्मिन्थीस (*Platyhelmnithes*)
क्लास	—	ट्रिमेटोडा (*Trematoda*)
आर्डर	—	डाइजेना (*Digena*)

यह मनुष्य व अन्य पृष्ठवंशियों के रुधिर प्रवाह में पाया जाने वाला अन्तःपर-जीवी प्राणी है। इसे सामान्यतः **ब्लड फ्लूक** भी कहते है। इसमें नर एवम् मादा जनन अंग अलग-अलग जन्तुओं में होते हैं। इनमें **लैंगिक द्विरूपता** (sexual dimorphism) अत्यधिक विकसित होती है। नर छोटा, मोटा या चौड़ा होता है और मादा अधिक लम्बी व पतली होती है। प्रौढ़ता प्राप्त होने पर मादा नर की **गाइनेकोफोरिक नाल** (gynecophoric canal) में पड़ी रहती है। यह नाल नर की अधर देहभित्ति के वलनों द्वारा बनती है। नर एवम् मादा दोनों में ही **मुखवर्ती** (oral) एवम **अधर** (ventral) चूषक होते है किन्तु नर का अधर चूपक अपेक्षाकृत अधिक बड़ा एवम् शक्तिशाली होता है। इसके जीवन-चक्र में मौलस्क **मध्य पोषक** होता है। जल में चलते समय **सरकेरिया लारवा** द्वारा त्वचा को वेधकर शरीर में प्रवेश करने से संक्रमण होता है। इसकी उपस्थिति से सिरदर्द, पेचिश, रक्ताल्पता, इओसिनोफिलिया आदि रोग उत्पन्न होते हैं तथा मूत्र-जनन संस्थान क्षतिग्रस्त हो जाता है।
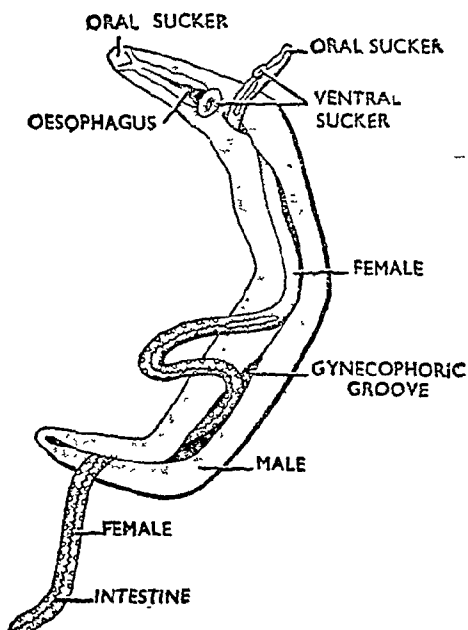
चित्र २०'२. सिस्टोसोमा (*Schistosoma*)

3. प्लैनेरिया (Planaria) (*Kanpur 1966 ; Lucknow 70 ; Meerut 71*)

कृपया प्रश्न 82 देखिये।

अध्याय 21

प्लैनेरिया
(Planaria)

फाइलम	—	प्लेटीहेल्मिन्थीस (*Platyhelminthes*)
क्लास	—	टर्वेलेरिया (*Turbellaria*)
आर्डर	—	ट्राइक्लैडिडा (*Tricladida*)
सबआर्डर	—	पैल्यूडिकोला (*Paludicola*)
जाति	—	प्लैनेरिया (*Planaria*)

प्रश्न 87. अलवणीय जल में पाये जाने वाले प्लैनेरिया की संरचना एवं कार्यिकी का वर्णन करिये ।

Describe the structure and physiology of fresh water *Planaria*.

प्लैनेरिया की वाह्य रचना, पाचन अंगों एवम् प्रजनन का वर्णन करिये ।

Give an account of the external structure, organs of digestion and repropuction of *Planaria*. (*Tribhuvan 1963*)

प्लैनेरिया के जनन तन्त्र का वर्णन करिये ।

Give an account of reproductive system of *Planaria*.

स्वच्छ पानी में रहने वाले किसी प्लैनेरियन में पोषण एवं जनन विधि का वर्णन कीजिये ।

Describe the mode of nutrition and reproduction of any fresh water planarian. (*Gorakhpur 1971*)

प्राप्ति स्थान (Occurrence)—स्वच्छ पानी में पाया जाने वाला *प्लैनेरिया* या *डुजेसिया* (*Dugesia*) तालावों, पोखरों, झरनों तथा नदियों में रहने वाला सामान्य ट्राइक्लैड है । यह पानी में डूवी हुई पत्तियों, चट्टानों तथा लट्ठों की निचली सतह से चिपका रहता है ।

वाह्य रचना (External Features)

प्लैनेरिया छोटा, पतला तथा चपटा कीड़ा है जो लगभग 12 mm. लम्बा होता है । इसका रंग चमकीला होता है और इस पर सफेद, नारंगी या पीले रंग की धारियाँ होती है ।

शरीर का अगला चौड़ा तिकोना भाग **शीर्ष** (head) कहलाता है । इससे दो पार्श्व उभार निकले रहते है जो **ऑरिकिल** (auricles) या **शीर्ष** खण्ड (head lobes) कहलाते हैं । इन पर एक जोड़ी प्यालेनुमा काले रंग की आँखें होती हैं । शरीर की पृष्ठ सतह मेहराव के समान तथा अधर सतह चपटी एवं रोमयुक्त होती है । शीर्ष शेप शरीर से एक झिर्री द्वारा अलग रहता है । शरीर का पिछला सिरा कम चौड़ा होता है । शरीर के मध्य से थोड़ा पीछे अधर सतह पर मध्य रेखा पर झिर्री के समान (slit-like) मुख होता है । यह ग्रसनी (pharynx) में खुलता है जिस पर ग्रसनी-आवरण होता है ग्रसनीमुख द्वार से शुण्ड (proboscis) के रूप में

बाहर निकाली जा सकती है। मुख के कुछ पीछे जनन छिद्र स्थित होता है। पृष्ठ पार्श्व सतह पर बहुत से सूक्ष्म **उत्सर्जन छिद्र** (excretory apertures) पाये जाते हैं। रोमयुक्त अधर तल पर किनारों के साथ **अभिलाग भाग** (adhesive zone) होता है जिस पर असंख्य सूक्ष्म अभिलाग ग्रन्थियों के छिद्र स्थित होते हैं। ये ग्रन्थियाँ म्यूकस उत्पन्न करती हैं जो जन्तु को आधार से चिपकाये रखता है।

चित्र २१·१. डुजेसिया (*Dugesia*)
(A) पृष्ठ दृश्य (Dorsal view)
(B) अधर दृश्य (Ventral view)

देहभित्ति (Body-wall)

1. बाह्य त्वचा (Epidermis)—यह घनाकार कोशिकाओं से बना एक कोशिकीय स्तर है जिसके नीचे आधार कला होती है। अधर तल की बाह्य त्वचीय कोशिकाओं पर रोम होते हैं तथा इनमें विशेष प्रकार की छड़ाकार (rod-shaped), क्रिस्टलीय (crystalline) रचनायें होती हैं जो **रहेब्डाइट** (rhabdite) कहलाती हैं। बाह्य-त्वचा में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं :—

(क) म्यूकस ग्रन्थियाँ—ये सूक्ष्म एककोशिक एवम् नालाकार ग्रन्थियाँ हैं जो बाह्य त्वचीय कोशिकाओं के रूपान्तरण से बनती हैं किन्तु मीसेनकाइम में पड़ी रहती हैं।
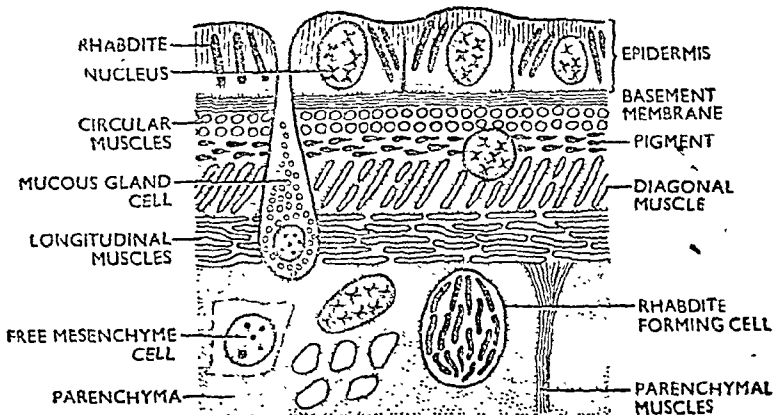
चित्र २१·२. प्लैनेरिया की पृष्ठ भित्ति का अनुप्रस्थ काट
(T.S. dorsal body-wall of *Planaria*)

(ख) अभिलाग ग्रन्थियाँ या इओसिनोफिलस ग्रन्थियाँ (Adhesive glands or eosinophilous glands)—ये मीसेनकाइम में पायी जाने वाली बाह्य त्वचीय

ग्रन्थियाँ है जो समूहों में एकत्रित रहती हैं एवम् अधर पार्श्व सतह पर अभिलाग भाग मे ही स्थित होती हैं।

2. पेशीय स्तर (Muscle layer)—बाह्य त्वचा के नीचे निम्न स्तर पाये जाते हैं :—

(*i*) बाह्य वर्तुल पेशी स्तर,

(*ii*) आन्तरिक लम्बवत् पेशी-स्तर, एवम्

(*iii*) पृष्ठ-अधर पेशियाँ जो शरीर में पृष्ठ से अधर तल तक फैली रहती हैं।

3. मीसेनकाइम (Mesenchyme)—देहभित्ति का मुख्य भाग तथा देहगुहा मीसेनकाइम की बनी होती है। इसमें ताराकार (stellate) या अमीबाभ कोशिकाओ से बना संयोजी ऊतक होता है। ताराकार कोशिकाओं के जीवद्रव्य-प्रवर्ध जुड़कर बहुकेन्द्रक जाल (syncytial network) बनाते हैं जिनके बीच का स्थान द्रव से भरा रहता है। मीसेनकाइम में शरीर के समस्त अंग पड़े रहते है। *प्लैनेरिया* मे देहगुहा अनुपस्थित होती है।

चलन (Locomotion)

प्लैनेरिया में दो प्रकार का चलन होता है :—

(*i*) विसर्पी गति (gliding movement).

(*ii*) रेंगना (crawling)

1. विसर्पी गति (Gliding movement)—विसर्पी गति में अधर सतह पर उपस्थित रोम म्यूकस ग्रन्थियों से उत्पन्न म्यूकस के साथ गति करते हैं। फलस्वरूप जन्तु सर्पिल गति से आगे की ओर बढ़ता है। पक्ष्मगति से उत्पन्न लहरें आगे से पीछे की ओर चलती हैं तथा इसमें *प्लनेरिया* का शीर्ष भाग सतह से कुछ ऊपर उठा रहता है।

2. रेंगना (Crawling)—अधोबाह्य त्वचा की वर्तुल एवम् लम्बवत् पेशियों की गति से *प्लैनेरिया* कीड़े के समान रेंगकर भी आगे की ओर बढ़ता है। वर्तुल पेशियों के सिकुड़ने से शरीर लम्बा और पतला हो जाता है तथा शरीर का अगला सिरा सतह से चिपक जाता है। अब लम्बवत् पेशियों के सिकुड़ने पर इसकी लम्बाई कम हो जाती है तथा शरीर आगे खींच लिया जाता है। रेंगने मे जन्तु के चलन की गति अति तीव्र होती है।

पाचन-तन्त्र (Digestive System)

प्लैनेरिया के पाचन अंग मुख, ग्रसनी एवम् त्रिशाखीय आंत्र है।

मुख—यह गोलाकार झिर्री के समान छिद्र है जो अधर तल पर मध्य रेखा के कुछ पीछे स्थित होता है तथा देहभित्ति की पेशियों द्वारा आरक्षित रहता है। ग्रसनी मोटी भित्ति वाला कोष है जो भोजन ग्रहण करने के समय शुण्ड के रूप में मुख से बाहर निकल आती है। शुंड या प्रोबोसिस अत्यधिक लचीली तथा मोटी होती है और उस पर मोटा पेशीय आवरण होता है। ग्रसनी आंत्र में खुलती है। आंत्र तुरन्त ही तीन शाखाओ मे विभाजित हो जाती है जिनमें से एक शरीर के अगले भाग मे मध्य रेखा के साथ-साथ तथा अन्य दो शरीर के पिछले भाग में फैली रहती है। प्रत्येक शाखा से असंख्य पार्श्व प्रवर्ध निकलते है। गुदाद्वार अनुपस्थित होता है।

डुजेसिया शिकारी जन्तु है जो अधिकतर क्रस्टेशियन, कीड़े, कीटों के लारवा इत्यादि को खाता है। भोजन ग्रहण करते समय यह विसर्पण गति द्वारा घूमता है और म्यूकस उत्पन्न करता है। शिकार म्यूकस के सम्पर्क में आने पर उससे चिपक कर गतिहीन हो जाते है तथा ग्रसनी मुख से बाहर निकलकर भोजन के टुकड़ों को चूस लेती है। ये आंत्र में पहुँच जाते हैं। इनमें पाचन आन्तर-कोशिक होता है। आंत्र की दीवार की फैगोसाइट (phagocyte) कोशिकाएँ भोजन के सूक्ष्म कणों को पादाभों द्वारा अन्तग्रहण कर लेती हैं जो कोशिका के अन्दर खाद्य रिक्तका बना लेती हैं। प्रोटीन तथा वसा को पचाने वाले एन्जाइम्स कोशिकाद्रव्य से खाद्य रिक्तका में स्रावित होते हैं जिनसे प्रोटीन तथा वसा का पाचन हो जाता है। पचा हुआ भोजन शरीर के विभिन्न भागों को पहुँचा दिया जाता है। अपच भोजन के साथ फैगोसाइटिक कोशिकाएँ आंत्र की गुहा में आ जाती हैं और मुख द्वारा ही शरीर के बाहर निकाल दी जाती है।
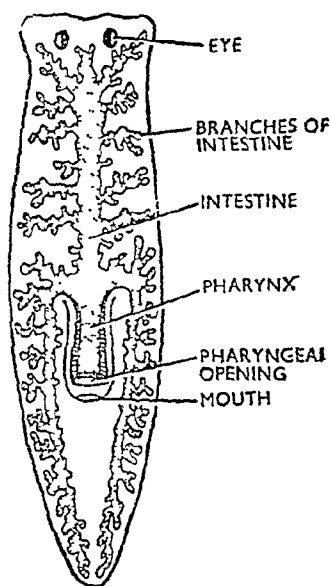
चित्र २१·३. डुजेसिया की आहार नाल (Alimentary canal of *Dugeria*)

श्वसन (Respiration)

प्लैनेरिया में श्वसन अंगों का अभाव होता है। पर्यावरण की आक्सीजन विसरण द्वारा शरीर के अन्दर पहुँचती है तथा कार्बन डाइआक्साइड शरीर से बाहर निकलती है।
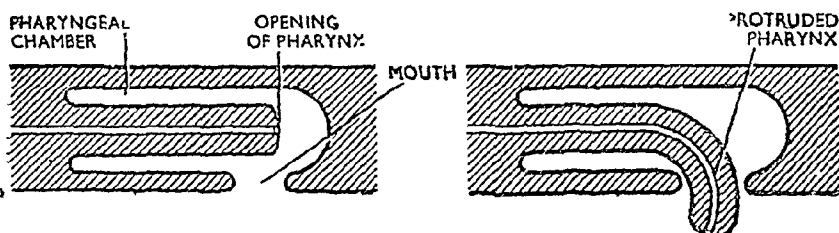
चित्र २१·४. प्लैनेरिया द्वारा भोजन के अन्तर्ग्रहण का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of ingestion of food in *Planaria*)

उत्सर्जन तन्त्र (Excretory System)

प्रोटोनेफ्रिडिया प्लैनेरिया के उत्सर्जी अंग है जो शरीर के दोनों किनारों पर एक-एक लम्बवत् शृंखला बनाते हैं। प्रत्येक शृंखला में बहुत-सी शाखाजालित (anastomosing) नलिकाएँ होती हैं जो नलिकाओं का महीन जाल-सा बना लेती हैं। इन शाखाजालित शृंखलाओं से बहुत-सी महीन शाखान्वित नलिकाएँ निकलती हैं जो कोशिकाएँ कहलाती हैं। इनके अन्तिम सिरों पर **शिखा कोशिकाएँ** (flame cells) पायी जाती हैं। प्रोटोनेफ्रिडिया सूक्ष्म छिद्रों द्वारा शरीर की सतह पर बाहर को खुलते हैं। ये छिद्र **नेफ्रिडियोपोर** कहलाते हैं।

प्रत्येक शिखा कोशिका उत्सर्जी तन्त्र का एकक (unit) प्रदर्शित करती है। यह एक लम्बी, नालाकार कोशिका है जिससे बहुत-से जीवद्रव्य प्रवर्ध (protoplasmic
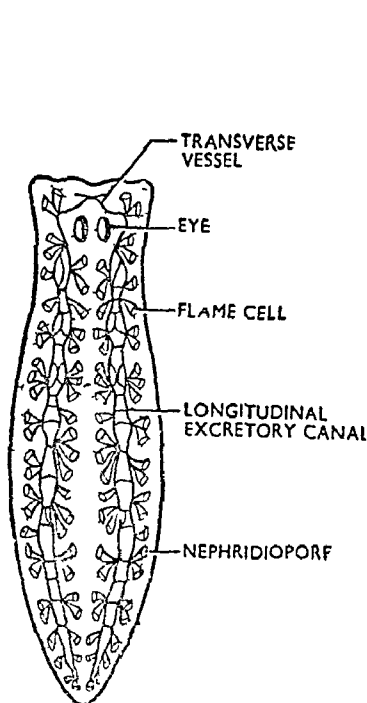
चित्र २१·५. प्लैनेरिया का उत्सर्जन तन्त्र (Excretory system of *Planaria*)
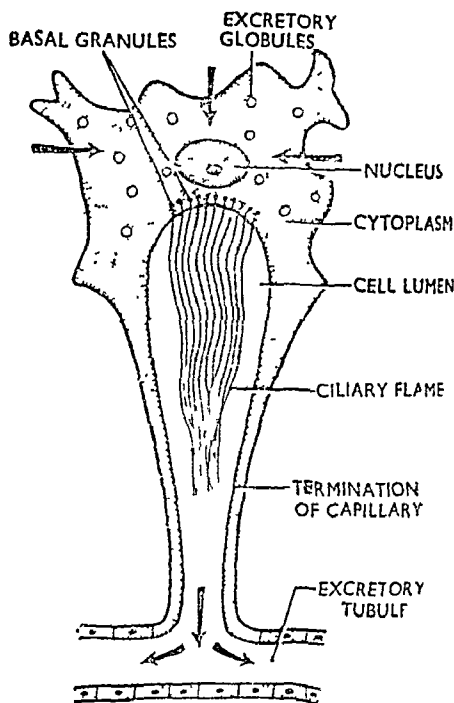
चित्र २१·६. प्लैनेरिया की शिखा कोशिका (Flame cell of *Planaria*)

processes) निकलकर मीसेनकाइम में फैले रहते है। शिखा कोशिका का शीर्ष भाग बल्ब के समान फूला हुआ होता है जिसके कोशिकाद्रव्य में एक केन्द्रक होता है। कोशिका की आन्तर-कोशिक गुहा में कशाभों का एक समूह होता है जो सदैव ही गतिशील रहता है और मोमबत्ती की शिखा के समान हिलता हुआ दृष्टिगत होता है। आन्तर-कोशिक गुहा कोशिका की गुहा से सम्बन्धित होती है।

मीसेनकाइम से एकत्रित किया हुआ उत्सर्जी द्रव शिखा कोशिकाओं की गुहा में आता है और कशाभों की गति द्वारा लम्ववत् शृंखला नलिकाओं की गुहा मे पहुँचता है। उत्सर्जी तन्त्र के द्वारा आवश्यकता से अधिक जल को शरीर से बाहर निकाला जाता है।

शिखा कोशिकाओं के अतिरिक्त कुछ ग्रन्थिल कोशिकाएँ भी उत्सर्जन क्रिया मे सहायक होती है। ये नेफ्रोसाइट या आर्थ्रोसाइट (nephrocytes or arthrocytes) कहलाती है।

तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System)

मस्तिष्क शीर्ष भाग में स्थित तन्त्रिका पदार्थ की बनी द्विखण्डित रचना है जो दो **सेरीब्रल गैंगलिया** (cerebral ganglia) से बनता है। इससे निकलकर तन्त्रिका तन्तु शीर्ष तथा ऑरिकल को जाते है। सेरिब्रल गैंगलिया के पिछले सिरों से दो वेण्ट्रल नर्व कार्ड निकलती है जो शरीर के पार्श्व किनारों के साथ-साथ

अन्तिम सिरे पर पहुँचती हैं। प्रत्येक नर्व कार्ड में गैंगलिया होते हैं जिनसे असंख्य तन्त्रिकाएँ निकलकर शरीर के पार्श्व भागों में जाती हैं। दोनों नर्व कार्ड **अनुप्रस्थ संयोजिका पट्टी** (transverse commissural band) द्वारा सम्वन्वित रहते हैं।

केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के अतिरिक्त वाह्य त्वचा के नीचे **अधोवाह्यत्वचीय जालक** (subepidermal plexus) तथा पेशीय स्तर के नीचे मीसेनकाइम में **अधोपेशीय जालक** (submuscluar plexus) होता है।

चित्र २१·७. प्लैनेरिया का तन्त्रिका तन्त्र) (Neavous system of *Planaria*

संवेदी अंग (Sense Organs)

1. रसायन ग्राही (Chemoreceptors)—ये रोमयुक्त गड्ढों या खाइयों के रूप में पाये जाते हैं। इनकी वाह्य त्वचीय कोशिकायें रोमयुक्त होती हैं और पानी में भोजन खोजने का कार्य करती हैं।

2. ऑरिकुलर अंग (Auricular organs)—एक जोड़ी ऑरिकुलर अंग श्वेत खाइयों के रूप में शीर्ष के दोनों ओर ऑरिकल के नीचे स्थित होते हैं। ये भी रोमाभी होते हैं और तन्त्रिकाओं से सम्वन्वित होते हैं। ये भी रसायनग्राही होते है।

3. नेत्र या नेत्रक (Eyes or ocelli)—नेत्र दो गोलाकार काले रंग के धब्बों के रूप में शीर्ष की पृष्ठ सतह पर पाये जाते है। प्रत्येक आँख एक रंगीन प्याले के आकार की होती है। इसमें **रंगयुक्त वाह्य त्वचीय कोशिकाएँ** (pigment cells) तथा कुछ **रेटाइनल कोशिकाएँ** (retinal cells) होती हैं जिनके सिरे प्याली की गुहा में उभरे रहते हैं। उभरे हुए सिरे चौड़े होते हैं और इन पर सूक्ष्म रेशों के समान तन्तु होते हैं। कोशिकाओं के दूरस्थ सिरे तन्त्रिका तन्तुओं से सम्वन्वित होते है। नेत्र प्रकाश की दिशा पहचान सकने में समर्थ हैं।

चित्र २१·८. डुजेसिया के नेत्र की खड़ी काट (L.S. Eye of *Dugesia*)

जनन (Reproduction)

डुजेसिया में अलेंगिक तथा लेंगिक दोनों प्रकार का जनन पाया जाता है। इसमें पुनर्जनन की क्षमता भी पायी जाती है।

1. पुनर्जनन (Regeneration)—*प्लैनेरिया* को अगर वहुत-से टुकड़ों में काट दिया जाये तो प्रत्येक टुकड़ा वृद्धि कर पूर्ण जन्तु में वदल जाता है किन्तु यह माना जाता है कि

पुनर्जनन में शीर्ष भाग का समीपस्थ ऊतकों पर कायिकी प्रभाव होता है।

भूखा रहने पर प्लैनेरिया निश्चित क्रम से अपने आन्तरिक अंगों का शोषण करने लगता है। सर्वप्रथम अण्डे तथा क्रमश: योक ग्रन्थियाँ, जनन अंग, पैरनकाइमा, आंत्र तथा पेशियाँ इत्यादि शोषित किये जाते हैं।

2. अलैंगिक जनन (Asexual reproduction)—अलैंगिक जनन विखण्डन (fission) द्वारा होता है। अनुकूल परिस्थितियों में जन्तु पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के पश्चात् दो भागों में बँटने लगता है। विभाजन खाई ग्रसनी के पीछे से प्रारम्भ होती है। प्रत्येक विभाजित अर्ध भाग में आवश्यक अंगों का पुनर्निर्माण होता है। विखण्डन द्वारा विभाजित होने वाले जन्तुओं में जनन अंगों का अभाव होता है।

3. लैंगिक जनन (Sexual reproduction)—प्लैनेरिया उभयलिंगी जन्तु है तथा इसमें जनन अंग केवल जनन काल में ही बनते है। वृषण तथा अण्डाशय
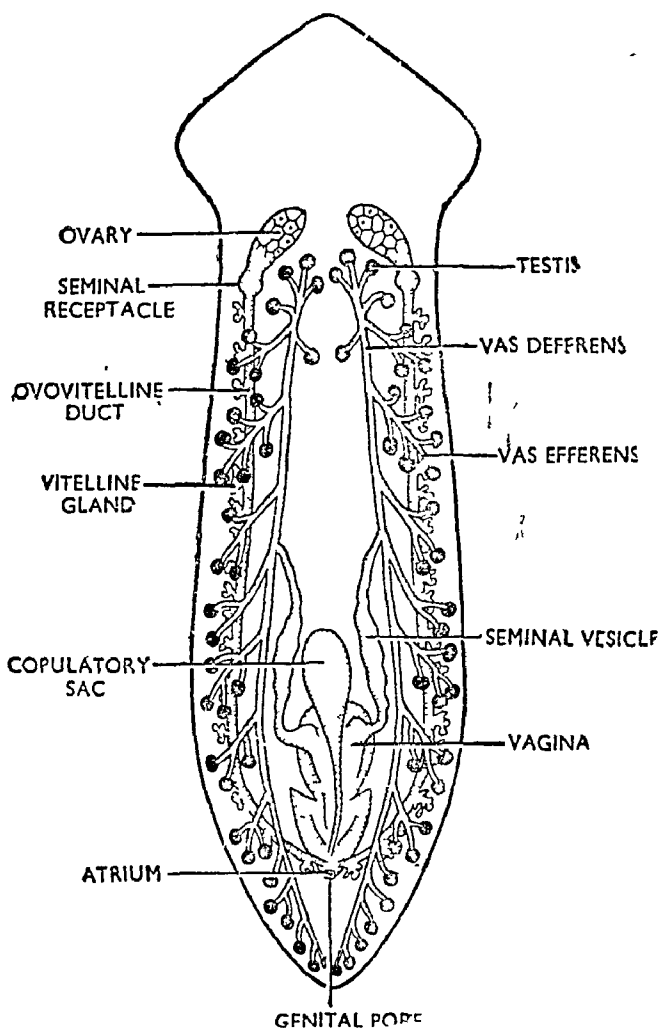
चित्र २१·९. डुजेसिया का जनन तन्त्र
(Reproductive system of Dugesia)

निर्माणात्मक पैरनकाइमा कोशिकाओं से बनते हैं।

नर जनन अंग—प्लैनेरिया में असंख्य सूक्ष्म, गोलाकार **वृषण** होते हैं जो शरीर में दोनों पार्श्व किनारों के साथ स्थित होते हैं। प्रत्येक वृषण से एक सूक्ष्म **शुक्र नलिका** (vas efferens) निकलकर अपनी ओर को **शुक्र वाहिनी** (vas deferens) में खुलती है। दोनों ओर की शुक्र वाहिनियाँ एक-दूसरे से समान्तर शरीर के अगले से पिछले सिरे की ओर बढ़ती हैं तथा मध्य की ओर पेनाइल बल्ब में खुलती है, जहाँ प्रत्येक एक **स्पर्मीड्युकल वैसिकिल** (spermiducal vesicle) में फूल जाती है। पेनाइल बल्ब सँकरा होकर शिश्न (penis) बनाता है जो जनन वेश्म में उभरा रहता है। जनन वेश्म जनन छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। जनन वेश्म से **सेमिनल रिसेप्टेकिल** (seminal receptacle) सम्बन्धित होता है।

मादा जनन अंग—इसमें एक जोड़ी छोटे गोल **अण्डाशय** शीर्ष के पीछे पार्श्व तल में स्थित होते हैं। प्रत्येक अण्डाशय से एक **अण्डवाहिनी** निकलकर शरीर के पिछले भाग की ओर जाती है। अण्डाशय से निकलने के तुरन्त पश्चात् अण्डवाहिनी फूलकर **सेमिनल रिसेप्टिकल** (seminal receptacle) का निर्माण करती है। दोनों ओर की अण्डवाहिनियाँ संयुक्त होकर **योनि** (vagina) बनाती हैं जो जनन वेश्म में खुलती हैं। अण्डवाहिनी की समस्त लम्बाई के साथ असंख्य **पीत ग्रन्थियाँ** स्थित होती हैं जो सूक्ष्म **पीत नलिकाओं** द्वारा अण्डवाहिनी में खुलती हैं। पीत ग्रन्थियों से निकट सम्बन्ध होने के कारण अण्डवाहिनियाँ **अण्ड-पित्त वाहिनियाँ** (ovo-vitelline ducts) भी कहलाती हैं। जनन वेश्म से कोपुलेटरी बर्सा (copulatory bursa) नामक पेशीय थैलेनुमा रचना सम्बन्धित होती हैं। इसमें मैथुन के समय शिश्न शुक्राणु जमा करता है।
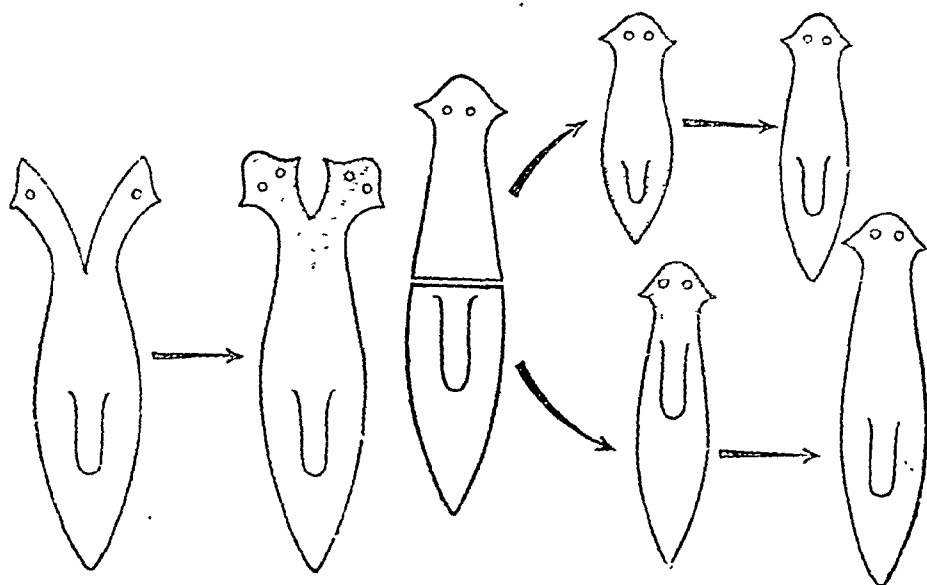
चित्र २१·१०. डुजेसिया में पुनर्जनन (Regeneration in *Dugesia*)
A. लम्बवत् पुनर्जनन B. अनुप्रस्थ पुनर्जनन

मैथुन (Copulation)—यद्यपि *प्लैनेरिया* उभयलिंगी है किन्तु इसमें पर-निषेचन होता है। मैथुन के समय दो *प्लैनेरिया* अपनी अधर सतहों से जुड़ जाते हैं। एक जन्तु का शिश्न दूसरे के कोपुलेटरी बर्सा में घुस जाता है तथा दोनों में शुक्राणुओं का आदान-प्रदान हो जाता है। कोपुलेटरी बर्सा में शुक्राणु कुछ समय के लिए एकत्रित रहते हैं, तत्पश्चात् अण्डवाहिनियों म से होते हुए सेमिनल रिसेप्टिकल में पहुँच जाते हैं जहाँ अण्डे पहले से ही एकत्रित रहते हैं। अण्डवाहिनी से गुजरते हुए निषेचित अण्डों के चारों ओर योक एकत्रित हो जाता है और जनन वेश्म में अण्ड खोल बन जाता है। प्रत्येक अण्डे खोल या अण्डकोष (egg capsule) में कई अण्डे होते हैं। सीमेन्ट ग्रन्थियों से रिसने से अण्डकोष पर डंठल (stalk) बन जाता है जिससे अण्डकोष पत्थरों की निचली सतह से चिपका दिये जाते हैं। दो सप्ताह में प्रत्येक अण्डे से पूर्ण विकसित *प्लैनेरिया* बन जाता है।

व्यवहार (Behaviour)

प्लैनेरिया तीव्र प्रकाश से दूर भागता है तथा पानी के अन्दर पायी जाने वाली वस्तुओं के नीचे छिप जाता है। कम तीव्र उत्तेजनाओं के प्रति इसमें धनात्मक प्रति-क्रिया होती है किन्तु तीव्र उत्तेजनाओं के प्रति नकारात्मक अनुक्रिया (negative (response) पायी जाती हैं।

प्लैनेरिया में अलैंगिक जनन भी पाया जाता है। अगर परिस्थितिवश अथवा अचानक ही इसके शरीर को लम्बवत् अथवा अनुप्रस्थ दिशा में दो भागों में बाँट दिया जाय तो दोनों भागों से पुर्नजनन के फलेस्वरूप दो नये प्राणी बन जाते हैं। (चित्र 21·10)।

अध्याय 22

फेशियोला हिपेटिका
(Fasciola hepatica)

फाइलम	—	प्लेटीहेल्मिन्थीस (*Platyhelminthes*)
क्लास	—	ट्रीमेटोडा (*Trematoda*)
आर्डर	—	डाइजीनिया या मेलाकोटाइलिया (*Digenea*)
जीनस	—	फेशियोला (*Fasciola*)

प्रश्न 88. फेशियोला की संरचना का विस्तार से वर्णन करिये तथा इसके परजीवी अनुकूलनों का उल्लेख करिये।

Give a detailed account of the structure of *Fasciola* and comment upon its parasitic adaptations. (*Lucknow 1956 ; R. S. 71 ; Indore 71*)

प्रौढ़ लीवर फ्लूक की देहभित्ति, उत्सर्जी अंगों तथा जनन अंगों का वर्णन करिये।

Describe the body wall, excretory organs and reproductive organs of adult liver fluke. (*Ranchi 1971*)

फेशियोला के जनन अंगों का वर्णन करिये।

Describe reproductive organs of Fasciola. (*Jabalpur 1972*)

फेशियोला एक द्विपोषदक ट्रिमेटोड (digenetic trematode) जन्तु है जो भेड़ तथा अन्य पालतू जन्तुओं में यकृत की पित्त नलिकाओं में पाया जाता है जिसका जीवन-इतिहास घोंघा नामक जन्तु पर पूर्ण होता है। *फेशियोला* संसार के समस्त भागों में पाया जाता है।

वाह्य रचना (External Structure)

आकार तथा परिमाण—*फेशियोला* का शरीर बड़ा, कोमल तथा मांसल (fleshy) होता है। यह पृष्ठ-अधर तल से चपटा, पत्ती के समान तथा लगभग अण्डाकार होता है। साधारणतया यह 1″ लम्बा तथा चौड़ा होता है। इसका रंग गुलाबीपन लिये हुए भूरा होता है तथा किनारों पर काला होता है।

संरचना—शरीर का अगला चौड़ा भाग एक छोटी-सी शंक्वाकार रचना के रूप में उभरा रहता है जिसे शंकु या **शीर्ष-खण्ड** (head lobe), या **शीर्ष-शंकु** (cephalic cone) कहते हैं। शीर्ष-शंकु के दूरस्थ स्वतन्त्र सिरे पर मुख नामक सूक्ष्म गोलाकार छिद्र होता है जिसके चारों ओर पेशीयुक्त प्याले के समान गड्ढा होता है। यह **मुखवर्ती चूषक** (oral sucker) कहलाता है। शरीर के अधर तल पर शीर्ष शंकु के कुछ पीछे एक बड़ी तश्तरी के आकार का **अधर चूषक** या **पश्च चूषक** (ventral or posterior sucker) होता है। पश्च चूपक का शरीर के अन्य अंगों से कोई सम्पर्क नहीं होता। यह केवल शरीर को पोषक से चिपकाये रखता है। पश्च चूपक के ठीक आगे एक छोटा-सा जनन-छिद्र (gonopore) होता है जो शरीर की मध्य रेखा पर स्थित होता है। शरीर के अधर तल के पिछले सिरे पर **उत्सर्जन**

छिद्र (excretory pore) स्थित होता है। जनन काल में शरीर के पृष्ठतल पर एक सूक्ष्म छिद्र बन जाता है जो लारर नली का छिद्र (opening of Laurer's canal) कहलाता है।
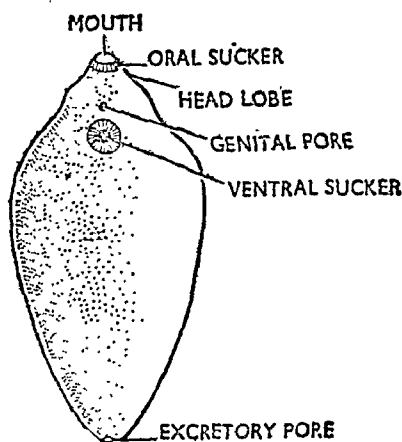
चित्र २२·१. फेशियोला हिपेटिका का अघर दृश्य (ventral view of *F. hepatica*)
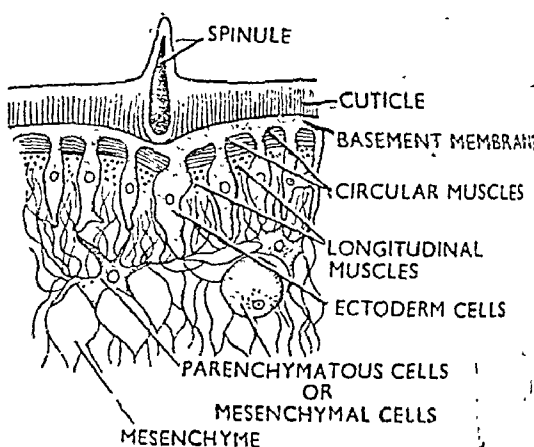
चित्र २२·२. फेशियोला हिपेटिका की देहभित्ति की खड़ी काट (L.S. Bodywall of *Fasciola*)

आन्तरिक संरचना (Internal structure)

1. देहभित्ति (Body wall)—परजीवी स्वभाव के अनुरूप *फेशियोला* की देहभित्ति में बहुत-सी विशेषताएँ पायी जाती हैं। इसकी एपिडर्मिस में कोशिकाएँ नहीं होतीं। देहभित्ति में निम्न स्तर पाये जाते हैं :—

(*i*) बाह्य मोटा तथा समरूप (homogeneous) **क्यूटिकल का स्तर** जो स्क्लीरोप्रोटीन्स का बना होता है तथा इसमें बहुत-से कांटे तथा कण्टिकाएँ पायी जाती हैं।

2. एक पतली आधार-कला (basement membrane)

3. अधोक्यूटिकल पेशी स्तर (subcuticular muscle-layer) जो तीन पर्तों का बना होता है—

(*i*) बाह्य वर्तुल पेशी स्तर (circular muscle-layer)

(*ii*) मध्य ऊर्ध्व पेशी स्तर (longitudinal muscle-layer)

(*iii*) आन्तरिक विकर्ण पेशी स्तर (diagonal muscle-layer)

4. पैरनकाइमा या मीसेनकाइमा (Parenchyma or mesenchyma)—विभिन्न शारीरिक अंगों के बीच का खाली स्थान लम्बी, शाखान्वित तथा द्रव से भरी पैरनकाइमा कोशिकाओं से भरा रहता है।

5. ग्रन्थि कोशिकाएँ (Gland cells)—देहभित्ति के पेशीय स्तर में विभिन्न प्रकार की एककोशिक ग्रन्थियाँ स्थित होती हैं।

पाचन तन्त्र (Digestive System)

पाचन तन्त्र अत्यन्त जटिल तथा शाखान्वित होता है। इसको निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. मुख तथा मुख-गुहा (Mouth and oral chamber)—मुख अत्यन्त

सूक्ष्म गोलाकार छिद्र है जो शीर्ष शंकु के दूरस्थ स्वतन्त्र सिरे के अधर तल पर स्थित होता है। यह मुखवर्ती चूषक से घिरा रहता है। मुख-गुहा एक छोटी, कीपाकार कोष्ठ है जो ग्रसनी में खुलती है।

2. ग्रसनी (Pharynx)—ग्रसनी एक छोटी, लगभग गोलाकार, पेशीयुक्त नली है जिसकी मोटी माँसल देहभित्ति में बहुत-सी ग्रसनी ग्रन्थियाँ (pharyngeal glands) स्थित होती हैं।

3. ग्रासनली (Oesophagus)—यह एक छोटी तथा सँकरी नली है जो ग्रसनी का आंत्र से सम्बन्ध स्थापित करती है।

4. आंत्र (Intestine)—प्रारम्भ होते ही आंत्र दो पार्श्व शाखाओं में बँट जाती है जो शरीर में दोनों ओर अन्तिम सिरे तक पहुँचती है, जहाँ ये बिना छिद्र के समाप्त हो जाती हैं। प्रत्येक शाखा के दोनों ओर से बहुत से **अपवर्ध** (diverticula or caeca) निकले होते है। बाहर की ओर के अपवर्ध बड़े तथा शाखान्वित होते हैं किन्तु भीतर की ओर वाले अपवर्ध छोटे होते हैं और शाखान्वित नही होते।
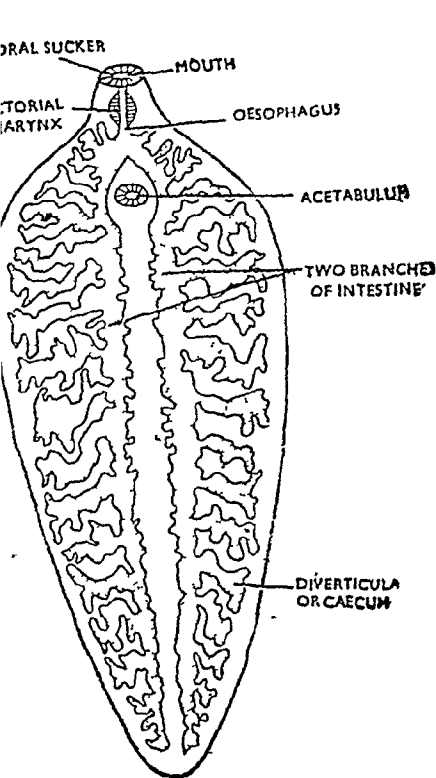
चित्र २२·३. फेशियोला का पाचन तन्त्र (Digestive system of *Fasciola*)

चित्र २२·४. फेशियोला का उत्सर्जन तन्त्र (Excretory system of *Fasciola*)

उत्सर्जन तन्त्र (Excretory System)

फेशियोला के उत्सर्जन अंग अत्यन्त शाखान्वित **उत्सर्जन वाहिनियाँ** तथा **शिखा-कोशिकाएँ** हैं।

1. उत्सर्जन वाहिनियाँ (Excretory ducts)—शरीर के अधर तल पर पिछले तीन-चौथाई (3/4) भाग के मध्य रेखा के साथ **मुख्य उत्सर्जन नाल** (main excretory canal) स्थित होती है। यह शरीर के पिछले सिरे पर **उत्सर्जन छिद्र** द्वारा बाहर खुलती है। उत्सर्जन छिद्र शरीर के अधर तल के पिछले सिरे पर स्थित होता है। अगले सिरे पर मुख्य उत्सर्जन नाल में दो पृष्ठ तथा दो अधर उत्सर्जन वाहिनियाँ खुलती हैं। इन वाहिनियों से समस्त लम्बाई के साथ दोनों ओर असंख्य पार्श्व शाखाएँ निकलती हैं जो पुनः सूक्ष्म केशिकाओं में विभाजित रहती हैं। *प्रत्येक कोशिका के अन्तिम सिरे पर एक शिखा-कोशिका पायी जाती हैं।*

2. शिखा-कोशिकाएँ (Flame cells)—प्रत्येक शिखा-कोशिका एक अनियमित आकार की मीसेनकाइम कोशिका होती है जिसकी कोशिका-भित्ति पतली तथा लचीली होती है। कोशिका-भित्ति के भीतर कोशिकाद्रव्य का पतला पर्त होता है तथा मध्य में आन्तरकोशिक खाली स्थान (intracellular space) होता है। इस खाली स्थान में लम्बे कम्पित या कम्पायमान कशाभों का एक गुच्छा होता है जो खाली स्थान में शिखा के समान सदैव हिलते हैं और अपनी गति द्वारा पैरेनकाइमा कोशिकाओं द्वारा एकत्रित किये गये उत्सर्जी पदार्थों को उत्सर्जी छिद्र की ओर अग्रसित करते हैं।
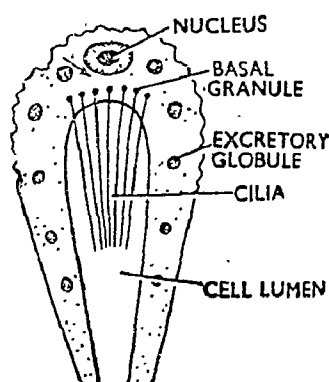
चित्र २२·५. शिखा-कोशका (Flame cell)

श्वसन-तन्त्र (Respiratory System)

श्वसन अंग अनुपस्थित होते हैं तथा केवल **अनॉक्सी श्वसन** (anaerobic respiration) होता है। ग्लाइकोजन के किण्वन द्वारा CO_2, फैटी अम्ल तथा ऊर्जा उत्पन्न होती है। यही ऊर्जा विभिन्न शारीरिक क्रियाओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लायी जाती है।

तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous System)

तन्त्रिका-तन्त्र पूर्ण विकसित होता है। इसमें—

(*i*) एक जोड़ी **सेरिब्रल गैंगलिया** (cerebral ganglia),

(*ii*) ग्रास नली के चारों ओर सेरिब्रल गैंगलिया को जोड़ता हुआ एक **नर्व कॉलर** (nerve collar),

(*iii*) सेरिब्रल गैंगलिया से शीर्ष खण्ड तथा शरीर के पिछले भाग को जाने वाली **सेरिब्रल तन्त्रिकाएँ**,

(*iv*) एक जोड़ी मोटी **पार्श्व तन्त्रिकाएँ** (lateral nerves) जो शरीर के पिछले सिरे तक पहुँचती हैं,

(*v*) एक जोड़ी पृष्ठ तन्त्रिकाएँ तथा एक जोड़ी अधर तन्त्रिकाएँ जो शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचती हैं, आदि रचनाएँ होती हैं।

जनन-तन्त्र (Reproductive System)

फेशियोला द्विलिंगी जन्तु है किन्तु इसमें पर-निषेचन (cross-fertilization) होता है।

नर जनन अंग (Male Reproductive Organs)

1. एक जोड़ी वृपण
2. एक जोड़ी शुक्र वाहिनियाँ
3. एक शुक्राशय
4. एक शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी तथा
5. शिश्नक एवम् शिश्नक कोप

1. वृषण (Testes)—ये अत्यधिक शाखान्वित, नालाकार रचनाएँ हैं जो शरीर के आधे पिछले भाग में एक-दूसरे के आगे-पीछे स्थित होती हैं। वृपणों का इस प्रकार विन्यसित होना tandem arrangement कहलाता है।

2. शुक्र-वाहिनियां (Vasa defrentia)—प्रत्येक शुक्र-वाहिनी पतली, सँकरी तथा नाजुक नलिका है जो वृपण से निकलकर आगे की ओर दूसरी ओर के अपने साथी से मिल जाती है और उभयनिष्ठ शुक्रवाहिनी (common sperm duct) वनाती है।

3. शुक्राशय (Seminal vesicle)—अधर चूपक के पास उभयनिष्ठ शुक्रवाहिनी फूलकर चौड़ी थैले के समान रचना बनाती है जो **शुक्राशय कहलाती है**। यह वड़ी, पेशीयुक्त तथा नाशपाती के आकार की होती है और अधर चूषक के आगे स्थित होती है।

4. शुक्रप्रसेचिनी वाहिनी (Ejaculatory duct)—यह एक पतली कुण्डलित नलिका (convoluted tube) है जो शुकाशय से निकलकर टेढ़े-मेढ़े मार्ग से आगे वढ़ती है और शिश्नक में से होती हुई नर जनन छिद्र द्वारा जनन वेश्म (genital chamber) में खुलती है।

5. शिश्नक तथा शिश्नक कोष (Cirrus and cirrus sac)—शिश्नक या शिश्न एक पेशीयुक्त वेलनाकार रचना है जिसके मध्य से शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी गुजरती है। यह जनन छिद्र से वाहर निकाला और भीतर लौटाया जा सकता है तथा मैथुन-क्रिया में सहायता करता है। शिश्नक तथा शुक्राशय थैले के समान शिश्नक कोष में वन्द रहते है।

6. प्रोस्टेट ग्रन्थियां (Prostate glands)—ये असंख्य एककोशिक ग्रन्थियाँ हैं जो शुक्र प्रसेचिनी के चारों ओर स्थित होती हैं।

मादा जनन अंग (Female Genital Orans)

1. एक अण्डाशय (Single ovary)
2. अण्डवाहिनी (An oviduct)
3. एक ऊटाइप (An ootype)
4. गर्भाशय (Uterus)
5. खोल ग्रन्थियाँ तथा उनकी वाहिनियाँ (Shell glands and their ducts)
6. पीतक ग्रान्थियाँ तथा उनकी वाहिनियाँ (Vitelline glands and their ducts)
7. लारर नलिका (Laurer's canal)

1. अण्डाशय—यह एक वड़ी, अत्यन्त शाखान्वित तथा नालाकर रचना है जो वृपण के आगे दाहिनी ओर स्थित होता है। यह शरीर के अगले एक-तिहाई भाग में पाया जाता है।
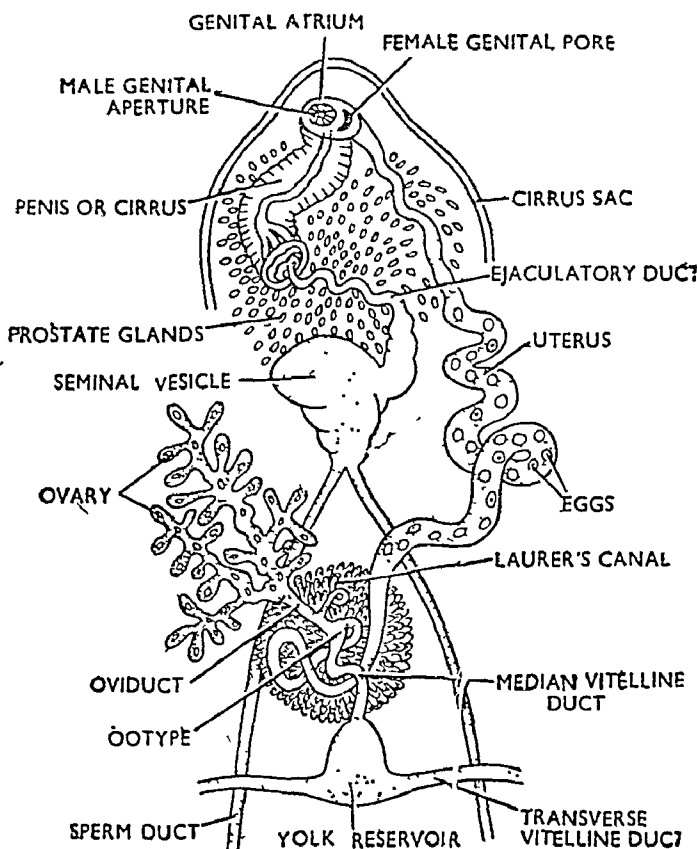
चित्र २२·६. फेशियोला के जनन अंगों का आवर्धित दृश्य
(Enlarged view of reproductive organs of Fasciola)

2. अण्डवाहिनी—अण्डाशय के भीतर की सतह से एक छोटी, सँकरी तथा कुण्डलित नलिका निकलती है जो अण्डवाहिनी कहलाती है। यह नीचे तथा पीछे की ओर बढ़ती है और गर्भाशय से जुड़ जाती है। मार्ग में इससे **लॉरर नलिका** (Laurer's canal) निकलती है तथा उभयनिष्ठ पीतक नलिका (common vitelline duct) इसमें खुलती है।

3. ऊटाइप (Ootype)—जिस स्थान पर अण्डवाहिनी उभयनिष्ठ पीतक नलिका से जुड़ती है वह काफी फूल जाता है और **ऊटाइप** कहलाता है। इसके चारों ओर असंख्य खोल ग्रन्थियाँ या **मेहलिस ग्रन्थियाँ** (Mehlis glands) स्थित होती हैं। ऊटाइप के भीतर अण्डे एकत्रित होते हैं। *फेशियोला हिपेटिका* में ऊटाइप नहीं पाया जाता।

4. गर्भाशय—ऊटाइप गर्भाशय में खुलता है जो एक चौड़ी कुण्डलित नलिका के समान होता है और आगे की ओर **जनन वेश्म** (genital atrium) में खुलता है। गर्भाशय में निषेचित अण्डे पाये जाते हैं। गर्भाशय का अन्तिम सिरा पेशीयुक्त होता है और अण्डों को बाहर निकलने में सहायता करता है।

5. खोल ग्रन्थियाँ—ऊटाइप को घेरे हुए असंख्य एककोशिक खोल ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं। इनसे स्रावित पदार्थ ऊटाइप में एकत्रित होता है और अण्डों के
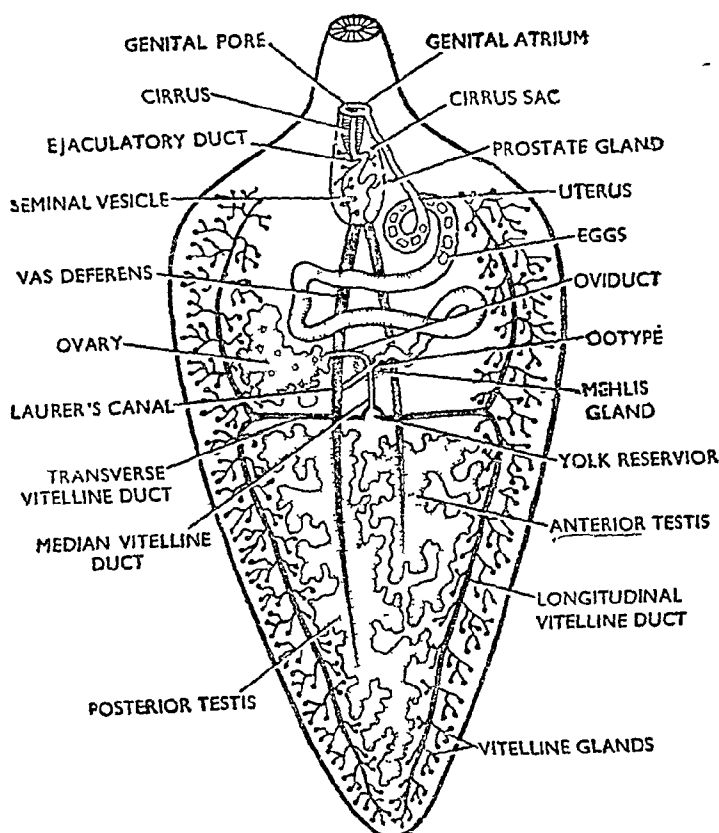
चित्र २२·७. फेशियोला के जनन अंग (Reproductive organs of Fasciola)

चारों ओर एकत्रित होकर कवच का निर्माण करता है। यह अण्डों के आमाशय में पहुँचने के मार्ग को चिकना भी करता है।

6. पीतक ग्रन्थियाँ—पीतक ग्रन्थियाँ अथवा योक ग्रन्थियाँ असंख्य सूक्ष्म पुटी या वेसिकिल्स के रूप में शरीर की दोनो पार्श्व सतहों के साथ एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती है। प्रत्येक पुटी से एक सूक्ष्म नलिका निकलती है। इस प्रकार की बहुत-सी नलिकाएँ आपस में संयुक्त होकर अपनी ओर की **पार्श्व लम्बवत् वाहिनी** (lateral longitudinal duct) में खुलती है। दोनों ओर की पार्श्व वाहिनियाँ शरीर के मध्य में **अनुप्रस्थ पीतक वाहिनी** से जुड़ी रहती है। अनुप्रस्थ पीतक वाहिनी के मध्य से एक नलिका निकलकर अण्डवाहिनी से जुड़ती है।

7. लारर नाल (Laurer's canal)—यह एक छोटी-सी नलिका है जो अण्डवाहिनी से निकलती है और शुक्र-नलिका (sperm duct) या निषेचन-नलिका के समान कार्य करती है। जनन ऋतु में यह शरीर के पृष्ठतल पर एक सूक्ष्म छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है।

परजीवी अनुकूलताएँ (Parasitic Adaptations)

परजीवी अनुकूलताएँ किसी परजीवी की रचना एवम् जीवन-इतिहास में पाये जाने वाले वे मुख्य परिवर्तन है जिनकी सहायता से वह सफलतापूर्वक परजीवी

जीवन व्यतीत कर सके तथा परजीवी पोषक शरीर के भीतर सफलतापूर्वक रह सके। क्योंकि *फेशियोला* एक अन्तः परजीवी है जो भेड़ के यकृत में रहता है, अतः इसमें उस वातावरण के अनुकूलन के लिए निम्न विशेषताएँ पायी जाती है जो मुख्य रूप से दो शीर्षकों में बाँटी गयी हैं :—

1. रचनात्मक परिवर्तन या विशेषताएँ,
2. जीवन-इतिहास में परिवर्तन।

रचनात्मक परिवर्तन (Structural Modifications)

1. आकारिकीय परिवर्तन (Morphological Modifications)

(*i*) शरीर पृष्ठ-अधर दिशा में चपटा (dorso-ventrally flattened), पत्ती के समान तथा लगभग त्रिकोणाकार होता है जिससे चोट लगने का भय कम हो जाता है।

(*ii*) चिपकने के लिए दो चूषकों (suckers) के रूप में विशेष अंग पाये जाते है जो अत्यन्त पेशीयुक्त (highly muscular) होते है।

(*iii*) बाह्य आकृति अत्यन्त सरल होती है। शरीर को सिर, धड़ तथा पूंछ में नही बॉटा जा सकता। उपांगों का भी अभाव होता है।

2. आन्तरिक रचनात्मक परिवर्तन (Anatomical Modifications)

(*i*) प्रौढ अवस्था मे शरीर पर पक्ष्म नहीं होते परन्तु क्यूटिकल का मोटा स्तर पाया जाता है जिससे शरीर पर पोषक के रासायनिक पदार्थो का प्रभाव न हो सके। अतः शरीर पर कण्टिकाएँ भी पायी जाती है।

(*ii*) मुख के पास तथा अधर-तल पर क्यूटिकल मोटी होकर दो चूषक बना लेती है।

(*iii*) चलन अग नही पाये जाते क्योंकि प्रौढ़ जन्तु को पोषक के शरीर मे घूमने की कोई आवश्यकता नही होती किन्तु स्वतन्त्र-जीवी लारवा मे पक्ष्म होते हैं।

(*iv*) पाचन-तन्त्र अपूर्ण होता है। मुख शरीर के अगले सिरे पर स्थित होता है। यह शीर्ष छिद्र (terminal aperture) होता है और चूपक द्वारा घिरा रहता है। ग्रसनी अत्यन्त पेशीयुक्त तथा शोषक (muscular and suctorial) होती है।

(*v*) आंत्र अत्यधिक शाखान्वित होती है जिससे शरीर के विभिन्न भागो को पचा हुआ भोजन पहुँचाया जा सके। अतः यह परिवहन तन्त्र की अनुपस्थिति को पूर्ण करती है।

(*vi*) परजीवी होने के कारण इसे पचा हुआ भोजन प्राप्त होता है ; अतः गुदा-द्वार (anus) नहीं होता।

(*vii*) परिवहन-तन्त्र तथा श्वसन अंग अनुपस्थित होते है। इनमें अनॉक्सी श्वसन (anaerobic respiration) पाया जाता है। यह आन्तर-जैविक अस्तित्व के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पोषक के शरीर में स्वतन्त्र ऑक्सीजन का मिलना अत्यन्त कठिन है।

(*viii*) परिवहन-तन्त्र की कमी को पूर्ण करने के लिए उत्सर्जन अंग बहुत विकसित होते है। उत्सर्जन वाहिनियाँ अत्यधिक शाखान्वित होती है और इनके अन्तिम सिरों पर शिखा-कोशिकाएँ होती है।

(*ix*) तन्त्रिका तन्त्र अल्प विकसित होता है तथा संवेदी अंगों का पूर्ण अभाव होता है क्योकि पोषक के शरीर के भीतर विशेष वायुमण्डलीय परिवर्तन नही होते।

(*x*) जनन अंग अत्यधिक विकसित होते हैं। अत्यधिक शाखान्वित अण्डा

शय तथा वृषणों से असंख्य युग्मक (gametes) बनते हैं।

जीवन-इतिहास में परिवर्तन (Modifications in Life-history)

(*i*) बहुत अधिक संख्या में अण्डों का उत्पादन करना (लगभग दस लाख) जिससे प्रकीर्णन का भय समाप्त हो जाता है।

(*ii*) अण्डों के ऊपर रक्षात्मक खोल होता है जिसमें ओपरकुलम होता है।

(*iii*) जाति के वितरण के लिए इनके जीवन-इतिहास में द्वितीयक पोषक पाया जाता है।

(*iv*) लारवा अवस्था में पीडोजेनेसिस (paedogenesis) द्वारा वर्धन होता है।

(*v*) मिरासीडियम (miracidium) स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने वाला रोमयुक्त (ciliated) लारवा है क्योंकि इसे नये पोषक को खोजना होता है। सरकेरिया लारवा द्वितीय पोषक के शरीर से निकल कर परिकोष्ठित (encysted) हो जाता है जिससे बाह्य परिवर्तनों का परजीवी पर प्रभाव न हो सके।

प्रश्न 89. फेशियोला के जनन-तन्त्र का वर्णन करिये तथा इसके आर्थिक महत्व पर नोट लिखिये।

Describe the reproductive system of *Fasciola* (Liver fluke) and add a note on the economic importance of this animal.

(*Agra 1955 ; Lucknow 63*)

फेशियोला के जननांगों का वर्णन कीजिये।

Describe the reproductive organs of Fasciola. (*Jabalpur 1972*)

जनन तन्त्र

कृपया प्रश्न 88 देखिये।

आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

(*i*) फेशियोला भेड़, बकरी तथा गाय-भैंसों इत्यादि के शरीर में रहता है।

(*ii*) आंत्र से यकृत में पहुँचते हुए परजीवी बहुत-सी बीमारियाँ उत्पन्न करता है।

(*iii*) यकृत के भीतर यह 'liver-rot' नामक रोग उत्पन्न करता है। Acute liver-rot में भेड़ सुस्त हो जाती है, उदर में दर्द होता है, यकृत बढ़ता जाता है और भार धीरे-धीरे कम हो जाता है। Chronic liver-rot से जन्तु में रुधिर की कमी हो जाती है, भार कम हो जाता है तथा जबड़े पानी भरने के कारण फूल जाते हैं। कुछ महीनों में भेड़ की मृत्यु हो जाती है।

(*iv*) परजीवी के बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होने पर ही पोषक की मृत्यु होती है, कम संख्या में परजीवी के प्रभाव से भेड़ कमजोर अवश्य हो जाती है।

(*v*) जब परजीवी बहुत अधिक संख्या में होता है तो यह यकृत में घूमते हुए रक्त-स्राव उत्पन्न करता है तथा यकृत-वाहिनियों को बन्द कर देता है और फुला देता है जिससे यकृत में पत्थर (liver-stone) बन जाता है।

मनुष्य के यकृत में पाया जाने वाला यकृत-परजीवी यकृत के रोगों, जैसे—यकृत-वाहिनियों को बन्द करता है तथा रक्त की कमी उत्पन्न करता है।

प्रश्न 90. फेशियोला के जनन-तन्त्र का वर्णन करिये तथा टीनिया के साथ इसकी तुलना कीजिये।

Describe the reproductive system of *Fasciola* (Liver-fluke) and compare it with that of *Taenia*. (*Agra 1958, 61, 65, 67, 69; Patna 68, 71 ; Gorakhpur 60 ; Punjab 68*)

लिवर-फ्लूक एवम् टीनिया के जनन-तन्त्र की तुलना कीजिये ।

Compare and contrast the reproductive system of liver-fluke and *Taenia*. (*Allahabad 1966*)

फेशियोला तथा टीनिया के जनन अंगों की तुलना
(Comparison of Reproductive Organs of Fasciola and Taenia)

फेशियोला (*Fasciola*)	टीनिया (*Taenia*)
1. प्रत्येक जन्तु में नर तथा मादा जनन अंगों का केवल एक-एक जोड़ा पाया जाता है ।	1. जन्तु का शरीर देहखण्डों या प्रोग्लोटिड्स का बना होता है तथा प्रत्येक परिपक्व देहखण्ड में एक जोड़ी नर एवम् एक जोड़ी मादा जनन अंग पाये जाते हैं ।
2. जन्तु द्विलिंगी होते हैं ।	2. प्रत्येक देहखण्ड द्विलिंगी होता है ।
नर जनन अंग	
3. नर जनन अंग निम्नलिखित हैं :— (*i*) एक जोड़ी वृषण (*ii*) एक जोड़ी शुक्रवाहिनी (*iii*) एक शुक्राशय (*iv*) एक शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी (*v*) शिश्नक तथा शिश्नक कोष (*vi*) प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ	3. नर जनन अंग निम्नलिखित हैं :— (*i*) असंख्य वृषण (*ii*) शुक्र वाहिनिकायें (*iii*) शुक्र वाहिनी (*iv*) शिश्नक तथा शिश्नक कोष
4. वृषण संख्या में केवल दो अथवा एक जोड़ी होते हैं जो एक-दूसरे के आगे-पीछे शरीर के पिछले आधे भाग में स्थित रहते हैं । प्रत्येक वृषण अत्यधिक शाखान्वित नालाकार रचना है जो देहगुहा का अधिकांश स्थान घेरे रहता है ।	4. वृषण असंख्य गोल रचनाएँ हैं जो समस्त देहखण्ड के भीतर फले रहते हैं ।
5. (*a*) फेशियोला में दो शुक्रवाहिनियाँ पायी जाती हैं जो दोनों वृषणों से निकलकर लगभग सीधी आगे को वढ़ती हैं ।	5. (*a*) टीनिया में शुक्र-वाहिनी केवल एक ही होती है और कुण्डलित होती है । यह बहुत सी महीन वाहिनिकाओं या वासा इफरेन्शिया के मिलने पर बनती है । प्रत्येक वास इफरेन्स एक वृषण से निकलती है ।
(*b*) दोनों शुक्र-वाहिनियाँ शुक्राशय में खुलती हैं ।	(*b*) शुक्र वाहिनी शिश्नक में खुलती है ।
6. शुक्राशय एक वड़ी पेशीयुक्त तथा नाशपाती के आकार की रचना है ।	6. शुक्राशय अनुपस्थित होता है ।

फेशियोला (*Fasciola*)	टीनिया (*Taenia*)
7. शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी एक पतली कुण्डलित नलिका के रूप में शुक्राशय से निकलती हैं।	7. शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी का अभाव होता है।
8. शिश्नक कोष में तथा शुक्राशय के चारों ओर असंख्य एककोशीय प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं।	8. प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ अनुपस्थित होती हैं।
9. शिश्नक, शुक प्रसेचिनी वाहिनी, प्रोस्टेट ग्रन्थियों तथा शुक्राशय को घेरे हुए शिश्नक कोष पाया जाता है।	9. शिश्नक कोष केवल शिश्नक को घेरे रहता है।

मादा जनन अंग

फेशियोला (*Fasciola*)	टीनिया (*Taenia*)
10. मादा जनन अंग निम्नलिखित हैं :— (*i*) अण्डाशय (*ii*) अण्डवाहिनी (*iii*) ऊटाइप (*iv*) गर्भाशय (*v*) पीतक ग्रन्थियाँ तथा उनकी वाहिनियाँ (*vi*) खोल ग्रन्थि (*vii*) लारर वाहिनी	10. टीनिया के मादा जनन अंग निम्न हैं :— (*i*) अण्डाशय (*ii*) अण्डवाहिनी (*iii*) ऊटाइप (*iv*) योनि (*v*) गर्भाशय (*vi*) खोल ग्रन्थियाँ (*vii*) पीतक ग्रन्थि
11. अण्डाशय केवल एक होता है तथा यह शाखान्वित नलिका के रूप में शरीर के अगले भाग में दाहिनी ओर स्थित होता है।	11. अण्डाशय संख्या में एक होता है किन्तु यह दो खण्डों में बँटा होता है। यह ऊपर से नीचे की ओर चपटा होता है और देहखण्ड के पिछले भाग में स्थित होता है।
12. अण्डवाहिनी एक लम्बी कुण्डलित नालिका होती है जो अण्डाशय से निकलती है।	12. अण्डवाहिनी एक छोटी तथा सीधी नलिका होती है जो अण्डाशय के-दोनों खण्डों को जोड़ने वाले भाग से निकलती है।
13. गर्भाशय एक चौड़ी, लम्बी तथा कुण्डलित नालाकार रचना होती है।	13. गर्भाशय सीधी नली के रूप में होता है।
14. योनि अनुपस्थित होती है।	14. योनि ऊटाइप से निकलती है तथा जनन वेश्म में जाकर खुलती है।
15. रिसेप्टेकुलम सेमिनिस नहीं होता।	15. रिसेप्टेकुलम सेमिनिस योनि का अगला भाग होता है।
16. ऐसा नहीं होता।	16. निषेचन नलिका होती है जो रिसेप्टेकुलम सेमिनिस को अण्डवाहिनी से जोड़ती है।

फेशियोला (*Fasciola*)	टीनिया (*Taenia*)
17. ऊटाइप के चारो ओर असंख्य एक-कोशिक खोल ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं।	17. इसमे भी ऐसा ही होता है।
18. पीतक ग्रन्थियाँ असख्य गोल पिण्डको के रूप मे शरीर के दोनो पाश्व भागो के साथ पायी जाती हैं।	18. टीनिया मे पोषक ग्रन्थि वहुत-से पिण्डको के रूप मे होती है जो एक चपटी, ठोस ग्रन्थि वनाती है। यह अण्डाशय के नीचे स्थित होती है।
19. सभी पीतक ग्रन्थियाँ महीन नलिकाओ द्वारा पाश्र्व लम्ववत् पीतक वाहिनी मे खुलती हैं। लम्ववत् पीतक वाहिनियाँ अनुप्रस्थ वाहिनी द्वारा शरीर के मध्य मे जुडी रहती है। अनुप्रस्थ वाहिनी एक छोटी-सी नलिका द्वारा ऊटाइप मे खुलती है।	19. पीतक ग्रन्थि एक छोटी पीतक वाहिनी द्वारा ऊटाइप मे खुलती है।
20. लारर नलिका (Laurer's canal) ऊटाइप से निकलकर शरीर के पृष्ठ तल की ओर वढती है जहाँ यह केवल जनन-काल मे वाहर को खुलती है।	20. लारर नलिका अनुपस्थित होती है।

प्रश्न 91. फेशियोला के जीवन-इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कीजिये तथा इसके जीवन-चक्र में विभिन्न अवस्थाओं के होने का महत्त्व समझाइये।

Give a brief account of life-history of *Fasciola* and explain the significance of different phases in its life-hisory.

(*Agra 1957, 68, 73 ; Gorakhpur 59, 62 ; Lucknow 58, 59, 61, 62, 65, 66 ; Punjab 66 ; Vikram 64, 69 ; Rajasthan 70, 73 ; Meerut 67*)

फेशियोला हिपेटिका एक द्विपोषक ट्रिमेटोड (digenetic trematode) जन्तु है जिसका जीवन-इतिहास दो पोषकों पर पूर्ण होता है इसका प्राथमिक पोषक भेड़ या कोई अन्य पालतू पशु है तथा द्वितीय पोषक *लिमनिया* जाति का एक घोंघा है। कई लारवा अवस्थाओ के पाये जाने के कारण इसका जीवन-इतिहास अति जटिल होता है। लारवा में अलैंगिक विधि द्वारा वर्धन भी होता है।

मैथुन (Copulation)—यद्यपि *फेशियोला* द्विलिंगी जन्तु है, इसमें पर-निषेचन (cross-fertilization) पाया जाता है। पोषक के शरीर के भीतर ही दो जन्तुओं में मैथुन की क्रिया होती है। एक जन्तु का शिश्नक दूसरे जन्तु की लारर नलिका के छिद्र मे घुस जाता है तथा प्रोस्टेट ग्रन्थि के द्रव के साथ शुक्राणु भी लारर नली में जमा कर दिये जाते हैं। ये यहाँ से अण्डवाहिनी मे चले जाते हैं।

निषेचन (Fertilization)—अण्डों का निषेचन अण्डवाहिनी में होता है। निषेचित अण्डों पर गर्भाशय की ओर जाते समय योक जमा हो जाता है तथा उन पर काइटिन का खोल भी वन जाता है।
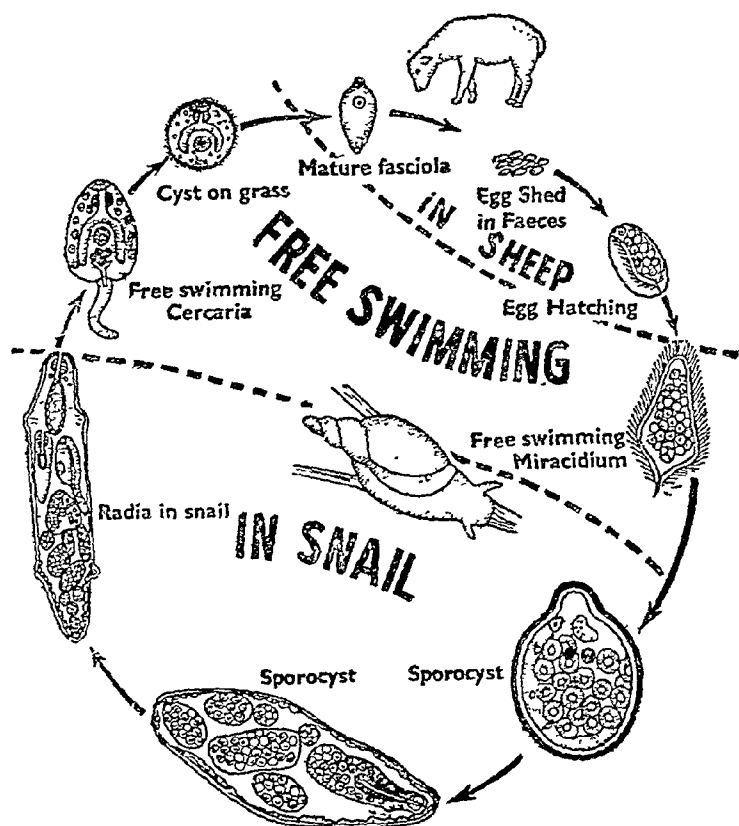
चित्र २२·८. फेशियोला हिपेटिका का जीवन-चक्र (Life-cycle of *F. hepatica*)

अण्डे (Eggs)—पूर्ण परिपक्व निषेचित अण्डे हल्के भूरे रंग की अण्डाकार रचनाएँ है जिनका परिमाण $130 \times 63\mu$ होता है। प्रत्येक अण्डे का वाहरी आवरण काइटिन का वना हुआ खोल (shell) होता है जिसके सिर पर ऑपरकुलम या ढक्कन होता है। अण्डे पोषक की पित्त वाहिनियों में जमा कर दिये जाते हैं तथा पित्त के साथ आंत्र में पहुँचते हैं जो अन्त में अपच भोजन के साथ पोषक के शरीर से वाहर निकलते हैं।

खण्डीभवन (Segmentation)—जव अण्डा गर्भाशय के भीतर ही होता है तभी इसमें खण्डन या विभाजन प्रारम्भ हो जाता है। प्रथम विभाजन पूर्ण किन्तु असमान होता है। फलस्वरूप एक दानेदार प्रोपेगेटरी कोशिका (propagatory cell) तथा एक वड़ी दैहिक कोशिका (somatic cell or ectodermal cell) वनती हैं। दैहिक कोशिका वार वार विभाजित होकर लारवा का एक्टोडर्म वनाती है। प्रोपेगेटरी कोशिका के विभाजन के फलस्वरूप प्रोपेगेटिव कोशिकाएँ तथा दैहिक कोशिकाएँ वनती हैं। दैहिक कोशिकाएँ विखण्डन के फलस्वरूप शारीरिक अंगों का निर्माण करती हैं तथा प्रोपेगेटिव कोशिकाएँ जनन-कोशिकाएँ वनाती हैं। 9 से 12 दिन के वीच अण्डे के ऑपरक्युलम को हटाकर रोमयुक्त लारवा (ciliated larva) निकलता है। यह मिरासीडियम लारवा (miracidium larva) कहलाता है।

OPERCULUM
PROPAGATORY CELL
SOMATIC CELL
YOLK CELLS

OPERCULUM
EGG SHELL
FERTILIZED EGG
YOLK CELLS

OPERCULUM
EGG SHELL
EMBRYO
YOLK CELLS

OPERCULUM
EGG SHELL
BRAIN
EYE SPOT
PROTONEPHRIDIA
YOLK CELLS
GERM CELLS
CILIA
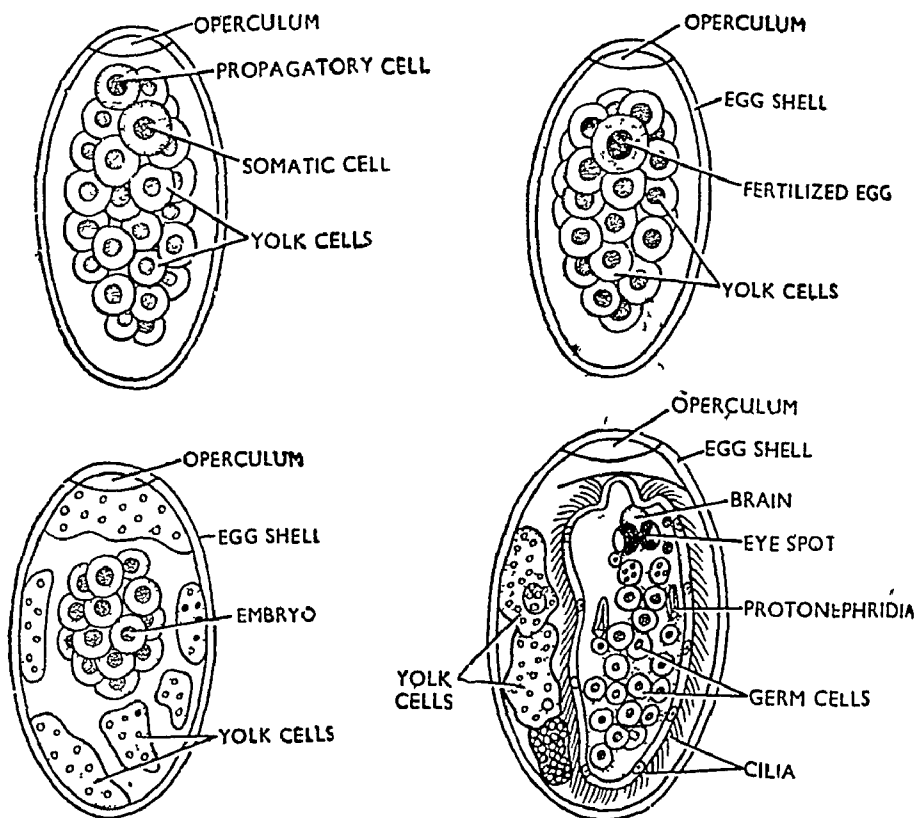
चित्र २२·९. फेशियोला मे अण्डे का खण्डीभवन (Segmentation of egg of *Fasciola*)

मिरासीडियम लारवा (Miracidium larva)—मिरासीडियम स्वतन्त्र-जीवी लारवा है जिसका शरीर लम्बा तथा शंक्वाकार होता है। शरीर का अगला चौड़ा भाग उभरकर **शीर्ष पाली**(apical lobe) बनाता है जिसके शीर्ष पर बहु-केन्द्रक, थैले के समान शीर्ष ग्रन्थियाँ (apical glands तथा बहुत-सी एककोशिक, पेनिट्रेशन ग्रन्थियों (penetration glands) के छिद्र होते है। शीर्ष-पाली को छोड़कर इनके समस्त शरीर पर पक्ष्म पाये जाते हैं। लारवा की एक्टोडर्म 21 षट्भुजी कोशिकाओं के पाँच पंक्तियों मे लगे रहने से बनती हैं। प्रथम पंक्ति मे 6 कोशिकाएं (2 पृष्ठ, 2
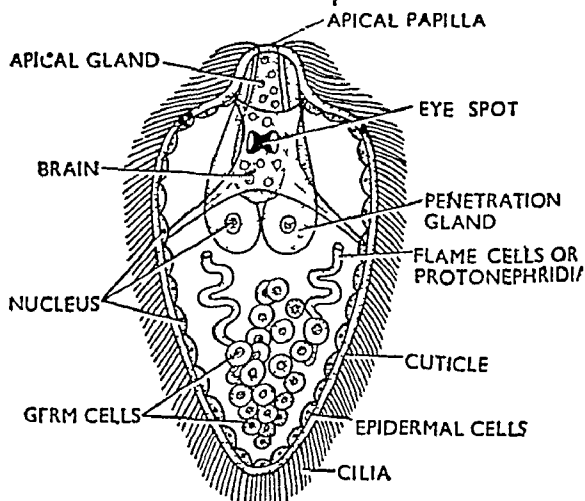
चित्र २२·१०. फेशियोला हिपेटिका की मिरासीडियम लारवा (Miracidium larva) अवस्या

अधर तथा 2 पार्श्व), द्वितीय पंक्ति में 6 कोशिकाएँ (3 पृष्ठ तथा 3 अधर तल पर), तृतीय पंक्ति में 3 कोशिकाएँ (1 पृष्ठ तथा 2 पार्श्व-अधर तल पर), चतुर्थ पंक्ति में 5 कोशिकाएँ (3 दाहिनी तथा 2 बाईं ओर) पाँचवीं पंक्ति में केवल 2 कोशिकाएँ (1 दाहिनी एवम् 1 बाईं ओर) पायी जाती हैं। एक्टोडर्म के नीचे सब-एपिथीलियम का स्तर होता है जिसके नीचे पहले वर्तुल पेशी स्तर तथा बाद में लम्बवत् पेशी स्तर होता है। मस्तिष्क तथा दृष्टि बिन्दु (brain and eye-spot) शरीर के अगले भाग में स्थित होते हैं। लारवा के शरीर में एक जोड़ी प्रोटोनेफ्रीडिया तथा जनन कोशिकाओं के समूह है।

द्वितीय पोषक का संक्रमण (Infection to secondary host)—मिरासीडियम लारवा स्वतन्त्रतापूर्वक तैरकर अपने द्वितीय पोषक लिमनिया (*Limnaea*) अथवा प्लैनॉरविस (*Planorbis*) जाति के घोंघे को खोजता है। मिरासीडियम केवल 4 से 30 घण्टे तक जीवित रह सकता है। यदि इसी बीच द्वितीय पोषक नहीं मिलता तो वह नष्ट हो जाता है। घोंघे में पहुँचकर यह फुफ्फुस कोष (pulmonary chamber) में से होता हुआ पाचन ग्रन्थि (digestive gland) में पहुँचता है। अब इस पर से रोम लुप्त हो जाते हैं और यह स्पोरोसिस्ट में परिवर्तित हो जाता है।

स्पोरोसिस्ट लारवा (Sporocyst larva)—स्पोरोसिस्ट लम्बी तथा थैले के समान रचना है जिस पर क्युटिकल का पतला आवरण होता है। इसके नीचे
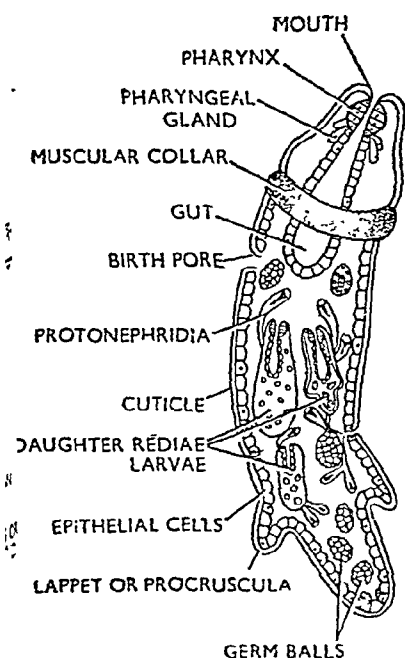
चित्र २२·११. फेशियोला का रेडिया लारवा सन्तति रेडिया सहित (Redia larva with redia)
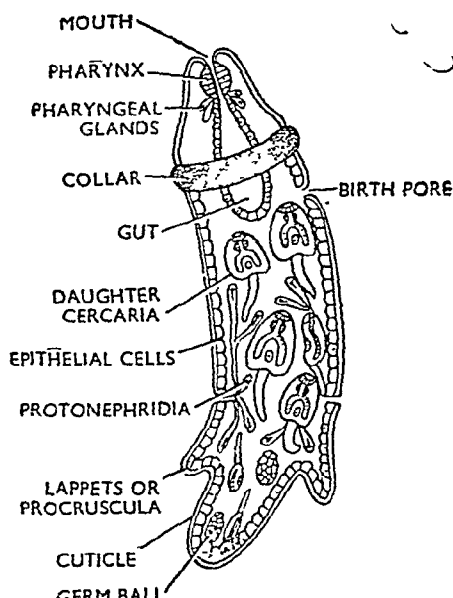
चित्र २२·१२. फेशियोला का रेडिया लारवा सरकेरिया सहित (Redia larva with cercaria)

क्रमशः वर्तुल तथा लम्बवत् पेशी स्तर होते हैं। इसके भीतर जनन कोशिकाएँ तथा प्रोटोनेफ्रीडिया पाये जाते हैं एवम् आहार-नाल के अवशेष भी दृष्टिगोचर होते हैं।

मिरासीडियम लारवा के अन्य अंग नष्ट हो जाते हैं। जनन कोशिकाएँ विभाजित होकर **रेडिया लारवा** बनाती हैं परन्तु कभी-कभी सन्तति स्पोरोसिस्ट भी बनते है।

रेडिया लारवा (Redia larva)—यह लम्बा तथा बेलनाकार होता है और स्पोरोसिस्ट के फटने पर बाहर निकलता है। यह पतली क्युटिकल की पर्त से ढका रहता है। अगले सिरे पर छोटा-सा मुख-द्वार होता है जो पेशीयुक्त **आशोषक ग्रसनी** (suctorial pharynx) में खुलता है। ग्रसनी की दीवार में बहुत-सी एककोशिक ग्रसनी-ग्रन्थियाँ (unicellular pharyngeal glands) पायी जाती हैं। इनके पीछे आंत्र होती है किन्तु गुदाद्वार नहीं होता। **ग्रसनी** के कुछ पीछे शरीर के अगले सिरे पर पेशीयुक्त पट्टी के समान **कॉलर** (collar) होता है और ठीक उसके पीछे **जनन-छिद्र** (birth pore) पाया जाता है। शरीर के पिछले सिरे पर एक जोड़ी पार्श्व प्रवर्ध (lateral projections or procruscula or lappets) निकले रहते हैं। शरीर के भीतर पैरनकाइमा होता है जिसमें जनन कोशिकाएँ तथा शाखान्वित शिखा कोशिकाएँ पायी जाती हैं प्रोटोनेफ्रीडिया एक जोड़ी उत्सर्गी छिद्र (excretory pores) द्वारा बाहर खुलते हैं तथा जनन कोशिकाएँ विभाजित होकर ग्रीष्म काल में संतति रेडिया (daughter rediae) तथा अन्य ऋतुओं में **सरकेरिया** (cercaria) को जन्म देती हैं।

सरकेरिया लारवा (Cercaria larva)—पूर्ण परिपक्व सरकेरिया लारवा का शरीर चपटा तथा हृदयाकार होता है जिसके पिछले सिरे से एक लम्बी, लचीली पूँछ निकलती है। शरीर पर क्युटिकल का पतला आवरण होता है जिसमें पीछे की ओर को निकले हुए बहुत-से काँटे (spines) पाये जाते हैं। शरीर के अगले भाग में मुख, पेशीय ग्रसनी, छोटी-सी ग्रासनली तथा द्विखण्डित आंत्र होती है। मुख को घेरे हुए **मुखीय चूषक** (oral sucker) तथा आंत्र की दोनों भुजाओं के बीच अधर चूषक (ventral sucker) स्थित होता है। आन्तरिक गुहा में असंख्य जनन कोशिकाएं, शिखा कोशिकाएँ तथा उत्सर्जन वाहिनियाँ (excretory ducts) पायी जाती हैं। समस्त उत्सर्जन वाहिनियाँ मूत्राशय (excretory bladder) में खुलती हैं। मूत्राशय से एक छोटी-सी उत्सर्जन वाहिनी निकलकर बाहर को खुलती है। इसका उत्सर्गी छिद्र पूंछ के आधार पर स्थित होता है। देहभित्ति के नीचे बहुत-सी एककोशिक सिस्टोजीनस ग्रन्थियाँ
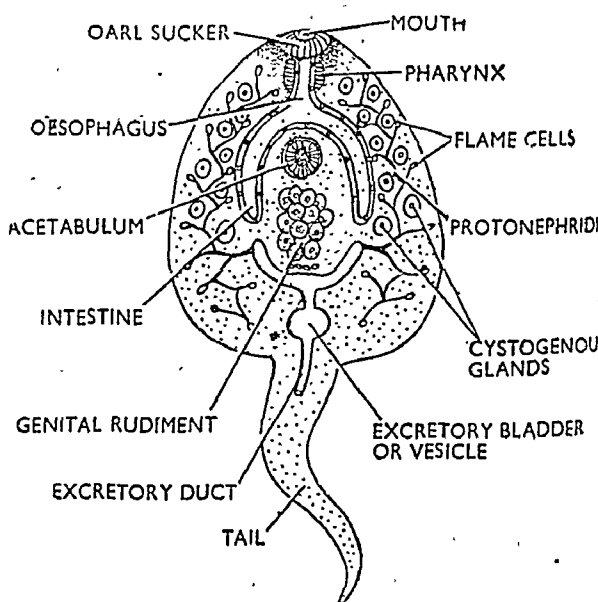
चित्र २०·१३. फेशियोला का सरकेरिया लारवा (Cercaria larva of *Fasciola*)

(cystogenous glands) पायी जाती हैं। इनसे स्रावित पदार्थ लारवा के चारों ओर सिस्ट (cyst) का निर्माण करता है, जिसके पश्चात् सरकेरिया मेटासरकेरिया में बदल जाता है।

परिपक्व होने पर सरकेरिया रेडिया के जनन-छिद्र के बाहर निकल आता है तथा घोंघे के शरीर से भी बाहर आ जाता है। कुछ देर के लिए यह पानी में तैरता है तथा फिर किसी जलीय पौधे की पत्ती इत्यादि से चिपक जाता है। इसकी पूँछ नष्ट हो जाती है तथा सिस्टोजिनस ग्रन्थियों के स्राव से इसके चारों ओर कोष्ठ का निर्माण हो जाता है तथा मेटासरकेरिया का निर्माण हो जाता है।

मेटासरकेरिया (Metacercaria)—मेटासरकेरिया लगभग गोल होता है तथा इसके चारों ओर क्यूटिकल का मोटा आवरण होता है जो सिस्ट बनाता है। इसमें सरकेरिया में पायी जाने वाली सिस्टोजीनस ग्रन्थियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा शिखा कोशिकाओं की संख्या अधिक हो जाती है।

प्रथम पोषक का संक्रमण (Infection of the primary or final host)—भेड़ अर्थात् निश्चित या आन्तरिक पोषक द्वारा जलीय पौधों को खाने पर परजीवी का मेटासरकेरिया भोजन के साथ आंत्र में पहुँचता है। आंत्र में सिस्ट पाचक रसों के प्रभाव से घुल जाता है तथा परजीवी स्वतन्त्र हो जाता है। हिपेटिक पोर्टल तन्त्र के साथ यह यकृत में पहुँचता है तथा पित्त-वाहिनी में अपना जीवन व्यतीत करता है।

फेशियोला के जीवन-इतिहास में विभिन्न लारवा अवस्थाओं का महत्त्व

(Significance of Different Larval Phases in the Life-history of Fasciola)

फेशियोला के जीवन-इतिहास में विभिन्न लारवा अवस्थाओं की उपस्थिति के महत्त्व के सम्बन्ध में विभिन्न वैज्ञानिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। इनमें से कुछ निम्न हैं :—

1. जननों का एकान्तरण या मेटाजेनेसिस तथा हैटेरोगेमी (Alternation of generations or heterogamy)—यह माना जाता है कि प्रौढ़ फ्लूक लैंगिक पीढ़ी को प्रदर्शित करता है तथा विभिन्न लारवा अवस्थाएँ (स्पोरोसिस्ट, रेडिया तथा सरकेरिया इत्यादि) अनिषेक जनन (parthenogenesis) की पीढ़ियाँ हैं। इन दोनों पीढ़ियों में एकान्तरण पाया जाता है। अतः इस मत के अनुसार *फेशियोला* में जननों का एकान्तरण पाया जाता है क्योंकि इसमें एक लैंगिक पीढ़ी और कई अनिषेचन फलन प्रावस्थाओं में एकान्तरण होता है, अतः यह हैटेरोगैमी प्रदर्शित करता है। अब इस सिद्धान्त की मान्यता समाप्त हो चुकी है क्योंकि इसमें प्रौढ़ तथा लारवा में पायी जाने वाली समानताएँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

2. बहुभ्रूणता (Polyembryony)—इस सिद्धान्त के अनुसार जनन कोशिकाओं से बनी *फेशियोला* की विभिन्न लारवा अवस्थाओं को अलैंगिक वर्धन का एक स्वरूप माना गया है। अतः रेडिया तथा सरकेरिया का वर्धन बहुभ्रूणता प्रदर्शित करता है।

3. परिवर्तित कायान्तरण (Extended metamorphosis)—इस मत के अनुसार लारवा का अलैंगिक वर्धन इस प्रकार का कायान्तरण है जिससे परजीवी अपने पोषक तक पहुँच सकने में समर्थ हो जाये।

उपर्युक्त तीनों में से कोई भी सिद्धान्त ठीक क्यों न हो, इसमें कोई सन्देह नहीं

कि फेशियोला अपना जीवन दो पोषकों पर व्यतीत करता है तथा नये पोषक को खोजने में परजीवी के जीवन को पर्याप्त भय है। हजारों मिरासीडियम में से केवल कुछ ही उचित द्वितीय पोषक में पहुँच पाते है। शेष सभी पोषक को खोजने का प्रयत्न करते हुए मार्ग में नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार बहुत-से मेटासरकेरिया में से केवल कुछ ही भेड़ में पहुँच पाते है। बहुत-से सरकेरिया तथा रेडिया घोंघे के नष्ट होने के साथ ही नष्ट हो जाते है। अतः प्रत्येक कदम पर परजीवी को नष्ट होने का भय है। इस भय को दूर करने के लिए तथा जाति की स्थिरता के लिए परजीवी की जनन क्षमता अत्यधिक बढ़ी होती है तथा उसके लारवा में भी अलैंगिक वर्धन होता है। अतः लम्बा तथा जटिल जीवन-चक्र परजीविता के अनुरूप अनुकूलन है।

प्रश्न 92. "जननों के एकान्तरण" का क्या महत्त्व है ? लीवर फ्लूक के जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये।

What is the significance of 'alternation of generation' ? Describe the life-history of liver-fluke. (*Agra 1959 ; Vikram 67*)

लिवर फ्लूक का उदाहरण लेकर मेटाजेनेसिस को समझाइये।

Explain metagenesis by referring to the life-history of Liver-fluke. (*Allahabad 1963*)

कृपया प्रश्न 91 देखिये।

प्रश्न 93. फेशियोला की विभिन्न लारवा अवस्थाओं का वर्णन करिये।

Briefly describe the various larval forms of *Fasciola*. (*Jodhpur 1965*)

कृपया प्रश्न 91 देखिये।

प्रश्न 94. फेशियोला हिपेटिका की संरचना एवम् जीवन-चक्र का वर्णन करिये।

Give an account of the structure and life-history of *Fasciola hepatica*. (*Banaras 1969*)

कृपया प्रश्न 91 देखिये।

प्रश्न 95. अनुकूलन क्या है ? फेशियोला हिपेटिका के जीवन-इतिहास का उदाहरण देकर समझाइये।

What is adaptation ? Explain with reference to the structure and life-history of *Fasciola hepatica*.

(*Meerut 1969 ; Agra 1960, 64 ; Allahabad 67 ; Punjab 69 ; Jiwaji 69, 71 ; Gorakhpur 68 ; Kerala 68*)

फेशियोला में परजीवी अनुकूलनों का वर्णन करिये।

Describe parasitic adaptations in *Fasciola*. (*Lucknow 1960*)

अनुकूलन (Adaptations)

प्रत्येक जीव में स्वयं को अपने चारो ओर के वातावरण के अनुरूप ढालने की क्षमता पायी जाती है। इस क्षमता को 'अनुकूलन' कहते है। यदि किसी जन्तु या वनस्पति का उसके वातावरण को ध्यान में रखते हुए अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि प्रत्येक जीव तथा उसके विभिन्न अंगो मे अपने विशेष वातावरण के अनुरूप परिवर्तित होने की आश्चर्यजनक क्षमता पायी जाती है। ये अनुकूलताएँ जीव की रचना, कार्यिकी, व्यवहार तथा स्वभाव इत्यादि सभी से सम्बन्धित होती है।

फेशियोला एक अन्तःपरजीवी प्राणी है तथा परजीवी स्वभाव के अनुरूप इसकी रचना तथा कार्यिकी में विशेष परिवर्तन पाये जाते हैं। यह परजीवी अनुकूलन का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

अनुकूलन के लिए प्रश्न 88 देखिये।

प्रश्न 96. लिवर-फ्लूक में परजीविता के कारण होने वाले विभिन्न रूपान्तरणों का उल्लेख करिये।

Give an account of the various modifications caused due to the parasitic mode of life in liver-fluke.

(*Tribhuvan 1968 ;* 7)

कृपया प्रश्न 88 देखिये।

प्रश्न 97. "जननों के एकान्तरण" तथा अनुकूलन से आप क्या समझते हैं ? फेशियोला हिपेटिका का उदाहरण देकर इन्हें समझाइये।

What do you understand by 'alternation of generations' and 'adaptation'. Explain these with reference to the life-history of *Fasciola hepatica.* (*Osmania 1973*)

कृपया प्रश्न 91 तथा 88 देखिये।

प्रश्न 98. निम्नलिखित के नामांकित चित्र बनाइये :—

(*a*) फेशियोला का जीवन-चक्र

(*b*) टीनिया का जीवन चक्र

Give full-paged illustrated diagrams illustrating the following :

(a) Life-history of *Fasciola.*

(b) Life-history of *Taenia.* (*Agra 1966, 65*)

(a) फेशियोला का जीवन-इतिहास कृपया चित्र 22·7 देखिये।

(b) टीनिया का जीवन-इतिहास कृपया चित्र 23·5 देखिये।

प्रश्न 99. फेशियोला के जीवन-चक्र का पूर्ण, सुन्दर व नामांकित चित्र बनाइये। वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

Make a full page well labelled diagram illustrating the life-history of *Fasciola.* **No description is required.** (*Gorakhpur 1971*)

कृपया चित्र 158 देखिये।

अध्याय 23

टीनिया सोलियम (Taenia solium)

फाइलम	—	प्लेटीहेल्मिन्थीस (*Platyhelminthes*)
क्लास	—	सेस्टोडा (*Cestoda*)
आर्डर	—	टीनिओइडिया या साइक्लोफाइलिडिया (*Taenioidea or Cyclophyllidea*)
जीनस	—	टीनिया सोलियम (*Taenia solium*)

प्रश्न 100. टीनिया की संरचना एवम् जीवन-इतिहास का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

Give an illustrated account of the structure and life-history of *Taenia*. (*Agra 1956, 58, 59, 63 ; Gorakhpur 61, 63, 73 ; Lucknow 65 ; Karnatak 68 ; Calcutta 73*)

टेपवर्म की देहभित्ति, उत्सर्जी अंगों तथा जनन अंगों का वर्णन कीजिये।

Describe the body wall, excretory organs and reproductive organs of tapeworm. (*Ranchi 1971*)

टीनिया मनुष्य की आंत्र में पाया जाने वाला अन्त:परजीवी है जो अपने शीर्ष (scolex) द्वारा आन्त्र की म्यूकोसा से चिपका रहता है तथा शेष समस्त शरीर आंत्र गुहा में स्वतन्त्रता से लटका रहता है। यह अधिकतर उष्ण कटिबन्धीय तथा उपोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में रहने वाले तथा सूअर खाने वाले मनुष्यों मे पाया जाता है।

वाह्य संरचना (External Structure)

आकार तथा परिमाण—*टीनिया* का शरीर अत्यधिक लम्बा, चपटा तथा फीते के आकार का
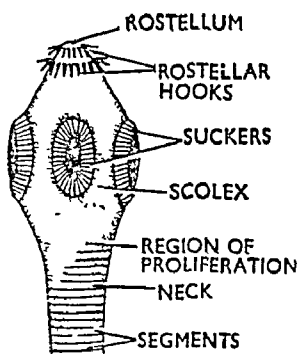
चित्र २३·१. टीनिया सोलियम का शीर्ष या स्कोलेक्स (Scolex of *Taenia solium*)
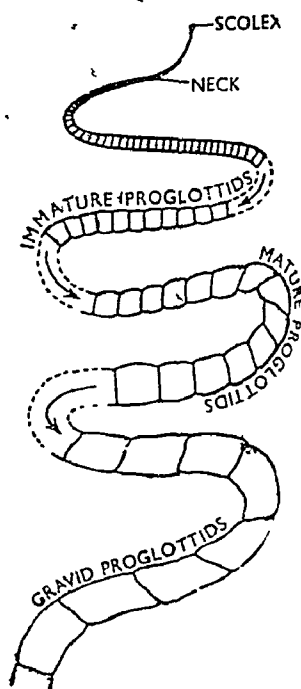
चित्र २३·२. टीनिया की वाह्य रचना (External structure of *Taenia*)

होता है। यह बहुत-से खण्डों में विभक्त रहता है जो एक पंक्ति में लगे रहते हैं और रचना में लगभग समान होते हैं। प्रौढ़ जन्तु 3 से 5 मीटर (*i.e.* 9′ से 16′) तक लम्बा होता है परन्तु कुछ अवस्थाओं में यह 8 मीटर तक लम्बा हो जाता है। इसका रंग अपारदर्शी सफेद होता है किन्तु भूरा, पीला या हल्का पीला भी हो सकता है।

संरचना—*टीनिया* का शरीर परजीवी स्वभाव के अनुसार आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित होता है। यह तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

(*i*) शीर्ष या स्कोलैक्स (scolex), (*ii*) गर्दन (neck), तथा (*iii*) शरीर (body or strobila)।

(*i*) **शीर्ष** (Head or scolex)—शीर्ष शरीर के अगले सिरे पर एक घुण्डी के समान (knob-like) रचना है जो लगभग आलपिन की घुण्डी के बराबर बड़ा होता है। यह चौकोर व नाशपाती के आकार का होता है और निम्न दो भागों में बँटा रहता है :—

(अ) शीर्ष या रोस्टेलम (Rostellum)—यह शीर्ष का अगला शंक्वाकार भाग है जिसके आधार पर कोइटिन के बने हुए हुकों की दो पंक्तियाँ पायी जाती हैं। ये संख्या में लगभग 28 होते हैं और दो नाप के होते हैं। छोटे तथा बड़े हुकों में क्रमिक एकान्तरण होता है।

(ब) पिछला चौकोर भाग (Distal four-sided part)—यह रोस्टेलम के पीछे स्थित चौकोर भाग है जिस पर प्याले के समान चार चूषक (suckers) होते हैं। इनमें से एक पृष्ठ तल पर, एक अधर तल पर तथा अन्य दो पार्श्व तलों पर होते हैं।

हुक या चूषकों के साथ शीर्ष पोषक की आंत्र की दीवार को मजबूती से पकड़ लेता है।

(*ii*) **गर्दन** (Neck)—शीर्ष के पीछे एक कम चौड़ी, खण्डविहीन गर्दन का भाग होता है जिससे जन्तु में जीवन-पर्यन्त नये खण्ड कटते रहते हैं।

(*iii*) **शरीर या स्ट्रोबाइला** (Body or strobila)—जन्तु का शेष शरीर **स्ट्रोबाइला** कहलाता है। इसमें असंख्य खण्ड क्रमवत् एक के पीछे एक पंक्तिबद्ध होते है। प्रत्येक खण्ड में जनन अंगों का समूह होता है। जनन अंगों का क्रमबद्ध रूप से पाया जाना प्रोग्लोटाइजेशन (proglottisation) कहलाता है तथा प्रत्येक खण्ड प्रोग्लोटिड (proglottid) कहलाता है। क्योंकि खण्ड या प्रोग्लोटिड गर्दन से एक के पश्चात् एक क्रमबद्ध रूप से बनते रहते हैं, अतः छोटे तथा अपूर्ण खण्ड गर्दन के समीप होते हैं तथा प्रौढ़ खण्ड शरीर के सबसे पिछले भाग में पाये जाते हैं। जनन अंगों की वर्धन अवस्था के आधार पर प्रोग्लोटिड्स तीन प्रकार के होते हैं।

1. अपरिपक्व खण्ड (Immature segments)—ये नये बने, अभिन्नित खण्ड हैं जो ठीक गर्दन के पीछे स्थित होते हैं। इनमें जनन अंगों का या तो पूर्ण अभाव होता है और या फिर वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में पाये जाते हैं। इनकी चौड़ाई, लम्बाई की अपेक्षा अधिक होती है।

2. परिपक्व या जनन खण्ड (Mature or reproductive segments)—इन खण्डों में पूर्ण परिपक्व (fully mature) नर तथा मादा जनन अंग पाये जाते हैं। इनकी लम्बाई तथा चौड़ाई लगभग समान होती है।

3. ग्रेविड खण्ड (Gravid segments)—ये शरीर के पिछले भाग में पाये जाते हैं। इनमें केवल गर्भाशय पाया जाता है जो अत्यधिक बड़ा तथा शाखान्वित

होता है और लगभग सम्पूर्ण खण्ड में फैला रहता है। इसमें भ्रूण (embryos) वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में पाये जाते हैं। इन खण्डों के शेष जनन अंग निषेचन क्रिया के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। ये खण्ड चौड़ाई की अपेक्षा लम्बाई में अधिक होते हैं। शरीर के पिछले प्रोग्लोटिड्स शरीर से अलग होकर पोषक की विष्ठा (faeces) के साथ बाहर आ जाते हैं। खण्डों के अलग होने की इस क्रिया को एपोलाइसिस (apolysis) कहते हैं।

आन्तरिक रचना (Internal Structure)

देहभित्ति (Body wall)—देहभित्ति में निम्न पर्तें पायी जाती हैं :—

(*i*) क्यूटिकल, (*ii*) पेशी स्तर, तथा (*iii*) पैरनकाइमा।

(*i*) **क्यूटिकल** (Cuticle)—यह शरीर का बाहरी मोटा तथा प्रतिरोधी रक्षात्मक आवरण है जो प्रोटीन का बना होता है। इस पर कैल्शियम के लवण एकत्रित रहते हैं। यह क्यूटिकल के नीचे वाले स्तर (अधोक्यूटिकल स्तर) की कोशिकाओं के स्राव से बनती है। क्यूटिकल पुनः निम्न स्तरों में बाँटी जा सकती है :—

(अ) क्रोमिडियल स्तर (Cromidial layer)—यह सबसे बाहरी स्तर है जिस पर रोमों के समान उभार पाये जाते हैं।

(ब) मध्य स्तर (Middle layer)—यह बीच का मोटा समरूप (homogeneous) स्तर है।

(स) आधार कला (Basement membrane)—यह अन्तिम पतला स्तर है।

(*ii*) **पेशी-स्तर** (Muscular layer)—क्यूटिकल के स्तर के नीचे वर्तुल तथा लम्बवत् पेशियों का एक-एक स्तर पाया जाता है। *टीनिया* में एपिडर्मिस नहीं होती।

(*iii*) **पेरनकाइमा** (Parenchyma)—समस्त देहगुहा के भीतर पेरनकाइमा भरा रहता है जिसमें पेशी, तन्त्रिका तन्तु तथा अन्य अंग पड़े रहते हैं। दोनों पार्श्व तलों के अतिरिक्त प्रत्येक खण्ड में पेरनकाइमा दो भागों में बँटा रहता है :—

(*a*) बाहरी **अन्तस्त्वचिका** या कॉर्टिकल भाग (cortical part), तथा

(*b*) मध्य का **अन्तस्था** या मैड्यूलरी भाग (medullary part)।

दोनों को अलग करने के लिए वर्तुल-पेशी की पट्टी के समान रचना होती है। पेरनकाइमा में कुछ ग्रन्थि कोशिकाएँ, तथा बहुत-सी अधोक्यूटिकल कोशिकाएँ पायी जाती हैं।

पाचन (Digestion)—पाचन अंग अनुपस्थित होते हैं तथा पोषक की आंत्र में पचे हुए भोजन का *टीनिया* के शरीर की सतह द्वारा शोषण होता है।

श्वसन (Respiration)—*टीनिया* में अनॉक्सी-श्वसन (anaerobic respiration) पाया जाता है क्योंकि परजीवी को पोषक की आंत्र में बहुत कम स्वतन्त्र ऑक्सीजन प्राप्त होती है। श्वसन क्रिया में ग्लाइकोजन CO_2 तथा फैटी अम्लों में टूटता है और ऊर्जा निकलती है।

उत्सर्जन तन्त्र (Excretory system)—उत्सर्जन-तन्त्र बहुत विकसित होता है तथा इसका मुख्य कार्य शरीर में पानी की मात्रा का नियमन करना है। इसमें शिखा कोशिकाएँ, एकत्रित करने वाली नलिकाएँ (collecting channels) तथा उत्सर्जन नलिकाएँ पायी जाती हैं।

(*i*) **पार्श्व उत्सर्जन वाहिनियाँ** (Lateral excretory vessels)—*टीनिया*

में चार पार्श्व उत्सर्जन वाहिनियाँ पायी जाती हैं जो पैरनकाइमा में दोनों पार्श्व किनारों पर स्थित होती हैं। इनमें से एक जोड़ी पृष्ठतल पर स्थित होती हैं और शरीर के केवल अगले खण्डों में ही पायी जाती हैं। दूसरी जोड़ी, अवर तल पर पायी जाती है और शरीर के समस्त खण्डों में फैली रहती है। प्रत्येक खण्ड के पिछले सिरे पर दोनों—अधर व पार्श्व नलिकाएँ एक **अनुप्रस्थ नलिका** (transverse vessel) द्वारा जुड़ी रहती हैं। अन्तिम खण्ड में ये दोनों नलिकाएँ मिलकर केवल एक छिद्र द्वारा बाहर को खुलती हैं। जब खण्ड शरीर से अलग होने लगते हैं तो इन नलिकाओं के स्वतन्त्र सिरे उत्सर्जन छिद्र के समान कार्य करते हैं।

शीर्ष (scolex) में चारों उत्सर्जन वाहिनियाँ एक **वलय-वाहिनी** (ring-vessel) द्वारा जुड़ी रहती हैं। समस्त उत्सर्जन नलिकाएँ क्यूटिकल से आस्तारित होती हैं और इन पर पक्ष्म (cilia) नहीं पाये जाते। इन वाहिनियों से पार्श्व शाखाएँ (lateral offshoots) निकलती हैं जिनके अन्तिम सिरों पर शिखा कोशिकाएँ होती हैं।

शिखा कोशिकाएँ (Flame cells)—ये अनियमित आकार की कोशिकाएँ हैं जिनका जीव-द्रव्य दानेदार होता है और उसमें केन्द्रक पाया जाता है। प्रत्येक कोशिका के मध्य में कीपाकार खाली आन्तर-कोशिका स्थान (intracellular space) होता है जो वाहिनियों के खाली स्थान से सम्बन्धित होता है। इस स्थान में कशाभों का एक समूह होता है। कशाभ आन्तर-कोशिका स्थान में लगातार गति करते रहते हैं।

तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous system)—कोशिका-तन्त्र में एक **तन्त्रिका वलय** (nerve ring) होता है जो दो **गुच्छिकाओं** या गैंगलिया (ganglia) को जोड़ता है। आगे की ओर इन गुच्छिकाओं से चूपक तथा शीर्षाग्र (suckers and rostellum) के लिए तन्त्रिकाएँ निकलती हैं। पीछे की ओर इनसे तीन जोड़ी लम्बवत् तन्त्रिकाएँ निकलती हैं। इनमें से एक जोड़ी तन्त्रिकाएँ उत्सर्जन वाहिनियों के साथ-साथ शरीर के पीछे सिरे तक जाती हैं।

जनन तन्त्र (Reproductive system)—शरीर के प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी नर जनन अंग तथा एक जोड़ी मादा जनन अंग पाये जाते हैं। अतः शरीर का प्रत्येक खण्ड द्विलिंगी (hermaphrodite) होता है।

(अ) नर जनन अंग (Male Reproductive Organs)

1. वृषण
2. वासा इफेरैन्शिया
3. शुक्र-वाहिनी या वास डिफेरैन्स
4. शिश्नक कोष

1. वृषण (Testes)—वृषण असंख्य, छोटी-छोटी गोल रचनाएँ हैं जो प्रत्येक प्रोग्लोटिड के अगले पृष्ठ भाग में फैली रहती हैं। ये संख्या में 15 से 200 तक हो सकती हैं।

2. वासा इफेरैन्शिया (Vasa efferentia)—प्रत्येक वृषण से एक सूक्ष्म नलिका निकलती है। यह वास इफेरैन्स कहलाती है। समस्त वासा इफेरैन्शिया संयुक्त होकर शुक्र-वाहिनी बनाती हैं।

3. शुक्र-वाहिनी (Vas deferens)—यह एक लम्बी कुण्डलित नलिका है जो

शरीर के लगभग मध्य में बनती है और अनुप्रस्थ नलिका के रूप में खण्ड की दाहिनी या बाँयी सतह पर स्थित जनन वेश्म में खुलती है।
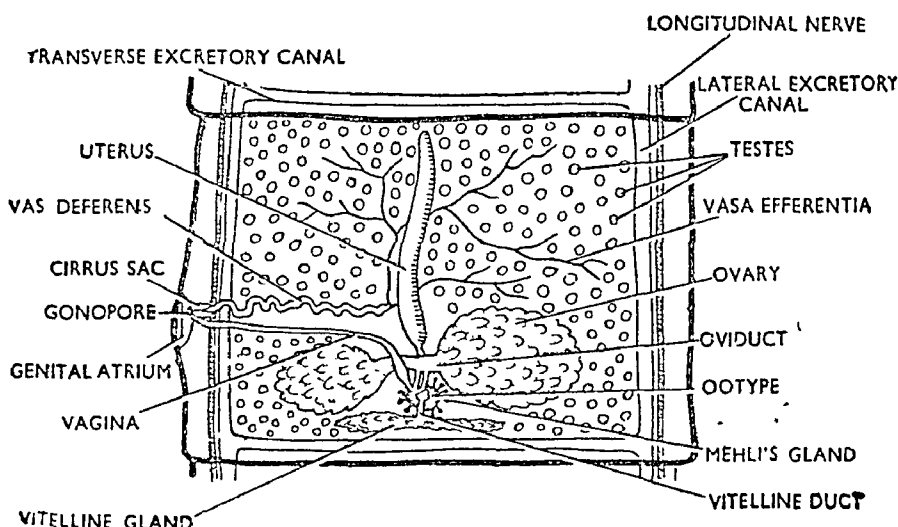
चित्र २३·३. टीनिया का परिपक्व देहखण्ड जनन अंग प्रदर्शित करते हुए (Mature proglottid of *Taenia* showing reproductive organs)

4. शिश्नक तथा शिश्नक कोष (Cirrus and cirrus sac)—शुक्र-वाहिनी का अन्तिम सिरा बहि.सारी (protrusible) होता है और शिश्नक (cirrus) कहलाता है। इसके चारों ओर पेशीयुक्त थैली के समान रचना शिश्नक कोष (cirrus sac) होता है। शिश्नक पर काँटे, कण्टिकाएँ तथा हुक होते है। यह नर जनन-छिद्र द्वारा जनन वेश्म मे खुलता है।

(ब) मादा जनन अंग (Female Reproductive Organs)

1. अण्डाशय
2. अण्डवाहिनी
3. ऊटाइप
4. योनि
5. गर्भाशय
6. योक ग्रन्थियाँ या पीतक ग्रन्थियाँ
7. मेहलिस ग्रन्थियाँ या कवक ग्रन्थियाँ

1. अण्डाशय (Ovaries)—प्रत्येक खण्ड के पिछले भाग में मेड्युला के भीतर दो अण्डाशय स्थित होते है। ये चपटे तथा अत्यधिक शाखान्वित रचनाएँ है। दोनों अण्डाशय अनुप्रस्थ नलिका (transverse bridge) द्वारा जुड़े रहते है। कुछ वैज्ञानिक इस रचना को द्विखण्डित (bilobed) रचना मानते है।

2. अण्डवाहिनी (Oviduct)—अण्डवाहिनी अनुप्रस्थ नलिका से निकलती है। यह एक छोटी तथा चौड़ी वाहिनी है जो ऊटाइप मे खुलती है।

3. ऊटाइप (Ootype)—यह एक छोटा तथा गोल कक्ष है जो अण्डवाहिनी तथा पीतक नली के जुड़ने के स्थान पर स्थित होता है। इसके चारो ओर असख्य

एककोशिक खोल ग्रन्थियाँ (shell glands) या मेहलिस ग्रन्थियाँ (Mehlis glands) पायी जाती हैं।

4. गर्भाशय (Uterus)—गर्भाशय एक बन्द नली या बन्द थैले के समान रचना है जो ऊटाइप से निकलकर खण्ड के अगले भाग में पहुँचता है। ग्रेविड प्रोग्लोटिड में गर्भाशय बड़ा तथा शाखान्वित हो जाता है तथा पूरे खण्ड को भर लेता है। इसमें निषेचित अण्डे तथा वृद्धि करते हुए भ्रूण पाये जाते हैं।

5. योनि (Vagina)—योनि रिसेप्टिक्युलम सेमिनिस से एक सँकरी नली के रूप में निकलती है। यह बाहर की ओर बढ़कर जनन वेश्म में मादा जनन-छिद्र के द्वारा खुलती है।

6. पीतक ग्रन्थि (Vitelline gland)—यह बहुत-सी पुटिकाओं या फॉलिकिल्स से बनी एक सघन, दीर्घवृत्ताकार रचना है जो अण्डाशय के पीछे स्थित होती है। इससे एक छोटी पीतक नलिका निकलकर ऊटाइप में खुलती है। इससे स्रावित द्रव में योक अधिक मात्रा में पाया जाता है जो निषेचित अण्डे के चारों ओर जमा हो जाता है।

7. खोल ग्रन्थियाँ या मेलिस ग्रन्थियाँ (Shell glands or Mehlis glands)—ये असंख्य एककोशिकीय ग्रन्थियाँ हैं जो ऊटाइप के चारों ओर स्थित होती हैं और अपना स्रावित रस उसमें डालती हैं।

जीवन-इतिहास (Life-history)

टीनिया का जीवन-इतिहास जटिल तथा द्विपोषदिक (digenetic) होता है। इनका प्राथमिक पोषक मनुष्य तथा द्वितीय पोषक सूअर होता है।

निषेचन (Fertilization)—*टीनिया* में स्वयंनिषेचन (self-fertilization) होता है। एक खण्ड का शिश्नक उसी खण्ड की योनि में घुस जाता है। इस प्रकार प्राप्त हुए शुक्राणु रिसेप्टेक्युलम सेमिनिस (receptaculum seminis) में संचित किये जाते हैं। अण्डे का निषेचन अण्डवाहिनी के भीतर होता है जिसके पश्चात् ऊटाइप में इसके चारों ओर योक एकत्रित होता है तथा अण्ड-खोल बन जाता है। खोल से घिरे हुए निषेचित अण्डे गर्भाशय में पहुँचते हैं तथा वहाँ एकत्रित हो जाते हैं। गर्भाशय आकार में बड़ा होकर शाखान्वित हो जाता है तथा प्रोग्लोटिड का सारा खाली स्थान गर्भाशय से भर जाता है।

अण्डे (Eggs)—अण्डे बहुत छोटे होते हैं जिनका व्यास लगभग 40μ होता है। इनमें बहुत अधिक मात्रा में योक भरा रहता है तथा प्रत्येक अण्डे के चारों ओर अण्ड-खोल (egg-shell) होता है।

विभाजन या खण्डीभवन (Cleavage or segmentation)—जब अण्डे गर्भाशय में होते हैं तभी इनमें विभाजन प्रारम्भ हो जाता है। प्रथम विभाजन असमान होता है जिससे एक बड़ी पीत कोशिका (vitelline cell) तथा एक छोटी भ्रूण कोशिका (embryonic cell) बनती है। भ्रूण कोशिका में बार-बार विभाजन होता है, जिससे कोशिकाओं की बनी एक ठोस गेंद के समान रचना बन जाती है, जिसे मोरुला (morula) कहते हैं। क्योंकि विभाजन असमान होता है, अतः मोरुला में कुछ बड़ी कोशिकाएँ, मैक्रोमीयर्स (macromeres) होती हैं जो बाहरी या परिधीय स्तर बनाती हैं तथा इनके भीतर छोटी कोशिकाएँ, माइक्रोमीयर्स पायी जाती हैं।

पीतक कोशिका तथा योक बढ़ते हुए भ्रूण का पोषण करती हैं और धीरे-

धीरे आकार में छोटी होती जाती है। मैक्रोमीयर्स भ्रूण नहीं बनाते; ये केव
बाहरी भ्रूण कला (embryonic membrane) का निर्माण करते हैं। माइक्रो
मीयर्स से पुन: मीजोमीयर्स (mesomeres) नामक कोशिकाओं की एक पर्त बाहर
ओर कटती है। इस स्तर से एक मोटा रेखित आन्तरिक स्तर (inner membran
या सिस्ट (cyst) या एम्ब्रियोफोर (embryophore) बनता है। माइक्रोमीयर्स
आन्तरिक कोशिका समूह से तीन जोड़ी काइटिनस हुक बनते हैं तथा हैक्जाकैं
या ओन्कोस्फीयर (hexacanth or oncosphere) लारवा का निर्माण पूर्ण
जाता है।
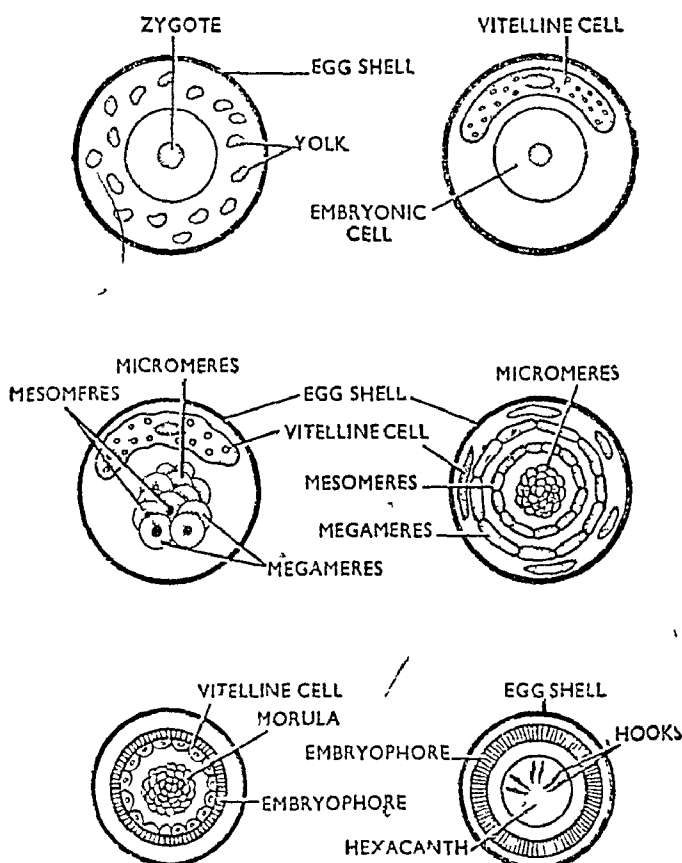
चित्र २३४. टीनिया सोलियम के युग्मनज में खण्डीभवन
(Segmentation in zygote of *Taenia solium*)

हैक्जाकैन्थ लारवा या ओन्कोस्फीयर (Hexacanth or onchosphere)—
हैक्जाकैन्थ लारवा गोल या अण्डाकार होता है जिस पर काइटिन के बने तीन जोड़ी
हुक होते हैं। मोटी आन्तरिक तथा पतली बाहरी भ्रूण कलाओं से ढका हुआ
हैक्जाकैन्थ लारवा ओन्कोस्फीयर (onchosphere) कहलाता है।

द्वितीय पोषक का संक्रमण (Infection to the secondary host)—अण्
से हैक्जाकैन्थ लारवा बनने तक की वर्धन क्रिया ग्रेविड प्रोग्लोटिड के गर्भाशय
भीतर होती है। इसके पश्चात् भ्रूण का वर्धन प्रथम पोषक के भीतर नहीं ह

सकता। ग्रेविड प्रोग्लोटिड अब टीनिया के शरीर से अलग होकर पोषक के अपच भोजन के साथ शरीर के बाहर आ जाते हैं। जब सूअर (द्वितीय पोशक) विष्ठा
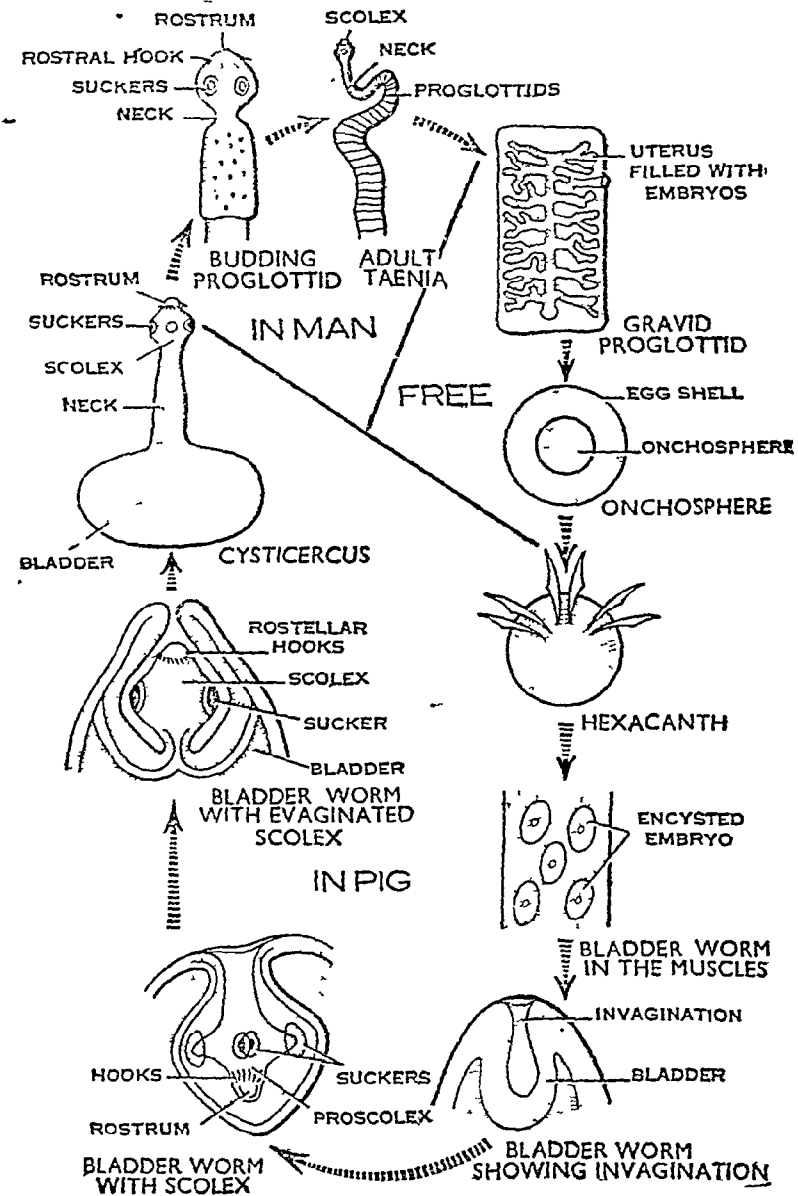
चित्र २३·५. टीनिया सोलियम का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Taenia solium*)

को खाता है तो वह भी संक्रमित हो जाता है। कुत्ते, ऊँट, तथा बन्दर इत्यादि भी इसी प्रकार संक्रमित हो जाते हैं। कभी-कभी मनुष्य में स्वयं संक्रमण भी हो जाता है।

सिस्टीसरकस लारवा या ब्लैडरवॉर्म अवस्था (Cysticercus larva or bladder-worm stage)—खण्ड के घुलने पर बहुत-से हैक्जाकैन्थ लारवा आमाशय में स्वतन्त्र हो जाते हैं और इनके ऊपर की दोनों भ्रूण कलाएँ नष्ट हो जाती हैं। अब हैक्जाकैन्थ अपने हुकों द्वारा आंत्र की दीवार को छेदते हुए रक्त संस्थान में तथा वहाँ से लिम्फ नलिकाओं में पहुँच जाते हैं। हृदय में होता हुआ लारवा शरीर के विभिन्न भागों की पेशियों में पहुँच जाता है। अधिकतर यह जीभ, हृदय, यकृत तथा कन्धों की ऐच्छिक पेशियों में ही परिकोष्ठित होता है।

पेशियों के भीतर हैक्जाकैन्थ के हुक समाप्त हो जाते हैं। लारवा आकार में बड़ा हो जाता है तथा इसमें एक द्रवयुक्त गुहा बन जाती है। इस प्रकार एक पर्त वाली थैले के समान रचना बन जाती है जो **ब्लैडर** (bladder) कहलाती है। इसकी बाहरी पर्त क्यूटिकल की तथा भीतर की पर्त मीज़ेनकाइम की बनी होती है। जब ब्लैडर आकार में पर्याप्त बढ़ जाता है तो इसके एक ओर एक अन्तर्गमन (invagination) बन जाता है। तत्पश्चात् यह इन्वेजिनेशन एक खोखले उभार के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस पर भीतर की ओर चूषक तथा हुक बन जाते हैं। *इस प्रकार* ***प्रोस्कोलेक्स*** *(proscolex) का निर्माण पूर्ण हो जाता है। अन्त में* प्रोस्कोलेक्स पलट कर बाहर आ जाता है (evaginates) जिससे इसके हुक तथा चूषक बाहरी सतह पर आ जाते हैं। इस अवस्था में लारवा **ब्लैडरवर्म** (bladder-worm) या **सिस्टीसरकस** (cysticercus) कहलाता है। यह एक अण्डकार थैले के समान रचना है जिस पर छोटा-सा शीर्ष (scolex) होता है। शीर्ष प्रौढ़ जन्तु के समान होता है तथा इस पर चार चूपक पाये जाते हैं। सूअर के माँस में इस प्रकार के कई सिस्टीसरकस लारवा सफेद धब्बों के रूप में देखे जा सकते हैं।

अन्तिम या प्राथमिक पोषक का संक्रमण (Infection to final or primary host)—ब्लैडरवर्म अब सूअर के भीतर वर्धन नहीं कर सकता; अतः उसका प्राथमिक पोपक में पहुँचना अत्यन्त आवश्यक है।

यदि मनुष्य इस संक्रमित सूअर के माँस को कम पकी (inadequately cooked) अवस्था में खाता है तो वह भी संक्रमित हो जाता है। आंत्र में पहुँचकर सिस्टीसरकस लारवा सक्रिय हो जाते हैं। प्रत्येक अपने शीर्ष द्वारा पोपक की आंत्र की दीवार से चिपक जाता है। ब्लैडर फेंक दिया जाता है तथा गर्दन से खण्ड कटने प्रारम्भ हो जाते हैं। इस प्रकार टेपवॉर्म का निर्माण पूर्ण हो जाता है।

प्रश्न 101. टीनिया के जनन-अंगों का वर्णन कीज़िये।

Give an account of the reproductive organs of *Taenia*.

(*Nagpur 1973*)

टीनिया सोलियम के जनन-अंगों का वर्णन कीजिये। ग्रेविड प्रोग्लोटिड से आप क्या समझते हैं?

Give an illustrated account of the reproductive organs of *Taenia solium*. What is meant by gravid proglottid ?

(*Lucknow 1953, 58 ; Vikram 72 ; Indore 72*)

टीनिया के जनन अंग

कृपया प्रश्न 100 देखिये।

ग्रेविड प्रोग्लोटिड (Gravid proglottid)

ये खण्ड या प्रोग्लोटिड *टीनिया* के शरीर के पिछले भाग में पाये जाते हैं।

इन सभी खण्डों में गर्भाशय बहुत बड़ा तथा अत्यधिक शाखान्वित हो जाता है। यह समस्त खण्ड में फैला रहता है। गर्भाशय के भीतर बहुत-से भ्रूण वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में पाये जाते हैं। क्योंकि अण्डे पहले से निषेचित हो जाते हैं, अतः अण्डाशय एवम् वृषण अपना कार्य पूर्ण करने के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। निषेचन में सहायता करने वाली अन्य रचनाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार ग्रेविड प्रोग्लोटिड में भ्रूण से भरा हुआ केवल गर्भाशय ही पाया जाता है।

प्रश्न 102. टीनिया के जनन-अंगों का पूर्ण विवरण दीजिये तथा इसके आर्थिक महत्त्व पर एक नोट लिखिये।

Give a complete account of the reproductive organs of *Taenia* and write a paragraph on the economic importance of the animal.

(*Magadh 1963 ; Gorakhpur 73*)

जनन अंग (Reproductive Organs)

कृपया प्रश्न 100 देखिये।

टीनिया का आर्थिक महत्त्व
(Economic Importance of Taenia)

टीनिया मनुष्य तथा अन्य उच्च कशेरुकदण्डियों (vertebrates) की आंत्र में पाया जाने वाला परजीवी है। यहाँ यह पोषक की आंत्र में पाये जाने वाले पचे हुए भोजन पर निर्भर करता है तथा देहगुहा के द्रव का भी उपयोग करता है। कभी-कभी यह आंत्र की दीवार को हानि पहुँचाता है। शक्तिशाली तथा स्वस्थ पोषक पर परजीवी का कोई विशेष या भयानक प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु बच्चों तथा रोगियों पर severe symptoms उत्पन्न हो जाते हैं।

इसके प्रभाव से रोगी का जी मितलाता (feeling to vomit or nausea) है तथा पेट में दर्द एवम् तन्त्रिका-तन्त्र में कुछ खराबियाँ आ जाती हैं जिनका प्रभाव **मिर्गी** के समान (epilepsy) होता है। साथ ही शरीर में रक्त की कमी (anaemia) भी हो जाती है।

कभी-कभी, परन्तु बहुत कम अवस्थाओं में, ब्लैडरवर्म भी मनुष्य में पाया जाता है और सिस्टीसरकोसिस (cysticercosis) नामक रोग उत्पन्न करता है। सिस्टीसरकस लारवा आँख, मस्तिष्क, रीढ़ रज्जु तथा इसी प्रकार के अन्य कोमल अंगों में परिकोष्ठित (encysted) हो जाता है और इन अंगों को हानि पहुँचाता है।

प्रश्न 103. टीनिया के जीवन-इतिहास का वर्णन करिये।

Give an account of life-history of *Taenia*.

(*Lucknow 1950 ; Agra 63*)

कृपया प्रश्न 100 देखिये।

प्रश्न 104. टीनिया के जीवन-इतिहास का वर्णन करिये। इसकी परजीवी अनुकूलताओं का उल्लेख करिये।

Give an account of life-history of *Taenia*. Comment upon its parasitic adaptations.

(*Luck. 1954, 59, 63 ; Jodhpur 65 ; Punjab 64 ; Alld. 67*)

कृपया प्रश्न 100 देखिये।

प्रश्न 105. परजीविता किसे कहते हैं ? टीनिया की संरचना एवम् जीवन-इतिहास के आधार पर समझाइये कि कोई जन्तु अपने परजीवी स्वभाव के किस प्रकार अनुकूल होता है।

What is parasitism ? Explain how an animal adapts itself to the parasitic mode of life as evidenced by the structure and life-history of *Taenia*. (*Gorakhpur 1959 ; Patna 69 ; Meerut 71*)

टीनिया सोलियम की परजीवी अनुकूलताओं का वर्णन करिये ।

Give an account of the parasitic adaptations of *Taenia solium*. (*Nagpur 1967 ; Jiwaji 68*)

वर्णन करिये कि किस प्रकार टीनिया की परजीवी जीवन-विधि इसके आन्तरांगों को प्रभावित करती है ?

Discuss how the parasitic mode of life of *Taenia* affects the internal organs of its body. (*Agra 1972*)

परजीविता (Parasitism)

परजीविता किन्हीं दो जन्तुओं के बीच वह सम्बन्ध है जिसमें एक जन्तु (परजीवी—parasite) दूसरे जन्तु (पोषक—host) पर रहता है, उससे ही अपना भोजन प्राप्त करता है तथा उसी के द्वारा स्वयं की रक्षा करता है किन्तु इसके बदले में पोषक को कोई लाभ नहीं पहुँचता ; अर्थात् परजीवी पोषक पर अपना जीवन-निर्वाह करता है और उसको हानि भी पहुँचाता है । कभी-कभी परजीवी द्वारा पोषक को इतनी भयंकर हानि होती है कि अन्त में पोषक की मृत्यु हो जाती है ।

टीनिया में परजीवी अनुकूलन (Parasitic Adaptations in Taenia)

टीनिया वरटिब्रेट्स में पाया जाने वाला आंत्र अन्तः परजीवी (intestinal endoparasite) है । अपने वातावरण की आवश्यकताओं के अनुरूप इसमें बहुत-से आकारिक परिवर्तन (structural modifications) हो जाते हैं । साथ ही इसके जीवन-इतिहास में भी बहुत-सी जटिलताएँ आ जाती हैं, जिससे जाति का प्रसार सम्भव हो सके । परजीवी-स्वभाव के कारण हुए परिवर्तनों का निम्न दो शीर्षकों में अध्ययन किया जा सकता है :—

आकारिक परिवर्तन (Structural Modifications)

(अ) वाह्य आकार में परिवर्तन (Changes in External Form)

(*i*) शरीर पृष्ठ-अधर अक्ष में चपटा होकर फीते के आकार का (tape-like or ribbon-like) हो जाता है ।

(*ii*) शरीर का अग्रिम सिरा (anterior end) या शीर्ष (scolex) होल्डफास्ट (holdfast) या चिपकने वाले अंग के रूप में परिवर्तित हो जाता है । चिपकने के लिए शीर्ष पर चार चूषक तथा बहुत-से हुकों की दो पंक्तियाँ पायी जाती हैं ।

(*iii*) गर्दन वाले भाग में जीवन-पर्यन्त नये खण्ड काटते रहने की क्षमता होती है जिससे परजीवी जीवन-पर्यन्त आकार में वृद्धि करता रहता है ।

(*iv*) शरीर में खण्डों (segments) की संख्या बहुत अधिक होती है तथा प्रत्येक खण्ड में नर तथा मादा जनन अंगों का एक-एक समूह (set) होता है । शरीर के पिछले खण्डों में केवल निषेचित अण्डे तथा वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में भ्रूण होते हैं । पिछले खण्डों में शरीर से अलग होने की क्षमता होती है ।

आन्तरिक संरचना में परिवर्तन (Changes in Internal Organisation)

(*i*) देहभित्ति में एपिडर्मिस नष्ट हो जाती है तथा उसके स्थान पर मोटी तथा प्रतिरोधी (thick and resistant) क्यूटिकल पायी जाती है । क्यूटिकल पर

पाचक-रसों का कोई प्रभाव नहीं होता ; अतः यह जन्तु के शरीर की पाचक-रसों से रक्षा करती है।

(*ii*) आहार नाल का पूर्ण अभाव होता है क्योंकि परजीवी को पचा-पचाया भोजन पोषक की आंत्र से मिल जाता है ; अतः द्रवीय तथा पचा हुआ भोजन शरीर की सतह द्वारा शोषित कर लिया जाता है।

(*iii*) उत्सर्जन-तन्त्र का कार्य इस जन्तु में जल की मात्रा का नियन्त्रण (osmoregulation or water control) करना है। शरीर के विभिन्न ऊतकों से यह पानी की मात्रा को अलग करता है।

(*vi*) इसमें अनॉक्सी श्वसन (anaerobic respiration) होता है।

(*v*) संवेदी अंगों का पूर्ण अभाव होता है। केवल स्पर्श ग्राहक (tango-receptors) पाये जाते हैं। शीर्ष को छोड़कर शरीर के अन्य समस्त भागों में तन्त्रिका-तन्त्र भी अविकसित होता है।

(*vi*) जनन-तन्त्र अत्यन्त जटिल होता है। शरीर का प्रत्येक प्रोग्लोटिड एक जन्तु को प्रदर्शित करता है क्योंकि प्रत्येक में नर तथा मादा जनन-अंगों के पूर्ण समूह पाये जाते हैं।

(*vii*) अण्डाशय अत्यधिक शाखान्वित रचना है जिसमें असंख्य अण्डे बनते हैं।

जीवन-इतिहास में जटिलताएँ (Complications in Life-history)

(*i*) एक ही पोषक में अलग-अलग लिंग के जन्तुओं को खोजने की कठिनाई तथा न मिलने के भय को दूर करने के लिए एक ही जन्तु के प्रत्येक खण्ड में नर तथा मादा जनन-अंग पाये जाते हैं और इनमें **स्वयं-निषेचन** की क्रिया होती है।

(*ii*) इनमें अत्यधिक जनन क्षमता होती है। प्रत्येक प्रौढ़ प्रोग्लोटिड में 30 से 40 हजार अण्डे बनते हैं। नये पोषक तक पहुँचने में आने वाली जोखिमों (risks) से परजीवी के नष्ट होने के भय को दूर करने के लिए एक जन्तु से उत्पन्न सन्तानों की संख्या बहुत अधिक होती है जिनमें से कुछ तो अवश्य ही नये पोषक को खोज सकते हैं तथा जाति की वृद्धि कर सकते हैं।

(*iii*) जटिल जीवन-इतिहास भी परजीवी की मुख्य विशेषता है। परजीवी को एक प्राथमिक पोषक से दूसरे प्राथमिक पोषक तक पहुँचाने के लिए एक द्वितीय पोषक की आवश्यकता होती है और यह कार्य यहाँ सूअर द्वारा पूरा किया जाता है।

शरीर-क्रियात्मक अनुकूलन (Physiological Adaptations)

(*i*) शरीर-क्रियात्मक रूप से पचा हुआ द्रव भोजन ग्रहण करने के अनुकूल है जो उसे पोषक की आंत्र से प्राप्त होता है।

(*ii*) यह पोषक के परिसरण दाब (osmotic pressure) के साथ सन्तुलन स्थापित रखता है। परजीवी के शरीर के भीतर तथा बाहर परिसरण दाब समान रहता है जिससे पानी के विनिमय मे कोई कठिनाई नही होती।

(*iii*) जन्तु की दैहिक क्रियाएँ ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में पूर्ण हो सकती हैं। ग्लाइकोजन के अनॉक्सी जारण (anaerobic combustion) या फरमेण्टेशन (fermentation) द्वारा ऊर्जा उत्पन्न होती है।

(*iv*) परजीवी कुछ **एण्टी एन्जाइम्स** (anti-enzymes) उत्पन्न करता है जिससे जन्तु पर पोषक के पाचक-रसो का प्रभाव नही हो पाता।

(*v*) *टीनिया* पोषक की आंत्र को म्यूकस (mucus) उत्पन्न करने के लिए

उत्तेजित करता है जो परजीवी के चारों ओर एक रक्षात्मक आवरण बना लेता है।

प्रश्न 106. टेप-वर्म की संरचना का वर्णन करिये तथा समझाइये कि यह अपने परजीवी जीवन के किस प्रकार अनुकूल होता है।

Describe the structure of a tape-worm and state how it is adapted to the parasitic mode of life. (*Lucknow 1966 ; Kerala 67*)

कृपया प्रश्न 100 तथा 105 देखिये।

प्रश्न 107. अनुकूलन क्या है ? टीनिया सोलियम के जीवन-इतिहास से इसे समझाइये।

What is adaptation ? Explain with reference to the life-history of *Taenia solium*.

(*Meerut 1969 ; Punjab 67 ; Jiwaji 68*)

अनुकूलन (Adaptations)

प्रत्येक जीवित जन्तु या वनस्पति में स्वयं को अपने चारों ओर के वातावरण के अनुरूप ढालने की क्षमता पायी जाती है। इस क्षमता को **अनुकूलन** कहते हैं। यदि किसी जन्तु या वनस्पति का उसके वातावरण को ध्यान मे रखते हुए अध्ययन किया जाये तो पता चलता है कि प्रत्येक जीव तथा उसके विभिन्न अंगों में अपने को अपने विशेष वातावरण के अनुरूप परिवर्तित करने की आश्चर्यजनक क्षमता पायी जाती है। अनुकूलताएँ जीव की रचना, कार्यिकी, व्यवहार तथा स्वभाव इत्यादि सभी से सम्बन्धित होती हैं।

टीनिया में अनुकूलन

कृपया प्रश्न 105 देखिये।

प्रश्न 108. टीनिया एवम् फेशियोला के जीवन का तुलनात्मक वर्णन करिये तथा बताइये कि आपकी राय में कौन अपने परजीवी जीवन के अधिक अनुकूल है।

Compare the general plan of life in *Fasciola* and *Taenia* and state which in your opinion is more suited to parasitic mode of life.

(*Agra 1961*)

फेशियोला तथा टीनिया के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study of General Plan of Life in Fasciola and Taenia)

फेशियोला (*Fasciola*)	टीनिया (*Taenia*)
1. स्वभाव एवं वासस्थान (Habit and Habitat)	
(*i*) फेशियोला भेड़ की यकृत वाहिनियों में रहने वाला अन्तः परजीवी है।	(*i*) टीनिया मनुष्य तथा अन्य स्तनधारियों की आंत में पाया जाने वाला अन्तः परजीवी है।
2. संरचना (Structure)	
(*ii*) शरीर द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical) तथा चपटा (dorso-ventrally flattened) होता है।	(*ii*) शरीर द्विपार्श्व सममित, चपटा तथा खण्डयुक्त होता है।

फेशियोला (*Fasciola*)	टीनिया (*Taenia*)
(*iii*) शरीर लगभग अण्डाकार तथा पत्ती के समान चपटा होता है। इसका अग्रिम सिरा चौड़ा तथा पिछला सिरा सँकरा तथा कम नुकीला होता है।	(*iii*) शरीर बहुत लम्बा तथा फीते के आकार का होता है जिसमें बहुत-से खण्ड पाये जाते हैं जो प्रोग्लोटिड कहलाते हैं।
(*iv*) शरीर का अग्रिम सिरा शीर्ष शंकु (apical cone or head lobe) के रूप मे उभरा रहता है। इस पर एक मुखवर्ती चूषक (oral sucker) पाया जाता है। हुक नही पाये जाते।	(*vi*) शरीर का अग्रिम सिरा घुण्डी के आकार का होता है तथा स्कोलैक्स (scolex) कहलाता है। इस पर चूषक तथा हुक पाये जाते हैं।
(*v*) फेशियोला में दो चूषक होते हैं। एक चूषक मुख को घेरे रहता है और मुखवर्ती चूषक कहलाता है तथा दूसरा चूषक शरीर के अधर तल पर मुख के पीछे स्थित होता है।	(*v*) टीनिया में चार चूषक होते हैं जो पृष्ठ, अधर तथा पार्श्व सतहों पर स्थित होते है।
(*vi*) रोस्टेलम (rostellum) तथा इस पर के हुक अनुपस्थित होते हैं।	(*vi*) रोस्टेलम शीर्ष का अगला शंक्वाकार भाग है जिस पर हुक स्थित होते हैं।
(*vii*) गर्दन अनुपस्थित होती है।	(*vii*) शीर्ष के पीछे का छोटा-सा भाग गर्दन कहलाता है। इसमें विभाजित होने की क्षमता होती है। इससे कलिकोत्पादन द्वारा शरीर में जीवन-पर्यन्त नये खण्ड कटते रहते हैं।
(*viii*) प्रोग्लोटिड नही पाये जाते।	(*viii*) प्रोग्लोटिड तीन प्रकार के होते हैं—अपरिपक्व, परिपक्व तथा ग्रेविड।
(*ix*) देहभित्ति में एपिडर्मिस नहीं होती किन्तु इस पर मोटी क्युटिकल का स्तर होता है।	(*ix*) ऐसा ही होता है।
(*x*) शरीर में देहभित्ति के भीतर के खाली स्थान में पैरनकाइमा भरा रहता है।	(*x*) ऐसा ही होता है।
(*xi*) आहार-नाल पूर्ण विकसित तथा अत्यधिक शाखान्वित होती है। इसमें मुख तो होता है पर गुदाद्वार (anus) नही होता, क्योंकि परजीवी को पचा हुआ भोजन प्राप्त होता है। शाखान्वित आंत्र भोजन को शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाती है।	(*xi*) आहार-नाल अनुपस्थित होती है।
(*xii*) कंकाल तन्त्र, चलन अंग तथा विशेष संवेदी अंग अनुपस्थित होते हैं। मिरासीडियम लारवा में नेत्र पाये जाते हैं।	(*xii*) टीनिया में भी इन सभी अंगों का अभाव होता है।
(*xiii*) अनॉक्सी श्वसन (anaerobic respiration) होता है।	(*xiii*) अनॉक्सी श्वसन ही होता है।

फेशियोला (*Fasciola*)	टीनिया (*Taenia*)
(*xiv*) उत्सर्जन-तन्त्र में एक मध्य उत्सर्जन वाहिनी (medium excretory duct) होती है जो शरीर के पिछले सिरे की मध्य रेखा पर स्थित उत्सर्जी छिद्र द्वारा बाहर खुलती है। उत्सर्जन वाहिनी में चार उत्सर्जी नलिकाएँ खुलती हैं जो अपने स्वतन्त्र सिरे पर सूक्ष्म शाखाओं मे विभक्त हो जाती हैं और प्रत्येक के शीर्ष पर एक शिखा कोशिका पायी जाती है।	(*xiv*) उत्सर्जन-तन्त्र में शरीर के अगले भाग में चार उत्सर्जन नलिकाएँ तथा पिछले भाग में केवल दो उत्सर्जन वाहिनियाँ होती हैं। चारों वाहिनियाँ शीर्ष भाग में वर्तुल नलिका (circular vessel) द्वारा जुड़ी रहती हैं। ये अत्यधिक शाखान्वित होती हैं तथा शरीर में जलीय दाब का नियन्त्रण करती हैं।
(*xv*) तन्त्रिका तन्त्र पूर्ण विकसित होता है। इसमे एक जोड़ी सेरिब्रल गैंगलिया होते हैं जो गले के पास तन्त्रिका वलय द्वारा एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। इनसे तीन जोड़ी तन्त्रिकाएँ निकल कर शरीर के पिछले भाग को जाती है किन्तु इनमें से केवल एक जोड़ी ही मोटी तथा स्पष्ट होती हैं।	(*xv*) फेशियोला की अपेक्षा टीनिया मे तन्त्रिका-तन्त्र कम विकसित होता है। शीर्ष में एक जोड़ी गैंगलिया, एक तन्त्रिका वलय तथा शरीर के पिछले भाग में एक जोड़ी तन्त्रिकाएँ पायी जाती हैं।
(*xvi*) ये उभयलिंगी जन्तु हैं किन्तु फिर भी इनमें पर-निषेचन (cross-fertilization) होता है।	(*xvi*) ये उभयलिंगी जन्तु हैं और इनमें स्वयं-निषेचन क्रिया होती है।
(*xvii*) जनन अंग बहुत विकसित होते हैं और लगभग समस्त शरीर में भरे रहते हैं।	(*xvii*) जनन अंग बहुत अधिक विकसित होते है तथा शरीर के प्रत्येक खण्ड में पाये जाते हैं।
(*xviii*) एक जन्तु बहुत सारे अण्डे उत्पन्न करता है।	(*xviii*) इसमें उत्पन्न अण्डों की संख्या और भी अधिक होती है क्योंकि प्रत्येक खण्ड में बहुत-से अण्डे उत्पन्न होते हैं।
(*xix*) निषेचित अण्डों में संचित भोजन के रूप में योक पाया जाता है तथा इसके चारों ओर मोटा काइटिन का बना अण्ड-खोल (egg-shell) पाया जाता है।	(*xix*) ऐसा ही होता है।
(*xx*) अण्डे की वर्धन क्रिया पोषक के शरीर के बाहर होती है; अतः ये पोषक के अपच भोजन के साथ शरीर के बाहर आ जाते हैं।	(*xx*) गर्भाशय के भीतर होने पर अण्डे में विभाजन प्रारम्भ हो जाता है।
(*xxi*) जीवन इतिहास दो पोषकों पर पूर्ण होता है :— (अ) प्राथमिक पोषक—भेड़, तथा (ब) द्वितीयक पोषक—घोंघा	(*xxi*) जीवन-इतिहास दो पोषकों पर पूर्ण होता है :— (अ) प्राथमिक पोषक—मनुष्य, तथा (बं) द्वितीयक पोषक—सूअर
(*xxii*) जीवन-इतिहास में पांच लारवा अवस्थाएँ होती हैं :— मिरासीडियम, स्पोरोसिस्ट, रेडिया, सर-	(*xxii*) जीवन-इतिहास में केवल दो लारवा अवस्थाएँ होती है :— हैक्जाकेन्थ लारवा, तथा

फेशियोला (*Fasciola*)	टीनिया (*Taenia*)
केरिया तथा मेटासरकेरिया।	ब्लेडरवर्म लारवा।
(*xxiii*) मिरासीडियम तथा सरकेरिया स्वन्त्रतापूर्वक तैरते हैं। ये पानी में पाये जाते हैं और नये पोषक को खोजते हैं।	(*xxiii*) कोई स्वतन्त्र तथा तैरने वाला लारवा नहीं होता। हेक्जाकैन्थ लारवा द्वितीयक पोषक की आहार-नाल में स्वतन्त्र होता है।
(*xxiv*) लारवा अलैंगिक वर्धन द्वारा संख्या में बढ़ते हैं।	(*xxiv*) ऐसा नहीं होता।

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि *फेशियोला* की अपेक्षा *टीनिया* परजीवी स्वभाव के अधिक अनुरूप है।

प्रश्न 109. परजीविता क्या है? प्रौढ़ टीनिया सोलियम के जननांगों का वर्णन करिये और इसके परजीवी अनुकूलनों पर एक नोट लिखिये।

What is parasitism? Describe the reproductive organs of an adult *Taenia solium* and write a short note on its parasitic adaptations.
(*Ranchi 1973*)

परजीविता (Parasitism)
(कृपया प्रश्न 105 देखिये)

जनन अंग (Reproductive Organs)
(कृपया प्रश्न 100 देखिये)

अनुकूलन (Adaptations)
(कृपया प्रश्न 105 देखिये)

अध्याय 24

फाइलम निमेटीहेल्मिन्थीस
(Phylum Nemathelminthes)

एस्केरिस लुम्ब्रीकोयडीस
(Ascaris lumbricoides)

फाइलम— निमेटीहेल्मिन्थीस
क्लास — निमेटोडा
ऑर्डर— एस्केरोइडिया
जीनस— एस्केरिस या गोल कीडा

प्रश्न 110. एस्केरिस की औतिकी की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करिये।

Give an account of the salient features in the anatomy of *Ascaris.* *(Gorakhpur 1961 ; Nagpur 68 ; Rajasthan 72)*

एस्केरिस की संरचना का वर्णन करिये।

Describe the structure of *Ascaris.* *(Lucknow 1965)*

एस्केरिस की रचनात्मक विशेषताओं को समझाइये।

Discuss the important anatomical features of *Ascaris.* *(Vikram 1964 ; Indore 67 ; Raj. 72)*

एस्केरिस की देहभित्ति की संरचना का वर्णन कीजिये।

Describe the body wall of *Ascaris.* *(Ranchi 1971)*

एस्केरिस एक साधारण गोल कृमि (round worm) है जो मनुष्य की आन्त्र मे अन्त.परजीवी है। यह बडो की अपेक्षा बच्चो मे अधिक पाया जाता है। यद्यपि यह ससार के समस्त देशो मे मिलता हे किन्तु उष्ण जलवायु वाले देशों जैसे भारत, चीन इत्यादि मे अधिकता से पाया जाता है।

बाह्य संरचना (External Structure)

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—एस्केरिस लम्बा बेलनाकार कीडा है जिसकी मादा नर की अपेक्षा अधिक लम्बी तथा मोटी होती है। मादा जन्तु की लम्बाई 20 से 40 cm. तथा चौड़ाई 6 से 8 mm. होती है किन्तु नर जन्तु 18 से 31 cm. लम्बा तथा 2 से 4 mm. चौड़ा होता है।

रंग (Colour)—पोषक के शरीर से निकले हुए नये जन्तु का रंग गुलाबी, सफेद-सा या पीला-सफेद-सा होता है। मोटी तथा चमकीली क्यूटिकल के कारण इसमे एक विशेष प्रकार की आभा या चमक होती हे।

एस्केरिस का शरीर लम्बा, पतला तथा बेलनाकार होता है जो दोनो अगले व पिछले सिरो पर पतला हो जाता है। इसकी सतह पर झुर्रियाँ-सी (wrinkles) दृष्टिगत होती हैं जिनके कारण कूट खण्डीभवन (false segmentation or pseudosegmentation) का आभास होता है। ये झुर्रियाँ मोटी तथा लचीली क्यूटिकल की

चित्र २४·१. एसकेरिस का पार्श्व दृश्य (Lateral view of *Ascaris*)
(*a*) मादा एसकेरिस
(*b*) नर एसकेरिस

पर्त में उपस्थित अनुप्रस्थ लाइनों के कारण होती है। शरीर की लम्बाई के साथ फैली हुई चार लम्ववत् धारियाँ (longitudinal streaks) दिखाई देती हैं जो शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती है। इनमें से दो बहुत पतली तथा एकदम सफेद रंग की होती हैं। ये **मध्य-पृष्ठ धारी** (mid-dorsal line) तथा **मध्य-अधर धारी** (mid-ventral line) कहलाती हैं और क्रमश: शरीर के पृष्ठ तथा अधर तल के मध्य में स्थित होती है। शेष दो धारियाँ मोटी तथा भूरे रंग की होती हैं और शरीर की पार्श्व सतहों पर स्थित होने के

चित्र २४·२. ओष्ठों की स्थिति को प्रदर्शित करते हुए शीर्ष का सामने का दृश्य (Frontal view of head showing lips)
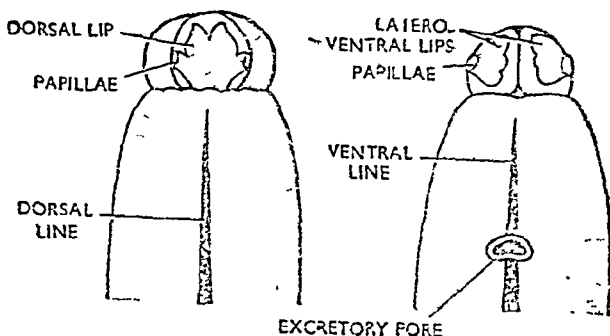
चित्र २४·३. एसकेरिस के अग्रिम सिरे के पृष्ठ तथा अधर दृश्य (*Ascaris* : Dorsal and ventral views of anterior end)

कारण पार्श्व धारियाँ (lateral lines) कहलाती है।

शरीर के अन्तिम सिरे के शीर्ष पर एक तिकोना छिद्र—मुख होता है जो तीन निघर्षण होठो (rasping lips) से घिरा रहता है। इनमें से एक मध्य-पृष्ठ तथा दो पार्श्व-अधर (mid-dorsal and latero-ventral) स्थानो पर पाये जाते है। मध्य-पृष्ठ होठ लगभग वृहद् गोलाकार (elliptical) होता है तथा इसके मध्य मे माँसीली द्विखण्डित कोर (fleshy forked core) होती है। इस पर चार सूक्ष्म सवेदी अकुरो (sensory papillae) का एक घेरा होता है। दोनों अधर पार्श्व होठों पर भी एक-एक मासीली द्विखण्डित कोर होती है तथा सवेदी अंकुरों की दो पंक्तियाँ
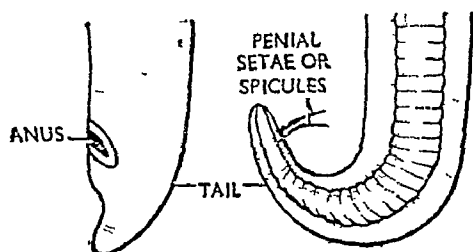
चित्र २४·४. नर तथा मादा एसकेरिस के पिछले सिरे (Posterior ends of male and female *Ascaris*)
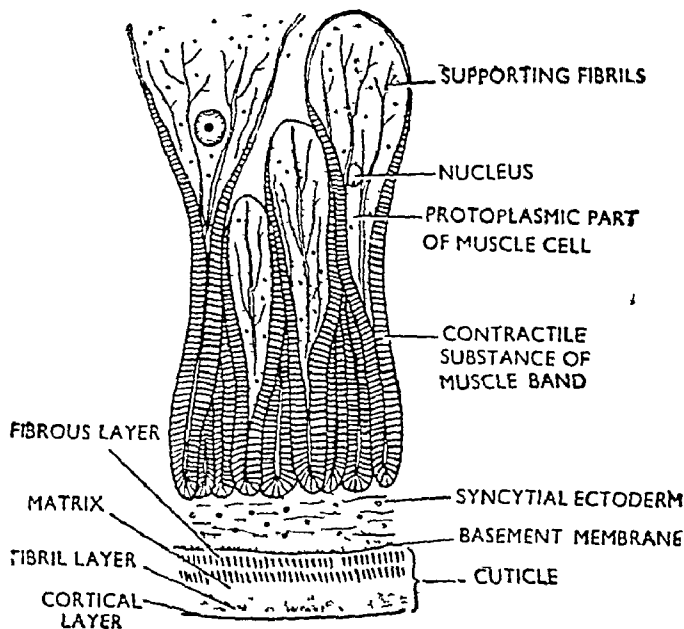
चित्र २४·५. एसकेरिस की देहभित्ति का ऊर्ध्व काट (V.S. body wall of *Ascaris*)

पायी जाती है। प्रत्येक पक्ति में दो अंकुर होते है। इन होठों पर विशेप प्रकार के सवेदी अग भी होते हैं जो एम्फिड (amphids) कहलाते है। सवेदी अंकुर स्पर्श ग्राहक (tangoreceptors) हैं तथा एम्फिड रसायनग्राही (chemoreceptors) होते है। होठो के भीतर के किनारो पर महीन दाँत पाये जाते है। अग्रिम सिरे पर एक छोटा-सा उत्सर्जी छिद्र होता है। मादा जनन छिद्र शरीर के लगभग $\frac{1}{3}$ भाग पर स्थित होता है।

शरीर के पिछले भाग मे लैंगिक द्विरूपता (sexual dimorphism) पायी जाती है। मादा मे यह एकदम सीधा तथा नर मे मुड़ा हुआ होता है। मादा मे इस पर

गुदाद्वार एक अनुप्रस्थ दरार के रूप में पाया जाता है तथा नर में यह क्लोयका का छिद्र (cloacal opening) होता है। क्लोयका छिद्र में से दो काइटिन के बने हुए काँटे या पीनियल सीटी (penial setae) निकले हुए दिखाई देते हैं। गुदाद्वार या क्लोयका छिद्र के पीछे वाला शरीर का भाग पुच्छ कहलाता है। नर में इस पर 50 जोड़ी प्रीएनल तथा 5 जोड़ी पोस्टएनल (postanal) अंकुर होते हैं।

आन्तरिक संरचना

देहभित्ति (Body wall)—देहभित्ति तीन स्तरों की बनी होती है :—

1. क्यूटिकल, 2. एपिडर्मिस, 3. पेशीस्तर।

1. क्यूटिकल (Cuticle)—क्यूटिकल एक मोटा, पारदर्शी तथा लचीला किन्तु प्रतिरोधी स्तर है जो शरीर पर रक्षात्मक खोल बनाता है। पोषक के पाचक रसों से यह शरीर की रक्षा करता है। यह एपिडर्मिस की कोशिकाओं के स्राव से बनता है। क्यूटिकल को बहुत-सी पर्त्तों में अलग किया जा सकता है :—

1. कॉर्टिकल स्तर (Cortical layer)
2. तन्तुक स्तर (Fibril layer)
3. आधार द्रव्य (Matrix)
4. तन्तुमय स्तर (Fibrous layer)
5. आधार कला (Basement membrane)

2. एपिडर्मिस (Epidermis)—यह बहुकेन्द्रक प्रोटोप्लाज्म का स्तर है जिसमें बहुत-से केन्द्रक फैले रहते हैं। इसके प्रोटोप्लाज्म में बहुत-से लम्बवत् तन्तु फैले रहते हैं। एपिडर्मिस चार लम्बवत् रेखाओं के रूप में देहगुहा में उभरी रहती है।
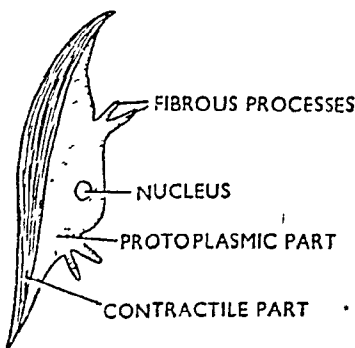
चित्र २४ ६ एसकेरिस की एक पेशा कोशिका (Single fibril of *Ascaris*)

3. पेशी स्तर (Muscle layer)—एक्टोडर्म के नीचे लम्बवत् पेशी स्तर होता है। यह चार लाइनों द्वारा चतुर्थांशों (quadrants) में विभक्त रहता है। इनमें से दो चतुर्थांश पृष्ठ पार्श्व (dorsolateral) तथा दो अवर पार्श्व दिशा में स्थित होते हैं। लम्बवत् पेशी कोशिकाएँ अत्यधिक विशेषित (highly specialized) व तर्क्वाकार (spindle-shaped) होती हैं तथा प्रत्येक कोशिका दो भागों में बँटी रहती है—

(अ) तन्तुक भाग (Fibrillar region)—यह कुञ्चनशील तथा अकुञ्चनशील तन्तुओं के क्रमिक संयोजन से बनता है। यह प्रोटोप्लाज्म के बने भाग के ऊपर स्थित होता है।

(ब) जीवद्रवीय भाग (Protoplasmic part)—यह पेशी कोशिका के भीतर का भाग है जो देहगुहा की ओर स्थित होता है। यह लगभग थैले के समान होता है और इसमें एक केन्द्रक स्थित होता है।

स्यूडोसील (Pseudocoel)—देहभित्ति तथा आहार-नाल के बीच का खाली स्थान देहगुहा (body cavity) कहलाता है। यह स्यूडोसील (pseudocoel : *pseudo*, false ; *coel*, cavity) होती है क्योंकि यह बाहर की ओर पेशी प्रवर्धों से तथा भीतर की ओर आन्त्र पर स्थित क्यूटिकल से आस्तारित होता है। इसमें मीसोडर्म से बनी

पैराइटल तथा विसरल (parietal and visceral) कलाएँ नहीं होतीं। स्यूडोसील का जनन अंगों तथा उत्सर्जन अंगों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसमें कुछ बड़ी-बड़ी रसधानीयुक्त (vacuolated) कोशिकाएँ भी पायी जाती हैं।

पाचन तन्त्र (Digestive system)—पाचन तन्त्र सरल होता है तथा इसमें निम्नलिखित भाग होते हैं :—

1. मुख तथा मुखगुहा, 2. ग्रसनी या ग्रासनली, 3. आन्त्र, 4. मलाशय तथा गुदाद्वार।

1. मुख तथा मुखगुहा (Mouth and buccal cavity)—मुख एक तिकोना शीर्ष छिद्र (terminal opening) है। यह एक मध्य-पृष्ठ तथा दो अधर पार्श्व (mid-dorsal and ventrolateral) होठों द्वारा घिरा होता है। यह मुखगुहा में खुलता है जो एक छोटा पेशी-युक्त कक्ष (chamber) है और ग्रसनी में खुलता है।

2. ग्रसनी (Pharynx)—यह एक छोटा, वेलनाकार या नालाकार कक्ष है जिसकी दीवारें मोटी तथा पेशीयुक्त होती हैं। यह अरीय पेशियों की बनी होती है। इसकी गुहा त्रिअरीय (triradiate cavity) होती है तथा क्यूटिकल से आस्तारित होती है। ग्रसनी की दीवार में दो पाणिवत् शाखान्वित (palmately branched) **अधर इसोफेजियल ग्रन्थियाँ** (oesophageal glands) तथा पक्षवत् शाखान्वित (pinnately branched) पृष्ठ इसोफेजियल ग्रन्थियाँ पायी जाती है। ये एककोशिक रचनाएँ हैं जो अपना स्रावित पदार्थ ग्रसनी की गुहा में डालती है।
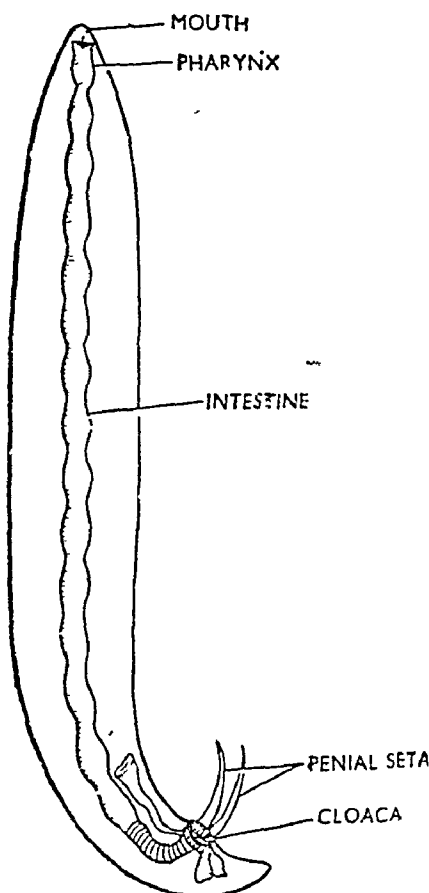
चित्र २४·७ एसकेरिस की आहार-नाल (Alimentary canal of *Ascaris*)

3. आन्त्र (Intestine)—यह एक लम्बी, पतली दीवारों वाली, चपटी नली के रूप मे होती है। आन्त्र की दीवार **एपिथीलियल कोशिकाओं** (epithelial cells) के एककोशिक स्तर की बनी होती है तथा क्यूटिकल से आस्तारित रहती है।

4. मलाशय (Rectum)—यह आहार-नाल का दूरस्थ भाग है जिसकी दीवार आन्त्र की अपेक्षा अधिक मोटी होती है। मादा में इससे सम्बन्धित तीन तथा नर मे छः एककोशिक रेक्टल ग्रन्थियाँ (rectal glands) पायी जाती हैं। मलाशय अनुप्रस्थ छिद्र—गुदाद्वार द्वारा बाहर को खुलता है। गुदाद्वार पेशीय छिद्र होता है।

श्वसन-तन्त्र (Respiratory system)—श्वसन अंग नहीं होते तथा इनमें ग्लाइकोलाइसिस द्वारा अनॉक्सी श्वसन होता है।

उत्सर्जन-तन्त्र (Excretory system)—उत्सर्जन-तन्त्र 'H' के आकार का

होता है। इसमें दो लम्बवत् नालें भी होती हैं जो पार्श्व रेखाओं में शरीर के अन्तिम सिरे तक फैली रहती हैं तथा अगले सिरे पर एक अनुप्रस्थ नाल द्वारा जुड़ी रहती हैं। अनुप्रस्थ नाल जाल (network) के रूप में होती है तथा एक उत्सर्गी छिद्र (excretory pore) द्वारा वाहर की ओर खुलती है।

प्रत्येक नाल मोटी दीवारों की वनी होती है तथा पिछले सिरे पर वन्द होती है। प्रत्येक नाल एक बहुत लम्बी कोशिका के भीतर का खोखला स्थान प्रदर्शित करती है। उत्सर्जी नालों के साथ 4 से 6 तक बड़ी कोशिकाएँ पायी जाती हैं। ये खोखली नालाकार शाखान्वित कोशिकाएँ देहगुहा से उत्सर्जी पदार्थों को एकत्रित करती हैं तथा इस प्रकार उत्सर्जन में सहायता करती हैं।
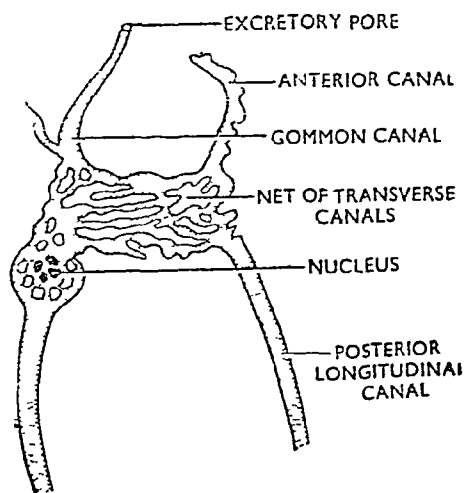
चित्र २४·८. एसकेरिस में उत्सर्जन तन्त्र (Excretory system in *Ascaris*)

तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous system)—तन्त्रिका-तन्त्र अधस्त्वकीय (hypodermic) होता है जिसमें सरकमफेरिंजियल तन्त्रिका वलय तथा उससे निकलने वाली तन्त्रिकाएँ पायी जाती है।

1. सरकमफेरिंजियल तन्त्रिका वलय (Circumpharyngeal nerve ring)—यह कुछ गैंगलियाओं के मिलने से वनती है जो निम्नलिखित हैं :—

(*i*) छः अंकुरीय गैंगलिया (Six papillary ganglia)
(*ii*) दो अधर गैंगलिया (Two ventral ganglia)
(*iii*) दो अधोपृष्ठ गैंगलिया (Two sub-dorsal ganglia)
(*iv*) दो पृष्ठ गैंगलिया (Two dorsal ganglia)

2. तन्त्रिकाएँ (Nerves)—तन्त्रिका वलय से आगे की ओर छः तन्त्रिकाएँ तथा पीछे की ओर आठ तन्त्रिकाएँ निकलती हैं। अग्रिम तन्त्रिकाएँ शरीर के अग्रिम भाग में स्थित संवेदी अंगों को जाती हैं। पीछे की ओर निम्न तन्त्रिकाएँ पायी जाती हैं :—

1. एक पृष्ठ तन्त्रिका
2. एक अधर तन्त्रिका
3. एक जोड़ी पृष्ठ पार्श्व तन्त्रिकाएँ
4. एक जोड़ी अधर पार्श्व तन्त्रिकाएँ, तथा
5. एक जोड़ी पार्श्व तन्त्रिकाएँ

इन तन्त्रिकाओं में से पृष्ठ तथा अधर तन्त्रिकाएँ पृष्ठ तथा अधर तल पर शरीर के अन्तिम सिरे तक फैली रहती हैं।

एसकेरिस में विशेष संवेदी अंग नहीं पाये जाते किन्तु होठों पर के संवेदी अंकुर स्पर्श संवेदी तथा एम्फिड रसायन संवेदी होते हैं।

जनन तन्त्र (Reproductive system)—एसकेरिस में नर तथा मादा जनन
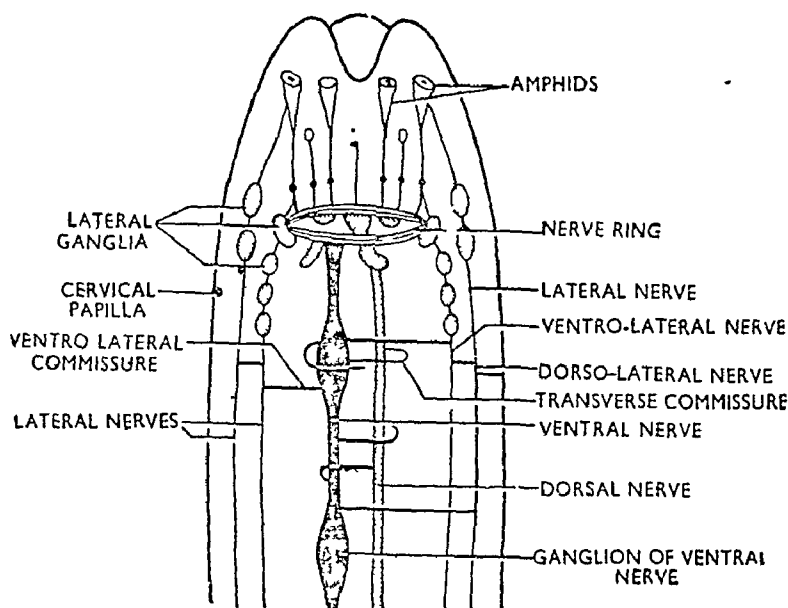
चित्र २४·६. एसकेरिस का तन्त्रिका तन्त्र (Nervous system of *Ascaris*)

अंग अलग-अलग जन्तुओ मे पाये जाते है तथा नर एवम् मादा जन्तुओ मे कुछ आकारिक भिन्नताएँ होती है :—

1. नर मादा की अपेक्षा छोटा या कम लम्बा व कम चौडा होता है।

2. शरीर का पिछला भाग नर मे मुडा हुआ होता है किन्तु मादा में यह सीधा होता है।

3. मादा मे जनन-छिद्र शरीर के 1/3 भाग पर स्थित होता है किन्तु नर मे जनन-नाल तथा आहार-नाल एक छोटे-से क्लोयका (cloaca) मे खुलती है। क्लोयका पुनः बाहर को खुलता है जिसे क्लोयका-छिद्र कहते हैं।

4. नर मे क्लोयका-छिद्र मे से पीनियल सीटी (penial setae) बाहर को निकले रहते है।

नर जनन अंग (Male Reproductive Organs)

1. एक वृषण
2. एक शुक्रवाहिनी
3. एक शुक्राशय
4. एक इजेकुलेटोरी वाहिनी
5. पीनियल सैक तथा पीनियल सीटी

1. वृषण (Testis)—यह एक लम्बी, पतली तथा कुण्डलित धागे के समान रचना है जो स्यूडोसील के अगले भाग मे स्थित होता है। यह मोनार्किक प्रावस्था (monarchic) तथा टीलोगोनिक (telogonic) उद्भव प्रदर्शित करता है। इसको तीन भागो मे बाँटा जा सकता है :—

(*i*) अगला ठोस भाग जिसमे जनन कोशिकाएँ पायी जाती है
(*ii*) मध्य भाग
(*iii*) पश्च भाग

पीछे की ओर वृषण शुक्रवाहिनी से सम्बन्धित होता है।

2. शुक्रवाहिनी (Vas deferens)—शुक्रवाहिनी वृषण के समान ही चौड़ी होती है और बाहर से दोनों को पहचानना सम्भव नहीं। यह बहुत छोटी होती है और शुक्राशय में खुलती है।

3. शुक्राशय (Seminal vesicle or vesicula seminalis)—यह एक चौड़ी नलिका है जो शरीर के पिछले 1/3 भाग में स्थित होती है और इजेकुलेटरी वाहिनी से सम्बन्धित होती है।

4. इजेकुलेटोरी वाहिनी (Ejaculatory duct)—यह एक छोटी, सँकरी तथा पेशीयुक्त नलिका है जो क्लोयका में खुलती है।

5. पीनियल कोष तथा पीनियल सीटी (Penial sac and penial setae)—पीनियल कोष क्लोयका की पृष्ठ दीवार से निकलने वाली एक जोड़ी पेशीय रचनाएँ हैं जिनमें काइटिन की बनी, मुग्दर के आकार की (club-shaped) कण्टिकाएँ पायी जाती हैं। इन्हें पीनियल कण्टिकाएँ (penial setae) कहते हैं। ये मैथुन क्रिया के समय शुक्राणुओं को मादा में पहुँचाने में सहायता करते हैं।

मादा जनन अंग (Female Reproductive Organs)
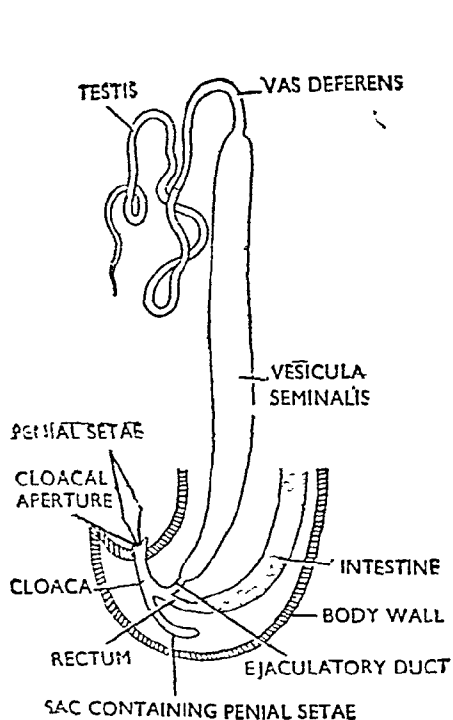
1. एक जोड़ी अण्डाशय

चित्र २४·१०. एसकेरिस के नर जनन अंग (Male reproductive organs of *Ascaris*)
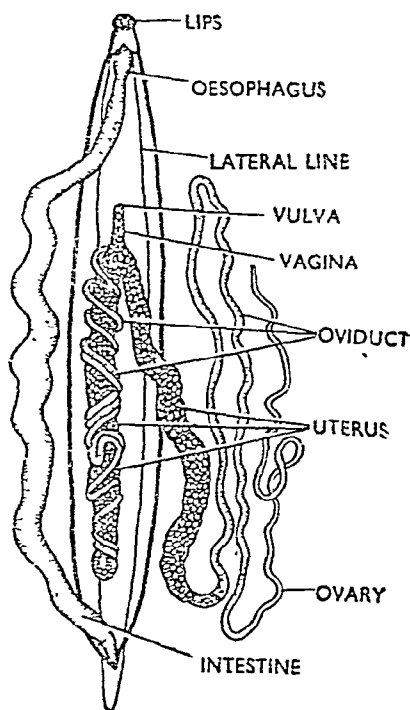
चित्र २४·११. एसकेरिस के मादा जनन अंग (Female reproductive organs of *Ascaris*)

2. एक जोडी अण्डवाहिनियाँ
3. एक जोडी गर्भाशय, तथा
4. एक योनि

1. अण्डाशय (Ovaries)—अण्डाशय डायडेल्फिक अवस्था (didelphic condition) प्रदर्शित करते है। ये लम्बे धागे के समान, कुण्डलित रचनाएँ है जो शरीर के पिछले 2/3 भाग मे स्थित होती है। प्रत्येक अण्डाशय अण्डवाहिनी मे खुलता है।

2. अण्डवाहिनियाँ (Oviducts)—अण्डवाहिनी तथा अण्डाशय को बाहर से देखकर पहचानना कठिन है क्योकि इनमे कोई अन्तर नही होता। ये पतली वाहिनियाँ हैं जो अपनी ओर के गर्भाशय मे खुलती है।

3. गर्भाशय (Uterus)—गर्भाशय दो लम्बी, चौड़ी तथा बहुत अधिक कुण्डलित रचनाएँ हैं जिनकी दीवारें पेशीयुक्त होती है।

4. योनि (Vagina)—दोनों गर्भाशय मिलकर एक योनि (vagina) का निर्माण करते है। यह एक छोटी पेशीयुक्त नलिका है जो मादा जनन-छिद्र द्वारा बाहर की ओर खुलती है। मादा जनन-छिद्र मध्य अधर तल पर अगले 1/3 भाग पर स्थित होता है।

प्रश्न 111. एसकेरिस लुम्ब्रीकोयडीस के बाह्य लक्षणों का वर्णन करिये। आप नर एवम् मादा एसकेरिस में किस प्रकार अन्तर करेंगे? संक्रमण किस प्रकार से होता है?

Describe the external features of *Ascaris lumbricoides*. How will you differentiate between male and female *Ascaris*? How is infection caused? (*Meerut 1969*)

एसकेरिस की बाह्य रचना एवम् जनन का वर्णन करिये।

Give an account of the external features and reproduction in Ascaris. (*Jabalpur 1973*)

कृपया प्रश्न 110 देखिये।

प्रश्न 112. एसकेरिस के नर एवम् मादा जनन अंगों का वर्णन करिये।

Describe the male and female reproductive organs of *Ascaris*.
(*Lucknow 1959 ; B.H.U. 66 ; Allahabad 65 ; Jiwaji 71*)

कृपया प्रश्न 110 देखिये।

प्रश्न 113. एसकेरिस के बाह्य लक्षणों, जीवन-चक्र एवम् आर्थिक महत्त्व का वर्णन करिये।

Describe the external features, life-history and economic importance of *Ascaris*.
(*Agra 1959, 62, 70 ; Gorakhpur 63 ; Lucknow 60, 64*)

एसकेरिस की रचना तथा जीवनी का वर्णन कीजिये।

Describe the structure and life-history of *Ascaris*.
(*Jiwaji 1970*)

बाह्य-रचना (External stucture)

कृपया प्रश्न 110 देखिये।

जीवन इतिहास (Life-history)

एसकेरिस मनुष्य की आंत्र में पाया जाने वाला अन्तःपरजीवी है। इसका जीवन-इतिहास सरल होता है तथा एक पोषक पर ही पूर्ण होता है।

मैथुन तथा निषेचन (Copulation and fertilization)—नर तथा मादा जन्तु पोषक की आंत्र के भीतर ही मैथुन करते है तथा नर जन्तु से निकलकर शुक्राणु मादा की योनि में पहुँच जाते है। योनि में से होते हुए शुक्राणु गर्भाशय में पहुँचते हैं। गर्भाशय के अगले भाग मे या अण्डवाहिनी मे अण्डो का निषेचन होता है। निषेचन के पश्चात् जब अण्डे नीचे की ओर बढते है तो मार्ग मे इनके चारों ओर अत्यधिक प्रतिरोधी, काइटिन का बना हुआ अण्ड-खोल (egg-shell) तथा एक अनियमित एल्ब्युमिन का खोल बन जाता है।

अण्ड रोपण (Egg-laying)—अण्डे पोषक की आंत्र मे ही दिये जाते है जो पोषक की विष्ठा के साथ शरीर के बाहर निकल आते है। एक मादा एस्केरिस अपने जीवन-काल मे 27,000,000 तक अण्डे देती है तथा प्रतिदिन लगभग 200,000 अण्डे उत्पन्न करती है।

अण्डे (Eggs)—प्रत्येक अण्डा लम्बा, अण्डाकार या दीर्घवृत्ताकार तथा लगभग $90\mu/40\mu$ होता है। इसके चारो ओर मोटा, पारदर्शी तथा काइटिन का बना अण्डाकार खोल (egg-shell) होता है तथा उसके भीतर पर्तदार एल्ब्युमिन का स्तर होता है। अण्डखोल पर रासायनिक पदार्थों तथा पर्यावरण के परिवर्तनो का कोई प्रभाव नही होता। प्रतिकूल वातावरण मे अण्डे वर्षों तक सुषुप्त अवस्था मे रह सकते है।

चित्र २४·१२. एसकेरिस के अण्डे की खड़ी काट (V. S. Egg of *Ascaris*)
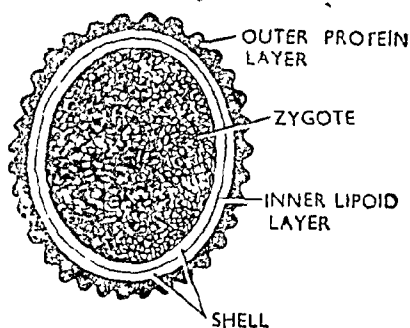
विभाजन या खण्डीभवन (Segmentation or cleavage)—अण्डे मे विभाजन पोषक के शरीर के बाहर होता है। विभाजन सर्पिल तथा निर्धारक (determinate) होते है। प्रथम विभाजन अनुप्रस्थ होता है। फलस्वरूप ऊपर वाली पृष्ठ कोशिका (dorsal cell—AB) तथा नीचे वाली अधर कोशिका (ventral cell—P_1) बनते है। पृष्ठ कोशिका (AB) ऊर्ध्व विभाजन (vertical division) के फलस्वरूप अग्रिम कोशिका (anterior cell—A) तथा पश्च कोशिका (posterior cell—B) मे बँट जाती है। साथ ही अधर कोशिका (P_1) मे अनुप्रस्थ विभाजन होता है जिससे ऊपर की कोशिका (EMST) तथा नीचे की कोशिका (P_2) बनती है। चार-कोशिकीय भ्रूण अब T के आकार का होता है। P_2 कोशिका दाहिनी ओर को हट जाती है तथा ऊपरी कोशिका EMST के सामने आ जाती है। A और B कोशिकाएँ एक साथ विभाजित होती है और दाहिनी तथा बायी कोशिकाएँ बनाती है। ये पुनः विभाजित होकर भ्रूण की **एक्टोडर्म** का निर्माण करती हैं। EMST तथा P_2 कोशिकाएँ विभाजित होकर E, MST, P_2 तथा C कोशिकाएँ बनाती है। E कोशिका विभाजन से **एण्डोडर्म** बनाती है तथा MST से **मीसोडर्म** तथा **एक्टोडर्म** के कुछ भागों का निर्माण होता है। P_3 कोशिका के विभाजन से P_4 तथा D कोशिकाएँ बनती है। C तथा D कोशिकाएँ

एक्टोडर्म तथा **मीसोडर्म** बनाती है। P_4 कोशिका G_1 और G_2 कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है जो प्रारम्भिक **जनन कोशिकाएँ** (primordial germ cells) बनाती है। इस प्रकार **ब्लास्टुला** का निर्माण होता है। अन्तर्गमन क्रिया द्वारा (by invagination) ब्लास्टुला **गैस्ट्रुला** मे बदल जाता है। गैस्ट्रुला वृद्धि करके गतिशील जुवेनाइल बनाता है जो **रेहब्डिटॉयड अवस्था** (rhabditoid stage) प्रदर्शित करती हैं। जल, वायु तथा तापक्रम की अनुकूल परिस्थितियों मे अण्डे से प्रथम लारवा बनने की क्रिया मे 10 से 14 दिन तक लगते है। एक सप्ताह पश्चात्
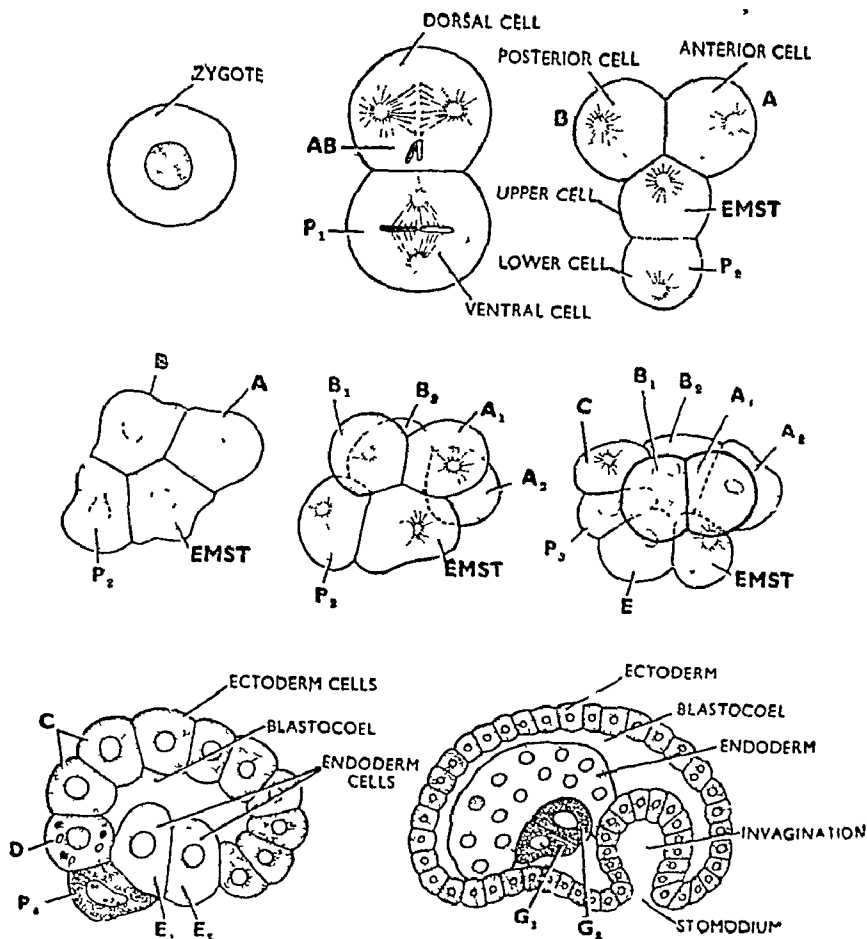
चित्र २४·१३ एसकेरिस मेगेलोसिफेला मे निर्धारक विभाजन (Determinate cell division in *Ascaris megalocephala*)

अण्ड-खोल के भीतर ही इसमे प्रथम निर्मोचन (first moult) होता है और यह द्वितीय लारवा अवस्था मे पहुँच जाता है। अण्डे से लारवा निकलने की क्रिया तथा लारवा का पुनः वर्धन अब तभी सम्भव होता है जबकि अण्डे पोषक की आंत में पहुँचे।

संक्रमण (Infection)—अण्डे सक्रमित भोजन, पानी या कच्ची सब्जी के साथ प्राथमिक पोषक की आहार-नाल मे पहुँचते हैं। ड्यूओडिनम मे पहुँचकर

अण्ड-खोल नष्ट हो जाता है और द्वितीय रेहब्डिटॉइड लारवा बाहर निकल आता है।

द्वितीय रेहब्डिटॉइड लारवा लगभग ·2 या ·3 mm. लम्बा होता है। इसमें पूर्ण विकसित आहार नाल, तन्त्रिका-तन्त्र तथा उत्सर्जन तन्त्र पाये जाते हैं। आंत्र में जीवन प्रारम्भ करने से पहले यह पोषक के शरीर में प्रवासी (migratory) जीवन प्रारम्भ करता है। इसी समय में इसमें दो बार निर्मोचन क्रिया होती है।
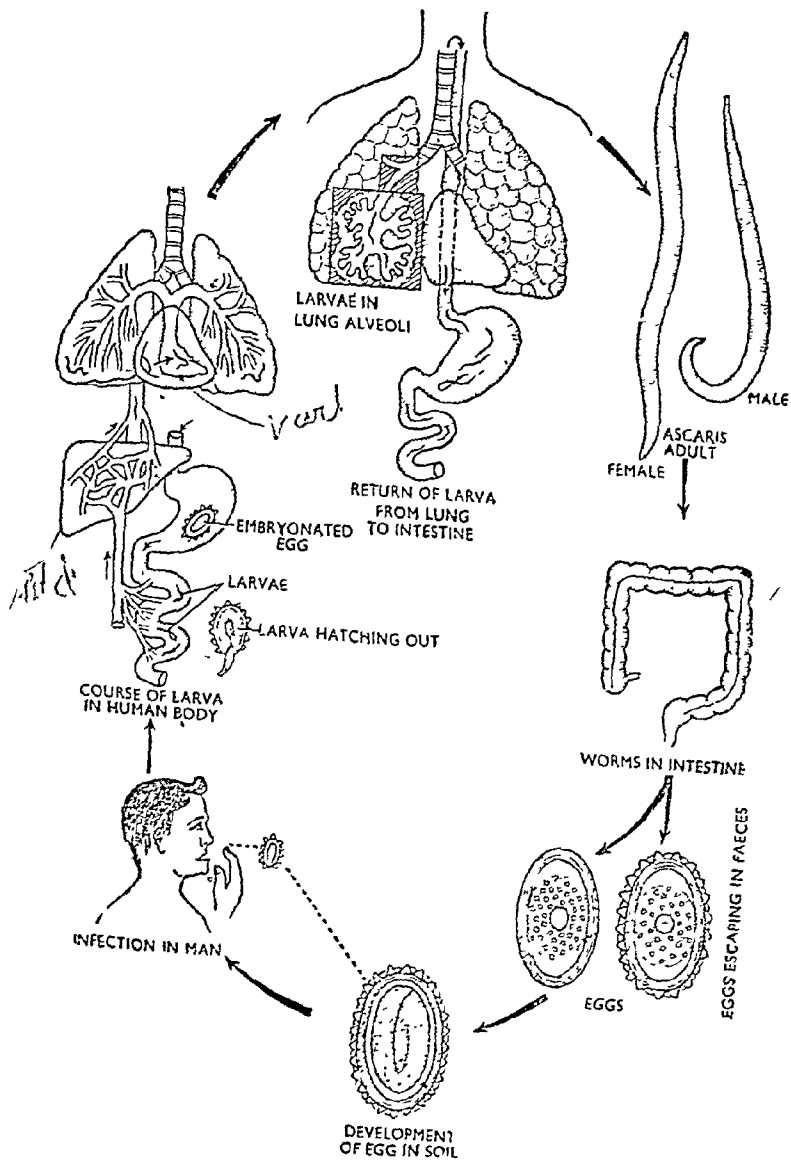
चित्र २४·१४. एसकेरिस का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Ascaris*)

प्रथम प्रवास (First migration)—द्वितीय प्रावस्था का लारवा अण्डे से निकलने के पश्चात् आंत्र की म्यूकस मेम्ब्रेन को छेदकर हिपेटिक पोर्टल तन्त्र के द्वारा यकृत में पहुँचता है तथा वहाँ से हृदय में पहुँचता है। पल्मोनरी धमनी द्वारा यह फेफड़ों में पहुँच जाता है। यहाँ पर यह कोशिका या वायुकोष्ठ (alveolus) की दीवार में ठहर जाता है, जहाँ इसमें दो बार निर्मोचन होता है और अब यह लगभग 1 से 2 mm. लम्बा हो जाता है। निर्मोचन के पश्चात् यह पुनः प्रवास आरम्भ कर देता है।

चित्र २४·१५. एसकेरिस का रेहब्डिटॉइड लारवा (Rhabditoid larva of *Ascaris*)
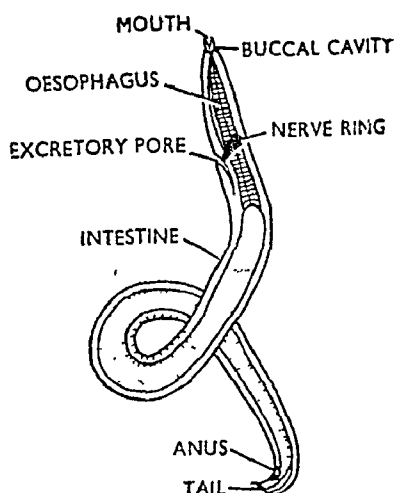
द्वितीय प्रवास (Second migration)—वायुकोष्ठ में से निकलकर लारवा फेफड़े के वायुमार्ग में पहुँच जाता है तथा ग्रसनी की ओर बढ़ता है। यहाँ यह ग्रसनी की दीवार को उत्तेजित करता है जिससे खाँसी आती है। खाँसी के साथ यह आहार-नाल में पहुँच जाता है और आंत्र में पहुँचकर अन्तिम या पाँचवी बार निर्मोचन होता है जिससे यह प्रौढ़ जन्तु के समान बन जाता है। 6 से 10 सप्ताह में इसके भीतर जनन अंगों का निर्माण भी पूर्ण हो जाता है।

आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

प्रौढ़ परजीवी के साथ-साथ प्रवासी काल में भी लारवा अत्यधिक रोगोत्पादक (pathogenic) होता है। इससे निम्नलिखित बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं :—

1. फेफडो के भीतर लारवा सूजन उत्पन्न कर देते है जिससे भयंकर किस्म का तथा घातक निमोनिया (pneumonia) हो जाता है। कभी-कभी तो इनकी उपस्थिति के कारण बुखार, रक्ताल्पता, ल्युकोसाइटोसिस तथा इओसिनोफिलिया नामक बीमारियाँ हो जाती है।

2. प्रौढ *एसकेरिस* की उपस्थिति घातक नही होती और कभी-कभी तो इसका जन्तु की जैविक क्रियाओं पर भी प्रभाव नही होता, किन्तु जब ये बहुत अधिक संख्या मे पाये जाते है तो उदर तथा आंत्र मे दर्द (colic pain) होता है। साथ ही पोषक को पेचिश व हल्का बुखार भी रहने लगता है। जब ये कई सौ की संख्या में एकत्रित होकर आंत्र अथवा अपेण्डिक्स की गुहा को बन्द कर देते हैं तो अपेण्डिसाइटिस (appendicitis) नामक रोग उत्पन्न करते हैं। आंत्र की दीवार को नष्ट करके ये पेरिटोनिटिस (peritonitis) उत्पन्न करते हे। इनके द्वारा छोड़े गये हानिकारक पदार्थो से पोषक में संज्ञाहीनता (delirium), आक्षेपकता (convolusions) तथा बेहोशी (coma) इत्यादि बीमारियाँ हो जाती है।

साधारणतया *एसकेरिस* की उपस्थित से पोषक की वृद्धि कम हो जाती है या रुक जाती है। स्मरण-शक्ति क्षीण हो जाती है।

प्रश्न 114. Ascaris lumbricoides के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये तथा बताइये कि इसका संक्रमण किस प्रकार से होता है ?

Describe the life-cycle of *Ascaris lumbricoides* and state how its infection takes place. (*Patna 1967, 69*)

कृपया प्रश्न 113 देखिये ।

प्रश्न 115. नर तथा मादा एसकेरिस के जनन अंगों के नामांकित चित्र बनाइये तथा इसके मैथुन, निषेचन एवम् वर्धन का वर्णन कीजिये ।

Give fully labelled diagrams of the reproductive organs of male and female *Ascaris*. Describe its mode of copulation, fertilization and development. (*Kanpur 1970*)

नर व मादा जनन अंगों के चित्र

कृपया चित्र 24·10 तथा 24·11 देखिये ।

मैथुन, निषेचन एवम् वर्धन

कृपया प्रश्न 113 देखिये ।

प्रश्न 116. एसकेरिस के जीवन-चक्र का वर्णन करिये ।

Give an account of the life-cycle of *Ascaris*.
(*Lucknow 1963, 69 ; Meerut 68 ; Kanpur 72*)

कृपया प्रश्न 113 देखिये ।

प्रश्न 117. एसकेरिस की संरचना एवम् जीवन-इतिहास का वर्णन करिये । इस परजीवी के संक्रमण से बचने के लिए क्या उपाय काम में लाने चाहियें ?

Describe the structure and life-history of *Ascaris*. What measures should be taken to control infection of parasite ?
(*Agra 1962, 65 ; Vikram 61, 68 ; Tribhuwan 63 ; Jiwaji 70, 72*)

एसकेरिस के जीवन-चक्र एवम् औतिकी की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।

Describe the main features in the anatomy and life-history of *Ascaris*. (*Lucknow 1968*)

रचना (Structure)

कृपया प्रश्न 110 देखिये ।

जीवन-इतिहास (Life-history)

कृपया प्रश्न 113 देखिये ।

रोक-थाम के साधन (Preventive Measures)

एसकेरिस द्वारा संक्रमण को रोकने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं :—

1. संक्रमित पानी तथा कच्ची सब्जी उपयोग में न लायी जायें ।
2. कच्ची सब्जियाँ तथा फल इत्यादि जो विष्ठा-खाद के प्रयोग द्वारा उगाये गये हैं उपयोग में लाने से पहिले भली-भाँति धोकर तथा पकाकर खाने चाहियें ।
3. शौच के लिए स्थान साफ होना चाहिये तथा शौच के पश्चात् सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिये । विष्ठा को फेंकने में स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिये ।
4. भोजन खाने से पहिले हाथों को भली-भाँति साफ कर लेना चाहिये ।

प्रश्न 118. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये :—

Write detailed notes on :—

(*a*) एसकेरिस की देहभित्ति एवम् उत्सर्जी तन्त्र ।
Body wall and excretory organs of *Ascaris*.

(*b*) **एसकेरिस में परजीवी अनुकूलन।**
Parasitic adaptations in *Ascaris*.
(*Agra 1958 ; Gorakhpur 54 ; Vikram 65*)

(अ) देहभित्ति तथा उत्सर्जन अंगों के लिए प्रश्न 104 देखिये।

(ब) परजीवी अनुकूलताएँ (Parasitic adaptations)—किसी जीव में स्वत: नियमन (self-regulation), आत्म-परिरक्षण (self-preservation) तथा जाति की रक्षा के लिए जो विशेषताएँ पायी जाती हैं उन्हें अनुकूलन (adaptations) कहते हैं। इन विशेषताओं के कारण वह अपने वातावरण का पूर्ण सदुपयोग करता है। जो जन्तु अपने वातावरण के लिए जितना अधिक अनुकूल होता है उसकी साधारण रचना में उतना ही अधिक परिवर्तन आ जाता है। एसकेरिस एक अन्त:परजीवी है जो मनुष्य की आंत्र में पाया जाता है। अपने परजीवी स्वभाव के अनुरूप इसमें निम्न आकारिक परिवर्तन (structural modifications) पाये जाते हैं :—

1. क्यूटिकल बहुत मोटी, मजबूत तथा प्रतिरोधी होती है जिसमें बहुत-से स्तर होते हैं। यह पोषक के पाचक रसों से शरीर की रक्षा करती है।

2. आहार-नाल में पाचक ग्रन्थियाँ नहीं होती हैं क्योंकि परजीवी को पोषक से पचा हुआ भोजन प्राप्त होता है। ग्रसनी मोटी दीवारों वाली रचना है जो भोजन को चूसने के लिए चूषक अंग का कार्य करती है।

3. रोम (cilia) नहीं पाये जाते हैं।

4. चलन अंगों का अभाव होता है।

5. तन्त्रिका-तन्त्र कम विकसित होता है। नेत्र तथा अन्य संवेदी अंगों का पूर्ण अभाव होता है, केवल कुछ संवेदी अंकुर (sensory papillae) होठों पर पाये जाते हैं जो स्पर्श-संवेदी तथा रसायन-संवेदी होते हैं।

6. श्वसन अंग अनुपस्थित होते हैं तथा इसमें अनॉक्सी श्वसन (anaerobic respiration) होता है।

7. जनन अंग बहुत अधिक विकसित होते हैं तथा ये बहुत अधिक संख्या में युग्मक (gametes) बनाते हैं। एक जन्तु से उत्पन्न अण्डों की कुल संख्या लगभग 27,000,000 होती है।

उपर्युक्त विवरण से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यद्यपि एसकेरिस अन्त:परजीवी है किन्तु इसमें आकारिक विशेषताओं पर परजीविता का अधिक प्रभाव नहीं हुआ है।

प्रश्न 119. एसकेरिस के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन करिये तथा परजीवी जीवन के अनुरूप इसकी औतिकी में पायी जाने वाली विशेष रचनाओं का वर्णन करिये।

Point out the diagnostic characters of *Ascaris* and mention those features in its anatomy which show adaptations to the parasitic existence. (*Gorakhpur 1962*)

एसकेरिस आर्डर एसकेरोइडिया (Order Ascaroidea), क्लास निमेटोडा (Nematoda) तथा फाइलम निमेटीहेलमिन्थीस (Phylum Nemathelminthes) में रखा जाने वाला जन्तु है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :—

1. शरीर लम्बा, गोल, खण्डविहीन तथा कृमिवत् होता है।
2. शरीर पर मोटी झुर्रीदार क्यूटिकल का आवरण होता है।

3. नर, मादा की अपेक्षा छोटा होता है।

4. शरीर का पिछला सिरा मादा में सीधा होता है परन्तु नर में मुड़ा होता होता है।

5. शरीर की लम्बाई के साथ चार लम्बवत् धारियाँ (longitudinal streaks) पायी जाती हैं।

6. मुख शरीर के अग्रिम सिरे के शीर्ष पर होता है और तीन होठों द्वारा घिरा रहता है। इनमें से एक मध्य-पृष्ठ तथा दो अवर पार्श्व दिशा में स्थित होते हैं।

7. देहभित्ति का सबसे बाहरी आवरण मोटी क्यूटिकल का बना होता है जो काइटिन की बनी होती है और लगभग सात स्तरों में विभक्त की जा सकती है। एपिडर्मिस **बहुकेन्द्रकीय** (syncytial) होती है।

8. पेशी-तन्त्र में कई विशेषताएँ पायी जाती हैं। प्रत्येक पेशी-कोशिका बहुत बड़ी होती है और दो भागों में बाँटी जा सकती है जो क्रमशः **लचीला भाग** तथा **जीवद्रव्य भाग** कहलाते हैं।

9. देहगुहा **स्यूडोसील** (pseudocoel) होती है।

10. पाचन-तन्त्र पूर्ण विकसित होता है किन्तु पाचन ग्रन्थियाँ नहीं पायी जातीं। मुख के चारों ओर होठ पाये जाते हैं।

11. उत्सर्जन तन्त्र में केवल दो **पार्श्व उत्सर्गी नालें** (excretory canals) होती हैं। शिखा कोशिकाएँ अनुपस्थित होती हैं।

12. नर तथा मादा अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं।

परजीवी अनुकूलताएँ

कृपया प्रश्न 118 देखिये।

प्रश्न 120. (*a*) **टीनिया तथा** (*b*) **एसकेरिस की औतिकी का सविस्तार वर्णन करिये तथा इन दोनों की औतिकी में भिन्नता का वर्णन करिये।**

Give a detailed description of the histology of (*a*) *Taenia* and (*b*) *Ascaris* and attempt to account for the differences that you note between the two forms.

टीनिया सोलियम की औतिकी
(Histology of Taenia Solium)

टीनिया के जनन प्रोग्लोटिड या परिपक्व खण्ड की अनुप्रस्थ काट से इसकी औतिकी का अध्ययन किया जा सकता है। इसमें निम्न रचनाएँ दृष्टिगत होती हैं :—

1. **देहभित्ति** (Body wall)—देहभित्ति मोटी तथा प्रतिरोधी होती है और इसमें निम्न स्तर होते हैं :—

(*i*) मोटी तथा प्रतिरोधी क्यूटिकल जो प्रोटीन की बनी होती है और इस पर $CaCO_3$ जमा हो जाता है। इस पर काँटे नहीं पाये जाते हैं।

(*ii*) क्यूटिकल के नीचे आधार कला (Basement membrane) होती है।

(*iii*) **अधोक्यूटिकल कोशिकाएँ** (Sub-cuticle cells) परिवर्तित एपिडर्मल कोशिकाएँ हैं जो अधोक्यूटिकल पेशियों में पायी जाती हैं। ये क्यूटिकल स्रावित करती हैं।

(*iv*) **अधोक्यूटिकल पेशियों** (Sub-cuticular muscles) का स्तर आधार-कला के ठीक नीचे स्थित होता है। इसमें बाहर की ओर वर्तुल पेशी स्तर तथा भीतर

की ओर लम्बवत् पेशी स्तर होता है।

(v) पैरनकाइमा (Parenchyma)—शरीर के भीतर का समस्त खाली स्थान पैरनकाइमा द्वारा भरा रहता है। दोनों पार्श्व सतहों को छोड़कर पृष्ठ तथा अधर सतहों पर पैरनकाइमा वर्तुल पेशी तन्तुओं द्वारा बाहरी अन्तस्त्वचिका या कॉर्टिकल
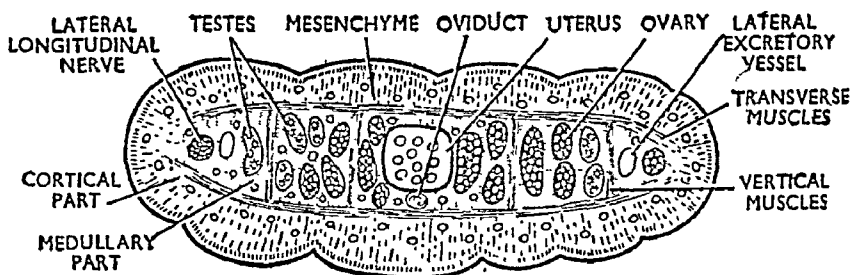
चित्र २४·१६. टीनिया के परिपक्व खण्ड की अनुप्रस्थ काट
(T.S. Proglottid of *Taenia*)

(cortical) तथा आन्तरिक अन्तस्था या मैडूलरी (medullary) भाग में बँटी रहती है। इसी प्रकार ऊर्ध्व पेशी-तन्तु (vertical muscle fibres) भी कॉर्टिकल के भीतर देखे जा सकते है।

2. पार्श्व लम्बवत् तन्त्रिकाएँ (Lateral longitudinal nerves)—शरीर में दोनों पार्श्व सतहों के साथ-साथ तन्त्रिका भी पायी जाती है।

3. पार्श्व लम्बवत् उत्सर्जन नालें (Lateral longitudinal excretory canals)—उत्सर्जन नलिकाएँ भी एक जोड़ी होती है और शरीर की पार्श्व सतहों पर तन्त्रिकाओं के समीप स्थित होती हैं।

4. गर्भाशय (Uterus)—गर्भाशय खण्ड की मध्य रेखा के साथ स्थित होता है। इसमें बहुत-से निषेचित अण्डे या वृद्धि करते हुए भ्रूण भरे होते हैं।

5. वृषण (Testes)—लगभग गोलाकार रचनाओं के रूप में बहुत-से वृषण खण्ड के मेडूलरी भाग में स्थित होते है।

6. अण्डाशय (Ovary)—अनुप्रस्थ काट में अण्डाशय के फॉलिकल्स (follicles) अण्डों से भरी अनियमित आकार की या दीर्घवृत्ताकार रचनाओं के रूप में मेडूला के भीतर दिखायी देते है।

7. अण्डवाहिनी (Oviduct)—अण्डवाहिनी गर्भाशय के नीचे स्थित मोटी दीवार वाली गोल रचना के रूप में दिखायी देती है।

एसकेरिस की औतिकी (Histology of Ascaris)

1. देहभित्ति (Body Wall)

(*i*) क्यूटिकल (Cuticle)—यह शरीर का बाहरी आवरण बनाती है। यह मोटी, कठोर तथा प्रतिरोधी होती है। इस पर पोषक के पाचक रसों का कोई प्रभाव नहीं होता। इसकी रचना अत्यन्त जटिल होती है तथा लगभग सात स्तरों की बनी होती है। इसकी बाहरी सतह बहुत चमकीली तथा झुर्रीदार होती है।

(*ii*) सिनसिशियल एपिडर्मिस (Syncytial epidermis)—क्यूटिकल की परत के नीचे एपिडर्मिस पायी जाती है जिसमें कोशिकाएँ नहीं पायी जातीं किन्तु बहुत-से केन्द्रक जीवद्रव्य में बिखरे रहते हैं।

(*iii*) **पेशी स्तर** (Muscle layer)—एपिडर्मिस के नीचे लम्बवत् पेशी स्तर (longitudinal muscle layer) पाया जाता है। इसकी पेशी-कोशिकाएँ अन्य जन्तुओं में पायी जाने वाली पेशियों से भिन्न होती हैं। प्रत्येक कोशिका दो भागों की बनी होती है। पेशीय, लचीला **तन्तुक भाग** (fibrillar part) एपिडर्मिस की ओर स्थित होता है तथा दाँतेदार, अकुञ्चनशील **जीव-द्रवीय भाग** (protoplasmic region) देहगुहा की ओर स्थित होता है और उसमें ब्लैडर की भाँति उभरा रहता है। लम्बवत् पेशी-स्तर अनुप्रस्थ काट में चार चतुर्थांशों में बँटा रहता है।

2. स्यूडोसील (Pseudocoel)—एसकेरिस में देहभित्ति तथा आहार-नाल के बीच की गुहा अर्थात् देहगुहा **स्यूडोसील** (pseudocoel) कहलाती है। इसका जनन अंगों तथा उत्सर्जन अंगों से कोई सम्बन्ध नहीं होता तथा इस पर सीलोमिक एपिथीलियम के पैराइटल तथा विसरल स्तरों के स्थान पर पेशी-स्तर तथा क्यूटिकल के स्तर पाये जाते हैं।

3. धारियाँ (Lines)—एक्टोडर्म के चार स्थानों पर मोटा होने से पेशी-स्तर चार चतुर्थांशों में बँट जाता है। ये स्थान अपनी स्थिति के अनुसार पृष्ठ, अधर तथा पार्श्व धारियाँ कहलाते हैं।

4. उत्सर्जन वाहिनियाँ (Excretory vessels)—दोनों पार्श्व धारियों के भीतर एक-एक पार्श्व उत्सर्जन वाहिनी स्थित होती है।

5. तन्त्रिका रज्जु (Nerve cord)—पृष्ठ तथा अधर धारियों में एक-एक तन्त्रिका रज्जु स्थित होती है।

6. आहार नाल (Alimentary canal)—स्यूडोसील के मध्य भाग में
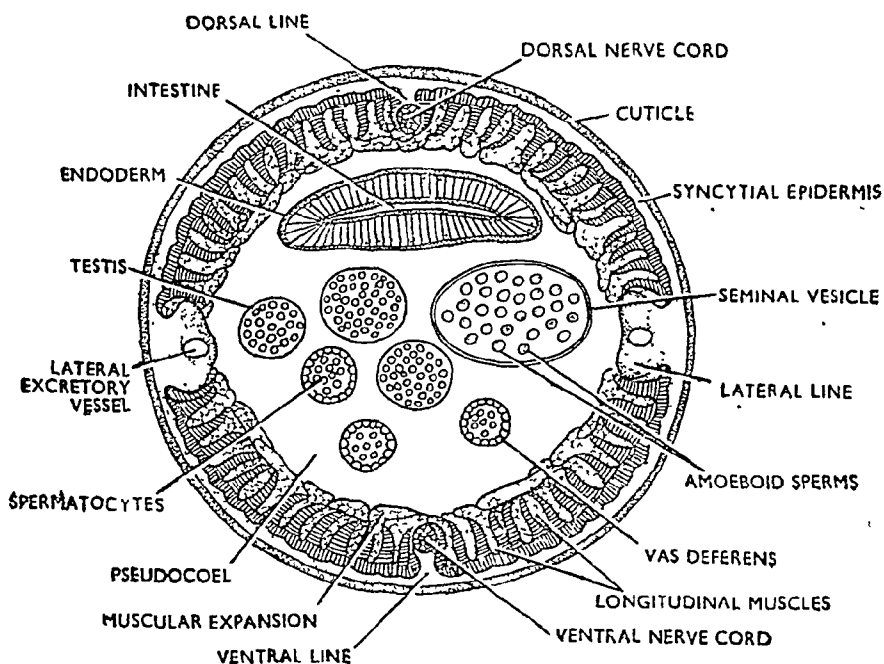
चित्र २४·१७. नर एसकेरिस की अनुप्रस्थ काट (T.S. Male *Ascaris*)

आहार-नाल स्थित होती है। यदि शरीर के अगले भाग की अनुप्रस्थ काट का अध्ययन किया जाये तो इसके मध्य में मोटी दीवार वाली ग्रसनी स्थित होती है परन्तु शरीर के मध्य भाग या पिछले भाग की अनुप्रस्थ काट में आंत्र उपस्थित होती है। ग्रसनी की गुहा त्रिअक्षीय (triradiate) होती है तथा एक्टोडर्म से आस्तारित होती है। आंत्र पतली दीवार वाली चपटी नलिका है जो एण्डोडर्म की बनी होती है और अपने दोनों ओर क्यूटिकल का आवरण स्रावित कर लेती है।

7. जनन अंग (Reproductive organs)—नर एसकेरिस में वृषण के पिण्डक गोल रचनाओं के रूप में कटे दिखायी देते हैं। प्रत्येक वृषण के मध्य में एक अक्ष (cord or rachis) होता है जिसके चारों ओर शुक्राणु कोशिकाएँ (sperm cells) पायी जाती हैं। शुक्राशय बड़े गोले के रूप में दिखायी देता है जिसमें परिपक्व शुक्राणु भरे रहते हैं।

मादा जन्तु की अनुप्रस्थ काट में अण्डाशय, अण्डवाहिनी तथा गर्भाशय दिखायी देते हैं।

टीनिया तथा एसकेरिस की औतिकी में भिन्नता
(Differences in the Histology of Taenia and Ascaris)

टीनिया (*Taenia*)	एसकेरिस (*Ascaris*)
1. देहभित्ति (Body-wall)	
(*i*) क्यूटिकल मोटी, लचीली तथा अपारदर्शी होती है। यह तीन स्तरों में बाँटी जा सकती है।	(*i*) क्यूटिकल मोटी, प्रतिरोधी तथा पारदर्शी होती है जो सात स्तरों की बनी होती है।
(*ii*) क्यूटिकल चिकना स्तर बनाती है। स्कोलेक्स को छोड़कर इसमें कहीं भी काँटे या हुक नहीं पाये जाते।	(*ii*) क्यूटिकल झुर्रीदार होती है तथा इसमें काँटों या हुकों का पूर्ण अभाव होता है।
(*iii*) एक्टोडर्म अनुपस्थित होती है किन्तु अधोक्यूटिकल कोशिकाएँ पायी जाती हैं जो अधोक्यूटिकल पेशी-स्तर में लटकी रहती हैं। ये एपिडर्मल कोशिकाएँ प्रदर्शित करती हैं।	(*iii*) एक्टोडर्म या एपिडर्मिस बहु-केन्द्रकीय अकोशिक रचना है।
(*iv*) पेशी-स्तर में वाह्य वर्तुल पेशी-स्तर तथा अन्तः लम्ववत् पेशी-स्तर होते हैं।	(*iv*) केवल एक लम्ववत् पेशी-स्तर ही पाया जाता है जो चार चतुर्थांशों में बँटा रहता है।
(*v*) वर्तुल पेशी की बनी अनुप्रस्थ तथा लम्ववत् पट्टियाँ भी पायी जाती हैं।	(*v*) अनुपस्थित होती है।
(*vi*) वर्तुल पेशी की अनुप्रस्थ पट्टियाँ पैरनकाइमा को दो भागों में बाँट देती हैं।	(*vi*) ऐसा नहीं होता।
2. देहगुहा (Body Cavity)	
(*vii*) देहगुहा अनुपस्थित होती है तथा अंगों के बीच का समस्त स्थान पैरनकाइमा से भरा रहता है।	(*vii*) देहगुहा स्यूडोसील कहलाती है।

टीनिया (*Taenia*)	एसकेरिस (*Ascaris*)
3. धारियाँ (Lines)	
(*viii*) धारियाँ अनुपस्थित होती हैं।	(*viii*) एक्टोडर्म मध्य पृष्ठ, मध्य अधर तथा पार्श्व स्थलों पर फूलकर मोटी हो जाती है और चार धारियों का निर्माण करती है।
4. उत्सर्जन वाहिनियाँ (Excretory Ducts)	
(*ix*) शरीर की दोनों पार्श्व सतहों पर एक-एक उत्सर्जन वाहिनी होती है।	(*ix*) उत्सर्जन वाहिनियाँ पार्श्व धारियों में स्थित होती हैं।
(*x*) शिखा-कोशिकाएँ उपस्थित होती हैं।	(*x*) शिखा-कोशिकाएँ उपस्थित नहीं होतीं।
5. तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System)	
(*xi*) इसमें दो पार्श्व लम्बवत् तन्त्रिका-रज्जु (two lateral longitudinal nerve cords) होती हैं जो शरीर के दोनों सिरों पर स्थित होती हैं।	(*xi*) यहाँ भी दो लम्बवत् तन्त्रिका रज्जु होते हैं किन्तु ये पृष्ठ तथा अधर धारियों में स्थित होते हैं।
6. जनन अंग (Reproductive Organs)	
(*xii*) ये जन्तु उभयलिंगी (hermaphrodite) होते हैं ; अतः अण्डाशय तथा वृषण दोनों दृष्टिगत होते हैं।	(*xii*) ये जन्तु एकलिंगी होते हैं।
7. आहार नाल (Alimentary canal)	
(*xiii*) आहार नाल अनुपस्थित होती है।	(*xiii*) पाचन-तन्त्र पूर्ण विकसित होता है।

एसकेरिस में *टीनिया* तथा *फेशियोला* की अपेक्षा अधिक रचनात्मक जटिलता पायी जाती है ; अतः यह उनकी अपेक्षा अधिक विकसित है। निम्नलिखित विशेषताओं में यह फाइलम एनिलिडा के जन्तुओं से मिलता है :—

1. बेलनाकार कृमिवत् शरीर (cylindrical vermiform body)
2. देहगुहा की उपस्थिति।
3. शिखा-कोशिकाओं की अनुपस्थिति
4. झुर्रीदार वाह्य सतह जिससे खण्डों का भ्रम होता है।

अतः यह प्लेटीहैल्मिन्थीस तथा एनिलिडा के बीच की विकसित अवस्था को प्रदर्शित करते हुए माना जाता है। *टीनिया* में आहार-नाल की अनुपस्थिति परजीवी स्वभाव के अनुरूप एक द्वितीयक अनुकूलन (secondary adaptation) है।

अध्याय 25

अन्य परजीवी
(Other Parasites)

वऊचेरेरिया बैंक्रोफ्टाई (फाइलेरिया बैंक्रोफ्टाई)
[Wucheraria bancrofti (Filaria bancrofti)]

फाइलम — निमेटीहेल्मिन्थीस (*Nemathelminthes*)
क्लास — निमेटोडा (*Nematoda*)
आर्डर — फाइलेरिओडिया (*Filariodea*)
टाइप — फाइलेरिया या वऊचेरेरिया (*Filaria or Wucheraria*)

प्रश्न 121. वउचेरेरिया बैंक्रोफ्टाई पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on *Wucheraria bancrofti*. (*Gorakhpur 1969; Calcutta 73*)

वऊचेरेरिया बैंक्रोफ्टाई के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये।
Describe the life-history of *Wucheraria bancrofti*. (*Gorakhpur 1971*)

वास (Habitat)

वऊचेरेरिया (*Wucheraria*) एक द्विपोषदक (digenetic) निमेटोड है जो मनुष्य की लसीका वाहिनियों तथा लसीका-पर्वो (nodes) में रहता है।

वितरण (Distribution)

यह भारत, वेस्ट इन्डीज, चीन, जापान, प्रशान्त महासागरीय द्वीपों (Pacific islands), मध्य एवम् पश्चिमी एशिया, मध्य एवम् पश्चिमी अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका आदि उष्ण कटिवन्धीय (tropical) तथा उपोष्ण कटिवन्धीय (sub-tropical) देशों में पाया जाता है। भारत में यह तटीय प्रदेशों व बड़ी नदियों के किनारे वाले स्थानों में भी मिलता है।

आकारिकी (Morphology)

प्रौढ़ कीड़ा लम्बा, नाल के समान तथा पारदर्शी निमेटोड है जो प्राय: क्रीम के समान सफेद रंग का होता है। मादा जन्तु प्राय: नर से बड़ा होता है जो 8–10 सेमी० लम्बा तथा 0·2 to 0·3 मिमि० मोटा होता है। नर केवल 2·5–4 सेमी० लम्बा तथा 0·1 मिमि० चौड़ा होता है। नर तथा मादा दोनों ही आकार में फिलिफार्म (filliform) होते है तथा इनके सिरे पतले होते है। नर का पुच्छीय सिरा मुड़ा हुआ होता है और इस पर असमान लम्बाई की दो कण्टिकाएँ होती हैं, किन्तु मादा में पुच्छीय सिरा एकाएक नुकीला हो जाता है। नर तथा मादा लिपटे रहते है जिन्हें कठिनता से ही अलग किया जा सकता है। मादा अण्ड-जरायुजी (ovo-viviparous) होती है और अण्डे देती है जिनमें पूर्ण-विकसित भ्रूण होते हैं। फाइलेरिया (*Filaria*) का जीवन-चक्र दो पोषकों में पूर्ण होता है। प्राथमिक पोषक मनुष्य तथा द्वितीयक पोषक क्यूलैक्स मच्छर है।

मनुष्य में जीवन-चक्र (Life-cycle in Man)

प्रौढ़ परजीवी **माइक्रोफाइलेरिआई** (microfilariae) उत्पन्न करता है जो चुस्त लारवी रचनाएँ हैं तथा ये रुधिर के बहने की तथा इसके विपरीत, दोनों दिशाओं में ही गति कर सकते हैं। प्रत्येक माइक्रोफाइलेरिया रंगहीन, पारदर्शी तथा वेलनाकार जन्तु है जिसका सिरा चौड़ा तथा पूँछ नुकीली होती है। यह 290μ तक लम्बा और 6–7μ मोटा होता है। यह हायलाइन (hyaline) के बने आवरण में बन्द रहता है जो भ्रूण के दोनों ओर निकला होता है ताकि यह दोनों ओर चल-फिर सके। विस्तृत शरीर में सिर से पुच्छ तक कण्टिकाएँ होती हैं जो मध्य अक्ष के साथ-साथ विन्यसित रहती हैं। कणिकायुक्त स्तर अनेक स्थानों पर एक तन्त्रिका वलयक, अग्र तथा पश्च V के समान विन्दुओं, कुछ जनन कोशिकाओं तथा **मेनसन** (Manson) की एककेन्द्रीय काय इत्यादि द्वारा अवरोधित (interrupted) होता है।

चित्र २५·१. वऊचेरेरिया (*Wuchereria*) का लारवा—माइक्रोफाइलेरिया

द्वितीयक पोषक में जाये बिना, माइक्रोफाइलेरिआई मनुष्य के शरीर में और अधिक वर्धन करने में असमर्थ होते हैं। स्वतन्त्र होते ही ये रुधिर के साथ प्रवाहित हो जाते हैं और रात्रि में पोषक के शरीर की सतह पर फैली रक्त-वाहिनियों (peripheral vessels) में पहुँच जाते हैं। मच्छर द्वारा न चूसे जाने पर ये 70 दिन के अन्दर मर जाते हैं।

मच्छर में जीवन-चक्र (Life-cycle in Mosquito)

क्यूलेक्स फैटिगैंस (*Culex fatigans*) नामक मच्छर के काटने पर माइक्रोफाइलेरिआई रक्त के साथ चूस लिये जाते हैं। आमाशय के अग्र भाग में एकत्रित हो कर ये हायलाइन (hyaline) आवरण को उतार (cast off) देते हैं, और आहार-नाल की दीवार को भेद कर एक या दो घण्टे में वक्ष की (thoracic) पेशियों में पहुँच जाते हैं। पेशियों के अन्दर आकार में वृद्धि करते हैं और अगले दो दिन के अन्दर पतले तथा सर्प के समान ये जीव छोटी तथा शल्कीय पुच्छयुक्त मोटी व तश्तरी के समान रचनाओं में परिवर्तित हो जाते हैं। इनकी लम्बाई 124–250μ और मोटाई 10–20μ तक होती है तथा लारवा की **प्रथम प्रावस्था** को निरूपित करते हैं। इनकी आहार-नाल अविकसित होती है। तीन से सात दिन के अन्दर लारवी तेजी से वृद्धि करके एक या दो वार त्वक्मोचन (moulting) करके 225–320μ तक लम्बे हो जाते हैं। ये **द्वितीय प्रावस्था** के लारवी हैं। 10वें या 11वें दिन कायान्तरण पूर्ण हो जाता है। पुच्छ लुप्त हो जाती है और पाचन तन्त्र, देहगुहा तथा जननांग पूर्णतया विकसित हो जाते हैं। अव ये लारवी की **तृतीय**

प्रावस्था को निरूपित करते हैं तथा आकार में 1500–2000μ लम्बे और 18–23μ मोटे होते हैं। अब ये प्रोबोसिस के आवरण (proboscis sheath) में आ जाते हैं। इनकी यह अवस्था संक्रमित प्रावस्था होती है।

मनुष्य में संक्रमण (Infection in Man)

जब संक्रमित मच्छर मनुष्य को काटता है तो तृतीय प्रावस्था के लारवी युग्म या जोड़ों (pairs) में जख्म के समीप त्वचा पर एकत्रित हो जाते हैं। त्वचा की उष्णता से आकर्षित होकर लारवी जख्म के द्वारा या फिर त्वचा को भेद कर शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। यहाँ से ये लिम्फ नालों (lymphatic channels) में पहुँच जाते हैं और प्रौढ़ में कायान्तरित होने के लिए किसी स्थान पर स्थित होकर बैठ जाते हैं। 5–18 मास के अन्दर प्रौढ़ लैंगिक रूप में परिपक्व हो जाते हैं और माइक्रोफाइलेरिआई की नयी पीढ़ियाँ उत्पन्न करना आरम्भ कर देते हैं।

रोगजन्यता एवम् रोग के लक्षण (Pathogenicity and Clinical Symptoms)

प्रौढ़ जन्तु जीवित एवम् मृतक दोनों अवस्थाओं में ही बीमारी उत्पन्न करता है। जीवित अवस्था में खुजली पैदा करता है तथा हानिकारक उपापचय पदार्थों को जमा करता है। फलस्वरूप लिम्फ वाहिनियों की एण्डोथीलियल कोशिकाएँ विभाजित होकर इनकी गुहा को बन्द कर देती हैं। इसी के कारण बुखार आता है तथा यकृत, प्लीहा, स्क्रोटम, पाँव इत्यादि सूजकर रसौली बना लेते हैं। यह बीमारी **फीलपाँव** (elephantiasis) कहलाती है।

रोगोपचार (Treatment)

प्रौढ़ परजीवी को मारने के लिए *Mel. W.* नामक आरसैनिक की बनी दवाई का प्रयोग किया जाता है किन्तु माइक्रोफइलेरिया पर **डाइ-इथाइल-कार्बेमोजाइन** (dietbylcarbamozine) प्रभावशाली है। संक्रामी लारवा के लिए पैरा-मीलेमिनाइल फिनाइलस्टिबोनेट (para-melaminyl phenylstibonate—Msb) उपयोगी है।

बचने के उपाय—बीमारी के संक्रमण से बचने के लिए मच्छरों को नष्ट करना चाहिये, उनके काटने से बचना चाहिये तथा हैटराजन (hetrazan) के प्रयोग से वाहकों को समाप्त कर देना चाहिये।

ट्राइकिनेला स्पाइरेलिस (Trichinella spiralis)

प्रश्न 122. ट्राइकिनेला स्पाइरेलिस के स्वभाव, वास-स्थान, संरचना एवम् जीवन-चक्र पर एक निबन्ध लिखिये।

Describe the habit, habitat, structure and life-history of *Trichinella spiralis.*

फाइलम	—	निमेटीहेल्मिन्थीस (*Nemathelminthes*)
क्लास	—	निमेटोडा (*Nematoda*)
आर्डर	—	ट्राइकिनेलोइडिया (*Trichinelloidea*)
टाइप	—	ट्राइकिनेला (*Trichinella*)

प्रकृति एवम् वास (Habit and Habitat)

ट्राइकिनेला स्पाइरेलिस मनुष्य, चूहे तथा सूअर इत्यादि की आंत्र की म्यूकोसा में पाया जाने वाला परजीवी है, परन्तु इसके भ्रूण ऐच्छिक पेशियों में परिकोष्ठित होते हैं। यह समस्त संसार में पाया जाता है, किन्तु यूरोप तथा अमेरिका में अधिकता से होता है।

आकारिकी (Morphology)

प्रौढ़ कृमि मनुष्य में पाया जाने वाला अत्यन्त सूक्ष्म निमेटोड है जो धागे के समान लम्बा तथा पतला होता है। नर 1·5 mm × ·04 mm तथा मादा 3 mm × ·06 mm होती है। इसमें कण्टिकाएँ तथा मैथुन आवरण अनुपस्थित होते हैं किन्तु नर में पुच्छ सिरे के दोनों ओर दो अंकुरक होते हैं।

ट्राइकिनेला की देहभित्ति में क्यूटिकल, एपिडर्मिस तथा उपएपिडर्मल पेशियों के स्तर होते है। ग्रसनी की दीवार में विशेप प्रकार की ग्रन्थिल कोशिकाएँ पायी जाती हैं। ये **स्टाइकोसाइट्स** (stichocytes) कहलाती हैं। नर में **क्लोयका** होता है जो मैथुन के समय वाहर निकाला जा सकता है। उत्सर्जन तन्त्र तथा तन्त्रिका तन्त्र पूर्ण विकसित नही होते। मादा जरायुजी (viviparous) होती है तथा लारवा को परिवहन तन्त्र में जमा कर देती है।

जीवन-चक्र (Life-cycle)

इनका जीवन-चक्र एक ही पोपक में पूर्ण हो जाता है, किन्तु एक पोषक से दूसरे पोपक में पहुँचने के लिए इन्हे मध्य पोपक की आवश्यकता होती है। अधपका सूअर का माँस खाने पर शिशु *ट्राइकिनेला* छोटी आँत में पहुँच जाते हैं और कुछ समय पश्चात् ही प्रौढ़ जन्तु में रूपान्तरित हो जाते हैं। लैंगिक रूप से परिपक्व नर एवम् मादा आंत्र के अन्दर मैथुन करते हैं। मैथुन के पश्चात् नर मर जाता है तथा मादा आंत्र की म्यूकोसा में घुस जाती है। लगभग चार दिन पश्चात् यह संक्रामी सन्तति *ट्राइकिनेला* को म्यूकोसा में अथवा लिम्फ कोशिकाओं में जमा कर देती है।
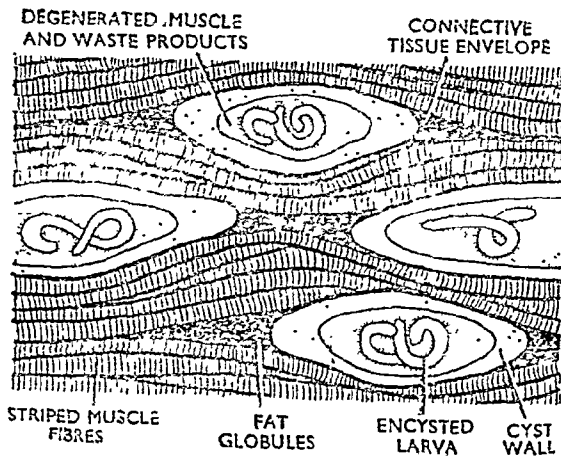
चित्र २५·२. मनुष्य की पेशियों में ट्राइकिनेला स्पाइरेलिस (*Trichinella spiralis* in the muscles of man)

प्रत्येक सन्तति *ट्राइकिनेला* लगभग 100μ लम्बा होता है। इसका अग्रिम सिरा लिम्फ कोशिकाओं में धँसने के लिए रूपान्तरित होता है। ये लिम्फ वाहिनियों में से होते हुए रक्त में पहुँच जाते है और अन्त में ऐच्छिक पेशियों या कंकालीय पेशियों में पहुँचा दिये जाते है। अधिकतर ये जीभ, डायफ्राम तथा नेत्रकोटर की ऐच्छिक पेशियों में परिकोष्ठित होते हैं। अधिकतर एक परिकोष्ठ में केवल एक ही लारवा होता है। कोष्ठ के अन्दर लारवा दो वार त्वक्मोचन (moulting) करने के पश्चात् पूर्ण

परिपक्व हो जाता है। परिकोष्ठ के अन्दर यह सर्पिल रूप से मुड़ा होता है। इस अवस्था में यह केवल कुछ दिन ही जीवित रह सकता है और कुछ समय पश्चात मर जाता है। अतः परजीवी मनुष्य के अन्दर अपना जीवन-चक्र पूर्ण करने में असमर्थ है।

सन्तति *ट्राइकिनेला* अथवा लारवा चूहे अथवा सूअर के अन्दर पहुँचकर ही पुनः वृद्धि कर सकता है। परजीवी चूहे से चूहे मे तथा सूअर से सूअर में पहुँचता है। इनके अन्दर यह पुनः जीवन-चक्र के उसी क्रम को दोहराता है जहाँ यह पेशियो मे परिकोष्ठित हो जाता है। संक्रमित सूअर का अवपका गोश्त खाने पर मनुष्य मे संक्रमण होता है।

रोगजन्यता या रोगमूलकता (Pathogenicity)

ट्राइकिनेला से ट्राइकिनियोसिस (trichiniosis) नामक वीमारी उत्पन्न होती है, जैसे कि **हृत्पेशी शोथ** (myocarditis) तथा **पेशी शोथ** (myositis)। तेज संक्रमण होने पर पेशी को लकवा मार जाता है। पोपक की मृत्यु बहुत कम एवम् केवल हृत्पेशियों के लकवा मारने पर ही होती है।

रासायनिक चिकित्सा (Chemotherapy)

ट्राइकिनिया वीमारी का अभी तक कोई इलाज नही है, किन्तु थायोवेन्डेजोल (thiabendazole) तथा कार्टिको-स्टीरोइड्स का प्रयोग काफी सफल रहा है।

प्रश्न 123. चार परजीवी हैल्मिन्थ तथा उनके द्वारा उत्पन्न रोगों के नाम लिखिये।

Give the names of four helminth parasites and the diseases caused by them. (*Gorakhpur 1969*)

कृपया प्रश्न 125 देखिये।

प्रश्न 124. नर एस्केरिस एवम् टीनिया के परिपक्व प्रोग्लोटिड की अनुप्रस्थ काटों के नामांकित चित्र बनाइये। दोनों काटों की तुलना कीजिये।

Draw fully labelled diagrams of T.S. of a male *Ascaris* and T.S. of a mature proglottid of *Taenia*. Compare the two sections.
(*Agra 1957, 60 ; Lucknow 57*)

कृपया चित्र 24·16 व 24·17 प्रश्न 120 देखिये।

प्रश्न 125. हैल्मिन्थीस के आर्थिक महत्त्व पर एक निबन्ध लिखिये।

Write an essay on the economic importance of Helminthes.
(*Agra 1966*)

हैल्मिन्थीस तथा उनसे उत्पन्न रोगों पर एक निबन्ध लिखिये।

Write a short essay on "Helminthes and diseases".
(*Kanpur 1968 ; Delhi 71 ; Jabalpur 73*)

फाइलम हैल्मिन्थीस के जन्तु परजीवी स्वभाव के कारण प्रसिद्ध हैं। ये अधिकतर पृष्ठवंशियों (vertebrates) के विभिन्न अंगो मे परजीवी जीवन व्यतीत करते हैं किन्तु कुछ पौधों के अन्दर भी रहते है तथा कुछ हैल्मिन्थीस स्वतन्त्रजीवी भी होते हैं। ये अपने स्वभाव, आकार-प्रकार तथा संख्या द्वारा पोपक को प्रभावित करते है। अधिकांश परजीवी अपने वड़े आकार के कारण पोपक के भोजन का अधिकाश भाग ग्रहण कर लेते है, जिससे पोपक को पूर्ण मात्रा में भोजन प्राप्त नही हो पाता। अधिक संख्या मे उपस्थित होने पर ये पोपक की वृद्धि को भी प्रभावित करते हैं। इनकी उपस्थिति से रक्ताल्पता (anemia), वदहजमी (diarrhoea), पेचिश (dysentery),

सरदर्द (headache) आदि अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रौढ़ जन्तुओं के अतिरिक्त इनके लारवी भी हानिकारक होते हैं।

ये एक अंग से दूसरे अंग में जाकर पोपक के ऊतकों को नष्ट करते हैं। अनेक रोगों के नाम परजीवियों के नामों के आधार पर रखे गये हैं जैसे फेशिओलिए-सिस (fascioliasis), टीनियेसिस (taeniasis), एस्केरियेसिस (ascariasis), सिस्टोसोमियेसिस (schistosomiasis), एन्काइलोस्टोमियेसिस (anchylostomiasis) आदि। अलग-अलग समूहों के जन्तुओं के आर्थिक महत्त्व का निम्न प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है :—

चपटे कीड़े या फ्लैटवार्म (Flat-worms)

1. टरबिलेरियन्स (Turbellarians)—ये अधिकतर स्वतन्त्रजीवी हैं तथा मछली एवम् मेंढकों का भोजन बनाते हैं।

2. ट्रिमेटोड्स (Trematodes)—ये मनुष्य एवम् अन्य कशेरुकी जन्तुओं में पाये जाने वाले परजीवी हैं जो अधिकतर यकृत, फेफड़ों, आंत्र, पित्तनली, रक्तवाहिनी तथा मूत्राशय इत्यादि में रहते हैं। मुख्य ट्रिमेटोड्स निम्नलिखित हैं :—

(*i*) **यकृत पर्णाभ या लिवरफ्लूक्स** (Liverflukes)—*फेशियोला हिपेटिका* भेड़ तथा *क्लोनोरकिस* मनुष्य के यकृत तथा पित्तवाहिनियों में रहने वाले लिवर-फ्लूक्स हैं। ये यकृत की विभिन्न बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं तथा इनसे उत्पन्न हुए अतिरिक्त हानिकारक पदार्थों से रक्ताल्पता, बदहजमी तथा इओसिनोफिलिया इत्यादि रोग होते हैं।

(*ii*) **रक्तपर्णाभ या ब्लडफ्लूक्स** (Bloodflukes)—*सिस्टोसोमस* (Schistosomus) मनुष्य में पाया जाने वाला रक्त पर्णाभ है। यह मिसेण्ट्रिक रक्त-वाहिनियों तथा यकृत निवाहिका उपतन्त्र की शिराओं में रहता है और **शिस्टोसोमियासिस** (schistosomiasis) नामक बीमारी उत्पन्न करता है। सरकेरिया लारवा शरीर में घुसते समय त्वचा में खुजली पैदा करता है। निवाहिका उपतन्त्र में प्रवसन (migration) के समय इसके द्वारा सरदर्द, शरीर में दर्द, इओसिनोफिलिया, बदहजमी तथा पेचिश हो जाती है। अण्डों की उपस्थिति से मूत्राशय में दर्द होता है तथा शाम के समय पोपक को बुखार हो जाता है। अन्त में मूत्राशय की संकुचन शक्ति समाप्त हो जाती है।

(*iii*) **फेशियोलोप्सिस** (Fasciolopsis)—यह मनुष्य एवम् कुत्ते की आंत्र में पाया जाता है। यह भारत तथा समीप के अन्य देशों में अधिकता से रहता है।

3. सेस्टोड्स (Cestodes)—सेस्टोड्स अधिकतर कशेरुकदण्डियों के आंत्र परजीवी हैं किन्तु इनके लारवा मांसपेशियों में रहते हैं। मुख्य सेस्टोड्स निम्नलिखित हैं :—

(*i*) *टीनिया* (*Taenia*)—*टीनिया* की अनेक जातियाँ मनुष्य तथा अन्य पालतू पशुओं की आंत्र में रहती हैं। इनकी उपस्थिति से वमन, मिचली, उदरभाग में दर्द तथा तन्त्रिका तन्त्र में गड़बड़ हो जाती है।

(*ii*) *मोनिएज़िया* (*Moniezia*)—यह भेड़, गाय-भैंस तथा अन्य जुगाली करने वाले स्तनधारियों की आंत्र में रहता है। इसकी उपस्थिति से पोपक में बदहज़मी, रक्ताल्पता तथा पाचन की अनियमितता हो जाती है।

(*iii*) *डाइफाइलोबोथ्रियम लेटम* (*Diphyllobothrium latum*)—यह मनुष्य, कुत्ते, बिल्ली तथा रीछ इत्यादि में रहने वाला अत्यन्त हानिकारक परजीवी है और

एरिथ्रोपीनिया (erythropenia), बोथ्रियोसीफेलस—रक्तालपता तथा रक्तस्राव, इत्यादि बीमारियाँ उत्पन्न करता है।

(*iv*) इकाइनोकोकस ग्रेन्युलोसस (*Echinococcus granulosus*)—यह बिल्ली, कुत्तों तथा लोमड़ी इत्यादि की बड़ी आंत्र में पाया जाने वाला सेस्टोड है जो ब्लैडर-वर्म कहलाता है। इसका द्वितीय पोषक मनुष्य है जिसके शरीर में इसका लारवा हाइडेटिड सिस्ट (hydatid cyst) बनाता है। सिस्ट की उपस्थिति से पोषक में तन्तुमय ऊतक बनता है और सूजन आ जाती है तथा हाइडेटिड द्रव से बदहजमी, वमन तथा उदर में दर्द हो जाता है।

गोल कीड़े या राउण्डवर्म (Roundworms)

राउण्डवर्म फाइलम निमेटीहेल्मिन्थीस के जन्तु हैं। ये अधिकतर स्वतन्त्रजीवी हैं किन्तु कुछ मनुष्य में परजीवी हैं एवम् कुछ पौधों में रहते हैं। मनुष्य के परजीवी गोल कीड़े निम्न हैं :—

(*i*) एस्केरिस लुम्ब्रीकोयडीस (*Ascaris lumbricoides*)—यह आंत्र का परजीवी है जो अधिकतर बच्चों में रहता है और एस्केरियासिस नामक बीमारी उत्पन्न करता है। इसकी उपस्थिति से भूख बन्द हो जाती है, अपच रहता है, बदहजमी, अपैंडिसाइटिस इत्यादि भी हो जाते हैं। लारवा फेफड़ों में पहुँचने पर उसके ऊतकों को क्षति पहुँचाता है।

(*ii*) एन्काइलोस्टोमा (*Ancylostoma*)—यह मनुष्य की आंत्र में रहने वाला अंकुश-कृमि (hook worm) है। इसके लारवा त्वचा में खुजली, रक्तस्राव तथा ब्रोंकियल न्युमोनिटिस (bronchial pneumonitis) नामक बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं किन्तु प्रौढ़ जन्तु की उपस्थिति से कब्ज, बदहजमी, रक्तालपता इत्यादि हो जाते हैं।

(*iii*) नीकेटर अमेरिकेनस (*Necator americanus*)—यह भी मनुष्य में पाया जाने वाला अंकुश-कृमि है जो अधिकतर अमेरिका में पाया जाता है।

(*iv*) एण्ट्रोबियस वर्मिक्युलेरिस (*Enterobius vermicularis*)—यह छोटी आंत्र, बड़ी आंत्र, अपैण्डिक्स तथा सीकम इत्यादि में रहता है और **पिन कृमि** (pin worm) या **सीट कृमि** (seat worm) कहलाता है। यह संसार के समस्त देशों में पाया जाता है। परिपक्व मादा कृमि गुदाद्वार के समीप खुजली पैदा करती है। कृमि की उपस्थिति के कारण भूख कम हो जाती है। अनिद्रा रोग (insomnia), हिस्टीरिया (hysteria) तथा अशान्ति, जैसे रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

(*v*) ट्राइकिनेला स्पाइरेलिस (*Trichinella spiralis*)—यह भी मनुष्य, सूअर तथा अन्य कशेरुकी जन्तुओं में पाया जाता है। इससे उत्पन्न बीमारी ट्राइकिनिएसिस (trichiniasis) कहलाती है जिसमें रक्तस्राव, पेशियों में दर्द तथा थ्रॉम्बोसिस इत्यादि हो जाता है।

(*vi*) फाइलेरिया बेंक्रोफ्टाई (*Filaria bancrofti*)—यह मनुष्य में फाइलेरिया नामक रोग उत्पन्न करता है तथा संसार के समस्त देशों में पाया जाता है। यह लिम्फ वाहिनियों तथा पेशियों में रहता है तथा मच्छर द्वारा एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचता है। परजीवी की उपस्थिति से प्रारम्भ में बुखार, सरदर्द होता है किन्तु बाद में पैर, स्क्रोटम तथा स्तन ग्रन्थियाँ इत्यादि सूज जाती हैं।

(*vii*) लोआ-लोआ (*Loa-loa*)—यह अफ्रीका में पाया जाने वाला नेत्र-कृमि (eye-worm) है जो उपत्वचीय ऊतकों में रहता है और खुजली उत्पन्न करता है।

अतः ये परजीवी कृमि मनुष्य तथा अन्य पालतू स्तनधारियों में अनेक बीमारियाँ उत्पन्न करते है किन्तु कभी भी महामारी रोग उत्पन्न नहीं करते ।

प्रश्न 126. किन्हीं चार हैल्मिन्थ प्राणियों तथा उनसे उत्पन्न रोगों के नाम बताइये ।

Give the names of four helminth parasites and the diseases caused by them. (*Gorakhpur 1967 ; Kanpur 71*)

कृपया प्रश्न 125 देखिये ।

प्रश्न 127. मनुष्य में पाये जाने वाले निमेटोड परजीवियों के नाम बताइये तथा किसी एक के जीवन-चक्र का उल्लेख करिये ।

Give a list of the nematode parasites in man and briefly describe the life-cycle of one of them. (*Madras 1968*)

कृपया प्रश्न 125 तथा 110 देखिये ।

प्रश्न 128. निम्नलिखित के सुन्दर एवम् नामांकित चित्र बनाइये (विवरण की आवश्यकता नहीं है) :—

Draw neat, labelled diagrams of the following (no description is needed) :
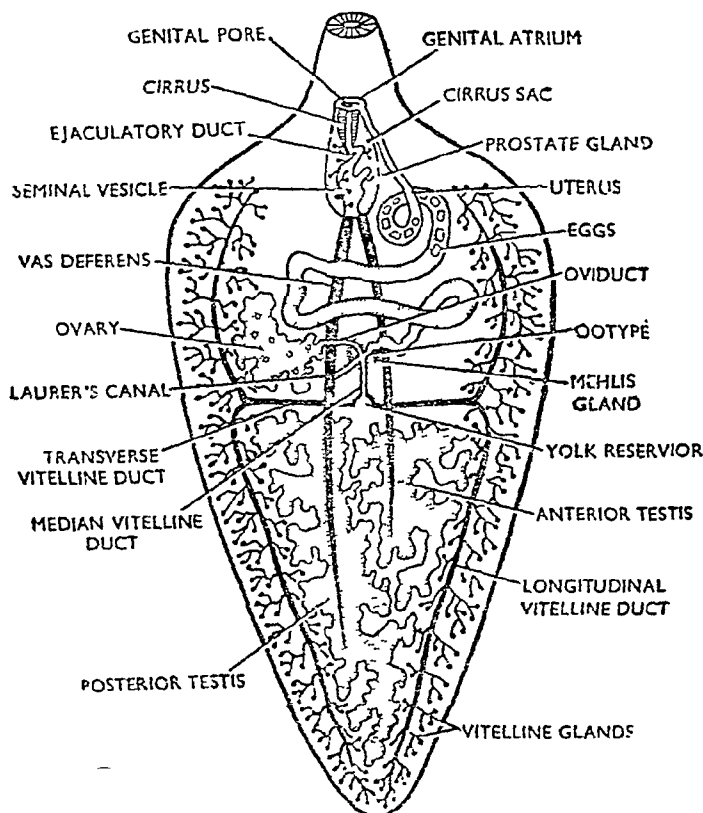
चित्र २५·३. फेशियोला के जनन-अंग (Reproductive organs of *Fasciola*)

(*i*) टीनिया का परिपक्व प्रोग्लोटिड

A mature proglottid of *Taenia*. (*Raj. 1964 : Agra 64 ; Lucknow 59, 61, 63, 65, 66 ; Gorakhpur 68 ; Jiwaji 70*)

कृपया चित्र 23·3 देखिये ।

(*ii*) टीनिया के परिपक्व प्रोग्लोटिड का अनुप्रस्थ काट

T.S. through the mature proglottid of *Taenia*.
(*Allahabad 1965 ; Lucknow 57, 71 ; Vikram 61 ; Nagpur 68*)

कृपया प्रश्न 24·16 देखिये ।

(*iii*) टेपवर्म का जीवन-इतिहास

Life-history of Tapeworm.
(*Lucknow 1962, 65 ; Agra 61, 65 ; Gorakhpur 71*)

कृपया चित्र 23·5 देखिये ।

(*iv*) टीनिया के जनन-अंग

Reproductive Organs of *Taenia*. (*Lucknow 1964 ; Vikram 69 ; Agra 64 ; Jiwaji 70 ; Gorakhpur 68*)

(*v*) मादा फेशियोला के जनन-अंग

Female reproductive organs of *Fasciola*.
(*Lucknow 1963 ; Raj. 70*)

कृपया चित्र 25·3 देखिये ।

(*vi*) नर एसकेरिस के जनन-अंग

Reproductive organs of male *Ascaris*. (*Lucknow 1966*)

कृपया चित्र 24·10 देखिये ।

DORSAL NERVE CORD
DORSAL LINE
INTESTINE
CUTICLE
SYNCYTIAL EPIDERMIS
ENDODERM
LONGITUDINAL MULCLES
LATERAL LINE
LATERAL EXCRETORY VESSEL
OVARY
UTERUS
OVIDUCT
EGG
MUSCULAR EXPANSION
PSEUDOCOEL
VENTRAL NERVE CORD
VENTRAL LINE
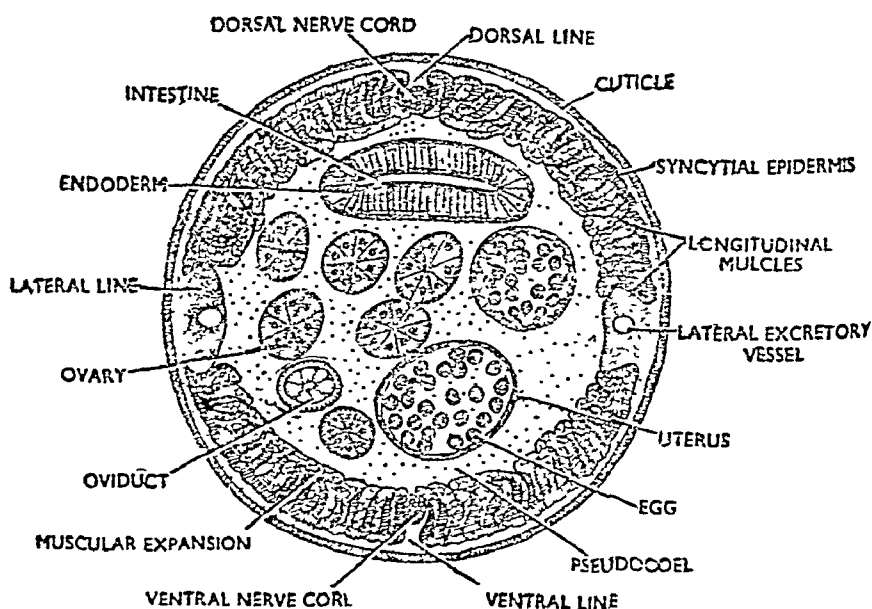
चित्र २५·४. मादा एसकेरिस के शरीर का मध्य से अनुप्रस्थ काट
(T.S. Female *Ascaris* through middle of the body)

(*vii*) मादा एसकेरिस के शरीर का मध्य भाग से अनुप्रस्थ काट
T.S. Female *Ascaris* through middle of the body.
(*Lucknow 1963, 65, 66 ; Vikram 62, 69, 72 ; Indore 72*)
(*viii*) मादा एसकेरिस के जनन-अंग
Reproductive organs of female *Ascaris*. (*Raj. 1970*)
कृपया चित्र 24·11 देखिये ।
(*ix*) प्लैनेरिया की देहभित्ति की अनुप्रस्थ काट
T.S. Body-wall of *Planaria*. (*Kanpur 1970*)
कृपया चित्र 21·2 देखिये ।
(*x*) फेशियोला की देहभित्ति की अनुप्रस्थ काट
T.S. Body-wall of *Fasciola*. (*Kanpur 1970 ; Jiwaji 72*)
कृपया चित्र 22·2 देखिये ।
(*xi*) मिरासीडियम (**Miracidium**) (*Jabalpur 1970*)
कृपया चित्र 22·7 देखिये ।
(*xii*) सरकेरिया (**Cercaria**) (*Jabalpur 1970*)
कृपया चित्र 22·12 देखिये ।

---

1. अमीबॉयड गति (Amoeboid Movement)

कृपया प्रश्न 3 देखिये।

2. अमीबियासिस (Amoebiasis) *(Ranchi 1970)*

कृपया प्रश्न 4 देखिये।

3. एपोपाइल (Apopyle) *(Gorakhpur 1960 ; Alld. 68)*

स्पंजी तन्तुओं की देहभित्ति में नलिकाओं या नालों का जाल-सा फैला रहता है। ये नलिकाएँ आवाही नाल (incurrent canals), कशाभी कक्ष (flagellated chambers) तथा अपवाही नाल (excurrent canals) हैं। ये नलिकाएँ पेरागैस्ट्रिक गुहा (paragastric cavity) से सम्बन्धित होती हैं। कशाभ नाल जिन छिद्रों द्वारा अपवाही नाल में खुलती हैं वे **एपोपाइल** (apopyle) कहलाते हैं। ल्यूकोनॉयड स्पंजों (leuconoid sponges) में ये कशाभी नाल तथा अपवाही नालों के बीच डायाफ्राम (diaphragm) में स्थित होते हैं तथा पेशी कोशिकाओं (myocytes) द्वारा घिरे रहते हैं। मायोसाइट एपोपाइल के खुलने तथा बन्द होने की क्रिया का नियन्त्रण करते हैं। यूरिपाइलस नाल-तन्त्र (eurypylous canal system) में एपोपाइल सूक्ष्म छिद्र के रूप में होता है किन्तु एफोडल प्रकार (aphodal type) में ये लम्बी सूक्ष्म नलिकाओं में बदल जाते हैं। ये **एफोडस** (aphodus) कहलाती हैं।
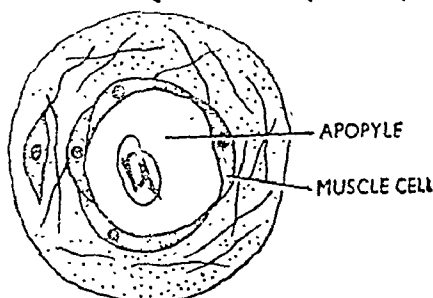
चित्र २६·१. पेशी कोशिकाओं से रक्षित एपोपाइल

4. एम्फीब्लास्टुला (Amphiblastula) *(Agra 1960, 61, 62 ; Allahabad 54, 55 ; Nagpur 70 ; Lucknow 71)*

कैल्केरियस स्पंजों का प्रारूपी लारवा एम्फीब्लास्टुला कहलाता है। यह स्टोमोब्लास्टुला अवस्था से बनता है। स्टोमोब्लास्टुला के माइक्रोमीयर्स के भीतर वाले सिरों पर कशाभ (flagella) बन जाते हैं तथा इन्वरशन के फलस्वरूप इनके कशाभी सिरे (flagellated ends) बाहर की ओर आ जाते हैं। पूर्ण वृद्धि प्राप्त एम्फीब्लास्टुला मक्रोमीयर्स तथा माइक्रोमीयर्स का बना होता है। माइक्रोमीयर्स के कशाभी सिरे बाहर की ओर होते हैं। यह स्वतन्त्रतापूर्वक तैरता है तथा पैतृक साइकन (parent sycon) के शरीर से ऑस्क्युलम द्वारा बाहर निकलता है। कुछ समय तक स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने के पश्चात् इसमें अन्तर्गमन तथा एम्बोली (invagination and emboly) की क्रिया होती है और यह गैस्ट्रुला में परिवर्तित हो

जाता है जो वृद्धि करके पूर्ण साइकन बनाता है। यह ओलिन्थस अवस्था (Olynthus stage) प्रदर्शित करता है।

चित्र २६·२. एम्फीब्लास्टुला लारवा

5. स्पंज की अमीबाभ कोशिकाएँ (Amoebocytes of Sponges)
(*Patna 1964 ; Rajasthan 72*)

कृपया प्रश्न 42 देखिये।

6. जननों का एकान्तरण (Alternation of Generations)
(*Magadh 1963 ; Lucknow 70 ; Ranchi 70*)

कृपया प्रश्न 66 देखिये।

7. स्वतःयुग्मन (Autogamy)
(*Kanpur 1972*)

कृपया प्रश्न 18 देखिये।

8. एसकेरिस की देहभित्ति तथा उत्सर्जन अंग (Body wall and excretory organs of Ascaris)
(*Agra 1958 ; Gorakhpur 59*)

कृपया प्रश्न 110 देखिये।

9. द्विविभाजन (Binary Fission)
(*Ranchi 1970*)

कृपया प्रश्न 29 देखिये।

10. पक्ष्म—संरचना एवम् कार्य (Cilia—Structure and Functions)
(*Ranchi 1970*)

कृपया प्रश्न 26 देखिये।

11. कुञ्चनशील रिक्तिका (Contractile Vacuole)
(*Agra 1959*)
(*Allahabad 57, 59 ; Patna 69 ; Gorakhpur 63 ; Lucknow 71*)

कृपया प्रश्न 3 देखिये।

12. साइटोपाइग (Cytopyge)
(*Agra 1959 ; Vikram 67*)

साइटोपाइग फाइलम प्रोटोज़ोआ के एककोशिक जन्तुओं के शरीर में पाया जाने वाला अस्थायी या स्थायी छिद्र है जिसके द्वारा अपच भोजन तथा अन्य उत्सर्जी पदार्थ शरीर के बाहर निकाले जाते हैं। अमीबा तथा युग्लीना में साइटोपाइग नहीं होता, किन्तु पैरामीशियम में यह कोशिका-मुख के पीछे स्थित होता है। अधिकतर जन्तुओं में यह कोशिका-मुख की विरुद्ध दिशा में पाया जाता है।

चित्र २६·३. पैरामीशियम में साइटोपाइग

13. साइटोस्टोम (Cytostome)
(*Agra 1959*)

प्रश्न 18 देखिये।
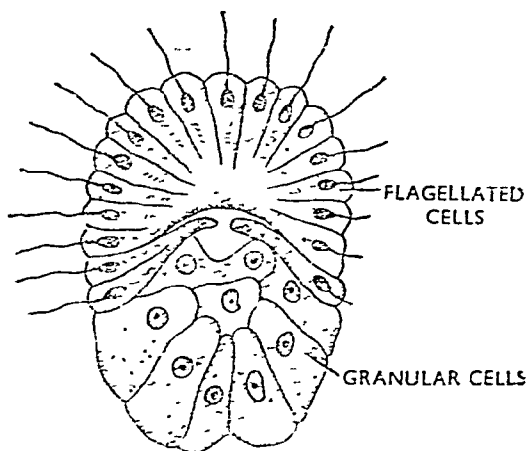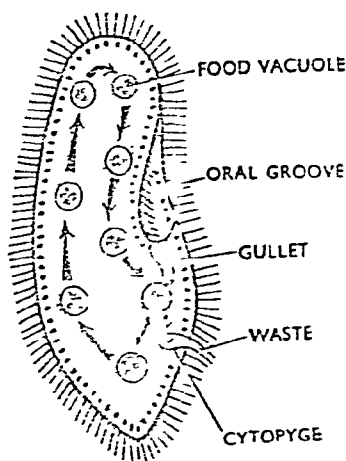
14. प्रवाल या कोरल (Coral) *(Nagpur 1961 ; Meerut 71)*

फाइलम सीलेन्ट्रेटा के कुछ जन्तुओं द्वारा स्रावित वाह्य-कंकाल **कोरल** (coral) कहलाता है। यह $CaCO_3$ का बना होता है। यद्यपि विभिन्न सीलेन्ट्रेट जन्तुओं के वाह्य-कंकाल को कोरल कहा जाता है किन्तु वास्तविक कोरल बनाने वाले जन्तु फाइलम सीलेन्ट्रेटा की क्लास **एक्टीनोजोआ** या **एन्थोजोआ** (actinozoa or anthozoa) से सम्बन्धित हैं। लाल तथा काले कोरल एलसायोनेरिया (Alcyonaria) आर्डर
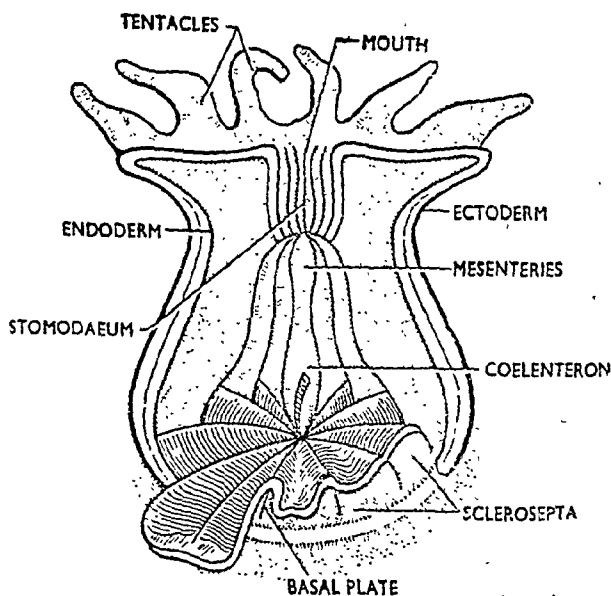
चित्र २६'४. प्रवाल जन्तुभ

के जन्तुओं से बनते हैं परन्तु वास्तविक पत्थर प्रवाल (true stony corals) **मेड्रिपोरेरिया** (Madreporaria) आर्डर के जन्तुओं से ही बनते हैं।

एक **कोरल जन्तुभ** (coral polyp) संरचना में सी-एनीमोन के समान होता है परन्तु इसमें आधार विम्ब (basal disc) नहीं होता तथा वह प्याले के समान वहिः-कंकाल में बन्द रहता है। वहिःकंकाल **कोरेलाइट** (corallite) कहलाता है। यह एक्टोडर्म कोशिकाओं के स्राव से बनता है। कोरल जन्तुभ का मुख विम्ब (oral disc) स्पर्शकों के चक्र से घिरा रहता है जिनकी संख्या 6 के गुणन में होती है। अधिकांश स्टोनी कोरल समूह बनाकर रहते हैं तथा इनके एक समूह का वाह्य-कंकाल **कोरेलियम** (corallium) कहलाता है। स्टोनी कोरल गर्म तथा कम गहरे समुद्री पानी में उगते हैं तथा इनकी अत्यधिक वृद्धि के फलस्वरूप उष्ण-कटिबन्धीय (tropical) तथा उपोष्ण-कटिबन्धीय (subtropical) प्रदेशों में प्रवाल भित्ति कोरल रीफ (coral reef) बन जाती हैं।

15. सरकेरिया (Cercaria)

(Agra 1962 ; Magadh 63 ; Jiwaji 70 ; Patna 67 Allahabad 54, 55, 61 ; Lucknow 54, 71 ; Nagpur 6

कृपया प्रश्न 91 देखिये।

16. सिस्टीसरकस लारवा (Cysticercus larva)

(*Allahabad 1950, 55 ; Lucknow 50, 51 ; Vikram 69 ; Gorakhpur 71 ; Agra 58, 63 ; Rajasthan 70*)

सिस्टीसरकस (Cysticercus)—यह *टीनिया* नामक परजीवी के जीवन-इतिहास में वह लारवा अवस्था है जो सूअर के शरीर में पायी जाती है। यह हेक्जाकेन्थ लारवा से बनता है। हेक्जाकेन्थ लारवा सूअर की आहार-नाल में पहुँचकर स्वतन्त्र हो जाता है तथा अपने हुकों द्वारा आमाशय की दीवार को फोड़कर रक्त-वाहिनियों तथा हृदय में से होता हुआ जीभ, हृदय, यकृत तथा कन्धे की पेशियों में पहुँच जाता है। यहाँ वह ब्लैडर में परिवर्तित हो जाता है। इस ब्लैडर में अन्तर्गमन (invagination) की क्रिया होती है और खोखली गाँठ बन जाती है जिस पर हुक तथा चूपक बनकर प्रोस्कोलेक्स (pro-scolex) का निर्माण करते हैं। अन्त में प्रोस्कोलेक्स उलटकर स्कोलेक्स बनाता है। अब लारवा **ब्लैडर-वर्म** (bladder-worm) या सिस्टीसरकस कहलाता है। इसके स्कोलेक्स पर चार चूपक होते हैं तथा आगे की ओर हुकों की एक पंक्ति होती है। स्कोलेक्स का अगला नुकीला भाग **रोस्टेलम** (rostel-lum) कहलाता है तथा इसके आधार पर स्थित हुक **रोस्टेलर हुक** कहलाते हैं। स्कोलेक्स एक छोटी गर्दन द्वारा ब्लैडर से जुड़ा रहता है। ब्लैडर खोखला होता है। इसकी दीवार मीसेनकाइम कोशिकाओं की पंक्ति से बनी होती है जिसके बाहर क्यूटिकल की एक पतली पर्त होती है। संक्रमित सूअर के माँस में बहुत-से सिस्टीसरकाई सफेद बिन्दुओं के रूप में दिखायी देते हैं।

चित्र २६·६. सिस्टीसरकस (Cysticercus)

यदि इस अवस्था में सूअर का कम पका हुआ माँस खा लिया जाये तो सिस्टीसरकाई मनुष्य की आन्त्र में आ जाते हैं और स्कोलेक्स द्वारा आंत्र की दीवार से चिपक जाते हैं। यह ब्लैडर फेंक देता है और गर्दन से खण्ड काट-काट कर प्रौढ़ जन्तु में परिवर्तित हो जाता है।

17. एण्डोमिक्सिस (Endomixis)

(*Agra 1963 ; Vikram 61, 67, 69 ; Indore 67*)

कृपया प्रश्न 18 देखिये।

18. एण्टअमीबा (Entamoeba) (*Gorakhpur 1963*)

कृपया प्रश्न 5 देखिये।

19. परिकोष्ठन (Encystment) (*Rajasthan 1963*)

फाइलम प्रोटोजोआ के जन्तुओं में प्रतिकूल वायुमण्डलीय परिस्थितियों से शरीर की रक्षा हेतु परिकोष्ठन प्रक्रिया पायी जाती है। अत्यधिक गर्मी, सर्दी अथवा सूखे के मौसम में जब जन्तु को अपने जीवन का भय हो जाता है तो वह अपने शरीर के चारों ओर एक मोटा रक्षात्मक खोल स्रावित कर लेता है। इस अवस्था में जन्तु निष्क्रिय रहता है। भिन्न-भिन्न जाति के जन्तुओं में खोल भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। अमीबा में यह काइटिन की बनी त्रि-स्तरीय रचना होती है तथा *यूग्लीना* में जिलेटिन की बनी होती है। अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर खोल घुल जाता है

या नष्ट हो जाता है तथा जन्तु स्वतन्त्र जीवन-यापन करने लगता है। परिकोष्ठन के निम्न लाभ है :—

(*i*) यह प्रतिकूल परिस्थितियों से जन्तु की रक्षा करता है।

(*ii*) जन्तुओं के वितरण में सहायता करता है क्योंकि जन्तुओं के कोष्ठ हवा द्वारा या जन्तुओ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाये जा सकते है।

(*iii*) वहुत-से परजीवी जन्तुओं में यह संक्रमित अवस्था (infective stage) प्रदर्शित करता है क्योंकि इन जन्तुओं के सिस्ट ही एक पोपक से दूसरे पोपक में पहुँचते है।

(*iv*) परिकोष्ठन के पश्चात् जन्तु के शरीर का विभाजन होता है तथा कुछ जन्तु केवल परिकोष्ठित अवस्था मे ही विभाजित होते है। अतः यह जाति की वृद्धि में सहायक होता है।

20. इफाइरा (Ephyra)

(*Agra 1968 ; Kerala 67 ; Karnatak 68 ; Patna 68 ; Kanpur 70 ; Raj. 72 ; Lucknow 71*)

इफाइरा ओरेलिया (*Aurelia*) का लारवा है जो साइफिस्टोमा में स्ट्रोबिलेशन क्रिया के फलस्वरूप वनता है तथा समुद्री जल में सतह पर तैरता हुआ पाया जाता है। इसका शरीर एक केन्द्रीय डिस्क मे भिन्नित होता है जिससे आठ लम्वी व द्विशाखीय भुजाएँ अरीय दिशा में निकली रहती है। इनमें चार भुजाएँ पर-रेडियल (per-radial) तथा चार भुजाएं इण्टर-रेडियल (inter-radial) होती हैं। प्रत्येक द्विशाखित भुजा का स्वतन्त्र सिरा **मार्जिनल लैपेट** (marginal lappet) वनाता है तथा इसके गड्ढे मे **टैण्टेक्युलोसिस्ट** (tentaculocyst) या **रोपेलियम** (rhopalium) होता है।

इफाइरा की डिस्क एक्स-अम्ब्रेलर सतह तथा सव-अम्ब्रेलर सतह में भिन्नित होती है। इफाइरा की सव-अम्ब्रेलर सतह पर एक छोटा-सा आमाशय, मैनुब्रियम तथा एक चौकोर मुख होता है। आमाशय से नाले निकलकर भुजाओं में जाती है।
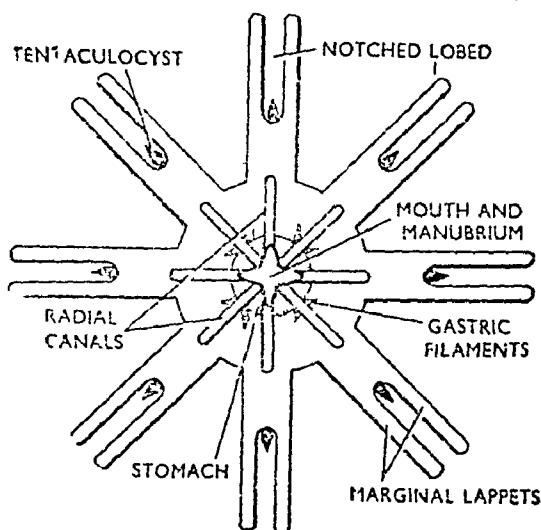
चित्र २८·६. ऑरेलिया का इफाइरा लारवा

ये पर-रेडियल तथा इण्टर-रेडियल नाले प्रदर्शित करती हैं। आमाशय में आमाशयिक उभारों के स्थान पर आमाशयिक तन्तु पाये जाते हैं।

कुछ समय तक स्वतन्त्र रूप से पानी में तैरने के पश्चात् इफाइरा पूर्ण परिपक्व ओरेलिया में रूपान्तरित हो जाता है।

21. शिखा कोशिका (Flame Cell) (*Jiwaji 1968, 70 ; Agra 64 ; Magadh 63 ; Karnatak 68 ; Patna 69 ; Kanpur 70 ; Gujrat 71 ; Punjab 71*)

कृपया प्रश्न 87 देखिये।

22. मुकुलक या जेम्यूल (Gemmule)

(*Luck. 1954, 56, 57, 61 ; Bombay 59 ; Allahabad 57, 59, 61, 64 ; Kanpur 70, 73 ; Rajasthan 70 ; Gorakhpur 63, 65, 71, 73 ; Magadh 63*)

समस्त ताजे पानी में पाये जाने वाले स्पंजों तथा कुछ समुद्री स्पंजों में पायी जाने वाली रचनाएँ या मुकुलक (gemmules) अलैंगिक जनन रचनाएँ हैं जो आन्तरिक कलिकाओं के रूप में बनती हैं। ये जन्तु की प्रतिकूल वातावरण में रक्षा करती हैं।

1. ताजे पानी वाले स्पंज के मुकुलक (Gemmules of fresh water sponge)—ताजे पानी वाले स्पंजों में भोजनयुक्त अमीबाभ कोशिकाओं (food laden amoebocytes) या आर्कियोसाइट (archeocyte) तथा ट्रोफोसाइट (trophocyte) कोशिकाओं के मीसेनकाइम में एकत्रित होने से मुकुलक बनना प्रारम्भ करते हैं। इस कोशिका समूह के चारों ओर नयी तथा साधारण अमीबाभ कोशिकाएँ एकत्रित हो जाती हैं जो भीतर की ओर सख्त, मोटी तथा बाहर की ओर पतली झिल्लियाँ बनाती हैं। इसी समय स्पंज की स्क्लेरोब्लास्ट कोशिकाएँ एम्फीडिस्क (amphidisc) कण्टिकाएँ स्रावित करती हैं जो दोनों झिल्लियों के बीच समन्वित हो जाती हैं। मुकुलक का वर्धन पूर्ण होने पर स्पंज की स्क्लेरोब्लास्ट, स्तम्भी कोशिकाएँ तथा ट्रोफोसाइट कोशिकाएँ इससे अलग हो जाती हैं तथा मुकुलक एक छोटी सख्त गेंद के रूप में रह जाता है। इसमें केवल आर्कियोसाइट (archeocytes) रह
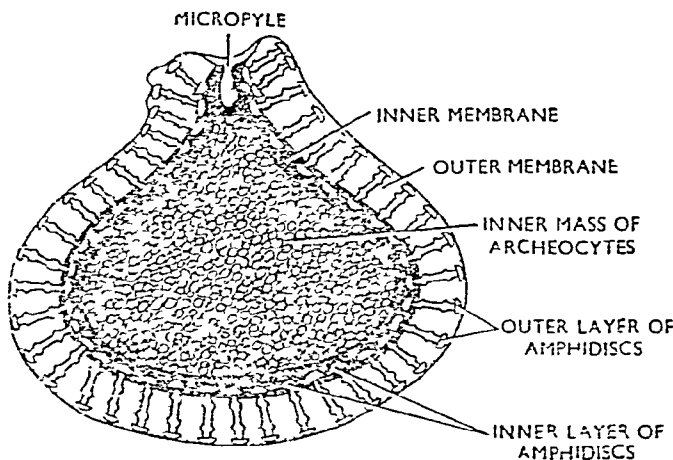
चित्र २६.७. ताजे पानी वाले स्पंज का मुकुलक

जाते है। इसके चारों ओर दो प्रतिरोधी स्तर होते है जिनके बीच मे सिलिका की बनी कण्टिकाएँ स्थित होती है। माइक्रोपाइल छिद्र द्वारा मुकुलक का कोशिका समूह बाहर से सम्बन्धित होता है। मुकुलक पतझड़ के मौसम मे ठण्ड तथा सूखे से बचने के लिए बनते है। इनके बनने के पश्चात् स्पंज नष्ट हो जाता है तथा मुकुलक पानी की सतह पर निष्क्रिय पड़े रहते हैं। अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर मुकुलक से हिस्टोब्लास्ट नामक लारवा निकलता है जो वृद्धि करके पूर्ण स्पंज बनाता है।

2. समुद्री स्पंजों के मुकुलक (Gemmules of marine sponges)—केवल डीमोस्पोञ्जिया के समुद्री स्पंजो में मुकुलकों का निर्माण होता है। यह आर्कियोसाइट के समूह के रूप मे बनता है जिसके चारों ओर चपटी कोशिकाओं की एक झिल्ली-सी होती है जो बाद में स्तम्भी तथा कशाभी (columnar and flagellated) हो जाते है। पूर्ण वृद्धि प्राप्त मुकुलक स्वतन्त्रतापूर्वक तैरता हुआ कशाभीय लारवा के रूप मे पैतृक शरीर से बाहर निकलता है जो कशाभहीन सिरे द्वारा आधार से चिपक जाता है और कशाभों को त्याग कर पूर्ण स्पंज में परिवर्तित हो जाता है। *कैल्केरिया* में मुकुलक नहीं बनते।

3. मुकुलक का महत्त्व (Utility of Gemmules)

(*i*) मुकुलकों के निर्माण द्वारा जाति की रक्षा होती है।

(*ii*) मुकुलक जाति के वितरण मे सहायता करते है।

23. जन्तु सदृश पोषण (Holozoic Nutrition) (*Nagpur 1961*)

कृपया प्रश्न 28 देखिये।

24. हाइड्रेन्थ (Hydranth) (*Ranchi 1973*)

कृपया प्रश्न देखिये।

25. हेक्जाकैन्थ (Hexacanth) (*Agra 1960, 67 ; Allahabad 57, 58 ; Gorakhpur 68*)

कृपया प्रश्न 100 देखिये।

26. आन्तरकोशिक पाचन (Intracellular Digestion)

समस्त प्रोटोजोआ, पोरीफेरा तथा कुछ सीलेन्ट्रेट मे भोजन का पाचन कोशिका के भीतर खाद्यरिक्तिका मे होता है। खाद्यरिक्तिका अस्थायी आमाशय के समान कार्य करती है। कोशिका के भीतर होने वाली पाचन-क्रिया आन्तर-कोशिका पाचन कहलाती है। भोजन का टुकड़ा पानी की एक बूंद के साथ कोशिकाद्रव्य मे बन्द होकर खाद्यरिक्तिका बनाता है। चारों ओर के कोशिकाद्रव्य से एन्जाइम खाद्यरिक्तिका में स्रावित किये जाते है जिससे पाचन क्रिया पूर्ण होती है और पचा हुआ भोजन कोशिकाद्रव्य में मिल जाता है।
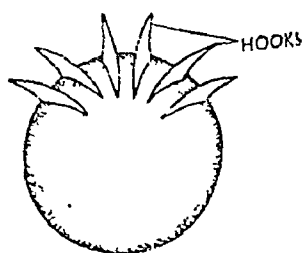
चित्र २६·८. हेक्जाकैन्थ

27. प्रोटोजोआ में चलन-अंग (Locomotory Organelles in Protozoa) (*Lucknow 1971 ; Jiwaji 71*)

कृपया प्रश्न 27 देखिये।

28. मिक्जोट्रॉफिक पोषण (Mixotrophic Nutrition) (*Lucknow 1957*)

कृपया प्रश्न 28 देखिये।

29. मेड्यूसा (Medusa) (*Ranchi 1971*)

कृपया प्रश्न 64 व 68 देखिये ।

30. मेटाजेनेसिस (Metagenesis) (*Gorakhpur 1960 ; Agra 63 ; Vikram 63, 65*)

कृपया प्रश्न 66 देखिये ।

31. मिरासीडियम (Miracidium) (*Agra 1969 ; Allahabad 59, 60 ; Gorakhpur 63, 68 ; Tribhuvan 63 ; Raj. 68, 72 ; Patna 67, 69 ; Kanpur 70 ; Ranchi 73 ; Jabalpur 73*)

कृपया प्रश्न 91 देखिये ।

32. मेसोग्लीया (Mesoglea) (*Gorakhpur 1973*)

कृपया प्रश्न 58 देखिये ।

33. दंश कोशिका (Nematocyst) (*Agra 1961, 64 ; Allahabad 57, 58 ; Rajasthan 63 ; Vikram 63, 68 ; Aligarh 58 ; Gorakhpur 68 ; Patna 68 ; Luck. 70*)

कृपया प्रश्न 58 देखिये ।

34. यूग्लीना में पोषण (Nutrition in Euglena) (*Lucknow 1971*)

कृपया प्रश्न 15 देखिये ।

35. प्रोटोजोआ में पोषण (Nutrition in Protozoa) (*Lucknow 1971*)

कृपया प्रश्न 28 देखिये ।

36. ऊकाइनीट (Ookinete) (*Lucknow 1954 ; Nagpur 67*)

कृपया प्रश्न 7 देखिये ।

37. ओन्कोस्फियर (Onchosphere) (*Kanpur 1970 ; Ranchi 71*)

कृपया प्रश्न 100 देखिये ।

38. ऑस्मोरेग्युलेशन (Osmoregulation) (*Magadh 1963*)

कृपया प्रश्न 3 देखिये ।

39. पामेला अवस्था (Palmella stage) (*Raj. 1973*)

कृपया प्रश्न 15 देखिये ।

40. पैरामाइलर काय (Paramylar bodies) (*Patna 1968*)

कृपया प्रश्न 14 देखिये ।

41. पेरनकाइमुला (Parenchymula) (*Nagpur 1957*)

कैलकेरियस स्पंजों में अण्डे से निकलने वाला लारवा **एम्फीब्लास्टुला** कहलाता है परन्तु **ल्यूकोसोलेनिया** (Luecosolenia) की कुछ जातियों का लारवा एम्फीब्लास्टुला से पूर्णतया भिन्न होता है । यह **पेरनकाइमुला** (parenchymula) कहलाता है । इन जन्तुओं में अण्डे के विभाजन के फलस्वरूप सीलोब्लास्टुला (coeloblastula) बनता है जो सँकरी कशाभीय कोशिकाओं की एक पंक्ति का बना होता है । परन्तु इसके पिछले सिरे पर एक जोड़ी अण्डाकार ग्रन्थिल कोशिकाएँ होती हैं जिन पर कशाभ नहीं होते । इन अकशाभीय कोशिकाओं से प्रौढ़ जन्तु की आर्कियोसाइट कोशिकाएँ बनती हैं । कुछ अकशाभीय कोशिकाएँ भी अपने कशाभों को त्याग कर अमीबाभ (amoeboid) हो जाती हैं तथा सीलोब्लास्टुला की गुहा में पहुँचकर उसे भर देती हैं । इस प्रकार बना ठोस लारवा पेरनकाइमुला या स्टीरोगैस्ट्रूला (stereogastrula) कहलाता है । इसमें तीन प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती

है : (*i*) कशाभीय कोशिकाएँ जो लारवा का बाह्य स्तर बनाती है, (*ii*) अमीबाभ कोशिकाओं का आन्तरिक समूह, तथा (*iii*) दो पश्च ग्रन्थि कोशिकाएँ।

पेरनकाइमुला की कोशिकाओं के विन्यास में बहुत-से क्रमिक परिवर्तन होते हैं जिसके फलस्वरूप प्रौढ़ स्पंज बनता है।

42. परजीवी प्रोटोजोआ (Parasitic Protozoa) (*Lucknow 1971* ; (*Vikram 72* ; *Indore 71*)

कृपया प्रश्न 30 देखिये।

43. प्लैन्युला (Planula) (*Agra 1959, 62* ; *Jiwaji 70*)

फाइलम सीलेन्ट्रेटा के जन्तुओं में युग्मज से ब्लास्टुला तथा गैस्ट्रला अवस्था के पश्चात् स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने वाला लारवा बनता है। यह प्लैन्युला कहलाता है। यह लगभग अण्डाकार द्विस्तरीय जन्तु है जिसका बाहरी स्तर पक्ष्मयुक्त एक्टोडर्म का बना होता है तथा इसके भीतर एक्टोडर्म कोशिकाओं का ठोस समूह होता है। इसमे मुख नही होता किन्तु इसका नुकीला भाग पश्च सिरा तथा चौड़ा भाग अग्रिम सिरा प्रदर्शित करता है। साथ ही इसकी कोशिकाओं मे क्रियात्मक भिन्नताएँ भी पायी जाती है। इसमे स्तम्भी एक्टोडर्म कोशिकाएँ, सवेदी कोशिकाएँ, निमेटोब्लास्ट तथा तन्त्रिका एवम् ग्रन्थिल कोशिकाएँ देखी जा सकती है।

चित्र २६९. प्लैन्युला लारवा
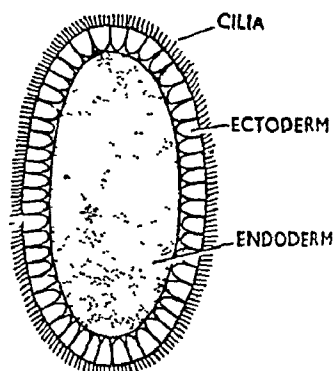
हाइड्रा का प्लैन्युला लारवा ओवेलिया के लारवा से भिन्न होता है क्योंकि इसमे पक्ष्म नही होते तथा एण्डोडर्म कोशिकाएँ ठोस गेंद के रूप मे नही होती। कुछ समय तक स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने के पश्चात् प्लैन्युला अपने पिछले सिरे द्वारा किसी आधार से चिपक जाता है तथा मुख, स्पर्शक एवम् मध्यगुहा के बनने पर हाइड्रुला में रूपान्तरित हो जाता है जो एक साधारण जीवक (polyp) के समान होता है।

44. प्रोग्लोटिड (Proglottid) (*Raj. 1973*)

कृपया प्रश्न 100 देखिये।

45. परजीविता (Parasitism) (*Agra 1959, 60, 61, 63* ; *Gorakhpur 63*)

1. परिभाषा—परजीविता एक ही या दो विभिन्न जातियों के किन्ही दो जन्तुओं के बीच ऐसा सम्बन्ध है जिसमे एक **परजीवी** दूसरे **पोषक** के शरीर पर या शरीर मे रहता है तथा उसी से अपना भोजन ग्रहण करता है एवम् उसको अनेक हानियाँ पहुँचाता है ; अतः इस सम्बन्ध मे परजीवी को लाभ होता है और पोषक को हानि।

2. विभिन्न प्रकार के परजीवी सम्बन्ध (Different types of parasitic adaptations)—

(1) Accidental—जब स्वतन्त्र-जीवी जन्तु अचानक किसी पोषक के शरीर के भीतर पहुँच जाता है तो वह कुछ समय के लिए परजीवी जीवन व्यतीत करता है।

(2) Facultative—कुछ जन्तु स्वतन्त्र तथा परजीवी दोनों प्रकार का जीवन व्यतीत कर सकते है।

(3) Obligatory—ये परजीवी स्वतन्त्र जीवन व्यतीत नहीं कर सकते ; अतः इन्हें अपने उचित पोषक की आवश्यकता होती है। Obligatory परजीविता कई प्रकार की होती है—

(i) Commensalism—यह दो परजीवियों के बीच ऐसा सम्बन्ध है जिसमें दो जन्तु साथ-साथ रहकर भोजन तथा आश्रय प्राप्त करते हैं, परन्तु एक दूसरे को कोई हानि नहीं पहुँचाते तथा एक की उपस्थिति का दूसरे को लाभ ही होता है।

(ii) Symbiosis—यह जन्तुओं के बीच कार्बनिक तथा क्रियात्मक (physiological) सम्बन्ध है जिससे पदार्थ के आदान-प्रदान के लिए जन्तु एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं अर्थात् एक जन्तु से उत्पन्न पदार्थ दूसरे जन्तु द्वारा उपयोग में लाये जाते हैं।

(iii) Ectoparasitism—परजीवी पोषक के शरीर पर रहता है।

(iv) Endoparasitism—परजीवी पोषक के शरीर के भीतर विभिन्न अंगों या तन्त्रों में निवास करता है।

3. परजीविता का प्रभाव :

(1) परजीवी पर—

(*i*) परजीवी की रचना अत्यन्त सरल होती है।

(*ii*) इनमें चलन अंगों का अभाव होता है।

(*iii*) संवेदी अंग कम विकसित होते हैं या ये पूर्णतया अनुपस्थित होते हैं।

(*iv*) आहार नाल या तो सरल होती है या होती ही नहीं।

(*v*) शरीर पर मोटा तथा रोधी क्यूटिकल का आवरण होता है।

(*vi*) पोषक से चिपकने के लिए चूषक, हुक या काँटे पाये जाते हैं।

(*vii*) जनन अंग होते हैं तथा इनमें जनन की शक्ति बहुत अधिक होती है। एक बार में ये हजारों अण्डे देते हैं।

(*viii*) जन्तु उभयलिंगी होते हैं ; कुछ में तो स्वयं-निषेचन भी होता है।

(*ix*) जीवन-इतिहास में कई लारवा अवस्थाएँ होती हैं तथा उनमें लैंगिक जनन भी पाया जाता है।

(*x*) वितरण के लिए इनके जीवन-इतिहास में द्वितीय पोषक पाया जाता है।

(2) पोषक पर—

(*i*) पोषक के ऊतक नष्ट होते हैं।

(*ii*) बीमारी उत्पन्न होती है।

(*iii*) कभी-कभी पोषक की मृत्यु भी हो जाती है।

4. परजीविता का उद्भव एवम् विकास (Origin and evolution of parasitism)—यह अनुमान लगाया जाता है कि परजीवी का उद्भव अचानक ही हुआ। प्रारम्भ में जब कोई जन्तु अचानक ही दूसरे के शरीर में पहुँच गया तो वह वहाँ पर पोषक को बिना हानि पहुँचाये रहने लगा। धीरे-धीरे परजीवी पोषक पर निर्भर रहने लगा जिससे अनेक जटिलताएँ आईं और परजीविता अधिक से अधिक जटिल होती गई।

46. एसकेरिस में परजीवी अनुकूलताएँ
(Parasitic Adaptation in Ascaris) (*Agra 1959 ; Gorakhpur 56*)

कृपया प्रश्न 118 तथा 119 देखिये।

47. बहुरूपता (Polymorphism)

(*Agra 1958, 60, 62 ; Gorakhpur 59, 68 ; Vikram 63, 67, 68 ; Allahabad 61 ; Lucknow 55, 57, 60, 71 ; Jabalpur 73 ; Jiwaji 71, 72 ; Kanpur 72*)

बहुरूपता (Polymorphism : Gr., *Poly*, many ; *morphe*, form) फाइलम सीलेन्ट्रेटा के जन्तुओं की विशेपता है जिसमें जन्तु एक से अधिक स्वरूपों में पाये जाते हैं या एक संघ के जन्तुओं के आकार तथा संरचना में विभिन्न कार्यों के अनुरूप भिन्नता आ जाती है। सीलेन्ट्रेटा में संघ के विभिन्न कार्य जैसे पोषण, जनन तथा रक्षा इत्यादि अलग-अलग जन्तु करते हैं ; अतः उनमें आकारिक भिन्नता आ ही जाती है। ये जन्तुभ (zooids) कहलाते हैं।

यद्यपि बहुरूपता फाइलम सीलेन्ट्रेटा के सभी जन्तुओं में पायी जाती है किन्तु ऑर्डर *साइफोनोफोरा* के जन्तुओं में यह चरम सीमा पर पहुँच गयी है। ऑर्डर हाइड्रोइडिया (Hydroidea) के जन्तु *Obelia* में तीन प्रकार के जीवक (zooids) पाये जाते हैं।

(*i*) पॉलिप (Polyps)—ये पोषक जीवक हैं जिनका कार्य संघ को भोजन पहुँचाना है।

(*ii*) ब्लास्टोस्टाइल (Blastostyles)—ये जनन जीवक हैं जो अलैंगिक विधि द्वारा मेड्यूसी उत्पन्न करते हैं।

(*iii*) मेड्यूसी (Medusae)—ये लैंगिक जीवक हैं जो ब्लास्टोस्टाइल से बनते हैं तथा इन पर जनद पाये जाते हैं। ये लैंगिक जनन से सम्बन्धित होते हैं और नये संघों के निर्माण में सहायता करते हैं।

फाइसेलिया में बहुरूपता और भी अधिक जटिल होती है जिसमें पॉलिपॉयड तथा मेड्युसॉयड प्रारूप पुनः परिवर्तित हो जाते हैं। पॉलिपॉयड प्रावस्था तीन प्रारूपों में पायी जाती है :—

(*i*) गैस्ट्रोजॉयड या पोषक जीवक (*Gastrozooid or nutritive zooid*)

(*ii*) डैक्टाइलोजॉइड या रक्षात्मक जीवक (*Dactylozooid or protective zooid*)

(*iii*) गोनोजॉइड या जनन जीवक (*Gonozooid or reproductive zooid*)

मेड्युसॉयड जीवक न्यूमेटोफोर में परिवर्तित हो जाते हैं जो संघ को तैरने में सहायता करता है।

48. स्युडोनेवेसिला (Pesudonavicella) (*Patna 1969 ; Bihar 73*)

कृपया प्रश्न 116 देखिये।

49. रेडिया (Redia) (*Rajasthan 1971 ; Bhagalpur 63 ; Lucknow 70 ; Jiwaji 72 ; Gorakhpur 73*)

कृपया प्रश्न 91 देखिये।

50. सिनगैमी (Syngamy) (*Gorakhpur 1960*)

कृपया प्रश्न 29 देखिये।

51. खण्ड विभाजन या शाइजोगोनी (Schizogony)

(*Jiwaji 1968, 70 ; Allahabad 59, 60 ; Rajasthan 70, 72*)

कृपया प्रश्न 7 देखिये।

52. ओरेलिया के संवेदी अंग (Sense Organs of Aurelia) (*Poona 1964*)

कृपया प्रश्न 74 देखिये।

53. स्ट्रोबाइलेशन (Strobilation)

(*Magadh 1963*)

स्ट्रोबाइलेशन अनुप्रस्थ खण्डन की क्रिया है जो *औरेलिया* के साइफिस्टोमा लारवा (scyphistoma larva) में पतझड़ तथा शरद ऋतु में होती है। साइफिस्टोमा लारवा के शरीर पर बहुत-सी अनुप्रस्थ या क्षैतिज खाइयाँ बन जाती हैं जो धीरे-धीरे गहरी होती जाती हैं। फलस्वरूप ऐसा प्रतीत होता है जैसे बहुत-सी प्लेटें एक के ऊपर एक उल्टी करके रखी गयी हों। यह साइफिस्टोमा की **स्ट्रोबाइला** (strobila) अवस्था है तथा इसका प्रत्येक खण्ड **इफाइरा लारवा** (ephyra larva) कहलाता है। समस्त इफाइरा लारवा एक-दूसरे से पेशीयुक्त ऊतक द्वारा जुड़े रहते हैं। अधिक वृद्धि प्राप्त करने पर इफाइरा स्ट्रोबाइला से अलग होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

TENTACLES
MOUTH
SUBUMBRELLA
FIRST EPHYRA BUD
SECOND EPHYRA BUD
PERRADIAL TENTACULOCYST
INTERRADIAL TENTACULOCYST
POSITION OF SUBUMBRELLA PITS
STALK
ADHESIVE DISC
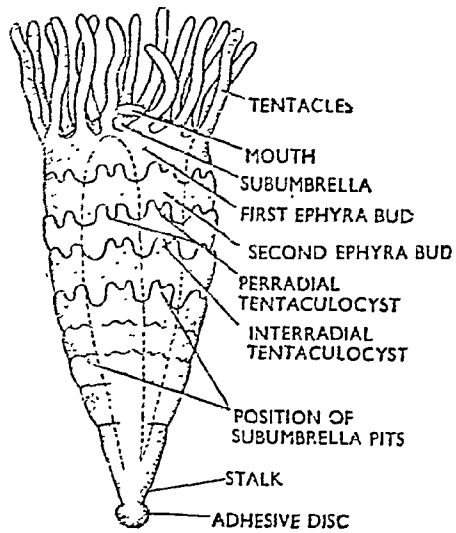
चित्र २६·१०. औरेलिया के साइफिस्टोमा लारवा में स्ट्रोबाइलेशन
(Strobilation in scyphistoma larva of *Aurelia*)

54. सहजीविता (Strobilation) (*Agra 1969, 70*)

सहजीविता दो विभिन्न जातियों के दो जन्तुओं के बीच का वह सम्बन्ध है जिसमें दोनों जन्तु आपस में एक-दूसरे पर कुछ बातों में निर्भर रहते हैं। इनमें कुछ पदार्थों का आपस में आदान-प्रदान होता है। एक जन्तु द्वारा उत्पन्न पदार्थ दूसरे द्वारा ग्रहण किये जाते हैं; अतः यह सम्बन्ध दोनों जन्तुओं के लिए लाभप्रद है। सहजीविता का एक अच्छा उदाहरण हरे हाइड्रा—*हाइड्रा विरिडिस* (*Hydra viridis*) तथा जूक्लोरेली (zoochlorellae) के बीच सम्बन्ध है। जूक्लोरेली हाइड्रा की एण्डोडर्म कोशिका में रहता है। हाइड्रा द्वारा छोड़ी गयी CO_2 तथा अमीनो लवणों द्वारा यह स्टार्च व प्रोटीन बनाता है तथा इस क्रिया में O_2 उत्पन्न होती है। यह O_2 हाइड्रा द्वारा श्वसन के उपयोग में आती है तथा कुछ स्टार्च व प्रोटीन भी हाइड्रा को प्राप्त हो जाते हैं।

55. कण्टिकाएँ (Spicules) (*Patna 1967*)

कृपया प्रश्न 53 देखिये।

56. शाइजोन्ट (Schizont) (*Punjab 1971*)

कृपया प्रश्न 7 देखिये।

57. टीनिया का स्कोलेक्स (Scolex of Taenia) (*Jiwaji 1971*)

कृपया प्रश्न 100 देखिये।

58. त्रिअक्षीय कण्टिकाएँ (Triaxon spicules) (*Patna 1967*)

कृपया प्रश्न 53 देखिये।

59. ट्रिपेनोसोम (Trypanosome) कृपया प्रश्न 15 देखिये।

60. टेण्टेक्यूलोसिस्ट (Tentaculocyst) (*Madras 1963 ; Magadh 65 ; Kanpur 69*)

कृपया प्रश्न 73 देखिये।

उच्च नॉनकॉर्डेट्स
(HIGHER NONCHORDATES)

अध्याय 1

फाइलम ऐनेलिडा
(Phylum Annelida)
(L., *annulus*, ring ; *eidos*, form)

प्रश्न 1. फाइलम ऐनेलिडा के मुख्य लक्षण बताइये तथा इसकी विभिन्न क्लासों के विशिष्ट गुणों का वर्णन कीजिये। प्रत्येक क्लास के उचित उदाहरण भी दीजिये।

Give the chief characteristics of the phylum Annelida and mention the distinctive features of its different classes. Give examples of each class. *(Agra 1962, 67 ; Gorakhpur 61 ; Lucknow 70 ; Meerut 71 ; Ranchi 71 ; Gujrat 71 ; Calcutta 73)*

ऐनेलिडा कोमल शरीर वाले, लम्बे, द्विपार्श्व सममित तथा मैटामेरिकली सेग्मेण्टेड (metamerically segmented), सगुहीय (coelomate) जन्तु हैं जिनके शरीर पर क्यूटिकल का पतला आवरण होता है तथा जिनकी देहभित्ति डरमो-मस्क्युलर (dermo-muscular) होती है। **लिनियस** (Linnaeus) द्वारा समस्त कोमल शरीर वाले कीड़े एक साथ वरमीस (Vermes) नामक फाइलम में रखे गये थे, परन्तु **लेमार्क** (Lamarck) ने इन विखण्डित (segmented) जन्तुओं को एक स्वतन्त्र फाइलम **ऐनेलिडा** (Annelida) में अलग किया।

फाइलम ऐनेलिडा की सामान्य विशेषताएँ
(General Characters of Phylum Annelida)

1. ये जन्तु **त्रिस्तरीय** (triploblastic) तथा **द्विपार्श्व सममित** (bilaterally symmetrical) होते हैं।

2. शरीर कोमल, लम्बा, कृमिवत् (vermiform) तथा मैटामेरिकली सेग्मेण्टेड (metamerically segmented) होता है। शरीर के खण्ड बाहर की ओर खाइयों (grooves) द्वारा तथा भीतर की ओर सेप्टा (septa) द्वारा अंकित होते हैं।

3. शरीर के बाहर पतली **क्यूटिकल** का आवरण होता है। यह मोटी होकर काइटिन का बाह्य-कंकाल (chitinous exoskeleton) नहीं बनाती।

4. देहभित्ति *dermo-muscular* होती है जिसमें बाहरी **वर्तुल पेशी-स्तर** तथा आन्तरिक **लम्बवत् पेशी-स्तर** होता है।

5. सिर शेष शरीर से अलग स्पष्ट नहीं होता। जोड़ों में पाये जाने वाले पार्श्व उपांग यदि उपस्थित होते है तो खण्डयुक्त (segmented) नहीं होते।

6. देहगुहा (Body cavity) वास्तविक सीलोम (true coelom) या पर्यान्त-गुहा (perivisceral coelom) होती है जो मीसोडर्म की दो पर्तों के बीच स्थित होती है।

7. **चलन अंग** (Locomotory organs) प्रत्येक खण्ड में काइटिन के बने

शूकों (bristles) या सीटी (setae) के रूप में पाये जाते हैं। सीटी या तो देहभित्ति में धँसकर वलय बनाते हे अथवा त्वचा के विशेष थैले के समान उभारों पर स्थित होते हे। ये उभार पार्श्वपाद (parapodia) कहलाते है।

8. आहार-नाल (Alimentary canal) एक सीधी नलिका होती है। यह शरीर के अग्रिम सिरे पर मुख तथा पश्च सिरे पर गुदाद्वार द्वारा बाहर खुलती है।

9. श्वसन (Respiration) क्लोमों (gills) या शरीर की त्वचा द्वारा होता है।

10. रक्त परिवहन तन्त्र (Blood vascular system) मे बन्द वाहिनियाँ होती हैं जिसमे से रक्त बहता हुआ शरीर के विभिन्न अगो को पहुंचता है। रक्त लाल रंग का होता है।

11. तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous system) में पृष्ठ तल पर स्थित एक जोड़ी सेरिब्रल या सुपराफैरेञ्जियल गैंगलिया तथा अधर तल पर स्थित एक सबफैरेञ्जियल गैंगलिया होते हे। इनको जोडते हुए सरकमफैरेञ्जियल वलय होता है तथा दो भागो की बनी एक अधर तन्त्रिका रज्जु होती है जो प्रत्येक खण्ड मे फूलकर गैंगलिया बनाती है।

12. उत्सर्जी-तन्त्र (Excretory system) मे प्रत्येक खण्ड मे स्थित कुण्डलित नलिकाएँ होती है जो नेफ्रीडिया (nephridia) या सीलोमोडक्ट (coelomoducts) कहलाती हैं। नेफ्रीडिया या तो सीलोम मे नेफ्रोस्टोम (nephrostome) द्वारा खुलते हैं अथवा बन्द रहते है।

13. जनन अग सीलोमिक एपिथीलियम से विकसित होते है।

14. जिन जन्तुओं के वर्धन मे लारवा अवस्था होती है वे एकलिंगी होते हैं किन्तु सीधे वर्धन (direct development) वाले जन्तु उभयलिंगी होते है।

15. ये अधिकतर जलीय जन्तु है जो समुद्री पानी मे या ताजे पानी मे पाये जाते है। इनमे से कुछ पृथ्वी पर बिल बनाकर रहने वाले होते है।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम ऐनेलिडा को चार क्लासो मे विभक्त किया गया है जो निम्न है :—

1. पोलीकीटा (Polychaeta)
2. ओलाइगोकीटा (Oligochaeta)
3. हिरूडिनिया (Hirudinea)
4. आरकीऐनेलिडा (Archiannelida)

इसके अतिरिक्त इसके साथ चार अन्य विभाजित समूहों—इकायुरोइडिया (Echiuroidea), साइपनक्यूलोइडिया (Sipunculoidea), प्रियाप्युलोइडिया (Priapuloidea) तथा माइजोस्टोमेरिया (Myzostomaria) को भी रखा गया है जिनमे फाइलम ऐनेलिडा के गुण पाये जाते हैं।

क्लास 1. पोलीकीटा (Polychaeta)

(Gr., *Poly*, many ; *chaete*, setae)

(1) ये पूर्णतया समुद्री तथा मासाहारी जन्तु हैं।

(2) इनका शरीर लम्बा होता है और बहुत-से खण्डो का बना होता है। इनका अगला सिरा शीर्ष बनाता है जिस पर नेत्र, स्पर्शक (tentacles) तथा रोम गुच्छ (cirri) इत्यादि पाये जाते हैं।

(3) प्रत्येक खण्ड में त्वचा के एक जोड़ी पार्श्व उभार होते हैं जो **पार्श्वपाद** या **पैरापोडिया** कहलाते हैं। इन पर सीटी के समूह होते हैं।

(4) **क्लाइटेलम** नहीं पाया जाता।

(5) नर तथा मादा जनन अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं। जनद (gonads) अस्थायी होते हैं तथा प्रत्येक खण्ड में स्थित होते हैं। वर्धन में **ट्रोकोफोर लारवा** (trochophore larva) अवस्था होती है।

उदाहरण—नेरीस (*Nereis*), साइलिस (*Syllis*). एफ्रोडाइट (*Aphrodite*), कीटोप्टेरस (*Chaetopterus*), अरेनिकोला (*Arenicola*)।

क्लास 2. ओलाइगोकीटा (Oligochaeta)

(L., *oligos*, few ; *chaete*, *setae*)

(1) ताजे पानी या स्थल पर रहने वाले जन्तु हैं।

(2) शीर्ष शेष शरीर से अलग नहीं किया जा सकता तथा उपांग भी नहीं पाये जाते।

(3) पार्श्वपाद (parapodia) तथा रोमगुच्छ अनुपस्थित होते हैं तथा सीटी देहभित्ति में धँसे रहते हैं। ये प्रत्येक खण्ड में दो वलय बनाते हैं अथवा अनियमित रूप से लगे रहते हैं।

(4) **क्लाइटेलम** उपस्थित होता है।

(5) ये उभयलिंगी जन्तु हैं। इनमें जनद स्थायी तथा निश्चित स्थान पर पाये जाते हैं, प्रत्येक खण्ड में नहीं। वर्धन सीधा अर्थात् बिना लारवा अवस्था के होता है।

उदाहरण—एलोसोमा (*Aelosoma*), नेयास (*Nais*), फेरीटिमा (*Pheretima*) तथा यूटाइफियस (*Eutyphaeus*)।

क्लास 3. हिरूडिनिया (Hirudinea)

(L., *Hirudo*, a leech)

(1) ये अधिकतर जलीय जन्तु हैं जो या तो खारे पानी में अथवा स्वच्छ जल में रहते हैं। परन्तु कुछ जन्तु स्थलजीवी होते हैं।

(2) शरीर चपटा होता है और खण्डों की संख्या निश्चित होती है। प्रत्येक खण्ड वाह्य धारियों (external furrows) द्वारा पुनः एन्नुलाई (annuli) में विभाजित रहता है।

(3) पार्श्वपाद, सीटी तथा स्पर्शक अनुपस्थित होते हैं।

(4) इनके शरीर के पिछले सिरे पर बहुधा एक बड़ा **पश्च चूषक** (posterior sucker) होता है जो आधार से चिपकने तथा चलन में सहायता करता है। शरीर के अगले सिरे पर एक छोटा आशोषक अग्रिम चूषक (anterior sucker) होता है।

(5) सीलोम रिक्तिकायुक्त पैरनकाइमा (vacuolated parenchyma), बोट्रीऑइडल ऊतक (botryoidal tissue) तथा पेशियों से भरी होती है।

(6) रक्त परिवहन-तन्त्र **हीमोसीलोमिक प्रकार** (haemocoelomic type) का होता है। वास्तविक रक्तवाहिनियाँ नहीं पायी जातीं।

(7) ये उभयलिंगी जन्तु हैं। इनमें आन्तरिक निषेचन होता है तथा वर्धन सरल एवम् सीधा होता है।

उदाहरण—हिरूडो (*Hirudo*), हिरूडिनेरिया (*Hirudinaria*), पोण्टोब्डेला (*Pontobdella*), एकेन्थोब्डेला (*Acanthobdella*) तथा नीफेलीस (*Nepheles*) आदि।

क्लास 4. आरकिएनिलिडा (Archiannelida)
(G., *archi*, first)

(1) इनका शरीर सरल, लम्बा, कृमिवत् तथा धागे के समान होता है।

(2) सीटी, पार्श्वपाद (parapodia), रोमगुच्छ (cirri) तथा क्लोम (gills) अनुपस्थित होते हैं।

(3) शरीर का वाह्य खण्डीभवन (external segmentation) अस्पष्ट होता है, परन्तु भीतर से खण्ड सेप्टा द्वारा अलग रहते हैं।

(4) ये पृथलिंगी (dioecious) जन्तु हैं। जनद अस्थायी होते हैं और केवल जननकाल में ही बनते हैं।

(5) वर्धन में लारवा अवस्था पायी जाती है तथा लारवा **ट्रोकोफोर** (trochophore) होता है।

उदाहरण—पोलीगोर्डियस (*Polygordius*), डाइनोफिलस (*Dinophilus*) तथा प्रोटोड्रिलस (*Protodrilus*) आदि।

क्लास 5. इकाइयुरोइडिया (Echiuroidea)

(1) इनका शरीर खण्डविहीन (unsegmented), अण्डाकार या बेलनाकार होता है।

(2) इसमें पार्श्वपाद तथा सीटी नहीं पाये जाते परन्तु सैकोसोमा (*Saccosoma*) में एक जोड़ी अवर सीटी पाये जाते हैं।

(3) **प्रोबोसिस** (proboscis) को बाहर नहीं निकाला जा सकता।

(4) सीलोम एक चौड़ी अविभाजित गुहा (undivided space) होती है।

(5) पृथलिंगी (dioecious) जन्तु हैं। इनके वर्धन काल में **ट्रोकोफोर लारवा** (trochophore larva) पाया जाता है।

उदाहरण—इकाइयुरस (*Echiurus*), बोनेलिया (*Bonellia*) तथा साकोसोमा (*Saccosoma*) आदि।

क्लास 6. साइपनक्युलोइडिया (Sipunculoidea)

(1) खण्डविहीन समुद्री जीव हैं जो बिल (burrow) बनाकर रहते हैं।

(2) **पार्श्वपाद** (parapodia) तथा **सीटी** अनुपस्थित होते हैं।

(3) **प्रोबोसिस** (proboscis) बाहर निकाली जा सकती है।

(4) सीलोम बहुत बड़ी होती है।

(5) **पृथलिंगी** (dioecious) जन्तु हैं। इनका लारवा परिवर्तित ट्रोकोफोर होता ।

उदाहरण—साइपनक्युलस (*Sipunculus*) तथा फेसियोलोसोमा (*Phaseolosoma*) आदि।

क्लास 7. प्रियाप्युलोइडिया (Priapuloidea)

(1) समुद्रजीवी बेलनाकार जन्तु हैं जो मिट्टी या रेत में बिल बनाकर रहते हैं।

(2) इनका शरीर बेलनाकार होता है और ऊपरी सतह खण्डों में बंटी रहती है।

(3) **प्रोबोसिस** पूर्ण विकसित तथा अत्यधिक बहि:सारी (highly protrusible) होता है । इस पर काँटे लगे होते है ।

(4) देहगुहा का उद्भव अनिश्चित (doubtful origin) है ।

(5) नर तथा मादा **जनन-अंग** अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं तथा वर्धन क्रिया के विषय में ज्ञान नहीं है ।

उदाहरण—प्रियाप्युलस (*Priapulus*) ।

क्लास 8. माइजोस्टोमेरिया (Myzostomaria)

(1) शरीर चकती के आकार का (disc-shaped) तथा खण्डविहीन होता है ।

(2) यह इकाइनोडर्मेटा के जन्तुओं पर पाया जाने वाला परजीवी है ।

(3) इसमें पार्श्वपाद, हुक तथा रोमगुच्छ (cirri) नहीं होते हैं ।

(4) पाँच जोड़ी चूषक होते हैं ।

(5) परिवहन तन्त्र, श्वसन तन्त्र एवम् विशेष संवेदी अंग नहीं पाये जाते ।

(6) उभयलिंगी जन्तु है जिसके वर्धन में **ट्रोकोफोर लारवा (trochophore larva)** होता है ।

उदाहरण—माइजोस्टोमा (*Myzostoma*) ।

प्रश्न 2. निम्नलिखित प्राणियों को वर्गीकरण के क्रम में रखिये तथा प्रत्येक के विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख करिये ।

Assign the following animals to their systematic position giving their distinguishing features.

1. एफ्रोडाइट (Aphrodite)

(सी-माउस : Sea-mouse) (*Agra 1971*)

फाइलम—	ऐनेलिडा (*Annelida*)
क्लास —	पोलीकीटा (*Polychaeta*)
आर्डर —	एरेन्शिया (*Errantia*)
टाइप —	एफ्रोडाइट (*Aphrodite*)

चित्र १·१. एफ्रोडाइट (*Aphrodite*)

एफ्रोडाइट, जिसे सामान्य भाषा में **सी-माउस** कहते है, एक समुद्री प्राणी है जो समुद्र के तल पर कीचड़ के अन्दर पाया जाता है । इसका शरीर लगभग 12 cm. लम्बा और अण्डाकार तथा पृष्ठ-अधर से चपटा होता है । शीर्ष पर एक छोटा माध्यिक **स्पर्शक** तथा दो बड़े पार्श्व पाल्प होते है । पैरापोडिया **नोटोपोडिया** (notopodia) तथा **न्यूरोपोडिया** (neuropodia) में भिन्नित होते हैं । नोटोपोडिया में तीन प्रकार के सीटी होते हैं : (*i*) कोमल, सूत्राकार व लम्बे सीटी जो शरीर के ऊपर फैल्ट के समान आवरण बनाते हैं, (*ii*) सख्त व भूरे रंग के सीटी या रक्षात्मक सीटी, तथा (*iii*) बहुवर्णभासी शूकिकाएँ । न्यूरोपोडिया के सीटी कोमल व रोम के समान होते हैं । पैरापोडिया के पृष्ठ

रोमगुच्छ (dorsal cirri) पट्टी के समान इलाइट्रा (elytra) में परिवर्तित होते हैं। ये देहभित्ति पर फैल्ट के समान इलाइट्रा मे परिवर्तित होते है तथा श्वसन में सहायता करते हैं।

एफ्रोडाइट बहुवर्णता (iridescence) प्रदर्शित करता है तथा गति करते समय इसका रंग भूरे से सुनहरा हो जाता है। छेड़ने पर यह अपने चारों ओर लिपटकर भूरे व सख्त सीटी को खड़ा कर लेता है और एक छोटे porcupine के समान प्रतीत होता है।

2. एरेनिकोला (Arenicola)

(लग-वर्म : Lug-worm)

फाइलम— एनिलिडा (*Annelida*)
क्लास — पोलीकीटा (*Polychaeta*)
ऑर्डर — सीडेन्टेरिया (*Sedentaria*)
टाइप — एरेनिकोला (*Arenicola*)

एरेनिकोला समुद्र के रेत में U के आकार के बिलों मे घुसकर रहता है। इसका शरीर लम्बा, कृमिवत् तथा बहुखण्डीय होता है। यह तीन भागों मे बाँटा जा सकता है। शरीर के अगले भाग में **प्रोस्टोमियम** (prostomium), **पेरिस्टोमियम** (peristomium) तथा सात अन्य खण्ड होते है। इसके पिछले छः खण्डों में सीटी होते है जो विशेष थैलेनुमा कोपों मे बन्द रहते है। शरीर का मध्य भाग 12 या 13 खण्डों का बना होता है तथा प्रत्येक खण्ड में क्लोम तथा सीटी पाये जाते है। शरीर का पिछला भाग अपेक्षाकृत कम चौडा होता है तथा इस पर क्लोम एवम् सीटी दोनों ही अनुपस्थित होते है।

यह अधिकतर मछलियाँ पकड़ने के लिए काम में लाया जाता है।

3. कीटोप्टेरस (Chaetopterus)

(*Agra 1956, 65, 71 ; Lucknow 53, 56 ; Gorakhpur 69, 71 ; Meerut 70, 72*)

फाइलम— ऐनेलिडा (*Annelida*)
क्लास — पोलीकीटा (*Polychaeta*)
आर्डर — सीडेन्टेरिया (*Sedentaria*)
टाइप — कीटोप्टेरस (*Chaetopterus*)

चित्र १२. एरेनिकोला (*Arenicola*)

कीटोप्टेरस (*Chaetopterus*) अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप से रूपान्तरित नलिका में रहने वाला स्थिर (sedentary) जन्तु है जो समुद्री रेत या कीचड में 'U' के आकार की पार्चमेण्ट की बनी नली मे रहता है। नली दोनों सिरो से खुली होती है। इसका शरीर 6"–15" तक लम्बा होता है। यह तीन भागों मे बाँटा जा सकता है। शरीर का अगला भाग (anterior part) चपटा होता है जिस पर फनल के आकार का पेरिस्टोमियल कॉलर (peristomial collar) होता है। इस पर एक जोड़ी कम विकसित पेरिस्टोमियल स्पर्शक या
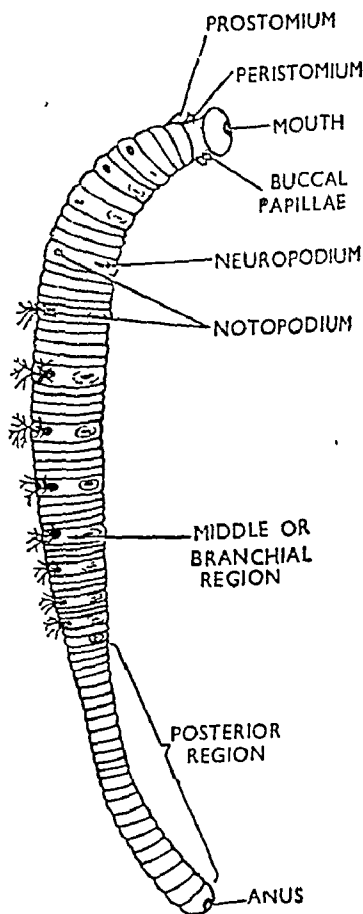
रोमगुच्छक (peristomial tentacles) होते हैं। इनके आधार पर मुख स्थित होता है। इस भाग में पार्श्वपाद (parapodia) सरल होते हैं किन्तु इसके नोटोपोडिया बड़े तथा फैले हुए होते हैं। 10वें खण्ड के पार्श्वपाद एक जोड़ी पंख के समान प्रवर्धों के रूप में निकले रहते हैं। अग्रिम भाग के पृष्ठ तल पर एक रोमाभी झिर्री होती है जो मुख से रोमाभी प्याले तक फैली होती है। शरीर के मध्य भाग मे पार्श्वपाद समेकित होकर पंखों के समान तीन जोड़ी रचनाएँ बनाते है। शरीर के पार्श्व तल पर अग्रिम पंखे के आगे एक चूपक होता है। शरीर के पिछले भाग में पार्श्वपाद द्विअक्षीय (biramous) होते है। जन्तु शरीर के ऊपर म्यूकस उत्पन्न करता है जो ट्यूब को अन्दर से आस्तारित करती है। कीटोप्टेरस चूपक द्वारा नलिका से चिपका होता है। यह स्फुरदीप्ति (phosphorescence) के लिए प्रसिद्ध है।
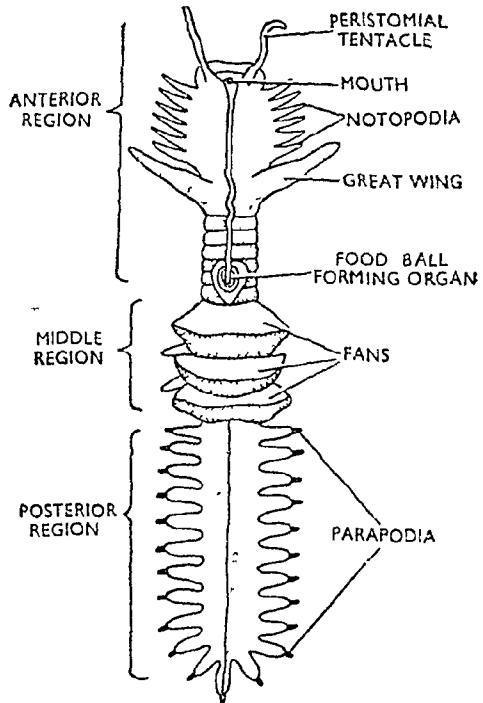
कीटोप्टेरस में भोजन ग्रहण करने की विधि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सूक्ष्म जीवों को खाता है। पंखों की क्रमिक गति के कारण जल की धारा नलिका के अन्दर आती रहती है और साथ में सूक्ष्म जीव लाती है। बड़े पंख (great wings) जन्तु द्वारा स्रावित म्यूकस का थैला-सा बना लेते है। भोजन के कण इस थैलेनुमा रचना से चिपक जाते है तथा सिलियेटेड झिर्री के साथ मुख तक पहुँचते है। मार्ग में ये एक गेंद-सी बना लेते है जो बोलस कहलाता है। बोलस पृष्ठ झिर्री के साथ होता हुआ मुख तक पहुँच जाता है और निगल लिया जाता है।

चित्र १·३. कीटोप्टेरस (*Chaetopterus*)

4. पोण्टोब्डेला (Pontobdella) (*Meerut 1971*)

फाइलम	—	ऐनेलिडा (*Annelida*)
क्लास	—	हिरूडिनिया (*Hirrudinea*)
आर्डर	—	रिंकोब्डैलिडा (*Rinchobdellida*)
टाइप	—	पोण्टोब्डेला (*Pontobdella*)

यह समुद्री लीच है जो स्केट्स (skates) पर वाह्य परजीवी के रूप मे पाया जाता है। इसका शरीर वेलनाकार होता है तथा इस पर अग्र एवम् पश्च चूपक होते है। त्वचा रूक्ष (rough) होती है और इस पर वार्ट (warts) होते हैं। मुख के चारों ओर बहिःसारी प्रोबोसिस होता है किन्तु इसमें जबड़ों का अभाव होता है। क्रॉप आन्त्र के नीचे स्थित होता है और इसमें केवल एक अविशाखित सीकम होता है। नेत्र, क्लोम तथा नेफ्रीडिया अनुपस्थित होते हैं। नर एवम् मादा जननांग एक ही जन्तु में पाये जाते है। अण्डे मौलस्क के खाली खोलों में दिये जाते हैं।

5. बोनेलिया (Bonellia)

(*Agra 1971*)

फाइलम — ऐनेलिडा (*Annelida*)
क्लास — इकायूरोइडिया (*Echiuroidea*)
टाइप — बोनेलिया (*Bonellia*)

बोनेलिया उथले जल में रेत व कीचड़ में 'V' के समान नलिकाओं में रहने वाला समुद्री ऐनेलिड प्राणी है। शरीर सुसंगठित, अण्डाकार व हरे रंग का होता है जिस पर *पैपिली* (papillae) छितरे रहते हैं तथा पैरापोडिया, शीर्ष उपांग (cephalic appendages) व विशिष्ट संवेदी अंग अनुपस्थित होते हैं। प्रोस्टोमियम आगे की ओर एक अत्यधिक लम्बे व खिंचने वाले प्रोबोसिस में निकला रहता है जिसका सिरा द्विशाखित होता है। यह अत्यधिक संवेदी होता है और चलन व शिकार को पकड़ने में सहायता करता है। प्रोबोसिस में एक अधर रोमाभी खाँच होती है जिसके द्वारा सूक्ष्म जीव आधार पर स्थित मुख में ले जाये जाते हैं। पश्च सिरे के समीप अधर तल पर अंकुश के समान एक जोड़ी **सीटी** (setae) होते हैं। देह-भित्ति अत्यधिक पेशीमय होती है और सीलोम विस्तृत होता है। रुधिर परिवहन तन्त्र में एक पृष्ठ व एक अधर लम्बवत् वाहिनी होती हैं। तन्त्रिका अल्पविकसित होती है और अधर नर्व कार्ड में गैंगलिया का अभाव होता है। नेफ्रीडिया जनद वाहिनियों (gonoducts) का कार्य करते हैं। नर एवम् मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं।

चित्र १·४. पोण्टोब्डोला (*Pontobdella*)

बोनेलिया का हरा रंग **बोनेलिन** नामक रंजक की उपस्थिति के कारण होता है। *बोनेलिया* **लैंगिक द्विरूपता** (sexual dimorphism) का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। उपर्युक्त विवरण मादा प्राणी का है। नर सूक्ष्म, अपविकसित, रोमाभी तथा आकार में 1/16″ लम्बा होता है। यह अपविकसित प्राणी है जिसमें प्रोबोसिस का अभाव होता है तथा मुख व गुदाद्वार रहित ह्रसित आहार-नाल होती है। शिशु अवस्था में नर मादा की ग्रसनी में प्रवेश करता है और लैंगिक रूप से परिपक्व होने पर स्थायी रूप से मादा के नेफ्रीडियम में रहता है। स्वतन्त्र रूप से विकसित होने पर लारवी मादा में विकसित होते हैं किन्तु प्रौढ़ मादा के सम्पर्क में आने पर ये नर में विकसित होते हैं।
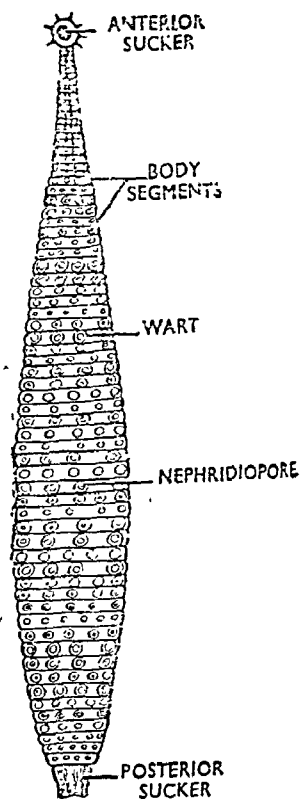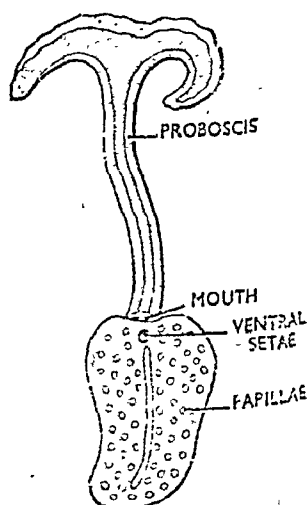
चित्र १·५. बोनेलिया (*Bonellia*)

नीएन्थोस या नेरीस (Neanthes or Nereis)

फाइलम — ऐनेलिडा (*Annelida*)
क्लास — पोलीकीटा (*Polychaeta*)
आर्डर — इरेन्शिया (*Errantia*)
जीनस — नेरीस (*Nereis*)

प्रश्न 3. नेरीस के बाह्य लक्षणों का उल्लेख कीजिये। नेरीस एवम् हेटिरो-नेरीस की तुलना कीजिये।

Give an account of external features of *Nereis*. Compare *Nereis* with *Heteronereis*. (*Jiwaji 1969 ; Punjab 71 ; Kanpur 72*)

नेरीस (*Nereis*) जिसे सामान्यत: क्लैमवर्म (clam-worm), रेगवर्म (rag-worm) या सैण्डवर्म (sand-worm) भी कहते हैं, समुद्र के छिछले पानी में रेतीले तटों पर पाया जाता है। यह दिन के समय पत्थरों तथा समुद्री पौधों के नीचे छुपा रहता है तथा रात के समय शिकार की खोज में बाहर निकलता है।

बाह्य लक्षण (External Features)

आकृति एवम् आकार (Shape and size)—नेरीस का शरीर लम्बा व बेलनाकार होता है। यह **द्विपार्श्व सममित** (bilaterally symmetrical), **विखण्डित क्रम से खण्डित** (metamerically segmented) तथा पृष्ठ-अधर से कुछ-कुछ चपटा होता है। यह पीछे की ओर क्रमिक रूप से पतला होता चला जाता है। इसकी पृष्ठ सतह अवतल तथा अधर सतह चपटी होती है। इसकी लम्बाई कुछ सेण्टीमीटर से 40 से० मी० तक होती है।

नेरीस की विभिन्न जातियाँ अलग-अलग रंग की होती हैं। इनमें से कुछ जातियाँ लाल-भूरी तथा अन्य गहरे-भूरे रंग की होती हैं। *N. pelagica* लाल-भूरे रंग का होता है।

खण्डीभवन (Segmentation)—नेरीस का शरीर लगभग 200 अथवा उससे भी अधिक खण्डों या मेटामीयर्स में विभाजित होता है। यह विभाजन शरीर की बाहरी सतह पर खाँचों द्वारा तथा अन्दर की ओर पटों अथवा सेप्टा (septa) द्वारा प्रदर्शित होता है। समस्त मेटामीयर्स एक-दूसरे के समान होते हैं किन्तु पिछला मेटामीयर कुछ गोलाकार-सा होता है। इसे **पुच्छ खण्ड** (tail system) या **पाइजिडियम** (pygi-

चित्र २·१. नेरीस के बाह्य लक्षण (External features of *Nereis*)
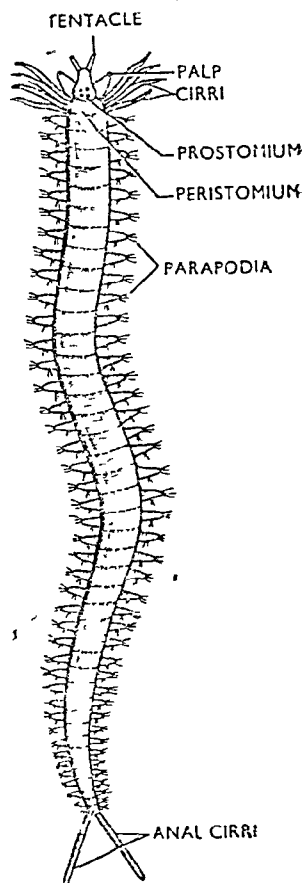
dium) कहते है। इसमें एक जोड़ी **गुद-शिश्नक** (anal cirri) होते हैं। गुदाद्वार पिछले सिरे पर स्थित होता है।

शरीर का विभाजन (Division of Body)

नेरीस के शरीर को दो स्पष्ट भागों में विभाजित किया जा सकता है—**सिर व धड़**।

1. सिर (Head)—नेरीस में सुस्पष्ट सिर होता है। यह अगले सिरे पर स्थित होता है और दो भागों का बना होता है—**प्रोस्टोमियम** तथा **पेरिस्टोमियम**।

(*i*) **प्रोस्टोमियम** (Prostomium)—यह एक त्रिभुजाकार पिण्डक के समान प्रक्षेप के रूप में मुख के सामने एवम् ऊपर की ओर स्थित होता है। इस पर दो जोड़ी **नेत्र**, एक जोड़ी **प्रोस्टोमियम स्पर्शक**, एक जोड़ी **पाल्प** तथा एक जोड़ी **पक्ष्माभी गर्त** या **न्यूकल अंग** (nuchal organs) होते है।

(*ii*) **पेरिस्टोमियम** (Peristomium)—यह प्रथम दो समेकित खण्डों को प्रदर्शित करता है। मुख की उपस्थिति के कारण यह अन्य खण्डों से भिन्न होता है। इस पर चार जोड़ी **पेरिस्टोमियल रोमगुच्छ** (peristomeal cirri) होते हैं। ये
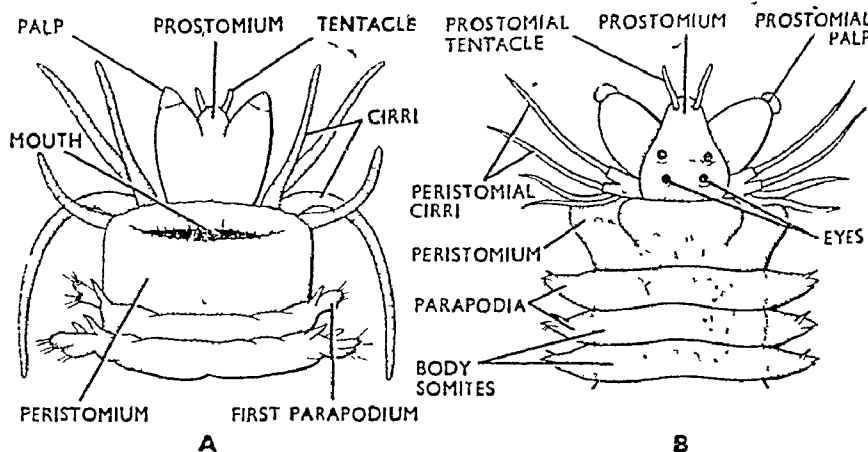
चित्र २·२. नेरीस (Nereis)
A. सिर का अधर दृश्य (Ventral view of head)
B. सिर का पृष्ठ दृश्य (Dorsal view of heart)

शेष शरीर पर पाये जाने वाले न्यूरोपोडियल व नोटोपोडियल रोमगुच्छों से भिन्न होते है।

2. धड़ (Trunk)—सिर को छोड़कर शरीर का शेष भाग धड़ कहलाता है। यह 200 तक समान काय खण्डों या सोमाइट्स (somites) का बना होता है। प्रत्येक सोमाइट लम्बाई की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है और इसकी पार्श्व सतहों पर एक जोड़ी **पार्श्वपाद या पैरोपोडिया** (paropodia) होते हैं।

शूक या सीटी (Setae or chaeatc)—ये महीन, दृढ़ व काइटिन के बने शूक है जो चलन मे सहायता करते है। प्रत्येक शूक (seta) एक **शूकधर कोष** (setigerous sac) में स्थित होता है। यह द्विखण्डीय रचना है जिसका समीपस्थ खण्ड **शाफ्ट** (shaft) तथा दूरस्थ सिरा ब्लेड (blade) कहलाता है। नेरीस के शूक (setae) तीन प्रकार के होते हैं।

(*i*) लम्बे ब्लेड व छोटी शाफ्ट वाले—इनका ब्लेड लम्बा, पतला, सीधा व नुकीला होता है जिसके एक उपांत पर दन्तुर होते हैं।
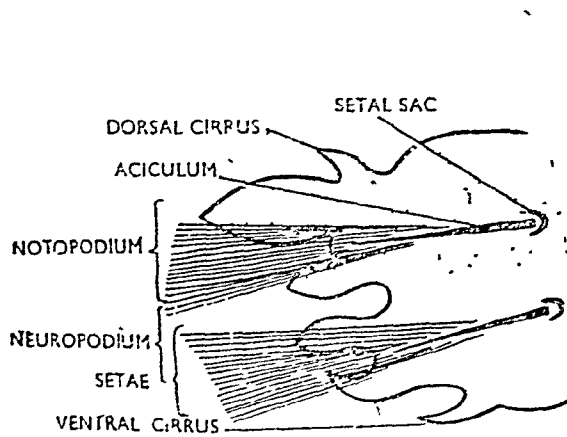
चित्र २·३. A. नेरीस का पार्श्वपाद
(Parapodium of *Nereis*)
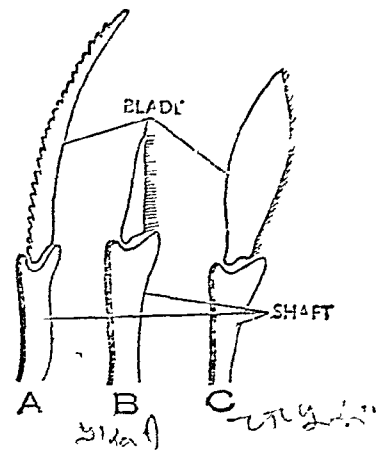
चित्र २·३. A. व B. नेरीस के शूक
C. हेटेरोनेरीस के शूक
(A & B—Setae of *Nereis*
C—Setae of *Heteronereis*)

(*ii*) प्ररूपी शूक जिनकी शाफ्ट बड़ी व सुगठित तथा ब्लेड छोटा, सुगठित व कुछ अंकुशी होता है।

(*iii*) चप्पू-रूपी शूक (oar-shaped setae) जिनका ब्लेड चप्पू-के समान या अरित्र-रूपी होता है। ये नरीस की लैंगिक अवस्था अर्थात् हेटेरोनेरीस (*Heteronereis*) में पाये जाते हैं।

वृक्ककरंध्र या नेफ्रिडियोस्पोर (Nephridiospores)—ये वृक्कों के बाह्य छिद्र हैं। ये पार्श्वपादों के अधर रोमगुच्छों के आधार पर एकल रूप से मिलते हैं।

पुच्छ व पाइजिडियम (Tail and pygidium)—यह शरीर का अन्तिम खण्ड है जिसे **गुद खण्ड** (anal segment) भी कहते हैं। इस पर एक जोड़ी लम्बे व तन्तुवत् **गुद या अधर रोमगुच्छ** (anal or ventral cirri) तथा एक **गुदाद्वार** स्थित होते हैं।

नेरीस एवम् हेटेरोनेरीस में अन्तर
(Difference Between Nereis and Heteronereis)

कृपया प्रश्न 11 देखिये।

पार्श्वपाद या पैरापोडिया (Parapodia) पैरीस्टोमियम तथा पाइजिडियम (pygidium) को छोड़कर शरीर के सभी खण्डों के पार्श्व में देहभित्ति के एक जोड़ी खोखले उद्वर्ध होते हैं। ये पृष्ठ-अधर तल से चपटे, माँसीले एवम् उदग्र पट्टों के समान होते हैं। प्रत्येक पार्श्वपाद एक द्विशाखी रचना है जिसको आधार भाग तथा उसमें जुड़े दो पिण्डकों में विभाजित किया जा सकता है। पृष्ठ पिण्डक **नोटोपोडियम** (notopodium) तथा अधर पिण्डक **न्यूरोपोडियम** (neuropodium) कहलाता है। दोनों ही द्विपिण्डकी होते हैं तथा प्रत्येक में अंगुली के समान एक शिश्नक होता है। नोटोपोडियम पर ऊपर की ओर स्थित पृष्ठ रोमगुच्छ न्यूरोपोडियम पर नीचे की ओर स्थित अधर

रोमगुच्छ की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है। प्रत्येक नोटोपोडियम तथा न्यूरोपोडियम पर छड़ के समान एसिकुलम (aciculum) तथा सीटी का एक गुच्छा होता है। सीटी सेटिजिरस कोष (setigerus sac) में धँसे रहते हैं। सीटी लम्बे व सख्त होते हैं। ये विशेष प्रकार की पेशियों द्वारा अन्दर की ओर निवर्तित तथा विभिन्न दिशाओं में निस्सारित हो सकते हैं।

पार्श्वपाद नेरीस के चलन अंग हैं। शरीर के मध्य भाग के पार्श्वपाद अन्य भागों के पार्श्वपादों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं जो शरीर के दोनों सिरों की ओर क्रमिक रूप से छोटे होते जाते हैं।

प्रश्न 4. नेरीस में भोजन ग्रहण करने की विधि का वर्णन कीजिये तथा इसकी केंचुए (earthworm) से तुलना कीजिये।

Explain clearly the mechanism of feeding in *Nereis* and compare it with that of *Pheretima*. (*Agra 1955*)

नेरीस में भोजन ग्रहण करने की विधि का वर्णन कीजिये तथा स्पष्ट रूप से बताइये कि इसमें भोजन का पाचन किस प्रकार से होता है?

Describe the mechanism of feeding in *Nereis* and clearly explain the physiology of digestion in the animal.

(*Agra 1968 ; Patna 69*)

नेरीस का भोजन क्या है? इसके पाचन अंगों एवम् पोषण विधि का उल्लेख करिये।

Describe the organs and the mechanism of feeding in *Nereis*? What is the food of this animal. (*Agra 1971*)

आहार नाल (Alimentary Canal)

आहार नाल मुख से गुदाद्वार तक फैली हुई परिवर्ती व्यास की एक सीधी नलिका है। यह पृष्ठ मेसैण्टरी तथा अन्तराखण्डीय पटों द्वारा देह-गुहा में सधी रहती है। यह तीन क्षेत्रों में भिन्नित होती है—**अग्रांत्र** (foregut) या **मुख-पथ** (stomodaeum) जो मुख-गुहिका (buccal cavity) तथा ग्रसनी (pharynx) की बनी होती है; **मध्यांत्र** (midgut) या **मेसेण्टरॉन** (mesenteron) जो ग्रासनली व आमाशय की बनी होती है तथा **पश्चांत्र** (hindgut) या **प्रोक्टोडियम** (proctodaeum) जो मलाशय की बनी होती है।

1. मुख (Mouth)—यह अनुप्रस्थ छिद्र के रूप में प्रोस्टोमियम के अधर तल पर स्थित होता है। यह पार्श्व व अधर तल पर प्रोस्टोमियम द्वारा घिरा रहता है। पीछे की ओर मुख एक चौड़ी गुहा, मुख-गुहिका (buccal cavity) में खुलता है।

2. मुख-गुहिका एवम् ग्रसनी (Buccal cavity and pharynx)—नेरीस के मुख-ग्रसनी प्रदेश का अगला भाग बाहि:सारी
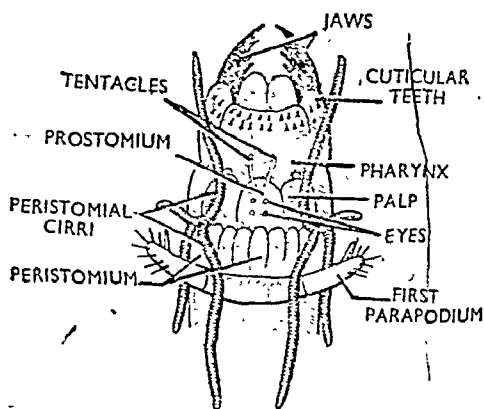
चित्र २·४. नेरीस के मुख-ग्रसनी भाग का पृष्ठ दृश्य (Bucco-pharyngeal region of *Nereis* in dorsal view)

प्रोबोसिस (eversible proboscis) या शुण्ड बनाता है। इसके चारों ओर पेशियों के अनेक स्तर होते है। मुख-गुहिका पेरिस्टोमियम में स्थित होती है और पीछे की ओर ग्रसनी में खुलती है। ग्रसनी शरीर के चौथे खण्ड तक फैली होती है। मुख-गुहिका तथा ग्रसनी, दोनों का आन्तरिक स्तर क्यूटिकल का बना होता है। मुख-गुहिका की क्यूटिकल विभिन्न स्थानों पर फूलकर गहरे भूरे रंग के सूक्ष्म दन्तुर या **डेन्टीकल्स** (denticles) या **पेराग्नेथ** (paragnaths) बनाती है। ग्रसनी की दीवारें मोटी व पेशीय होती हैं। इसके पिछले भाग में एक जोड़ी बड़े, शक्तिशाली व काइटिन के बने चलनशील **जबड़े** (jaws) पाये जाते हैं। प्रत्येक जबड़ा एक शंक्वाकार रचना है जिसका आधार चौड़ा व खोखला होता है और अगला ठोस नुकीला सिरा अन्दर की ओर मुड़ा रहता है। इसके भीतरी उपांत पर अनेक दांत होते हैं। **ग्रसनी व मुख-गुहिका, दोनों मिलकर नेरीस के पोषण अंग** (feeding organs) **बनाते हैं।**

3. ग्रास नली (Oesophagus)—यह एक सँकरी नली है जो ग्रसनी के पीछे के 5 खण्डों में स्थित होती है। ग्रास नली के अगले सिरे पर एक जोड़ी लम्बे व अशाखित ग्रन्थिल कोष्ठ, **ईसोफेजियल सीका** (oesophageal caeca) ग्रास नली में पार्श्व रूप से खुलते हैं। ग्रास नली पीछे की ओर **जठरांत्र** (stomach-intestine) में खुलती है।

4. जठरांत्र (Stomach-intestine)—यह एक सीधी व महीन भित्ति की नलिका है जो पटों द्वारा खण्डीय क्रम में संकीर्ण रहती है। भोजन का पाचन एवम् अवशोषण मुख्य रूप से जठरांत्र में होता है। यह अन्तिम खण्ड में मलाशय में खुलता है। नेरीस में स्पष्ट आमाशय का अभाव होता है।

5. मलाशय (Rectum)—यह अन्तिम खण्ड में स्थित होता है और पीछे की ओर गुदाद्वार द्वारा बाहर खुलता है।
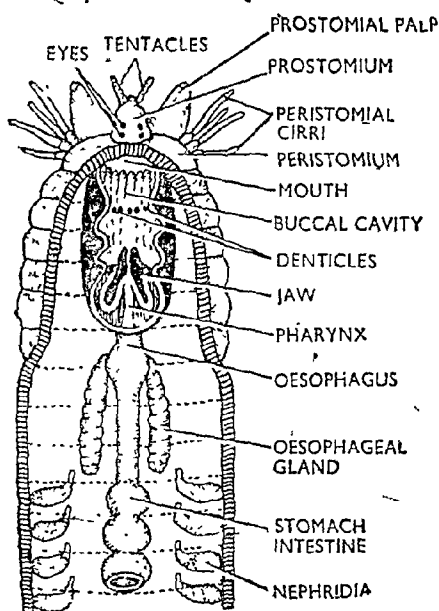
चित्र २·५. नेरीस : आहार नाल का अगला भाग
(*Nereis* : anterior part of alimentary canal)

भोजन एवम् पोषण विधि
(Food and Feeding Mechanism)

भोजन (Food)—*नेरीस* एक मांसाहारी जन्तु है जो छोटे-छोटे क्रस्टेशियन, मोलस्क, स्पंज तथा अन्य सूक्ष्म जीवों का भक्षण करता है। यह मुख्य रूप से clams को अपना भोजन बनाता है और उनके आस-पास ही पाया जाता है। अतः इसे **क्लैमवर्म** (clam-worm) भी कहते हैं। इसकी कुछ जातियाँ शैवाल का सेवन करती हैं।

पोषण-विधि (Feeding Mechanism)

स्पर्श संवेदी (tactile) प्रोस्टोमियल पाल्प (prostomial palps) तथा

पेरिस्टोमियल रोमगुच्छों (prostomial tentacles or cirri) द्वारा भोजन चखा जाता है और इण्ट्रोवर्ट के बाहर निकलने या बहिर्वर्तन (eversion) द्वारा पकड़ा जाता है।

इण्ट्रोवर्ट से परिमुखीय या पेरिस्टोमियल खण्ड (peristomial segments) की दीवार तक फैली हुई प्रोट्रेक्टर पेशियों (protractor muscles) के सिकुड़ने तथा सीलोमिक द्रव के दबाव से इण्ट्रोवर्ट मुख से बाहर आ जाती है। मुखगुहिका भाग में पेशियाँ सिकुड़ती हैं तथा सीलोमिक द्रव एकत्रित हो जाता है जिससे मुखगुहा थैले के समान उलटकर बाहर की ओर आ जाती है। दोनों फैरेन्जियल दाँत (pharyngeal teeth) बाहर निकल आते हैं जिससे उनकी दाँतेदार सतह बाहर की ओर हो जाती है। दाँतों के समीप आने से शिकार उनके बीच फंस जाता है।
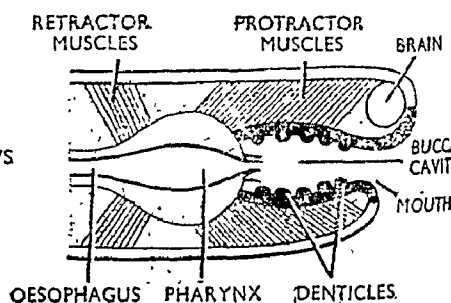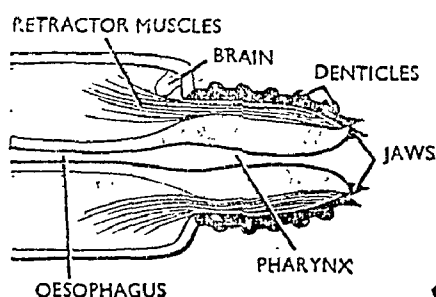
चित्र २·६. मुखगुहा-ग्रसनी भाग द्वारा भोजन ग्रहण करने की क्रिया का चित्रीय निरूपण (Mechanism of feeding) : (A) इण्ट्रोवर्ट बहिर्वर्तन मे, (B) इण्ट्रोवर्ट अन्तर्गमन अवस्था में

अब यह शिकार सहित अपने बिल में चला जाता है। वहाँ ग्रसनी के अन्तर्गमन में भोजन निगल लिया जाता है। शक्तिशाली रिट्रेक्टर पेशियों के सिकुड़ने से इण्ट्रोवर्ट भीतर आती है। ये पेशियाँ देहभित्ति से ग्रसनी की दीवार तक फैली रहती हैं।

'U' के समान बिलों में रहते समय, *नेरीस फिल्टर विधि द्वारा पोषण* करता है। बिल के एक सिरे पर यह म्यूकस की कोन (mucous cone) स्रावित करता है और पार्श्वपादों की गति द्वारा जल की धारा उत्पन्न करता है जो एक सिरे से प्रवेश करके दूसरे सिरे से बाहर निकल जाती है। जल की धारा के साथ आने वाले भोजन के कण म्यूकस की कोन से चिपक जाते हैं। म्यूकस कोन जो एक छलनी की भाँति कार्य करती है *नेरीस* द्वारा अन्तःग्रहण कर ली जाती है।

पाचन (Digestion)—भोजन के पाचन के लिए ग्रसिका ग्रन्थियाँ तथा आन्त्र की दीवार से पाचक रस बनते हैं। पाचन क्रिया ग्रसनी तथा आमाशय-आन्त्र में पूर्ण होती है। इसकी भित्ति में पायी जाने वाली पेशियों के क्रमाकुंचन से भोजन आहार-नाल में आगे बढ़ता है। भोजन का पाचन एवम् अवशोषण आमाशय-आन्त्र में होता है। अवशेष पदार्थ गुदाद्वार से होकर बाहर निकल जाता है।

केंचुए में भोजन ग्रहण करने की विधि
(Mechanism of Feeding in Earthworm)

केंचुआ सर्वभक्षी (omnivorous) जन्तु है जिसका भोजन मिट्टी में पाये जाने वाले मृत तथा सड़ते हुये कार्बनिक पदार्थ हैं जैसे पौधे, पौधों की पत्तियाँ, छोटे-छोटे जन्तु तथा उनके अण्डे व लारवा इत्यादि। यह भोजन के साथ पर्याप्त मात्रा में मिट्टी खाता है।

भोजन ग्रहण करते समय प्रोट्रेक्टर पेशियों (protractor muscles) के सिकुड़ने से मुखगुहा मुखद्वार से शरीर के बाहर आ जाती है। इसके पश्चात् ग्रसनी की चूषण क्रिया (sucking action) द्वारा भोजन खींचकर भीतर लिया जाता है। बाद में रिट्रेक्टर पेशियों (retractor muscles) के संकुचन से मुखगुहा लौटकर भीतर आ जाती है।

नेरीस तथा केंचुए में भोजन पकड़ने की विधि की तुलना
(Comparison of Feeding Mechanism of *Nereis* and *Earthworm*)

नेरीस (*Nereis*)	केंचुआ (*Earthworm*)
1. नेरीस मांसभक्षी (carnivorous) जन्तु है।	1. केंचुआ सुस्त (sluggish) तथा सर्वभक्षी (omnivorous) जन्तु है।
2. यह जीवित तथा क्रियाशील छोटे आकार के जन्तुओं को खाता है। छोटे क्रस्टेशियन तथा मौलस्क (crustaceans and molluscs) इसका भोजन हैं।	2. यह मिट्टी में पाये जाने वाले मृत तथा सड़ते हुए कार्बनिक पदार्थ, जैसे पत्तियाँ तथा कीड़े इत्यादि खाता है।

प्रश्न 6. नेरीस के रुधिर एवम् रुधिर परिवहन तन्त्र का वर्णन करिये। इस प्राणी में श्वसन किस प्रकार होता है?

Describe the blood and blood vascular system of *Nereis*. How does respiration take place in this animal?

रुधिर परिवहन तन्त्र
(Blood Vascular System)

रुधिर (Blood)—नेरीस के रुधिर मे एक तरल माध्यम होता है जिसे **प्लाज्मा** (plasma) कहते हैं। इसमें असंख्य अमीबाभ, केन्द्रकयुक्त तथा रंगविहीन **कणिकाएँ** (corpuscles) होती हैं। ये उच्च पृष्ठवंशियों के रुधिर के ल्यूकोसाइट्स के समान होते हैं। **हीमोग्लोबिन** प्लाज्मा मे घुला रहता है। यह श्वसन रंजक का कार्य करता है और रुधिर को चमकीला लाल रंग प्रदान करता है। रुधिर वाहिनियों की एक प्रणाली में से प्रवाहित होता है और गैसों, भोजन एवम् उत्सर्जी पदार्थों के परिवहन में सहायता करता है।

रुधिर वाहिनियाँ (Blood vessel)—नेरीस के रुधिर परिवहन तन्त्र की रुधिर वाहिनियों द्वारा शरीर के विभिन्न अगों को रुधिर पहुँचाया जाता है और केशिकाओं के जाल में होकर संग्राही वाहिनियों द्वारा एकत्रित किया जाता है। परिवहन तन्त्र में तीन मुख्य वाहिनियाँ होती हैं—**पृष्ठ वाहिनी** (dorsal vessel), **अधर वाहिनी** (ventral vessel) तथा **न्यूरल वाहिनी** (neural vessel)।

(*i*) **पृष्ठ वाहिनी** (Dorsal vessel)—यह शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आहार नाल के ऊपर मेसेन्टरी में स्थित होती है। इसकी भित्ति अत्यधिक संकुचनशील होती है जिसके संकुचन से रुधिर पीछे से आगे की ओर बहता है। यह संग्रह वाहिनी का कार्य करती है किन्तु 5वे खण्ड में यह द्विशाखित हो जाती है और दोनों शाखाएँ जालक बनाकर ग्रासनली की दीवार को रुधिर पहुँचाती है। एक

माध्यक वाहिनी ग्रासनली की दीवार से रुधिर एकत्रित करके अधर वाहिनी में खुलती है। अतः पृष्ठ वाहिनी जठरांत्र प्रदेश के प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी वाहिनियों द्वारा रुधिर एकत्रित करती है। यह पार्श्व वाहिनियों द्वारा देह भित्ति, पार्श्वपादों तथा वृक्ककों से भी रुधिर एकत्रित करती है।

(*ii*) **अधर रुधिर वाहिनी** (Ventral blood vessel)—यह रुधिर का वितरण करने वाली अकुंचनशील वाहिनी है जो 5वें खण्ड से अंतिम खण्ड तक आहार नाल के नीचे मध्य-अधर रेखा पर स्थित होती है। इसमें रुधिर आगे से पीछे की ओर बहता है। 5वें खण्ड में यह ग्रास नली की दीवार से रुधिर एकत्रित करती है। अंतिम खण्ड में यह एक **सर्कम-रेक्टल वलय** (circum-rectal ring) द्वारा पृष्ठ वाहिनी से सम्बन्धित होती है।

प्रथम पाँच खण्डों को छोड़कर अन्य सभी खण्डों में पृष्ठ व अधर वाहिनियाँ प्रत्येक ओर पार्श्व में लूप-के समान एक जोड़ी **पार्श्व सन्धायी वाहिनियों** (lateral commissural vessels) द्वारा एक-दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। ये वाहिनियाँ अधर वाहिनी से पृष्ठ वाहिनी को सीधे रुधिर नहीं पहुँचातीं बल्कि प्रत्येक खण्ड में ये **अभिवाही वाहिनियों** (afferent vessels) में विभाजित होकर अपनी ओर की देह भित्ति, वृक्ककों तथा पार्श्वपादों को रुधिर पहुँचाती हैं। इन अंगों में अभिवाही वाहिनियाँ बार-बार विभाजित होकर केशिकाओं का जाल बनाती हैं। केशिकाएँ पुन: मिलकर संगत **अपवाही वाहिनियाँ** (efferent vessels) बनाती हैं। ये परस्पर मिलकर पृष्ठ वाहिनी में खुलती हैं। प्रत्येक खण्ड में अधर वाहिनी एक जोड़ी **अधिवाही आन्त्र वाहिनियों** (afferent intestinal vessels) द्वारा जठरांत्र की दीवार को भी रुधिर पहुँचाती हैं। ये जठरान्त्र की दीवार में केशिकाओं का विस्तृत जाल बनाती हैं। केशिकाएँ पुन: मिलकर एक जोड़ी **अपवाही आन्त्र वाहिनियाँ** (efferent intestinal vessels) बनाती हैं। ये जठरांत्र की दीवार से पृष्ठ रुधिर ले जाती हैं।

(*iii*) **न्यूरल वाहिनी** (Neural vessel)—यह नर्वकॉर्ड के नीचे स्थित होती है। यह अधर देह-भित्ति से रुधिर एकत्रित कर अधर वाहिनी में पहुँचाती है।

श्वसन (Respiration)

नेरीस में क्लोम या सुनिश्चित श्वसन अंगों का अभाव होता है। फिर भी गैसों का आदान-प्रदान देह-भित्ति की सतह तथा अधिक उपयुक्त रूप से महीन व चपटे पार्श्वपादों द्वारा होता है। प्रत्येक पार्श्वपाद में केशिकाओं का विस्तृत जाल होता है और ये रुधिर द्वारा सम्भरणित रहती हैं। रुधिर में घुली CO_2 केशिकाओं में से बाहर विसरित हो जाती है और आस-पास के पानी में घुली ऑक्सीजन अन्दर विसरित हो जाती है।

प्रश्न 7. नेरीस के उत्सर्जी अंगों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the organs of excretion in *Nereis*.

(*Agra 1966*)

उत्सर्जन अंग

वृक्कक (Nephridia)—नेरीस के उत्सर्जन अंग शरीर के प्रत्येक खण्ड में पायी जाने वाली, कुण्डलित तथा रोमाभी नलिकाएँ हैं जो वृक्कक (nephridia) कहलाती हैं। प्रथम तथा अन्तिम खण्डों के अतिरिक्त शरीर के प्रत्येक खण्ड में इनका एक जोड़ा स्थित होता है।

प्रत्येक वृक्कक में एक रोमाभी कुण्डलित नलिका होती है जो बहुकेन्द्रक जीवद्रव्य में पड़ी रहती है। इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है—(1) वृक्कक का शरीर, (2) वृक्कक की गर्दन।

1. वृक्कक का शरीर—यह भाग अनियमित, कुण्डलित, अण्डाकार तथा ग्रन्थिल होता है और खण्ड में अनुप्रस्थ रूप में पाया जाता है। इसमें एक अति कुण्डलित **पक्ष्माभिकी नलिका** (ciliated tube) होती है। इसका शीर्ष भाग पक्ष्म-विहीन (non-ciliated) होता है तथा पार्श्व-पाद (parapodium) के आधार पर अधर शिश्नक (ventral cirrus) के समीप एक सूक्ष्म छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। यह छिद्र **वृक्कक छिद्र** (nephridiopore) कहलाता है। यह आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा किया जा सकता है।
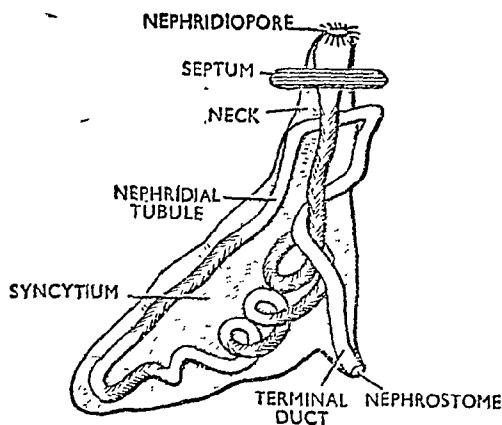
चित्र २·७. नेरीस का नेफ्रीडियम
(Nephridium of *Nereis*)

2. वृक्कक की गर्दन—वृक्कक के शरीर का अगला कम चौड़ा भाग गर्दन के रूप में निकला रहता है। इसके अन्दर पक्ष्माभिकी नलिका स्थित होती है। यह सेप्टम को छेद कर अपने से अगले खण्ड में पहुँच जाती है जहाँ यह **पक्ष्माभिकी कीप** (ciliated funnel) द्वारा देहगुहा में खुलती है। इसका छिद्र **नेफ्रीडियोस्टोम** (nephridiostome or nephrostome) कहलाता है। इसके दोनों ओष्ठ अनियमित होते हैं तथा अनेक छोटे-छोटे किन्तु लम्बे व सँकरे प्रवर्धों में उभरे रहते हैं। यह प्रवर्ध पक्ष्माभिकी होते हैं।

उत्सर्जन (Excretion)

वृक्कक की बाहरी सतह पर कोशिकाओं का जाल-सा बिछा होता है। पक्ष्माभिकी नलिका की भित्ति में पाये जाने वाली ग्रन्थिल कोशिकाएँ रक्त से उत्सर्जन पदार्थ को अलग कर लेती हैं तथा नेफ्रीडियोपोर द्वारा शरीर के बाहर निकाल देती हैं। वृक्कक की पक्ष्माभिकी कीप भी देहगुहीय द्रव से उन सीलोमिक कणिकाओं को अलग कर लेती है जिन्होंने बैक्टीरिया इत्यादि पदार्थों का भक्षण किया होता है।

प्रश्न 8. नेरीस के ग्राही अंगों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the receptor organs in Nereis.

(*Meerut 1970*)

नेरीस के ग्राही अंग
(Receptor Organs of Nereis)

नेरीस के ग्राही अंग निम्नलिखित हैं—

1. एक जोड़ी प्रोस्टोमियल स्पर्शक
2. एक जोड़ी प्रोस्टोमियल पाल्प
3. एक जोड़ी न्यूकल अंग

4. चार जोड़ी प्रोस्टोमियल रोमगुच्छ
5. दो जोड़ी नेत्र

1. प्रोस्टोमियल स्पर्शक (Prostomial tentacles)—ये प्रोस्टोमियम के अगले सिरे पर छोटे खोखले प्रक्षेपो के रूप में होते हैं। ये नेरीस के स्पर्शकांग हैं।

2. प्रोस्टोमियल पाल्प (Prostomial palps)—एक जोड़ी प्रोस्टोमियल पाल्प प्रोस्टोमियम के अधर-पार्श्व से निकलते हैं। प्रत्येक पाल्प एक छोटे व मोटे तथा पेशीय प्रक्षेप के रूप में होता है। यह दो भागों—एक बड़ा **आधार खण्ड** (basal segment) तथा एक छोटे प्रतिकर्षी **अग्रीय खण्ड** (terminal segment) का बना होता हैं। प्रोस्टोमियल पाल्प भी नेरीस के स्पर्शकांग हैं।

3. न्यूकल अंग (Nuchal organs)—ये प्रोस्टोमियम के इधर-उधर एक जोड़ी रोमाभी खाँचों के रूप में होते है। ये रसायन-ग्राही (chemo-receptors) होते है।

4. पेरिस्टोमियल रोमगुच्छ (Peristomial cirri)—ये पेरिस्टोमियम पर स्थित होते है। ये भी नेरीस के स्पर्शकांग हे।

5. नेत्र (Eyes)—दो जोड़ी नेत्र प्रोस्टोमियम के पृष्ठ तल पर स्थित होते है। प्रत्येक नेत्र एक प्यालेनुमा रचना है तथा रंजित दीवारों का बना होता है। दीवार अरीय रूप से विन्यसित रेटिनल कोशिकाओ (retinal cells) के एक स्तर की बनी होती है जो कि एपिडर्मल कोशिकाओ के ही रूपान्तरित रूप हे। प्रत्येक रेटिनल कोशिका लम्बी व सँकरी होती है और निम्न भागों मे भिन्नित होती है :—

(*i*) बाह्य **केन्द्रकीय भाग** (nucleated part) जो ऑप्टिक तन्त्रिका मे निकला रहता है,

(*ii*) मध्य की अत्यधिक रंजित **मुख्य काय** (main body), तथा

चित्र २·८. नेरीस के नेत्र की खड़ी काट
(V.S. Eye)

(*iii*) क्युटिकुलर छड़ो के रूप में भीतरी हायलाइन स्तर।

प्रश्न 9. नेरीस के जनन-अंगों का वर्णन कीजिये तथा स्पष्ट रूप से लिखिये कि इस जन्तु में जनन किस प्रकार से होता है।

Describe the reproductive system of *Nereis* and state clearly how reproduction takes place in this animal. (*Agra 1958, 59, 69*)

नेरीस में जनन क्रिया का विवरण दीजिये।

Give an account of the process of reproduction in *Nereis*. (*Agra 1964*)

जनन तन्त्र (Reproductive System)

नेरीस में नर तथा मादा जनन-अंग पृथक्-पृथक् जन्तुओं में पाये जाते है। कुछ जातियों के नर तथा मादा मे आकारिक भिन्नताएँ भी पायी जाती हैं किन्तु ये आकारिक भिन्नताएँ (structural differences) केवल उन जातियों तक ही सीमित हैं जिनमे अलैंगिक प्रावस्था (nereis phase) तथा लैंगिक प्रावस्था (heteronereis
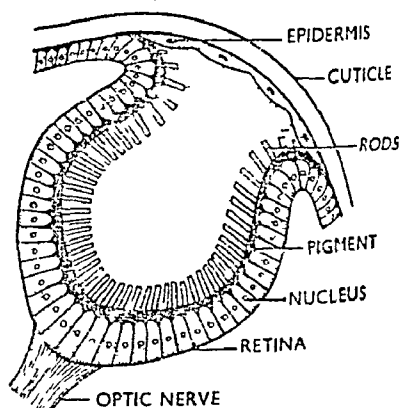
phase) अलग-अलग होती हैं ।

जनद (Gonad)—नेरीस में जनद अस्थायी एवम् अस्थानिक रचनाएँ हैं जो रक्तवाहिनियों के चारों ओर पायी जाने वाली सीलोमिक एपिथीलियम (coelomic epithelium) की कोशिकाओं के विभाजित होने पर बनी जनन-कोशिकाओं के समूहों के रूप में दृष्टिगत होती हैं। ये जनन-कोशिकाओं के समूह शरीर के अगले कुछ खण्डों को छोड़कर शेष सभी खण्डों की देहगुहा के खाली स्थान में पाये जाते हैं, परन्तु *Nereis dumerilli* के नर जन्तुओं में केवल एक जोड़ी वृषण पाये जाते हैं जो 19 से 25 खण्डों के बीच कहीं भी स्थित हो सकते हैं। जननकाल में सीलोमिक एपिथीलियम से अलग हुई कोशिकाएँ नर जन्तु में शुक्राणु-जनक कोशिकाएँ (sperm mother cells) बनाती हैं। ये समस्त देहगुहा में फैल जाती हैं। ये कोशिकाएँ शीघ्रता से बार-बार विभाजित होकर स्पर्मेटिड (spermatids) बनाती हैं जो रूपान्तरित होकर शुक्राणु (sperms) बनाती हैं। प्रत्येक पूर्ण वृद्धि प्राप्त शुक्राणु में एक छोटा छड़ के आकार का सिरा होता है तथा एक लम्बी कम्पनशील (vibratile) कशाभ या पूंछ (flagellum) होती है।
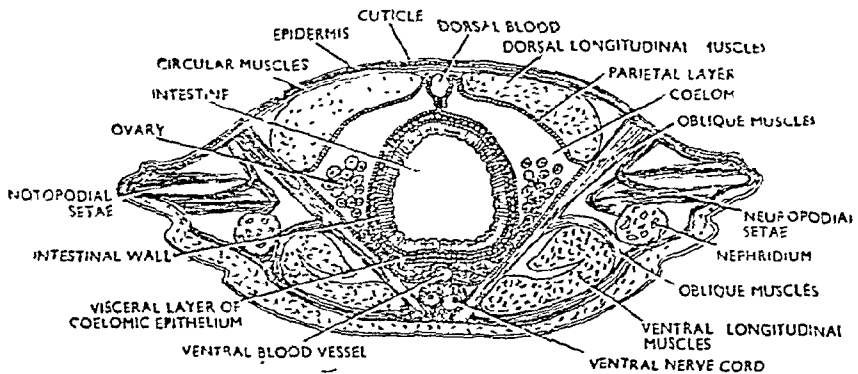
चित्र २·६. नेरीस के शरीर की अनुप्रस्थ काट (T.S. Body of *Nereis*)

मादा में अण्डाशयों का निर्माण भी इसी प्रकार होता है। ये सीलोमिक एपिथीलियम से कोशिकाओं के गोल समूहों के रूप में कटती हैं और शरीर के प्रत्येक खण्ड में पायी जाती हैं। सीलोमिक एपिथीलियम से अलग होकर ये oogonia देहगुहीय द्रव में एकत्रित होते हैं और विभाजन के पश्चात् अण्डे बनाते है। अण्डे देहगुहीय द्रव में तैरते रहते हैं। अण्डों में योक के दाने (yolk globules) पाये जाते हैं तथा इनके चारों ओर पीतक झिल्ली (vitelline membrane) तथा एल्ब्युमन पाया जाता है।

अण्डाशय तथा वृषण दोनों ही अण्डों तथा शुक्राणुओं को बनाने के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। नेरीस में जनद वाहिनियां (gonoducts) नहीं पायी जातीं तथा युग्मक (gametes) या तो नेफ्रीडिया से अथवा देहभित्ति के फटने से शरीर के बाहर आते हैं। शरीर के प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी पृष्ठ पक्ष्माभिकी अंग (dorsal ciliated organs) पाये जाते हैं। प्रत्येक पक्ष्माभिकी अंग एक छोटी रचना है जो रोमयुक्त पर्तों की बनी (folded) कीप के आकार की होती है और देहगुहा में एक चौड़े छिद्र द्वारा खुलती है तथा बाहर को बन्द रहती है। यह माना जाता है कि ये देहगुहीय नालों (coelomoducts) के समान होती है और जनन वाहिनियों (gonoducts) का कार्य

करती हैं। जनन काल में ये अस्थायी छिद्रों द्वारा बाहर को खुलती हैं।
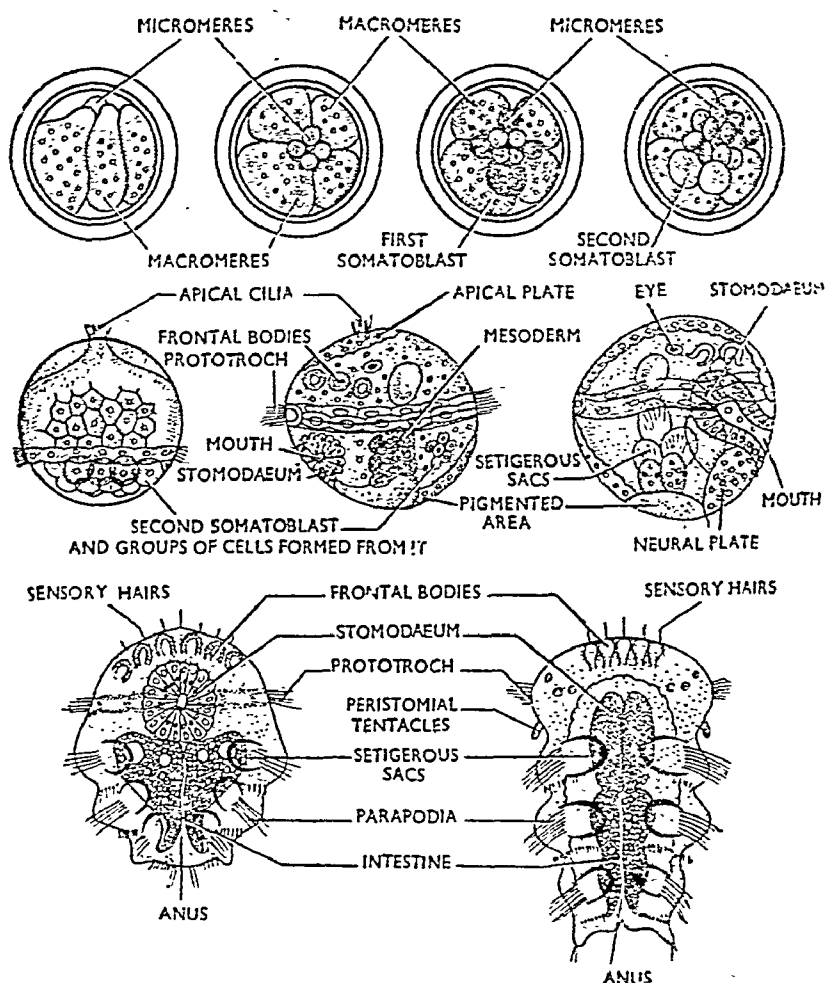
चित्र २·१०. नेरीस का परिवर्धन (Development of *Nereis*)

जनन-अंगों के बनने से जन्तु के बाह्य आकार में भी बहुत-से परिवर्तन हो जाते हैं तथा लैंगिक अवस्था में जन्तु हेटरोनेरीस (*Heteronereis*) कहलाता है।

निषेचन (Fertilization)—मादा नेरीस परिपक्व अण्डों को तथा नर शुक्राणुओं को पानी में छोड़ता है जहाँ इनके संयुग्मन से निषेचन की क्रिया पूर्ण होती है।

वर्धन (Development)—जब अण्डे पानी की सतह पर तैरते होते हैं उसी समय इनमें वर्धन प्रारम्भ हो जाता है। यह एक मोटे पारदर्शी जिलेटिन के बने आवरण से ढका रहता है। विभाजन असमान तथा स्पायरल (unequal and spiral) होते हैं तथा इनके फलस्वरूप गैस्ट्रूला का निर्माण होता है जो वृद्धि के पश्चात् ट्रोकोफोर लारवा (trochophore larva) बनाता है।

ट्रोकोफोर लारवा (Trochophore larva)—ट्रोकोफोर लारवा सूक्ष्माकार,

पारदर्शी, खण्डविहीन तथा नाशपाती के आकार का जन्तु है जिसका अगला चौड़ा भाग शीर्ष तथा पिछला कम चौड़ा या सँकरा भाग गुदाद्वार सिरा (anal end) कहलाता है। इसके शरीर का बाहरी स्तर पतली एक्टोडर्म का बना होता है। शीर्ष भाग की एक्टोडर्म मोटी होकर **शीर्ष प्लेट** (apical plate) बनाती है जिस पर बहुत-से **शीर्ष पक्ष्मों** (apical cilia) का एक समूह होता है। शीर्ष प्लेट पर एक जोड़ी **सेरिब्रल गैंगलिया** (cerebral ganglia) तथा लारवा में एक जोड़ी वर्णक आँखें (pigmented larval eyes) पायी जाती हैं। लगभग शरीर के मध्य में मुख तथा ग्रासनली के अवशेष बनने प्रारम्भ हो जाते हैं। मुख के ठीक सामने शरीर के चारों ओर पक्ष्मों के मुखपूर्व पक्ष्माभिकी पट्टी (preoral band of cilia) या **पूर्वपक्ष्माभिकी वलय** (prototrach) का निर्माण होता है। इसी प्रकार की सीलिया की एक दूसरी पट्टी शरीर के पिछले सिरे पर भी बन जाती है। यह पश्चमुखी पक्ष्म वलय (postoral circlet of cilia) या **मेटाट्रेक** (metatrach) कहलाता है। इसकी स्थिति पहले से ही स्थित ब्लास्टोपोर के रंगीन भाग द्वारा निर्देशित होती है। इसमें सीलोम नहीं होता परन्तु एक्टोडर्म तथा आहार-नाल के बीच बहुत चौड़ी **ब्लास्टोसील** (spacious blastocoel) पायी जाती है। ब्लास्टोसील में एक जोड़ी प्रोटोनेफ्रीडिया (protonephridia) तथा लारवा की पेशियाँ (larval muscles) पायी जाती हैं।
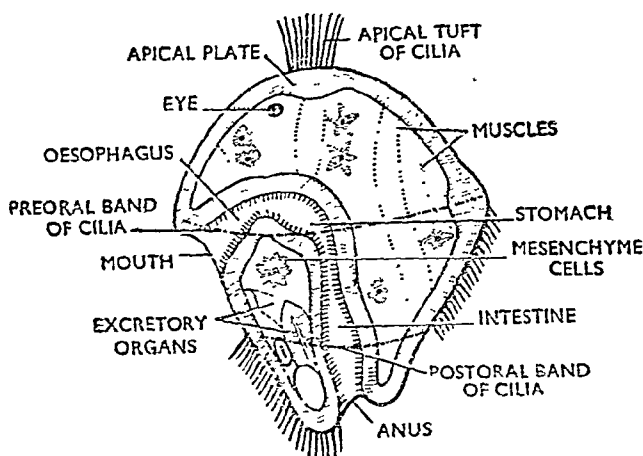
चित्र २·११. नेरीस का ट्रोकोफोर (Trochophore larva of *Nereis*)

प्रश्न 10. उचित चित्रों की सहायता से नेरीस के परिवर्धन का वर्णन करिये।

With suitable diagrams illustrate and describe the development of *Nereis*. (*Kanpur 1972*)

कृपया प्रश्न 9 देखिये।

प्रश्न 11. हेटेरोनेरीस प्रावस्था क्या होती है? इस प्रावस्था के प्राणी नेरीस से किस प्रकार भिन्न होते हैं? नेरीस तथा हेटेरोनेरीस के पार्श्वपाद या पेरापोडियम की तुलना कीजिये। नामांकित चित्र भी बनाइये।

What is heteronereis phase? How do the individuals of this phase differ from *Nereis*? Compare the structure of the parapodium of *Nereis* with that of *Heteronereis*. Give labelled diagrams.

(*Agra 1956, 57 ; Gorakhpur 61, 69, 71 ; Vikram 67, 72 ; Kanpur 71 ; Indore 72*)

हेटरोनेरीस प्रावस्था
(Heteronereis Phase)

नेरीस की कुछ जातियों में जनन अंगों के बनने पर शरीर के पिछले भाग में जहाँ जनन अंग होते हैं, कुछ आकारिक परिवर्तन (structural modifications) आ जाते हैं। इन परिवर्तनों के कारण लैंगिक जन्तु अलैंगिक जन्तु से पूर्णतया भिन्न हो जाता है और यह हेटरोनेरीस (*Heteronereis*) कहलाता है तथा यह प्रावस्था हेटरोनेरीस प्रावस्था (heteronereis phase) कहलाती है। अतः नेरीस के जीवन-इतिहास में दो प्रावस्थाएँ पायी जाती हैं :—

1. अलैंगिक नेरीस प्रावस्था (Nereis phase)
2. लैंगिक हेटरोनेरीस प्रावस्था (Heteronereis phase)

ये दोनों प्रावस्थाएँ एक दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि बहुत समय तक हेटरोनेरीस अलग जाति का जन्तु समझा जाता रहा।

चित्र २·१२. हेटरोनेरीस (*Heteronereis*) A. मादा B. नर
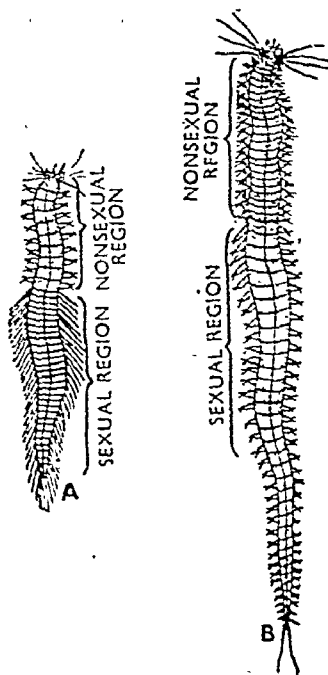
नेरीस तथा हेटरोनेरीस में भिन्नताएँ
(Differences Between *Nereis* and *Heteronereis*)

नेरीस (*Nereis*)	हेटरोनेरीस (*Heteronereis*)
1. नेरीस अलैंगिक सुस्त जन्तु है जो समुद्र के तल पर रेंगकर चलता है।	1. हेटरोनेरीस अत्यन्त तेजी से तैरने वाला जन्तु है जो समुद्री पानी की सतह पर तैरता है।
2. आँखें साधारण आकार की होती हैं और जन्तु प्रकाश के लिए कम संवेदी होता है।	2. आँखें अपेक्षाकृत बड़ी तथा स्पष्ट हो जाती हैं। अतः हेटरोनेरीस प्रकाश के लिए अधिक संवेदनशील होता है।
3. पार्श्वपाद (parapodia) पतली झिल्ली के समान होते हैं किन्तु संवहनीय (vascular) नहीं होते।	3. शरीर के पिछले लैंगिक भाग में पार्श्वपाद बड़े, अत्यन्त संवहनीय (highly vascular) होते हैं और पत्ती के समान उभार बनाते हैं।
4. पार्श्वपाद पर पाये जाने वाले सीटी साधारण होते हैं।	4. साधारण सीटी के स्थान पर लम्बी, चपटी तथा चप्पू के आकार की (oar-shaped) सीटी बन जाती ह जो पंखे के आकार में फैलकर लगी होती हैं।

नेरीस (*Nereis*)	हेटरोनेरीस (*Heteronereis*)
5. संवेदी उभार (sensory projections) भली-भाँति विकसित होते हैं।	5. संवेदी उभार भीतर घँस जाते हैं तथा गुदाद्वार खण्ड (anal segment) पर विशष संवेदी अंकुर (sensory papillae) बन जाते हैं।
6. पृष्ठ सिरस (dorsal cirrus) कम मुड़ा होता है।	6. पृष्ठ सिरस (dorsal cirrus) अधिक मुड़ा होता है।
7. आंत्र एक पतली दीवार वाली चौड़ी नलिका है।	7. आंत्र कम चौड़ी होती है तथा ग्रन्थियाँ बनने के कारण यह क्रियाशील नहीं रहती।

नेरीस तथा हेटरोनेरीस के पार्श्वपादों की तुलना
(Comparison of Parapodium of Nereis and Heteronereis)

नेरीस का पार्श्वपाद	हेटरोनेरीस का पार्श्वपाद
समानताएँ (Similarities)	
1. पार्श्वपाद चपटे, माँसीले तथा पत्ती के समान पार्श्व प्रवर्धों (lateral outgrowths) के रूप में पाये जाते हैं।	1. पार्श्वपाद बड़े, माँसीले तथा पत्ती के समान उभार हैं।
2. प्रत्येक पार्श्वपाद द्विशाखी (biramous) रचना है जिसमें पृष्ठ पिण्डक (dorsal lobe) नोटोपोडियम (notopodium) तथा अधर पिण्डक न्यूरोपोडियम (neuropodium) कहलाता है।	2. ऐसा ही होता है।
3. प्रत्येक पिण्डक के आधार पर एक सिरस (cirrus) उपस्थित होता है।	3. इसमें भी एक पृष्ठ तथा एक अधर सिरस होते हैं।
4. नोटोपोडियम तथा न्यूरोपोडियम पर लम्बी, महीन किन्तु कठोर सीटी का समूह होता है जो सेटीजेरस सैक (setigerous sac) में स्थित होता है।	4. ऐसा ही होता है।
5. विशेष प्रकार की माँस-पेशियाँ सीटी की गति का नियमन करती हैं।	5. ऐसा ही होता है।
6. प्रत्येक सीटी के बण्डल के बीच एक काइटिन की बनी छड़—एसिक्युलम (aciculum) होती है।	6. ऐसा ही होता है।

नेरीस का पार्श्वपाद	हेटरोनेरीस का पार्श्वपाद
भिन्नताएँ (Differences)	
1. पार्श्वपाद छोटे, सरल तथा असंवहनीय होते हैं तथा इनमें विशेष उभार नहीं होते ।	1. शरीर के पिछले भाग में पार्श्वपाद अत्यधिक बड़े हो जाते हैं । ये मोटे, पत्ती के समान तथा अत्यधिक संवहनीय होते है । इनमें पत्ती के समान तथा माँसीले उभार भी निकले रहते हैं ।
2. सीटी केवल साधारण प्रकार के होते हैं ।	2. सीटी चपटे तथा चप्पू के आकार के (oar-shaped) होते हैं ।
3. सीटी वण्डल के रूप में एकत्रित रहते हैं ।	3. सीटी पंखे के रूप में समायोजित होते हैं ।
4. अच्छी प्रकार से तैरने के लिए उपयुक्त नही हैं ।	4. इनके द्वारा जन्तु तेजी से तैर सकता हैं ।
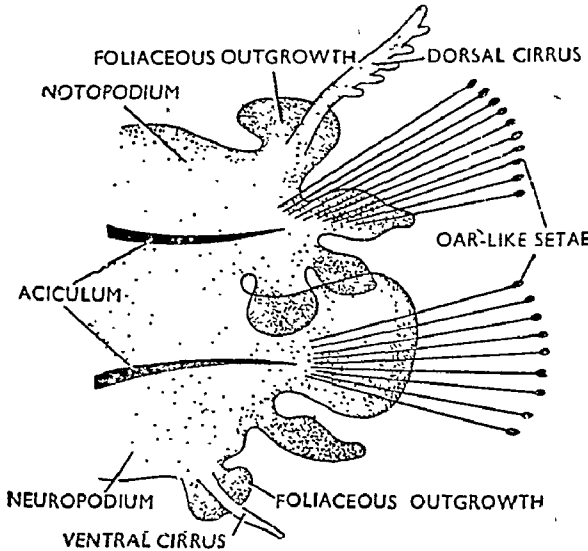
चित्र २·१३. हेटरोनेरीस का पार्श्वपाद (Parapodium of *Heteronereis*)

केंचुआ
(Earthworm)

फाइलम	—	ऐनेलिडा (*Annelida*)
क्लास	—	ओलाइगोकीटा (*Oligochaeta*)
आर्डर	—	~~लिमिकोली (*Limicoae*) या~~ – opisthopora
		नियो-ओलाइगोटीका (*Neo-oligochaeta*)
जीनस	—	फेरेटीमा (*Pheretima*)

प्रश्न १२. फेरेटिमा की देहभित्ति की रचना का वर्णन कीजिये। इसमें त्वचीय श्वसन किस प्रकार से होता है ?

Describe the structure of body-wall of *Pheretima*. How is cutaneous respiration made possible in this worm ? (*Agra 1948*)

फेरेटीमा की देहभित्ति की संरचना
(Structure of Body-wall of Pheretima)

फेरेटीमा की देहभित्ति पतली, लचीली तथा अति संवहनीय होती है। यह डरमो-मस्क्युलर (dermo-muscular) होती है तथा त्वचा की म्यूकस ग्रन्थियों से स्रावित म्यूकस से सदैव नम रहती है। प्रोफाइरिन (prophyrin) नामक रासायनिक यौगिक की उपस्थिति के कारण त्वचा का रंग भूरा होता है। यह सूर्य के प्रकाश से शरीर की रक्षा करता है। त्वचा में स्थान-स्थान पर असंख्य सूक्ष्म छिद्र होते हैं जिनके द्वारा नेफ्रीडिया तथा सीलोम बाहर को खुलते हैं। इसके अतिरिक्त त्वचा के प्रत्येक खण्ड में सीटी का एक वलय पाया जाता है। 14वें, 15वें तथा 16वें खण्ड में त्वचा अत्यधिक मोटी तथा ग्रन्थिल (glandular) होती है और क्लाइटेलम (clitellum) का निर्माण करती है। सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखने पर त्वचा में निम्न स्तर दृष्टिगत होते हैं :—

1. क्यूटिकल (Cuticle)
2. एपिडर्मिस (Epidermis)
3. पेशी-स्तर (Muscle layer)
4. सीलोमिक एपिथीलियम (Coelomic epithelium)

1. क्यूटिकल (Cuticle)—यह त्वचा का बाहरी, पतला, लचीला, अकोशिक (acellular) तथा प्रवेश्य (pervious) आवरण है। यह एपिडर्मिस की कोशिकाओं के रिसने से बनता है। क्यूटिकल धारीदार होती है तथा दो पर्तों से बनती है। क्युटिकल में एपिडर्मल ग्रन्थियों (epidermal glands) के छिद्र होते हैं। क्यूटिकल एपिडर्मल कोशिकाओं तथा शरीर की रक्षा करती है।

2. एपिडर्मिस (Epidermis)—यह क्यूटिकल के नीचे स्थित एककोशिक एपिडर्मिस का स्तर है। एपिडर्मल कोशिकाएँ निम्न चार प्रकार की होती हैं :—

(*i*) **निलम्बक कोशिकाएँ** (Supporting cells)—निलम्बक कोशिकाएँ

स्तम्भाकार (columnar) कोशिकाएँ हैं जिनके मध्य में अण्डाकार केन्द्रक होता है। ये संख्या में वहुत अधिक होती हैं तथा एपिडर्मिस का अधिकांश भाग बनाती हैं।

(*ii*) ग्रन्थि कोशिकाएँ (Gland cells)—सहायक कोशिकाओं के बीच में कहीं-कहीं पर विशेष प्रकार की ग्रन्थि कोशिकाएँ पायी जाती हैं। ये विभिन्न प्रकार के द्रव स्रावित करती हैं और उन्हीं के आधार पर दो प्रकार की होती हैं :—
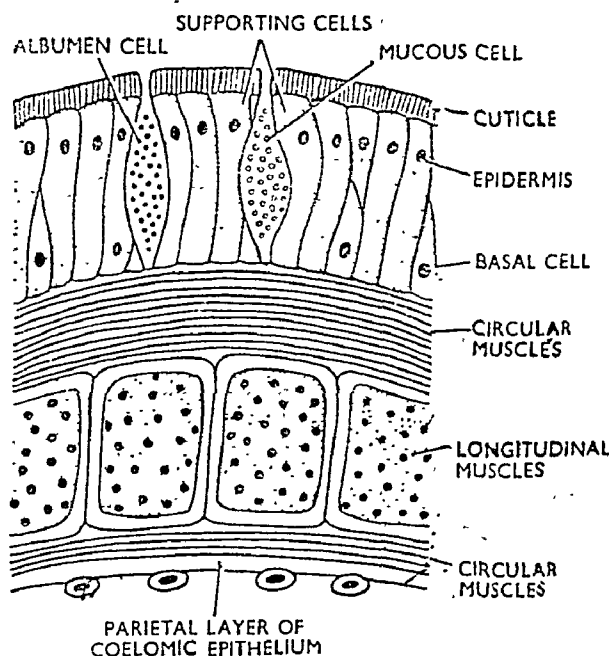
चित्र 3·1. केंचुए की देहभित्ति (T.S. Body-wall of *Earthworm*)

(अ) म्यूकस कोशिकाएँ (Mucous cells)—ये वड़ी अण्डाकार कोशिकाएँ हैं। इनका दूरस्थ भाग (distal part) चौड़ा तथा गोल होता है और उसमें म्यूकस (mucus) भरा रहता है। इसका समीपस्थ सिरा (proximal end) कम चौड़ा होता है और इसमें साइटोप्लाजम तथा केन्द्रक स्थित होते हैं। इसके स्वतन्त्र दूरस्थ सिरे से एक सँकरी नलिका निकलती है जो क्यूटिकल की सतह पर छोटे-से छिद्र द्वारा खुलती है।

(व) एल्वुमन कोशिकाएँ (Albumen cells)—ये अपेक्षाकृत छोटी, संख्या में कम तथा स्तम्भी होती हैं। इनमें केन्द्रक कोशिका के आधार पर होता है तथा स्वतन्त्र सिरा वाहर को खुलता है जिससे एल्वुमन वाहर निकलता है।

(*iii*) आधार कोशिकाएँ (Basal cells)—ये छोटी, लगभग गोलाकार या शंक्वाकार कोशिकाएँ हैं जो सहायक कोशिकाओं तथा ग्रन्थि कोशिकाओं के भीतर पाये जाने वाले सँकरे सिरों के बीच के आन्तर-कोशीय स्थान में पायी जाती हैं। प्रत्येक कोशिका में स्पष्ट केन्द्रक होता है।

(*iv*) संवेदी कोशिकाएँ (Receptor cells)—ये संवेदी अंगों में पायी जाने वाली विभिन्न रूपों में परिवर्तित कोशिकाएँ हैं। ये वाह्य वायुमण्डल द्वारा उत्पन्न हुई संवेदनाओं को ग्रहण करती है ; अतः इनके वाहरी स्वतन्त्र सिरों पर संवेदी रोम (sensory hairs) पाये जाते हैं तथा भीतर के सिरे तन्त्रिका-तन्तुओं से

सम्बन्धित होते हैं। ये संवेदी कोशिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं :—

(अ) एपिडर्मल संवेदी कोशिकाएँ—ये स्पर्श संवेदी होती हैं जो तापक्रम, रासायनिक तथा स्पर्श द्वारा उत्पन्न हुई संवेदनाओं को ग्रहण करती हैं।

(ब) मुखगुहीय संवेदी कोशिकाएँ (Buccal receptor cells)—ये स्वाद संवेदी तथा घ्राण संवेदी अंग बनाती हैं।

(स) प्रकाश संवेदी कोशिकाएँ (Photo-receptor cells)—ये प्रकाश से उत्पन्न उत्तेजनाओं को ग्रहण करती हैं।

3. **पेशी-स्तर** (Muscle layer)—शरीर में पायी जाने वाली समस्त पेशियाँ दो अविच्छिन्न पर्त (continuous layers) बनाती हैं जो एपिडर्मिस के नीचे स्थित होती हैं। बाहरी पतली पर्त वर्तुल पेशियों की बनी होती है और **वर्तुल पेशी-स्तर** (circular muscle layer) बनाती है। भीतर का मोटा स्तर लम्बवत् पेशियों का बना होता है। रंजक कोशिकाएं (pigment cells), संयोजी ऊतक (connective tissues), तन्त्रिका-तन्तु (nerve fibres) तथा रुधिर-केशिकाएँ (blood capillaries) इत्यादि रचनाएं वर्तुल पेशी-स्तर में फैली रहती हैं।

4. **सीलोमिक एपीथीलियम** (Coelomic epithelium)—देहभित्ति का सबसे भीतर का पर्त शल्की-कोशिकाओं (pavement cells) के एककोशिक स्तर का बना होता है। यह शल्की उपकला (pavement epithelium) या **सोमेटिक पेरिटोनियम** (somatic peritoneum) या सीलोमिक एपिथीलियम का पैराइटल स्तर (parietal layer of coelomic epithelium) भी कहलाती है। यह देहभित्ति का भीतरी स्तर या देहगुहा का बाहरी पर्त बनाती है।

त्वचा का रूपान्तरण (Modification of Integument)

1. क्लाइटेलम भाग में एपिडर्मिस बहुत मोटी तथा अत्यधिक संवहनीय होती है। क्लाइटेलर ग्रन्थियाँ (clitellar glands) **एल्बुमन** बनाती हैं जो कोकून बनाने का कार्य करता है।

2. शरीर के अवर तल पर 'S' के आकार की काइटिन की बनी छड़ें या **सीटी** पाये जाते हैं। सीटी सीटल सैक में स्थित होते हैं जो एपिडर्मिस में धँसे रहते हैं। सीटी की कार्य-विधि दो जोड़ी पेशियों द्वारा नियन्त्रित रहती है। एक जोड़ी प्रोट्रेक्टर पेशियाँ सीटल सैक से बाहर की ओर वर्तुल पेशी के ऊपरी स्तर तक फैली रहती हैं। इनके सिकुड़ने से सीटी त्वचा के बाहर निकल आते हैं। एक रिट्रेक्टर पेशी (retractor muscle) सीटल सैक से भीतर की ओर चलती है तथा वर्तुल पेशी के आन्तरिक स्तर से जुड़ी रहती है। इनके सिकुड़ने से सीटी पुनः सीटल सैक में वापिस आ जाते हैं।

त्वचीय श्वसन (Cutaneous Respiration)

फेरीटिमा स्थलीय जन्तु (terrestrial animal) है। इसमें श्वसन के लिए निश्चित अंग नहीं पाये जाते ; अतः श्वसन क्रिया शरीर की सतह द्वारा पूर्ण होती है। इसकी त्वचा अत्यन्त पतली तथा संवहनीय (thin and vascular) होती है। इसमें रक्त-केशिकाओं का जाल-सा फैला रहता है एवम् ग्रन्थि-कोशिकाओं के स्राव तथा सीलोमिक द्रव से यह सदैव नम रहती है। बाह्य वातावरण से ऑक्सीजन बाह्य-द्रव्य में घुलकर रक्त-केशिकाओं में पहुँचती है तथा इसी प्रकार से CO_2 बाहर निकल आती है। यदि त्वचा सूख जाय तो श्वसन रुक जाता है और केंचुआ मर जाता है।

प्रश्न 13. केंचुए की चलन क्रिया का वर्णन कीजिये।

(U.P. Board 1959)

प्रत्येक जन्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उसमें किसी न किसी प्रकार के अंग पाये जाते है। केंचुए मे चलन के कोई विशेष अंग नही होते, फिर भी यह अपनी भित्ति की पेशियो के संकुचन तथा फैलाव से तथा विशेष प्रकार की काइटिनस छड़ो (chitinous rods) के द्वारा
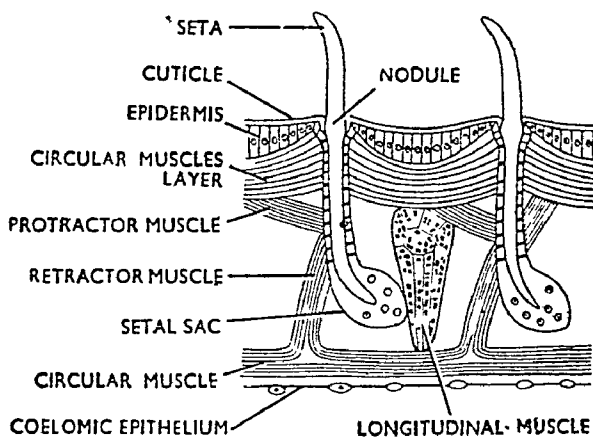
चित्र ३२. केंचुए की देहभित्ति का सीटी वाले भाग से अनुप्रस्थ काट.
(T.S Body wall of *Pheretima* through the region of setae)

चलता है। इन छडो को सीटी (setae) कहते हैं। इसके अतिरिक्त यह मुखगुहा को चूषक (sucker) की भाँति काम मे लाता है।

सीटी काइटिन नामक पदार्थ की वनी हुई अंग्रेजी के अक्षर 'S' के समान रचनाएँ है जो देहभित्ति (body wall) मे घुसी रहती हैं। ये अन्दर की ओर सीटल कोप मे स्थित रहते हैं। सीटल कोप से जुडी हुई दो प्रकार की माँसपेशियाँ आकुचक (protractor muscles) तथा उपाकुचक (retractor muscles) होती हैं। इनके सिकुडने तथा फैलने से सीटी वाहर तथा अन्दर किये जाते है। चलन क्रिया को निम्न-लिखित पदो (steps) मे वाँटा जा सकता है :—
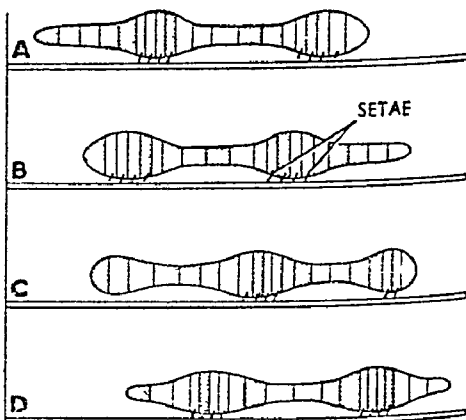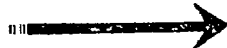
चित्र ३·३ केंचुए मे चलन (Locomotion in Earthworm)

1. चलन के समय केंचुए के पिछले भाग (posterior end) में स्थित सीटी की आकुचक माँसपेशियाँ सिकुडती है तथा उपाकुचक माँसपेशियाँ फैलती हैं, जिससे सीटी वाहर निकल आते है और भूमि मे गड जाते है।

2. अब शरीर के अगले भाग (anterior part) मे इसके विपरीत आकुचक

माँसपेशियाँ सिकुड़ती हैं तथा उपाकुंचक फैलती हैं, जिससे इस भाग के सीटी अन्दर खिच आते हैं और अगला सिरा स्वतन्त्र हो जाता है।

3. इसी क्रिया के साथ-साथ अगले भाग में लम्बवत् माँसपेशियाँ फैलती हैं तथा वर्तुल पेशियाँ सिकुड़ती हैं। फलस्वरूप अगला भाग पतला और लम्बा होकर आगे बढ़ता है। इस दशा में इसका मुख जिस स्थान पर पहुँचता है वहाँ की भूमि से अपनी मुखगुहा द्वारा चिपक जाता है। माँसपेशियों के सिकुड़ने तथा फैलने की यह लहर पीछे की ओर बढ़ती जाती है।

4. अब आगे के भाग की लम्बाई कम हो जाती है। यह क्रिया लम्बवत् माँस-पेशियों के सिकुड़ने तथा वर्तुल माँसपेशियों के फैलने से कम होती है जिससे शरीर का पिछला भाग धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।

5. इसी समय आगे के भाग में आकुंचक माँसपेशियाँ सिकुड़ती हैं तथा उपाकुंचक माँसपेशियाँ फैलती हैं, जिससे इस भाग के सीटी बाहर निकलकर पृथ्वी में धँस जाते हैं।

6. अब लम्बवत् तथा वर्तुल पेशियों के सिकुड़ने तथा फैलने की लहर पीछे की ओर बढ़ती जाती है। फलस्वरूप पिछला भाग आगे की ओर बढ़ता जाता है।

7. साथ ही साथ पिछले भाग के सीटी अन्दर की ओर खींच लिये जाते हैं और शरीर का अन्तिम सिरा भी आगे बढ़ जाता है।

जब शरीर का पिछला भाग दृढ़तापूर्वक भूमि को पकड़ लेता है तो अगला सिरा पुन: लम्बा होकर आगे बढ़ता है। इसी प्रकार पूरे शरीर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक लम्बे होने तथा सिकुड़ने की लहर-सी पैदा हो जाती है जो आगे से पीछे की ओर बढ़ती जाती है। बार-बार यही क्रिया होने से जन्तु रेंगकर आगे की ओर बढ़ता है।

केंचुए के सीटी के बाहरी सिरे प्राय: पीछे की ओर मुड़े रहते हैं और आगे की ओर चलन करने में इसी दशा में रहते हैं। जब कभी जन्तु को पीछे चलना होता है तो सीटी की दिशा बदल जाती है।

प्रश्न 14. (a) फेरेटीमा में सेप्टा के विन्यास एवम् संरचना का वर्णन कीजिये।

(b) केंचुए के देहगुहा द्रव में पायी जाने वाली सीलोमिक कणिकाओं की संरचना एवम् कार्यो का विवरण दीजिये।

(a) Describe the arrangement and structure of the septa in *Pheretima*.

(b) Give an account of the structure and functions of the corpuscles present in the coelomic fluid of earthworm.

सेप्टा का विन्यास एवम् संरचना
(Arrangement and Structure of Septa)

केंचुए की देहगुहा या सीलोम झिल्लीनुमा पट्टिकाओं द्वारा अनेक कक्षों में विभाजित रहती है। ये पट्टिकाएँ **पट** या **सेप्टा** (septa) कहलाती हैं। लगभग समस्त शरीर में सेप्टा का विन्यास शरीर के विखंडन के अनुरूप होता है अर्थात् शरीर की सतह पर उपस्थित लगभग प्रत्येक अन्तराखण्डीय खाँच एक पट को प्रदर्शित करता है। देहगुहा में पटों का विन्यास निम्न प्रकार से होता है :—

1. शरीर के प्रथम चार खण्डों में नहीं होते। प्रथम सेप्टा या पट 4/5 खण्ड के बीच होता है। यह झिल्लीनुमा होता है।

2. 5/6, 6/7, 7/8, 8/9 तथा 10/11 खण्डों के बीच स्थित पट मोटे व पेशीय तथा तिरछे लगे होते है और शंक्वाकार होते है। इन पटों के संकुचन से देहगुहा-द्रव का दाव वढ़ जाता है जिसके फलस्वरूप ग्रगले खण्ड स्फीत हो जाते है और विल वनाने में सहायता करते है।

3. 9/10 खण्डों के बीच सेप्टम का अभाव होता है।

4. 11वें खण्ड के वाद के समस्त सेप्टा पतले तथा अनुप्रस्थ होते हैं।

चित्र ३.४. 14वे खण्ड से पीछे के पटो की सरचना (Structure of septa behind the 14th segment)

5. प्रथम 14 खण्डों के सेप्टा के अतिरिक्त अन्य सभी सेप्टा छिद्रिल होते हैं जिनके द्वारा समस्त खण्डों की देहगुहा सम्पर्क में रहती है।

6. सेप्टा या पट संयोजी ऊतक के वने अनुप्रस्थ पटों अथवा पट्टिकाओं के रूप में होते हैं। छिद्रयुक्त सेप्टा के छिद्रों पर संवरणी पेशियाँ (sphincter muscles) होती हैं।

सीलोमिक द्रव्य संरचना
(Structure of Coelomic Fluid)

केचुए की सीलोम में दुग्ध के समान एक क्षारीय सीलोमिक द्रव भरा रहता है। इसमें लवण, कुछ प्रोटीन, जल व अनेक गुहीय या सीलोमिक कणिकाएँ (coelomic corpuscles) होती है। ये निम्न चार प्रकार की होती है :—

1. फैगोसाइट्स या अमीवोसाइट्स (Phagocytes or amoebocytes)—ये सर्वधिक वड़ी व अधिक संख्या में मिलने वाली कणिकाएँ है। ये गोलाभ कणिकाएँ है जिनमें एक वड़ा केन्द्रक होता है और दलों के समान अनेक पादाभ निकले रहते हैं। इनमें अंतर्ग्रहित वैक्टीरिया इत्यादि के कण होते है। कुछ अमीवोसाइट्स दीर्घाकार हो जाते है जिससे केन्द्रक एक सिरे पर आ जाता है और दूसरा सिरा फैल जाता है। ये उत्सर्जी पदार्थो तथा वैक्टीरिया आदि वाह्य पदार्थो का अतर्ग्रहण करके परजीवियों से रक्षा करते है।
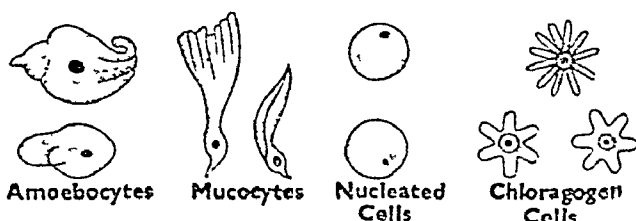
चित्र ३.५. फेरेटीमा : विभिन्न प्रकार की केन्द्रकी कोशिकाएँ (Various types of nucleated calls of *Pheretima*)

रहती है। इसे टिपलोसोल कहते हैं। इसका कार्य आंत्र की अवशोषण सतह को बढ़ाना है। इसके अतिरिक्त यह भोजन के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, जिससे वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।
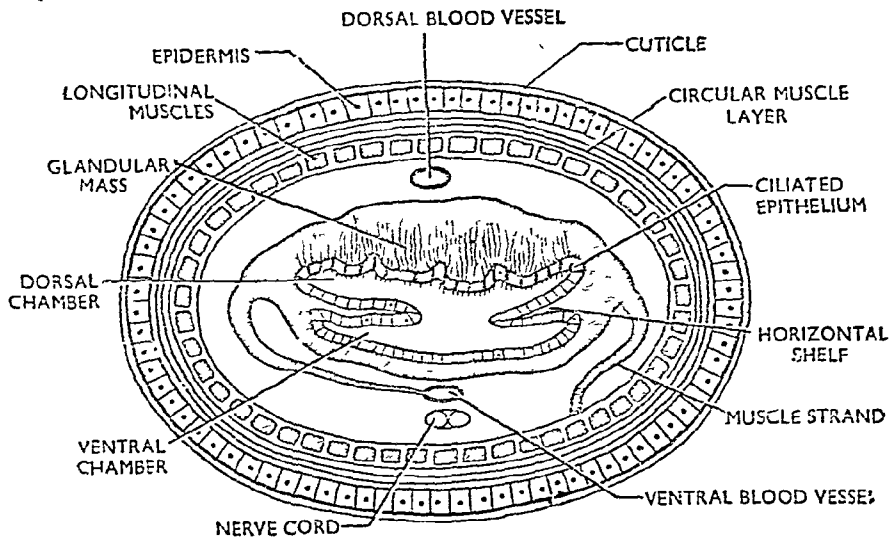
चित्र ३·७. केंचुए का ग्रसनी भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. through pharynx)

27वें खण्ड में आंत्र से एक जोड़ी खोखले उभार निकल कर आगे की ओर 23वें खण्ड तक पहुँच जाते हैं। इन्हें **आंत्र सीकी** (intestinal caecae) कहते हैं। ये पाचक रस बनाते हैं।
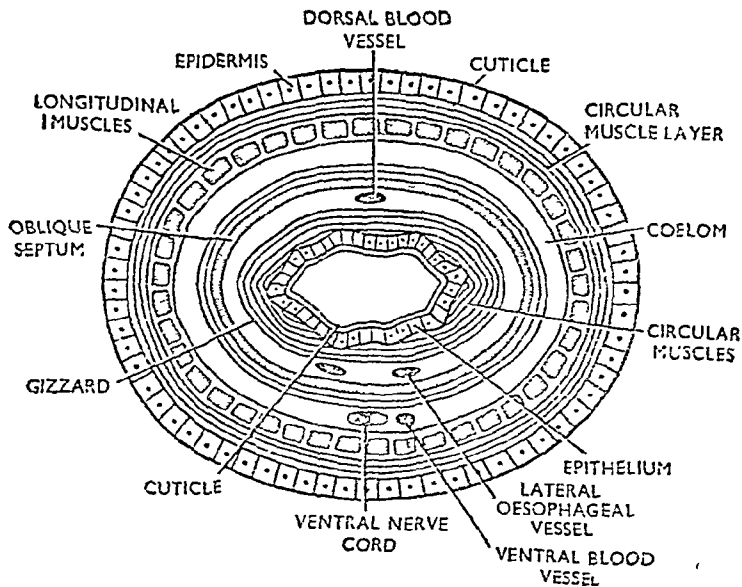
चित्र ३·८. केंचुए का गिजार्ड भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. through gizzard)

7. मलाशय (Rectum)—शरीर के अन्तिम 23 खण्डों में मलाशय पाया जाता है। यह आंत्र के समान होता है, किन्तु इसमें टिफ्लोसोल तथा अंकुर नहीं होते। मलाशय अन्तिम खण्ड में स्थित गुदाद्वार (anus) द्वारा बाहर को खुलता है।

आहार-नाल की औतिकी रचना (Histology of alimentary canal)—आहार-नाल की दीवार क्रमशः चार स्तरों की बनी होती है—
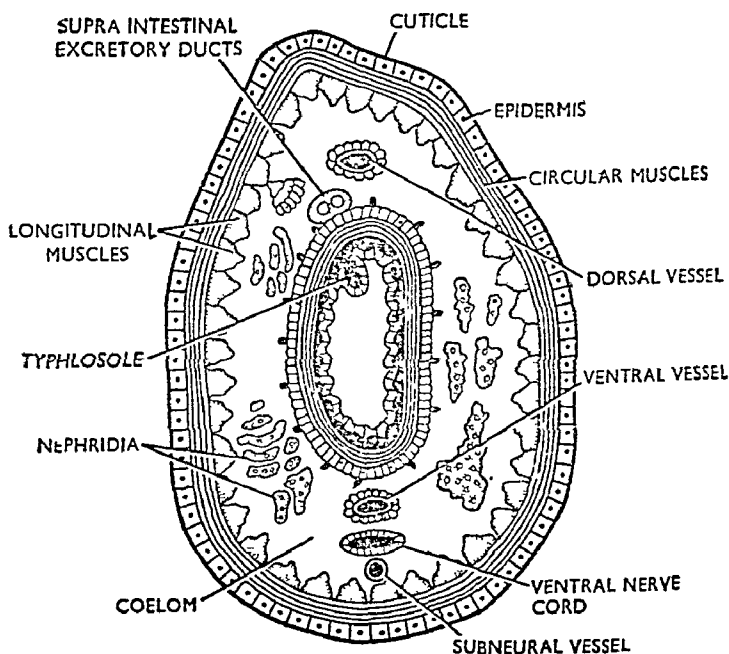
चित्र ३·६. केंचुए का टिफ्लोसोल क्षेत्र से अनुप्रस्थ काट
(T.S. through typhlosole)

(*i*) पेरिटोनियम (Peritoneum)
(*ii*) लम्बवत् पेशियाँ (Longitudinal muscles)
(*iii*) वर्तुल पेशियाँ (Circular muscles)
(*iv*) एपिथीलियल स्तर (Epithelial layer)

एपिथीलियल स्तर की रचना आहार-नाल के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न होती है।

भोजन तथा पाचन (Food and Digestion)

केंचुआ मिट्टी में रहता है और मिट्टी ही खाता है। अतः मिट्टी में पाये जाने वाले समस्त कार्बनिक पदार्थ (organic matter) इसका भोजन हैं। इसमें अण्डे, बीज, लारवा, सड़ी पत्तियाँ तथा मृत पौधों और प्राणियों के अवशेष होते हैं। भोजन को मिट्टी से अलग करने की क्षमता केंचुए में नहीं होती। भोजन लेने के लिए मुख-गुहा, मुखद्वार से बाहर निकलती है और अन्दर किये जाने पर अपने साथ भोजन तथा मिट्टी को भी अन्दर ले जाती है। भोजन को मुलायम करने के लिए इसके शरीर से क्षारीय द्रव निकलकर मिट्टी में मिलता रहता है।

ग्रसनी की पेशियों के सिकुड़ने-फैलने से भोजन अन्दर की ओर बढ़ता है।

ग्रसनी के अन्दर भोजन में पाचक रस मिलता है। Mucin भोजन को चिकना कर देती है तथा पाचक रस का एन्जाइम प्रोटीन को पचाता है। गिजार्ड में भोजन पिस कर छोटे-छोटे कणों में बदल जाता है। आमाशय में बचे हुए प्रोटीन का पाचन हो जाता है।

आंत्र में भोजन का पाचन पूर्ण हो जाता है। यहाँ उसमें कुछ एन्जाइम मिलते हैं—

1. प्रोटियोलिटिक एन्जाइम (Proteolytic enzyme) प्रोटीन को पचाकर पेप्टोन में बदल देता है।

2. लाइपेस (lipase) वसा को ग्लिसरोल तथा फैटी एसिड में बदल देता है।

3. डायस्टेस (diastase) मांड को शक्कर में बदल देता है। इन्टेस्टाइनल सीकी से निकला हुआ पाचक रस मांड को शक्कर में बदल देता है।

पचा हुआ भोजन अधिकांशतया आंत्र में टिफ्लोसोलर भाग द्वारा शोषित कर लिया जाता है। बिना पचा हुआ भोजन गुदाद्वार द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

भोजन नली में खुलने वाले अंग

1. ग्रसनी ग्रन्थियाँ (Pharyngeal glands)—ग्रसनी में पायी जाने वाली ये ग्रन्थियाँ पाचक रसों को छोटी-छोटी नलिकाओं द्वारा ग्रसनी गुहा में पहुँचाती हैं जो भोजन में मिलकर पाचन करते हैं।

2. सुप्राइन्टेस्टाइनल स्राव नलिकाएँ (Supra-intestinal excretory ducts)—ये एक जोड़ी नलिकाएँ पन्द्रहवें खण्ड से शुरू होकर अन्तिम खण्ड तक रहती हैं। इनकी स्थिति भोजन नली के ऊपर तथा पृष्ठीय रक्तवाहिनी (dorsal blood vessel) के नीचे होती है। प्रत्येक खण्ड में इन नलिकाओं से एक-एक छोटी नली निकलकर आंत्र में खुलती है तथा विसर्जित पदार्थ को आंत्र में पहुँचा देती है।

प्रश्न 16. केंचुए के रुधिर परिवहन तन्त्र एवम् परिवहन पथ का वर्णन कीजिये।

Give an account of the blood vascular system and course of circulation in earthworm.

केंचुए के परिवहन तन्त्र का वर्णन करिये। इस प्राणी में रुधिर के कार्यों का उल्लेख करिये।

Write an account of the vascular system of earthworm. Discuss the functions of blood in this animal.

परिवहन तन्त्र (Circulatory System)

केंचुए का परिवहन तन्त्र सुविकसित एवम् संवृत या बन्द प्रकार का होता है। इसमें रुधिर, रुधिर-वाहिनियाँ एवम् हृदय सम्मिलित हैं।

1. रुधिर (Blood)—रुधिर एक तरल पदार्थ, **प्लाज्मा** (plasma) का बना होता है। इसमें अमीबाभ, रंगविहीन एवम् केन्द्रकीय कणिकाएँ निलम्बित रहती हैं। ये उच्च कशेरुकियों के ल्यूकोसाइट्स के समान होता है। रुधिर में श्वसन रंजक हीमोग्लोबिन या एरिथ्रोक्रुओरिन की उपस्थिति के कारण यह चमकीले लाल रंग का होता है।

रुधिर, भोजन, ऑक्सीजन, CO_2 तथा यूरिया को शरीर के विभिन्न भागों को पहुँचाता है।

2. रुधिर वाहिनियाँ (Blood vessels)—रुधिर-वाहिनियाँ संवृत या वन्द नलिकाओं के रूप में होती हैं जिनमें से रुधिर प्रवाहित होता है। प्रथम 13 खण्डों में रुधिर-वाहिनियों का विन्यास 13वें खण्ड से पीछे के खण्डों से पूर्णत: भिन्न होता है। अत: सरलता के लिए रुधिर-वाहिनियों का दो शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है—

A. 13वें खण्ड से पीछे की या आन्त्र प्रदेश की वाहिनियाँ
(Blood Vessels Behind the 13th Segment or in the Intestinal Region)

1. **पृष्ठ रुधिर-वाहिनी** (Dorsal blood vessel)
2. **अधर रुधिर-वाहिनी** (Ventral blood vessel)
3. **सबन्यूरल रुधिर-वाहिनी** (Subneural blood vessel)

1. पृष्ठ रुधिर-वाहिनी (Dorsal blood vessel)—यह शरीर की सबसे बड़ी रुधिर-वाहिनी है जो आहार-नाल के ऊपर मध्य-पृष्ठ रेखा के समान्तर मुख से गुदा तक (mouth to anus) फैली रहती है। इसकी दीवारें मोटी तथा पेशीयुक्त होती हैं। प्रत्येक खण्ड में सेप्टम के आगे इस वाहिनी में एक जोड़ी कपाट (valves) पाये जाते हैं। इसमें रक्त का प्रवाह पीछे से आगे की ओर होता है। यह शरीर के 13वें खण्ड के पीछे के भाग से रक्त इक्ट्ठा करती है।

रक्त इकट्ठा करने के लिए प्रत्येक खण्ड में निम्न दो प्रकार की वाहिनियाँ आकर खुलती हैं :—
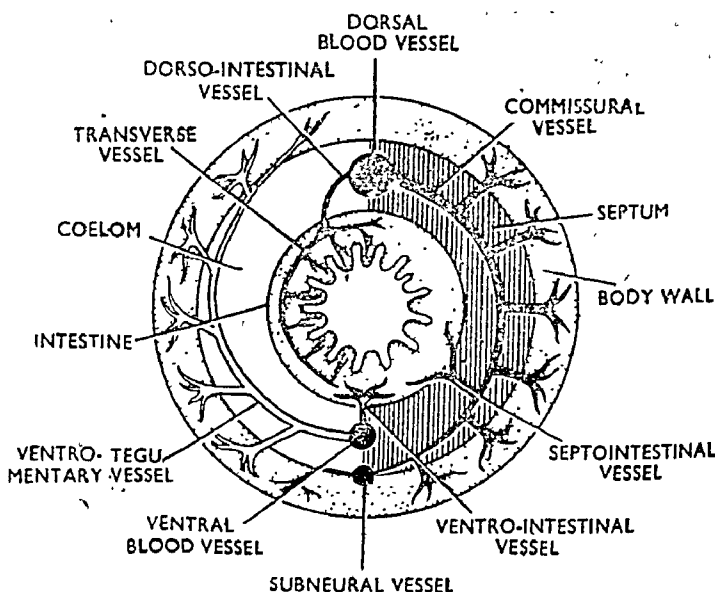
चित्र ३·१०. आंत्र प्रदेश में रुधिर-वाहिनियों का विन्यास प्रदर्शित करने के लिए केंचुए का अनुप्रस्थ सेक्शन : दाहिनी ओर, सेप्टम से; बांयी ओर खण्ड से (*Pheretima*, T.S. body through intestinal region showing arrangement of vessels. On left section is through segment and on right through septum)

(*i*) एक जोड़ी संयोजिनी वाहिनियाँ (A pair of commissural vessels)

(*ii*) दो जोड़ी डोरसो-इण्टेस्टाइनल वाहिनियाँ (Two pairs of dorso-intestinal vessels)

(*i*) संयोजिनी वाहिनियाँ (Commissural vessels)—आंत्र प्रदेश के प्रत्येक खण्ड में सेप्टम की पिछली सतह (posterior surface) पर आंत्र के दोनों
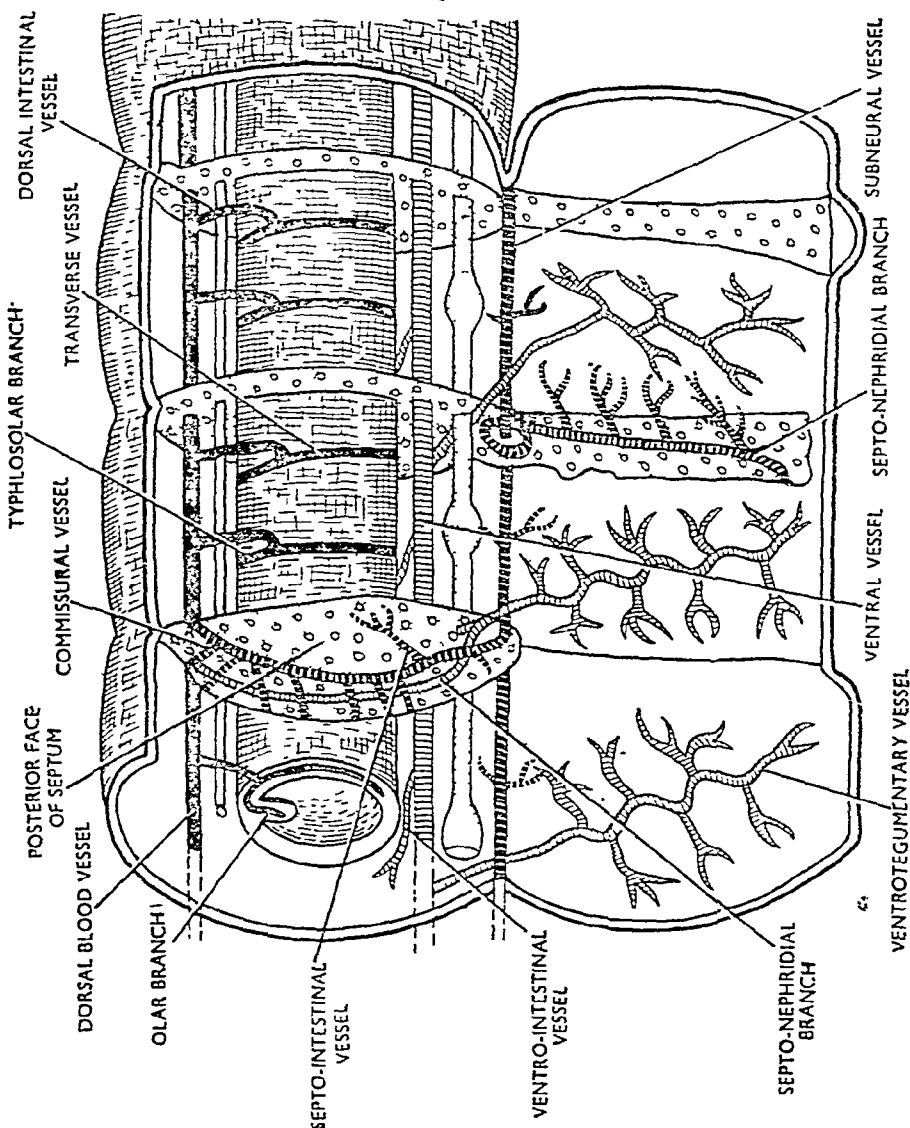
चित्र ३·११. केंचुए के तेरहवें खण्ड से पीछे के भाग में रुधिर वाहिनी तन्त्र (Diagrammatic representation of blood vessels in the body behind 13th segment)

ओर से एक-एक संयोजिनी वाहिनी आकर पृष्ठ-वाहिनी में खुलती है। नीचे की ओर यह सबन्यूरल वाहिनी से जुड़ी रहती है। प्रत्येक संयोजिनी वाहिनी में आंत्र से आने वाली एक शाखा खुलती है जिसे **सेप्टोइन्टेस्टाइनल** (septo-intestinal) कहते हैं। इसके अतिरिक्त पट वृक्कक, प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ तथा देहभित्ति (septal nephridia, prostate glands and body wall) से भी अनेक छोटी-छोटी शाखाएँ आकर खुलती हैं जो इन भागों में रक्त इकट्ठा करके पृष्ठ वाहिनी में पहुँचाती है।

(*ii*) **डोरसो-इन्टेस्टाइनल रुधिर वाहिनी** (Dorso-intestinal blood vessels)—13वें खण्ड से पीछे प्रत्येक खण्ड में दो जोड़ी डोरसो-इन्टेस्टाइनल रुधिर वाहिनियाँ पायी जाती हैं जो आन्त्र की पार्श्व सतहों पर होती है। प्रत्येक वाहिनी अनुप्रस्थ शाखा (transverse branch) तथा टिफ्लोसोलर शाखा (typhlosolar branch) के मिलने से बनती है। अनुप्रस्थ शाखा छोटी-छोटी वाहिनियों द्वारा भोजन नली से तथा टिफ्लोसोलर शाखा टिफ्लोसोल से रक्त एकत्रित करती है।

2. अधर वाहिनी (Ventral blood vessel)—यह रक्तवाहिनी शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आहार-नाल के नीचे तथा नर्व-कॉर्ड के ऊपर पायी जाती है। इसकी दीवारे पतली तथा पेशीयुक्त होती है, परन्तु इसमें वाल्व नहीं होते। इसमें रक्त आगे से पीछे की ओर बहता है। यह वाहिनी शरीर के भिन्न-भिन्न भागो को रक्त बाँटती है। इससे प्रत्येक खण्ड में निम्न वाहिनियाँ निकलती है

(*i*) **एक जोड़ी वैन्ट्रो-टेग्यूमेण्टरी वाहिनियाँ** (A pair of ventro-tegumentary vessels) प्रत्येक खण्ड में सेप्टम के ठीक सामने अवर-वाहिनी से दोनों ओर एक-एक वैन्ट्रोटेग्यूमेण्टरी वाहिनी निकलती है। कुछ दूर चलने पर ये सेप्टम में से होकर पिछले खण्ड में पहुँच जाती है और वहाँ देहभित्ति, त्वक् वृक्कक और पट वृक्कक को रक्त पहुँचाती है। पट वृक्कक के लिए इनसे एक छोटी-सी सेप्टोनेफ्रीडियल शाखा (septo-nephridial branch) निकलती है जो इनसे सेप्टम में घुसने से पहले ही निकल जाती है, अतः यह सेप्टम की अगली सतह पर स्थित होती है।
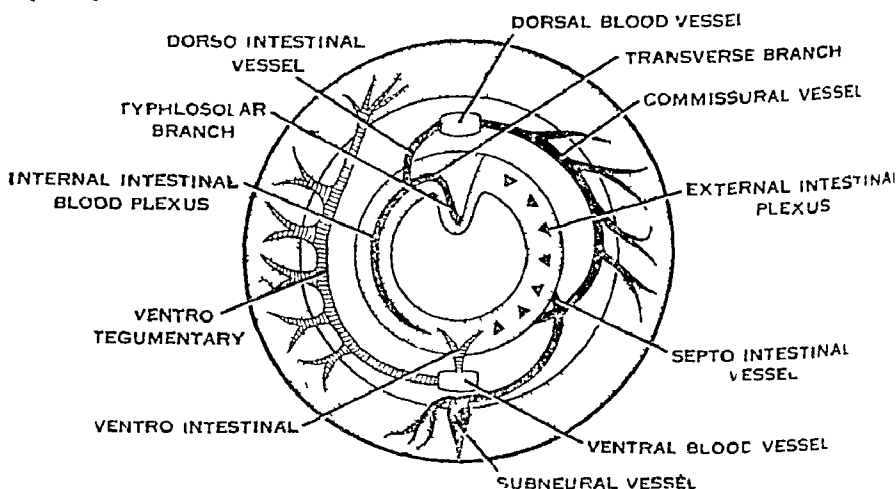
चित्र ३·१२. रुधिर वाहिनियो का विन्यास प्रदर्शित करने के लिए पिछले भाग की अनुप्रस्थ काट (T.S. Posterior region showing the arrangement of vessels)

(*ii*) **वैण्ट्रो-इन्टेस्टाइनल वाहिनी** (Ventro-intestinal vessel)—प्रत्येक खण्ड में अधर-वाहिनी से एक *वैण्ट्रो-इन्टेस्टाइनल वाहिनी* निकलकर आंत्र की अधर सतह को रक्त देती है।

3. सबन्यूरल वाहिनी (Subneural vessels)—चौदहवें खण्ड में दोनों लेटरल इसोफेजियल वाहिनियों (lateral oesophageal vessels) के मिलने से सबन्यूरल वाहिनी का निर्माण होता है। यह चौदहवें खण्ड से लेकर शरीर के अन्तिम खण्ड तक नर्व-कॉर्ड के नीचे फैली रहती है। इनमें रक्त का प्रवाह आगे से पीछे की ओर होता है। इसका कार्य रक्त को इकट्ठा करना है। प्रत्येक खण्ड में देहभित्ति के अधर तल और नर्व-कॉर्ड से इसमें दोनों ओर एक-एक छोटी शाखा आकर खुलती है तथा commissural वाहिनी का एक जोड़ा इनमें निकलकर पृष्ठ *वाहिनी* तक जाता है।

आन्त्र पर रक्त-नलिकाओं के जाल—आंत्र की दीवारों पर रक्त नलिकाओं के दो प्रकार के जाल पाये जाते हैं :—

(*i*) **आन्तर रुधिर जालक** (Internal blood plexus)—आंत्र की दीवार की अन्दर की सतह पर सूक्ष्म रक्त केशिकाओं का जाल बना होता है। केशिकाएँ मिलकर अनुप्रस्थ शाखा (transverse branch) बनाती हैं तथा डोरसो-इन्टेस्टाइनल वाहिनी द्वारा पृष्ठ-वाहिनी में खुलती हैं। इनके द्वारा आंत्र से भोजन का शोषण किया जाता है।

(*ii*) **बाह्य रुधिर जालक** (External blood plexus)—आहार-नाल की दीवार की ऊपरी सतह पर भी रक्त केशिकाओं का जाल बना होता है। यह जाल वैण्ट्रो-इन्टेस्टाइनल वाहिनी से बनता है तथा इसके द्वारा आंत्र की दीवार को रक्त मिलता है। यह जालक आन्तर रक्त केशिकाओं के जालक से सम्बन्धित होता है।

B. अगले तेरह खण्डों की रुधिर वाहिनियाँ
(Blood Vessels in Anterior Thirteen Segments)

1. लम्बवत् रक्त वाहिनियाँ (Longitudinal blood vessels)

2. अनुप्रस्थ वाहिनियाँ (Transverse blood vessels)—हृदय तथा अग्र लूप (heart and anterior loops)।

1. लम्बवत् रक्त वाहिनियाँ (Longitudinal blood vessels)—शरीर के प्रथम 13 खण्डों में निम्न रक्त-वाहिनियाँ शरीर की लम्बाई के समान्तर चलती हैं :

(*i*) **पृष्ठ रक्त वाहिनी** (dorsal blood vessel)
(*ii*) **अधर रक्त वाहिनियाँ** (ventral blood vessels)
(*iii*) **लेटरल इसोफेजियल रक्त वाहिनी** (lateral oesophageal vessels)
(*iv*) **सुप्रा-इसोफेजियल रक्त वाहिनी** (supra-oesophageal vessel)

(*i*) **पृष्ठ वाहिनी** (Dorsal blood vessel)—यह शरीर की सबसे बड़ी वाहिनी है जो प्रथम खण्ड से अन्तिम खण्ड तक फैली रहती है। इसकी दीवारें मोटी तथा पेशीय (muscular) होती हैं। इसमें रक्त प्रवाह पीछे से आगे की ओर (from posterior to the anterior end) होता है किन्तु प्रथम 13 खण्डों में यह रक्त को एकत्रित करने का कार्य करती है। प्रत्येक खण्ड में सेप्टम से कुछ आगे इस वाहिनी में आगे की ओर झुके हुए एक जोड़ी कपाट होते हैं जिससे रक्त आगे की ओर बह सकता है, पीछे को नहीं। आगे के प्रथम तेरह खण्डों में यह रक्त को शरीर

के विभिन्न अंगों तक पहुँचाती है, परन्तु शरीर के पिछले भाग में यह रक्त इकट्ठा करती है। अतः इस भाग में रक्त इकट्ठा करने के लिए डोरसो-लेटरल तथा संयोजिनी
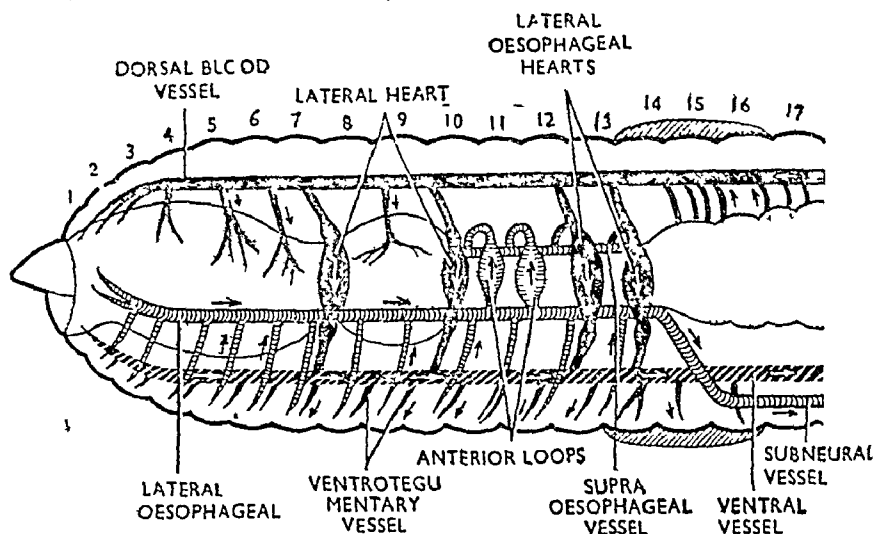
चित्र ३·१३. केंचुए के अगले तेरह खण्डो मे रुधिर वाहिनियो का विन्यास

वाहिनियाँ (dorso-lateral and commissural vessels) नही होती। **पृष्ठ-वाहिनी** (dorsal vessel) तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे तथा आठवे खण्डों में स्थित ग्रसनी वृक्कको (pharyngeal nephridia), ग्रसनी (pharynx), ग्रासनली (oesophagus) तथा पेषणी (gizzard) को रक्त पहुँचाती है। इसके लिए पृष्ठ वाहिनी से तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे तथा आठवे खण्डो से एक-एक जोड़ी शाखाएँ निकलती हैं। सातवे, नवे, बारहवे तथा तेरहवे खण्डों में पृष्ठ वाहिनी एक-एक जोड़ी हृदयों के द्वारा अधर वाहिनी से जुड़ी रहती है। इस प्रकार यह अधर वाहिनी को भी रक्त पहुँचाती है।

(*ii*) **अधर वाहिनी** (Ventral blood vessel)—यह शरीर के पिछले खण्ड से शुरु होकर आगे की ओर दूसरे खण्ड तक आहार-नाल के नीचे तथा नर्व-कॉर्ड के ऊपर फैली रहती है। अतः यह पिछले भाग की ही वाहिनी है। इसकी दीवारे पतली होती हैं, परन्तु कपाट नही होते। इसमें रक्त का प्रवाह आगे से पीछे की ओर होता है। यह केवल रक्त का वितरण (distribution) करती है।

अधर वाहिनी सातवे, नवे, बारहवे तथा तेरहवे खण्डों में स्थित हृदयो के द्वारा पृष्ठ वाहिनी से रक्त लेती है। प्रथम तेरह खण्डों में प्रथम खण्ड को छोड़कर अन्य सभी खण्डों में वेन्ट्रोटेग्यूमेंण्ट्री (ventro-tegumentary) वाहिनी का एक जोडा निकलता है। ये वाहिनियाँ अपने-अपने खण्ड की देहभित्ति (body wall), सेप्टम (septum) तथा अध्यावरणी वृक्कको (integumentary nephridia) को रक्त पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त इन खण्डों मे स्थित जनन अगों जैसे शुक्रग्राहिकाओं (spermathecae), शुक्राशयो (seminal vesicles), अण्डाशयों (ovaries), अण्ड-वाहिनियों (oviducts) इत्यादि को भी यही वाहिनियाँ रक्त पहुँचाती हैं। प्रथम तेरह खण्डो मे आहार-नाल को जाने वाली वाहिनियाँ नही होती।

(*iii*) **लेटरल इसोफेजियल वाहिनियाँ** (Lateral oesophageal vessels)—

शरीर के पिछले भाग में नर्व-कॉर्ड के नीचे **सबन्यूरल वाहिनी** (subneural vessels) पायी जाती है। यह चौदहवें खण्ड में दो शाखाओं में बँट जाती है जो आहार-नाल की पार्श्व सतह (lateral sides) से लगी हुई आगे बढ़ती हैं। इन्हें **लेटरल इसोफेजियल वाहिनियाँ** कहते हैं। इनमें रक्त का प्रवाह आगे से पीछे की ओर होता है। ये वाहिनियाँ देहभित्ति, पट वृक्कों तथा जनन-अंगों से रक्त एकत्रित करती हैं। दसवें तथा ग्यारहवें खण्ड में स्थित एन्टीरियर लूप्स (anterior loops) के द्वारा ये कुछ रुधिर सुप्रा-इसोफेजियल वाहिनी में पहुँचाती हैं और शेष रुधिर सबन्यूरल वाहिनी में चला जाता है।

(*iv*) **सुप्रा-इसोफेजियल वाहिनी** (Supra-oesophageal vessel)—यह नवें से तेरहवें खण्ड तक आमाशय की पृष्ठ दीवार से चिपकी रहती है और रक्त इकट्ठा करती है। दसवें तथा ग्यारहवें खण्ड में स्थित एण्टीरियर लूप्स (anterior loops) के द्वारा यह पार्श्व इसोफेजियल वाहिनियों. से रक्त लेती है। इसके अतिरिक्त यह आमाशय व गिजार्ड की दीवार से भी रुधिर एकत्रित करती है। बारहवें तथा तेरहवें खण्डों में इसका सम्बन्ध पार्श्व इसोफेजियल हृदयों (lateral oesophageal hearts) द्वारा अधर वाहिनी से होता है। इस प्रकार इकट्ठा किया हुआ रक्त यह अधर वाहिनी में पहुँचा देती है।
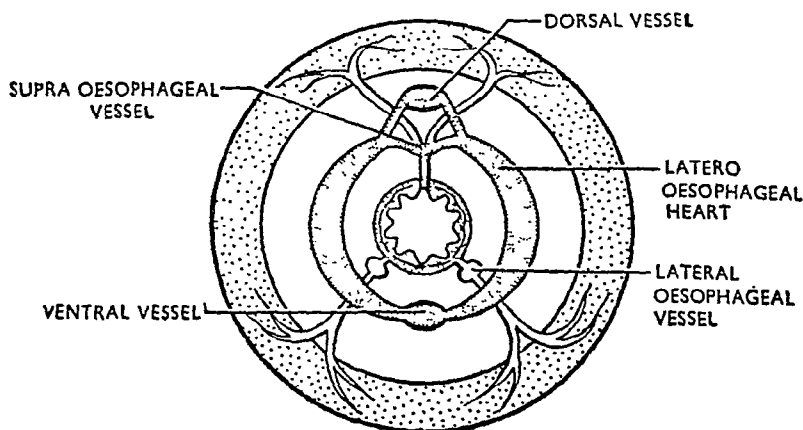
चित्र ३·१४. फेरिटिमा का हृदय वाले भाग से अनुप्रस्थ काट
(T.S. *Pheretima* through heart)

2. हृदय तथा एण्टीरियर लूप्स (Heart and anterior loops)—केंचुए में चार जोड़ी हृदय पाये जाते हैं जो पृष्ठ वाहिनी को अधर वाहिनी से जोड़ते हैं। ये क्रमशः सातवें, नवें, बारहवें तथा तेरहवें खण्ड में स्थित होते हैं। इनकी दीवारें मोटी, पेशीय तथा कुञ्चनशील (thick, muscular and contractile) होती हैं। ये निम्नलिखित होते हैं :—

(i) **पार्श्व हृदय** (Lateral hearts)—दो जोड़ी हृदय क्रमशः सातवें तथा नवें खण्ड में स्थित होते हैं। ये पृष्ठ वाहिनी को अधर वाहिनी से जोड़ते हैं। प्रत्येक में चार जोड़ी कपाट (valves) पाये जाते हैं जिनके कारण रक्त ऊपर से नीचे को ओर बहता है।

(*ii*) लेटरल इसोफेजियल हृदय (Lateral oesophageal hearts)—इनका एक-एक जोड़ा ग्यारहवें तथा बारहवें खण्डों में पाया जाता है। इनमें केवल एक-एक जोड़ी कपाट जोड़ों पर पाये जाते हैं। अतः प्रत्येक में तीन जोड़ी कपाट क्रमशः पृष्ठ वाहिनी, सुप्रा-इसोफेजियल वाहिनी तथा अवर वाहिनी से जुड़ने के स्थान पर होते हैं। इनके द्वारा भी रक्त ऊपर से नीचे की ओर बह सकता है। ये पृष्ठ तथा सुप्रा-इसोफेजियल वाहिनियों को अवर वाहिनी से जोड़ते हैं।
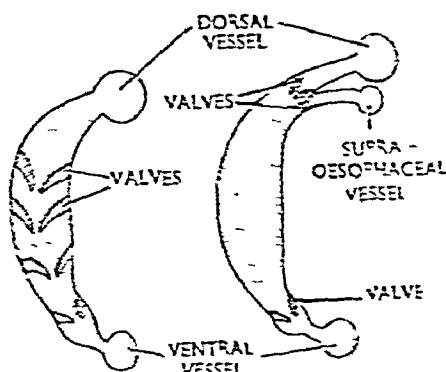
चित्र ३·१५. केंचुए के हृदय

(*ii*) एन्टीरियर लूप्स (Anterior loops)—इनके दो जोड़े दसवें तथा ग्यारहवें खण्डों में स्थित होते हैं। ये आकार में गोल नलियों के समान होते है तथा इनकी दीवारें कुन्चनशील (contractile) नहीं होतीं। इनके द्वारा पार्श्व इसोफेजियल तथा सुप्रा-इसोफेजियल वाहिनियाँ एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं। इनमें कपाट नहीं होते, किन्तु रक्त का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है।

रुधिर का परिवहन पथ
(Course of Blood Circulation)

केंचुए में रुधिर पश्च सिरे से अग्र सिरे की ओर **पृष्ठ वाहिनी** (dorsal vessel) में तथा अग्र सिरे से पश्च सिरे की ओर **अवर वाहिनी** (ventral vessel) में प्रवाहित होता है।

अवर वाहिनी मुख्य वितरण वाहिनी है। यह शरीर के समस्त भागों को रुधिर पहुँचाती है। प्रथम 13 खण्डों में यह देहभित्ति वृक्ककों तथा जनन-अंगों को रुधिर देती है। 13वें खण्ड से पीछे यह वेन्ट्रो-टेग्यूमेन्ट्रीज (ventro-tegumentaries) द्वारा देहभित्ति, वृक्ककों को तथा वेन्ट्रो-इन्टेस्टाइनल (ventro-intestinals) के द्वारा आंत्र की दीवार को रुधिर पहुँचाती है।

, **सबन्यूरल** (subneural). **लेटरल इसोफेजियल्स** (lateral oesophageals) तथा **सुप्राइसोफेजियल्स** (supra-oesophageals) रुधिर को एकत्रित करने वाली मुख्य वाहिनियाँ हैं। आंत्र प्रदेश में सबन्यूरल अवर देहभित्ति तथा नर्व-कॉर्ड से रुधिर एकत्रित करती है और संधायियों (commissurals) द्वारा पृष्ठ वाहिनी (dorsal vessel) में भेज देती है। ये पटों (septa) व वृक्ककों (nephridia) से भी रुधिर एकत्रित करती हैं। **संधायी** आंत्र की दीवार को भी सेप्टो इन्टेस्टाइनल्स (septo-intestinals) द्वारा कुछ रुधिर संवहित करती है।

प्रथम 13 खण्डों में **लेटरल इसोफेजियल्स** (lateral oesophageals) आहार-नाल, देहभित्ति, सेप्टा, वृक्ककों तथा जनन-अंगों से रुधिर एकत्रित कर anterior loops द्वारा सुप्राइसोफेजियल (supra-oesophageal) में पहुँचती हैं और गिजार्ड व आमाशय से भी रुधिर एकत्रित करती है।

पृष्ठ वाहिनी वितरण एवम् संग्रह वाहिनी, दोनों का कार्य करती है। 13वें खण्ड से पीछे आंत्र प्रदेश में यह commissurals द्वारा सबन्यूरल वाहिनी, सेप्टा
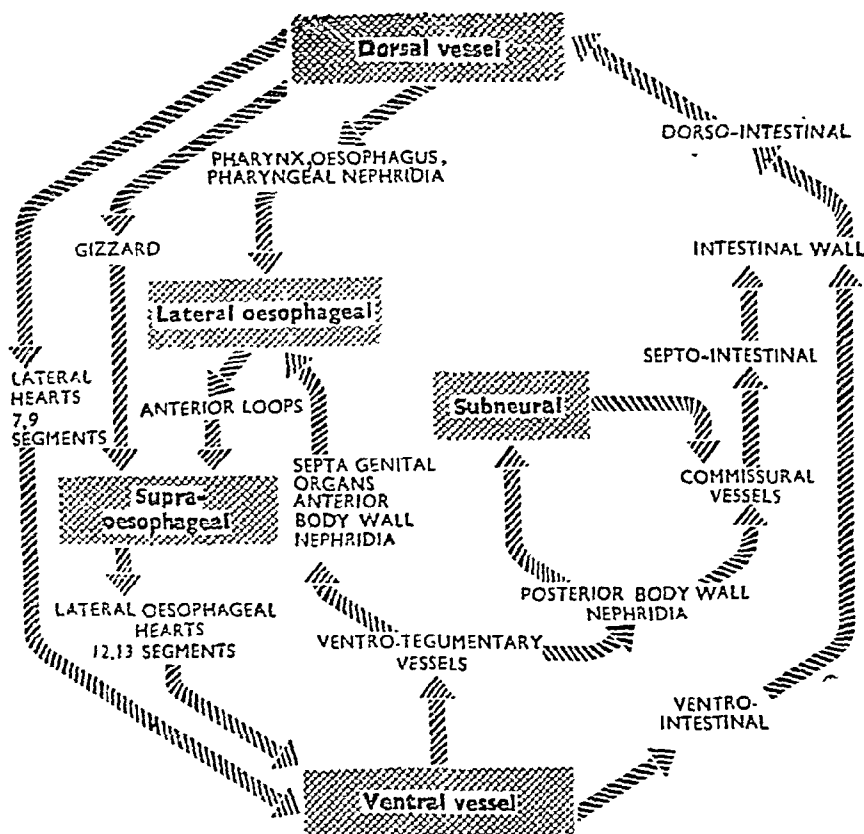
चित्र ३·१६. रुधिर का परिवहन पथ (Course of circulation of blood)

एवम् वृक्ककों से और डॉर्सो-इन्टेस्टाइनल (dorso-intestinals) द्वारा आंत्र की दीवार से रुधिर एकत्रित करती है। प्रथम 13 खण्डों में यह कुछ रुधिर आहार-नाल को तथा हृदयों द्वारा शेष रुधिर अधर वाहिनी में पहुँचाती है।

प्रश्न 17. फेरेटीमा के नेफ्रीडियल तन्त्र का वर्णन कीजिये तथा लीच के साथ इसकी तुलना कीजिये।

Give an account of the nephridial system of *Pheretima* and compare it with that of Leech. (*Agra 1954 ; Lucknow 55 ; Jodhpur 65 ; Gorakhpur 59 ; Vikram 62 ; Ranchi 70 ; Rajasthan 70*)

फेरेटिमा पोस्थुमा के उत्सर्जी तन्त्र का सविस्तार वर्णन कीजिये।

Give an illustrated account of the excretory system of *Pheretima posthuma*. (*Punjab 1967, 69*)

फेरेटीमा का नेफ्रीडियल तन्त्र
(Nephridial System of Pheretima)

फेरेटीमा में उत्सर्जन अंग शरीर के प्रत्येक खण्ड में पायी जाने वाली, अति सूक्ष्म मुड़ी-तुड़ी (coiled) तथा अत्यधिक जटिल रचना वाली नलिकाएँ हैं जो मीसोडर्म से बनती हैं। ये नलिकाएँ वृक्कक या नेफ्रीडिया (nephridia) कहलाती हैं। ये शरीर के अगले तीन खण्डों को छोड़कर अन्य सभी खण्डों में पायी जाती हैं।

नेफ्रीडिया तीन प्रकार के होते है :—

1. सेप्टल नेफ्रीडिया
2. इन्टेग्युमेन्ट्री नेफ्रीडिया
3. फेरिंजियल नेफ्रीडिया

सेप्टल नेफ्रीडिया (Septal Nephridia)

1. स्थिति (Position)—सेप्टल नेफ्रीडिया 15वें खण्ड के पश्चात् सेप्टा की दोनों सतहों पर एक-एक पंक्ति में पाये जाते हैं।

2. संख्या (Number)—प्रत्येक खण्ड में इनकी संख्या लगभग 80 से 100 तक होती है।

3. संरचना (Structure)—एक प्रारूपी नेफ्रीडिया या वृक्कक को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

(*i*) वृक्कक मुख या नेफ्रोस्टोम
(*ii*) ग्रीवा
(*iii*) वृक्कक का शरीर

(*i*) **वृक्कक मुख** (Nephrostome)—वृक्कक मुख पक्ष्माभिकी कीप (ciliated funnel) के आधार का होता है। यह वृक्कक का भीतर वाला भाग है जिसके मध्य में एक दीर्घवृत्ताकार (elliptical) छिद्र होता है। इसके द्वारा नेफ्रीडियम देहगुहा में खुलता है। वृक्कक मुख दो होठों (lips) द्वारा वनता है जिन पर पक्ष्म (cilia) पाये जाते हैं।
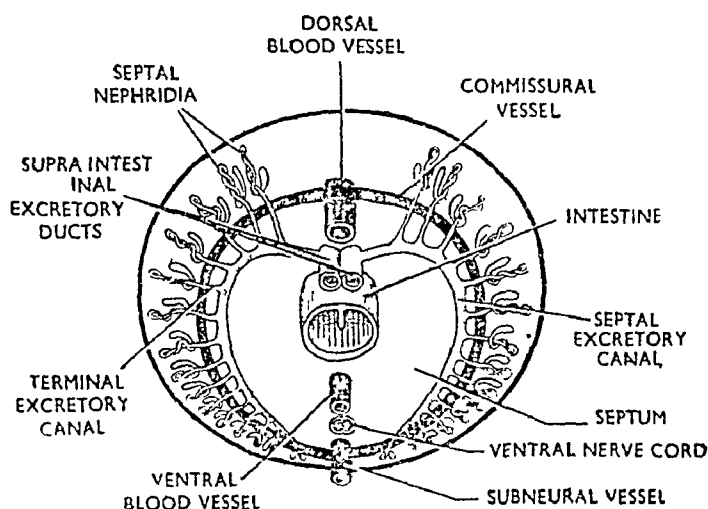
चित्र ३·१७. पट पर सेप्टल नेफ्रीडिया का विन्यास (Arrangement of septal nephridia on septum)

(*ii*) **ग्रीवा** (Neck)—यह एक छोटी तथा सँकरी नलिका है जो पक्ष्माभिकी कीप को नेफ्रीडियम के शरीर से जोड़ती है। इसकी गुहा में एक पक्ष्माभिकी मार्ग (ciliated tract) पाया जाता है।

(*iii*) **वृक्कक का शरीर** (Body of nephridium)—नेफ्रीडियम का शरीर लम्बी, कुण्डलित नलिका का बना होता है और दो भागों में बाँटा जा सकता है—

3. **संरचना** (Structure)—यद्यपि इनकी रचना पट वृक्ककों के समान ही होती है किन्तु इनमें वृक्कक-मुख (nephrostome) अनुपस्थित होता है तथा इनकी अग्रिम वाहिनियाँ अलग-अलग छिद्रों द्वारा देहभित्ति की सतह पर खुलती हैं। ये छिद्र वृक्कक छिद्र या **नेफ्रीडियोपोर** (nephridiopore) कहलाते हैं। त्वक वृक्कक अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं तथा पट वृक्कक की तुलना में लगभग आधे होते हैं। इनके सीधे पिण्डक तथा व्यावृत लूप दोनों लगभग समान लम्बाई के होते हैं; अतः प्रत्येक वृक्कक 'V' के आकार का होता है।

नेफ्रीडिया रक्त तथा सीलोमिक द्रव से नाइट्रोजन के यौगिकों को अलग करते हैं। इनमें रुधिर-केशिकाओं का जाल फैला रहता है। नेफ्रीडिया की ग्रन्थि-कोशिकाएँ (gland cells) हानिकारक पदार्थों तथा पानी की अधिक मात्रा को रुधिर-वाहिनियों में पाये जाने वाले रक्त से अलग करके आहार-नाल में अथवा शरीर के बाहर डालती हैं।

त्वक् वृक्कक (integumentary nephridia) **वृक्कक रन्ध्रों** (nephridial pores) द्वारा अपने उत्सर्जी पदार्थ शरीर की सतह पर निकालते हैं; अतः ये **बहिवृक्ककीय** (exonephric) होते हैं। **ग्रसनी तथा सेप्टल** वृक्कक अपने उत्सर्जी पदार्थों को आहार नाल की गुहा में स्खलित करते हैं; अतः ये **अंतः वृक्ककीय** (endonephric) होते हैं।

फेरेटीमा तथा लीच के नेफ्रीडियल तन्त्र की तुलना
(Comparison of Nephridial System of *Pheretima* and *Leech*)

फेरेटीमा (*Pheretima*)	**लीच** (*Leech*)
1. नेफ्रीडिया अति सूक्ष्म तथा सूक्ष्मदर्शी आकार (microscopic size) के होते हैं।	1. नेफ्रीडिया बड़े होते हैं तथा बिना सूक्ष्मदर्शी के भी देखे जा सकते हैं।
2. प्रथम दो खण्डों को छोड़कर ये शरीर के अन्य सभी खण्डों में पाये जाते हैं।	2. नेफ्रीडिया छठे से बाइसवें खण्ड तक ही पाये जाते हैं।
3. प्रत्येक खण्ड में बहुत-से नेफ्रीडिया पाये जाते हैं तथा इनकी संख्या शरीर के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न होती है।	3. एक खण्ड में केवल एक जोड़ी नेफ्रीडिया पाये जाते हैं।
4. नेफ्रीडिया तीन प्रकार के होते हैं— (*i*) पट वृक्कक (*ii*) त्वक् वृक्कक (*iii*) ग्रसनी वृक्कक	4. नेफ्रीडिया केवल दो प्रकार के होते हैं— (*i*) टेस्टीक्युलर (*ii*) प्रीटेस्टीक्युलर
5. पट वृक्कक की रचना प्रारूपी (typical) होती है और यह तीन भागों में बाँटा जा सकता है— (*i*) वृक्कक मुख (*ii*) ग्रीवा (*iii*) वृक्कक का शरीर	5. प्रत्येक नेफ्रीडियम घोड़े की नाल के आकार का (horse-shoe-shaped) बना होता है।

फेरेटीमा (*Pheretima*)	लीच (*Leech*)
6. प्रत्येक नेफ्रीडियम 'V' या 'Y' के आकार की कुण्डलित नलिका होती है।	6. प्रत्येक टेस्टीक्युलर नेफ्रीडिया में 6 भाग होते हैं— (*i*) मुख पिण्डक (Main lobe) (*ii*) वेसिकल (Vesicle) (*iii*) शीर्ष पिण्डक (Apical lobe) (*iv*) आन्तरिक पिण्डक (Inner lobe) (*v*) प्रारम्भी पिण्डक (Initial lobe) (*vi*) पक्ष्माभिकी अग (Ciliated organ)
7. वृक्कमुख (nephrostome) केवल सेप्टल नेफ्रीडिया मे पाया जाता है। अन्य प्रकार के नेफ्रीडिया मे यह अनुपस्थित होता है।	7. वृक्कमुख अनुपस्थित होता है ; अतः प्रत्येक नेफ्रीडिया भीतर के सिरे पर बन्द होता है और देहभित्ति मे नही खुलता।
8. नेफ्रीडिया अपना उत्सर्जी पदार्थ आहार-नाल मे अथवा शरीर के बाहर फेंकते हैं ; अत. उत्सर्जन-तन्त्र एण्ट्रोनेफ्रीक तथा एक्सोनेफ्रीक दोनो प्रकार का होता है।	8. प्रत्येक खण्ड के अन्तिम एन्युलस पर नेफ्रीडिया शरीर के बाहर खुलते हैं।
9. नेफ्रीडिया मे नेफ्रीडियल ट्युब्यूल या सिलियेटेड ट्रेक्ट पाये जाते हैं। समीपस्थ भाग मे इनकी सख्या दो, आधार भाग मे तथा सीधे पिण्डक मे चार एवम् टर्मिनल वाहिनी मे केवल एक होती है।	9. पक्ष्मभिकी पथ अनुपस्थित होता है।
10. उत्सर्जन क्रिया नेफ्रीडिया तथा क्लोरेगोगन कोशिकाओ द्वारा होती है।	10. उत्सर्जन मुख्यत. नेफ्रीडिया के मुख्य पिण्डक द्वारा होता है परन्तु बोट्रिओइडल ऊतक (botryoidal tissue) भी इस कार्य मे सहायता करता है।
11. नफ्रीडिया की ग्रन्थि-कोशिकाएं रक्त तथा सीलोमिक द्रव से व्यर्थ उत्सर्जी नाइट्रोजिनस पदार्थों को अलग करती हैं।	11. नेफ्रीडिया का मुख्य पिण्डक हीमोसीलोमिक द्रव से उत्सर्जी पदार्थो को अलग करता है।

प्रश्न 18. फेरेटीमा के सेप्टल नेफ्रीडियम की रचना का वर्णन कीजिये। इसके नेफ्रीडियल तन्त्र की विशेषताएँ बताइये।

Describe the structure of septal nephridium of *Pheretima*. What are the peculiarities in the nephridial system of the worm ?

(*Kanpur 1968 ; Agra 57*)

पट वृक्कक की रचना (Structure of Septal Nephridium)

कृपया प्रश्न 16 देखिये ।

फेरेटिमा के नेफ्रीडियल तन्त्र की विशेषताएँ
(Peculiarities of the Nephridial System of Pheretima)

(*i*) नेफ्रीडिया अधिक संख्या मे पाये जाते हैं ।

(*ii*) नेफ्रीडिया तीन प्रकार के होते हैं और स्थिति के अनुरूप ये निम्नलिखित नामों द्वारा पुकारे जाते है :—

(*a*) **पट वृक्कक** (Septal nephridia)—ये पट या सेप्टा के दोनों ओर लगे रहते हैं।

(*b*) **ग्रसनी वृक्कक** (Pharyngeal nephridia)—ये ग्रसनी भाग में चौथे, पाँचवें तथा छठे खण्ड में स्थित होते हैं।

(*c*) **त्वक वृक्कक** (Integumentary nephridia)—ये त्वचा की आन्तरिक सतह पर पाये जाते हैं।

(*iii*) **एक्सोनेफ्रीक** (exonephric) तथा **एन्ट्रोफ्रीक** (enteronephric) दोनों प्रकार के नेफ्रीडियल तन्त्र पाये जाते हैं।

(*a*) **एण्ट्रोनेफ्रीक** नेफ्रीडियल तन्त्र जन्तु के स्थलीय स्वभाव के अनुरूप है क्योंकि इससे उत्सर्जी द्रव में से पानी का पुन: शोषण कर लिया जाता है, जिससे पानी की कमी नहीं होने पाती।

(*b*) **एक्सोनेफ्रीक** तन्त्र से निकला द्रव जन्तु की त्वचा को गीला रखता है जिससे श्वसन क्रिया सम्भव हो सके।

प्रश्न १९. केंचुए या लीच के ग्राहक अंगों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the receptor organs either in Earthworm or Leech. (*Luck. 1958, 66 ; Agra 70*)

केंचुए के ग्राहक अंग
(Receptor Organs of Earthworm)

केंचुए के ग्राहक अंग सरल तथा कम विकसित होते हैं। ये अधिकतर शरीर के अगले भाग में स्थित होते हैं। ग्राहक अंग एककोशिक तथा बहुकोशिक दोनों प्रकार के होते हैं। कार्य तथा स्थिति के अनुरूप इन्हें निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. एपिडर्मल ग्राहक या स्पर्शग्राही
2. मुखगुहीय ग्राही
3. प्रकाश ग्राही

1. एपिडर्मल ग्राही अथवा स्पर्श ग्राही (Epidermal receptors or tango-receptors)—ये ग्राही कोशिकाओं के समूह से बनी अण्डाकार रचनाएँ हैं जो समस्त शरीर की सतह पर पाये जाते हैं। ये अधर तथा पार्श्व-तलों पर अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इनकी कोशिकाएँ लम्बी, पतली तथा स्तम्भाकार (columnar) होती हैं जिनके स्वतन्त्र सिरों पर संवेदी पक्ष्म (sensory cilia) पाये जाते हैं तथा भीतर के चौड़े समीपस्थ सिरों पर तन्त्रिका तन्तु जुड़े रहते हैं।

संवेदी कोशिकाओं के बीच आन्तर-कोशिक स्थान होता है। इनके समूह के दोनों ओर आलम्बक कोशिकाएँ (supporting cells) पायी जाती हैं तथा आधार पर आधार कोशिकाएँ (basal cells) लगी होती हैं। स्पर्श ग्राही की बाहरी सतह पर मोटी उभरी हुई क्यूटिकल की पर्त होती है। एपिडर्मल ग्राही की कोशिकाएँ स्पर्श ग्राही (tactile) होती हैं तथा रासायनिक एवम् ताप सम्बन्धी उद्दीपनों से उत्तेजित होती हैं।

2. मुख-गुहीय ग्राही (Buccal receptors)—मुख-गुहीय ग्राही मुखगुहा की एपिथीलियम में पाये जाते हैं। संरचना में ये एपिडर्मल ग्राही के ही

समान होते हैं परन्तु इनके वाहरी सिरे चौड़े होते है और इनके ग्राही पक्ष्म (sensory cilia) अधिक विकसित होते हैं। ये रस ग्राही (gustatory) तथा **घ्राण ग्राही** (olfactory) होते है ; अतः ये दो प्रकार के होते है :—

(i) **स्वाद ग्राही** (Gustoreceptors) भोजन का स्वाद वतलाते है तथा घ्राण ग्राही की अपेक्षा संख्या में अधिक होते हैं।

चित्र ३·२०. केंचुए का स्पर्श ग्राही या एपिडर्मल ग्राही (Tango-receptor)

(ii) **घ्राण ग्राही** (Olfactoreceptors) गन्ध को पहचानते हैं तथा कुछ रासायनिक उत्तेजनाओं को भी ग्रहण करते हैं।
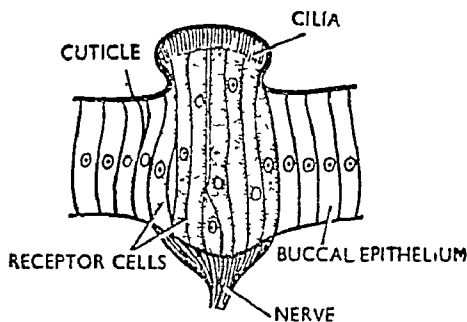
चित्र ३·११. केंचुए का मुख-गुहीय ग्राही (Buccalreceptor)
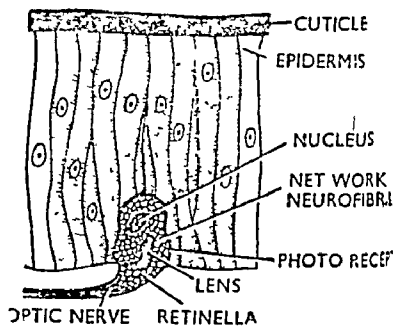
चित्र ३·२२. केचुए का प्रकाश ग्राही (Photoreceptor)

3. **प्रकाश ग्राही** (Photoreceptors)—केंचुए में प्रकाश ग्राही शरीर की पृष्ठ-सतह पर पाये जाते है। ये प्रोस्टोमियम (prostomium) एवम् मुखगुहीय खण्डों मे अधिक संख्या में पाये जाते है तथा शरीर के पिछले भाग मे धीरे-धीरे कम होते जाते है। प्रत्येक प्रकाश ग्राही एक एककोशिक (unicellular) रचना है जो लगभग अण्डाकार होती है। प्रत्येक प्रकाशग्राही कोशिका में एक केन्द्रक, स्पष्ट जीवद्रव्य तथा 'L' आकार का लेन्स (lens) या दृष्टि-अंगक (optic organelle) पाया जाता है। जीवद्रव्य में न्यूरोफाइब्रिली (neurofibrillae) का जाल-सा फैला रहता है। ये फाइब्रिली एक ओर लेन्स से तथा दूसरी ओर दृष्टि-तन्त्रिका (optic nerve) से सम्बन्धित होते है। ये प्रकाश ग्राही होते है तथा प्रकाश एवम् अन्धकार मे भेद करते है।

प्रश्न 20. फेरेटीमा के जनन अंगों का वर्णन कीजिये। इस जन्तु में कोकून किस प्रकार से बनता है ?

Give an account of the reproductive system of *Pheretima*. How is cocoon formed in this animal ?

(Gorakhpur 1963 ; Agra 61, 67)

यह तुरन्त ही अपनी ओर की दोनों शुक्रवाहिनियों के साथ एक मोटे आवरण में वन्द हो जाती है और **संयुक्त प्रोस्टेटिक तथा स्पर्मेटिक वाहिनी** (common prostatic and spermatic duct) वनाती है। यह भीतर की ओर मुड़कर घोड़े की नाल के या 'U' के आकार की हो जाती है। दोनों ओर की ये वाहिनियाँ अठारहवें खण्ड के मध्य में पृष्ठ-तल की मध्य-रेखा के दोनों ओर स्थित एक जोड़ी नर जनन छिद्रों द्वारा वाहर को खुलती हैं। प्रत्येक नर जनन छिद्र में तीन अलग-अलग छिद्र होते हैं। इनमें से एक प्रोस्टेट वाहिनी का तथा दो शुक्रवाहिनियों के छिद्र होते हैं। प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ प्रोस्टेटिक द्रव वनाती हैं जिसका कार्य अभी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है।

6. सहायक ग्रन्थियाँ (Accessory glands)—सहायक ग्रन्थियों का एक-एक जोड़ा क्रमशः सत्रहवें तथा उन्नीसवें खण्डों में स्थित होता है। ये लगभग गोलाकार रचनाएँ हैं जो देहगुहा के फर्श पर अर्थात् अधर-तल पर नर्व-कॉर्ड के दोनों ओर स्थित होती हैं। शरीर की सतह पर इनकी स्थिति जनन अंकुरों (genital papillae) द्वारा ष्ट होती है। इन ग्रन्थियों से वना द्रव असंख्य सूक्ष्म वाहिनियों द्वारा जनन अंकुरों सतह पर एकत्रित होता है। यह द्रव मैथुन में सहायक होता है।

मादा जनन अंग
(Female Genital Organs)

1. एक जोड़ी अण्डाशय
2. एक जोड़ी अण्डवाहिनियाँ
3. चार जोड़ी शुक्र धानियाँ

1. अण्डाशय (Ovaries)—केंचुए में अण्डाशय एक जोड़ी श्वेत रंग की सूक्ष्म प्रांगुलित (digitate) या अंगुली के आकार की रचनाएँ होती हैं। ये नर्व-कॉर्ड (nerve cord) के दोनों ओर अधर तल पर तेरहवें खण्ड में स्थित होते हैं तथा वारहवें तथा तेरहवें खण्डों को अलग करने वाले सेप्टम की पिछली सतह से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक अण्डाशय में बहुत-से अंगुली के आकार के प्रवर्ध निकले रहते हैं जिनमें विभिन्न आकार तथा वर्धन अवस्थाओं में अण्डे एक पंक्ति में लगे रहते हैं। इनका विन्यास क्रमिक linear succession) होता है। वड़े तथा परिपक्व अण्डे प्रवर्धों के दूरस्थ वन्द सिरों की ओर स्थित होते हैं।

2. अण्डवाहिनियाँ (Oviducts)—अण्डवाहिनियों का एक जोड़ा अण्डाशय के पीछे तेरहवें खण्ड में स्थित होता है। प्रत्येक अण्डवाहिनी का अगला सिरा चौड़ा तथा तश्तरी के आकार का होता है जिसका किनारा लहरदार होता है और इस पर पक्ष्म लगे रहते हैं। यह रचना ओविड्युकल फनल (oviducal funnel) कहलाती है। अण्डवाहिनी का शेप भाग शंक्वाकार होता है जो पीछे तथा भीतर की ओर वढ़ता है तथा तेरहवें व चौदहवें खण्ड के वीच के सेप्टम को छेदकर चौदहवें खण्ड में आ जाता है। यहाँ यह दूसरी ओर की अण्डवाहिनी के साथ सम्मेकित होकर केवल एक छिद्र द्वारा वाहर को खुलता है। यह **मादा जनन छिद्र** कहलाता है तथा चौदहवें खण्ड के अधर-तल की मध्य-रेखा पर स्थित होता है।

3. शुक्र-धानियाँ (Spermathecae)—शुक्र-धानियों के चार जोड़े छठे खण्ड से नवें खण्ड तक पाये जाते हैं। ये अधर पार्श्वतल (ventro-lateral surface) पर स्थित होती हैं तथा 5/6, 6/7, 7/8 एवम् 8/9 खण्डों के वीच के सेप्टा के पिछले तल से जुड़ी रहती हैं। प्रत्येक शुक्रधानी छोटी व फ्लास्क के आकार की रचना है जिसमें

एक बड़ा नाशपाती के आकार का एम्पुला (ampulla) होता है। इसका अगला सिरा छोटी-सी गर्दन के रूप में होता है। इससे एक छोटी, लम्बी तथा बन्द थैले के समान रचना निकली होती है जो सीकम या डाइवर्टिकुलम (caecum or diverticulum) कहलाती है। एम्पुला की छोटी गर्दन शरीर के अधर तल पर स्थित शुक्रधानी छिद्र
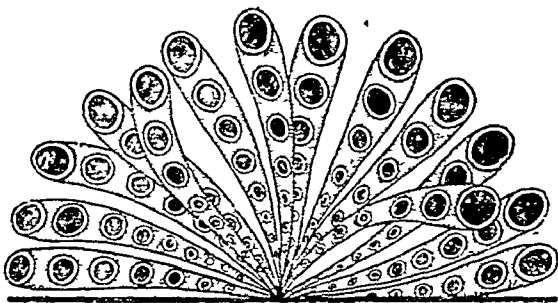
चित्र ३·२४. केंचुए का अण्डाशय (Ovary of Earthworm)

द्वारा बाहर को खुलती है। शुक्रवाहिनी छिद्र दो खण्डों के बीच की खाई में पार्श्व सतह पर स्थित होता है। अतः शुक्रवाहिनी छिद्रों के चार जोड़े क्रमशः 5/6, 6/7, 7/8 एवम् 8/9 खण्डों के बीच की खाई मे दिखाई देते हैं। मैथुन के फलस्वरूप प्राप्त शुक्राणुओं को शुक्र-धानियाँ संचित करती हैं।

मैथुन (Copulation)

केंचुए में निश्चित रूप से पर-निषेचन (cross-fertilization) होता है; अतः निषेचन से पहले मैथुन-क्रिया होती है। भारतीय केंचुए में मैथुन-क्रिया का अध्ययन नहीं किया गया है, परन्तु यह माना जाता है कि मैथुन-क्रिया वर्षा ऋतु में रात्रि के समय होती है तथा लगभग एक घण्टे में पूर्ण होती है। शाम आरम्भ होते ही दो लैंगिक रूप से परिपक्व केंचुए अपनी अधर सतहों द्वारा एक-दूसरे के सम्पर्क में आते है। एक केंचुए का अगला सिरा दूसरे केंचुए के पिछले सिरे की ओर होता है जिसके फलस्वरूप एक केंचुए के नर जनन छिद्र दूसरे जन्तु के शुक्रधानी छिद्रों के सम्पर्क मे होते हैं। नर जनन छिद्रों के समीप के स्थान उभर कर अकुरों (papillae) के समान रचना बनाते
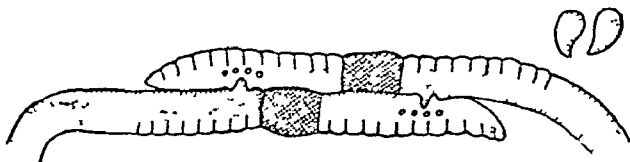
चित्र ३·२५. केंचुए में मैथुन (Copulation in Earthworm)

है जो दूसरे केंचुए के शुक्रधानी में घुस जाते है। यूटाइफियस (*Eutyphaeus*) जाति के केंचुए में अकुरों के अतिरिक्त साधारण प्रोस्टेटिक तथा स्पर्मेटिक वाहिनियाँ (common prostatic and spermatic ducts) भी जनन छिद्रों में घुस जाती हैं; अतः दोनों केंचुओं मे शुक्राणुओं का आदान-प्रदान हो जाता है जिसके पश्चात् ये एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं।

कोकून का निर्माण (Formation of Cocoon)

भारतीय केंचुओं में कोकून की निर्माणविधि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही है। दूसरी जाति के केंचुओं मे मैथुन-क्रिया के पश्चात् क्लाइटेलम में पायी जाने वाली ग्रन्थियों

से स्रावित द्रव के सूखने से क्लाइटेलम के चारों ओर एक पेटी (girdle or band) के समान रचना बन जाती है। इस पेटी के भीतर एल्बुमन के एकत्रित होने से एक नलिका बन जाती है। यह एल्बुमन एपिडर्मिस की म्यूकस ग्रन्थियों द्वारा स्रावित किया जाता है। मादा जनन छिद्रों में से निकलकर अण्डे इस नयी रचना में इकट्ठे
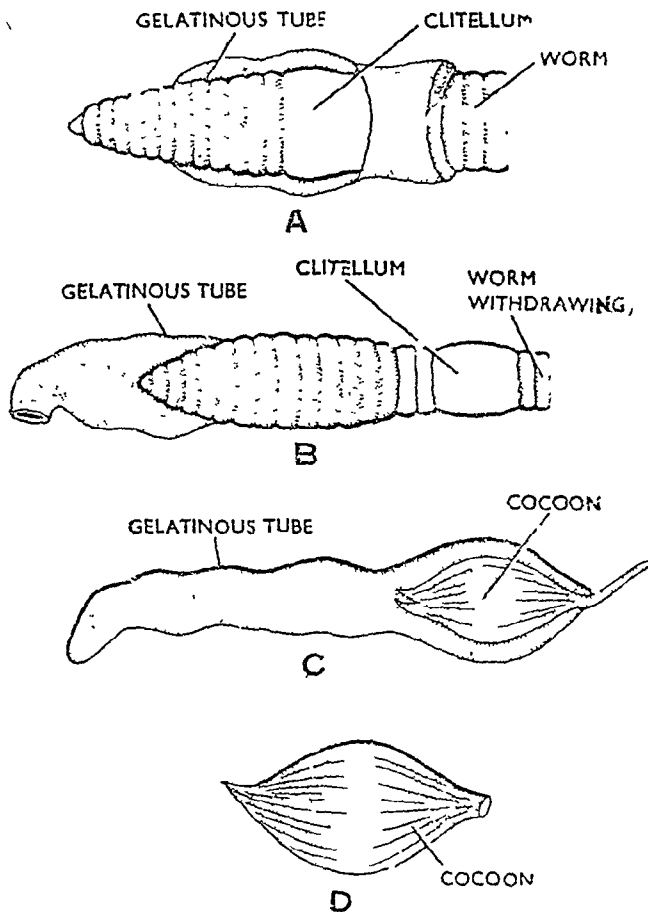
चित्र ३·२६. केंचुए में कोकून-निर्माण (Formation of cocoon in Earthworm)

हो जाते हैं। इसके पश्चात् केंचुआ इस पट्टी से बाहर निकलने के लिए पीछे की ओर खिसकता है जिससे कोकून आगे की ओर बढ़ता है। जब यह शुक्रधानियों के स्थान पर पहुँचता है तो शुक्रधानी छिद्रों में से निकलकर शुक्राणु भी कोकून में आ जाते है। केंचुए के और पीछे खिसकने पर कोकून इसके शरीर से अलग हो जाता है। इसके पश्चात् इसके दोनों सिरे सिकुड़ कर बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार लगभग गोलाकार, पीले-से रंग का कोकून बनता है।

अगस्त, सितम्बर तथा अक्टूबर महीनों में कोकून नम मिट्टी में जमा कर दिये जाते हैं। अण्डों का निषेचन कोकून के भीतर ही होता है।

jiudi

लीच
(Leech)

फाइलम	—	ऐनेलिडा (*Annelida*)
क्लास	—	हिरुडिनिया (*Hirudinea*)
जीनस	—	ग्नेथोब्डेलिडा (*Gnathobdellida*)
आर्डर	—	हिरुडिनेरिया (*Hirudinaria*)

प्रश्न 21. हिरुडिनेरिया के बाह्य लक्षणों का वर्णन कीजिये।
Give an account of the external features of Hirudinaria.

(*Jiwaji 1970*)

हिरुडिनेरिया (*Hirudinaria*) या सामान्य इण्डियन कैटल लीच (Indian cattle leech) अलवणीय जल वाले जोहड़ों, तालाबों, झीलों एवम् सरिताओं में पाया जाता है। यह वाह्य परजीवी रुधिर-चूषक प्राणी है जो रुधिर चूसने के लिए मवेशियों के शरीर से चिपका रहता है।

आकार एवम् आकृति
(Shape and Size)

हिरुडिनेरिया का शरीर लम्बा, पृष्ठ-पार्श्व से संपीडित तथा कृमिवत् होता है। इसका अवर तल चपटा तथा पृष्ठ तल उभरा हुआ होता है। खींच कर फैलाया हुआ लीच रिबन के समान होता है जबकि आकुंचित अवस्था में यह बेलनाकार होता है। प्रायः यह 4–6" लम्बा होता है किन्तु कभी-कभी यह 12" या इससे भी अधिक लम्बा होता है।

वर्ण (Colouration)

त्वचा रक्षात्मक रंजन प्रदर्शित करती है। इसके पृष्ठ तल पर ओलिव ग्रीन (olive green), अवर तल पर पीली-नारंगी तथा पार्श्व में नारंगी-काली धारियाँ होती हैं।

शरीर का विखण्डन (Division of Body)

लीच का शरीर 33 खण्डों में विभाजित होता है किन्तु प्रत्येक खण्ड की वाह्य सतह अनुप्रस्थ खाँचों द्वारा पुनः वलयकों (annuli) में विभाजित होती है। शरीर के विभिन्न खण्डों में वलयकों की संख्या अलग-अलग होती है। पूर्ण शरीर को 6 भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. शीर्ष भाग (Cephalic region)—यह प्रथम पाँच खण्डों (1st to 5th) का बना होता है जिनमें से प्रथम व द्वितीय खण्ड एकवलयी. तीसरा द्विवलयी तथा चौथे व पाँचवे खण्ड त्रिवलयी होते हैं। उपर्युक्त प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी नेत्र होते हैं। शीर्ष भाग के अवर तल पर अग्रचूषक तथा मुख स्थित होता है।

2. प्रिक्लाइटेलर भाग (Preclitellar region)—यह छठे, सातवें व आठवें खण्डों का बना होता है। छठा खण्ड त्रिवलयी होता है तथा सातवें एवम् आठवें
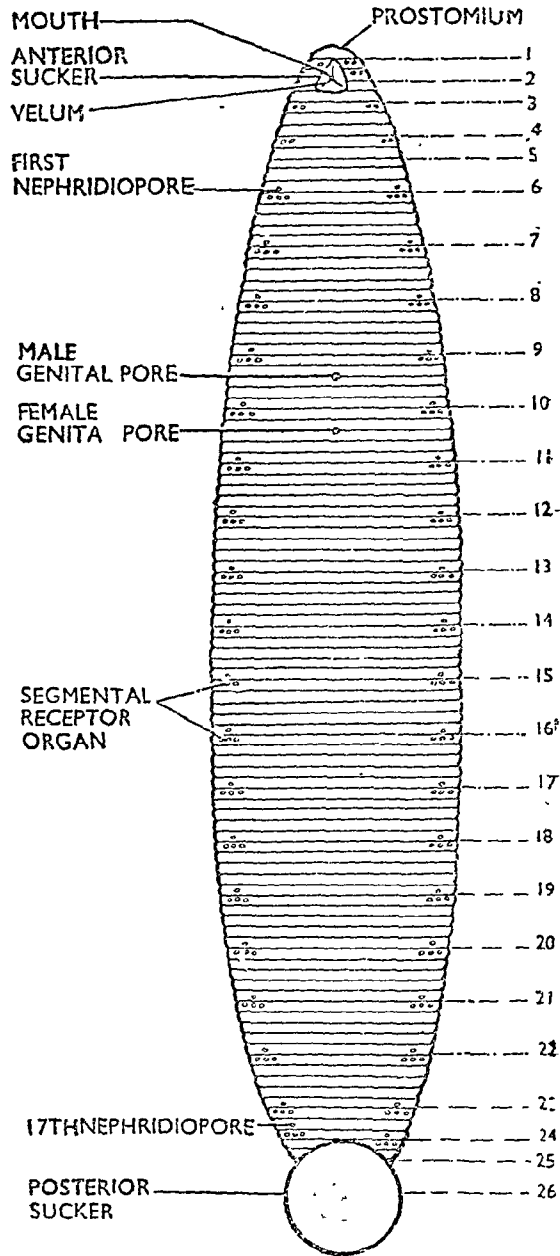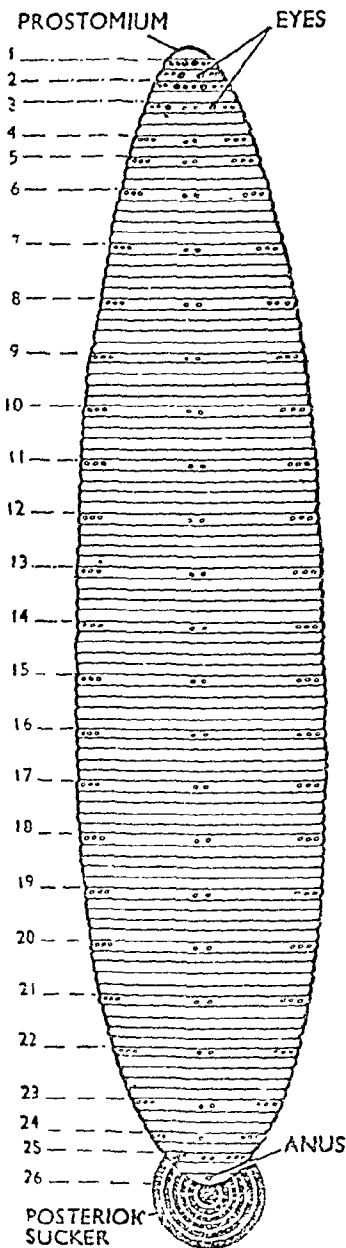
चित्र ४·१. हिरुडिनेरिया (*Hirudinaria*) : A. पृष्ठ दृश्य, B. अधर दृश्य

खण्डों में पाँच-पाँच वलयक होते हैं। उपर्युक्त प्रत्येक खण्ड के अन्तिम वलयक के अवर तल पर एक जोड़ी वृक्कक रन्ध्र या नेफ्रीडियोपोर (nephridiopore) होते हैं।

3. क्लाइटेलर भाग (Clitellar region)—इस भाग में नवें से 11वें खण्ड

होते हैं। प्रत्येक खण्ड में पाँच वलयक होते हैं तथा अन्तिम वलयक में एक जोड़ी **नेफ्रीडियोपोर** होते हैं। क्लाइटेलम केवल जनन काल में ही स्पष्ट दिखायी देता है। उस समय इसकी दीवारें मोटी एवम् गहरे रंग की हो जाती हैं। नर एवम् मादा जनन छिद्र मध्य अधर रेखा पर क्रमशः 10th तथा 11th खण्डों में स्थित होते हैं।

4. मध्य भाग (Middle region)—मध्य भाग 12th से 22nd खण्डों तक फैला होता है। समस्त खण्ड **पंचवलयी** होते हैं तथा इन पर नेफ्रीडियोपोर होते हैं।

5. पुच्छ या कॉडल भाग (Caudal region)—पुच्छ भाग 23rd–26th खण्डों का बना होता है। इनमें नेफ्रीडियोपोर अनुपस्थित होते हैं। 23वाँ खण्ड **त्रिवलयी** तथा शेष दोनों खण्ड **द्विवलयी** होते हैं। **गुदाद्वार** 26th खण्ड में मध्य-पृष्ठ रेखा पर स्थित होता है।

6. पश्च चूषक भाग (Posterior sucker region)—पश्च चूषक अन्तिम सात खण्डों (27–33) का बना होता है। ये एकवलयी होते हैं तथा एक-केन्द्रीय छल्लों के रूप में विन्यसित होते हैं।

चूषक (Suckers)

शरीर के प्रत्येक सिरे पर एक मांसीली आसंजक रचना होती है जिसे चूषक (sucker) कहते हैं। **अग्रचूषक** एक अण्डाकार खोखली रचना है जिसमें अधर तल की ओर उन्मुख एक प्यालेनुमा गर्त होती है जिसे **अग्रमुखीय या प्रिओरल कक्ष** (preoral chamber) कहते हैं। **पश्च चूषक** (posterior sucker) वृत्ताकार तथा डिस्क के समान होता है और सात खण्डों का बना होता है।

वाह्य रन्ध्र (External Apertures)

(*i*) मुख (Mouth)—यह एक संकरा व त्रिअरीय रन्ध्र है जो शरीर के अगले भाग के मुखपूर्व कोष्ठ (preoral chamber) में स्थित होता है।

(*ii*) गुदाद्वार (Anus)—यह एक छोटा रन्ध्र या द्वारक है जो 26वें खण्ड में पश्च चूषक के आधार पर मध्य-पृष्ठ तल पर स्थित होता है।

(*iii*) वृक्कक रन्ध्र (Nepridiopores)—इनके कुल 17 जोड़े होते हैं। इनका प्रत्येक जोड़ा छठे से 22वें खण्डों के अन्तिम वलय में अधर तल पर स्थित होता है।

(*iv*) नर जनन-छिद्र (Male genital aperture)—यह 10वें खण्ड के द्वितीय व तृतीय वलयों की खाँच में मध्य-स्तर तल पर स्थित होता है।

(*v*) मादा जनन छिद्र (Female genital aperture)—यह 11वें खण्ड के द्वितीय व तृतीय वलयों की खाँच में मध्य-अधर तल पर स्थित होता है।

संवेदी अंग (Sensory organs)

प्रथम पाँच खण्डों में से प्रत्येक में एक जोड़ी नेत्र होते हैं। प्रत्येक खण्ड के प्रथम वलयक में पैपिला के रूप में खण्डीय ग्राहक (segmental receptors) होते हैं। इनमें से चार जोड़ी पृष्ठ तल पर तथा तीन जोड़ी अधर तल पर स्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वलयक में 36 जोड़ी वलयक ग्राहक (annular receptors) होते हैं जिनमें से 18 जोड़ी पृष्ठ तल पर तथा 18 जोड़ी अधर तल पर होते हैं।

प्रश्न 21 A. हिरुडिनेरिया का स्वभाव, वाह्य संरचना तथा पाचन तन्त्र किस प्रकार इसके वाह्य परजीवी जीवन के अनुकूल हैं। संक्षेप में समझाइये।

Describe how the habits, external features and digestive organs of *Hirudinaria* are modified in adaptation to its ectoparasitic mode of life. (*Madras 1968* ; *Gorakhpur 69* ; *Patna 69* ; *Agra 58, 67* ; *Delhi 70*)

हिरुडिनेरिया कशेरुकदण्डियों (vertebrates) के शरीर पर पाया जाने वाला **वाह्य परजीवी** (ectoparasite) है, जो पोषक के शरीर से चिपक कर रक्त चूसता है। अतः यह रक्त-चूषक (blood-sucking or sanguivorous) जन्तु है। परजीवी तथा रक्त-चूषक स्वभाव के अनुरूप लीच में वहुत-से आकारिक तथा क्रियात्मक परिवर्तन पाये जाते हैं। स्वभाव, वाह्य रचना तथा पाचन-तन्त्र से सम्वन्धित कुछ परिवर्तन निम्नलिखित हैं :—

1. स्वभाव (Habit)

(*i*) लीच अधिकतर तालावों तथा पोखरों के धीमे वहने वाले पानी में पाया जाता है क्योंकि इन स्थानों पर मनुष्य तथा अन्य पालतू जन्तु पानी पीने तथा नहाने इत्यादि के लिए आते हैं।

(*ii*) रक्त चूसने के लिए इसे किसी विशेष जाति के जन्तु की आवश्यकता नहीं होती। यह किसी भी कशेरुकदण्डी के रक्त को चूस लेता है।

(*iii*) यह शरीर के सिकुड़ने तथा फैलने की क्रिया द्वारा पानी की सतह पर आराम से तैर सकता है।

2. वाह्य संरचना (External Features)

(1) पोषक के शरीर से चिपकने के लिए जन्तु के शरीर के दोनों सिरों पर चिपकने वाले अंग या चूषक (suckers) पाये जाते हैं। चूषक जन्तु के चलन में भी सहायक होते हैं।

(2) परजीवी स्वभाव के अनुरूप इसके शरीर पर सीटी तथा पार्श्वपाद, इत्यादि नहीं होते। इनकी अनुपस्थिति के कारण पोषक को परजीवी की उपस्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता।

(3) स्पष्ट शीर्ष भाग (head region) तथा शीर्ष उपांग (head appendages) नहीं पाये जाते।

3. पाचन तन्त्र (Digestive System)

(1) आहार-नाल रक्त चूसने के अनुरूप होती है।

(2) मुख त्रिअक्षीय (triradiate) छिद्र होता है जिससे मुखगुहा में पाये जाने वाले तीनों जवड़े वाहर आकर पोषक की त्वचा में छिद्र वना सकें।

(3) मुखगुहा की एपिथीलियम में जवड़े (jaws) पाये जाते हैं। इन पर काइटिन के वने हुए दाँतों के समान उभार (denticles) होते हैं। जवड़े मुखद्वार से वाहर निकाले जा सकते हैं। तीनों जवड़े एक साथ कार्य करते हैं। इनके काटने से पोषक की त्वचा पर तीन-अक्षीय घाव वनता है जो *हिरुडिनेरिया* की पहचान वतलाता है। अतः तीनों जवड़े पोषक की त्वचा में घाव वनाकर उससे रक्त निकालने में सहायक होते हैं जिससे कि परजीवी पोषक का रक्त प्राप्त कर सके।

(4) *हिरुडिनेरिया* में ग्रसनी चूषक पम्प (suction pump) की भाँति कार्य करती है और रक्त चूसने के लिए विशेष रूप से रूपान्तरित होती है।

(5) मुखगुहा तथा ग्रसनी की दीवारों से निकलकर पेशियाँ देहभित्ति पर जुड़ी रहती हैं। इनके क्रमिक संकुचन से परजीवी पोषक के रक्त को चूस सकता है।

(6) लार ग्रन्थियों (salivary glands) से निकले लार रस में हिरुडिन (hirudin) या एण्टीकोगुलिन (anticoagulin) नामक रासायनिक पदार्थ होता है। यह रक्त में मिलकर पोषक के रक्त को जमने से रोकता है।

(7) क्योंकि *हिरुडिनेरिया* अस्थायी वाह्य परजीवी है जो केवल रक्त चूसने के लिए पोषक से चिपकता है, अतः पोषक की प्राप्ति निश्चित नहीं है। इसी कारण आहार-नाल का क्रॉप (crop) भाग बहुत बड़ा तथा विकसित होता है। इसमें फैलने की शक्ति बहुत अधिक होती है। क्रॉप खण्डों या कक्षों में बँटा रहता है तथा प्रत्येक कक्ष के पार्श्व किनारे पार्श्व सीका (lateral caeca) या आगार सीका (storing caeca) के रूप में निकले रहते हैं। अतः क्रॉप भोजन (रक्त) को संचित रखता है और लीच एक बार भोजन लेने के पश्चात् उस पर कई महीने तक रह सकता है।

(8) क्रॉप के अन्तिम कक्ष तथा आमाशय के बीच का छिद्र पेशीय होता है जिससे क्रॉप में भरा रक्त थोड़ा-थोड़ा करके ही आमाशय में पहुँचता है।

(9) *हिरुडिनेरिया* में पाचन क्रिया धीमी होती है ; अतः पाचन रस सरल होते हैं।

अतः हम देखते है कि लीच का स्वभाव, वाह्य रचना तथा पाचन-तन्त्र उसके वाह्य परजीवी एवम् रक्तभोजी स्वभाव के अनुरूप हैं।

प्रश्न 22. लीच की देहभित्ति की संरचना का वर्णन करिये। इस प्राणी में चलन किस प्रकार होता है ?

Describe the structure of the body wall of an Indian Cattle Leech. How does locomotion take place in this animal ?

देहभित्ति (Body wall)

लीच की देहभित्ति में निम्नलिखित पाँच स्तर होते है :—

1. क्यूटिकल (Cuticle)—यह सबसे बाहर स्थित महीन, कोमल, पारदर्शी व कुछ लचीला-सा रक्षात्मक आवरण है। यह एपिडर्मिस द्वारा स्रावित होता है और समय-समय पर कतरनों के रूप में शरीर से उतरता रहता है।

2. एपिडर्मिस (Epidermis)—यह क्यूटिकल के नीचे स्थित होता है जिसमें मुग्दर के समान कोशिकाओं का एक स्तर होता है। इन कोशिकाओं के वाह्य सिरे एक-दूसरे के निकट सम्पर्क में स्थित होते हैं जबकि इनके सँकरे भीतरी भागों में केन्द्रक स्थित होता है तथा इनके बीच के द्विक स्थानों में संयोजी ऊतक के तन्तु, वर्णक कोशिकाएँ (pigmented cells) तथा हीमोसीलोमिक कोशिकाएँ (haemo-coelomic capillaries) होती हैं।

कुछ एपिडर्मिस कोशिकाएँ रूपान्तरित होकर एककोशिकीय व नाशपाती के समान **ग्रन्थियाँ** (glands) तथा बहुकोशिकीय **ग्राही अंग** (receptor cells) बनाती हैं। एपिडर्मिस में निम्न प्रकार की ग्रन्थि कोशिकाएँ होती हैं :—

(*i*) **स्लाइम ग्रन्थियाँ** (Slime glands)—ये समस्त शरीर की सतह पर मिलती हैं। ये नाशपाती के समान या नालाकार होती हैं और डर्मिस में अन्दर तक धँसी रहती हैं। प्रत्येक ग्रन्थि में एक केन्द्रक, कोशिकाद्रव्य का एक पतला स्तर तथा अनेक स्रावी कण होते हैं। ग्रन्थि कोशिकाएँ चिकना म्यूकस स्रावित करती हैं जो पूरी

सतह को ढके रहता है।

(*ii*) चूषक ग्रन्थियाँ (Sucker glands)—ये भी नाशपाती के समान या गोलाकार ग्रन्थियाँ हैं जो गुच्छों के रूप में अग्र व पश्च दोनों चूषकों में मिलती हैं। इनका स्राव चलन के समय चूपकों के आसंजन के लिए सतह को चिकना बनाता है।
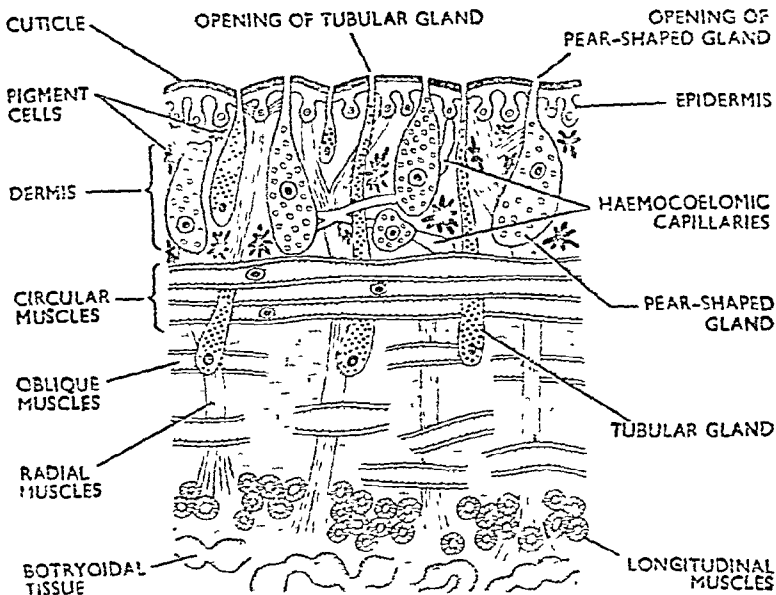
चित्र ४·२. हिरुडिनिया : देहभित्ति का अनुप्रस्थ सेक्शन (*Hirudinaria* : V S. body wall)

(*iii*) प्रोस्टोमियल ग्रन्थियाँ (Prostomial glands)—ये प्रोस्टोमियम में समूहों के रूप में मिलती हैं। इनका स्राव अण्ड खोल (ootheca) के सिरों को प्लग या बन्द करता है।

(*iv*) क्लाइटेलर ग्रन्थियाँ (Clitellar glands)—ये क्लाइटेलर प्रदेश में पाये जाते हैं। ये गोलाभ या दो प्रकार के होते हैं—**काइटोजिनस** (chitogenous) तथा **एल्बुमन ग्रन्थियाँ** (albumen glands)। काइटोजिनस ग्रन्थियाँ वर्तुल व तिरछी पेशियों के बीच स्थित होती हैं और अण्ड खोल के निर्माण के लिए एक विशेष पदार्थ स्रावित करती हैं। एल्बुमन ग्रन्थियाँ अनुदैर्घ्य पेशियों में गुच्छों के रूप में स्थित होती हैं जो अण्डखोल के पोषण के लिए एल्बुमन का स्राव करती हैं।

3. डर्मिस (Dermis)—यह एपिडर्मिस के नीचे स्थित होती है और एपिडर्मल कोशिकाओं के सँकरे सिरों के बीच के स्थानों तक फैली रहती है। यह संयोजी ऊतक के जाल की बनी होती है। इसमें संयोजी ऊतक कोशिकाएँ, वर्णक कोशिकाएँ, वसा कोशिकाएँ, छोटे पेशी-तन्तु, हीमोसीलोमिक सरणियाँ (haemocoelomic channels) तथा कोशिकाओं का जाल होता है।

4. पेशियाँ (Muscles)—ये सुविकसित होती हैं और देहभित्ति का अधिकांश भाग बनाती हैं। इनके तीन स्तर होते हैं—**वर्तुल पेशियों** (circular muscles) का वाह्य स्तर ; **तिरछी पेशियों** (oblique muscles) का मध्यस्तर तथा **अनुदैर्घ्य पेशियों** (longitudinal muscles) का मोटा स्तर। इनके अतिरिक्त पेशियों के

अनेक बण्डल पृथक् रूप से भी स्थित होते हैं। इनमें से **पृष्ठ-अधर पेशियाँ** (dorso-ventral muscles) पृष्ठ व अधर एपिडर्मिस के बीच स्थित होती है तथा **अरीय पेशियाँ** (radial muscles) शरीर के भीतर से सतह तक स्थित होती हैं। ग्रसनी प्रदेश में अरीय पेशियाँ अन्दर की ओर ग्रसनी की दीवार से और बाहर की ओर देहभित्ति से जुड़ी रहती हैं।

लीच का प्रत्येक पेशी तन्तु एक लम्बी, तर्कुरूपी व नलिकाकार कोशिका है जिसमें दो भाग स्पष्ट होते हैं—केन्द्रीय कणिकीय **मेडूला** (medulla) या **सार्कोप्लाज्म** (sarcoplasm) तथा परिधीय संकुचनशील **कॉर्टेक्स** या **माइकोप्लाज्मा** (mycoplasma)।

5. गुच्छाकार या बोट्रिओइडल ऊतक (Botryoidal tissue)—यह **अनुदैर्घ्य पेशियों** (longitudinal muscles) के नीचे आहार-नाल के नीचे स्थित होता है। इसमें एक के ऊपर एक स्थित बड़ी, विशाखित व नलिकाकार कोशिकाओं का जाल होता है। इन कोशिकाओं की भित्ति में एक गहरे-भूरे रंग का वर्णक होता है जबकि इनकी ल्यूमन (lumen) या आन्तरकोशिका नलिकाओं में **हीमोसीलोमिक द्रव** (haemocoelomic fluid) होता है। सम्भवत: इसका कार्य स्रावी होता है।

चलन (Locomotion)

लीच में चलन की क्रिया देहभित्ति की पेशियों के सिकुड़ने तथा फैलने से होती है। अग्र तथा पश्च चूषक आधार से दृढ़तापूर्वक चिपक कर चलन में सहायता पहुँचाते हैं। लीच में दो प्रकार की चलन गतियाँ होती हैं:

(1) भूमि में यह कैटरपिलर के समान रेंगकर चलन करता है।

(2) पानी में यह तेजी से तैरता है।

भूमि पर चलते समय लीच अपने पश्च चूषक द्वारा आधार से चिपक जाता है। देहभित्ति की वर्तुल पेशियाँ सिकुड़ती हैं तथा लम्बवत् पेशियाँ अपनी सामान्य स्थिति में आ जाती हैं। फलस्वरूप शरीर का अग्रिम सिरा काफी आगे पहुंच जाता है। इस पर स्थित अग्रिम चूषक आधार पर मजबूती से चिपक जाता है। साथ ही पश्च चूषक आधार से स्वतन्त्र हो जाता है। इसके पश्चात् शरीर की वर्तुल पेशियाँ फैलती हैं तथा लम्बवत् पेशियाँ सिकुड़ती हैं जिससे शरीर का पिछला सिरा आगे की ओर खिंच आता है। यही क्रिया बारम्बार दोहराई जाती है जिससे लीच अपने ऐच्छिक स्थान पर पहुँच जाता है। तैरते समय लीच का शरीर चपटा हो जाता है और तरंगित गति द्वारा आगे बढ़ता है।

A B C D E F
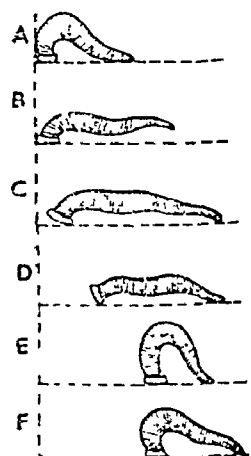
चित्र ४·३. लीच में चलन क्रिया (Locomotion in leech)

प्रश्न 23. हिरुडिनेरिया की आहार नाल का वर्णन करिये तथा इस जन्तु द्वारा रुधिर चूषण क्रिया का स्पष्ट रूप से वर्णन कीजिये।

Describe the alimentary canal of *Hirudinaria* and mention clearly the mode of sucking blood in this animal.

(*Agra 1969 ; Ranchi 72*)

लीच के पाचन अंगों एवम् पोषण विधि का वर्णन कीजिये। संक्षेप में बताइये कि ये अंग इसके परजीवी जीवन के किस प्रकार अनुकूल हैं।

Give an account of the digestive organs and mechanism of feeding in Leech. Explain in brief how these organs are adapted to its parasitic mode of life. (*Gorakhpur 1971 ; Jiwaji 72 ; Kanpur 72*)
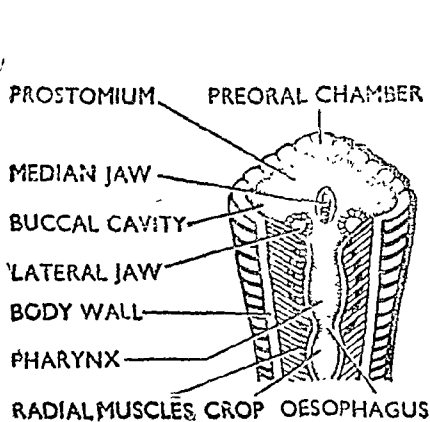
चित्र ४·४. जवड़ों को प्रदर्शित करते हुए लीच के अगले भाग का विच्छेदित दृश्य
(Anterior part of alimentary canal cut open midventrally to show jaws)
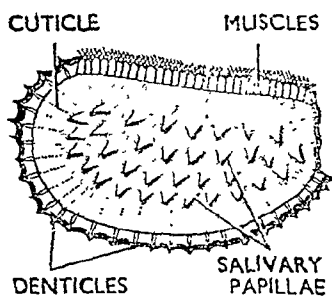
चित्र ४·५. लीच के जवड़े
(Jaws of Leech)
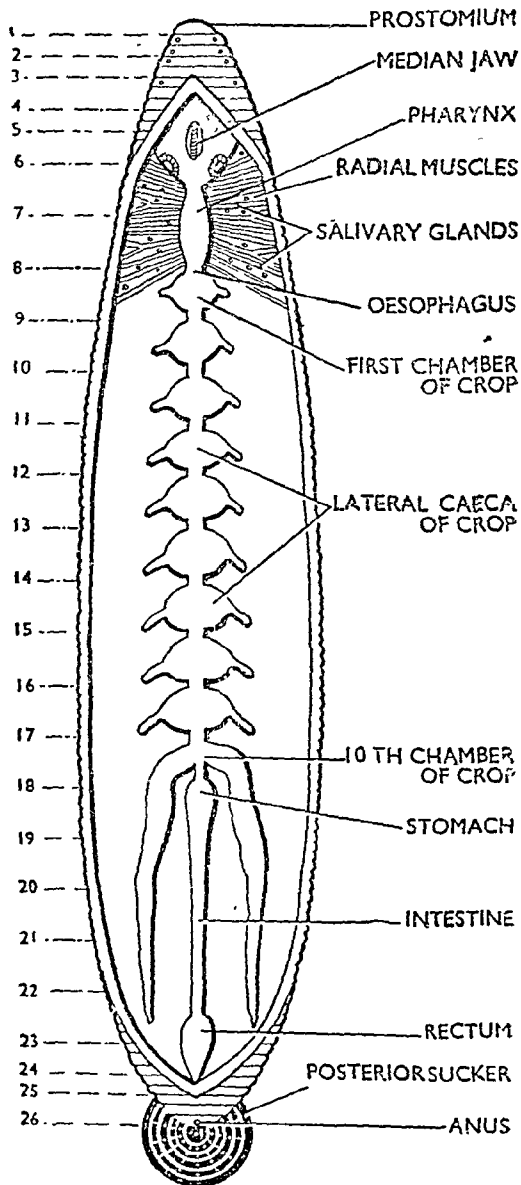
चित्र ४·६. लीच की आहार नाल
(Alimentary canal of Leech)

लीच की आहार नाल एक सीधी नली है जो इसके रुधिर चूसने के स्वभाव के कारण अत्यधिक रूपान्तरित होती है। यह निम्न भागों मे भिन्नित होती है :—

1. अग्रमुखीय या प्रिओरल कक्ष (Preoral chamber)—अग्र चूषक का प्यालेनुमा पर्त अग्रमुखीय कक्ष को प्रदर्शित करता है। इसके आधार पर **त्रिअक्षीय मुख** (triradiate mouth) स्थित होता है जो मुख गुहा (buccal cavity) में खुलता है। अग्रमुखीय कक्ष तथा मुख गुहा एक झिल्लीनुमा पट, **वीलम** (velum), द्वारा एक-दूसरे से अलग रहते है। वीलम मे तीन पट्टिकाएँ होती है जो मुख के तीन ओष्ठो का निर्माण करती हैं।

2. मुखगुहा (Oral cavity)—यह क्यूटिकल से आस्तारित एक छोटी-सी गुहा है। मुखगुहा के स्तर मे तीन जबडे होते है। इनमे से एक की स्थिति मध्य-पृष्ठ तथा दो अवर पार्श्व होते है। इनकी स्थिति मुख की तीनो दरारो के तदानुरूपी होती है।

प्रत्येक जबडा क्यूटिकल से आच्छादित तथा पार्श्व से सपीडित, अर्धचन्द्राकार तथा पेशीय गद्दीनुमा रचना है। इसके मुक्त उपात पर सूक्ष्म **दन्तिकाओं** की एक कतार होती है। माध्यिक जबड़े पर दन्तिकाओ की सख्या 103–128 तथा पार्श्विक जबडों पर 85–115 होती है। प्रत्येक जबड़े के पार्श्व मे बटन के समान 42–45 **लार पैपिली** (salivary papillae) होते हैं जिनमें लार ग्रन्थियो के छिद्र होते है। जबडे विशेष पेशियो की सहायता से आगे व पीछे गति करते है। ये अर्धवृत्ताकार आरी के समान एक साथ कार्य करते है जिससे पोषक की त्वचा मे एक त्रिअरीय या Y के समान जख्म बनता है।

3. ग्रसनी (Pharynx)—ग्रसनी एक अत्यधिक पेशीय व अण्डाकार आशोषी कोप के समान रचना है जो 5–8 खण्डो तक फैली रहती है। रेडियल पेशियो के अनेक गुच्छे ग्रसनी की दीवार से देहभित्ति तक फैले रहते है। इनके आकुचन से ग्रसनी गुहा चौडी हो जाती है जिससे एक प्रकार का चूषण बल उत्पन्न हो जाता है। ग्रसनी गुहा के चारो ओर अरीय पेशियो मे नाशपाती के समान अनेक एककोशिकीय लार ग्रन्थियाँ बिखरी रहती है। इनकी वाहिनियाँ जबड़ों पर स्थित लार पैपिली मे खुलती है।

लार ग्रन्थियो में लार बनता है जिसमे हिरुडिन या **एण्टीकोगुलिन** (hirudin or anticoagulin) नामक पदार्थ बनता है। हिरुडिन लीच द्वारा रुधिर के चूषण के समय रुधिर का थक्का बनने से रोकता है।

चित्र ४·७. लीच की लार ग्रन्थियाँ
(Salivary glands of *Leech*)

ग्रासनली (Oesophagus)—यह एक छोटी व सँकरी नली है जो ग्रसनी को क्रॉप से जोड़ती है। इसका आन्तरिक स्तर अत्यधिक वलित होता है।

क्रॉप (Crop)—यह एक अत्यधिक लम्बी चौडी व पतली दीवार की नली के समान होता है और 10 कक्षो में विभाजित रहता है। 9–18 तक के प्रत्येक खण्ड मे क्रॉप का एक-एक कक्ष पाया जाता है। समस्त कक्ष एक गोल संवरणी छिद्र द्वारा एक-दूसरे मे सम्बन्धित होते हैं। प्रत्येक कक्ष एक छोटे अग्र भाग तथा एक चौडे **पश्चभाग** मे भिन्नित होता है। प्रत्येक कक्ष का पश्च भाग पीछे की ओर उन्मुख

एक जोड़ी पार्श्व उद्वर्धों में निकला रहता है जिनको **सीका** (caeca) या **डाइवर्टिकुला** (diverticula) कहते हैं। क्रॉप के कक्षों तथा इनके डाइवर्टिकुली का आकार क्रमिक रूप से पीछे की ओर बढ़ता जाता है। 10वाँ कक्ष तथा इसके डाइवर्टिकुली सर्वाधिक बड़े होते हैं तथा ये आंत्र के साथ-साथ 22वें खण्ड तक फैले होते हैं।

क्रॉप के कक्ष अत्यधिक लचीले होते हैं तथा इनमें अपने वास्तविक आकार से भी कई गुना अधिक रुधिर संग्रह करने की क्षमता होती है। लीच एक बार में ही पोषक से इतना अधिक रुधिर चूस लेता है कि इसे 6–12 माह तक पुनः पोषण की आवश्यकता नहीं होती।

आमाशय (Stomach)—क्रॉप का अन्तिम कक्ष पीछे की ओर एक कीप के समान नली में खुलता है जो एक संवरणी छिद्र द्वारा आमाशय में खुलती है। आमाशय एक छोटी नाल के समान 19वें खण्ड में स्थित होता है। इसकी दीवार में अनुप्रस्थ वलय होते हैं।

आंत्र (Intestine)—यह पतली दीवार की एक सँकरी नली है जो 20वें से 22वें खण्ड तक फैली रहती है। इसका आन्तरिक स्तर भी सर्पिलाकार विलाई में उभरा रहता है जिससे आंत्र की अवशोषण सतह में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। वाह्य रूप से आमाशय तथा आंत्र में कोई स्पष्ट भिन्नता नहीं होती।

मलाशय (Rectum)—मलाशय पतली दीवार की एक विस्तृत नली है जो 22वें से 26वें खण्ड में स्थित होता है। इसके आन्तरिक स्तर की सतह चिकनी होती है। गुदाद्वार 26वें खण्ड में मध्य-पृष्ठ रेखा पर स्थित होता है।

पोषण विधि (Feeding Mechanism)

लीच एक रुधिर-चूषक प्राणी है जो मवेशियों व अन्य पालतू जानवरों का रुधिर चूसता है। पोषक के शरीर के सम्पर्क में आने पर यह अपने पश्च चूषक द्वारा इससे चिपक जाता है। इसके पश्चात् इसका अग्र चूषक भी पोषक के शरीर से चिपक जाता है। जबड़ों की पेशियों के आकुंचन से तीनों जबड़े मुख से बाहर आकर पोषक की त्वचा में एक त्रिअरीय 'Y' के आकार का जख्म बनाते हैं। इसके फलस्वरूप पोषक की त्वक् वाहिनियाँ (cutaneous vessels) कट जाती हैं तथा इनसे रुधिर रिसने लगता है। अब ग्रसनी की अरीय पेशियों के आकुंचन के कारण ग्रसनी गुहा फैल जाती है और आशोषी बल उत्पन्न होता है। चूसा हुआ रुधिर बिना किसी परिवर्तन के क्रॉप में पहुँचता है जहाँ इसे संग्रहीत कर लिया जाता है। लीच अपना लार पोषक की त्वचा की कटी हुई वाहिनियों पर स्रावित करता है। लार में **एण्टिकोगुलिन** या **हिरुडिन** एन्जाइम होता है जो कि रुधिर का थक्का बनने से रोकता है जिससे अवशोषण के समय रुधिर अविरत रूप से रिसता रहता है।

प्रश्न 24. लीच के नेफ्रीडियल तन्त्र का वर्णन कीजिये।
Give an account of nephridial system in *Leech*.
(*Allahabad 1960 ; Luck. 66*)

लीच के उत्सर्जी अंगों का वर्णन कीजिये।
Describe the excretory system of *Leech*. (*Patna 1968*)

लीच के नेफ्रीडियम की रचना का वर्णन कीजिये। इसका उत्सर्जी तन्त्र किन बातों में फेरेटीमा के उत्सर्जी तन्त्र से भिन्न है ?

Describe the single nephridium of *Leech*. In what respects does the excretory system of this animal differ from that of *Pheretima* ?
(*Agra 1969*)

वृक्कक क्या है ? हिरुडिनेरिया के उत्सर्जी अंगों की संरचना एवं कार्य का वर्णन करिये ।

What is nephridium? Describe the structure and function of excretory organs of Hirud'naria. (*Vikram 1972 ; Indore 72*)

लीच के उत्सर्जन अंग
(Excretory Organs of Leech)

लीच के उत्सर्जन अंग विशेष प्रकार की कुण्डलित नलिकाएँ हैं जो **वृक्कक या नेफ्रीडिया** (nephridia) कहलाती हैं । ये शरीर के प्रत्येक खण्ड में पायी जाने वाली, खोखली, बड़े साइज की (macroscopic) नलिकाएं है जो छठे खण्ड से 23वें खण्ड तक फैली रहती है । अतः लीच में वृक्कक के केवल 17 जोड़े पाये जाते है । ये दो प्रकार के होते हैं :—

1. प्रीटेस्टीक्युलर नेफ्रीडिया (Pretesticular nephridia)—छठे खण्ड से 11वें खण्ड तक पाये जाने वाले प्रारम्भ के छ: जोड़ी नेफ्रीडिया **प्रीटेस्टीक्युलर नेफ्रीडिया** कहलाते हैं । इनके साथ में वृपण कोप (testis sacs) नहीं पाये जाते ।

2. टेस्टीक्युलर नेफ्रीडिया (Testicular nephridia)—शरीर में 12वें खण्ड से 22वें खण्ड तक शेष 11 जोड़ी नेफ्रीडिया के साथ वृषण कोप भी सम्बन्धित होते हैं । अतः ये **टेस्टीक्यूलर नेफ्रीडिया** कहलाते हैं ।

टेस्टीक्युलर नेफ्रीडिया की रचना (Structure of testicular nephridia)—एक प्रारूपी टेस्टीक्युलर नेफ्रीडियम (typical testicular nephridium) घोड़े की नाल के आकार का होता है । यह निम्नलिखित छः भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. मुख्य पिण्डक (Main lobe)
2. वेसिकल (Vesicle)
3. शीर्ष पिण्डक (Apical lobe)
4. आन्तरिक पिण्डक (Inner lobe)
5. आरम्भिक पिण्डक (Initial lobe)
6. पक्ष्माभिकी अंग (Ciliated organ)
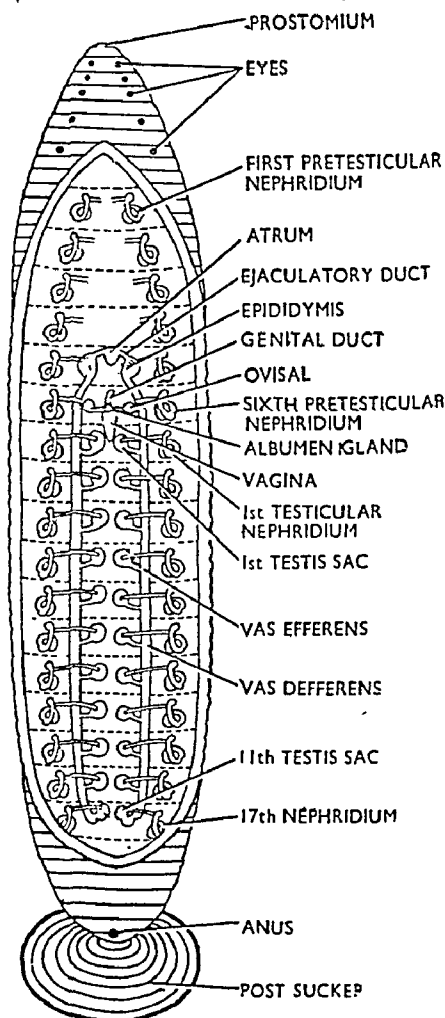
चित्र ४८. हिरुडिनेरिया में नेफ्रीडिया तथा जनन अगों का विन्यास (Arrangement of nephridia and reproductive organs in Leech)

मुख्य पिण्डक (Main lobe)—यह नेफ्रीडिया का घोड़े की नाल के आकार वाला भाग है जो अधर पार्श्व तल पर क्रॉप के दो सीकी के बीच स्थित होता है। इसको दो भागों में विभाजित किया जाता है—(1) बड़ी **अग्रिम भुजा** (anterior limb), तथा (2) छोटी **पश्च भुजा** (posterior limb)।

2. वेसिकल (Vesicle)—मुख्य पिण्डक की अग्रिम भुजा आगे की ओर एक पतली वेसिकल डक्ट (vesicle duct) के रूप में बदल जाती है जो पीछे की ओर चलकर वेसिकल मे खुलती है। वेसिकल बडा, अण्डाकार, अकुंचनशील (non-contractile) तथा पतली दीवारों वाले थैले के समान होता है, जिसका आन्तरिक स्तर पक्ष्माभिकी एपिथीलियम (ciliated epithelium) का बना होता है। वेसिकल के भीतर की ओर से एक छोटी तथा पतली-सी नलिका निकलती है जो **नेफ्रीडियोपोर** (nephridiopore) द्वारा शरीर से बाहर खुलती है।

3. शीर्ष पिण्डक (Apical lobe)—मुख्य पिण्डक की पश्च भुजा के दूसरे सिरे से शीर्ष पिण्डक जुड़ा रहता है। यह क्रॉप के नीचे लम्बाई में स्थित होता है। यह मोटा तथा मजबूत होता है। इसका अगला सिरा फूलकर मोटा हो जाता है और एक छड़ी के सिरे के समान एक ओर झुका रहता है। शीर्ष पिण्डक को आस्तारित करने वाली कोशिकाएँ बड़ी होती है और इनमें **आन्तरकोशिक नालें** (intracellular canals) पायी जाती हैं।
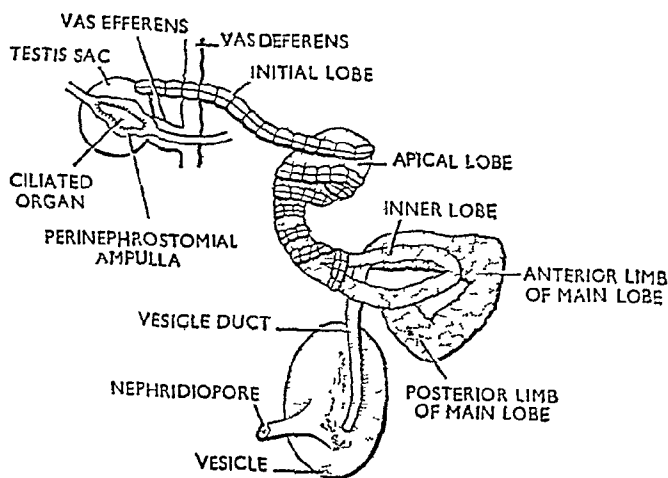
चित्र ४·९. हिरुडिनेरिया का प्रारूपी टेस्टीक्यूलर नेफ्रीडियम
(Typical testicular nephridium of *Hirudinaria*)

4. आन्तरिक पिण्डक (Inner lobe)—मुख्य पिण्डक की दोनों भुजाओं के बीच वाले अवतल भाग मे छोटा तथा सँकरा आन्तरिक पिण्डक होता है। यह **आवाही पिण्डक** (incurrent lobe) भी कहलाता है। यह शीर्ष पिण्डक के बाहरी किनारे के साथ-साथ लगभग आधी लम्बाई तक फैला रहता है। पीछे की ओर यह मुख्य पिण्डक से जुड़ा रहता है।

5. प्रारम्भिक पिण्डक (Initial lobe)—यह पतला, बहुत लम्बा, पारदर्शी तथा रस्सी के आकार का होता है जो शीर्ष पिण्डक के चारों ओर लिपटा रहता है। इसका पिछला सिरा मुख्य पिण्डक से जुड़ा रहता है, परन्तु अगला सिरा कोशिकाओं की बनी सँकरी नाल के आकार का होता है तथा अन्तिम सिरे पर बन्द होता है। यह पेरीनेफ्रोस्टोमियल एम्पुला (perinephrostomial ampulla) के समीप समाप्त होता है। इसकी कोशिकाओं में भी आन्तर-कोशिक नाल पायी जाती है जिससे प्रत्येक कोशिका के भीतर असंख्य छोटे-छोटे उभार निकले रहते है।

6. पक्ष्माभिकी अंग (Ciliated organs)—पेरीनेफ्रोस्टोमियल एम्पुला के भीतर पक्ष्माभिकी अंग (ciliated organ) स्थित होता है। यह पेरीनेफ्रोस्टोमियल एम्पुला के भीतर की दीवार से 4 या 5 स्ट्रैण्ड या ट्रैवेक्युली (strands or trabeculae) द्वारा लटका रहता है। यह प्रारूपी नेफ्रीडिया के नेफ्रीडियोस्टोम (nephridiostome) या कीप (funnel) के समान होता है। इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(*i*) **रिजरवॉयर** (Reservoir)—यह पक्ष्माभिकी अंग का स्पंज के समान भाग है, जो संयोजी ऊतक कोशिकाओं (connective tissue cells) का बना होता है। इन कोशिकाओं की दीवारों में बहुत-से सूक्ष्म छिद्र पाये जाते हैं। प्रत्येक छिद्र में एक सूक्ष्म पक्ष्माभिकी-कीप स्थित होती है। यह **सीलोमिक कॉर्पुसल** (coelomic corpuscles) बनाता है।

(*ii*) **पक्ष्माभिकी कीप** (Ciliated funnel)—रिजरवायर (reservoir) में पाये जाने वाले छिद्रों में बहुत-सी पक्ष्माभिकी कीप पायी जाती हैं। प्रत्येक पक्ष्माभिकी कीप एक छिद्र में स्थित होती है। यह बाह्य-कर्ण (external ear) के आकार की होती है। इसके भीतर वाले किनारे का 1/4 भाग अपूर्ण होता है तथा स्वतन्त्र बाहरी किनारे पर पक्ष्म पाये जाते हैं। फनल का अगला या समीपस्थ सिरा गर्दन बनाता है।

पक्ष्माभिकी अंग केवल भ्रूण अवस्था में ही नेफ्रीडिया से जुड़ा रहता है। प्रौढ़ अवस्था में यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है जिससे यह उत्सर्जन में बिल्कुल सहायता नहीं करता।

प्रीटेस्टीक्युलर नेफ्रीडिया (Pretesticular nephridia)—छठे खण्ड से ग्यारहवें खण्ड तक के प्रथम छः जोड़ी नेफ्रीडिया प्रीटेस्टीक्युलर होते हैं क्योंकि इन खण्डों में वृषण कोष (testis sacs) नहीं पाये जाते। अतः इन नेफ्रीडिया में एम्पुला तथा पक्ष्माभिकी अंग अनुपस्थित होते हैं।

लीच तथा फेरीटिमा के नेफ्रीडिया की तुलना के लिए प्रश्न 17 देखिये।

प्रश्न 25. हिरुडिनेरिया के एक प्रारूपिक नेफ्रीडियम का वर्णन कीजिये तथा इसकी नेरीस के नेफ्रीडियम के साथ तुलना कीजिये।

Describe a typical nephridium of *Hirudinaria* and compare it with that of *Nereis*.

(Lucknow 1965, 68 ; Gorakhpur 63 ; Vikram 65 ; Jiwaji 69 ; Agra 70 ; Meerut 71)

हिरुडिनेरिया के प्रारूपी नेफ्रीडिया की रचना

कृपया प्रश्न 24 देखिये।

लीच तथा नेरीस के नेफ्रीडिया की तुलना
(Comparison of Nephridia of Leech and Nereis)

लीच (*Leech*)	नेरीस (*Nereis*)
1. नेफ्रीडिया बड़े तथा मैक्रोस्कोपिक (macroscopic) होते हैं।	1. नेरीस में भी नेफ्रीडिया बड़े तथा मैक्रोस्कोपिक होते हैं।
2. लीच में 17 जोड़ी नेफ्रीडिया होते हैं जो छठे खण्ड से बाइसवें खण्ड तक पाये जाते हैं।	2. नेफ्रीडिया की संख्या बहुत अधिक होती है। प्रथम तथा अन्तिम खण्ड को छोड़कर शेष अन्य सभी खण्डों में इनका एक-एक जोड़ा पाया जाता है।
3. नेफ्रीडिया दो प्रकार के होते हैं— (*i*) प्रीटेस्टीक्युलर (pretesticular) (*ii*) टेस्टीक्युलर (testicular)	3. सभी नेफ्रीडिया एक समान होते हैं।
4. टेस्टीक्युलर नेफ्रीडिया का वृषण-कोषों से सम्बन्ध होता है।	4. नेफ्रीडिया जनन अंगों से सम्बन्धित नहीं होते।
5. नेफ्रीडिया देहगुहा में नहीं खुलते किन्तु नेफ्रीडियोपोर द्वारा शरीर से बाहर खुलते हैं।	5. नेरीस के नेफ्रीडिया एक ओर देहगुहा में सिलियेटेड फनल या नेफ्रोस्टोम (ciliated funnel or nephrostome) में तथा दूसरी ओर नेफ्रीडियोपोर द्वारा शरीर के बाहर खुलते हैं।
6. प्रत्येक नेफ्रीडियम घोड़े की नाल के समान (horse-shoe-shaped) होता है।	6. प्रत्येक नेफ्रीडियम कुण्डलित नलिका के रूप में होता है जिसकी गुहा पक्ष्माभिकी कोशिकाओं द्वारा स्तरित रहती है।
7. एक प्रारूपी नेफ्रीडियम को निम्न छः भागों में बाँटा जा सकता है :— (*i*) मुख्य पिण्डक, (*ii*) वेसिकल, (*iii*) शीर्ष पिण्डक, (*iv*) आन्तरिक पिण्डक, (*v*) आरम्भिक पिण्डक, (*vi*) पक्ष्माभिकी अंग।	7. नेरीस के नेफ्रीडियम की रचना अपेक्षाकृत बहुत सरल होती है। इसमें केवल एक कुण्डलित नलिका होती है जो बहु-केन्द्रक प्रोटोप्लाज्म में पायी जाती है। इसको दो भागों में बाँटा जाता है :— (*i*) नेफ्रीडियम का शरीर (*ii*) गर्दन का भाग
8. वेसिकल के अतिरिक्त नेफ्रीडिया के सभी भागों में सीलिया पाये जाते हैं।	8. नेफ्रीडिया का मुख, शरीर या केवल नेफ्रीडियल ट्यूब्यूल ही सिलियेटेड होता है।
9. पक्ष्माभिकी अंग नेफ्रीडिया से ही अलग हुआ भाग है जो पेरीनेफ्रोस्टोमियल एम्पुला में स्थित होता है। इसका कार्य देहगुहा में पायी जाने वाली देहगुहीय कोशिकाओं का निर्माण करना है। उत्सर्जन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।	9. नेरीस के शरीर के प्रत्येक खण्ड में पृष्ठ तल पर एक जोड़ी पक्ष्माभिकी अंग पाये जाते हैं। ये जनन-वाहिनियों को प्रदर्शित करते हैं, तथा इनका नेफ्रीडियम से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

प्रश्न 26. हिरुडिनेरिया के एक प्रारूपी नेफ्रीडियम का वर्णन कीजिये। लीचों को एकत्रित करने एवम् उनके चिकित्सा-सम्बन्धी महत्त्व पर नोट लिखिये।

Describe clearly the structure of a typical nephridium of *Hirudinaria*. Write a paragraph on collection of Leeches and their medical importance. (*Agra 1956*)

लीच के प्रारूपी नेफ्रीडियम की रचना
(Structure of Typical Nephridium of Leech)

कृपया प्रश्न 24 देखिये।

लीच एकत्रित करना
(Collection of Leech)

लीच कशेरुकदण्डी जीवों के शरीर पर पाया जाने वाला वाह्यपरजीवी (ectoparasite) है जो पोषक का रक्त चूसकर अपना निर्वाह करता है। लीच अधिकतर जल से भरे स्थानों पर पाये जाते है, जैसे—ताजे पानी के पोखर, तालाव, झील, धीमे वहने वाली नदी, इत्यादि। आज भी लीच पुरानी विधि द्वारा एकत्रित किये जाते है। जहाँ लीचों के अधिकता में पाये जाने की सम्भावना होती है उस गन्दे तथा मिट्टी वाले पानी में लीच पकड़ने वाला मनुष्य डुवकी लगाता है। लीच अधिक से अधिक संख्या में उसके शरीर से चिपक जाते है। वाद में इन्हें पकड़ कर हटा दिया जाता है। इसी प्रकार ये गाय-भेंसों के शरीर से भी छुड़ा लिये जाते हैं।

औषधिक महत्त्व (Medical Importance)

लीच पुराने जमाने से ही विभिन्न रोगों को दूर करने के काम में आते है। उनके कुछ मुख्य उपयोग निम्नलिखित है :—

(*i*) क्योंकि लीच अपने पोषक को बिना कोई दर्द पहुँचाए रक्त निकाल लेता है इसलिए ये पुराने जमाने मे मनुष्यों का रक्त निकालने के काम आते थे। यह विश्वास किया जाता था कि ये खराव रक्त को चूसते है, अतः ये विभिन्न रोगों के रोगियों का रक्त चूसने के काम मे लाये जाते थे।

(*ii*) गजेपन, टांसिलस तथा ववासीर के इलाज में प्रयोग होते हैं।

(*iii*) इनके लार की हिरुडिन या एण्टी-कोएगुलिन (hirudin or anticoagulin) रक्त को जमने से रोकने के काम मे लायी जाती थी।

(*iv*) वालों के सफेद होने को रोकने में भी लीच औषधि की भाँति प्रयोग किया जाता है।

प्रश्न 27. लीच के ग्राही अंगों का वर्णन करो।

Give an account of receptor organs of Leech.

(*Lucknow 1957, 58, 63, 66 ; Agra 52, 70 ; Kanpur 68 ; Meerut 68, 70, 72*)

ग्राही अंग (Receptor Organs)

लीच के ग्राही अंग परिवर्तित एपिडर्मल कोशिकाओं के समूह है जो प्रकाश, ताप, रासायनिक पदार्थो तथा स्पर्श से उत्पन्न हुई उत्तेजनाओं को ग्रहण करते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं :—

1. तन्त्रिका के स्वतन्त्र अन्तिम सिरे
2. वलयी ग्राही

3. खण्ड ग्राही
4. नेत्र

1. तन्त्रिका के स्वतन्त्र अन्तिम सिरे (Free nerve endings)—ये एपिडर्मिस के नीचे स्थित गैंगलियोनिक कोशिकाओं के विशेष समूह हैं। ये रसायन संवेदी (chemoreceptors) होते हैं और समस्त शरीर पर फैले रहते हैं।

2. वलयी ग्राही (Annular receptors)—ये चपटी एपिडर्मल कोशिकाओं की पंक्तियों के बने होते हैं जो एक-दूसरे के ऊपर स्थित होती हैं और एपिडर्मिस से प्रांकुरों (papillae) के रूप में उभरे रहते हैं। इनके समीपस्थ सिरे तन्त्रिका-तन्तुओं से सम्बन्धित रहते हैं तथा दूरस्थ सिरे त्वचा से बाहर उभरे रहते हैं। प्रत्येक एन्युलस (annulus) में लगभग 36 वलयी ग्राही (annular receptor) पृष्ठ तथा अधर-तल पर समान रूप से फैले रहते हैं। ये प्रत्येक एन्युलस के मध्य में एक अनुप्रस्थ वलय (transverse ring) बनाते हैं। वलयी ग्राही स्पर्श संवेदी होते हैं।
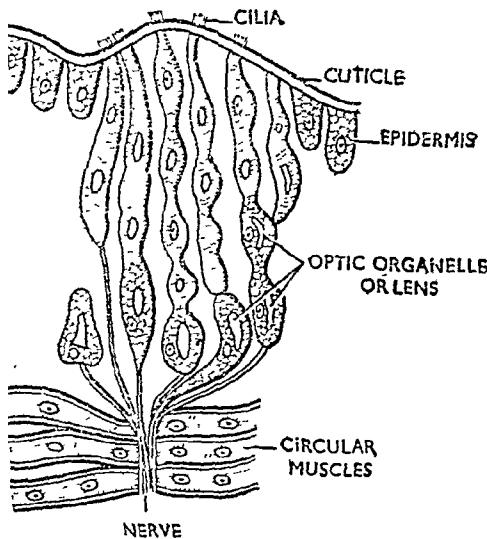
चित्र ४·१०. हिरुडिनेरिया का एक खण्ड ग्राहक (Segmental receptor of *Hirudinaria*)
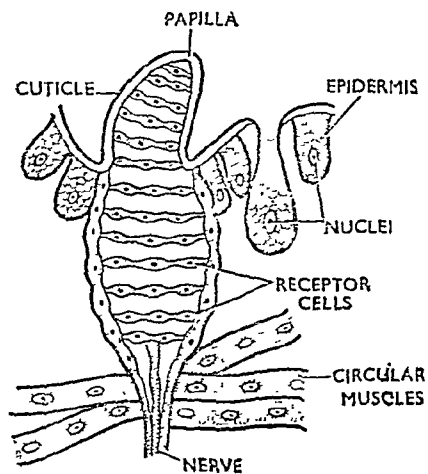
चित्र ४·११. हिरुडिनेरिया का वलयी ग्राही (Annular recceptor of *Hirudinaria*)

3. खण्ड ग्राही (Segmental receptors)—खण्ड ग्राही प्रत्येक खण्ड के प्रथम एन्युलस (annulus) में स्थित होते हैं। प्रत्येक खण्ड में चार खण्ड ग्राहक पृष्ठ-तल पर तथा तीन अधर-तल पर पाये जाते हैं। प्रत्येक खण्ड ग्राही छोटे व दीर्घगोलाकार, (ellipitical) उभार के रूप में होता है जिसमें दो प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती हैं :—

(*i*) स्पर्श-ग्राही (Tango-receptors), तथा
(*ii*) प्रकाश-ग्राही (Photoreceptors)

(i) स्पर्श-ग्राही कोशिकाएँ लगभग 10 या 12 लम्बी व पतली कोशिकाएँ हैं जिनके बीच में अधिक आन्तरकोशिक स्थान होता है। इनके स्वतन्त्र सिरों से सीलिया निकले रहते हैं। ये स्पर्श द्वारा उत्पन्न हुई उत्तेजनाओं को ग्रहण करते हैं।

चित्र ४·१२. हिरुडिनेरिया के नेत्र की खड़ी काट (V.S. Eye of *Hirudinaria*)

(ii) प्रकाश-ग्राही कोशिकाएँ केवल पृष्ठ-तल पर स्थित खण्ड-ग्राहकों (segmental receptors) में ही पायी जाती हैं। प्रत्येक प्रकाश-ग्राही में एक दृष्टि-अंग (optic organelle) या लेंस (lens) होता है। लेंस हायलाइन नामक पदार्थ का बना होता है और प्रकाश की किरणों को ग्रहण करता है।

4. नेत्र (Eyes)—लीच में अग्रिम चूषक के पृष्ठ-तल पर दोनों पार्श्व किनारों के साथ पाँच जोड़ी सरल नेत्र (simple eyes) होते हैं। ये काले धब्बों के रूप में दृष्टिगत होते हैं। प्रथम पाँच खण्डों के प्रथम वलय (annulus) में इनका एक-एक जोड़ा पाया जाता है। प्रत्येक नेत्र बेलनाकार या प्याले के समान (cylindrical or cup-shaped) रचना है जो अक्ष के साथ समान्तर स्थित होती है। इनकी दीवार की कोशिकाओं में काले रंग की कणिकाएँ पायी जाती हैं तथा गुहा में अनेक प्रकाश-ग्राही कोशिकाएँ (photoreceptor cells) लम्बवत् पंक्तियों में लगी रहती हैं। प्रत्येक प्रकाश-ग्राही के मध्य में एक अर्धचन्द्राकार हायलाइन लेंस होता है जिसके चारों ओर कोशिकाद्रव्य का पतला स्तर पाया जाता है। इसमें एक गोलाकार केन्द्रक स्थित होता है। आँख के दूरस्थ स्वतन्त्र सिरे पर पारदर्शी एपिडर्मल कोशिकाओं का आवरण होता है जिसके ऊपर क्यूटिकल की पर्त होती है। इसका आधार भाग या आन्तरिक सिरा दृष्टि-नाड़ी के तन्तुओं से जुड़ा रहता है। दृष्टि-नाड़ी नेत्र के मध्य में लम्बाई के साथ आगे बढ़ती है और शाखान्वित होकर प्रकाश ग्राही अंगकों को तन्त्रिकाएँ पहुँचाती है।

लीच के नेत्र विभिन्न दिशाओं से प्रकाश ग्रहण करने के लिए विभिन्न दिशाओं की ओर अग्रसित होते हैं।

प्रश्न 28. नेरीस तथा हिरुडिनेरिया के ग्राही अंगों का वर्णन कीजिये।
Give an account of receptor organs of *Nereis* and *Hirudinaria*.
(*Lucknow 1970*)

फेरेटीमा एवम् हिरुडिनेरिया के ग्राही अंगों की रचना एवम् कार्यों का उल्लेख कीजिये।

Give an account of the structure and functions of the receptor organs of *Pheretima* and *Hirudinaria*. (*Agra 1970*)

नेरीस के ग्राही अंग

कृपया प्रश्न 12 देखिये।

फेरेटीमा के ग्राही अंग

कृपया प्रश्न 19 देखिये।

लीच के ग्राही अंग

कृपया प्रश्न 27 देखिये ।

प्रश्न 29. हिरुडिनेरिया के हीमोसीलोमिक तन्त्र का वर्णन कीजिये ।
Describe the haemocoelomic system of *Hirudinaria.*
(Lucknow 1958, 59, 63, 65, 70 ; Rajasthan 62, 68, 72 ; Ranchi 70, 71)

लीच की देहगुहा तथा रक्त वाहिनियों का विवरण दीजिये तथा इस जन्तु के साइनसों की प्रकृति का विवेचन कीजिये ।

Write an account of coelom and the blood vessels of a leech and discuss the nature of the sinuses in the animal.
(Agra 1964 ; Gorakhpur 61, 67 ; Kanpur 70)

सीलोम क्या है ? लीच के हीमोसीलोमिक तन्त्र के विषय में जो कुछ आप जानते हैं, वर्णन करें ।

What is coelom ? Give an illustrated account of the haemocoelomic system in Leech. *(Jodhpur 1965 ; Patna 67 ; Kanpur 71)*

देहगुहा क्या है ? लीच के हीमोसीलोमिक तन्त्र का सचित्र वर्णन करें ।
Write all you know about the haemocoelomic system of *Leech.*
(Tribhuvan 1960 ; Jabalpur 72)

देहगुहा (Coelom)

लीच में वास्तविक देहगुहा अनुपस्थित होती है क्योंकि देहगुहा में **बोट्रीओइडल तन्तु** (botryoidal tissue) भरा रहता है । प्रारम्भिक देहगुहा लम्बवत् नालों (longitudinal channels) तथा उनकी शाखाओं एवम् केशिकाओं के तन्त्र द्वारा प्रदर्शित रहती है। यह तन्त्र **हीमोसीलोमिक तन्त्र** (haemocoelomic system) कहलाता है । **पर्यान्त्र-गुहा** (perivisceral coelom) केवल वृषण कोपों, अण्डकोपों तथा जनन-वाहिनियों के चारों ओर पायी जाती है । यह रंगहीन **सीलोमिक द्रव** (coelomic fluid) से भरी रहती है । सीलोमिक द्रव में रंगहीन कणिकाएँ (corpuscles) पायी जाती हैं । हीमोसीलोमिक तन्त्र में लाल रंग का सीलोमिक द्रव भरा रहता है । सीलोमिक द्रव के प्लाज्मा में **हीमोग्लोबिन** (haemoglobin) के घुले रहने के कारण यह लाल रंग का होता है ।

हीमोसीलोमिक तन्त्र
(Haemocoelomic System)

इसमें निम्न चार लम्बवत् वाहिनियाँ पायी जाती हैं :—

1. एक पृष्ठ लम्बवत् वाहिनी
2. एक अधर लम्बवत् वाहिनी
3. दो पार्श्व लम्बवत् वाहिनियाँ

1. पृष्ठ लम्बवत् हीमोसीलोमिक वाहिनी
(Dorsal Longitudinal Hoemocoelomic Channel)

पृष्ठ-वाहिनी पतली दीवारों वाली, अकुञ्चनशील वाहिनी है जो आहार-नाल के ऊपर मध्य-रेखा पर शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती है । इसमें हीमोसीलोमिक द्रव पीछे से आगे की ओर बहता है । आगे की ओर छठे खण्ड में यह

शाखान्वित होकर प्रथम पाँच खण्डों को रक्त पहुँचाती है। पीछे की ओर बाईसवें खण्ड में यह दो शाखाओं मे बँट जाती है। दोनों शाखाएँ रेक्टम के दोनों ओर पृष्ठ-तल पर स्थित होती है और अधर साइनस (ventral sinus) से मिल जाती है।

पृष्ठ-वाहिनी के प्रत्येक खण्ड मे दो जोडी **पृष्ठ-पार्श्व वाहिनियाँ** (dorsolateral vessels) निकलती हैं जो बाहर की ओर चलकर देहभित्ति के पृष्ठ तथा पृष्ठ-पार्श्व तलों पर केशिकाओं का जाल-सा बना लेती है। प्रत्येक खण्ड में बहुत-सी **डोरसो-इण्टेस्टाइनल** या **पृष्ठ-आंत्रीय** (dorso-intestinal) वाहिनियाँ इससे निकलकर आंत्र को जाती है।

चित्र ४·१३ हिरुडिनेरिया मे चार लम्बवत् वाहिनियो के मिलने का चित्रीय निरूपण (Union of four longitudinal channels in *Hirudinaria*)

2. अधर-अनुदैर्घ्य हीमोसीलोमिक वाहिनी (Ventral Longitudinal Haemocoelomic Channel)

अधर-वाहिनी पतली दीवारों वाली, अकुञ्चनशील किन्तु अपेक्षाकृत चौड़ी वाहिनी है जो आहार-नाल के नीचे अधर-तल की मध्य-रेखा पर शरीर के एक सिरे से दूसरे तक फैली रहती है इसमें वाल्व नही पाये जाते और यह अधर नर्व कॉर्ड के चारों ओर स्थित होती है। इसमें हीमोसीलोमिक द्रव आगे मे पीछे की ओर बहता है। अधर-वाहिनी से प्रत्येक खण्ड मे दो जोड़ी वाहिनियाँ निकलती है :—
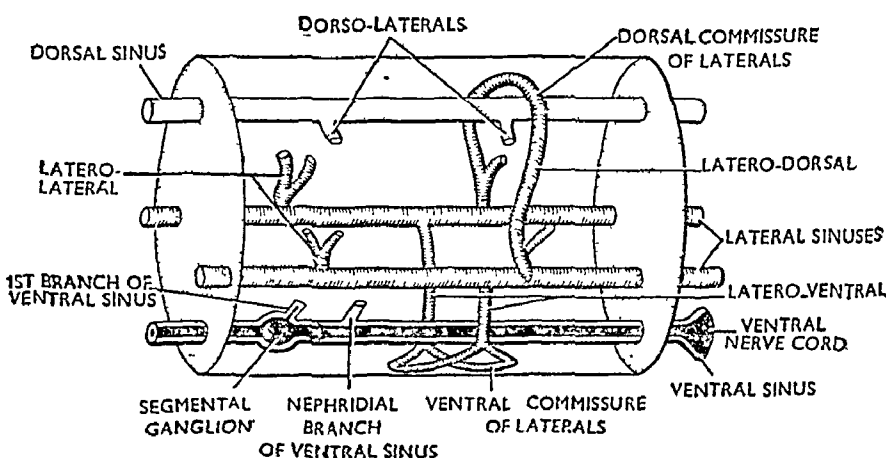
चित्र ४·१४. हिरुडिनेरिया के एक खण्ड में हीमोसीलोमिक वाहिनियो के विन्यास का चित्रीय निरूपण (Arrangement of haemocoelomic channels in a segment of *Hirudinaria*)

(*i*) **वाहिनियों का पहला जोड़ा** प्रत्येक खण्ड में स्थित नर्व गैंगलियन के समीप से निकलता है। यह तुरन्त ही दो शाखाओं में बँट जाता है। इनमें से एक **अधर शाखा** (ventral branch) तथा दूसरी **उदर-पृष्ठ शाखा** (abdominodorsal) होती है। अवर शाखा देहभित्ति के अधर-पार्श्व तल पर जाल-सा बना लेती है, किन्तु उदर पृष्ठ शाखा पृष्ठ-पार्श्व तल की ओर चलकर पृष्ठ-पार्श्व त्वचीय जालक (dorsolateral cutaneous plexus) बनाती है।

(*ii*) **वाहिनियों का दूसरा जोड़ा** नेफ्रीडियल शाखाएँ (nephridial branches) कहलाता है। ये प्रत्येक खण्ड में नर्व गैंगलिया के कुछ पीछे से निकलती हैं। प्रत्येक शाखा बाहर की ओर चलकर वृषण कोषों (testis sacs) तथा नेफ्रीडिया को रक्त पहुँचाती है। यहाँ पर यह दो या तीन लघुकोशक या पेरीनेफ्रोस्टोमियल एम्पुला (perinephrostomial ampulla) बनाती है। लीच में केवल 11 जोड़ी नेफ्रीडियल शाखाएँ होती हैं जो बारहवें खण्ड तक प्रत्येक खण्ड में एक-एक जोड़ी पायी जाती हैं।

3. पार्श्व लम्बवत् हीमोसीलोमिक वाहिनियाँ
(Lateral Longitudinal Haemocoelmic Channels)

लीच में पार्श्व हीमोसीलोमिक वाहिनियों का एक जोड़ा आहार-नाल के दोनों ओर शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला रहता है। प्रत्येक वाहिनी मोटी तथा पेशीयुक्त दीवारों वाली तथा कुञ्चनशील होती है जिसके प्रत्येक खण्ड में वाल्व पाये जाते हैं। इसमें हीमोसीलोमिक द्रव पीछे से आगे की ओर बहता है। आगे की ओर पाँचवें खण्ड में प्रत्येक वाहिनी छोटी-छोटी शाखाओं में बँट जाती है तथा पीछे की ओर यह अवर वाहिनी के फूले हुए भाग में खुलती है। प्रत्येक खण्ड में पार्श्व वाहिनी में बाहर की ओर एक **लेटरो-लेटरल** (latero-lateral) तथा एक **लेटरो-डोरसल** (latero-dorsal) वाहिनी खुलती हैं तथा भीतर की ओर एक **लेटरो-वेण्ट्रल** (latero-ventral) वाहिनी मिलती है।

(*i*) **लेटरो-लेटरल** (Latero-lateral)—यह एक छोटी-सी वाहिनी है जो पार्श्व सतह पर देहभित्ति तथा नेफ्रीडिया से रक्त एकत्रित करती है। यह नेफ्रीडियल वेसिकल
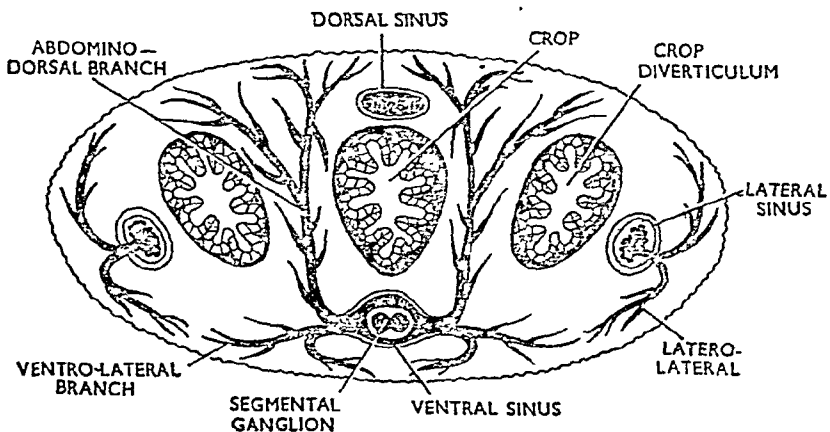
चित्र ४·१५. लीच की हीमोसीलोमिक वाहिनियों के अनुप्रस्थ सेक्शन का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of haemocoelomic channels of Leech in T.S.)

के आधार के समीप पार्श्व वाहिनी में खुलती है।

(*ii*) लेटरो-डोरसल (Latero-dorsal)—यह एक बड़ी वाहिनी है जो नेफ्रीडियम के मुख्य पिण्डक के तल पर पार्श्व वाहिनी में खुलती है। यह देहभित्ति के पृष्ठ तथा पृष्ठ-पार्श्व भाग से, आहार-नाल की भित्ति तथा नेफ्रीडियम से रक्त एकत्रित करती है। प्रत्येक खण्ड में दोनों ओर की लेटरो-डोरसल शाखाएँ मिलकर पृष्ठवाहिनी के ऊपर **अनुप्रस्थ लूप** (transverse loop) बनाती हैं। यह **पार्श्व वाहिनियों की पृष्ठ संयोजिका** (dorsal commissure of lateral channels) कहलाती हैं। लीच में इस प्रकार की 16 संयोजिकाएँ होती हैं जो छठे से बाइसवें खण्ड तक पायी जाती हैं। ये एक छोटी-सी शाखा द्वारा लेटरो-डोरसल से जुड़ी रहती है। यह शाखा **पार्श्व संयोजिका** (lateral commissure) कहलाती है। लेटरो-लेटरल तथा लेटरो-डोरसल वाहिनियाँ रक्त एकत्रित करती हैं तथा जिस स्थान पर ये पार्श्व वाहिनी में खुलती है वहाँ पर वाल्व (valve) होते हैं।

(*iii*) लेटरो-वैण्ट्रल (Latero-ventral)—यह प्रत्येक खण्ड में पार्श्व-वाहिनी के भीतर की ओर से निकलती है। तुरन्त ही इससे एक छोटी-सी शाखा निकलती है जो नेफ्रीडियम तथा अधर एवम् अधर-पार्श्व भाग में देहभित्ति को रक्त पहुँचाती है। इसके पश्चात् यह दो शाखाओं में बँट जाती है जो क्रमशः समचतुर्भुज (rhomboid) रचना बनाती है। यह **पार्श्व-वाहिनियों की अधर संयोजिका** (ventral commissure of laterals) कहलाती है। लीच में कुल मिलाकर 18 ऐसी रचनाएँ होती है जो छठे खण्ड से 23वें खण्ड तक स्थित होती है। किन्ही दो खण्डों में पाये जाने वाले समचतुर्भुज तीन लम्बवत् **आन्तर-खण्डीय संयोजिकाओं** (three longitudinal intersegmental commissures) द्वारा जुड़े रहते है। प्रत्येक लेटरो-वेण्ट्रल अपने खण्ड के नेफ्रीडिया, आहार-नाल, जनन अगों तथा देहभित्ति को रक्त पहुँचाती है।
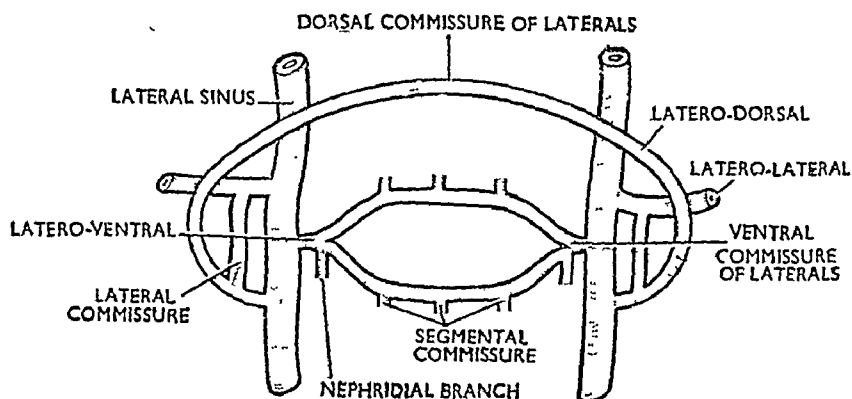
चित्र ४·१६. हिरुडिनेरिया के एक खण्ड मे पार्श्व वाहिनियो तथा उनकी शाखाओ का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of lateral vessels and their branches in a segment of *Hirudinaria*)

परिवहन पथ (Course of Circulation)

हीमोसीलोमिक द्रव पृष्ठ तथा पार्श्व-वाहिनियों मे पीछे से आगे की ओर तथा अधर वाहिनी में आगे से पीछे की ओर बहता है। 26वें खण्ड मे चारों वाहिनियाँ

एक साथ जुड़ जाती हैं। पृष्ठ तथा अवर वाहिनियाँ शरीर में विभिन्न भागों को रक्त पहुँचाती हैं। पृष्ठ वाहिनी से देहभित्ति तथा आहार-नाल के पृष्ठ भाग को रक्त पहुँचता है। अवर वाहिनी से अवर, पार्श्व, पार्श्व-अवर भाग में स्थित नेफ्रीडिया तथा देहभित्ति
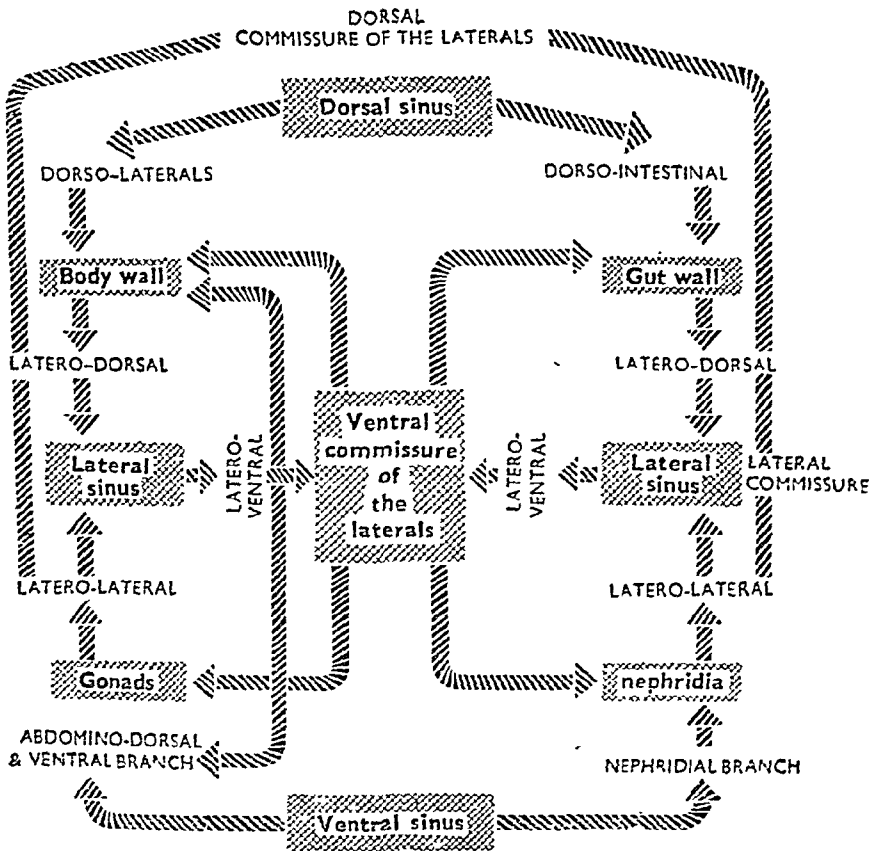
चित्र ४·१७. रुधिर का परिवहन पथ (Hirudinaria : Course of blood circulation)

को रक्त पहुँचता है। पार्श्ववाहिनी की लेटरो-लेटरल तथा लेटरो-डोरसल शाखाएँ इन भागों से द्रव एकत्रित करती हैं। साथ ही लेटरो-वेण्ट्रल शाखाएँ नेफ्रीडिया, आहार-नाल की भित्ति, अवर देहभित्ति एवम् जनन अंगों को रक्त पहुँचाती हैं।

प्रश्न 30. हिरुडिनेरिया की देहगुहा के रूपान्तरण का वर्णन कीजिये।
Describe the modifications of coelom in *Hirudinaria*.

(*Indore 1967*)

कृपया प्रश्न 29 देखिये।

प्रश्न 31. लीच के जनन अंगों का वर्णन कीजिये। एक स्वच्छ चित्र भी खींचिये।

Describe the reproductive organs of Leech. Give a neat diagram. (*Agra 1955, 57, 60, 63 ; Gorakhpur 59 ; Lucknow 55 ; Vikram 62 ; Jiwaji 68 ; Ranchi 73*)

लीच के जनन संस्थान का वर्णन करिये एवं स्पष्टतया बताइये कि इस जन्तु में जनन किस प्रकार होता है।

Describe the reproductive system of Leech and state clearly how reproduction takes place in this animal.

(*Gorakhpur 1960 ; Punjab 66 ; Agra 68, 69, 71 ; Raj. 73 ; Jabalpur 73*)

लीच में जनन संस्थान, जनन की प्रक्रिया तथा कोकून-निर्माण की विधि का वर्णन कीजिये।

Describe the reproductive system and process of reproduction and cocoon formation in Leech. (*Karnatak 1968 ; Gorakhpur 62, 68 ; Tribhuvan 66 ; Lucknow 69, 71*)

लीच उभयलिंगी (hermaphrodite) जन्तु है किन्तु इसमें पर-निषेचन (cross-fertilization) ही होता है।

नर जनन-अंग (Male Reproductive Organs)

नर जनन-अंग निम्नलिखित हैं :—

(1) वृषण कोष
(2) वासा इफेरेन्शिया
(3) शुक्र वाहिनियाँ
(4) अधिवृषणिका या एपिडिडाइमिस
(5) शुक्र-प्रसेचिनी वाहिनी
(6) एट्रियम

1. वृषण-कोष (Testis sacs)—लीच में 11 जोड़ी वृषण-कोष पाये जाते हैं। ये छोटे व गोलाकार वेसिकल्स हैं जिनका एक-एक जोड़ा 12वें खण्ड से 22वें खण्ड तक पाया जाता है। ये अधर नर्व-कार्ड के दोनों ओर स्थित होते है। प्रत्येक वृषण-कोष की दीवार की कोशिकाएँ विभाजित होकर स्परमेटोगोनिया बनाती हैं जो वृषण-कोष की गुहा में एकत्रित हो जाते हैं और वृद्धि के पश्चात् शुक्राणु बनाते हैं।

चित्र ४·१२. जनन अंगों के प्रदर्शन के लिए हिरुडिनेरिया का 10वाँ, 11वाँ व 12वाँ खण्ड (10th, 11th and 12th segments of *Hirudinaria* showing reproductive organs)

2. वासा इफेरेन्शिया (Vasa efferentia)—प्रत्येक वृषण-कोष के पिछले भाग से एक छोटी-सी वाहिनी निकलती है जो बाहर की ओर चलकर अपनी ओर की वास डिफेरेन्स में खुलती है। यह सूक्ष्म वाहिनी वास इफेरेन्स (vas efferens) कहलाती है।

3. शुक्र-वाहिनियाँ (Vasa deferentia)—एक जोड़ी लम्बी व पतली वाहि-

नियाँ 11वें खण्ड से 22वें खण्ड तक फैली रहती हैं। ये देहगुहा के फर्श पर अवर दीवार से जुड़ी रहती हैं तथा इनके चारों ओर एक नालाकार सीलोमिक स्थान (coelomic space) होता है जिनमें अमीबायड कणिकाएँ (amoeboid corpuscles) पायी जाती हैं।

4. एपिडाइडिमिस (Epididymis)—प्रत्येक शुक्र-वाहिनी का अग्रिम सिरा 10वें खण्ड में चौड़ा होकर कुण्डलित रचना बनाता है। यह एपिडाइडिमिस कहलाता है। इसमें वृषण कोषों से आये हुए शुक्राणु एकत्रित रहते हैं।

5. शुक्रप्रसेचिनी वाहिनी (Ejaculatory duct)—एपिडाइडिमिस के अगले सिरे से भीतर की ओर एक छोटी सँकरी शुक्रप्रसेचिनी वाहिनी निकलती है। यह भीतर की ओर चलकर दूसरी ओर की शुक्रप्रसेचिनी वाहिनी से मध्य रेखा में मिलकर एट्रियम का निर्माण करती है।

6. एट्रियम (Atrium)—यह एक छोटा, नाशपाती के आकार का कोष (pyriform sac) है जो मध्य अवर तल पर 9वें तथा 10वें खण्ड के बीच स्थित होता है। यह दसवें खण्ड में नर जनन-छिद्र द्वारा शरीर के बाहर खुलता है। एट्रियम दो भागों में बँटा रहता है :—

(*i*) **प्रोस्टेट** (Prostate)—यह एट्रियम का अगला चौड़ा आधार भाग है जिसकी दीवारें मोटी तथा पेशीयुक्त होती हैं। इनके चारों ओर असंख्य एक-कोशिक प्रोस्टेट ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं।

(*ii*) **शिश्नक कोष** (Penis-sac)—यह एट्रियम का पिछला, कम चौड़ा गर्दन के समान अत्यन्त पेशीला भाग है जिसके भीतर कुण्डलित धागे के समान नालाकार शिश्नक होता है। यह मैथुन में सहायता करता है तथा शुक्राणुओं को दूसरे लीच की योनि में पहुँचाता है।

मादा जनन अंग (Female Reproductive Organs)

(1) अण्डकोष (2) अण्डाशय
(3) अण्डवाहिनियाँ (4) साधारण अण्डवाहिनी
(5) योनि (6) एल्ब्युमन ग्रन्थियाँ

1. अण्डकोष (Ovisacs)—अण्डकोषों का एक जोड़ा ग्यारहवें खण्ड में अवर पार्श्व-तल पर नर्वकार्ड के इधर-उधर स्थित होता है। प्रत्येक अण्डकोष एक खोखला गोलाकार कोष होता है जिसकी गुहा में एक अण्डाशय तथा हीमोसीलोमिक द्रव पाया जाता है।

2. अण्डाशय (Ovaries)—अण्डाशय अण्डकोषों के भीतर बन्द रहते हैं। प्रत्येक अण्डाशय एक कोमल कुण्डलित धागे के समान रचना है जिसमें बहुत-से केन्द्रक होते हैं। अण्डाशय की दीवार से अण्डे बनते हैं।

चित्र ४·१९. हिरुडिनेरिया का एक अण्डकोष (An ovisac of *Hirudinaria*)

3. अण्डवाहिनियाँ (Oviducts)—प्रत्येक अण्डकोष के आधार से एक छोटी तथा पतली वाहिनी निकलती है जो भीतर तथा पीछे की ओर चलती है। दाहिनी ओर की अण्डवाहिनी
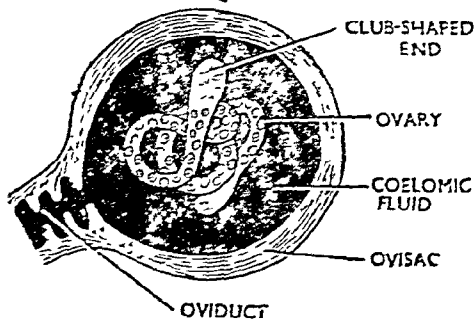
नर्व-कॉर्ड के नीचे से होकर बायी ओर की अण्डवाहिनी से मिलकर **मूल अण्डवाहिनी** (common oviduct) बनाती है ।

4. उभयनिष्ठ अण्डवाहिनी (Common oviduct)—मूल अण्डवाहिनी अधर तल पर स्थित नलिका है जिसके पिछले भाग में पर्तें पायी जाती है तथा यह योनि में खुलती है ।

5. योनि (Vagina)—यह बड़ी, नाशपाती के आकार की मोटी पेशीयुक्त थैले के समान रचना है जो 11वें खण्ड के पिछले भाग में अधर तल की मध्य रेखा पर स्थित होती है । इसका अगला सिरा नली के समान होता है और अपनी ओर झुका रहता है । यही नालाकार भाग मादा जनन-छिद्र (female genital pore) द्वारा 11वे खण्ड मे बाहर को खुलता है । जनन-काल में योनि फूल जाती है और इसकी भीतर की दीवारें वलित (folded) हो जाती है ।

6. एल्बुमन ग्रन्थियाँ (Albumen glands)—अण्डवाहिनियों तथा उभयनिष्ठ अण्डवाहिनी के मिलने का स्थान एककोशिक (unicellular) एल्बुमन ग्रन्थियों की मोटी पर्त से ढका रहता है । ये मूल अण्डवाहिनी मे खुलती है ।

अण्डाशय से अलग होने के पश्चात् अण्डे अण्डकोषों में एकत्रित होते है और अण्डवाहिनियों में से होते हुए योनि में एकत्रित हो जाते है । यहाँ ये निषेचन के समय तक संचित रहते है ।

यद्यपि लीच उभयलिंगी जन्तु है परन्तु इसमे **पर-निषेचन** (cross-fertilization) होता है । निषेचन से पहले मैथुन क्रिया होती है । मार्च तथा अप्रैल के माह मे लैंगिक रूप से परिपक्व दो लीच अपने अधर तल द्वारा इस प्रकार युग्मित होते है कि लीच का सिर दूसरे लीच की पूंछ की ओर होता है । अत: एक जन्तु का नर जनन-छिद्र दूसरे जन्तु के मादा जनन-छिद्र के समीप होता है । एक लीच का शिश्नक दूसरे लीच की योनि में घुसकर शुक्राणु जमा कर देता है । अण्डों का निषेचन योनि के भीतर होता है तथा युग्मनज (zygote) कोकून के अन्दर शरीर के बाहर जमा कर दिये जाते हैं ।

कोकून का निर्माण
(Formation of Cocoon)

कोकून का निर्माण अप्रैल, मई तथा जून के महीनों में मैथुन के पश्चात् प्रारम्भ होता है और
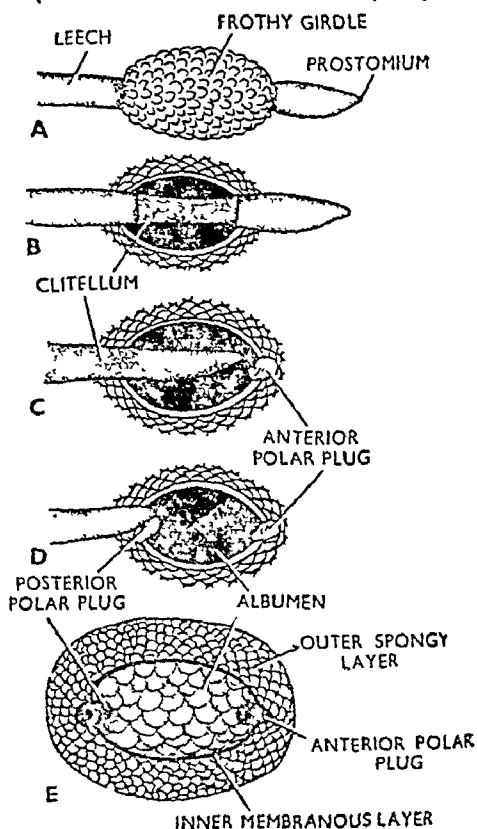
चित्र ४·२०. हिरुडिनेरिया में कोकून निर्माण की विभिन्न अवस्थाएँ (Various stages of cocoon formation in *Hirudinaria*)

क्लाइटेलम में पायी जाने वाली ग्रन्थियों के स्राव के एकत्रित होकर सूखने पर बनता है। जनन काल में लीच के 9वें, 10वें तथा 11वें खण्ड अस्थायी क्लाइटेलम बनाते हैं जिसकी ग्रन्थियों के स्राव से इस भाग के चारों ओर एक बर्फ के समान सफेद रंग की मेखला (girdle) बन जाती है। इसकी गुहा में एल्बुमन ग्रन्थियों द्वारा एल्बुमन द्रव जमा कर दिया जाता है। जनन-छिद्र से निषेचित अण्डे इसकी गुहा में आ जाते हैं। इसके पश्चात् लीच के धीरे-धीरे पीछे हटने पर कोकून शरीर के अगले सिरे की ओर बढ़ता जाता है। अन्त में लीच का अगला सिरा क्रमाकुञ्चन गति (rhythmic movement) द्वारा पीछे की ओर खिंचता जाता है तथा प्रोस्टोमियल ग्रन्थियों के स्राव से कोकून के दोनों सिरों पर क्रमशः अग्रिम प्लग (anterior plug) तथा पश्च प्लग (posterior plug) बन जाते हैं जिससे कोकून के दोनों सिरे बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार छः घण्टे में कोकून का निर्माण पूर्ण होता है और किसी नम स्थान में छोड़ दिया जाता है। यह हल्के पीले रंग की बेलनाकार रचना है जो लगभग 20 से 30 mm. लम्बी एवम् 12 से 15 mm. चौड़ी होती है। इसकी दीवार में स्पंज के समान एक मोटा बाहरी स्तर तथा दूसरा पतला किन्तु मजबूत आन्तरिक स्तर होता है।

अण्डे का वर्धन सीधा होता है और यह कोकून के भीतर पूर्ण होता है। लगभग 15 दिन में कोकून से पूर्ण वृद्धि प्राप्त लीच का शिशु निकल आता है।

अध्याय 5

विविध प्रश्न
(Miscellaneous)

प्रश्न 32. ऐनेलिड प्राणियों में विखण्डावस्था का वर्णन करिये ।
Write an essay on metamerism in annelids. (*Jabalpur 1972*)

समस्त ऐनिलिड प्राणियों का शरीर रैखिक क्रम में विन्यसित अनेक खण्डों का बना होता है। इस प्रकार के खण्डीभवन को जिसमें शरीर के भागों की रैखिक रूप से पुनरावृत्ति होती है, विखण्डावस्था (metamerism) कहते हैं तथा ये खण्ड दिखण्ड (metameres) या कायखण्ड (somites) कहलाते हैं। संरचनात्मक रूप से प्रत्येक कायखण्ड (somite) की एक ही मूल आयोजना होती है और प्रत्येक में प्राय: सभी तन्त्रों का कुछ न कुछ भाग अवश्य होता है।

प्राणी जगत् में विखण्डी पुनरावृत्ति सर्वप्रथम ऐनेलिडा में देखने को मिलती है। इसका महत्त्व इसलिए और भी अधिक है क्योंकि प्राणी-जगत् के सर्वाधिक विकसित समुदाय आर्थ्रोपोड व वर्टिब्रेटा समूहों के सदस्यों में शारीरिक भागों की विखण्डी रूप से पुनरावृत्ति होती है। ऐनेलिडा प्राणियों में विखण्डावस्था बाह्य व आन्तरिक, दोनों रूपों में देखने को मिलती है, किन्तु आर्थ्रोपोड्स में यह मुख्यत: बाह्य होती है तथा मनुष्य व अन्य पृष्ठवंशियों में देह पेशियों, तन्त्रिकाओं, कशेरुकाओं तथा कुछ रुधिर वाहिनियों के रूप में आन्तरिक विखण्डावस्था होती है। अत: विखण्डावस्था या खण्डीभवन विकासीय अग्रसरण का लक्षण है जिसके फलस्वरूप जीवों के शरीर में और अधिक जटिलता विकसित होती है।

ऐनेलिड्स में खण्डावस्था पूर्ण होती है और सभी खण्ड एक समान होते हैं और प्रत्येक खण्ड में निजी तन्त्रिकाएँ, रुधिर वाहिनियाँ, वृक्कक तथा प्रगुहा वाहिनियाँ या सीलोमोडक्ट (coelomoducts) होती हैं। इस प्रकार के खण्ड आदिम प्रकार के हैं और समविधिक खण्ड (homonomous segments) कहलाते हैं किन्तु आर्थ्रोपोड व पृष्ठवंशियों में खण्डीभवन असमान एवम् अपूर्ण होता है और कुछ विशेष अंगों तक ही सीमित होता है। इस प्रकार के खण्ड विषमविधिक खण्ड (heteronomous segments) कहलाते हैं। इन प्राणियों के भ्रूण में विखण्डावस्था अधिक नियमित अर्थात् पूर्ण होती है। शिरोभवन (cephalization) के फलस्वरूप सरलीकरण द्वारा खण्डों में विभेदन द्वारा या पाद आदि अन्य संरचनाओं के परिवर्धन के फलस्वरूप वयस्क प्राणियों में विखण्डावस्था अस्पष्ट हो जाती है। खण्डीभवन के फलस्वरूप विभिन्न खण्ड विशेषीकृत होकर अलग-अलग कार्य करते हैं।

खण्डीभवन का उद्भव (Origin of Segmentation)

खण्डीभवन या विखण्डावस्था के सम्बन्ध में विवादस्पद मत हैं। यद्यपि विखण्डावस्था से सम्बन्धित अनेक संकल्पनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं किन्तु प्रमाणों के अभाव के कारण इनमें से कोई भी मान्य नहीं है।

ऐसी ही एक संकल्पना के अनुसार किसी अखंडीय पूर्वज में बारम्बार अनुप्रस्थ विखण्डन के फलस्वरूप विखण्डावस्था का उद्‌भव हुआ क्योंकि इसके फलस्वरूप बने उप-जीव एक-दूसरे से पृथक् होने में असमर्थ रहे और सिरों पर एक-दूसरे से जुड़े रहे जैसे प्लेटीहेल्मिन्थीज तथा ऐनेलिड प्राणी ; अथवा फिर अलैंगिक मुकुलन द्वारा उत्पन्न उपजीव एक-दूसरे से जुड़े रहे जैसे प्लेनेरिया (*Planaria*) में। धीरे-धीरे ये उप-जीव आकारिक एवम् शरीरक्रियात्मक रूप से एक-दूसरे से जुड़ते गये जिसके फलस्वरूप एक जटिल जीव का निर्माण हुआ। अत: इस संकल्पना के अनुसार खण्डीय प्राणी (जैसे ऐनेलिड) रैखिक क्रम में विन्यसित उपजीवों की ऐसी शृंखला है जिन्होंने विलय होकर एक जटिल जीव का निर्माण किया। किन्तु इस संकल्पना के प्रति यह आपत्ति है कि परिवर्धन करते हुए ऐनेलिड में खण्ड इस विधि द्वारा विकसित नहीं होता।

एक अन्य संकल्पना के अनुसार पूर्वजों में विभिन्न तन्त्र या अंग पुनरावृत्त होकर समस्त शरीर में फैल गये। अत: संखण्डावस्था का उद्‌भव एक ही जीव में पेशियों, तन्त्रिकाओं, वृक्ककों, वाहिनियों तथा सीलोम के खण्डीय विभाजन के फलस्वरूप हुआ न कि विखण्डन संकल्पना के अनुसार नये जीवों के बनने से। खण्डों के निर्माण के साथ शरीर का विभिन्न खण्डों में विभाजन हुआ जिसके फलस्वरूप प्रत्येक खण्ड को प्रत्येक तन्त्र का पुनरावृत्त भाग प्राप्त हुआ। इस संकल्पना को इस तथ्य से भी समर्थन प्राप्त होता है कि *प्लेनेरिया* व अनेक अन्य प्राणियों में वृषण, योक-ग्रन्थियाँ तथा दोनों नर्व कार्ड की अनुप्रस्थ संधायियाँ पूरे शरीर में पुनरावृत्त होती हैं तथा इन प्राणियों में भी खण्डों के परिवर्धन से संखण्डीय अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। इस संकल्पना को इस तथ्य से भी पर्याप्त समर्थन मिलता है कि कुछ ऐनेलिड्स की लारवल व प्रौढ़ अवस्था में देहखण्डों के निर्माण में खण्डीभवन के मूल विन्यास के बाद ही पट विकसित होते हैं।

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, विभिन्न फाइलमों के सदस्यों जैसे आर्थ्रोपोड व पृष्ठवंशी, में खण्डीभवन की विधि अवश्य ही एक दूसरे के समान होती है किन्तु विभिन्न समूहों के प्राणियों में विकासीय दृष्टि से यह अलग-अलग दिशाओं की ओर अग्रसर हुई। अत: हम यह नहीं मान सकते कि संखण्डीय प्राणियों के विभिन्न समूहों का विकास एक ही पूर्वज से हुआ है।

वास्तविक संखण्डावस्था तथा कूट संखण्डावस्था नें अन्तर
(Difference Between True Metamerism and Pseudometamerism)

वास्तविक संखण्डावस्था (*Tree Metamerism*)	कूट संखण्डावस्था (*Pseudometamerism*)
1. किसी एक जाति में खण्डों की संख्या सदैव स्थिर रहती है तथा वयस्कता के उपरांत नये खण्डों का निर्माण नहीं होता।	1. एक ही जाति के विभिन्न सदस्यों में खण्डों या प्रोग्लोटिड्स की संख्या अलग अलग होती है और जीवन-पर्यन्त नये खण्ड बनते रहते हैं।
2. पूर्वस्थित खण्डों में वृद्धि से ही शरीर वृद्धि करता है।	2. एक सिरे पर प्रचुरोद्‌भवन के फलस्वरूप नये खण्डों के बनने से वृद्धि होती है।

वास्तविक संखण्डावस्था (*True Metamerism*)	कूट संखण्डावस्था (*Pseudometamerism*)
3. समस्त खण्ड परिवर्धन की समान अवस्था को प्रदर्शित करते हैं।	3. विभिन्न प्रोग्लोटिड्स परिवर्धन की अलग-अलग सीमा को प्रदर्शित करते हैं।
4. क्रियात्मक रूप से सभी खण्ड एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं और प्रत्येक खण्ड अन्य खण्डों के समन्वय में कार्य करता है।	4. खण्ड या प्रोग्लोटिड्स क्रियात्मक रूप से स्वतन्त्र इकाइयों के रूप में होते हैं तथा प्रत्येक के अपने निजी लैंगिक अंग, उत्सर्जी व तन्त्रिका तन्त्र होते हैं।

प्रश्न 33. आपके द्वारा अध्ययन किये गये ऐनेलिड प्राणियों में उत्सर्जी अंगों का वर्णन करिये।

Describe the excretory organs of the annelidan types studied by you. (*Jabalpur 1973*)

नेरीस के उत्सर्जी अंग (Excretory Organs of Nereis)

कृपया प्रश्न 7 देखिये।

केंचुए के उत्सर्जी अंग (Excretory Organs of Earthworm)

कृपया प्रश्न 17 देखिये।

लीच के उत्सर्जी अंग (Excretory organs of Leech)

कृपया प्रश्न 24 देखिये।

प्रश्न 34. ऐनेलिडा में वृक्ककों व प्रगुहीय वाहिनियों का संक्षेप में वर्णन करिये।

Give a brief account of nephridia and coelomoducts in Annelida.

ऐनेलिड्स में सीलोम से उत्सर्जी एवम् जननीय उत्पादों का वाहर की ओर स्खलन खण्डीय क्रम में विन्यसित नलिकाओं द्वारा होता है जिनको खण्डीय अंग (segmental organs) कहते हैं। पहले यह अनुमान था कि पूर्वज सीलोमेट प्राणियों के प्रत्येक खण्ड के प्रत्येक एक जोड़ी सीलोमिक या प्रगुहीय कोष्ठ (coelomic sacs) दो जोड़ी वाहिनियों द्वारा वाहर खुलते हैं। इनमें से एक जोड़ी वाहिनियाँ उत्सर्जी पदार्थों को वाहर स्खलित करती हैं और ये **नेफ्रीडिया** या **वृक्कक** (nephridia) कहलाती हैं। दूसरी जोड़ी वाहिनियाँ जननीय पदार्थों को वाहर स्खलित करती हैं और **सीलोमोडक्ट** या **प्रगुहीय वाहिनियाँ** (coelomoducts) कहलाती हैं। पहले इनको समजात संरचनाएँ मानते थे। किन्तु **Goodrich** ने सुस्थापित किया कि वृक्ककों का उद्भव एक्टोडर्मल तथा प्रगुहीय वाहिनियों का उद्भव मेसोडर्मल होता है।

आधुनिक जातियों में भी वृक्कक (एक्टोडर्मल नलिकाएँ) उत्सर्जन से तथा प्रगुहीय वाहिनियाँ (मेसोडर्मल नलिकाएँ) जननीय पदार्थों से सम्वद्ध होती हैं। किन्तु ये विशिष्ट रूप से केवल यही कार्य नहीं करतीं अपितु वृक्ककों एवम् प्रगुहीय वाहिनियों के आपसी सम्वन्ध में अनेक विविधताएँ होती है।

1. नेफ्रीडिया या वृक्कक (Nephridia)

ये खण्डीय क्रम में विन्यसित एक्टोडर्म से विन्यसित होने वाली कुण्डलित नलिकाएं हैं जो मुख्यत: उत्सर्जी पदार्थों को पृथक् करके वाहर उत्सर्जित करती हैं। ये पक्ष्माभिकी नलिकाओं के रूप में होती हैं। वाहर की ओर खुलने वाले इनके द्वारकों

छिद्रों को वृक्ककमुख या नेफ्रीडियोपोर (nephridiopores) कहते हैं। -वृक्कक सीलोम में खुलते है अथवा फिर अंधविनाल के रूप में सीलोम में फैले रहते हैं। इसके आधार पर निम्न दो प्रकार के वृक्कक होते हैं :—

(1) प्रोटोनेफ्रीडिया या आदिवृक्कक (Protonephridia)—ये सीलोम में अंधविनाल के रूप में समाप्त होते हैं। बन्द सिरे पर अनेक **सोलीनोसाइट** (solenocytes) होते हैं। सोलीनोसाइट्स समूहों में छोटी-छोटी पॉकेटों या ग्लोमेरुलाई (glomeruli) में स्थित होते हैं। ग्लोमेरुलाई की बाह्य सतह पर पक्ष्म या सीलिया होते हैं। सीलिया की गति के कारण सीलोमिक द्रव सन्तत रूप से सोलीनोसाइट्स के ऊपर से प्रवाहित होता रहता है जिससे अवशोषण एवम् फिल्ट्रेशन में सुविधा होती है। आदिवृक्कक वानाडिस (*Vanadis*) में मिलते हैं।

(2) पश्चवृक्कक या मेटानेफ्रीडिया (Metanephridia)—इस प्रकार के नेफ्रीडिया सीलोम में खुलते हैं और इनके छिद्रों को **नेफ्रोस्टोम या वृक्ककमुख** (nephrostome) कहते हैं। वृक्ककमुख प्रायः कीप के समान तथा पक्ष्मी होता है। पश्चवृक्कक (metanephridia) नोटोमेस्टस (*Notomastus*) में पाये जाते हैं।

आकार के आधार पर नेफ्रीडिया निम्न प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **सूक्ष्मवृक्कक** (Micronephridia)—ये छोटे अर्थात् सूक्ष्मदर्शी होते हैं और प्रत्येक खण्ड में बहुलता में मिलते हैं जैसे फेरेटीमा (*Pheretima*) में।

(*ii*) गुरुवृक्कक (Meganephridia)—ये आकार में बड़े होते हैं और प्रत्येक खण्ड में इनका केवल एक जोड़ा मिलता है, जैसे नेरीस (*Nereis*), लुम्ब्रिकस (*Lumbricus*) तथा मेगास्कोलैक्स (*Megascolex*)।

2. प्रगुहीय वाहिनियाँ (Coelomoducts)—ये चौड़ी नलिकाएँ हैं जो मेसोडर्म से विकसित होती हैं। ये एक ओर सीलोम में तथा दूसरी ओर बाहर खुलती है। सीलोम में खुलने वाला द्वारक पक्ष्मोंयुक्त कीप के समान होता है।
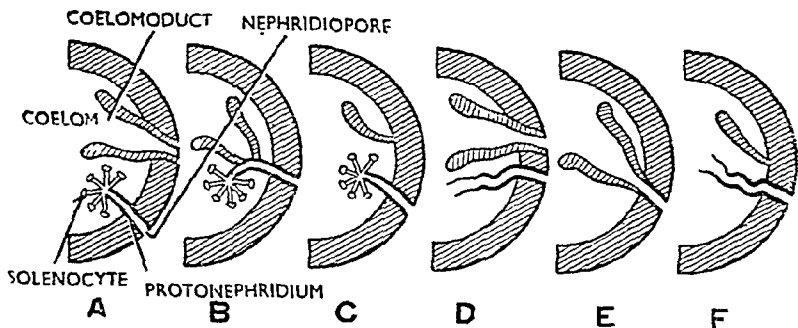
चित्र ५·१. ऐनेलिडा में वृक्ककों व प्रगुहीय वाहिनियो के विभिन्न सम्बन्ध (Nephridia and coelomoducts of Annelida in different associations)

3. नेफ्रोमिक्सिया (Nephromixia)—अनेक पोलिकीट्स में प्रगुहीय वाहिनियाँ तथा वृक्कक आंशिक या पूर्ण रूप से समेकित होकर संयुक्त संरचनाएँ बनाते हैं जिनको **नेफ्रोमिक्सिया** (nephromixia) कहते हैं। ये उत्सर्जी व जननीय पदार्थों को बाहर स्खलित करते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं।

(*i*) **प्रोटोनेफ्रोमिक्सिया** (Protonephromixia)—**आदिवृक्कक तथा प्रगुहीय वाहिनियाँ** (Protonephridia and coelomoducts) : इनमें प्रगुहीय वाहिनी आदि-वृक्कक से जुड़ी रहती है। ये उत्सर्जी व जननीय, दोनों प्रकार के पदार्थों को बाहर निकालते हैं। प्रोटोनेफ्रोमिक्सिया *फिलोडोस* (*Phyllodoce*) में मिलते है।

(*ii*) **मेटानेफ्रोमिक्सिया—पश्चवृक्कक तथा प्रगुहीय वाहिनी** (Metanephridia-metanephridium and coelomoduct)—इनमें प्रगुहीय वाहिनी व वृक्कक पूर्ण रूप से समेकित होती है, जैसे *हेसिओन* (*Hesione*) में।

(*iii*) **मिक्सोनेफ्रीडियम** (Myxonephridium)—प्रगुहीय वाहिनी तथा वृक्कक पूर्ण रूप से समेकित होकर एक सरल कीप के समान रचना बनाते है। ये *अरेनिकोला* (*Arenicola*) में मिलते हैं।

(*iv*) **पक्ष्माभिकी अंग** (Ciliated organs)—कुछ ऐनेलिड प्राणियों में वृक्कक स्पष्ट रहते है तथा प्रगुहीय वाहिनियाँ **पक्ष्माभिकी अंगों** (ciliated organs) के रूप में शेष रह जाती हैं, जैसे *नेरीस* (*Nereis*) में।

प्रश्न 35. जिन ऐनेलिड जन्तुओं का आपने अध्ययन किया है उनकी आहार-नालों का तुलनात्मक विवरण दीजिये। प्रत्येक भाग जन्तु के जीवन स्वभाव के किस प्रकार अनुकूल है ?

Give a comparative account of the alimentary canal of the annelids you have studied. Point out how each part is adapted to the mode of life of the animal. (*Agra 1963 ; Allahabad 59 ; Nagpur 59 ; Raj. 62 ; Lucknow 59, 64 ; Vikram 61 ; Punjab 64*)

फेरेटीमा, लीच तथा नेरीस की आहार-नाल तथा तत्सम्बन्धी संरचनाओं का वर्णन कीजिये। उनके भोजन करने का ढंग भी संक्षेप में लिखिये।

Describe the alimentary canal and structure associated with it in *Pheretima, Leech* and *Nereis*. Add a paragraph on their mode of feeding. (*Agra 1951, 63 ; Raj. 68 ; Allahabad 70*)

लीच तथा नेरीस की आहार-नाल का तुलनात्मक विवरण दीजिये।

Give a comparative account of the alimentary canal of *Leech* and *Nereis*. (*Ranchi 1968 ; Vikram 65, 69*)

नेरीस, केंचुए तथा लीच में आहार-नालों का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparison of Alimentary Canal in Nereis, Earthworm and Leech)

इन सभी जन्तुओं में आहार-नाल एक ही आधार पर बनी होती है, परन्तु प्रत्येक जन्तु में भोजन के स्वभाव के अनुरूप कुछ परिवर्तन अवश्य पाये जाते हैं। भिन्नताएँ निम्नलिखित हैं :—

नेरीस (*Nereis*)	फेरेटीमा (*Pheretima*)	लीच (*Leech*)
1. आहार-नाल मे निम्नलिखित भाग होते है :— (1) मुख तथा मुखगुहा (2) ग्रसनी (3) ग्रासनली (4) आमाशय तथा आन्त्र (5) रेक्टम	1. फेरेटीमा की आहार-नाल को निम्न भागों में बांटा जाता है :— (1) मुख तथा मुखगुहा (2) ग्रसनी (3) ग्रासनली (4) पेषणी (5) आमाशय (6) आन्त्र (7) रेक्टम	1. आहार-नाल में निम्न भाग होते है :— (1) मुख तथा अग्रमुखी गुहा (2) मुखगुहा (3) ग्रसनी (4) ग्रासनली (5) क्रॉप (6) आमाशय (7) आंत्र (8) रेक्टम
2. आहार-नाल की फोरगट (foregut) में मुखगुहा तथा ग्रसनी ही होते हैं।	2. मुख, मुखगुहा, ग्रसनी, ग्रासनली तथा गिजार्ड फोरगट का निर्माण करते है।	2. क्रॉप तक के भाग फोरगट का निर्माण करते हैं।
3. मुख अनुप्रस्थ झिर्री (transverse slit) के समान होता है जो प्रोस्टोमियम के पीछे पेरीस्टोमियम के अधर तल पर मध्य भाग में स्थित होता है।	3. मुख अर्ध-चन्द्राकार (crescentic) छिद्र है जो प्रोस्टोमियम के पीछे प्रथम खण्ड के अधर तल पर मध्य रेखा पर स्थित होता है।	3. मुख सँकरा त्रिअक्षीय (triradiate) छिद्र है जो प्रीओरल गुहा के आधार पर अधर तल पर स्थित होता है। यह झिल्ली के समान वीलम (velum) द्वारा सुरक्षित रहता है।
4. प्रीओरल गुहा (preoral cavity) नही होती।	4. प्रीओरल गुहा अनुपस्थित होती है।	4. मुखछिद्र के सामने अग्रिम चूषक की खाली गुहा (hollow cavity) प्याले के समान होती है।

नेरीस (*Nereis*)	फेरेटीमा (*Pheretima*)	लीच (*Leech*)
		और प्रीओरल गुहा कहलाती है।
5. वीलम अनुपस्थित होता है।	5. वीलम अनुपस्थित होता है।	5 वीलम प्रीओरल गुहा तथा मुखगुहा के बीच एक झिल्ली के समान आवरण है जो भोजन ग्रहण करने के समय तीन भागों में बँट जाता है।
6. मुखगुहा एक चौड़े कक्ष के रूप मे पेरिस्टोमियम के भीतर होती है।	6. मुखगुहा एक छोटा, पतली दीवारों वाला बहिःसारी या बहिक्षेप्य (protrusible) कक्ष है जो तीसरे खण्ड के मध्य तक फैला रहता है।	6. मुखगुहा एक छोटा कक्ष है जिसमें तीन जबड़े अर्धचन्द्राकार विधि में विन्यसित रहते हैं। यह वीलम द्वारा प्रीओरल गुहा से अलग रहती है।
7. नेरीस में दो जबड़े पाये जाते हैं जो ग्रसनी के पिछले भाग की दीवारों मे धँसे रहते हैं। प्रत्येक जबड़ा बड़ा, शक्तिशाली तथा गहरे भूरे या काले रंग का व काइटिन का बना होता है। इसका अगला सिरा नुकीला तथा भीतर को झुका रहता है और थोड़ा-सा दो भागो मे बँटा होता है। इसका पिछला भाग चौड़ा तथा लगभग गोल होता है। जबड़े की पार्श्व सतह पर बहुत-से नुकीले उभार होते है जो भोजन को महीन करने मे सहायता करते हैं।	7. जबड़े अनुपस्थित होते हैं।	7. लीच की मुखगुहा में तीन जबड़े होते हैं। प्रत्येक जबड़ा पार्श्व तल में दबा हुआ (laterally compressed), पेशीयुक्त व गद्देदार रचना है जिसके चारों ओर क्यूटिकल का आवरण होता है। यह आवरण तीन सतहों पर मोटा होता है और इस पर दांतो के समान उभार होते हैं। ये सूक्ष्म दन्त (denticles) कहलाते हैं। तीनों जबड़े एक साथ काम करते हैं और पेशियों के द्वारा मुखगुहा से बाहर आकर पोषक की त्वचा पर त्रि-अक्षीय घाव बनाते हैं।
8. ग्रसनी अत्यन्त पेशीयुक्त होती है और शरीर के चौथे खण्ड तक फैली रहती है। यह पुनः विभाजित नही होती।	8. ग्रसनी एक चौड़ी, नाशपाती के आकार की, मोटी पेशीयुक्त रचना है जो चौथे खण्ड तक फैली रहती है। ग्रसनी की गुहा कम चौड़ी तथा चपटी होती है और एक क्षैतिज पट्टी (horizontal shelf) द्वारा दो कक्षों में बँटी रहती है। पृष्ठ कक्ष सार	8. ग्रसनी एक अत्यन्त पेशीयुक्त, अवशोषी (suctorial) तथा अण्डाकार भाग है जो पाँचवें से सातवें खण्ड तक फैली रहती है।

	कोष्ठक (salivary chamber) तथा अधर कक्ष संताही कोष्ठक (conducting chamber) कहलाते हैं ।	
9. नेरीस में मुखगुहा तथा ग्रसनी के चारों ओर एक अविच्छिन्न पेशीय आवरण (muscular sheath) होता है जो मिलकर इण्ट्रोवर्ट (introvert) बनाते हैं । यह बहिःक्षेप्य होती है ।	9. इण्ट्रोवर्ट नहीं होती ।	9. इण्ट्रोवर्ट अनुपस्थित होती है ।
10. मुखगुहा तथा ग्रसनी को आस्तारित करने वाली क्यूटिकल कुछ स्थानों पर मोटी होकर गहरे भूरे रंग के सूक्ष्म दन्त (denticles) या पैराग्नेथ (paragnaths) बनाती है ।	10. ऐसा नहीं होता ।	10. पैराग्नेथ नहीं होते ।
11. लार ग्रन्थियाँ अनुपस्थित होती है ।	11. लार ग्रन्थियाँ एककोशिक ग्रन्थियों के रूप में ग्रसनी बल्ब (pharyngeal bulb) के ग्रन्थिल भाग में पायी जाती हैं । ये लार उत्पन्न करती हैं । केंचुए के लार रस में हिरुडिन नहीं होता ।	11. ग्रसनी की दीवार को घेरे हुए असंख्य एककोशिका लार ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं । इनकी वाहिनियाँ जबड़ों के ऊपर स्थित लार अंकुरों (salivary papillae) पर स्थित छिद्रों द्वारा बाहर को खुलती हैं । लार रस में हिरुडिन (hirudin) या एण्टीकॉगुलिन (anticoagulin) नामक पदार्थ होता है जो रक्त का थक्का नहीं बनने देता ।
12. ग्रासनली एक छोटी तथा सँकरी नलिका है ।	12. ग्रासनली एक लम्बी व पतली दीवार वाली कम चौड़ी नलिका है जो सातवें खण्ड तक पायी जाती है ।	12 ग्रासनली एक छोटी, कम चौड़ी नलिका है जिसको आस्तारित करने वाली एपिथीलियम उभारों के रूप में होती है ।
13. ग्रासनली में एक जोड़ी ग्रासनली ग्रन्थियाँ (oesophageal glands) होती हैं जो पाचक रस बनाती हैं ।	13. ग्रासनली में ग्रन्थियाँ नहीं होतीं ।	13. ग्रासनली में ग्रन्थियों का अभाव होता है ।
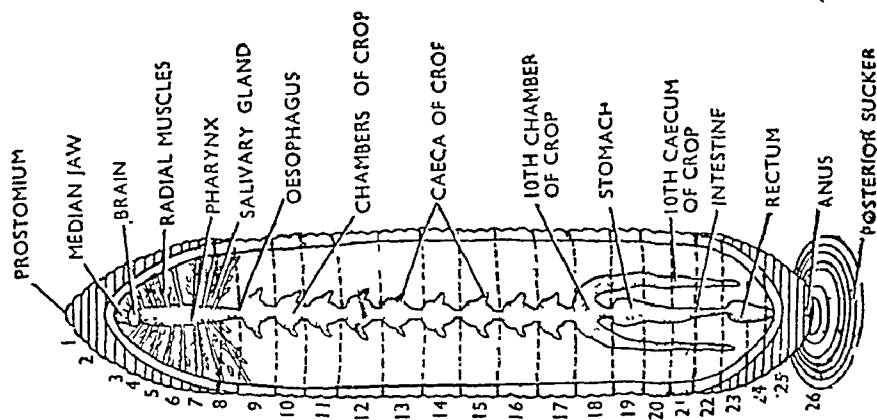
चित्र ५·२. नेरीस की आहार-नाल (Alimentary canal of *Nereis*)
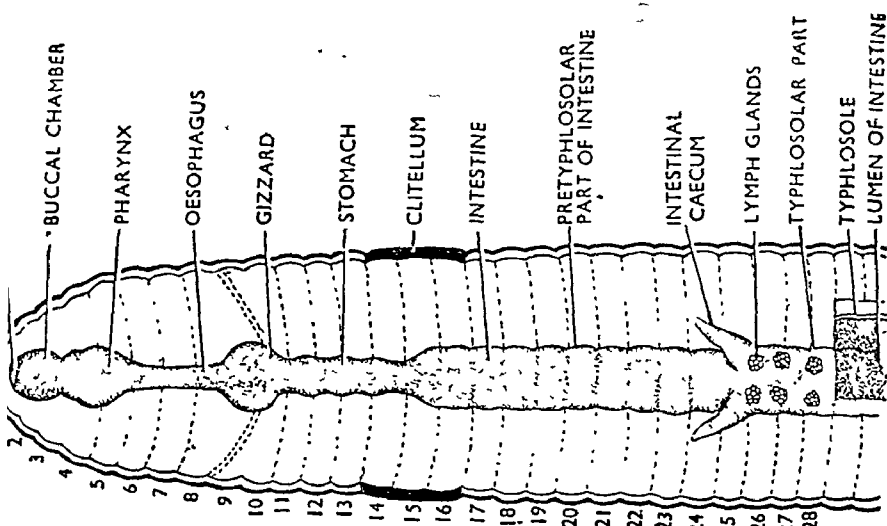
चित्र ५·३. फेरेटिमा की आहार-नाल (Alimentary canal of Earthworm)

चित्र ५·४. लीच की आहार-नाल (Alimentary canal of Leech)

नेरीस (*Nereis*)	फेरेटीमा (*Pheretima*)	लीच (*Leech*)
14. गिजार्ड अनुपस्थित होता है।	14. ग्रासनली के पश्चात् गिजार्ड या पेषणी कठोर, अण्डाकार, मोटी दीवार वाली गेंद के समान रचना है जो भोजन को पीसने के लिए चक्की के समान कार्य करती है।	14. गिजार्ड नहीं पाया जाता।
15. क्रॉप अनुपस्थित होता है।	15. क्रॉप अनुपस्थित होता है।	15. क्रॉप दस कक्षों का बना होता है तथा प्रत्येक कक्ष एक जोड़ी पार्श्व अपवर्धों (diverticula or caeca) के रूप में उभरा रहता है। क्रॉप में भोजन संचित रहता है।
16. ग्रासनली आमाशय-आंत्र में खुलती है जो शरीर की समस्त लम्बाई में पायी जाती है। नेरीस में आमाशय तथा आंत्र को अलग-अलग नहीं पहचाना जा सकता है।	16. आमाशय पतली ग्रन्थिमय तथा संवहनीय दीवारों वाली नलिका है जो चौदहवें खण्ड तक फैली रहती है। इसकी दीवार में बहुत-से उभार होते है।	16. आमाशय हृदय के आकार का कक्ष है जो उन्नीसवें खण्ड में स्थित होता है। इसका आन्तरिक स्तर बहुत-सी अनुप्रस्थ पर्तों (transverse folds) में उभरा रहता है।
17. आमाशय-आंत्र पतली दीवार वाली नली है जो प्रत्येक खण्ड में सेप्टा द्वारा बँटी रहती है।	17. आंत्र एक लम्बी, चौड़ी तथा पतली दीवार वाली नली है जो पन्द्रहवें खण्ड से शरीर के अन्तिम सिरे तक फैली रहती है। यह तीन भागों में बाँटी जा सकती है जो प्रीटिफ्लोसोलर, टिफ्लोसोलर तथा पोस्ट-टिफ्लोसोलर भाग कहलाते हैं।	17. आंत्र एक चौड़ी तथा पतली दीवार वाली नलिका है जिसमें अनुप्रस्थ एवम् लम्बवत् अंगुलाकार उभार (villi) होते हैं। यह बीसवें से बाइसवें खण्ड तक फैली रहती है।
18. टिफ्लोसोल नहीं पाया जाता।	18. टिफ्लोसोलर भाग में आंत्र की पृष्ठ दीवार से एक उभार आंत्र गुहा में लटका रहता है। यह टिफ्लोसोल कहलाता है।	18 टिफ्लोसोल नहीं होता।
19 रेक्टम या मलाशय शरीर के अन्तिम खण्ड	19. रेक्टम शरीर के अन्तिम पच्चीस खण्डों	19. रेक्टम बाइसवें खण्ड से छब्बीसवें खण्ड

फेरेटीमा (*Pheretima*)	नेरीस (*Nereis*)	लीच (*Leech*)
तथा ग्रीवा भाग एवम् टरमिनल उत्सर्जन वाहिनी में केवल एक सीलियेटेड पथ होता है।		—
9. पक्ष्माभिकी अंग अनुपस्थित होता है।	9. प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी पृष्ठ पक्ष्माभिकी अंग पाये जाते हैं। ये जनन वाहिनियाँ प्रदर्शित करते हैं। इनका नेफ्रीडिया से कोई सम्पर्क नही होता।	9. लीच में पक्ष्माभिकी अंग पेरीनेफ्रोस्टोमियल एम्पुला में बन्द रहता है। इसका उत्सर्जन तथा जनन से कोई सम्बन्ध नही होता। यह सीलोमिक कणिकाएँ (coelomic corpuscles) बनाता है।
10. नेफ्रीडिया द्वारा अलग किए हुए उत्सर्जी पदार्थ या तो आहार-नाल में डाल दिये जाते हैं अथवा शरीर से बाहर फेंक दिये जाते हैं। अतः उत्सर्जन-तन्त्र एक्सोनेफ्रीक तथा एण्डोनेफ्रीक प्रकार का होता है।	10. नेफ्रीडिया उत्सर्जी पदार्थों को शरीर के बाहर फेंकते हैं।	10. नेफ्रीडिया शरीर के बाहर खुलते हैं। इनके छिद्र छठे से बाइसवे खण्ड तक अन्तिम एन्युलस में स्थित होते हैं।
11. नेफ्रीडिया की ग्रन्थि कोशिकाएँ रक्त तथा सीलोमिक द्रव से नाइट्रोजन के बने पदार्थों को अलग करती हैं।	11. ऐसा ही होता है।	11. नेफ्रीडिया का मुख पिण्डक हीमोसीलोमिक द्रव से उत्सर्जी पदार्थों को अलग करता है।
12 क्लोरेगोगन कोशिकाएँ (chloragogen cell) उत्सर्जन में सहायता करती हैं।	12. क्लोरेगोगन कोशिकाएँ अथवा बोट्रीओइडल तन्तु नही पाये जाते हैं। उत्सर्जन केवल नेफ्रीडिया द्वारा होता है।	12. मुख्य पिण्डक के अतिरिक्त बोट्रीओइडल तन्तु भी उत्सर्जन में सहायता करते हैं।

प्रश्न 37. नेरीस, फेरेटीमा एवम् लीच के जनन अंगों की तुलना करिये ।
Compare the reproductive organs of *Nereis*, *Pheretima* and *Leech*. (*Kanpur 1968*)

नेरीस, फेरेटीमा तथा लीच के जनन अंगों की तुलना
(Comparison of Reproductive Organs in Nereis, Pheretima and Leech)

नेरीस (*Nereis*)	फेरेटीमा (*Pheretima*)	लीच (*Leech*)
1. नर तथा मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं ; अतः ये एकलिंगी जन्तु हैं।	1. ये उभयलिंगी जन्तु है ।	1. उभयलिंगी होते हैं ।
	(अ) नर जनन-अंग (Male Genital Organs)	
2. जनन-अंग अस्थायी होते हैं और केवल जनन काल में ही बनते हैं ।	2. जनन-अंग स्थायी रचनाएँ हैं ।	2. स्थायी रचनाएँ हैं ।
3. जनन-अंग निश्चित अण्डाशय या वृषण नहीं बनाते ।	3. जनन-अंग निश्चित रचनाएँ होती हैं ।	3. जनन-अंग निश्चित रचनाएँ होती हैं ।
4. नेरीस में केवल एक जोड़ी वृषण होते हैं जो केवल जननकाल में बनते हैं ।	4. वृषण दो जोड़ी छोटे तथा सफेद रंग के होते हैं जो वृषण कोषों में बन्द रहते हैं ।	4. लीच में 11 जोड़ी वृषण कोप पाये जाते हैं । ये अण्डाकार होते हैं ।
5. वृषण कोष नहीं होते ।	5. वृषण कोप थैले के समान होते हैं ।	5. वृषण कोप अण्डाकार या गोल होते हैं ।
6. स्पर्मीड्युकल कीप तथा शुक्र-वाहिनी नहीं होतीं ; अतः शुक्राणु देहभित्ति में बने अस्थायी छिद्रों द्वारा नेफ्रीडिया द्वारा शरीर के बाहर निकलते हैं ।	6. प्रत्येक वृषण के नीचे एक स्पर्मीड्युकल फनल (spermiducal funnel) होती है जो एक पतली शुक्रवाहिनी (sperm-duct or vas defe-	6. लीच में स्पर्मीड्युकल फनल नहीं होती किन्तु प्रत्येक वृषण से एक छोटी वास इफेरेन्स (vas eferens) निकलती है जो थोड़ी-सी दूरी पर

नेरीस (*Nereis*)	फेरेटीमा (*Pheretima*)	लीच (*Leech*)
	rens) में खुलती है। शुक्राणु इन वाहिनियों द्वारा शरीर के बाहर ले जाये जाते हैं।	स्थित अपनी ओर की शुक्र-वाहिनी में खुलती है।
7. वास-डिफेरेन्स या शुक्र-वाहिनियाँ नहीं होतीं।	7. वास-डिफेरेन्स की दो जोड़ियाँ पायी जाती हैं।	7. केवल एक जोड़ी शुक्र-वाहिनी होती है।
8. —	8. एक ओर की दोनों शुक्रवाहिनियाँ अपनी ओर की प्रोस्टेट वाहिनी के साथ मिलकर उभयनिष्ठ प्रोस्टेट तथा स्परमेटिक वाहिनी बनाती हैं। यह नर जनन छिद्र द्वारा शरीर के अधर तल पर खुलती है।	8. शुक्र-वाहिनी फूलकर एपिडिडाइमिस नामक रचना बनाती है।
9. —	9. शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी नहीं होती।	9. शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी (ejaculatory duct) होती है जो एपिडिडाइमिस से निकलती है और दूसरी ओर की वाहिनी से मिलकर एट्रियम (atrium) का निर्माण करती है।
10. —	10. एट्रियम नहीं होता।	10. एट्रियम दो भागों में बँटा होता है। ऊपर वाला भाग प्रोस्टेट तथा नीचे वाला भाग पेनिस सैक होता है। पेनिस सैक मध्य अधर तल पर नर जनन छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है।

(ब) मादा जनन अंग (Female Genital Organs)

11. अण्डाशय के समान कोई निश्चित मादा जनन-अंग नहीं पाये जाते। देहभित्ति की सीलोमिक	11. अण्डाशय का एक जोड़ा 12/13 के बीच स्थित सेप्टम की पिछली सतह से जुड़ा रहता है। ये	11. लीच में अण्डाशयों का एक जोड़ा होता है। प्रत्येक एक छोटी, कुण्डलित तथा धागे के समान

एपिथीलियम की कोशिकाओं के विभाजित होने से अण्डे बनते हैं जो जननकाल में देहगुहा में एकत्रित हो जाते हैं।	छोटे, सफेद अंगुलाकार प्रवर्धों से बनी होती है। इन प्रवर्धों मे अण्डे वर्धन अवस्था के अनुरूप एक पंक्ति में लगे रहते हैं।	रचना है जो अण्डकोष (ovisac) के भीतर बन्द द्रव में तैरती रहती है।
12. ये शरीर के अगले कुछ खण्डों को छोड़कर शरीर की गुहा में भरे रहते हैं।	12 ऐसा नही होता। अण्डे अण्डाशय से निकलने के पश्चात् अण्डवाहिनी कीप (oviducal funnel) में पहुँचते हैं।	12. अण्डे अण्डाशयों से निकलकर अण्डवाहिनी में पहुँचते हैं।
13. अण्डवाहिनी कीप नही होती।	13 अण्डवाहिनी का अगला सिरा चौड़ा तथा पक्ष्मयुक्त होता है और अण्डवाहिनी कीप कहलाता है।	13. अण्डवाहिनी कीप नहीं होती।
14. अण्डवाहिनी नहीं पायी जाती।	14. अण्डवाहिनी छोटी, चौड़ी ऊर्ध्व नलिका है जो तेरहवें, चौदहवें खण्ड के बीच स्थित होती है। दोनों ओर की अण्डवाहिनियाँ मिलकर मादा जनन-छिद्र द्वारा चौदहवें खण्ड में खुलती हैं।	14. अण्डवाहिनी छोटी अनुप्रस्थ नलिका है जो दूसरी अण्डवाहिनी से मिलकर मूल अण्डवाहिनी बनाती है जो योनि में खुलती है।
15. —	15. —	15. योनि उपस्थित होती है।
16. —	16. एल्बुमिन ग्रन्थि नहीं होती।	16. दोनों अण्डवाहिनियों के मिलने के स्थान के पृष्ठ-तल पर एल्बुमन ग्रन्थि पायी जाती है जो अण्डवाहिनियों में अपना द्रव्य डालती है।
17. —	17. शुक्राशयों (spermathecae) के चार जोड़े शरीर के अगले भाग में छठे, सातवें, आठवें व नवें खण्डों में पाये जाते हैं।	17. शुक्राशय नहीं होता।

प्रश्न 38. फेरेटीमा में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के वृक्ककों का वर्णन कीजिये तथा नेरीस एवम् हिरुडिनेरिया के साथ उनकी तुलना कीजिये।

Describe different types of nephridia found in *Pheretima* and compare them with those of *Nereis* and *Hirudinaria*.

फेरेटीमा के वृक्कक

कृपया प्रश्न 10 देखिये।

नेरीस एवम् हिरुडिनेरिया से तुलना

कृपया प्रश्न 37 देखिये।

प्रश्न 39. निम्नलिखित के केवल सुन्दर एवम् नामांकित चित्र बनाइये। वर्णन की आवश्यकता नहीं है) :—

Draw neat and labelled diagrams of the following (no description is needed) :—

(i) पार्श्वपाद वाले भाग से नेरीस के शरीर का अनुप्रस्थ काट (T.S. body of *Nereis* through parapodia)

(*Lucknow 1956, 58, 61, 63, 65 ; Vikram 63, 68 ; Nagpur 69 ; Punjab 67 ; Agra 70 ; Kanpur 71 ; Indore 72*)

कृपया चित्र 2·9 देखिये।

(ii) हेटरोनेरीस का पार्श्वपाद (Parapodium of *Heteronereis*)

(*Kanpur 1968 ; Lucknow 55 ; Vikram 62 ; Agra 73*)

कृपया चित्र 2·13 देखिये।

(iii) हेटरोनेरीस (*Heteronereis*) (*Vikram 1963 ; Agra 68*)

कृपया चित्र 2·12 देखिये।

(iv) नेरीस का ट्रोकोफोर लारवा (Trochophore larva of *Nereis*)

(*Vikram 1961 ; Lucknow 71*)

कृपया चित्र 2·11 देखिये।

(v) नेरीस का सिर जिसमें मुखगुहा भाग बाहर निकला हो (Head of *Nereis* with everted buccal region) (*Kanpur 1969 ; Lucknow 63, 64*)

कृपया चित्र 2·2 देखिये।

(vi) नेरीस का नेफ्रीडियम (Nephridium of *Nereis*) (*Luck. 1971*)

कृपया चित्र 2·9 देखिये।

(vii) फेरेटीमा की अगले वीस खण्डों से होती हुई लम्बवत् काट (V.L.S. of first 20 segments of *Pheretima*) (*Luck. 1965 ; Meerut 71*)
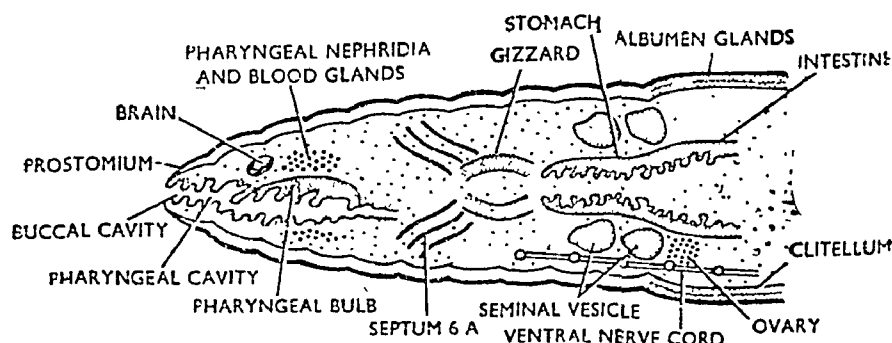
चित्र ५·५. फेरेटीमा की अगले वीस खण्डों से होती हुई लम्बवत् काट

(viii) ग्रसनी भाग से फेरेटीमा का अनुप्रस्थ काट (T.S. *Pheretima* through pharynx) (*Luck. 1965 ; Agra 68 ; Punjab 67 ; Gorakhpur 73*)
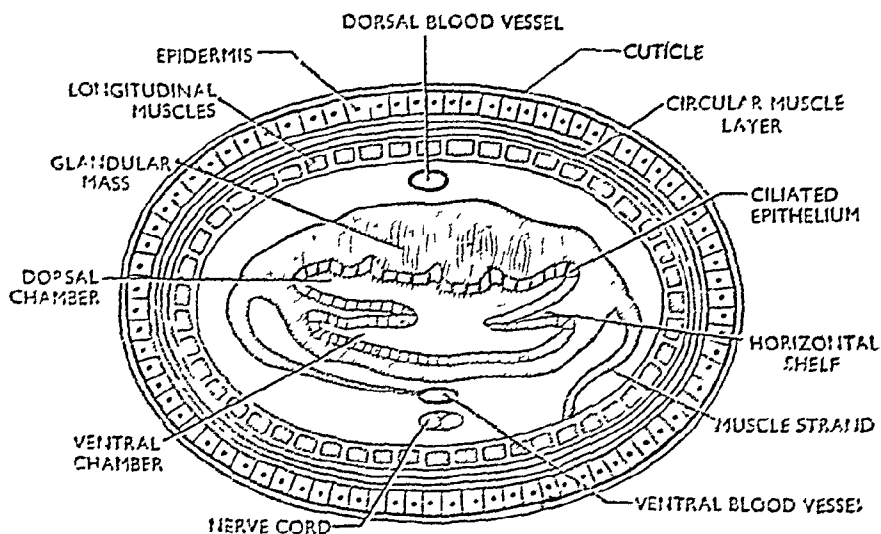
चित्र ५·६. फेरेटीमा का ग्रसनी भाग से होता हुआ अनुप्रस्थ काट (T.S. *Pheretima* through pharyngeal region)

(ix) फेरेटीमा का स्परमेथीकी भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. *Pheretima* passing through spermathecae) (*Luck. 1954, 65*)
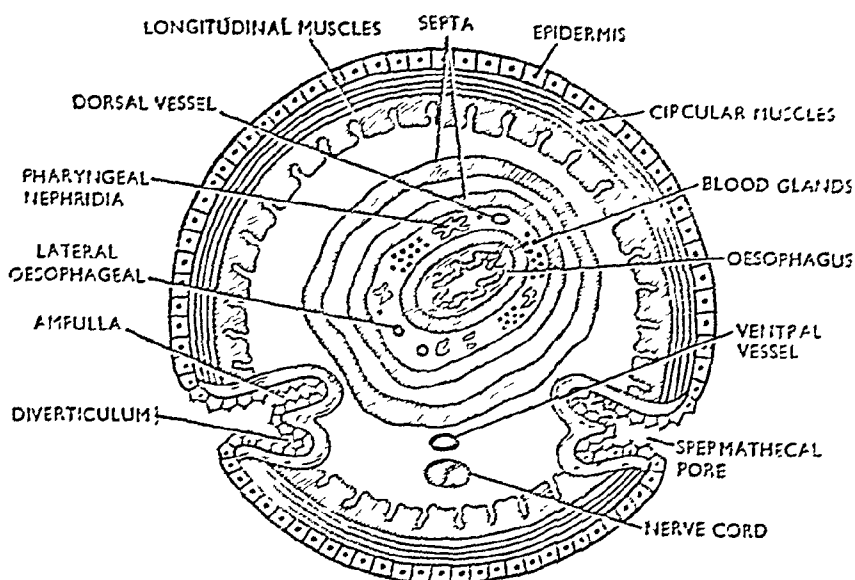
चित्र ५·७. फेरेटीमा का स्परमेथीकी भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. *Pheretima* passing through spermatheca)

(x) फेरेटीमा का हृदय वाले भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. *Pheretima* passing through the region of heart) (*Luck. 1962*)

कृपया चित्र 3·14 देखिये ।

(xi) फेरेटीमा का सैमिनल वेसिकल वाले भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. *Pheretima* passing through seminal vesicles)
(*Nagpur 1968 ; Luck. 63, 64 ; Vikram 69*)
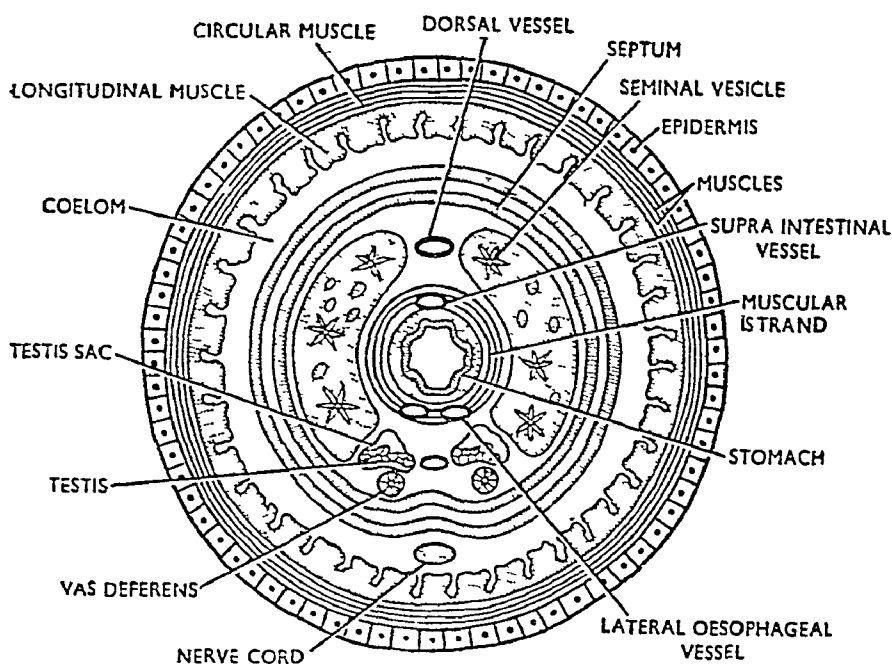
चित्र ५·८ फेरेटीमा का सैमिनल वेसिकल वाले भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. *Pheretima* passing through seminal vesicles)

(xii) फेरेटीमा का पेषणी भाग से अनुप्रस्थ काट -(T.S. *Pheretima* through Gizzard) (*Vikram 1961*)

कृपया चित्र 3·8 देखिये ।

(xiii) फेरेटीमा का आंत्र वाले भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. *Pheretima* passing through intestinal region) (*Vikram 1968*)

कृपया चित्र 3·9 देखिये ।

(xiv) हिरुडिनेरिया का शरीर के मध्य या क्रॉप से अनुप्रस्थ काट (T.S. *Hirudinaria* passing through middle of body or through crop)
(*Lucknow. 1970, 64, 69 ; Meerut 68, 71 ; Vikram 69, 62 ; Jiwaji 70, 72 ; Gorakhpur 73 ; Agra 67, 71 ; Rajasthan 73*)
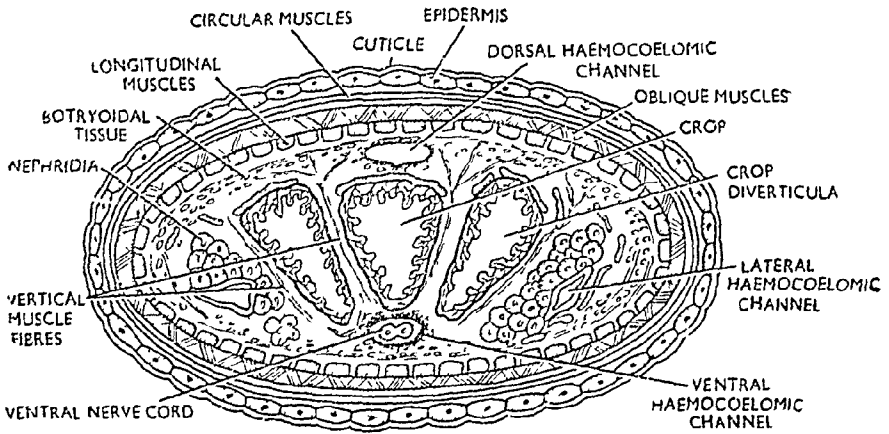
चित्र ५·६. हिरुडिनेरिया का शरीर के मध्य से अनुप्रस्थ काट
(T.S. *Hirudinaria* through middle of body)

(xv) हिरुडिनेरिया का नेफ्रीडियम (Nephridium of ***Hirudinaria*****)** (*Vikram 1968, 69*)

कृपया चित्र 4·9 देखिये ।

(xvi) हिरुडिनेरिया के जनन अंग (Reproductive organs of ***Hirudinaria*****)** (*Luck. 1959, 62, 69, 72*)

कृपया चित्र 4·19 देखिये ।

(xvii) आंत्र भाग से नेरीस का अनुप्रस्थ काट (T.S. Nereis through intestinal region) (*Kanpur 1968*)

कृपया चित्र 2·9 देखिये ।

(xviii) फेरेटीमा की त्वचा का अनुप्रस्थ काट (T.S. Integument of Earthworm) (*Rajasthan 72*)

कृपया चित्र 3·1 देखिये ।

(xx) केंचुए का पट वृक्कक (Septal nephridium of earthworm) (*Raj. 1973 ; Nagpur 73*)

कृपया चित्र 3·17 देखिये ।

अध्याय 6

फाइलम आर्थ्रोपोडा
(Phylum Arthropoda)
(Gr., *Arthros*, Jointed ; *podos*, foot)

प्रश्न 40. फाइलम आर्थ्रोपोडा के मुख्य लक्षण बताइये तथा उदाहरण सहित इसकी विभिन्न क्लासों के विशिष्ट गुणों का वर्णन कीजिये।

Give chief characters of phylum Arthropoda, mentioning the distinctive features of different classes into which the phylum is divided. Give examples of each class. (*Agra 1958, 61, 63, 65, 69 : Vikram 64, 65 ; Lucknow 69 ; Jiwaji 69, 71 ; Kanpur 71*)

फाइलम आर्थ्रोपोडा की मुख्य क्लासों (classes) के दो-दो उदाहरण देकर विशिष्ट गुण बताइये।

Give the distinguishing features of main groups of Arthropoda with two examples of each class. (*Allahabad 1955 ; Utkal 65*)

फाइलम आर्थ्रोपोडा का वर्गीकरण करिये।

Classify phylum Arthropoda. (*Vikram 1969*)

आर्थ्रोपोडा द्विपार्श्व समसित खण्डयुक्त जन्तु हैं जिनका शरीर काइटिन के बने बाह्यकंकाल से ढका रहता है तथा इनके पद भी खण्डयुक्त (jointed limb) होते है। इनमे नेफ्रीडिया तथा पक्ष्मों का पूर्ण अभाव होता है। इनकी देहगुहा कम विकसित होती है तथा उसके स्थान पर हीमोसील (haemocoel) पायी जाती है। **लिनीयस** (Linnaeus) ने आधुनिक फाइलम आर्थ्रोपोडा के तुल्य ही एक फाइलम **इन्सेक्टा** (insecta) बनाया था। **लेमार्क** (Lamarck) ने बाद में इसे तीन क्लासों **क्रस्टेशिया** (crustacea), **हेक्जापोडा** (hexapoda) तथा **एरैक्निडा** (arachnida) में बाँटा परन्तु **सी० टी० आई० वोन वीवोल्ड** (C. T. I. Von Veibold) ने एरैक्निडा, क्रस्टेशिया तथा हेक्जापोडा के लिए आर्थ्रोपोडा नाम दिया।

साधारण विशेषताएँ (General Characters)

1. इन जन्तुओं का शरीर **द्विपार्श्व सममित** (bilaterally symmetrical) तथा **बहुखण्डित** (metamerically segmented) होता है।

2. शरीर के कुछ अग्रिम खण्ड (anterior segments), लगभग 5 खण्ड, समेकित होकर **सिर** बनाते हैं।

3. शरीर पर मोटा, मजबूत **बाह्यकंकाल** होता है जो अजीवित पदार्थ **काइटिन** का बना होता है। यह रक्षात्मक खोल बनाता है।

4. समय-समय पर बाह्यकंकाल शरीर से उतार दिया जाता है और इसके स्थान पर नया तथा अपेक्षाकृत कुछ बड़ा **बाह्यकंकाल** बनता है। यह क्रिया **मोल्टिंग** (moulting) या **एक्डाइसिस** (ecdysis) कहलाती है।

5. अधिकतर शरीर के प्रत्येक खण्ड में एक-एक जोड़ी **बहुखण्डीय उपांग**

(many segmented or many jointed appendages) होते हैं। ये कार्य के अनुरूप विभिन्न स्वरूपों जैसे **जवड़ों, क्लोमों** या **टाँगों** (jaws, gills or legs) के रूप में पाये जाते हैं।

6. देहभित्ति **त्रिस्तरीय** (triploblastic) होती है। इनके शरीर की पेशियाँ ऐच्छिक होती हैं जो वण्डलों के रूप में विन्यसित रहती हैं।

7. वास्तविक गुहा वहुत कम रह जाती है और केवल जनन अंगों तथा उत्सर्जी अंगों के चारों ओर पायी जाती है। देहगुहा **हीमोसील** (haemocoel) होती है।

8. **परिवहन-तन्त्र खुला** (open type blood vascular system) होता है तथा रक्त वाहिनियाँ फैलकर वड़ी, अनियमित तथा दीवार-रहित स्थान या **लेक्यूनी** या **साइनस** (lacunae or sinuses) वनाती हैं।

9. **श्वसन** के लिए जलीय जन्तुओं में **क्लोम** तथा स्थलीय जन्तुओं में **ट्रेकिया** या **बुकलंग** (trachea or book-lung) पाये जाते हैं। शरीर की सतह द्वारा भी श्वसन होता है।

10. **उत्सर्जन** के लिए **सीलोमोडक्ट** या **माल्पीघियन नलिकाएँ** (coelomoducts or malpighian tubules) होती हैं।

11. **तन्त्रिका-तन्त्र एनेलिडन** होता है।

12. **सीलिया** तथा **फ्लेजेला** नहीं होते।

13. नर तथा मादा जन्तु अलग-अलग होते हैं तथा एक-दूसरे से भिन्न होते हैं।

14. **निषेचन** क्रिया मादा के शरीर के भीतर पूर्ण होती है। वर्धन में **कायान्तरण** क्रिया भी पायी जाती है। कुछ जन्तुओं में पैतृक रक्षण भी होता है।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम आर्थ्रोपोडा को 5 क्लासों में वाँटा गया है :

(*i*) क्रस्टेशिया, (*ii*) एरैक्निडा, (*iii*) मिरिओपोडा, (*iv*) इन्सेक्टा तथा (*v*) ओनिकोफोरा।

क्लास 1. क्रस्टेशिया (Crustacea)

(L., *Crusta*, a hard shell)

(*i*) ये अधिकतर जलीय जन्तु हैं जिनमें से कुछ समुद्री पानी में तथा कुछ ताजे पानी में पाये जाते हैं।

(*ii*) **वाह्यकंकाल** (exoskeleton) सख्त तथा लचीला होता है। यह **काइटिन** का वना होता है जिस पर कैल्शियम के लवण जमा हो जाते हैं।

(*iii*) शरीर **शिरोवक्ष** या **सीफेलोथोरेक्स** (cephalothorax) तथा **उदर** भागों में वँटा रहता है। शिरोवक्ष सिर तथा वक्ष के समेकित होने से वनता है।

(*iv*) शीर्ष भाग पर पाँच जोड़ी **उपांग** (appendages) पाये जाते हैं। इनमें से दो जोड़ी **एण्टीनी** (two pairs of antennae), एक जोड़ी **चिवुक** या **मैण्डिविल्स** (a pair of mandibles) तथा दो जोड़ी **मैक्सिली** (two pairs of maxillae) होते हैं।

(*v*) साधारणतया वक्ष तथा उदर के सभी खण्डों में उपांगों का एक-एक जोड़ा पाया जाता है।

(vi) श्वसन क्लोमों तथा शरीर की सतह से होता है।

(vii) उत्सर्जन के लिए मैक्सिलरी ग्रन्थियाँ या एण्टीनरी ग्रन्थियाँ (maxillary or antennary glands) होती है।

(viii) वर्धन मे कायान्तरण होता है तथा जीवन-इतिहास में एक या एक से अधिक स्वतन्त्र लारवा अवस्थाएँ पायी जाती हैं।

उदाहरण—केकड़े (Crabs), सिप्रिस (*Cypris*), साइक्लोप्स (*Cyclops*), एपस (*Apus*), लीपस (*Lepas*), बेलेनस (*Balanus*) तथा भींगा (Prawn), इत्यादि।

क्लास 2. एरैक्निडा (Arachnida)

(Gr., *Arachne*, spider ; *oid*, like)

(i) ये साधारणतया स्थलीय तथा वायु द्वारा श्वसन करने वाले जन्तु हैं, परन्तु कुछ जलीय जन्तु भी होते हैं।

(ii) ये एकाकी, स्वतन्त्रजीवी तथा परभक्षी (solitary, free-living and predaceous) जन्तु हैं परन्तु कुछ परजीवी भी होते है।

(iii) इनका शरीर **प्रोसोमा** (prosoma) तथा **ओपिस्थोसोमा** (opisthosoma) नामक भागों में बँटा रहता है। प्रोसोमा अन्य जन्तुओं के शिरोवक्ष (cephalothorax) के अनुरूप होती है क्योंकि यह सिर तथा वक्ष के समेकित होने से बनती है। कुछ जन्तुओं में ओपिस्थोसोमा पुनः **मीसोसोमा** (mesosoma) तथा **मेटासोमा** (metasoma) मे विभाजित रहता है।

(iv) प्रोसोमा मे 6 जोड़ी उपांग पाये जाते हैं। इनमें एक जोड़ी **चैलीसेरी** (chelicerae), एक जोड़ी **पेडीपाल्प** (pedipalps) तथा चार जोड़ी पाद (walking legs) होते है।

(v) ओपिस्थोसोमा मे कोई उपांग नहीं पाये जाते।

(vi) जलीय जन्तुओ मे श्वसन के लिए **क्लोम** तथा स्थलीय जन्तुओं मे **बुक-लंग** (book-lung) तथा **ट्रेकिया** (trachea) होते हैं।

(vii) उत्सर्जन **माल्पीघियन नलिकाओं** या **कॉक्सल ग्रन्थियों** (coxal glands) द्वारा होता है।

(viii) नर तथा मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं मे पाये जाते हैं तथा नर व मादा जन्तुओं के आकार मे कुछ भिन्नताएँ होती है। निषेचन आन्तरिक होता है किन्तु वर्धन मे कोई लारवा अवस्था नही पायी जाती।

उदाहरण—*लिम्युलस* (*Limulus*), बिच्छू (Scorpion), मकड़ा (Spider), माइट (Mite), तथा टिक (Tick)।

क्लास 3. मिरिआपोडा (Myriapoda)

(Gr., *Myrios*, ten thousand ; *Podos*, foot)

(i) ये स्थलीय जन्तु हैं जो वायु द्वारा श्वसन करते हैं। ये अधिकतर अन्धकार-पूर्ण एवम् नम स्थानों पर पाये जाते हैं।

(ii) शरीर को सिर तथा धड़ मे बाँटा जा सकता है।

(iii) सिर पर एक जोड़ी **एन्टिनी** (a pair of antennae), एक जोड़ी **सरल नेत्र** (a pair of simple eyes), एक जोड़ी **मैण्डिबिल्स** (a pair of mandibles) तथा एक या दो जोड़ी **मैक्सिली** पाये जाते हैं।

(*iv*) धड़ के प्रत्येक खण्ड पर भी एक या दो जोड़ी **पाद** (walking legs) स्थित होते हैं। प्रत्येक पाद के स्वतन्त्र सिरे पर नखर के आकार की रचना होती है।

(*v*) श्वसन **ट्रेकिया** द्वारा होता है जो प्रत्येक खण्ड में **स्पायरेकिल** (spiracle) या **स्टिगमेटा** (stigmata) द्वारा बाहर को खुलता है।

(*vi*) उत्सर्जन एक या दो जोड़ी **माल्पीघियन नलिकाओं** (malpighian tubules) द्वारा होता है।

(*vii*) नर तथा मादा जन्तु अलग-अलग होते हैं। इनमें जनन-अंग अयुग्मित होते हैं किन्तु **जनन वाहिनियाँ** जोड़ों में पायी जाती हैं। वर्धन में लारवा नहीं होता।

उदाहरण—कनखजूरा या शतपाद (Centipede) तथा मिलीपीड (Millepede)।

क्लास 4. इन्सेक्टा (Insecta)

(*i*) **स्थलीय** तथा **वायवीय** (terrestrial and aerial) जन्तु हैं, किन्तु इनमें से कुछ जल में भी पाये जाते हैं।

(*ii*) इनका शरीर **शीर्ष, वक्ष** तथा **उदर** (head, thorax and adbomen) में विभाजित रहता है।

(*iii*) शीर्ष **प्रीओरल** तथा पाँच अन्य खण्डों के समेकन से बनता है तथा इस पर एक जोड़ी **एण्टिनी** (antennae), एक जोड़ी **संयुक्त नेत्र**, एक जोड़ी **मैण्डिबिल्स** तथा दो जोड़ी **मैक्सिली** पाये जाते हैं। ये **मुख उपांग** कहलाते हैं तथा भोजन के स्वभाव (feeding habits) के अनुरूप विभिन्न प्रकार से रूपान्तरित होते हैं।

(*iv*) वक्ष तीन खण्डों का बना होता है तथा इस पर तीन जोड़ी **पाद** (walking legs) तथा दो जोड़ी **पंख** (wings) पाये जाते हैं, परन्तु कुछ जन्तुओं में केवल एक जोड़ी पंख होते हैं और कुछ में पंखों का पूर्ण अभाव होता है।

(*v*) उदर में 7 से 11 तक खण्ड होते हैं और इन पर उपांग नहीं होते।

(*vi*) श्वसन **ट्रेकिया** द्वारा होता है।

(*vii*) उत्सर्जन के लिए **माल्पीघियन नलिकाएँ** होती हैं।

(*viii*) नर तथा मादा जनन अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं। निषेचन आन्तरिक होता है तथा वर्धन में कायान्तरण होता भी है और नहीं भी।

उदाहरण—तितली (Butterflies), पतिंगे (Moths), टिड्डे (Grasshoppers), टिड्डी (Locust), चींटी (Ants), शहद की मक्खियाँ (Bees), ततैये (Wasps), मच्छर (Mosquito), मक्खी (Housefly), रेशम का कीड़ा इत्यादि।

क्लास 5. ओनिकोफोरा (Onychophora)

(*i*) ये स्थलीय जन्तु हैं जो वायुमण्डल की वायु द्वारा साँस लेते हैं।

(*ii*) इनका शरीर कोमल तथा कृमिवत् होता है। **शीर्ष** भाग शरीर से अलग नहीं पहचाना जाता।

(*iii*) शरीर बाहर से खण्डों में विभाजित नहीं होता परन्तु त्वचा पर झुर्रियों के समान **अनुप्रस्थ खाइयाँ** होती हैं।

(*iv*) देहभित्ति **डरमो-मस्क्युलर** (dermo-muscular) होती है।

(*v*) **पाद** या उपांग खण्डयुक्त (segmented) नहीं होते। ये एनेलिडा के

पार्श्वपादों के समान छोटे तथा मोटे उभारों (stumpy outgrowths) के रूप में होते हैं। इनके दूरस्थ सिरों पर नखर (claws) पाये जाते हैं।

(*vi*) क्युटिकल पतली होती है और बाह्य कंकाल नहीं बनाती।

(*vii*) शीर्ष तीन खण्डों की बनी अस्पष्ट रचना है जिस पर एक जोड़ी एण्टिनी, एक जोड़ी सरल नेत्र तथा एक जोड़ी जबड़े होते हैं।

(*viii*) श्वसन ट्रेकिया द्वारा होता है।

(*ix*) उत्सर्जन के लिए प्रत्येक खण्ड में नेफ्रीडिया होते है।

(*x*) जनन अंगों में पक्ष्म (cilia) पाये जाते हैं।

उदाहरण— पेरिपेटस (*Peripatus*)।

क्लास ओनिकोफोरा में केवल पेरिपेटस रखा गया है जिसमें एनेलिडा तथा आर्थ्रोपोडा दोनों के गुण सम्मिलित रूप से पाये जाते है; अतः पेरिपेटस को इन दोनों फाइला को जोड़ने वाली कड़ी माना जाता है, अर्थात् इससे यह ज्ञात होता है कि फाइलम आर्थ्रोपोडा के जन्तु फाइलम एनेलिडा से विकसित हुए हैं।

प्रश्न 41. निम्नलिखित प्राणियों को वर्गीकरण के क्रम में रखिये और प्रत्येक के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन करिये।

Place the following animals to their systematic position and add a note on each one of them. (*Osmania 1973*)

1. डैफ्निया (Daphnia)

फाइलम — आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास — क्रस्टेशिया (*Crustacea*)
सबक्लास — ब्रैंकियोपोडा (*Branchiopoda*)
आर्डर — क्लैडोसेरा (*Cladocera*)

डैफ्निया जिसे साधारण भाषा में water-flea भी कहते है स्वच्छ पानी के तालावों व जोहड़ों में पाया जाता है। इसका शरीर कोमल, पार्श्व से संपीडित तथा द्विकपाटीय कैरापेस (carapace) द्वारा ढका रहता है। शीर्ष स्पष्ट होता है तथा इसके ऊपर कैरापेस नहो होता। कैरापेस पीछे की ओर एक नुकीले कॉडल स्पाइन (caudal spine) के रूप में निकला रहता है। शीर्ष गोलाकार, नीचे की ओर झुका हुआ तथा चोंच के समान रॉस्ट्रम मे प्रवर्धित रहता है। एण्टिनी (antennae) द्विशाखी होते है और चलन अंगों का कार्य करते हैं। वक्ष पर पाँच जोड़ी पत्तीनुमा उपांग होते है। उदर पर उपांग नही होते किन्तु इसके पिछले सिरे पर एक कॉडल फर्का (caudal furca) होता है। मादा जन्तुओं में एक भ्रूण कोष्ठ (brood pouch) होता है जिसमे अण्डे तथा भ्रूण रहते है। *डैफ्निया* मछलियों का स्वादिष्ट भोजन हैं।

2. सिप्रिस (Cypris)

फाइलम — आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास — क्रस्टेशिया (*Crustacea*)
सबक्लास — ओस्ट्रेकोडा (*Ostracoda*)

यह ठहरे हुए पानी में पाया जाने वाला छोटे आकार का क्रस्टेशियन प्राणी है। इसका शरीर पार्श्व से संपीडित व खण्डरहित होता है और पूर्ण रूप से द्विकपाटीय कैरापेस के अन्दर बन्द रहता है। शरीर के अगले सिरे पर एक बड़ा व माध्यिक नेत्र स्थित होता है। एण्टिन्युल्स (antennules) तथा एण्टिनी (antennae) तैरने के अनुकूल होते है। इनके अतिरिक्त मैण्डिबल्स, मैक्सिल्युली तथा मैक्सिली भी

पाये जाते हैं। वक्ष पर दो जोड़ी वक्ष उपांग (thoracic appedages) होते हैं। उदर उपांगरहित होता है किन्तु इसके पिछले सिरे पर एक जोड़ी कॉडल स्टाइल
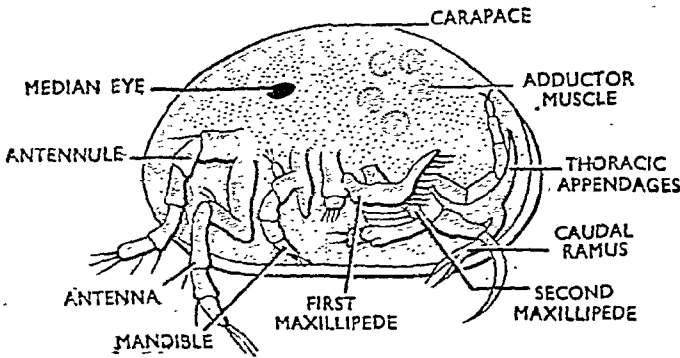
चित्र ६·१०. सिप्रिस (*Cypris*)

(caudal style) होते हैं। इसकी कुछ जातियों में नर प्राणियों का पूर्ण अभाव होता है तथा मादा जन्तुओं का वर्धन अनिषेक जनन द्वारा (parthenogenetically) होता है।

3. आरग्युलस (Argulus)
(कार्प-लाइस—Carp-lice)
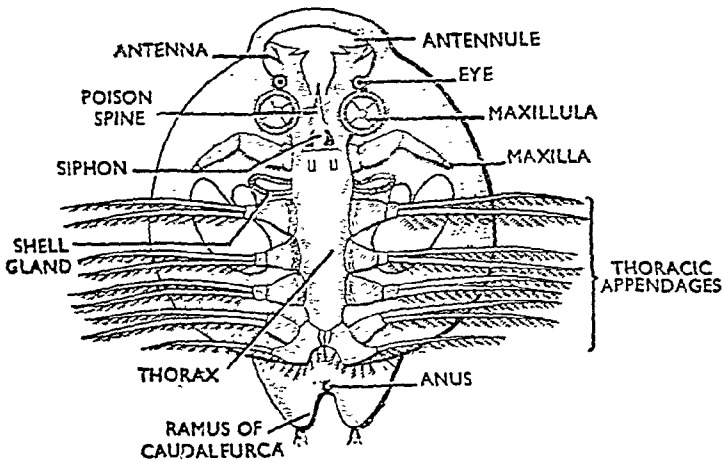
चित्र ६·२. आरग्युलस (*Argulus*)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	क्रस्टेशिया (*Crustacea*)
सबक्लास	—	ब्रैंकियूरा (*Branchiura*)

यह स्वच्छ पानी में रहने वाली मछलियों की त्वचा व क्लोम कक्ष (branchial chamber) का बाह्यपरजीवी (ectoparasite) क्रस्टेशियन प्राणी है। इसका शिरोवक्ष (cephalothorax) चपटा व अण्डाकार होता है जिस पर दो पार्श्व संयुक्त

नेत्र तथा एक माध्यिक सरल नेत्र होते हैं। मुख अवशोषी (suctorial) होता है। मैण्डिबल्स तथा मैक्सिली प्रोबोसिस (proboscis) में बन्द रहते हैं और वेधक अंग का कार्य करते हैं। द्वितीय जोड़ी मैक्सिली अवशोपी डिस्क (sucking discs) में रूपान्तरित होते हैं। मुख के सामने एक विषैला व वेधक कण्टक होता है। वक्ष पर तैरने के लिए चार जोड़ी पाद होते हैं। उदर छोटा व द्विपिण्डकी होता है।

4. लीपस (Lepas) *(Agra 1969 ; Lucknow 71)*

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	सिरिपीडिया (*Cirripedia*)
सबक्लास	—	थोरेसिका (*Thoracica*)

लीपस को सामान्यत: **शिप बार्नेकल** (ship-barnacle) या **गूज-बार्नेकल** (goose-barnacle) भी कहते हैं। यह समुद्री पेड़-पौधों, तैरते हुए पदार्थ तथा जहाज की पेंदी से चिपका हुआ पाया जाता है। यह दण्डयुक्त व स्थानबद्ध आर्थ्रोपोड है। इसका शरीर एक पिडंकल या **वृन्त** (stalk) तथा केपिटुलम (capitulum) में भिन्नित होता है। वृन्त मोटा एवम् झुर्रीदार होता है जो आधार से चिपका रहता है तथा केपिटुलम एक द्विकपाटीय मेण्टल या **केरापेस** (carapace) द्वारा आच्छादित होता है। यह कैल्केरियस पट्टिकाओं द्वारा सुदृढ़ रहता है। ये एक जोड़ी **टरगा** (terga), एक जोड़ी स्क्यूटा (scuta) तथा एक पृष्ठ **कैरिना** (carina) हैं। वक्ष उपांग 6 जोड़ी होते
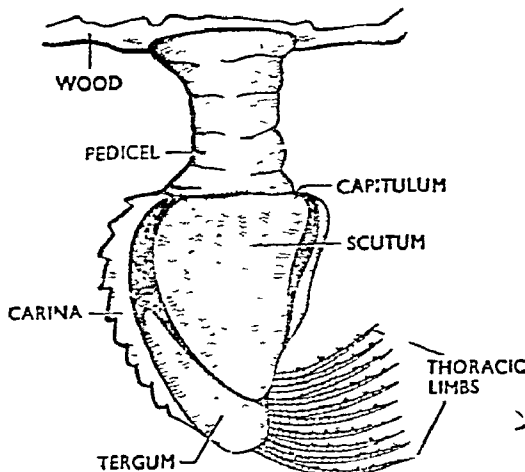
चित्र ६·३. लीपस (*Lepas*)

हैं जो रोमगुच्छों के समान होते हैं। ये अवर तल पर दोनों कपाटों के बीच एक खाली स्थान में से निकले रहते हैं। लीपस सूक्ष्मजीवों का भक्षण करता है। रोम-गुच्छ उपांगों में से होकर केवल सूक्ष्मजीव ही इसके मुख में प्रवेश कर पाते हैं तथा बड़े जीव बाहर रह जाते हैं।

5. कार्सिनस (Carcinus)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	क्रस्टेशिया (*Crustacea*)
सबक्लास	—	मैलाकोस्ट्रका (*Melacostraca*)
आर्डर	—	डैकापोडा (*Decapoda*)

कार्सिनस एक वास्तविक कैब है जिसका शरीर अण्डाकार व चपटा होता है।

शिरोवक्ष (cephalothorax) चौड़ा व कुछ-कुछ अण्डाकार-सा होता है तथा इस पर एक चौड़ा **कैरापेस** (carapace) होता है। एन्टिन्युलस तथा नेत्र-वृन्त कैरापेस पर सॉकेट्स (sockets) में स्थित होते हैं। वक्ष पर पाँच जोड़ी पाद होते हैं जिनमें से केवल प्रथम जोड़ी पाद **कीलेट** (chelate) होते हैं। उदर अपविकसित होता है और
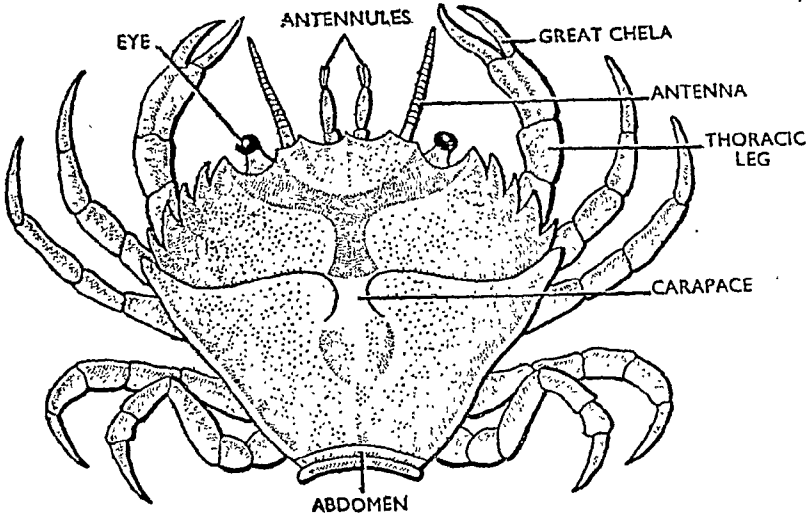
चित्र ६·४. कार्सिनस (*Carcinus*)

यह स्थायी रूप से शिरोवक्ष के नीचे स्थित रहता है। नर में उदर कुछ संकीर्ण होता है जबकि मादा में यह फैला हुआ होता है। प्लवपाद (pleopods) अत्यधिक ह्रसित होते हैं। नर में केवल दो जोड़ी प्लवपाद (pleopods) होते हैं जो मैथुन अंगों (copulatory organs) का कार्य करते हैं। मादा में चार जोड़ी प्लवपाद होते हैं जिनसे अण्डे चिपके रहते हैं।

6. सैक्कुलाइना (Sacculina) (*Meerut 1971 ; Punjab 71*)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	क्रस्टेशिया (*Crustacea*)
सबक्लास	—	सिरिपीडिया (*Cirripedia*)
आॅर्डर	—	राइजोसेफैला (*Rhizocephala*)

सैक्कुलाइना या root-headed barnacle कैब का परजीवी प्राणी है जो वक्ष एवम् उदर के बीच चिपका हुआ पाया जाता है। इसकी शारीरिक रचना एवम् जीवन-चक्र में इसके परजीवी स्वभाव के फलस्वरूप अत्यधिक अपविकास पाया जाता है। कैब के शरीर से चिपकने पर तरुण परजीवी के अधिकांश अंग विलुप्त हो जाते हैं और यह फोड़े या रसौली के समान दिखायी देता है। इसमें कैरापेस, खण्डीभवन, उपांग तथा आहार-नाल आदि रचनाएँ नहीं होतीं किन्तु इसके शरीर से तन्तुओं के समान अनेक प्रवर्ध निकलकर पोषक के शरीर में फैले रहते हैं जो पोषण के शरीर से भोजन का अवशोषण करते हैं। इसका शरीर जनन या क्लोएकल छिद्र द्वारा बाहर से सम्बन्धित होता है। इसके क्रस्टेशियन लक्षणों का आभास केवल लारवा अवस्था में ही होता है।

सैक्कुलाइना **परजीवी जनदनाशन** (parasitic castration) प्रदर्शित करता

है अर्थात् इसके फलस्वरूप पोषक के द्वितीयक लैंगिक लक्षणों में परिवर्तन आ जाते हैं। इसकी उपस्थिति में नर जन्तु में मादा लक्षण विकसित हो जाते हैं तथा मादा में अण्डाशय अपविकसित हो जाता है।
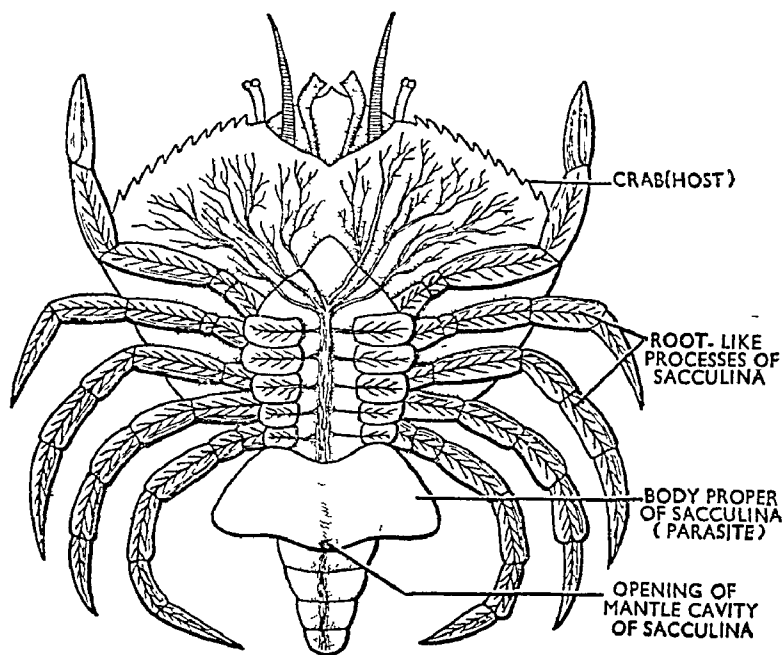
चित्र ६·५. सैक्कुलाइना (*Sacculina*)

7. जूलस (Julus)
(मिलीपीड : Millepede)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	मीरिआपोडा (*Myriapoda*)
सबक्लास	—	प्रोगोनिएटा (*Progoneata*)
ऑर्डर	—	डिप्लोपोडा (*Diplopoda*)

जूलस सुस्त व डरपोक प्राणी है जो नम व अँधेरे स्थानों में पत्थरों, लकडी के लट्ठों तथा सड़ती हुई पत्तियों के नीचे छुपा रहता है। इसका शरीर वेलनाकार व विखण्डित होता है। शीर्ष स्पष्ट होता है और इस पर मुग्दर के समान एक जोडी एण्टिनी, एक जोड़ी मैक्सिली तथा एक जोड़ी संयुक्त नेत्र होते है। धड़ के प्रत्येक
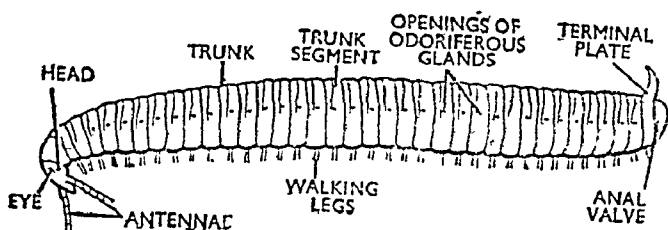
चित्र ६·६. जूलस (*Julus*)

खण्ड पर दो जोड़ी बहुखण्डीय व नखरयुक्त पाद होते हैं। विषैली ग्रन्थियाँ तथा विषैले नखर नहीं होते। जनन छिद्र (genital aperture) शरीर के अगले भाग में होता है। ये अधिकांशत: शाकभक्षी तथा अपमार्जक (scavanger) प्राणी हैं जो मृत एवम् सड़ते हुए कार्बनिक पदार्थों का भक्षण करते हैं। मिलीपीड एक प्रकार का गंधयुक्त द्रव उत्पन्न करते हैं जो छोटे कीटों को मारने के उपयोग में आता है।

8. स्कोलोपेण्ड्रा (Scolopendra)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	मीरिआपोडा (*Myriapoda*)
सबक्लास	—	ओपिस्थोगोनिएटा (*Opisthogoniata*)
आर्डर	—	काइलोपोडा (*Chilopoda*)

स्कोलोपेण्ड्रा रात्रिचर (nocturnal) प्राणी है जो पत्थरों व लकड़ी के लट्ठों के नीचे, तहखानों व नलों आदि तथा अन्य अन्धेरे स्थानों में पाया जाता है। यह फुर्तीला व तेजी से भागने वाला शिकारी प्राणी है जो कीटों, मकड़ों व स्लग (slugs) का शिकार करता है। इसका शरीर पृष्ठ-अधर तल से चपटा एवम् विखण्डित होता है। शीर्ष स्पष्ट होता है तथा इस पर एक जोड़ी एण्टिनी, दो जोड़ी मैक्सिली तथा चार जोड़ी नेत्र होते हैं। धड़ के प्रत्येक खण्ड पर एक जोड़ी बहुखण्डीय पाद होते हैं जिनके सिरों पर नखर होते हैं। प्रथम जोड़ी पाद मैक्सिली-पीड्स कहलाते हैं तथा ये विषैले होते हैं। इन्हीं की सहायता से यह अपने शिकार को मारता है।

स्कोलोपेन्ड्रा का शरीर चमकीले रंग का होता है तथा शीर्ष पर चार जोड़ी नेत्र (ocelli) होते हैं। इसके काटने से मनुष्य के शरीर में अत्यधिक पीडा होती है।

चित्र ६·७. स्कोलोपेण्ड्रा (*Scolopendra*)

(*Agra 1970*)

9. लिमुलस (Limulus)
(किंग-क्रैब : King-crab)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	एरैक्निडा (*Arachnida*)
आर्डर	—	जीफोसुरा (*Xiphosura*)

लिमुलस समुद्र के उथले जल में बिलों के अन्दर रहने वाला प्राणी है। इसका शरीर अग्र प्रोसोमा (prosoma) तथा ओपिस्थोसोमा (opisthosoma) में भिन्नित होता है। प्रोसोमा के ऊपर घोड़े की नाल के समान कैरापेस तथा एक जोड़ी माध्यिक व एक जोड़ी पार्श्व नेत्र तथा अनेक कण्टिकाएँ होती हैं। प्रोसोमा पर 6 जोड़ी उपांग—एक जोड़ी केलीसेरी, एक जोड़ी पेडीपाल्प तथा चार जोड़ी पाद होते हैं। एक जोड़ी छोटे, अण्डाकार व प्लेट के समान उपांग

काइलेरिया (chilaria) भी उपस्थित होते है। ओपिस्थोसोमा (उदर) **मीसोसोमा** (mesosoma) तथा **मेटासोमा** (metasoma) मे भिन्नित होता है। मीसोसोमा पर 6 जोड़ी पार्श्व कण्टिकाएँ तथा 6 जोड़ी उपांग होते है। मेटासोमा पर उपाग नही होते। मीसोसोमा के पिछले पाँच जोडी उपागों पर **बुक-क्लोम** (book-gills) होते है। मेटासोमा के पिछले सिरे पर एक लम्बा व अखण्डीय **टेल्सन** (telson) होता है। उत्सर्जन **कॉक्सल** (coxal) ग्रन्थियों द्वारा होता है। मादा रेत मे छोटे-छोटे विल खोदकर अण्डे देती है। अण्डो से स्वच्छन्द तैरने वाला **ट्राइलोबाइट लारवा** (trilobite larva) निकलता है।

लिमुलस या किंग-क्रैब वास्तव मे क्रैब न होकर स्कॉर्पिअॉन या स्पाइडर से मिलता-जुलता आदिम प्रकार का एक आर्थ्रोपोड प्राणी है। यह जैविक दृष्टि से एक अवशिष्ट प्राणी है क्योकि पिछले 2000 लाख वर्पो से इसमे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही हुआ है।

चित्र ६·८. लिमुलस (*Limulus*)

10. आरजिओप (Argiope)
(स्पाइडर : Spider)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	एरैक्निडा (*Arachnida*)
आर्डर	—	ऐरेनीडा (*Araneida*)

आरजिओप, जिसे Orb-web spider भी कहते है वृक्षों, घास-फूस तथा छाया वाले स्थानों में सामान्य रूप से पाया जाता हे। शरीर **प्रोसोमा** (prosoma) तथा **ओपिस्थोसोमा** (opisthosoma) मे भिन्नित होता है जो एक संकीर्ण पेडिसल (pedicel) द्वारा जुड़े रहते हैं। प्रोसोमा पर सरल नेत्र तथा 6 जोडी उपाग होते है—एक जोड़ी सबकीलेट **केलीसेरी** (chelicerae), एक जोड़ी अकीलेट **पैडिपाल्प** (pedipalp) तथा चार जोडी **पाद** (walking legs)। प्रोसोमा **कैरापेस** द्वारा आच्छादित होता है। ओपिस्थोसोमा अण्डाकार व खण्डरहित होता है तथा इस पर उपांग एवम् टेल्सन नही होते किन्तु तीन जोडी **वयन प्रवर्ध** (spinnerets) होते है। विप ग्रन्थियाँ (poison glands) केलीसेरी के विप दन्तों मे खुलती हे। *आरजिओप* मे **लैंगिक द्विरूपता** (sexual dimorphism) पायी जाती है तथा मैथुन के पश्चात् मादा नर को खा जाती है। हानिप्रद कीटो का भक्षण करने के कारण स्पाइडर लाभकारी प्राणी समझे जाते हैं।
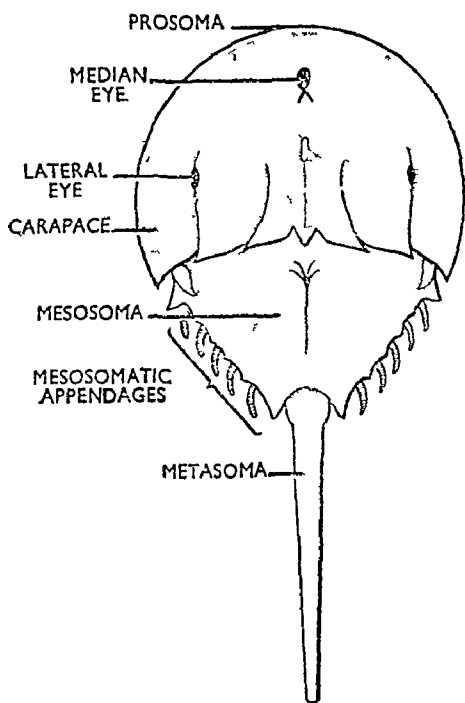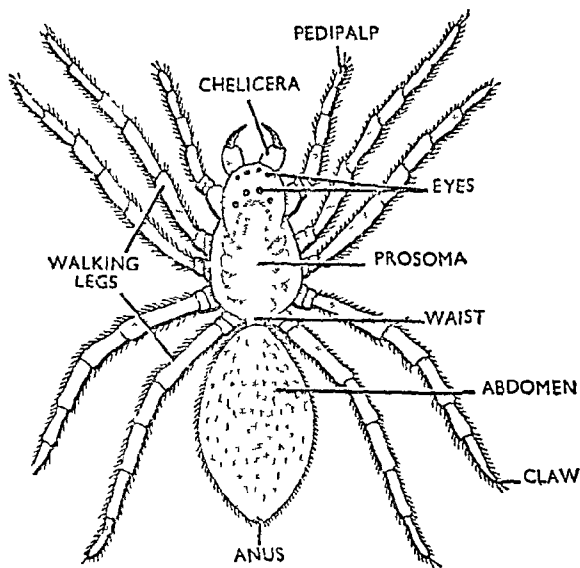
चित्र ६·६. आरजिओप (*Argiope*)

11. पेरिपेटस (Peripatus) (*Jiwaji 1970 ; Lucknow 71 ; Agra 73*)

फाइलम — आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास — ओनिकोफोरा (*Onychophora*)
टाइप — पेरिपेटस (*Peripatus*)

पेरिपेटस अपनी क्लास का केवल एकमात्र प्राणी है। इसकी लगभग 75 जातियाँ दक्षिणी गोलार्ध के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पायी जाती है। यह रात्रिचर तथा स्थलचर कृमिवत् जीव है जो पत्थरों, चट्टानों, पेडो की छाल तथा लक्कड़ के नीचे छुपा हुआ पाया जाता है।

पेरिपेटस का शरीर लम्बा व कैटरपिलर के समान होता है तथा त्वचा कोमल झुर्रीदार होती है। शरीर का वाह्य विखण्डन अस्पष्ट होता है किन्तु त्वचा पर उद्रेख होते हे जिनमे काइटिन के कण्टकों से युक्त अनेक पैपिली होते है। शीर्ष अस्पष्ट होता है किन्तु इस पर एक जोड़ी खण्डित एण्टिनी (antennae), एक जोड़ी **नेत्र**, एक जोड़ी हार्नी **जबड़े** तथा एक जोड़ी मुखवर्ती **पैपिली** (oral papillae) होते है। धड़ से छोटे व **मोटे** युग्मित पादो की अनेक शृखलाएँ निकली रहती है। पाद अखण्डित होते है किन्तु प्रत्येक पाद के सिरे पर एक जोड़ी नखर होते है।

चित्र ६·१०. पेरिपेटस (*Peripatus*)

पेरिपेटस की देहभित्ति डर्मोमस्कुलर होती है किन्तु देहगुहा हीमोसील होती है। देहगुहा में आन्तरिक पटो का पूर्ण अभाव होता है। श्वसन अग **ट्रेकिया** (trachea) होते है तथा उत्सर्जी अंग
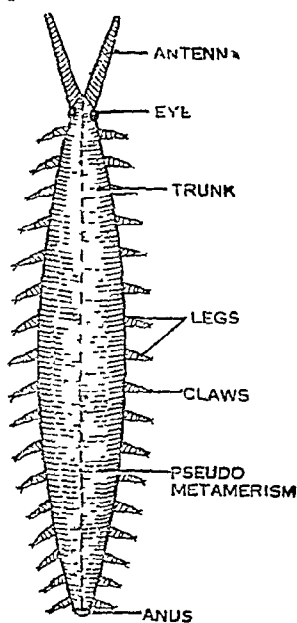
विखण्डित क्रम में विन्यसित युग्मित वृक्कक होते है। हृदय मध्य पृष्ठ रेखा पर स्थित एक लम्बी नाल के रूप में होता है जिसमे युग्मित ऑस्टिया (ostia) होते है। जनद पक्ष्माभिकी होते हैं। *पेरिपेटस* की अधिकाश जातियाँ जरायुज (viviparous) हैं किन्तु कुछ जातियाँ अण्डज (oviparous) भी होती है। अण्डे से शिशु *पेरिपेटस* निकलते है जो प्रौढ़ के समान किन्तु आकार मे छोटे होते हैं।

पेरिपेटस का जीव-विज्ञान में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह असतत वितरण का एक अति उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है तथा ऐनेलिडा एवम् आर्थ्रोपोडा के बीच एक जीवित कडी हे। इसके ऐनेलिडन तथा आर्थ्रोपोडन लक्षण निम्नलिखित है।

ऐनेलिडन लक्षण (Annelidan features)—

1. डर्मोमस्कुलर देहभित्ति वाला कृमिवत् शरीर
2. शरीर पर पतली क्यूटिकल की उपस्थिति
3. छोटे एवम् मोटे अखण्डित पाद
4. विखण्डित क्रम मे विन्यसित वृक्कक
5. जननागो मे पक्ष्मो की उपस्थिति
6. सीधी आहार नाल

आर्थ्रोपोडन लक्षण (Arthropodan characters)—

1. खण्डित एण्टिनी एवम् पादो की उपस्थिति
2. कण्टको एवम् नखरों की उपस्थिति
3. दैहिक गुहा हीमोसील
4. हृदय लम्बी नाल के समान तथा ऑस्टिया युक्त
5. श्वसन अंग ट्रेकिया

12. मधु-मक्खी (Honey-bee) *(Nagpur 1973)*

कृपया प्रश्न 84 देखिये।

13. रेशम का कीड़ा (Bombyx mori) *(Indore 1972)*

कृपया प्रश्न 85 देखिये।

B.S.C I year

पैलीमोन
(Palaemon)

या प्रॉन

फाइलम—आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास — क्रस्टेशिया (*Crustacea*)
आर्डर — डेकापोडा (*Decapoda*)
जीनस — पैलीमोन (*Palameon*)

प्रश्न 42. पैलीमोन के स्वभाव, आवास तथा बाह्य संरचना का वर्णन कीजिये।

Describe the habit, habitat and external fetures of *Palaemon*.

स्वभाव एवम् आवास
(Habit and Habitat)

पैलीमोन नदियों, तालावों, पोखरों आदि के अलवण जल में पाया जाने वाला क्रस्टेशिअन है। यह रात्रिचर जन्तु है जो दिन के समय नदियों एवम् तालावों के तल पर पड़ा रहता है और रात्रि के समय भोजन की तलाश में सतह पर आ जाता है।

बाह्य लक्षण
(External Features)

आकार एवम् आकृति (Shape and size)—पैलीमोन का शरीर लम्बाकार, तर्कु के समान तथा द्विपार्श्व सममित होता है। इसकी विभिन्न जातियों का आकार भिन्न-भिन्न होता है। पैलीमोन की कुछ जातियाँ आकार में 30" तक लम्बी होती हैं।

वर्ण (Colouration)—शिशु पैलीमोन श्वेत रंग का होता है किन्तु प्रौढ़ पैलीमोन पीला-नीला अथवा हरे-से रंग का होता है तथा शरीर पर ब्राऊन या लाल रंग के धब्बे होते हैं। परिरक्षित (preserved) पैलीमोन सन्तरी-लाल रंग के होते हैं।

पैलीमोन का शरीर शिरोवक्ष (cephalothorax) तथा उदर (abdomen) भागों में भिन्नित होता है।

1. शिरोवक्ष (Cephalothroax)—यह शरीर का अगला चौड़ा भाग है जो 5-खण्डीय सिर तथा 8-खण्डीय वक्ष के जुड़ने से वनता है। प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी उपांग होते हैं। आगे की ओर एक **अग्रखण्डीय** (presegmental) भाग शिरोवक्ष से जुड़ा रहता है। इस पर एक जोड़ी सवृन्त संयुक्त नेत्र स्थित होते हैं। इस भाग का विखण्डन अस्पष्ट होता है।

2. उदर (Abdomen)—शिरोवक्ष के पीछे का भाग **उदर** (abdomen) कहलाता है। यह 6 स्पष्ट खण्डों का वना होता है। यह मुड़ा हुआ तथा नीचे की ओर झुका हुआ भाग है जिसके पिछले सिरे पर शंक्वाकार **टेल्सन** (telson) या पुच्छ

खण्ड (tail piece) होता है। उदर विश्रामावस्था में शिरोवक्ष के नीचे झुका रहता है जिससे *पैलीमोन* कॉमा के समान दृष्टिगत होता है। उदर का प्रत्येक खण्ड पृष्ठ तल
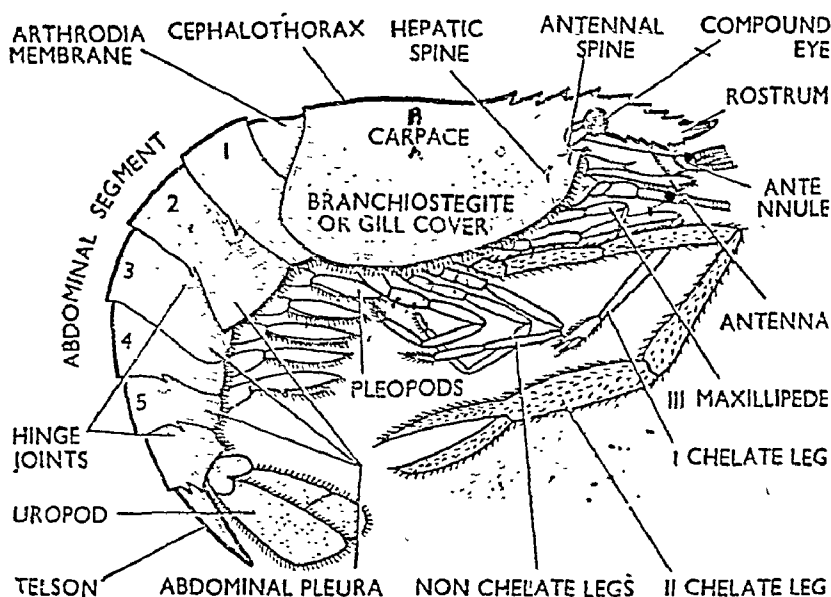
चित्र ७·१. पैलीमोन के बाह्य लक्षण (External features of *Palaemon*)

पर कुछ गोलाकार तथा पार्श्व से संपीडित होता है तथा प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी उपांग होते हैं।

बाह्यकंकाल (Exoskeleton)—*पैलीमोन* का शिरोवक्ष पृष्ठ तथा पार्श्व में केरापेस (carapace) नानक ढाल के समान वाह्य कंकाल से ढका रहता है। यह शिरोवक्ष खण्डों के स्कलेराइट्स (sclerites) के समेकन से बनता है। केरापेस पार्श्व में स्वतन्त्र रूप से लटक कर क्लोमों को ढके रखता है। इसको ब्रेंकियोस्टीगाइट (branchiostegite) कहते हैं। शरीर तथा ब्रेंकियोस्टीगाइट के बीच के खाली स्थान को **क्लोम कक्ष** (gill chamber) कहते हैं। केरापेस सामने की ओर एक लम्बे एवम् दाँतेदार प्रवर्ध के रूप में निकला रहता है जिसे रॉस्ट्रम (rostrum) कहते हैं। केरापेस के दोनों ओर आधार पर एक-एक गहरी गर्तिका होती है जिसे **नेत्रगुहा भंगिका** (orbital notch) कहते हैं। इसमें संयुक्त नेत्र का वृन्त स्थित होता है। नेत्रगुहा भंगिका के ठीक पीछे केरापेस एक **एण्टिनल स्पाइन** या शृंगिक कण्टक (antennal spine) तथा एक **हिपेटिक स्पाइन** या यकृत कण्टक बनाता है। ये दोनों क्रमशः एक-दूसरे के पीछे स्थित होते हैं।

प्रत्येक उदर खण्ड स्क्लेराइट के वाह्यकंकाल क्लयक से ढका रहता है। यह पृष्ठ **टर्गम** (tergum), अधर **स्टर्नम** (sternum) तथा पार्श्व में **प्ल्यूरा** (pleura) से निर्मित होता है। टर्गम तथा प्ल्यूरा परस्पर समेकित होते हैं किन्तु स्टर्नम समेकित न होकर स्वतन्त्र रूप से स्थित होती है। प्रत्येक उपांग एपिमेरोन (epimeron) नामक एक छोटी पट्टिका द्वारा अपनी ओर के प्ल्यूरोन से जुड़ा रहता है। संलग्न खण्डों के स्क्लेराइट्स एक-दूसरे से आर्थ्रोडियल झिल्ली द्वारा जुड़े रहते हैं तथा एक-दूसरे से हिन्ज ज्वाइण्ट्स (hinge joints) द्वारा सन्धि करते हैं किन्तु तीसरे एवम् चौथे खण्डों

के बीच हिन्ज ज्वाइण्ट नहीं होता । प्राय: प्रत्येक अगले वक्ष खण्ड का प्ल्यूरा पिछले खण्ड के प्ल्यूरा को आच्छादित किये हुए होता है ।
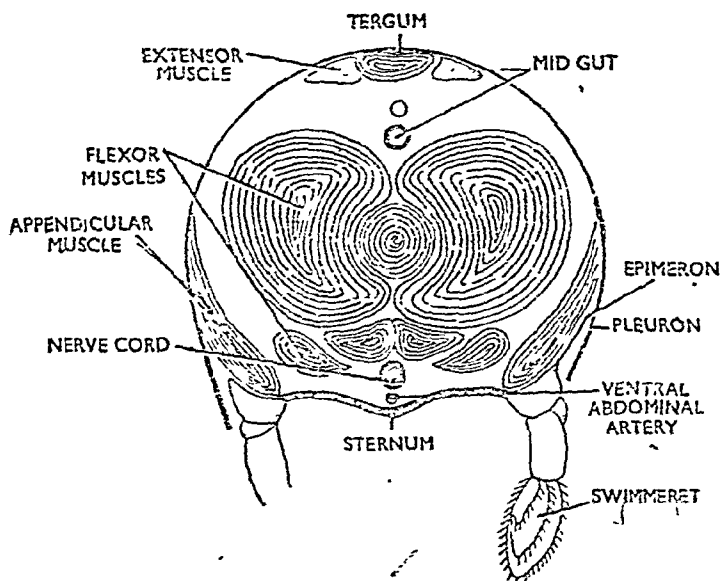
चित्र ७·२. वाह्य कंकालीय प्लेटों के विन्यास के प्रदर्शन हेतु उदर भाग से अनुप्रस्थ सेक्शन
(T.S. abdominal region showing arrangement of exoskeletal plates)

उपांग (Appendages)—पैलीमोन में कुल 19 जोड़ी उपांग होते हैं । इसमें पाँच जोड़ी सिर भाग में, आठ जोड़ी वक्ष भाग में तथा शेष छ: जोड़ी उदर भाग में होते हैं । एण्टिन्यूल्स (antennules), एण्टिनी (antennae), मेण्डिबल्स (mandibles), मैक्सिलुली (maxillulae), तथा मैक्सिली (maxillae) सिर उपांग हैं । तीन जोड़ी मैक्सिलिपीड्स (maxillipedes) तथा पाँच जोड़ी पाद वक्ष उपांग है । उदर भाग में पाये जाने वाले उपांग प्लवपाद (pleopds) कहलाते हैं ।

वाह्य छिद्र (External apertures)—मुख अगले सिरे पर मध्य अवर रेखा पर कुछ पीछे की ओर स्थित होता है तथा **गुदाद्वार** (anus) पश्च सिरे पर टेल्सन (telson) के आधार पर होता है । ये **नर जनन छिद्र** (male genital aperture) नर पैलीमोन के पाँचवीं जोड़ी पादों के कॉक्सा (coxa) की भीतरी सतह पर होते हैं। इसी प्रकार **मादा जनन छिद्र** (female genital apertures) मादा पैलीमोन के तीसरी जोड़ी पादों के कोक्सा (coxa) की भीतरी सतह पर होते हैं ।

प्रश्न 43. पैलीमोन के उपांगों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा कार्यों के अनुरूप इनमें होने वाले रूपान्तरणों का वर्णन कीजिये ।

Give an illustrated account of the appendages of *Palaemon* and show how their structure has modified to perform different functions.

(*Luck. 1954, 63 ; Vikram 65, 68 ; Jiwaji 67 ; Agra 70 ; Meerut 68, 70*)

पैलीमोन के उपांगों का वर्णन उनके वैविध्य पर टिप्पणी करते हुए कीजिये ।

Describe the appendages of *Palaemon* commenting upon their diversity.

(*Vikram 1964 ; Patna 69*)

(X) पैलीमोन के प्रारूपी द्विशाखी उपांग तथा इसमें होने वाले रूपान्तरणों का वर्णन कीजिये।

Describe a typical biramous appendage and its modifications in *Palaemon*. (*Jodhpur 1965 ; Patna 67*)

पैलीमोन के शरीर के प्रत्येक खण्ड में एक जोड़ी खण्डयुक्त उपांग (segmented or jointed appendages) पाये जाते हैं। ये सभी द्विशाखी (biramous) आधार पर बने होते हैं किन्तु विभिन्न कार्यों के अनुरूप इनके आकार तथा परिमाण में बहुत-सी भिन्नताएँ पायी जाती हैं। *पैलीमोन* में कुल उन्नीस जोड़ी उपांग होते हैं जो तीन भागों में बाँटे जा सकते है—

1. सिर उपांग (Cephalic appendages)—पाँच जोड़ी
2. वक्ष उपांग (Thoracic appendages)—आठ जोड़ी
3. उदर उपांग (Abdominal appendages)—छ: जोड़ी

1. सिर उपांग (Cephalic Appendages)

(*i*) एण्टिन्यूल्स (Antennules)
(*ii*) एण्टिनी (Antennae)
(*iii*) मैण्डिबल्स (Mandibles)
(*iv*) मैक्सिलूली (Maxillulae)
(*v*) मैक्सिली (Maxillae)
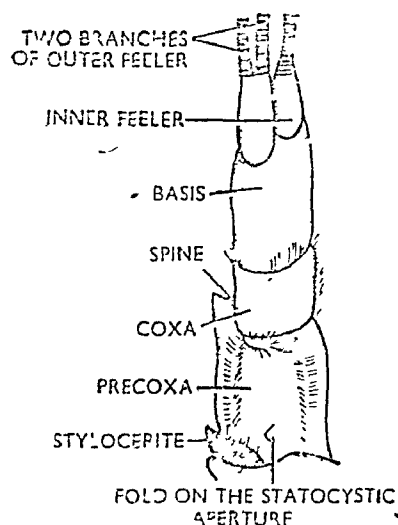
चित्र ७·३. एण्टिन्यूल (Antennule)
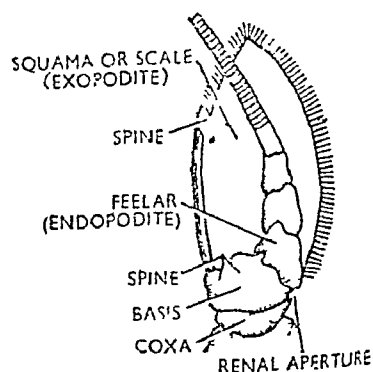
चित्र ७·४. एण्टिना (Antenna)

1. पूर्व शृंगिकाएँ या एण्टिन्यूल्स (Antennules)—एण्टिन्यूल्स एकशाखी (uniramous) व अग्रमुखी (preoral) उपांग हैं जो सिर के प्रथम खण्ड में नेत्र-वृन्तों (eye-stalks) के ठीक नीचे स्थित होते हैं। इनका प्रोटोपोडाइट तीन खण्डों का बना होता है जो क्रमशः प्रीकोक्सा (precoxa), कोक्सा (coxa) तथा बेसिस (basis) हैं। प्रीकोक्सा (precoxa) बड़ा तथा चपटा खण्ड है जिसके पृष्ठतल पर एक चौड़ा गड्ढा (wide depression) होता है जिसमें संयुक्त नेत्र रहता है तथा स्टेटोसिस्ट का छिद्र (opening of statocyst) भी स्थित होता है। यह त्वचा के आवरण

द्वारा ढका रहता है। प्रीकोक्सा के आधार पर बाहर की ओर एक काँटेदार उभार (spiny lobe) होता है जो स्टाइलोसेराइट (stylocerite) कहलाता है। बेसिस के दूरस्थ सिरे पर दो लम्बे तथा बहुखण्डीय स्पर्शक (feelers) होते हैं। बाह्य स्पर्शक पुन: दो शाखाओं में विभाजित हो जाता है। पूर्व शृंगिका के दोनों स्पर्शक एक्सोपोडाइट तथा एण्डोपोडाइट के समतुल्य नहीं होते। पूर्व शृंगिकाएँ स्पर्श संवेदी तथा सन्तुलन अंग हैं।

2. शृंगिकाएँ या एन्टिनी (Antennae)—एण्टिनी भी मुख के आगे दूसरे खण्ड में शरीर के दोनों ओर एण्टिन्यूल्स के ठीक पीछे पायी जाती हैं। इनका प्रोटोपोडाइट छोटा होता है तथा कोक्सा एवम् बेसिस नामक खण्डों का बना होता है। उत्सर्जन अंग की उपस्थिति के कारण यह भाग बहुत फूला रहता है। कोक्सा के भीतर की सतह पर रीनल छिद्र (renal aperture) स्थित होता है। एक्सोपोडाइट बहुत चपटा और पत्ती के आकार का होता है जिसकी भीतर की सतह पर संवेदी सीटी (sensory setae) लगे रहते हैं। यह स्क्वेमा (squama) या शल्क (scale) कहलाता है। एण्डोपोडाइट लम्बे बहुखण्डी स्पर्शक (feeler) के रूप में होता है। एण्टिनी संवेदी, उत्सर्जन तथा सन्तुलन का कार्य करते हैं।

3. मेण्डिबल्स (Mandibles)—छोटे, मजबूत तथा अत्यधिक कैल्सीफाइड (calcified) रचनाएँ जो तीसरे खण्ड के दोनों ओर स्थित होते हैं। यह मुख्यत: कोक्सा का बना होता है जो दो भागों में बँटा रहता है। इसका तिकोना, खोखला तथा चम्मच के आकार का समीपस्थ भाग एपोफाइसिस (apophysis) तथा ठोस दूरस्थ भाग सिर (head) कहलाता है। सिर भाग पुन: दो प्रवर्धों में बँटा रहता है। भीतर का प्रवर्ध मोलर प्रवर्ध (molar process) है जिस पर 5 या 6 दाँत लगे रहते हैं। बाहरी प्रवर्ध पर 3 दन्तिकाएँ होती हैं और यह इन्साइजर प्रवर्ध (incisor process) कहलाता है। सिर के बाहर की ओर तीन खण्डों वाला मेण्डिबुलर पैल्प (mandibular palp) होता है। इसका आधार-खण्ड बेसिस का बना होता है तथा अन्य दो खण्ड एण्डोपोडाइट को प्रदर्शित करते हैं। मेण्डिबल में एक्सोपोडाइट नहीं होता। इसका कार्य भोजन को कुतरना तथा चबाना है।
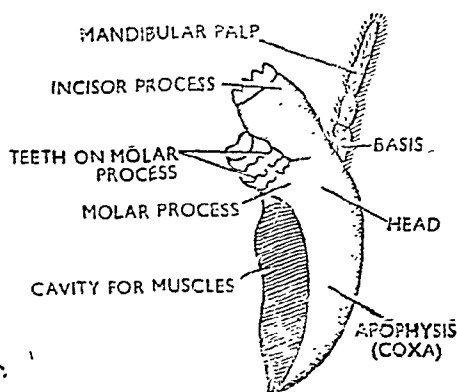
चित्र ७·५. मेण्डिबल (Mandible)

4. मैक्सिलूली (Maxillulae)—ये छोटे, कोमल, चपटे तथा पत्ती के समान उपांग हैं जो मुख के पीछे शरीर के चौथे खण्ड में दोनों ओर स्थित होते हैं। प्रत्येक मैक्सिलूला कोक्सा, बेसिस तथा एण्डोपोडाइट का बना होता है। एक्सोपोडाइट अनुपस्थित होता है। कोक्सा तथा बेसिस के भीतर वाले सिरे सीटी से ढके रहते हैं और ग्नेथोबेसिस (gnathobasis) बनाते हैं। एण्डोपोडाइट मुड़े हुए प्रवर्ध के रूप में होता है और सिर पर दो भागों में बँट जाता है। मैक्सिलूली भोजन ग्रहण करने में सहायता करते हैं।

5. **मैक्सिली** (Maxillae)—मैक्सिली पतली, चपटी तथा कोमल पत्ती के समान रचनाएँ हैं जो पाँचवें खण्ड में मुख के पीछे स्थित होते हैं। इनका **कोक्सा** अनुप्रस्थ दरार (transverse suture) द्वारा अपूर्ण रूप से दो भागों में विभक्त रहती है। बेसिस विभाजित होकर **ग्नेथोबेस** (gnathobase) का निर्माण करता है।
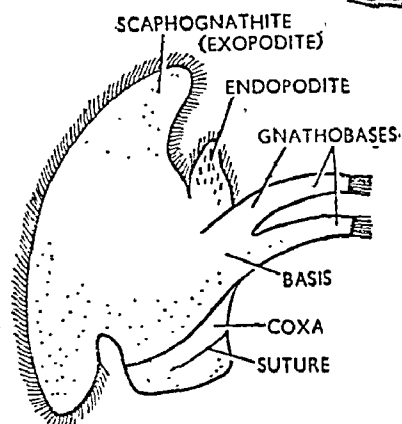
चित्र ७·६. मैक्सिलूला (Maxillula) चित्र ७·७. मैक्सिला (Maxilla)
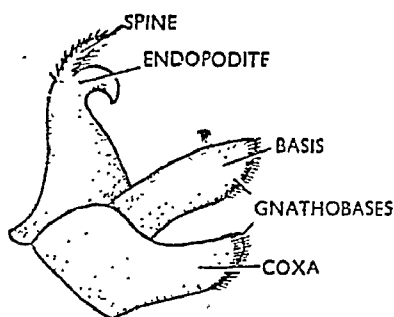
एण्डोपोडाइट छोटा होता है परन्तु **एक्सोपोडाइट** बड़ा, चपटा तथा पंखे के आकार का **स्केफोग्नेथाइट** (scaphognathite) बनाता है। इसकी बाहरी स्वतन्त्र सतह पर सीटी लगे रहते हैं। स्केफोग्नेथाइट की गति द्वारा जल की धारा उत्पन्न होती है जो **क्लोमों** (gills) के ऊपर से जाती है और श्वसन में सहायता करती है। मैक्सिली श्वसन तथा **भोजन ग्रहण** करने में सहायक होते हैं।

II. वक्ष उपांग (Thoracic Appendages)

(*i*) तीन जोड़ी मैक्सिलिपीड्स (Three pairs of maxillipedes)
(*ii*) पाँच जोड़ी टाँगें (5 pairs of walking legs)

मैक्सिलिपीड्स **भोजन** पकड़ने में सहायता करते हैं तथा पाद **चलन** का कार्य करते हैं।

1. **मैक्सीलिपीड्स की प्रथम जोड़ी** (First pair of maxillipedes)—ये पतली, कोमल तथा चपटी पत्ती के समान रचनाएँ हैं जो वक्ष के प्रथम खण्ड में स्थित होते हैं। कोक्सा तथा बेसिस की भीतर वाली सतह **ग्नेथोबेसिस** (gnathobases) बनाती हैं तथा कोक्सा की बाहरी सतह पर एक द्विखण्डित (bilobed) **एपिपोडाइट** (epipodite) या **प्राथमिक क्लोम** (primitive gill) होता है। बेसिस पर एक छोटा-सा **एण्डोपोडाइट** तथा एक लम्बा **एक्सोपोडाइट** होता है। एक्सोपोडाइट पूरी तरह से संवेदी सीटी द्वारा ढका रहता है।
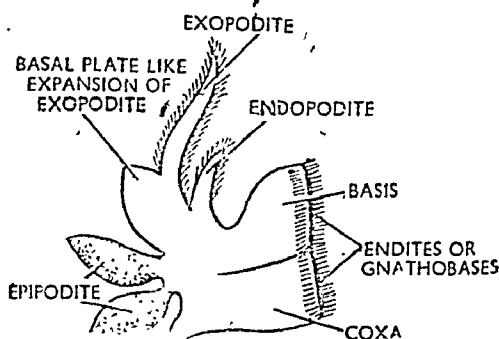
चित्र ७·८. प्रथम मैक्सिलिपीड (1st maxillipede)

2. **मैक्सिलिपीड का दूसरा**

जोड़ा (2nd pair of maxillipedes)—इसका कोक्सा छोटा होता है और इसकी वाहरी सतह पर एक एपिपोडाइट तथा क्लोम (gill) स्थित होते है। एक्सोपोडाइट विना खण्ड वाली लम्बी छड़ के समान रचना है जो सीटी से ढका रहता है। एण्डोपोडाइट 5 खण्डों का बना होता है। ये क्रमशः इश्चियम (ischium), मीरस (merus), कार्पस (carpus), प्रोपोडस (propodus) तथा डेक्टाइलस (dactylus) कहलाते हैं। इसके दूरस्थ दो खण्ड अर्थात् प्रोपोडस तथा डेक्टाइलस भीतर की ओर झुके रहते हैं तथा इनके किनारे दन्ताकार होते हैं।
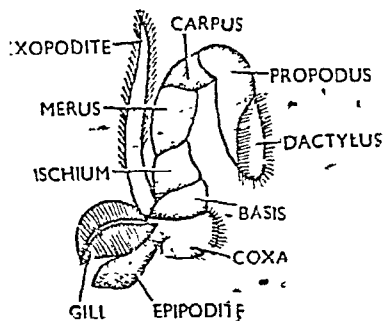
चित्र ७·९. द्वितीय मैक्सिलिपीड (2nd maxillipede)
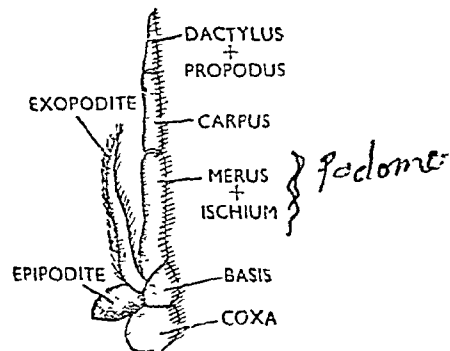
चित्र ७·१०. तीसरा मैक्सिलिपीड (3rd maxillipede)

3. मैक्सिलिपीड का तीसरा जोड़ा (Third pair of maxillipedes)—मैक्सिलिपीड का तीसरा जोड़ा टाँग के समान होता है परन्तु इसमे वे सभी रचनाएँ होती हैं जो मैक्सिलिपीड के दूसरे जोड़े में पायी जाती है। कोक्सा की वाहरी सतह पर एक एपिपोडाइट तथा भीतर की सतह पर सीटी होते है। वेसिस पर वाहर की ओर विना खण्ड वाला एक्सोपोडाइट (exopodite) तथा भीतर की ओर तीन खण्ड वाला एण्डोपोडाइट (endopodite) होता है। एण्डोपोडाइट का प्रथम खण्ड या प्रथम पोडोमीयर (podomere) इश्चियम तथा मीरस के समेकन से वनता है। दूसरा खण्ड कार्पस को प्रदर्शित करता है तथा तीसरा खण्ड प्रोपोडस तथा डेक्टाइलस के मिलने से वनता है।

4. टाँगें (Walking legs)—एक्सोपोडाइट की अनुपस्थिति के कारण टाँगें मैक्सिलिपीड से भिन्न होती हैं। इसमें दो खण्ड वाला प्रोटोपोडाइट तथा 5 खण्ड वाला एण्डोपोडाइट होता है। सातों खण्ड एक पंक्ति में पाये जाते हैं। टाँगों का चौथा जोड़ा प्रारूपी रचना (typical structure) प्रदर्शित करता है। इसमें कोक्सा, वेसिस, इश्चियम, मीरस, कार्पस, प्रोपोडस तथा डेक्टाइलस नामक सातों खण्ड पाये जाते हैं। प्रोपोडस पर नखर (claws) होते है।

टांगों के प्रथम तथा द्वितीय जोड़े कीलेट पाद (chelate legs) होते है क्योंकि इनका प्रोपोडस लम्बा होकर डेक्टाइलस के समान्तर आ जाता है और इस प्रकार चिमटी के आकार की (forcep-like) रचना वना लेता है। कीलेट टाँगे भोजन को पकड़ने तथा उसे मुख तक पहुँचाने में सहायता करती हैं।

तीसरे, चौथे तथा पाँचवें जोड़े की टाँगों पर कीला नामक रचना न होती ; अतः ये कीलाविहीन टाँगें (non-chelate legs) कहलाती हैं। तीसरी र

पादों पर मादा जनन-छिद्र उपस्थित होते हैं तथा पाँचवें जोड़े पर नर जनन-छिद्र पाये जाते हैं।
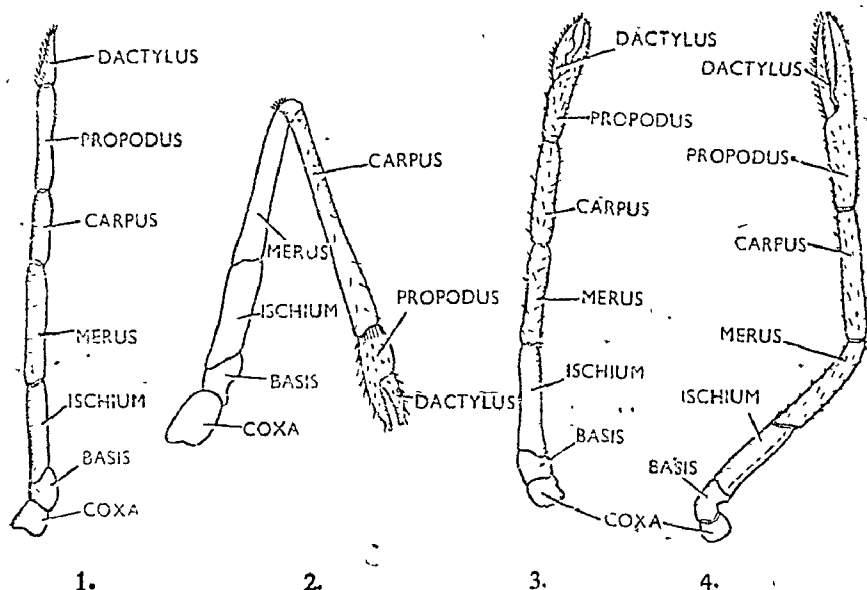
चित्र ७·११. टाँगें (Walking legs)
1. प्रारूपी टाँग (Typical walking leg), 2. प्रथम कीलेट (First chelate),
3. मादा की द्वितीय कीलेट टाँग (2nd chelate walking leg of female),
4. नर की द्वितीय कीलेट टाँग (2nd chelate walking leg of male)

III. उदर उपांग (Abdominal Appendages)

उदर उपांगों के छः जोड़े उदर भागों में पाये जाते हैं। ये **प्लवपाद** या **प्लीओपोड** (pleopods) या **तरणपाद** (swimmerets) कहलाते हैं।

1. प्रारूपी प्लवपाद (Typical pleopod)—तीसरा उदर उपांग प्रारूपी प्लवपाद होता है। इसमें अंगूठी या छल्ले के आकार का कोक्सा बेलनाकार बेसिस तथा दो चपटी पत्ती के समान पार्श्व शाखाएँ होती हैं। इनमें से बाहरी रचना
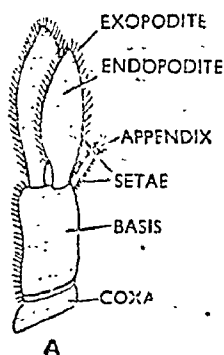
चित्र ७·१२. प्रारूपी तृतीय प्लवपाद (Typical third pleopod)
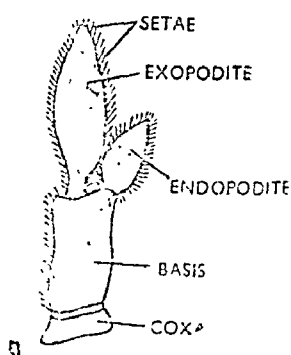
चित्र ७·१३. प्रथम प्लवपाद (First pleopod)

एक्सोपोडाइट तथा भीतर वाली एण्डोपोडाइट कहलाती है। एण्डोपोडाइट पर भीतर की ओर एक मुड़ा हुआ छड़ के समान उभार होता है—यह अपैण्डिक्स इन्टर्ना (appendix interna) कहलाता है। बेसिस की वाहरी सतह तथा एक्सोपोडाइट एवम् एण्डोपोडाइट के स्वतन्त्र किनारे सीटी से ढके रहते हैं।

2. **प्रथम प्लवपाद** (First pleopod)—यह प्रारूपी प्लवपाद के समान ही होता है किन्तु इसमें अपैण्डिक्स इण्टर्ना नहीं होता तथा इसका एण्डोपोडाइट अपेक्षाकृत बहुत छोटा होता है।

3. **द्वितीय प्लवपाद** (Second pleopod)—मादा में द्वितीय प्लवपाद प्रारूपी प्लवपाद के समान ही होता है किन्तु नर के द्वितीय प्लवपाद में एण्डोपोडाइट तथा अपैण्डिक्स इण्टर्ना के बीच एक और छड़ के समान प्रवर्ध होता है जो अपैण्डिक्स मैस्क्युलाइना (appendix masculina) कहलाता है।

4. **छठा प्लवपाद या यूरोपोड** (6th pleopod or uropod)—छठी जोड़ी के उदर उपांग बड़े तथा अत्यन्त मजबूत होते हैं जो टेल्सन के दोनों ओर स्थित होते हैं। इनका कोक्सा तथा बेसिस संयुक्त होकर त्रिकोणाकार संयुक्तपाद या सिम्पोड (sympod) बनाते हैं। इस पर चप्पू के आकार के (oar-shaped) एक्सोपोडाइट
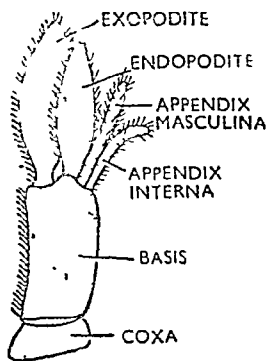
चित्र ७.१४ नर पैलीमोन का द्वितीय प्लवपाद
(2nd pleopod of male *Palaemon*)
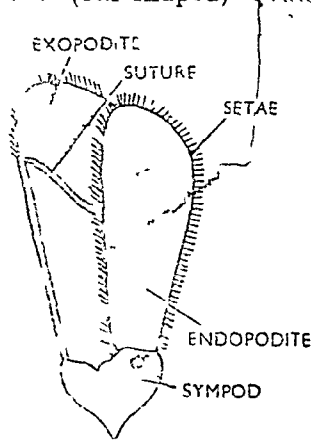
चित्र ७.१५ पुच्छपाद (Uropod)

तथा एण्डोपोडाइट स्थित होते हैं। एक्सोपोडाइट अनुप्रस्थ दरार द्वारा दो भागों में बँटा रहता है।

प्रश्न 44. प्रॉन के सिर उपांगों (cephalic appendages) का वर्णन करिये तथा उनके कार्यों का संक्षेप में उल्लेख करिये।

Give an account of the cephalic appendages of Prawn and mention in brief their functions. *(Gorakhpur 1971)*

कृपया प्रश्न 43 देखिये।

प्रश्न 45. पैलीमोन के सिर एवम् वक्ष उपांगों का वर्णन कीजिये तथा स्कोर्पिओन के सिर एवम् वक्ष उपांगों से तुलना कीजिये।

Describe the cephalic and thoracic appendages of *Palaemon* and compare them with those of Scorpion. *(Jiwaji 1969)*

पैलीमोन के सिर एवम् वक्ष उपांग
(Cephalic and Thoracic Appendages of Palaemon)

कृपया प्रश्न 43 देखिये।

पैलीमोन एवम् स्कोर्पिओन के उपांगों में अन्तर
(Differences Between the Appendages of Palaemon and Scorpion)

सिर उपांग (Cephalic Appendages)

पैलीमोन में पाँच जोड़ी द्विशाखित सिर उपांग होते है। ये एण्टिन्यूल्स, एण्टिनी, मेण्डिवल्स, मैक्सिलूली तथा मैक्सिली है। स्कोर्पिओन में केवल दो जोड़ी सिर उपाग पाये जाते है। ये केलिसेरी (chelicerae) तथा पेडिपाल्प है।

वक्ष उपांग (Thoracic Appendages)

पैलीमोन मे तीन जोड़ी मैक्सिलिपीड्स तथा पाॅच जोड़ी पाद वक्ष उपांग होते है। स्कोर्पिओन मे केवल चार जोडी टाँगे होती है।

पैलीमोन मे वक्ष उपांगों पर क्लोम होते है जबकि स्कोर्पिओन में ये अनुपस्थित होते है।

स्कोर्पिओन में प्रथम दो जोड़ी पादों पर मैक्सिलरी प्रवर्ध होते है किन्तु पैलीमोन मे ये अनुपस्थित होते है।

पैलीमोन मे प्रथम दो जोडी पाद कीलेट होते है, जवकि स्कोर्पिओन में केलिसेरी तथा पैडिपाल्प कीलेट होते है, किन्तु पाद कीलेट नही होते।

स्कोर्पिओन के पादों के सिरों पर नखर होते है किन्तु पैलीमोन में अनुपस्थित होते है।

वास्तव में पैलीमोन तथा स्कोर्पिओन मे पादों की मूल रचना एक-दूसरे से पूर्णतः भिन्न होती है और इनमें किसी प्रकार की तुलना सम्भव नही है।

प्रश्न 46. पैलीमोन के सिर एवम् वक्ष उपांगों का वर्णन कीजिये।

Describe the cephalic and thoracic appendages of *Palaemon*.

(*Agra 1961, 63 ; Lucknow 63, 65, 68 ; Tribhuvan 63 ; Raj. 64*)

कृपया प्रश्न 43 देखिये।

प्रश्न 47. सुन्दर एवम् नामांकित चित्रों की सहायता से प्रॉन के उपांगों का वर्णन कीजिये।

Enumerate the appendages of prawn and give well labelled diagrams to explain their structure. (No description is required).

(*Gorakhpur 1963*)

कृपया प्रश्न 43 देखिये।

प्रश्न 48. पैलीमोन के पाचन अंगों का वर्णन करिये।

Give an account of the digestive organs of prawn.

(*Agra 1949, 57 ; Patna 68 ; Lucknow 58, 66 ; Ranchi 70, 73*)

प्रॉन के पाचन अंगों एवम् भोजन ग्रहण करने की विधि का वर्णन कीजिये। पाचन क्रिया का संक्षिप्त वर्णन करिये।

Give an account of the mechanism of feeding and the digestive organs of Prawn. Mention briefly the physiology of digestion also.

(*Agra 1967, 73 ; Vikram 69 ; Lucknow 71*)

प्रॉन के पाचन अंगों एवम् भोजन ग्रहण करने की विधि का वर्णन कीजिये।

Give an account of the digestive organs of prawn and its mechanism of feeding. (*Vikram 1961, 62 ; Agra 61 ; Indore 67 ; Alld. 70 ; Raj. 73*)

पैलीमोन के पाचन तन्त्र का पूर्ण विवरण दीजिये तथा विभिन्न भागों की संरचनात्मक विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

Give a detailed account of the digestive system of *Palaemon* and explain the structural peculiarities of its different parts.

(*Gorakhpur 1968 ; Lucknow 59, 69 ; Agra 64 ; Meerut 70*)

प्रॉन की आहार-नाल का वर्णन कीजिये।

Give an account of the alimentary canal of prawn.

(*Gorakhpur 1971 ; Kanpur 71*)

पैलीमोन के पाचन तन्त्र का वर्णन करिये तथा हेस्टेट प्लेट के महत्त्व का उल्लेख करिये।

Describe the digestive system of *Palaemon* and point out the importance of hastate plate. (*Gorakhpur 1973*)

पाचन तन्त्र (Digestive System)

पैलीमोन के पाचन अंगों में आहार-नाल तथा उससे सम्बन्धित पाचन ग्रन्थि हिपेटोपेंक्रियास (hepatopancreas) आते हैं।
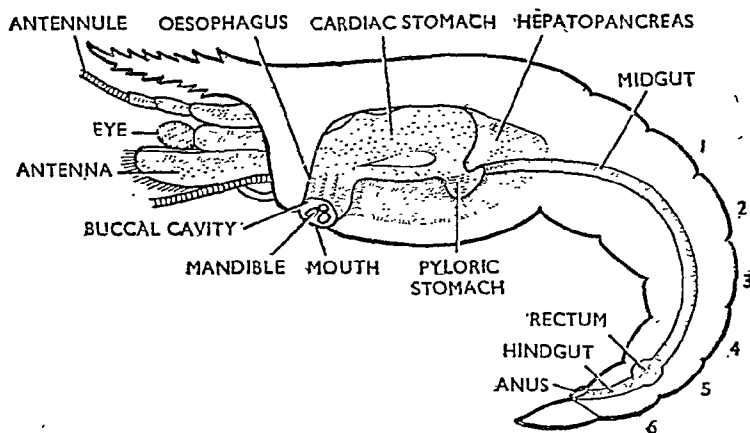
चित्र ७·१६. पैलीमोन की आहार-नाल
(Alimentary canal of *Palaemon*)

आहार-नाल (Alimentary Canal)

पैलीमोन की आहार-नाल एक सीधी नली के रूप में होती है जो तीन भागों में बाँटी गई है :—

1. अग्रांत्र (foregut), 2. मध्यांत्र (midgut), 3. पश्चांत्र (hindgut)

I. अग्रांत्र (Foregut)

यह उपचर्म या क्यूटिकल द्वारा आस्तारित रहती है और निम्न भागों में बाँटी जा सकती है :—

1. मुख तथा मुखगुहा (Mouth and buccal cavity)—मुख शरीर के अधर तल पर मध्यरेखा मे एक लम्बवत् दरार (longitudinal slit) के रूप में स्थित होता है। यह तीसरे खण्ड में पाया जाता है। आगे की ओर लेब्रम (labrum) से, पीछे की ओर द्विपिण्डकी लेबियम (bilobed labium) तथा पार्श्व में मेण्डिबल्स के इन्साइजर प्रवर्धो (incisor process) द्वारा घिरा रहता है। यह मुखगुहा मे खुलता है।

मुखगुहा एक छोटी-सी नलिका या कक्ष के रूप में पायी जाती है। इसके भीतर उपचर्म की पर्त अनियमित रूप से उभरी रहती है। मेण्डिबल्स के मोलर प्रवर्ध मुखगुहा के भीतर रहते है और एक-दूसरे के सामने स्थित होते है।

चित्र ७ १७. पैलीमोन की ग्रासनली का अनुप्रस्थ काट (T.S. Oesophagus)
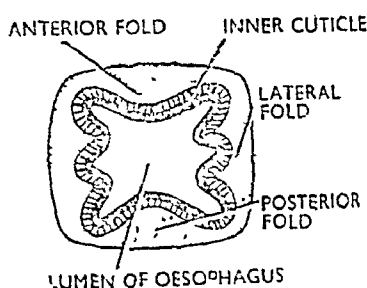
2. ग्रासनली (Oesophagus)—यह भी छोटी किन्तु चौडी ऊर्ध्वावर नलिका (vertical tube) है जो मुखगुहा से ऊपर की ओर चलकर आमाशय मे खुलती है। इसके भीतर की क्यूटिकल पर्त चार बड़े-बड़े लम्बवत् उभारों के रूप में होती है जिनके कारण ग्रासनली की गुहा सितारे के समान दृष्टिगत होती है।

3. आमाशय (Stomach)—आमाशय आहार-नाल का सबसे चौड़ा भाग है जो शिरोवक्ष गुहा (cephalo-thoracic cavity) के अधिकांश भाग को घेरे रहता है। पार्श्व, पश्च तथा अधर तलों पर यह हिपेटोपैंक्रियास से ढंका रहता है। आमाशय दो भागों में बँटा होता है :—

(*i*) **कार्डियक भाग** (Cardiac part)—यह आमाशय का अगला थैले के आकार का बडा भाग है जिसकी क्यूटिकल की परत बहुत-से सूक्ष्म तथा अस्पष्ट लम्बवत् फोल्डों के रूप में उभरी रहती है और इन पर महीन कण्टिकाएँ होती है। कार्डियक आमाशय की दीवार में क्यूटिकल की बनी बहुत-सी प्लेटें होती है। ये निम्नलिखित है :—

(*a*) **गोलाकार प्लेट** (Circular plate)—यह ग्रासनली छिद्र के सामने स्थित होती है और इसका अगला किनारा बनाती है।

(*b*) **लैंसोलेट प्लेट** (Lanceolate plate)—यह आमाशय की छत मे मध्य रेखा पर ठीक गोलाकर प्लेट के पीछे स्थित होती है।

(*c*) **हेस्टेट प्लेट** (Hastate plate)—यह तिकोनी प्लेट है जो आमाशय के फर्श पर मध्य मे स्थित होती है। इसके बीच का भाग उभरा हुआ तथा किनारे नीचे की ओर झुके रहते हैं। इसकी ऊपरी सतह मुलायम सीटी से ढकी रहती है। यह कार्डियो-पाइलोरिक छिद्र का अग्रिम वाल्व (anterior valve) बनाती है। हेस्टेट प्लेट के दोनो किनारों पर क्यूटिकल की बनी एक-एक सहायक या आलम्बक छड़ (supporting rod) होती है। प्रत्येक आलम्बक छड़ के बाहर की ओर पार्श्व झिर्री (lateral groove) होती है।

(*d*) **झिर्री प्लेटें** (Grooved plates)—ये दोनों पार्श्व झिर्रियों का फर्श बनाती है; अतः प्रत्येक झिर्री-प्लेट खुली नाली के आकार की होती है।

(e) **कोम्ब्ड प्लेटें या मेंड प्लेटें** (Combed plates or ridged plates)—प्रत्येक पार्श्व झिर्री का बाहरी किनारा मेंड प्लेट (ridged plate) या कोम्ब्ड प्लेट (combed plate) द्वारा सधा रहता है। दोनों ओर की कोम्ब्ड प्लेटें आगे की ओर
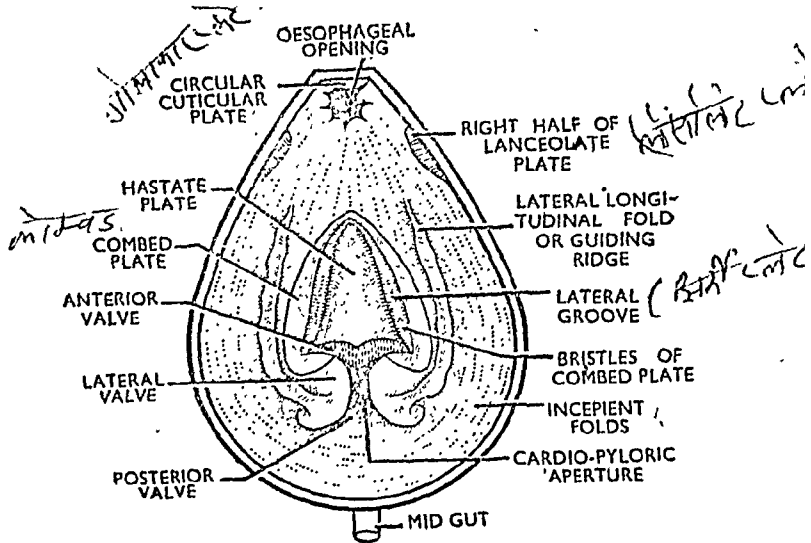
चित्र ७·१८. पैलीमोन का कार्डियक आमाशय बीच से काट कर खोलने पर (cardiac stomach cut open from the middle)

मिलकर एक हो जाती हैं परन्तु पीछे की ओर कार्डियो-पाइलोरिक छिद्र द्वारा अलग रहती हैं। प्रत्येक कोम्ब्ड प्लेट के भीतर वाली सतह पर लम्बे काँटों की एक पंक्ति होती है। ये काँटे पार्श्व-झिर्री पर से होकर हेस्टेट प्लेट के किनारों को ढके रहते हैं। ये काँटे सदैव गतिशील रहते हैं।

कार्डियक आमाशय की पार्श्व दीवारें एक जोड़ी पार्श्व लम्बवत् वलनों (lateral longitudinal folds or guiding ridges) के रूप में उभरी रहती हैं। प्रत्येक वलन की ऊँचाई पीछे की ओर बढ़ती जाती है तथा इसका पिछला सिरा भीतर की ओर मुड़ा रहता है जो कार्डियोपाइलोरिक छिद्र का **पार्श्व वाल्व** (lateral valve of cardio-pyloric aperture) बनाता है। अतः कार्डियोपाइलोरिक छिद्र चार कपाटों (valves) द्वारा घिरा रहता है जो भोजन के पाइलोरिक आमाशय में जाने को नियन्त्रित रखते हैं। कार्डियोपाइलोरिक छिद्र 'x' के आकार का कपाटीय छिद्र है जिसके द्वारा कार्डियक आमाशय पाइलोरिक आमाशय में खुलता है।

(ii) **पाइलोरिक आमाशय** (Pyloric stomach)—यह अपेक्षाकृत छोटा, कम चौड़ा तथा आमाशय का पिछला भाग है जो आमाशय के पीछे तथा नीचे स्थित होता है। इसकी पार्श्व दीवारें बहुत मोटी होती हैं और दो पुटों (folds) में उभरी रहती हैं जिससे पाइलोरिक आमाशय की गुहा दो कक्षों में बँट जाती है। ऊपर का छोटा **पृष्ठ कक्ष** (dorsal chamber) तथा नीचे का बड़ा **अधर कक्ष** (ventral chamber) कहलाता है। दोनों कक्ष एक सँकरे ऊर्ध्व मार्ग (vertical passage) द्वारा सम्बन्धित रहते हैं। पृष्ठ कक्ष से पृष्ठ दिशा में एक बन्द अपवर्ध (blind diverticulum) निकलता है जो दूरस्थ सिरे पर मध्यांत्र में खुलता है।

चित्र ७·१६ पैलीमोन का पाइलोरिक आमाशय (Pyloric stomach of *Palaemon*)

अवर कक्ष का फर्श मध्य में एक मेंड (ridge) के रूप मे उभरा रहता है जिससे इसकी गुहा दो पार्श्व कक्षों (lateral compartments) में बँट जाती है। इन कक्षों की पार्श्व दीवारें सीटी या काँटों से ढकी रहती हैं। अवर कक्ष का फर्श 'A' के आकार की फिल्टर प्लेट (filter plate) से ढका रहता है। फिल्टर प्लेट पर वलन तथा झिर्रियाँ एकान्तरित (alternate) क्रम मे पायी जाती है। इन वलनों पर काँटे लगे रहते है जो अपने समीप वाली झिर्री पर से होकर दूसरे वलन तक पहुँचते है अर्थात् ये सीटी झिर्री की छत का निर्माण करते है। इस प्रकार एक अत्यन्त उच्च कोटि का **पाइलोरिक फिल्टर** (pyloric filter) या **स्ट्रेनर** (strainer) बनता है। इसमें से केवल द्रव के समान भोजन ही छनकर मध्यांत्र में पहुँच सकता है। इसके ठीक पीछे हिपेटोपैंक्रियाटिक नलिकाओं (hepatopancreatic ducts) के छिद्रों का एक जोड़ा स्थित होता है।

II. मध्यान्त्र (Midgut)

यह लम्बी तथा कम चौड़ी नलिका है जो शिरोवक्ष के पिछले भाग से छठे उदरखण्ड तक फैली रहती है। यह एपिथीलियम से आस्तारित होती है जो असंख्य लम्बवत् वलनो में उभरी रहती है।

III. पश्चान्त्र (Hindgut)

यह आहार-नाल का पिछला छोटा-सा भाग है जो क्यूटिकल से आस्तारित होता है। इसका अगला फूला हुआ पेशीय भाग **आंत्र बल्ब** (intestinal bulb) कहलाता है तथा पिछला कम चौड़ा नालाकार भाग **मलाशय** (rectum) कहलाता है जो गुदा-द्वार द्वारा बाहर खुलता है। गुदाद्वार पेशीयुक्त छिद्र है जो टेलसन (telson) के आधार पर स्थित होता है।

हिपेटोपैंक्रियास (Hepatopancreas)

हिपेटोपैंक्रियास या पाचन-ग्रन्थि शिरोवक्ष गुहा मे आमाशय के चारों ओर पायी जाती है। यह आमाशय को पार्श्व, अवर तथा पश्च भाग मे ढकती है। यह एक बड़ी, घनी तथा दो भागों की बनी ग्रन्थिमय रचना है जिसका रंग नारंगी लाल या पीला-सा होता है। प्रत्येक खण्ड या पाली बहुत-सी रेसीमोज विधि से शाखान्वित नलिकाओं से बना होता है जो संयोजी ऊतक मे पड़ी रहती है। प्रत्येक नलिका एपिथीलियम कोशिकाओ की एक पंक्ति से आस्तारित होती है। ये कोशिकाएँ विभिन्न प्रकार की, जैसे—**स्तम्भी** (columnar), **हिपेटिक** (hepatic), एन्जाइम-स्रावी तथा **स्थानापन्न कोशिकाएँ** (replacing cells) होती है।

हिपेटिक ट्युब्यूल्स (hepatic tubules) से सूक्ष्म वाहिनियाँ निकलकर आपस मे मिल जाती हैं और अन्त में **हिपेटोपैंक्रियाटिक वाहिनी** (hepatopancreatic duct) बना लेती है। दोनों खण्डों या पिण्डो से एक-एक हिपेटोपैंक्रियाटिक वाहिनी निकलकर पाइलोरिक आमाशय के अवर कक्ष मे अलग-अलग फिल्टर प्लेट के पीछे खुलती है।

हिपेटोपैंक्रियास यकृत (liver), अग्न्याशय (pancreas) तथा छोटी आन्त्र

(small intestine) का कार्य करता है ।

(i) अग्न्याशय ग्रन्थि (pancreas) के समान यह पाचक रस उत्पन्न करता है जिनके द्वारा कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा का पाचन होता है ।
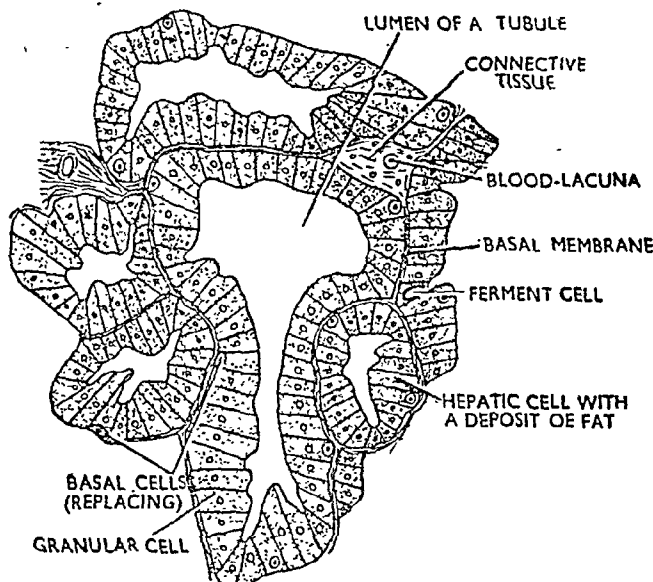
चित्र ७·२०. पैलीमोन के हिपेटोपैंक्रियास का अनुप्रस्थ काट
(T.S. hepatopancreas of *Palaemon*)

(ii) आंत्र के समान यह पचे हुए भोजन का शोषण करता है ।

(iii) यकृत की भाँति यह ग्लाइकोजन, वसा तथा कैल्शियम को संचित रखता है ।

भोजन ग्रहण करने की विधि
(Mechanism of Feeding)

पैलीमोन सर्वभक्षी जन्तु है जो जलीय पौधों, काई, मौस, सूक्ष्म कीट तथा जल के तल पर पाये जाने वाले सूक्ष्म जन्तुओं एवम् डायटम्स इत्यादि को खाता है । भोजन कीलेट टाँगों (chelate legs) द्वारा पकड़ा जाता है और मुख तक पहुँचाया जाता है । मैक्सिलिपीड द्वारा यह मुख के सम्मुख रखा जाता है । मेण्डिबल्स के इन्साइजर प्रवर्धों (incisor processes) द्वारा भोजन छोटे-छोटे टुकड़ों में काटा जाता है । मैक्सिलूली, मैक्सिली तथा मैक्सिलिपीड के प्रथम जोड़े के द्वारा यह मुख-गुहा में पहुँचाया जाता है । मुखगुहा के भीतर पाये जाने वाले मेण्डिबल्स के मोलर प्रवर्धों द्वारा भोजन पुनः पिसकर महीन होता है । अन्त में महीन भोजन कार्डियक आमाशय में पहुँचता है ।

पाचन (Digestion)

भोजन का पाचन कार्डियक आमाशय में प्रारम्भ होता है जहाँ पर पाइलोरिक आमाशय से हिपेटोपैंक्रियाटिक रस (hepatopancreatic juice) आता है और भोजन में मिल जाता है । आमाशय की दीवार की पेशियों में क्रमाकुञ्चन से भोजन महीन लेई के रूप में पिस जाता है । हेस्टेट प्लेट पर से गुजरते हुए भोजन

पुन: सूक्ष्म टुकड़ों में पिस जाता है। अत: इस समय यह पूर्णतया लेई के रूप में बदल जाता है। यह लेई कोम्ब्ड प्लेट के काँटों से छनने के पश्चात् पाइलोरिक आमाशय में पहुँचती है। पुन: पचा हुआ भोजन छनकर हिपेटोपैंक्रियाटिक वाहिनियों द्वारा हिपेटोपैंक्रियास में पहुँचता है। शेष भोजन पुन: पृष्ठ कक्ष में पहुँचता है और वहाँ से मध्य आंत्र में पहुँचता है। यहाँ पर पचे हुए भोजन का अवशोषण होता है। अपच भोजन पश्चांत्र में से होता हुआ शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है।

प्रश्न 49. पैलीमोन के आमाशय की संरचना का वर्णन कीजिये तथा इसके विभिन्न भागों के कार्यों को स्पष्ट रूप से समझाइये।

Describe the structure of the stomach of *Palaemon* and explain clearly the function of its various parts. (*Agra 1971*)

कृपया प्रश्न 48 देखिये।

प्रश्न 50. प्रॉन के श्वसन तन्त्र का वर्णन कीजिये।

Give an account of respiratory system of Prawn.
(*Agra 1969 ; Punjab 65 ; Vikram 68 ; Kanpur 72*)

पैलीमोन के श्वसन में भाग लेने वाली विभिन्न रचनाओं का वर्णन कीजिये।

Give an account of the parts that subserve respiration in Prawn. (*Agra 1954, 67 ; Gorakhpur 63*)

प्रॉन के श्वसन अंगों एवम् श्वसन क्रिया का वर्णन कीजिये।

Describe the organs and mechanism of respiration in Prawn.
(*Gorakhpur 1967 ; Lucknow 61, 62, 64, 65, 70 ; Ravishanker 65 ; Kanpur 69 ; Jiwaji 71*)

श्वसन अंग (Respiratory Organs)

पैलीमोन के श्वसन अंग निम्नलिखित हैं :—

(*i*) एक जोड़ी ब्रैंकियोस्टेगाइट
(*ii*) तीन जोड़ी एपिपोडाइट
(*iii*) आठ जोड़ी क्लोम

समस्त श्वसन अंग एक जोड़ी **क्लोम कक्षों** (gill-chambers) में बन्द रहते हैं। क्लोम कक्ष वक्ष के दोनों ओर एक-एक करके स्थित होते हैं तथा बाहर से क्लोम-छद (gill-cover) या ब्रैंकियोस्टेगाइट (branchiostegite) द्वारा ढके रहते हैं।

1. ब्रैंकियोस्टेगाइट (Branchiostegite)—क्लोम-छद या ब्रैंकियोस्टेगाइट (gill-cover or branchiostegite) भीतर से पतली झिल्ली के समान तथा अति संवहनीय स्तर द्वारा आस्तारित रहते हैं। ये स्तर क्लोम-गुहा में आने वाली जल की धारा के सीधे सम्पर्क में रहते हैं ; अत: जल में घुली O_2 इनके भीतर प्रसारित हो जाती है तथा CO_2 विसरण द्वारा बाहर आ जाती है।

2. एपिपोडाइट (Epipodites)—ये सरल, पत्ती के समान या थैले के समान रचनाएँ हैं जो मैक्सिलिपीड के कोक्सा नामक खण्डों की बाहरी सतह से त्वचा के उभारों के रूप में निकले हुए दिखाई देते हैं। ये कक्ष के प्रथम तीन खण्डों में पाए जाते हैं ; अत: प्रत्येक क्लोम-कक्ष के अगले भाग में तीन एपिपोडाइट पाये जाते हैं। ये अत्यन्त संवहनीय होते हैं और श्वसन में सहायता देते हैं।

3. क्लोम (Gills)—प्रत्येक क्लोम-कक्ष में आठ क्लोम पाये जाते हैं, परन्तु क्लोम-छद हटाने पर केवल सात क्लोम ही दृष्टिगत होते हैं, क्योंकि तीसरा क्लोम

दूसरे क्लोम के नीचे स्थित होता है। अपनी स्थिति के अनुरूप क्लोम तीन प्रकार के होते हैं :—
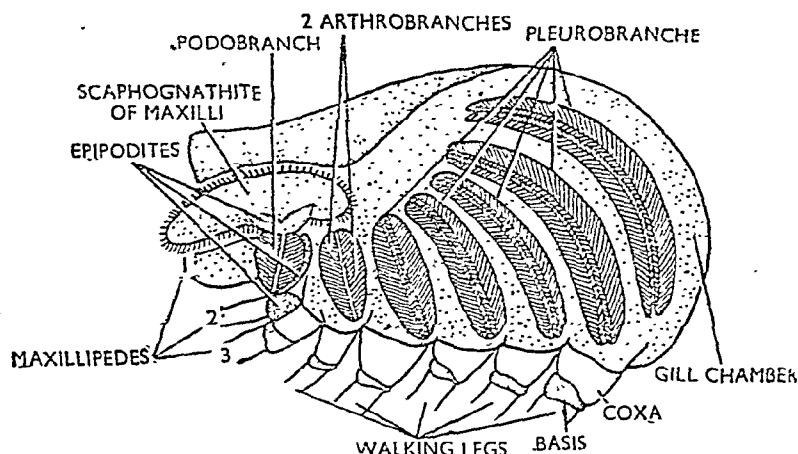
चित्र ७·२१. पैलीमोन में क्लोमों की स्थिति दिखाने के लिए बाँया क्लोम कक्ष (Left gill chamber of *Palaemon* cut open to show the position of gills)

(*i*) **पादक्लोम** (Podobranch)—पाद-क्लोम केवल एक होता है जो द्वितीय मैक्सिलिपीड के कोक्सा की बाहरी सतह पर लगा रहता है।

(*ii*) **सन्धिक्लोम** (Arthrobranch)—प्रत्येक क्लोम कक्ष में दो सन्धि-क्लोम पाये जाते हैं जो तीसरे मैक्सिलिपीड तथा शरीर के बीच के स्थान पर पायी जाने वाली आर्थ्रोडियल झिल्ली (arthrodial membrane) पर एक-दूसरे के ऊपर स्थित होते हैं।

(*iii*) **पार्श्व-क्लोम** (Pleurobranch)—पार्श्व-क्लोम वक्ष के खण्डों की दीवारों पर लगे रहते हैं। पैलीमोन में पाँच पार्श्व-क्लोम होते हैं जो उन पाँच वक्ष खण्डों में पाये जाते हैं जिनमें टाँगें होती हैं :—

क्लोम-सूत्र (Branchial formula)—क्लोमों एवम् एपिपोडाइट की संख्या तथा उनकी स्थिति को क्लोम-सूत्र (branchial formula) द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है :—

क्रम संख्या	उपांग (Appendage)	एपिपोडाइट (Epipodite)	पाद-क्लोम (Podobranch)	संधि-क्लोम (Arthrobranch)	पार्श्व-क्लोम (Pleurobranch)	योग
1.	प्रथम मैक्सिलिपीड	1	—	—	—	1
2.	द्वितीय मैक्सिलिपीड	1	1	—	—	2
3.	तृतीय मैक्सिलिपीड	1	—	2	—	3
4.	प्रथम टाँग	—	—	—	1	1
5.	द्वितीय टाँग	—	—	—	1	1
6.	तृतीय टाँग	—	—	—	1	1
7.	चतुर्थ टाँग	—	—	—	1	1
8.	पंचम टाँग	—	—	—	1	1
	योग	3	1	2	5	11

क्लोम की रचना (Structure of Gill)

पैलीमोन में पाये जाने वाले क्लोम लगभग अर्ध-चन्द्राकार (crescentic or semilunar) होते है। इनका आकार आगे से पीछे की ओर बढता जाता है। प्रत्येक क्लोम के मध्य से क्लोम मूल (gill-root) नामक छोटी रचना निकलती है जिसके द्वारा यह वक्ष से जुड़ा रहता है। क्लोम में पायी जाने वाली क्लोम-तन्त्रिका (branchial nerve) तथा क्लोम वाहिनी (branchial channel) क्लोम मूल मे से होकर जाती है। पैलीमोन का क्लोम फाइलोब्रेंक (phylobranch) कहलाता है। इसमें एक लम्बा क्लोम-अक्ष (gill axis) होता है, जिसके दोनों किनारों पर क्लोम पट्टिकाओं (gill plates) की एक-एक पंक्ति होती है। क्लोम पट्टिकाएँ चौकोर (rhomboidal) व चपटी पत्ती के समान रचनाएँ है जो एक-दूसरे के समान्तर स्थित होती हैं। क्लोम अक्ष पर क्लोम पट्टिकाओं का विन्यास पुस्तक में लगे पृष्ठों के समान होता है। क्लोम पट्टिकाओं की दोनों पंक्तियाँ एक-दूसरे से मध्य लम्बवत् खाई (median longitudinal groove) द्वारा अलग-अलग रहती है। मध्य लम्बवत् खाई क्लोम अक्ष की पूरी लम्बाई में पायी जाती है। क्लोम के मध्य में पायी जाने वाली क्लोम पट्टिकाएँ बड़ी होती है तथा दोनो सिरों की ओर धीरे-धीरे छोटी होती जाती हैं।
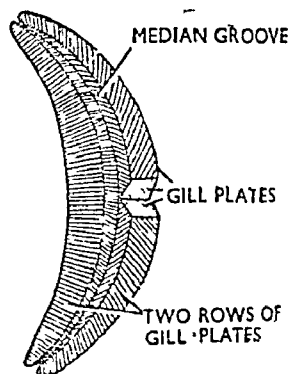
चित्र ७·२२. पैलीमोन के क्लोम का पार्श्व दृश्य (Lateral view of gill of *Palaemon*)

अनुप्रस्थ काट में क्लोम-आधार (gill base) तिकोना दिखाई देता है। यह ढीले संयोजी ऊतक का बना होता है जो एपिडर्मिस तथा क्यूटिकल द्वारा बँधा रहता है। प्रत्येक क्लोम पट्टिका मे एपिथीलियम कोशिकाओं की एक पंक्ति होती है जिसके बाहर पतली क्यूटिकल की पर्त्त होती है। क्लोम पट्टिका की कोशिकाएँ दो प्रकार की होती है। रंजक (pigmented) तथा पारदर्शी (transparent) कोशिकाएँ एक के बाद एक स्थित होती है।
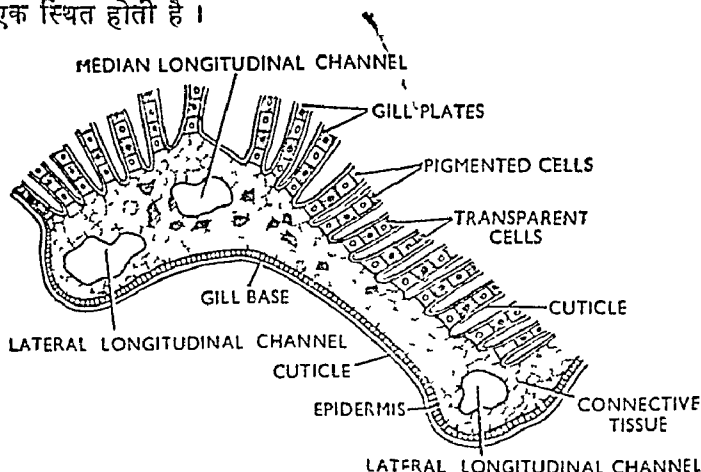
चित्र ७·२३. पैलीमोन के क्लोम का तिरछा अनुप्रस्थ काट (Oblique T.S. of gill of *Palaemon*)

रुधिर सरणियाँ (Blood channels)—प्रत्येक क्लोम में रक्त तीन लम्ववत् रुधिर नालों (blood channels) में से होकर वहता है जो क्लोम अक्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती हैं। दोनों **पार्श्व लम्ववत् रुधिर नालें** (lateral longitudinal blood channels) क्लोम अक्ष के पार्श्व किनारों के साथ स्थित होती हैं तथा एक **मध्य लम्ववत् रुधिर नाल** (median longitudinal channel) क्लोम अक्ष की मध्य खाई में से होकर जाती है। दोनों पार्श्व लम्ववत् नालें अनेक अनुप्रस्थ संयोजिकाओं (transverse connectives) द्वारा जुड़ी रहती हैं जिससे ये सीढ़ी के समान रचना उपस्थित करती हैं। पार्श्व लम्ववत् नाल के वाहर से एक महीन मार्जिनल चैनल (marginal channel) निकलकर, प्रत्येक क्लोम पट्टिका के स्वतन्त्र किनारे के साथ-साथ चलती है और अन्त में **मध्य लम्ववत् चैनल** से जुड़ जाती है।
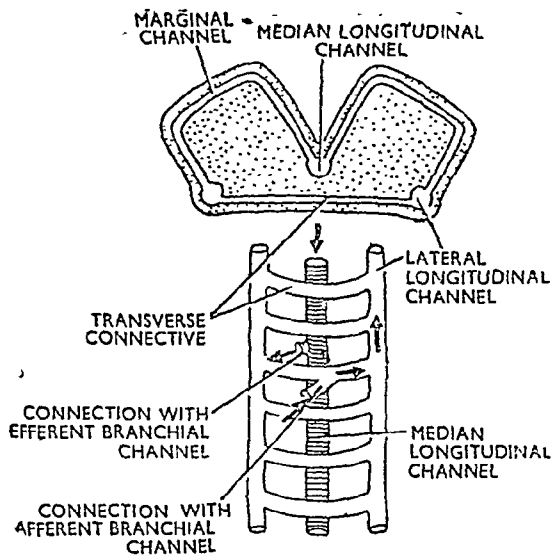
चित्र ७·२४. क्लोम में रक्त का परिवहन (Blood supply in gill)

अभिवाही क्लोम-वाहिनी (afferent branchial channel) द्वारा रक्त प्रत्येक क्लोम में पहुँचता है। यह क्लोम-मूल के सामने स्थित अनुप्रस्थ संयोजिका (transverse connective) में खुलती है। क्लोम में शुद्ध किया हुआ रक्त मध्य लम्ववत् नाल में एकत्रित होता है और वहाँ से **आवाही क्लोम वाहिनी** (efferent branchial channel) द्वारा **पेरिकार्डियल साइनस** (pericardial sinus) में पहुँचता है। मार्जिनल चैनल में से जाते समय अनाक्सीकृत (deoxygenated) रक्त आक्सीकृत हो जाता है।

श्वसन की क्रिया
(Mechanism of Respiration)

जल में घुली हुई आक्सीजन श्वसन के लिए उपयोग में लायी जाती है। मैक्सिला के स्केफोग्नेथाइट की क्रमिक गति द्वारा क्लोम-कक्ष में स्वच्छ जल की धारा उत्पन्न की जाती है। स्केफोग्नेथाइट की गति से क्लोम-कक्ष के अगले-भाग से जल वाहर निकलता रहता है; अतः पिछले सिरे से क्लोम-कक्ष में जल आता रहता है। जव जल की धारा क्लोम-कक्ष के पिछले सिरे से अगले सिरे की ओर वढ़ती है तो मार्ग में आने वाले समस्त श्वसन अंगों को भिगोती जाती है। एपिपोडाइट तथा क्लोम इस समय विसरण द्वारा O_2 ग्रहण कर लेते हैं और CO_2 वाहर की ओर विसरित हो जाती है।

प्रश्न 51. पैलीमोन के रुधिर संवहन तन्त्र का वर्णन कीजिये।
Describe the blood vascular system of *Palaemon*.

(*Osmania 1973*)

पैलीमोन के रुधिर परिवहन संस्थान एवम् परिवहन पथ का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

Describe in detail the circulatory system and the course of circulation in *Palaemon*. (*Vikram 1969*)

(अ) रक्त परिवहन तन्त्र
(Blood Vascular System)

पैलीमोन का परिवहन-तन्त्र खुला होता है और इसमें निम्न भाग पाये जाते है :—

1. हृदय (Heart)
2. पेरिकार्डियम (Pericardium)
3. धमनियाँ (Arteries)
4. रुधिर कोटर तथा रक्त विवर (Blood sinuses and blood lacunae)
5. रुधिर नालें (Blood channels)

1. हृदय (Heart)—हृदय त्रिकोणाकार, पेशीयुक्त रचना है जो वक्ष गुहा के पिछले भाग में मध्य पृष्ठतल पर टरगल पट्टिकाओं (tergal plates) के ठीक नीचे स्थित होता है। इसका नुकीला शीर्ष भाग आगे की ओर तथा चौड़ा आधार भाग पीछे की ओर स्थित होता है। यह एक चौड़ी व पतली दीवारों वाले पेरिकार्डियल साइनस (pericardial sinus) में बन्द रहता है तथा कुछ पेशीय वलयकों (muscu-

चित्र ७·२५. पैलीमोन के हृदय का पृष्ठ तथा अधर दृश्य
(Dorsal and ventral views of the heart of *Palaemon*)
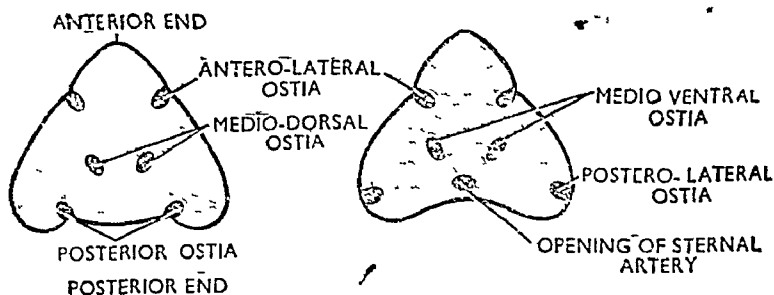
lar strands) द्वारा अपनी स्थिति में सधा रहता है। इनमें से एक मध्य कार्डियो-पाइलोरिक वलयक (median cardiopyloric strand) होता है जो हृदय के सिर से निकलता है तथा पाइलोरिक आमाशय से जुड़ा रहता है। इसी प्रकार के दो पार्श्व वलयक (lateral strands) हृदय के पार्श्व किनारों से देहभित्ति तक फैले रहते हैं। हृदय की दीवारें बहुत मोटी, पेशीयुक्त तथा अत्यन्त लचीली होती है। इन पर 5 जोड़ी कपाटीय छिद्र (valvular openings) या ऑस्टिया (ostia) होते हैं। इसमें एक जोड़ी मध्य-पृष्ठ, एक जोड़ी मध्य-अधर, एक जोड़ी अग्र-पार्श्व, एक जोड़ी पश्च-पार्श्व तथा एक जोड़ी पार्श्व ऑस्टिया होते हैं। इनमें से होकर रुधिर पेरिकार्डियम के संकुचन पर हृदय में पहुँचता है।

2. पेरिकार्डियम (Pericardium)—यह हृदय के चारों ओर स्थित एक पतली दीवार वाला चौड़ा कक्ष है जिसमें हीमोसीलोमिक द्रव भरा रहता है। पेरिकार्डियम का फर्श एक पतली, क्षैतिज भित्ति (horizontal septum) का बना होता

है। यह हिपेटोपेंक्रियास तथा जनद अंगों के ऊपर स्थित होता है। आगे तथा पीछे की ओर यह पृष्ठ देहभित्ति से तथा पार्श्व में वक्ष की दीवार से जुड़ा रहता है। पेरिकार्डियम गुहा रुधिर को हृदय में पहुँचाती है।

3. धमनियाँ (Arteries)—धमनियाँ मोटी दीवारों वाली पेशीयुक्त नलिकाएँ हैं जो हृदय से निकलकर शरीर के विभिन्न अंगों को रक्त पहुँचाती हैं। मुख्य धमनियाँ निम्नलिखित हैं :—

(*i*) **मध्य ऑप्थेल्मिक धमनी** (Median ophthalmic artery)—यह हृदय के शीर्ष से निकलने वाली अकेली मध्य वाहिनी है जो **सिफेलिक या ऑप्थेल्मिक धमनी** (cephalic or ophthalmic artery) कहलाती है। यह रीनल सैक के ऊपर से सिर भाग में जाती है और वहाँ एण्टीनरी धमनियों से जुड़ जाती है।

(*ii*) **एण्टीनरी धमनियाँ** (Antennary arteries)—इनका एक जोड़ा हृदय के सिर से मीडियन ऑप्थेल्मिक के दोनों ओर से निकलता है। प्रत्येक धमनी टेढ़ी होकर आगे बढ़ती है और मैण्डिबुलर पेशी के बाहरी किनारे के साथ रहती है। रास्ते में इससे निम्न शाखाएँ निकलती हैं :—

(*a*) पेरिकार्डियम को **पेरिकार्डियल शाखा** (pericardial branch)
(*b*) पेरिकार्डियक आमाशय को गैस्ट्रिक शाखा (gastric branch)
(*c*) मेण्डिबुलर पेशी को **मेण्डिबुलर शाखा** (mandibular branch)

इसके पश्चात् एण्टीनरी **पृष्ठ** तथा **अधर शाखाओं** में बँट जाती है।
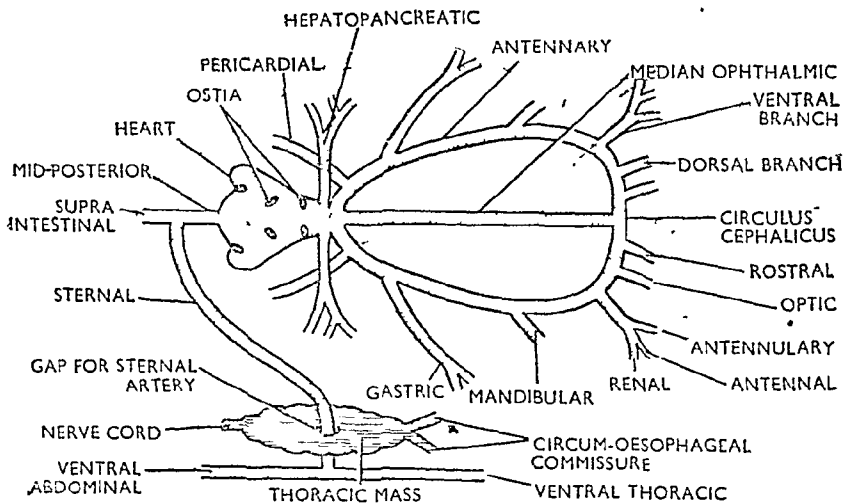
चित्र ७·२६. पैलीमोन की धमनियाँ (Arteries of *Palaemon*)

(*a*) **पृष्ठ शाखा** (Dorsal branch) से नेत्र के लिए ऑप्टिक धमनी निकलती है जिसके पश्चात् यह भीतर की ओर घूम जाती है तथा दूसरी ओर की पृष्ठ शाखा तथा मीडियन ऑप्थेल्मिक के साथ मिलकर एक गोलाकार फंदे (circular loop) के समान धमनी बनाती है। यह सरकुलस सिफेलिकस (circulus cephalicus) कहलाती है। सरकुलस सिफेलिकस से एक जोड़ी **रोस्ट्रल** (rostral) **धमनियाँ** निकलकर रोस्ट्रम को रक्त पहुँचाती है।

(*b*) **अधर शाखा**—यह शाखान्वित होकर एण्टिन्यूल्स, एण्टिनी तथा रीनल अंगों को रक्त पहुँचाती है ।

(*iii*) **हिपेटिक धमनियाँ** (Hepatic arteries)—ये हृदय के पार्श्व अधर तल से एण्टीनरी धमनी के दोनों ओर से निकलने वाली धमनियाँ हैं जो हिपेटो-पेंक्रियास को रक्त पहुँचाती है । अतः ये **हिपेटिक या हिपेटोपेंक्रियाटिक धमनियाँ** कहलाती है ।

(*iv*) **मध्य-पश्च धमनी** (Median posterior artery)—यह एक छोटी किन्तु मजबूत धमनी है जो हृदय की पश्च-अधर (postero-ventral) सतह से निकल कर पीछे की ओर जाती है । तुरन्त ही यह दो शाखाओं में बँट जाती है । ऊपर वाली **सुप्रा-इण्टेस्टाइनल** (supraintestinal) तथा नीचे वाली **स्टरनल धमनी** (sternal artery) कहलाती है ।

(*a*) **सुप्रा-इण्टेस्टाइनल धमनी** (Supra-intestinal artery)—यह आंत्र के ऊपर मध्य-आंत्र वाले भाग तक फैली रहती है तथा मध्य-आंत्र एवम् उदर पेशियो को रक्त पहुँचाती है । यह पृष्ठ उदर धमनी (dorsal abdominal artery) भी कहलाती है ।

(*b*) **स्टरनल धमनी** (Sternal artery)—यह पृष्ठ तल से अधर तल की ओर नीचे तथा आगे को (downward and forward) बढ़ती है । यह हिपेटो-पेंक्रियेटिक मास में से होती हुई अधर वक्ष गैंगलिआनिक मास (ventral thoracic ganglionic mass) के बीच स्थित छिद्र मे से होती, हुई स्टरनम तक पहुँचती है । यहाँ यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है । आगे वाली शाखा स्टरनम से चिपककर वक्ष भाग में रक्त पहुँचाती है और **अधर वक्षीय शाखा** (ventral
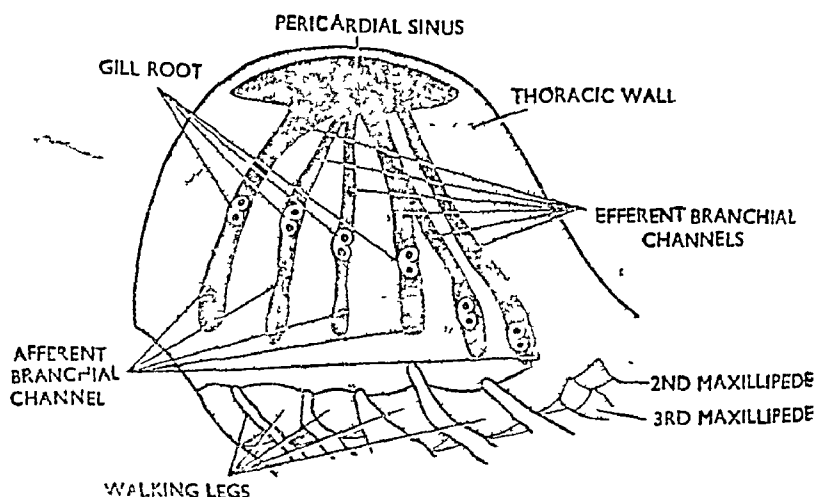
चित्र ७'२७. पैलीमोन में ब्रेकियल सरणियाँ (Blood channels of *Palaemon*)

thoracic branch) कहलाती है । पीछे वाली शाखा स्टरनम के ऊपर पड़ी रहती है और उदर भाग मे पाये जाने वाले विभिन्न अंगों को रक्त पहुँचाती है । यह **अधर उदर शाखा** (ventral abdominal branch) कहलाती है । वक्षीय शाखा प्रथम

तीन जोड़ी टाँगों, मेक्सीलूली तथा स्टरनम को रक्त पहुँचाती है। उदर शाखा अन्तिम दो जोड़ी टाँगों, उदर उपांगों तथा पश्चांत्र को रक्त देती है।

4. रुधिर कोटर तथा रुधिर विवर (Blood sinuses and blood lacunae)—अंगों में पहुँचकर विभिन्न धमनियाँ बार-बार विभाजित होकर महीन शाखाओं में बँट जाती हैं जो केशिकाएँ नहीं बनातीं अपितु चौड़े दीवाररहित स्थानों में बदल जाती हैं। ये चौड़े खाली स्थान **रक्त कोटर** (blood sinuses or blood lacunae) कहलाते हैं। शरीर के समस्त रक्त कोटर एक जोड़ी लम्बे किन्तु अस्पष्ट अवर कोटर (ventral sinus) में खुलते हैं। अवर कोटर हिपेटोपैंक्रियास के नीचे तथा वक्ष के फर्श के ऊपर स्थित होते हैं। ये दोनों विभिन्न स्थानों पर एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं।

5. रुधिर नालें (Blood channels)—चैनल दीवारविहीन लैक्युनर नलिकाएँ (wall-less lacunar tubes) हैं। पैलीमोन में छः जोड़ी **अपवाही** तथा छः जोड़ी **आवाही ब्रैंकियल चैनल** होती हैं। अभिवाही ब्रैंकियल चैनल (afferent branchial channel) अवर कोटर से अशुद्ध रक्त क्लोमों में ले जाती हैं तथा अपवाही सरणियाँ शुद्ध रक्त को पेरिकार्डियम में पहुँचाती हैं।

अभिवाही सरणियाँ (afferent channels) अवर साइनस से निकलकर वक्ष की दीवार की भीतर की सतह के साथ-साथ चलकर क्लोम मूलों में से होकर क्लोमों में पहुँचती हैं। यहाँ प्रत्येक अभिवाही नाल अपनी संयोजिका (transverse connective) में खुलती है। प्रथम अभिवाही क्लोम-नाल पाद-क्लोम तथा सन्धि-क्लोमों को
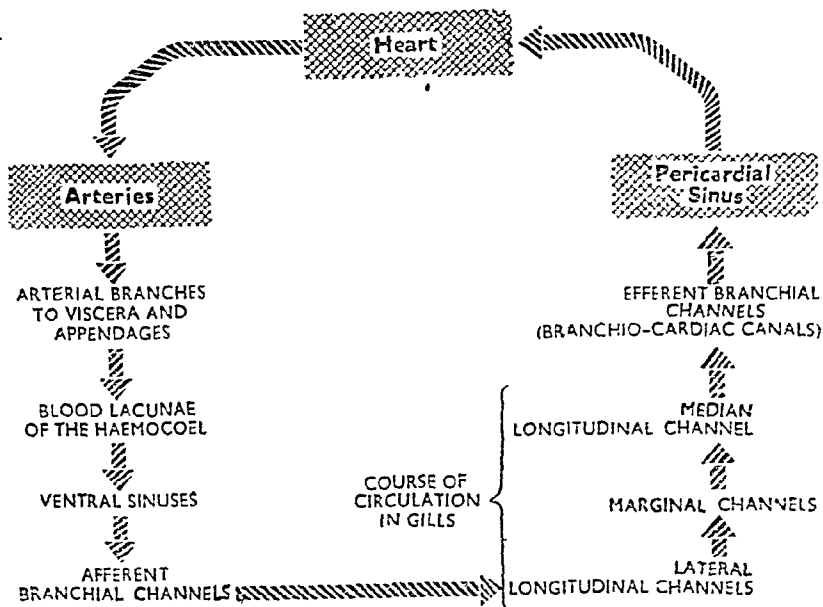
चित्र ७·२८. रक्त परिवहन पथ का चित्रीय निरूपण
(Graphic representation of blood circulation in *Palaemon*)

रक्त पहुँचाती है तथा शेष 5 नालें पाँचों पार्श्व क्लोमों को रक्त-प्रदान करती हैं।

क्लोम के भीतर रक्त ऑक्सीकृत होता है तथा शुद्ध रक्त अपवाही नालों द्वारा पेरिकार्डियम में पहुँचता है।

रक्त परिवहन पथ

शरीर के भीतर रक्त के परिवहन-पथ का चित्र 7·28 में चित्रीय निरूपण किया गया है।

रक्त (Blood)—पैलीमोन का रक्त रंगहीन द्रव के समान होता है। इसके प्लाज्मा में श्वेत रक्त-कणिकाएँ या ल्युकोसाइट (leucocytes) पायी जाती है। हीमोसायनिन (haemocyanin) नामक श्वसन कणिकाएँ रक्त के प्लाज्मा में घुली रहती है।

प्रश्न 52. पैलीमोन के संवेदी अंगों का वर्णन कीजिये।

Give an account of receptor organs of *Palaemon*.

(*Vikram 1961, 68 ; Jiwaji 68*)

पैलीमोन के संवेदी अंगों का संक्षिप्त वर्णन करिये।

Give a brief account of the sense organs of *Palaemon*.

(*Jabalpur 1973*)

पैलीमोन के ग्राहक अंग निम्नलिखित हैं :—

(*i*) स्पर्श ग्राही (Tactile organs)
(*ii*) घ्राण ग्राही (Olfactory organs)
(*iii*) सन्तुलन अंग या स्टेटोसिस्ट (Organs of balance or statocysts)
(*iv*) दृष्टि अंग या संयुक्त आँखे (Organs of sight or compound eyes)

1. स्पर्श ग्राही (Tactile Organs)

स्पर्श ग्राही पक्षाकार सीटी (plumose setae) के रूप में एण्टिनी के स्पर्शकों तथा उपांगों के स्वतन्त्र किनारो पर पाये जाते है। प्रत्येक स्पर्श ग्राही सीटा क्यूटिकल की बनी खोखली रचना है जो दो भागों में बँटी रहती है—समीपस्थ आधार खण्ड (proximal basal segment) जिसके द्वारा सीटा शरीर से जुड़ा रहता है, शेफ्ट (shaft) कहलाता है, तथा दूरस्थ भाग ब्लेड के समान (distal blade-like)
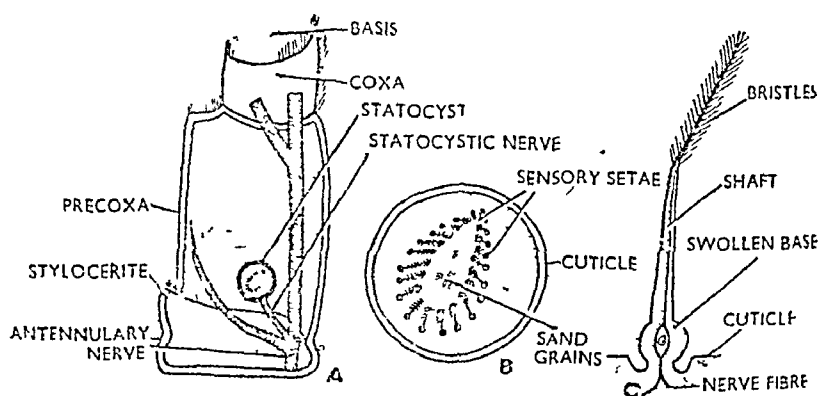
चित्र ७·२९. पैलीमोन का स्टेटोसिस्ट (Statocyst of *Palaemon*)
A. एण्टिन्यूल के भीतर (within the antennule)
B. स्टेटोसिस्ट का अनुप्रस्थ काट (T.S. statocyst)
C. एक ग्राही सीटा (A receptor seta)

होता है। यह अपने स्वतन्त्र सिरे की ओर धीरे-धीरे कम चौड़ा होता जाता है। इस पर छोटे-छोटे काँटों (barbs) की दो पंक्तियाँ पायी जाती हैं। सीटी का सम्बन्ध तन्त्रिका-तन्तुओं (nerve fibres) से होता है और ये स्पर्श उद्दीपनों को ग्रहण करते हैं।

2. घ्राण अंग (Olfactoay Organs)

घ्राण ग्राही भी सीटी के रूप में पाये जाते हैं और ये केवल एण्टिन्यूल के वाहरी स्पर्शक (outer organs of antennule) की लम्बी झिर्री (longitudinal groove) मे स्थित रहते है। प्रत्येक सीटा आधारखण्ड या शेफ्ट (shaft) तथा दूरस्थ खण्ड या ब्लेड (blade) का वना होता है। शेफ्ट खोखला होता है तथा त्वचा से जुड़ा रहता है किन्तु ब्लेड लगभग गोलाकार होता है। एण्टिन्यूल तन्त्रिका (antennulary nerve) के सूक्ष्म तन्त्रिका-तन्तु इन सीटों से सम्बन्धित रहते है।

3. सन्तुलन अंग या स्टेटोसिस्ट (Organs of Balance or Statocysts)

स्टेटोसिस्ट (statocysts) एक जोड़ी सफेद खोखली गोलाकार या फ्लास्क के आकार की रचनाएँ है, जो क्यूटिकल से वनती हैं। प्रत्येक स्टेटोसिस्ट एण्टिन्यूल के प्रीकोक्सा की पृष्ठ दीवार के भीतर की सतह पर लगा रहता है तथा एक सूक्ष्म छिद्र द्वारा प्रीकोक्सा के अवतल गड्ढे (concave depression) में खुलता है। यह छिद्र **स्टेटोसिस्ट का छिद्र** (opening of statocyst) कहलाता है तथा त्वचा की पर्त द्वारा ढका रहता हे। एण्टिन्यूल तन्त्रिका की स्टेटोसिस्ट नामक शाखा प्रत्येक स्टेटोसिस्ट को जाती है।

अनुप्रस्थ काट में स्टेटोसिस्ट क्यूटिकल का वना एक गोला-सा दिखायी देता है। उसके मध्य में वहुत महीन रेत के कण (minute sand grains) पाये जाते हैं। इनके चारों ओर लम्वे संवेदी सीटी (sensory setae) अथवा ग्राही सीटी (receptor setae) का एक अण्डाकार घेरा होता है। प्रत्येक सीटा स्टेटोसिस्ट की भीतर की दीवार से जुड़ा रहता है तथा स्टेटोसिस्ट तन्त्रिका (statocystic nerve) के तन्तु से सम्वन्धित रहता है। प्रत्येक सीटा का आधार भाग (basal part) फूला
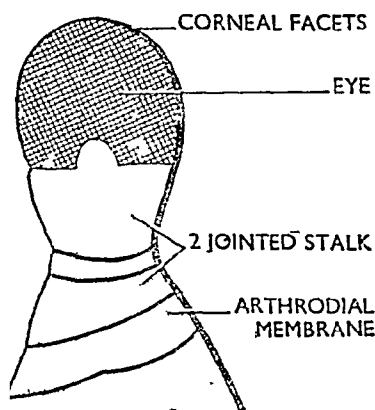
चित्र ७·३०. (अ) पैलीमीन का संयुक्त नेत्र (Compound eye of *Palaemon*)
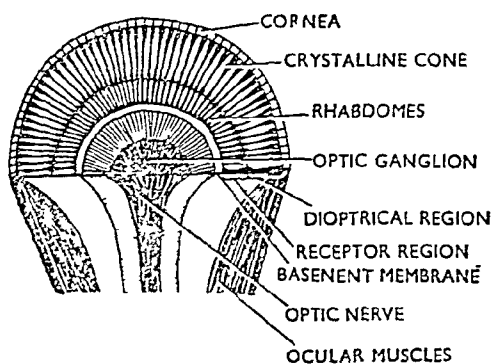
चित्र ७·३१. (व) संयुक्त आँख की खड़ी काट (V.S. compound eye)

हुग्रा होता है तथा उससे एक लम्वा नुकीला शेफ्ट (shaft) निकलता है। शेफ्ट रेत के कणों के समूह की ओर होता है। शेफ्ट मध्य में भुका रहता है तथा इसके झुकाव के पश्चात् का दूरस्थ भाग महीन कण्टिकाओं (sensory bristles) से ढका रहता है।

स्टेटोसिस्ट (statocyst) सन्तुलन तथा स्थिति-नियन्त्रण (balance and orientation) का कार्य करते हैं। यदि तैरते समय *पैलीमोन* का शरीर एक ओर झुक जाए तो रेत के समूह के समस्त कण उसी ओर एकत्रित हो जाते हैं। फलस्वरूप उस भाग के ग्राही सीटी में उद्दीपन (stimulus) उत्पन्न होता है और ये संवेदनाएँ तन्त्रिका तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क में ले जायी जाती हैं जहाँ से शरीर को ठीक करने की सूचना उचित भागों में पहुँच जाती है।

4. संयुक्त आँखें (Compound Eyes)

पैलीमोन में एक जोड़ी काली, अर्धगोलाकार, वृन्तयुक्त आँखें होती हैं जो शिरोवक्ष के पूर्वखण्डीय (presegmental) भाग पर स्थित रहती हैं। प्रत्येक आँख रोस्ट्रम (rostrum) के नेत्रीय गड्ढे (orbital notch) में स्थित होती है। इसका वृन्त दो खण्डों का बना होता है तथा इधर-उधर घुमाया जा सकता है।

संयुक्त आँख बहुत-से दृष्टि एककों (visual elements) या नेत्राणुओं (ommatidia) की बनी होती है। प्रत्येक नेत्राणु वस्तु के अपने सामने वाले भाग का स्वतन्त्र प्रतिविम्ब बनाता है। समस्त नेत्राणु रचना में समान होते है और नेत्र के लम्बे अक्ष के समान्तर लगे रहते हैं।

आँख के ऊपर क्यूटिकल की पारदर्शी पर्त्त होती है। यह कार्निया (cornea) कहलाती है। यह ग्राफ पेपर के समान बहुत-से कोष्ठों में बँटा रहता है। ये कोष्ठ फेसेट (facets) कहलाते हैं। प्रत्येक फेसेट के नीचे एक नेत्राणु स्थित होता है।

1. डायोप्ट्रिकल भाग (Dioptrical region)—प्रत्येक कार्नियल फेसेट (corneal facet) मध्य में मोटा होकर उत्तल लैंस (biconvex lens) बनाता है। इसके नीचे दो कार्निजन कोशिकाएँ (corneagen cells) होती हैं। ये परिवर्तित एपिडर्मल कोशिकाएँ हैं। निर्मोचन के पश्चात् (after moulting) ये नया कार्निया बनाती हैं। इसके पीछे चार शंकु कोशिकाएँ (cone cells) स्थित होती हैं जो पारदर्शी क्रिस्टलीय शंकु (crystalline cone) के चारों ओर स्थित होती हैं। क्रिस्टलीय शंकु कोशिकाओं के स्राव से बनता है तथा इन्हीं के द्वारा अपना भोजन ग्रहण करता है। शंकु कोशिकाओं के पश्च सिरे नुकीले होते है और रिसेप्टर भाग पर आधारित रहते हैं। डायोप्ट्रिकल भाग का कार्य वस्तु से आने
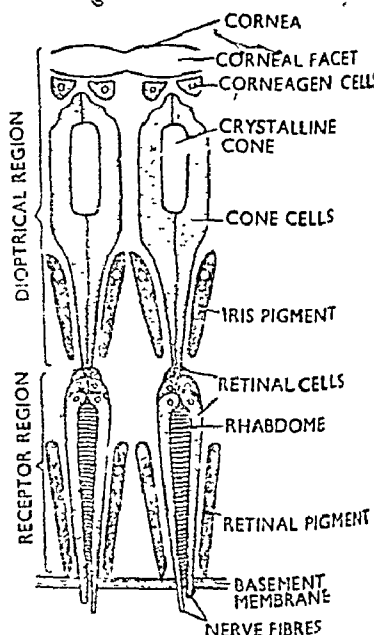
चित्र ७·३१. पैलीमोन के नेत्राणु की खड़ी काट (T.S. Ommatidium of *Palaemon*)

वाली प्रकाश की किरणों को फोकस करना है।

2. ग्राही भाग (Receptor region)—ग्राही भाग के मध्य में एक लम्बी, तर्क्वाकार (spindle-shaped) छड़ होती है जिस पर अनुप्रस्थ दरारें पायी जाती हैं। यह रेहब्डोम (rhabdom) कहलाता है। रेहब्डोम को घेरे हुए सात रेटाइनल कोशिकाएँ (retinal cells) होती हैं। रेटाइनल कोशिकाएँ रेहब्डोम की रक्षा करती हैं तथा उसको भोजन पहुँचाती हैं। रेहब्डोम रेटाइनल कोशिकाओं के स्राव से ही बनता है। रेटाइनल कोशिकाओं तथा रेहब्डोम के अन्तिम दूरस्थ सिरे आधार-कला (basement membrane) पर आधारित रहते हैं तथा तन्त्रिका तन्तुओं से सम्बन्धित रहते हैं। रिसेप्टर भाग में वस्तु का प्रतिबिम्ब बनता है।

गतिशील रञ्जक पर्तों (pigmented sheaths) द्वारा समस्त नेत्राणु एक-दूसरे से पृथक् रहते हैं। रञ्जक पर्त रञ्जक अमीबॉयड कोशिकाओं (pigmented amoeboid cells) की बनी होती हैं। दो नेत्राणुओं के बीच की रञ्जक पर्त दो रञ्जक समूहों (pigmented groups) की बनी होती हैं। डायोप्ट्रिकल भाग में पाया जाने वाला रञ्जक समूह **आइरिस रञ्जक समूह** (iris pigmented group) तथा रेटाइनल भाग में पाया जाने वाला रञ्जक समूह **रेटाइनल रञ्जक समूह** (retinal pigment group) कहलाता है।

संकलित दृष्टि या मोजेइक दृष्टि (Mosaic vision)—संयुक्त आँख का प्रत्येक नेत्राणु स्वतन्त्र प्रतिबिम्ब बनाता है; अतः संयुक्त आँख द्वारा बना किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब बहुत-से छोटे-छोटे प्रतिबिम्बों के समेकन से बनता है। ये छोटे-छोटे प्रतिबिम्ब उसी प्रकार एक दूसरे के बिल्कुल समीप स्थित होते हैं, जैसे कि एक फर्श में टाइलें। इस प्रकार की दृष्टि **मोजेइक दृष्टि या संकलित दृष्टि** (mosaic vision) कहलाती है तथा इस प्रकार बने प्रतिबिम्ब की प्रकृति प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर करती है।

चित्र ७·३२. तेज प्रकाश में नेत्राणुओं के कार्य का चित्रीय निरूपण (Working of ommatidia in bright light)

(अ) तीव्र प्रकाश में (In bright light)—तीव्र प्रकाश में रञ्जक कोशिकाएँ फैलकर दो नेत्राणुओं के बीच रंगीन प्रकाश-शोषक पर्दा-सा (dark, light-absorbing curtain) बना लेती हैं, फलस्वरूप समीपस्थ नेत्राणु एक-दूसरे से पूर्णतया अलग हो जाते हैं। नेत्राणुओं के कार्निया पर विभिन्न कोणों से टकराने वाली प्रकाश-किरणें प्रतिबिम्ब बनाने में असमर्थ होती हैं क्योंकि ये परावर्तन के पश्चात् रंगीन पर्दे द्वारा शोषित कर ली जाती हैं; अतः केवल वे प्रकाश की किरणें ही प्रतिबिम्ब बना सकती हैं, जो कॉर्निया पर नेत्राणु के अक्ष के समान्तर या कॉर्निया की सतह के लम्बरूप आकर टकराती हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्रत्येक नेत्राणु प्रकाश की केवल कुछ किरणों को ही परावर्तित करके रेटाइनल भाग तक

पहुँचा पाता है । इस प्रकार संयुक्त नेत्र से बने प्रतिबिम्ब में वस्तु के प्रत्येक बिन्दु का अलग-अलग प्रतिबिम्ब अलग-अलग नेत्राणुओं से बना होता है जो एक-दूसरे के बिल्कुल समीप स्थित होते हैं । इस प्रकार बने प्रतिबिम्ब में उतने ही प्रतिबिम्बों का समेकन होता है जितनी कि संयुक्त नेत्र में नेत्राणुओं की संख्या होती है । यह प्रतिबिम्ब एपोजिशन प्रतिबिम्ब (apposition image) कहलाता है । इसकी तीव्रता प्रकाश की तीव्रता तथा नेत्राणुओं के बीच रञ्जक पर्दों की क्षमता पर निर्भर करती है ।

(ब) धीमे प्रकाश में (In dim light)—धीमे प्रकाश में रञ्जक कोशिकाएँ (pigment cells) नेत्राणुओं के दोनों सिरों पर संघनित होकर छोटे-छोटे समूह बना लेती हैं । फलस्वरूप समस्त नेत्राणु एक दूसरे के सम्पर्क में आ जाते हैं और ये एक साथ मिलकर प्रतिबिम्ब बनाते हैं । कार्निया की सतह पर टकराने वाली समस्त प्रकाश की किरणें इस दशा में प्रतिबिम्ब बनाने में समर्थ होती हैं । एक कार्निया की सतह से विभिन्न कोणों पर टकराने वाली प्रकाश की किरणें परावर्तित होकर दूसरे नेत्राणुओं द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं जिससे एक ही बिन्दु का प्रतिबिम्ब कई नेत्राणुओं द्वारा बन जाता है तथा एक ही नेत्राणु कई-कई बिन्दुओं का प्रतिबिम्ब बना सकता है । फलस्वरूप बिन्दुओं के प्रतिबिम्बों का अंशछादन (overlapping of image) होता है ; अतः संयुक्त नेत्र से बना वस्तु का प्रतिबिम्ब बिन्दुओं के प्रतिबिम्बों के अंशछादन के द्वारा बना होता है । इस प्रकार का प्रतिबिम्ब सुपरपोजीशन प्रतिबिम्ब (superposition image) कहलाता है । यह स्पष्ट नहीं होता तथा जन्तु केवल घूमते हुए पदार्थ का अनुमान ही प्राप्त कर सकता है ।

चित्र ७·३३. धीमे प्रकाश मे नेत्राणुओं की क्रिया का चित्रीय निरूपण (Working of ommatidia in dim light)

संयुक्त नेत्र से समीप की वस्तुएँ ही देखी जा सकती हैं ; अतः ये जन्तु सूक्ष्म-दृष्टि वाले (short-sighted) होते है ।

कुछ कीटों में रञ्जक-कोशिकाएँ गतिशील नहीं होतीं और वे उपयुक्त दोनों अवस्थाओ में से किसी एक रूप में स्थिर रहती हैं । प्रथम दशा में जन्तु रात्रि में नहीं देख सकते तथा दूसरी अवस्था में वे दिन के प्रकाश में अन्धे होते हैं ।

प्रश्न 53. किसी आर्थ्रोपोड के संयुक्त नेत्र की संरचना का वर्णन कीजिये तथा इसकी कार्यविधि समझाइये ।

Describe the structure of the compound eye of on arthropod and explain the mode of action. *(Meerut 1971)*

स्वच्छ एवम् नामांकित चित्र की सहायता से प्रॉन के नेत्र की सूक्ष्मदर्शी संरचना का वर्णन कीजिये तथा इसके द्वारा देखने की क्रिया का उल्लेख कीजिये ।

Describe with the help of neat diagrams the microscopic struc-

ture of eye of prawn and explain how vision is effected through them. (*Agra 1965, 58, 62, 64 ; Gorakhpur 60, 61, 69, 71 ; Vikram 66 ; Jiwaji 71, 73*)

प्रॉन के नेत्र की संरचना एवम् कार्य विधि का वर्णन कीजिये।

Describe the structure and mode of working of the eye of Prawn. (*Lucknow 1969, 71 ; Kanpur 70 ; Agra 70, 71 ; Gorakhpur 71 ; Vikram 72 ; Indore 72*)

कृपया प्रश्न 52 देखिये।

प्रश्न 54. पैलीमोन के उत्सर्जी अंगों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

Give a brief illustrated account of the excretory organs in *Palaemon.* (*Ranchi 1968 ; Kanpur 70 ; Lucknow 70*)

झींगा (Palaemon) की एण्टीनरी व मैक्सीलरी ग्रन्थियों की रचना व कार्यों का वर्णन करो। ये ग्रन्थियाँ विच्छू की कॉक्सल ग्रन्थि से मिलती हैं अथवा अलग हैं।

Describe the anatomy and physiology of antennary and maxillary glands of *Paleamon.* How do they resemble or differ from the coxal gland of Scorpion ? (*Rajasthan 1972*)

पैलीमोन एवम् विच्छू के उत्सर्जी अंगों का तुलनात्मक वर्णन कीजिये।

Give a comparative account of the excretory organs of Scorpion and Palaemon. (*Jabalpur 1970*)

पैलीमोन में उत्सर्जन एक जोड़ी **एण्टीनरी ग्रन्थियों** या **ग्रीन ग्रन्थियों** (antennary or green glands) तथा एक **रीनल कोष** (renal sac) द्वारा होता है। इनके अतिरिक्त त्वचा भी इस कार्य में सहयोग प्रदान करती है। लारवा अवस्था में मैक्सीलरी ग्रन्थियाँ उत्सर्जन का कार्य करती हैं यद्यपि अधिकतर क्रस्टेशियन में एण्टीनरी ग्रन्थियाँ लारवा में पायी जाती है और प्रौढ़ में मैक्सीलरी ग्रन्थियाँ इन्हें विस्थापित कर देती हैं।

एण्टीनरी या ग्रीन ग्रन्थियाँ (Antennary or Green Glands)

एण्टीनरी ग्रन्थियों का एक जोड़ा एण्टिनी (antennae) के कॉक्सल खण्डों में पाया जाता है। प्रत्येक ग्रीन ग्रन्थि अपारदर्शी, श्वेत तथा मटर के बीज के समान रचना है जो तीन भागों की बनी होती है :—

(1) एण्ड सैक (end sac)

(2) लेबिरिन्थ (labyrinth) या ग्रन्थिल जालक (glandular plexus)

(3) ब्लैडर (bladder)।

चित्र ७·३४. पैलीमोन का उत्सर्जी अंग (Excretory organ of *Palaemon*)

1. एण्ड सैक—यह सेम के बीज की आकृति की रचना है जो ब्लैडर तथा लेबिरिन्थ के बीच स्थित होती है। इसकी दीवार में दो स्तर होते हैं। **बाहरी स्तर** संयोजी ऊतक का मोटा स्तर होता है तथा **आन्तरिक स्तर** उत्सर्जी एपिथीलियम का बना होता है। संयोजी ऊतक तन्तुओं के

बीच असंख्य रक्त कुल्यिकाएँ (blood lacunae) होती है तथा उत्सर्जी एपिथीलियम रेडियल सेप्टा के रूप में उभरी रहती है। इसकी गुहा में एक बड़ी रक्त-कुल्यिका (blood lacuna) होती है। इसकी गुहा केवल एक छिद्र द्वारा लेबिरिन्थ की गुहा से सम्बन्धित होती है जिस पर सवरणी (sphincter) लगी होती है।
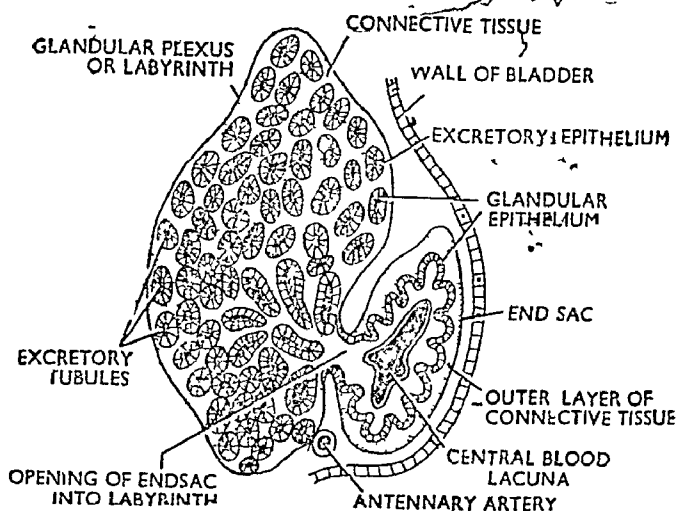
चित्र ७·३५. पैलीमोन की एण्टीनरी ग्रन्थि की अनुप्रस्थ काट (T.S. Antennary gland of *Palaemon*)

(2) *लेबिरिन्थ या ग्रन्थीय जालक*—यह एण्ड सैक के बाहर की ओर स्थित होता है तथा उसकी अपेक्षा बड़ा होता है। इनमें बहुत-सी शाखान्वित तथा कुण्डलित उत्सर्जी नलिकाएँ होती हैं जो सयोजी ऊतक में पड़ी रहती हैं। ये नलिकाएँ उत्सर्जी एपिथीलियम से आस्तारित होती है। समस्त उत्सर्जी नलिकाएँ एक साधारण छिद्र द्वारा एण्ड सैक में खुलती है तथा अलग-अलग छिद्रों द्वारा ब्लैडर में खुलती है।

(3) ब्लैडर—ब्लैडर पतली दीवार वाला चौडा थैलेनुमा भाग है जिसकी दीवार उत्सर्जी एपिथीलियम के एक स्तर की बनी होती है। यह एण्ड सैक के अन्दर की ओर स्थित होता है तथा इसकी आन्तरिक भित्ति छोटी-सी नलिका के रूप मे बढकर मूत्रवाहिनी (ureter) बनाती है जो रीनल छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है। रीनल छिद्र एण्टीना के कोक्सा के अन्दर के किनारे पर एक उभार पर स्थित होता है।

प्रत्येक ब्लैडर से एक सँकरी पार्श्व नालिका (lateral duct) ग्रसिका के साथ पीछे की ओर जाती है और रीनल कोष में खुलती है। दोनों पार्श्व नलिकाएँ एक अनुप्रस्थ संयोजिका द्वारा सम्बन्धित होती हैं।

रीनल कोष या नेफ्रो-पेरिटोनियल कोष (Renal sac or nephro-peritoneal sac)—यह कार्डियक आमाशय के ऊपर तथा कैरापेस (carapace) के ठीक नीचे स्थित पतली दीवार वाला कोष है। यह पीछे की ओर जनदों तक फैला रहता है तथा इसकी दीवार चपटी एपिथीलियल कोशिकाओं के एक स्तर से बनी होती है।

एण्टीनरी ग्रन्थि की कार्यिकी (Physiology of antennary gland)—एण्टीनरी ग्रन्थियों के दो मुख्य कार्य हैं :—

(*i*) *नाइट्रोजिनस उत्सर्जी-पदार्थों को अलग करना*—एण्ड सैक की उत्सर्जी

एपिथीलियम लैक्युना में भरे रुधिर के सम्पर्क में रहती है। अतः इसकी कोशिकाएँ रुधिर से उत्सर्जी नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों को अलग कर लेती हैं। मुख्य उत्सर्जी पदार्थ अमोनिया तथा इसके यौगिक एवम् एमाइन्स है। यह पदार्थ लेबिरिन्थ की उत्सर्जी वाहिनियों में पहुँचाया जाता है जहाँ शोषण (selective absorption) होता है तथा उपयोगी पदार्थ अलग कर लिये जाते हैं और पुनः लेबिरिन्थ के संयोजी ऊतक में पड़े हुए blood-spaces के रक्त मे अवशोषित हो जाते हैं। शेष बचे हुए पदार्थ मूत्र बनाते हैं जो ब्लैडर द्वारा समय-समय पर शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। रीनल कोष शरीर के पिछले भाग से उत्सर्जी पदार्थ संचित करता है।

मैक्सीलरी ग्रन्थियाँ (Maxillary Glands)

ये केवल लारवा अवस्था मे ही पायी जाती हैं और मैक्सिली के कॉक्सल खण्ड में स्थित होती है। प्रौढ़ जन्तु में इनके स्थान पर एण्टीनरी ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

बाह्य कंकाल (Exoskeleton)

शरीर की रक्षा करने वाला बाह्य कंकाल अजीवित नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों का बना होता है जो त्वचा के ऊपर एकत्रित हो जाते हैं। यह कंकाल निश्चित समय के बाद बार-बार उतार दिया जाता है। अतः इसको फेंकने से शरीर से कुछ मात्रा में उत्सर्जी पदार्थ अलग हो जाते हैं।

प्रश्न 55. प्रॉन के नर एवम् मादा जनन अंगों का वर्णन कीजिये।
Describe the male and female reproductive organs of prawn.
(*Lucknow 1964, 66, 68*)

प्रॉन में नर तथा मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं। नर तथा मादा जन्तुओं को निम्न बाह्य लक्षणों द्वारा पहचाना जा सकता है :—

1. मादा नर की अपेक्षा बड़ी होती है।
2. नर का उदर मादा की अपेक्षा कम चौड़ा होता है।
3. नर में द्वितीय कीलेट टाँग (2nd chelate leg) अन्य टाँगों की अपेक्षा लम्बी, मोटी तथा मजबूत होती है और इस पर बड़े-बड़े काँटे (spines) पाये जाते है। मादा में सभी टाँगे समान होती हैं।
4. **मादा जनन-छिद्र** टाँगों के तीसरे जोड़े के कोक्सा पर भीतर की ओर स्थित होते हैं जबकि **नर जनन-छिद्र** पाँचवी जोड़ी टाँगों के कोक्सा पर स्थित होते है।
5. नर में द्वितीय प्लव-पाद (pleopod) में एण्डोपोडाइट तथा अपैण्डिक्स इण्टरना के बीच **अपैण्डिक्स मैस्क्युलाइना** (appendix masculina) नामक अतिरिक्त प्रवर्ध (additional process) होता है।
6. मादा के उदर खण्डों के **एपिमेरा** (epimera of abdominal segments) नर के एपिमेरा की अपेक्षा बड़े होते हैं।

नर जनन अंग
(Male Reproductive Organs)

प्रॉन के नर जनन अंग निम्नलिखित है :—

1. एक जोड़ी वृषण
2. एक जोड़ी शुक्रवाहिनियाँ
3. एक जोड़ी शुक्राशय

1. वृषण (Testes)—वृपण वक्ष के पिछले भाग में मध्य-पृष्ठ (mid dorsal) रेखा पर हिपेटोपेंक्रियास के ऊपर तथा पैरिकार्डियम के नीचे स्थित होते है। ये आगे की ओर रीनल सैक (renal-sac) तथा पीछे की ओर प्रथम उदर खण्ड तक फैले रहते है। ये सफेद रंग की दो कोमल रचनाएँ हैं जिनके अगले सिरे मिलकर एक हो गये है परन्तु पिछले सिरे एक-दूसरे के बिल्कुल समीप स्थित होते है। दोनों वृपणों के बीच मध्य में खाली स्थान होता है जिसमें से हृदय का कार्डियो-पाइलोरिक स्ट्रैण्ड (cardio-pyloric strand) गुजरता है।

प्रत्येक वृपण बहुत-सी लम्बी, सँकरी, कुण्डलित तथा पतली दीवारों वाली **सेमिनिफेरस नलिकाओं** (seminiferous tubules) का बना होता है जो संयोजी ऊतक में एक साथ पड़ी रहती है। प्रत्येक सेमिफेनिरस नलिका भ्रूणीय एपिथीलियम (germinal epithelium) के एक स्तर द्वारा आस्तारित रहती है। इसकी कोशिकाएं अर्धसूत्रण विधि द्वारा विभाजित होकर शुक्राणुओं का निर्माण करती है। पूर्ण वृद्धि प्राप्त शुक्राणु एक शंक्वाकार रचना है जिसमें गोलाकार शरीर तथा एक छोटी-सी पूंछ होती है। गोलाकार शरीर मे बहुत-सा जीव-द्रव्य तथा एक अर्धचन्द्राकार केन्द्रक होता है।

2. शुक्रवाहिनियाँ (Vasa deferentia)—प्रत्येक वृपण के पिछले भाग की बाहरी सतह से एक बहुत लम्बी तथा सँकरी वाहिनी निकलती है। यह **शुक्र-वाहिनी** कहलाती है तथा दो भागों में विभाजित की जा सकती है। इसका समीपस्थ भाग अत्यधिक कुण्डलित होता है तथा पिछला भाग सीधा होता है। कुण्डलित भाग वृपण के सम्पर्क में रहता है तथा सीधा भाग ऊर्ध्व-तल में उदर की फ्लेक्सर पेशियों (flexor muscles) तथा वक्ष की दीवार के बीच से नीचे की ओर बढ़ता है और भीतर की ओर चलकर अपनी ओर के शुक्राशय में खुलता है।
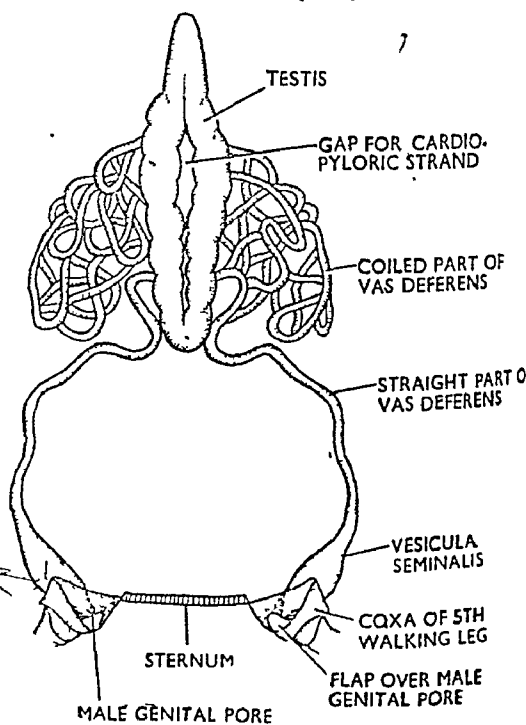
चित्र ७·३६. पैलीमोन के नर जनन अंग
(Male reproductive organs of *Palaemon*)

2. शुक्राशय (Seminal vesicle or vesicula seminalis)—प्रत्येक शुक्रवाहिनी का दूरस्थ भाग पाँचवीं जोड़ी टाँग के कोक्सा के समीप फूल कर शुक्राशय बनाता है। यह मुग्दर के आकार का (club-shaped) होता है। शुक्राशय नर जनन छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। नर जनन छिद्र पाँचवीं टाँग के कोक्सा पर भीतर की ओर स्थित होता है। यह त्वचा के आवरण से ढका रहता है। शुक्राशयों में शुक्राणु एकत्रित रहते हैं।
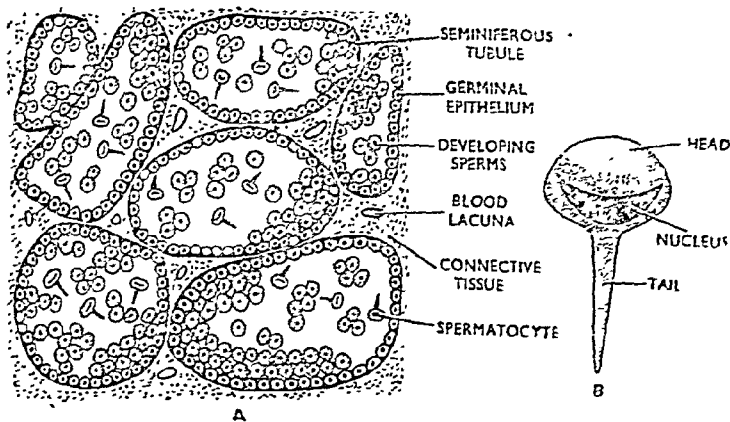
चित्र ७·२७. A. पैलीमोन के वृषण का अनुप्रस्थ काट (T.S. Testis of *Palaemon*)
B. परिपक्व शुक्राणु (Mature sperm)

मादा जनन अंग

मादा जनन अंग निम्नलिखित हैं :—

1. एक जोड़ी अण्डाशय
2. एक जोड़ी अण्डवाहिनियाँ
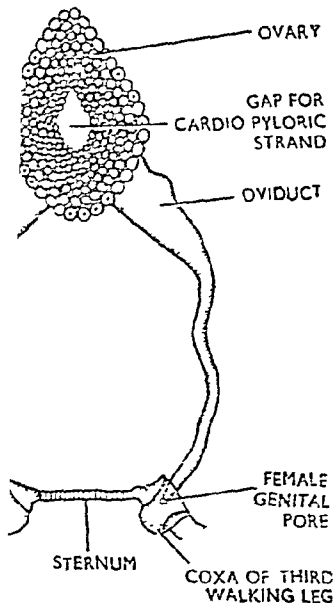
चित्र ७·२८. पैलीमोन के मादा जनन अंग (Female reproductive organs of *Palaemon*)
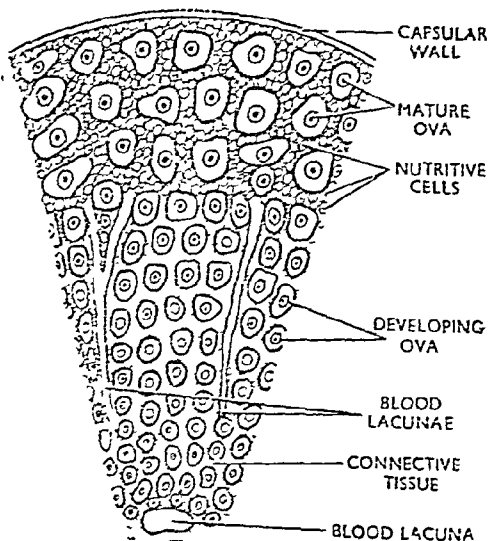
चित्र ७·२९. पैलीमोन के अण्डाशय का अनुप्रस्थ काट (T.S. Ovary of *Palaemon*)

1. अण्डाशय (Ovaries)—मादा में अण्डाशयों की वही स्थिति होती है जो नर में वृषणों की होती है। ये वक्ष के पिछले भाग में मध्य पृष्ठ-तल पर हिपेटो-पैंक्रियास के ऊपर तथा पेरिकार्डियम के नीचे स्थित होते हैं। दोनों अण्डाशयों के सिरे आपस में एक-दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं किन्तु मध्य में अलग-अलग होते हैं। इस खाली स्थान से कार्डियो-पाइलोरिक स्ट्रैण्ड जाता है। जन्तु की आयु तथा जनन-काल के अनुसार अण्डाशयों का परिमाण भिन्न-भिन्न होता है। प्रत्येक अण्डाशय में अण्डों की बहुत-सी अरीय पंक्तियाँ (radial rows) होती हैं। प्रत्येक पंक्ति में अण्डे वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में क्रमानुसार लगे रहते हैं। परिपक्व अण्डे परिधि की ओर होते हैं तथा अपरिपक्व अण्डे केन्द्र की ओर होते हैं। अण्डाशय पर एक झिल्ली के समान आवरण होता है। प्रत्येक अण्डा बड़ी, केन्द्रकयुक्त (nucleated) कोशिका है जिसमें योक अत्यधिक मात्रा में सञ्चित रहता है।

2. अण्डवाहिनियाँ (Oviducts)—प्रत्येक अण्डाशय की बाहरी सतह के लगभग मध्य से एक छोटी, पतली दीवार वाली नलिका निकलती है। यह अण्ड वाहिनी कहलाती है। इसका अगला प्रारम्भिक सिरा चौड़ा होकर ओवीड्युकल फनल (oviducal funnel) बनाता है जो अण्डाशय से चिपका रहता है। अण्डवाहिनी ऊर्ध्व रूप में नीचे की ओर बढ़ती है और मादा जनन-छिद्र द्वारा बाहर को खुलती है। मादा जनन-छिद्र तीसरी टाँग के कोक्सा की भीतर की सतह पर स्थित होता है।

विच्छू
(Scorpion)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	अरेक्निडा (*Arachnida*)
आर्डर	—	स्कोर्पिओनिडा (*Scorpionida*)
जीनस	—	स्कोर्पियन या विच्छू (*Palamnaeus*)

प्रश्न 56. विच्छू की वाह्य विशेषताओं का वर्णन करिये।
Describe the external features of scorpion.

(*Jiwaji 1968 ; Gorakhpur 1961, 68*)

विच्छू पतले शरीर वाला जन्तु है। यह रात्रिचर (nocturnal), माँसभक्षी (carnivorous) तथा परभक्षी (predaceous) प्राणी है जो सूखे तथा मरुस्थलीय भागों में अधिकता से पाया जाता है। यह बहुत समय तक भूखा रह सकता है किन्तु कुछ समय पश्चात् यह अपने ही साथियों को खाना प्रारम्भ कर देता है। यह स्वजातिभक्षण (cannibalism) कहलाता है।

वाह्य विशेषताएँ
(External Features)

आकार तथा परिमाण (Shape and size)—विच्छू का शरीर लम्बा, चपटा तथा खण्डयुक्त होता है। इसकी लम्बाई 1/2 इन्च से 6 इन्च तक हो सकती है।

रंग (Colouration)—जन्तु के शरीर का रंग अधिकतर उसके चारों ओर के वातावरण पर निर्भर करता है तथा चमकीले काले रंग से पीला तक हो सकता है। पृष्ठ सतह का रंग अवरतल की अपेक्षा गहरा होता है।

वाह्य संरचना (External structure)—शरीर दो भागों में बँटा रहता है जो क्रमशः प्रोसोमा (prosoma) तथा ऑपिस्थोसोमा (opisthosoma) कहलाते हैं।

(*i*) **प्रोसोमा** (Prosoma)—यह शरीर का अगला, चपटा तथा चौड़ा भाग है जो सिर तथा वक्ष के मिलने से बनता है जिसमें एक **प्री-ओरल** (pre-oral) तथा छः **पोस्ट-ओरल** (post-oral) खण्डों का समेकन होता है। अवरतल पर छः पोस्ट-

चित्र ८·१. विच्छू का पृष्ठ दृश्य
(Dorsal view of *Scorpion*)
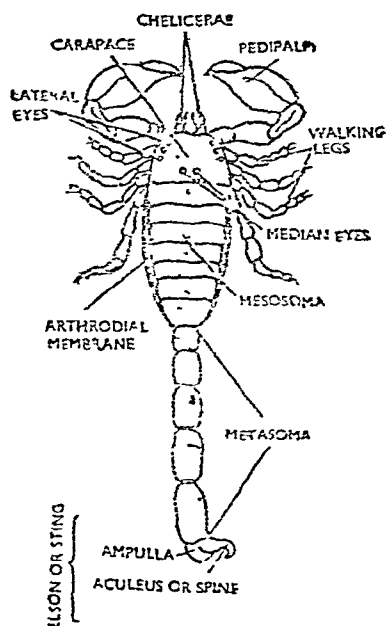
ओरल खण्डों की उपस्थिति छः जोड़ी उपांगों द्वारा जानी जाती है। पृष्ठ तल पर प्रोसोमा एक बड़े खोल के समान वाह्य-कंकाल (exoskeleton) से ढकी रहती है जो लगभग चौकोर होती है और कैरापेस (carapace) अथवा शिरोवक्ष खोल (cephalothoracic shield) कहलाती है। अगले सिरे पर यह एक मध्य खांच (median notch) द्वारा दाएँ तथा वाएँ ललाट पिण्डों (frontal lobes) में बँटी
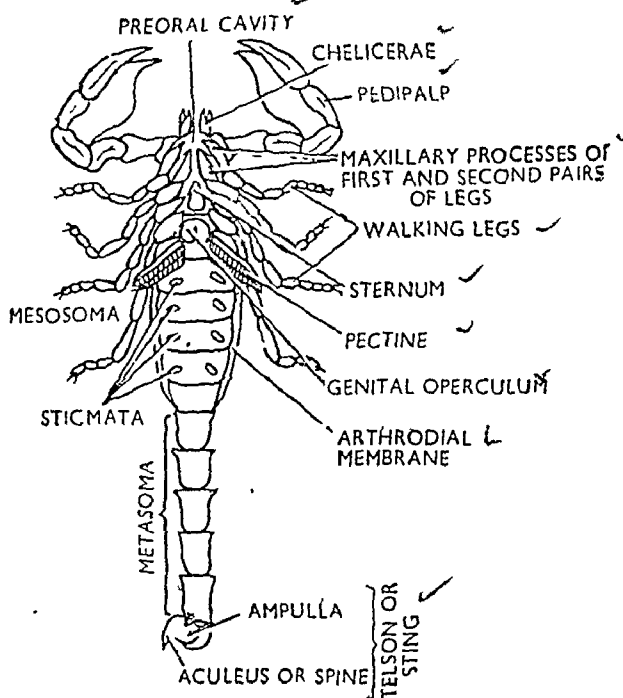
चित्र ८·२. विच्छू का अधर दृश्य (Ventral view of *Scorpion*)

रहती है। एक जोड़ी मध्य नेत्र पृष्ठचर्म के मध्य में तथा 2 से 5 तक पार्श्व नेत्र अगले पार्श्व किनारों के साथ देखे जा सकते हैं। समस्त नेत्र सरल होते हैं। शिरोवक्ष के अधरतल (ventral surface) पर एक छोटी-सी त्रिकोणाकार चपटी रचना होती है जो **स्टरनम** (sternum) कहलाती है। यह शिरोवक्ष की मध्य रेखा में तीसरी तथा चौथी जोड़ी टाँगों के बीच स्थित होती है। प्रोसोमा के अधर तल से एक जोड़ी **केलिसेरी** (chelicerae), एक जोड़ी **पेडिपाल्प** (pedipalps) तथा चार जोड़ी **टाँगें** निकलती है।

(*ii*) **ऑपिस्थोसोमा** (Opisthosoma)—यह शरीर का लम्बा खण्डयुक्त पिछला भाग है जो अन्य जन्तुओं के उदर के तुल्य होता है। इसका अगला चौड़ा भाग **मीसोसोमा** (mesosoma) या **अग्र-उदर** (pre-abdomen) तथा पिछला सँकरा भाग **मेटासोमा** (metasoma) या **पश्च-उदर** (post-abdomen) कहलाता है।

मीसोसोमा सात खण्डों का बना उदर का वह चौड़ा भाग है जो आगे की ओर चौड़ा तथा पीछे की ओर सँकरा होता है। इसमें उपांग नहीं होते परन्तु प्रत्येक खण्ड के चारों ओर वाह्य-कंकाल का बना एक छल्ला-सा होता है जो **स्क्लेराइट** (sclerite) कहलाता है। प्रत्येक स्क्लेराइट एक पृष्ठ प्लेट, **टरगम** (tergum) तथा अधर प्लेट, **स्टरनम** का बना होता है। टरगम तथा स्टरनम आर्थ्रोडियल झिल्ली

द्वारा जुड़ी रहती हैं। मीसोसोमा के अधर तल पर निम्नलिखित रचनाएँ पायी जाती हैं :—

(अ) जनन-छदिका (Genital operculum)—यह जनन-छिद्र के ऊपर स्थित छोटी-सी लगभग गोल तथा चपटी द्विखण्डित (bifid) प्लेट के समान रचना है जो प्रथम मीसोसोमेटिक खण्ड में मध्य अधर तल पर पायी जाती है। यह जनन-छिद्र की रक्षा करती है।

(ब) एक जोड़ी पेक्टिन (A pair of pectines)—ये द्वितीय मीसोसोमेटिक खण्ड में पाये जाते हैं। प्रत्येक पेक्टिन की रचना कंघे के आकार की (comb-like) होती है। इनमें तीन खण्ड वाला शेफ्ट या हैण्डिल (shaft or handle) होता है जिसकी पिछली सतह पर कंघे के दाँतों के समान 4 से 36 तक सँकरे चलनशील (narrow, movable) शल्क लगे रहते हैं। पेक्टिन स्पर्श-संवेदी तथा घ्राण-संवेदी (tactile and olfactory) होते हैं। नर में ये अपेक्षाकृत बड़े तथा मादा में विशेष रूप से परिवर्तित होते है।

(स) स्टिगमेटा (Stigmata)—ये तिरछी झिर्री के समान (oblique, slit-like) छिद्र हैं जो तीसरे से छठे मीसोसोमेटिक खण्डों में अधर-पार्श्व तल पर स्थित होते हैं ; अतः इनके कुल चार जोड़े होते हैं। इनके द्वारा बुक-लंग (book-lungs) शरीर के बाहर खुलते हैं।

मेटासोमा (metasoma) लगभग बेलनाकार होती है तथा पाँच खण्डों में बँटी रहती है। यह बहुधा मीसोसोमा के ऊपर उठी रहती है और भ्रम से पूँछ कहलाती है। मेटासोमा का प्रत्येक खण्ड क्राइटिन के बने बाह्य-कंकाल के पूर्ण छल्ले से ढका रहता है।

(*iii*) **पुच्छ** (Telson)—अन्तिम मेटासोमेटिक खण्ड पर छोटी-सी पुच्छ के समान रचना होती है। इनका चौड़ा फूला हुआ आधार भाग **एम्पुला** (ampulla) कहलाता है। इस पर एक नुकीला तथा मुड़ा हुआ स्पाइन या **एक्युलियस** (spine or aculeus) होता है। एम्पुला के भीतर एक जोड़ी **विष ग्रन्थियाँ** (poison glands) स्थित रहती है जो एक जोड़ी सूक्ष्म छिद्रों द्वारा स्पाइन के स्वतन्त्र सिरे पर खुलती हैं। स्पाइन खोखला होता है और इंजेक्शन लगाने वाली सुई की भाँति कार्य करता है।

प्रश्न 57. विच्छू के उपांगों का वर्णन करिये।

Give an account of appendages of scorpion.

उपांग (Appendages)

विच्छू के शिरो-वक्ष प्रदेश में 6 जोड़ी उपांग होते हैं—एक जोड़ी **केलीसेराई** (chelicerae), एक जोड़ी **पेडिपाल्पी** (pedipalpi) तथा चार जोड़ी **चलने वाले पाद** (walking legs)।

1. केलीसेराई (Chelicerae)—ये सबसे आगे की ओर स्थित छोटे व मुखपूर्व (pre-oral) उपांग हैं जो मुख के प्रत्येक ओर पार्श्व में एक-दूसरे के अति निकट स्थित होते हैं। ये क्रस्टेशियन्स के दूसरी जोड़ी के एन्टिनी के समजात होते हैं। प्रत्येक केलीसेरा एक छोटी, तीन खण्डीय व कीलेट संरचना है।

(*i*) **आधारी या प्रथम खण्ड** (Basal or first segment)—यह छोटा, त्रिभुजाकार व वलय-के समान रचना है जो केरापेस के नीचे ढका रहता है।

(*ii*) **द्वितीय खण्ड** (Second segment)—यह वड़ा व शून (swollen) खण्ड है जिसका भीतरी सिरा अन्दर की ओर एक नुकीले व दन्तुर प्रवर्ध के रूप मे
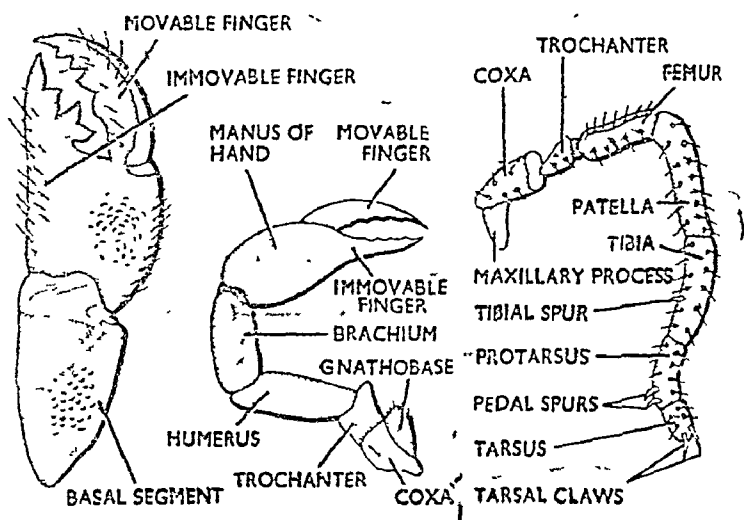
चित्र ८·३. विच्छू के उपांग (Appendages of (*Scorpion*)
(A) केलीसेरा (Chelicera) ; (B) पेडीपाल्प (Pedipalp) ;
(C) प्रथम चलने वाले पाद (First walking leg)

निकला रहता है जो केला (chela) की **अचल अंगुली** (immovable finger) वनाता है।

(*iii*) **तृतीय खण्ड** (Third segment)—यह द्वितीय खण्ड के वाहर की ओर से विकसित होता है। यह भी मुड़ा हुआ व दन्तुर होता है और केला (chela) की **चल अंगुली** (movable finger) वनाता है।

केलीसेराई विच्छू के परिग्राही उपांग हैं जो शिकार को पकड़ कर उसे फाड़ने के उपयुक्त होते हैं।

2. **पेडीपाल्पी** (Pedipalpi)—ये केलासेराई के पीछे स्थित द्वितीय जोड़ी उपांग हैं। ये वड़े, मुखपश्च (postoral) व नखर के समान उपांग हैं। ये विच्छू के विशिष्ट उपाग है। प्रत्येक पेडीपाल्प में 6 खण्ड होते हैं—**कॉक्सा** (coxa), **ट्रोकेण्टर** (trochanter), **ह्यूमरस** (humerus), **ब्रेकियम** (brachium), **मेनस** (manus) तथा **चल अंगुली** (movable finger)।

कॉक्सा (Coxa)—यह आधार खण्ड है जिस पर मुख की ओर ब्लेड के समान एक प्रवर्ध होता है जिसे **नैथोवेस** (gnathobase) कहते है। दोनों ओर के नैथोवेस मुख-पूर्व गुहा में आरे की भाँति निकले रहते है और शिकार को निष्पीड़ित करने में सहायता करते हैं।

ट्रोकेण्टर एवम् ह्यूमरस (Trochanter and humerus)—ट्रोकेण्टर कॉक्सा के आगे स्थित एक छोटा खण्ड है। इसके अनुदैर्घ्य अक्ष के समकोण एक सुगठित व शक्तिशाली ह्यूमरस होता है।

ब्रेकियम (Brachium)—यह ह्यूमरस के ऊपर स्थित होता है और आगे की ओर उन्मुख रहता है।

मेनस एवं चल अंगुली (Manus and movable finger)—मेनस सर्वाधिक बड़ा खण्ड है। यह चल अंगुली के साथ एक शक्तिशाली केला बनाता है जो इसके बाहर की ओर चल रूप से जुड़ा रहता है। चल व अचल अंगुलियों के दाँतेदार सिरे शिकार को पकड़ने में सहायता करते हैं।

3. चलने वाले पाद (Walking legs)—शिरोवक्ष (cephalothorax) से जुड़े हुए चार जोड़ी चलने वाले पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में 7 खण्ड या पोडोमीयर्स (podomeres) होते हैं—**कॉक्सा** (coxa), **ट्रोकेण्टर** (trochanter), **फीमर** (femur), **पटेला** (patella), **टिबिया** (tibia), **प्रोटारसस** (protarsus) तथा **टारसस** (tarsus)। प्रथम व द्वितीय जोड़ी पादों के कॉक्सी चल होते हैं और प्रत्येक में आगे की ओर एक त्रिभुजाकार **मैक्सिलरी प्रवर्ध** (maxillary process) या **नैथोवेस** उन्मुख रहता है। प्रथम जोड़ी के पादों के कॉक्सी पृथक् रहते हैं जबकि दूसरी जोड़ी के कॉक्सी एक-दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं। तीसरी व चौथी जोड़ी पादों के कॉक्सी अचल होते हैं, मैक्सिलरी प्रवर्धों का अभाव होता है और स्टरनम द्वारा दूसरी ओर के संगत कॉक्सी से पृथक् रहते हैं।

ट्रोकेण्टर छोटा, सुदृढ़ व चल होता है। इसके आगे की ओर फीमर होता है जो लम्बा व सीधा खण्ड है और ऊपर व बाहर की ओर गति करता है। **पटेला** भी लम्बा होता है। यह नीचे की ओर गति करता है। **टिबिया** लम्बा होता है और इसके दूरस्थ सिरे पर **टिबिअल स्पर** (tibial spur) होता है। **प्रोटारसस** पर एक जोड़ी गहरे रंग के नख-के समान **पीडल स्पर** (pedal spurs) होते हैं। **टारसस** में तीन चल व वक्रिक नखर होते हैं—दो **उच्च** (superior) तथा एक **निम्न** (inferior)। निम्न नखर के टूटने-फूटने के कारण केवल दो उच्च नखर ही दिखायी देते हैं।

प्रश्न 58. बिच्छू की आहार नाल, पोषण विधि एवं पाचन का वर्णन करिये।

Describe the alimentary canal, mechanism of feeding and digestion in Scorpion.

1. आहार नाल (Alimentary Canal)

बिच्छू की आहार नाल समान मोटाई की एक सीधी नलिका है जो मुख से गुदा द्वार तक फैली रहती है। इसमें चार प्रदेश स्पष्ट होते हैं—**मुखपूर्व गुहा** (pre-oral cavity), **अग्रांत्र** (foregut), **मध्यांत्र** (midgut) तथा **पश्चांत्र** (hindgut)।

1. मुखपूर्व गुहा (Pre-oral cavity)—यह एक विस्तृत गुहा है जो मुख के सामने की ओर प्रथम चार जोड़ी पादों के कॉक्सी से बनती है। इसके पृष्ठ तल की ओर दो केलीसेराई (chelicerae) तथा एक माध्यिक **रॉस्ट्रम** (rostrum) या लेब्रम (labrum), पार्श्व में पेडीपाल्पी के **कॉक्सी** (coxae) तथा अवर तल पर चलने वाले दो जोड़ी पादों के **मैक्सिलरी प्रवर्ध** (maxillary processes) होते हैं।

2. अग्रांत्र या स्टोमोडियम (Foregut or stomodaeum)—इसमें मुख, ग्रसनी (pharynx) तथा ग्रसिका/ग्रासनली (oesophagus) सम्मिलित हैं। यह क्यूटिकल द्वारा स्तरित होती है। मुख मुखपूर्व गुहा के पीछे रॉस्ट्रम के आधार पर एक छोटे, संकीर्ण, व अनुप्रस्थ छिद्र के रूप में होता है। मुख ग्रसनी में खुलता है। इसमें से होकर केवल रस व गूदेदार पदार्थ ही अन्दर प्रवेश कर सकते हैं।

ग्रसनी (Pharynx) एक बड़ी, नाशपाती के समान तथा पेशीय संरचना है जो मुख के नीचे तिरछी स्थित होती है। इसकी दीवार से शिरोवक्ष तक अरीय पेशियों के अनेक पूलों की उपस्थिति के कारण इसकी दीवारें अत्यधिक लचीली होती हैं। पेशियों के कारण ग्रसनी एक चूषक अंग का कार्य करती है जिससे तरल भोजन मुख में से होकर अन्दर चूस लिया जाता है।

ग्रसिका/ग्रासनली (oesophagus) एक छोटी व सँकरी नलिका है जो ग्रसनी की अधर-पार्श्व दीवार से विकसित होती है। यह नर्व-रिंग में से होकर आमाशय मे खुलती है। आमाशय में कुछ अन्दर तक निकल कर यह
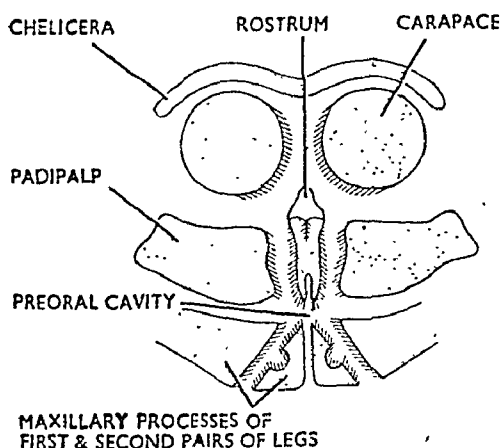
चित्र ८·४. बिच्छू—मुखपूर्व गुहा से अनुप्रस्थ सेक्शन (Scorpion—T.S. through the pre-oral cavity)

चित्र ८·५. बिच्छू की आहार नाल (Alimentary canal of scorpion).

स्लीव वाल्व (sleeve valve) बनाती है जो भोजन को वापस ग्रसनी में आने से रोकता है।

3. मध्यांत्र या मेसैण्ट्रॉन (Midgut or mesenteron)—इसमें **आमाशय, आंत्र** व **पाचन ग्रन्थियाँ** सम्मिलित हैं। यह अन्दर की ओर **एपिथीलियम** द्वारा स्तरित होती है। ग्रास नली पीछे की ओर एक छोटे, विस्फारी (dilated) व पतली भित्ति के बने **आमाशय** में खुलती है। आमाशय शिरोवक्ष (cephalothorax) प्रदेश में स्थित होता है और डायाफ्राम तक फैला रहता है। शिरोवक्ष प्रदेश में एक त्रिपालिमय व भूरे रंग की ग्रन्थि होती है जो आमाशय में खुलती है। **Huxley** ने इसे लार ग्रन्थि (salivary gland) की संज्ञा दी किन्तु **Blanchard** तथा **Pavlovsky** ने इसे **आमाशय-ग्रन्थि** (stomach gland) की संज्ञा दी।

आंत्र आहार नाल का सर्वाधिक लम्बा भाग है। यह डायाफ्राम से उदर खण्ड तक फैली रहती है और पीछे की ओर पश्चांत्र में खुलती है। यह एक चौड़ी नली है जिसकी दीवारें ग्रन्थिल होती हैं। यह **अग्रोदर** (preabdominal) व **पश्चोदर** (postabdominal) भागों में भिन्नित होती है। इन दोनों भागों के मिलन स्थल

पर एक संकीर्णन होता है जहाँ से दो जोड़ी सँकरी व लम्बी **मैलपीगी नलिकाएँ** (Malpighian tubules) निकली रहती हैं। इनका कार्य स्रावी होता है।

एक बड़ी, पालिमय व भूरे रंग की ग्रंथि हेपेटोपैंक्रियास (hepatopancreas) समस्त अग्रोदर (preabdominal) गुहा में फैली रहती है। हृदय इसकी मध्य-पृष्ठ खाँच में स्थित होता है तथा आंत्र व अन्य आंतरांग इसमें सम्मिलित रहते हैं। हेपेटोपैंक्रियास एक रेसीमोस (racemose) ग्रन्थि है जिससे पाँच जोड़ी पार्श्व सँकरी **यकृतीय वाहिनियाँ** (hepatic ducts) निकल कर आंत्र में खुलती हैं। इसके यकृतीय कार्य के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान नहीं है किन्तु अनुमान है कि यह पाचक रसों के स्राव के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्य भी करती है।

4. **पश्चांत्र या प्रोक्टोडीयम** (Hindgut or proctodaeum)—यह आहार नाल का सबसे छोटा भाग है जो अन्तिम मेटासोमेटिक् खण्ड में स्थित होता है। इसकी भीतरी सतह पर काइटिन का स्तर होता है। यह टेल्सन के आधार पर **गुदा-द्वार** (anal aperture) द्वारा बाहर खुलती है।

2. भोजन एवं पोषण विधि (Food and Feeding Mechanism)

विच्छू मांसभक्षी व शिकारी प्राणी है। यह कीट व मकोड़ों जैसे छोटे जीवों का भक्षण करता है। यह शिकार को शक्तिशाली कीलेट पेडीपाल्पी द्वारा पकड़ कर डंक से इसे पक्षाघात कर देता है। पेडीपाल्पी मृत शिकार को केलीसेरी को पहुँचा देते हैं जो शिकार को चीर-फाड़ते हैं। अब भोजन मुखपूर्वगुहा को स्थानान्तरित हो जाता है और इसके तरल पदार्थ पेशीय ग्रसनी द्वारा चूस लिये जाते हैं। पोषण अत्यंत धीमी गति से होता है और एक कॉकरोच को खाने में विच्छू को 2 घण्टे से भी अधिक समय लगता है। विच्छू लगातार कई माह तक भूखा रह सकता है। इनमें **स्वजाति-भक्षण** (cannibalism) भी होता है और ये अपने से छोटे विच्छुओं का शिकार करके खा जाते हैं।

3. पाचन (Digestion)

मुखपूर्व गुहा में भोजन को चीर-फाड़ कर इसकी लुगदी बनायी जाती है और प्रथम दो जोड़ी पादों के मैक्सिलरी प्रवर्धों में स्थित **एल्विओलर ग्रन्थियों** (alveolar glands) के स्राव से इसका आंशिक पाचन होता है। आमाशय में आंशिक रूप से पचे भोजन में **आमाशयिक ग्रन्थि** (stomach gland) का स्राव मिलता है जिसमें *amylase*, *trypsin* तथा *lipase* एन्जाइम होते हैं। पचा हुआ भोजन आंत्र द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है तथा अपचा भोजन गुदा-द्वार द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।

प्रश्न 59. विच्छू के रुधिर-परिवहन तन्त्र का वर्णन कीजिये।

Give an account of the blood vascular system of Scorpion.

विच्छू का रुधिर परिवहन तन्त्र खुला व सुविकसित होता है और इसमें हृदय, **पेरिकार्डियम, शिराएँ, साइनस व धमनियाँ** होती हैं।

1. **हृदय एवम् पेरिकार्डियम** (Heart and pericardium)—हृदय एक लम्बी व पेशीय संरचना है जो पूर्वोदर खण्डों में टरगा के नीचे हेपेटोपैंक्रियास की माध्यिक-पृष्ठ खाँच में स्थित होता है। हृदय उथले संकीर्णनों द्वारा आंशिक रूप से सात स्पष्ट कक्षों में विभाजित रहता है। प्रत्येक कक्ष में इसके पृष्ठ-पार्श्व में एक जोड़ी कपाटीय छिद्र **ऑस्टिया** (ostia) होते हैं जिनके द्वारा यह पेरीकार्डियल गुहा

से सम्बन्धित होता है। हृदय की संकुचक गतियाँ इसकी पेशीय दीवारों के कारण होती हैं।

हृदय लिगामेण्ट्स (ligaments) द्वारा एक महीन भित्ति के झिल्लीनुमा पेरिकार्डियम में बन्द रहता है। लिगामेण्ट्स पेरिकार्डियम गुहा को चार कक्षों (एक पृष्ठ, एक अवर तथा दो पार्श्व) में विभाजित करती हैं।

2. धमनियाँ (Arteries)—हृदय आगे की ओर अग्र आयोर्टा (anterior aorta) से तथा पीछे की ओर पश्च आयोर्टा (ventral aorta) में संतत रहता है। हृदय के प्रत्येक कक्ष से एक जोड़ी पार्श्व सिस्टेमिक धमनियाँ (systemic arteries) विकसित होती हैं।
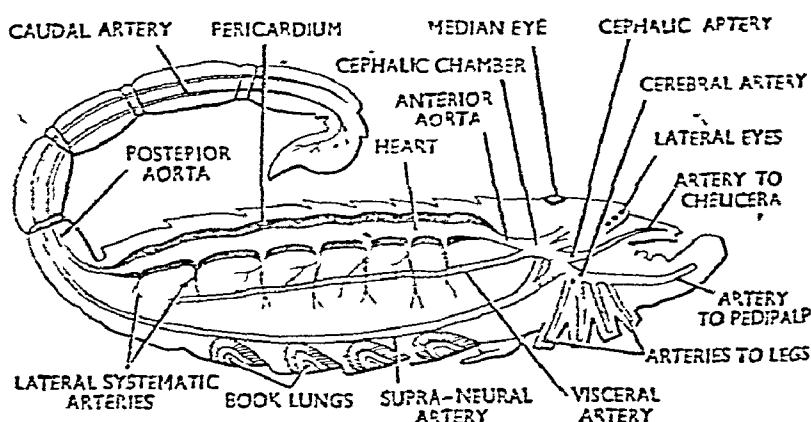
चित्र ८·६. बिच्छू का परिवहन तन्त्र (Circulatory system of Scorpion)

(*i*) अग्र आयोर्टा (Anterior aorta)—यह हृदय के प्रथम कक्ष के अग्रिम सिरे से विकसित होकर आहार नाल की पृष्ठ सतह के साथ आगे की ओर चलता है। इससे शरीर के विभिन्न भागों को निम्नलिखित शाखाएँ जाती हैं :—

(*a*) आंत्र व हेपेटोपैंक्रियास को एक जोड़ी छोटी अतरंग धमनियाँ (visceral arteries)।

(*b*) डायाफ्राम में से निकलने के बाद अग्र आयोर्टा मस्तिष्क के ठीक पीछे एक कक्ष के रूप में फैल जाता है और इससे एक जोड़ी अवर-पार्श्व धमनियाँ (ventro-lateral) निकलती हैं। ये ग्रासनली के चारों ओर से होती हुई अवर तल पर मिलकर एक सुप्रान्यूरल वाहिनी (supraneural vessel) बनाती हैं। यह अवर नर्व-कॉर्ड के ऊपर से पीछे की ओर जाती है। यह अवर नर्व-कॉर्ड तथा अवर पेशियों को रुधिर पहुँचाती है।

(*c*) सिर व वक्ष उपांगों को युग्मित धमनियाँ (paired appendages)।

(*ii*) पश्च आयोर्टा (Posterior aorta)—पीछे की ओर हृदय एक पश्च आयोर्टा (posterior aorta) या कॉडल धमनी (caudal artery) में संतत रहता है। यह आहार नाल के पृष्ठ तल के साथ पीछे की ओर चल कर आंत्र, पेशियों तथा टेल्सन को रुधिर संभरणित करता है। टेल्सन में वह विष ग्रन्थियों में समाप्त हो जाता है।

(*iii*) **सिस्टेमिक धमनियाँ** (Systemic arteries)—हृदय के प्रत्येक कक्ष से पार्श्व में एक जोड़ी सिस्टेमिक धमनियाँ विकसित होती हैं। ये वारम्वार विभाजित होकर एक जालक बनाती हैं और पश्चोद भाग के विभिन्न अंगों को रुधिर संभरणित करती हैं।

3. साइनस या विवर (Sinuses)—धमनियों की शाखाएँ अन्त में अतंरंग (viscera) में पहुँचकर छोटे-छोटे लैकुनी (रिक्तिकाओं) में खुलती हैं। लैकुनी से रुधिर बड़े **साइनसों** (sinuses) द्वारा एकत्रित कर लिया जाता है। बिच्छू में इस प्रकार के पाँच साइनस होते हैं—पेरिकार्डियल साइनस के ऊपर स्थित एक **पृष्ठ साइनस** (dorsal sinus), शरीर के अधर तल पर स्थित एक बड़ा **अधर साइनस** (ventral sinus), शरीर के दोनों ओर पार्श्व में एक जोड़ी **पार्श्व साइनस** (lateral sinuses) तथा आहार नाल के चारों ओर स्थित एक **पेरिविसरल साइनस** (perivisceral sinus)।

4. पल्मोनरी शिराएँ (Pulmonary veins)—प्रत्येक जोड़ी बुक-लंग (book lungs) से ऑक्सीकृत रुधिर एक जोड़ी **पल्मोनरी शिराओं** द्वारा पेरिकार्डियल साइनस में वापस आता है।
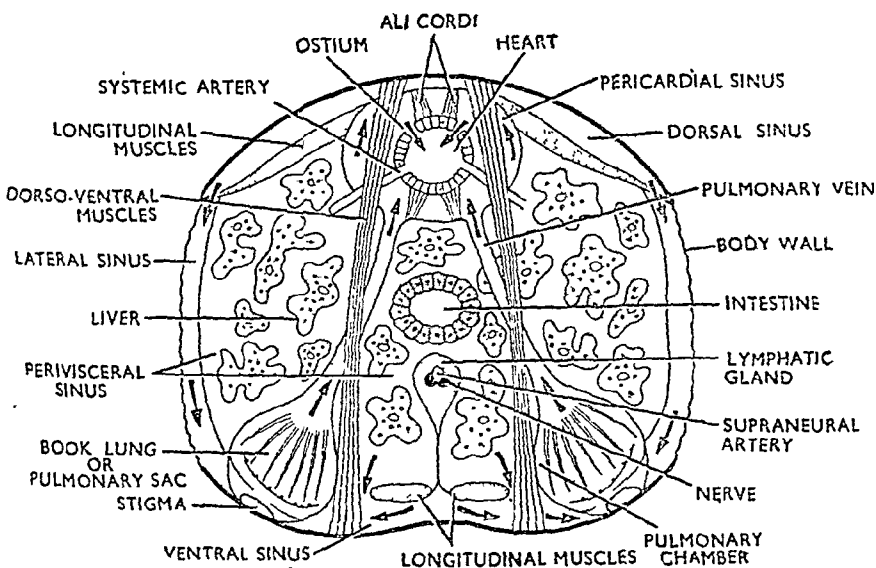
चित्र ८·७. बिच्छू—साइनसों व रुधिर परिवहन पथ के प्रदर्शन हेतु शरीर के मध्य से अनुप्रस्थ सेक्शन (Scorpion—T.S. *through middle region of body showing sinuses and the* course of circulation)

रुधिर (Blood)—बिच्छू का रुधिर रंगहीन व कुछ नीलापन लिये होता है। इसमें केन्द्रकयुक्त अनेक **ल्यूकोसाइट्स** (leucocytes) होते हैं। रुधिर का नीलापन एक श्वसन रंजक **हीमोसाएनिन** (haemocyanin) के प्लाज्मा में घुले होने के कारण होता है।

परिवहन पथ (Course of Circulation)

लिगामेण्ट्स के आकुंचन से हृदय की गुहा फैल जाती है जिससे पेरिकार्डियल

गुहा में स्थित रुधिर ओस्टिया में से होकर हृदय में पहुँचता है। हृदय के सं ओस्टिया बन्द हो जाते हैं और अग्र व पश्च आयोर्टा तथा सिस्टेमिक धमनियों द्वारा रुधिर शरीर के विभिन्न अंगों को पम्प कर दिया जाता है। शरीर का अशुद्ध रुधिर अधर साइनस में एकत्रित होता है। अधर साइनस में रुधिर बुक-लंग (book lungs) को भेज दिया जाता है तथा ऑक्सीकृत रुधिर पल्मोनरी शिराओं द्वारा पेरिकार्डियल साइनस में और यहाँ से ओस्टिया द्वारा हृदय में पहुँचता है।

विच्छू का रुधिर परिवहन पथ (Course of circulation of blood in *Scorpion*)
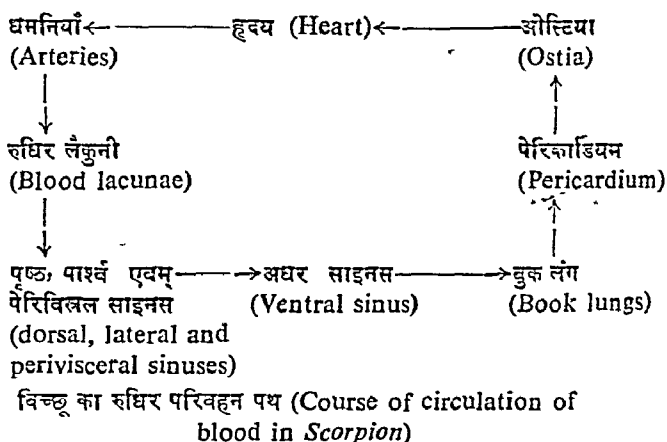
प्रश्न 60. विच्छू के उत्सर्जी अंगों का वर्णन करिये।
Describe the excretory organs of Scorpion.

विच्छू के उत्सर्जी अंग
(Excretory Organs of Scorpion)

विच्छू के उत्सर्जी अंग निम्नलिखित हैं :—

1. एक जोड़ी कॉक्सल ग्रन्थियाँ (A pair of coxal glands)
2. दो जोड़ी माल्पीघियन नलिकाएँ (Two pairs of Malpighian tubules)
3. हिपेटोपेंक्रियास (Hepatopancreas)

1. कॉक्सल ग्रन्थियाँ—ये एक जोड़ी चमकीली सफेद रचनाएँ हैं जो प्रोसोमा में पार्श्व तल पर स्थित होती हैं। ये लारवा के शरीर के पाँचवें खण्ड में पायी जाने वाली सीलोमोडक्ट के रूपान्तरण से बनती हैं।

प्रत्येक कॉक्सल ग्रन्थि में तीन भाग होते हैं :—

1. एण्ड सैक (End sac)
2. लेबिरिन्थ (Labyrinth)
3. ब्लैडर (Bladder)

1. एण्ड सैक—यह बड़ी थैलेनुमा रचना है जो कॉक्सल ग्रन्थि के केन्द्र में स्थित होती है।

2. लेबिरिन्थ—यह लम्बी मुड़ी हुई नलिका है जो एण्ड सैक से निकलकर ब्लैडर में खुलती है।

3. ब्लैडर—यह लेबिरिन्थ का सिर भाग है जो फूलकर चौड़ा हो जाता है और संग्राहक का कार्य करता है। यह एक सूक्ष्म छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है।

यह छिद्र 5वें पाद के कोक्सा की पिछली सतह पर स्थित होता है।

विच्छू की कॉक्सल ग्रन्थि को क्रस्टेशिया की ग्रीन ग्रन्थि या एण्टीनरी ग्रन्थि के समान माना जाता है। इसकी गुहा में यूरेट के मणिभ भी पाये गये है। इसी आधार पर इसको उत्सर्जी अंग माना जाता है।
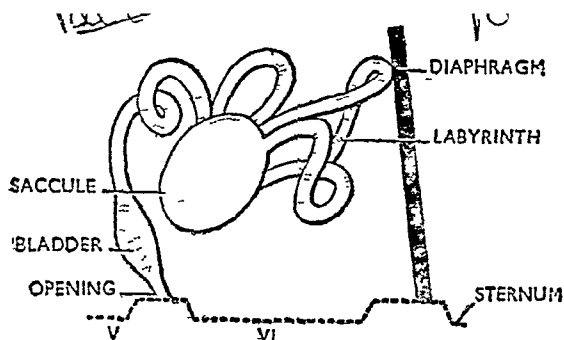
चित्र ८८. विच्छू की कॉक्सल ग्रन्थि
(Coxal gland of *Scorpion*)

2. माल्पीघियन नलिकाएँ—विच्छू में माल्पीघियन नलिकाओं के दो जोड़े पाये जाते हैं जो मीसोसोमा मे आंत्र के अग्र उदर तथा पश्च उदर भागों के जोड़ पर स्थित होते हैं। इनका आन्तरिक स्तर एण्डोडर्म का वना होता है। इनके स्वतन्त्र वन्द सिरे रुधिर में पड़े होते है जहाँ से ये नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों को अलग कर आंत्र की गुहा मे डाल देते हैं।

3. हिपेटोपेंक्रियास—पैव्लोवेस्की (Pavlovsky) के अनुसार हिपेटोपेंक्रियास भी उत्सर्जन का कार्य करता है। अमीनोकारमीन के देहगुहा में पहुँचने पर यह देखा गया है कि इसकी कणिकाएँ हिपेटोपेंक्रियास में लाल रंग की कणिकाओं के रूप मे एकत्रित हो जाती हैं।

प्रश्न 61. विच्छू में श्वसन कार्य करने वाले अंगों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the parts that subserve respiration in Scorpion. (*Agra 1954, 57, 59, 60*)

विच्छू के श्वसन अंगों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the respiratory organs of Scorpion. (*Agra 1966*)

विच्छू में श्वसन-क्रिया का वर्णन कीजिये।

Describe respiration in the Scorpion. (*Patna 1966*)

विच्छू के श्वसन अंग क्यूटिकल की वनी चार जोड़ी, थैले के समान रचनाएँ होती हैं जो **फुफ्फुस** कोष (pulmonary sacs) या **बुक-लंग** (book-lungs) कहलाते हैं। इनका एक-एक जोड़ा मीसोसोमा के तीसरे से छठे खण्ड तक पाया जाता है। ये शरीर के पार्श्व किनारों पर स्थित होते है।

पल्मोनरी कोष की रचना (Structure of Pulmonary Sac or Book-lung)

प्रत्येक पल्मोनरी कोष दो भागों में वँटा रहता है जो एट्रियल कक्ष (atrial chamber) तथा पल्मोनरी कक्ष (pulmonary chamber) कहलाते हैं।

1. एट्रियल कक्ष (Atrial chamber) यह पल्मोनरी कोष का समीपस्थ या अधर (proximal or ventral) भाग है। यह छोटा तथा ऊपर से नीचे की ओर दवा हुआ (dorso-ventrally compressed) होता है। इसमे वायु भरी रहती है। समीपस्थ सिरे पर यह एक सँकरी व तिरछी दरार (oblique slit) के समान छिद्र द्वारा वाहर को खुलता है। यह छिद्र **पल्मोनरी** छिद्र (opening of pulmonary sac) या **स्टिगमेटा** (stigmata) कहलाता है। यह मीसोसोमा में

स्टरनम के अधर तल पर पार्श्व किनारे (lateral margin) के साथ स्थित होता है। एट्रियल कक्ष की छत में सूक्ष्म छिद्रों की एक पंक्ति होती है। ये छिद्र **ऑस्टिया** (ostia) कहलाते हे। ये एक-दूसरे के समान्तर स्थित होते है। इन छिद्रों द्वारा एट्रियल कक्ष पल्मोनरी कक्ष के इण्टरलेमिलर वायु-कोषों (interlamellar air-spaces) से सम्बन्धित होता है।
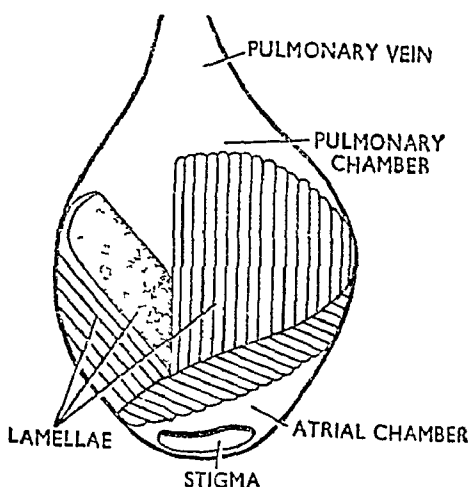
चित्र ८·१. विच्छू का एक पल्मोनरी कोष (Pulmonary sac of *Scorpion*)

2. पल्मोनरी कक्ष (Pulmonary chamber)—यह पल्मोनरी कोष का ऊपरी दूरस्थ बड़ा भाग है जो लगभग अण्डाकार कक्ष होता है। इसकी गुहा मे लगभग 150 लैमेली (lamellae) होते है। ये खड़े उभारों (vertical folds) के रूप मे होते हैं और कक्ष की पिछली सतह से जुड़े रहते है। लैमेली पुस्तक मे पृष्ठों के समान (like the leaves of a book) एक-दूसरे के समान्तर लगे होते हैं। प्रत्येक लैमेली क्यूटिकल की दो पतली पर्तो की खोखली रचना होती है जिनके बीच का स्थान **इण्ट्रालैमेलर** (intralamellar) स्थान कहलाता है और इनमे रक्त भरा रहता है। दो संलग्न लैमेली के बीच का स्थान **इण्टरलैमेलर वायु-स्थान** (interlamellar air space) कहलाता है और वायु से भरा रहता है। ये वायु-स्थान ऑस्टिया द्वारा एट्रियल कक्ष की गुहा से सम्बन्धित रहते हैं।

3. रक्त सम्भरण (Blood supply)—शरीर से एकत्रित किया हुआ अनाक्सीकृत रक्त अधर साइनस (ventral sinus) से एक-एक अपवर्ध (diverticulum) द्वारा प्रत्येक पल्मोनरी कोष को पहुँचता है। यह रक्त अपवर्ध से पल्मोनरी कोष के इण्ट्रालैमेलर स्थानों (intralamellar spaces) मे भर जाता है। यहाँ से आक्सीकृत रक्त पल्मोनरी शिराओं द्वारा पेरिकार्डियम मे ले जाया जाता है।

4. श्वसन क्रिया (Mechanism of respiration)—पृष्ठ-अधर (dorso-ventral) तथा एट्रियल पेशियों (atrial muscles) द्वारा श्वसन गति उत्पन्न होती है। इन पेशियों के सिकुडने से पल्मोनरी कोष सिकुडते है और उनके इण्टरलैमेलर वायु-स्थानो मे भरी हुई वायु बाहर निकल आती है। यह एट्रियल कक्ष मे से होकर स्टिगमेटा से शरीर के बाहर आ जाती है। इन पेशियों के शिथिलन पर पल्मोनरी कोष पुन: अपने पहले आकार में आ जाते हैं। फलस्वरूप वायुमण्डल की वायु स्टिगमेटा से होकर एट्रियल कक्ष में पहुँचती हे और वहाँ से इण्टरलैमेलर स्थानो मे भर जाती है।

पल्मोनरी कक्ष में रक्त तथा वायु क्यूटिकल की वनी पतली दीवारों द्वारा अलग रहते है ; अत. रक्त CO_2 इण्टरलैमेलर स्थानो मे आ जाती है तथा वहाँ से आक्सीजन रक्त मे विसरित हो जाती है।

प्रश्न 62. विच्छू व कॉकरोच के श्वसन अंगों एवम् श्वसन विधि का वर्णन करिये। प्रॉन के श्वसन अंगों का नाम बताइये।

Give an account of the respiratory organs and mechanism of respiration in a Scorpion and Cockroach. Name the respiratory organs of Scorpion. (*Bihar 1974*)

कॉकरोच में श्वसन (Respiration in Cockroach)

कृपया प्रश्न 68 देखिये ।

बिच्छू में श्वसन (Respiration in Scorpion)

कृपया प्रश्न 61 देखिए ।

प्रॉन के श्वसन अंग (Respiratory Organs of Prawn)

कृपया प्रश्न 50 देखिए ।

प्रश्न 63. बिच्छू के जनन अंगों का उल्लेख कीजिये ।
Describe the reproductive system of Scorpion.

(*Agra 1959, 65, 67 ; Allahabad 60, 68 ; Lucknow 58, 62 ; Ravishanker 65, 68, 71 ; Gorakhpur 71*)

जनन-तन्त्र

नर तथा मादा जन्तु अलग-अलग होते हैं तथा ये दोनों एक-दूसरे से अलग पहचाने जा सकते हैं । अधिकतर मादा जन्तु नर की अपेक्षा संख्या में अधिक होते हैं :—

(*i*) मादा नर की अपेक्षा बड़ी होती है ।
(*ii*) मादा का उदर नर की अपेक्षा चौड़ा होता है ।
(*iii*) मादा के पेडिपाल्प नर की अपेक्षा छोटे होते हैं ।
(*iv*) मादा में पेक्टिन नर की अपेक्षा छोटे होते हैं ।

नर जनन अंग (Male Reproductive Organs)

नर जनन अंग निम्नलिखित होते हैं :—

1. एक जोड़ी वृषण
2. एक जोड़ी शुक्रवाहिनियाँ
3. एक जोड़ी शुक्राशय
4. सहायक ग्रन्थियाँ
5. जनन कक्ष
6. पर-एक्जियल अंग

1. वृषण (Testes)—ये लम्बी नलिका के समान रचनाएँ हैं जो मीसोसोमा में तीसरे से छठे खण्ड तक हिपेटोपैंक्रियास के भीतर पड़े रहते हैं । प्रत्येक वृषण दो लम्बी तथा सँकरी पार्श्व नलिकाओं (lateral tubules) का बना होता है । दोनों पार्श्व नलिकाएँ चार अनुप्रस्थ संयोजकों (transverse connectives) द्वारा जुड़ी रहती हैं जिससे प्रत्येक वृषण सीढ़ी के समान दृष्टिगत होता है । प्रत्येक नलिका एपिथीलियम कोशिकाओं के स्तर से आस्तारित रहती है । इसकी कोशिकाएँ विभाजित होकर शुक्राणु बनाती हैं । शुक्राणु सूत्राकार तथा चलनशील होते हैं । इनका शरीर छोटे-से गोल शीर्ष तथा एक बहुत लम्बी पुच्छ का बना होता है ।

2. शुक्र-वाहिनियाँ (Vasa-deferentia)—प्रत्येक वृषण के अगले सिरे के बाहरी किनारे से एक छोटी तथा पतली वाहिनी निकलती है । यह आगे तथा बाहर की ओर बढ़ती है तथा अपनी ओर के जनन-वेश्म में खुलती है । जनन-वेश्म में खुलने से पहले यह फूलकर चौड़ी हो जाती है । इसका यह चौड़ा भाग शुक्र-वाहिनी का

टर्मिनल एम्पुला (terminal ampulla) कहलाता है। इसमें सहायक ग्रन्थियाँ तथा शुक्राशय खुलते हैं।

3. शुक्राशय (Seminal vesicles)—ये छोटी तथा मुग्दर के आकार की रचनाएँ हैं। प्रत्येक शुक्राशय अपनी ओर के टर्मिनल एम्पुला में खुलता है। शुक्राशय में शुक्राणु सचित रहते हैं।

4. सहायक ग्रन्थियाँ (Accessory glands)—नर जनन अंगों के सम्पर्क में चार जोड़ी सहायक ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं। ये निम्नलिखित है :—

1. पृष्ठ एनेक्स ग्रन्थियाँ (Dorsal annex gland)
2. अधर एनेक्स ग्रन्थियाँ (Ventral annex glands)
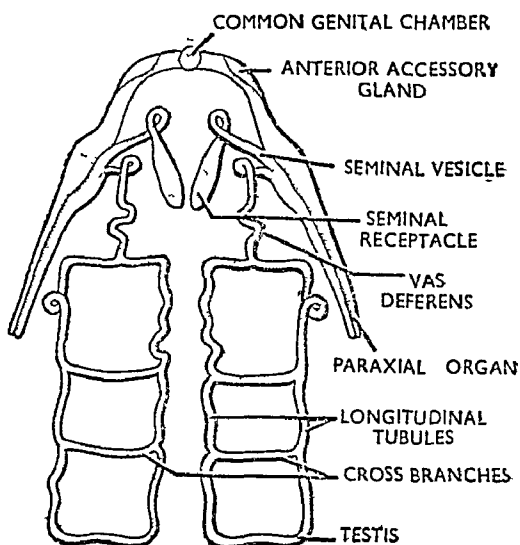
चित्र ८·११. बिच्छू (*Palamnaeus*) के नर जनन अंग

3. अण्डाकार ग्रन्थियाँ (Oval glands)
4. वेलनाकार ग्रन्थियाँ (Cylindrical glands)

समस्त सहायक ग्रन्थियों में वना द्रव शुक्र-वाहिनी के टर्मिनल एम्पुला में एकत्रित होता है। यह जनन में सहायता करता है।

5. जनन-वेश्म (Genital chambers)—प्रथम तथा द्वितीय मीसोसोमेटिक खण्डों में एक जोड़ी जनन-वेश्म पाये जाते हैं। ये मध्यरेखा की ओर कुछ टेढ़े होकर वढ़ते हैं तथा मध्य जनन-वेश्म में खुलते हैं। मध्य जनन-वेश्म नर जनन-छिद्र द्वारा अधर तल पर प्रथम मीसोसोमेटिक खण्ड में खुलता है तथा जनन छदिका (genital operculum) से ढका रहता है।

6. पर-एक्जियल अंग (Peraxial organs)—प्रत्येक जनन-वेश्म वृषण के वाहर की ओर एक लम्वे नालाकार थैले के रूप में पीछे की ओर लटका रहता है। यह पर-एक्जियल अंग कहलाता है। इसके भीतर कशाभ (flegellum) नामक एक लम्वी काइटिन की वनी छड़ होती है जो इसकी गुहा में फंसी रहती है। कशाभ के भीतर वाले किनारे के साथ एक खाई होती है तथा शेष समस्त सतह पर छोटे-छोटे काँटे पाये जाते हैं। दोनों ओर के कशाभ जनन-छिद्र से वाहर निकाले जा सकते है। ये विच्छू के **शिश्नक** (penis) भी कहे जाते हैं, क्योंकि मैथुन के समय ये क्लेस्पर्स (claspers) की भाँति कार्य करते हैं।

मादा जनन अंग (Female Genital Organs)

1. अण्डाशय
2. एक जोड़ी अण्डवाहिनियाँ
3. पुटिकाएँ
4. जनन-वेश्म

1. अण्डाशय (Ovary)—अण्डाशय केवल एक होता है जो मीसोसोमा के तीसरे से छठे खण्ड तक पाया जाता है। यह हिपेटोपैंक्रियास में दबा रहता है। इसमें तीन लम्बी तथा सँकरी नलिकाएँ होती हैं। ये **ओवेरीयोल्स** (ovarioles) कहलाती हैं। इनमें से एक छोटा मध्य ओवेरियोल होता है तथा शेष दो लम्बे तथा पार्श्व किनारों पर स्थित होते है। तीनों ओवेरियोल्स चार स्थानों पर अनुप्रस्थ संयोजिकाओं (transverse connectives) द्वारा जुड़े रहते है जिससे अण्डाशय में तीन जोड़ी चौकोर स्थान होते हैं। समस्त ओवेरियोल्स तथा अनुप्रस्थ संयोजिकाएँ जर्मिनल एपिथीलियम (germinal epithelium) से आस्तारित होती है। इन कोशिकाओं के विभाजन से अण्डे बनते है।
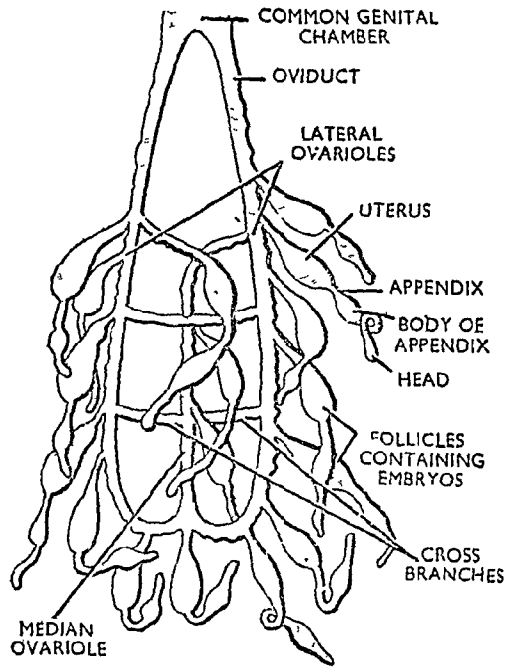
चित्र ८·१२. बिच्छू (*Palamnaeus*) के मादा जनन अंग

2. फॉलिकिल्स (Follicles)—ओवेरियोल्स तथा अनुप्रस्थ संयोजिकाओं से बहुत-से खोखले थैले के समान उभार निकले रहते हैं। ये **अपवर्ध** (diverticula)
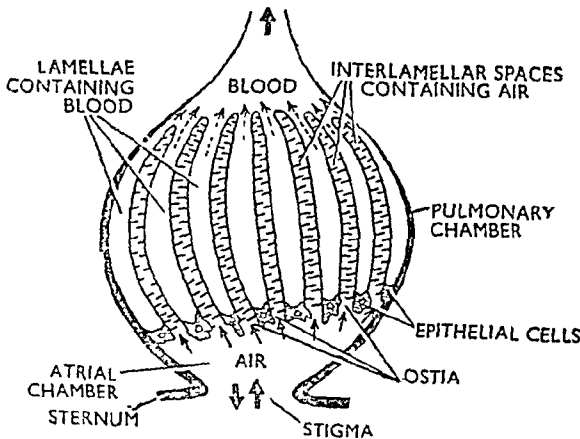
चित्र ८·१०. बिच्छू के पल्मोनरी कोष की खड़ी काट
(V.S. Pulmonary sac of *Scorpion*)

या पुटिकाएँ (follicles) कहलाते हैं। *Palamnaeus* में प्रत्येक पुटिका दो भागों की बनी होती है। इसका समीपस्थ फूला हुआ भाग **आधार** तथा दूरस्थ सँकरा भाग

अपेण्डिक्स (appendix) कहलाता है। अपेण्डिक्स का स्वतन्त्र सिरा फूलकर सिर (head) बनाता है। पुटिकाओं में भ्रूण का वर्धन होता है ; अतः ये अन्य जन्तुओं के गर्भाशय के तुल्य माने जाते हैं।

3. **अण्डवाहिनियाँ** (Oviducts)—दोनों पार्श्व ओवेरियोल्स आगे की ओर बढ़कर **अण्डवाहिनियाँ** बनाते हैं। ये आगे तथा भीतर की ओर बढ़ती हैं तथा प्रथम खण्ड में मध्य जनन-वेश्म में खुलती हैं।

4. **जनन-वेश्म** (Genital chamber)—जनन-वेश्म प्रथम मीसोसोमेटिक खण्ड में स्थित होता है। यह मादा जनन-छिद्र द्वारा प्रथम मीजोसोमेटिक खण्ड में स्टरनम के अधर तल पर खुलता है। जनन-वेश्म द्विशाखित जनन-छिद्रिका द्वारा ढका रहता है।

अध्याय 9

कॉकरोच
(Cockroach)

प्रश्न 64. कॉकरोच के मुख उपांगों का वर्णन कीजिये। ये इसकी पोषण विधि के किस प्रकार अनुरूप हैं ?

Describe the mouthparts of cockroach. How are they correlated with the mode of feeding of the insect ?

(*Nagpur 1968, 72 ; Delhi 60 ; Jiwaji 66 ; R.S. 71*)

कॉकरोच के मुखांग (Mouthparts of Cockroach)

कॉकरोच का मुख सिर के अधर तल पर स्थित होता है। मुखद्वार के चारों ओर आधार, पृष्ठ तथा पार्श्व भागों में लगे सिर उपांगों को ही मुखांग कहते हैं। इनका कार्य भोजन को खोजने, पकड़ने एवम् कुतर कर टुकड़े करने तथा निगलने में सहायता करना है। मुखांग में निम्न अंग होते हैं—

(1) लेबरम
(2) मैण्डिबल
(3) प्रथम मैक्सिला
(4) द्वितीय मैक्सिला
(5) हाइपोफैरिंक्स

1. लेबरम (Labrum)—लेबरम एक चल सन्धि द्वारा क्लाइपियस (clypeus) से जुड़ा रहता है। यह एक पट्टी के समान होता है और पृष्ठ सतह से ऊपरी होठ की भाँति लटका रहता है। यह मैण्डिबल को ढकता है। इसकी अधर सतह पर स्वाद-ग्राही अंग (gustoreceptors) होते हैं।

2. मैण्डिबल (Mandibles)—मैण्डिबल दृढ़ काइटिन की बनी दो तिकोनी रचनाएँ हैं जो मुखाग्र गुहा के दोनों ओर, पार्श्व तल पर चल सन्धियों द्वारा जुड़े होते हैं। मैण्डिबल के भीतरी भाग पर आरी के समान अनेक नुकीले दाँत होते हैं जो भोजन को छोटे-छोटे टुकड़ों में परिवर्तित कर देते हैं। चबाने के लिए अपवर्तनी (abductor) और अभिवर्तनी (adductor) पेशियाँ मदद करती हैं।

3. मैक्सिला का पहला जोड़ा (First pair of maxilla)—मैण्डिबल के ठीक नीचे व पीछे की ओर प्रथम जोड़ी के मैक्सिला होते हैं। प्रत्येक मैक्सिला के दो भाग होते हैं—**आधार भाग या प्रोटोपोडाइट** (protopodite) तथा **शिखर भाग** या **एण्डाइट** (endite)। आधार भाग प्रथम मैक्सिला के समीपस्थ (proximal) भाग को कहते हैं। इसमें भी दो भाग होते हैं जो **कार्डो** (cardo) तथा **स्टाइप्स** (stipes) कहलाते हैं। ये दोनों परस्पर 90° का कोण बनाते हैं। प्रथम मैक्सिला के दूरस्थ सिरे में भी दो भाग होते हैं—बाहरी भाग को **एक्सोपोडाइट** (exopodite) (शिखर भाग) और भीतरी भाग को **एण्डोपोडाइट** (endopodite) कहते हैं। स्टाइप्स

की वाहरी सतह से निकलने वाले एक्सोपोडाइट को, जिसमें पाँच खण्ड होते हैं मैक्सिलरी पैल्प (maxillary palp) कहते हैं। एण्डोपोडाइट में दो भाग होते है।
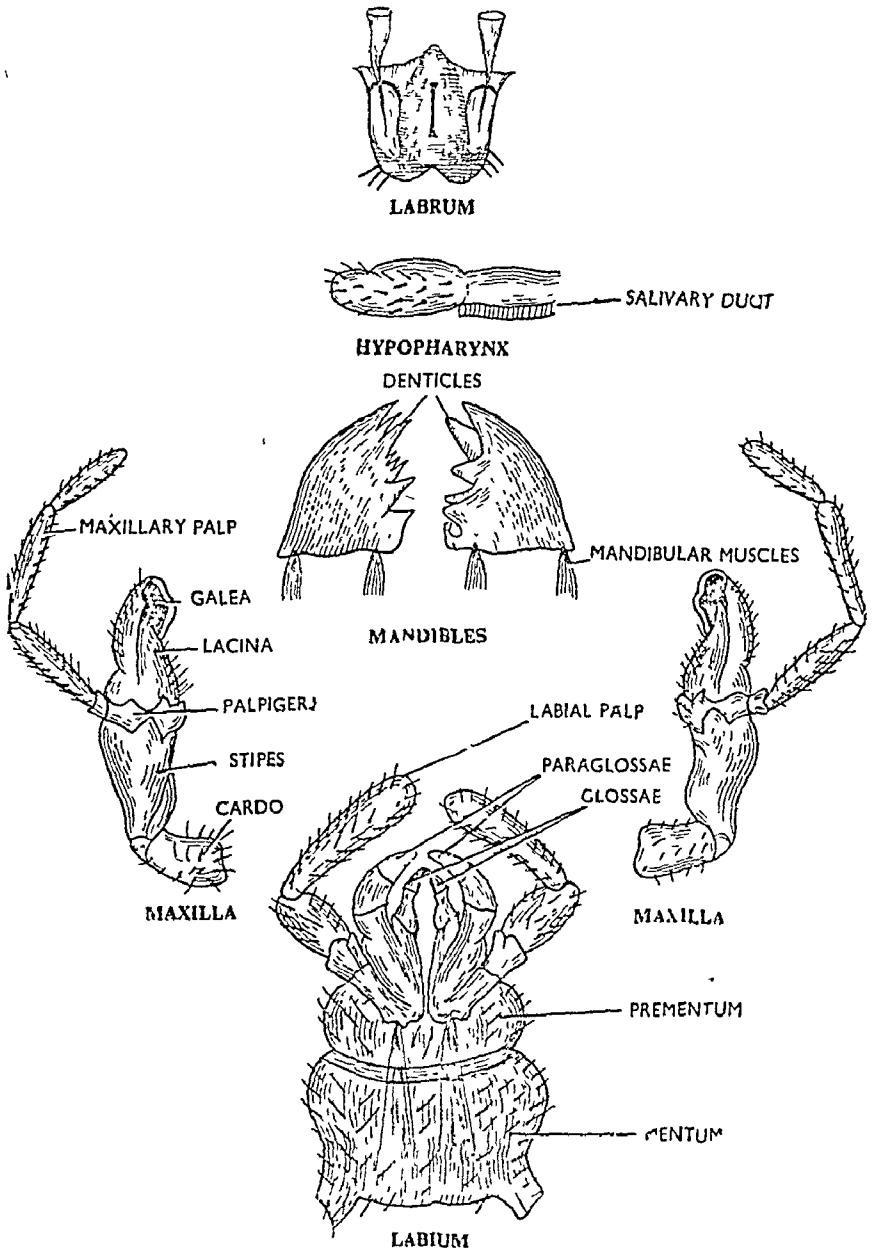
चित्र ९·१. काकरोच के मुख उपांग (Mouth parts of *Cockroach*)

भीतरी भाग को लैसीनिया (lacinia) और वाहरी भाग को गैलिया (galea) कहते हैं।

गेलिया का आकार हुड (hood) के समान होता है और लैसीनिया के अन्तिम भाग में दो काँटे होते हैं। लैसीनिया के भीतरी स्तर पर, जो चाकू के समान तेज होता है, काइटिन के बने बाल लगे होते हैं। जहाँ से मैक्सिलरी पाल्प निकलता है वहाँ पर काइटिन की बनी **पैल्पीफर** (palpifer) नाम की एक छोटी किन्तु मजबूत प्लेट लगी होती है।

4. मैक्सिली का द्वितीय जोड़ा या लेबियम (Second pair of maxillae or labium)—लेबियम प्रथम मैक्सिला के ठीक पीछे स्थित होता है तथा मुखाग्र गुहा की अवर सतह की मध्य भित्ति बनाता है। इसके कई भाग होते हैं। **सबमैण्टम** (sub-mentum) लेबियम का सबसे चौड़ा भाग है जो मुखाग्र गुहा के एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैला होता है। बीच वाले खण्ड को **मैण्टम** (mentum) कहते हैं। यह भाग कुछ मोटा होता है। द्वितीय मैक्सिला के प्रोटोपोडाइट के दूरस्थ सिरे पर एक और छोटा-सा भाग है जिसको **प्रीमैण्टम** (prementum) कहते हैं। एक्सोपोडाइट तथा एण्डोपोडाइट इसी से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक ओर का एक्सोपोडाइट **लेबियल पैल्प** (labial palp) कहलाता है और इसमें तीन खण्ड होते हैं। इसके उद्गम स्थान पर एक छोटा-सा खण्ड होता है जिसे **पैल्पीजर** (palpiger) कहते हैं।

एण्डोपोडाइट में भी प्रत्येक ओर दो भाग होते हैं जो **ग्लोसा** (glossa) और **पैराग्लोसा** (paraglossa) कहलाते हैं। ये भाग प्रथम मैक्सिला के लैसीनिया तथा गैलिया के समजात होते हैं।

5. हाइपोफैरिक्स (Hypopharynx)—हाइपोफैरिक्स मुखाग्र गुहा की पिछली दीवार से जुड़ा रहता है और मुखाग्र गुहा में लटका रहता है। इसी के ऊपर **सामान्य इफरेण्ट सैलाइवरी डक्ट** (common efferent salivary duct) का छेद खुलता है।

प्रश्न 65. तिलचिट्टे की आहार नाल की रचना और इसके भोजन एवम् पाचन का सविस्तार वर्णन कीजिये।

Describe the alimentary canal of Cockroach and add a note on the food and digestion of this animal. (*Jodhpur 1968 ; Rewa 71 ; Patna 69 ; Nagpur 69*)

पाचन संस्थान के अन्तर्गत आहार-नाल (alimentary canal) तथा उससे सम्बन्धित लार ग्रन्थियाँ आती हैं।

आहार नाल
(Alimentary Canal)

पाचन नली को तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. फोरगट (foregut)

2. मिडगट (midgut)

3. हाइण्डगट (hindgut)

फोरगट (foregut) तथा हाइण्डगट (hindgut) के अन्दर की पर्त पतली क्यूटिकल की होती है, तथा मिडगट एण्डोडर्म से आस्तारित होती है।

1. फोरगट (Foregut or stomodeum)—इसके अन्तर्गत मुख, मुखगुहा, फैरिंक्स, इसोफेगस, क्राप तथा गिजार्ड आते हैं।

(*i*) मुख तथा मुखगुहा (Mouth and buccal cavity)—कॉकरोच में वास्त-

चित्र ६·२. कॉकरोच की आहारनाल
(Alimentary canal of Cockroach)

विक मुखगुहा, बहुत छोटी होती है। उसके आगे मुखाग्र गुहा (preoral cavity) पायी जाती है। यह सामने की ओर लेबरम, पीछे की ओर लेबियम तथा इधर-उधर मैक्सिली तथा मैण्डिबल्स से घिरी रहती है। मुखाग्रगुहा के अन्तिम सिरे पर मुख होता है जो ग्रसनी मे खुलता है।

(*ii*) **ग्रसनी** (Pharynx)—फैरिंक्स ऊपर की ओर उठकर इसोफेगस मे खुलता है।

(*iii*) ग्रासनली (Oesophagus)—यह एक सँकरी नली है, जो गर्दन में से होती हुई वक्ष में पहुँचती है और क्राप (crop) मे खुलती है।

(*iv*) **क्रॉप** (Crop)—यह एक लम्बी नाशपाती के आकार की पतली दीवारों वाली थैली है, जो भोजन नली का सबसे बड़ा भाग बनाती है। क्रॉप भोजन को संग्रहित करने का कार्य करता है। यह पीछे की ओर पेषणी या गिजार्ड मे खुलता है।
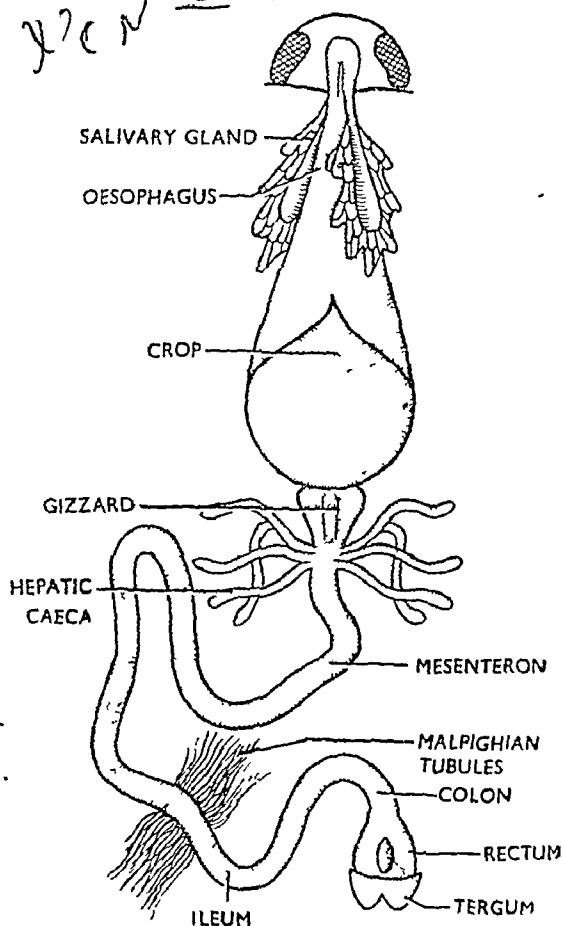
(*v*) **पेषणी या गिजार्ड** (Gizzard)—यह गोल, मोटी दीवारों वाली, पेशीयुक्त रचना है। इसकी सबसे अन्दर की पर्त मोटी क्यूटिकल की होती है। क्यूटिकल 6 स्थानो पर अत्यधिक मोटी होकर 5 क्यूटिकल दाँत (cuticular teeth) बनाती हे। दाँतों के द्वारा भोजन छोटे-छोटे खण्डो में काटा जाता है। क्यूटिकल दाँतों के पीछे 6 गद्दियो की एक गोल कतार होती है, जिन पर बहुत-से काइटिनस रोम (chitinous hair) लगे रहते है। ये आपस में मिलकर एक प्रकार की छलनी (sieve) बनाते है। इसमें से भोजन के छोटे-छोटे टुकड़े ही मिसेण्ट्रोन मे जा सकते है। गिजार्ड के अन्त में एक स्टोमोडियल कपाट (stomodial valve) होता है जिससे भोजन गिजार्ड में वापस नही आ सकता।

2. मिडगट (Midgut or mesenteron)—यह एक छोटी तथा सँकरी नली है। यह एण्डोडर्म से आस्तारित रहती है। भोजन का पाचन तथा शोषण यही पर होता है। गिजार्ड और मिडगट के जोड़ पर पतली अंगुली के आकार की 8 नलियाँ होती है, जिनके बाहरी सिरे बन्द होते है। ये नलिकाएँ **हिपेटिक सीकी** (hepatic caecae) कहलाती हैं तथा पाचक रस का निर्माण करती है। इसके अति-

रिक्त ये पचे हुए भोजन का शोषण भी करती हैं। मिडगट के अन्तिम सिरे पर 60–80 तक बहुत बारीक धागे के समान पीले रंग की माल्पीघियन ट्यूब्यूल्स (malpighian tubules) लगी रहती हैं। ये नलिकाएँ जन्तु की उत्सर्जन क्रिया में सहायक होती हैं।
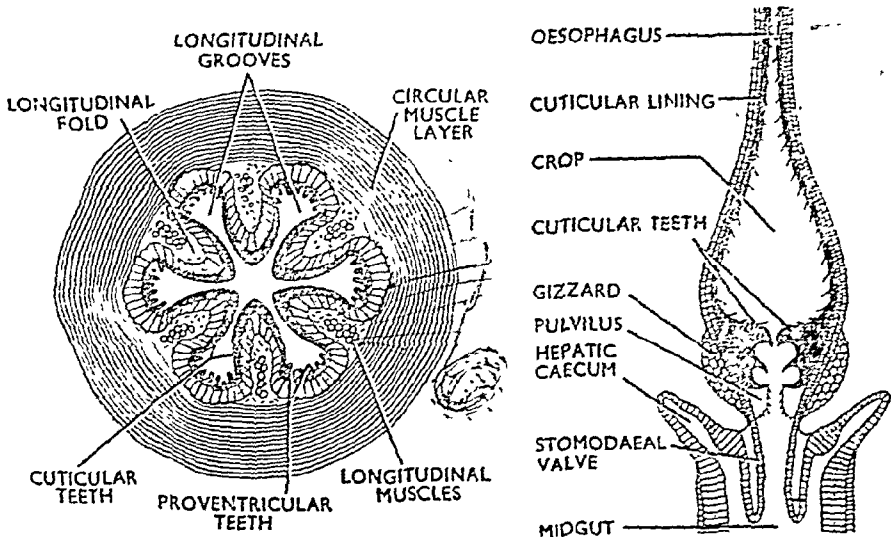
चित्र ६·३. कॉकरोच के गिजार्ड की अनुप्रस्थ काट (T.S. Gizzard of *Cockroach*)

चित्र ६·४. कॉकरोच के गिजार्ड तथा मध्यांत्र (L.S. foregut and midgut of *Cockroach*)

3. **हाइन्डगट** (Hindgut or proctodeum)—यह एक लम्बी नली है। इसको तीन बराबर भागों में बाँटा जा सकता है :—

(*i*) **छोटी आंत्र** (ileum)
(*ii*) **बड़ी आंत्र** (colon)
(*iii*) **गुदा** (rectum)

इनमें बड़ी आंत्र सबसे लम्बी होती है तथा इसका अन्तिम सिरा चौड़ा व थैलेनुमा होकर **गुदा** (rectum) बनाता है। गुदा, **गुदाद्वार** (anus) द्वारा बाहर को खुलती है जो कि दसवें खण्ड में स्थित होता है।

लार ग्रन्थियाँ (Salivary glands)—वक्ष में आहार-नाल से सम्बन्धित एक जोड़ी सफेद तथा कटी-फटी पत्ती के आकार की ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं। प्रत्येक ग्रन्थि के दो भाग होते हैं—**ग्रन्थिल भाग** (glandular portion) तथा **लार कोष** (receptacular or reservoir part)। ग्रन्थिल भाग में दो बड़ी तथा एक छोटी, तीन पालियाँ होती हैं। प्रत्येक पाली से एक नलिका निकलती है। प्रत्येक ओर की तीनों नलिकाएँ मिलकर **संयुक्त लार नली** (common salivary duct) बनाती हैं। लार कोष (salivary receptacle) पतली दीवारों वाली थैलेनुमा रचना है। दोनों ओर के लार कोषों से भी एक-एक नलिका निकलती है जो एक साथ मिलकर **संयुक्त लार कोष नली** (common receptacular duct) बनाती हैं। संयुक्त लार नली तथा संयुक्त लार कोष नली मिलकर **सामान्य इफेरेन्ट लार वाहिनी** (common

efferent salivary duct) बनाती है, जो हाइपोफैंरिक्स के नीचे मुखाग्रगुहा (pre-oral cavity) में खुलती है। लार ग्रन्थियाँ लार बनाती है जो भोजन को नम बनाती है।
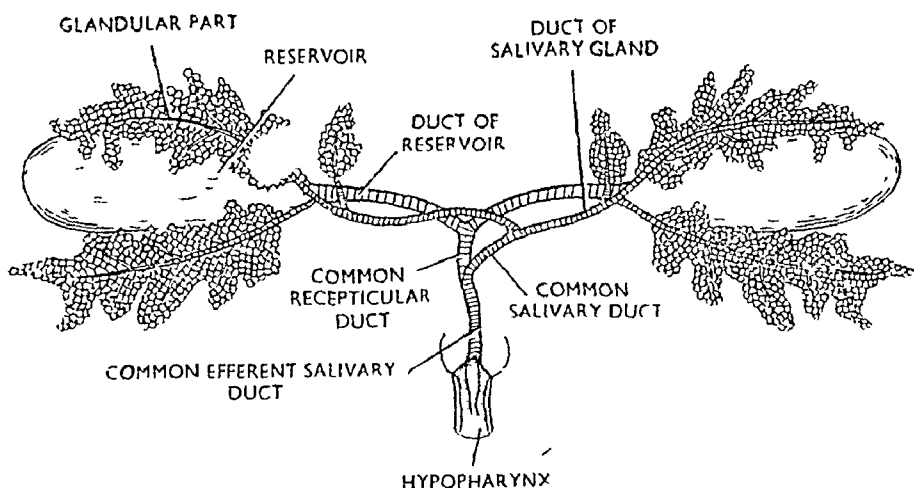
चित्र ६·५. कॉकरोच की लार ग्रन्थियां (Salivary glands of Cockroach)

कॉकरोच एक सर्वभक्षी (omnivorous) जन्तु है। प्रत्येक प्रकार का कार्वनिक पदार्थ इस जन्तु का भोजन है। अतः कागज, कपड़ा, साग, अनाज, तेल, घी, शक्कर, माँस, फल इत्यादि तथा अपने ही शरीर से उतरा हुआ वाह्यकंकाल भी यह खा जाता है।

एण्टिनी (antennae) भोजन के खोजने का कार्य करते है। मैक्सिली भोजन को पकड़ते है तथा मेण्डिवल के द्वारा यह छोटे-छोटे टुकड़ों में कुतरा जाता है। मैक्सिला के लैसिनिया तथा गैलिया भी इस कार्य मे सहायता पहुँचाते हैं। मैक्सिलरी पाल्प तथा लेवियल पाल्प भोजन को मुखगुहा में पहुँचाते हैं।

भोजन को कुतरते समय लार ग्रन्थियों से लार भोजन में मिल जाती है और भोजन को नम तथा चिकना कर देती है। मुख के लार रस में पाया जाने वाला एमाइलेस (amylase enzyme) भोजन के कार्वोहाइड्रेट पर क्रिया प्रारम्भ कर देता है। अतः भोजन का पाचन मुखगुहा से ही शुरू हो जाता है। भोजन गले में से होता हुआ क्रॉप (crop) में पहुँचता है। इस समय तक कार्वोहाइड्रेट ग्लूकोस (glucose) में वदल जाता है। क्रॉप में भोजन आवश्यकतानुसार काफी समय तक इकट्ठा रह सकता है। मिडगट से वना हुआ पाचक रस क्रॉप में पहुँचता है और भोजन में मिलकर पाचन क्रिया आरम्भ कर देता है। पाचक रस में पेप्टीडेस, लेक्टेस, ट्रिप्टेस, इन्वर्टेस नामक विकर होते है जो भोजन के प्रोटीन, माण्ड तथा चर्वी को पचाते हैं। गिजार्ड में आने पर भोजन पिसकर महीन हो जाता है और काइटिनस रोमों से वनी छलनी से छनता है। फलस्वरूप भोजन के महीन टुकड़े ही मिडगट में पहुँच पाते हैं। यहाँ पर भोजन का पचा हुआ भाग शोषित कर लिया जाता है : शेष वचा हुआ भोजन हाइन्डगट में पहुँचता है। यहाँ पर फिर अवशोपण होता है। गुदा (rectum) में पहुँचने पर भोजन का पचा हुआ जल भी शोपित कर लिया जाता है। अवशेप को गुदाद्वार द्वारा वाहर निकाल दिया जाता है।

प्रश्न 66. तिलचिट्टे (कॉकरोच) के परिवहन तन्त्र का वर्णन कीजिये ।
Give an account of the circulatory system of Cockroach.

परिवहन तन्त्र (Circulatory System)

तिलचिट्टे का परिवहन तन्त्र खुला होता है और रक्त हीमोसील में से होकर बहता है । इसमें हृदय तथा एक पृष्ठ रुधिर वाहिनी होती है, जो शरीर की मध्य रेखा में टरगा के ठीक नीचे स्थित होती है ।

1. हृदय तथा पेरीकार्डियल गुहा (Heart and pericardial cavity)—हृदय लम्बी तथा स्पंदनशील नलिका (contractile tube) के समान होता है, जो वक्ष तथा उदर खण्डों में स्थित होता है । इसमें एक पंक्ति में क्रमबद्ध 13 वेश्म होते हैं जो फनल के आकार के होते हैं । प्रत्येक वेश्म आगे की ओर अपने सामने वाले हृदय वेश्म में तथा पार्श्व सतहों पर एक जोड़ी ओस्टिया (ostia) द्वारा पेरिकार्डियल गुहा में खुलता है । प्रत्येक वेश्म की पृष्ठ भित्ति से एक कपाट लटका रहता है जो रुधिर प्रवाह को पीछे से आगे की ओर रखता है ।

हृदय के ऊपर पतली झिल्ली का आवरण होता है, जिसे पेरिकार्डियम कहते हैं । हृदय तथा पेरिकार्डियम के बीच की गुहा **पेरिकार्डियल गुहा** (pericardial cavity) कहलाती है जिसका सम्बन्ध अधर तल पर स्थित छिद्रों द्वारा हीमोसील (haemocoel) से होता है ।
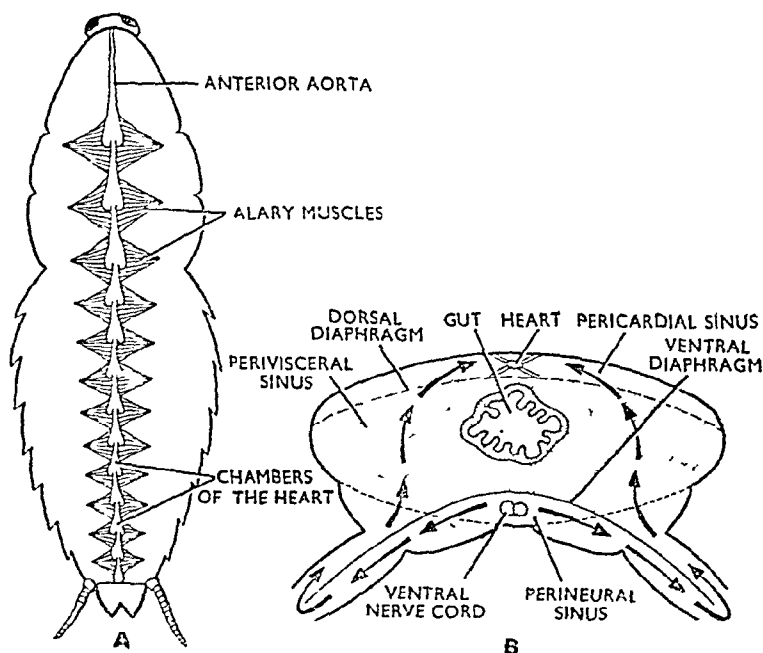
चित्र ९·६. कॉकरोच A. हृदय का पृष्ठ दृश्य (Heart in dorsal view) ; B. वक्ष-खण्ड के अनुप्रस्थ सेक्शन में रुधिर का परिवहन पथ (Course of blood in T.S. of a thoracic segment)

हृदय के प्रत्येक वेश्म की पार्श्व सतहों से एक जोड़ी त्रिभुजाकार या पंखे के आकार की पेशियाँ निकलती हैं जो अपने नुकीले सिरे द्वारा टरगम से जुड़ी रहती हैं। ये **ऐलेरी पेशियाँ** (alary muscles) कहलाती हैं। सभी खण्डों की पेशियाँ मिलकर डायफ्राम के समान रचना बनाती हैं जो पेरिविसरल हीमोसील (perivisceral haemocoel) को पृष्ठ पैरिकार्डियल साइनस (dorsal pericardial sinus) से अलग करती हैं।

2. अग्र आयोर्टा (Anterior aorta)—हृदय के प्रथम खण्ड से एक पतली अकुंचनशील (non-contractile) नली निकलकर सिर में जाती है और सेरिब्रल गैंगलिया से आगे पहुँचकर समाप्त हो जाती है। इससे रक्त हीमोसील में पहुँचता है।

3. रक्त (Blood)—तिलचट्टे का रक्त रंगहीन होता है। इसमें हीमोग्लोबिन नहीं पाया जाता। अतः यह श्वसन में कोई भाग नहीं लेता।
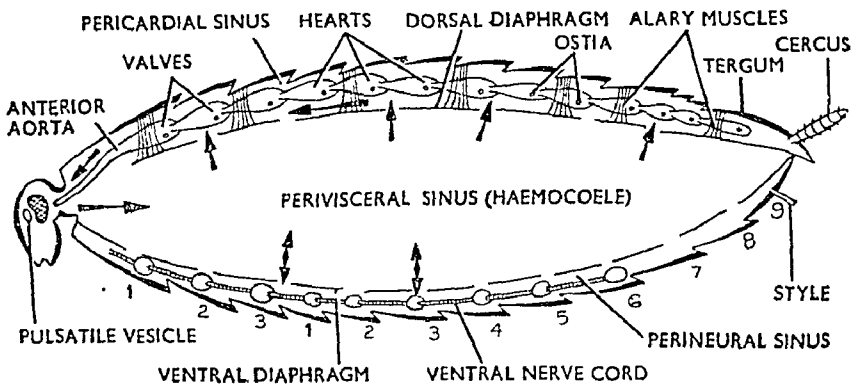
चित्र ९·७. कॉकरोच के रुधिर परिवहन तन्त्र का पार्श्व दृश्य (Course of circulation of blood in lateral view)

4. रुधिर परिवहन (Blood circulation)—हृदय द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों को रुधिर पम्प होता है। इस कार्य में ऐलरी पेशियाँ सहायक होती हैं। ऐलरी पेशियों के आकुंचन पर, पेरिकार्डियल गुहा फैलकर बड़ी हो जाती है तथा रुधिर पेरिविसरल हीमोसील में से पेरिकार्डियल साइनस में भर जाता है। इन पेशियों के शिथिलन पर रुधिर ओस्टिया द्वारा हृदय में प्रवेश करता है। अब हृदय एवम् अग्र आयोर्टा पीछे से आगे की ओर अनुक्रमिक रूप से आकुंचन करते है। अतः रुधिर आगे की ओर सिर में प्रवाहित होता है और पेरिविसरल हीमोसील में वापस आ जाता है।

सिर में स्थित दो छोटे एम्पुली (ampullae) सिर साइनसों (head sinuses) में से एण्टिनी में रुधिर पम्प करते हैं। इसी प्रकार परों के आधार पर स्थित छोटे स्पन्दी अंग (pulsatile organs) अग्र व पश्च पक्षों की शिराओं में रुधिर प्रवाहित करते हैं।

प्रश्न 67. कॉकरोच के उत्सर्जी अंगों का वर्णन करिये।
Describe the excretory organs of Cockroach.

कॉकरोच में उत्सर्जन के लिए निम्न रचनाएँ पायी जाती हैं :—

1. माल्पीघियन नलिकाएँ (Malpighian tubules)

2. वसा काय (Fat bodies)
3. नेफ्रोसाइट्स (Nephrocytes)

1. माल्पीघियन नलिकाएँ—ये पीले रंग की अशाखान्वित तथा धागे या रोम के समान पतली रचनाएँ है जो मध्यांत्र तथा पश्चांत्र के जोड़ पर स्थित होती हैं और पश्चांत्र में खुलती हैं। इनके दूरस्थ सिरे बन्द होते है और स्वतन्त्रतापूर्वक देहगुहा मे पड़े रहते हैं। ये संख्या में 60–80 तक होती हैं तथा 6–8 तक समूह बनाती हैं। प्रत्येक नलिका की लम्बाई लगभग 1 इन्च तथा व्यास ·002 इन्च होता है। इसकी दीवार पेशीय होती है तथा इसका आन्तरिक स्तर ग्रन्थिल एपिथीलियम का बना होता है। ग्रन्थिल कोशिकाओं के अन्दर के सिरे माल्पीघियन नलिका की गुहा में उभरे रहते हैं।
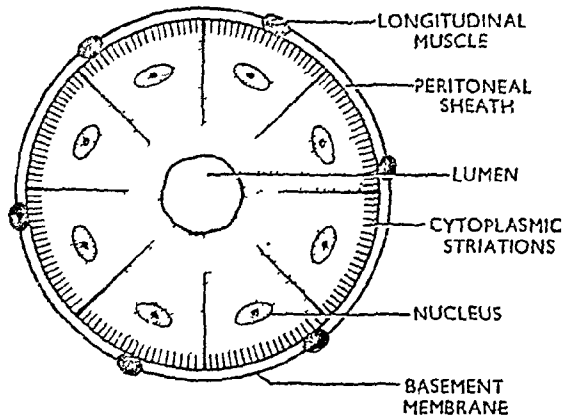
चित्र ६·८. कॉकरोच की माल्पीघियन नलिका की अनुप्रस्थ काट (T.S. Malpighian tubule of Cockroach)

माल्पीघियन नलिकाएँ रक्त में पड़ी रहती हैं और उससे नाइट्रोजनयुक्त उत्सर्जी पदार्थों तथा पानी को सोख लेती हैं। ये उत्सर्जी पदार्थ यूरिया (urea), यूरिक एसिड (uric acid) तथा यूरेट होते है। माल्पीघियन नलिकाएँ उत्सर्जी पदार्थों तथा पानी को पश्च आंत्र में डाल देती है जहाँ पानी का पुन: अवशोषण हो जाता है तथा उत्सर्गी पदार्थ विष्ठा के साथ शरीर से बाहर निकाल दिये जाते हैं।

2. वसा काय (Fat bodies)—वसा काय सफेद रंग की अनियमित, पिण्डकीय (lobulated) रचनाएँ हैं जो धानीयुक्त कोशिकाओं (vacuolated cells) की बनी होती हैं। इनमें भोजन सचित रहता है। इसके अतिरिक्त इनमें यूरेट मणिभ भी पाये जाते हैं। अत: वसा काय भी हीमोसील में उपस्थित रुधिर से नाइट्रोजन-युक्त उत्सर्जी पदार्थों को अलग करती है।

3. नेफ्रोसाइट्स (Nephrocytes)—ये विशेष प्रकार की कोशिकाओं के समूह हैं जो पेरिकार्डियल साइनस में पाये जाते है और अवांछनीय कोलॉयड कणों (colloid particles) को रक्त से अलग करते हैं।

4. त्वचा (Integument)—कुछ अमीबाभ कोशिकाएँ उत्सर्जी पदार्थों का भक्षण कर लेती हैं और त्वचा के ऊपर तथा क्यूटिकल के नीचे एकत्रित होकर बाह्यकंकाल बनाती है। यह बाह्यकंकाल समय-समय पर शरीर से उतार कर फेंक दिया जाता है और उनके स्थान पर नया बाह्यकंकाल बनना आरम्भ हो जाता है।

प्रश्न 68. प्रॉन, काकरोच एवम् बिच्छू में श्वसन का कार्य करने वाले अंगों का वर्णन करिये।

Give an account of the parts that subserve respiration in Prawn, Cockroach and Scorpion.

(*Agra 1955, 57 ; Allahabad 61 ; Lucknow 59, 64, 66 ; Kerala 68*)

उन आर्थ्रोपोड जन्तुओं के श्वसन अंगों का वर्णन कीजिये जिनका आपने अध्ययन किया है।

Give an account of the respiratory organs in the arthropods you have studied. (*Nagpur 1969*)

प्रॉन के श्वसन अंगों के लिए कृपया प्रश्न 50 तथा बिच्छू के श्वसन अंगों के लिए प्रश्न 61 देखिये।

कॉकरोच के श्वसन अंग
(Respiratory Organs of Cockroach)

कॉकरोच के श्वसन-तन्त्र मे एक्टोडर्म की बहुत-सी शाखान्वित व लचीली नलिकाएँ होती है जो **वायु नलिकाएँ** (air tubes) या **श्वास-नली** या **ट्रैकिया** (trachea) कहलाती है। ये प्रत्येक खण्ड में से एक जोडी छिद्रो द्वारा बाहर को खुलती है जो **श्वास-रन्ध्र** (spiracles) या **स्टिगमेटा** (stigmata) कहलाते हे।

1. श्वास-रन्ध्र (Spiracles)—श्वास-रन्ध्र सूक्ष्म अण्डाकार कपाटीय छिद्र है जो सूक्ष्मदर्शी द्वारा स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। प्रत्येक श्वास-रन्ध्र छिद्र छल्ले के समान **पैरिट्रीम** (peritreme) से घिरा रहता है। इस पर बहुत-से काइटिनस रोम (chitinous hair) तथा एक कपाट भी होता है। रोमों की उपस्थिति के कारण
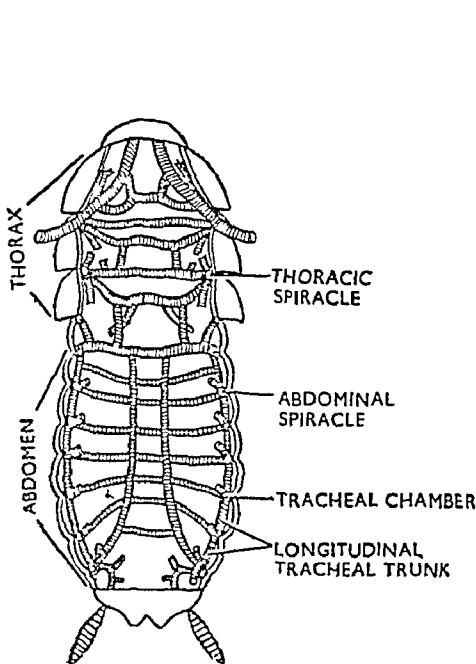
चित्र ६·६. कॉकरोच का श्वसन तन्त्र (Respiratory system of *Cockroach*)
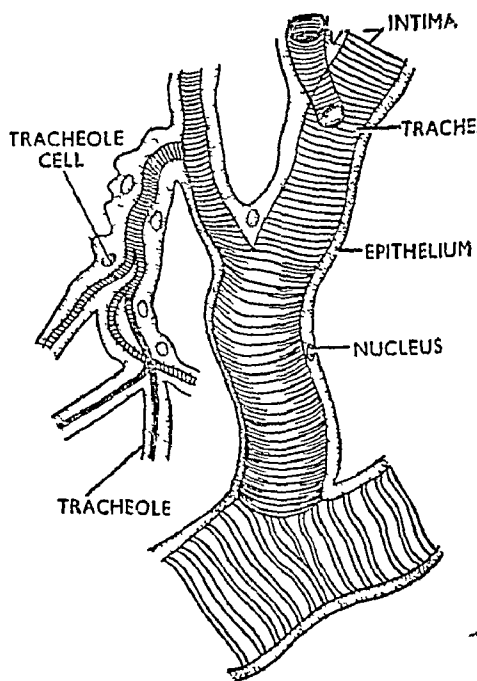
चित्र ६·१०. कॉकरोच के ट्रैकिया या श्वसन नली का एक भाग (A part of trachea of *Cockroach*)

वायु [illegible] श्वास-रन्ध्र के भीतर जाती है तथा समस्त धूल व सूक्ष्म जन्तु वाहर रह जाते हैं। कपाटों के द्वारा भीतर जाने वाली वायु की मात्रा का नियमन होता है। कॉकरोच में 10 जोड़ी श्वास-रन्ध्र पाये जाते हैं। इनमें से दो जोड़ी वक्ष में तथा शेष आठ जोड़ी उदर में स्थित होते हैं। ये शरीर के दोनों पार्श्व किनारों पर टरगल तथा स्टरनल प्लेटों के वीच की पतली क्यूटिकल में स्थित होते हैं परन्तु वक्ष भाग में इनका एक जोड़ा प्रोथोरेक्स तथा मीसोथोरेक्स के वीच तथा दूसरा जोड़ा मीसोथोरेक्स एवम् मेटाथोरेक्स के वीच की आर्थ्रोडियल झिल्ली में स्थित होता है। प्रत्येक श्वसन-रन्ध्र भीतर की ओर एक छोटे-से ट्रेकियल कक्ष (tracheal chamber) या एट्रियम (atrium) में खुलता है। एक ओर के समस्त ट्रेकियल कक्ष मिलकर मुख्य ट्रेकियल ट्रंक (main tracheal trunk) में खुलते हैं।

2. ट्रेकिया (Trachea)—दोनों ओर मुख्य श्वास-नलियों से वहुत-से **ट्रेकिया** (trachea) निकलते हैं। ये अधिक शाखान्वित होकर वहुत महीन नलिकाएँ वना लेते है जो **ट्रेकिओल्स** (tracheoles) कहलाते हैं और शरीर के समस्त अंगों में पहुँचकर उन्हें आक्सीजन पहुँचाते हैं। प्रत्येक ट्रेकिया चमकीले सफेद रंग की या रंगहीन एक्टोडर्म की वनी नली है जो त्वचा से वनती है। भीतर की ओर यह क्यूटिकल से आस्तारित होती है जो **इण्टिमा** (intima) कहलाती है। इण्टिमा क्यूटिकल के वर्तुल विधि से लिपटे रहने से वनती है। इसकी उपस्थिति के कारण ट्रेकिया की पतली दीवारें चिपक नहीं पातीं।
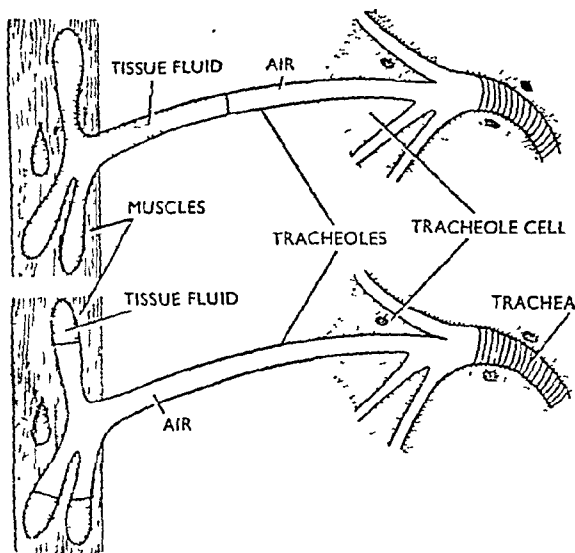
चित्र ६·११. ट्रेकियल श्वसन की दो अवस्थाएँ (Two stages in tracheal respiration)
A. निष्क्रिय अवस्था (Passive stage) B. सक्रिय अवस्था (Active stage)

ट्रेकिया की महीन शाखाएँ 1 micron से 1/25,000 इन्च तक होती हैं। ये ट्रेकियोल्स (tracheoles) कहलाती हैं। ये एक ही कोशिका के भीतर स्थित आन्तर-कोशिका नाल (intracellular canals) हैं जिन पर क्यूटिकल नहीं होती,

परन्तु ये एक विशेष प्रकार के प्रोटीन, ट्रैकिन (trachin) से आस्तारित होते है। इनकी आन्तर-कोशिका गुहा या खाली स्थान में ऊतक-द्रव (tissue fluid) भरा रहता है। इनमें से होकर ही ऑक्सीजन ऊतकों में पहुँचती है।

श्वसन क्रिया (Mechanism of respiration)—शरीर की पेशियों के क्रमिक संकुचन एवम् शिथिलन से उदर में क्रमिक **विमोचन** तथा **संकुचन** की गति होती है जिससे **श्वसन गतियाँ** (respiratory movements) उत्पन्न होती है। इन गतियों द्वारा ही वायु ट्रैकियल तन्त्र में पहुँचती है तथा बाहर निकलती है। ट्रैकियोल्स के भीतर वायु की O_2 ऊतक द्रव में घुल जाती है और विसरण विधि (diffusion) द्वारा ऊतकों में पहुँचती है। अधिकांश CO_2 ऊतकों से तथा काइटिन के बने बाह्यकंकाल मे से होकर निकल जाती है। शेष CO_2 ट्रैकिया मे पायी जाने वाली वायु के साथ बाहर निकल जाती है।

कॉकरोच में परिवहन-तन्त्र श्वसन में कोई भाग नही लेता, अतः इसका श्वसन-तन्त्र अपेक्षाकृत बहुत अधिक विकसित होता है।

प्रश्न 69. काकरोच एवम् बिच्छू के श्वसन अंगों का वर्णन कीजिये तथा समझाइये कि दोनों में से किसके श्वसन अंग अधिक विकसित हैं।

Describe the respiratory organs of Cockroach and Scorpion and also indicate in which of the two animals the process of respiration is more efficient. (*Lucknow 1954*)

काकरोच के श्वसन अंगों के लिए प्रश्न 68 देखिये।

बिच्छू के श्वसन अंगों के लिए प्रश्न 61 देखिये।

कॉकरोच का श्वसन-तन्त्र बिच्छू के श्वसन-तन्त्र की अपेक्षा बहुत अधिक विकसित है, क्योकि काकरोच मे श्वसन-तन्त्र शरीर के विभिन्न अगों को वायु पहुँचाता है जबकि बिच्छू मे यह कार्य परिवहन-तन्त्र द्वारा पूर्ण होता है।

प्रश्न 70. काकरोच के नेत्र की संरचना एवम् इसके कार्यो का वर्णन करिये।

Give an acconnt of the structure of the eye of cockroach and explain its functions. (*Agra 1972*)

कॉकरोच के नेत्र अवृंत, बडे तथा सिर के पार्श्व में स्थित होते है। ये संयुक्त प्रकार के (compound) होते है और प्रत्येक नेत्र मे हजारों की संख्या में नेत्रांशक (ommatidia) या ओसेलाई (ocelli) होते है।

संरचना एवम् कार्यो के लिए कृपया प्रश्न 52 देखिये।

प्रश्न 71. पेरिप्लेनेटा अमेरिकाना के मादा जनन अंगों का वर्णन करिये तथा ऊथिकम के निर्माण का उल्लेख कीजिये।

Describe the female reproductive organs of *Periplaneta americana*. Comment on the formation of oothecum. (*Nagpur 1968*)

आप नर एवम् मादा कॉकरोच में किस प्रकार अन्तर करेंगे? इसके जनन अंगों एवम् ऊथिकम के निर्माण का वर्णन कीजिये।

How will you distinguish between a male and a female cockroach? Describe its reproductive system and comment on the formation of oothecum. (*Nagpur 1968*)

कॉकरोच (Cockroach) एकलिंगी जन्तु है। नर तथा मादा कॉकरोच एक दूसरे से निम्नलिखित भिन्नताओ के कारण पहचाने जा सकते है :—

(1) मादा कॉकरोच में एण्टिनी शरीर से लम्बे होते हैं और उनके आधार का तीसरा खण्ड दूसरे की अपेक्षा बड़ा होता है। नर कॉकरोच में एण्टिनी शरीर से कुछ ही लम्बे होते हैं और उनके दूसरे व तीसरे खण्ड लगभग बराबर लम्बाई के होते हैं।

(2) मादा में पंख छोटे किन्तु नर में बड़े होते हैं।

(3) मादा में मीसोथोरेक्स (mesothorax) का स्टरनम विभक्त रहता है, नर में ऐसा नहीं होता।

(4) मादा में उदर चौड़ा होता है। नर में ऐसा नहीं होता।

(5) मादा में उदर के अन्तिम खण्ड पर सिर्फ एक जोड़ी गुद-अनुलाग (anal cerci) होते हैं, नर में दो जोड़ी उपांग पाये जाते हैं, एक जोड़ी **एनल सरसाइ** तथा दूसरी जोड़ी **एनल स्टाइल्स** (anal styles)।

नर जनन अंग (Male Reproductive Organs)

1. एक जोड़ी वृषण
2. एक जोड़ी शुक्रवाहिनियाँ
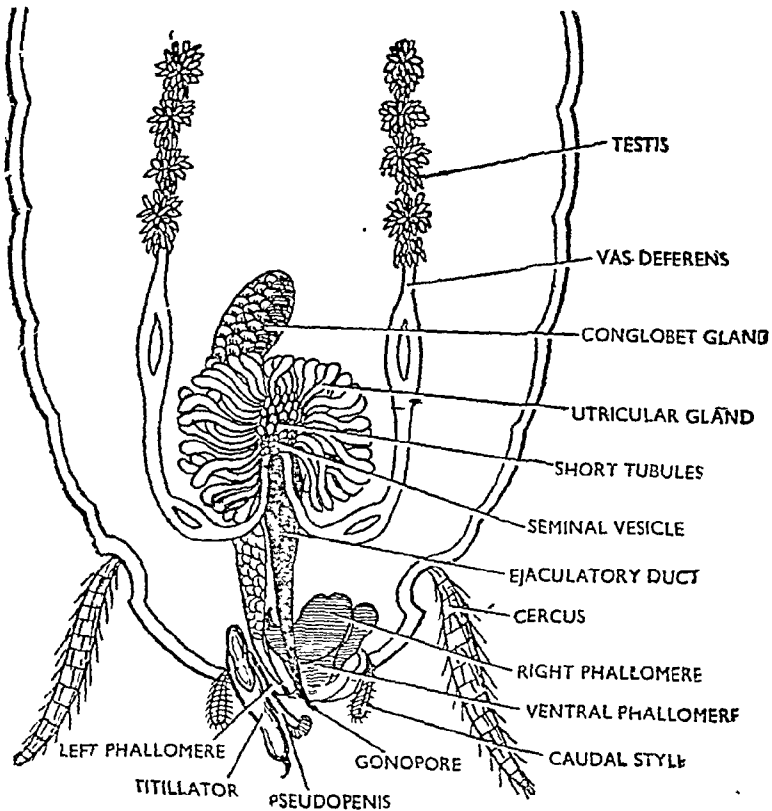
चित्र ९·१२. कॉकरोच के नर जनन अंग (Male reproductive organs of *Cockroach*)

3. एक जोड़ी शुक्राशय
4. डक्टस इजेकुलेटोरियस
5. मशरूम ग्रन्थि
6. कोंग्लोबेट ग्रन्थि
7. मैथुन उपांग

1. वृषण (Testes)—कॉकरोच में एक जोड़ी वृषण उदर (abdomen) के पाँचवें तथा छठे खण्ड के बीच टरगा (terga) के ठीक नीचे शरीर के दायीं व बायीं ओर पाये जाते हैं। प्रत्येक वृषण 30–40 गोल, सफेद तथा पारदर्शी वेसिकल्स (vesicles) का बना होता है, जो एक महीन नलिका के दोनों ओर तीन या चार समूहों में लगे रहते हैं।

प्रत्येक वृषण से एक बहुत महीन नली निकलती है जिसे **शुक्रवाहिनी** (vas-deferens) कहते हैं। दोनों तरफ की शुक्रवाहिनियाँ अधर तल तथा अन्दर की ओर बढ़ती हैं और इस प्रकार 'U' के आकार की नलियाँ बनती हैं। मध्य रेखा पर ये एक-दूसरे से मिलकर **डक्टस इजेकुलेटोरियस** (ductus ejaculatorius) बनाती हैं। मिलने से पहले ये नलिकाएँ चौड़ी होकर **शुक्राशय** (seminal vesicle) बनाती हैं। इनमें शुक्राणु एकत्रित होते हैं। शुक्राशयों में अनेक छोटी-छोटी सफेद नलिकाएँ खुलती हैं, जो अन्तिम सिरे पर बन्द होती है। इन नलिकाओं का गुच्छा छत्राकार (mushroom-shaped) होता है, अतः इसे **मशरूम ग्रन्थि** (mushroom gland) भी कहते हैं। इनसे एक प्रकार का द्रव निकलता है, जिससे शुक्राणुओं का पोषण होता है। ये नलिकाएँ दो प्रकार की होती हैं। बाहर की लम्बी परिधीय नलिकाएँ तथा अन्दर की केन्द्रीय नलिकाएँ कहलाती हैं।

डक्टस इजेकुलेटोरियस आगे बढ़कर नवें तथा दसवें खण्ड के स्टरनम (sternum) के बीच **नर जनन छिद्र** (male reproductive aperture) द्वारा बाहर खुलती है। इस छिद्र के चारों ओर काइटिन के बने उभार निकले रहते हैं, जिन्हें **मैथुन प्रवर्धक** (copulatory processes) कहते हैं। ये संख्या में 6 होते हैं—एक **टिटिलेटर** (titillator), एक **स्युडोपेनिस** (pseudopenis) तथा चार **फैलोमियर्स** (phallomeres)। इजेकुलेटोरी नलिका के नीचे एक चपटी पत्ती के आकार की ग्रन्थि होती है जिसे **कोंग्लोबेट ग्रन्थि** (conglobate gland) कहते हैं। यह ग्रन्थि नर जनन छिद्र के पास ही खुलती है। यद्यपि इसका कार्य अभी निश्चित नहीं है, किन्तु माना जाता है कि इसमें एक प्रकार का गन्धयुक्त द्रव बनता है जिससे यह शत्रुओं से अपनी रक्षा करता है।

मादा जनन अंग (Female Reproductive Organs)

1. एक जोड़ी अण्डाशय
2. एक जोड़ी अण्डवाहिनियाँ
3. योनि
4. कोलेट्रल ग्रन्थियाँ
5. जनन वेश्म या गोनेपोफिसिस
6. स्परमैथिका

मादा कॉकरोच में एक जोड़ी अण्डाशय (ovaries) आहारनाल के दोनों ओर वसा काय (fat bodies) में ढके हुए तीसरे खण्ड से छठे खण्ड तक फैले रहते

हैं। प्रत्येक अण्डाशय आठ **अण्डाशय-नलिकाओं** या **ओवेरियोल्स** (ovarioles) का बना होता है। प्रत्येक ओवेरियोल नीचे की तरफ चौड़ा तथा ऊपर की तरफ धागे के समान पतला होता है। एक ओर की सभी ओवेरियोल नलिकाएँ मिलकर एक मूल नलिका बना लेती हैं, जो वसा काय में पड़ी रहती है। बड़े तथा परिपक्व अण्डे नीचे की ओर तथा छोटे अण्डे ऊपर की ओर होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक ओवेरियोल माला के दानों के समान रचना होती है। प्रत्येक ओर के आठों ओवेरियोल एक **अण्डवाहिनी** (oviduct) में खुलते हैं। दोनों ओर की अण्डवाहिनियाँ मिलकर **योनि** (vagina or uterus) का निर्माण करती हैं जिसकी दीवारें पेशीयुक्त होती हैं। योनि आठवें खण्ड के स्टरनम में **मादा जनन छिद्र** द्वारा **जनन वेश्म** (genital atrium) में खुलती है। मादा जनन छिद्र के चारों ओर छः प्रवर्ध होते हैं। सातवें खण्ड का स्टरनम बड़ा तथा नाव के आकार का होता है।
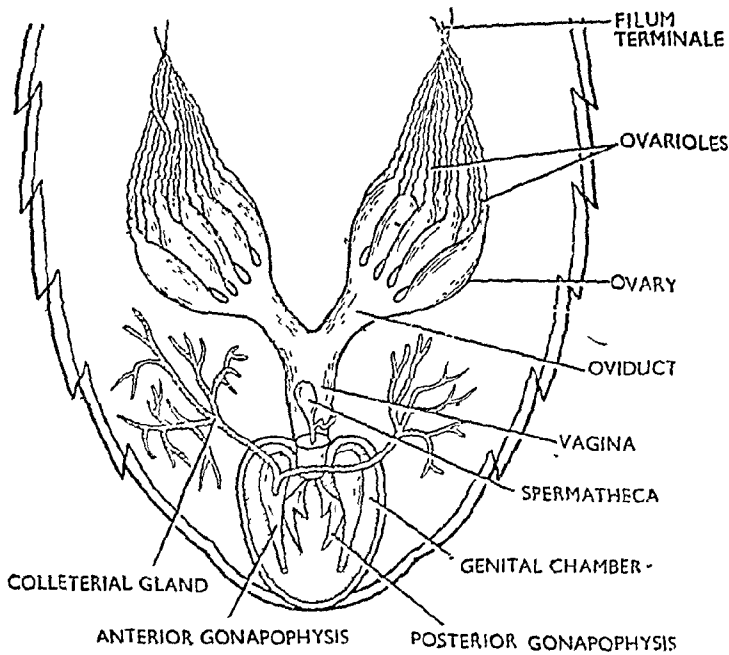
चित्र ९·१३. कॉकरोच के मादा जनन अंग (Female reproductive organs of Cockorach)

अधर नर्व-कॉर्ड के अन्तिम गैंगलिओन के पीछे एक **स्परमैथिका** (spermatheca) पायी जाती है। इसका एक भाग छोटे थैले के समान और दूसरा कुण्डलित नली के आकार का होता है। पहला भाग क्रियाशील होता है और शुक्राणु एकत्रित करता है। स्परमैथिका के दोनों भागों से एक-एक नली निकलती है, जो आपस में मिलकर एक नली द्वारा योनि के पिछले भाग में खुलती हैं। स्परमैथिका के पास से ही एक जोड़ी बहुशाखीय ग्रन्थियाँ निकलती हैं, जिन्हें **कोलेट्रल ग्रन्थियाँ** कहते हैं। ये सातवें से दसवें खण्ड तक फैली रहती हैं। इनसे एक प्रकार का द्रव बनता है जो ऊथिका

(ootheca) का निर्माण करता है। ये ग्रन्थियाँ दो नलिकाओं द्वारा जनन वेश्म (genital atrium) में खुलती हैं। जनन वेश्म उदर के पिछले खण्ड के भीतर धँस जाने से बनता है। इसका अगला भाग **जनन वेश्म** (genital chamber) तथा पिछला भाग **ऊथिकल वेश्म** (oothecal chamber) कहलाता है।
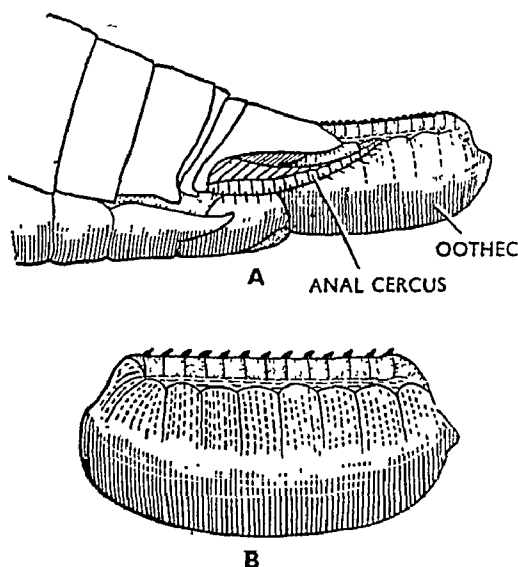
चित्र ९·१४. कॉकरोच में ऊथिकम का निर्माण (Formation of oothecum in *Cockroach*)

ऊथिकम का निर्माण (Formation of oothecum)—निषेचन के पश्चात् अण्डों के समूहों के चारों ओर कोलेटरल ग्रन्थियों द्वारा स्रावित द्रव एकत्रित हो जाता है जो सूखने पर सख्त होकर गहरे भूरे रंग का तथा पर्स के आकार का अण्ड-खोल (egg case) बनाता है। यह **ऊथिकम** (oothecm) कहलाता है और स्क्लेरोप्रोटीन नामक पदार्थ का बना होता है। ओविपोजीटर तथा ऊथिकल कक्ष की दीवारों द्वारा ऊथिकम को निश्चित आकार प्रदान किया जाता है।

ऊथिकम लगभग 12 mm. लम्बा, पर्स के आकार का तथा काइटिन का बना हुआ भूरा कोष है जिसका एक किनारा सीधा तथा शिखर के समान होता है। इस पर बहुत-से दाँतेदार उभार होते है। ऊथिकम के अन्दर सोलह अण्डे होते है जो दो लम्बवत् पंक्तियों में विन्यसित रहते हैं। इनका विन्यास सिगरेट केस में लगी सिगरेटों के समान होता है। पूर्ण निर्मित ऊथिकम कई दिन तक मादा के ऊथिकम कक्ष में पड़ा रहता है जो अक्सर उदर के पिछले भाग से बाहर निकला रहता है। कुछ दिन पश्चात् यह किसी शुष्क, गर्म तथा अन्धकारपूर्ण स्थान पर छोड़ दिया जाता है। यहाँ इसके अन्दर भ्रूण का वर्धन होता है और निम्फ इसको तोड़कर बाहर निकल आते हैं। अतः कॉकरोच के जीवन इतिहास में **अपूर्ण रूपान्तरण** (incomplete metamorphosis) होता है।
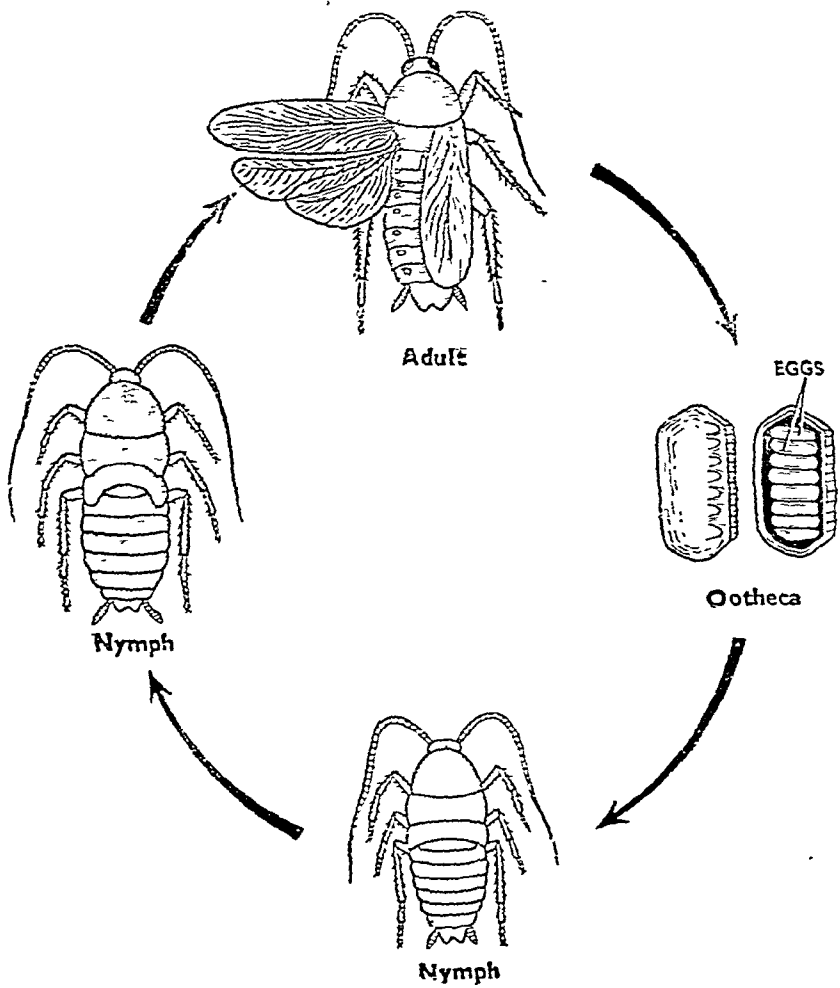
चित्र ८·१५. कॉकरोच का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Cockroach*)

अध्याय 10

टिड्डा
(Grasshopper)

फाइलम— आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास — इन्सेक्टा (*Insecta*)
आर्डर — आर्थोप्टेरा (*Orthoptera*)
जीनस — टिड्डा (*Grasshopper*)

प्रश्न 72. टिड्डे (grasshopper) के पाचन अंगों एवम् पाचन-क्रिया का वर्णन कीजिये।

Describe the digestive organs and process of digestion in grasshopper.

पाचन अंग (Digestive Organs)

टिड्डे की आहार-नाल को तीन भागों में विभाजित किया गया है :—

1. अग्रात्र (Foregut or Stomodaeum)
2. मध्यात्र (Midgut or Mesenteron)
3. पश्चांत्र (Hindgut or Proctodaeum)
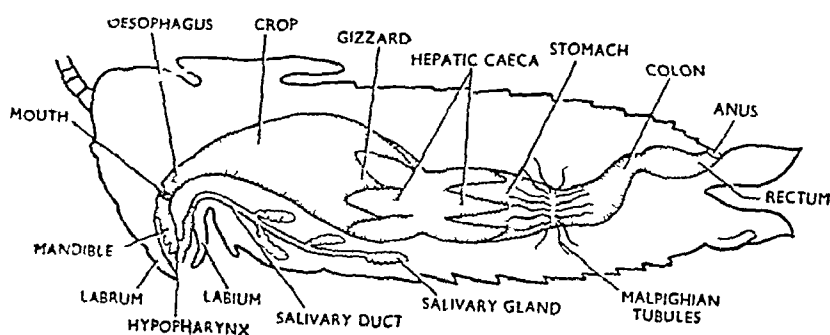
चित्र १० १. टिड्डे की आहार-नाल (Alimentary canal of *Grasshopper*)

1. अग्रांत्र (Foregut)—यह आहार-नाल का अगला भाग है जिसका आन्तरिक स्तर क्यूटिकल का होता है। यह मुख से प्रारम्भ होती है और इसमे निम्नलिखित भाग होते हैं :—

(*i*) **मुख तथा मुखगुहा या ग्रसनी** (Mouth and mouth cavity or pharynx)—मुख सिर पर मध्य-अधर तल पर स्थित दरार के रूप मे होता है तथा मुख उपागों से घिरा रहता है। मुख उपाग काटने तथा चबाने वाले (biting

and chewing type) होते हैं तथा इनमें एक जोड़ी **मैण्डिबल्स**, दो जोड़ी **मैक्सिली** तथा एक **हाइपोफैरिंक्स** होते हैं। मुख मुखगुहा में खुलता है।

मुखगुहा या ग्रसनी एक छोटा-सा कक्ष है। इसके फर्श पर हाइपोफैरिंक्स के आधार पर लार ग्रन्थि की वाहिनी खुलती है। लार ग्रन्थियों से आया हुआ लार इस मुखगुहा में आता है। इसमें **अमाइलेज** (amylase) नामक जलविश्लेषक (hydrolytic) विकर होता है। मुखगुहा ग्रसनी में खुलती है।

(*ii*) **ग्रासनली** (Oesophagus)—ग्रासनली एक सँकरी खड़ी नलिका है जो गर्दन में ऊपर की ओर वढती है तथा वक्ष में पहुँचकर क्रॉप में खुलती है।

(*iii*) **क्रॉप** (Crop)—यह पतली दीवार वाली थैलेनुमा रचना है जो वक्षगुहा के पिछले सिरे तक फैली होती है। इसकी दीवारें लचीली होती हैं और भोजन को संचित रखने के लिए इनका आयतन वढ़ या घट सकता है। क्रॉप के अन्दर स्टार्च, प्रोटीन तथा कुछ लिपिड या वसा का पाचन होता है। क्रॉप गिजार्ड में खुलता है।

(*iv*) **गिजार्ड** (Gizzard)—गिजार्ड या प्रोवेण्ट्रिक्युलस एक गोल पेशीय थैला है जिसकी दीवारें वहुत मोटी होती हैं। इसके अग्रिम भाग की आन्तरिक सतह पर काइटिन के वने दन्तक प्रवर्धों (teeth-like projections) की एक पंक्ति होती है जो भोजन को पीसकर महीन वनाते हैं। दन्तक पंक्ति के पीछे रोमयुक्त गद्देदार उभारों की दो पंक्तियाँ होती हैं। गिजार्ड का पिछला सिरा मध्यांत्र की गुहा में लटककर **ग्रसिका कपाट** (oesophageal valve) वनाता है। ग्रसिका कपाट मध्यांत्र की कोशिकाओं द्वारा स्रावित द्रव को एक नालाकार **पैरिट्राफिक झिल्ली** (peritrophic membrane) में वदल देता है। गिजार्ड तथा मध्यांत्र के वीच एक **संवरणी पेशी** होती है जो भोजन को मध्यांत्र की ओर भेजती है।

2. मध्यांत्र (Midgut or mesenteron)—मध्यांत्र का आन्तरिक स्तर एपिथीलियम का बना होता है। मध्यांत्र एक लम्वी नली के रूप में होती है जो उदर भाग में स्थित होती है और पश्चांत्र में खुलती है। यह **वेण्ट्रिक्युलस** (ventriculus) भी कहलाती है। इसकी दीवारें पतली होती हैं। इसके दूरस्थ सिरे पर संवरणी पेशी (sphincter muscle) होती है जो पाइलोरिक वाल्व वनाती है। इसकी उपस्थिति से पश्चांत्र में पहुँचा हुआ भोजन एवम् अन्य उत्सर्जी पदार्थ (यूरिक एसिड इत्यादि) वापस मध्यांत्र में नहीं लौट पाते।

अग्रांत्र तथा मध्यांत्र के मिलने के स्थान पर जठर अन्धनाल (gastric caeca) के छ: जोड़े पाये जाते हैं जो मध्यांत्र की गुहा में खुलते हैं। प्रत्येक अंधनाल (caceum) लम्वी शंक्वाकार धानी के रूप में होती है जो पाचक रस स्रावित करती है तथा पचे हुए भोजन के शोपण में मदद करती है। प्रत्येक जोड़े की धानियों में से एक अपने मूल स्थान से आगे की ओर वढ़ी होती है और दूसरी पीछे की ओर।

3. पश्चांत्र (Hindgut)—पश्चांत्र (hindgut or proctodaeum) भीतर की ओर क्यूटिकल से आस्तारित होती है और तीन भागों मे विभाजित होती है—**छोटी आंत्र** (ileum), **वड़ी आंत्र** (colon) तथा **मलाशय** (rectum)। पश्चांत्र का अगला फूला हुआ भाग छोटी आंत्र, मध्य का सँकरा भाग वड़ी आंत्र, तथा पिछला फूला भाग मलाशय होता है। मलाशय गुदाद्वार द्वारा वाहर को खुलता

है। यह वाह्य-कंकाल की पोडिकल (podical) पट्टिकाओं के बीच स्थित होता है।

छोटी आंत्र के अगले भाग में वहुत-सी अंध नलिकाएँ खुलती हैं जो **माल्पीघियन नालें** (Malpighian tubules) कहलाती है। ये जन्तु के उत्सर्जी अंग हैं तथा उत्सर्जी पदार्थ को पश्चांत्र की गुहा में डाल देते है। पश्चांत्र के मुख्यत: दो कार्य हैं :—

(*i*) भोजन तथा मूत्र से पानी का अवशोपण
(*ii*) अपच भोजन तथा यूरिक एसिड का उत्सर्जन।

पोषण तथा पाचन (Feeding and Digestion)

टिड्डा शाकाहारी जन्तु है जो लगभग वही भोजन ग्रहण करता है जो मनुष्य द्वारा लिया जाता है। लेब्रम (labrum), लेबियम (labium) तथा अग्र टाँगों के द्वारा भोजन पकड़ कर मुख के सामने रखा जाता है। मैण्डिबल्स (mandibles) तथा मैक्सिली (maxillae) भोजन को चबाते हैं। लार रस भोजन को चिकना करता है और चवाने तथा निगलने में मदद करता है। इसमें पाचक विकर (digestive enzymes) भी होते है जिनकी मदद से भोजन का पाचन होता है। अधपचा भोजन ग्रसिका में से होता हुआ क्रॉप में पहुँचता है जहाँ यह कुछ समय के लिए संचित रहता है और अन्त में पेशीय गिजार्ड मे पहुँचता है। यहाँ भोजन अच्छी तरह से पिस कर लेई में परिवर्तित हो जाता है। लेई के समान भोजन छनकर मध्यांत्र मे पहुँचता है। गिजार्ड के आधार पर स्थित कपाट भोजन को मध्यांत्र से गिजार्ड में वापस आने से रोकता है। मध्यांत्र में पचे हुए भोजन तथा जल का अवशोषण होता है। शेष अवशोषण की क्रिया पश्चांत्र में पूर्ण होती है। बचा हुआ शुष्क अपच पदार्थ गुदाद्वार द्वारा वाहर निकाल दिया जाता है।

प्रश्न 73. टिड्डे के श्वसन अंगों एवम् श्वसन क्रिया का वर्णन कीजिये।

Describe the respiratory organs and mechanism of respiration in grasshopper.

श्वसन अंग (Respiratory Organs)

टिड्डे के श्वसन अंग अत्यन्त विकसित होते है। इनमें शाखाजालित वायु नलिकाएँ या ट्रेकिया (trachea) या **श्वसन नलिकाएँ** होती है। ये समस्त शरीर के
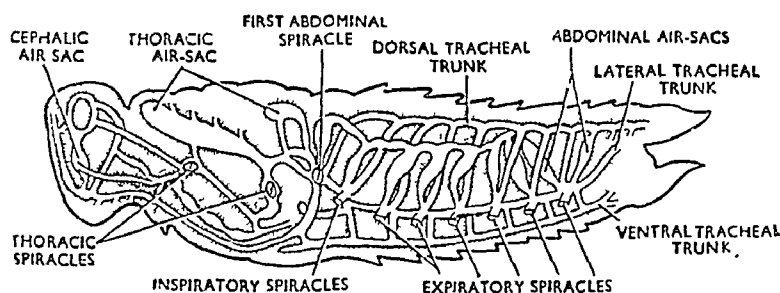
चित्र १०·२. टिड्डे में श्वसन नलिकाओं का विन्यास
(Arrangement of trachea in *Grasshopper*)

अन्दर एक जाल-सा वना लेती हैं तथा दस जोड़ी छिद्रों द्वारा वाहर खुलती हैं। ये छिद्र **श्वास-रन्ध्र** (spiracles) कहलाते हैं।

श्वास-रन्ध्र (Spiracle or stigmata)—ये दस जोड़ी दरार के समान सँकरे छिद्र हैं जो शरीर की पार्श्व सतह पर आर्थ्रोडियल झिल्ली (arthrodial membrane) पर स्थित होते हैं। इनके दो जोड़े वक्ष (thoracic) तथा शेष आठ उदर भाग में स्थित होते हैं। प्रत्येक श्वास-रन्ध्र एक गोल छल्लेनुमा स्क्लेराइट (sclerite) द्वारा घिरा रहता है जो प्रिट्रीम (pritreme) कहलाता है। श्वास-रन्ध्र का छिद्र एक द्वि-ओष्ठीय कपाट द्वारा रक्षित रहता है जो श्वास-रन्ध्र के खुलने तथा वन्द होने की क्रिया का नियमन करता है। इसके अतिरिक्त श्वास-रन्ध्र के किनारे के साथ पक्ष्म होते हैं जो धूल तथा पदार्थों को श्वास-रन्ध्र में जाने से रोकते हैं। टिड्डे में प्रथम चार जोड़ी श्वास-रन्ध्र निश्वसन के समय ही खुलते हैं और **निश्वसनीय श्वास-रन्ध्र** (inspiratory spiracles) कहलाते हैं। अन्तिम छः जोड़ी श्वास-रन्ध्र निःश्वसन के समय ही खुलते हैं और **निःश्वसनीय श्वास-रन्ध्र** (expiratory spiracles) कहलाते हैं। श्वास-रन्ध्रों से सूक्ष्म ट्रेकियोल्स निकलती हैं जो पार्श्वीय स्पायरेकुलर ट्रेकिया से सम्बन्धित होती हैं। ये नलिकाएँ अन्तिम श्वास-रन्ध्र से लेकर वक्ष भाग तक फैली रहती हैं।

श्वास नलिकाएँ या ट्रेकिया (Tracheae)—टिड्डे के शरीर में एक जोड़ी **पार्श्व श्वास नलिकाएँ**, एक **पृष्ठ लम्बवत् श्वास नली** तथा एक **अधर लम्बवत् श्वास नली** एवम् उनको जोड़ने वाली अनुप्रस्थ श्वास नलिकाएँ होती हैं। शरीर के दोनों ओर पायी जाने वाली श्वास नलिकाएँ शाखाजालित अनुप्रस्थ श्वास नलिकाओं के जाल से जुड़ी रहती हैं। प्रत्येक श्वास-रन्ध्र से निकलने वाली सूक्ष्म ट्रेकियोल से एक वड़ा किन्तु पतली दीवारों वाला **वायु-कोष** (air-sac) निकलता है। अतः टिड्डे में दस जोड़ी वायु-कोष या वायु-धमनियाँ पायी जाती हैं जिनमें से दो वक्ष भाग में तथा शेष आठ उदर भाग में स्थित होती हैं। इनके अतिरिक्त सूक्ष्म वायु-कोष समस्त ट्रेकियल तन्त्र में पाये जाते हैं।

प्रत्येक श्वास नलिका त्वचा की एक्टोडर्म के अन्तर्गमन से वनी नलिका है जिसका आन्तरिक स्तर क्यूटिकल का वना होता है। क्यूटिकल का स्तर सर्पिलाकार उभार प्रदर्शित करता है और **इनटिमा** (intima) कहलाता है। इसकी उपस्थिति के कारण ट्रेकिया की दीवारें चिपक नहीं पातीं। इनटिमा के वाहर की ओर शल्की उपकला का स्तर होता है जो त्वचा की एपिडर्मिस से सम्बन्धित होती है। ट्रेकिया की सूक्ष्मतम शाखाएँ **ट्रेकियोल्स** (tracheoles) कहलाती हैं। इनका व्यास केवल 1μ होता है और इनमें सर्पिलाकार क्यूटिकल नहीं होती। इनकी
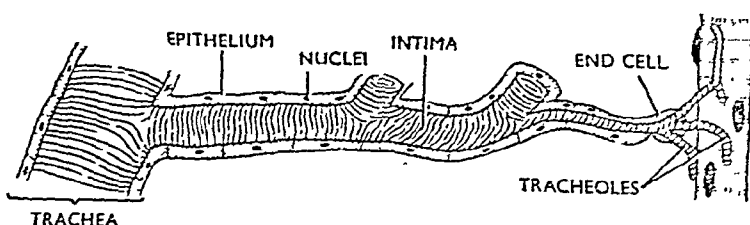
चित्र १०·३. टिड्डे का ट्रेकियोल (Tracheole of *Grasshopper*)

गुहा में ऊतक-द्रव (tissue-fluid) भरा रहता है जो वायु की आक्सीजन को अपने में घोल लेता है और उसे शरीर के ऊतकों तक पहुँचाता है। इसी प्रकार यह शरीर

के ऊतकों से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड लेकर उसे ट्रेकिया की वायु में पहुँचाता है प्रत्येक ट्रेकिओल ट्रेकियोब्लास्ट कोशिका (tracheoblast's cell) का लम्ब निकला हुआ प्रवर्ध है।

3. वायु-कोष (Air-sacs)—वायु-कोष ट्रेकियोल के फूले हुए भाग जिनका व्यास काफी कम होता है, तथा दीवारें बहुत पतली होती हैं। ये चौड़ाई फैल और सिकुड़ सकते हैं। बड़े कोष निश्वसन के समय फूल जाते हैं किन्तु छोटे को निःश्वसन के समय फूलते हैं।

श्वसन क्रिया (Mechanism of Respiration)

श्वसन क्रिया को तीन प्रावस्थाओं में बाँटा जा सकता है :—

1. श्वसन
2. सम्पीडन
3. निःश्वसन

1. श्वसन (Inspiration)—निश्वसन क्रिया में उदर पेशियाँ अपनी पूव वस्था में आती हैं जिससे उदर-गुहा में वायु का दबाव कम हो जाता है। फलस्वरु निश्वसन में श्वास रन्ध्र खुल जाते हैं तथा शुद्ध वायु ट्रेकियोल्स एवम् बड़े वायु-को में भर जाती है।

2. सम्पीडन (Compression)—उदर पेशियों के सिकुड़ने से उदर-गुहा व आयतन कम हो जाता है और दबाव के कारण समस्त श्वास-रन्ध्र बन्द हो जाते हैं फलस्वरूप दवाव के कारण वायु छोटे वायुकोपों में पहुँच जाती है जो फूलकर व हो जाते हैं और वायु को ट्रेकियोल्स (tracheoles) में पहुँचा देते हैं।

3. निःश्वसन (Expiration)—उदर-पेशियों के अपनी पूर्वावस्था में आ के समय सूक्ष्म वायु-कोप सिकुड़ते हैं तथा वायु नि.श्वसीय श्वास-रन्ध्रों में से हो हुई शरीर के बाहर निकल जाती है। ट्रेकियोल्स को पूर्ण मात्रा में वायु पहुँचा में वायु-कोप बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। शरीर के ऊतकों को वायु विसरण द्वा प्राप्त होती है तथा कार्बन डाइ-ऑक्साइड भी विसरण के द्वारा ही ट्रेकियोल के अन्तिम सिरों पर ऊतक-द्रव में आ जाती है।

प्रश्न 74. टिड्डे के जनन-अंगों तथा इसके वर्धन का वर्णन कीजिये।

Describe the reproductive organs and process of developme of grasshopper.

जनन-अंग (Reproductive Organs)

टिड्डा एकलिंगी जन्तु है तथा इसकी मादा को ओवीपोजीटर की उपस्थि द्वारा नर से सरलतापूर्वक पहिचाना जा सकता है।

नर जनन-अंग (Male Reproductive Organs)

1. वृषण (Testes)—वृपण का एक जोड़ा उदर-गुहा के अगले भाग आंत्र के ऊपर से पृष्ठ-पार्श्व सतह पर स्थित होता है। प्रत्येक वृपण में बहुत-सी लम्ब तथा पतली नलिकाएँ या पुटक (follicles) होते हैं। प्रत्येक पुटक एक सूक्ष्म छि द्वारा शुक्रवाहिनी में खुलता है।

2. शुक्रवाहिनियाँ (Vasa deferentia)—एक जोड़ी शुक्रवाहिनियाँ वृप के पिछले सिरे से निकलती हैं। प्रत्येक शुक्रवाहिनी एक सँकरी मुड़ी हुई नली हो है जो बड़ी आंत्र के पार्श्व किनारे के साथ पश्च-अवर तल की ओर बढ़ती है औ

अन्त में सेमिनल वेसिकिल (seminal vesicle) में खुलती है।

3. शुक्र-प्रसेचिनी वाहिनी (Ejaculatory duct)—दोनों ओर की सेमिनल वेसिकिल मिलकर शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी बनाती हैं जो पश्चांत्र के पिछले भाग के नीचे पड़ी रहती है। इसमें एक जोड़ी कुण्डलित अतिरिक्त ग्रन्थियाँ खुलती हैं। ये एक प्रकार की झिल्लीनुमा पुटी बनाती हैं जिसमें शुक्राणु एकत्रित रहते हैं और मादा टिड्डे की योनि (vagina) में पहुँचते हैं। योनि-प्रसेचिनी वाहिनी का आन्तरिक स्तर क्यूटिकल का बना होता है। इसके बाहर मोटा पेशीय स्तर होता है। शुक्र-प्रसेचिनी वाहिनी का दूरस्थ सिरा शिश्न की तरह कार्य करता है।

चित्र १०·४. टिड्डे के नर जनन-अंग (Male reproductive organs of *Grasshopper*)

मादा जनन-अंग (Female Reproductive Organs)

1. अण्डाशय (Ovaries)—अण्डाशयों का एक जोड़ा उदर-गुहा के अगले भाग में आंत्र के दोनों ओर स्थित होता है। प्रत्येक अण्डाशय बहुत-सी नलिकाओं या ओवेरिओल्स (ovarioles) का बना होता है। प्रत्येक ओवेरिओल की भित्ति सरल अधिच्छद कोशिकाओं की बनी होती है। इसकी गुहा में वर्धन की विभिन्न अवस्थाओं में अण्डों की एक पंक्ति होती है। बड़े तथा पूर्ण विकसित अण्डे अपने आधार की ओर तथा छोटे अण्डे सिर की ओर स्थित होते हैं। एक पूर्ण विकसित अण्डे के कोशिकाद्रव्य में योक के असंख्य कण पाये जाते हैं तथा इसके चारों ओर एक पतला खोल होता है।

2. अण्ड-वाहिनियाँ (Oviducts)—प्रत्येक अण्डाशय के पिछले सिरे के बाहरी भाग से एक अण्ड-वाहिनी निकलती है जो पश्चान्त्र के पार्श्व किनारे के साथ पश्च-अधर तल की ओर बढ़ती है तथा अन्त में बड़ी आंत्र के नीचे दोनों ओर की अण्डवाहिनियाँ मिलकर योनि का निर्माण करती हैं।

3. योनि (Vagina)—यह बड़ी आंत्र के नीचे मध्य-अधर तल पर स्थित अपेक्षाकृत चौड़ी नलिका है जिसमें स्परमैथिका (spermatheca) खुलता है। स्परमैथिका में मैथुन के फलस्वरूप आये हुए शुक्राणु संचित रहते हैं।

4. कोलेट्रल ग्रन्थियाँ (Collateral glands)—एक जोड़ी नालाकार ग्रन्थियाँ योनि में खुलकर झाग के समान पदार्थ जमा करती हैं। यह निषेचित अण्डे के चारों ओर कठोर होकर प्लग या डाट के समान रचना का निर्माण करता है।

परिवर्धन (Development)

मैथुन (Copulation)—ग्रीष्म-काल के अन्त में टिड्डे में मैथुन क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप नर द्वारा शुक्राणु मादा के स्परमैथिका में जमा कर दिये जाते हैं। शुक्राणु एक समूह में होते हैं और **स्पर्मेटोफोर** (spermatophore) में बन्द रहते हैं जो एक झिल्ली नुमा पुटी में बन्द होता है। यह आवरण योनि में पहुँचकर नष्ट हो जाता है तथा शुक्राणु स्वतन्त्र हो जाते हैं। अण्डरोपण से पहले मैथुन क्रिया कई बार दोहराई जाती है।
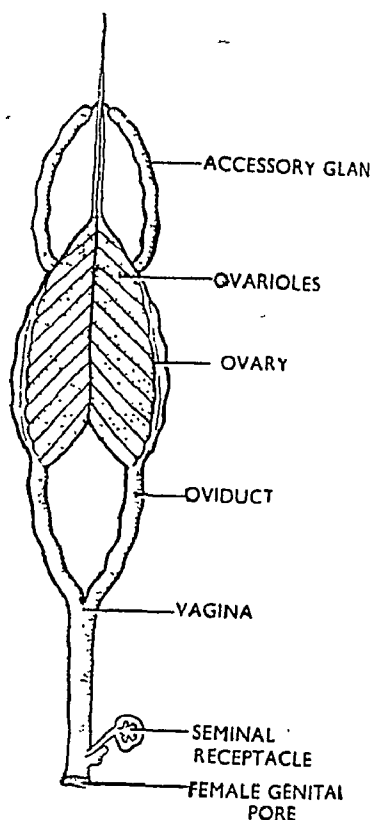
चित्र १०·५. टिड्डे के मादा जनन-अंग (Female reproductive organs of *Grasshopper*)

निषेचन (Fertilization)—निषेचन क्रिया योनि के अन्दर होती है। अण्डखोल में स्थित एक छोटे-से छिद्र में से शुक्राणु अण्डे के अन्दर पहुँचता है। यह छिद्र माइक्रोपाइल कहलाता है। शुक्राणु तथा अण्डे के केन्द्रकों के समेकन के पश्चात् अण्डे की परिधि पर ब्लास्टोडर्म का निर्माण होता है। इसी से भ्रूण का विकास होता है।

अण्डरोपण (Oviposition)—मैथुन के कुछ समय पश्चात् मादा नम भूमि में छोटी-सी सुरंग बनाकर उसमें अण्डे जमा कर देती है। एक झुण्ड में लगभग 20 अण्डे होते हैं जो चिपचिपे पदार्थ द्वारा एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। एक बार में अधिक से अधिक 200 अण्डे दिये जाते हैं जो दस झुण्डों या समूहों में होते हैं।
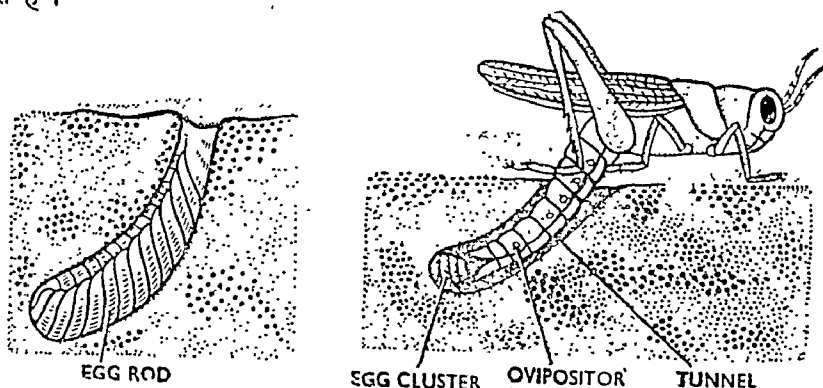
चित्र १०·६. टिड्डे में अण्डरोपण (Oviposition in *Grasshopper*)

वर्धन (Development)—अण्डरोपण के पश्चात् ही भ्रूणवर्धन प्रारम्भ होता है। युग्नज (zygote) का केन्द्रक बारम्बार समसूत्रण विभाजन द्वारा विभाजित होकर

योक के चारों ओर एक परिधि स्तर बना लेता है। यह ब्लास्टोडर्म (blastoderm) कहलाता है। ब्लास्टोडर्म के अधर भाग में कोशिकाओं के विभाजन के फलस्वरूप अधर तल अपेक्षाकृत मोटा हो जाता है जो जनन-पट्टी (germ band) बनाता है। इसी से भ्रूण के समस्त अंगों का निर्माण होता है।

भ्रूणवर्धन की क्रिया लगभग तीन सप्ताह में पूर्ण होती है जिसके पश्चात् भ्रूण विश्रामावस्था में पहुँच जाता है। यह अवस्था डायपॉज (diapause) कहलाती है। इस अवस्था में यह शरद्काल की प्रतिकूल परिस्थितियों को आराम से गुजार
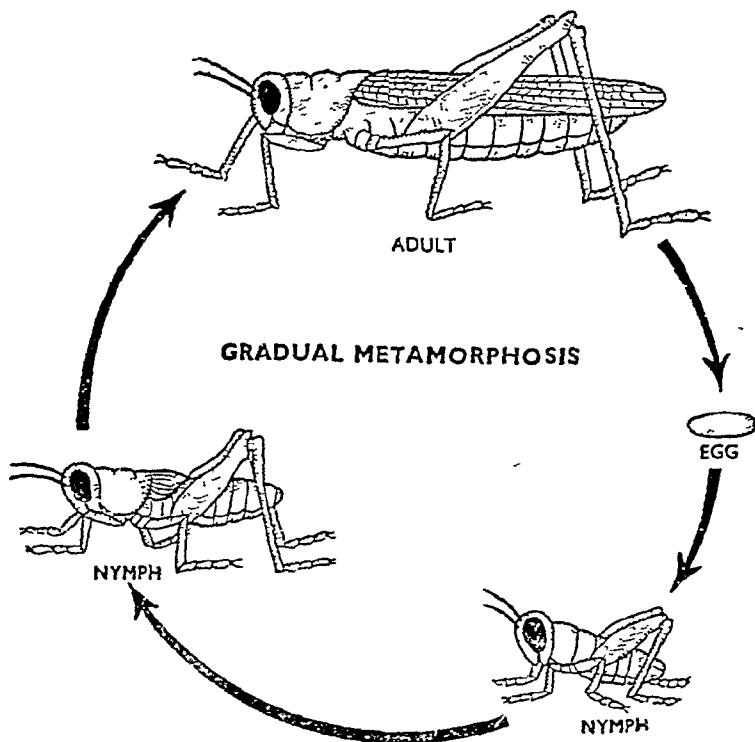
चित्र १०·७. टिड्डे का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Grasshopper*)

देता है। वसन्त ऋतु आने पर इसमें पुनः वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है तथा अण्डोद्भेदन के फलस्वरूप अण्डे से शिशु टिड्डा निकलता है जो निम्फ (nymph) कहलाता है। यह रचना में प्रौढ़ टिड्डे के समान होता है किन्तु इसका आकार छोटा होता है। इसका सिर अपेक्षाकृत बड़ा होता है तथा वक्ष भाग में पंख नहीं होते। हरे पौधों की पत्तियाँ खाकर यह आकार में बढ़ता है और पाँच बार त्वक्विमोचन (moulting) के पश्चात् प्रौढ़ जन्तु बन जाता है। त्वक्विमोचन के समय ही इस पर पंख भी बन जाते हैं। इस प्रकार के वर्धन में अपूर्ण रूपान्तरण होता है।

प्रश्न 75. टिड्डे के मादा जनन अंगों का नामांकित चित्र बनाइये।

Draw labelled diagram of female reproductory organs of gasshopper.

(*Gorakhpur 1969*)

कृपया चित्र 10·5 देखिये।

अध्याय 11

क्लास इन्सेक्टा
(Class Insecta)

प्रश्न 76. क्लास इन्सेक्टा के विशिष्ट गुण बताइये। एनोफिलीज के मुख-उपांगों का वर्णन कीजिये।

Give the characters of class insecta. Describe the mouthparts of *Anopheles*. (*Agra 1962 ; Vikram'62*)

किसी कुतरने एवम् चूसने वाले कीट के उपांगों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the mouthparts of a biting and a sucking insect. (*Lucknow 1968*)

नर एवम् मादा एनोफिलीज के मुख-उपांगों एवम् पोषण विधि का वर्णन कीजिये।

Describe the mouthparts and feeding mechanism in male and female *Anopheles*. (*Lucknow 1960*)

इन्सेक्टा की साधारण विशेषताएँ
(General Characters of Class Insecta)

(*i*) ये वायवीय (aerial) जन्तु हैं जो पृथ्वी पर या जल में भी रहते हैं और वायु द्वारा श्वसन करते हैं।

(*ii*) इनका शरीर द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical) तथा खण्डयुक्त (metamerically segmented) होता है।

(*iii*) शरीर सिर, वक्ष तथा उदर में बँटा रहता है।

(*iv*) सिर प्रथम छः खण्डों के समेकन से बनता है तथा इस पर एक जोड़ी एण्टिनी (antennae), एक जोड़ी संयुक्त नेत्र (compound eyes), सरल नेत्र तथा मुख-उपांग होते हैं।

(*v*) मुख-उपागो मे एक जोड़ी मेण्डिबल्स, दो जोड़ी मैक्सिली तथा एक हाइपोफैरिक्स (hypopharynx) होता है। विभिन्न कीटो के मुख-भाग उनकी पोषण की आदतो के अनुरूप चबाने, काटने, चूसने या चुभाने वाले होते हैं।

(*vi*) वक्ष तीन खण्डो का बना होता है। इस पर तीन जोड़ी टाँगें तथा दो जोड़ी पंख होते हैं।

(*vii*) दो जोड़ी पंख समान या असमान हो सकते हैं। कुछ जन्तुओं में पंखों का केवल एक जोड़ा होता है ; कुछ में वह भी नही पाया जाता।

(*viii*) उदर मे 7 से 11 खण्ड पाये जाते हैं। एक जोड़ी एनल सरसाई (anal cerci) के अतिरिक्त उदर उपाग अनुपस्थित होते हैं।

(*ix*) श्वसन के लिए ट्रेकिया (trachea) होते हैं।

(*x*) उत्सर्जन माल्पीघियन नलिकाओं (malpighian tubules) द्वारा होता है।

(*xi*) आहार-नाल के साथ एक जोड़ी लार-ग्रन्थियाँ तथा 8 हिपेटिक सीका (hepatic caeca) होते है जो पाचक रस बनाते हैं।

(*xii*) नर तथा मादा जनन अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते है। निषेचन मादा के शरीर के भीतर होता है। वर्धन में कायान्तरण (metamorphosis) पूर्ण या अपूर्ण होता है और कभी-कभी कायान्तरण या रूपान्तरण होता ही नही।

एनोफिलीज के मुख-उपांग
(Mouthparts of Anopheles)

एनोफिलीज के मुख-उपांग लम्बे, छेदने तथा चूसने वाली (piercing and sucking) सूचिकाओं (stylets) के रूप में होते हैं जो प्रोबोसिस (proboscis) के भीतर सुरक्षित रहते हैं। मादा एनोफिलीज मनुष्य का रक्त चूसती है तथा नर फूलों के रसों पर जीवित रहता है।

एनोफिलीज के मुख-उपांगों में निम्न रचनाएँ होती हैं :—

1. एक जोड़ी मैण्डिबल्स
2. दो जोड़ी मैक्सिली
3. लेबियम या प्रोबोसिस
4. लेबरम तथा एपिफैरिंक्स
5. हाइपोफैरिंक्स

1. मैण्डिबल्स (Mandibles)—मैण्डिबल्स लम्बे, पतले तथा सूच्याकार (needle-like) सूचिकाएँ (stylets) हैं जिनके स्वतन्त्र दूरस्थ सिरे पर आरी के समान दाँत होते हैं। ये भेदक अंगों (piercing organs) के समान कार्य करते हैं तथा पोषक की त्वचा में छेद करते हैं। अतः मैण्डिबल्स केवल मादा में ही पाये जाते हैं, नर में नहीं।

चित्र ११·१. मादा एनोफिलीज के मुख-उपांग (Mouthparts of female *Anopheles*)

2. मैक्सिली (Maxillae)—ये भी मैण्डिबल्स के समान ही लम्बी तथा सुई के आकार की सूचिकाएँ हैं किन्तु इनके सिरे चपटे तथा आरी के फलक (saw-blade) के समान होते हैं। ये पोषक की त्वचा में छेद करते हैं तथा घाव को बड़ा करते हैं। मैक्सिली के साथ एक जोड़ी पाँच खण्डों वाले मैक्सिलरी पाल्प (maxillary palp) होते हैं जिन पर संवेदी रोम (sensory hairs) होते हैं। इनकी लम्बाई प्रोबोसिस के बराबर होती है।

3. लेबियम या शुण्ड (Labium or proboscis)—लेबियम दूसरी जोड़ी मैक्सिलरी के पूर्ण समेकन से बनता है। यह पृष्ठ-तल पर मध्य-रेखा में लम्बी तथा मोटी प्रोबोसिस-छद (proboscis sheath) बनाता है। यह खुली हुई नाली के समान (open-gutter like) या आधी नली (half tube) के समान रचना है क्योंकि इसकी पृष्ठ सतह पर एक खाई (groove) होती है। इसके भीतर अन्य मुख-उपांग सुरक्षित रहते हैं। लेबरम तथा एपिफैरिंक्स (labrum and epipharynx) मिलकर इस खाई की छत (roof) बनाते हैं। प्रोबोसिस का दूरस्थ स्वतन्त्र भाग एक जोड़ी नुकीले पिण्डकों में समाप्त होता हैं जो लेबिली (labellae) कहलाते हैं। लेबिली स्पर्श संवेदी (tactile) होते हैं तथा इन पर असंख्य संवेदी रोम पाये जाते हैं।

4. लेबरम तथा एपिफैरिंक्स (Labrum and epipharynx)—लेबरम तथा एपिफैरिंक्स समेकित होकर लेबियम के मध्य पृष्ठ-तल पर छुरी के आकार की (dagger shaped) लम्बी तथा कड़ी रचना बनाते हैं। इसका स्वतन्त्र सिरा नुकीला होता है। यह लेबियम के पृष्ठ-तल पर पायी जाने वाली खाई की छत बनाती है। इसके अधर तल पर एक खाई होती है जो हाइपोफैरिंक्स (hypopharynx) के साथ भोजन-नाल (food channels) बनाती है। इसमें से होकर द्रव भोजन मुख तक पहुँचता है।

5. हाइपोफैरिंक्स (Hypopharynx)—हाइपोफैरिंक्स एक लम्बी नुकीली खोखली सूई के समान होता है। इसके किनारे कुछ चपटे होते हैं जिससे यह दुधारी तलवार (double-edged sword) के समान प्रतीत होता है। इसके भीतर से लार नली (salivary duct) जाती है जिसका छिद्र इसके स्वतन्त्र सिरे पर स्थित होता है। अतः हाइपोफैरिंक्स इन्जैक्शन की सूई (syringe) की भाँति कार्य करता है।

विश्रामावस्था में मैक्सिली तथा हाइपोफैरिंक्स लेबियम की खाई में स्थित रहते हैं तथा लेबरम व एपिफैरिंक्स द्वारा ढके रहते हैं। भोजन ग्रहण करने के समय ये शुण्ड से बाहर निकल आते हैं। हाइपोफैरिंक्स लेबरम+एपिफैरिंक्स के सम्पर्क में आ जाता है जिससे इन दोनों के बीच एक सँकरी भोजन नाल बन जाती है। मैक्सिली तथा मैण्डिबल्स पोषक की त्वचा में छेद कर घाव बनाते हैं तथा फैरिंक्स की शोषण शक्ति (suction force) द्वारा पोषक का रक्त भोजन नाल में से होता हुआ फैरिंक्स में पहुँचता है।

नर *एनोफिलीज मच्छर* में मैण्डिबल्स तथा मैक्सिली बहुत कम विकसित होते हैं तथा इनका कोई कार्य नहीं होता क्योंकि नर जन्तु फूलों तथा फलों के रस को चूसता है। शुण्ड के आधार से निकलने वाले मैक्सिलरी पाल्प (maxillary palps) मच्छरों की जाति तथा लिंग पहचानने में सहायक होते हैं। *एनोफिलीज* में दोनों लिंग के जन्तुओं में मैक्सिलरी पाल्प लगभग शुण्ड के बराबर लम्बे होते हैं किन्तु नर में मैक्सिलरी पाल्प का अन्तिम खण्ड मुग्दर के आकार का होता है।

प्रश्न 77. मादा एनोफिलीज के मुख-उपांगों का वर्णन कीजिये तथा इनकी नर एनोफिलीज के साथ तुलना कीजिये।

Describe the mouth-parts of female *Anopheles* and compare them with those of a male. (*Vikram 1961 ; Meerut 70*)

मादा एनोफिलीज के मुख-उपांग
(Mouth-parts of Female Anopheles)

कृपया प्रश्न 76 देखिये।

नर तथा मादा एनोफिलीज के मुख-उपांगों में अन्तर

नर *एनोफिलीज* के मुख-उपांग मादा के मुख उपांगों से निम्न बातों में भिन्न है :—

(*i*) नर में मैण्डिबल्स अनुपस्थित होते हैं जबकि मादा में ये पूर्ण विकसित होते हैं।

(*ii*) नर में मैक्सिली कम विकसित होते हैं परन्तु मादा में इनके अन्तिम सिरे ब्लेड के समान होते हैं।

(*iii*) नर में हाइपोफैरिंक्स लेबियम से समेकित हो जाता है परन्तु मादा में

यह दुधारी तलवार (double-edged sword) के रूप में होता है तथा इसके मध्य से सूक्ष्म नलिका जाती है।

(*iv*) नर में मैक्सिलरी पाल्प का अन्तिम खण्ड मुग्दर के आकार का होता है किन्तु मादा में ये नुकीले होते हैं।

(*v*) नर एण्टिनी पर बाल बहुत अधिक होते हैं।

पोषण (Feeding)

मादा एनोफिलीज मनुष्य तथा अन्य जन्तुओं के रक्त को चूसकर अपना पेट भरती है, किन्तु नर केवल फूलों का रस पीता है। जब मादा किसी पोषक को काटती है तो लेबिली पोषक की त्वचा से चिपक जाते हैं और भेदक सूचिकाओं (piercing stylets) के कार्य में सहायता करते हैं। लेबियम पीछे की ओर फन्दा-सा बना लेता है जिससे कि मैण्डिबल्स तथा मैक्सिली पोषक की त्वचा में भीतर तक घुस जाते हैं। हाइपोफैरिंक्स द्वारा लार पोषक के घाव में पहुँचा दी जाती है जिससे उसमें उपस्थित **एण्टीकोगुलीन** (anticoagulin) पोषक के रक्त में मिलकर उसको जमने से रोकता है। लेबरम+एपिफेरिंक्स तथा हाइपोफेरिंक्स के द्वारा भोजन-नाल बनती है जिसमें से होकर रक्त शोषित कर लिया जाता है। फैरिंक्स शोषण-बल द्वारा रक्त चूसता जाता है।

नर एनोफिलीज फूलों के रस को चूसता है। चूषण-क्रिया मादा के समान ही होती है। क्योंकि नर को छेदने और काटने की आवश्यकता नहीं होती, अतः इसमें मैक्सिली तथा मैण्डिबल्स अनुपस्थित होते हैं।

प्रश्न 78. आपके द्वारा अध्ययन किये गये कीटों के मुख-उपांगों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the mouth-parts of the insects you have studied. (*Lucknow 1957 ; Meerut 72*)

प्रश्न 79. निम्नलिखित के मुख-उपांगों का वर्णन करिये : (a) खटमल, (b) घरेलू मक्खी, (c) तितली, (d) मादा क्यूलैक्स।

Describe the mouthparts of (a) Bedbug ; (b) House-fly ; (c) Butterfly ; (d) Culex female. (*Karnatak 1968 ; Meerut 70*)

मच्छरों में विभिन्न प्रकार की पोषण विधियाँ पायी जाती है तथा इसी के अनुरूप इनके मुख-उपांग भी विभिन्न रूपों में विशेषीकृत (specialized) हो जाते हैं। अध्ययन में सरलता के लिए इन्हें निम्न पाँच प्रकारों में बाँटा जाता है :—

1. काटने या कुतरने वाले (biting and chewing type) या मैंडिबुलेट (mandibulate) अथवा आर्थोप्टेरस (orthopterous)
2. कुतरने तथा चूसने वाले (chewing and lapping type or hymenopterous)
3. छेदने तथा चूसने वाले (piercing and sucking type or dipterous type)
4. स्पंजी मुख उपांग (sponging mouth-parts)
5. साइफन मुख-उपांग (siphoning mouth-parts or lepidopterous type)
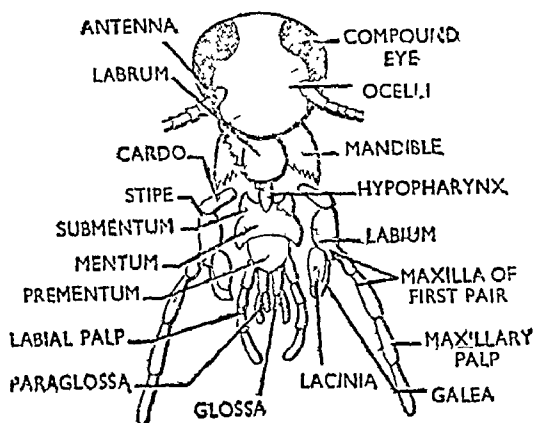
चित्र ११२ कॉकरोच के ऑर्थोप्टेरस प्रकार के मुखाग (Orthopterous type of mouth parts of *Cockroach*)

चित्र ११·३. मच्छर के डिप्टेरस प्रकार के मुखांग (Dipterous type of mouth-parts of *Mosquito*)
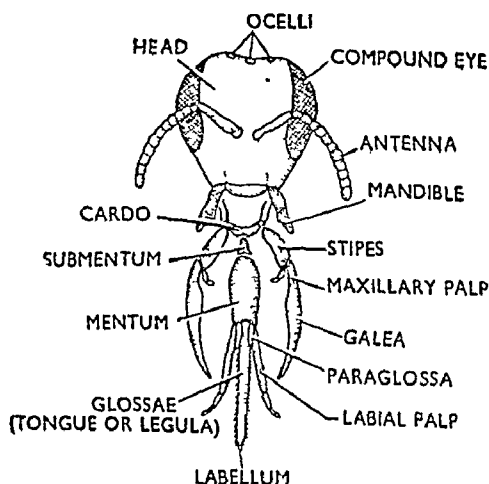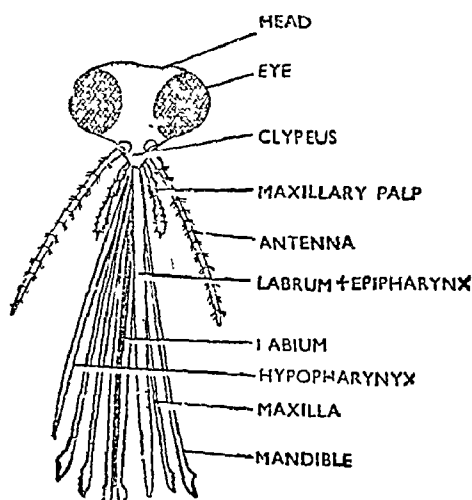
चित्र ११४. शहद की मक्खी के हाइमीनोप्टेरस प्रकार के मुखाग (Hymenopterous type of mouth-parts of honey-bee)
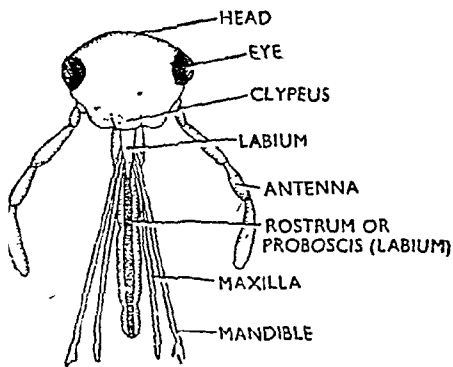
चित्र ११·५. खटमल के हेमिप्टेरस प्रकार के मुखांग (Hemipterous type of mouth-parts of bed bug)
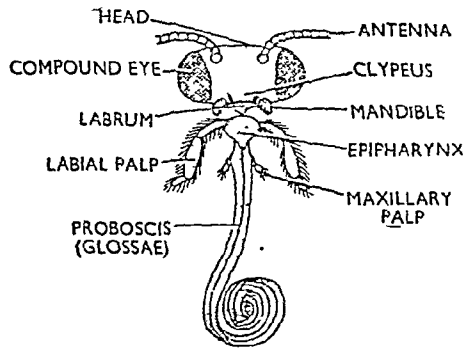
चित्र ११·६. तितली के साइफन मुखांग अथवा लेपिडोप्टेरस प्रकार के मुखांग (Lepidopterous type of mouth-parts of *Butterfly*)
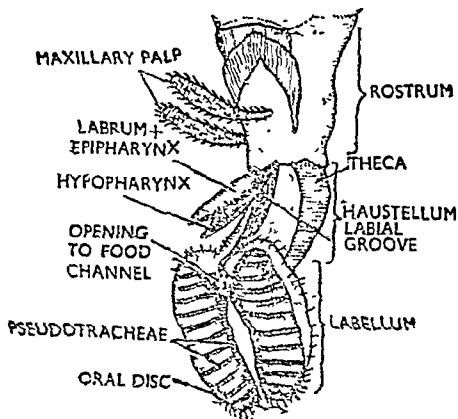
चित्र ११·७. घरेलू मक्खी के स्पंजी प्रकार के मुखांग (Sponging type of mouth-parts of *Housefly*)

कीट समुदाय में मुखांगों की तुलना
(Comparison of Mouth-parts in Insecta)

कृन्तक तथा चर्वण वाले मुखांग (Biting and chewing type)	चर्वण तथा चूसने वाले मुखांग (Chewing and lapping type)	छेदने तथा चूसने वाले मुखांग (Piercing and sucking mouth-parts)	स्पंजी मुखांग (Sponging mouth-parts)	साइफन मुखांग (Siphoning mouth-parts)
A. ये काकरोच, टिड्डों तथा इयरविग नामक कीटों में पाये जाते हैं।	A. ये ततैये तथा शहद की मक्खियों में पाये जाते हैं।	A. ये मच्छरों, खटमलों, फ्लीज, ऐफिड्स तथा थ्रीप्स इत्यादि में मिलते हैं।	A. इस प्रकार के मुखांग घरेलू मक्खी में पाये जाते हैं।	A. साइफन मुखांग तितलियों तथा शलभ में मिलते हैं।
B. ये ऑर्थोप्टेरेस (Orthopterous) प्रकार के भी कहलाते हैं।	B. हाइमीनोप्टेरस (Hymenopterous)	B. डिप्टेरस (Dipterous) / हेमिप्टेरस (Hemipterous)	B. —	B. लपिडोप्टेरस (Lepidopterous)
C. ये ठोस भोजन को कुतरने तथा चबाने के अनुरूप होते हैं।	C. ये शहद तथा मकरन्द (honey and nectar) एकत्रित करते हैं तथा इसको मोम में बदलते हैं।	C. ये मुखांग पौधों पर फूलों का रस तथा मनुष्यों का रक्त चूसने के अनुरूप होते हैं।	C. ये केवल द्रव भोजन चूसते हैं।	C. ये फलों तथा फूलों का रस चूसते हैं।
1. लेबरम या ऊपरी होंठ (Labrum or upper lip)				
लेबरम एक चौड़ी, लगभग आयताकार पट्टी के रूप में होता	लेबरम स्पष्ट प्लेट के समान होता है और क्लाइपियस के नीचे	लेबरम लम्बा तथा सूई के आकार / लेबरम छोटा होता है और	लेबरम एपिफेरिंक्स के साथ	लेबरम एक तिकोना पट्टी के आकार का

है जो क्लाइपियस के निचले किनारे से जुड़ा रहता है और अग्रमुखीय गुहा की छत बनाता है।	स्थित होता है।	का होता है और एपिफैरिंक्स के साथ समेकित होकर शुण्ड की पृष्ठ खाई की छत बनाता है।	शुण्ड के आधार पर स्थित होता है। यह एपिफैरिंक्स से स्वतन्त्र होता है।	समेकित होकर भोजन नाल की छत बनाता है।	होता है।
2. मैण्डिबल्स (Mandibles) मैण्डिबल्स अखण्डयुक्त (unsegmented), तिकोने तथा अत्यधिक कैल्सीफाइड होते हैं। इनकी भीतरी सतह से दाँतों के सामने नुकीले उभार निकले रहते हैं। ये ठोस भोजन को चबाने के अनुरूप होते हैं।	मैण्डिबल्स छोटे, चिकने तथा चम्मच के आकार के (spoon-shaped or spatulate) होते हैं। ये छत्ता (honeycomb) बनाने का कार्य करते हैं।	मैण्डिबल्स लम्बे तथा सूच्याकार सूचिकाओं के रूप में होते हैं। इनके स्वतन्त्र दूरस्थ सिरे ब्लेड के समान होते हैं।	ये डिप्टेरस प्रकार के होते हैं किन्तु बाहर निकाले जा सकते हैं।	मैण्डिबल्स अनुपस्थित होते हैं।	मैण्डिबल्स बहुत विकसित होते हैं।
3. मैक्सिली (Maxillae) मैक्सिली चपटे होते हैं तथा निम्नलिखित भागों में बँटे रहते हैं—	मैक्सिली पूर्ण विकसित होते हैं।			मैक्सिली केवल छोटे तथा बिना खण्ड वाले मैक्सिलरी पाल्प द्वारा प्रदर्शित होते हैं।	मैक्सिली केवल गेलिया (galea) तथा मैक्सिलरी पाल्प द्वारा प्रदर्शित होते हैं।
(*i*) प्रोटोपोडाइट कार्डो तथा स्टाइप्स नामक खण्डों में बँटा रहता है।	(*i*) दोनों मैक्सिली के कार्डो समेकित हो जाते हैं।	(*i*) मैक्सिली लम्बे तथा सुई के समान होते हैं। इनके दूरस्थ	(*i*) मैक्सिली डिप्टेरस प्रकार के होते हैं किन्तु ये बाहर निकाले		(*i*) गेलिया (galea) बहुत लम्बे होते हैं। प्रत्येक गेलिया अर्धनाल (half

क्रन्तक तथा चर्वण वाले मुखांग (Biting and chewing type)	चर्वण तथा चूसने वाले मुखांग (Chewing and lapping type)	छेदने तथा चूसने वाले मुखांग (Piercing and sucking mouth-parts)		स्पंजी मुखांग (Sponging mouthparts)	साइफन मुखांग (Siphoning mouthparts)
		सिरे आरी के समान होते हैं।	तथा भीतर घुसाये जा सकते हैं। ये भोजन-नाल (food channel) बनाते हैं।		tube) के आकार का होता है। दोनों गेलिया मिलकर साइफन बनाते हैं जिसमें से होकर द्रव भोजन मुख तक पहुँचता है।
(ii) एक्सोपोडाइट मैक्सिलरी पाल्प बनाता है जो 5 खण्डों का बना होता है।	*(ii)* मैक्सिलरी पाल्प छोटा तथा कम विकसित होता है।	*(ii)* मैक्सिलरी पाल्प लम्बे तथा 5 खण्डों के होते हैं तथा इन पर संवेदी रोम (sensory hair) होते हैं।	*(ii)* मैक्सिलरी पाल्प अनुपस्थित होते हैं।		*(ii)* मैक्सिलरी पाल्प बहुत छोटे होते हैं।
(iii) एण्डोपोडाइट लेसिनिया तथा गेलिया भागों का बना होता है।	*(iii)* लेसिनिया अनुपस्थित होता है तथा गेलिया लम्बा एवम् ब्लेड के समान होता है।				
4. लेबियम या निचला होंठ (Labium or lower lip)					
(i) लेबियम दूसरी जोड़ी के मैक्सिली के सम्मेलन से बनता है। यह चपटी पट्टी के समान रचना है जो मुखगुहा का फर्श बनाती है।	*(i)* लेबियम पूर्ण विकसित होता है तथा अत्यन्त परिवर्तित (greatly modified) होता है।	*(i)* लेबियम लम्बी तथा मांसीली शुण्ड के रूप में होता है। इसके अधरतल पर खाई होती है	*(i)* लेबियम तीन खण्डों वाला रोस्ट्रम (rostrum) या शुण्ड (proboscis) बनाता है। इसके	*(i)* लेबियम अत्यधिक परिवर्तित होते हैं और शुण्ड बनाते हैं जो तीन भागों में बँटी रहती है।	*(i)* लेबियम बहुत छोटा होता है तथा एक तिकोनी पट्टी प्रदर्शित करता है।

		जिसमें अन्य मुखांग सुरक्षित रहते हैं।	अधरतल पर भी खाई-सी होती है। इसके भीतर मैक्सिली तथा मैण्डिबल सुरक्षित रहते हैं।	इसका समीपस्थ शंकु के आकार का भाग रोस्ट्रम (rostrum) कहलाता है। इस पर मैक्सिलरी पाल्प होते हैं।	
(*ii*) इसमें निम्नलिखित भाग होते हैं :— (अ) प्रोटोपोडाइट (क) सबमेण्टम (ख) मेण्टम (ब) एक्सोपोडाइट दो लेबियल पाल्प के रूप में होते ह। (स) एण्डोपोडाइट दो खण्ड का बना होता है : (क) पैराग्लोसी (ख) ग्लोसी	(*ii*) लेबियम में निम्न भाग पाये जाते हैं : (अ) प्रोटोपाडाइट (क) तिकोना पोस्टमेण्टम (ख) माँस-पेशियों से भरा प्रीमेण्टम (ब) लेबियल पाल्प लम्बे होते हैं। (स) एण्डोपोडाइट (क) पैराग्लोसी बहुत कम विकसित होते हैं। (ख) ग्लोसी बहुत लम्बे होते हैं तथा दोनों ग्लोसी समेकित होकर लिगुला या जिह्वा (ligula or tongue) बनाते हैं। लिगुला के अन्तिम सिरे पर लेबलम (labellum or honey spoon) होता है।	(*ii*) लेबियल पाल्प अनुपस्थित होते हैं।	—	(*ii*) मध्य भाग हौस्टेलम (haustellum) कहलाता है। (अ) इसके मध्य अधर-तल पर एक खाई-सी होती है जो भोजन मार्ग (food passage) प्रदर्शित करती है। (ब) हृदयाकार theca होता है। (*iii*) दूरस्थ भाग लेबलम (labellum) कहलाता है। यह अण्डाकार बिम्ब (disc) के आकार का होता है जिसमें दो लेबिली (labellae) होते हैं। लेबिली के अधर-तल पर	(*ii*) लेबियल पाल्प छोटे होते हैं।

कृन्तक तथा चर्वण वाले मुखांग (Biting and chewing type)	चर्वण तथा चूसने वाले मुखांग (Chewing and sucking mouthparts	छेदने तथा चूसने वाले मुखांग (Piercing and sucking mouthparts)		स्पंजी मुखांग (Sponging mouthparts	साइफन मुखांग (Siphoning mouthparts)
				असंख्य स्यूडो-ट्रेकिया (pseudo-tracheae) होते हैं। ये मुख पर केन्द्रित होते हैं।	
5. हाइपोफेरिंक्स (Hypopharynx) हाइपोफेरिंक्स मध्य में स्थित जिह्वा (*tongue*) के समान मुखगुहा के फर्श पर स्थित होता है। इस पर लार-ग्रन्थि की वाहिनी खुलती है।	हाइपोफेरिंक्स अनुपस्थित होता है।	हाइपोफेरिंक्स लम्बी तथा दुधारी तलवार के रूप में होता है जो लार वाहिनी के रूप में खोखला होता है।	अनुपस्थित होता है।	हाइपोफेरिंक्स लेवरम तथा एपिफेरिंक्स के साथ मिलकर भोजन नाल (food channel) का निर्माण करता है। यह हॉस्टेलम की खाई में स्थित होता है।	हाइपोफेरिंक्स अनुपस्थित होता है।
6. एपिफेरिंक्स (Epipharynx) एपिफेरिंक्स एक झिल्ली के रूप में होता है और लेबरम की निचली सतह से लगा रहता है। इस पर स्वाद कलिकाएँ (taste-buds) होती हैं।	एपिफेरिंक्स पेशीय होता है तथा लेबरम के नीचे लटका रहता है।	एपिफेरिंक्स लेबरम के साथ मिल जाता है और लेबियम या शुण्ड पर उपस्थित खाई की छत का निर्माण करता है।	एपिफेरिंक्स अनुपस्थित होता है।	एपिफेरिंक्स लेबरम के साथ समेकित हो जाता है।	एपिफेरिंक्स अनुपस्थित होता है।

प्रश्न 80. कॉकरोच एवम् घरेलू मक्खी के मुख-उपांगों के स्वच्छ एवम् नामांकित चित्र बनाइये।

Draw neat and labelled sketches of the mouth parts of Cockroach and Housefly. (No description is needed.) (*Agra 1959, 61*)

कृपया चित्र 11·2 व 11·4 देखिये।

प्रश्न 81. मस्का (घरेलू मक्खी) के जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये। यह कायान्तरण की क्रिया को किस प्रकार प्रदर्शित करती है ?

Give an account of the life-history of *Musca* (Housefly). How does it explain the phenomenon of metamorphosis ?

(*Luck. 1949, 58 ; Agra 67 ; Meerut 71*)

आप कायान्तरण से क्या समझते हैं ? घरेलू मक्खी के जीवन-इतिहास का विस्तार में वर्णन कीजिये।

What do you understand by metamorphosis ? Give a detailed account of the life-history of housefly.

(*Luck. 1951, 55, 67 ; Jiwaji 68 ; Nagpur 68*)

घरेलू मक्खी के जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये।

Describe the life-history of house-fly. (*Vikram 1972*)

घरेलू मक्खी महामारी फैलाने वाला अत्यन्त भयानक घरेलू प्राणी है जो समस्त संसार में पाया जाता है। यह अधिकतर मनुष्यों के निवास-स्थानों तथा गन्दी जगहों पर पायी जाती है। यह मनुष्य द्वारा त्यागे हुए मल तथा अन्य सड़ते हुए कार्वनिक पदार्थों का भक्षण करती है तथा साथ ही मनुष्य के खाने योग्य समस्त पदार्थों को भी खाती है। इसी पोषण स्वभाव (feeding habit) के कारण यह मनुष्यों में बहुत-सी बीमारियाँ फैलाती है। यह बहुत क्रियाशील जन्तु है तथा इसका जीवन-इतिहास पूर्ण **रूपान्तरण** या **कायान्तरण** (complete metamorphosis) का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

जनन-काल (Breeding season)—मक्खी का जनन-काल जून से अक्टूबर तक होता है किन्तु सबसे अधिक क्रियाएँ अगस्त तथा सितम्बर मास में होती हैं।

मैथुन (Copulation)—मैथुन-क्रिया पृथ्वी पर होती है जबकि मक्खियाँ विश्रामावस्था में होती हैं। मैथुन में केवल कुछ मिनट का समय लगता है। नर मादा की पीठ पर चढ़ जाता है ; तब मादा अपना ओवीपोजीटर नर के जनन-वेश्म में घुसा देती है और नर से शुक्राणु प्राप्त कर लेती है।

अण्डरोपण (Oviposition)—मैथुन के लगभग एक सप्ताह पश्चात् मादा सड़ते हुए कार्वनिक पदार्थों जैसे घोड़े की लीद, गाय-भैंस के गोबर, सड़ते हुए फलों तथा सब्जियों एवम् मनुष्य की विष्ठा के ढेरों पर अण्डे देती है। अण्डे झुण्डों के रूप में दिये जाते हैं तथा प्रत्येक झुण्ड में 100 से 125 तक अण्डे दिये जाते हैं। मादा पाँच या छः बार अण्डे देती है ; अतः एक जनन-काल में एक मादा 500 से 600 तक अण्डे उत्पन्न करती है। अण्डे ओवीपोजीटर द्वारा सतह से लगभग 1/2 इंच नीचे पहुँचा दिये जाते हैं जिससे कि ये अन्धकार, नमी, गर्मी तथा सुरक्षा प्राप्त कर सकें।

अण्डे (Eggs)—मक्खी के अण्डे छोटे, लम्बे तथा सिगार के आकार के होते हैं। इनका एक सिरा दूसरे की अपेक्षा चौड़ा होता है। अण्डे चमकीले सफेद रंग के होते हैं। प्रत्येक अण्डा लगभग 1 mm. लम्बा होता है तथा इसके पृष्ठतल पर

पसली के समान लम्बे उभार होते हैं। 12 से 24 घण्टे के पश्चात् अण्डे से लारवा निकलता है।

लारवा (Larva)—मक्खी का लारवा बिना सिर तथा बिना टाँगों का होता है, अतः यह **मैगोट** (maggot) या **जेण्टिल** (gentle) कहलाता है। लारवा अवस्था में इसमे दो बार **त्वक्मोचन** (moulting) होता है। इसलिए लारवा अवस्था को तीन स्पष्ट प्रावस्थाओं में बाँटा जाता है। प्रत्येक प्रावस्था **इन्सटार** (instar) कहलाती है।

(*i*) **प्रथम इन्सटार लारवा** (First instar larva)—अण्डे से निकलने वाला लारवा **इन्सटार लारवा** कहलाता है। यह कोमल तथा खण्डयुक्त शरीर वाला, लम्बा, बेलनाकार तथा कृमिवत् होता है जिसका अगला सिरा कम चौड़ा होता है तथा पिछला सिरा रुण्डित (truncated) होता है। शरीर लगभग 2 mm. लम्बा तथा सफेद होता है। शरीर मे 13 खण्ड होते है। प्रथम खण्ड **स्यूडोसीफेलॉन** (pseudocephalon) कहलाता है। यह अल्पविकसित सिर भाग है जो दूसरे खण्ड के भीतर खीचा जा सकता है। इसके अधर तल पर मुख होता है जो
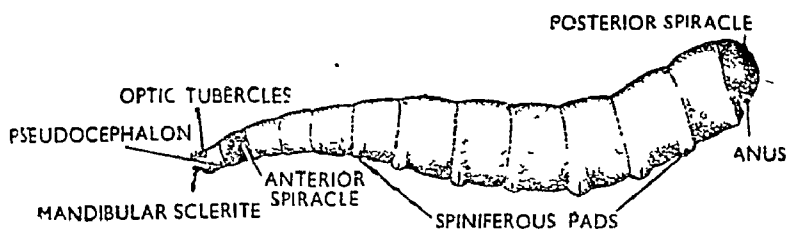
चित्र ११·८. मक्खी का द्वितीय इन्सटार लारवा (Instar larva of *Housefly*)

पृष्ठ तल पर एक जोड़ी **मुख-पिण्डकों** (oral lobes) द्वारा घिरा रहता है तथा इसके अगले सिरे के अधर तल पर काइटिन का बना **मैण्डिबुलर हुक** (mandibular sclerite) होता है। मुख-पिण्डको (oral lobes) के अधरतल पर बहुत-सी भोजन-नालियाँ (food channels) पायी जाती हैं तथा पृष्ठतल पर एक जोड़ी **दृष्टि ट्यूबर्कल** (optic tubercles) या **शृंगिकाएँ** होती है। मैण्डिबुलर हुक चलन मे तथा भोजन को चीरने मे सहायता करता है। शरीर के अन्तिम खण्ड मे पृष्ठतल पर D के आकार का **पश्च स्पायरेकिल** (posterior spiracle) तथा अधर तल पर गुदाद्वार (anus) स्थित होता है। गुदाद्वार को घेरे हुए एक जोड़ी **एनल पिण्डक** (anal lobes) होते हैं जो चलन में सहायता करते है। छठे से बारहवें खण्डों मे अग्र-अधरतल (antero-ventral) पर **अर्धचन्द्राकार गद्दियाँ** (semilunar pads) होती है जिन पर काँटे लगे रहते हैं। ये **काँटेदार गद्दियाँ** (spiniferous pads) कहलाती हैं तथा लारवा को चलन मे सहायता पहुँचाती हैं।

प्रथम इन्सटार लारवा अत्यधिक क्रियाशील होता है। यह सड़ते हुए कार्बनिक पदार्थों को खाकर शीघ्रता से बढता है तथा एक दिन पश्चात् इसमे **प्रथम त्वक्मोचन** (first moulting) होता है और यह द्वितीय इन्सटार मे पहुँच जाता है।

(*ii*) **द्वितीय इन्सटार लारवा** (Second instar larva)—यह प्रथम इन्सटार लारवा के समान ही होता है किन्तु इसके तीसरे खण्ड मे एक जोड़ी पंखे के आकार के **अग्रिम स्पायरेकिल** (anterior spiracles) और होते है। दो जोडी स्पायरेकिल होने के कारण यह **एम्फिप्न्यूस्टिक लारवा** (amphipneustic larva) भी कहलाता

है। लगभग 2 दिन पश्चात् इसमें दूसरी वार **त्वक्‌विमोचन** (2nd moulting) होता है।

(*iii*) **तृतीय इन्सटार लारवा** (Third instar larva)—यह पूर्ण वृद्धि प्राप्त हल्के पीले या सफेद रंग का होता है तथा 1/3 इन्च से 1/2 इन्च लम्बा होता है। यह प्रकाश से दूर भागता है तथा विष्ठा के ढेर में नीचे की सतह की ओर चला जाता है। इसकी वृद्धि नमी, तापक्रम तथा भोजन द्वारा प्रभावित होती है। तीन से चार दिन पश्चात् यह सूखे स्थान पर पहुँचकर **प्यूपा** में वदल जाता है।

प्यूपा (Pupa)—आगे के कुछ खण्डों को भीतर खींचकर वेलनाकार लारवा अण्डाकार **प्यूपा** में परिवर्तित हो जाता है; अतः इसके दोनों सिरे गोलाकार हो जाते हैं। इसकी त्वचा गहरी भूरी होकर **प्यूपेरियम** (puparium) बनाती है। प्यूपा की त्वचा में वाह्य-खण्ड विभाजन (external segmentation) तथा काँटेदार गद्दियों (spiniferous pads) के अवशेष पाये जाते है। इसमें मुख, गुदाद्वार इत्यादि नहीं होते किन्तु अग्रिम तथा पश्च स्पायरेकिल होते हैं।
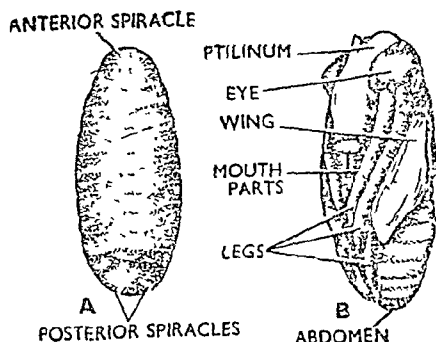
चित्र ११·६. घरेलू मक्खी का प्यूपा
(Pupa of *Housefly*)

कायान्तरण या रूपान्तरण (Metamorphosis)—जन्तु के वर्धन में पाये जाने वाले उन जटिल या महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों को **कायान्तरण** कहते हैं जिनके फलस्वरूप जन्तु के स्वभाव तथा रचना में परिवर्तन होता है। **कायान्तरण** (metamorphosis) ग्रीक भाषा के *meta* (change या परिवर्तन) तथा *morph* (form या आकार) शब्दों से बनाया गया है जिसका अर्थ आकार में परिवर्तन है। कीटों में अण्डे से निकलने वाला जन्तु प्रौढ़ जन्तु से रचना तथा स्वभाव में पूर्णतया भिन्न होता है। अतः इसमें परिवर्तन होते हैं तथा साथ ही वृद्धि और त्वक्‌विमोचन भी होता है जिसके फलस्वरूप प्रौढ़ का निर्माण होता है।

घरेलू मक्खी का जीवन-इतिहास रूपान्तरण का एक अच्छा उदाहरण है। इसकी प्यूपा अवस्था 3 या 4 दिन लम्बी होती है और इस काल में इसके शरीर के भीतर निर्माण (construction) तथा विघटन (destruction) की महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं। लारवा के केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र को छोड़कर इसके अन्य सभी अंग फैगोसाइट (phagocytes) द्वारा लेई के समान पदार्थ में वदल जाते हैं। यह क्रिया **हिस्टोलाइसिस** (histolysis) कहलाती है। कुछ विशेष प्रकार की कोशिकाएं इस क्रीम के समान पदार्थ में शेष रह जाती हैं। ये **काल्पनिक विम्व** (imaginal discs) कहलाती हैं। इसकी कोशिकाएँ क्रीम के समान पदार्थ का भक्षण कर आकृति में वढ़ती हैं और वार-वार विभाजित होकर प्रौढ़ मक्खी के अंग वनाती हैं। अंगों के निर्माण की यह क्रिया **हिस्टोजेनेसिस** (histogenesis) कहलाती है तथा अनुकूल परिस्थितियों में चार या पाँच दिन में पूर्ण हो जाती है।

पूर्ण कीट (Imago)—पूर्ण कीट के अगले सिरे पर रक्त से भरा हुआ थैला (blood filled sac) **टाइलिनियम** (ptilinium) होता है जिसके द्वारा यह प्यूपे-

रियम के अगले सिरे को ढक्कन के समान अलग करके बाहर निकल आता है। प्रारम्भ में पूर्ण कीट (imago) रंगहीन होता है तथा इसके पंख अत्यन्त कोमल होते हैं। हवा के सम्पर्क में आने पर इसका शरीर तथा पंख दृढ़ हो जाते हैं तथा टाइलिनियम (ptilinium) भीतर कर लिया जाता है। इस प्रकार एक छोटी मक्खी का निर्माण पूर्ण हो जाता है। यह खाकर आकार में बढ़ती है और जनन-अंगों के बनने पर अण्डे देना प्रारम्भ कर देती है।

प्रश्न 82. घरेलू मक्खी के जीवन-इतिहास का वर्णन कीजिये। रोगों को फैलाने में घरेलू मक्खी की भूमिका पर एक नोट लिखिये।

Describe the life-history of house-fly. Write a brief note on the role of housefly in spreading disease. (*Nagpur 1967 ; Indore 73*)

घरेलू मक्खी का जीवन-चक्र
(Life-history of Housefly)

कृपया प्रश्न 66 देखिये।

घरेलू मक्खियाँ हर प्रकार की गन्दगी में पाये जाने वाले कीट हैं। कूड़ा-करकट, गोबर, खाद व सड़ते हुए कार्बनिक पदार्थों का सेवन करने के कारण इनको अपमार्जक (scavangers) कहा जाता है। आधुनिक खोजों से ज्ञात हुआ है कि ये मनुष्य में अनेक भयंकर रोग फैलाकर मानव जाति को अत्यधिक क्षति पहुँचाती है। ये मनुष्य व पालतू जन्तुओं में रोग उत्पन्न करने वाले बैक्टीरिया व जीवाणुओं के वाहक का कार्य करती हैं। कूड़े-करकट व गन्दगी में रहने का स्वभाव तथा शारीरिक संरचना रोगजनक बैक्टीरिया के फैलने में सहायक होते हैं। ये न्यूमोनिया, टाइफॉयड, चेचक, हैजा, पेचिश, एन्थ्रैक्स, गोनोरिआ, ट्रेकोमा व तपेदिक आदि रोगों के लिए उत्तर-दायी हैं। *टीनिया* व ऐस्केरिस आदि विभिन्न नेमेटोड व सेस्टोड परजीवी प्राणियों के अण्डे मक्खियों द्वारा ही एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचते हैं।

रोगों का फैलना (Spread of Diseases)

घरेलू मक्खी स्वयं रोग फैलाने में समर्थ नहीं होती बल्कि यह रोगजनक बैक्टीरिया को एक पोषक से दूसरे पोषक मे ले जाने के लिए वाहक का कार्य करती है। साथ ही मक्खियाँ किसी भी स्थान या शरीर के किसी भी भाग पर अण्डे दे देती है जो शरीर मे प्रवेश करके रोग उत्पन्न करते हैं। रोग निम्नलिखित विधियों द्वारा उत्पन्न होते हैं :—

1. अण्डों द्वारा (By eggs)—मक्खियाँ सोते हुए मनुष्यों के नासापथ में अण्डे दे देती हैं। अण्डों से निकले लारवी धीरे-धीरे मस्तिष्क मे प्रवेश करके इसके ऊतकों को खाने लगते है। दुखती हुई आँखों में भी मक्खियाँ अपने अण्डे देती हैं और लारवी नेत्रों में प्रवेश करके मनुष्य को दृष्टिहीन बना देते है। इसी प्रकार मक्खी के अण्डों से संदूषित सड़े-गले फलों को खाने पर आहार नाल में अण्डों से बाहर आकर लारवी आंत्र की दीवार को क्षतिग्रस्त करके रक्तस्राव करते है।

2. बाह्य स्थानान्तरण (External transference)—मक्खी की बाह्य रचना जीवाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के अत्यधिक उपयुक्त होती है। रूक्ष व रोमिल शरीर, मक्खी के पर एवम् पाद तथा मुख-उपांग एवम् पोषण विधि इसके विशिष्ट लक्षण हैं जो रोगाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने में सहायक होते है। एक ओर तो मक्खी कूड़े-करकट, खाद, गोबर,

सड़े-गले कार्बनिक पदार्थों तथा जख्मों आदि से निकलने वाले मवाद आदि का भक्षण करती है तो दूसरी ओर यह मनुष्य के भोजन को भी स्वाद से खाती है। पहली अवस्था में इसकी टाँगों आदि से विभिन्न रोगों के रोगाणु चिपक जाते हैं। मनुष्य के भोजन पर बैठते समय ये बैक्टीरिया व रोगाणु भोजन को संदूषित कर देते हैं। इस प्रकार रोगजनक बैक्टीरिया व रोगाणु मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

3. **आन्तरिक स्थानान्तरण** (Internal transference)—रोगी मनुष्य के मल या उल्टी आदि का सेवन करते समय रोग के जर्म भी भोजन के साथ मक्खी के शरीर में चले जाते हैं। जब यह मक्खी मनुष्य के भोजन पर बैठती है तो ये जर्म या तो मक्खी के मल के साथ अथवा फिर इसके लार के साथ बाहर निकल कर भोजन को संदूषित कर देते हैं। कुछ रोगों के जर्म तो मक्खी के क्रॉप में रहते हुए ही तेजी से संख्या में वृद्धि करते हैं। अतः घरेलू मक्खी न केवल वाहन का कार्य करती है बल्कि यह रोगजनक बैक्टीरिया के लिए एक आशय एवम् मध्यग पोषक का कार्य भी करती है।

प्रश्न 83. घरेलू मक्खी के जीवन-चक्र का वर्णन करिये तथा नगरों में इसकी रोकथाम के उपाय बताइये।

Give an account of the life-history of Housefly and suggest measures for checking fly nuisance in an urban area.

(Agra 1958, 61 ; Vikram 61 ; Indore 67)

मक्खी के जीवन-इतिहास के लिए प्रश्न 81 देखिये।

नगरों में मक्खियों की रोकथाम
(Fly Control in Urban Areas)

मक्खियाँ समस्त प्रकार की गन्दगियों में पायी जाती हैं। अपने पोषण स्वभाव के कारण ये बहुत-सी बीमारियों को फैलाने का कार्य करती हैं। मनुष्य जाति को इनके द्वारा पहुँचाई गयी हानियाँ एटम बम द्वारा पहुँचायी गयी हानियों के समान हैं। इनको फैलने से रोकने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं :—

1. प्रौढ़ मक्खी को नष्ट करना (Destruction of Adult Flies)

(अ) यान्त्रिक साधन (Mechanical Methods)

(*i*) मक्खी पकड़ कागज द्वारा।

(*ii*) बेट्स तथा ट्रैप (baits and traps) का उपयोग।

(*iii*) विद्युतवाही पर्दों के उपयोग द्वारा।

(*iv*) दूध, शक्कर, पनीर तथा फलों आदि द्वारा मक्खियों को आकर्षित करके उनको मारना।

(ब) रासायनिक साधन (Chemical Methods)

(*i*) नीम की पत्तियों, कार्बोनिक अम्ल या पैट्रोल के धुएँ से।

(*ii*) पाइरेथ्रम (pyrethrum), पेस्टेरिन पाउडर (pesterin powder) या D.D.T. छिड़ककर।

(*iii*) क्रीयोसोट (creosote) तेल या बोरेक्स के घोल जैसे प्रत्याकर्षक पदार्थों के प्रयोग द्वारा।

(*iv*) कृमिनाशक पदार्थों के उपयोग द्वारा (use of insecticides), जैसे पानी, दूध, शक्कर तथा फार्मेलीन (formaline) के घोल में ब्लाटिंग पेपर भिगोकर या सोडियम आर्सिनेट (sodium arsenate) तथा चीनी के घोल के प्रयोग द्वारा;

दूध, चीनी तथा आर्सेनिक या पोटेशियम डाइक्रोमेट के घोल द्वारा ।

2. जनन स्थानों को नष्ट करना—मक्खी गोबर, मल, लीद, कूड़े के ढेरों या गले-सड़े फलों पर अण्डे देती है ; अतः मक्खियों को फैलने से रोकने के लिए उनके जनन-स्थानों को नष्ट करना सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय है । यह निम्न दो प्रकार से किया जा सकता है :—

(अ) भौतिक विधियाँ (Physical Methods)

(*i*) घर के कूड़े-करकट को वन्द या ढक्कनदार टीनों में डालना चाहिये ।

(*ii*) शहर या गाँव का पूरा कूड़ा-करकट आवादी के वाहर जला देना चाहिये या गाड़ देना चाहिये ।

(*iii*) गोवर, लीद इत्यादि के ढेरों को सड़ने नहीं देना चाहिये किन्तु शहर के वाहर खुले स्थान में फैलाकर सुखा लेना चाहिये ।

(*iv*) घर के वाहर मल-त्याग नहीं करना चाहिये या उसमें रासायनिक पदार्थों का घोल डाल देना चाहिये ।

(*v*) रसोई, सड़कें, होटल या बाजार इत्यादि सभी स्थान अत्यधिक स्वच्छ रहने चाहियें ।

(ब) रासायनिक विधियाँ (Chemical Methods)

(*i*) घर के कूड़े-करकट, गोबर इत्यादि पर रासायनिक घोलों का प्रयोग करना चाहिये, जैसे—चूना, कापर सल्फेट, फार्मेल्डिहाइड या अन्य कृमिनाशक पदार्थों का घोल ।

(*ii*) खाद में 5% वोरेक्स का घोल, 5% क्रीसोल या सोडियम फ्लोरोसिलिकेट (cresol or sodium fluorosilicate) का घोल मिला देना चाहिये ।

3. रोग फैलने से रोकने के उपाय

(*i*) घर तथा समीप के स्थानों को पूर्णरूप से स्वच्छ रखना चाहिये ।

(*ii*) कूड़े-करकट, मल-मूत्र एवम् वमन इत्यादि को खुला नहीं छोड़ना चाहिये ।

(*iii*) घर में खाने-पीने की वस्तुओं को ढककर रखना चाहिये ।

(*iv*) रसोई-घर के द्वारों और खिड़कियों इत्यादि पर महीन तार की जाली होनी चाहिये ।

(*v*) मिठाई तथा फल, इत्यादि को खुला नहीं छोड़ना चाहिये ।

प्रश्न 84. मधुमक्खी के जीवन-इतिहास एवम् इसके आर्थिक महत्त्व का वर्णन कीजिये ।

Describe the life-history of honey-bee and discuss the economic importance of the insect. (*Agra 1956, 60 ; Jiwaji 71 ; Vikram 68 ; R.S. 71*)

मधुमक्खी का जीवन-इतिहास

शहद की मक्खी उन सामाजिक कीटों (social insects) में से है जो मनुष्यों के सम्पर्क में रहते हैं । इनमें जाति-व्यवस्था (caste system) पायी जाती है तथा एक छत्ते में तीन प्रकार के जन्तु होते हैं ।

1. रानी मक्खी या उर्वरा मादा (fertile female) जिसमें मादा जनन-अंग पूर्ण विकसित होते हैं ।

2. श्रमिक या बाँझ मादा मक्खी जिसमें जनन-अंगों के अवशेष पाये जाते हैं ।

3. नर मधुमक्खी जिनमें पूर्ण विकसित नर जनन अंग पाये जाते हैं।
रानी मधुमक्खी अण्डे देती है। रानी तथा श्रमिक मधुमक्खियाँ निषेचित अण्डों से बनती है परन्तु नर या ड्रोन (drone) अनिषेचित अण्डों के अनिषेक जनन (parthenogenesis) द्वारा बनते हे ; अतः इनमें क्रोमोसोम की संख्या रानी तथा श्रमिक मक्खियों की अपेक्षा आधी होती है, किन्तु तीनों दशाओं में वर्धन समान होता है, केवल इनको दिये गये भोजन में भिन्नता होती है। मधुमक्खी के जीवन-इतिहास का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है :—
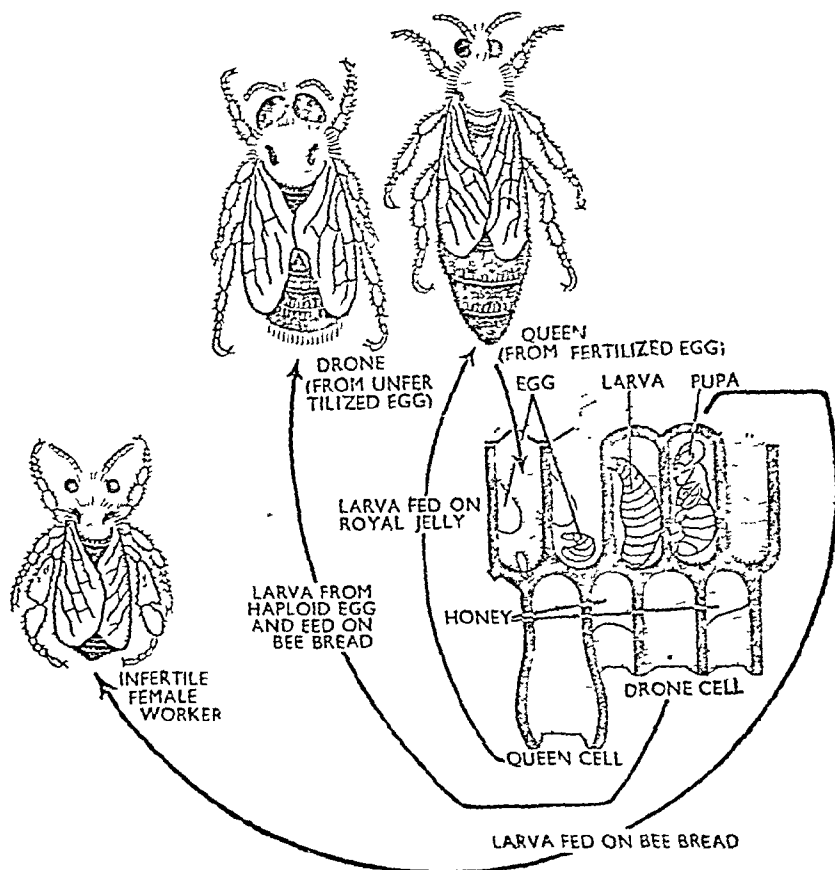
चित्र ११·१०. शहद की मक्खी का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Honeybee*)

झुण्ड में उड़ना (Swarming)—छत्ते के भीतर मक्खियों की अधिकता को दूर करने के लिए बसन्त ऋतु के अन्त में या ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में रानी मधुमक्खी अपने कई हजार श्रमिकों तथा कुछ नर मक्खियों के साथ पुराने छत्ते को छोड़कर झुण्ड में उड़ती है। यही झुण्ड में उड़ना कहलाता है और अधिकतर सुबह के समय प्रारम्भ होता है। इसके फलस्वरूप नये छत्ते बनते है और नये समूहो (colonies) का निर्माण होता है। पुराने छत्ते में नये श्रमिक (young workers) तथा कुछ नयी बनी रानी मधुमक्खियाँ होती हैं जो अभी भी अपने अण्डकोषों (cells) के भीतर

वर्धन अवस्था में होती हैं। वर्धन के पश्चात् जो रानी मक्खी सबसे पहले बनकर कोष्ठक से बाहर निकलती है छत्ते की रानी बन जाती है। यह अन्य रानी मक्खियों को तुरन्त ही मार देती है।

उड़ना या फरार होना (Absconding)—प्रतिकूल परिस्थितियों में या शत्रुओं के भय से मधुमक्खियों का सम्पूर्ण समूह (colony) अपने स्थान को छोड़कर नये तथा उचित स्थान पर पहुँच जाता है और नये छत्ते का निर्माण कर लेता है। सम्पूर्ण समूह के स्थानान्तरण को ही **फरार होना** (absconding) कहते हैं।

अधिक्रमण (Superseding)—जब प्रौढ़ रानी मधुमक्खी की अण्डे देने की क्षमता क्षीण हो जाती है तो छत्ते में उसका स्थान नयी रानी को दे दिया जाता है। *यह प्रौढ़ मादा मधुमक्खी या तो छत्ते से बाहर निकाल दी जाती है अथवा नयी* रानी मक्खी के साथ अण्डे देती रहती है।

वैवाहिक उड़ान तथा मैथुन (Nuptial flight and copulation)—अपने कोष्ठक से निकलने के पश्चात् रानी मधुमक्खी पहली बार हवा में उड़ती है तथा इसके पीछे नर मधुमक्खियों का समूह उड़ता है। मैथुन की क्रिया ऊपर हवा में ही होती है तथा मादा नर से शुक्राणु ग्रहण कर लेती है। शुक्राणु रानी मक्खी के शुक्रकोषों (spemathecae) में संचित रहते हैं तथा अण्डों को निषेचित करते हैं। मैथुन के समय नर के जनन-अंग इतनी अधिक शक्ति से बाहर निकलते हैं कि वे पुनः शरीर के भीतर नहीं जा सकते, अतः नर की तुरन्त मृत्यु हो जाती है। मैथुन के पश्चात् नर तथा मादा दोनों भूमि पर आ गिरते हैं। मादा छत्ते में लौट आती है तथा झुण्ड में उड़ने से पहले मादा फिर कभी भी अपने छत्ते से बाहर नहीं निकलती। मृतक नर के नष्ट हुए जनन-अंगों के अवशेष मादा के उदर से स्वयं या श्रमिक मधुमक्खियों द्वारा हटा दिये जाते हैं।

यह माना जाता था कि मादा अपने जीवन-चक्र में केवल एक बार मैथुन करती है किन्तु U.S.A. में किये गये आधुनिक अध्ययन से पता चलता है कि इसमें दो बार मैथुन क्रिया होती है क्योंकि 110 मधुमक्खियों में से लगभग 55 मक्खियों में अण्डे देने से पहले दूसरी बार मैथुन क्रिया देखी गयी।

अण्डे तथा अण्ड रोपण (Eggs and egg-laying)—मैथुन के लगभग तीन या चार दिन पश्चात् रानी मक्खी अण्डे देती है। अण्डे दो प्रकार के होते हैं :—

1. **निषेचित अण्डे** (Fertilized eggs)—जिनसे रानी तथा श्रमिक मादा मधुमक्खियाँ बनती हैं। ये अलग-अलग कोष्ठों में एक-एक करके दिये जाते हैं। ये द्विगुणित (diploid) होते हैं।

2. **अनिषेचित अण्डे** (Unfertilized eggs)—इनसे नर बनते हैं जो **ड्रोन** (drones) कहलाते हैं तथा इनमें क्रोमोसोम की संख्या आधी होती है।

अण्डे लम्बे तथा गुलाबी रंग के होते हैं और अपने-अपने कोष्ठक के अधर तल से चिपके रहते हैं।

वर्धन तथा जाति व्यवस्था (Development and caste system)—अनुकूल परिस्थितियों में तीन दिन के भीतर ही अण्डे से लारवा बन जाता है जो अण्डे को फोड़कर बाहर निकलता है। लारवा छोटा व कृमिवत् होता है। इसमें आँखें तथा टाँगें नहीं होतीं। यह सूँडी या ग्रब (grub) कहलाता है। श्रमिक मक्खियाँ लारवा को भोजन पहुँचाती हैं। नर मधुमक्खियाँ अनिषेचित अगुणित अण्डों से बनती

हैं परन्तु रानी तथा श्रमिकों का बनना लारवा अवस्था में मिले भोजन पर निर्भर करता है। प्रथम दो दिन सभी लारवा को समान भोजन मिलता है जो शाही जेली (royal jelly) कहलाता है। यह पराग (pollen) तथा शहद में लार रस के मिलने से बनता है। दो दिन पश्चात् जिन लारवा को शाही भोजन मिलता है वे रानी बनाते है तथा शेष लारवा के भोजन में शहद की मात्रा अधिक होती है और वे श्रमिक मधुमक्खियाँ (worker-bee) बनाते हैं। नर मक्खी के लारवा या अगुणित लारवा (haploid larvae) को केवल शहद ही दिया जाता है।

ग्रब या सूंडी आकार में बढ़ते हैं तथा इनमें कई बार त्वक्मोचन (moulting) होता है। नवें दिन प्रत्येक कोष्ठ जिसमें एक ग्रब होता है मोम की टोपी से बन्द कर दिया जाता है तथा इसके भीतर लारवा प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है। प्यूपा बन्द कोष्ठक के भीतर वृद्धि करता है। यह अपने चारों ओर पतला रेशम के समान कोकून (silken cocoon) बना लेता है। इसमें पूर्ण कायान्तरण (complete metamorphosis) होता है। इसके पश्चात् पूर्ण मधुमक्खी कोष्ठक की टोपी को हटाकर बाहर निकलती है। विभिन्न जातियों के प्यूपा का जीवनकाल भिन्न-भिन्न होता है। रानी मक्खी 13 दिन में, श्रमिक मक्खी 18 दिन में तथा नर मक्खी 21 दिन में अण्डे से बाहर आती है।

शरद् ऋतु के आगमन पर श्रमिक मक्खियाँ नर मक्खियों को छत्ते से खींचकर निकाल देती हैं। अत: अब छत्ते में केवल एक रानी तथा शेष श्रमिक मक्खियाँ रह जाती हैं। ये शरद् का प्रतिकूल वातावरण छत्ते के भीतर रहकर व्यतीत करती हैं तथा संचित मधु एवम् पराग को खाती हैं। नर मक्खियाँ सर्दी तथा भूख से मर जाती हैं अथवा श्रमिक मक्खियाँ उनको मार देती हैं। वसन्त आने पर ये पुन: क्रियाशील हो जाती हैं।

आर्थिक महत्त्व (Economic Importance)

मधुमक्खियाँ अपने नाम के अनुसार ही मधु या शहद (honey) एकत्रित करती है तथा मोम बनाती है। दोनों वस्तुओं को ही मनुष्य आदिकाल से उपयोग करता आ रहा है। शहद अत्युत्तम भोजन है तथा दवाइयों में भी उपयोग में आता है। शहद की मक्खी के मोम का भी दवाइयों में उपयोग किया जाता है। मधुमक्खी विभिन्न प्रकार के पुष्पों में परागण क्रिया पूर्ण करती है।

प्रश्न 85. कायान्तरण किसे कहते हैं ? रेशम के कीड़े के जीवन-इतिहास की सहायता से इसका उल्लेख कीजिये।

What is metamorphosis ? Describe it with reference to the life-history of silk-moth. (*Agra 1955 ; Vikram 69*)

कीट कायान्तरण से आप क्या समझते हैं ? उदाहरण सहित इसका उल्लेख कीजिये।

What do you understand by insect metamorphosis ? Explain with examples. (*Lucknow 1951, 55, 56, 58, 66*)

रूपान्तरण (Metamorphosis)

कृपया प्रश्न 81 देखिये।

रेशम के कीड़े का जीवन-इतिहास
(Life-history of Silk-moth)

रेशम के कीड़े का जीवन-इतिहास पूर्ण रूपान्तरण या कायान्तरण का एक

उदाहरण है। इसमें निम्न प्रावस्थाएँ पायी जाती हैं :—

अण्डा ——→लारवा ——→प्यूपा ——→प्रौढ

अण्डे (Eggs)—मादा रेशम का कीडा एक कीट है जो एक बार में 300 से 400 तक अण्डे एक समूह के रूप में शहतूत के पेड की पत्तियों पर जमा करता है। अण्डे के समूह के चारो ओर जेली के समान (jelly-like) पदार्थ जमा कर दिया जाता है। इसके द्वारा ये पत्ती से चिपक जाते है। अण्डे गोल, बीजाकार (seed-like) होते है जिनका रंग प्रारम्भ मे पीला या सफेद होता है किन्तु बाद में गहरा हो जाता है। गर्मियों मे लगभग 10 दिन में अण्डे से लारवा निकल आता है किन्तु अण्डे का फटना तथा लारवा का निकलना तापक्रम पर निर्भर करता है। कम तापक्रम पर देर से तथा ऊँचे तापक्रम पर शीघ्र ही लारवा निकल आता है।

लारवा या केटरपिलर (Larva or caterpillar)—अण्डे से निकलने वाला लारवा **केटरपिलर** (caterpillar) कहलाता है। इसका शरीर लगभग 1/5″ लम्वा, खुरदरा, झुर्रीदार तथा बिना बालों वाला होता है जिसका रग लगभग सफेद या भूरा-सा होता है। शरीर मे 12 खण्ड पाये जाते है जो सिर, वक्ष तथा उदर मे बँटे रहते है। सिर पर **मैण्डिब्युलेट मुखभाग** (mandibulate mouth-parts) तथा तीन जोडी **सरल नेत्र** स्थित होते हैं। वक्ष मे तीन खण्ड होते है तथा प्रत्येक खण्ड मे एक जोडी पाँच खण्डो वाली टाँगे होती है। प्रत्येक टाँग के स्वतन्त्र सिरे पर नखर (claw) होता है। उदर मे दस खण्ड होते है तथा इसमे पाँच जोड़ी अखण्डीय (unsegmented) **स्यूडोलैग** (pseudolegs or prolegs) होते है। ये माँसीले
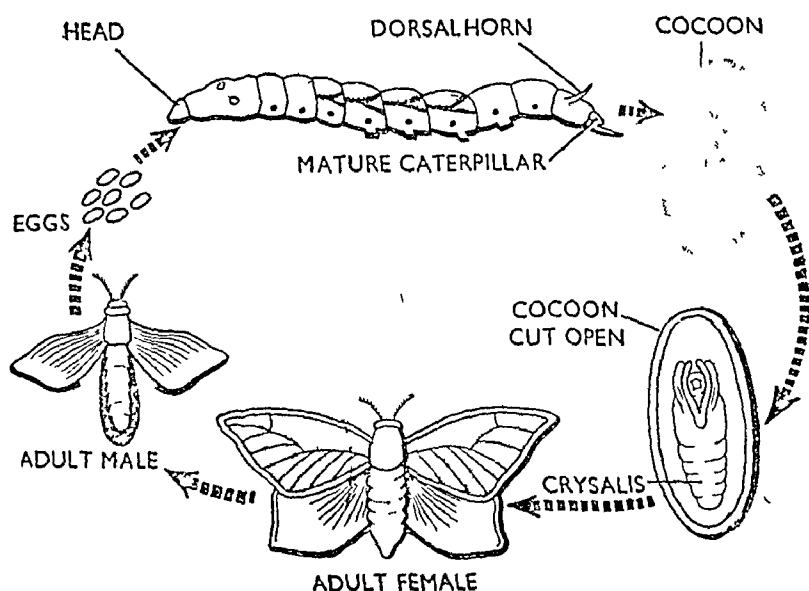
चित्र ११·११. रेशम के कीड़े का जीवन-चक्र (Life-cycle of *Silk-moth*)

उभार हैं जिनके स्वतन्त्र सिरे गद्देदार होते है और उन पर अर्धचन्द्राकार रूप में काँटे लगे रहते है। ये पत्तियों से चिपकने मे सहायक होते है। आठवे उदर खण्ड में एक छोटा-सा **ऐनल हॉर्न** (anal horn) होता है। शरीर के पार्श्व तलों पर **स्पाय-रेकिल** विन्यसित रहते हैं।

केटरपिलर लारवा तेजी से शहतूत की पत्तियों को खाता है और शीघ्रता से आकार में बढ़ता है परन्तु चार या पाँच दिन पश्चात् इसकी वृद्धि रुक जाती है तथा लारवा निष्क्रिय (inactive) हो जाता है। अब इसमें त्वक्मोचन (moulting) होता है जिसके फलस्वरूप अपेक्षाकृत बड़ा लारवा बनता है। यह भी प्रारम्भिक लारवा की भाँति फुर्तीला तथा शीघ्रता से चलने वाला होता है। एक सप्ताह पश्चात् इसमे पुन: त्वक्मोचन होता है। इसी प्रकार लारवा में चार बार त्वक्मोचन होता है और अन्त मे लगभग 45 दिन मे लारवा 3 इंच लम्बा हो जाता है। इसमें एक जोड़ी लार ग्रन्थियाँ बन जाती हैं।

प्यूपा या क्राइसेलिस (Pupa or Crysalis)—पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के पश्चात् लारवा भोजन ग्रहण करना बन्द कर देता है तथा पत्तियों के बीच में छिपकर प्यूपा मे बदल जाता है। लारवा की लार ग्रन्थियों से चिपचिपा द्रव निकलता है जो वयन प्रवर्धो (spinnerets) से होकर बाहर निकलता है और वायु के सम्पर्क मे आकर ठोस सिल्क के धागे के अनुरूप हो जाता है। यह धागा प्यूपा के शरीर के चारों ओर कोकून (cocoon) बना लेता है। कोकून मोटी दीवार के समान अण्डाकार तथा सफेद या पीले रंग का होता है। कोकून बनने में लगभग 3 या 4 दिन लगते हैं। लगभग 15 दिन मे रेशम का कीड़ा भूरे रंग का नालाकार जन्तु बन जाता है। यह प्यूपा या क्राइसेलिस (crysalis) कहलाता है।

कायान्तरण (Metamorphosis)—प्यूपा में बहुत-सी रचनात्मक तथा विघटनकारी क्रियाएँ एक साथ होती हैं। लारवा के स्यूडोलैग (pseudolegs) नष्ट हो जाते हैं तथा वक्ष में दो जोड़ी पंख बन जाते हैं। फलस्वरूप प्यूपा में कायान्तरण पूर्ण हो जाता है तथा पूर्ण कीट बन जाता है।

पूर्ण कीट (Imago)—पूर्ण कीट एक प्रकार का क्षारीय द्रव उत्पन्न करता है जो कोकून के अगले सिरे को नम करता है और अन्त में उस मुलायम भाग को तोडकर कोकून के बाहर निकल आता है। पूर्ण कीट आकार में बढ़ता है और जनन-अंगों के बनने के साथ ही प्रौढ़ बन जाता है।

प्रश्न 86. दीमक के बाह्य लक्षणों, स्वभाव एवम् जीवन-चक्र का वर्णन करिये।

Give an account of external features, habits and life-history of Termite. (*Kanpur 1971*)

दीमक सर्वप्रसिद्ध सामाजिक कीट है जो लकड़ी इत्यादि मे निवह बनाकर रहती है। यह लकड़ी को खोखला करके उसके अन्दर रहती है। दीमक के प्रत्येक सघ मे चार जाति के जीव पाये जाते हैं :—

1. छोटे आकार वाले, वन्ध्य श्रमिक जाति के कीट जो लकड़ी तथा कवक द्वारा स्रावित पदार्थो को खाते है तथा प्रतिक्षेपण (regurgitation) द्वारा युवक कीटों तथा अन्य जाति के दीमक कीटों को भोजन प्रदान करते है।

2. वन्ध्य सिपाही जाति के कीट जिनका सिर बड़ा होता है और जिस पर एक जोड़ी शक्तिशाली मैण्डिबल्स पाये जाते हैं। इन कीटो पर निवह की रक्षा का भार होता है।

3. **प्रतिस्थापित जनन जाति** (Substitute reproductive caste)—ये लैंगिक रूप से पूर्ण परिपक्व जन्तु हैं जो निम्फ अवस्था मे ही रह जाते है। अगर निवह का राजा या रानी मर जाती है तो इनमे से एक उस मृतक का स्थान ग्रहण

कर लेता है। इस प्रतिस्थापित जाति में दो प्रकार के जीव होते हैं :—

(*i*) जिनमें पंखों के अवशेष गद्दी के रूप में होते हैं—ये **द्वितीय क्लास की रानी दीमक** (second form of queen termites) प्रदर्शित करती हैं।

(*ii*) जिनमें पंखों के अवशेष नहीं होते—ये तृतीय क्लास की रानी दीमक (third form of queen termites) होती हैं।

4. **महापंखीय जीव** (Macropterous forms) **अथवा प्रथम जनन जाति** (First reproductives)—ये पूर्ण विकसित नर तथा मादा दीमक हैं तथा प्रत्येक निवह में केवल एक रानी तथा राजा होता है।
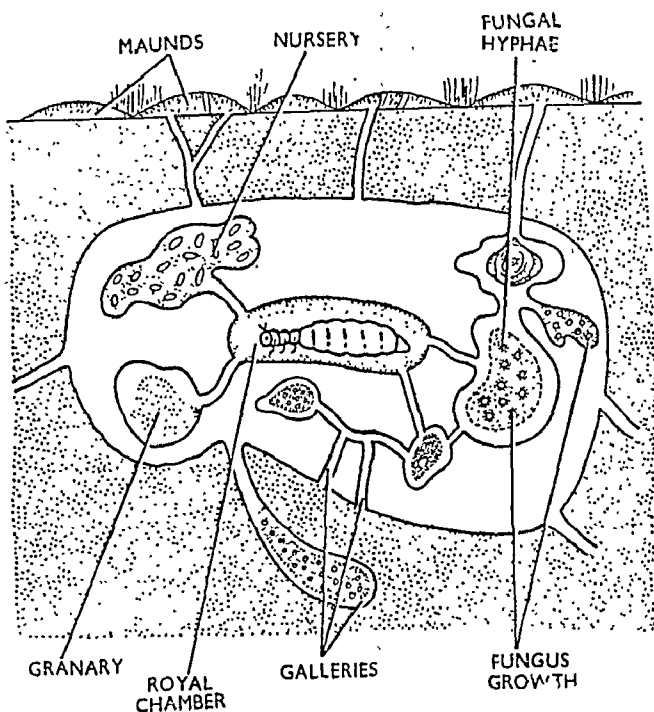
चित्र ११·१२. दीमक का निवह (Colony of termites)

एक निवह के समस्त जीवों में पदार्थो का निश्चित आदान-प्रदान होता है। श्रमिक कीट सिपाही जनन जाति के कीटों को भोजन प्रदान करते हैं और बदले में ये इनके मुख तथा गुदाद्वार से निकलने वाले द्रव को ग्रहण करते हैं। ये द्रव निम्फ का जनन कीटों में भिन्नित होना रोकते हैं।

वसन्त ऋतु के अन्त तथा ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में नये बने सपक्ष (winged) नर तथा मादा दीमक अपने पुराने संघ से निकलकर उड़ते हैं। कुछ समय पश्चात् पंख गिर जाते हैं और ये भूमि पर आकर मैथुन करते हैं। मैथुन के पश्चात् प्रत्येक जोड़ा एक निवह बनाता है तथा अपने निवह में ये शाही जोड़ा बनाते हैं। ये नया छत्ता बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। मादा अपने अण्डे इस नये बने छत्ते में देती है और अपने प्रथम अण्डों की रक्षा करती है। इनसे निकले निम्फ को रानी दीमक अपनी लार में मिले पदार्थो के रूप में भोजन प्रदान करती है। पूर्ण वृद्धि प्राप्त करने के पश्चात् ये निम्फ अपनी ही नहीं अपितु रानी तथा राजा दीमक की देखभाल

करते हैं। अब रानी तथा राजा केवल जनन का कार्य ही करते हैं। संघ के प्रारम्भ में प्रारम्भिक कुछ बार के अण्डों से निकले समस्त निम्फ पंखविहीन श्रमिक, सैनिक
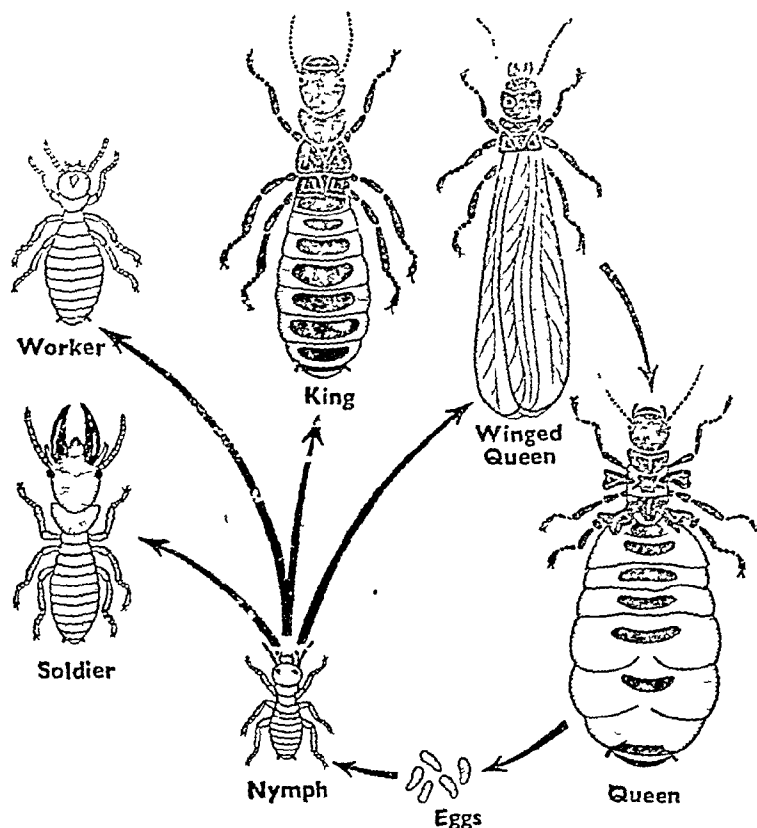
चित्र ११·१३. दीमक का जीवन-चक्र (Life-cycle of termite)

तथा प्रतिस्थापित जनन दीमकों में रूपान्तरित होते है। बाद में इनसे प्रथम जनन कीट बनते हैं।

दीमक लकड़ी, पुराने वृक्षों, फर्नीचर तथा मकानों के लकड़ी वाले भागों को बेधकर बनायी गयी गैलरीनुमा रचनाओं में रहते है। कुछ दीमकें मिट्टी में भी इस प्रकार की नालियाँ बनाती हैं और उसमें उगी घास अथवा पौधों की जड़ों को नष्ट करती हैं। लकड़ी में रहने वाली दीमक फर्नीचर, लकड़ी के लट्ठों, सूखी लकड़ी इत्यादि को खाकर नष्ट करती हैं। दीमक के छत्ते में शाही कक्ष, अन्य कक्ष, अनेक पथ तथा विशेष कोष्ठ होते हैं। इन विशेष कोष्ठों में कवक (fungi) का निवास होता है जो इनको लकड़ी को पचाने में मदद करता है।

दीमक अत्यन्त हानिकारक जीव हैं क्योंकि ये फर्नीचर, घरों के दरवाजों, खिड़कियों के किवाड़ों इत्यादि को नष्ट करते हैं। किन्तु दीमक से कई लाभ भी हैं:

1. ये नष्ट हुई लकड़ी इत्यादि को समाप्त कर देते हैं।

2. इनके जमा किये हुए उत्सर्जी पदार्थों के मिट्टी में मिलने पर उसकी उर्वरा शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

प्रश्न 87. खटमल, किलनियों एवम् खुजली के कीड़ों पर टिप्पणियाँ लिखिये। प्रत्येक से बचने के उपाय लिखिये।

Write full notes on bedbugs, ticks and mites. Suggest measures for protection against each of these.

(*Rajasthan 1968* ; *Agra 69* ; *R.S. 71*)

खटमल (Bedbug)

फाइलम — आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास — इन्सेक्टा (*Insecta*)
आर्डर — हेमिप्टेरा (*Hemiptera*)
टाइप —साइमेक्स (*Cimex*)—खटमल

प्रकृति तथा वास

खटमल मनुष्य के शरीर पर रहने वाले बाह्यपरजीवी पंखविहीन कीट हैं जो मनुष्य के रक्त को चूसते हैं। ये समस्त संसार में पाये जाते है तथा पुराने मकानों, होटलों, उनके लकड़ी के फर्नीचर तथा चारपाइयों में रहते है। ये रात्रिचर जीव है तथा मनुष्य के शरीर की उष्मता एवम् गन्ध से आकर्षित होते है।
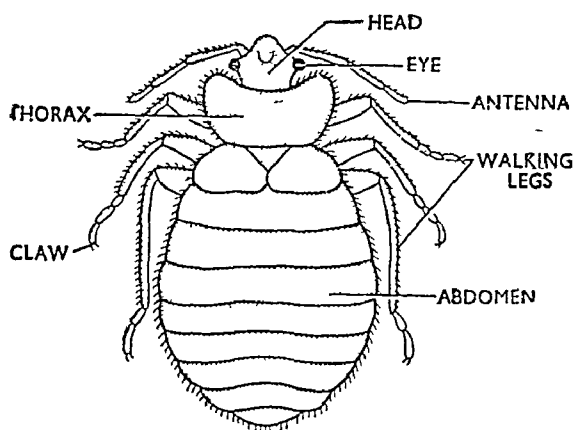
चित्र ११·१४. खटमल (*Bedbug*)

संरचना

इनका शरीर चपटा तथा अण्डाकार होता है। ये लगभग 5 mm. लम्बे, 1 mm. चौडे एवम् गहरे लाल-भूरे रंग के होते है। इनका शरीर तीन भागों में बँटा होता है :—

1. **सिर**—सिर छोटा किन्तु चौड़ा होता है। इस पर एक जोड़ी **संयुक्त नेत्र**, एक जोड़ी **स्पर्शक** (antennae) तथा **छेदने एवम् चूसने वाले** (piercing and sucking type) मुखांग होते है। मुखांग एक लम्बी तीन-खण्डीय शुण्ड के रूप में होते हैं और पोषक का रक्त चूसने के अनुरूप होते है।

2. **वक्ष**—यह तीन खण्डो—**अग्रवक्ष** (prothorax), **मध्यवक्ष** (mesothorax) तथा **पश्चवक्ष** (metathorax) का बना होता है। वक्ष के अन्तिम खण्ड

पर अग्रपंखों या हेमीलाइट्रा (hemielytra) के अवशेष होते हैं तथा दूसरी जोड़ी के पंखों का पूर्ण अभाव होता है। अत: खटमलों मे उड़ने की क्षमता नहीं होती।

3. उदर—उदर लगभग सात खण्डों का बना होता है। नर में उदर मादा की अपेक्षा कम चौड़ा तथा नुकीला होता है। नर मे इसके अन्तिम सिरे पर हुक के आकार का **आलिंगक** (clasper) होता है जो शिश्न का कार्य करता है। मादा में उदर चौड़ा तथा गोलाकार होता है और इसके चौथे खण्ड मे अवर तल पर कुछ दाहिनी ओर को दरार होती है। इसके द्वारा मैथुन कोष (copulatory pouch) बाहर को खुलता है। यह बेरलीज का अंग (organ of Berlese) कहलाता है।

जीवन-इतिहास (Life-History)

मैथुन से पहिले मादा पेट भर कर रक्त चूस लेती है। मैथुन के समय नर मादा के शरीर से तिरछा रहकर अपने आलिंगक को बेरलीज-अंग के छिद्र मे घुसा देता है। फलस्वरूप शुक्राणु मादा के मैथुन कोष में जमा कर दिये जाते है। ये मथुन कोष की दीवार को भेद कर अण्डाशय तक पहुँचते है और वहाँ अण्डों को निषेचित करते हैं।

मादा अपने जीवन-काल में लगभग 200 अण्डे देती है जो चारपाइयों एवम् अन्य फर्नीचर की दरारो मे जमा किये जाते हैं। प्रत्येक अण्डा चमकीला सफेद, बेलनाकार एवम् कुछ मुड़ा हुआ होता है। इसके शरीर पर टोपी के आकार की रचना होती है।

बीमारियाँ

खटमलों की गन्ध गन्दी होती है तथा ये त्वचा में छेद कर और उसमें लार रस मिलाकर खुजली पैदा करते हैं। ये काला-अजार (kala-azar), रिलेप्सिंग बुखार, प्लेग, टाइफॉयड तथा तपेदिक इत्यादि के जीवाणुओं को एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचाते हैं।

खटमलों से आत्म-रक्षा

(*i*) गन्धक अथवा HCN का धुआँ देकर।

(*ii*) पेट्रोल अथवा मिट्टी के तेल, बेनजीन तथा पेट्रोल व डी० डी० टी० के घोल को खटमल वाले स्थान पर छिड़कने से।

(*iii*) कमरों तथा फर्नीचर को HCN का धुआँ देकर।

(*iv*) उबलता हुआ पानी डालने से भी खटमल मर जाते हैं।

किलनियाँ (Ticks)

फाइलम	—	आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास	—	ऐरैकनिडा (*Arachnida*)
आर्डर	—	ऐकाराइना (*Acarina*)
टाइप	—	इक्सोडीम (*Ixodes*)—किलनी

प्रकृति तथा वास (Habit and Habitat)

किलनियाँ (ticks) जन्तुओं एवम् पौधों पर रहने वाले वाह्य परजीवी (ectoparasites) हैं किन्तु इनमे से कुछ अपमार्जक (scavanger) होते हैं। ये अधिकतर स्थलीय जीव हैं किन्तु कुछ जलीय भी होते हैं। इक्सोडीस रिसिनस (*Ixodes ricinus*) भेड़ के शरीर पर रहता है किन्तु अक्सर कुत्तो पर भी पाया जाता है।

संरचना (Structure)

किलनियाँ मोटी तथा चपटी होती हैं और इनका रंग गहरा भूरा होता है। अन्य ऐरैकनिड जन्तुओं की भाँति इनके शरीर में प्रोसोमा (prosoma) तथा ओपि-

चित्र ११·१५. किलनी (*Tick*)
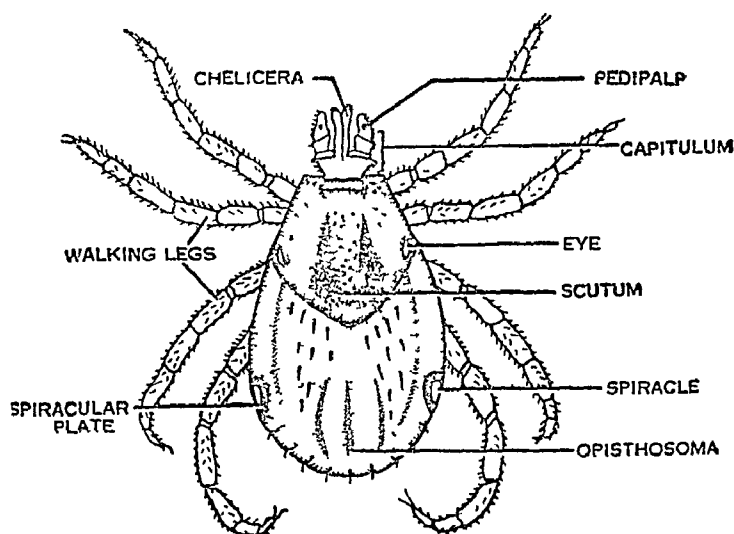
स्थोसोमा (opisthosoma) स्पष्ट नही होते। प्रोसोमा का अगला सिरा सिर के रूप में उभरा रहता है और **कैपीटुलम** (capitulum) कहलाता है। इसका आधार भाग **बेसिस कैपीटुलाई** (basis capituli) कहलाता है और यह गर्दन प्रदर्शित करता है। प्रोसोमा पर एक जोडी **केलिसेरी** (chelicerae), एक जोड़ी **पेडीपाल्प** (pedipalp) तथा चार जोड़ी टाँगें होती हैं। इनके अतिरिक्त एक **सबकेलिसेरल प्लेट** (subcheliceral plate), एक जोडी **केरीसेरल अधिच्छद** (cheliceral sheaths) तथा एक चम्मच के समान **अधोमुख** (hypostome) भी प्रोसोमा मे पाये जाते है। तीसरी जोडी की टाँगों के पीछे एक जोड़ी पार्श्व श्वास-रन्ध्र या **स्पायरेकिल्स** (spiracles) स्थित होते है तथा इनके आगे मध्य अधर तल पर **जनन द्वार** (gonopore) पाया जाता है जो जनन पट्टिका के पीछे स्थित होता है। इसके पीछे की ओर एक जोड़ी **जनन दरारें** (genital grooves) स्थित होती है। **गुदाद्वार** मध्य अधर तल पर होता है और एक जोड़ी **गुद-पट्टिकाओं** (anal plates) से घिरा रहता है।

जीवन इतिहास (Life-history)

मादा किलनियाँ नर की अपेक्षा वड़ी होती है। अण्डरोपण (oviposition) से पहले मादा किलनी पोपक का रक्त चूस कर भूमि पर गिर जाती है जहाँ यह लगभग 1,000 अण्डे देती है। अण्डों से छः टाँगो वाले लारवा निकलते है। ये घास या पौधो पर चिपक कर पोपक का इन्तजार करते है। जब कोई स्तनधारी जन्तु इन पौधों के समीप से गुजरता हे तो ये उसके शरीर से चिपक जाते है। पोपक से पेट भर रक्त चूसने के पश्चात् ये पुनः जमीन पर गिर जाते हैं और इनसे 8 टाँगों वाले निम्फ बनते हैं। ये भी पौधों से चिपक कर किसी स्तनधारी के शरीर पर पहुँच जाते है तथा रक्त चूसकर भूमि पर वापस आ जाते है। यहाँ इनमें कई बार **त्वक्मोचन**

(moulting) होता है तथा प्रौढ़ किलनियाँ बन जाती हैं जो अपने पोषक को पाने पर उनके शरीर से चिपक जाती हैं।

किलनियाँ दो प्रकार की होती हैं। मुलायम किलनियाँ दिन के समय पुराने मकानों में छिपी रहती हैं और रात्रि में पोषक को खोजकर रक्त चूसती हैं। कड़ी किलनियाँ स्थायी रूप से पोषक के शरीर पर रहती हैं और बराबर रक्त चूसती हैं। रक्त चूसने के अतिरिक्त ये पालतू जानवरों एवम् मनुष्य में कई प्रकार की बीमारियाँ फैलाती हैं। ये proplasmosis, tick paralysis, relapsing fever इत्यादि बीमारियों के जीवाणुओं के लिए वाहक का कार्य करती हैं।

खुजली का कीड़ा (Itch mite)

फाइलम — आर्थ्रोपोडा (*Arthropoda*)
क्लास — ऐरैकनिडा (*Arachnida*)
आर्डर — एकाराइना (*Acarina*)
टाइप — सारकोप्टीस (*Sarcoptes*)

सार्कोप्टीस या 'खुजली का कीड़ा' मनुष्य की त्वचा पर पाया जाने वाला परजीवी है जो त्वचा की एपिडर्मिस में क्षैतिज किन्तु जटिल खाइयाँ बनाकर रहता है। अधिकतर यह अंगुलियों के बीच की त्वचा, कोहनी, कलाई, कमर, घुटनों तथा टखनों एवम् बाह्य जनन-अंगों की त्वचा का अतिक्रमण करता है। स्त्रियों में यह स्तन-ग्रन्थियों के नीचे की सतह पर पाया जाता है।

इसका शरीर लगभग गोलाकार तथा चपटा होता है। प्रौढ़ मादा 330–450μ लम्बी तथा 252–380μ चौड़ी होती है किन्तु नर अपेक्षाकृत काफी छोटा होता है। इसकी पृष्ठ सतह पर असंख्य समान्तर धारियाँ होती हैं किन्तु मध्य भाग से जहाँ पर धारियाँ नहीं होतीं शल्क तथा बाल पाये जाते हैं। शरीर के अधर तल पर भी कुछ काँटे स्थित होते हैं। शरीर पर चार जोड़ी टाँगें होती हैं। टाँगों के
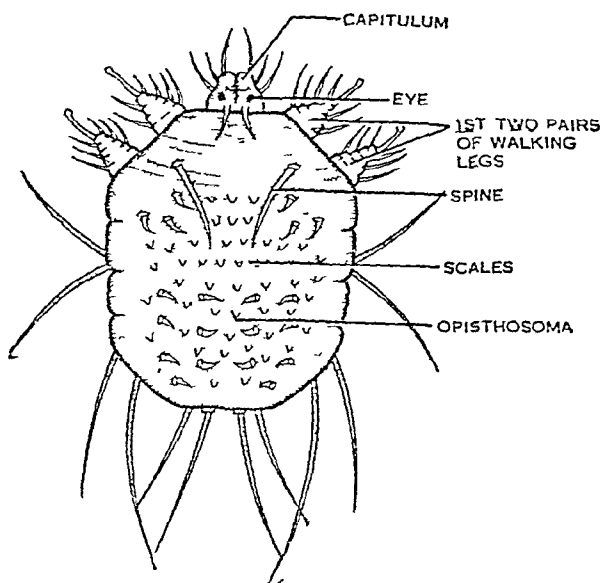
चित्र ११·१९. खुजली का कीड़ा (Itch mite)

अगले दो जोड़ों तथा पिछले जोड़ों के बीच काफी दूरी होती है। टाँगों पर एपिमीयर (epimere) नामक काइटिन की पट्टियाँ होती हैं।

मादा लगभग 4 या 5 सप्ताह तक प्रतिदिन त्वचा में 2–3 mm. अन्दर धँसती है और अण्डे देना प्रारम्भ कर देती है। 3–4 दिन में अण्डे से लारवा निकलता है जो त्वचा की ऊपरी सतह पर आ जाता है तथा रोमकूपों (hair follicles) में पहुँच कर पुटिकाएँ बना लेता है। इन्हीं पुटिकाओं के अन्दर लारवा में त्वक्मोचन होता है तथा यहीं पर निम्फ अवस्थाएँ भी पूर्ण होती हैं। निम्फ में दो बार त्वक्मोचन होता है और प्रौढ़ जन्तु बन जाता है। जब मादा द्वितीय निम्फ अवस्था में होती है उसी समय मैथुन क्रिया पूर्ण हो जाती है। प्रौढ़ जन्तु का जीवन-काल केवल 3–5 सप्ताह तक होता है।

खुजली का कीड़ा तीक्ष्ण द्रव स्रावित करता है जो घावों में पहुँचकर खुजली पैदा करता है। संक्रमित कपड़ों द्वारा नये पोषकों का संक्रमण होता है।

प्रश्न 88. कीटों के आर्थिक महत्त्व पर निबन्ध लिखिये।
Describe the economic importance of insects.
(*Rajasthan 1970 ; Madras 68 ; Kanpur 71 ; Jabalpur 70*)

प्रश्न 89. लाभदायक व हानिकारक कीटों पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on useful and harmful insects. (*Jabalpur 1972*)

कीटों का आर्थिक महत्त्व
(Economic Importance of Insects)

कीट संसार में पाये जाने वाले जन्तु-समूहों में सबसे अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इनकी लगभग एक लाख जातियों का अध्ययन किया जा चुका है। किन्तु अभी भी असंख्य कीट ऐसे हैं जिनके हमें दर्शन नहीं हुए है। बुद्धिमत्ता तथा समाज-व्यवस्था की दृष्टि से मनुष्य के पश्चात् कीटों का ही स्थान आता है। इसके अतिरिक्त किन्ही बातों में तो कीट मनुष्य से भी आगे हैं। ये वायु में उड़ सकते है तथा इनमें अपने को परिस्थिति के अनुरूप बनाने की अपरिमित क्षमता होती है। जीवन-संघर्ष में केवल कीट ही मनुष्य के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी हैं। ये मानव समाज के सम्मुख विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ प्रस्तुत करते है किन्तु कुछ कीट मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त लाभदायक है। कीटों की आर्थिक महत्ता का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है :—

1. हानिकारक कीट (Harmful Insects)

(*a*) **नाशक कीट** (Destructive insects)—बहुत-से कीट पेड़-पौधों, उनकी पत्तियों, शाखाओं, कलियों, फूलों तथा फलों व बीजों इत्यादि पर पीडक (pest) की भाँति रहते हैं। ये पेड़ की छाल, लकड़ी, सब्जियों, अनाज इत्यादि को भी नष्ट करते है। अधिकांश नाशक कीट लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera) **कोलियोप्टेरा** (Coleoptera), डिप्टेरा (Diptera) तथा हेमिप्टेरा (Hemiptera) वर्गों से सम्बन्धित होते हैं। लकड़ी की वस्तुओं को नष्ट करने के लिए **दीमक** (termites or white ants) प्रसिद्ध हैं। **वस्त्र शलभ** (clothes moth) के लारवा ऊनी तथा रेशमी कपड़ों को काटते है। लाइमेन्ट्रिया (*Lymantria*) जिप्सी शलभ पौधों की पत्तियों का पीड़क हैं। पायरिला (*Pyrilla*) तथा चाइलो (*Chilo*) के लारवा गन्ने में पहुँचकर उसका रस चूस लेते है। एग्रोटिस (*Agrotis*) के लारवा मटर, गोभी, तथा मूँगफली, आलू इत्यादि को हानि पहुँचाते है।

हेसियन मक्खी (Hessian fly) गेहूँ के पौधे को हानि पहुँचाती है। **कॉटन बॉल वीविल** (cotton ball weevil) कपास की खेती के लिए हानिकारक है। **गंधी** (rice-bug) धान की खेती का दुश्मन है। **गोभी का पतंगा** गोभी की फसल को नष्ट करता है। **टिड्डी तथा टिड्डे** सभी प्रकार की हरी फसल को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। **चिकटा** या **एफिड्स** (plant-lice or aphids) शीतकाल में अमरूद आदि के वृक्षों पर रहती हैं। **गाल-मच्छर** (gall-insects) पौधों पर गोल गाँठ-सी बनाकर उसके अन्दर रहते हैं। **झींगुर, घुन, आटे के कीड़े** इत्यादि कागज, कपड़े तथा अनाजों को नष्ट करते हैं।

(*b*) **रोग उत्पन्न करने वाले कीट**—

(*i*) **परजीवी** (Parasites)—परजीवी कीट दो प्रकार के होते हैं—जूँ (*Pediculus humanus*), **पिस्सू** (*Xenopylla*), **खटमल** (*Cimex*) इत्यादि मनुष्य तथा अन्य स्तनधारियों के शरीर पर **वाह्य परजीवी** की भाँति जीवन व्यतीत करते हैं। ये पोषक का रक्त तो चूसते ही हैं, साथ ही अनेक प्रकार की बीमारियों के जीवाणुओं को भी नये पोषकों में पहुँचाते हैं। **भेड़ की बघायी** (sheep botfly) के लारवा भेड़ के मस्तिष्क में, **बैल की बघायी** (botfly) के लारवा बैल के शरीर में त्वचा के नीचे घाव बनाकर तथा **घोड़े की बघायी** घोड़े की आंत्र में रहकर आन्तरिक परजीवी के समान रहते हैं।

(*ii*) **रोगवाहक**—कीट स्वयं तो कम ही बीमारियाँ पैदा करते हैं किन्तु बहुत से कीट रोगवाहक का कार्य करते हैं तथा बीमारियों के जीवाणुओं को एक पोषक से दूसरे पोषक में पहुँचाते हैं। एनोफिलीज (*Anopheles*) की विभिन्न जातियाँ मलेरिया उत्पन्न करने वाले परजीवी प्रोटोजोआ के वाहक का कार्य करती हैं। क्यूलेक्स (*Culex*) फीलपाँव नामक बीमारी फैलाता है। **खटमल** (*Cimex*) टाइफस व रिलैप्सिग फीवर (typhus, relapsing fever), कोढ़ (leprosy) तथा महामारी फैलाते हैं। **पिस्सू** (*Xenophylla*) प्लेग, **सेटसी मक्खी** (tse-tse fly) निद्रा रोग तथा घरेलू मक्खी टाइफाइड, अतिसार, हैजा, अमीबिक पेचिश, तपेदिक, कोढ़, सुजाक इत्यादि बीमारियाँ फैलाती हैं। इसी प्रकार ग्लोसाइना (*Glossina*) नामक मक्खी निद्रा रोग फैलाती है।

पालतू पशुओं में भी बहुत सी बीमारियाँ कीटों द्वारा ही फैलती हैं। घोड़ों की नगाना नामक बीमारी, गाय-भैंसों की सूरा (surra) नामक बीमारी ग्लोसाइना तथा टैबेनस नामक मक्खियों द्वारा फैलती हैं।

(*iii*) **घरेलू पीड़क** (Household pests)—कॉकरोच, चींटी, मक्खियाँ तथा घुन इत्यादि संचित भोज्य पदार्थों, अनाजों एवम् दालों को नष्ट करते हैं। **शलभ** (moth) की विभिन्न जातियाँ ऊनी कपड़ों पर तथा कालीनों इत्यादि पर अण्डे दे देती हैं जिनसे निकलने वाले लारवा इन पदार्थों को नष्ट कर देते हैं। **दीमक** (termites) लकड़ी के बने फर्नीचर की दुश्मन है।

(*c*) **जहरीले कीट** (Poisonous insects)—बहुत से कीट अथवा उनके लारवा जहरीले द्रव निकालते हैं जिनको ये मनुष्य तथा अन्य जानवरों के शरीर में पहुँचाकर अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं। शहद की मक्खी एवम् ततैया इत्यादि काट कर सूजन उत्पन्न करते हैं। इनमें जहरीले द्रव उत्पन्न करने के लिए विशेष ग्रन्थियाँ एवम् उसको पोषक में पहुँचाने के लिए विशेष अंग (sting) होते हैं।

2. लाभदायक कीट (Useful Insects)

कुछ कीट मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। ये हमारी फसल, बगीचों एवम् जंगलों की उपज एवम् वृद्धि में सहायक हैं। इसके अतिरिक्त मधुमक्खी, रेशम का कीट लारवा तथा तितलियाँ इत्यादि अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ उत्पन्न करते हैं।

(*i*) **शहद की मक्खियाँ** (*Apis*) प्रतिवर्ष लाखों टन शहद उत्पन्न करती हैं। साथ ही इनके छत्तों से मोम भी प्राप्त किया जाता है। शहद तथा मोम दोनों ही दवाइयों में प्रयोग में लाये जाते हैं।

(*ii*) **रेशम का कीट** (*Bombyx*) लगभग संसार के समस्त भागों में पाया जाता है। भारत, चीन, जापान तथा यूरोप में इनके कोकून से सिल्क तैयार किया जाता है। रेशम के कीटों को शहतूत के वृक्षों पर पाला जाता है। इनके प्यूपा के चारों ओर स्थित कोकून के धागों को बुनकर रेशम तैयार किया जाता है।

(*iii*) **लाख का कीट** (*Tacchardia lacca*) पीपल, बेर इत्यादि के वृक्षों पर रहता है। इसकी मादा में आत्मरक्षा हेतु त्वचीय ग्रन्थियों से एक प्रकार का द्रव निकलता है जो शरीर के चारों ओर सूखकर रक्षात्मक खोल बना लेता है जो लाख का बना होता है। लाख से अनेक प्रकार के पदार्थ जैसे चूड़ियाँ, खिलौने, वार्निश तथा मोहर लगाने की घुण्डियाँ इत्यादि बनाये जाते हैं।

(*iv*) **रंग**—मैक्सिको में डैक्टाइलोपस तथा कोकस (*Dactylopus* and *Coccus*) नामक कीटों की मादा के शुष्क शरीर से **कॉचीनियल** (cochineal) रंग बनाते है।

(*v*) **कैन्थराइडिन** (Cantharidine)—यह *Lytla* तथा *Mylabris* नामक बीटल (beetles) के सूखे हुए इलाइट्रा (elytra) से निकाला जाता है।

(*vi*) **गाल कीट** (gall insects) टेनिन बनाते हैं।

3. सहायक कीट (Helpful Insects)

व्यापारिक महत्त्व के कीट तो बहुत कम हैं किन्तु बहुत-से कीट अन्य प्रकार से मानव जाति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(*i*) **पुष्पों का परागण**—विभिन्न समूहों के कीट खेती के लिए लाभदायक है। मधुमक्खी, ततैया, तितलियाँ व शलभ इत्यादि पुष्पों का परागण करते है।

(*ii*) **अपमार्जक** (Scavangers)—कीटों की कुछ जातियाँ मृतजीवी एवम् सड़े-गले फलों तथा शाकों को खाना पसन्द करती है और इस प्रकार उन्हें सड़ने नहीं देतीं। कुछ चीटियाँ जन्तुओं के पूर्ण ढाँचों को खा जाती हैं। प्राचीन काल में मक्खी को भी मुख्य अपमार्जक कहा जाता था क्योंकि वह भी सभी प्रकार के कचरे को खा लेती है।

(*iii*) **परभक्षी** (Predators)—कुछ कीट हानिकारक कीटों का भक्षण करते हैं। स्टेगोमेण्टिस (*Stegomantis*) लाभदायक परभक्षी है जो मक्खियों, टिड्डों तथा अनेक कैटरपिलर लारवा को खाता है। **लेडीबर्ड बीटल** (*ladybird beetle*) के लारवा कपास के पौधों पर रहने वाले एफिडों का भक्षण करते हैं। इसी प्रकार **ब्लिस्टर बीटल** (blister beetle) के लारवा टिड्डों के अण्डों में घुसकर उन्हें नष्ट कर देते हैं।

(*iv*) **परजीवी** (Parasitoides)—कुछ परजीवी कीट मानव जाति के लिए लाभदायक होते हैं। इनमें से कुछ तो हानिकारक कीटों के अन्दर रहते अथवा उनको

अपना भोजन बनाते हैं। कैलसिड (*Chalcids*) तथा इक्युमोन (*Icheumon*) नामक मक्खियाँ परजीवी जन्तु हैं जो वनस्पति-आहारी लेपीडोप्टेरस कीटों (phytophagus lepidopterous insects) के लारवा तथा प्यूपा में अण्डे देते हैं। टेकिना (*Tachina*) तथा इससे सम्बन्धित मक्खियाँ भी इन्हीं कीटों के लारवा में रहते हैं। हाइमेनोप्टेरा वर्ग के कुछ लारवा तथा मांसभक्षी ततैये एफिड को अपना भोजन बनाते हैं।

(*v*) **भोजन** (As food)—संसार के विभिन्न भागों में टिड्डे तथा लोकस्ट मनुष्यों का भोजन हैं।

(*vi*) कीट संगीत-प्रेमियों द्वारा भी पसन्द किये जाते हैं। ये घर में सजाने के लिए तथा कला में भी प्रयोग में लाये जाते हैं। *सिकाडा* (*Cicada*) अपनी संगीतमय ध्वनि के कारण अति प्रिय हैं। रंग-बिरंगे पंखों वाली तितलियाँ तथा बीटल्स सजावट के काम आती हैं।

(*vii*) *ल्यूसिलिया* (*Lucilia*) तथा *फोर्मिया* (*Phormia*) हड्डियों के घाव भरने के काम में आते हैं। **ब्लो मक्खियों** (blow flies) के लारवा घाव के मृत ऊतकों को खाना प्रारम्भ करते हैं और एक एलन्टोइन (allantion) नामक द्रव स्रावित करते हैं जो घाव के भरने में मदद करता है।

अध्याय 12

विभिन्न प्रश्न
(Miscellaneous)

प्रश्न 90. पैलीमोन के श्वसन अंगों का वर्णन करिये तथा समझाइये कि ये कॉकरोच के श्वसन अंगों से किस प्रकार भिन्न होते हैं।

Describe the respiratory organs of Prawn and mention how they differ from those of cockroach. (*Vikram 1960 ; Gorakhpur 67*)

प्रॉन के श्वसन अंग
(Respiratory Organs of Prawn)

कृपया प्रश्न 50 देखिये।

प्रॉन तथा कॉकरोच के श्वसन अंगों में अन्तर
(Differences Between Respiratory Organs of Prawn and Cockroach)

प्रॉन (*Prawn*)	कॉकरोच (*Cockroach*)
1. श्वसन विधि (Mechanism of Respiration)	
1. श्वसन विधि जलीय जीवन के अनुकूल होती है।	1. श्वसन स्थलचर जीवन के अनुकूल होता है।
2. श्वसन अंग (Organs of Respiration)	
2. श्वसन अग निम्नलिखित है : (*i*) एक जोड़ी ब्रैकियोस्टेगाइट्स (*ii*) तीन जोड़ी एपिपोडाइट्स (*iii*) आठ जोड़ी क्लोम	2. इसके श्वसन अंग केवल ट्रैकिया हैं।
3. श्वसन अंग शरीर के वक्ष भाग में पार्श्व में एक जोड़ी क्लोम कक्षों में बन्द रहते हैं।	3. क्लोम कक्ष अनुपस्थित होते हैं।
4. एपिपोडाइट्स तथा क्लोम एक्टोडर्म से विकसित होते हैं तथा क्यूटिकल से आस्तारित रहते हैं।	4. ट्रैकिया एक्टोडर्मल होते हैं जो देह-भित्ति के बाहरी स्तर के अन्तर्गमन के फलस्वरूप बनते हैं। इनका आन्तरिक स्तर क्यूटिकल से आस्तारित होता है।

प्रॉन (*Prawn*)	कॉकरोच (*Cockroach*)
5. स्टिगमेटा अनुपस्थित होते हैं।	5. ट्रैकिया 10 जोड़ी स्टिगमेटा या श्वास-रन्ध्रों द्वारा बाहर खुलते हैं।
6. ऐसा नही होता।	6. स्टिगमेटा कपाटों एवम् पक्ष्मों द्वारा आरक्षित रहते हैं।
7. क्लोमों में प्लेट के समान, लैमिली होते जो एक-दूसरे के समान्तर तथा क्लोम-अक्ष के म्बवत् स्थित होते हैं।	7. ऐसा नही होता।
8. क्लोमों में रुधिर सम्भरण 7 जोड़ी ाभिवाही क्लोम वाहिनियों (afferent bran-hial vessels) द्वारा होता है।	8. ट्रैकियल प्रणाली अत्यधिक क्षम होती है तथा इसमें रुधिर सम्भरण नहीं होता।
9. क्लोम शरीर के अन्य अंगों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में नही होते।	9. ट्रैकिया बारम्बार विभाजित होकर अति महीन ट्रैकियोल्स बनाते हैं। इनके दूरस्थ सिरों में ऊतक द्रव (tissue fluid) भरा रहता है तथा इनका विभिन्न अंगों से सीधा सम्पर्क होता है।
3. श्वसन की क्रिया (Mechanism of Respiration)	
10. क्लोमों में रुधिर आक्सीकृत होता है।	10. ट्रैकिया केवल श्वसन पथों (respiratory passages) का कार्य करते हैं जो वाह्य पर्यावरण से आक्सीजन ग्रहण करके विभिन्न अंगों को पहुँचाते हैं।
11. क्लोमों में से आक्सीकृत रुधिर शरीर के विभिन्न ऊतकों में ले जाया जाता है। अतः आक्सीजन शरीर के विभिन्न भागो में अप्रत्यक्ष रूप से पहुँचती है तथा रुधिर में घुली हुई आक्सीजन ऊतकों में विसरित हो जाती है। अतः पैलीमोन में वाह्य एवम् आन्तरिक श्वसन होता है।	11. आक्सीजन सीधे ट्रैकियोल्स के सिरों पर पहुँचकर ऊतक द्रव में घुल जाती है जहाँ से यह विभिन्न ऊतकों में विसरित हो जाती है। अतः कॉकरोच में केवल आन्तरिक श्वसन (internal respiration) ही पाया जाता है।
12. रुधिर श्वसन के लिए आक्सीजन के सम्भरण में पूर्ण योगदान देता है।	12. रुधिर आक्सीजन संभरण में भाग नहीं लेता।
13. क्लोम कक्षों के अग्रिम भाग में मैक्सिली के स्केफोग्नेथाइट्स (scaphognathites) के स्पंदन के फलस्वरूप क्लोमों में लगातार स्वच्छ जल पहुँचता रहता है।	13. श्वसन गतियाँ उदर पेशियों की सक्रियता के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं।

प्रश्न 91. क्रस्टेशिया में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के लारवा का वर्णन कीजिये।

Describe the larval forms met within Crustacea.

(*Punjab 1967* ; *Saurashtra 73*)

क्रस्टेशिया के विभिन्न लारवा
(Larval Forms of Crustacea)

एस्टेकस व पैलीमोन आदि कुछ क्रस्टेशियन अण्डों से सीधे विकसित होते है तथा इनके सन्तति जीव प्रौढ़ के ही समान होते है । अतः इनमें कायान्तरण नहीं होता तथा लारवा अवस्था पूर्णतया अनुपस्थित होती है । *निवेलिया* (*Nebalia*), *माइसिस* (*Mysis*), आदि अन्य क्रस्टेशियन्स में अण्ड-केस के अन्दर ही कायान्तरण होता है किन्तु अधिकांश क्रस्टेशियन्स में वधन अप्रत्यक्ष होता है तथा इनमे थोड़ा या अधिक कायान्तरण अवश्य ही होता है । अण्ड-भेदन करके बाहर निकला सन्तति जीव प्रौढ़ से पूर्णतया भिन्न होता है । प्रौढ़ अवस्था में पहुँचने के लिए इसमे अनेक परिवर्तन होते है । प्रौढ में पहुँचने से पूर्व की विभिन्न प्रावस्थाएँ लारवी कहलाती है । क्लास क्रस्टेशिया में विभिन्न प्रकार के निम्नलिखित लारवा पाये जाते है :—

1. नॉप्लियस (Nauplius)—लगभग समस्त क्रस्टेशियन्स अण्डभेदन के फलस्वरूप स्वतन्त्र रूप से तैरने वाले लारवा के रूप मे निकलते है । ये **नॉप्लियस प्रावस्था** (nauplius stage) को प्रदर्शित करते हैं जिसके कुछ निश्चित लक्षण हैं । **नॉप्लियस** का शरीर सूक्ष्म अण्डाकार या नाशपाती के आकार का होता है, जिसका अगला चौड़ा भाग **सिर-भाग** तथा पिछला सँकरा भाग **गुदा-भाग** (anal region) कहलाता है । मध्य भाग **धड़-भाग** (trunk region) कहलाता है । इसमें तीन जोड़ी अखण्डित उपांग होते हैं । प्रथम जोड़ी उपांग अशाखित (uniramous) होते है। इनको **ऐण्टिन्युल्स** (antennules) कहते है । द्वितीय एवम् तृतीय जोड़ी उपांग द्विशाखित होते है। ये क्रमशः **एण्टिनरी** (antennary) तथा **मैण्डिबुलर पादों** (mandibular feet) को निरूपित करते हैं । सिर पर एक सरल अवृन्तक **माध्यिक नेत्र** (median eye) होता है । मुख एण्टिनरी एवम् मैण्डिवुलर पादों के मध्य में स्थित होता है तथा **गुदाद्वार** (anus) पुच्छ भाग के अन्तिम छोर पर स्थित होता है । नॉप्लियस में अनेक वार निर्मोचन होता है तथा मेटानॉप्लियस, प्रोटोजोइया, जोइया आदि अनेक लारवा प्रावस्थाओं मे से होकर प्रौढ़ में रूपान्तरित हो जाता है ।
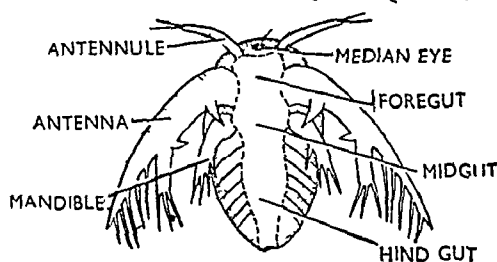
चित्र १२·१ नॉप्लियस लारवा (Nauplius larva)

2. मेटानॉप्लियस (Metanauplius)—यह नॉप्लियस के वाद की कुछ अस्पष्ट-सी लारवा अवस्था है । इसका शरीर अण्डाकार **सिर-वक्ष** या सेफैलोथोरेक्स (cephalothorax), लम्वे धड़ तथा सँकरे **उदर** भाग जो कि एक कॉडल द्विशाख काँटे में समाप्त हो जाता है, में भिन्नित होता है । इसमें नॉप्लियस के तीन जोड़ी उपांगों के अतिरिक्त चार जोड़ी मैक्सिलिपीड्स और पाये जाते हैं । प्रत्येक मैण्डिवल में चर्वण प्रवर्ध (masticatory process) होता है जो पोपण में सहायता करता है । ल्युसिफर (*Lucifer*) आदि कुछ डेकापोड्स (decapodes) तथा कुछ स्टोमेटोपोड्स (stomatopodes) में अण्डभेदन मेटानॉप्लियस अवस्था में होता है ।

3. प्रोटोजोइया (Protozoea)—यह क्रस्टेशियन्स की तीसरी लारवा अवस्था है। इसमें शरीर के अग्रिम भाग की पृष्ठ सतह पर कैरापेस (carapace) पाया जाता है जो इसका विशिष्ट गुण है। इसमें भी मेटानॉप्लियस के समान सात जोड़ी उपांग होते हैं। प्रोटोजोइया में उपांग क्रियाशील होते हैं। इसमें मैण्डि-

चित्र १२·२. मेटानॉप्लियस लारवा (Metanaupilus larva)
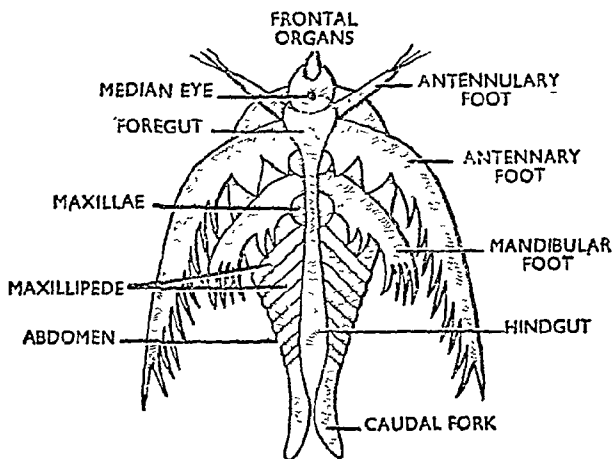
बुलर पाल्प अनुपस्थित होते हैं तथा पार्श्व नेत्रों के अवशेष पाये जाते हैं। वक्ष भाग के छः खण्ड प्रारम्भावस्था में होते हैं किन्तु उदर अभी भी अखण्डित तथा उपांग-विहीन होता है। कुछ समय उपरान्त मैक्सिलीपीड का तीसरा जोड़ा तथा उदर के अगले पाँचों खण्ड भी भिन्नित होना आरम्भ कर देते हैं।
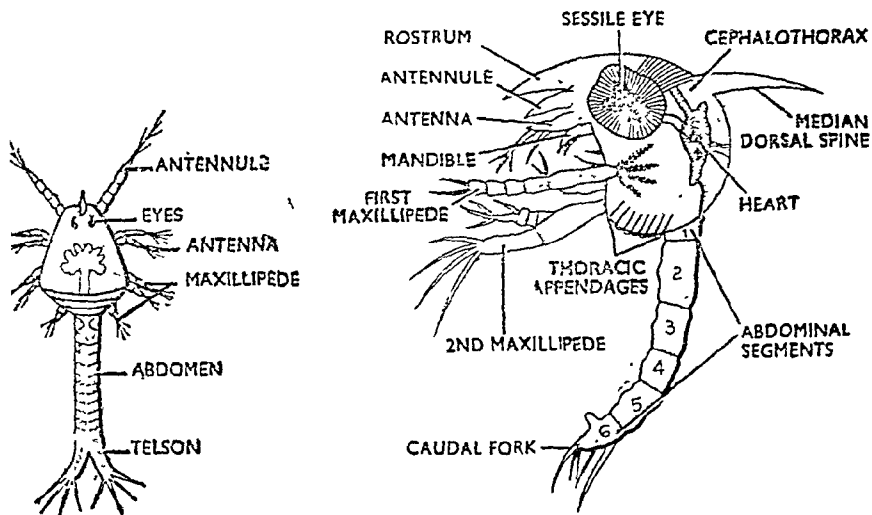
चित्र १२·३. प्रोटोजोइया लारवा (Protozoaea larva)

चित्र १२·४. जोइया लारवा (Zoaea larva)

सरगेस्टिस (*Sergestes*) अपना जीवन-चक्र प्रोटोजोइया अवस्था से ही प्रारम्भ करता है।

4. जोइया लारवा (Zoaea larva)—जोइया क्रस्टेशियन की नॉप्लियस के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण लारवा अवस्था है। यह प्रोटोजोइया के बाद आरम्भ होती है किन्तु बहुत-से डेकापोड्स (decapodes) अण्डभेदन के बाद सीधे जोइया अवस्था मे ही प्रवेश करते है।
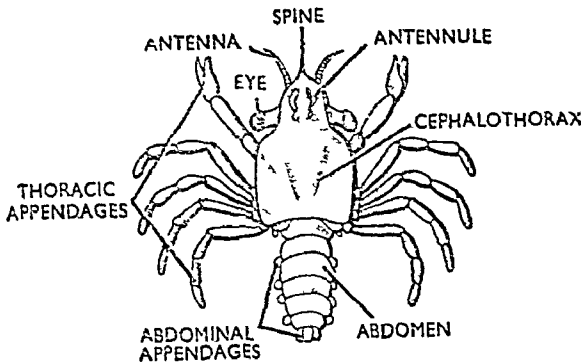
चित्र १२·५. मेगालोपा लारवा (Megalopa larva)

जोइया लारवा का शरीर **सेफैलोथोरेक्स** तथा **उदर** मे भिन्नित होता है। सेफैलोथोरेक्स अत्यधिक बड़ा होता है और **कैरापेस** से आच्छादित रहता है। कैरापेस कण्टकों के रूप मे आगे निकला रहता है। ये संख्या में चार होते है। आगे की ओर **रॉस्ट्रल** कण्टक (rostral), मध्य में **पृष्ठ** कण्टक (dorsal) तथा दो **पार्श्विक** कण्टक (laterals) होते हैं। नेत्र युग्मित एवम् सयुक्त होते है। इसमें पाँच जोड़ी सुविकसित सिर उपांग तथा दो जोड़ी वक्ष उपाग होते है। शेष 6 जोड़ी उपाग मुकुलको (buds) के रूप मे होते है। स्क्वीला (*Squilla*) में जोइया कुछ परिवर्तित रूप मे होता है जिसे **एलिमा लारवा** (alima larva) कहते हैं। क्रैब्स (crabs) मे जोइया क्रमिक निर्मोचनों के पश्चात् **मेगालोपा अवस्था** (megalopa stage) मे पहुँचता है।

5. मेगालोपा (Megalopa)—क्रैब्स मे जोइया लारवा मेगालोपा लारवा मे रूपान्तरित हो जाता है। मेगालोपा लारवा का सेफैलोथोरेक्स क्रैब के समान चौड़ा होता है जो एक पृष्ठ करापेस द्वारा आच्छादित रहता है। कैरापेस सामने की ओर एक माध्यिक रास्ट्रल कण्टक में निकला रहता है। युग्मित संयुक्त नेत्र सवृन्त तथा बड़े होते हैं। सिर (cephalic) तथा वक्ष (thoracic) उपांग सुविकसित होते हैं। उदर अपेक्षाकृत सँकरा
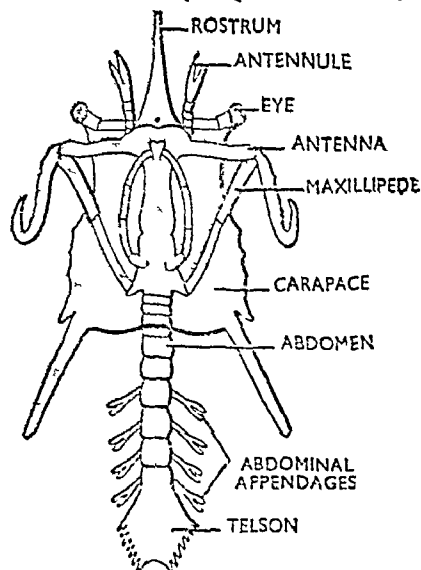
चित्र १२·६. फाइलोसोमा लारवा (Phyllosoma larva)

होता है तथा इस पर 6 जोड़ी द्विशाखित प्लवपाद (pleopods) होते हैं। मेगालोपा लारवा पानी में स्वतन्त्र रूप से तैरने के पश्चात् तली में बैठ जाता है और रूपान्तरण करके प्रौढ़ कैब में विकसित हो जाता है।

6. **माइसिस या शाइजोपोड** (Mysis or Schizopode)—पेनियस (*Penaeus*) में जोइया लारवा मेगालोपा में परिवर्तित न होकर सीधा माइसिस में रूपान्तरित हो जाता है जो कि प्रौढ़ *माइसिस* (*Mysis*) से काफी मिलता-जुलता होता है। वक्ष के पिछले भाग में पाँच जोड़ी द्विशाखी पाद होते हैं जिनके एक्सोपोडाइट कशाभी होते हैं। ये चलन में सहायता करते हैं।

लाब्सटर्स (lobsters) में अण्डभेदन के फलस्वरूप माइसिस लारवा निकलता है।

7. **फाइलोसोमा या ग्लास कैब** (Phyllosoma or Glass Crab)—रॉक लाब्सटर (rock lobster) में अण्डे से निकला लारवा माइसिस की अत्यधिक परिवर्तित अवस्था को प्रदर्शित करता है जिसे **फाइलोसोमा** कहते हैं। यह आकार में बहुत बड़ा, अत्यधिक चपटा तथा पत्ती के समान लम्बा होता है। इसके उपांग पतले होते हैं।

प्रश्न 92. आपके द्वारा अध्ययन किये गये आर्थ्रोपोड प्राणियों में श्वसन का वर्णन कीजिये।

Describe the organs of respiration in the arthropodian types you have studied. (*Meerut 1972 ; Jabalpur 72*)

कृपया प्रश्न 50, 61, तथा 68 देखिये।

प्रश्न 93. निम्नलिखित के सुन्दर एवम् नामांकित चित्र बनाइये (विवरण की आवश्यकता नहीं है)।

Draw neat and labelled diagrams of the following (no description is required)—

(i) मादा एनोफिलीज के मुखांग (Mouthparts of female Anopheles)
(*Lucknow 1965, 70 ; Alld. 70 ; Agra 72*)

कृपया चित्र 11·1 देखिये।

(ii) घरेलू मक्खी के मुखांग (Mouthparts of Musca)
(*Agra 1959, 61 ; Lucknow 65*)

कृपया चित्र 11·4 देखिये।

(iii) कॉकरोच के मुखांग (Mouthparts of Cockroach)
(*Agra 1970 ; Kanpur 71*)

कृपया चित्र 11·2 देखिये।

(iv) प्रॉन के कार्डियक आमाशय का भीतरी दृश्य (Inner view of cardiac stomach of Prawn) (*Agra 1969*)

कृपया चित्र 7·18 देखिये।

(v) पैलीमोन के मैक्सिलिपीड्स (Maxillipedes of *Palaemon*)
(*Lucknow 1971*)

कृपया चित्र 7·8 से 7·10 देखिये।

(vi) संयुक्त नेत्र की खड़ी काट या पैलीमोन के नेत्र की सूक्ष्मदर्शी रचना (V.S. compound eye or microscopic structure of eye of *Palaemon*)
(*Lucknow 1958, 60, 67 ; Vikram 69 ; Rajasthan 72*)

कृपया चित्र 7·31 देखिये।

(vii) पैलीमोन का क्लोम भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. Palaemon through gills) (*Agra 1970 ; Jiwaji 70*)
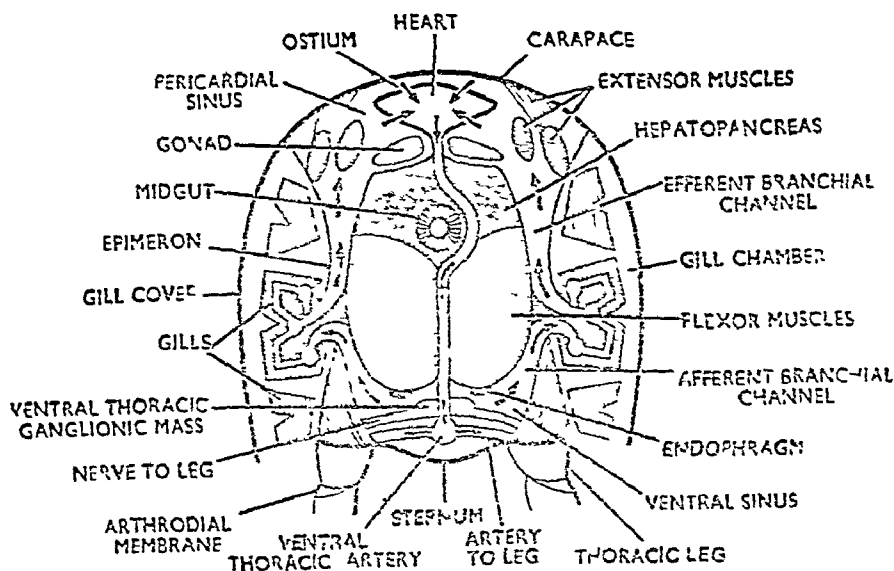
चित्र १२·७. पैलीमोन का क्लोम भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. *Palaemon* through gills)

(viii) कॉकरोच के नेत्र के ओमेटिडियम की खड़ी काट (L.S. of an ommatidium of the eye of Cockroach) (*Kanpur 1968 ; Raj. 72*)

कृपया चित्र 7·32 देखिये।

(ix) कॉकरोच का पाचन तन्त्र (Digestive system of Cockroach) (*Lucknow 1964 ; Agra 69*)

कृपया चित्र 9·2 देखिये।

(x) बिच्छू का पृष्ठ दृश्य (Dorsal view of *Palamneus*) (*Lucknow 1960, 64, 70*)

कृपया चित्र 8·1 देखिये।

(xi) बिच्छू का अधर दृश्य (Ventral view of Scorpion) (*Kanpur 1970 ; Meerut 71*)

कृपया चित्र 8·2 देखिये।

(xii) नर बिच्छू के जनन-अंग (Reproductive organs of male Scorpion)

(*Lucknow 1955, 58 ; Kanpur 68 ; Rajasthan 70 ; Jabalpur 73*)

कृपया चित्र 8·11 देखिये।

(xiii) बिच्छू के बाह्य लक्षण (External features of Scorpion) (*Gorakhpur 1960, 69*)

कृपया चित्र 8·1 व 8·2 देखिये।

(xiv) मादा बिच्छू के जनन-अंग (Reproductive organs of female Scorpion) (*Lucknow 1957, 61 ; Raj. 69 ; Vikram 69 ; Jabalpur 73*)

कृपया चित्र 8·12 देखिये ।

(xv) टिड्डे के मादा जननांग (Female reproductive organs of Grasshopper) (*Lucknow 1971 ; Gorakhpur 73*)

कृपया चित्र 10·5 देखिये ।

(xvi) नेत्रांशक या ओमेटिडियम (Ommatidium)

(*Gorakhpur 1973*)

कृपया चित्र 7·32 देखिये ।

अध्याय 13

फाइलम मौलस्का
(Phylum Mollusca)
(Latin : *Mollis*, soft)

प्रश्न 94. फाइलम मौलस्का का वर्गीकरण कीजिये तथा प्रत्येक क्लास के विशिष्ट गुण एवम् उदाहरण दीजिये।

Classify 'Mollusca' giving diagnostic characters and examples of each group. (*Lucknow 1955, 59, 64, 65, 66, 68 ; Ranchi 71 ; Meerut 70 ; Vikram 61 ; Kanpur 68*)

मौलस्का कोमल शरीर वाले, **अखण्डीय, त्रिस्तरीय** (triploblastic) तथा **द्विपार्श्व समभित** (bilaterally symmetrical) जन्तु है जिनके शरीर पर पतला मांसीला आवरण **मेण्टल** (mantle) होता है। मेण्टल के रिसने से उसके बाहर की ओर केल्केरियस खोल बन जाता है। मौलस्का शब्द (Mollusca : Lt., *mollis* or *molluscus*, soft) सर्वप्रथम **एरिस्टोटल** (Aristotle) द्वारा कटलफिश (cuttle-fish) के लिए प्रयोग किया गया था। परन्तु **लीनियस** (Linnaeus) ने इन कोमल शरीर वाले जन्तुओं को फाइलम वरमीज (vermes) से अलग करके उसी के उप-विभाग (sub-division) मे मौलस्का के नाम से रखा था। लीनियस का मौलस्का उपविभाग विभिन्न आकार तथा प्रकार के जन्तुओं का विषम फाइलम है।

साधारण विशेषताएँ (General Characters)

(*i*) इनका शरीर कोमल, अखण्डीय तथा त्रिस्तरीय होता है। इस पर कोई खण्डयुक्त उपांग (segmented appendages) नही पाये जाते है।

(*ii*) **गैस्ट्रोपोडा** के अतिरिक्त सभी जन्तुओ का शरीर **द्विपार्श्व समभित** होता है तथा इसको सिर, विसरल मास, पाद तथा मेण्टल मे बाँटा जा सकता है। **स्केफो-पोडा तथा पेलीसीपोडा** में सिर स्पष्ट नही होता।

(*iii*) **सिर** पर मुख, आँखे तथा स्पर्शक (tentacles) पाये जाते है।

(*iv*) **पाद** अधिकतर शरीर के अधरतल पर स्थित होता है। यह पेशीयुक्त, मोटा तथा मांसीला होता है तथा विभिन्न कार्यों के अनुरूप इसका आकार भिन्न-भिन्न होता है।

(*v*) **विसरल मास** (visceral mass) मे विसरल अंग पाये जाते है।

(*vi*) **मेण्टल** (mantle) देहभित्ति की मोटी, पेशीयुक्त पर्त है जो शरीर के विसरल अंगों को ऊपर से ढके रखती है। इसके तथा विसरल मास के बीच एक गुहा होती है जो **मेण्टल गुहा** (mantle cavity) कहलाती है।

(*vii*) मेण्टल के रिसने से इसके बाहर की ओर एक कड़ा और भंगुर (hard and brittle) तथा कैल्शियम कार्बोनेट का बना **खोल** (shell) बन जाता है। इसकी आकृति विभिन्न जन्तुओं तथा वर्गो में भिन्न-भिन्न होती है। यह रक्षात्मक होता है।

(*viii*) वास्तविक सीलोम (coelom) कम विकसित होता है तथा पैरीकार्डियल गुहा एवम् जनन अंगों के चारों ओर पायी जाने वाली गुहा द्वारा प्रदर्शित होता है । देहगुहा हीमोसील (haemocoel) होती है ।

(*ix*) मुखगुहा में रेड्युला (radula) नामक जीभ के समान रचना होती है । रेड्युला बाइवाल्विया (Bivalvia) में नहीं पाया जाता ।

(*x*) श्वसन अंग क्लोम (gill or ctenidia) होते हैं जिनके एक या एक से अधिक जोड़े मेण्टल गुहा में स्थित होते हैं । मेण्टल गुहा में प्रवेश करने वाली जल की धारा की शुद्धता को जानने के लिए इन जन्तुओं में ऑस्फ्रेडियम (osphradium) नामक घ्राण अंग (olfactory organs) पाये जाते हैं । कुछ जन्तुओं में वायवीय श्वसन (aerial respiration) के लिए फेफड़े के समान पल्मोनरी कोष (pulmonary sac) पाया जाता है ।

(*xi*) परिवहन-तन्त्र (circulatory system) लेक्युनर (lacunar) प्रकार का होता है । इसमें पृष्ठतल पर हृदय होता है जिससे कुछ रक्त-वाहिनियाँ निकलती हैं ।

(*xii*) उत्सर्जन के लिए एक या दो जोड़ी वृक्क (kidney) होते हैं जो एक ओर सीलोम से तथा दूसरी ओर मेण्टल गुहा से सम्बन्धित होते हैं ।

(*xiii*) तन्त्रिका-तन्त्र में एक जोड़ी सेरिब्रल (cerebral), एक जोड़ी प्ल्यूरल (pleural), पीडल (pedal) तथा विसरल (visceral) गैंगलिया तथा उनसे निकलने वाली तन्त्रिकाएँ होती हैं ।

(*xiv*) इसमें पाये जाने वाले संवेदी अंग नेत्र, स्पर्शक, ऑस्फ्रेडियम तथा लिथोसिस्ट (osphradium and lithocysts) हैं ।

(*xv*) अधिकतर नर तथा मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं, किन्तु ये एक ही जन्तु में भी हो सकते हैं । अधिकतर जनन-अंग जोड़ों में नहीं पाये जाते । निषेचन की क्रिया शरीर के भीतर अथवा बाहर भी हो सकती है । अधिकतर ये अण्डे देते हैं परन्तु कुछ जरायुज (viviparous) भी होते हैं । वर्धन में या तो वेलिजर लारवा (veliger larva) होता है अथवा लारवा अवस्था का अभाव होता है ।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम मौलस्का पाँच क्लासों में बाँटा गया है । वर्गीकरण अधिकतर खोल के गुणों पर आधारित है ।

क्लास 1. एम्फीन्यूरा (Amphineura)
(G., *amphi*, both ; *neuron*, nerve)

(*i*) ये अत्यधिक आदिम मौलस्क (most primitive molluscs) हैं जिनका शरीर चपटा, द्विपार्श्व सममित तथा कृमिवत् (dorso-ventrally flattened, bilaterally symmetrical and vermiform) होता है ।

(*ii*) सिर अस्पष्ट होता है तथा नेत्रों एवम् स्पर्शकों का पूर्ण अभाव होता है ।

(*iii*) पाद चौड़ा, चपटा तथा sole-shaped होता है । यह शरीर के अधर तल पर पाया जाता है ।

(*iv*) खोल तथा मेण्टल (shell and mantle) शरीर के पृष्ठ तल पर स्थित होते हैं तथा पार्श्व किनारों पर भी फैले रहते हैं ।

(*v*) श्वसन-अंग एक जोड़ी क्लोम (gills) होते है जो मेण्टल गुहा या पेलियल ग्रूव (pallial groove) में स्थित होते है।

उदाहरण : काइटन (*Chiton*), सोलेनोगेस्टर (*Solenogaster*)

क्लास 2. स्केफोपोडा (Scaphopoda)
(G., *skaphe*, boat ; *podos*, foot)

(*i*) शरीर लम्बा तथा वेलनाकार होता है। सिर स्पष्ट नहीं होता।

(*ii*) पाद (foot) छोटा तथा नुकीला होता है। यह रेंगने तथा बिल बनाने (creeping and burrowing) के अनुरूप होता है। यह खोल के अगले सिरे से बाहर निकला रहता है।

(*iii*) खोल (shell) एककपाटीय (univalved), वेलनाकार या नालाकार (cylindrical or tubular) तथा हाथी के दाँत के समान होता है। यह दोनों सिरों पर खुला होता है।

(*iv*) मेण्टल शरीर के अधर तल से समेकित होकर एक नली-सी बना लेता है।

(*v*) क्लोम अनुपस्थित होते है।

(*vi*) परिवहन-तन्त्र पूर्ण विकसित नहीं होता तथा हृदय स्पष्ट नहीं होता।

(*xii*) रेड्युला (radula) अनुपस्थित होता है।

उदाहरण : डेण्टेलियम (*Dentalium*) तथा साइफोनोडेण्टेलियम (*Siphonodentalium*)।

क्लास 3. गेस्ट्रोपोडा (Gastropoda)
(G., *gastros*, stomach ; *podos*, foot)

(*i*) शरीर असममित (asymmetrical) होता है। इसमें सिर भाग स्पष्ट होता है और उस पर एक जोड़ी नेत्र तथा दो जोड़ी स्पर्शक (tentacles) होते है।

(*ii*) पाद (foot) चौड़ा, पेशीयुक्त तथा चपटा होता है जो सिर के अधर तल पर स्थित होता है। यह तले के आकार का (sole-shaped) होता है और रेंगने के लिए उपयोगी है।

(*iii*) खोल (shell) एककपाटीय तथा स्प्रिंग के समान मुड़ा हुआ (spirally coiled) होता है किन्तु यह कम विकसित अथवा अनुपस्थित भी हो सकता है।

(*iv*) मेण्टल शरीर के पृष्ठतल पर स्थित एक अकेली पर्त होता है।

(*v*) मुख गुहा में रेडूला युक्त ओडोण्टोफोर (odontophore) होता है। गुदाद्वार आगे की ओर मुख के समीप स्थित होता है।

(*vi*) श्वसन के लिए क्लोम या पल्मोनरी कोष अथवा दोनों ही हो सकते है।

(*vii*) परिवहन-तन्त्र खुला होता है। इसमें हृदय, रक्त-वाहिनियाँ तथा साइनस स्पष्ट होते है।

उदाहरण : पाइला (*Pila*), लिमनीया (*Limnaea*), प्लेनोरविस (*Planorbis*), एप्लीसीया (*Aplysia*), लाइमेक्स (*Limax*), एरिऑन (*Aerion*) इत्यादि।

क्लास 4. पेलीसिपोडा या बाइवाल्विया (Pelecypoda or Bivalvia)
(G., pelekys, *hatched* ; podos, *foot*)

(*i*) इनका शरीर द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical) तथा पार्श्व दिशा में चपटा (laterally compressed) होता है।

(*ii*) सिर स्पष्ट नहीं होता। इस पर मुख तथा एक जोड़ी लेबियल पाल्प (labial palps) होते हैं।

(*iii*) पाद बड़ा, पेशीयुक्त तथा plough-share-like होता है जो शरीर के अगले सिरे के अधर तल पर होता है। यह रेत में धँसने के अनुरूप होता है।

(*iv*) खोल दो-कपाटीय (bivalved) होता है। दोनों कपाट पृष्ठतल पर कब्जे द्वारा जुड़े होते हैं तथा अधर तल पर अलग रहते हैं।

(*v*) मेण्टल में भी दो परत होते हैं जो समस्त शरीर को ढके रहते हैं।

(*vi*) श्वसन एक जोड़ी प्लेट के आकार के क्लोमों द्वारा होता है।

(*vii*) परिवहन-तन्त्र खुला होता है तथा इसमें स्पष्ट हृदय, रक्तवाहिनियाँ तथा साइनस होते हैं।

उदाहरण : यूनिओ (*Unio*), माइटिलस (*Mytilus*), सोलेनोकर्टिस (*Solenocurtis*), एन्सिस (*Ensis*), पर्ल ऑएस्टर (*Pearl oyster*) तथा अरका (*Arca*) इत्यादि।

क्लास 5. सिफेलोपोडा (Cephalopoda)
(Gr., *kephale, head* ; *podos, foot*)

(*i*) शरीर द्विपार्श्व सममित तथा कुछ बेलनाकार होता है। इसको सिर तथा धड़ (head and trunk) में बाँटा जा सकता है।

(*ii*) सिर पर एक जोड़ी नेत्र तथा मुख स्थित होता है।

(*iii*) पाद भुजाओं या स्पर्शकों के रूप में परिवर्तित हो जाता है जो सिर को चारों ओर से घेरे रहती हैं।

(*iv*) खोल शरीर के बाहर होने पर पूर्ण वृद्धि प्राप्त होता है किन्तु शरीर के भीतर होने पर कम विकसित होता है। कभी-कभी इसका पूर्ण अभाव होता है।

(*v*) मेण्टल तथा शरीर के बीच बहुत चौड़ी मेण्टल गुहा होती है।

(*vi*) क्लोमों के केवल एक या दो जोड़े ही पाये जाते हैं।

(*vii*) परिवहन-तन्त्र पूर्ण विकसित होता है तथा इसमें अतिरिक्त हृदय a ccessory hearts) पाये जाते हैं।

उदाहरण : लोलिगो (*Loligo*), सीपिया (*Sepia*), आक्टोपस (*Octopus*), नॉटिलस (*Nautilus*) अथा एमोनाइट्स (*Ammonites*) इत्यादि।

प्रश्न 95. निम्नलिखित प्राणियों को वर्गीकरण के क्रम में रखिये तथा प्रत्येक के विशिष्ट लक्षण बताइये।

Classify the following animals giving their distinguishing characters.

1. काइटन (Chiton) (*J. and K. 1970 ; Cal. 71 ; Nagpur 73*)

फाइलम — मौलस्का (*Mollusca*)
क्लास — एम्फिन्यूरा (*Amphineura*)
आर्डर — पोलीप्लैकोफोरा (*Polyplacophora*)
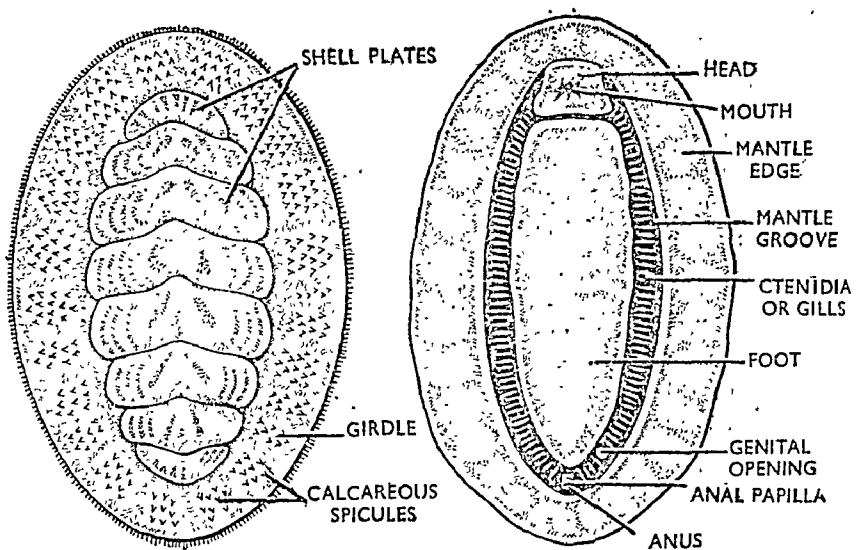
चित्र १३·१. काइटन (*Chiton*)
A. पृष्ठ दृश्य (Dorsal view) B. अधर दृश्य (Ventral view)

काइटन समुद्र में पाया जाने वाला सुस्त मौलस्क प्राणी है जो व्यापक रूप से चट्टानों, पत्थरों तथा प्रवाल भित्तियों से चिपका रहता है। यह रात्रिचर व शाकाहारी प्राणी है जो चट्टानों आदि पर उगने वाले शैवालों का सेवन करता है। इसका शरीर अण्डाकार, द्विपार्श्व सममित व पृष्ठ-अधर से चपटा होता है और इसकी पृष्ठ सतह उत्तल होती है। **पाद** (foot) चौड़ा, पेशीय, खोल के समान तथा अधर तल पर होता है। यह रेंगने एवम् चिपकने में सहायता करता है। खोल (shell) पृष्ठ तल पर होता है जो 8 हिंज पट्टिकाओं (hinge plates) का बना होता है। **मुख** एवम् गुदाद्वार (anus) शरीर के विपरीत सिरों पर स्थित होते हैं। मेण्टल गुहा में शरीर के दोनों ओर कई जोड़ी **बाइपेक्टिनेट टेनीडिया** (bipectinate ctenidia) होते हैं। मेण्टल शरीर के अधिकांश भाग को तथा खोल की प्लेटों को आंशिक रूप से ढके रहता है। यह **पृथलिंगी** प्राणी है अर्थात् नर एवम् मादा जनन अंग अलग-अलग प्राणियों में पाये जाते हैं। काइटन खाद्य-पदार्थ के रूप में तथा इसके खोल सजावट के काम आते है।

2. साइप्रीआ (Cyprea) (*Kerala 1971*)
(कौड़ी—Cowry)

फाइलम	—	मौलस्का (*Mollusca*)
क्लास	—	गैस्ट्रोपोडा (*Gastropoda*)
सबक्लास	—	प्रोसोब्रैंकिया (*Prosobranchia*)
आर्डर	—	टीनियोग्लोसा (*Taenioglossa*)

साइप्रीआ समुद्री गैस्ट्रोपोड प्राणी है जो हिन्द महासागर व प्रशान्त महासागर में प्रवाल भित्तियों (coral reefs) के बीच पाया जाता है। इसका खोल व्यावृत, ऊपर से अण्डाकार तथा नीचे से चपटा होता है। खोल चिकना व भड़कीले रंग का होता है। खोल का छिद्र (shell aperture) लम्बा, सँकरा व दन्तुरित होता है। मेण्टल पार्श्विक रूप से खोल के ऊपर परावर्तित तथा टेण्टाकुलर तन्तुओं युक्त
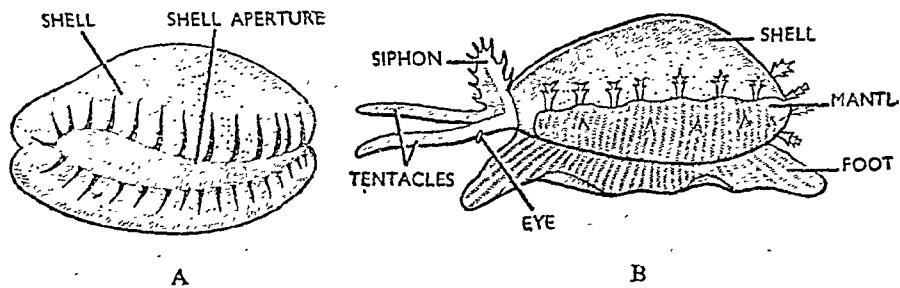
चित्र १३·२. साइप्रीआ (*Cyprea*)

A. खोल (Shell) B. खोल के अन्दर का दृश्य (After removing shell)

होता है। ओपर्कुलम अनुपस्थित होता है। साइप्रीआ के खोल मुद्रा के रूप में तथा गहनों व सजावट आदि के काम आते हैं।

3. माइटीलस (Mytilus)

फाइलम	—	मौलस्का (*Mollusca*)
क्लास	—	पेलीसिपोडा (*Pelecypoda*)
आर्डर	—	फिलिब्रैंकिएटा (*Filibranchiata*)
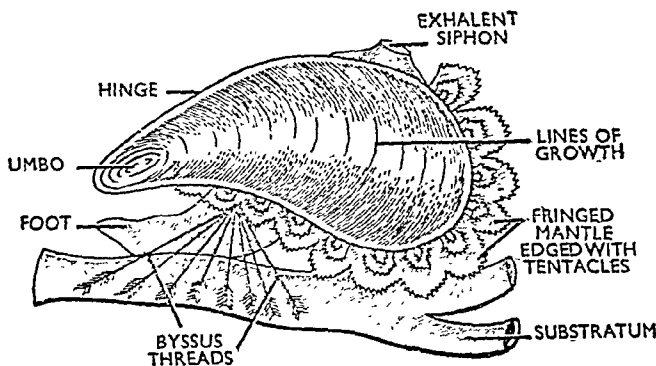
चित्र १३·३. माइटीलस (*Mytilus*)

माइटीलस संसार के लगभग समस्त भागों में समुद्र के किनारे tide marks के बीच पाया जाता है। इसका खोल द्विकपाटी तथा wedge-shaped होता है। इसका अगला सिरा नुकीला तथा पिछला सिरा गोल व चौड़ा होता है। सिर अल्पविकसित होता है और इस पर एक जोड़ी पाल्प होते हैं। पाद छोटा व जिह्वा के समान होता है। इसके अधर तल पर एक खाँच होती है जो बाइसस गर्त (byssus pit) से सम्बन्धित होती है। बाइसस ग्रन्थि द्वारा स्रावित बाइसस तन्तु अभिलागी अंगों का कार्य करते हैं। अगली ऐडक्टर पेशी अति अल्पविकसित होती है किन्तु पश्च ऐडक्टर पेशी सुविकसित होती है। क्लोम (gills) plate के समान एवम् सूत्राकार होते हैं तथा इनके अन्त: फिलामेण्टर जंक्शन (intrafilamentar junctions) पक्ष्माभिकी होते हैं किन्तु इनमें इन्टर लैमिलर जंक्शन नहीं होते। भीतरी क्लोम-लैमेला के आगे की ओर एक जोड़ी नेत्र होते हैं। मैण्टल के उपान्त झालरनुमा (fringed) होते हैं और इन पर स्पर्शक होते हैं। *माइटीलस* भोजन के रूप में खाया जाता है।

4. टैरीडो (Teredo) (*Aligarh 1957*)

(शिप-वर्म : Ship-worm)

टैरिडो समुद्री पैलीसिपोड प्राणी है जो लकड़ी की नौकाओं, जहाजों व लकड़ी की अन्य वस्तुओं के अन्दर बिल बनाकर रहता है। इसका शरीर लम्बा व कृमिवत् होता है तथा शरीर के चारों ओर नालाकार **मैंण्टल** (mantle) होता है। खोल अल्पविकसित होता है तथा इसके अगले सिरे पर दो छोटे **खोल-कपाट** (shell valves) होते है जो लकड़ी के अन्दर सुरंग खोदने का कार्य करते है। साइफन दो, अत्यधिक लम्बी व प्रतिकर्षी होती है। शरीर व साइफनों के जुड़ने के स्थान पर **कैल्केरियस कपाट** या **पैलेट्स** (calcareous valves or pallets) होते हैं। ये जन्तु के अन्दर की ओर प्रतिकर्षित होने पर सुरग को बन्द कर लेते है।

खोल-कपाटों के घूमने की क्रिया से टैरीडो लकड़ी को काटकर उसमे सुरंग बनाता है और इस क्रिया के समय बना बुरादा इसके द्वारा खा लिया जाता है। शरीर के अन्दर इसका पाचन **सेलूलोस पाचक ग्रन्थियों** की सहायता से होता है। इस प्रकार टैरीडो नौकाओं व लकड़ी के जहाजो को अत्यधिक हानि पहुँचाता है।
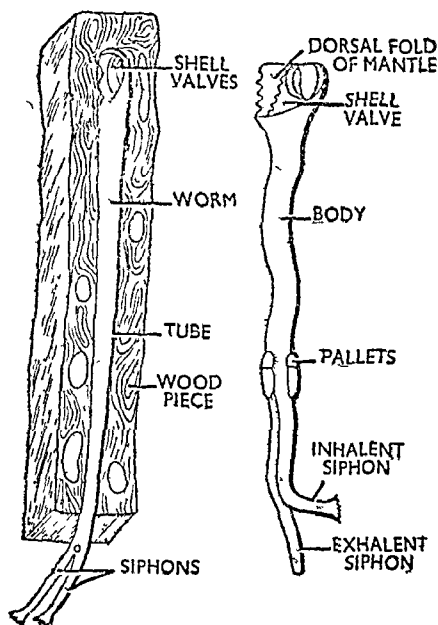
चित्र १३·४. टैरीडो (Teredo)
A. लकड़ी के अन्दर बिल मे टैरीडो (*Teredo* burrowed in wood)
B. लकड़ी के बाहर (Outside the wood)

5. ऑस्ट्रिया (Ostrea)

(शुक्ति या ओइस्टर—Oyster)

फाइलम —	मौलस्का (*Mollusca*)
क्लास —	पेलीसिपोडा (*Pelecypoda*)
आर्डर —	स्यूडोलैमेलीब्रैंकिएटा (*Pseudolamellibranchiata*)

ऑस्ट्रिया को सामान्य भाषा में **भारतीय शुक्ति** (Indian oyster) कहते है जो हिन्द महासागर मे मालाबार व कोचीन के तटों के साथ-साथ तथा उष्ण व उपोष्ण कटिबन्धीय समुद्रों के पानी में चट्टानों व पत्थरों से चिपका हुआ पाया जाता है। इसका खोल श्वेत, रुक्ष (rough), अनियमित, मोटा व द्विकपाटीय (bivalved) होता है। वाम कपाट अधिक बड़ा व उत्तल होता है और स्थायी रूप से चट्टान से चिपका रहता है। प्रौढ़ में पाद का पूर्ण अभाव होता है तथा मैण्टल साइफन नही बनाता। श्वसन एक जोड़ी मुड़े हुए टेनिडिया (ctenidia) द्वारा होता है। *ऑस्ट्रिया* का विशिष्ट गुण यह है कि यह एकान्तरित क्रम में एक बार नर तथा दूसरी बार मादा जन्तु का कार्य करता है।
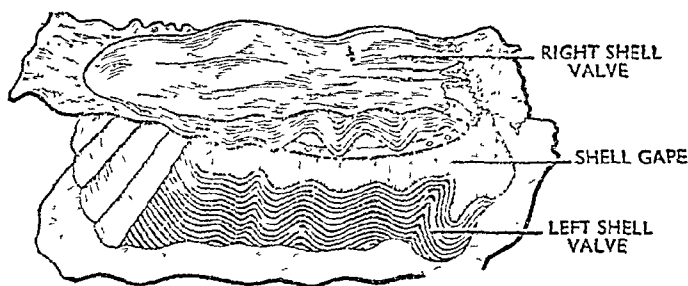
चित्र १३·५. ऑस्ट्रिया (*Ostrea*)

शुक्तिपालन एक महत्त्वपूर्ण लघु उद्योग है तथा यह भोजन के रूप में व बटन आदि बनाने के काम आता है।

6. ऑक्टोपस (Octopus) (*Gorakhpur 1969 ; Kanpur 71*)

फाइलम — मौलस्का (*Mollusca*)
क्लास — सेफैलोपोडा (*Cephalopoda*)
सबक्लास— डाइब्रैंकिएटा (*Dibranchiata*)
आर्डर — ऑक्टोपोडा (*Octopoda*)

ऑक्टोपस गहरे समुद्रों में चट्टानों आदि के नीचे पाया जाता है। इसका शरीर गोलाकार होता है और इसके चारों ओर मैण्टल होता है। मैण्टल में **क्रोमेटोफोर** (chromatophore) होते हैं जिनकी सहायता से यह वातावरण के अनुकूल
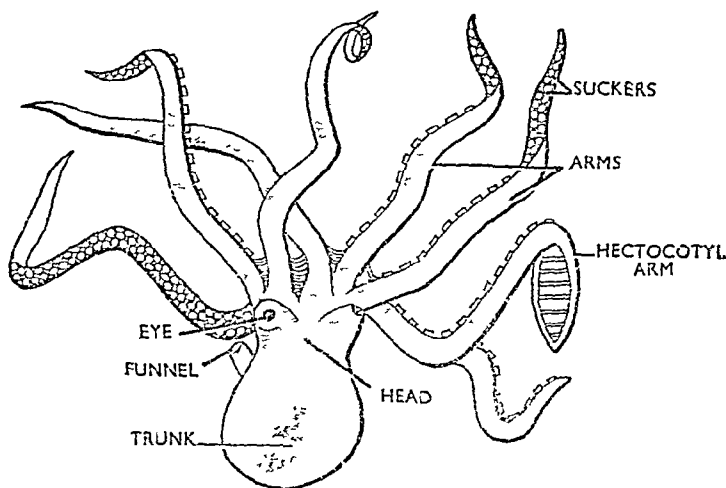
चित्र १३·६. ऑक्टोपस (*Octopus*)

अपना रंग बदलने में समर्थ होता है। पाद सिर को घेरे हुए समान लम्बाई की आठ **भुजाओं** (arms) में रूपान्तरित होते हैं। प्रत्येक भुजा पर दो कतारों में विन्यसित **चूषक** (suckers) होते हैं।

ऑक्टोपस के शरीर में एक **इंक ग्रन्थि** (ink gland) होती है। शत्रु द्वारा पीछा करने पर यह अपने बचाव के लिए पानी में काले या नीले-से रंग की स्याही बड़े वेग से छोड़ता है जिससे पीछा करने वाला शत्रु इसको न देख सके और यह

वच निकलता है।

इसके मुख में तेज व चोंच के समान हार्नी जबड़े (horny jaws) होते हैं जो शिकार को चीरने-फाड़ने का कार्य करते हैं। शैतान की भाँति शिकार को पकड़ने एवम् चीरने के कारण ऑक्टोपस को डेविल-फिश (devil-fish) भी कहते हैं। नर में दाहिनी ओर की तीसरी भुजा hectocotylize या रूपान्तरित होती है जिसका अगला सिरा चम्मच के समान होता है। इसकी सहायता से यह अण्डाणु के निषेचन के लिए मैण्टल गुहा में स्पर्मेटोफोर पहुँचाता है।

7. सीपिआ (Sepia) *(Agra 1971)*
(कटल-फिश : Cuttle-fish)

फाइलम	—	मौलस्का (*Mollusca*)
क्लास	—	सेफैलोपोडा (*Cephalopoda*)
सबक्लास	—	डाइब्रैंकिएटा (*Dibranchiata*)
आर्डर	—	डैकापोडा (*Decapoda*)

यह सर्वदेशीय सेफैलोपोड प्राणी है जो समुद्र के तट पर उथले जल में पाया जाता है। इसका शरीर लम्बा, द्विपार्श्व सममित तथा सिर एवम् धड़ में भिन्नित होता है। पाद का पिछला भाग सिर के नीचे फनल बनाता है और दस भुजाओं में रूपान्तरित होता है जो मुख के चारों ओर स्थित होती हैं। दस भुजाओं में से चार छोटी व सुगठित होती हैं और इनकी भीतरी चपटी सतह पर चार अनुदैर्घ्य कतारों में चूपक होते हैं तथा अन्य दो भुजाएँ लम्बी होती हैं जिनको स्पर्शक (tentacles) कहते हैं। इनके केवल मुक्त सिरों पर ही चूपक होते हैं। धड़ पूर्णतः मैण्टल द्वारा ढका रहता है जो इसकी पूर्ण लम्बाई में पार्श्व पखों (lateral fins) के रूप में निकला रहता है। ये दूरस्थ सिरे की ओर एक माध्यिक खाँच द्वारा पृथक् रहते हैं। खोल आन्तरिक, मोटा व $CaCO_3$ का बना होता है। इंक ग्रन्थि (ink gland) आस-पास के पानी में एक प्रकार की स्याही स्रावित करती है जिसकी आड़ में *सीपिआ* शत्रु से वच निकलता है। मैण्टल गुहा में दोनों ओर पार्श्व में पिच्छ के समान एक-एक टेनेडिआ होते हैं। नर जन्तु में वाम स्पर्शक hectocotylized होता है जो मैथुन के समय काम आता है।
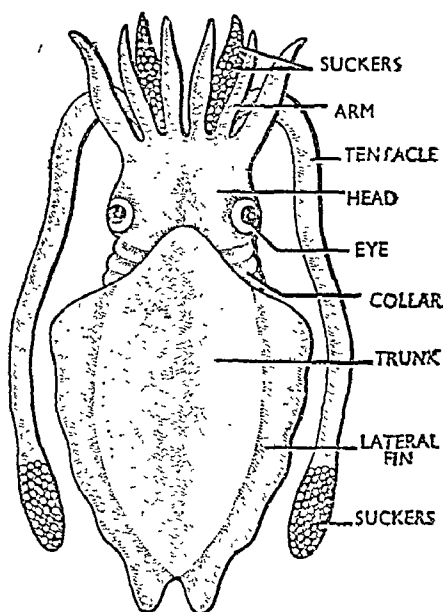
चित्र १३.७. सीपिआ (*Sepia*)

8. नॉटिलस (Nautilus) *(Lucknow 1968, 69 ; Agra 70 ; Meerut 71)*

फाइलम	—	मौलस्का (*Mollusca*)
क्लास	—	सेफैलोपोडा (*Cephalopoda*)
सबक्लास	—	टेट्राब्रैंकिएटा (*Tetrabranchiata*)

यह समुद्री सेफैलोपोड प्राणी है जो हिन्द व पूर्वी प्रशान्त महासागर के तट के साथ-साथ उथले जल में तथा प्रवाल भित्तियों के बीच पाया जाता है। नॉटिलस का खोल वाह्य व सर्पिलाकार रूप से कुण्डलित होता है तथा इसकी वाहरी सतह पर जेब्रा (zebra) की भाँति पीले-भूरे रंग की धारियाँ होती है। खोल की भीतरी सतह मोती के समान चमकीली होती है। खोल की गुहा पटों (septa) द्वारा अनेक कक्षों में विभाजित रहती है। प्रत्येक पट के मध्य भाग में छिद्र होता है तथा इन पर सेप्टल ग्रीवा (septal necks) होती है। सबसे वाहरी कक्ष सर्वाधिक बड़ा होता है और देह कक्ष (body chamber) कहलाता है। इसके अन्दर जन्तु का पूरा शरीर बन्द रहता है। शेष कक्षों में वायु भरी रहती है जो खोल को हल्कापन प्रदान कर उसको जल में उतराने में सहायता करती है।

चित्र १३·८. नॉटिलस (*Nautilus*)

विसलल मास (visceral mass) पटों के छिद्रों में से नालाकार साइफंकल (siphuncles) के रूप में निकला रहता है।

अध्याय 14

पाइला
(Pila)
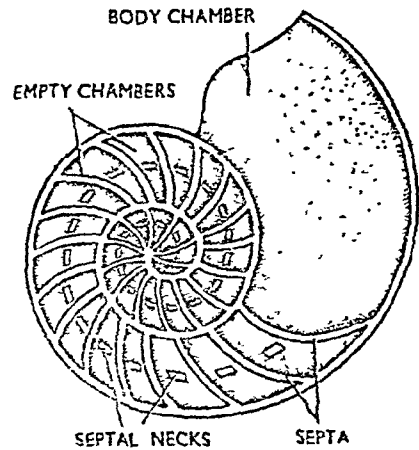
फाइलम	—	मौलस्का (*Mollusca*)
उपफाइलम	—	गेस्ट्रोपोडा (*Gastropoda*)
सबक्लास	—	प्रोसोब्रैंकिएटा (*Prosobranchiata*)
ऑर्डर	—	पेक्टिनीब्रैंकिएटा (*Pectinibranchiata*) या मोनोटोकार्डिया (*Monotocardia*)
जीनस	—	पाइला ग्लोबोसा (*Pila globosa*)

प्रश्न 96. पाइला के खोल का वर्णन कीजिये तथा मेण्टल गुहा में पाये जाने वाले अंगों एवम् जलधारा के पथ का वर्णन कीजिये ।

Describe in detail the shell of *Pila* and give an account of the contents of mantle cavity and course of water in it.

(*Lucknow 1951, 53 ; Gorakhpur 69 ; Meerut 72 ; Jiwaji 73*)

खोल (Shell)

पाइला मे खोल शरीर के वाहर पायी जाने वाली एक-कपाटीय (univalved) रचना है जो समस्त शरीर को वन्द रखती है । यह मोटा, लगभग गोलाकार (globose) तथा पीले रंग का होता है । यह लम्वे खोखले शंकु के आकार का होता है तथा एक मध्य अक्ष (central axis) के चारों ओर सर्पिलाकार रूप में कुण्डलित
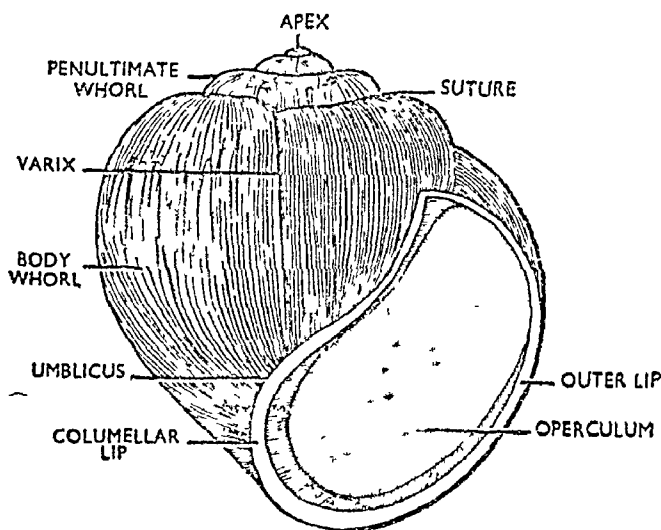
चित्र १४·१. पाइला के खोल का अधर दृश्य (Ventral view of shell of *Pila*)

रहता है। यह अक्ष कॉलूमेला (columella) कहलाता है तथा खोल का एक सर्पिलाकार कुण्डल (coil or revolution) एक चक्र (whorl) कहलाता है। खोल $6\frac{1}{2}$ चक्रों का बना होता है जिनका आकार पीछे की ओर बड़ा हो जाता है। खोल का सूक्ष्म गोलाकार बिन्दु **सिर** (apex) कहलाता है। इसको घेरने वाला चक्र **सिर-चक्र** (apical whorl) कहलाता है। अन्तिम दो कुण्डलों में ही शरीर का अधिकांश भाग बन्द रहता है। Body whorl को छोड़कर अन्य सभी चक्र मिलकर **स्पायर** (spire) बनाते हैं तथा किन्हीं दो कुण्डलों के बीच का जोड़ **संधि रेखा** (suture) कहलाता है। खोल की बाहरी सतह पर बहुत-सी खड़ी रेखाएँ होती हैं। ये **वृद्धि रेखाएँ** (lines of growth or varices) कहलाती हैं।

खोल का देहचक्र (body whorl) एक चौड़े छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। यह छिद्र **खोल-मुख** (shell-mouth) कहलाता है। इसका किनारा **पेरिस्टोम** (peristome) कहलाता है तथा यह दो ओष्ठों द्वारा घिरा रहता है जो क्रमशः **बाह्य ओष्ठ** (outer lip) तथा **कॉलमनर ओष्ठ** (columnar lip) कहलाते हैं। समस्त शरीर को खोल के भीतर खींच लेने पर खोल-मुख एक चपटी, लगभग आयताकार पट्टी से बन्द हो जाता है। यह **ओपरकूलम** (operculum) कहलाता है तथा पाद के पिछले चौड़े भाग से जुड़ा रहता है। यह कैल्केरियस होता है तथा इस पर बहुत-सी एक केन्द्रिक वृद्धि रेखाएँ (concentric lines of growth) होती हैं जो एक छोटे-से केन्द्रक स्थान (central area) के चारों ओर विन्यसित रहती हैं। यह स्थान **केन्द्रक** (nucleus) कहलाता है। ऑपरकूलम के भीतर की सतह पर एक चपटा अण्डाकार पीले-से रंग का भाग होता है जो **बॉस** (boss) कहलाता है। इसके चारों ओर एक छिछली खाई (shallow groove) होती है।
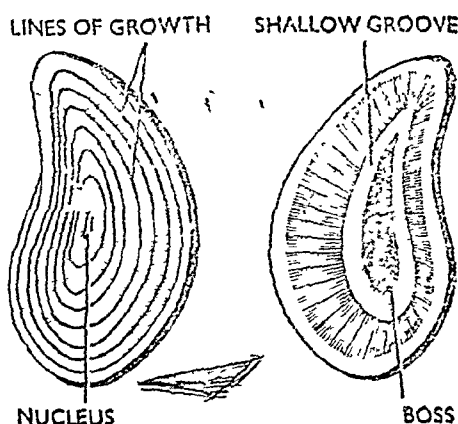
चित्र १४·२. ओपरकूलम के बाह्य व भीतरी दृश्य (Inner and outer view of *Operculum*)

खोल का कॉलूमेला खोखला होता है तथा अम्बिलिकस (umbilicus) नामक छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है। अतः खोल **अम्बलिकेटेड** (umblicated) कहलाता है।

खोल की औतिकी—खोल तीन स्पष्ट स्तरों का बना होता है। बाहरी स्तर **पेरिओस्ट्रेकम** (periostracum), मध्य स्तर **कैल्केरियस ओस्ट्रेकम** (ostracum) या प्रिजमेटिक (prismatic) तथा आन्तरिक स्तर **हाइपोस्ट्रेकम** (hypostracum) या **नैक्रे** (nacre) स्तर कहलाता है।

मेण्टल गुहा में पाये जाने वाले अंग
(Organs in the Mantle cavity or Organs of Pallial Complex)

मेण्टल गुहा में पाये जाने वाले अंग **पेलियल कॉम्पलेक्स** (organs of

pallial complex) कहलाते है । ये निम्नलिखित है :—टॅनिडियम (ctenidium), ऑस्फ्रेडियम (osphradium), अधः क्लोम ग्रन्थि या हाइपोब्रैंकियल ग्रन्थि (hypobranchial gland), गुदा (rectum), वृक्क अंग (renal organ) इत्यादि ।

A. क्लोम कक्ष के अंग

(Organs of Branchial Chamber)

1. एपिटेनिया (Epitaenia)—यदि टेनिडियम को बाँये से लम्बाई में काटा जाये तो मेण्टल गुहा के फर्श पर एक स्पष्ट उभार दृष्टिगत होता है । यह **एपिटेनिया** (epitaenia) कहलाता है । यह दाहिने न्यूकल लोब (nuchal lobe) के समीप से निकलता है तथा गुहा के पिछले सिरे तक फैला रहता है । यह मेण्टल गुहा को दो भागो में बाँट देता है । छोटा दाहिना **ब्रैंकियल चैम्बर** (branchial chamber) तथा बड़ा **पल्मोनरी चैम्बर** (pulmonary chamber) कहलाता है ।

2. टेनिडियम (Ctenidium)—टेनिडियम या क्लोम (gill) ब्रेंकियल गुहा (branchial chamber) में स्थित होती है जो दाहिनी ओर मेण्टल से जुड़ी रहती है ।
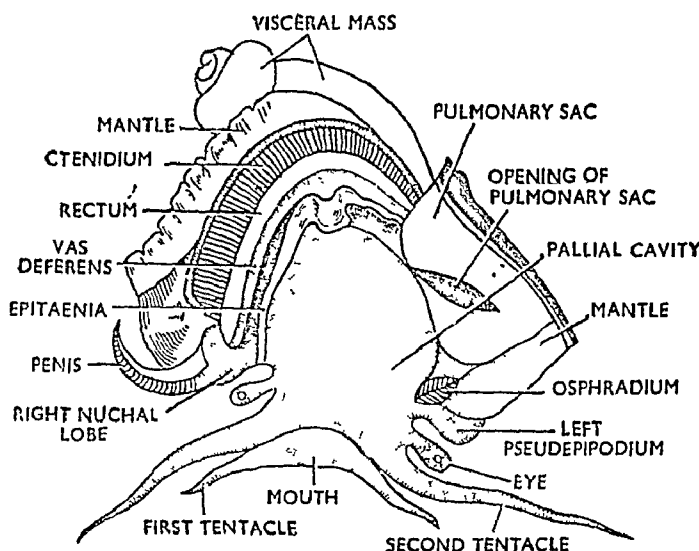
चित्र १४ ३. पेलियल कॉम्पलेक्स के अगो को प्रदर्शित करने के लिए नर पाइला का विच्छेदन (Dissection of male Pila to show the organs of pallial complex)

3. गुदा (Rectum)—यह मेण्टल गुहा के फर्श पर टेनिडियम के बाँयी ओर स्थित होता है तथा गुदाद्वार (anus) द्वारा बाहर को खुलता है । गुदाद्वार दाहिने न्यूकल लोब के समीप स्थित होता है ।

4. जनन-वाहिनी (Genital duct)—नर में **शुक्रवाहिनी** तथा मादा मे **अण्डवाहिनी** ब्रैंकियल चैम्बर मे रेक्टम तथा एपिटीनिया के बीच स्थित होती है तथा गुदाद्वार के समीप खुलती है । नर में जनन-छिद्र से हुक के आकार का पेनिस (penis) निकलता हुआ देखा जा सकता हे । पेनिस के आधार पर अधःक्लोम ग्रन्थि (hypobranchial gland) स्थित होती है ।

5. अग्रिम वृक्क कक्ष (Anterior renal chamber)—यह एपिटीनिया के पिछले सिरे से लाल रंग के थैले के रूप में मेण्टल गुहा में लटका रहता है तथा मेण्टल गुहा में एक आड़े छिद्र द्वारा बाहर को खुलता है।

B. पल्मोनरी कक्ष के अंग
(Organs of Pulmonary Chamber)

6. पल्मोनरी कोष (Pulmonary sac)—पाइला मे फेफड़े (lung) के समान रचना पल्मोनरी कक्ष में मेण्टल गुहा की छत से लटकी रहती है तथा एक बड़े आड़े छिद्र द्वारा पल्मोनरी कक्ष में खुलती है। यह पल्मोनरी छिद्र (pulmonary opening) कहलाता है।

7. ऑस्फ्रेडियम (Osphradium)—मेण्टल गुहा की छत से बाँयें न्यूकल लोब के समीप कंघे के आकार का (comb-shaped) ऑस्फ्रेडियम जुड़ा रहता है। यह घ्राण संवेदी होता है तथा मेण्टल गुहा मे आने वाली जल-धारा की शुद्धता को परखता है।

जल-धारा का पथ (Course of Water-current)
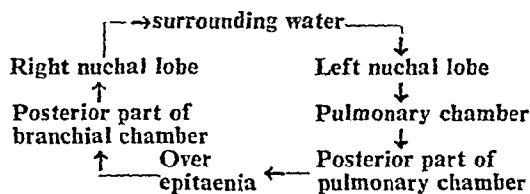
प्रश्न 97. पाइला के पाचन तन्त्र का वर्णन कीजिये तथा लेमेलिडेन्स से इसकी तुलना कीजिये।

Describe the digestive system of *Pila* and Compare it with that of Lamellidens. (*Jiwaji 1969*)

पाइला के पाचन तन्त्र के अन्तर्गत आहार-नाल एवम् इससे सम्बद्ध ग्रन्थियाँ आती है।

आहार-नाल
(Alimentary Canal)

पाइला की आहार नाल एक मुड़ी हुई नली के रूप में होती है। यह अग्रांत्र, मध्यांत्र तथा पश्चांत्र में भिन्नित होती है।

अग्रांत्र या स्टोमोडियम (Foregut or Stomodaeum)

यह आहार नाल का अग्र भाग है जिसकी भीतरी सतह एक्टोडर्म से आस्तारित रहती है। इस भाग में **मुख्र, मुखपिण्डक** (buccal mass) तथा **ग्रासनली** आदि रचनाएँ होती हैं।

(1) मुख एवम् मुखपिण्डक (Mouth and buccal mass)—**मुख** ऊर्ध्वाधर दरार के रूप मे प्रोथ के सिरे पर स्थित होता है। इसके चारों ओर त्वचा के अनेक लहरदार वलय द्वितीयक ओष्ठों के समान कार्य करते है।

मुखपिण्डक नाशपाती के आकार का एक बड़ा पेशीय अंगक है। इसकी दीवार कार्टिलेज की अनेक छड़ों द्वारा अवलम्बित रहती है तथा इसमे पेशियों के अनेक सेट

होते हैं जो मुखपिण्डक तथा इसमें स्थित रचनाओं (रेड्यूला तथा जबड़ों) को गति प्रदान करते हैं।

(2) मुख गुहा (buccal cavity)—मुखपिण्डक की गुहा को **मुखगुहा** (buccal cavity) कहते हैं। यह अत्यधिक अवरुद्ध होती है तथा इसमें एक रेडूला (radula) तथा एक जोड़ी जबड़े होते हैं। जबड़े मुखगुहा को दो असमान भागों में विभाजित करते हैं। अग्रिम छोटा भाग वेस्टिब्यूल कहलाता है।

जबड़े वेस्टिब्यूल का पश्च उपांत बनाते हैं। प्रत्येक जबड़ा काइटिन की बनी लचीली अण्डाकार रचना है जो वेस्टिब्यूल के पृष्ठ-पार्श्व में स्थित होती है। इस पर अनेक छोटे तथा 2–3 बड़े दाँतों के समान उद्वर्ध होते हैं। दाँत क्यूटिकल की पतली मेम्ब्रेन द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते है और मुखपिण्डक की संवरणी पेशियों द्वारा नियन्त्रित रहते हैं। मुखगुहा की छत में एक जोड़ी मुख-ग्रन्थियाँ (buccal glands) स्थित होती हैं।

इसके जबड़ों के पीछे वाले भाग का फर्श जिह्वा के समान रचना, **ओडोण्टोफोर** (odontophore) में उभरा रहता है। ओडोण्टोफोर में दो जोड़ी कार्टिलेज तथा सुविकसित प्रोट्रेक्टर एवम् रिट्रेक्टर (protractor and retractor) पेशियाँ
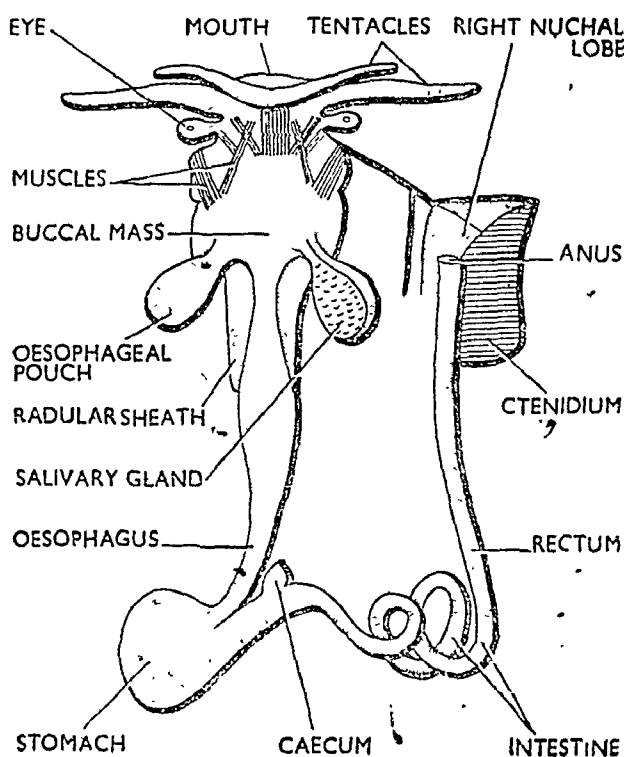
चित्र १४·४. पाइला की आहार नाल
(Alimentary canal of *Pila*)

होती हैं। इसका अगला सिरा एक गोलाकार प्रवर्ध के रूप में निकला होता है जिसे

सबरेडूलर अंग (subradular organ) कहते है। इसके नीचे स्थित मुखगुहा का विस्तारित भाग अधोजिह्व गुहा (sublingual cavity) कहलाता है।

(3) रेडूला (Radula)—ओडोण्टोफोर के पीछे मुखगुहा के फर्श से एक थैली-नुमा उभार निकला होता है जिसे रेडूला कोष (radula sac) कहते है। रेडूला का पश्च भाग इस कोष में बन्द रहता है। रेडूला पट्टी के समान रचना है जो ओडोण्टोफोर की सतह पर स्थित होता है। इस पर छोटे तथा मुड़े हुए हार्नी दन्त कई अनुप्रस्थ पंक्तियों में विन्यसित होते है। प्रत्येक पक्ति में दाँतों की संख्या 7 होती
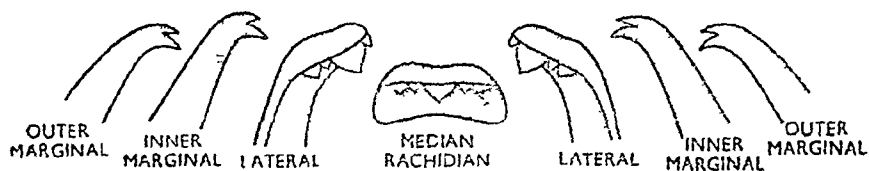
चित्र १४·५. पाइला का रेडूला (Radula of *Pila*)

है जिनमें से एक मध्य रैकिडियन (median rachidian), एक जोड़ी पार्श्वदन्त तथा दो जोड़ी उपांतदन्त (marginals) होते हैं। ये दन्त विशेष ओडोण्टोब्लास्ट कोशिकाओं द्वारा स्रावित होते है जो रेडूलर कोष के आधार पर अनुप्रस्थ पक्तियों में विन्यसित होते है। अत: रेडूला जीवन पर्यन्त वृद्धि करता रहता है, जिससे घिसे एवम् टूटे हुए दाँतों का विस्थापन हो जाता है। रेडूला भोजन को खुरचकर खाने मे मदद करता है।
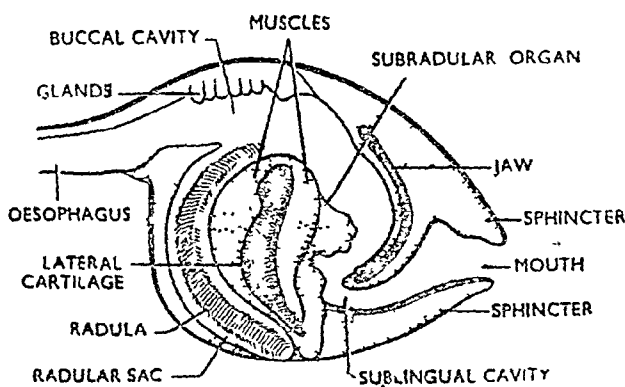
चित्र १४·६. पाइला के मुख पिंडक की खडी काट
(V S Visceral mass of *Pila*)

(4) ग्रास नली (Oesophagus)—यह एक लम्बी व सँकरी नाल है जो मुखपिण्डक के पिछले भाग से निकलती है। यह मध्यपृष्ठ रेखा के साथ-साथ चलती हुई बाँयी ओर मुड़कर आमाशय में खुलती है।

ग्रासनली के अग्रभाग से सम्बद्ध क्रीम रंग की एक जोड़ी गोलाकार ग्रसिका धानियाँ (oesophageal pouches) पायी जाती हैं। ये लार ग्रन्थियों के नीचे ग्रास

नली के दोनों ओर एक-एक स्थित होती हैं। यद्यपि ये लार ग्रन्थियों से सम्बन्धित प्रतीत होती हैं किन्तु इनके कार्य के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान नहीं है।

मध्यांत्र (Midgut)

यह आहार नाल का मध्य भाग है जिसमें आमाशय तथा आन्त्र होते हैं।

(1) आमाशय (Stomach)—यह गहरे लाल रंग का एक आयतीय कोष है जो पाचक ग्रन्थि में धँसा रहता है। यह आन्तरांग पिण्डक (visceral mass) के बाँयी ओर पेरिकार्डियम के नीचे स्थित होता है। इसकी आन्तरिक गुहा 'U' के समान होती है। इसका बाँया या पश्च भाग **कार्डियक कक्ष** (cardiac chamber) तथा अग्र या दाहिना भाग **पाइलोरिक कक्ष** (pyloric chamber) कहलाता है। कार्डियक कक्ष में ग्रास नली खुलती है तथा पाइलोरिक कक्ष आन्त्र में खुलता है। पाइलोरिक आमाशय की निचली दीवार से एक अन्ध विनाल के समान उद्वर्ध निकला रहता है जिसे सीकम (caecum) कहते हैं। अन्य बहुत-से ग्रेस्ट्रोपोड्स में पायी जाने वाली क्रिस्टलीय कोन का पाइला में अभाव होता है।

(2) आन्त्र (Intestine)—यह जनदों तथा पाचन ग्रन्थि के बीच आन्तरांग-पिण्डक में स्थित एक लम्बी व कुण्डलित नाल है जो पाइलोरिक कक्ष से आरम्भ होकर $2\frac{1}{2}$ या 3 कुण्डल बनाने के बाद मलाशय में खुलती है।

पश्चान्त्र (Hindgut)

मलाशय (Rectum)—इसमें केवल **मलाशय** (rectum) होता है। मलाशय मोटी दीवार की एक लम्बी नली के समान होता है जो मेण्टल गुहा के क्लोम कक्ष में क्लोम की ओर स्थित होता है। यह एक सूक्ष्म छिद्र **गुदाद्वार** (anus) द्वारा बाहर खुलता है। गुदाद्वार दाहिने न्यूकल पिण्डक के सिरे से $\frac{1}{4}''$ की दूरी पर स्थित होता है।

पाचक ग्रन्थियाँ
(Digestive Glands)

पाइला में निम्नलिखित पाचक ग्रन्थियाँ पायी जाती हैं:—

1. लार ग्रन्थियाँ (Salivary glands)—ये श्वेत रंग की एक जोड़ी शाखान्वित ग्रन्थिल रचनाएँ हैं जो मुखपिण्डक के ठीक पीछे ग्रास नली के इधर-उधर स्थित होती हैं। इनसे निकलने वाली दोनों लार वाहिनियाँ आगे की ओर चलकर मुखगुहा के पिछले भाग में खुलती हैं। लार ग्रन्थियों में लार का निर्माण होता है जिसमें पाचक रस एवम् म्यूकस होते है। म्यूकस भोजन एवम् रेडूला को चिकना करता है।

2. यकृत अथवा पाचक ग्रन्थि (Liver or digestive gland)—यकृत कत्थई अथवा गहरे रंग की लगभग तिकोनी ग्रन्थि है। यह आन्तरांग का मुख्य भाग बनाती है तथा इसमें दो पिण्डक होते हैं। प्रत्येक पिण्डक से एक वाहिनी निकलती है। दोनों पिण्डकों की वाहिनियाँ समेकित होकर उभयनिष्ठ छिद्र द्वारा आमाशय में खुलती हैं।

यकृत का प्रत्येक पिण्डक बहुत-सी नलिकाओं से निर्मित होता है तथा प्रत्येक नलिका पक्ष्माभिकी एपिथीलियम द्वारा आस्तारित होती है। समस्त नलिकाएँ संयोजी ऊतक द्वारा सधी रहती हैं। महीन नलिकाएँ परस्पर मिलकर बड़ी नलिकाएँ बनाती हैं जो पुन: मिलकर मुख्य वाहिनी में खुलती हैं। प्रत्येक नलिका का अग्रभाग ऐलविओलस (alveolus) कहलाता है। इसमें तीन प्रकार की कोशिकाएँ होती है :—
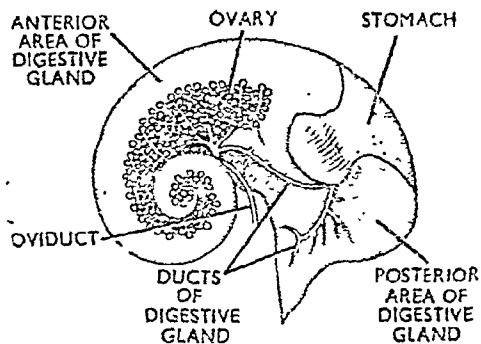
चित्र १४·८. पाइला की पाचक ग्रन्थि
(Digestive gland of Pila)

(*i*) स्रावी कोशिकाएँ
(*ii*) पुन:शोपी कशिकाएँ
(*iii*) कैल्शियम अन्तर्विष्ट कोशिकाएँ

स्रावी कोशिकाएँ (secretory cells) एक भूरे रंग का द्रव स्रावित करती हैं जिसमें एक एन्जाइम होता है जो आमाशय में सेलूलोस को विलयशील बनाता है। **पुन:शोषी कोशिकाएँ** (resorptive cells) प्रोटिओलिटिक (proteolytic) एन्जाइम स्रावित करती है जो सेलूलोस का अंत:कोशिकी पाचन करती हैं। **कैल्शियम अन्तर्विष्ट** (lime containing) कोशिकाओं में कैल्शियम का फॉस्फेट संचित रहता है।

भोजन का अन्तर्ग्रहण
(Ingestion of Food)

कोमल जलीय पौधे *पाइला* का भोजन हैं। संवरणी (sphincter) एवम् अपाकुंचक (protractor) पेशियों की क्रिया द्वारा जबड़े जलीय पौधों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटते हैं। रेडूला के आगे व पीछे की ओर गति करने से भोजन मुख-गुहा में प्रवेश करता है। अत: मुख-गुहा मे भोजन को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर चबाया जाता है।

पाचन (Digestion)

लार ग्रन्थियों द्वारा स्रावित लार मुख-गुहा में भोजन से मिल जाता है और अविलयशील मांड को विलयशील शर्करा में बदलता है। आमाशय में पाचक ग्रन्थि द्वारा स्रावित पाचक रस भोजन का पाचन करता है। पाचक ग्रन्थि का पाचक रस भोजन का बहि:कोशिकीय पाचन करता है जबकि अंत:कोशिकी पाचन पुन:शोपी (resorptive) कोशिकाओं में होता है। पुन:शोपी कोशिकाएँ भोजन के सेलूलोस का पाचन करती हैं। पाचक ग्रन्थि व आंत्र पचे हुए भोजन का अवशोषण करते हैं। अपचा भोजन मलाशय में से गुदा-द्वार द्वारा बाहर निकल जाता है। गुदा-द्वार से यह क्लोम कक्ष में और वहाँ से जल की बाहर जाती हुई धारा के साथ बाहर निकल जाता है।

पाइला एवम् यूनिओ के पाचन तन्त्र की तुलना
(Comparison of Digestive System of Pila and Unio)

पाइला (*Pila*)	लीच (*Leech*)
1 मख दरार के समान होता है तथा इसमें दो जोडी स्पर्शक होते हैं। पाल्प अनुपस्थित होते हैं।	1. मुख अनुप्रस्थ दरार के समान छिद्र है जो दो जोडी पतले पर्त्त के समान लेबियल पाल्प से घिरा रहता है।
2. इसमें ऐसा नही होता।	2. पाल्प पक्ष्माभिकी होते हैं तथा मुख के ऊपरी एवम् निचले ओ'ठ बनाते हैं।
3. मुखपिण्डक (buccal mass) अत्यधिक पेशीय रचना है जिसमें पेशियो के अनेक सैट होते है। मुखगुहा में एक जोडी जबड़े, रेडूला, ओडोण्टोफोर तथा सबरेड्युला होते हैं।	3. मुखपिण्डक, रेडूला तथा अन्य सम्बद्ध रचनाएँ अनुपस्थित होती हैं।
4 ग्रासनली सँकरी नाल के रूप में होती है।	4 मुख सीधा ग्रासनली में खुलता है। ग्रासनली छोटी एवम् चौड़ी नाल के रूप मे होती है।
5. ग्रसिका धानियाँ (oesophageal pouches) ग्रासनली के अग्रिम भाग से बाहर निकली रहती हैं।	5. ग्रसिका धानियां अनुपस्थित होती है।
6 आमाशय गहरे लाल रंग का आयतीय कोष है जिसकी गुहा U के समान होती है। यह कार्डियक एवम् पाइलोरिक भागो मे भिन्नित होता है।	6. आमाशय गोलाकार तथा अभिन्नित होता है।
7. पाइलोरिक सीकी पाइलोरिक आमाशय से बाहर निकले रहते हैं। इनमे क्रिस्टलीय कोन नही होती।	7. पाइलोरिक सीकम मे क्रिस्टलीय स्टाइलेट्स होती हैं जो स्टार्च को पचाने वाला एन्जाइम स्रावित करती हैं।
8. ऐसा नही होता।	8. आमाशय की दीवार का कुछ भाग विशेषीकृत होकर गैस्ट्रिक शील्ड (gastric shield) बनाता है।
9. आहार नाल आन्तरांग पिण्डक में $2\frac{1}{2}$ या 3 कुण्डल बनाती है।	9. आहार नाल आन्तरांग पिण्डक में अनेक कुण्डल बनाती है।
10. आमाशय क्लोम अक्ष में क्लोम के बाँयी ओर स्थित होता है।	10. मलाशय हृदय के वेन्ट्रिकल मे से पारित होता है तथा सुप्राब्रैकियल अक्ष के ऊपर स्थित होता है।
11. टिफ्लोसोल अनुपस्थित होता है।	11. आमाशय मे केंचुए के टिफ्लोसोल के समान एक रचना होती है।
12. गुदाद्वार शरीर के बाहर खुलता है।	12. गुदाद्वार अपवाही साइफन में खुलता है।

प्रश्न 98. पाइला के श्वसन अंगों एवम् श्वसन विधि का वर्णन कीजिये।

Give an account of the respiratory organs and mechanism of respiration in *Pila* (Pond snail).

(*Agra 1957, 65, 73 ; Lucknow 58, 63, 65, 68 ; Vikram 62, 68 ; Madras 68 ; Gorakhpur 60, 69 ; Punjab 65, 69 ; Patna 68 ; Delhi 70 ; Ranchi 71, 73 ; R.S. 71*)

पाइला के श्वसन अंगों का वर्णन कीजिये तथा समझाइये कि ये उसके रहने की जीवन विधि के किस प्रकार अनुकूल हैं।

Describe the respiratory organs of *Pila* and explain how they are adapted for its mode of life. (*Agra 1970 ; Utkal 68*)

आपके द्वारा अध्ययन किये गये किसी गैस्ट्रोपोड में श्वसन अंगों का वर्णन कीजिये।

Describe the respiratory organs of the gastropod type studied by you. (*Jabalpur 1973*)

श्वसन अंग (Respiratory Organs)

जल-स्थलचर स्वभाव (amphibious nature) के कारण पाइला मे जलीय तथा स्थलीय श्वसन के लिए अग होते है : जलीय श्वसन (aquatic respiration) के लिए **टेनिडियम** (ctenidium) या **क्लोम** (gill) तथा स्थलीय श्वसन के लिए **पल्मोनरी कोष** (pulmonary sac)। इनके अतिरिक्त एक जोड़ी न्यूकल लोब (nuchal lobe) भी पाये जाते हैं।

1. टेनिडियम (Ctenidium)—पाइला मे केवल एक लम्बा तथा मोनोपेक्टिनेट (monopectinate) क्लोम होता है जो मेण्टल गुहा मे दाहिनी ओर ब्रेकियल कक्ष की पृष्ठ-पार्श्व (dorsol-lateral) दीवार पर टेनिडियल अक्ष (ctenidial axis) से जुड़ा रहता है। टेनिडियल अक्ष पर एक पक्ति मे तिकोने **लैमेली** (lamellae) जुड़े रहते हैं।

प्रत्येक लैमिला अपने चौड़े आधार द्वारा टेनिडियल अक्ष के लम्बरूप स्थित होता है तथा

चित्र १४·१०. पाइला के क्लोम-लैमेला की अनुप्रस्थ काट (T.S. gill-lamella of *Pila*)
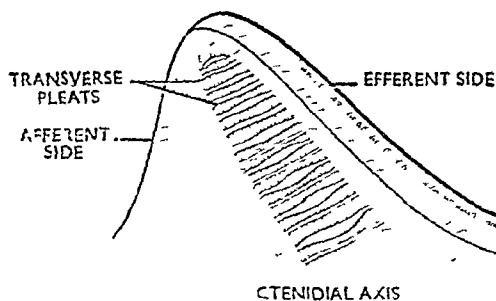
चित्र १४·९. पाइला के क्लोम का एक लैमेला (A single lamella of the gill of *Pila*)

नुकीला सिर ब्रैंकियल कक्ष में लटका रहता है। टेनिडियम के मध्य में स्थित लैमेली सबसे बड़े होते है तथा दोनों ओर धीरे-धीरे छोटे हो जाते हैं। प्रत्येक लैमेला का दाहिना किनारा छोटा होता है और **अभिवाही किनारा** (afferent side) कहलाता है तथा बाँया किनारा **अपवाही किनारा** (efferent side) कहलाता है। लैमेली के अगले तथा पिछले तल पर अनुप्रस्थ उभार या प्लेटें (plates) होती हैं। ये अत्यन्त संवहनीय होती हैं।

औतिकी के आधार पर—(histologically) प्रत्येक लैमेला ब्रैंकियल एपिथीलियम (branchial epithelium) के दो स्तरों का बना होता है जो एक सँकरे स्थान द्वारा अलग रहते है। एपिथीलियम में तीन प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं—

(*i*) **अपक्ष्माभिकी स्तम्भी कोशिकाएँ** (Non-ciliated columnar cells)
(*ii*) **पक्ष्माभिकी स्तम्भी कोशिकाएँ** (Ciliated columnar cells)
(*iii*) **ग्रन्थि कोशिकाएँ** (Glandular cells)

एपिथीलियम आधारकला (basement membrane) पर आधारित रहती है जिसके पीछे एक स्तर तन्तु-ऊतक (connective tissue) का तथा एक स्तर आड़ी पेशियों (oblique muscles) का होता है। इसके बाहर **पेलियल एपिथीलियम** (pallial epithelium) का स्तर होता है।

2. पल्मोनरी कोष (Pulmonary sac)—पल्मोनरी कोष एक बड़े थैले के समान रचना है जो बड़े पल्मोनरी कक्ष की छत में स्थित होता है। यह मेण्टल गुहा के बाईं ओर पाया जाता है। यह मेण्टल के रूपान्तरण से बनता है और मोटी तथा संवहनीय दीवारों का बना होता है। इसकी पृष्ठ दीवार रंगीन (pigmented) होती है तथा अधर दीवार का रंग पीला-सा सफेद होता है। पल्मोनरी कोष एक बड़ी अण्डाकार पल्मोनरी गुहा में खुलता है। पल्मोनरी छिद्र दो असमान पर्तों वाले कपाट द्वारा सुरक्षित रहते हैं।

कृपया चित्र 14·3 देखिये।

3. न्युकल लोब या स्यूडोपिपोडियम (Nuchal lobes or pseudopipodium)—सिर के दोनों ओर तथा पाद के ऊपर एक मोटा कुञ्चनशील उभार होता है जो **न्युकल लोब** या **स्युडोपिपोडियम** कहलाता है। बाँया न्युकल लोब दाहिने की अपेक्षा बडा होता है। दोनों न्युकल लोब श्वसन के समय साइफन (siphon) बनाते हैं।

श्वसन पद्धतियाँ (Modes of Respiration)

पाइला में श्वसन की दो पद्धतियों का अध्ययन किया गया है :—

1. जलीय या ब्रैंकियल श्वसन (Aquatic or branchial respiration)
2. वायवीय या पल्मोनरी श्वसन (Aerial or pulmonary respiration)

1. जलीय श्वसन या ब्रैंकियल श्वसन—पानी में डूबे रहने पर पाइला पानी में घुली हुई आक्सीजन का उपयोग करता है, अतः मेण्टल गुहा में पानी की अविच्छिन्न धारा बनायी रक्खी जाती है। सिर तथा पाद खोल से बाहर निकल आते हैं तथा दाहिना एवम् बाँया न्युकल लोब फैलकर छिछली नाल (shallow channel) बना लेते हैं परन्तु बाँया न्युकल लोब और अधिक बड़ा होकर पूर्ण विकसित फन्नल के समान रचना बना लेता है। बाँये न्युकल लोब से जल की धारा मेण्टल गुहा में पहुँचती है तथा एपीटीनिया (epitaenia) पर से होकर ब्रैंकियल कक्ष के पिछले भाग में पहुँचती है। ब्रैंकियल कक्ष के आगे की ओर बढते हुए जल की धारा

क्लोम को भिगोती है। यहाँ गैसों का आदान-प्रदान होता है। प्रयोग में आयी हुई जल की धारा बाँये न्युकल लोब से बाहर आ जाती है।

टेनिडियल फिलामेण्ट की पक्ष्माभिकी-कोशिकाओं के पक्ष्मों (cilia) की गति द्वारा मेण्टल गुहा के फर्श के ऊपर-नीचे होने से मेण्टल गुहा में जल की अविच्छिन्न धारा बनी रहती है।

2. वायवीय श्वसन या पल्मोनरी श्वसन—जब पानी में घुलित आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है अथवा पाइला स्थल पर होता है तभी वायवीय श्वसन होता है। पाइला पानी की सतह पर आ जाता है तथा बाँये न्युकल लोब से बनी लम्बी नालाकार साइफन को सतह से ऊपर निकाल लेता है। पल्मोनरी कक्ष फैलकर बहुत बड़ा हो जाता है तथा ब्रैंकियल कक्ष से पूर्णतया अलग हो जाता है। वायु श्वसन साइफन में से होती हुई पल्मोनरी कोप में एकत्रित हो जाती है। पल्मोनरी कोप के सिकुड़ने-फैलने की क्रमिक गति निश्वसन (inspiration) तथा निःश्वसन (expiration) में सहायक होती है।

जब पाइला स्थल पर होता है तब पल्मोनरी साइफन नहीं बनता तथा वायु सीधी फैले हुए न्युकल लोब से होकर पल्मोनरी कोप में भर जाती है।

प्रश्न 99. पाइला के पेलियल कॉम्प्लेक्स के अंगों का सविस्तार वर्णन करिये तथा संक्षेप में उल्लेख करिये कि इसमें श्वसन किस प्रकार होता है।

Give an illustrated account of the organs of pallial complex of *Pila* and mention in brief how respiration takes place in this animal. (*Gorakhpur 1971*)

कृपया प्रश्न 95 तथा 97 देखिये।

प्रश्न 100. पाइला में विभिन्न श्वसन पद्धतियों का वर्णन कीजिये।

Describe carefully the modes of respiration in Pila.
(*Agra 1958, 62 ; Vikram 65*)

कृपया प्रश्न 98 देखिये।

पाइला में किस प्रकार श्वसन होता है ? यह अलवण जल शम्बुक (fresh water mussel) से किस प्रकार भिन्न होता है ?

How is respiration effected in pond snail ? In what respects does it differ from that of mussel ?
(*Agra 1957, 63 ; Jiwaji 67 ; Kanpur 70 ; Gorakhpur 73*)

प्रश्न 101. पाइला के श्वसन-तन्त्र का विवरण दीजिये और इसकी तुलना लैमेलीडेन्स के श्वसन-तन्त्र से कीजिये।

Give an account of respiratory system of *Pila* and compare it with that of lamellidens. (*Rajasthan 1970*)

श्वसन पद्धति के लिए कृपया प्रश्न 98 देखिये।

पाइला तथा यूनियो की श्वसन पद्धतियों की तुलना
(Comparison of Modes of Respiration in Pila and Unio)

पाइला (*Pila*)	यूनिओ (*Unio*)
1. पाइला में श्वसन की दो पद्धतियाँ पायी जाती हैं :—	1. यूनिओ में केवल एक प्रकार का जलीय श्वसन ही होता है।

पाइला (*Pila*)	यूनिओ (*Unio*)
(*a*) जलीय श्वसन या ब्रैंकियल श्वसन (*b*) वायवीय श्वसन या पल्मोनरी श्वसन	
2 श्वसन अंगों में— (*i*) एक टेनिडियम (ctenidium) (*ii*) एक पल्मोनरी कोष (pulmonary sac) तथा (*iii*) एक जोड़ी न्युकल लोब (nuchal lobe) होते हैं।	2. यूनिओ के श्वसन अंग— (*i*) एक जोड़ी क्लोम (gill) तथा (*ii*) मेण्टल गुहा (mantle cavity) हैं। पल्मोनरी कोष तथा न्युकल लोब अनुपस्थित होते हैं।
3. दाँये तथा बाँये न्युकल लोब बड़े होकर फनल बनाते हैं जिसमें से वायु तथा जल मेण्टल गुहा से बाहर निकलते हैं तथा भीतर आते हैं। यूनिओ के समान साइफन नहीं होते।	3. मेण्टल गुहा में जल की धारा आवाही साइफन (inhalent siphon) से भीतर आती है तथा अपवाही साइफन (exhalent siphon) से बाहर निकलती है।
4. (*i*) जलीय श्वसन में जल की धारा पहले बाँये न्युकल लोब से बने साइफन द्वारा पल्मोनरी कक्ष में पहुँचती है तथा वहाँ एपिटेनिया के ऊपर से ब्रैंकियल कक्ष में जाती है। जब पानी ब्रैंकियल कक्ष में भरता है तो उपस्थित टेनिडियम को भी भिगोता है।	4. (*i*) जल अपवाही साइफन में से होता हुआ मेण्टल गुहा में आता है जिसमें एक जोड़ी क्लोम पड़े रहते हैं। पानी क्लोम को भिगोता है तथा उसके अन्तर-लैमेलर (inter-lamellar) स्थानों या जलीय नलिकाओं में भर जाता है। इण्टर-लैमेलर जंकशन (inter-lamellar junctions) में रक्त-वाहिनियाँ होती हैं, अतः जल रक्त के समीप होता है।
(*ii*) ब्रैंकियल कक्ष से पानी सीधा बाहर निकल आता है तथा दाहिने न्युकल लोब से शरीर से बाहर फेंक दिया जाता है।	(*ii*) यहाँ से पानी सुप्राब्रैंकियल कक्ष में भर जाता है और अन्त में अपवाही साइफन में से होता हुआ शरीर के बाहर आ जाता है।
(*iii*) टेनिडियम के लैमेला में पायी जाने वाली पक्ष्माभिकी कोशिकाओं के पक्ष्माभिकों की गति द्वारा जल की धारा बनाये रखी जाती है। सिर को बार-बार बाहर निकालने तथा भीतर खींचने से मेण्टल गुहा का फर्श क्रमिक रूप से ऊपर उठता तथा नीचे गिरता रहता है जिससे जल की धारा को अविच्छिन्न रखा जाता है।	(*iii*) मेण्टल गुहा में जल की धारा क्लोम-फिलामेण्ट के सीलिया की गति द्वारा उत्पन्न की जाती है।
5. मेण्टल गुहा श्वसन में सहायता नहीं करती।	5. मेण्टल गुहा श्वसन क्रिया में भाग लेती है।
6. शरीर में पहुँचने वाले पानी की शुद्धता ऑस्फ्रेडियम द्वारा जाँच ली जाती है।	6. पानी की शुद्धता की परीक्षा नहीं की जाती।
7. शरीर में जल की धारा का निम्न पथ होता है :— →Surrounding water— Right nuchal lobe ← Posterior part of branchial chamber ← Over epitaenia ← Posterior part of pulmonary chamber ← Pulmonary chamber ← Left nuchal lobe ← Surrounding water	7. जल की धारा निम्न भागों से जाती है :—
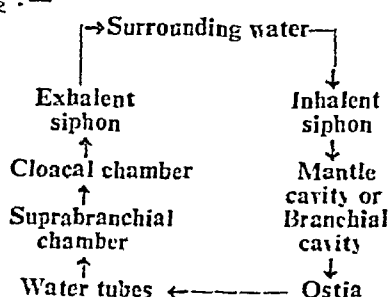
पाइला (*Pila*)	यूनिश्रो (*Unio*)
8. पाइला वायुमण्डल की वायु से आक्सीजन लेकर भी श्वसन करता है। वायु वांये न्युकल लोब में से पल्मोनरी कोष में भर जाती है जहाँ गैसों का विनिमय होता है।	8. इसमें ऐसा नहीं होता।

प्रश्न 102. यूनिश्रो एवन् पाइला के हृदय की संरचना का वर्णन कीजिये। Describe the structure of hearts of *Unio* and *Pila*.

(*Lucknow 1954*)

यूनियो के हृदय की रचना
(Structure of Heart of Unio)

यूनियो में हृदय पश्च एडक्टर पेशी (posterior adductor muscle) के सामने मध्य पृष्ठ रेखा पर स्थित होता है। यह एक पतली दीवार वाले तिकोने कक्ष में बन्द रहता है जो पेरीकार्डियम (pericardium) कहलाता है।

हृदय अत्यन्त पेशीय तथा लचीला होता है तथा इसकी गुहा को तीन कक्षों में बाँटा जा सकता है :—

1. दो अलिन्द (Two auricles)
2. एक निलय (One ventricle)

अलिन्द (Auricle)—अलिन्द पारदर्शी पतली दीवार वाली तथा अत्यधिक लचीली थैले के समान रचनाएँ हैं जो लगभग त्रिकोणाकार होते हैं। ये निलय के दोनों पार्श्व किनारों पर स्थित होते हैं तथा अपने चौड़े आधार द्वारा पेरिकार्डियल दीवार (paricardial wall) से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक अलिन्द एक छोटे-से **अलिन्द-निलय छिद्र** (auriculo-ventricular opening) द्वारा निलय में खुलता है। इस पर कपाट होते हैं जो रक्त को केवल अलिन्द से निलय में ही जाने देते हैं, वापस नहीं लौटने देते। अलिन्द में क्लोमों तथा मेण्टल से ऑक्सीकृत रक्त (oxygenated blood) आकर एकत्रित होता है तथा यहाँ से वेण्ट्रिकल में पहुँचाया जाता है।

निलय (Ventricle)—निलय बड़ा, मोटी दीवारों वाला, अत्यन्त कुन्चनशील कक्ष है जो अलिन्दों के बीच स्थित होता है। यह रेक्टम के चारों ओर स्थित होता है। अलिन्द से रक्त निलय में आता है तथा निलय के सिकुड़ने से शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचता है।

पाइला के हृदय की रचना
(Structure of Heart of Pila)

पाइला में हृदय मेण्टल गुहा के पीछे पृष्ठतल पर पल्मोनरी कोष तथा पश्च वृक्क अंग (posterior renal organs) के पीछे स्थित होता है। यह शरीर-चक्र (body whorl) में बायीं ओर पाया जाता है तथा पेरिकार्डियम नामक एक पतले अण्डाकार कक्ष में बन्द रहता है।

हृदय में दो कक्ष होते हैं जो ऊपर-नीचे स्थित होते हैं :—

1. अग्रिम अलिन्द
2. पश्च निलय

1. अलिन्द (Auricle)—अलिन्द पतली दीवार वाला लगभग तिकोना भाग है जो अत्यन्त लचीला होता है। यह पेरिकार्डियम के पृष्ठ भाग में स्थित होता है। इसके सिर भाग में तीन शिराएँ खुलती हैं जो **अपवाही टेनिडियल शिरा** (efferent ctenidial vein), **अपवाही वृक्क शिरा** (efferent renal vein) तथा **पल्मोनरी शिरा** (pulmonary vein) कहलाती है। ये शुद्ध आक्सीकृत रक्त को अलिन्द में पहुँचाती है। अलिन्द का आधार निलय से सम्बन्धित होता है। इनके बीच का छिद्र **अलिन्द-निलय छिद्र** (auriculo-ventricular opening) कहलाता है। यह दो अर्धचन्द्राकार कपाटों (semilunar valves) द्वारा रक्षित रहता है। ये रक्त को केवल अलिन्द से निलय में ही जाने देते है।

चित्र 14·11. पाइला के हृदय की रचना (Structure of heart of *Pila*)
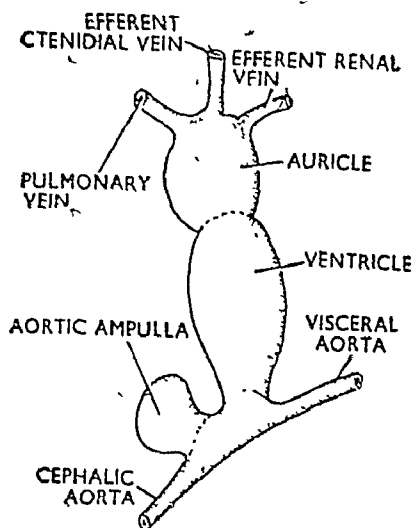
2. निलय (Ventricle)—निलय एक बड़ा अण्डाकार कक्ष है जो अलिन्द के पीछे स्थित होता है। इसकी दीवारें मोटी, पेशीयुक्त तथा अत्यन्त लचीली होती हैं तथा इसकी गुहा बहुत कम चौड़ी होती है। आगे की ओर निलय अलिन्द से सम्बन्धित होता है तथा पीछे की ओर इससे **आयोर्टिक ट्रंक** (aortic trunk) निकलता है। इसके छिद्र पर भी एक जोड़ी अर्ध-चन्द्राकार कपाट स्थित होते है जिनकी उपस्थिति के कारण रक्त केवल निलय से आयोर्टा में जा सकता है; लौटकर वापस नही आ सकता।

प्रश्न 103. पाइला के परिवहन तन्त्र का वर्णन कीजिये।
Describe the vascular system of *Pila*. (*Agra 1961 ; Luck. 54, 57, 64 ; Vikram 67 ; Nagpur 69 ; Jiwaji 72*)

पाइला का परिवहन तन्त्र
(Vascular System of Pila)

जलीय तथा स्थलीय स्वभावों के कारण *पाइला* का परिवहन-तन्त्र अत्यन्त जटिल होता है। इसमें निम्न रचनाएँ होती है :—

1. पेरिकार्डियम (Pericardium)
2. हृदय (Heart)
3. धमनियाँ (Arteries)
4. साइनस (Sinuses)
5. शिराएँ (Veins)

पेरिकार्डियम (Pericardium)—पेरिकार्डियम पतली दीवार वाला अण्डाकार कक्ष है जिसमें हृदय वन्द रहता है। यह पल्मोनरी कक्ष तथा पश्च वृक्क कोष के बीच बॉडी-चक्र (body-whorl) में बाँयी ओर स्थित होता है। पीछे की ओर यह आमाशय तथा पाचन-ग्रन्थि से घिरा रहता है। इसके पृष्ठ तल पर वृक्क कोष (renal sacs) तथा अधर तल पर ग्रासनली होती है। पेरिकार्डियल गुहा

वास्तविक सीलोम को प्रदर्शित करती है तथा यह पश्च वृक्क कक्ष से **वृक्क-पेरिकार्डियल छिद्र** (reno-pericardial opening) द्वारा सम्बन्धित रहती है।

हृदय (Heart)—हृदय पेरिकार्डियम के भीतर स्थित दो कक्षों वाली रचना है जिसमें एक अलिन्द तथा एक निलय होता है।

1. अलिन्द (Auricle)—अलिन्द एक पतली दीवार वाला लचीला तथा तिकोना कक्ष है। इसके अगले सिरे पर तीन शिराएँ खुलती हैं :—

(*i*) **अपवाही टेनिडियल शिरा** (Efferent ctenidial vein)
(*ii*) **अपवाही वृक्क शिरा** (Efferent renal vein)
(*iii*) **पल्मोनरी शिरा** (Pulmonary vein)

अलिन्द का चौड़ा आधार भाग निलय में खुलता है। इनके बीच का छिद्र **अलिन्द-निलय छिद्र** (auriculo-ventricular aperture) कहलाता है। इस पर एक जोड़ी अर्धचन्द्राकार कपाट होते हैं।

2. निलय (Ventricle)—निलय मोटी दीवार वाला अण्डाकार कक्ष है जिसकी दीवार में पेशी तन्तुओं का जाल-सा फैला रहता है तथा जो इसकी गुहा में भी फैले रहते हैं जिससे यह स्पंजी होता है। आगे की ओर निलय अलिन्द से सम्बन्धित रहता है तथा इसके पिछले सिरे से **आयोर्टिक ट्रंक** (aortic trunk) निकलती है। इसके आधार पर एक जोड़ी अर्धचन्द्राकार कपाट होते हैं।

धमनियाँ (Arteries)—निलय से केवल एक रुधिर-वाहिनी निकलती है जो आयोर्टिक ट्रंक कहलाती है। यह तुरन्त ही दो शाखाओं में बँट जाती है :—

1. सिफेलिक आयोर्टा (Cephalic aorta)
2. विसरल आयोर्टा (Visceral aorta)

1. सिफेलिक आयोर्टा (Cephalic aorta)—सिफैलिक आयोर्टा बहुत-सी शाखाओं में विभाजित होकर सिर भाग को रुधिर पहुँचाता है। इसके आधार पर एक बड़ी, मोटी दीवारों वाला बल्ब के समान उभार (bulbous outgrowth) होता है जो **आयोर्टिक एम्पुला** (aortic ampulla) कहलाता है। यह अत्यन्त लचीला होता है और रुधिर को पम्प करने में सहायता करता है। इससे निम्न धमनियाँ निकलती हैं :—

(*a*) **सिफेलिक आयोर्टा के बाहरी ओर से निकलने वाली धमनियाँ**—सिफेलक आयोर्टा की बाहरी सतह से तीन धमनियाँ निकलकर निम्न भागों को रक्त पहुँचाती हैं :—

(*i*) त्वचा को एक पतली **त्वक् धमनी** (cutaneous artery)
(*ii*) ग्रासनली को एक जोड़ी **ग्रासनली धमनियाँ** (oesophageal arteries)
(*iii*) मेण्टल के बायें भाग को, बायें न्युकल-लोब को तथा ऑस्फ्रेडियम को एक मोटी **पेलियल धमनी** (pallial artery)

(*b*) **सिफेलिक आयोर्टा के भीतर की सतह से निकलने वाली धमनियाँ**—सिफेलिक आयोर्टा की भीतरी सतह से एक **पेरिकार्डियल धमनी** (pericardial artery) निकलती है जो पेरिकार्डियम को रुधिर पहुँचाती है।

मुख्य आयोर्टिक ट्रंक उपर्युक्त शाखाएँ देने के पश्चात् पश्च वृक्क कक्ष (posterior renal chamber) में पहुँचता है जहाँ यह दोनों वृक्क कक्षों को बहुत-सी शाखाएँ देता है। अब यह पेरिविसरल साइनस (perivisceral sinus) में

पहुँचता है तथा ग्रासनली के बायें किनारे के साथ-साथ आगे बढ़ता है और अन्त में दाहिनी ओर मुड़ जाता है। यहाँ यह मेण्टल गुहा के फर्श तथा ग्रासनली को रुधिर
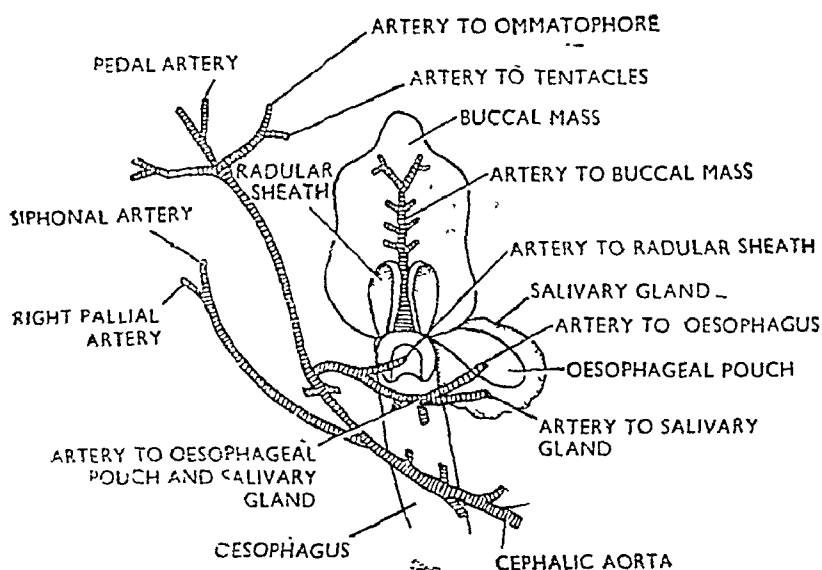
चित्र १४·१२. पाइला में सिफेलिक आयोर्टा तथा उसकी शाखाएँ
(Cephalic aorta and its branches in *Pila*)

पहुँचाता है। इसकी दाहिनी ओर से एक बड़ी शाखा निकलती है जो तीन धमनियों में बँट जाती है :—

(*i*) एक दाहिनी **पेलियल धमनी** (right pallial artery) जो मेण्टल के दाहिने भाग को रुधिर पहुँचाती है।

(*ii*) एक दाहिनी **साइफोनल धमनी** (right siphonal artery) जो दाहिने न्युकल लोब को रुधिर पहुँचाती है।

(*iii*) एक **पेनियल धमनी** (A penial artery) जो मैथुन अंगों (copulatory organs) को रुधिर पहुँचाती है।

मुख्य सिफेलिक आयोर्टा पुनः चार शाखाओं में बँट जाता है :—

(*i*) **रेडूलर सेक धमनी** (radular sac artery)—रेडूलर कोष को

(*ii*) एक जोड़ी **ऑप्टिक धमनियाँ** (optic arteries)—नेत्रों को

(*iii*) एक जोड़ी **स्पर्शक धमनियाँ** (tentacular arteries)—स्पर्शकों को तथा

(*iv*) **पाद धमनियाँ** (pedal arteries)—पाद को रक्त पहुँचाती हैं।

2. **विसरल आयोर्टा** (Visceral aorta)—विसरल आयोर्टा विसरल मास (visceral mass) के बीच से गुजरता है तथा निम्न शाखाओं द्वारा विसरल अंगों को रुधिर पहुँचाता है :—

(*i*) एक सूक्ष्म **पेरिकार्डियल शाखा** (pericardial branch) द्वारा रुधिर पेरिकार्डियम, त्वचा तथा पाचन-ग्रन्थि को जाता है।

(*ii*) एक बड़ी **गैस्ट्रिक शाखा** (gastric branch) द्वारा रुधिर आमाशय में पहुँचता है।

(*iii*) आंत्रीय धमनियाँ (Intestinal arteries) आंत्र को रक्त देती हैं।

(*iv*) हिपेटिक धमनी (hepatic artery) पाचन-ग्रन्थि तथा जनन-अंगों को रक्त ले जाती है।
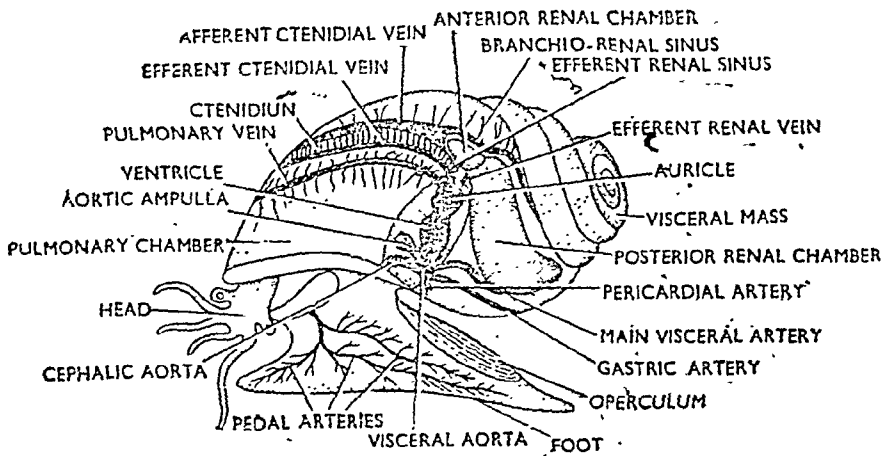
चित्र १४·१३. पाइला में हृदय (Heart) तथा मुख्य रुधिरवाहिनियों (blood vessels) का चित्रीय निरूपण

अन्त में विसरल आयोर्टा शाखान्वित होकर आंत्र, वृक्क कक्ष की छत (roof of renal chamber) तथा गुदा (rectum) को रक्त देता है।

साइनस (Sinuses)—धमनियों की अन्तिम शाखाएँ ऊतकों तथा अंगों के भीतर पहुँचकर चौड़ी हो जाती हैं। इन पर दीवारें नहीं होतीं। ये रुधिर स्थान (blood spaces) या रुधिर साइनस (blood sinuses) कहलाते हैं। इनमें से कुछ रुधिर-केशिकाओं की भाँति कार्य करते हैं तथा कुछ धमनी एवम् शिराओं को जोड़ते हैं। अन्य रक्त साइनस आपस में मिलकर बड़े साइनसे बनाते हैं। इन पर भी दीवार नहीं होती। पाइला में इनकी संख्या चार होती है—

(*i*) **पेरिविसरल साइनस** (Perivisceral sinus)—यह पाद के ऊपर तथा मेण्टल गुहा के फर्श के अग्रिम भाग में स्थित होता है। यह आहार-नाल के अगले भाग को घेरे रहता है।

(*ii*) **पेरिइण्टेस्टाइनल साइनस** (Peri-intestinal sinus)—यह आंत्र के चारों ओर पाया जाता है।

(*iii*) **ब्रेंकियो-रीनल साइनस** (Branchio-renal sinus)—यह वृक्क कक्ष (renal chamber) के दाहिने किनारे के साथ स्थित होता है।

(*iv*) **पल्मोनरी साइनस** (Pulmonary sinus)—यह पल्मोनरी कोष की दीवार में स्थित होता है।

शिराएँ (Veins)—शरीर के विभिन्न अंगों से रुधिर तीन मुख्य शिराओं द्वारा एकत्रित किया जाता है जो या तो सीधे ही अथवा श्वसन एवम् उत्सर्गी अंगों से होकर अलिन्द में डाल दिया जाता है।

(*i*) **अभिवाही टेनिडियल शिरा** (Afferent ctenidial vein)—यह पेरिविसरल साइनस, ब्रेंकियो-रीनल साइनस, रेक्टम तथा जनन-वाहिनियों के सिर

भागों से रुधिर एकत्रित करती है तथा इसे टेनिडियम में ले जाती है। यह शिरा बार-बार विभाजित होकर ब्रेंकियल लेमेली को रुधिर पहुँचाती है। यहाँ रुधिर का ऑक्सीकरण होता है।

(*ii*) अपवाही टेनिडियल शिरा (Efferent ctenidial vein)—यह टेनिडियम, मेण्टल तथा मैथुन-अंगों से आक्सीकृत रुधिर एकत्रित करके अलिन्द में डालती है।

(*iii*) आवाही या अभिवाही वृक्क शिरा (Afferent renal vein)—यह पेरिइण्टेस्टाइनल साइनस से रुधिर लेती है तथा पश्च वृक्क कक्ष में पहुँचाती है।

(*iv*) अपवाही वृक्क शिरा (Efferent renal vein)—यह पश्च वृक्क कक्ष से रुधिर एकत्रित कर अलिन्द को ले जाती है।

(*v*) पल्मोनरी शिरा (Pulmonary vein)—यह पल्मोनरी कोष से रुधिर एकत्रित कर अलिन्द में पहुँचाती है।

रुधिर (Blood)

पाइला का रुधिर रंगहीन किन्तु कुछ नीलापन लिये हुए होता है। इसके प्लाज्मा में हीमोसायनिन (haemocyanin) नामक पदार्थ घुला रहता है। प्लाज्मा में रंगहीन अमीबाभ कोशिकाएँ (amoeboid cells) पायी जाती हैं।

रुधिर का परिवहन (Circulation of Blood)

टेनिडियम तथा मेण्टल गुहा से एकत्रित किया हुआ ऑक्सीकृत रुधिर तथा वृक्क कोष से अनॉक्सीकृत रक्त तीन शिराओं द्वारा अलिन्द में पहुँचता है। अलिन्द से मिश्रित रक्त निलय में पहुंच जाता है। निलय द्वारा यह रक्त शरीर के विभिन्न भागों को पहुँचाया जाता है। सिफेलिक आयोर्टा तथा विसरल आयोर्टा की विभिन्न शाखाएँ इस कार्य में सहायता करती हैं। विभिन्न अंगों से अनाक्सीकृत रक्त पेरि-विसरल तथा पेरि-इण्टेस्टाइनल साइनस में एकत्रित होता है। यहाँ से कुछ रुधिर ऑक्सीकरण के लिए टेनिडियम तथा मेण्टल-गुहा में पहुँचा दिया जाता है तथा शेष वृक्क अंग को ले जाया जाता है जहाँ इससे नाइट्रोजन के यौगिक अलग कर लिये जाते हैं। इन अंगों से रक्त एकत्रित करके अलिन्द में डाल दिया जाता है।

प्रश्न 103 A. सीप व घोंघे के हृदयों का तुलनात्मक वर्णन करिये। घोंघे के रुधिर संचार का विस्तृत विवरण दीजिये।

Give a comparative account of the heart of *Unio* and *Pila*. Give details of blood circulation in Pila. (*Rajasthan 1972*)

पाइला में रुधिर परिवहन
(Blood Circulation in Pila)

कृपया प्रश्न 103 देखिये।

पाइला एवम् यूनिओ के हृदयों की तुलना
(Comparison of the Hearts of Pila and Unio)

पाइला (*Plia*)	यूनिओ (*Unio*)
1. हृदय मेण्टल गुहा में बांयी ओर पल्मोनरी कोष तथा पश्च वृक्क-अंगों के बीच स्थित होता है।	1. हृदय विसरा (viscera) के पिछले भाग में पश्च एडक्टर पेशी के ठीक सामने मध्य पृष्ठ रेखा पर स्थित होता है।

पाइला (*Pila*)	यूनिओ (*Unio*)
2. हृदय पतली भित्ति वाले अण्डाकार पेरिकार्डियम (pericardium) में बन्द रहता है।	2. हृदय तिकोने पेरिकार्डियम में स्थित होता है।
3. हृदय द्विकक्षीय होता है जिसमें एक अलिन्द व एक निलय एक-दूसरे के आगे-पीछे स्थित होते हैं।	3. हृदय त्रिकक्षीय होता है जिसमें दो अलिन्द (auricles) तथा एक निलय (ventricle) होते हैं।
4. अलिन्द पतली भित्ति की तिकोनी रचना है जो निलय के आगे स्थित होता है।	4. अलिन्द पतली भित्ति की तिकोनी रचनाएँ हैं जो निलय के इधर-उधर स्थित होते हैं।
5. अलिन्द के शीर्ष में तीन शिराएँ—efferent ctenidial, efferent renal तथा pulmonary vein आकर खुलती हैं।	5. प्रत्येक अलिन्द में एक-एक efferent branchial तथा pallial vein आकर खुलती हैं।
6. ऐसा नहीं होता।	6. निलय मलाशय को चारों ओर से घेरे हुए होता है।
7. निलय aortic trunk के रूप में निकला रहता है।	7. निलय एक anterior एवम् posterior ventricle के रूप में निकला रहता है।

प्रश्न 104. पाइला के वृक्कांग एवम् उत्सर्जन की कार्यिकी का वर्णन करिये।

Describe the renal organs and physiology of excretion in *Pila*.

पाइला ग्लोबोसा में एक बड़ा वृक्कांग (renal organ) या बोजानस अंग (organ of Bojanus) होता है। यह पेरिकार्डियम के नीचे स्थित होता है। यह एक मोटी भित्ति के कोष के रूप में होता हैं जिसमें दो स्पष्ट कक्ष होते हैं—एक दाहिना अग्र वृक्कांग कक्ष (anterior renal chamber) तथा एक वाम पश्च वृक्कांग कक्ष (posterior renal chamber)।

1. अग्र वृक्कांग कक्ष (Anterior renal chamber)—यह अण्डाकार व लाल-से रंग का होता है। यह पेरिकार्डियम के आगे की ओर स्थित होता है। यह मेण्टल/प्रवार गुहा में निकला रहता है और एपिटीनिया (epitaenia) के समीप झिर्री के समान एक द्वारक द्वारा क्लोम कक्ष (branchial chamber) में खुलता है। छत के फर्श से त्रिभुजाकार पर्णाकार प्रवर्ध या लैमेली के निकले रहने के कारण अग्र कक्ष की आंतरिक गुहा अत्यधिक ह्रसित होती है। कक्ष की पृष्ठ सतह पर आंतरिक लैमेली के संगत अनेक अनुप्रस्थ प्रसीताएँ होती हैं।

अग्र-कक्ष की छत पर माध्यिक अनुदैर्घ्य अक्ष—अपवाही वृक्कांग साइनस (efferent renal sinus) के प्रत्येक ओर लैमेली विन्यसित रहते हैं। अग्र कक्ष के फर्श पर इसी प्रकार के माध्यिक अक्ष—अभिवाही वृक्कांग साइनस (afferent renal sinus), जोकि परिआंत्र साइनस (peri-intestinal sinus) की शाखा है, पर लैमेली विन्यसित रहते हैं। यह अनेक शाखाओं में विभक्त होकर दोनों ओर के लैमेली को संभरणित करता है।

2. पश्च वृक्कांग कक्ष (Posterior renal chamber) : पश्च वृक्कांग कक्ष एक चौड़ा, कुछ अंकुश के समान तथा भूरे-से रंग की संरचना है। यह अग्र वृक्कांग कक्ष के पीछे बाँयी ओर स्थित मलाशय एवम् पेरीकार्डियम तथा दाहिनी ओर स्थित पाचक ग्रन्थि के बीच स्थित होता है। इसकी बड़ी गुहा में आंत्र के कुछ कुण्डल तथा जनन वाहिनी का एक भाग स्थित होता है। कक्ष की छत अपवाही (efferent) व अभिवाही वृक्कांग वाहिनियों (afferent renal vessels) की शाखाओं द्वारा संभरणित होती है। पश्च वृक्कांग कक्ष एक छिद्र द्वारा एक ओर तो अग्र वृक्कांग कक्ष से और दूसरी ओर झिर्री के समान रीनो-पेरिकार्डियल छिद्र (reno-pericardial aperture) द्वारा पेरिकार्डियल से संचारित रहता है। कक्ष के फर्श पर ऊतक का एक महीन स्तर होता है जो इसकी गुहा को उसमें प्रक्षिप्त अंगों से पृथक् करता है।
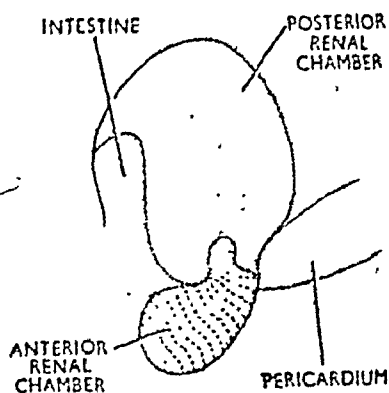
चित्र १४·१४. पाइला : पृष्ठ तल से देखने पर वृक्कांग के कक्ष (Chambers of renal organs seen from above)
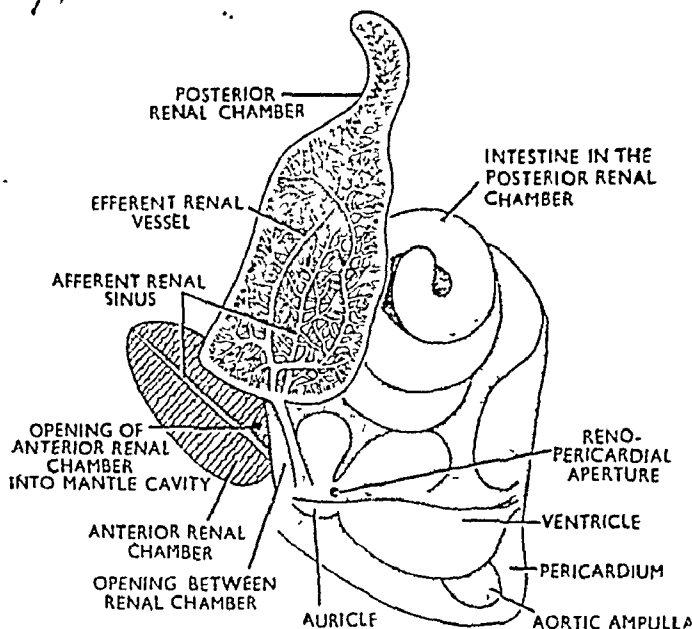
चित्र १४·१५. पेरिकार्डियम तथा वृक्कांग के दो कक्ष
(Pericardium and two chambers of renal organ)

उत्सर्जन की कायिकी (Physiology of Excretion)

दोनों वृक्कांग कक्षों का कार्य उत्सर्जी होता है जो रुधिर से नाइट्रोजिनस अपशिष्ट पदार्थों को पृथक् करते हैं। पश्च वृक्कांग कक्ष से उत्सर्जी पदार्थ अग्र-

वृक्कांग कक्ष में आते हैं और वहाँ से प्रवार गुहा में स्खलित हो जाते हैं और अन्त में पानी की बाहर जाती हुई धारा के साथ न्यूकल पालि (nuchal lobe) द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

स्रावी द्रव में मुख्य रूप से अमोनिया, अमोनिया के यौगिक, यूरिया तथा यूरिक अम्ल होते हैं। पाइला में अमोनिया अविलयशील यूरिक एसिड में बदल जाता है। पाइला में जल-संरक्षण का यह अनुकूलन इसके स्थलीय जीवन का एक विशिष्ट लक्षण है। अत: जल में रहते समय यह अमोनिया का उत्सर्जन करता है किन्तु स्थलीय प्रावस्था में यह अविलयशील यूरिक अम्ल उत्सर्जित करता है।

अधिकांश गस्ट्रोपोड्स में पाचक ग्रन्थि भी उत्सर्जन अंग का कार्य करती है। इसमें कुछ उत्सर्जी कोशिकाएँ होती हैं जो उत्सर्जी अपशिष्ट पदार्थों को ग्रहण कर लेती हैं। बाद में ये आमाशय व आंत्र में से होकर बाहर निकल जाती हैं।

प्रश्न 105. पाइला के तन्त्रिका-तन्त्र का वर्णन कीजिये तथा अलवण जल शुम्बुक से इसकी तुलना कीजिये।

Describe the nervous system of *Pila* and compare it with that of fresh water mussel. (*Agra 1959, 65 ; Gorakhpur 59 ; Lucknow 55, 58, 60, 62, 68, 71 ; Ravishanker 65 ; Punjab 65, 71 ; Kerala 67 ; Tribhuvan 63 ; Ranchi 68 ; Indore 67, 72 ; Jiwaji 68 ; Vikram 69, 72 ; Karnatak 69 ; Kanpur 68, 72*)

पाइला का तन्त्रिका-तन्त्र
(Nervous System of Pila)

पाइला का तन्त्रिका-तन्त्र पूर्ण विकसित तथा विशिष्ट प्रकार का होता है क्योंकि इसमें अधिकतर गैंगलिया buccal mass के चारों ओर एक वलय के रूप में स्थित होते हैं तथा विसरल तन्त्रिका रज्जु (visceral nerve cord) मुड़कर '8' की आकृति की रचना बनाती है। तन्त्रिका-तन्त्र में निम्नलिखित गुच्छिकाएँ (ganglia) तथा संयोजिनियाँ (commissures) पायी जाती हैं :—

1. एक जोड़ी सेरीब्रल या लेबियल गुच्छिकाएँ
2. एक जोड़ी बक्कल गुच्छिकाएँ
3. एक जोड़ी प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका समूह
4. एक जोड़ी विसरल गुच्छिकाएँ
5. एक सुप्रा-इण्टेस्टाइनल गुच्छिका

1. सेरीब्रल गुच्छिकाएँ (Cerebral ganglia)—मुख पिण्डक (buccal mass) के दोनों ओर पृष्ठ पार्श्व तल पर एक-एक **सेरीब्रल गुच्छिका** पायी जाती है। ये अधिक बड़ी, स्पष्ट, चपटी तथा त्रिकोणाकार होती हैं जो पृष्ठ तल पर एक-दूसरे से मोटी पट्टी के आकार की **सेरीब्रल संयोजिका** (cerebral commissure) तथा प्रति-पृष्ठ तल पर **लेबियल संयोजिका** द्वारा जुड़ी रहती हैं। निम्नलिखित संयोजिनियों (connectives) द्वारा ये अन्य गुच्छिकाओं से जुड़ी रहती हैं।

(*i*) **एक जोड़ी सेरीब्रो-बक्कल संयोजिनी** (A pair of cerebro-buccal connectives)—इनके द्वारा बक्कल गुच्छिकाएँ सेरीब्रल गुच्छिकाओं से जुड़ती हैं।

(*ii*) **एक जोड़ी सेरीब्रो-प्ल्यूरल संयोजिनी** (A pair of cerebro-pleural

connectives)—ये सेरीब्रल गुच्छिकाओं को प्लूरल गुच्छिकाओं से जोड़ती है ।

(*iii*) एक जोड़ी सेरीब्रो-पीडल संयोजिनी (A pair of cerebro-pedal connectives)—इनके द्वारा सेरीब्रल गुच्छिकाएँ पीडल गुच्छिकाओं से सम्बन्धित रहती हैं ।

सेरीब्रल गैंगलिया से निम्न तन्त्रिकाएँ निकल कर सिर के विभिन्न अंगों को जाती हैं :—

आगे की ओर प्रोथ की त्वचा, स्पर्शकों तथा मुख-पिण्डक को तन्त्रिकाएं जाती हैं ।
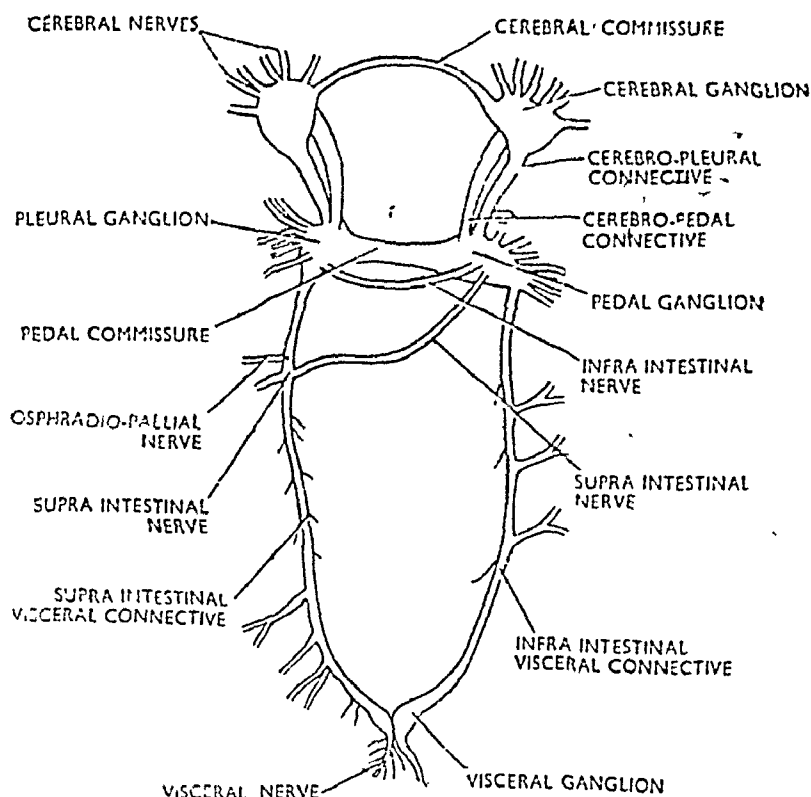
चित्र १४·१६. पाइला का तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous system of *Pila*)

(*b*) पीछे की ओर इससे निकलकर तन्त्रिकाएँ स्पर्शकों, नेत्रों तथा स्टेटोसिस्ट में पहुँचती है ।

2. बक्कल गुच्छिकाएँ (Buccal ganglia)—ये त्रिकोणाकार रचनाएँ हैं जो मुख-पिण्डक (buccal mass) तथा ग्रासनली के जोड़ के स्थान पर इधर-उधर स्थित होती है । दोनों बक्कल गुच्छिकाएँ आपस में बक्कल संयोजिका (buccal commissure) द्वारा जुड़ी रहती है तथा ये अपनी ओर की सेरीब्रल गुच्छिका से सेरीब्रो-बक्कल संयोजिनी (cerebro-buccal connective) द्वारा सम्बन्धित होती है । बक्कल गुच्छिकाओं से निकलने वाली तन्त्रिकाएँ मुख-पिण्डक, रेडूलर कोप, लार ग्रन्थियों, ग्रासनली तथा ग्रासनली पिण्डक (oesophageal pouch) में जाती है ।

3. प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका समूह (Pleuro-pedal ganglionic mass)—प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका समूह लगभग त्रिकोणाकार रचनाएँ हैं जो अधर पार्श्व तल पर मुख-पिण्डक के दोनों ओर पायी जाती हैं। प्रत्येक समूह बाहरी प्ल्यूरल तथा भीतर की पीडल गुच्छिकाओं के आंशिक रूप से मिलने पर बनता है। दोनों एक खाँच द्वारा अलग रहते हैं। दाहिनी ओर के प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका समूह के साथ अधो-आंत्र गुच्छिका (sub-intestinal ganglion) भी समेकित रहती है।

दोनों ओर की पीडल गुच्छिकाएँ (pedal ganglia) मुख-पिण्डक के नीचे मोटी तथा चौड़ी **पीडल संयोजिका** (pedal commissure) द्वारा आपस में जुड़ी रहती हैं। प्रत्येक से बहुत-सी तन्त्रिकाएँ निकलकर पाद को जाती हैं।

दोनों ओर की प्ल्यूरल गुच्छिकाएँ भी एक पतली **अवांत्र-तन्त्रिका** (infra-intestinal nerve) द्वारा जुड़ी रहती हैं। यह तन्त्रिका पीडल संयोजिका के पीछे स्थित होती है। बाँये प्ल्यूरल गुच्छक से पेराइटल भित्ति, मेण्टल, ऑस्फ्रेडियम, बाँये न्युकल लोब, काल्युमेलर पेशियों तथा क्लोएका के अगले भाग को तन्त्रिकाएँ जाती हैं। दाहिने प्ल्यूरल गुच्छक से दाहिनी ओर की पेराइटल भित्ति, एपिटेनिया, दाहिने न्यूकल लोब, मैथुन-अंग तथा रेक्टम को तन्त्रिकाएँ जाती हैं।

4. विसरल गुच्छिकाएँ (Visceral ganglia)—ये दो तर्क्वाकार (spindle-shaped) गुच्छिकाएँ हैं जो विसरल मास में पाचन-ग्रन्थि के अगले सिरे पर होती हैं। ये एक-दूसरे के बिल्कुल समीप स्थित होती हैं जिससे ये केवल एक ही दिखायी देती हैं। दाहिनी ओर यह दाहिने प्ल्यूरल गुच्छक से तथा बाँयी ओर **ऊर्ध्व आंत्र गुच्छक** (supra-intestinal ganglia) से **अवांत्र विसरल संयोजिनी** (infra-intestinal visceral connective) तथा **ऊर्ध्व आंत्र विसरल संयोजिनी** (supra-intestinal visceral connective) द्वारा जुड़ी रहती है। विसरल गुच्छक से तन्त्रिकाएँ वृक्क-अंग, जनन-अंगों, पेरिकार्डियम, आमाशय, आंत्र तथा पाचन-ग्रन्थि इत्यादि को जाती हैं।

5. ऊर्ध्व आंत्र गुच्छिका (Supra-intestinal ganglion)—यह तर्क्वाकार गुच्छिका है जो बाँयी ओर प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका से लगभग 1/4 इन्च की दूरी पर स्थित होती है। आगे की ओर यह बाँयी प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका से तथा भीतर की ओर दाहिनी अधो-आंत्र गुच्छिका (sub-intestinal ganglion) से जुड़ी रहती है। बाहर की ओर इससे एक छोटी किन्तु मोटी तन्त्रिका निकलती है जो मेण्टल तथा टेनिडियम के अगले भाग को जाती है।

पाइला तथा यूनिओ के तन्त्रिका-तन्त्र की तुलना
(Comparison of Nervous System of Pila and Unio)

पाइला (*Pila*)	यूनिओ (*Unio*)
1. तन्त्रिका-तन्त्र अत्यन्त विकसित (well-developed) होता है।	1. तन्त्रिका-तन्त्र कम विकसित (poorly developed) होता है क्योंकि जन्तु स्वभाव से ही सुस्त एवम् स्थावर (sedentary) होता है।
2. विसरल मास में व्यावर्तन (torsion) के कारण तन्त्रिका-तन्त्र व्यावृत (twisted) होता है।	2. तन्त्रिका-तन्त्र सरल होता है क्योंकि इसमें व्यावर्तन नहीं होता।

पाइला (*Pila*)	यूनिओ (*Unio*)
3. समस्त गुच्छिकाएँ शरीर के अगले भाग में एक घेरा बनाये रहती हैं।	3. गुच्छिकाएँ एक स्थान पर केन्द्रित नहीं होती।
4. तन्त्रिका-तन्त्र में निम्नलिखित गुच्छिकाएँ होती हैं :— (*i*) एक जोड़ी सेरिब्रल गुच्छिकाएँ (*ii*) एक जोड़ी बक्कल गुच्छिकाएँ (*iii*) एक जोड़ी प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका-समूह (*iv*) विसरल गुच्छिका (*v*) एक ऊर्ध्व-आंत्र गुच्छिका	4. तन्त्रिका-तन्त्र में निम्न गुच्छिकाएँ होती हैं :— (*i*) एक जोड़ी सेरिब्रल-प्ल्यूरल गुच्छिकाएँ (*ii*) एक जोड़ी विसरल गुच्छिकाएँ (*iii*) एक जोड़ी पीडल गुच्छिकाएँ
5. सेरिब्रल गुच्छिकाएँ दो चपटी त्रिकोणाकार रचनाएँ हैं जो मुख-पिण्डक के पृष्ठ पार्श्व तल पर स्थित होती हैं।	5. सेरीब्रल गुच्छिकाएँ प्ल्यूरल गुच्छिकाओं से समेकित होकर सेरिब्रो-प्ल्यूरल गुच्छिकाएँ बनाती हैं।
6. बक्कल (कपोल) गुच्छिकाएँ पायी जाती हैं।	6. कपोल गुच्छिकाएँ अनुपस्थित होती हैं।
7. प्लूरल तथा पीडल गुच्छिकाएँ मिलकर प्लूरो-पीडल गुच्छिका समूह बनाती है। दोनों ओर की पीडल-गुच्छिकाएँ एक-दूसरे से अलग रहती हैं।	7. पाद-गुच्छिकाएँ स्पष्ट तथा विकसित होती हैं। ये पाद के आधार पर स्थित होती हैं। दोनों पाद गुच्छिकाएँ आंशिक रूप से समेकित रहती हैं।
8. विसरल गुच्छिकाएँ दो तश्तरीकार रचनाएँ हैं जो एक-दूसरे के बिल्कुल समीप स्थित होती हैं।	8. दोनों विसरल गुच्छिकाएँ पूर्ण रूप से समेकित होकर सितारे के समान रचना बनाती हैं।
9. ऊर्ध्व आंत्र गुच्छिका प्ल्यूरो-पीडल समूह से लगभग 1/4 इंच पीछे स्थित होती है।	9. अनुपस्थित होती है।
10. अधांत्र गुच्छिका (infra-intestinal ganglion) दाहिनी ओर के प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका समूह से समेकित हो जाती है।	10. अधांत्र गुच्छिका अनुपस्थित होती है।

संयोजिनियाँ (Commissures)

पाइला (*Pila*)	यूनिओ (*Unio*)
11. दोनों सेरीब्रल गुच्छिकाएँ सेरिब्रल संयोजिनी तथा लेबियल संयोजिनी द्वारा एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं।	11. केवल सेरीब्रल संयोजिनियाँ ही दोनों सेरीब्रो-गुच्छिकाओं को जोड़ती हैं।
12. दोनों बक्कल गुच्छिकाएँ बक्कल संयोजिनी (buccal commissure) द्वारा सम्बन्धित रहती हैं।	12. बक्कल संयोजिनी अनुपस्थित होती है।
13. पीडल संयोजिनी दोनों ओर की पाद गुच्छिकाओं को जोड़ती है।	13. दोनों पीडल गुच्छिकाएँ इतनी समीप स्थित होती है कि पीडल संयोजिनी का पूर्ण अभाव होता है।

पाइला (*Pila*)	यूनिओ (*Unio*)
संयोजिनियाँ (Connectives)	
14. सेरीब्रल तथा कपोल गुच्छिकाएँ सेरीब्रो-बक्कल संयोजिनी द्वारा जुड़ी रहती हैं।	14. सेरीब्रो-बक्कल संयोजिनी अनुपस्थित होती है।
15. पाइला में सेरीब्रो-प्लूरल तथा सेरीब्रो-पीडल संयोजिनियाँ भी पायी जाती हैं।	15. सेरीब्रो-प्लूरो संयोजिनी अनुपस्थित होती है परन्तु सेरीब्रो-प्लूरो-पीडल संयोजिनी सेरीब्रो-प्लूरल तथा पीडल गुच्छिकाओं को जोड़ती है।
16. अवांत्र तन्त्रिका दोनों प्लूरल गुच्छिकाओं को जोड़ती है।	16. अवांत्र तन्त्रिका नहीं पायी जाती।
17. ऊर्ध्व आंत्र तन्त्रिका ऊर्ध्व आंत्र गुच्छिका को दाहिनी प्लूरो-पीडल गुच्छिका से जोड़ती है।	17. अनुपस्थित होती है।
18. ऊर्ध्व आंत्र विसरल संयोजिनी तथा अवांत्र विसरल संयोजिनी पायी जाती हैं जो क्रमशः ऊर्ध्व आंत्र गुच्छिका तथा दाहिनी प्ल्यूरो-पीडल गुच्छिका को विसरल गुच्छिका से जोड़ती हैं।	18. यूनिओ में इन तन्त्रिकाओं का अभाव होता है किन्तु सेरीब्रो-विसरल तन्त्रिका सेरीब्रल तथा विसरल गुच्छिकाओं को जोड़ती है।
19. स्वायत्त तन्त्रिका-तन्त्र (autonomous nervous system) नहीं पाया जाता।	19. थॉमस (Thomas) ने इसमें स्वायत्त तन्त्रिका-तन्त्र का वर्णन किया है।

प्रश्न 106. पाइला के संवेदी अंगों का वर्णन करिये।
Give an account of organs of sense in Pila.

पाइला के संवेदी अंग निम्न प्रकार से हैं :—

1. **एक ऑस्फ्रेडियम**
2. **एक जोड़ी नेत्र**
3. **स्टेटोसिस्ट**
4. **स्पर्शक**

1. ऑस्फ्रेडियम (Osphradium)

ऑस्फ्रेडियम पाइला में पाया जाने वाला संवेदी अंग है जो मेण्टल की छत पर बाँयी ओर स्थित होता है। यह बाँये स्यूडोप्रिपोडियम के समीप अभिवाही नाल में लटका रहता है। यह लगभग अण्डाकार होता है तथा इसका अन्दर वाला या दाँया सिरा गोलाकार होता है किन्तु बाँया नुकीला होता है। इसके मध्य में एक अक्ष (central axis) होता है जिस पर 22–28 तक मोटी, माँसीली, पत्तियों के समान रचनाएं दो पंक्तियों में लगी रहती हैं। ये पत्तियाँ अक्ष के मध्य में सबसे बड़ी होती हैं। प्रत्येक पत्ती लगभग त्रिकोणाकार होती है जो अपने आधार भाग द्वारा मेण्टल से जुड़ी रहती है एवम् अन्दर के नुकीले भाग द्वारा अक्ष से जुड़ी रहती है। बाँये प्ल्यूरल गैंगलिया से एक तन्त्रिका निकलकर ऑस्फ्रेडियम को जाती है।

ऑस्फ्रेडियम में सबसे बाहर एपिथीलियम का स्तर होता है जिसके नीचे आधारकला होती है तथा शेष अन्दर का भाग संयोजी ऊतक, तन्त्रिका तन्तु एवम् रक्त से भरे स्थानों पर भरा रहता है। एपिथीलियम कोशिकाएँ संवेदी, पक्ष्माभिकी तथा ग्रन्थिल प्रकार की होती हैं।
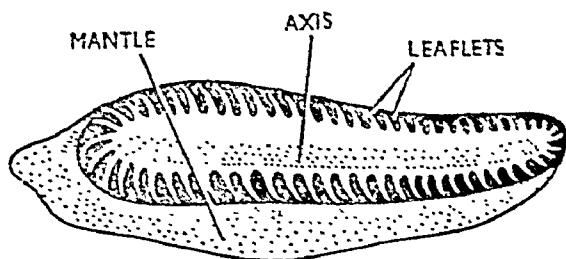
चित्र १४·१७. ऑस्फ्रेडियम की अनुप्रस्थ काट

ऑस्फ्रेडियम मेण्टल गुहा के अन्दर आने वाली जलधारा के मार्ग में लटका रहता है तथा उसकी शुद्धता की परीक्षा करता है। अतः यह घ्राणेन्द्रियों के समान कार्य करता है। यह पानी के रासायनिक तथा भौतिक स्वभाव की परीक्षा करता है। अगर पानी गन्दा होता है तो बाँये न्यूकल लोब को बन्द करके पानी को मेण्टल गुहा के अन्दर आने से रोक दिया जाता है। यह भोजन पदार्थों की भी छँटनी करता है।

2. नेत्र (Eyes)

पाइला में दूसरी जोड़ी के स्पर्शकों के आगे सिर के इधर-उधर एक जोड़ी सरल नेत्र होते हैं। ये काले, छोटे तथा सवृन्त होते हैं। नेत्र के वृन्त को **ओम्मेटोफोर** (ommatophore) भी कहते हैं। ऊर्ध्व काट में नेत्र नाशपाती के समान प्यालेनुमा दृष्टिगत होता है जो एक्टोडर्म के अन्तर्वेशन के फलस्वरूप बनता है। इसके चारों ओर संयोजी ऊतक का सुदृढ़ आवरण होता है। वेसीकल की गुहा में पारभासी रचना होती है जिसे लेन्स (lens) कहते हैं। वेसीकल की दीवार एपीथिलियम के एक स्तर की बनी होती है। यह पीछे की ओर रूपान्तरित होकर एक संवेदी तथा रंजित रेटिना (retina) बनाता है। रेटिना में दो प्रकार की कोशिकाएं होती हैं :—
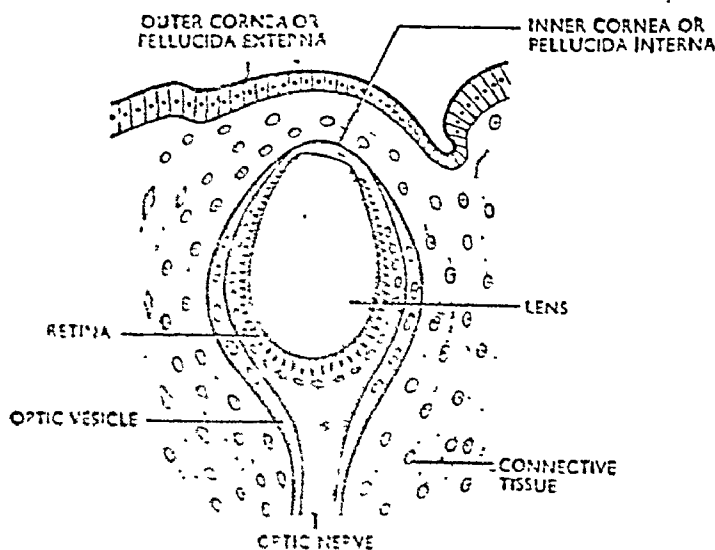
चित्र १४·१८. पाइला के नेत्र की खड़ी काट (V.S. Eye of *Pila*)

1. चौड़ी विजुअल कोशिकाएँ (visual cells) जिनके बाहरी सिरों पर रोम के समान प्रवर्धों के गुच्छे होते हैं।

2. सँकरी आलम्बक कोशिकाएँ (supporting cells) जो विजुअल कोशिकाओं के बीच बिखरी रहती हैं।

वेसीकल के अग्रभाग की एपिथीलियम पारदर्शी होती है और आन्तर कॉर्निया (inner cornea) या पेलुसिडा इन्टर्ना (pellucida interna) बनाती है। शरीर की सतह पर उपस्थित एपिथीलियम का वह भाग, जो नेत्र पर उपस्थित होता है, भी पारदर्शी होता है तथा बाह्य कॉर्निया बनाता है। दोनों स्तरों की कोशिकाएँ आयताकार तथा असंवेदी होती है तथा इनका कोशिकाद्रव्य समांग होता है।

यद्यपि पाइला के नेत्र की रचना जटिल प्रकार की होती है किन्तु यह केवल प्रकाश की तीव्रता मे ही विभेदीकरण कर सकता है तथा विभिन्न वस्तुओं मे विभेद करने में असमर्थ होता है। यह तेजी से गति करने वाले जन्तुओं को देख सकता है। पाइला के नेत्र मन्द प्रकाश मे कार्य करने के अनुकूल होते हैं।

3. स्टेटोसिस्ट (Statocysts)

पाइला मे एक जोड़ी नागपाती के समान व क्रीम-रंग के स्टेटोसिस्ट होते है जो पीडल गैंगलिओन के पीछे व बाहर की ओर पाद के दोनों ओर पार्श्व मे एक अवनमन मे स्थित होते है। प्रत्येक स्टेटोसिस्ट सयोजी ऊतक द्वारा अपनी ओर के पीडल गैंगलिओन से जुडा रहता है। स्टेटोसिस्ट एक खोखला कोप है जिसके चारों ओर सयोजी ऊतक का मोटा व चर्मवत् आच्छद होता हैं। कोप/कैप्सूल की भित्ति एक स्तर मोटी एपिथीलियम की बनी होती है और अपनी ओर के सेरिब्रल गैंगलिओन की तन्त्रिका द्वारा सभरणित रहती है। कोप की गुहा मे एक द्रव तथा स्टेटोकोनिया (statoconia) नामक अनेक कैल्केरिअस कण भरे रहते हैं। स्टेटोसिस्ट पाइला के संतुलन अग है।
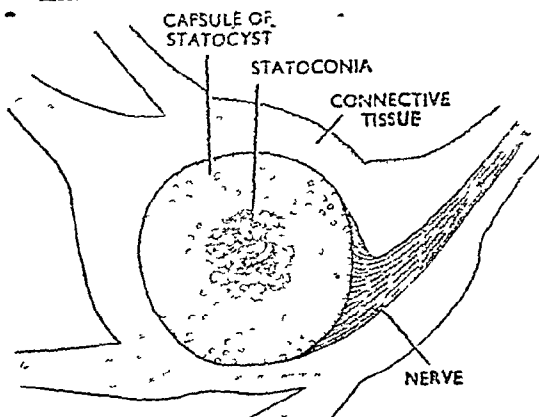
चित्र १४ १९. पाइला : स्टेटोसिस्ट
(*Pila* : Statocyst)

4. स्पर्शक (Tentacles)

पाइला में दो जोड़ी स्पर्शक होते है जो स्पर्श संवेदी होते है। रसायनग्राही होने के कारण ये सभवत: रस संवेदी भी होते है।

प्रश्न 107. पॉंड स्नेल (pond snail) एवम् अलवण जल शम्बुक (fresh water mussel) के तन्त्रिका तन्त्रों का तुलनात्मक विवरण दीजिये।

Give a comparative account of the nervous system of fresh water mussel and pond snail. (*Lucknow 1964 ; Punjab 67 ; Jiwaji 70*)

कृपया प्रश्न 105 देखिये।

प्रश्न 108. पाइला के जनन तन्त्र का वर्णन कीजिये।

Give an account of the reproductive system in *Pila*.
(*Agra 1956, 60, 62 ; Vikram 62, 65, 69, 72 ; Gorakhpur 63 ; Punjab 66 ; Kanpur 71 ; Indore 72*)

पाइला के जनन-तन्त्र का वर्णन कीजिये। मैथुन कैसे तथा कहाँ होता है ?

Give an account of reproductive system of *Pila*. How and where does the copulation take place ? (*Kanpur 1968*)

पाइला मे नर तथा मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं तथा नर व मादा जन्तुओं में निम्न अन्तर होते है :—

(*i*) नर पाइला का खोल मादा के खोल की अपेक्षा छोटा होता है।

(*ii*) नर में मैथुन-अंग अथवा शिश्न (penis) पूर्ण विकसित होता है किन्तु मादा मे यह कम विकसित रूप मे पाया जाता है।

नर जनन अंग

1. एक वृषण (Testis)
2. वासा-इफेरेन्शिया (Vasa-efferentia)
3. एक शुक्रवाहिनी (Vas-deferens)
4. शुक्राशय (Seminal vesicle)
5. शिश्नक (Penis)
6. अवःक्लोम ग्रन्थि (Hypobranchial gland)

1. वृषण (Testis)—पाइला में केवल एक वृषण पाया जाता है जो पाचन-ग्रन्थि के ऊपरी भाग से जुड़ा रहता है तथा खोल के दूसरे तथा तीसरे चक्रों में स्थित होता है। यह एक छोटी, चपटी व पट्टी के आकार की रचना है जो हल्के रंग की तथा लगभग त्रिकोणाकार होती है। इसके ऊपर एक त्वचीय आवरण होता है। वृषण की जनन एपिथीलियम (germinal epithelium) से दो प्रकार के शुक्राणु बनते हैं—

(*i*) यूपाइरीन (Eupyrene)—ये शुक्राणु छोटे तथा धागे के समान होते हैं। इनका शरीर सिर एवम् पूँछ का बना होता है। ये गतिशील होते हैं और अण्डों को निषेचित करते हैं।

(*ii*) ऑलिगोपाइरीन (Oligopyrene)—ये बड़े, अर्धचन्द्राकार या तर्कुआकार होते हैं। इनमें सिर भाग नहीं होता तथा पूँछ के स्थान पर 4 या 5 पक्ष्म (cilia) होते हैं। ये अचल होते हैं और अण्डे का निषेचन नहीं कर सकते।

2. वासा इफेरेन्शिया (Vasa-efferentia)—वृषण के विभिन्न भागों से अत्यन्त महीन वाहिनियाँ निकलती हैं। ये वासा इफेरेन्शिया कहलाती है। समस्त वासा इफेरेन्शिया मिलकर शुक्रवाहिनी बनाती हैं।

3. शुक्रवाहिनी—यह वृषण के पिछले सिरे से निकलती है तथा त्वचा के नीचे स्थित होती है। शुक्रवाहिनी को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(*i*) समीपस्थ नालाकार भाग (Proximal tubular part)—यह शुक्रवाहिनी का अग्रिम पतला-नालाकार भाग है जो वृषण के पिछले सिरे से निकलता है तथा पाचन-ग्रन्थि के भीतर वाले किनारे के साथ पश्च वृक्क-कक्ष तक फैला रहता है। अब यह बायी ओर घूमकर पेरिकार्डियम तक पहुँच जाता है। यहाँ यह शुक्रवाहिनी के ग्रन्थिल भाग में खुलता है।

(*ii*) **अन्तिम ग्रन्थिल भाग** (Terminal glandular part)—यह शुक्रवाहिनी का दूरस्थ भाग है जो मोटी ग्रन्थिमय भित्ति का बना होता है। यह रेक्टम के बाँयी ओर स्थित होता है तथा नर जनन-छिद्र द्वारा ब्रैंकियल कक्ष में खुलता है। नर जनन-छिद्र गुदाद्वार के समीप पंजे के आकार के उभार पर स्थित होता है। यह उभार **जनन-अंकुर** (genital papilla) कहलाता है।

4. शुक्राशय (Seminal vasicle)—यह पेरिकार्डियम के दाहिनी ओर अग्रिम तथा पश्च वृक्क कक्ष के जोड़ पर स्थित होता है। यह फूला हुआ व फ्लास्क के आकार का कोष है जो शुक्रवाहिनी से निकलता है। इसका दूरस्थ सिरा बन्द होता है और यह शुक्राणुओं को संचित रखता है। शुक्राशय शुक्रवाहिनी के नालाकार तथा ग्रन्थिल भागों के जोड़ पर शुक्रवाहिनी मे खुलता है।
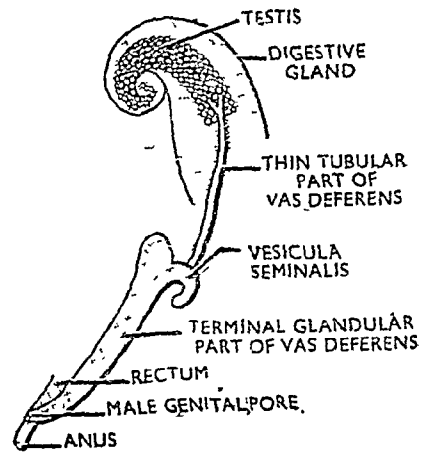
चित्र १४·२०. पाइला के नर जनन अंग (Male reproductive organs of *Pila*)

5. मैथुन अंग या शिश्न (Copulatory organ or penis)—यह गुदाद्वार के सम्मुख मेण्टल के बाँये किनारे से लगा रहता है। यह लम्बा, मजबूत तथा थोड़ा सा मुड़ा हुआ होता है। इसका आधार भाग चौड़ा तथा फूला हुआ होता है तथा दूरस्थ स्वतन्त्र सिरा पतला होता है। इसके अधर तल पर एक छिछली खाई (shallow groove) होती है जो कशाभों (flagella) से रहती है।
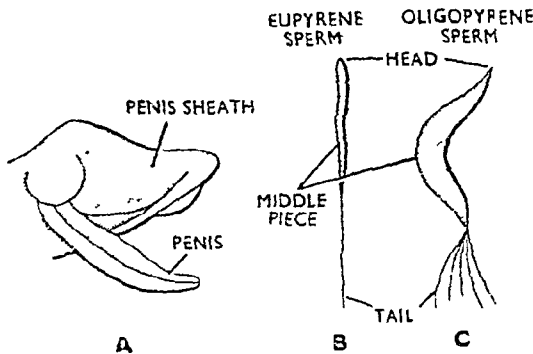
चित्र १४·२१. पाइला : A. नर मैथुन अंग B. शुक्राणु *Pila* : A. Male copulatory organ ; B. Sperms)

शिश्न थैलेनुमा (spout-like) शिश्नछद (penis-sheath) में बन्द रहता है जो कुछ पीले-से रंग का होता है। यह मेण्टल के दाहिनी ओर से मोटे ग्रन्थिल वलन (flap) के रूप में बनता है।

6. **अधःक्लोम ग्रन्थि** (Hypobranchial gland)—यह शिश्नछद के आधार पर पायी जाने वाली मोटी ग्रन्थिल रचना है जिसकी सतह वलित (folded) होती है। इससे अधःक्लोम रस बनता है जो जनन में सहायता पहुँचाता है।

पाइला में दो प्रकार के शुक्राणु या स्पर्मेटोजोआ होते हैं—बाल के समान या **यूपिरीन** (eupyrene) तथा सुस्पष्ट सिर व पुच्छ बनाते हुए 4–5 पक्ष्म वाले **ओलिगोपिरीन** (oligopyrene)। केवल यूपिरीन शुक्राणु अण्डाणु को निषेचित करने में

समर्थ होते हैं जबकि ओलिगोपिरीन शुक्राणु अचल व अण्डाणु के निषेचन में असमर्थ होते हैं।

मादा जनन अंग

1. अण्डाशय (ovary)
2. अण्डवाहिनी (oviduct)
3. गर्भाशय (uterus)
4. योनि (vagina)
5. शुक्राशय (seminal receptacle or receptaculum seminis)
6. मैथुन अंग (copulatory organs)
7. अधःक्लोम ग्रन्थि (hypobranchial gland)

1. अण्डाशय (Ovary)—मादा में अण्डाशय का वही स्थान होता है जो नर में वृषण का। यह खोल के प्रथम दो या तीन चक्रों में पाया जाता है। यह नारंगी रंग की शाखान्वित रचना है जो पाचन-ग्रन्थि की भीतरी सतह पर चिपकी रहती है। अण्डाशय की शाखाएँ बन्द फ्लास्क के आकार की रचनाएँ हैं और एसिनी (acini) कहलाती हैं। ये जनन अधिच्छद (germinal epithelium) के स्तर द्वारा आस्तारित रहती हैं। सभी एसिनी अण्डवाहिनी में खुलती हैं।

चित्र १४·२२. पाइला के मादा जनन अंग (Female reproductive organs of *Pila*)
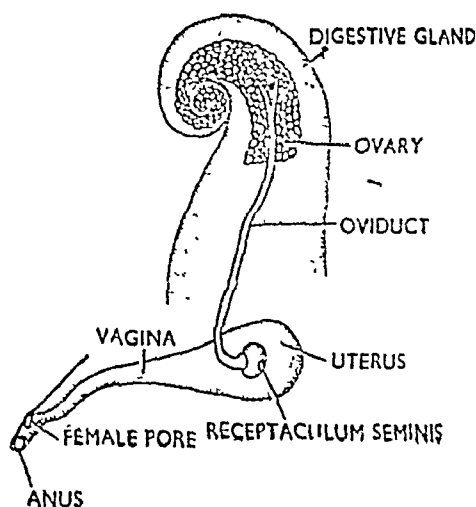
2. अण्डवाहिनी (Oviduct)—यह अर्धपारदर्शी सँकरी नलिका है जो अण्डाशय के मध्य से चलकर पाचन-ग्रन्थि के साथ नीचे की ओर बढ़ती है। अन्त में यह ऊपर की ओर चलकर शुक्राशय (receptaculum seminis) में खुलती है।

3. शुक्राशय (Receptaculum seminis)—यह सेम के बीज के आकार की रचना है जो अण्डवाहिनी तथा गर्भाशय के मिलने के स्थान पर पायी जाती है। यह परच वृक्क-कक्ष में बन्द रहती है। मैथुन से प्राप्त हुए शुक्राणु इसमें संचित रहते हैं।

4. गर्भाशय—गर्भाशय नाशपाती के आकार की थैली के समान रचना है जो आंत्र के नीचे खोल के शरीर-चक्र (body whorl) में स्थित होती है। इसका आधार भाग चौड़ी गोल पुटिका (vesicle) के समान होता है तथा दूरस्थ या सिर भाग एक पतली नली के आकार का होता है। आधार भाग मे शुक्राशय खुलता है तथा सिर भाग योनि में खुलता है।

5. योनि—अण्डवाहिनी का सँकरा सिर भाग योनि कहलाता है। यह सफेद-से रंग की होती है और मलाशय की दाहिनी ओर पायी जाती है। यह मादा जनन-छिद्र द्वारा मैंकियल कक्ष में गुदाद्वार के पीछे खुलती है।

6. मैथुन अंग—मादा में मैथुन अंग या शिश्न अवशेष के रूप में पाया जाता है। यह छोटी, पतली तथा एक-सी मोटाई की कशाभीय (flagellar) रचना है। यह शिश्नछद से ढका रहता है।

7. अधःक्लोम ग्रन्थि—यह भी नर की अधःक्लोम ग्रन्थि का अवशेष प्रदर्शित करती है तथा अविकसित ग्रन्थिमय उभार के रूप में पायी जाती है।
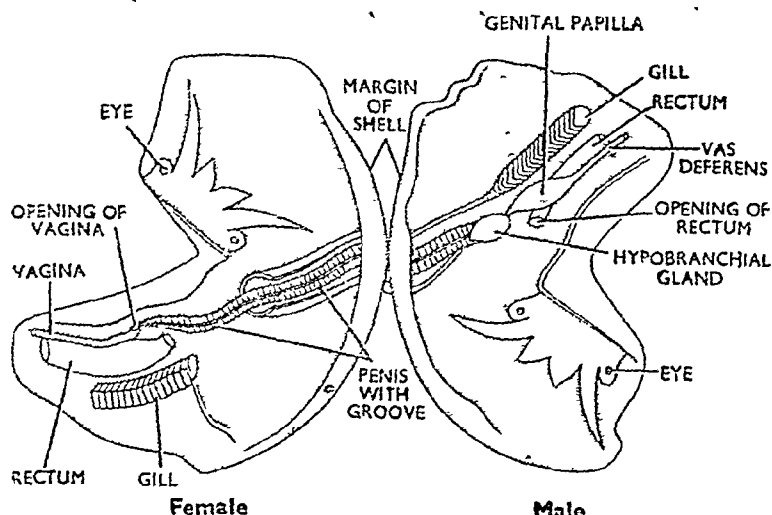
चित्र १४·२३. पाइला में मैथुन (*Pila* showing copulation)

मैथुन (Copulation)

पाइला वर्षा ऋतु में जल में या नम भूमि पर जनन करता है। मैथुन के समय नर एवम् मादा *पाइला* एक-दूसरे के आमने-सामने आ जाते हैं। नर का शिश्न अपने आधार पर शुक्र वाहिनी (vas deferens) के अग्रिम सिरे पर स्थित जनन पैपिली (genital papillae) से सम्बन्धित हो जाता है। अब शिश्न व इसका आच्छद मादा की प्रवार गुहा में अन्तरित हो जाते हैं। शिश्न का सिरा मादा के जनन छिद्र में प्रवेश करता है और शुक्राणु योनि में से स्थानान्तरित होकर मादा की शुक्रग्राहिका (receptaculum seminis) में पहुँच जाते हैं।

चित्र १४·२४. पाइला अण्डे देते हुआ (*Pila* laying eggs)

निषेचन एवम् अण्डरोपण (Fertilization and Oviposition)

निषेचन आन्तरिक होता है अर्थात् अण्डे गर्भाशय में निषेचित होते हैं। निषेचित अण्डे 200–500 के समूहों में ताल या झील के किनारे की गीली मिट्टी में गड्ढे में दिये जाते हैं।

अध्याय 15

यूनिश्रो
(Unio)

फाइलम	—	मोलस्का (*Mollusca*)
क्लास	—	पेलीसिपोडा (*Pelecypoda*)
आॅर्डर	—	यूलैमेलिब्रैंकिएटा (*Eulamellibranchiata*)
जीनस	—	लैमेलीडेन्स (*Lamellidens*) या यूनिओ (*Unio*)

प्रश्न 109. यूनिश्रो के खोल की सूक्ष्मदर्शी रचना का वर्णन कीजिये तथा वताइये कि यह किस प्रकार बनता है।

Describe the microscopic structure of shell in Unio and how it is formed. (*Agra 1959 ; Jiwaji 70*)

यूनिश्रो के कवच की सूक्ष्मदर्शी रचना
(Microscopic Structure of Shell of Unio)

यूनिश्रो का खोल समान श्राकार के दो पार्श्व कपाटों (lateral valves) का वना होता है जो पृष्ठतल पर मध्यरेखा पर एक मजवूत किन्तु लचीले स्नायु (ligament) द्वारा जुड़े रहते हैं। इसकी वाहरी सतह पर वहुत-सी वृद्धि रेखाएँ (lines of growth) पायी जाती हैं। ये रेखाएँ एक उभरे हुए स्थान अम्बो (umbo) के चारों श्रोर एक-दूसरे के समान्तर स्थित होती हैं। खोल हरे-से भूरे (greenish brown) रंग का होता है। सूक्ष्मदर्शी के नीचे इसके अनुप्रस्थ काट में तीन स्तर दृष्टिगत होते हैं :—

(1) पेरिश्रोस्ट्रेकम (Periostracum)

(2) प्रिज्मीय स्तर (Prismatic layer) तथा

(3) मुक्तास्तर (Nacreous layer or pearly layer)
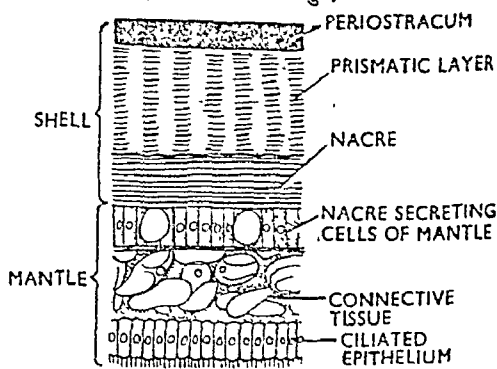
चित्र १५·१. यूनिओ के खोल की अनुप्रस्थ काट (T.S. shell of *Unio*)

1. पेरिश्रोस्ट्रेकम (Periostracum)—यह खोल की सवसे वाहर की पतली पारभासी (translucent) तथा हरे-भूरे रंग की पर्त है जो विशेष प्रकार के काइटिनस पदार्थ की वनी होती है। यह कोन्किश्रोलिन (conchiolin) कहलाती है। खोल इसी स्तर के रंगीन होने के कारण रंगीन होता है। यह मैण्टल (mantle) के वाहरी किनारे के रिसने से वनती है। यह भीतर के समपार्श्विक स्तर पर रक्षात्मक श्रावरण वनाती है। इसकी अनुपस्थिति में प्रिज्मीय स्तर का कैल्शियम

पानी के कार्बोनिक अम्ल के प्रभाव से घुलकर नष्ट हो जाता है। खोल के पुराने भागों से पेरिओस्ट्रेकम स्तर भी नष्ट हो जाता है। फलस्वरूप नीचे का सफेद प्रिज्मीय स्तर दिखायी देने लगता है। यह अम्बो (umbo) कहलाता है।

2. प्रिज्मीय स्तर (Prismatic layer)—यह खोल का मध्य स्तर है जो $CaCO_3$ के छोटे-छोटे रवों (crystals) या प्रिज्म (prisms) का बना होता है जो लम्बवत् स्तम्भों (longitudinal columns) में विन्यसित रहते हैं। ये स्तम्भ conchiolin के पतले स्तरों से अलग रहते हैं। यह स्तर भी मैण्टल (mantle) के किनारे से रिसने पर बनता है।

3. मुक्तास्तर (Nacreous layer or pearly layer)—यह खोल का भीतर का स्तर है जो **मुक्ता** (nacre) अथवा 'mother of pearl' भी कहलाता है। यह चिकना तथा रंगदीप्त (irridescent) होता है तथा मैण्टल की समस्त बाहरी सतह के रिसने पर बनता है। इसमें $CaCO_3$ तथा शुक्तिज स्तर एक के पश्चात् एक लगे रहते हैं। ये खोल की सतह के समान्तर स्थित होते हैं।

खोल का संगठन (Composition of Shell)

खोल का अधिकांश भाग शुद्ध चूने ($CaCO_3$) का बना होता है जिसमें कुछ कैल्शियम फॉस्फेट (calcium phosphate) तथा कार्बनिक पदार्थ होते हैं। यह कार्बनिक पदार्थ काइटिन के समान होता है और conchiolin कहलाता है। कैल्शियम कार्बोनेट लगभग 89 से 99% तक होता है तथा केवल 1 से 10% तक कोन्किओलिन होता है। कोन्किओलिन एक प्रकार की झिल्ली के समान ढाँचा (framework) बनाता है।

खोल का निर्माण (Formation of Shell)

खोल के निर्माण के सम्बन्ध में दो मुख्य दृष्टिकोण माने जाते हैं :—

1. Bowerbank and Carpenter's view—इस दृष्टिकोण के अनुसार खोल एक कार्बनिक रचना है जिसकी वृद्धि दाँतों तथा अस्थियों के समान ही कैल्शियम पदार्थ के जमा होने से होती है।

2. Reaumur-Eisig view—आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार खोल एक प्रकार का उत्सर्जी पदार्थ है जो अन्य जन्तुओं की क्यूटिकल के अनुरूप ही त्वचा के बाहर जमा हो जाता है ; अतः कैल्शियम अणु एक प्रकार के animal glue द्वारा एक साथ जुड़े रहते हैं।

खोल मैण्टल के किनारे द्वारा जमा किये हुए पदार्थों से बनता है। पाद भी इस कार्य में सहायता करता है। परन्तु मैण्टल के प्रत्येक भाग में खोल बनाने की कोशिकाएँ होती हैं। रक्त में घुला हुआ कैल्शियम कार्बोनेट मैण्टल की इन कोशिकाओं द्वारा अलग कर दिया जाता है तथा खोल के रूप में जमा कर दिया जाता है। अम्बो वाला भाग सबसे पहिले बनता है तथा शेष स्तर एक-केन्द्रीय वलयों के रूप में बनते जाते हैं। पदार्थों का निक्षेपण एक बार तीव्रता से तथा दूसरी बार धीरे-धीरे होता है।

प्रश्न 110. अलवण जल शम्बुक के खोल की सूक्ष्मदर्शी रचना का वर्णन कीजिये। इनमें मोती का निर्माण किस प्रकार होता है ?

Give an account of the microscopic structure of shell of fresh water mussel. How is the pearl formed ? *(Agra 1969)*

खोल की सूक्ष्मदर्शी रचना
(Microscopic Sructure of Shell)

कृपया प्रश्न 109 देखिये।

मोती का निर्माण
(Pearl Formation)

खोल तथा मेण्टल के बीच प्रवेश करने वाली किसी बाह्य काय, जो एक प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करती हो, के चारों ओर मेण्टल एपिथीलियम के स्राव से निक्षेपित रचना को **मोती** कहते है। मोती का निर्माण केवल द्विकपाटीय मौलस्क में ही होता है। पर्ल ऑयस्टर (Pearl Oysters) में निर्मित होने वाले मोती आकार में बड़े, चमकीले तथा बहुमूल्य होते है।
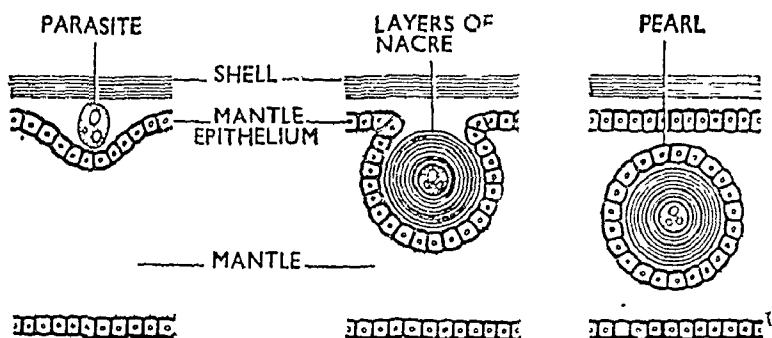
चित्र १५·२. मोती का निर्माण (Formation of pearl)

जब रेत का कण, सूक्ष्म जीव, लारवा या परजीवी, आदि कोई सूक्ष्म जीव अचानक खोल तथा मेण्टल के बीच प्रवेश कर जाता है तो यह एक प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करता है जिसके फलस्वरूप मेण्टल की कोशिकाएँ इसे चारों ओर से घेर लेती है और चिटुक कर एक कोप के रूप मे मेण्टल से अलग हो जाती है। इस कोष की एपिथीलियम कोशिकाएँ एक प्रकार का नेक्रियस पदार्थ स्रावित करती है जो बाह्य रचना के चारों ओर एकत्रित होकर मोती बनाता है। मोती के अन्दर स्थित बाह्य रचना न्यूक्लिअस (nucleus) तथा इसके चारों ओर नेक्रे के संकेन्द्रीय स्तर मोती के जनित्र कहलाते है।

प्रश्न 111. लेमीलीडेन्स (Lamellidens) के पाचन अंगों एवम् पोषण विधि का वर्णन कीजिये।

Describe the digestive organs and mode of feeding in *Lamellidens.* (*Jiwaji 1967 ; Lucknow 68 ; Raj, 69 ; Meerut 71 ; Indore 72*)

लेमेलीडेन्स (*Lamellidens*) का पाचन तन्त्र निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. आहार नाल
2. सम्बन्धित पाचक ग्रन्थियाँ

आहार नाल (Alimentary Canal)

आहार नाल एक लम्बी कुण्डलित नलिका है जो शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती है और निम्न भागों में भिन्नित होती है :—

1. मुख तथा मुखगुहा—मुख एक अनुप्रस्थ झिर्री के रूप में शरीर के अगले सिरे पर **अग्र अभिवर्तनी पेशी** (anterior adductor muscle) के नीचे
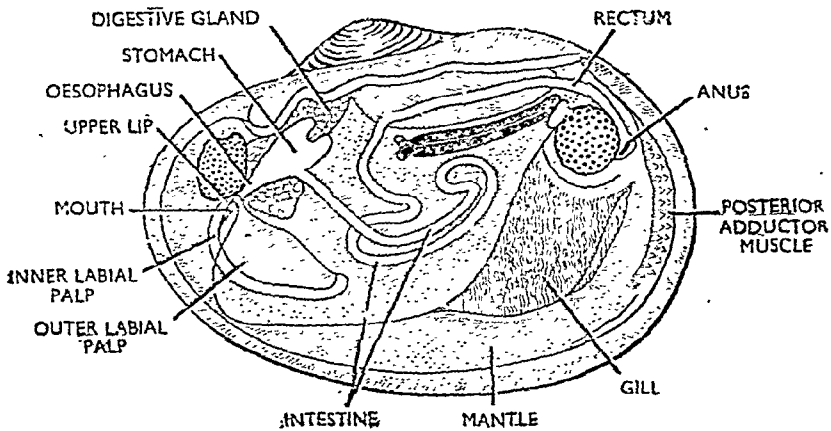
चित्र १५·३. यूनिओ की आहार नाल (Alimentary canal of *Unio*)।

स्थित होता है। मुख के दोनों ओर तिकोने पक्ष्मयुक्त वलनों के समान **लेबियल पाल्प** (labial palps) के दो जोड़े होते हैं। अग्रिम या बाहरी जोड़े के लेबियल पाल्प मुख के आगे एक-दूसरे से जुड़कर **ऊपरी होंठ** बनाते हैं। इसी प्रकार पिछले या आन्तरिक जोड़े के लेबियल पाल्प मुख के पीछे मिलकर **निचला होंठ** बनाते हैं। एक ओर के दोनों लेबियल पाल्पों के बीच **पक्ष्मयुक्त झिर्री** (ciliated groove) स्थित होती है जो मुख में खुलती है। मुख ग्रासनली में खुलता है।

2. ग्रासनली—ग्रासनली छोटी किन्तु चौड़ी पक्ष्मयुक्त नलिका है जो आमाशय में खुलती है। रेडूला तथा मुखीय पिण्डक (radula and buccal mass) अनुपस्थित होते हैं।

3. आमाशय—आमाशय चौड़ी किन्तु मोटी दीवार वाली गोल थैलेनुमा रचना है जो विसरल मास (visceral mass) के पृष्ठ भाग में स्थित होता है और एक जोड़ी पाचक ग्रन्थियों द्वारा घिरा रहता है।

4. क्रिस्टेलाइन स्टाइल (Crystalline style)—आमाशय से एक जोड़ी थैलेनुमा प्रवर्ध निकले रहते हैं जो पाइलोरिक सीका (pyloric caeca) कहलाते हैं। इनके अन्दर एक पारदर्शी तथा जिलटिन की बनी लचीली छड़ के समान रचना होती है। यह क्रिस्टेलाइन स्टाइल कहलाती है। इसका मैट्रिक्स (matrix) प्रोटीन का बना होता है जिसमें एमाइलेस (amylase) नामक एन्जाइम होता है। यह कार्बोहाइड्रेट को पचाता है। आमाशय की दीवार में उपस्थित पक्ष्मों की गति द्वारा क्रिस्टेलाइन स्टाइल घूमती है जिससे पाचक रस भोजन में अच्छी प्रकार मिल जाते हैं। क्रिस्टेलाइन स्टाइल आमाशय की कोशिकाओं द्वारा स्रावित की जाती है तथा स्टाइल कोष के अन्दर बन्द रहती है।

5. आंत्र—आंत्र एक लम्बी, सँकरी तथा कुण्डलित नलिका है जो विसरल मास में स्थित होती है। आंत्र के अगले भाग की दीवार पर्तों में उभरी रहती

है। उभार **आंत्रपुट** या **टिफ्लोसोल** (typhlosoles) कहलाते है। आंत्र मलाशय (rectum) में खुलती है।

6. मलाशय—मलाशय भी कम चौड़ी क्षैतिज नलिका है। यह शरीर के पृष्ठ भाग में पश्च सिरे तक फैली होती है। यह गुदाद्वार द्वारा हृदय के निलय भाग के अन्दर से होती हुई अपवाही नाल (exhalent siphon) में खुलती है। गुदाद्वार उभरे हुए स्थान पर स्थित होता है जो **गुद अंकुरक** (anal papilla) कहलाता है। मलाशय की अधर भित्ति में टिफ्लोसोल होता है जो अवशोषण की सतह को बढाता है।

पाचक ग्रन्थियाँ (Digestive Glands)

यूनिओ की पाचक ग्रन्थि हरे या गहरे भूरे रंग की ग्रन्थि है जो यकृत कहलाती है। यह शरीर के अग्र-पृष्ठ भाग में आमाशय को घेरे हुए स्थित होती है तथा बहुत-सी नलिकाओ द्वारा आमाशय में खुलती है तथा पाचक रस पहुँचाती है। इसके पाचक रस में उपस्थित विकर प्रोटीन, वसा तथा कार्वोहाइड्रेट का पाचन करते है। यकृत पाचक रस स्रावित करने के अतिरिक्त भोजन के अन्तर्ग्रहण (ingestion) तथा उसको छोटे-छोटे टुकड़ों मे बाँटने का कार्य भी करता है।

भोजन तथा उसका अन्तर्ग्रहण (Food and Its Ingestion)

यूनिओ **पक्ष्माभिकी पोषक** (ciliary feeder) है जो सूक्ष्म जीवों तथा कार्बनिक कचरे (organic debris) को खाता है। यह मेण्टल गुहा मे आने वाली जल की धारा के साथ आये हुए भोज्य पदार्थों को ग्रहण करता है। क्लोम तन्तुओ (gill-filaments) के पार्श्व पक्ष्मो की गति द्वारा मेण्टल गुहा मे जल का अनवरत प्रवाह बनाये रखा जाता है।

जल की धारा आवाही नाल मे पहुँचकर धीमी हो जाती है तथा ठोस भोजन के कण क्लोम की सतह पर जमा हो जाते है। यहाँ से ये मेंण्टल के किनारे पर ले जाये जाते है जहाँ से ये शरीर के बाहर निकाल दिये जाते है किन्तु भोजन के हल्के कण क्लोम द्वारा स्रावित श्लेष्म मे उलझ जाते है। लेबियम पाल्प के पक्ष्मो की गति द्वारा भोजनयुक्त श्लेष्म मुख की ओर खीच ली जाती है। भोजन के जो कण पचने योग्य नही होते श्लेष्म से अलग होकर मेण्टल की गुहा मे आ जाते हैं तथा पचने योग्य कण लेबियल पाल्पों के बीच स्थित पक्ष्माभिकी झिर्री मे से होते हुए मुख में पहुँच जाते है।

पाचन (Digestion)

यूनिओ मे **आन्तरकोशीय** (intracelluar) तथा **बाह्यकोशिकीय** (extra-cellular) दोनो प्रकार का पाचन होता है। यकृत द्वारा स्रावित पाचक विकर आमाशय मे एकत्रित होते है तथा वहाँ भोजन के बाह्यकोशिकीय पाचन की क्रिया पूर्ण करते है। क्रिस्टेलाइन स्टाइल भोजन को पीसती है तथा इसका पाचक रस जिसमे एमाइलेज विकर होता है कार्वोहाइड्रेट के पाचन को पूर्ण करता है।

आन्तरकोशीय पाचन आहार नाल के विभिन्न भागो मे उपस्थित **अमीबाभ ल्युकोसाइट** (amoeboid leucocytes) द्वारा होता है। ये कोशिकाएँ भोजन के कणो को पकड लेती है तथा उनको पचाकर पचे हुए भोजन को शरीर के विभिन्न भागो को पहुँचाती है। आन्त्र की दीवारो द्वारा भोजन का अवशोपण होता है तथा अपच पदार्थ विष्ठा के रूप मे मेण्टल गुहा मे जमा कर दिया जाता है जहाँ से यह

अपवाही नाल से होकर बाहर जाने वाली जल की धारा के साथ शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।

प्रश्न 112. यूनिओ के श्वसन-अंगों का वर्णन कीजिये।

Describe the respiratory organs of *Unio*. (*Banaras 1958, 59; Agra 60; Vikram 61, 67; Luck. 53, 69; Madras 68*)

लेमेलीडेन्स के श्वसन-अंगों का वर्णन कीजिये।

Describe the organs of respiration in *Lamellidens*. (*Vikram 1964*)

अलवण जल-शम्बुक के क्लोम की संरचना का स्पष्ट वर्णन कीजिये। क्लोम शरीर से किस प्रकार जुड़ा रहता है ?

Explain clearly the structure of the gill of a fresh water mussel. Describe the mode of attachment of gill. (*Gorakhpur 1968*)

अलवण जल-शम्बुक (fresh water mussel) में टेनिडियम की संरचना एवम् उनके शरीर से लगे रहने की विधि का वर्णन कीजिये। इनके क्या कार्य हैं ?

Describe the structure and mode of attachment of the ctenidia of a fresh water mussel you have studied. What functions do they perform ? (*Agra 1956, 65, 69, 72*)

अलवण जल-शम्बुक के क्लोम की संरचना का सविस्तार वर्णन कीजिये तथा इसके कार्य बताइये।

Explain fully the structure of the gill of fresh water mussel and mention its functions. (*Karnatak 1958; Agra 66, 71; Tribhuvan 68*)

अलवण जल-शम्बुक (यूनिओ) के श्वसन अंगों की संरचना का वर्णन कीजिये। श्वसन विधि का उल्लेख करिये तथा इसकी कार्यिकी का महत्त्व समझाइये।

Give a clear account of the structure of respiratory organs in fresh water mussel (*Unio*). Describe the mechanism of respiration and indicate its physiological importance to the animal. (*Agra 1956, 63; Tribhuvan 63, 66; Luck. 71; Jabalpur 70; Vikram 73; Indore 72*)

यूनिओ के श्वसन अंगों एवम् श्वसन विधि का वर्णन कीजिये।

Describe the mechanism of respiration and the respiratory organs of *Unio*. (*Vikram 1969; Jabalpur 60; Osmania 73*)

श्वसन अंग (Respiratory Organs)

यूनिओ के श्वसन अंग एक जोड़ी क्लोम (a pair of gills or ctenidia) तथा मेण्टल गुहा (mantle cavity) हैं।

1. क्लोम—ये चपटी तथा पट्टी के आकार की रचनाएँ हैं जो मेण्टल गुहा में पाद के दोनों ओर मेण्टल (mantle) तथा विसरल मास के बीच लटकी रहती हैं।

(*a*) संरचना (Structure)—प्रत्येक क्लोम 'W' के आकार का होता है जिसमें दो पतली पर्तें या स्तरिकाएँ या लैमिनी (laminae) होते हैं। प्रत्येक लैमिना या पटल खोखला तथा दो पर्तों का बना होता है। ये लैमेली (lamellae) कहलाती हैं। ये बाहरी तथा आन्तरिक ऊर्ध्व लैमेली हैं जो एक-दूसरे के समान्तर होती हैं। दोनों लैमेली अगले-पिछले तथा अधर किनारों पर जुड़ी रहती हैं किन्तु पृष्ठतल पर स्वतन्त्र होती हैं तथा सुप्राब्रैंकियल कक्ष (supra-bran-

chial chamber) में खुलती है। दोनों लैमेली बहुत-से longitudinal cross partitions द्वारा जुड़ी रहती हैं। ये **आन्तर-लैमिलर जोड़** (inter-lamellar junctions) कहलाते हैं। इनके द्वारा दोनों लैमेली के बीच का स्थान बहुत-सी ऊर्ध्व नलियों (vertical tubes) में बँट जाता है जो जल-नलिकाएँ (water tubes) कहलाती हैं। समस्त जल-नलिकाएँ अधर तल पर बन्द होती है तथा पृष्ठतल पर सुप्राब्रेंकियल कक्ष मे खुलती है। प्रत्येक क्लोम लैमेला (gill lamella) मे बहुत-सी ऊर्ध्व धारियाँ दिखायी देती है। समीपस्थ क्लोम तन्तु कुछ-कुछ दूरी पर छोटी क्षैतिज छड़ों द्वारा जुड़े रहते हैं। ये छड़ें interfilament junctions कहलाती हैं; अन्त लैमेला पर क्षैतिज धारियाँ (horizontal striations) भी दिखायी देती हैं। दोनो लैमेली के क्लोम-तन्तु पटल के अधर भाग में आपस में जुड़े रहते हैं; अतः अनुप्रस्थ काट में ये 'V' के आकार के दृष्टिगत होते हैं तथा क्लोम का आकार 'W' के समान हो जाता है। क्लोम लैमेला में विभिन्न स्थानों पर ऑस्टिया (ostia) नामक छिद्र भी पाये जाते हैं। इनके द्वारा जल की धारा आन्तर-लैमेलर स्थान (inter-lamellar space) में पहुँचती है अर्थात् मेण्टल गुहा
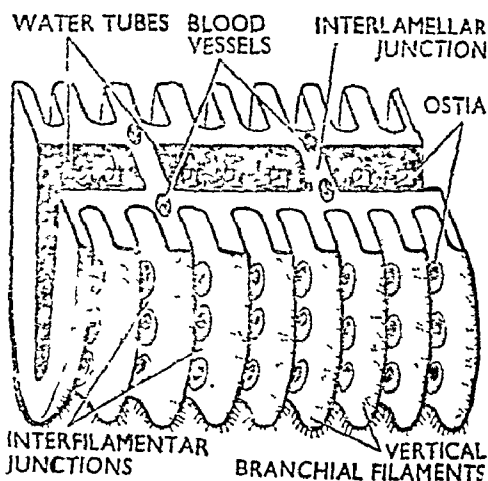
चित्र १५·४. क्लोम लैमिना का आवर्धित दृश्य (Enlarged view of gill lamina)
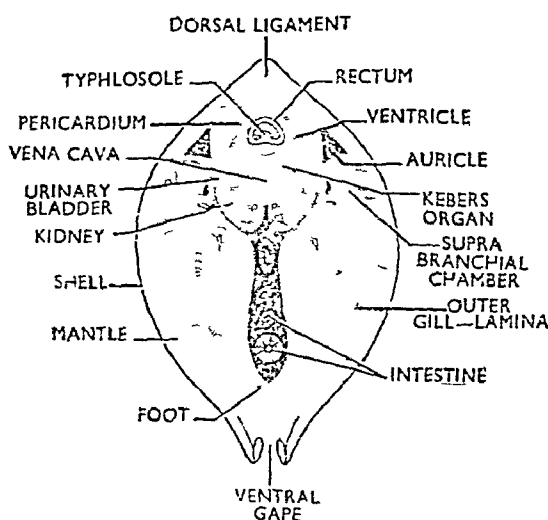
चित्र १५·५. क्लोमों की स्थिति दिखाने के लिए पाद के मध्य से होती हुई यूनिओ के शरीर की अनुप्रस्थ काट (T.S. *Unio* through middle of foot showing the position of gill)

(mantle cavity) इन जल गुहाओं से सम्बन्धित रहती है। प्रत्येक क्लोम-तन्तु (gill-filament) के केन्द्रीय भाग में काइटिन की बनी छड़ (chitinous rod) होती है जो पक्ष्माभिकी अविछद (ciliated epithelium) से घिरी रहती है।

(*b*) **क्लोमों का जुड़ना** (Attachment of gills)—बाह्य क्लोम लैमिना
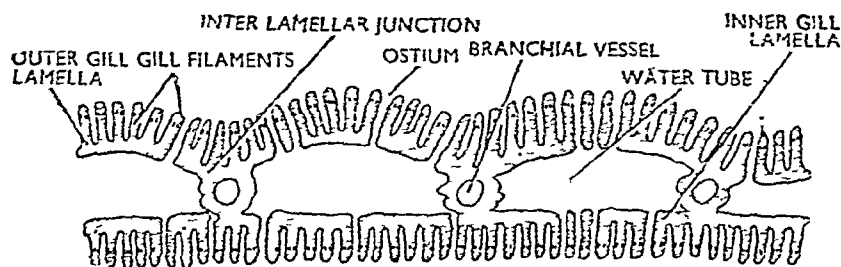
चित्र १५.६. यूनिओ के क्लोम के बाहरी पटल की अनुप्रस्थ काट
(T.S. External gill-lamella of *Unio*)

मेण्टल गुहा की पृष्ठ दीवार से जुड़ा रहता है तथा आन्तर-क्लोम लैमिना (inner gill lamina) आगे की ओर विसरल मास से तथा पीछे की ओर मध्य रेखा में दूसरी ओर के लैमिना से सम्बन्धित रहता है। क्लोमों के शरीर से जुड़ने की इस विधि के कारण एक क्षैतिज पर्दा-सा बन जाता है जो मेण्टल गुहा (mantle cavity) को दो
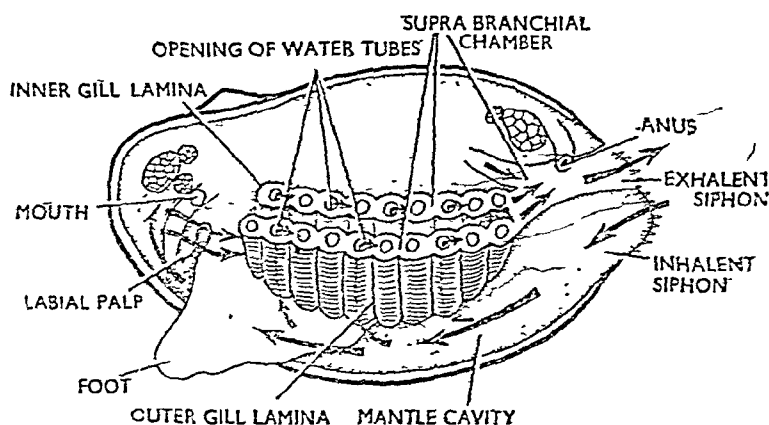
चित्र १५.७. यूनियो के शरीर मे जल की धारा का परिपथ
(Path of water current inside the body of *Unio*)

असमान भागों में बाँट देता है। ऊपर का छोटा कक्ष क्लोएकल कक्ष (cloacal chamber) तथा नीचे का या अधर बड़ा कक्ष सबब्रेंकियल कक्ष (sub-branchial or infra-branchial chamber) कहलाता है। ऊपर वाला कक्ष अपवाही साइफन (exhalent siphon) मे तथा नीचे वाला कक्ष अभिवाही साइफन (inhalent siphon) में खुलता है।

(*c*) **रक्त सम्भरण** (Blood supply)—अनाक्सीकृत रक्त वृक्कों में अभिवाही क्लोम वाहिनियों (afferent branchial vessels) द्वारा क्लोमों में पहुँचता है तथा

यहाँ से ऑक्सीकृत रक्त अपवाही क्लोम वाहिनियों (efferent branchial vessels) द्वारा हृदय को ले जाया जाता है।

जल की धारा का परिपथ (Course of water current)—क्लोम तन्तुओं की पक्ष्माभिकी कोशिकाओं में पक्ष्मों की गति द्वारा जल की धारा को जल-नलियों की ओर खींचा जाता है; अतः जल अपवाही नाल में से होता हुआ इन्फ्रा-

```
Supra-branchial ————————→ Cloacal chamber
chamber                        ↓
   ↑                     Exhalent siphon
   |                           ↓
Water tubes              Surrounding water
   ↑                           ↓
Ostia ←— Sub-branchial ←— Inhalent siphon
         or Infra-branchial
         chamber
```
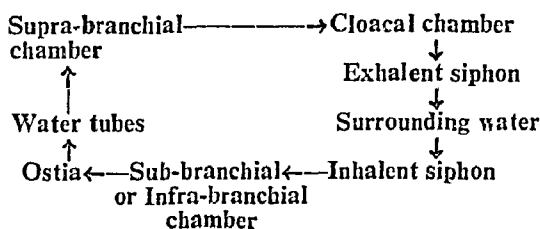
चित्र १५·८. जल की धारा का परिपथ

ब्रेकियल कक्ष में भर जाता है। यहाँ से ऑस्टिया द्वारा जल जल-नलिकाओं में पहुँचता है और सुप्रा-ब्रेकियल कक्षों में निकल आता है। सुप्रा-ब्रेकियल कक्ष क्लोम लैमिनी के ऊपर स्थित होते हैं और पीछे की ओर क्लोएकल कक्ष में खुलते हैं। अतः पानी क्लोएकल कक्ष में से होता हुआ अपवाही साइफन में से बाहर आ जाता है।

श्वसन की कार्यिकी (Physiology of respiration)—क्लोम में आने वाले जल में अधिक मात्रा में आक्सीजन घुली रहती है। क्लोम के भीतर यह जल जन्तु के रक्त से केवल क्लोम तन्तुओं की पतली दीवार द्वारा अलग रहता है; अतः विसरण द्वारा गैसों का आदान-प्रदान हो जाता है। पानी में घुली आक्सीजन रक्त में पहुँच जाती है तथा CO_2 रक्त में से बाहर पानी में आ जाती है। अतः शरीर से बाहर निकलने वाली जल की धारा अपने साथ CO_2 भी ले जाती है।

2. मेण्टल (Mantle)—मेण्टल-गुहा की भीतर की सतह पतली होती है। इस पर क्यूटिकल नहीं पायी जाती तथा मेण्टल अत्यन्त संवहनीय होता है। यह पानी के सीधे सम्पर्क में होता है; अतः यहाँ गैसों का आदान-प्रदान करता है।

प्रश्न 113. लैमेलीडेन्स तथा पाइला के श्वसन संस्थानों की तुलना कीजिये। भेदों के कारण दीजिये।

Compare the respiratory system of *Lamellidens* with that of *Pila*. Give reasons for the differences. *(Jiwaji 1971)*

कृपया प्रश्न 98 देखिये।

प्रश्न 114. यूनिओ के परिवहन तन्त्र का वर्णन कीजिये।

Give an account of the vascular system of *Unio*.
(Agra 1959, 64 ; Lucknow 57, 66, 70 ; Patna 69 ; Madras 68 ; Raj. 73)

किसी लैमेलीब्रैंक, जिसका कि तुमने अध्ययन किया हो, के हृदय एवम् परिवहन तन्त्र का वर्णन कीजिये।

Describe the heart and the circulatory system of a lamellibranch that you have studied. *(Jodhpur 1965 ; Punjab 68)*

यूनिओ का परिवहन तन्त्र खुला होता है तथा इसमें हृदय, पेरिकार्डियम, धमनियाँ, साइनस तथा शिराएँ आदि रचनाएँ होती है।

1. हृदय तथा पेरिकार्डियम (Heart and pericardium)—हृदय पश्च

एडक्टर पेशी (posterior adductor muscle) के आगे मध्य पृष्ठ रेखा में स्थित होता है तथा एक पतले तिकोने कक्ष में वन्द रहता है। यह **पेरिकार्डियम** कहलाता है। पेरिकार्डियम एपिथीलियम से आस्तरित होती है तथा इसकी गुहा ब्रकियल कक्ष से सम्वन्वित रहती हैं। इसमें सीलोमिक द्रव भरा रहता है।

हृदय अत्यन्त कुञ्चनशील नली के रूप में होता है जिसमें तीन वेश्म होते है—एक निलय तथा दो अलिन्द। **अलिन्द** प्रतिकर्षी (retractile), पतली तथा लचीली दीवारों के वने तिकोने वेश्म है जो निलय के दोनों ओर स्थित होते है। प्रत्येक अलिन्द अपने चौड़े आधार भाग द्वारा पेरिकार्डियम से जुड़ा रहता है तथा एक कपाटीय छिद्र द्वारा निलय में खुलता है। यह छिद्र अलिन्द-निलय छिद्र कहलाता है। **निलय** वड़ा, मोटी दीवार वाला पेशीय कक्ष है जो मलाशय के चारों ओर लिपटा रहता है। यह रक्त को समस्त शरीर मे पहुँचाता है।

2. धमनियाँ (Arteries)—हृदय से निकलने वाली दो मुख्य धमनियों द्वारा रक्त समस्त शरीर के विभिन्न अंगों को ले जाया जाता है जो हृदय के दोनों ओर से निकलती है। **अग्र आयोर्टा** (anterior aorta) निलय के अगले सिरे से निकलता है। यह आहार-नाल के ऊपर होकर आगे की ओर वढ़ता है तथा मेण्टल, पाद, आमाशय, आंत्र तथा विसरल मास को रक्त पहुँचाता है। **पश्च आयोर्टा** (posterior aorta) निलय के पिछले सिरे से निकलकर आंत्र के नीचे पीछे की ओर वढ़ता है। यह रेक्टम, मेण्टल, पेरिकार्डियम तथा वृक्क को रक्त पहुँचाता है।
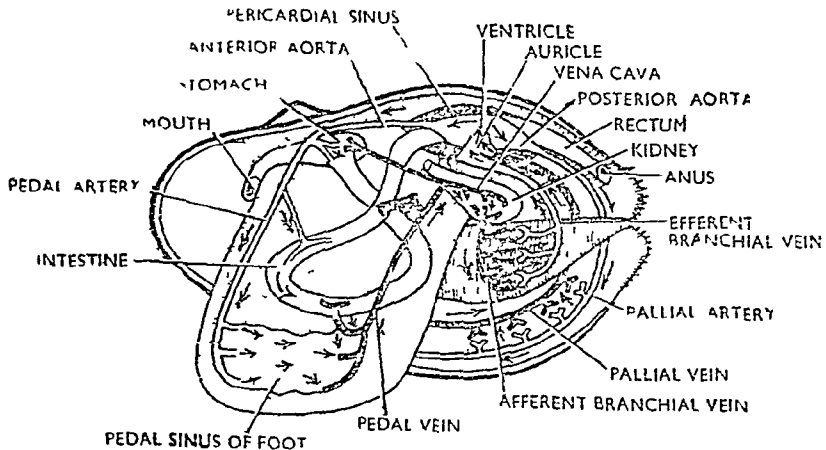
चित्र १५.६. यूनिओ का परिवहन-तन्त्र (Circulatory system of *Unio*)

3. साइनस (Sinuses)—अग्र तथा पश्च आयोर्टा तथा उनकी शाखाएँ अंगों में पहुँचकर छोटी-छोटी केशिकाओं में वँट जाती है जो ऊतकों के भीतर केशिका-जाल-सा वना लेती है किन्तु कुछ शाखाएँ केशिकाओं में विभाजित न होकर अनियमित रक्त स्थानों (blood spaces or blood sinuses) के रूप में फूल जाती है। इन पर दीवारें नही होती।

4. शिराएँ (Veins)—अंगों के भीतर केशिकाएँ समेकित होकर छोटी शिराएँ वनाती हैं जो अंगों से रक्त एकत्रित करती है। समस्त शिराएँ मिलकर एक वड़ी लम्ववत् शिरा या **वेना केवा** (vena cava) वनाती है। यह पेरिकार्डियम के

नीचे वृक्कों के बीच से आती हैं तथा अपना समस्त रक्त वृक्क शिराओं (renal veins) द्वारा वृक्कों को पहुँचाती हैं। वृक्क के भीतर समस्त नाइट्रोजिनस पदार्थ रक्त से अलग हो जाता है तथा रक्त **अपवाही क्लोम शिराओं** द्वारा क्लोम में पहुँचा दिया जाता है। अपवाही क्लोम शिरा क्लोम के भीतर केशिकाओं में बँट जाती है। इनमें से एक-एक शाखा प्रत्येक क्लोम तन्तु को जाती है। यहाँ से ऑक्सीकृत रुधिर एक जोड़ी **अभिवाही क्लोम शिराओं** द्वारा अलिन्दों में पहुँचता है। वेना केवा से कुछ अनॉक्सीकृत रक्त (venous blood) सीधे अलिन्दों को पहुँचता है। मेण्टल से ऑक्सीकृत रुधिर पेलियल शिराओं द्वारा अलिन्दों में जाता है।

रक्त—रक्त रंगहीन होता है क्योंकि इसमें श्वसन रंजक (respiratory pigment) नहीं पाये जाते। इसमें रंगहीन प्लाज्मा होता है जिसमें असंख्य अमीबाभ (amoeboid) श्वेत रक्त कणिकाएँ (leucocytes) होती हैं।

परिवहन पथ (Course of circulation)—अलिन्दों में आक्सीकृत रक्त आकर एकत्रित होता है और निलय द्वारा शरीर के समस्त अंगों को पम्प किया जाता है। विभिन्न शिराएँ तथा साइनस अंगों से रक्त एकत्रित करते हैं तथा वृक्कों एवम् क्लोमों को ले जाते हैं। आक्सीकृत रक्त पुनः अलिन्दों को पहुँचता है। रक्त परिवहन का पथ इस प्रकार दिखाया जा सकता है :—
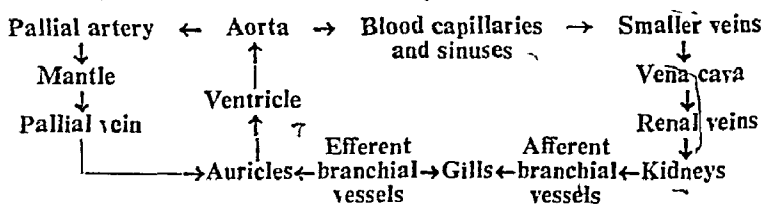
प्रश्न 115. यूनिओ के तन्त्रिका तन्त्र का वर्णन करिये और पाइला से उसकी तुलना कीजिये।

Give an account of nervous system of Unio and compare it with that of *Pila*.

तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System)

यूनिओ के तन्त्रिका तन्त्र में तीन जोड़ी गैंगलिआ तथा उनकी संयोजी एवम् संधायी तन्त्रिकाएँ होती है (दो समान गैंगलिआ को जोड़ने वाली तन्त्रिका को संधायी तन्त्रिका (commissures) तथा दो भिन्न गैंगलिआ को जोड़ने वाली तन्त्रिका को संयोजी तन्त्रिका (connective) कहते हैं।

1. **सेरिब्रो-प्ल्यूरल गैंगलिआ** (Cerebro-pleural ganglia)—ये एक जोड़ी छोटे पीले-से व त्रिभुजाकार गैंगलिया हैं जो लेबियल पाल्प (labial palps) के आधार पर ग्रास-नली (oesophagus) के इधर-उधर पार्श्व में स्थित होते है। दोनों गैंगलिआ ग्रासनली के आगे की ओर स्थित एक **सेरिब्रल संधायी** (cerebral commissure) द्वारा जुड़े रहते है। इनसे अग्र एडक्टर पेशियों, लेबियल पाल्प तथा प्रावार-पालि (mantle lobes) के अग्र भाग को तन्त्रिकाएँ जाती हैं। प्रत्येक सेरिब्रो-प्ल्यूरल गैंगलिओन से एक **सेरिब्रो-पीडल संयोजी** (cerebro-pedal connective) विकसित होता है जो नीचे की ओर चल कर अपनी ओर के पीडल गैंगलिओन से जुड़ता है और एक **सेरिब्रो-विसरल संधायी** (cerebro-visceral connective) पीछे की ओर चलकर अपनी ओर के विसरल गैंगलिओन से जुड़ती है।

2. **पीडल गैंगलिश्रा** (Pedal ganglia)—ये श्रंतरंग पुंज (visceral mass) के ठीक नीचे पाद के श्रगले सिरे से लगभग $\frac{1}{3}$ भाग पीछे स्थित होते हैं। दोनों
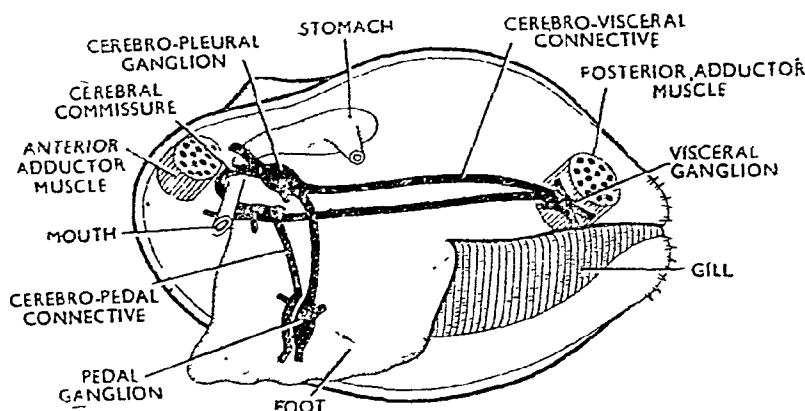
चित्र १५·१०. यूनिश्रो का तन्त्रिका-तन्त्र (*Unio* : Nervous system)

पीडल गैंगलिश्रा मिलकर एक द्विपालिमय रचना बनाते हैं जिससे पाद व इसकी पेशियों तथा स्टेटोसिस्ट को तन्त्रिकाएँ जाती हैं। प्रत्येक पीडल गैंगलिश्रोन **सेरिब्रो-पीडल संयोजी** द्वारा श्रपनी श्रोर के सेरिब्रो-प्ल्यूरल गैंगलिश्रोन से जुड़ा रहता है।

3. **विस्रल गैंगलिश्रा** (Visceral ganglia)—एक जोड़ी विस्रल गैंगलिश्रा पश्च एडक्टर पेशियों के मध्य-श्रधर तल पर स्थित होते हैं। विस्रल गैंगलिश्रा एक-दूसरे के साथ मिलकर एक चपटा व श्रायताकार पुंज बनाते हैं। इसके प्रत्येक श्रोर से निम्न शाखाएँ निकलती हैं—

(*i*) **पृष्ठ पेलियल तन्त्रिका** (dorsal pallial nerve) प्रावार के श्रग्र भाग को, (*ii*) एक **पश्च पेलियल तन्त्रिका** (posterior pallial nerve) प्रावार के पिछले भाग को, (*iii*) एक **पश्च वृक्कांग तन्त्रिका** (posterior renal nerve) वृक्क को, (*iv*) एक **पश्च एडक्टर तन्त्रिका** (posterior adductor nerve) संगत पेशी को, तथा (*v*) एक **ब्रेकियल तन्त्रिका** (branchial nerve) क्लोम को। यह एक महीन **सेरिब्रो-विस्रल संयोजी** (cerebro-visceral connective) द्वारा श्रपनी श्रोर के सेरिब्रो-प्ल्यूरल गैंगलिश्रोन से जुड़ा रहता है जिससे श्रनेक छोटी तन्त्रिकाएँ निकल कर श्रंतरंग पुंज (visceral mass) को जाती हैं।

पाइला एवम् यूनिश्रो के तन्त्रिका तन्त्रों की तुलना
(Comparison of the Nervous System of Pila and Unio

कृपया प्रश्न 105 देखिये।

प्रश्न 116. लेमेलीडेन्स के जनन-श्रंगों एवम् वर्धन का वर्णन कीजिये।

Describe the reproductive organs and development of *Lamellidens.* (*Jiwaji 1968*)

जनन श्रंग (Reproductive Organs)

लेमेलीडेन्स में नर तथा मादा जनन-श्रंग श्रलग-श्रलग जन्तुश्रों में पाये जाते हैं किन्तु नर तथा मादा जन्तुश्रों को वाह्य लक्षणों द्वारा नहीं पहचाना जा सकता। जनन श्रंग केवल जनद तथा उनकी वाहिनियाँ होती हैं।

नर जनन अंग—वृपणों का एक जोड़ा विसरल मास में आंत्र की दोनों भुजाओं के बीच के स्थान पर स्थित होता है। प्रत्येक वृपण श्वेत रंग की अत्यन्त शाखान्वित रचना है जिससे एक छोटी तथा सँकरी **शुक्रवाहिनी** निकलती है जो सुप्राब्रैंकियल नर जनन छिद्र द्वारा सुप्राब्रैंकियल कक्ष में खुलती है। नर जनन छिद्र वृक्क छिद्र के आगे स्थित होता है।

मादा जनन अंग—अण्डाशय लाल रंग की एक जोड़ी ग्रन्थिल रचनाएँ हैं जो बहुत-सी शाखान्वित नालों की बनी होती हैं तथा विसरल मास में आंत्र की दोनों भुजाओं के बीच स्थित होती हैं। जनन काल में ये अत्यन्त विकसित तथा बड़ी होती हैं। प्रत्येक अण्डाशय से एक अण्डवाहिनी निकल कर मादा जनन छिद्र द्वारा सुप्राब्रैंकियल कक्ष में वृक्क छिद्र के सम्मुख खुलती है। अतिरिक्त जनन अंग अनुपस्थित होते हैं।

वर्धन (Development)

कृपया प्रश्न 115 देखिये।

प्रश्न 117. अलवण जल-शम्बुक के जीवन-चक्र का वर्णन करिये तथा बताइये कि इसका वितरण किस प्रकार होता है।

Describe the life-history of a fresh water mussel, and state how dispersal is brought about. *(Agra 1951, 55, 62, 68 ; Vikram 63 ; Patna 67 ; Indore 67 ; Gorakhpur 69)*

अलवण जल-शम्बुक के जीवन-चक्र का वर्णन कीजिये तथा बताइये कि इसका वितरण किस प्रकार होता है।

Give an account of the development upto the adult stage of bivalve mollusc and the method of its distribution.

(Kanpur 1970 ; Osmania 73)

अलवण जल-शम्बुक का जीवन इतिहास
(Life-history of Fresh Water Mussel)

यूनिओ पृथलिंगी (dioecious) जन्तु है, परन्तु नर तथा मादा जन्तुओं को अलग-अलग पहचानना सम्भव नहीं। जनद विसरल मास में स्थित होते हैं तथा जनन कोशिकाएँ जनन वाहिनियों द्वारा सुप्राब्रैंकियल कक्ष में डाल दी जाती हैं।

निषेचन (Fertilization)—बाह्य क्लोम लैमिना में अण्डों का निषेचन होता है। अण्डे सुप्राब्रैंकियल कक्ष में एकत्रित होते हैं। यहाँ से ये बाह्य क्लोम लैमिना की जल-नलिकाओं में पहुँच जाते हैं तथा म्यूकस द्वारा रुके रहते है। इनमें से कुछ जल की धारा के साथ मादा की अपवाही साइफन में से होकर क्लोम लैमिना में पहुँचते हैं। यहाँ पर अण्डे का निषेचन होता है।

वर्धन—वर्धन अप्रत्यक्ष अथा अत्यन्त विशिष्ट (specialized) होता है। **वेलिजर लारवा** अवस्था अत्यन्त परिवर्तित होती है और **ग्लोकीडियम** कहलाती है। ग्लोकीडियम लारवा तक का वर्धन मादा की जल-नलिकाओं के भीतर ही पूर्ण होता है, अतः बाह्य क्लोम लैमिना की जल-नलिकाएँ जननकोप (brood pouch) के समान कार्य करती हैं। *यूनिओ* में वर्धन क्रिया का अध्ययन पूर्ण नहीं है किन्तु यह **एनोडोण्टा** के वर्धन के समान होता है।

युग्मनज (zygote) में पूर्ण किन्तु असमान विभाजन होते हैं। फलस्वरूप कोशिकाओं की एक खोखली गेंद के समान रचना बन जाती है जो **ब्लास्टूला** (blas-

tula) कहलाती है। इसमें दो प्रकार की कोशिकाएँ होती है : छोटी, योकरहित **माइक्रोमीयर्स** (micromeres) तथा बड़ी व योक वाली **मैक्रोमीयर्स** (macromeres)। मैक्रोमीयर्स के माइक्रोमीयर्स के भीतर जाने (invagination) की क्रिया के फलस्वरूप भ्रूण में आर्केण्ट्रॉन (archenteron) का निर्माण हो जाता है तथा ब्लास्टुला, गैस्ट्रूला
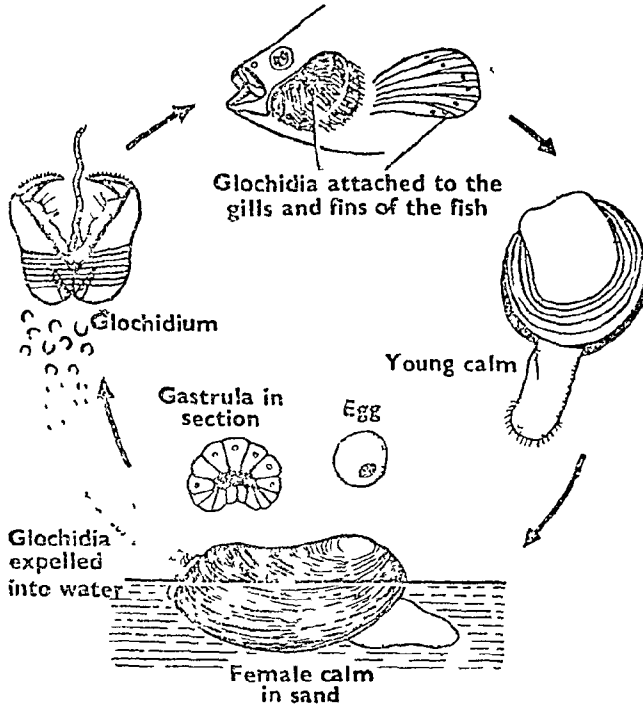
चित्र १५·११. यूनिओ का जीवन–चक्र (Life-cycle of *Unio*)

में बदल जाता है। अब इसकी कुछ कोशिकाएँ ब्लास्टोसील की ओर कटती है और ब्लास्टोसील में एकत्रित होकर मीसोडर्म का निर्माण करती है। गैस्ट्रूला पीतक झिल्ली (vitelline membrane) के भीतर बन्द रहता है। पिछले सिरे के पृष्ठतल पर कोशिकाओ के अन्तर्गमन से एक गहरा गड्ढा बन जाता है। इस स्थान पर **खोल ग्रन्थि** (shell gland) का निर्माण होता है जिसके स्राव से एककपाटीय भ्रूण खोल (univalved embryonic shell) बनता है। बाद में इस खोल के स्थान पर दो-कपाटीय (bivalved) तिकोने खोल का निर्माण होता है। खोल के दोनों कपाटों के निचले किनारे भीतर की ओर मुडे रहते है तथा इन पर काँटे तथा हुक होते है। बाद में खोल के भीतर की ओर मेण्टल (mantle) का निर्माण हो जाता है। मीसो-डर्म की कुछ कोशिकाएँ दोनो कपाटो के बीच **एडक्टर पेशी** (adductor muscle) बनाती है। गैस्ट्रूला का मुख छिप जाता है तथा एक्टोडर्म के अन्तर्गमन द्वारा प्रौढ़ जन्तु का मुख बन जाता है। इस प्रकार ग्लोकीडियम (glochidium) लारवा का निर्माण पूर्ण हो जाता है।

ग्लोकीडियम लारवा (glochidium larva) एक सूक्ष्म लारवा है जो दो-

कपाटीय खोल में वन्द रहता है। इसकी चौड़ाई ·1 से ·4 mm. तक होती है तथा यह तीर के अगले सिरे के आकार का होता है। खोल तिकोना, दो-कपाटीय तथा छिद्रयुक्त होता है। इसके स्वतन्त्र दूरस्थ या निचले किनारे भीतर को मुड़े होते हैं और इन पर काँटे तथा हुक होते हैं। अग्रिम सिरे पर स्थित एडक्टर पेशी द्वारा खोल के दोनों कपाट खोले तथा वन्द किये जा सकते हैं। खोल के भीतर की ओर मेण्टल की दो पर्तें होती हैं जो अपेक्षाकृत छोटी होती हैं और इन पर 3 या 4 ब्रुश के आकार के संवेदी अंग पाये जाते हैं। लारवा में अधर तल पर मध्य रेखा पर स्थित एक ग्रन्थिल थैला (glandular pouch) होता है। इससे लारवा का
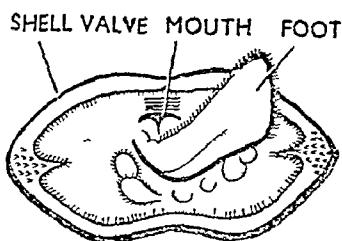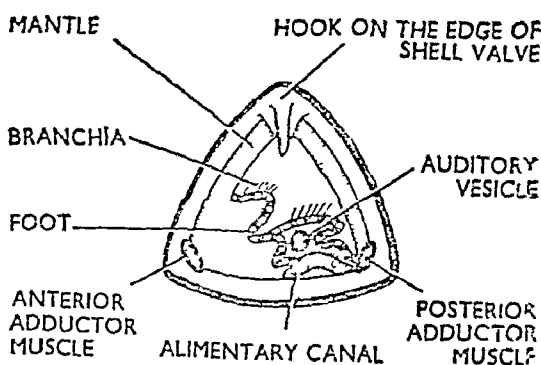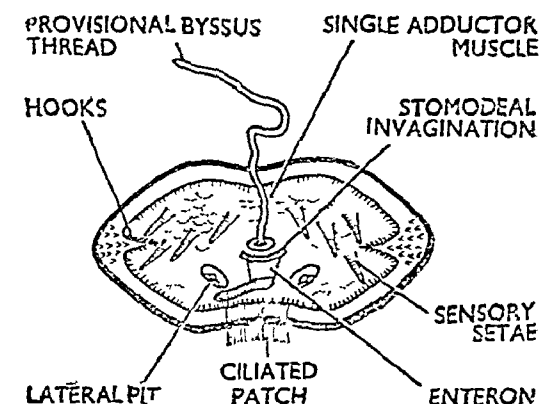
चित्र १५.१२. ग्लोकीडियम के रूपान्तरण की विभिन्न अवस्थाएँ
(Various stages of metamorphosis of glochidium)

अनन्तिम सूत्र गुच्छ (provisional byssus) बनता है। लारवा में पाद का अभाव होता है।

यूनिओ से बहुत बड़ी संख्या में ग्लोकीडिया बनते है जिससे क्लोम लैमिना भरा हुआ दिखायी देता है। क्लोम से स्रावित होने वाला म्यूकस इनका भोजन है। पूर्ण विकसित ग्लोकीडिया अपवाही साइफन से होकर जल की धारा के साथ शरीर के बाहर आ जाते हैं। आगे वर्धन तभी सम्भव हो सकता है जब लारवा किसी ताजे पानी में रहने वाली मछली के भीतर पहुँच जाये। यहाँ लारवा पोषक की त्वचा, क्लोम या फिन पर पहुँचकर परिकोष्ठित हो जाता है और लगभग 10 सप्ताह तक बाह्यपरजीवी (ectoparasite) की भाँति जीवन व्यतीत करता है। यह पोषक के ऊतक द्रव से भोजन शोषित करता है।
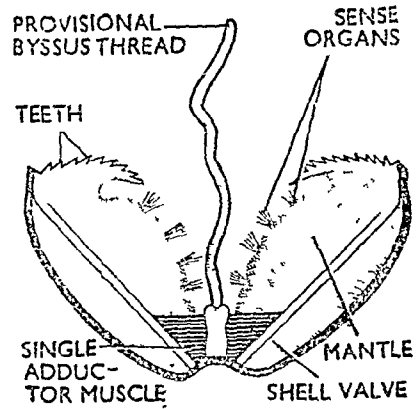
चित्र १५·३. यूनिओ का ग्लोकीडियम लारवा
(Glochidium larva of *Unio*)

परिकोष्ठित अवस्था में ग्लोकीडियम में कायान्तरण होता है। कायान्तरण के समय इसमें निम्न परिवर्तन होते है :—

1. संवेदी अंग, अनन्तिम सूत्रगुच्छ तथा सूत्रगुच्छ ग्रन्थि नष्ट हो जाती है बाद में वास्तविक सूत्रगुच्छ बन जाता है। **Anodonta** में सूत्रगुच्छ कम विकसित होता है।

2. एक एडक्टर पेशी के स्थान पर दो पेशियाँ बन जाती है।

3. भ्रूणीय मेण्टल वलन (embryonic mantle folds) बढ़ते हुए खोल के अनुरूप लम्बाई में बढ़ते जाते है।

4. अग्रांत्र (stomodaeum) अन्तर्गमन के रूप में बनती है और आरकेण्ट्रान में खुलती है। शरीर के पिछले सिरे पर गुदाद्वार बनता है।

5. पाद तथा क्लोम भी बनने लगते हैं।

रूपान्तरण पूर्ण होने पर परिकोष्ठ फट जाता है तथा छोटा-सा *यूनिओ* पानी में आ जाता है। यह नदी या तालाब के तल पर बैठकर प्रौढ़ता प्राप्त करता है।

यूनिओ के जीवन-चक्र में परजीवी लारवा का होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पोषक (मछली) से इसको निम्न लाभ है :—

1. वृद्धि करते हुए लारवा को पोषक से भोजन प्राप्त होता है।
2. पोषक रक्षा प्रदान करता है।
3. लारवा को दूर-दूर तक ले जाने में सहायक है।

प्रश्न 118. ग्लोकीडियम लारवा की संरचना एवम् कायान्तरण का वर्णन कीजिये तथा समझाइये कि यह क्योंकर इस प्राणी के लिए लाभप्रद है।

Describe the structure and metamorphosis of the glochidium larva and explain how it is beneficial to the animal. *(Agra 1971)*

कृपया प्रश्न 117 देखिये।

अध्याय 16

विभिन्न प्रश्न
(Miscellaneous)

प्रश्न 119. टेनिडिया के विशेष संदर्भ में मौलस्का में श्वसन का वर्णन करिये।

Give an account of the respiration in Mollusca with special reference to ctenidia. *(Jabalpur 1972)*

मौलस्का में निम्न चार विधियों द्वारा श्वसन होता है :—

1. शरीर की सतह द्वारा **त्वक् श्वसन**
2. टेनिडिया या क्लोमों द्वारा **जलीय श्वसन**
3. **द्वितीयक क्लोमों** या **अनुकूली क्लोमों** द्वारा
4. फेफड़े या पल्मोनरी कोष द्वारा **वायवीय श्वसन**

1. त्वक् श्वसन (Cutaneous respiration)—यह श्वसन की सरलतम विधि है। अधिकांश मौलस्क नम त्वचा द्वारा ही श्वसन करते है। कुछ जलीय **Scaphopoda** तथा कुछ **Opisthobranchia** में टेनिडिया व अन्य सुनिश्चित व विशिष्ट श्वसन अंगों का अभाव होता है और श्वसन शरीर या प्रावार की सम्पूर्ण सतह से होता है।

2. टेनिडिया या क्लोम द्वारा (By ctenidia or gills)—अधिकांश जलीय मौलस्क क्लोम या टेनिडिया द्वारा जनन करते है। मौलस्का में मिलने वाले समस्त प्रावार अंगों (pallial organs) में क्लोम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते है। जल क्लोमों के ऊपर से रुधिर की विपरीत दिशा में प्रवाहित होता है और जल व रुधिर के मध्य गैसों का आदान-प्रदान होता है। क्लोम एक समजात अंग के रूप में मौलस्का के सभी प्रभागों के जन्तुओं में पाये जाते है और ये **टेनिडिया** (एकवचन : टेनिडियम—ctenidium) कहलाते है।

(i) **संरचना** (Structure)—टेनिडिया या क्लोम शरीर की सतह के प्रवध है जो विशेष रूप से प्रावार (mantle) की अधर दीवार से विकसित होते हैं और प्रावार गुहा के चारों ओर के जल में प्रक्षिप्त रहते है।

समस्त मौलस्का में टेनिडियम की मूल रचना समान होती है। इसमें मध्य अक्ष के इधर-उधर पार्श्व में कोमल, लचीले **लैमेली** (lamellae) या तन्तुओं (filaments) की कतारें होती हैं। लैमेली पक्ष्मों से ढकी रहती हैं। इनकी गति के कारण जल की संतत धारा टेनिडियम के ऊपर से प्रवाहित होती रहती है। इस प्रकार के टेनिडियम को **द्विकंकती टेनिडियम** (bipectinate ctenidium) कहते है। जब लैमेली की केवल एक पंक्ति होती है तो इसे **एककंकती टेनिडियम** (monopectinate ctenidium) कहते है। क्लोम या टेनिडियम में **अधिवाही क्लोम वाहिनी** (afferent branchial vessel) द्वारा शिरा रुधिर (venous blood) आता है जो

ऑक्सीकृत होने के बाद **अपवाही क्लोम वाहिनी** (efferent branchial vessel) द्वारा हृदय को भेज दिया जाता है। प्रत्येक टेनिडियम के आधार पर एक **ऑस्फ्रेडियम** (osphradium) होता है जो जल की प्रकृति का परीक्षण करता है।

(*ii*) **टेनिडिया की संख्या, आकार एवं स्थिति** (Number, form and position of ctenidia)—फाइलम मौलस्का का वर्गीकरण क्लोमों की संख्या एवं संरचना पर आधारित है। अतः जीवित सेफैलोपोड्स को दो उप-श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है—दो क्लोम वाले **डाइब्रैंकिएटा** (Dibranchiata) तथा चार क्लोम वाले **टेट्राब्रैंकिएटा** (Tetrabranchiata)। इसी प्रकार गैस्ट्रोपोड्स को तीन प्रविभागों में विभक्त किया गया है :—

(1) **प्रोसोब्रैंकिएटा** (Prosobranchiata), (2) **ओपिस्थोब्रैंकिएटा** (Opisthobranchiata), तथा (3) **पल्मोनेटा** (Pulmonata)। प्लेट के समान क्लोमों के कारण बाइवाल्व मौलस्का लैमेलीब्रैंकिएटा कहलाते हैं।

क्लास **एम्फिन्यूरा** (Amphineura)—**प्लैकोफोरा** (placophora) में अनेक क्लोम होते है जो दो पंक्तियों में लगे रहते हैं। **एप्लैकोफोरा** (Aplacophora) में क्लोम अनुपस्थित होते हैं जैसे *निओमेरिया* (*Neomeria*) में अथवा फिर बड़े पिच्छों के समान दो टेनिडिया होते हैं, जैसे *कीटोडर्मा* (*Chaetoderma*) में।

क्लास **स्कैफोपोडा** (Scaphopoda)—टेनिडिया या क्लोम अनुपस्थित होते हैं और श्वसन-क्रिया प्रावार द्वारा होती है, जैसे *डेण्टेलियम* (*Dentalium*) में।

क्लास **गैस्ट्रोपोडा** (Gastropoda)—आदिम गैस्ट्रोपोड्स, **रिपिडोग्लोसा** (Rhipidoglossa) में एक जोड़ी क्लोम उपस्थित होते हैं, किन्तु दाँया क्लोम प्रायः छोटे आकार का होता है, जैसे *हेलिओटिस* (*Heliotis*) तथा *फिस्सुरेला* (*Fissurella*) में। अधिकांश गैस्ट्रोपोड्स में केवल बाँया क्लोम होता है और दाँया क्लोम पूर्णतः लुप्त हो जाता है। **ऐस्पिडोब्रैंकिआ** (Aspidobranchia : Diotocardia) में केवल एक क्लोम होता है। यह द्विकंकती व पिच्छ के समान होता है, जैसे *ट्रोकस* (*Trochus*) में। **पेक्टिनिब्रैंकिया** (Pectinibranchia : Monotocardia) में क्लोम एककंकती होता है जिसमें लैमेली की केवल एक पंक्ति होती है, जैसे *पाइला* (*Pila*) में। **ओपिस्थोब्रैंकिया** (Opisthobranchia) में अव्यावर्तन (detorsion) के कारण क्लोम का महत्व कम हो जाता है। अतः **न्यूडिब्रैंकिया** (Nudibranchia) में वास्तविक टेनिडिया अनुपस्थित होते हैं और **द्वितीयक क्लोम** (secondary branchiae) विकसित हो जाते हैं, जैसे *एेओलिस* (*Aeolis*) तथा *डोरिस* (*Doris*)। किन्तु **टेक्टिब्रैंकिया** (Tectibranchia) में एक टेनिडियम बना रहता है। स्थलचर स्नेल **पल्मोनेटा** (Pulmonata) में टेनिडिया अनुपस्थित होते हैं तथा प्रावार एक फेफड़े में रूपांतरित हो जाता है।

क्लास **पेलेसिपोडा या लैमेलिब्रैंकिएटा** (Pelecypoda or Lamellibranchiata)—**लैमेलिब्रैंकिएटा** में क्लोम उच्चतम सीमा तक विकसित होकर आकर्षक रूपांतरण प्रदर्शित करते हैं। मूल रूप से एक जोड़ी व समान आकार के द्विकंकती टेनिडिया होते हैं। **प्रोटोब्रैंकिएटा** (Protobranchiata) में क्लोम अपेक्षाकृत छोटे तथा प्रावार गुहा के पीछे की ओर स्थित होते हैं। इनके पत्रक या तन्तु सरल व मुक्त होते हैं, जैसे *न्यूकुला* (*Nucula*) तथा *सोलेनोमिया* (*Solenomya*)। किन्तु अन्य लैमेलिब्रैंक्स में क्लोम अधिक विशेपीकृत हो जाते हैं। **फिलिब्रैंकिएटा** (Filibranchiata) में क्लोम प्लेट के समान होते है और इनके तन्तु परावर्तित होकर 'V' की
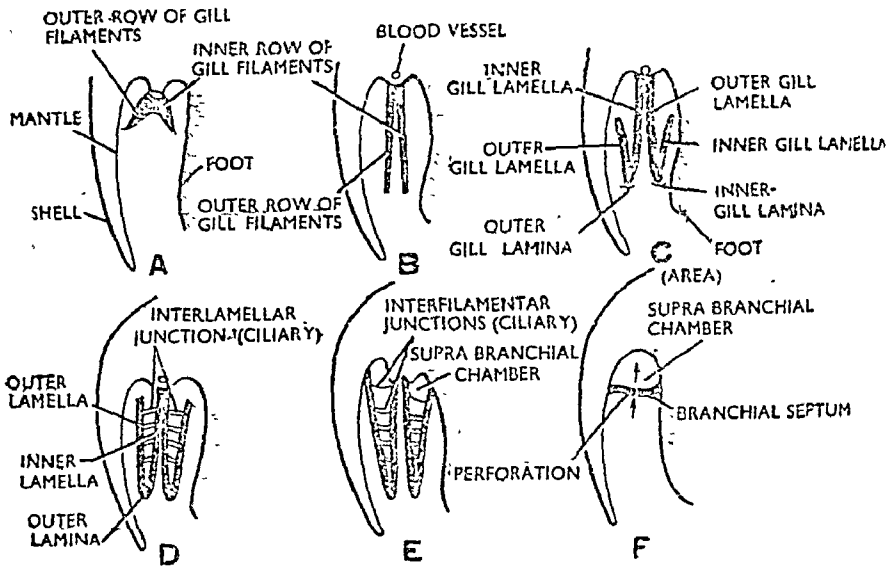
चित्र १६·१. क्लोमों की संरचना को प्रदर्शित करने के लिए कुछ पेलेसिपोड मौलस्क के क्लोमों के अनुप्रस्थ सेक्शन (T S. of a few pelecypods to show the structure of gills) A. *Nucula*, B. *Amysium*, C. *Arca*, D. *Mytilus*, E. *Anodonta*, F. *Poromya*.

आकृति ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार प्रत्येक क्लोम में V-आकृति के दो डेमीब्रैंक (demibranchs) या तन्तु होते हैं जिनमें से एक आरोही दूरस्थ भुजा तथा दूसरा अवरोही समीपस्थ भुजा बनाता है।

आर्का (*Arca*) में अंतरातन्तु संगम (inter-filamenter junctions) अनुपस्थित होते हैं किन्तु *माइटिलस* (*Mytilus*) में ये पक्ष्मों/सीलिया के अंतर्ग्रथित समूहों के बने होते हैं और ये असंवहनीय होते हैं। **स्यूडोलैमेलिब्रैंकिएटा** (Pseudolamellibranchiata) में क्लोम उर्ध्वाधर वलन बनाते हैं। क्रमिक क्लोम-तन्तु अलग्न रूप से पक्ष्माभिकी डिस्कों द्वारा परस्पर जुड़े रहते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक तन्तु की आरोही भुजा असंवहनीय अंतरातन्तु संगमों द्वारा जुड़ी रहती है, जैसे पेक्टेन

चित्र १६·२. माइटिलस के क्लोम-तंतु (Gill filaments of *Mytilus*)

(*Pecten*), *ओस्ट्रिया* (*Ostrea*), *पिन्ना* (*Pinna*) आदि में। **यूलैमेलिब्रैंकिएटा** (Eulamellibranchiata) में क्लोम संग्रथित (plaited) व कन्डी के समान होते हैं। पक्ष्माभिकी अंतरातन्तु संगम नहीं होते, किन्तु संवहनीय अंतरातन्तु व अंतरालैमेलर संगम उपस्थित होते हैं जैसे *यूनिओ* (*Unio*), *लैमेलिडेन्स* (*Lamellidens*) तथा टेरिडो (*Teredo*) में। **सेप्टीब्रैंकिएटा** (Septibranchiata) में क्लोम अपह्रसित होते हैं और इनके स्थान पर एक क्षैतिज, छिद्रिल व पेशीय पट होता है जो प्रावार

गुहा को दो कक्षों में विभाजित कर देता है। इसके द्वारा ऊपर व नीचे की ओर गति करने से जल अंतर्वाही साइफन (inhalent siphon) में से अन्दर प्रवेश करता है। श्वसन कार्य प्रावार (मेण्टल) द्वारा पूर्ण होता है।

क्लास **सेफैलोपोडा** (Cephalopoda)—सेफैलोपोडा में क्लोम सरल, द्विकंकती (bipectinate) व पिच्छ के समान होते हैं। लैमेली पर पक्ष्म नहीं होते तथा पेशीय प्रावार की गति द्वारा जल अन्दर व बाहर पम्प होता है। **डाइब्रैंकिएटा** (Dibranchiata) में केवल दो क्लोम होते हैं जैसे *सीपिया* (*Sepia*) में तथा **टेट्रा-ब्रैंकिएटा** (Tetrabranchiata) में चार क्लोम होते हैं जैसे *नॉटिलस* (*Nautilus*) में।

3. द्वितीयक या अनुकूली क्लोम (Secondary or adaptive gills)—कुछ गैस्ट्रोपोड्स में टेनिडिया अनुपस्थित होते हैं और इनका स्थान **द्वितीयक या अनुकूली क्लोमों** द्वारा ले लिया जाता है। द्वितीयक क्लोम आकारिक रूप में टेनिडिया से भिन्न होते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं :

(*i*) **गुद क्लोम** (Anal gills)—कुछ **न्यूडिब्रैंकिएटा** (Nudibranchiata) में कोमल, पिच्छ-के समान तथा आकुंचनशील द्वितीयक क्लोमों का एक रोजेट (rosette) गुदाद्वार के चारों ओर स्थित होता है, जैसे *डोरिस* (*Doris*) में।

(*ii*) **सेराटा** (Cerata)—कुछ अन्य **न्यूडीब्रैंकिएटा** (Nudibranchiata) में अनेक सरल या पिच्छाकार द्वितीयक क्लोम शरीर की पृष्ठ सतह से विकसित होते हैं। ये सरलता से विच्छिन्न होकर पुनर्योजित हो जाते हैं जैसे *एओलिस* (*Aeolis*)।

(*iii*) **अनुदैर्घ्य पंक्तियाँ** (Longitudinal rows)—**डैकोग्लॉसा** (Decoglossa) में द्वितीयक या अनुकूली क्लोम प्रावार खाँच (pallial groove) में प्रत्येक ओर पार्श्व में क्लोम-पत्रकों (branchial leaflets) की एक अनुदैर्घ्य पंक्ति के रूप में होते हैं जैसे *पैटेला* (*Patella*) में।

चित्र १६·३. सेराटा को प्रदर्शित करते हुए एओलिस (*Aeolis* showing cerata)

फुफ्फुस कोष या फेफड़ा (Pulmonary sac or lung)—कुछ गैस्ट्रोपोड्स (आर्डर **पल्मोनेटा** : Pulmonata) में क्लोम फेफड़े या फुफ्फुस कोष द्वारा विस्थापित हो जाते हैं। अतः स्थलचर पल्मोनेट्स में वास्तविक टेनिडियम अनुपस्थित होता है तथा वायवीय श्वसन के लिए प्रावार गुहा फेफड़े या फुफ्फुस कोप में रूपान्तरित होती है। फुफ्फुस कोप की छत रुधिर वाहिनियों द्वारा अत्यधिक रूप से संवहित होती है और वायु का आदान-प्रदान एक छोटे-से गोल फुफ्फुस छिद्र (pulmonary aperture) द्वारा होता है जैसे *लाइमैक्स* (*Limax*) तथा *एरिओन* (*Arion*) में। उभयचरी गैस्ट्रोपोड्स (आर्डर **पल्मोनेटा**) में प्रावार गुहा जलीय व वायवीय, दोनों प्रकार के श्वसन में भाग लेती है। जन्तु समय-समय पर वायु को भरने के लिए सतह पर आता है जैसे *प्लैनॉर्बिस* (*Planorbis*) तथा *लिम्नीआ* (*Limnaea*)। कुछ अन्य उभय-

चरी गैस्ट्रोपॉड्स में प्रावार गुहा एक अपूर्ण पट द्वारा दो कक्षों में विभाजित होती है। इनमें से दाहिने फुफ्फुस कक्ष में एक क्लोम होता है। फेफड़े की सहायता से ऐसे प्राणी वायु में रहते समय श्वास लेते हैं और जल में रहते समय श्वसन करते है।

प्रश्न 120. मौलस्का में पाद का वर्णन करिये।

Give an account of foot or podium in Mollusca.

(*Jabalpur 1972 ; Calcutta 73*)

फाइलम मौलस्का के समस्त प्राणियों में एक अधर पेशीय **पाद** (foot) या **पोडियम** (podium) पाया जाता है। यह अध्यावरणी प्रक्षेप है जो मौलस्का के विभिन्न वर्गों में जीवन एवम् चलन की विभिन्न विधियों के अनुरूप अनेक रूपान्तरण प्रस्तुत करता है।

क्लास 1. एम्फीन्यूरा (Amphineura)

पोलीप्लैकोफोरा—काइटन्स (Polyplacophora : chitons) में पाद बड़ा, चौड़ा व पेशीय तथा सोल के समान होता है और अधर सतह का अधिकांश भाग घेरे रहता है। *क्रिप्टोप्लेक्स* (*Cryptoplex*) तथा *काइटोनेलस* (*Chitonellus*) में यह संकरा होता है। इसे आदिम प्रकार का पाद माना जाता है। यह रेंगने में सहायता करने के अतिरिक्त जन्तु को अध: स्तर से चिपकने में चूषक का कार्य भी करता है। (चित्र 16·4)
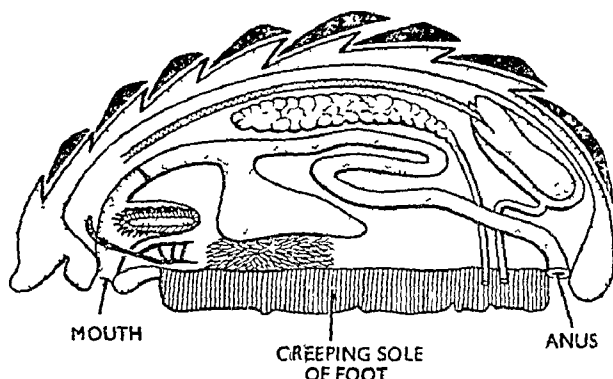
चित्र १६·४. काइटन का सोल के समान रेंगने वाला पाद
(Creeping sole-like foot in *Chiton*)

ऐप्लैकोफोरा (Aplacophora) में पाद लुप्तावेशी होता है। यह एक छोटी, अनुदैर्ध्य व पक्ष्माभिकी उद्रेख है जो मुख के समीप से क्लोएकल छिद्र तक फैले हुए एक पक्ष्माभिकी, अनुदैर्ध्य एवम् मध्य-अधर खाँच में स्थित होता है, जैसे *कीटोडर्मा* (*Chaetoderma*) में।

क्लास 2. स्कैफोपोडा (Scaphopoda)

इस क्लास के समस्त वंशों में पाद सँकरा, वेलनाकार एवम् आगे की ओर उन्मुख होता है। यह खोल के मुख-छिद्र (oral shell aperture) में से बाहर निकाला जा सकता है और मिट्टी खोदने के अंग का कार्य करता है। *डेण्टेलियम* (*Dentalium*) में पाद का निचला सिरा शंक्वाकार व त्रिपालिमय होता है और इसकी पार्श्व सतहों पर पंख के समान एक वलन—**प्लीट** (pleat) होता है। *साइफोनोडेण्टेलियम* (*Siphonodentalium*) में पाद पैपिलामय उपांतों युक्त आकुञ्चनशील डिस्क के रूप में होता है।
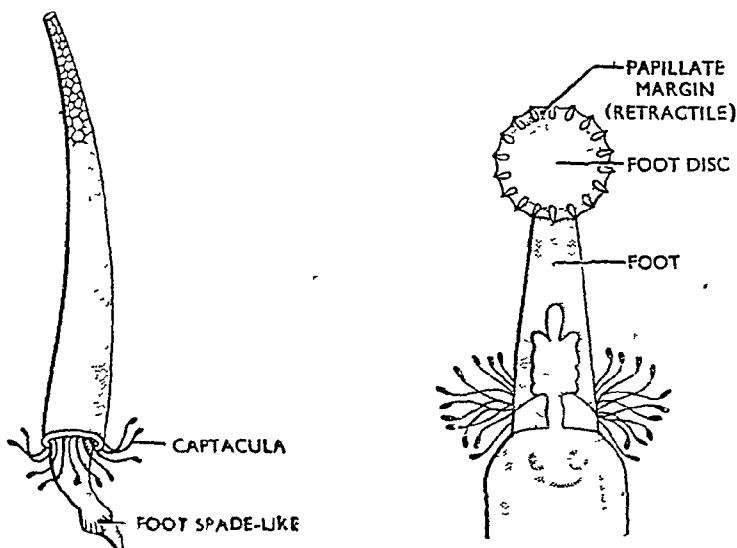
चित्र १९·५. स्कैफोपोडा में पाद (Foot in Scaphopoda)
A. डेण्टेलियम में शक्वाकार त्रिपालिमय पाद (Conical trilobed foot in *Dentalium*)
B. साइफोनोडेण्टेलियम मे डिस्क के समान पाद (Disc-shaped foot in Siphonodentalium)

क्लास 3. गैस्ट्रोपोडा (Gastropoda)

गैस्ट्रोपोडा में जीवन की विभिन्न विधियों के अनुकूल पाद के आकार एवम् आकृति में अत्यधिक भिन्नता देखने को मिलती है। प्राय: जन्तु सोल पर से तरंगों की भाँति शुरू होने वाले पेशीय संकुंचनों की सहायता से रेंगता है।

गैस्ट्रोपोड्स में पाद को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—एक छोटा अग्र **प्रोपोडियम** (propodium), एक बड़ा मध्य **मीसोपोडियम** (mesopodium) तथा एक पश्च **मेटापोडियम** (metapodium)। गीले व नम रेत में रेंगने वाले गैस्ट्रोपोड्स में पाद अत्यधिक सुविकसित होता है जैसे *सिगरेटस* (*Sigaretus*) में। *सिगरेटस* में पाद शिरस्थ प्रदेश (cephalic region) पर से परावर्तित होकर एक शक्तिशाली खोदने वाले अंग का कार्य करता है। *नाटिका* (*Natica*) में पाद बाँयी ओर एक साइफन बनाता है जो श्वसन कक्ष में जल को संचारित करने का कार्य करता है। ट्रोकस (*Trochus*) में पाद छोटे **स्पर्श पैपिली** के रूप में होता है जबकि *टरबोनिला* (Turbonilla) में यह एक छोटे माँसल **मेण्टम** (mentum) के रूप में निकला रहता है। *ऐओलिस* (*Aeolis*) में इससे एक जोड़ी **पदिक स्पर्शक** (pedal tentacles) निकलते रहते हैं।

हेटेरोपोडा (*Heteropoda*) जोकि तैरने वाले प्राणी हैं, में प्रोपोडियम एक सँकरी, द्विपार्श्व रूप से संपीडित व उर्ध्वाधर **तरण पालि** (swimming bell) के रूप में होता है। *ऑक्सीगाइरस* (*Oxygyrus*) में प्रोपोडियम **पख-के समान** होता है, मीसोपोडियम पर एक **चूषक** होता है तथा मेटापोडियम पर एक **ओपरकुलम** होता है। किन्तु **टेरोट्रेकिया** (Pterotrachea) में केवल नर मे चूपक होता है तथा

चित्र १६·६. गैस्ट्रोपोड्स में विभिन्न प्रकार के पाद (Various types of foot in gastropods)
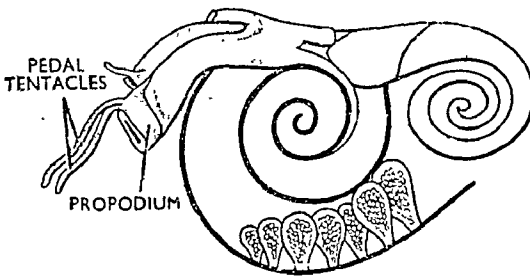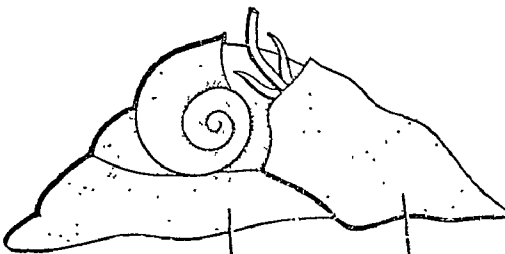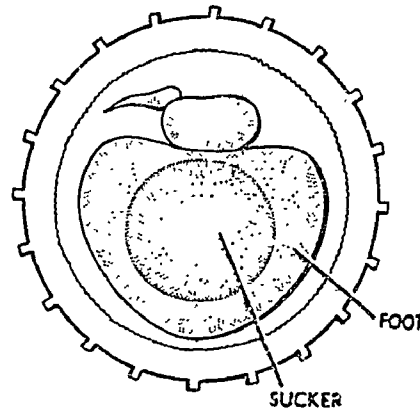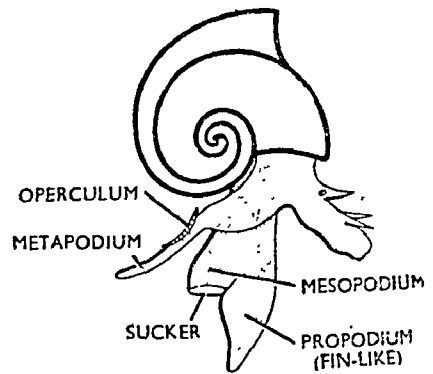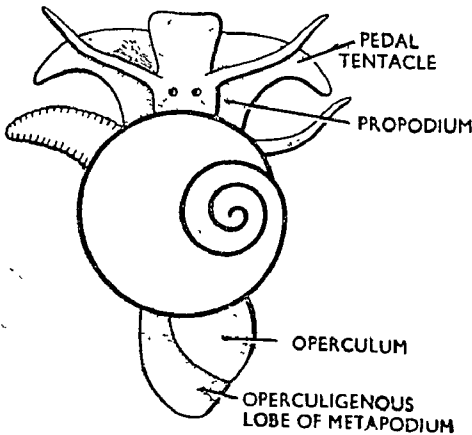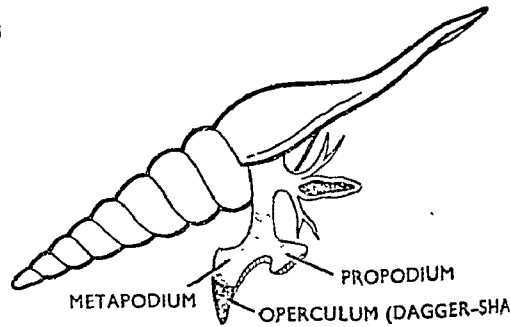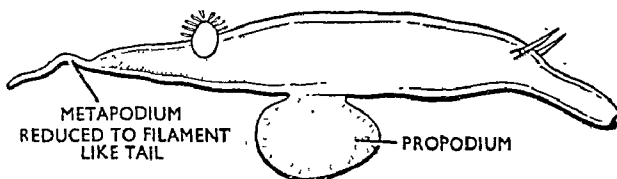
मेटापोडियम पर ओपरकुलम का अभाव होता है और यह एक छोटी व तन्तुवत् पुच्छ के रूप में होता है।

मेटापोडियम, जो कि पाद का पश्च भाग बनाता है, शेष पाद से अलग नहीं पहचाना जा सकता। जन्तु के खोल के अन्दर आकुंचित होने पर यह खोल के छिद्र को बन्द कर लेता है। *रॉस्टेलेरिया* (*Rostellaria*) में ओपरकुलम तेज व खंजरनुमा होता है। इसके रेत में घुसने पर पाद विनत हो जाता है तथा खोल खिंचता चला जाता है।

पाद के उपांग (Appendages of Foot)

गैस्ट्रोपोड्स में पाद पर कई प्रकार के उपांग होते हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से हैं :—

1. एपिपोडिया (Epipodia)—ये युग्मित वलन हैं जो पाद की पूर्ण लम्बाई में इसके पार्श्व या आधार से विकसित होते है। इनमें *ट्रोकस* के समान अनेक पैपिली, नेत्र-बिन्दु या स्पर्शक होते है अथवा फिर *हेलिओटिस* की भाँति अत्यधिक सुविकसित एवम् झल्लरित पालियों तथा संवेदी स्पर्शक युक्त होते हैं।

2. पैरापोडिया (Parapodia)—ये पाद के सोल या तलवे के युग्मित पार्श्व पिण्ड है। *एप्लीसिया* (*Aplysia*) आदि तरण गैस्ट्रोपोड्स में ये चौड़े पखों के रूप में होते है जबकि पेलैजिक टेरोपॉड्स (pelagic pteropods) में ये चौड़े व पंख के समान होकर पाद का अधिकांश भाग बनाते हैं और शरीर के अगले भाग में स्थित होते हैं जैसे *लिम्नासिना* (*Limnacina*)।

3. पदिक ग्रन्थियाँ (Pedal glands)—अधिकांश गैस्ट्रोपोड्स में एक-कोशिकीय म्यूकस ग्रन्थियों के अतिरिक्त इनके पाद में निम्नलिखित बहुकोशिकीय ग्रन्थियाँ भी होती हैं। ये सतह को चिकना बनाकर जन्तु को रेंगने में सहायता करती है।

(*a*) **लेबियल ग्रन्थियाँ** (Labial glands)—ये अगले सिरे पर खाँचों में स्थित होती है।

(*b*) **सोल ग्रन्थि** (Sole gland)—यह पाद के मध्य भाग में मध्य-अधर रेखा पर खुलती है।

(*c*) **सुप्रापीडल या अधिपदिक ग्रन्थि** (Suprapedal gland)—यह सिर व पाद के अगले सिरे के बीच स्थित होती है।

चित्र १९·७. पखों के समान पैरोपोडिया वाला एप्लीसिया का पाद (Foot of Aplysia showing fin-like parapodia)

चित्र १९·८. पख के समान पैरोपोडिया वाला लिम्नासिना का पाद (Foot of *Limnacina* showing wing-like parapodia)

(*d*) **पश्च ग्रन्थियाँ** (Posterior glands)—ये पाद के पश्च सिरे पर स्थित होती है।

4. अन्य रूपान्तरण (Other modifications)—*पटेला* (*Patella*) आदि स्थानवद्ध व अनुलग्न मौलस्क-प्राणियों में पाद का अधर सोल **चूषक डिस्क** (sucking disc) का कार्य करता है। *बुल्ला* (*Bulla*) में पाद चारों ओर भली प्रकार से विस्तारित होता है जिसके कारण जन्तु गीले रेत में तेजी से रेंगने में समर्थ होता है। स्टाइलीफर (*Stylifer*) आदि परजीवी मौलस्का में पाद अत्यधिक ह्रसित होता है।

क्लास 4. पेलैसिपोडा (Palecypoda)

पेलैसिपोड्स स्थानवद्ध मौलस्क हैं जिनका पाद खोदने वाले अंग का कार्य करने के लिए विभिन्न प्रकार से रूपान्तरित होता है। प्राय: पाद में आंत्र, यकृत, जनन आदि अन्तरंग का कोई भाग होता है।

1. प्ररूपी या हैचेट-नुमा (Hatchet-shaped)—इस प्रकार का पाद पार्श्व से संपीडित या हैचेट-नुमा होता है। यह क्रमिक आकुञ्चन एवम् प्रसरण द्वारा धीरे-धीरे मिट्टी में घुसने के अत्यधिक अनुकूल होता है।

2. आदिम व गैस्ट्रोपोडस (Primitive and gastropodous)—यह आदिम प्रकार का पाद है जो **प्रोटोब्रेंकिया** (Protobranchia) में मिलता है जैसे *न्युकुला* तथा *अर्का* (*Nucula* and *Arca*)। इसमें पाद की अधर सतह चपटी होती है। अनुदैर्घ्य पेशियों के आकुञ्चन से पाद आगे की ओर बढ़ता है जिसके फलस्वरूप शरीर भी आगे की ओर खिंचा चला जाता है।

3. कमानी के समान (Springing)—*ट्राइगोनिया* (*Trigonia*) में पाद बड़ा व सँकरा तथा कमानी के समान होता है। सीधा होने पर यह कूदने वाले अंग की भाँति कार्य करता है।

4. वेधन वाला (Boring)—*माइआ* (*Mya*) आदि क्लैम्स में पाद अल्प-विकसित होता है तथा पीडल छिद्र (pedal opening) सँकरा होता है। तेजी से विल बनाने वाले *टिलाइना* (*Tillina*) आदि मे पाद बड़ा होता है जो बाहर निकलने पर चौड़ी पेशीय चादर बनाता है। यह ब्लेड के समान महीन होती है। गहरे विल बनाने वाले *एन्सिस* (*Ensis*) व *सोलेन* (*Solen*) में यह आपेक्षिक रूप से बड़ा व आगे की ओर स्थित होता है। रात में प्रवेश करने पर इसमे रेत भर जाता है जिससे यह एक पिण्ड के समान फूल जाता है और जन्तु को आगे की ओर खीचता है।

5. लुप्तावेशी (Vestigeal)—स्थानवद्ध पेलैसिपोड्स में पाद लुप्तावेशी होता है। *टेरिडो* (*Teredo*) मे प्रावार मे एक छोटा पीडल छिद्र (pedal aperture) होता है जिसमें से सूक्ष्म पाद बाहर निकलकर विल बनाते समय विल के सिरे को पकड़ लेता है। *ऑस्ट्रिया* (*Ostrea*) में पाद पूर्णत: अनुपस्थित होता है।

6. बाइसस ग्रन्थि (Byssus gland)—अधिकांश पेलैसिपोड्स में बाइसस ग्रन्थि का मिलना उनका एक विशिष्ट लक्षण है। यह ग्रन्थि एक छिद्र द्वारा पाद की मध्य रेखा में खुलती है। पानी के सम्पर्क मे आने पर इस ग्रन्थि का स्राव सख्त होकर दृढ व शृंगिक रेशम के समान धागे बनाता है जो जन्तु को स्थायी या अस्थायी रूप से आसंजन में सहायक होते है। *बाइसस* (*Byssus*) ग्रन्थि को *पिन्ना* व *माइटिलस* (*Pinna* and *Mytilus*) आदि में देखा जा सकता है।

क्लास 5. सेफैलोपोड्स (Cephalopods)

सेफैलोपोड्स में शिकार को पकड़ने के लिए पाद आंशिक रूप से 8–10

भुजाओं (arms) में तथा इसका शेष भाग श्वसन के लिए एक **अधर कीप** (ventral funnel) में रूपान्तरित होता है। **डैकापोड्स** (लॉलिगो : *Loligo* ; सीपिआ : *Sepia*) आदि में पाँच जोड़ी भुजाएँ होती हैं। इनपर सवृंत चूपक होते हैं। चौथी जोड़ी की भुजाएँ **स्पर्शक** (tentacles) बनाती हैं। ये आकार में अत्यधिक बड़ी होती हैं और इनके स्वतन्त्र सिरे पर चूपक होते हैं। **ऑक्टोपोड्स** (ऑक्टोपस : *Octopus*) में केवल चार जोड़ी भुजाएँ होती हैं। **टैट्राब्रैंकिया** (Tetrabranchia) में भुजाओं का अभाव होता है और इनके स्थान पर एक पदीय ताज (pedal crown) होता है जो सिर के चारों ओर अनेक पालियों में विभाजित रहता है। प्रत्येक पालि पर अनेक छोटे व परिग्राही स्पर्शक होते हैं। नर में एक भुजा **निषेचनांग बाहु** (hectocotylized arm) में रूपान्तरित होकर मैथुन अंग का कार्य करती है।

अनुमान है कि कीप या तो समस्त पाद को अथवा फिर एपिपोडिया को निरूपित करती है। जीवित डाइब्रैंकिएटा में कीप पूर्ण विकसित नलिका के रूप में होती है किन्तु नॉटिलस (*Nautilus*) में यह दो पृथक् व पार्श्व पेशीय वलनों के रूप में होती है।
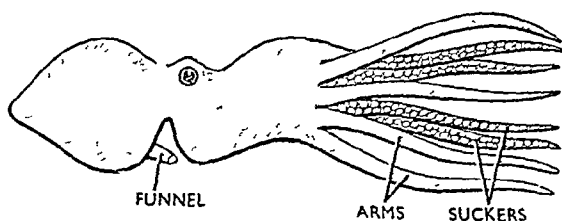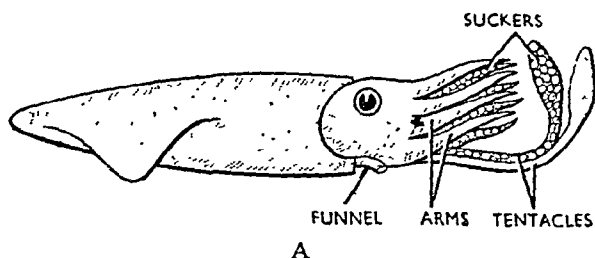
चित्र १६·६. सेफैलोपॉड्स में पाद (Foot in Cephalopods)
A. लॉलिगो (Loligo) ; B. ऑक्टोपस (Octopus)

साइफन या कीप ग्रीवा के पीछे बाहर की ओर तथा अन्दर की ओर प्रावार गुहा में खुलती है। यह प्रावार गुहा का मुख्य निकास है। प्रावार गुहा के आकुञ्चित होने पर पानी साइफन में से तेजी से बाहर निकलता है जिससे जन्तु आगे की ओर बढ़ता है।

सेफैलोपोड्स में पाद की पदिक प्रकृति (pedal nature) के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ के अनुसार पाद सिर के चारों ओर भुजाओं के रूप में निकला रहता है जबकि अन्यों के अनुसार भुजाएँ सिर के उपांग तथा साइफन पाद

का उपांग है। किन्तु भ्रौणिकीय प्रमाणों से ज्ञात होता है कि पाद का अग्र भाग सिर के चारों ओर वृद्धि करके चूषक युक्त भुजाएँ बनाता है तथा पाद का पिछला भाग साइफन बनाता है। पीडल गैंगलिओन भुजाओं व साइफन को तन्त्रिकाएँ भेजता है।

प्रश्न 120. व्यावर्तन से क्या अभिप्राय है ? पाइला में व्यावर्तन श्वसन संस्थान, तन्त्रिका संस्थान तथा जनन संस्थान को किस प्रकार प्रभावित करता है।

What is torsion ? How has it affected the respiratory system, the nervous system and reproductive system in *Pila* ? (*Jiwaji 1970*)

प्रश्न 121. गैस्ट्रोपोड्स में व्यावर्तन एवम् अव्यावर्तन प्रपंच का वर्णन कीजिये।

Describe the phenomenon of torsion and detorsion in gastropods. (*Saurashtra 1973*)

व्यावर्तन (Torsion)

गैस्ट्रोपोड लारवा के वर्धन के अन्तर्गत आन्तरांग पिण्डक के व्यावृत दिशा में 180° पर घमने की क्रिया को व्यावर्तन (torsion) कहते है। इस घूर्णन के फलस्वरूप मेण्टल गुहा का पश्च भाग, गुदा तथा गुदाद्वार इत्यादि शरीर के पिछले भाग से अग्रिम भाग में आ जाते है। अतः गुदाद्वार, मुखद्वार के समीप आ जाता है। व्यावर्तन के अन्तर्गत निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हे :—

1. मेण्टल गुहा का विस्थापन (Displacement of mantle cavity)—पीछे की ओर स्थित मेण्टल गुहा तथा इससे सम्बद्ध भाग आगे की ओर विस्थापित हो जाते है तथा मेण्टल गुहा सिर के ठीक समीप खुलती है।
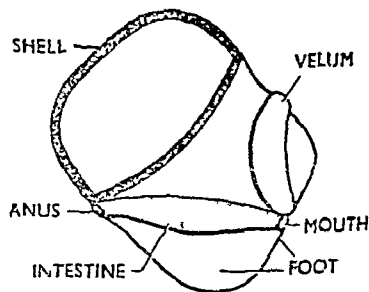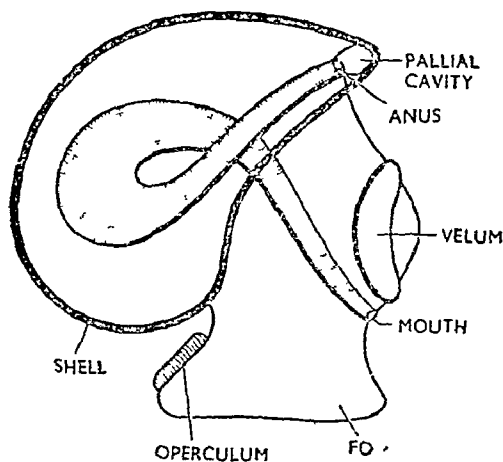
चित्र १६·१०. व्यावर्तन का चित्रीय निरूपण
(Diagrammatic representation of torsion)

2. अंगों की आपेक्षिक स्थिति में परिवर्तन (Changes in relative position of organs)—व्यावर्तन से पूर्व लारवा में गुदाद्वार, क्लोम तथा वृक्क छिद्र (renal apertures) पीछे की ओर उन्मुख रहते है तथा अलिन्द निलय के पीछे स्थित होते है। व्यावर्तन मे रचनाएँ सामने की ओर उन्मुख हो जाती है तथा अलिन्द निलय के आगे विस्थापित हो जाते है। आमाशयिक कोष का आरम्भिक पश्च तल विस्थापित होकर अगला तल बनाता है तथा दाहिनी ओर स्थित मूल अंग व्यावृत होकर बाँयी ओर आ जाते है।

3. खोल एवम् आन्तरांग पिण्डक का कुण्डलन (Coiling of shell and visceral mass)—आन्तरांग पिण्डक तथा खोल व्यावृत होकर एण्डोगैस्ट्रिक बन जाते है।

4. आहार नाल का पाशनुमा होना (Looping of alimentary canal)—प्रारम्भिक सीधी आहार-नाल लूप बनाती है तथा पीछे की ओर स्थित गुदाद्वार की
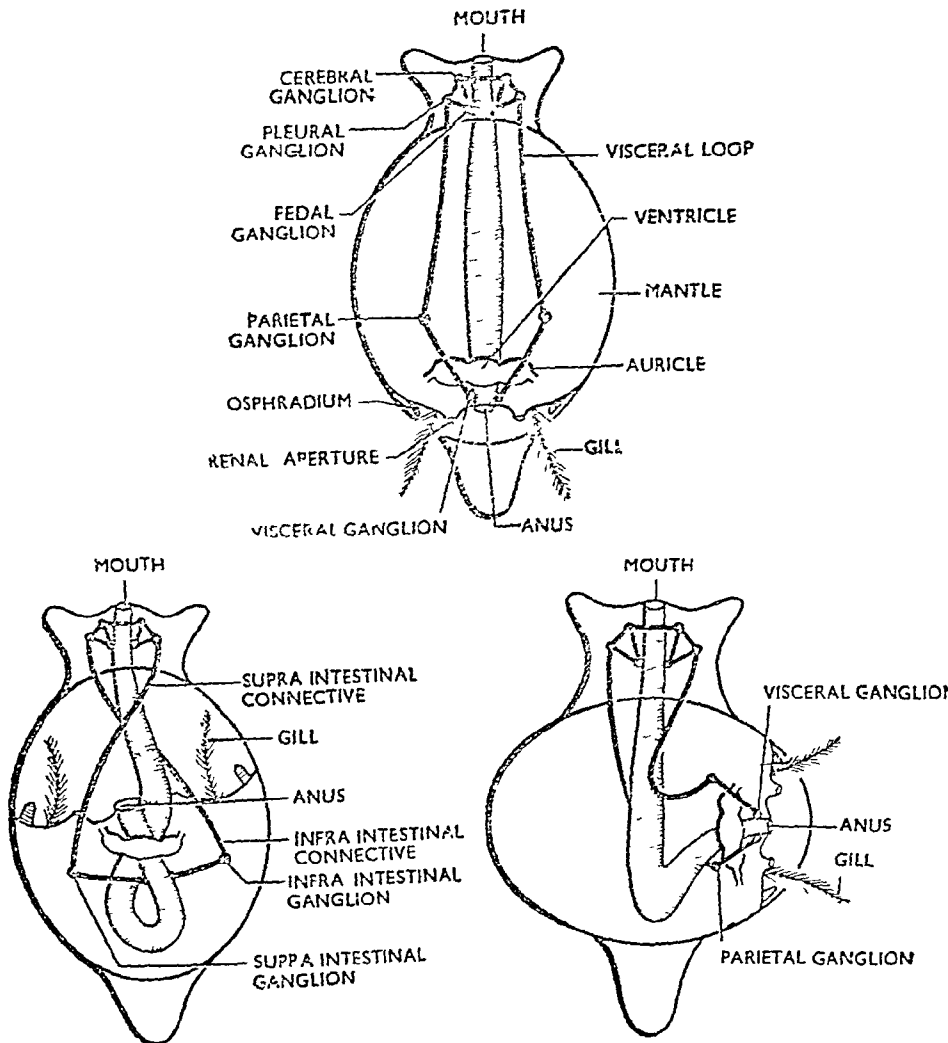
चित्र १६·११. गैस्ट्रोपोड में व्यावर्तन की क्रिया का चित्रीय निरूपण
(Torsion in Gastropods)

स्थिति अग्रीय हो जाती है।

5. अंगों का अपक्षय तथा सममिति का लोप होना (Atrophy of structures and loss of symmetry)—गुदाद्वार पिछले सिरे से विस्थापित होकर पेलियल गुहा की दाहिनी ओर आ जाता है जिससे सममिति भंग हो जाती है।

व्यावर्तन के फलस्वरूप प्राथमिक रूप से स्थित बायीं ओर के अंगों का अपक्षय हो जाता है जिससे अब केवल उनके दाहिनी ओर के प्रतिरूप अंग ही शेष रहते हैं।

6. तन्त्रिका संस्थान का व्यावर्तन (Twisting of nervous system)—व्यावर्तन के फलस्वरूप विसरल गैंगलिओन के अतिरिक्त अन्य सभी गैंगलिआ एवम् उनकी तन्त्रिकाएँ शरीर के अग्र भाग की ओर आ जाती हैं क्योंकि पाद शीर्ष के नीचे स्थित होता है। अतः प्ल्यूरल तथा पीडल गैंगलिआ एक-दूसरे के समीप आ जाते हैं। प्ल्यूरो-विसरल संयोजिनियाँ व्यावृत होकर '8' की आकृति ग्रहण कर लेती है। दाहिनी संयोजिनी **ऊर्ध्व-आन्त्र तन्त्रिका** (supraintestinal nerve) तथा बायीं संयोजिनी **अवान्त्र तन्त्रिका** (infraintestinal nerve) बनाती है। ये दोनों तन्त्रिकाएँ क्रमशः आन्त्र के ऊपर व नीचे स्थित होती हैं।

व्यावर्तन क्रिया (Process of Torsion)

व्यावर्तन की यथार्थ क्रिया का सही ज्ञान नहीं है। व्यावर्तन से पूर्व लारवा पूर्णतया सममित होता है तथा आहार नाल सीधी स्थित होती है। गुदाद्वार पश्च सिरे पर मध्य-पृष्ठ रेखा पर मेण्टल गुहा में पीछे की ओर होता है। अधर नमन के फलस्वरूप गुदाद्वार मुख के समीप आ जाता है जिससे आहार नाल व्यावृत हो जाती है। प्रारम्भ में खोल तथा आन्तरांग पिण्डक शंकु के समान हो जाते हैं किन्तु इसके बाद ये सर्पिलाकार कुण्डलनों की आकृति ग्रहण कर लेते हैं।

अधर नमन (ventral flexure) के तुरन्त बाद पार्श्व व्यावर्तन होता है जिससे पृष्ठ खोल की स्थिति अधर हो जाती है। दोनों ओर असमान वृद्धि होने के कारण ही ऐसा होता है। सामान्यतः बायीं ओर स्थित अंगों में वृद्धि सामान्य होती है किन्तु दायीं ओर के अंगों में वृद्धि की गति मन्द हो जाती है जिससे बायीं ओर के अंग दाहिनी ओर विस्थापित हो जाते हैं तथा मेण्टल गुहा व पेलियल कॉम्प्लेक्स दाहिनी ओर स्थानान्तरित हो जाते हैं जिससे इनकी स्थिति अग्रीय हो जाती है।

पाइला में व्यावर्तन का प्रभाव (Effect of Torsion in Pila)

1. पाइला में व्यावर्तन के फलस्वरूप दाहिनी ओर के अंगों का अपक्षय हो जाता है। दाहिनी ओर का क्लोम विलुप्त हो जाता है तथा बायीं ओर का क्लोम मोनोपेक्टिनेट (monopectinate) हो जाता है अर्थात् इसमें क्लोम तन्तु केवल एक ही कतार मे विन्यसित होते हैं।

2. तन्त्रिका संस्थान व्यावृत होकर '8' की आकृति ग्रहण कर लेता है तथा अधिकांश गैंगलिया शरीर के अग्रिम भाग की ओर आ जाते हैं। प्ल्यूरल तथा पीडल गैंगलिया समेकित होकर सेरिब्रल गैंगलिया के ठीक नीचे स्थित हो जाते हैं और मुखपिण्डक के चारों ओर एक वलय बनाते हैं।

3. दाहिनी ओर के जनदों का भी अपक्षय हो जाता है।

प्रश्न 122. फाइलम मौलस्का के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन करिये। विभिन्न क्लासों के लक्षण एवम् उदाहरण देते हुए फाइलम मौलस्का का वर्गीकरण करिये। इसके आर्थिक महत्त्व पर भी प्रकाश डालिये।

What are the chief characters of phyllum Mollusca? Classify mollusca upto classes giving characters and examples. What is the economic importance of this group? *(Kanpur 1972)*

विशिष्ट लक्षण एवम् वर्गीकरण (General Characters and Classification)

कृपया प्रश्न 94 देखिये।

आर्थिक महत्त्व
(Economic Importance)

1. भोजन के रूप में (As food)—अनेक गैस्ट्रोपोड्स मनुष्य व अन्य जन्तुओं का भोजन है। यूरोप के अनेक देशों में *Helix pomatia* को भोजन के लिए संवर्धित किया जाता है। U.S.A. के कुछ भागों में हेलिओटिस (*Haliotis*) का माँस खाया जाता है। दक्षिणी भारत के कुछ भागों में पाइला (*Pila*) खाने के काम आता है। सीप (oysters), स्कैलोप्स (scallops), समुद्री मसल्स (sea-mussels) तथा समुद्री क्लैम्स (sea-clams) आदि अनेक पेलैसिपोड्स से मनुष्य को अति स्वादिष्ट एवम् पौष्टिक भोजन प्राप्त होता है। इसी कारण विश्व के अनेक भागों में इनकी खेती की जाती है। U.S.A. में इनकी खेती ने एक बड़े उद्योग का रूप ले लिया है। पेलैसिपोड्स अन्य जन्तुओं का भोजन भी बनाते हैं। माइटिलस इडुलिस (*Mytilus edulis*) सामान्य रूप से खाये जाने वाले मसेल, *Chowder* के रूप में काम आता है जबकि पेक्टेन (*Pecten*) की ऐडक्टर पेशियों को आटे में लपेट कर भून कर खाया जाता है। सीपों के खोल कुक्कुट-पालन में भोजन के रूप में काम आते हैं।

2. सिक्कों के रूप में (As currency)—अमेरिका के रेड-इण्डियन व अफ्रीका के कुछ आदिवासियों द्वारा डेण्टेलियम (*Dentalium*) व सिप्रिआ (*Cyprea*) के खोल सिक्कों के रूप में प्रयोग में आते है। मोती-सीप की मोतियों के लिए खेती की जाती है।

3. औषधि के रूप में (As medicine)—दुखती आँखों में पाइला का दवाई के रूप में प्रयोग किया जाता है।

4. सजावटी सामान के रूप में (As ornaments)—गैस्ट्रोपोड्स के खोल साज-सजावट के सामान व जेवरात बनाने के काम आते है। गैस्ट्रोपोड्स के खोल से सीप के बटन बनाये जाते है। कुछ प्रकार की सीपियों के खोल से मोती प्राप्त होते है।

5. चूना बनाने के काम में (In lime manufacture)—समुद्र के तल पर एकत्रित होने वाले पेलैसिपोड्स के मलवे से चूना बनाया जाता है।

6. हानिकारक मौलस्क (Harmful molluscs)—स्नेल व स्थलीय स्लग आदि अनेक गैस्ट्रोपोड्स पौध व पेड़-पौधों के कोमल व रसीले भागों को खाकर बाग-बगीचों, फलों के पेड़ों व मशरूम आदि को अत्यधिक हानि पहुँचाते है। परभक्षी गैस्ट्रोपोड्स जीवित खोलों को वेधकर अन्दर के माँस का भक्षण करते हैं। इसी प्रकार वेधन करने वाले पेलैसिपोड्स भी अत्यधिक हानि पहुँचाते है। टेरिडो (*Teredo*) लकड़ी के लठ्ठों व काष्ठ तथा उससे बने जहाजों के खोल को क्षति पहुँचाते है।

बक्किनम (*Buccinum*), म्यूरेक्स (*Murex*) तथा नॉटिका (*Nortica*) आदि अन्य मौलस्कों का भक्षण करते है। यूरोसाल्पिक्स (*Urosalpinx*) एक समुद्री स्नेल है जो मोती उद्योग को काफी हानि पहुँचाता है। कुछ स्नेल फैशियोला (*Fasciola*) व सिस्टोसोमा (*Schistosoma*) आदि परजीवी चपटे-कृमियों के लिए मध्यग पोषक का कार्य करते है।

प्रश्न 123. निम्नलिखित के सुन्दर एवम् नामांकित चित्र बनाइये

(Draw neat and labelled diagrams of the following, no description is needed :

(i) लेमीलिडेन्स का हृदय के भाग से अनुप्रस्थ काट (T.S. Lamellidens through heart) (*Agra 1967* ; *Luck. 56, 59, 61, 63* ; *Meerut 68, 71*)

कृपया चित्र 15·5 देखिये ।

(ii) पाइला का तन्त्रिका-तन्त्र (Nervous system of Pila)

(*Luck. 1954, 63* ; *Agra 1966* ; *Vikram 61* ; *R.S. 71*)

कृपया चित्र 14·14 देखिये ।

(iii) पाइला की मेण्टल गुहा में दिखायी देने वाले अंग (Organs seen in the mantle cavity of *Pila*)

(*Luck. 1957, 59, 61, 68* ; *Kanpur 69* ; *Meerut 71*)

कृपया चित्र 14·3 देखिये ।

(iv) मौलस्का के खोल का उदग्र काट (V.S. shell of Mollusca)

(*Agra 1966, 72*)

कृपया चित्र 15·1 देखिये ।

(v) ग्लोकीडियम लारवा (Glochidium larva)

कृपया चित्र 15·11 देखिये ।

(vi) शरीर के मध्य भाग से यूनिओ की अनुप्रस्थ काट (T.S. *Unio* through middle of body) (*Kanpur 1969, 70, 72*)

कृपया चित्र 15·5 देखिये ।

(vii) लेमीलिडेन्स का रुधिर परिवहन संस्थान (Blood vascular system of *Lamellidens*) (*Agra 1970*)

कृपया चित्र 15·8 देखिये ।

(viii) पाइला के नेत्र का ऊर्ध्वाधर सेक्शन (V.S. eye of *Pila*)

(*Raj. 1953*)

कृपया चित्र 14·16 देखिये ।

अध्याय 17

फाइलम इकाइनोडर्मेटा
(Phylum Echinodermata)
(G., *Echinos*, spiny ; *derma*, skin)

प्रश्न 124. फाइलम इकाइनोडर्मेटा का वर्गीकरण कीजिये तथा प्रत्येक क्लास के विशिष्ट गुण एवम् उदाहरण दीजिये ।

Classify phylum Echinodermata giving diagnostic characters and examples of each class. *(Luck. 1958, 64, 67, 71 ; Bombay 69 ; Delhi 70 ; Jiwaji 69, 73 ; Agra 70 ; Nagpur 69 ; Gorakhpur 71 ; Punjab 67 ; Vikram 67, 69 ; Osmania 73)*

इकाइनोडर्म अत्यन्त साधारण व बड़े आकार के समुद्री जन्तु हैं जिनका प्राचीन काल से ही विवरण प्राप्त है । **Jacob Klin** (1734) ने केवल इकाइनॉयड (Echinoids) के लिए इकाइनोडर्मेटा का प्रयोग किया था किन्तु बाद में इसमें कुछ अन्य सम्बन्धित जन्तुओं को भी रख दिया गया है । इनकी सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

सामान्य विशेषताएँ (General Characters)

(*i*) ये **अरीय सममित** (radially symmetrical) जन्तु हैं । ये अधिकतर **पंचतयी** (pentamerous) होते हैं परन्तु इनका लारवा द्विपार्श्व सममित होता है ।

(*ii*) शरीर गोलाकार, बेलनाकार अथवा सितारे के समान होता है । मध्य बिम्ब (central disc) से पाँच अक्षों में पाँच भुजाएँ निकलती हैं ।

(*iii*) शरीर पर सिर नहीं होता किन्तु इसमें **पृष्ठ या अपमुख तल** (dorsal or aboral surface) तथा **अधर या मुखवर्ती तल** (ventral or oral surface) स्पष्ट होते हैं । मुखवर्ती तल **गत्यर्थ** (ambulacral) तथा **अन्तरागत्यर्थ** (inter-ambulacral) भागों में बँटा रहता है ।

(*iv*) ये खण्डविहीन, त्रिस्तरीय तथा गुहयीय (unsegmented, triploblastic and coelomate) जन्तु हैं ।

(*v*) देहभित्ति के डर्मिस भाग में कैल्शियम कार्बोनेट की बनी पट्टियाँ होती हैं जो मीसोडर्म की कोशिकाओं से विकसित होती हैं । इन पर काँटे होते हैं जो त्वचा से बाहर निकले रहते हैं ।

(*vi*) भ्रूणीय देहगुहा (embryonic coelom) **जलवाहिनी तन्त्र** (water-vascular system) में रूपान्तरित हो जाती है । इसमें **गत्यर्थ उपांग या नाल पाद** (ambulacral appendages or tube feet) पाये जाते हैं । ये श्वसन तथा प्रचलन में सहायक होते हैं ।

(*vii*) रक्त परिवहन-तन्त्र कम विकसित होता है ।

(*viii*) श्वसन के लिए **क्लोम** (gills) या **अंकुर** (papillae) पाये जाते हैं जो डर्मिस से बाहर झाँकते रहते हैं ।

(*ix*) तन्त्रिका-तन्त्र सरल होता है। इसमें मुख के चारों ओर एक सरकम-ओरल रिंग (circum-oral ring) होता है जिससे रेडियल तन्त्रिकाएँ निकलकर शरीर के समस्त भागों को जाती हैं।

(*x*) नर तथा मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं में पाये जाते हैं तथा वर्धन में लारवा अवस्था मिलती है।

वर्गीकरण (Classification)

फाइलम इकाइनोडर्मेटा को दो उपफाइलमों में बाँटा गया है :—

उपफाइलम 1. एल्युथेरोजोआ (Elutherozoa)

(*i*) ये अवृन्त तथा स्वतन्त्रतापूर्वक तैरने वाले जन्तु हैं।

(*ii*) इनका मुखवर्ती तल नीचे की ओर होता है। अतः मुख अधर तल पर तथा गुदाद्वार पृष्ठतल पर स्थित होता है।

(*iii*) **ट्यूब फीट** (tube feet) दो पंक्तियों में विन्यसित होते हैं तथा इनके स्वतन्त्र दूरस्थ सिरों पर चूषक होते हैं। ये चलन में सहायता करते हैं।

यह उपफाइलम चार क्लासों में बाँटा गया है।

क्लास 1. ऐस्टीरोइडिया (Asteroidea)
(Gr., *aster*, star)

(*i*) शरीर सितारे के आकार का होता है। इसमें केन्द्रीय बिम्ब (central disc) होती है जिससे पाँच भुजाएँ निकली रहती है किन्तु भुजाएँ बिम्ब से पूर्णतया अलग नहीं होतीं। अतः ये **सितारा मछलियाँ** (starfishes) कहलाती हैं।

(*ii*) भुजाएँ खोखली होती हैं तथा इनमें **जनन अंग, आहार-नाल, सीलोम** तथा अन्य **विसरल अंग** पाये जाते हैं।

(*iii*) **गत्यर्थ गुहा** ट्यूब फीट में खुलती है।

(*iv*) **मुखवर्ती** तथा **अपमुख** (oral and aboral) तल स्पष्ट होते हैं। मुखवर्ती तल पर मुख तथा अपमुख तल पर गुदाद्वार होता है।

(*v*) **मेड्रीपोराइट** (madreporite) भी अपमुखीय होता है।

(*vi*) त्वचा में कैल्शियम कार्बोनेट की बनी पट्टिकाएँ होती हैं जिन पर काँटे लगे होते हैं।

उदाहरण : एस्टीरियास (*Asterias*), एस्ट्रोपेक्टेन (*Astropecten*), पेण्टासीरोस (*Pentaceros*), ल्यूइडिया (*Luidia*), सोलेस्टर (*Solaster*) इत्यादि।

क्लास 2. ऑफियुरोइडिया (Ophiuroidea)
(Gr., *Ophis*, snake)

1. शरीर चपटा तथा सितारे के आकार का होता है जो एक-केन्द्रीय बिम्ब (central disc) तथा उससे निकलने वाली पाँच भुजाओं से बनता है। भुजाएँ बिम्ब से अलग स्पष्ट दिखायी देती हैं। ये अधिकतर **ब्रिटल स्टार** (brittle stars) कहलाती हैं।

2. भुजाएँ खोखली तथा लचीली होती हैं।

3. **मुखवर्ती** या **अपमुख** तल (oral and aboral surface) स्पष्ट होते हैं। **गुदाद्वार** (anus) अनुपस्थित होता है।

4. गत्यर्थ खाँच (ambulacral groove) तथा पैडिसिलेरियाई (pedicellariae) अनुपस्थित होते हैं।

5. मेड्रिपोराइट (madreporite) अण्डाकार होता है।

6. इनका लारवा **ऑफियोप्लूटियस** (ophiopluteus) कहलाता है।

उदाहरण : ऑफियोलेपिस (*Ophiolepis*), ऑफियोडर्मा (*Ophioderma*), एम्फियूरा (*Amphiura*), डयुरेल (*Euryale*) तथा नीयोप्लैक्स (*Neoplex*) इत्यादि।

क्लास 3. इकाइनोइडिया (Echinoidea)

(Gr., *echinos*, spiny)

1. शरीर गोलाकार, हृदयाकार अथवा बिम्ब के आकार का होता है।

2. **बाह्य कंकाल** कैल्शियम की बनी पट्टियों के रूप में होता है जिन पर काँटे लगे रहते है। अत: ये साधारणतया **सी-अरचिन** (sea-urchin) कहलाते हैं।

3. भुजाएँ अनुपस्थित होती हैं। गत्यर्थ खाँचें भी अनुपस्थित होती हैं किन्तु **गत्यर्थ** तथा **अन्तरागत्यर्थ स्थान** (ambulacral and inter-ambulacral regions) पाये जाते हैं।

4. **मुख** मुखवर्ती तथा **गुदाद्वार** उपमुखीय होते हैं।

5. **पेडिसिलेरियाई** (pedicellariae) वृन्तयुक्त होते हैं।

6. लारवा **प्लूटियस** (pluteus) या **इकाइनोप्लूटियस** (echinopluteus) होता है।

उदाहरण : इकाइनस या सी-अरचिन (*Echinus* or sea-urchin), क्लाईपिएस्टर या केक-अरचिन (*Clypeaster* or cake-urchin), इकाइनेरेकाइनस (*Echinarachinus*) तथा इकाइनोकार्डियम (*Echinocardium*) इत्यादि।

क्लास 4. होलोथूरोइडिया (Holothuroidea)

(Gr., *holothurion*, sea cucumber)

1. शरीर सॉसेज-रूप (sausage-shaped) या कृमिवत् (vermiform) होता है। शरीर अग्र-पश्च दिशा (antero-posterior direction) में लम्बा होता है।

2. **मुख** शरीर के अग्रिम सिरे पर तथा **गुदाद्वार** शरीर के पिछले सिरे पर होता है।

3. मुख के चारों ओर प्रतिकर्षी स्पर्शकों (retractile tentacles) का एक चक्र होता है जो ट्यूब फीट के रूपान्तरण से बनते है।

4. देहभित्ति दृढ तथा चर्म के समान (leathery) होती है। **बाह्य कंकाल** कैल्शियम कार्बोनेट की बनी कण्टिकाओं के रूप में होता है जो त्वचा के भीतर धँसी रहती है।

5. भुजाएँ अनुपस्थित होती हैं परन्तु लम्बवत् पेशियों की पाँच पट्टियों (bands) के रूप मे पाँच अक्ष (radii) होते हैं। ये त्वचा के नीचे पाये जाते है।

6. **ट्यूब फीट** अधिकतर उपस्थित होते हैं।

7. **क्लोएका** (cloaca) में श्वसन वृक्ष (respiratory tree) होता है।

8. लारवा **ऑरिक्युलेरिया** (auricularia) कहलाता है।

उदाहरण : होलोथूरिया या सी-कुकुम्बर (*Holothuria* or sea-cucumber), थायोन (*Thyone*), डाइमा (*Deima*), पीलेगोथूरिया (*Pelagothuria*), कुकुमेरिया (*Cucumaria*).

सबफ़ाइलम 2. पालमेटोजोआ (Palmatozoa)

1. वृन्तयुक्त (stalked) तथा स्थिर जन्तु हैं जो अपने अपमुख तल अथवा

अपमुख वृन्त द्वारा आधार से चिपके रहते हैं।

2. मुखवर्ती तल ऊपर की ओर तथा अपमुख तल नीचे की ओर होता है। मुख तथा गुदाद्वार पृष्ठतल पर स्थित होते हैं।

3. ट्यूब फीट अनुपस्थित होते हैं परन्तु नालाकार पक्ष्मयुक्त उपांग (tubular ciliated appendages) अथवा स्पर्शक उपस्थित होते है। इन पर चूषक नहीं होते।

यह सबफाइलम चार क्लासों में बाँटा गया है :—

क्लास 1. सिस्टोइडिया (Cystoidea)

1. ये विलुप्त प्राणी (extinct animals) है।
2. शरीर अनियमित तथा अरीय सममित होता है।

उदाहरण : कैरियोक्रिनाइट्स (*Caryocrinites*)

क्लास 2. ब्लास्टोइडिया (Blastoidea)

1. ये विलुप्त प्राणी (extinct forms) हैं।
2. शरीर नियमित तथा अरीय सममित होता है।
3. गुदाद्वार पृष्ठतल पर तथा केन्द्र से दूर स्थित होता है।

उदाहरण : पेण्ट्रीमाइट्स (*Pentremites*)।

क्लास 3. इड्रियस्टीरोइडिया (Edriasteroidea)

1. विलुप्त प्राणी है।
2. शरीर गोलाकार या बिम्बाकार (disc-shaped) होता है।
3. गुदाद्वार तथा मेड्रीपोराइट मुखवर्ती तल पर पाये जाते है।

उदाहरण : स्टोमेटोसिस्टाइटीज (*Stomatocystites*)।

4. क्रिनोइडिया (Crinoidea)

1. शरीर पार्श्व सममित होता है।
2. भुजाएँ पाँच होती है जो अपने आधार पर ही दो भागों में बँट जाती हैं।
3. वृन्त उपस्थित होता है किन्तु प्रौढ़ जन्तुओं में अनुपस्थित भी हो सकता है।
4. गुदाद्वार पृष्ठतल पर स्थित होता है। मुख से पाँच गत्यर्थ खाइयाँ (ambulacral grooves) निकलकर भुजाओं में पहुँचती है।
5. थीका के आधार पर बेसल पट्टियाँ (basal plates) होती हैं, किन्तु इन्फ्राबेसल पट्टियाँ (infrabasal plates) पायी भी जा सकती है और नहीं भी।

उदाहरण : एण्टेडोन (*Antedon*), मेटाक्रिन्स (*Metacrins*) पेन्टाक्रिन्स (*Pentacrins*), हाइबोक्राइनस (*Hybocrinus*) इत्यादि।

प्रश्न 125. निम्नलिखित प्राणियों को वर्गीकरण के क्रम में रखिये तथा प्रत्येक पर टिप्पणी लिखिये।

Assign the following animals to their systematic position and add a note on each of them.

1. ऑफिओडर्मा (Ophioderma)

(ब्रिटल-स्टार : Brittle star) (*Raj. 1965 ; Nag. 73*)

फाइलम	—	इकाइनोडर्मेटा (*Echinodermata*)
सबफाइलम	—	एल्यूथेरोजोआ (*Eleutherozoa*)
क्लास	—	ऑफियूरोइडिया (*Ophiuroidea*)
आर्डर	—	जाइगोफ्यूरी (*Zygophiurae*)

ऑफिओडर्मा समुद्र के उथले जल में पाया जाने वाला स्वच्छन्द इकाइनोडर्म प्राणी है। इसका शरीर हरे या भूरे रंग का होता है जिस पर एक पचभुजाकार डिस्क तथा पाँच लम्बी पतली व लचीली भुजाएँ होती हैं। भुजाएँ ठोस एवम् मुक्त रूप से हिलने-डुलने में समर्थ होती है। ये कण्टकीय भुज-पट्टिकाओं (arm plates) द्वारा ढकी रहती हैं। अप-मुखीय तल महीन कण्टिकाओं द्वारा ढका रहता है तथा इस पर पाँच जोड़ी **अरीय शील्ड** (radial shields) होती है। मुखवर्ती तल पर भी कण्टि-काएँ होती हैं तथा इस पर केन्द्र में एक पंचभुजाकार **मुख** होता है, जो चारों ओर **मुखवर्ती पैपिली** (oral papillae) द्वारा घिरा रहता है। ऐम्बुलैक्रल खाँचें अस्थि-काओं (ossicles) द्वारा ढकी रहती हैं तथा ये **मुखवर्ती भुज-शील्ड** (oral arm-shields) कहलाती है। **ट्यूब फीट** (tube feet) भुजाओं के अवर पार्श्व में दो कतारों में होते हैं। दो क्रमिक भुजाओं के बीच के स्थानों में तीन **बर्सल छिद्र** (bursal slits) होते है। **मेड्रीपोराइट** मुखवर्ती होता है किन्तु गुदाद्वार नहीं होता।
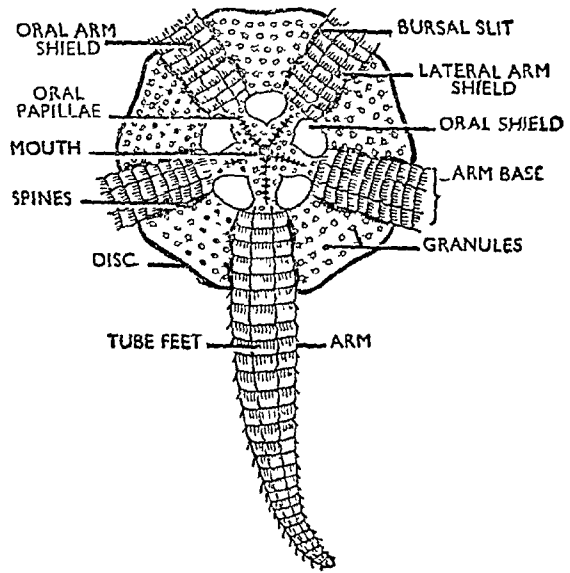
चित्र १७·१. ऑफिओडर्मा (*Ophioderma*)

2. होलोथूरिया (Holothuria)

(सी-अर्चिन : Sea-urchin) (*Vikram 1968*)

फाइलम	—	इकाइनोडर्मेटा (*Echinodermata*)
सबफाइलम	—	एल्यूथेरोजोआ (*Elutherozoa*)
क्लास	—	होलोथूरोइडिया (*Holothuroidea*)
आर्डर	—	एस्पिडोकाइरोटा (*Aspidochirota*)

होलोथूरिया विश्व के लगभग सभी भागों में समुद्री तट के साथ धीरे-धीरे रेंगता हुआ पाया जाता है। यह कीचड़ में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों का सेवन करता है। इसका शरीर लम्बा व काले रंग का होता है तथा इसके अगले सिरे पर मुख और पिछले सिरे पर गुदाद्वार होता है। इसमें ऐम्बुलैक्रल (ambulacral) तथा इण्टरऐम्बुलैक्रल क्षेत्र स्पष्ट नही होते। प्रतिकर्षी ट्यूब फीट घने रूप से पूरे शरीर पर छितरे रहते है। पृष्ठ ट्यूब फीट पैपिलेट होते है तथा अवर ट्यूबफीट चलन में सहायता करते है। शरीर पर केल्केरियस अस्थिकाओं से युक्त चर्मीला आवरण होता है किन्तु इन पर कण्टक तथा पैडिसेलेरी नही होते। मुख के चारों ओर एक वृत्ताकार ओष्ठ, पेरिस्टोमियल मेम्ब्रेन तथा 20—39 अशाखित व ढालाकार स्पर्शकों का एक चक्र होता है। उत्तेजित होने पर होलोथूरिया **अपना श्वसन वृक्ष बाहर निकालता है जिसके म्यूकस में शत्रु उलझकर फँस जाता है।** इसके बाद नया

श्वसन वृक्ष विकसित हो जाता है। होलोथूरिया में पुनर्जनन की शक्ति होती है

3. एन्टेडोन (Antedon)

(*Lucknow 1963 ; Meerut 72*)

फाइलम	—	इकाइनोडर्मेटा (*Echinodermata*)
सबफाइलम	—	पेल्मेटोजोआ (*Pelmatozoa*)
क्लास	—	क्रिनोइडिया (*Crinoidea*)
आर्डर	—	डाइसाइक्लिका (*Dicyclica*)

एण्टेडोन, जो साधारणतया feather star कहलाता है, वृन्तविहीन, स्थिर इकाइनोडर्म है जो पक्ष्मगुच्छ (cirri) द्वारा समुद्री पदार्थों पर चिपका रहता है। इसके शरीर को दो भागों मे बाँटा जा सकता है। मध्य में प्यालेनुमा बिम्ब (disc) अथवा केलिक्स (calyx) होता है जिससे 5 भुजाएँ निकलती हैं। बिम्ब का मुखवर्ती तल (या एक्टाइनल सतह) ऊपर को रहता है तथा अपमुखीय तल (या एबेक्टाइनल) नीचे की ओर होता है। अपमुखीय तल पर पतले, मुड़े हुए, लचीले तथा खण्डयुक्त पक्ष्म गुच्छ होते हैं। ये पक्ष्मगुच्छ पचभुजीय अस्थिका (centrodorsal ossicle) के चारों ओर लगे रहते हैं। पक्ष्मगुच्छ द्वारा जन्तु आधार से चिपका रहता है।

चित्र १७·२. होलोथूरिया (*Holothuria*)

मुखवर्ती तल मुलायम तथा लचीला होता है तथा इस पर सूक्ष्म काँटे लगे
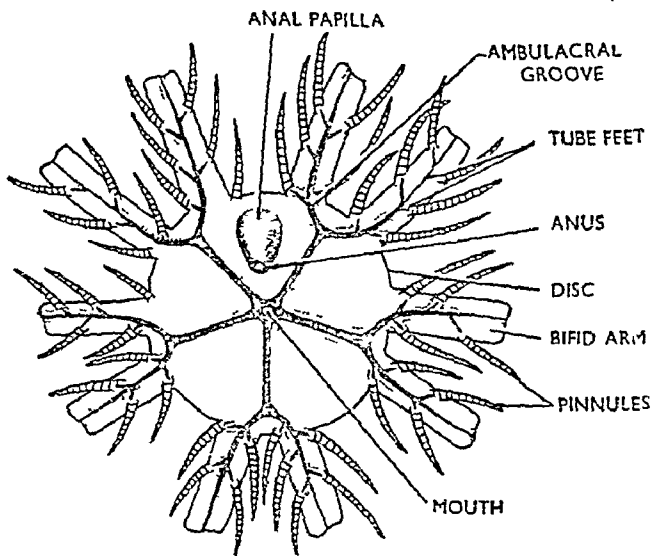
चित्र १७·३. एण्टेडोन रोजेशिया का मुखवर्ती दृश्य
(Oral view of *Antedon rhozesia*)

होते हैं। इसके मध्य में मुख होता है जिससे पाँच पक्ष्माभिकी झिरियाँ (ciliated groove) निकलती हैं। ये गत्यर्थ झिरियाँ (ambulacral grooves) कहलाती हैं जो पाँच भुजाओं के आधार की ओर जाती हैं। गुदाद्वार भी मुखवर्ती तल पर ही एक उभार पर स्थित होता है। यह दो गत्यर्थ झिरियों के बीच पाया जाता है। बिम्ब का मुखवर्ती तल कैल्शियम कार्बोनेट की बनी अस्थिकाओं (ossicles) से ढका रहता है।
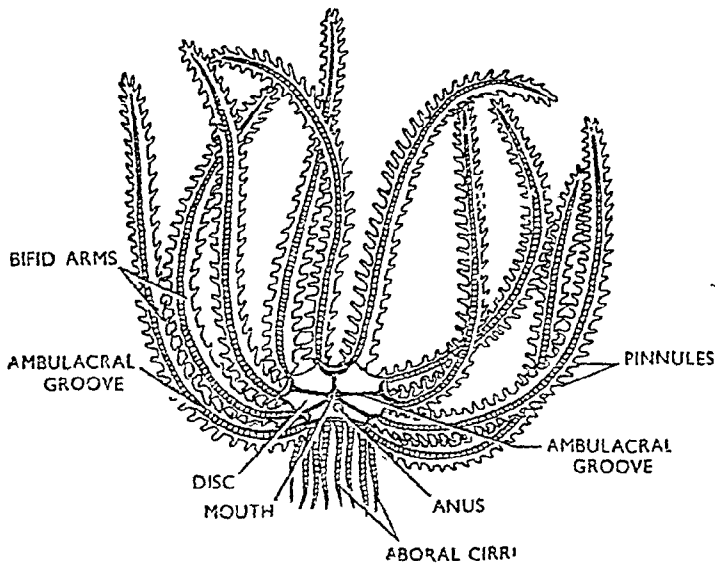
चित्र १७·४. एण्टेडोन रोजेशिया का पार्श्व दृश्य
(Lateral view of *Antendon rhozesia*)

भुजाएँ बिम्ब के अवर या अपमुखीय तल से निकलती हैं तथा प्रत्येक भुजा तुरन्त ही दो शाखाओं में बँट जाती है। प्रत्येक शाखा कैल्शियम कार्बोनेट की अस्थिकाओं या प्लेटों से ढकी रहती है। ये अस्थिकाएँ एक-दूसरी से जुड़ी रहती हैं तथा इनके दोनों ओर पतले काँटों या पिन्यूलों (pinnules) की एक-एक पंक्ति होती है। भुजा की मध्य रेखा के साथ अन्तिम सिरे तक गत्यर्थ झिर्री फैली रहती है तथा इसकी एक-एक शाखा प्रत्येक पिन्यूल में जाती है। गत्यर्थ झिर्री पक्ष्माभिकी (ciliated) होती है तथा इसके साथ अंगुली के आकार के पक्ष्माभिकी पीडिया की दो पंक्तियाँ होती हैं। इन पर चूषक नहीं होते। ये श्वसन तथा संवेदन का कार्य करते हैं। काँटे, पेडिसिलेराई तथा मेड्रीपोराइट अनुपस्थित होते हैं।

एण्टेडोन स्थिर तथा सुस्त जन्तु है जो अधिकतर चट्टानों इत्यादि से अस्थायी रूप से चिपका रहता है। इसमें पुनः निर्माण (regeneration) की क्षमता होती है।

4. सितारा-मछली (Starfish)

(*Vikram 1972 ; R.S. 71 ; Kanpur 72 ; Indore 72*)

कृपया प्रश्न 126 देखिये।

अध्याय 18

सितारा मछली
(Star Fish)

फाइलम	—	इकाइनोडर्मेटा (*Echinodermata*)
सब फाइलम	—	इल्युथेरोजोआ (*Eleutherozoa*)
क्लास	—	एस्टेरोइडिया (*Asteroidea*)
आर्डर	—	फैनेरोजोनिया (*Phanerozonia*)
जीनस	—	ऑरिएस्टर (*Oreaster*)
		या सितारा मछली (*Starfish*)

प्रश्न 105. सितारा मछली के स्वभाव एवम् वासस्थान का वर्णन करिये। इसके बाह्य लक्षणों का उल्लेख कीजिये।

Give an account of the habit and habitat of starfish. Describe its external features. (*Vikram 1961, 65, 69 ; Luck. 66, 71*)

सितारा मछली के बाह्य लक्षणों का वर्णन करिये।

Give an account of the habit and habitat of star fish.

(*Raj. 1973*)

स्वभाव तथा वास (Habit and habitat)—सितारा मछली समुद्री जीव है। ऑरिएस्टर जीनस की लगभग 200 जातियाँ है जिनमें से अधिकांश वेस्ट इण्डीज के चारों ओर इण्डो-पैसिफिक (Indo-pacific) समुद्र, बंगाल की खाड़ी तथा अरब की खाड़ी में पायी जाती है। ये बहुधा समुद्री किनारे के पथरीले भाग मे रहती है जहाँ ये अकेले सरलता से रेंग सके। परन्तु ये समुद्र की सभी गहराइयों मे भी पायी जाती है। ये अकेले अथवा समूहों मे समुद्री लट्ठों तथा अन्य ठोस पदार्थों इत्यादि से चिपकी हुई पायी जाती है तथा अधिकाश समय तक चिपकी ही रहती है। भुजाओं के सिरों की सहायता से ये पथरीले स्थानों पर रेंग कर आगे चलती है।

सितारा मछली ओयस्टर को बड़े स्वाद से खाती है, अत: यह मुक्ता उद्योग (pearl industry) के लिए अत्यन्त हानिकारक है। सितारा मछली प्रकाश से दूर किन्ही रक्षात्मक स्थानों में छिपी रहती है। इसमें विकृत अंगों (mutility) के पुनर्जनन की अपार क्षमता होती है। यदि इसके शरीर का कोई भाग किसी कारण से पृथक् हो जाये या काट दिया जाये तो नष्ट हुए भाग का पुन: निर्माण हो जाता है।

बाह्य लक्षण (External Features)

आकार तथा परिमाण—इसका शरीर अरीय सममित तथा सिताराकार होता है। इसका व्यास लगभग 25 cm. तक होता है।

रंग—इसका रग गुलाबी, नारंगी, जामनी अथवा पीला-सा होता है। पृष्ठ या अभिमुख तल अपेक्षाकृत गहरे रंग का होता है।

वाह्याकार—शरीर को दो भागों में बाँटा जा सकता है—केन्द्रीय बिम्ब (central disc) तथा उससे निकलने वाली पाँच छोटी, सममित (symmetrical) भुजाएँ। प्रत्येक भुजा का आधार चौड़ा तथा सिर सँकरा होता है। यह बिम्ब से पूर्णतया स्पष्ट नहीं होती। भुजाओं का अक्ष रेडियाई (radii) तथा दो समीपस्थ रेडियाई के बीच का स्थान **इण्टर-रेडियाई** (inter-radii) कहलाता है। शरीर में दो तल स्पष्ट होते हैं। उत्तल-पृष्ठ तल **अपमुख तल** (aboral or abactinal surface) कहलाता है तथा यह ऊपर की ओर रहता है। चपटा, अधर तल **मुख तल** (oral or actinal surface) कहलाता है और यह सदैव समुद्र के तल की ओर रहता है।
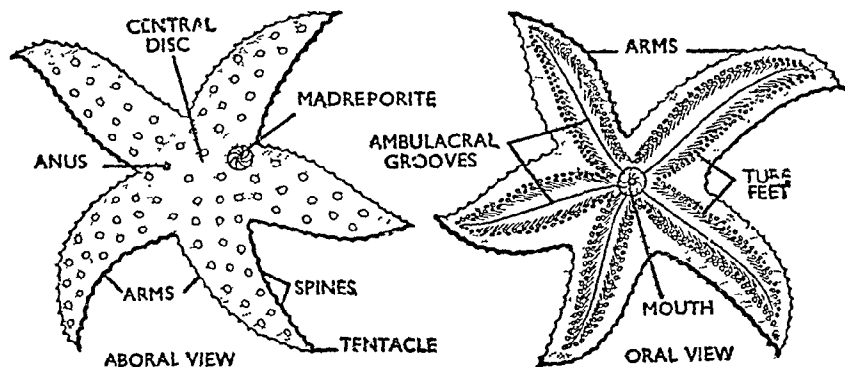
चित्र १८·१. सितारा मछली के वाह्य लक्षण (external features of *star-fish*)

वाह्यकंकाल—शरीर के ऊपर मोटी, मजबूत तथा कड़ी त्वचा होती है जिसमें कैल्शियम कार्बोनेट की बनी प्लेटें **अस्थिकाएँ** या **ऑसिकिल्स** (ossicles) पायी जाती है। जीवित अवस्था में **अस्थिकाओं** के कारण जन्तु के विभिन्न अंगों में सीमित गति ही हो पाती है।

अपमुख तल (Aboral Surface)

अपमुख तल पर निम्नलिखित रचनाएँ पायी जाती है :—

(1) काँटे (Spines)—अपमुख तल पर बहुत-से छोटे-छोटे मजबूत काँटे पाये जाते हैं जो अनियमित पक्तियों में भुजाओं के लम्बवत् अक्ष के समान्तर विन्यसित होते हैं। भुजाओं के किनारे पर काँटे अपेक्षाकृत बड़े होते है। सभी काँटे अनियमित आकार की कैल्केरियस अस्थिकाओं पर लगे होते है जो त्वचा में धँसी रहती हैं।

(2) डर्मल ब्रैंकियाई (Dermal branchiae)—डर्मल अस्थिकाओं के बीच के कोमल स्थानों में छोटे, कोमल तथा झिल्ली के समान या थैले के समान उभार पाये जाते है। ये **पैप्यूली** (papullae) अथवा **डर्मल ब्रैंकियाई** (dermal branchiae) कहलाते है। ये त्वचा मे स्थित सूक्ष्म छिद्रों द्वारा वाहर निकले रहते है तथा आवश्यकता पड़ने पर भीतर भी खींचे जा सकते है। ये पतली देहभित्ति से बनते है और इनकी गुहा देहगुहा से सम्बन्धित होती है। डर्मल ब्रैंकियाई श्वसन तथा उत्सर्जन में सहायक होते है।

(3) पेडिसीलेरियाई (Pedicellariae)—सितारा-मछली के पेडिसीलेरियाई सफेद-से रंग की जवड़ों के समान रचनाएँ हैं जो अपमुखीय तथा मुखवर्ती, दोनों सतहों पर मिलते हैं। प्रत्येक पेडिसीलेरिया में एक छोटा, माँसल, सुगठित व चल वृन्त होता है। इसमें दो सन्धित ब्लेड होते हैं जो चल रूप से **वेसिलर खण्ड** (basilar piece) से सन्धित रहते हैं।

दोनों ब्लेडों के विम्मुख सिरों पर दन्तुर होते हैं। ब्लेड या जवड़े एक जोड़ी **एब्डक्टर** (abductor) और दो जोड़ी **एडक्टर पेशियों** (adductor muscles) द्वारा खुलते व बन्द होते हैं। वाल्व या कपाटों के विन्यास के अनुरूप सितारा-मछली में दो प्रकार के पेडिसीलेरियाई होते हैं।

चित्र १८·२. एस्ट्रियास (*Asterias*) : पेडिसीलेरियाई, पैपुली एवम् ट्यूबंकल का एक पुन्ज (a cluster of pedicellariae, papulae and tubercles.

सीधे प्रकार के (Straight type)—इस प्रकार के पेडिसीलेरियाई में दोनों ब्लेड सीधे होते हैं और बेसिलर प्लेट से जुड़े रहते हैं। बन्द होने पर ये एक-दूसरे को पूर्ण लम्बाई में छूते हुए समान्तर रूप से स्थित होते हैं। दोनों ब्लेड चिमटी के ब्लेडों की भाँति कार्य करते हैं। इसमें एब्डक्टर एवम् एडक्टर पेशियाँ सहायक होती है।

क्रॉस प्रकार के (Crossed type)—इस प्रकार के पेडिसीलेरियाई में दोनों ब्लेडों के वेसिलर सिरे कैंची की भाँति एक-दूसरे को क्रॉस करते हैं।

पेडिसिलेरियाई रक्षा एवम् आक्रमण के अंग हैं। ये शरीर की सतह पर एकत्रित होने वाले सूक्ष्म जीवों व मलवे की सफाई का कार्य करते हैं। कुछ सितारा मछलियों में ये शिकार को पकड़ने में भी सहायक होते हैं।

चित्र १८·३. सितारा-मछली के पेडिसीलेरियाई (Pedicellariae of star-fish)
A. क्रॉस प्रकार के (Crossed type) B. सीधे प्रकार के (Straight type)

4. **गुदाद्वार** (Anus)—अपमुख तल के लगभग केन्द्र पर गुदाद्वार स्थित होता है।

5. **मेड्रिपोराइट** (Madreporite)—यह चपटी हल्के रंग की लगभग गोलाकार प्लेट है जो गुदाद्वार के समीप दो भुजाओं के आधार के बीच स्थित होती है। इसकी सतह पर बहुत-सी सँकरी, सीधी या कुछ मुड़ी हुई झिर्रियाँ होती हैं। मेड्रिपोराइट की उपस्थिति के कारण जन्तु अरीय सममित न होकर द्विपार्श्व सममित होता है। जिन दो भुजाओं के बीच मेड्रिपोराइट स्थित होता है वे **बाइवियम** (bivium) तथा शेष तीनों भुजाएँ **ट्राइवियम** (trivium) कहलाती हैं।

मुखवर्ती तल (Oral Surface)

1. **मुख** (Mouth)—मुखीय तल के मध्य में मुख स्थित होता है। यह पाँच अक्षीय (five rayed) छिद्र है जो पिछले पंचभुजाकार भाग में स्थित होता है। यह स्थान एक्टिनोसोम (actinosome) कहलाता है और पेरिस्टोमियल नामक पतली झिर्री द्वारा ढका रहता है।

2. **गत्यर्थ तन्त्र** (Ambulacral system)—एक्टिनोसोम के पाँचों किनारों से एक-एक गत्यर्थ झिर्री (ambulacral groove) निकलती है जो प्रत्येक भुजा की मध्य रेखा पर आगे बढ़कर भुजा के स्वतन्त्र सिरे तक पहुँचती है। प्रत्येक गत्यर्थ झिर्री के दोनों किनारों पर गत्यर्थ काँटों (ambulacral spines) की दो पंक्तियाँ होती हैं। इनके आधार पर पेशियाँ होती हैं जिनके द्वारा काँटे गति कर सकते हैं। गत्यर्थ काँटों के बाहर की ओर मोटे, मजबूत तथा अगतिशील (immovable) काँटों की तीन पंक्तियाँ होती हैं।

3. **ट्यूब फीट** (Tube feet)—ये खोखले व पतले प्रवर्धों के रूप में गत्यर्थ झिर्री के दोनों ओर दो-दो पंक्तियों में लगे रहते हैं। इनमें सिकुड़ने-फैलने की अपार क्षमता होती है ; अतः ये चलन में सहायक होते हैं।

4. **नेत्र** (Eyes)—प्रत्येक गत्यर्थ झिर्री के अन्तिम सिरे पर चमकीले लाल रंग का नेत्र पाया जाता है। यह बहुत-सी ओसेलाई (ocelli) के मिलने से बनता है तथा प्रकाश की किरणों को ग्रहण करता है।

5. **संवेदी स्पर्शक** (Sensory tentacles)—प्रत्येक नेत्र के ऊपर एक छोटा अकुञ्चनशील संवेदी स्पर्शक (non-contractile tentacle) होता है। यह घ्राण संवेदी होता है और गन्ध ग्रहण करता है।

प्रश्न 127. सितारा मछली के बाह्य गुणों का वर्णन कीजिये।

Describe the external features of starfish.

(*Kanpur 1968 ; Agra 63 ; Lucknow 58 ; Vikram 59, 61 ; Jiwaji 69*)

कृपया प्रश्न 126 देखिये।

प्रश्न 128. सितारा मछली के पाचन-तन्त्र एवम् पोषण विधि का वर्णन करिये।

Give an account of the digestive system and mechanism of feeding in starfish.

(*Agra 1966 ; Lucknow 56, 70 ; Indore 61 ; Gorakhpur 59*)

पाचन तन्त्र (Digestive System)

सितारा मछली के पाचन-तन्त्र को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. आहार नाल
2. सहायक पाचन-ग्रन्थियाँ

आहार नाल

आहार नाल छोटी किन्तु अधिक चौड़ी नाल है जिसको निम्नलिखित भागों मे बाँटा जा सकता है :—

1. मुख—पंचभुजाकार एक्टीनोसोम मुख में खुलता है जो मुखवर्ती तल के केन्द्र पर पेरिस्टोमियल झिल्ली में स्थित होता है। इसको घेरे हुए sphincter पेशी होती है।

2. ग्रसिका—मुख छोटी किन्तु चौड़ी ग्रसिका (ईसोफेगस) में खुलता है। यह छोटी व चौड़ी नलिका के रूप मे होती है।
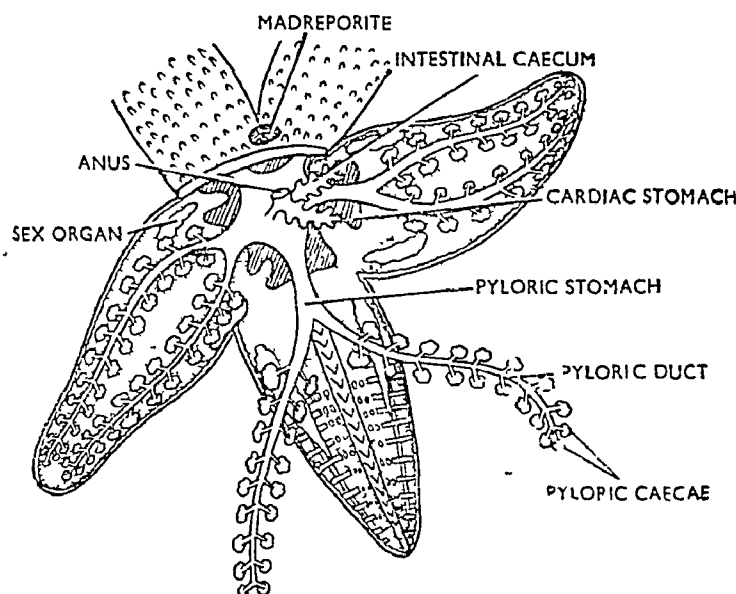
चित्र १८·४. सितारा मछली की आहार नाल
(Alimentary canal of *Starfish*)

3. आमाशय—गले के पीछे एक बड़ा, पतली दीवार वाला चौड़ा थैला होता है जो पाँच पिण्डको का बना होता है। यह **कार्डियक** तथा **पाइलोरिक भागों** मे बँटा रहता है।

(*i*) **कार्डियक आमाशय**—यह आमाशय का बड़ा अण्डाकार भाग है जो गले से सम्बन्धित होता है। इसकी दीवारे पतली तथा अत्यधिक वलित (folded) होती है। यह पाँच जोडी मीसेण्ट्रियो अथवा आमाशयिक तन्तुओं द्वारा अपने स्थान पर रहता है। प्रत्येक भुजा मे एक जोड़ी **आमाशयिक स्नायु** (gastric ligaments) गैस्ट्रिक आमाशय को गत्यर्थ उभार (ambulacral ridge) से जोड़ते हैं। देहभित्ति की पेशियों द्वारा आमाशय मुख से बाहर निकाला जा सकता है।

(*ii*) **पाइलोरिक आमाशय**—ऊपर की ओर कार्डियक आमाशय पाइलोरिक आमाशय मे खुलता है। यह पतली दीवारों का बना पंच-भुजाकार कक्ष है जिसमें दस पाइलोरिक सीका खुलते है। पाइलोरिक आमाशय आन्त्र मे खुलता है।

4. आंत्र (Intestine)—यह एक छोटी, सँकरी व पंचभुजाकार नली है जो अपमुखीय सिरे से शुरू होकर गुदाद्वार द्वारा बाहर खुलती है। इससे दो या तीन छोटे, शाखित व भूरे रंग के उपांग **आंत्रीय** (intestinal) या **रेक्टल सीका** (rectal caeca) निकलते हैं। ये अन्तर-अरीय रूप से स्थित होते हैं। इनके कार्य के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान नहीं है किन्तु ये एक भूरे-से रंग का स्रावी द्रव स्रावित करते हैं।

5. गुदाद्वार (Anus)—आंत्र केन्द्रीय डिस्क के अपमुखी तल पर एक छोटे व गोल छिद्र, **गुदाद्वार** (anus) द्वारा बाहर खुलती है।

पाचन-ग्रन्थियाँ
(Digestive Glands)

सितारा मछली की पाचन-ग्रन्थियाँ दस **पाइलोरिक सीका** के रूप में पायी जाती हैं जिनका एक-एक जोड़ा प्रत्येक भुजा में स्थित होता है। प्रत्येक जोड़े के दोनों पाइलोरिक सीका एक बेलनाकार नाल या वाहिनी के रूप में प्रारम्भ होते हैं जो शीघ्र ही दो खोखली शाखाओं में बँट जाती हैं। प्रत्येक पाइलोरिक सीकम में शाखा के दोनों ओर लम्बवत् पंक्ति में बहुत-से हरे रंग के थैले या कोष लगे होते हैं। प्रत्येक कोष में एन्जाइम बनाने वाली बहुत-सी कोशिकाएँ होती हैं जिनसे उत्पन्न द्रव पैंक्रियाटिक रस के समान होता है। इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा को पचाने वाले बहुत-से एन्जाइम पाये जाते हैं। सीका भोजन को पचाने के अतिरिक्त भोजन एकत्रित भी करते हैं।

भोजन एवम् पोषण
(Food and Feeding)

भोजन—सितारा-मछली माँसभक्षी प्राणी है जो धीमे चलने वाले जन्तुओं, विशेषकर सीपी, क्लैम्स, मसल्स व स्नेल आदि मौलस्क प्राणियों का भक्षण करती है। छोटी मछलियाँ, क्रैब व बार्नेकल्स भी इसका भोजन हैं।

पोषण—यह ट्यूब फीट व भुजाओं की सहायता से भोजन पकड़ती है किन्तु छोटे जीव पूर्ण रूप से ही निगल लिये जाते हैं। ट्यूब फीट की सहायता से शिकार को पकड़ कर भुजाओं द्वारा इसे खोलती है। अब इसका कार्डियक आमाशय बाहर निकल कर शिकार को चारों ओर से घेर लेता है।

खोल वाले मौलस्क जैसे सीपी, क्लैम्स व बाइवाल्व का भक्षण करने के लिए सितारा-मछली एक विचित्र विधि काम में लाती है। यह रेंगते हुए क्लैम के ऊपर आकर, ट्यूब फीट की सहायता से इसे पकड़ लेती है और खोल के स्वतन्त्र सिरों को अपने मुख के समीप ले आती है। अब यह अपने शरीर को मोड़ कर छत्र की आकृति ग्रहण कर लेती है। ट्यूब-फीट द्वारा दोनों कपाटों को मजबूती से पकड़ कर इन्हें एक-दूसरे से अलग कर खोलने का यत्न करती है। पकड़ को मजबूत करने के लिए इसके कुछ ट्यूब-फीट अधोस्तर को भी मजबूती से पकड़ लेते हैं। कपाटों को पकड़ने वाले ट्यूब-फीट लगातार इन पर दबाव डाले रखते हैं जिससे अन्त में इनको बन्द करने वाली एडक्टर पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं और कपाट खुल जाते हैं। इसका कारण यह है कि क्लैम की एडक्टर पेशियाँ अनिश्चित समय तक आकुञ्चन की दशा में नहीं रह सकतीं। जैसे ही कपाट खुलते है, सितारा-मछली क्लोम की प्रावार गुहा में अपने कार्डियक आमाशय को अन्तरित कर देती है।

पाचन एवम् अवशोषण
(Digestion and Absorption)

पकड़े हुये शिकार के ऊपर अपना कार्डियक आमाशय निकालने के बाद यह आमाशय तथा पालोइरिक सीकी द्वारा स्रावित पाचक एन्जाइमों को शिकार के ऊपर स्खलित करती है। एन्जाइम्स क्लैम के आन्तरांगों का पाचन करते हैं। इस प्रकार प्रोटीन्स पेप्टोन्स एवम् ऐमीनो अम्लों में तथा कार्बोहाइड्रेट्स व वसाएँ ग्लूकोस, वसा अम्लों तथा ग्लिसरॉल में परिवर्तित हो जाते हैं। कार्डियक आमाशय के आकुन्चन के
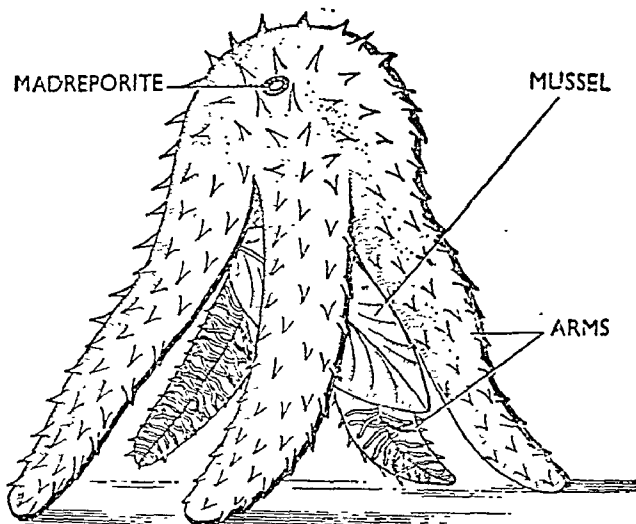
चित्र १८५. सितारा मछली मसल का भक्षण करते हुए (Star-fish feeding on mussel)

साथ पचा हुआ भोजन आहार नाल में पहुँचता है। भोजन का शेष पाचन कार्डियक आमाशय एवम् पाइलोरिक सीकी में होता है। पाइलोरिक सीका पचे हुए भोजन का अवशोषण करते हैं जो सीलोमिक द्रव द्वारा शरीर के समस्त भागों को पहुँचा दिया जाता है। अतिरिक्त भोजन पाइलोरिक सीका की संचायक कोशिकाओं में संचित रहता है। अपच भोजन गुदाद्वार द्वारा बाहर निकल जाता है।

प्रश्न 129. सितारा मछली के जल-वाहिनी तन्त्र का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

Describe in detail the water vascular system of starfish (*Pentaceros*). (*Lucknow 1951, 53, 56, 57, 58, 61, 62, 64, 69, 71 ; Utkal 68 ; Ranchi 71, 73 ; Jabalpur 73*)

पेण्टासिरोस (Pentaceros) के जल-वाहिनी तन्त्र की रचना एवम् कार्य-विधि का वर्णन कीजिये।

Give a detailed account of the structure and functions of water vascular system of *Pentaceros*.

(*Kanpur 1969 ; Lucknow 50, 55 ; Vikram 63*)

सितारा मछली के गत्यर्थ तन्त्र का वर्णन कीजिये।

Give an account of the ambulacral system in star-fish.

(*Vikram 1961 ; Punjab 66*)

एस्टेरियास के स्वभाव, वासस्थान एवम् वाह्यांगों का वर्णन कीजिये। मेड्रिपोराइट, ट्यूब फीट एवम् पेडिसिलेरिया के कार्यों की विवेचना कीजिये।

Describe the habit, habitat and external features of *Asterias*. Discuss the function of madreporite, tube feet and pedicellariae.

(*Jiwaji 1970*)

संरचना (Structure)

जल-वाहिनी-तन्त्र (water vascular system) या गत्यर्थ तन्त्र की उपस्थिति इकाइनोडर्म की विशेषता है। यह देहगुहा (coelom) का रूपान्तरित भाग प्रदर्शित करता है तथा लारवा की बाँयी हाइड्रोसील (hydrocoel) से बनता है। इसको निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. मेड्रीपोराइट (Madreporite)
2. मेड्रीपोरिक नाल या स्टोन नाल (Madreporic canal or stone canal)
3. रिंग नाल (Ring canal)
4. टीडमान बॉडीजे (Tiedmann's bodies)
5. रेडियल नाल (Radial canal)
6. अनुप्रस्थ नाल या पार्श्व नाल (Transverse canal or lateral canal)
7. ट्यूब फीट (Tube feet)

1. मेड्रीपोराइट (Madreporite)—मेड्रीपोराइट हल्के रंग की, छलनी के समान, गोल कंकालीय प्लेट है जो अान्तर-अरीय (inter-radial) स्थिति में बिम्ब के अपमुखीय तल (aboral surface) पर पायी जाती है। इसकी सतह पर बहुत-सी लम्बी, सीधी या कुछ लहरदार खाइयाँ या झिर्रियाँ होती हैं। प्रत्येक खाई पर बहुत-से सूक्ष्म छिद्र होते हैं जो सूक्ष्म छिद्र नाल द्वारा थैले के समान **एम्पुला** (ampulla) में खुलते हैं। एम्पुला 'S' के आकार की स्टोन नाले में खुलता है।
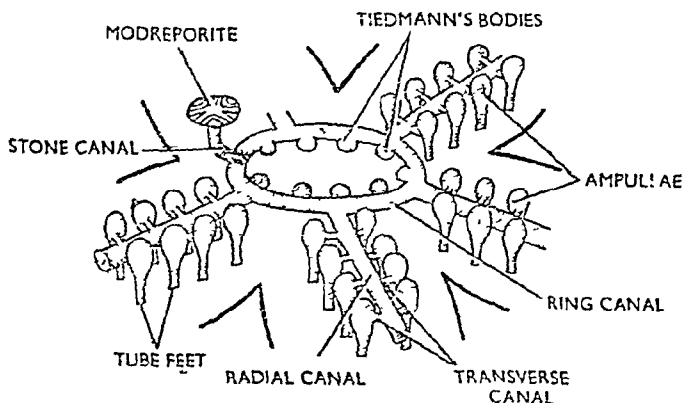
चित्र १८·६. सितारा मछली का जल-वाहिनी तन्त्र
(Water-vascular system of *Star-fish*)

2. मेड्रीपोराइट नाल या स्टोन नाल—यह 'S' के आकार की नाल है जो एम्पुला को रिंग नाल से जोड़ती है। इसकी दीवार पर कैल्शियम कार्बोनेट के बने बहुत-से छल्ले होते हैं तथा यह भीतर की ओर लम्बी पक्ष्मयुक्त कोशिकाओं से

आस्तारित होती है। पक्ष्म स्टोन नाल में आने वाली समुद्री जल की धारा का नियमन करते है। नाल की गुहा में एक उभार-सा लटका रहता है जो विभाजित होकर दो सर्पिलाकार लैमेली बनाता है।

3. रिंग नाल—रिंग नाल या रिंग वाहिनी एक चौड़ी पाँच भुजाओं वाली वाहिनी है जो मुखवर्ती भाग में मुख के चारों ओर स्थित होती है। इससे पाँच रेडियल गत्यर्थ वाहिनियाँ या रेडियल नालें निकलती है जो प्रत्येक भुजा में रुक जाती है। एस्टिरियास के अतिरिक्त अधिकतर सितारा मछलियों में रिंग वाहिनी के भीतर की ओर से पाँच पतली दीवार वाले, थैले के समान पोलियन वेसिकल (polian vesicles) निकलते है तथा प्रत्येक पोलियन वेसिकल दो भुजाओं के बीच स्थित (inter-radial) होता है। ये रिंग वाहिनी को फैलाने मे सहायता करते है।

4. टीडमान काय (Tiedmann's bodies)—ये दस छोटी, गोल, ग्रन्थिल रचनाएँ है जो रिंग वाहिनी से भीतर की ओर उभरी रहती हैं और पोलियन वेसिकल के दोनों ओर स्थित होती है। प्रत्येक टीडमान बॉडी खोखली होती है और इसकी गुहा बहुत-से कक्षो मे बँटी रहती है जो रिग वाहिनी से सम्बन्धित होते है। इनके कार्यो के विषय मे अभी पूर्ण ज्ञान नहीं है किन्तु यह माना जाता है कि ये लिम्फ ग्रन्थियाँ हैं जो अमीबाभ कोशिकाएँ बनाती है।

5. रेडियल नाल (Radial canal)—रिंग नाल की बाहरी ओर से पाँच रेडियल नाले निकलती हैं। प्रत्येक रेडियल नाल भुजा की गत्यर्थ झिर्री (ambulacral groove) मे रेडियल तन्त्रिका के ऊपर स्थित होती है तथा भुजा के सिर तक पहुँचती है। यह स्पर्शक की गुहा में पहुँचकर समाप्त हो जाती है।

6. अनुप्रस्थ या पार्श्व अथवा पोडियल नालें (Transverse or lateral or podial canals)—प्रत्येक रेडियल नाल के दोनों ओर से पोडियल नालों की एक पंक्ति निकलती है जो ट्यूब फीट में पहुँचती है। ये पेशियों के बीच स्थित होती है।

7. ट्यूब फीट (Tube feet)—प्रत्येक ट्यूब फीट के भीतर रेडियल नाल थैले के समान पेशीयुक्त एम्पुला (ampulla) मे समाप्त होती है। इसके पश्चात् इसके नीचे की ओर एक लम्बी नलिका निकलती है जो ट्यूब फीट के स्वतन्त्र सिरे पर पहुँचकर शीर्ष चूषक में समाप्त होती है। पोडियल नाल तथा इसके ट्यूब फीट के बीच एक गत्यर्थ छिद्र (ambulacral pore) होता है जो कपाट द्वारा सुरक्षित रहता है।

कार्य (Functions)

जल-वाहिनी तन्त्र पक्ष्मों द्वारा आस्तारित होता है तथा समुद्री पानी के समान एक द्रव से भरा रहता है। यह द्रवचालित दाब मशीन (hydraulic pressure machine) के समान कार्य करता है तथा चलन, आधार से चिपकने तथा भोजन पकड़ने में सहायता पहुँचाता है।

1. चलन—पक्ष्मों की गति के कारण समुद्री पानी मेड्रीपोराइट से भीतर पहुँचता है और अन्त मे यह ट्यूब फीट तथा उनके एम्पुला मे आता है। एम्पुली सिकुड़ती हैं तथा उनका द्रव ट्यूब में पहुँच जाता है जो फूल जाते हैं; अतः ट्यूब फीट बाहर की ओर उन्मुख होकर आधार से चिपक जाते है। चिपकने मे इनके सिर चूषक सहायता करते है। अब समस्त ट्यूब फीट एक साथ सकुचित होते है तथा शरीर को आगे की ओर फेंकते हैं। पेशियो के सिकुड़ने से पानी पुनः ट्यूब फीट से एम्पुला में पहुँचता है तथा ट्यूब फीट छोटा हो जाता है। इससे ट्यूब फीट के सिर

पर दाव कम हो जाता है और ये आधार से स्वतन्त्र हो जाते हैं। यही क्रिया बार-बार दोहरायी जाती है और जन्तु आगे बढ़ता है।

2. आधार से चिपकना—आशूनता (turgidity) तथा सिर चूषकों के कारण ट्यूब फीट आधार से चिपक जाते हैं।

3. भोजन पकड़ना—ट्यूब फीट के सिर-चूषक भोजन ग्रहण करने में सहायता करते हैं।

4. जल-वाहिनी-तन्त्र जनन, उत्सर्जन तथा श्वसन में सहायता करता है।

प्रश्न 130. सितारा मछली के चलन अंगों एवम् उनकी कार्य-विधि का वर्णन कीजिये।

Describe the locomotory organs and the mode of locomotion in star fish. (*Lucknow 1955, 63, 65*)

चलन अंग

सितारा मछली के चलन अंग ट्यूब फीट या पोडिया कहलाते हैं जो प्रत्येक भुजा में गत्यर्थ झिर्री के दोनों ओर चार पंक्तियों में लगे रहते हैं। प्रत्येक पोडिया देहभित्ति का एक खोखला बाहरी उभार है जिसके सिर पर चूपक होता है। प्रत्येक ट्यूब फीट में जल-वाहिनी-तन्त्र की रेडियल नाल से एक पार्श्व या अनुप्रस्थ पोडियल नाल पहुँचती है। ट्यूब फीट के आधार पर यह एम्पुला बनाती है जो ट्यूब फीट की लम्बवत् नाल के रूप में निकला होता है।

चलन क्रिया के लिए प्रश्न 128 देखिये।

प्रश्न 131. सितारा मछली के बाह्य लक्षणों तथा इसकी चलन विधि का वर्णन कीजिये।

Describe the external features of starfish and its locomotion. (*Ranchi 1970*)

कृपया प्रश्न 126 तथा 128 देखिये।

निम्नलिखित के नामांकित चित्र बनाइये।

Draw neat and labelled diagrams of the following :—

(i) इकाइनोप्ल्यूटियस लारवा (Echinopluteus larva)
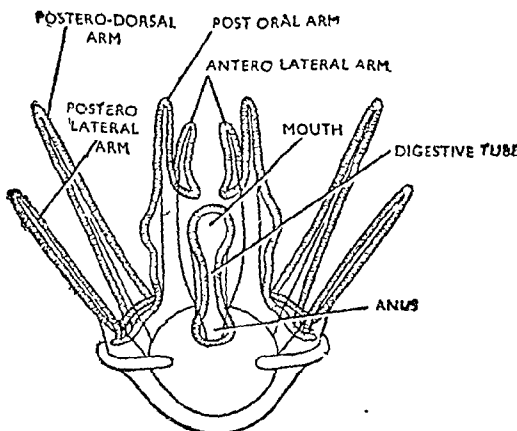
चित्र १८·७ इकानोप्ल्यूटियस लारवा (Echinopluteus larva)

(ii) सितारा मछली का जल-वाहिनी-तन्त्र (Water vascular system of star-fish) (*Agra 1971*)

कृपया चित्र 18·6 देखिये ।

(iii) सितारा मछली का मुखवर्ती दृश्य (Oral view of star-fish) (*Meerut 1971*)

कृपया चित्र 18·1 देखिये ।

(vi) सितारा मछली की भुजा की अनुप्रस्थ काट (T.S. of arm of starfish) (*Lucknow 1959, 61, 63, 65, 66 ; Vikram 68 ; Kanpur 70, 71 ; Agra 71, 72 ; Jabalpur 72*)
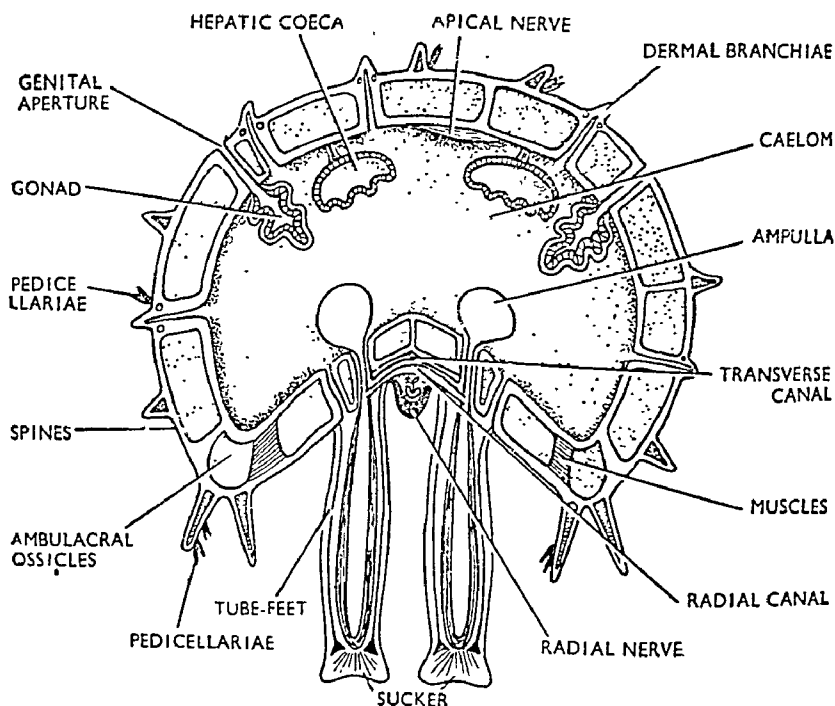
चित्र १८·८. सितारा मछली की भुजा का अनुप्रस्थ काट
(T.S. arm of *Star fish*)

प्रश्न 132. ऐस्ट्रियास के परिवहन तन्त्र का वर्णन करिये ।
Describe the circulatory system of Asterias.

सितारा-मछली में वास्तविक रुधिर परिवहन तन्त्र का अभाव होता है। इसका परिवहन तन्त्र हीमल तथा परिहीमल तन्त्रों का बना होता है।

1. हीमल तन्त्र (Haemal system)—सितारा मछली का हीमल तन्त्र अत्यधिक ह्रसित होता है। आर्थ्रोपोड्स व मौलस्क की हीमोसील की भाँति यह भी खुले प्रकार का होता है। इसमें एक-दूसरे से सम्बन्धित **विवर** (sinuses) होते हैं जिनमें **सोलोमोसाइट्स युक्त सीलोमिक द्रव** (coelomic fluid) भरा रहता है। साइनस विवरों में एपिथीलियम नहीं होती और ये निम्न प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **मुखवर्ती हीमल रिंग** (Oral haemal ring)—यह पेरिस्टोम के ठीक

पीछे मुख के चारों ओर एक महीन वृत्ताकार चैनेल या सारणी के रूप में होती है।

(*ii*) **अरीय हीमल विवर** (Radial haemal sinuses)—ये अरीय रूप से मुखवर्ती हीमल रिंग से विकसित होते है। प्रत्येक भुजा में एम्बुलैक्रल खाँच के तल के साथ-साथ एक **अरीय हीमल विवर** होता है। प्रत्येक हीमल विवर से ट्यूबफीट या पोडिया को शाखाएँ जाती है।
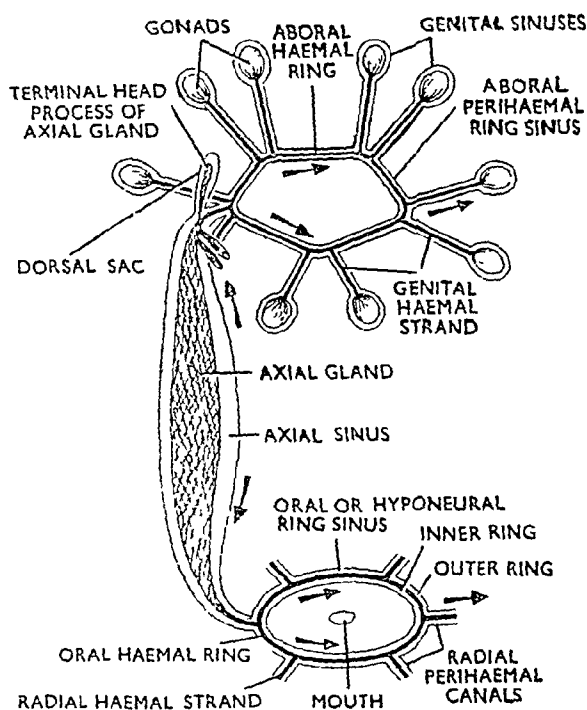
चित्र १८·६. सितारा मछली : हीमल एवम् पेरीहीमल तन्त्र (*Asterias* : Haemal and perihaemal systems)

(*iii*) **अक्षीय ग्रन्थि** (Axial gland)—इसे **हृदय या ब्राऊन ग्रन्थि** (brown gland) भी कहते है। यह हीमल तन्त्र का मुख्य भाग बनाता है। इसका वाह्य स्तर **पेरिटोनियम** (peritoneum) का बना होता है तथा इसके भीतर सयोजी ऊतक भरा रहता है जिसमे एक-दूसरे से संचारित अनेक छोटे-छोटे द्विकस्थान होते है। इनमें एक द्रव भरा रहता है जिसमे भूरे वर्णक युक्त अनेक अमीवाभ सीलोमोसाइट्स होते हैं। अक्षीय ग्रन्थि अपने मुखवर्ती सिरे पर मुखवर्ती हीमल विवर से और अपमुखीय सिरे पर अपमुखीय हीमल साइनस से सम्बन्धित होती है। अक्षीय ग्रन्थि के अपमुखीय सिरे से एक छोटा अग्रस्थ **सिर प्रवर्ध** (head process) विकसित होता है। यह मेड्रीपोराइट मे स्थित एक छोटे पृष्ठ कोप (dorsal sac) से सम्बन्धित रहता है। कार्डियक आमाशय की दीवार में हीमल विवरो से एक जोड़ी जठर गुच्छे (haemal tufts) विकसित होकर अपमुखीय सिरे के समीप अक्षीय ग्रन्थि मे खुलते है। आमाशय द्वारा पचाया हुआ भोजन जठर गुच्छों द्वारा हीमल परिवहन तन्त्र मे प्रवेश करता है।

(*iv*) **अपमुखी हीमल वलय** (Aboral haemal ring)—यह पंच-कोणीय वलय नाल (pentagonal ring canal) है जो केन्द्रीय डिस्क की अपमुखीय सतह के नीचे स्थित होता है। इससे **जनन हीमल स्ट्रैण्ड** (genital haemal strands) निकल कर जनदों को जाते है।

हीमल तन्त्र सीलोमोसाइट्स में स्थित भोजन के लिए वितरण पथ का कार्य करता है। अक्षीय ग्रन्थि **जनन स्टोलन** (genital stolon) का कार्य करती है और **लिंग कोशिकाएँ** उत्पन्न करती है जो अपमुखीय हीमल वलय एवम् इसकी शाखाओं द्वारा जनदों को ले जायी जाती है।

(*i*) **मुखवर्ती हाइपोन्यूरल वलय साइनस** (Oral hyponeural ring sinus)—यह एक बड़ा नालाकार साइनस है जो मुख के चारों ओर स्थित होता है। मुखवर्ती सिरे पर अक्षीय विवर हाइपोन्यूरल वलय विवर (hyponeural ring sinus) में खुलता है। इसमें **मुखवर्ती हीमल वलय विवर** (oral haemal ring sinus) स्थित होता है।

(*ii*) **अरीय पेरिहीमल विवर** (Radial perihaemal sinuses)—वलय विवर से पाँच अरीय पेरिहीमल साइनस विकसित होते है जिनमें से प्रत्येक एक भुजा में स्थित होता है।

(*iii*) **अक्षीय विवर** (Axial sinus)—यह पतली दीवार की ऊर्ध्वाधर व चौडी नलिकाकार सीलोमिक गुहा है जिसमें अक्षीय ग्रन्थि एवम् स्टोन कैनाल स्थित होती है। अक्षीय ग्रन्थि व स्टोन कैनाल सहित अक्षीय विवर **अक्षीय कॉम्प्लैक्स** (axial complex) बनाता है।

(*iv*) **अपमुखीय पेरिहीमल वलय साइनस** (Aboral perihaemal ring sinus)—यह एक नलिकाकार पंचकोणीय विवर है जिसमें अपमुखी हीमल वलय विवर स्थित होता है और यह अक्षीय विवरों से संचारित रहता है।

(*v*) **जनद विवर** (Genital sinuses)—इनमें जनद एवम् जनद हीमल स्ट्रैण्ड स्थित होते है।

(*vi*) **उपान्त विवर** (Marginal sinuses)—प्रत्येक भुजा में उपान्त नर्व कॉर्ड के नीचे प्रत्येक ओर एक अनुदैर्घ्य उपान्त साइनस होता है। ये अपनी-अपनी भुजाओं में अरीय पेरिहीमल विवर में खुलते हैं।

(*vii*) **पेरिब्रेकियल विवर** (Peribranchial sinuses)—ये पैपुली के आधार भागों के चारों ओर वृत्ताकार विवरों के रूप में स्थित होते है।

प्रश्न 133. एस्ट्रियास के जनन तन्त्र का वर्णन करिये। इस प्राणी में निषेचन कहाँ होता है। इसके परिवर्धन पर एक नोट लिखिये।

Describe the reproductive system of *Asterias*. Where does fertilization occur in this animal? Add a note on its development.

जनन तन्त्र (Reproductive System)

सितारा-मछली एकलिंगी जन्तु है अर्थात् इसमें नर एवम् मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं में होते है किन्तु लैंगिक द्विरूपता का अभाव होता है। जनन-अंग आदिम प्रकार के होते हैं और इनमें मैथुन अंगों, सहायक ग्रन्थियों एवम् धानियों (receptacles) का अभाव होता है।

जनद (Gonads)—आकारिक रूप से वृषण एवम् अण्डाशय समान होते हैं किन्तु इनके रंग में विविधता होती है। प्रत्येक जन्तु मे 5 जोड़ी अण्डाशय या वृषण

होते हैं। पाँचों भुजाओं में से प्रत्येक के आधार पर ट्यूब फीट के पाइलोरिक सीका एवम् एम्पुली के बीच में एक जोड़ी जनद (वृषण या अण्डाशय) स्वतन्त्र रूप से स्थित होते हैं।
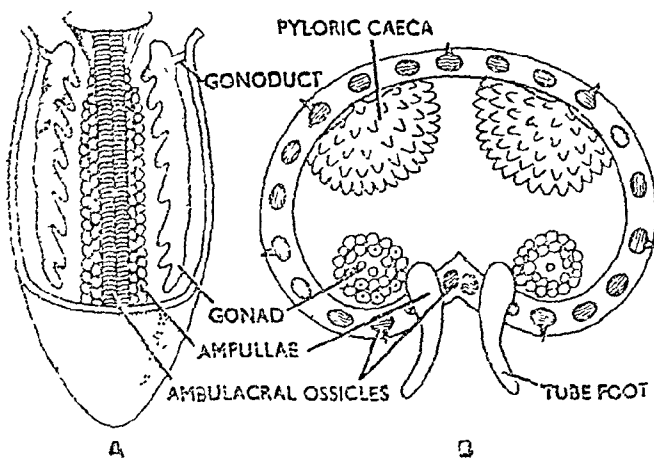
चित्र १८·१०. एस्ट्रियास—जनद (Asterias : gonads)
A. भुजा को काट कर जनदों का प्रदर्शन (An arm cut open to show gonads)
B. जनदों को दिखाते हुए भुजा का सेक्शन (T.S. arm showing gonads)

जनद आवधिक रूप से विकसित होते हैं और परिपक्व होने पर ये आकार में काफी बड़े हो जाते हैं और पेरिविसरल द्विक-स्थान का अधिकांश भाग घेर लेते हैं। प्रत्येक जनद अंगूर के गुच्छों के समान रचना के रूप में विकसित होता है जिसमें झिल्लीमय व गोलाकार फॉलिकल्स होते हैं। प्रत्येक जनद पेरिहीमल तन्त्र के **जनन साइनस** (genital sinus) में बन्द रहता है। प्रत्येक जनद के दूरस्थ सिरे से एक छोटी पक्ष्माभी **जनद वाहिनी** (gonoduct) विकसित होती है। यह एक सूक्ष्म **गोनोपोर** (gonopore) द्वारा अपमुखीय सतह पर पार्श्व में खुलती है। परिपक्व अण्डे व शुक्राणु समुद्र के जल में स्खलित कर दिये जाते हैं।

जीवन चक्र एवम् परिवर्धन
(Life-history and Development)

निषेचन (Fertilization)—निषेचन बाह्य होता है। अण्डे व शुक्राणु स्खलित होते हैं। प्रत्येक जनन काल में मादा 20 करोड़ तक अण्डे देती है। शुक्राणुओं की संख्या और भी अधिक होती है।

परिवर्धन (Development)—परिवर्धन अप्रत्यक्ष होता है और इसमें कई लारवा अवस्थाएँ होती हैं। निषेचित अण्डा या युग्मनज गोलाकार, व्यास 0·2–0·5 mm. तथा थोड़ा-सा पीतक होता है। विदलन तीव्रता से तथा पूर्णभंजी होता है जिससे दूसरे दिन तक एक गोलाकार, खोखला, व एकस्तरीय पक्ष्माभिकी **ब्लास्टूला** (blastula) या **सीलोब्लास्टूला** (coeloblastula) बन जाता है। यह पानी में स्वच्छन्द तैरता है। इसकी केन्द्रीय गुहा, **ब्लास्टोसील** (blastocoel) होती है जिसमें **ब्लास्टोसील द्रव** (blastocoel fluid) भरा होता है। ब्लास्टूला अन्तर्वलन करके द्विस्तरीय व प्यालेनुमा **गैस्ट्रूला** (gastrula) बनाता है। इसका बाह्य स्तर **एक्टोडर्म**

का और भीतरी स्तर **एण्डोडर्म** (endoderm) का बना होता है। गैस्ट्रूला की गुहा, जो कि एण्डोडर्म द्वारा स्तरित होती है, **आंद्यांत्र** (archenteron) कहलाती है। यह एक चौड़े **ब्लास्टोपोर** (blastopore) द्वारा बाहर खुलती है। अधर तल पर एक
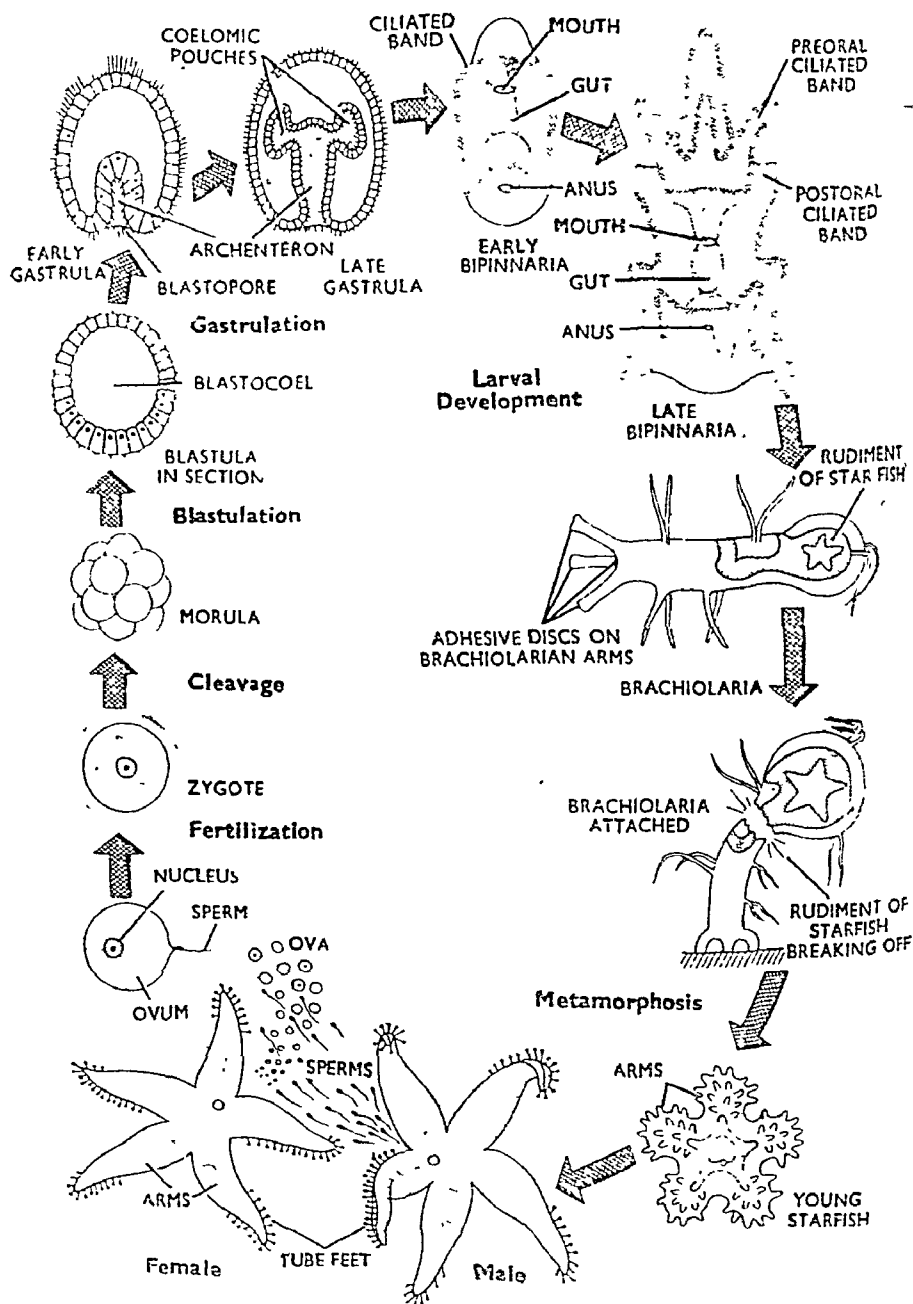
चित्र १८·११. सितारा मछली का जीवन चक्र (Life *history of Starfish*)

एक्टोडर्म का एक नलिकाकार अन्त:वर्व मुख या **स्टोमोडीयम** (stomodaeum) वनाता है।

गैस्ट्रूलेशन के समय, आद्यांत्र (archenteron) के वृद्धि करते हुए सिरे से मुकुलन द्वारा मीसेनकाइम (mesenchyme) कोशिकाएँ कटकर ब्लास्टोसीला में पहुँचकर **मीसेनकाइम** (mesenchyme) या **मीसोडर्म** (mesoderm) वनाती हैं। आद्यांत्र का अगला भाग भी दोनों ओर पार्श्व में **पार्श्व धानियाँ** (lateral pouches) वनाता है। ये आद्यांत्र के वाम एवम् दाहिनी ओर विन्यसित होकर **सीलोमिक धानियाँ** (coelomic pouches) वनाती हैं। इनसे आद्यांत्र (archenteron), इसका मीसोडर्मल स्तर तथा जल-परिवहन तन्त्र विकसित होते हैं।

लारवा का परिवर्धन (Larval development)—सितारा-मछली के परिवर्धन में निम्नलिखित लारवा अवस्थाएँ होती हैं :—

(*i*) **डिप्ल्यूरूला लारवा या प्रारम्भी वाइपिन्नेरिया** (Dipleurula larva or early bipinnaria)—यह प्रथम लारवा अवस्था है जो समस्त इकाइनोडर्म्स में पायी जाती है। यह अण्डे के समान तथा द्विपार्श्व सममित होता है। शरीर पर समान रूप से वितरित पक्ष्मों के स्थान पर अव दो पक्ष्माभिकी तरंगित पट्टियाँ विकसित हो जाती हैं। इनमें से एक मुख के चारों ओर स्थित **परिमुख पट्टी** (peri-oral band) तथा दूसरी मुख के अन्दर स्थित **अभिमुखीय पट्टी** (adoral band) होती है। भ्रूण की अधर सतह पर स्थित एक एक्टोडर्मल अन्तर्वलन आद्यांत्र से सन्तत हो जाता है। इस प्रकार विकसित छिद्र **मुख** (mouth) कहलाता है। आद्यांत्र ग्रास-नली, आमाशय तथा आंत्र में भिन्नित हो जाती है और ब्लास्टोपोर **गुदाद्वार** (anus) वनाता है। इन परिवर्तनों के साथ भ्रूण **डिप्ल्यूरूला लारवा** (dipleurula larva) में विकसित हो जाता है। यह स्वतन्त्र रूप से रहने में समर्थ होता है। यह सक्रिय रूप से डाइएटम्स का भक्षण करता है। पक्ष्मों की अभिमुखीय पट्टी (adoral band) भोजन के कणों को एकत्रित करने में सहायता करती है। लारवा पानी की सतह पर परिमुख पट्टी के पक्ष्मों द्वारा दक्षिणवर्त (clockwise) रूप से तैरता है।

(*ii*) **वाइपिन्नेरिया लारवा** (Bipinnaria larva)—शीघ्र ही डिप्ल्यूरूला लारवा के आगे की ओर एक वड़ा **परिमुख पिण्ड** (pre-oral lobe) विकसित होता है जिसके उपान्तों पर पक्ष्मों का **परिमुख लूप** (pre-oral loop) होता है। यह **वाइपिन्नेरिया लारवा** (bipinnaria larva) कहलाता है। यह कुछ दिनों तक स्वच्छन्द तैरने के वाद **ब्रैकियोलेरिया लारवा** (brachiolaria larva) वनाता है।

(*iii*) **ब्रैकियोलेरिया लारवा** (brachiolaria larva)—वाइपिन्नेरिया लारवा के पिण्ड रूपान्तरित होकर लम्वी, पतली, पक्ष्माभिकी व आकुञ्चनशील **लारवल भुजाएँ** (larval arms) वनाते हैं। परिमुख पिण्ड में तीन छोटे व अपक्ष्माभिकी प्रवर्ध होते हैं जिनके सिरों पर **चूषक** (suckers) होते हैं। इन प्रवर्धों को **स्थायीकर प्रवर्ध** (fixing processes) कहते हैं। इसे अव **ब्रैकियोलेरिया लारवा** (brachiolaria larva) कहते हैं। यह वाइपिन्नेरिया की भाँति तैरता एवम् भोजन करता है।

कायांतरण (Metamorphosis)—लगभग 6–7 सप्ताह के वाद लारवा अपने स्थायीकर प्रवर्धों की सहायता से किसी आधार पर वैठ जाता है। लारवा का मुख, गुदाद्वार एवम् पक्ष्माभिकी पट्टिकाएँ विलुप्त हो जाती हैं। लारवा के वाँयी ओर नया मुख तथा दाहिनी ओर नया गुदाद्वार वन जाता है। वाम एवम् दाहिनी सतह अन्त

में मुखवर्ती एवम् अपमुखीय सतह बनाती हैं। मुख-अपमुखीय अक्ष के चारों ओर भुजाओं के पाँच लुप्तावेश प्रकट हो जाते हैं। अब इनमे कंकालीय अवयव एवम् अरीय नाल विकसित हो जाती हैं। वयस्क का सीलोम दाहिनी एवम् वाम सीलोमिक धानियों से विकसित होता है। प्रत्येक भुजा में सीलोम से दो जोड़ी अपवर्ध विकसित होकर प्रथम ट्यूब फीट बनाते हैं। अब आन्तरिक पुनर्गठन के फलस्वरूप द्विपार्श्व-सममित लारवा अरीय रूप से सममित वयस्क सितारा-मछली में कायान्तरित हो जाता है।

अध्याय 19

टिप्पणियाँ
(Short Notes)

1. गत्यर्थ झिर्री (Ambulacral groove) *(Gorakhpur 1961)*

कृपया प्रश्न 126 देखिये ।

2. स्वविच्छेदन (Autotomy) *(Agra 1970)*

स्वविच्छेदन या **स्वविकृति** (self-mutilation) प्राणियों की वह क्षमता है जिसके द्वारा वे दुर्घटनावश क्षय हुए अंग का पुनर्स्थापन करते हैं। यह विशेषता फाइलम इकाइनोडर्मेटा के अधिकांश **ऑफियूरोइड्स** (Ophiuroids), **ऐस्टिरोइड्स** (Asteroids) तथा कुछ **होलोथूरियन्स** (Holothurians) में पायी जाती है किन्तु इकाइनोइड्स (Echinoids) में इसका पूर्ण अभाव होता है। कुछ सितारा मछलियों तथा अधिकांश ब्रिटल स्टार को उत्पीड़ित करने या पानी से बाहर निकालने पर ये अपनी भुजाओं को खण्डों में विच्छेदित करना प्रारम्भ करती हैं तथा विच्छेदन की क्रिया केन्द्रीय डिस्क के पूर्णतया भुजाविहीन होने तक होती रहती है। लगभग इन सभी जातियों में केन्द्रीय डिस्क तथा कुछ जातियों में खण्डित भुजाएँ भी स्वतन्त्र रूप से पूर्ण जीवों में विकसित हो जाती हैं। कुछ सितारा मछलियों के जीवन-चक्र में स्वविच्छेदन जनन की नियमित विधि है।

क्रिनोइड्स (Crinoids) में भुजाओं अथवा केन्द्रीय डिस्क के दुर्घटनावश क्षतिग्रस्त हो जाने पर उनका पुनः विकास हो जाता है। होलोथूरियन्स में थोड़ा-सा भी खतरा होने पर ग्रासनली, कुवेरिअन अंगों सहित क्लोएका या पूर्ण आहार-नाल निष्कासित हो जाती है तथा पुनरुत्पादित हो जाती है।

स्वविच्छेदन की क्रिया पर सर्वप्रथम उस समय ध्यान आकर्षित हुआ जब सीपी तथा शुक्ति मछुहरों ने इन्हें शुक्तियों को नष्ट करते हुए देखकर टुकड़ों में काटकर समुद्र में फेंक दिया, किन्तु कुछ दिनों पश्चात् पाया कि कम होने के बजाय ये सितारा मछलियाँ संख्या में कई गुना बढ़ गई हैं क्योंकि प्रत्येक कटा हुआ भाग एक नयी सितारा मछली में पुनरुत्पादित हो गया है।

3. शहद की मक्खी (Apis) *(Lucknow 1956 ; Agra 55 ; Vikram 69)*

कृपया प्रश्न 84 देखिये ।

4. अक्षीय अंग (Axial Organs) *(Lucknow 1970)*

कृपया प्रश्न 129 देखिये ।

5. रेशम का कीट (Bombyx mori) *(Vikram 1972)*

कृपया प्रश्न 85 देखिये ।

6. बॉट्रिओइडल ऊतक (Botryoidal Tissue)

(Gorakhpur 1960 ; Agra 65, 68)

बॉट्रिओइडल ऊतक विशेष प्रकार से रूपान्तरित मीसेनकाइम ऊतक है जो

लीच की देहगुहा में भरा रहता है। यह देहभित्ति के लम्बवत् पेशी स्तर के ठीक नीचे तथा आहार-नाल के चारों ओर स्थित होता है। यह रक्त साइनसों के निकट सम्पर्क मे होता है। इसमे बड़ी-बडी कोशिकाएँ होती हैं जो एक-दूसरे से सटकर लगी रहती है और इनमें भूरे रंग के कण पाये जाते है। कोशिकाओ के बीच स्थित केशिकाओ मे रक्त के समान लाल द्रव भरा रहता है।

7. बाइपिन्नेरिया लारवा (Bipinnaria Larva)

(Nagpur 1960 ; Kerala 68 ; Jabalpur 72)

फाइलम इकाइनोडर्मेटा की क्लास एस्टेरोइडिया में अण्डे से निकलने वाला लारवा बाइपिन्नेरिया कहलाता है। यह स्वतन्त्रतापूर्वक तैरता है। इसके शरीर पर एक-एक अग्रमुखीय एवम् पश्चमुखीय पक्ष्माभिकी पट्टियाँ (preoral and post-oral bands of cilia) पायी जाती है। अग्रमुखी पक्ष्माभिकी पट्टी के आगे का भाग अग्रमुखी खण्ड कहलाता है। इसके चारों ओर एक अग्रमुखीय पक्ष्माभिकी छल्ला या पक्ष्माभिकी वलय (preoral loop) होता है। इसके शरीर मे बहुत-से उभार निकले रहते है जो अन्य इकाइनोडर्म लारवा की भुजाओं के समान होते हैं। इसके शरीर मे आहार-नाल तथा सीलोमिक रचनाएँ होती है।
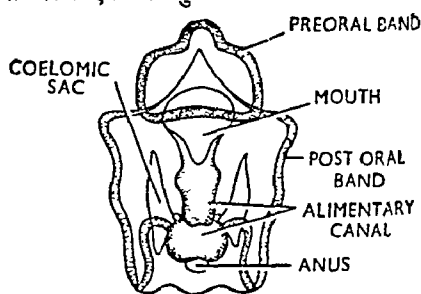
चित्र १९·१. बाइपिन्नेरिया लारवा (Bipinnaria larva)

बाइपिन्नेरिया लारवा द्विपार्श्व-सममित होता है और कुछ अतिरिक्त भुजाएँ बनाकर ब्रेकियोलेरिया लारवा (branchiolaria larva) में बदल जाता है और अन्त मे सितारा मछली मे रूपान्तरित हो जाता है।

8. बुक लंग (Book Lung)

(Agra 1967, 70 ; Gorakhpur 62, 68 ; Vikram 62, 68 ; Indore 67 ; Jiwaji 68, 70 ; Alld. 73 ; Osmania 73)

कृपया प्रश्न 61 देखिये।

9. सीलोमोडक्ट (Coelomoduct) *(Agra 1968)*

अधिकाश पोलिकीटा मे पायी जाने वाली रचनाएँ प्रत्येक खण्ड में स्थित मीसोडर्म की नलिकाएँ है जो एक सिरे पर स्वतन्त्रतापूर्वक बाहर की ओर खुलती है तथा दूसरे सिरे पर चौड़ी, पक्ष्माभिकी फनल द्वारा सीलोम से सम्बन्धित होती हैं। अक्सर ये नेफ्रीडिया से सम्बन्धित होती है तथा उनसे पूर्ण या अपूर्ण रूप से समेकित हो जाती है। नेरीस में, ये पृष्ठ पक्ष्माभिकी अग (dorsal ciliated organ) द्वारा प्रदर्शित होती है तथा ये बाहर को नही खुलती। जनन-काल में इनमे बाह्य छिद्र (external aperture) बन जाता है और तब ये गोनोडक्ट के समान कार्य करती है तथा युग्मको को बाहर निकालती है। सीलोमोडक्ट श्वसन, उत्सर्जन तथा जनन-क्रिया मे सहायक होती है। नेरीस में इनका कार्य अभी निश्चित नही है लेकिन यह माना जाता है कि ये जनन-काल मे अस्थायी छिद्रों द्वारा बाहर को खुलती है और जनन कोशिकाओं को शरीर के बाहर पहुँचाती है।

10. केंचुए में कोकून का निर्माण (Cocoon Formation in Earthworm)

(Patna 1965)

कृपया प्रश्न 20 देखिये।

11. क्लोरेगोगन कोशिकाएँ (Chloragogen Cells) (*Rajasthan 1963*)

क्लोरेगोगन कोशिकाएँ केंचुए की आहार नाल की वाह्य दीवार में पायी जाती हैं। ये पीत कोशिकाएँ (yellow cells) भी कहलाती हैं। इनके स्वभाव के विषय में विभिन्न मत हैं लेकिन अधिकतर ये उत्सर्जन में सहायक मानी जाती हैं। कहा जाता है कि यह आहार नाल की रक्त-केशिकाओं में से नाइट्रोजन के बने हानिकारक पदार्थों को एकत्रित कर लेती हैं और उन्हें पीले दानों के रूप में संचित रखती हैं। जब ये पूर्णतया इन उत्सर्जी पदार्थों से लद जाती हैं तो आहार नाल की दीवार से अलग होकर देहगुहीय द्रव (coelomic fluid) में आ जाती हैं और अन्त में सेप्टल नेफ्रीडिया द्वारा शरीर से बाहर निकाल दी जाती हैं। यह भी अनुमान है कि ये भोजन संचित रखती हैं।

12. बिच्छू की कॉक्सल ग्रन्थियाँ (Coxal Glands of Scorpion)
(*Vikram 1969 ; Jiwaji 71*)

कृपया प्रश्न 60 देखिये।

13. क्रॉप (Crop) (*Gorakhpur 1968*)

क्रॉप लीच में पाया जाता है। यह आहार नाल का ग्रास नली से पीछे का भाग है जो 9वें से 18वें खण्ड तक फैला रहता है। यह पतली दीवारों वाली नली है तथा सेप्टा द्वारा 10 कक्षों में बँटा रहता है। प्रत्येक कक्ष की पार्श्व दीवारें एक जोड़ी पार्श्व थैलियों (lateral pouches) या क्रॉप प्रवर्धों (crop diverticula) के रूप में बढ़ी रहती हैं। प्रथम 9 जोड़ी क्रॉप प्रवर्ध छोटे होते हैं तथा बाहर की ओर निकले होते हैं किन्तु 10वीं जोड़ी प्रवर्ध बहुत लम्बे होते हैं तथा पीछे की ओर 22वें खण्ड तक फैले होते हैं। क्रॉप का प्रत्येक कक्ष अपने से अगले कक्ष में खुलता है। इनके छिद्रों पर संकोचक पेशी छल्ले (sphincter muscles) होते हैं। क्रॉप खूब फैल सकता है तथा अपने आयतन से कई गुना अधिक रक्त संचित कर सकता है।

14. सहजीवन (Commensalism)
(*Agra 1960, 61 ; Allahabad 61 ; Patna 68, 69 ; Punjab 71 ; Meerut 72*)

सहजीवी किन्हीं विभिन्न जातियों के दो या दो से अधिक जन्तुओं के बीच वह सम्बन्ध है जिसमें एक या दोनों जन्तु लाभान्वित होते हैं किन्तु इसमें किसी को हानि नहीं होती। Commensalism का अर्थ है 'eating on the same table'। इसमें एक जन्तु दूसरे के भोजन में हिस्सा बाँटता है और उसके बदले में उसे रक्षा तथा शरण प्रदान करता है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें जन्तुओं का आपस में कोई कार्बनिक या फिजियोलॉजिकल सम्बन्ध नहीं होता। सहजीवन लगभग समस्त श्रेणियों के जन्तुओं में पाया जाता है। इनमें से कुछ उदाहरण निम्न हैं :—

(*i*) स्पंज की कुछ जातियाँ कुछ केकड़ों (crabs) की पीठ या टाँगों पर उग आती हैं। इससे केकड़ों की अपने शत्रुओं से रक्षा होती है तथा स्पंज केकड़े द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जाते हैं जिससे उन्हें अधिक ऑक्सीजन तथा भोजन प्राप्त हो जाता है।

(*ii*) हाइड्रेक्टीनिया (*Hydractinia*) तथा हरमिट क्रैब का आपसी सम्बन्ध सहजीवन का उदाहरण है क्योंकि इसमें *हाइड्रेक्टीनिया* हरमिट क्रैब के भोजन के बचे

हुए छोटे-छोटे टुकड़ों को खाता है तथा इसके बदले में हरमिट क्रैब की उसके शत्रुओं से रक्षा करता है।

(*iii*) सी-एनीमोन गैस्ट्रोपोड खोल के ऊपर उग आता है और उस खाली खोल मे हरमिट क्रैब रहने लगता है। हरमिट क्रैब द्वारा सी-एनीमोन एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जाता है जिससे उसे अधिक मात्रा में तथा विभिन्न प्रकार का भोजन प्राप्त होता है। सी-एनीमोन की उपस्थिति के कारण समुद्री शिकारी तथा मछलियाँ क्रैब पर आक्रमण नहीं करती। क्रैब अपने को खोल के अन्दर खीच लेता है। अतः उसकी रक्षा होती है।
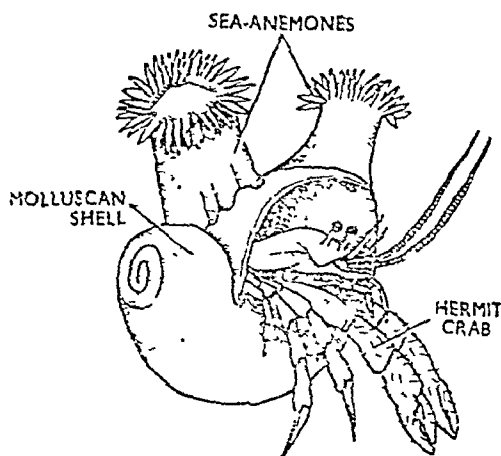
चित्र १९·२. हरमिट क्रैब तथा सी-एनीमोन के बीच सहजीवन (Hermit crab and sea-anemone showing commensalism)

(*iv*) कुछ डेकापोड जन्तु सी-अरचिन तथा होलोथूरिया की आंत्र में रहते हैं और शरण तथा भोजन प्राप्त करते है।

(*v*) पी-क्रैब तथा मसल (pea-crab and mussel) के बीच भी सहजीवी सम्बन्ध होता है। पी-क्रैब मसल की मेण्टल गुहा में रहता है जिससे उसे भोजन तथा शरण प्राप्त होती है।

(*vi*) कुछ कीटोपोड जन्तु अन्य जन्तुओं के सम्पर्क मे रहते हैं।

(*vii*) कुछ प्रोटोजोआ जैसे *ओपेलिना* (*Opalina*) तथा कुछ टरविलेरियन भी आंत्र मे सहजीवी जीवन व्यतीत करते है।

15. संयुक्त नेत्र (Compound Eye) (*Jiwaii 1969*)

कृपया प्रश्न 52 देखिये।

16. टेनिडियम (Ctenidium) (*Gorakhpur 1960 ; Kerala 68 ; Patna 67*)

कृपया प्रश्न 111 देखिये।

17. पृष्ठ पक्ष्माभिकी अङ्ग (Dorsal Ciliated Organs)

(*Vikram 1962 ; Raj. 64. ; Agra 67*)

पृष्ठ पक्ष्माभिकी अग नेरीस (*Nereis*) में पाये जाते हैं। शरीर के प्रत्येक खण्ड मे इनका एक-एक जोड़ा पाया जाता है जो पृष्ठ पार्श्व लम्बवत् पेशी समूह (dorsolateral longitudinal muscle bundle) के समीप स्थित होता है। प्रत्येक पृष्ठ पक्ष्माभिकी अंग सीलोमिक एपिथीलियम का बना पक्ष्माभिकी पथ (ciliated tract) है जो एक छोटी किन्तु मुड़ी हुई फनल के रूप में पाया जाता है तथा एक चौड़े छिद्र द्वारा देहगुहा में खुलता है। इसका दूसरा सिरा बन्द होता है तथा बाहर को नही खुलता।

पृष्ठ पक्ष्माभिकी अंग अन्य पोलीकीट जन्तुओं के सीलोमोडक्ट के समान होता है तथा उत्सर्जी अंग माना जाता है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार यह माना

जाता है कि ये जनन-वाहिनियों के समान कार्य करते हैं तथा जनन-काल में अस्थायी छिद्रों द्वारा बाहर को खुलते हैं।
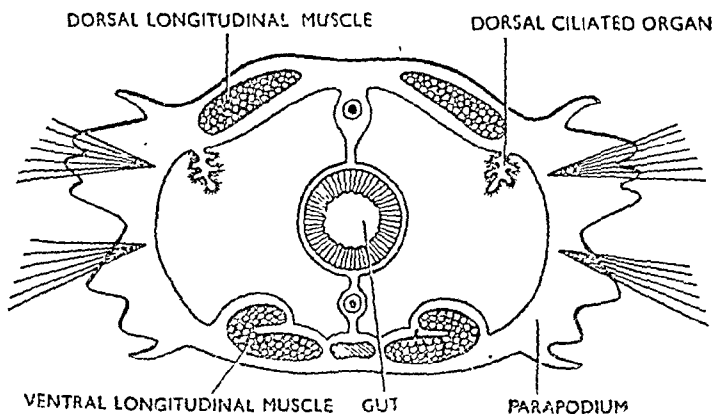
चित्र १६·३. नेरीस का पृष्ठ पक्ष्माभिकी अंग (Dorsal ciliated organ of *Nereis*)

18. एण्डोस्टरनाइट (Endosternite) (*Agra 1969 ; Jiwaji 71*)

फाइलम आर्थ्रोपोडा के, विशेषकर क्लास ऐरैकनिडा के जन्तुओं में अन्तः कंकाल पाया जाता है कार्टिलेज की एक प्लेट (plate) के रूप में प्रोसोमा तथा मीसोसोमा के बीच स्थित होता है। यह एण्डोस्टरनाइट (endosternite) कहलाता है। यह आहार-नाल के नीचे किन्तु नर्व कार्ड के ऊपर स्थित होता है। यह विच्छू में लगभग त्रिकोणाकार होता है तथा एक उड़ती हुई चिड़िया के समान दृष्टिगत होता है। इससे विभिन्न दिशाओं में बहुत-से उभार या सूक्ष्म प्रवर्ध निकले रहते हैं जिन पर पेशियाँ चिपकती हैं।
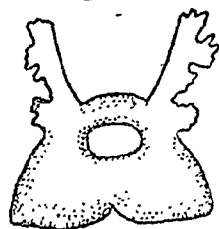
चित्र १६·४. विच्छू का एण्डोस्टरनाइट (Endosternite of *Scorpion*)

19. पाइला का नेत्र (Eye of Pila) (*Agra 1970*)

कृपया प्रश्न 106 देखिये।

20. बिच्छू के मादा जननांग (Female Reproductive Organs in Scorpion) (*Jiwaji 1970*)

कृपया प्रश्न 63 देखिये।

21. ग्रीन ग्रन्थि (Green Gland) (*Gorakhpur 1959 ; Vikram 67, 73 ; Agra 69 ; Ranchi 71, 73 ; Jiwaji 71 ; Meerut 72*)

कृपया प्रश्न 54 देखिये।

22. यूनिओ का क्लोम (Gill of Unio) (*Kanpur 1972*)

कृपया प्रश्न 111 देखिये।

23. ग्लोकिडियम (Glochidium) (*Agra 1960, 70 ; Gorakhpur 61 ; Vikram 67, 69, 72 ; Allahabad 50, 55, 59 ; Magadh 63 ; R.S. 71 ; Jabalpur 72 ; Meerut 71 ; Rajasthan 72 ; Indore 72 ; Jabalpur 72*)

कृपया प्रश्न 116 देखिये।

24. टिड्डा (Grasshopper) (*Patna 1967, 69*)

कृपया प्रश्न 58 देखिये ।

25. हेटरोनेरीस (Heteronereis) (*Agra 1961, 62, 63, 65 ; Gorakhpur 62, 63 ; Magadh 63 ; Kerala 68 ; Jiwaji 69, 71 ; Ranchi 71 ; R.S. 71 ; Vikram 69*)

कृपया प्रश्न 11 देखिये ।

26. हैस्टेट प्लेट (Hastate plate)

(*Agra 1961 ; Gorakhpur 60 ; Patna 67 ; Bhagalpur 63 ; Vikram 67 ; Jiwaji 70 ; Jabalpur 72 ; Indore 72*)

कृपया प्रश्न 48 देखिये ।

27. हिपेटोपैंक्रियास (Hepatopancreas) (*Gorakhpur 1963 ; Vikram 69*)

कृपया प्रश्न 48 देखिये ।

28. हीमोसील (Haemocoel) (*Agra 1958, 60, 61 ; Vikram 72 ; Indore 72*)

किसी जन्तु के देहगुहीय अग या आन्तरिक अग एक बड़ी चौड़ी गुहा के अन्दर स्थित होते है । यह गुहा देहगुहा (body cavity) कहलाती है । देहगुहा का स्वभाव उसके वर्धन के तरीके पर निर्भर करता है । जब यह भ्रूण की मीसोडर्म के दो स्तरो के बीच बनती है तो सीलोम कहलाती है । कुछ जन्तुओ में वास्तविक सीलोम या तो अनुपस्थित होती है और या बहुत कम विकसित होती है । यह अन्य रचनाओ द्वारा विस्थापित हो जाती है । फाइलम आर्थ्रोपोडा के जन्तुओ मे देहगुहा रक्त के समान रगीन द्रव से भर जाती है । यह रक्त से भरी गुहा हीमोसील (haemocoel : *haem*, blood ; *coel*, cavity) कहलाती है तथा इसमें भरा द्रव हीमोलिम्फ कहलाता है ।

29. केबर का अंग (Keber's Organ)

(*Agra 1960, 73 ; Gorakhpur 59, 62 ; Vikram 67*)

केबर का अग या पेरिकार्डियल ग्रन्थि यूनिओ मे पाया जाने वाला बड़ा ग्रन्थिल समूह है जो लाल-भूरे रग का होता है । यह शरीर के अगले भाग मे पेरिकार्डियम के आगे स्थित होता है । यह उत्सर्जी पदार्थ एकत्रित करके उनको पेरिकार्डियम मे डालता है ।

30. माल्पीघियन नलिकाएँ (Malpighian Tubules)

(*Agra 1959, 60 ; Madras 68 ; Bihar 73*)

माल्पीघियन नलिकाएँ फाइलम आर्थ्रोपोडा के विभिन्न वर्गो मे पायी जाने वाली उत्सर्जी नलिकाएँ है । ये अशाखान्वित (unbranched) अन्ध नलिकाएँ है जो मध्य तथा पश्च आन्त्र के जोड पर स्थित होती है और पश्च आन्त्र मे खुलती है । इनकी सख्या विभिन्न क्लासो मे तथा विभिन्न जीनस के जन्तुओ मे भिन्न-भिन्न होती है । कॉकरोच मे 60–80, बिच्छू मे 4 तथा सेन्टीपीड मे 2–4 तक माल्पीघियन नलिकाएँ होती है । प्रत्येक नलिका मध्य मे खोखली होती है तथा इसकी आन्तरिक गुहा ग्रन्थिल एपिथीलियम से आस्तारित होती है । इस स्तर की कोशिकाओं के किनारे ब्रुश के समान होते है । माल्पीघियन नलिकाएँ हीमोसीलोमिक द्रव मे पडी रहती है और उससे उत्सर्जी पदार्थ एकत्रित करती है जिसको ये आहार-नाल मे डाल देती है ।

31. मेगालोपा लारवा (Megalopa Larva)

मेगालोपा लारवा क्रस्टेशियन जीवो मे पायी जाने वाली लारवा अवस्थाओ

में से एक अवस्था है जो मुख्यत: केकड़ों में पायी जाती है। केकड़ों में जोइया या मेटाजोइया लारवा मेगालोपा लारवा में रूपान्तरित हो जाता है। इसका शरीर **सिफेलोथोरेक्स** तथा **उदर** में विभाजित होता है। सिफेलोथोरेक्स केकड़े की सिफेलो-थोरेक्स के समान होती है तथा उदर में छ: खण्ड पाये जाते है। सिफेलोथोरेक्स का
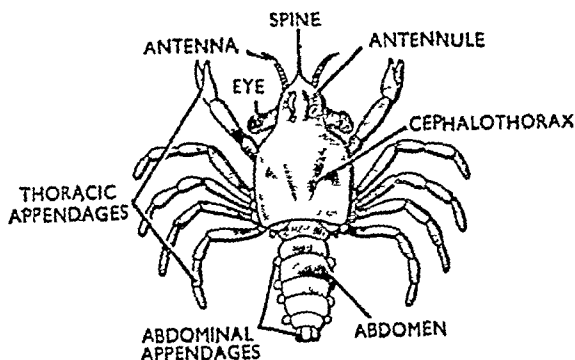
चित्र १९·५. केकड़े का मेगालोपा लारवा (Megalopa larva of *Palaemon*)

पृष्ठ तल केरापेस (carapace) द्वारा ढका रहता है। इससे आगे की ओर एक कण्टक निकला होता है। इस पर एक जोड़ी **संयुक्त नेत्र** तथा क्रस्टेशियन्स में पाये जाने वाले समस्त **उपांग** पाये जाते है। प्रत्येक उदर खण्ड में एक जोड़ी प्लवपाद (pleo-pods) होते है। मेगालोपा तलप्लावी जीव है जो अन्त में जलीय स्थानों की तली पर स्थित होकर प्रौढ़ जीव में रूपान्तरित हो जाता है।

32. मोजेयक दृष्टि (Mosaic Vision) (*Vikram 1964*)

कृपया प्रश्न 52 देखिये।

33. कायांतरण (Metamorphosis) (*Agra 1960, 69 ; Gorakhpur 1959, 60, 70 ; Allahabad 60 ; Rajasthan 63 ; Vikram 69 ; R.S. 71*)

कृपया प्रश्न 81 देखिये।

34. मेड्रीपोराइट (Madreporite)
(*Gorakhpur 1959, 61, 69, 71 ; Bhagalpur 63*)

मेड्रीपोराइट एक हल्के रंग की गोल या अण्डाकार ककालीय प्लेट या अस्थिका है जो सितारा मछली मे बिम्ब के अपमुखीय तल पर किन्ही दो भुजाओं के बीच के स्थान पर स्थित होती है। इसकी पृष्ठ-सतह पर असख्य खाइयाँ या झिरियाँ (furrows) होती हैं। ये झिरियाँ मुडी हुई होती हैं तथा मेड्रीपोराइट को एक विशेष प्रतीति प्रदान करती है। प्रत्येक झिरी मे बहुत-से सूक्ष्म छिद्र उपस्थित होते हैं जो छोटी-छोटी छिद्र नालो (pore canals) मे खुलते है। ये अन्त में एम्पुला मे खुलती है। इन छिद्रों द्वारा समुद्री पानी जल-वाहिनी तन्त्र में पहुँचता है।

35. मशरूम ग्रन्थि (Mushroom Gland) (*Gorakhpur 1959*)

मशरूम ग्रन्थि एक अतिरिक्त ग्रन्थि है जो कॉकरोच के नर जनन अगों से सम्बन्धित होती है। यह मशरूम के आकार की ग्रन्थि है। इसका रग चमकीला सफेद होता है। इसमे बहुत-से अंगुलाकार प्रवर्ध होते हैं जिनके स्वतन्त्र सिरे बन्द होते है। ये सेमिनल वेसीकल के आगे स्थित होते हैं। सेमिनल वेसीकल तथा

अंगुलाकार प्रवर्धो के दोनों समूहों के सम्मिलित रूप को ही मशरूम ग्रन्थि कहा जाता है। इसके प्रवर्धो में स्परमेटोजोआ भरे रहते है। अतः मशरूम ग्रन्थि में स्पर्म एकत्रित रहते है और मैथुन के समय उपयोग मे आते है।

36. नॉप्लियस (Nauplius) *(Agra 1958 ; Gorakhpur 63 ; Jiwaji 68 ; Vikram 69 ; Karnatak 68)*

समस्त क्रस्टेशियन्स मे अण्डे के उद्भवन से निकला लारवा नॉप्लियस अवस्था प्रदर्शित करता है जिसके कुछ विशेष गुण होते है। नॉप्लियस एक सूक्ष्म अण्डाकार
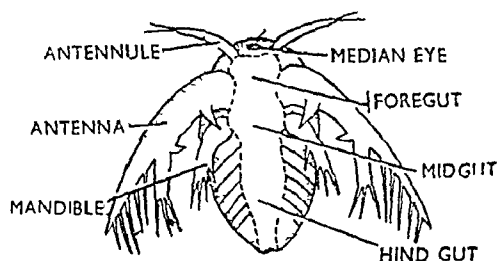
चित्र १७·६. नॉप्लियस लारवा (Nauplius larva)

या नाशपाती के आकार का जन्तु है जिसके शरीर मे खण्ड नही होते। इसका अगला सिरा सिर भाग तथा पिछला कम चौड़ा गुदाद्वार भाग (anal region) होता है। बीच का भाग धड़ कहलाता है। धड़ भाग मे तीन जोड़ी उपांग होते है। ये भी खण्डविहीन होते है। प्रथम जोड़ी के उपांग एकअक्षीय (uniramous) होते है तथा एण्टीन्यूल्स (antennules) कहलाते है, जबकि 2nd तथा 3rd जोड़ी उपांग द्वि-अक्षीय होते है। ये एण्टीनरी तथा मैण्डिबुलर पाद (antennary and mandibular feet) कहलाते है। सिर भाग के मध्य में एक सरल वृन्तविहीन मध्य नेत्र (median eye) होता है तथा एण्टीनरी एवम् मैण्डिबुलर पादों के बीच मुख स्थित होता है। गुदाद्वार पुच्छीय भाग के अन्तिम सिरे पर स्थित होता है। नॉप्लियस कई बार त्वक्मोचन करता है और विभिन्न लारवा अवस्थाओं (जैसे मैटानॉप्लियस, प्रोटोजोइया, जोइया इत्यादि) से गुजरकर प्रौढ़ जन्तु में रूपान्तरित हो जाता है।

37. ओम्मेटीडियम (Ommatidium) *(Patna 1968 ; Allahabad 70)*

कृपया प्रश्न 52 देखिये।

38. ऑस्फ्रेडियम (Osphradium) *(Ranchi 1971 ; Agra 65 ; Patna 67 ; Kanpur 71 ; Vikram 72 ; Indore 72 ; Bihar 73)*

कृपया प्रश्न 106 देखिये।

39. बोजेनस के अंग (Organs of Bojanus) *(Agra 1962, 64, 65 ; Vikram 68 ; Jiwaji 68, 71 ; Patna 69 ; Indore 67 ; Gorakhpur 68)*

अलवण-जल शम्बुक (fresh water mussel) के वृक्क या नेफ्रीडिया **बोजेनस के अंग** कहलाते है। ये पेरिकार्डियल गुहा के फर्श के नीचे तथा वेना केवा के दोनों ओर स्थित होते है। इनके चारों ओर वास्तविक सीलोम होती है।

प्रत्येक वृक्क एक लम्बी, गहरे रंग की ग्रन्थिल नलिका है जिसके दोनों सिरे खुले रहते है। यह चौड़ी 'U' के आकार की रचना है जिसमें दो अग्रिम भुजाएँ तथा एक पश्च छल्ला (loop) होता है। इसकी दोनों भुजाएँ एक-दूसरे के समान्तर किन्तु एक-दूसरे के ऊपर स्थित होती है। निचली भुजा गहरे भूरे रग

की स्पंजी, ग्रन्थिल तथा मोटी दीवार वाली होती है तथा वास्तविक वृक्क को प्रदर्शित करती है। यह एक छोटे-से पक्ष्माभिकी छिद्र द्वारा पेरिकार्डियल गुहा में खुलती है। यह छिद्र रीनो-पेरिकार्डियल छिद्र (reno-pericardial aperture) कहलाता है। वृक्क की पृष्ठ भुजा छोटी तथा पतली दीवार वाली होती है। यह पक्ष्माभिकी एपिथीलियम से आस्तारित होती है तथा मूत्रवाहिनी (यूरेटर) या मूत्राशय (यूरीनरी ब्लैडर) कहलाती है। यह एक छोटे रीनल छिद्र द्वारा सुप्राब्रैंकियल कक्ष में खुलती है जो आन्तरिक क्लोम लैमेला (inner gill lamella) तथा विसरल मास के बीच स्थित होती है।
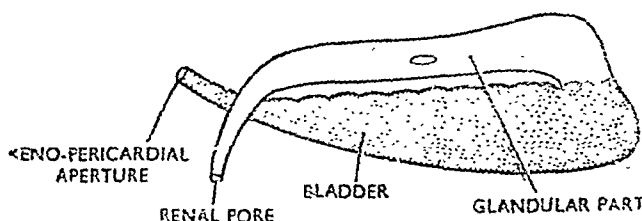
चित्र १९७. बोजेनस का अंग (Organ of Bojanus)

वृक्क का अधर ग्रन्थिल भाग पेरिकार्डियल द्रव में से ग्वानिन (guanin) तथा अन्य नाइट्रोजन के बने उत्सर्जी पदार्थों को एकत्रित करता है। मूत्राशय की पक्ष्माभिकी एपिथीलियम उत्सर्जी द्रव को ग्रन्थिल भाग से बाहर की ओर पहुँचाती है जिससे वह बाहर जाने वाली धारा के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है।

40. पैलीमोन का स्टेटोसिस्ट (Statocyst of Palaemon) (*Lucknow 1971*)

कृपया प्रश्न 56 देखिये।

41. पायलोरिक फिल्टर (Pyloric filter) (*Agra 1958, 62 ; Jiwaji 70*)

कृपया प्रश्न 52 देखिये।

42. नेरीस का पार्श्वपाद (Parapodium of Nereis) (*Tribhuvan 1963 ; Patna 68*)

कृपया प्रश्न 3 देखिये।

43. पाइला का पेलियल कॉम्प्लैक्स (Pallial complex of Pila) (*Luck. 1970*)

कृपया प्रश्न 96 देखिये।

44. हेटरोनेरीस का पार्श्वपाद (Parapodium of Heteronereis) (*Lucknow 1955, 69 ; Meerut 70, 71*)

कृपया प्रश्न 11 देखिये।

45. पेक्टीन (Pecten) (*Jiwaji 1970*)

कृपया प्रश्न 126 देखिये।

46. पोलियन पुटिका (Polian vesicle) (*Luck. 1954 ; Karnatak 63*)

क्रिनोइडिया के अतिरिक्त अन्य सभी इकाइनोडर्म में पोलियन पुटिकाएँ विशेष प्रकार के उपांगों के रूप में पायी जाती हैं। ये पतली दीवार वाले, नाशपाती के आकार के, अण्डाकार या गोलाकार थैले हैं जो जल-वाहिनी तन्त्र की रिंग-वाहिनी से निकलते हैं तथा ये पतली नलिकाओं द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक देहगुहा में लटके रहते हैं। पुटिकाएँ आकार में भिन्न-भिन्न होती हैं तथा विभिन्न वर्गों में संख्या अलग-

अलग होती है। सितारा मछली में 5 पोलियन पुटिकाएँ होती हैं जो आन्तर-अरीय (inter-radial) स्थिति में पायी जाती हैं। होलोथूरिया (Holothuria) में ये एक या अनेक होती है। ये जलवाहिनी तन्त्र के फैलाव में मदद करती हैं।

47. पेडिसिलेरिया (Pedicellaria) (*Agra 1968, 69, 60, 62, 73 ; Karnatak 68 ; Raj. 68, 70 ; Poona 64 ; Meerut 70 ; Lucknow 52, 54, 56 ; Punjab 69, 71 ; Ranchi 71 ; Kanpur 71 ; Jabalpur 72 ; R.S. 71 ; Jiwaji 71 ; Jabalpur 72*)

पेडिसेलेरिया सूक्ष्म व कण्टिकाओं के समान कैल्शियम कार्बोनेट की बनी रचनाएँ है जो विशेष रूप से रूपान्तरित होती हैं। ये एस्टीरोइडिया तथा इकाइनोइडिया के जन्तुओं में पेपुली (papullae) के बीच साधारण कण्टकों के समीप छितरे हुए पाये जाते हैं। ये शरीर के मुखवर्ती तथा अपमुखवर्ती दोनों तलों पर पाये जाते है। एक प्रारूपी पेडिसिलेरिया में एक आधार खण्ड (basilar piece) या डण्ठल (stalk or peduncle) होता है जिससे दो जबड़ेनुमा रचनाएँ लगी रहती है। ये आधारखण्ड पर तथा एक-दूसरे पर स्वतन्त्रता से घूम सकते हैं। दोनों जबड़े एक-दूसरे की विपरीत दिशा मे कार्य करते हैं जैसे कि एक चिमटी के दोनों फलक। इनकी क्रिया तीन जोड़ी पेशियों द्वारा नियमित होती है। इनमें दो जोड़ी एडक्टर तथा एक जोड़ी एबडक्टर पेशियाँ होती है। एडक्टर पेशियाँ (adductor muscles) जबड़ों को बन्द करती हैं तथा एबडक्टर पेशियाँ उनको खोलती हैं। पेडिसिलेरिया शरीर से बाहर निकाले तथा अन्दर खींचे जा सकते हैं।

(A) **एस्टेरोइडिया में पेडिसिलेरियाई** (Pedicellariae in Asteroidea)—ये निम्न प्रकार के होते है :—
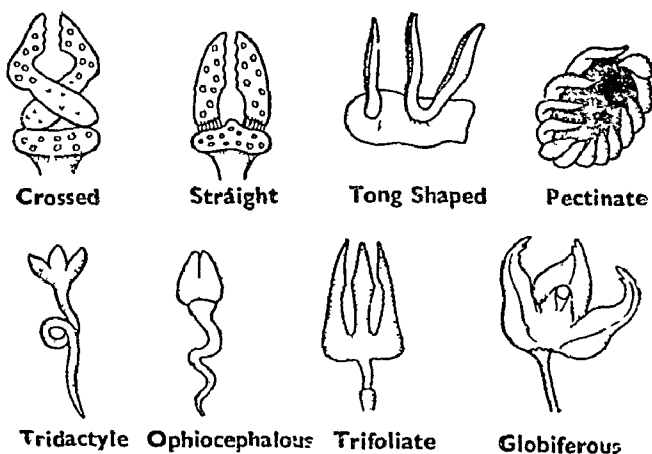
चित्र १९·८. विभिन्न प्रकार के पेडिसिलेरिया (Various types of pedicellariae)

(*i*) **वृन्तयुक्त** (Pedunculate)—इसमें एक आधार खण्ड या वृन्त होता है जिसकी लम्बाई कम या ज्यादा हो सकती है। इस पर दोनों जबड़े स्थित होते है। ये सीधे हो सकते हैं अर्थात् अपनी पूरी लम्बाई तक एक-दूसरे से मिले रहते है अथवा चिमटाकार (forcipulate) हो सकते हैं अर्थात् एक-दूसरे को इस प्रकार काटते हैं जसे क्रॉस बिल (cross bill) के जबड़े काटते है।

(*ii*) **वृन्तविहीन** (Sessile)—इनमें आधार खण्ड नही होता तथा दोनों

जवड़े अस्थिका से जुड़े रहते हैं। जब इनके समूह दो अस्थिकाओं के जोड़ पर स्थित होते हे तो **कंटकाकार** (spiniferous) कहलाते है किन्तु जब ये तथा कण्टिकाओं के समूह एक ही अस्थिका पर स्थित होते है तो **फेसिक्युलेट** (fasciculate) कहलाते है।

(*iii*) **वायु कोटक** (Alveolar)—ये वृन्तविहीन पेडिसिलेरिया होते है जो पूर्ण या अपूर्ण रूप से अन्त.कंकाल के गड्ढों अथवा कोष्ठकों में पड़े रहते हैं।

(B) **इकाइनोइडिया में पेडिसिलेरियाई** (Pedicellariae in Echinoidea)—इकाइनोइडिया के पेडिसिलेरिया मे तीन जवड़े होते है जो एक लम्बे वृन्त से जुड़े रहते है। वृन्त के अन्दर कैल्केरियस छड़ होती है जो कभी-कभी सिर तक पहुँच जाती है अन्यथा इसका ऊपरी भाग लचीली गर्दन के रूप में होता है। इसके जवड़ों की गति पेशियों द्वारा नियन्त्रित रहती है। ये निम्न प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **त्रिशूलदन्ती या त्रिअंगुलाकार** (Tridentate or tridactylar)—इसमें तीन लम्बे दन्ताकार जवड़े होते हैं जो पीछे की ओर कम चौड़े होते हैं।

(*ii*) **त्रिपर्णकी** (Triphyllous or Trifoliate)—इनमें तीन छोटे जवड़े होते हैं जो सिर पर एक-दूसरे के सम्पर्क मे नही आते।

(*iii*) **ओफियोसिफैलस** (Ophiocephalous)—इस प्रकार के जवड़े छोटे तथा मजबूत होते हैं तथा इनके सिरे नुकीले नही होते। इनकी अन्दर की सतह उत्तल होती है।

(*vi*) **ग्लोबीफेरस** (Globiferous)—इस प्रकार के प्रत्येक जवड़े पर एक या एक से अधिक दाँत तथा एक ग्रन्थिल थैलेनुमा रचना होती है। प्रत्येक जवड़े का अन्तिम सिरा मुड़े हुए दाँत के रूप में होता है।

48. पैडीपैल्पाई (Pedipalpi) (*Jiwaji 1970*)
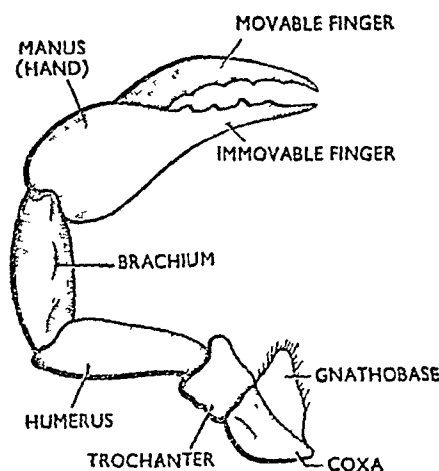
चित्र १९.९. बिच्छू का पैडीपैल्पाई (Pedipalpi of *Scorpion*)

फाइलम आर्थ्रोपोडा की क्लास एरैकनिडा के जीवों के द्वितीय जोड़ी उपांग पैडीपैल्पाई (pedipalpi) कहलाते है। ये केलीसिरी के पीछे पश्चमुखीय उपांगों के रूप मे स्थित होते हैं। प्रत्येक पैडीपाल्प एक लम्बी, शक्तिशाली व 6 खण्डीय रचना है। आधार की ओर से ये खण्ड क्रमशः **कॉक्सा** (coxa), **ट्रोकेण्टर** (trochanter), **ह्यूमरस** (humerus), **ब्रैकियम** (brachium), **मेनस** (manus) तथा **चल अंगुली**

(movable finger) हैं। मेनस तथा चल अंगुली एक-दूसरे के विम्मुख चिमटी के ब्लेड्स के समान स्थित होते है। इस प्रकार की रचना को कीला (chela) तथा इस प्रकार के उपांग को कीलेट (chelate) कहते हैं। यह शिकार को पकड़ने का कार्य करता है। कॉक्सा या आधार खण्ड, जिससे पैडीपाल्प शरीर से जुड़ा रहता है, पर ब्लेड के समान एक प्रक्षेप होता है। इसको नैथोबेस (ganathobase) कहते हैं। दोनों पैडीपाल्प के नैथोवेस जबड़ों के समान कार्य करते है। चलन के समय दोनों पैडीपाल्प शरीर के समान क्षैतिज अवस्था में रहते हैं और स्पर्श संवेदी अंगों के समान कार्य करते है।

49. पल्मोनरी कोष (Pulmonary Sac) *(Lucknow 1969)*

कृपया प्रश्न 98 देखिये।

50. मोती का निर्माण (Pearl Formation) *(Lucknow 1971)*

कृपया प्रश्नं 105 देखिये।

51. रेड्यूला (Radula) *(Agra 1959, 61, 68 ; Allahabad 60 ; Ranchi 68 ; Karnatak 68 ; Lucknow 51, 61 ; Vikram 61, 63, 69 ; Indore 67 ; Meerut 72)*

रेड्यूला काइटिन की वनी फीते के समान (strap-like or ribbon-like) सँकरी पट्टी के रूप में फाइलम मौलस्का के लगभग समस्त जन्तुओं में पाया जाता है। यह पेलीसीपोडा आर्डर के जन्तुओं में अनुपस्थित होता है। यह मुखगुहा के फर्श में ओडोण्टोफोर के ऊपर लम्बरूप से पड़ा होता है। पीछे की ओर यह एक मुड़े हुए थैले के रूप में होता है जो रेड्यूलर सैक (radular sac) कहलाता है। रेड्यूलर कोष मुखगुहा के पिछले तथा निचले भाग से निकलता है। रेड्यूला पर असंख्य सूक्ष्म मुड़े हुए हार्नी दाँत होते है जो अनुप्रस्थ पंक्तियों में विन्यसित होते है। दाँतों की सख्या तथा परिमाण फाइलम मौलस्का की विभिन्न क्लासों में भिन्न-भिन्न होता है। काइटन
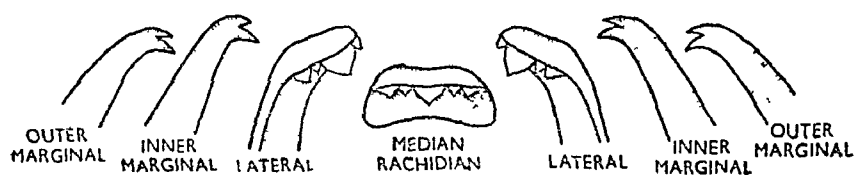
चित्र १६·१० रेड्यूला (*Radula*)

(*Chiton*) में एक पक्ति में 17 दाँत तथा पाइला में केवल 7 दाँत होते है। पाइला में रेड्यूलर दाँत इस प्रकार विन्यसित होते है कि इनकी मध्य पंक्ति सेन्ट्रल या रेकिडियन (central or rachidian) कहलाती है जिसके दोनों ओर एक-एक पार्श्व तथा दो-दो मार्जिनल पंक्तियाँ होती है। रेड्यूला पर स्थित दाँत नुकीले होते हैं और इनके सिरे कँटीले होते हैं। ये रेड्यूलर कोष की ओडेण्टोब्लास्ट कोशिकाओं के स्राव से वनते हैं। आगे के पुराने तथा टूटे-फूटे दाँत नये दाँतों द्वारा विस्थापित कर दिये जाते हैं। रेड्यूला कार्टिलेज के वने आधार पर स्थित होता है तथा आकर्षी तथा प्रतिकर्षी (protractor and retractor) पेशियों द्वारा यह मुखगुहा के साथ आगे या पीछे किया जा सकता है। कुछ सीमा तक इसमें पार्श्व गति (lateral movement) भी पायी जाती है। दाँतों तथा पेशियों की मदद से रेड्यूला भोजन पर घर्षण प्रभाव उत्पन्न करता है।

52. स्टेटोसिस्ट (Statocyst)

(*Raj. 1968 ; Agra 59, 61 ; Meerut 70 ; Punjab 71*)

कृपया प्रश्न 52 देखिये।

53. वयन ग्रन्थियाँ (Spinning Glands) (*Agra 1970*)

वयन ग्रन्थियाँ मकड़ों में पायी जाने वाली परिवर्तित उदर ग्रन्थियाँ हैं जो मकड़ी का छत्ता बुनने का कार्य करती हैं। इनके 4 से 6 जोड़े तक उदर में अधर तल पर स्थित होते है और महीन नलिकाओं द्वारा बाहर को खुलते हैं। इन नलिकाओं के छिद्र वयन प्रवर्धों (spinnerets) के मध्य में स्थित होते हैं। ये ग्रन्थियाँ एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ स्रावित करती हैं जो हवा के सम्पर्क में सख्त होकर सिल्क के धागे के समान हो जाता है। ये धागे पिछली टाँगों द्वारा छत्ता बनाते हैं। यह सिल्क घोंसलों तथा बिलों को आस्तारित करने अथवा कोकून बनाने के काम में भी आता है। इसके द्वारा शिकार को भी पकड़ा जाता है। ये ग्रन्थियाँ सिल्कवर्म केटरपिलर लारवा में भी पायी जाती हैं। केटरपिलर लारवा में ये लेबियल ग्रन्थियों के रूपान्तरण से बनती हैं जो प्यूपा के चारों ओर कोकून बनाती हैं।
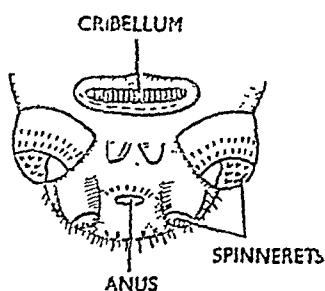
चित्र १९·११. मकड़े के उदर पर वयन प्रवर्ध (Spinnerets of spider)

54. कॉकरोच की लार ग्रन्थियाँ (Salivary Glands of Cockroach)

(*Nagpur 1973*)

कृपया प्रश्न 65 देखिये।

55. रेशम का कीड़ा (Silkworm) (*Agra 1970*)

कृपया प्रश्न 85 देखिये।

56. ट्रोकोफोर (Trochophore)

(*Agra 1960, 65 ; Allahabad 57, 60 ; Rajasthan 70 ; Lucknow 62 ; Gorakhpur 60, 65, 70 ; Jiwaji 70 ; Meerut 71 ; Kanpur 72 ; Kerala 68, 73*)

कृपया प्रश्न 9 देखिये।

57. टिफ्लोसोल (Typhlosole)

(*Agra 1962 ; Gorakhpur 67 ; Nagpur 68, 73*)

विभिन्न फाइलम के समस्त जन्तुओं में आंत्र का कार्य पचे हुए भोजन का अवशोषण करना है। इस कार्य के लिए आंत्र की दीवार असंख्य अंगुलाकार (finger-like) प्रवर्धों में उभरी रहती है जो रसांकुर (villi) कहलाते है। केंचुए में ये प्रवर्ध बहुत छोटे होते हैं किन्तु इसकी पृष्ठभित्ति के मध्य भाग से एक बड़ा उभार आंत्र की गुहा में लटका होता है। यह पृष्ठवाहिनी के नीचे आंत्र की लम्बाई के साथ फैला होता है तथा बिना सूक्ष्मदर्शी के देखा जा सकता है। आंत्र की दीवार का यह उभार टिफ्लोसोल कहलाता है। यह आंत्र की अवशोषण सतह को बढाता है तथा आगे बढ़ते हुए भोजन के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है जिससे वह अधिक समय तक आहार नाल में ठहर सके और उसका अवशोषण ठीक प्रकार से हो सके।

58. दीमक (Termites) *(Delhi 1969 ; Vikram 69)*

कृपया प्रश्न 86 देखिये।

59. ट्यूब फीट (Tube Feet) *(Allahabad 1970)*

कृपया प्रश्न 129 देखिये।

60. वेलिजर (Veliger) लारवा *(Agra 1958 ; Gorakhpur 52)*

यह फाइलम मौलस्का का लारवा है।
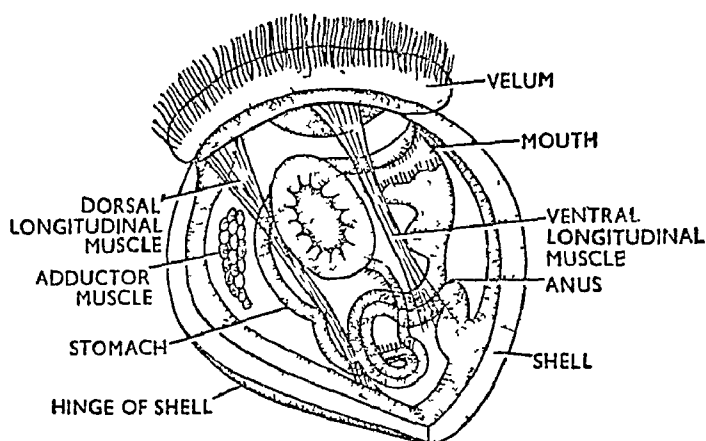
चित्र १६·१२. वेलिजर लारवा (Veliger larva)

61. जोइआ (Zoea)

(Agra 1960, 73 ; Gorakhpur 62 ; Vikram 68 ; Meerut 70 ; Indore 72)

जोइआ क्रस्टेशिया क्लास मे पायी जाने वाली दूसरी महत्त्वपूर्ण लारवा
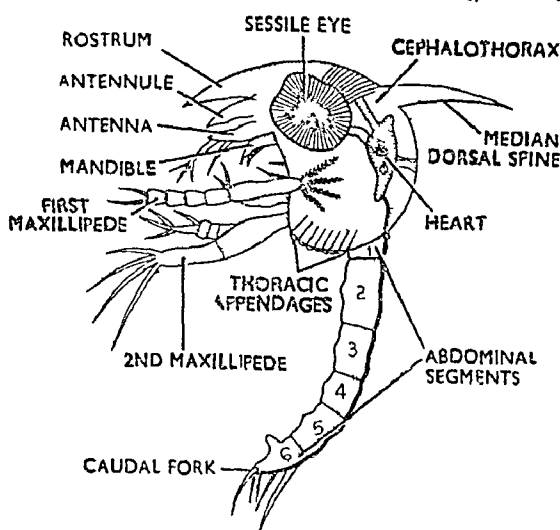
चित्र १६·१३. क्रैब का जोइआ लारवा
(Zoaea larva of crab)

अवस्था है जो नॉप्लियस से बनता है। यह अधिकतर प्रोटोजोइआ लारवा के रूपान्तरण के फलस्वरूप बनता है किन्तु बहुत-से डेकापोडा में यह सीधे जोइआ अवस्था में ही अण्डे से बाहर निकलता है। नॉप्लियस अवस्था अण्डे के अन्दर ही पूर्ण होती है।

जोइआ का शरीर **शिरोवक्ष** (cephalothorax) तथा **उदर** (abdomen) का बना होता है। इसका शिरोवक्ष भाग बहुत बड़ा होता है और कैरापेस (carapace) द्वारा ढका रहता है जो कुछ काँटों में निकला रहता है। इसमें एक अग्रिम काँटा **रोस्ट्रल**, एक मध्य पृष्ठ तथा दो पार्श्व काँटे होते हैं। इस पर एक जोड़ी संयुक्त आँखें होती हैं। जोइआ में 5 जोड़ी सिर उपांग तथा 2 जोड़ी वक्ष उपांग होते हैं। शेष 6 जोड़ी वक्ष उपांग कलिकाओं के रूप में होते है जो बढ़कर प्रौढ़ जन्तु के उपांग बनाते है। उदर उपांगविहीन होता है। *Squilla* का जोइआ लारवा प्रारूपी जोइआ से कुछ भिन्न होता है जो एलिमा (alima) लारवा कहलाता है। कैब के जोइआ में कई बार त्वक्विमोचन होता है और यह मैगालोपा लारवा में बदल जाता है।

हेमीकॉर्डेटा

(HEMICHORDATA)

1
कॉर्डेट लक्षण
(Chordate Characters)

प्रश्न 1. फाइलम कॉर्डेटा के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कीजिये तथा समझाइये कि मनुष्य एवम् हर्डमानिया को एक ही फाइलम में क्यों रखा गया है।

Enumerate the characteristic features of the phylum Chordata and state why *Herdmania* and man have been placed in one and the same phylum. (*Lucknow 1950*)

फाइलम कार्डेटा के विशिष्ट (diagnostic) लक्षणों का वर्णन कीजिये तथा नॉन-कॉर्डेटा (non-chordata) से इनके विभेदक लक्षणों का उल्लेख करिये।

Describe the diagnostic characters of the phylum Chordata and point out the main differences in their organization from that of nonchordata.

फाइलम कॉर्डेटा के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कीजिये। बैलेनोग्लॉसस, हर्डमानिया, स्कोलिओडॉन एवम् मेंढक को इस समुदाय में रखने का औचित्य सिद्ध कीजिये।

Describe the characteristic features of the phylum Chordata. Justify the inclusion of *Balanoglossus, Herdmania, Scoliodon* and frog in this phylum. (*Kanpur 1969 ; Agra 68*)

कॉर्डेट लक्षणों पर टिप्पणी करिये।

Write a note on chordate characters.

(*Agra 1971 ; Gorakhpur 71*)

कॉर्डेट लक्षण (Chordate Characters)

फाइलम कॉर्डेटा के जन्तु द्विपार्श्व सममित (bilaterally symmetrical), विखण्डित (metamerically segmented), त्रिस्तरीय (triploblastic), सगुहीय (coelomate) एवम् जटिल रचना वाले जन्तु हैं। इनमें निम्न तीन प्राथमिक कॉर्डेट लक्षणों में से एक या एक से अधिक गुणों का जीवन की किसी न किसी अवस्था में पाया जाना आवश्यक है।

प्राथमिक कॉर्डेट लक्षण (Primary Chordate Characters)

1. नोटोकॉर्ड की उपस्थिति (Presence of notochord)—हेमीकॉर्डेटा के

अतिरिक्त समस्त कॉर्डेट जन्तुओं में एक ठोस, अखण्डीय, लचीली किन्तु कठोर अक्षीय शलाका के रूप में **नोटोकॉर्ड** (notochord) पायी जाती है। यह शरीर के पृष्ठ भाग में आहार-नाल के ऊपर तथा पृष्ठ नर्व-कॉर्ड (nervecord) के नीचे शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती है। यह मध्य पृष्ठतल में आहार-नाल की **एण्डोडर्म** (endoderm) से उत्पन्न होती है। नोटोकॉर्ड विशेष प्रकार की धानीयुक्त पैरनकाइमेटस कोशिकाओं से बनी होती है जिनके बाहर **आन्तरिक लचीला** तथा बाहरी **तन्तुमय संयोजी ऊतक** (fibrous connective tissue) का आवरण होता है।
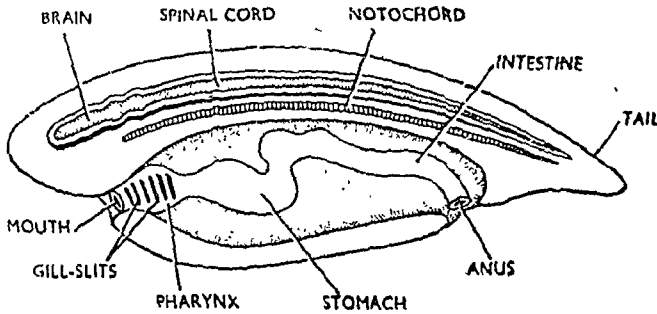
चित्र 1. प्ररूपी कॉर्डेट की रचना (Structure of a typical chordate)

नोटोकॉर्ड प्राथमिक **आन्तरिक कंकाल** (endoskeleton) बनाती है जो केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र (central nervous system) तथा पेशियों को अवलम्बन प्रदान करती है।

2. पृष्ठ नालाकार केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र की उपस्थिति (*Presence of dorsal tubular central nervous system*)—कॉर्डेट जन्तुओं का तन्त्रिका-तन्त्र एक खोखली नली के आकार का होता है जो देहभित्ति के ठीक नीचे तथा नोटोकार्ड
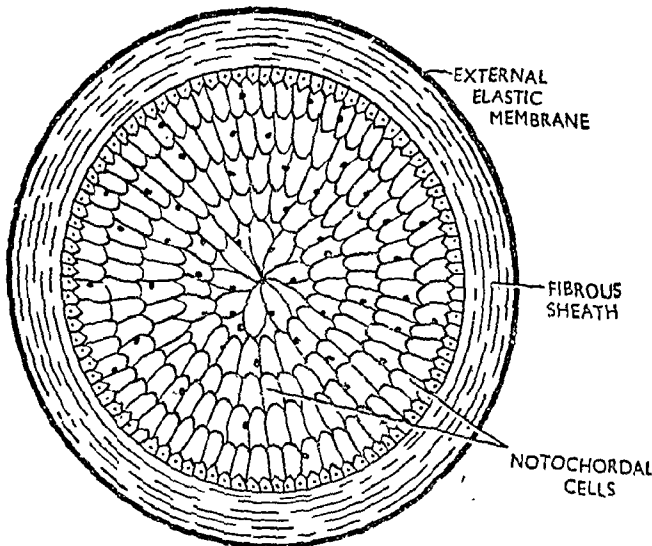
चित्र 2. लैम्प्रे की नोटोकार्ड का अनुप्रस्थ काट (T.S. Notochord of Lamprey)
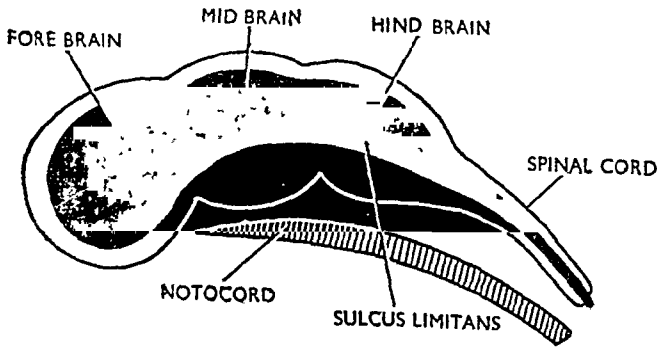
चित्र 3. मस्तिष्क की लम्बवत् काट (L.S. Brain)

के ऊपर मध्य पृष्ठतल में स्थित होता है। यह भ्रूण में एक्टोडर्म के मध्य पृष्ठतल के अन्तर्गमन द्वारा बनती है। अन्तर्गमन के फलस्वरूप **न्यूरल खात** (neural groove) बनती है जिसके दोनों किनारों के मध्य में मिलने से **न्यूरल नाल** (neural tube) का निर्माण होता है। यह एपिडर्मिस से अलग होकर **केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र** का निर्माण करती है।

इसकी गुहा **तन्त्रिका गुहा** (neurocoel) कहलाती है। अधिक विकसित कॉर्डेट जन्तुओं मे तन्त्रिका-नाल का अगला सिरा चौड़ा होकर मस्तिष्क का निर्माण करता है तथा शेष भाग **स्पाइनल कॉर्ड** या रीढ रज्जु (spinal cord) बनाता है।

3. ग्रसनी विदर की उपस्थिति (pharyngeal clefts)—ग्रसनी विदर या आशय विदर (visceral clefts) समस्त कॉर्डेट जन्तुओं मे जीवन की किसी न किसी प्रावस्था में अवश्य पाये जाते हैं। ये आहार-नाल की अगली पार्श्व दीवारों में युगल छिद्रों के रूप मे पाये जाते हैं जिनके द्वारा ग्रसनी गुहा बाहर को खुलती है। भ्रूण अवस्था में ये एक्टोडर्म के अन्दर की ओर धँसने तथा ग्रसनी के एण्डोडर्म के बाहर की ओर उभरने एवम् दोनों के समेकन से बनते हैं। कुछ जन्तुओं (एम्फीऑक्सस) में ये जीवन-पर्यन्त पाये जाते हैं। मछलियों में ये क्लोमों में परिवर्तित हो जाते हैं और क्लोम-छिद्रो द्वारा बाहर को खुलते हैं। स्थलीय जन्तुओं में ये अन्त:स्रावी
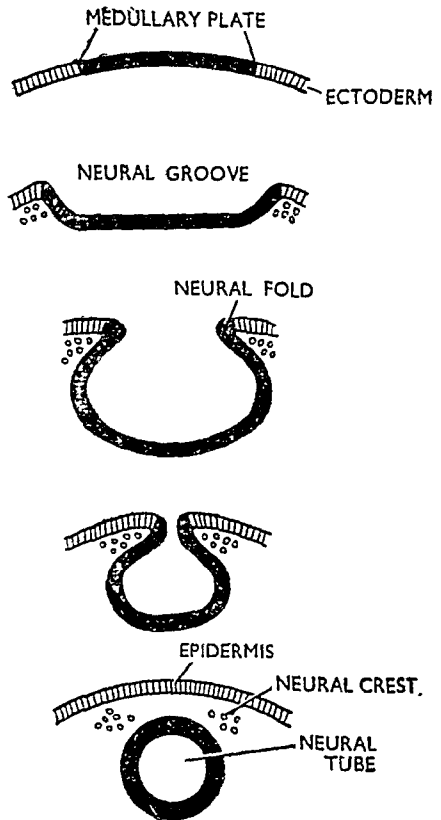
चित्र 4. प्रारूपी कॉर्डेट में पृष्ठ नालाकार केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र का वर्धन (अनुप्रस्थ काट में)

ग्रन्थियों मे परिवर्तित हो जाते है ।
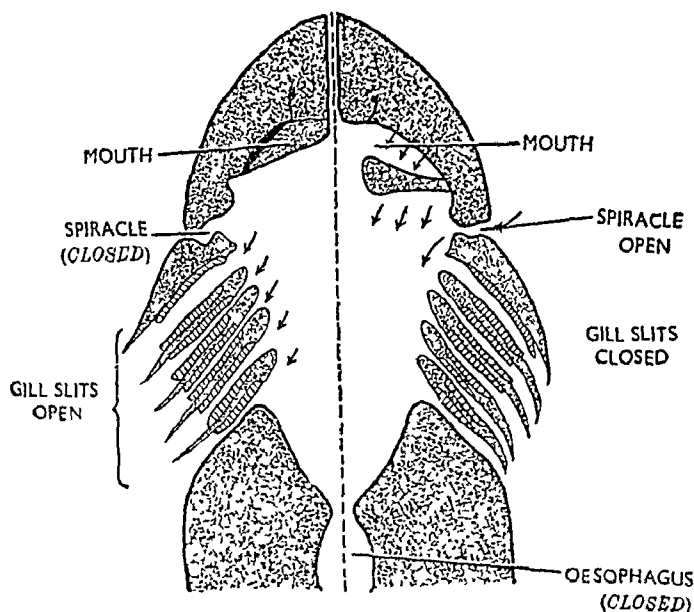
चित्र 5. जलीय कॉर्डेट में क्लोम-विदर (gill-clefts)
या क्लोम-छिद्र (gill-slits) का चित्रीय निरूपण

कॉर्डेटा तथा नॉन-कॉर्डेटा में भिन्नताएँ
(Differences Between Chordata and Nonchordata)

प्राथमिक कॉर्डेट लक्षणों के अतिरिक्त कॉर्डेट तथा नॉनकॉर्डेट जन्तुओं में निम्नलिखित अन्तर है :—

1. जीवित अन्तःकंकाल की उपस्थिति (Presence of living endoskeleton)—कॉर्डेट जन्तुओं में मजबूत अस्थियों का बना हुआ ढाँचा होता है जो शरीर के अन्दर स्थित होता है । नॉनकॉर्डेट जन्तुओं मे या तो ककाल का अभाव होता है अथवा यह बाह्यकंकाल होता है जो अजीवित काइटिनस पदार्थ का बना होता है ।

2. पुच्छ की उपस्थिति (Presence of a postanal tail)—शरीर के मुख्य अक्ष का गुदाद्वार के पीछे वाला भाग वास्तविक पुच्छ कहलाता है । इसमें पेशियाँ, नर्वकॉर्ड नोटोकॉर्ड या कशेरुक-दण्ड एवम् रक्त-वाहिनियाँ होते है किन्तु आशिय अंगों का अभाव होता है । नॉन-कॉर्डेट जन्तुओं की पुच्छ कॉर्डेट जन्तुओं से विल्कुल भिन्न होती है ।

3. प्रतिपृष्ठीय हृदय (Ventral heart)—कॉर्डेटा मे हृदय आहार नाल के नीचे प्रतिपृष्ठ तल पर स्थित होता है किन्तु नॉनकॉर्डेट मे यह सदैव आहार-नाल के ऊपर स्थित होता है ।

4. बन्द परिवहन तन्त्र की उपस्थिति (Presence of closed vascular system)—अधिकांश नॉनकॉर्डेटा मे परिवहन तन्त्र खुला होता है क्योंकि इनकी

रुधिर वाहिनियाँ केशिकाओं में समाप्त न होकर भित्ति-विहीन रुधिर-विवरों में समाप्त होती हैं, अतः इनके आशिय अंग रक्त में पड़े रहते हैं। कॉर्डेटा समुदाय में परिवहन-तन्त्र बन्द होता है और इसकी रुधिर-वाहिनियाँ निश्चित दीवारों वाली रुधिर-केशिकाओं (blood capillaries) में समाप्त होती हैं। अतः इसमें आशिय अंग (visceral organs) रुधिर-केशिकाओं की दीवार द्वारा रुधिर से अलग रहते हैं।

5. यकृत निवाहिका उपतन्त्र की उपस्थिति (Presence of hepatic portal system)—कॉर्डेट जन्तुओं में आहारनाल से भोजन अवशोपित करने के पश्चात् रुधिर केशिकाओं द्वारा याकृत निवाहिका शिरा (hepatic portal vein) में पहुँचता है जो इस रक्त को यकृत में ले जाती है और यकृत के अन्दर केशिकाओं में विभाजित होकर यकृत-कोशिकाओं को रक्त पहुँचाती है। नॉनकॉर्डेट्स में ऐसा नहीं होता।

6. लाल रक्त कणिकाओं की उपस्थिति (Presence of red blood corpuscles)—कॉर्डेट जन्तुओं में **हीमोग्लोबिन** (श्वसन पदार्थ) लाल रक्त कणिकाओं में पाया जाता है। नॉनकॉर्डेट जन्तुओं में अधिकतर हीमोग्लोबिन के स्थान पर हीमोसायनिन होता है जो रक्त के प्लाज्मा में घुला रहता है।

7. रक्त परिवहन की दिशा (Direction of blood flow)—नॉन-कॉर्डेट जन्तुओं में ***पृष्ठ वाहिनी*** (*dorsal vessel*) में रक्त *पीछे से आगे की ओर* बहता है किन्तु कॉर्डेट जन्तुओं में यह आगे से पीछे की ओर बहता है।

8. देहगुहा (Coelom)—नॉनकॉर्डेट जन्तुओं में सीलोम एक चौड़ी पर्यान्त्र गुहा (perivisceral cavity) के रूप में आशिय अंगों के चारों ओर पाई जाती है। कॉर्डेट जन्तुओं में यह निश्चित भागों में बँटी होती है और प्रत्येक भाग का एक निश्चित कार्य होता है। ये भाग निम्नलिखित हैं: **पृष्ठीय मायोसील** (myocoel), **मध्य नेफ्रोसील** (nephrocoel), तथा पार्श्व एवम् प्रति-पृष्ठीय **स्प्लैंकनोसील** (splanchnocoel)।

9. न्यूरोन्स की स्थिति (Placement of neurons)—कॉर्डेट जन्तुओं में तन्त्रिका कोशिकाएँ नर्व कार्ड की केन्द्रीय नाल के चारों ओर स्थित होती हैं किन्तु नॉनकॉर्डेट जन्तुओं में ये बाहर की ओर स्थित होती हैं।

10. तन्त्रिकाओं का उद्गम (Origin of nerves)—नॉनकॉर्डेटा में तन्त्रिकाएँ नर्व कॉर्ड से प्रत्येक खण्ड मे स्थित गुच्छिका से निकलती हैं जबकि कॉर्डेट मे इनका उद्गम पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ तन्त्रिका मूलों (dorsal and ventral nerve roots) से होता है।

11. उपांगों की उपस्थिति (Presence of paired appendages)—कॉर्डेट जन्तुओं में केवल दो जोड़ी उपांग पाये जाते हैं किन्तु नॉनकॉर्डेट जन्तुओं में इनकी संख्या भिन्न-भिन्न होती है जो शरीर में उपस्थित खण्डों की संख्या के अनुरूप भी हो सकती है।

12. कशेरुक-दण्ड की उपस्थिति (Presence of vertebral column)—समस्त कशेरुकदण्डीय जन्तुओं में नोटोकार्ड के स्थान पर कशेरुक-दण्ड पाया जाता है जिसमें बहुत-सी कशेरुकाएँ होती हैं। नॉन-कॉर्डेट जन्तुओं में ऐसी कोई रचना नहीं पायी जाती। यद्यपि मनुष्य, *हर्डमानिया* (*Herdmania*), *बैलेनोग्लॉसस*, *स्कोलिओडोन* एवम् मेंढक में आकार, रचना, स्वभाव एवम् कार्यिकी में बहुत अधिक भिन्नताएँ हैं

किन्तु सभी में प्रारम्भिक कॉर्डेट लक्षण पाये जाते हैं। इसी कारण ये सभी एक ही फाइलम के अन्तर्गत रखे गये हैं।

प्रश्न 2. हर्डमानिया, बैलेनोग्लॉसस एवम् एम्फिऑक्सस के स्वभावों का वर्णन कीजिये तथा कारण बताइये कि इन जीवों को कॉर्डेटा समुदाय का सदस्य क्यों माना जाता है।

Describe the habits of *Herdmania, Balanoglossus and Amphioxus*, and give reasons for regarding these animals as members of the phylum Chordata. *(Allahabad 1961 ; Agra 64 ; Gorakhpur '71)*

हर्डमानिया का स्वभाव (Habits of Herdmania)

हर्डमानिया समस्त संसार में पाया जाने वाला जन्तु है जो हिन्द, प्रशान्त, एटलान्टिक तथा कैरिबियन महासागरों में रेतीले समुद्री तल से चिपका रहता है। इसके शरीर का पिछला प्रतिपृष्ठीय सिरा रेत में धँसा रहता है और **पाद** कहलाता है। यद्यपि *हर्डमानिया* एकचर जन्तु है किन्तु अक्सर एक दर्जन या उससे भी अधिक जन्तु एक साथ समूह में रहते हैं और कभी-कभी ये एक-दूसरे के खोल पर भी उग आते हैं। *हर्डमानिया* गैस्ट्रोपोड जन्तुओं (gastropods) के खोल से भी चिपके रहते है। इससे दोनों ही जन्तुओं को लाभ होता है। *हर्डमानिया* से ढक जाने पर गैस्ट्रोपोड की शत्रु से रक्षा होती है तथा *हर्डमानिया* गैस्ट्रोपोड द्वारा स्थानान्तरण कर लेता है। *हर्डमानिया* निस्यन्द (filtration) विधि द्वारा पानी की धारा से भोजन एकत्रित करता है। यह अत्यन्त कुंचनशील होता है और जरा-सा छूने पर समुद्री जल के दो प्रधार (jet) निकालता है। यह पानी इसके शरीर से दो सूक्ष्म छिद्रों द्वारा निकलता है, जो शरीर के स्वतन्त्र सिरे पर स्थित होते है। इसका शरीर थैले-नुमा होता है जिसमें सीलोम, खण्डों तथा कंकालीय ऊतक का अभाव होता है। नोटोकॉर्ड और नर्व-कॉर्ड केवल लारवा अवस्था में पाई जाती हैं किन्तु प्रौढ़ जन्तु मे **एट्रियम** (atrium) तथा **ग्रसनी विदर** या क्लोम-छिद्र (pharyngeal clefts) होते हैं। शरीर पर **ट्यूनिसिन** (tunicin) का बना एक मोटा आवरण या खोल होता है। *हर्डमानिया* का लारवा प्रौढ़ जन्तु की अपेक्षा अधिक विकसित होता है।

बैलोनोग्लॉसस का स्वभाव (Habits of Balanoglossus)

बैलेनोग्लॉसस समस्त ससार मे पाया जाने वाला जन्तु है जो साधारणतया **एकार्न-वार्म** (acorn worm) कहलाता है। यह रेत में 'U' के आकार की नली बनाकर रहता है जो त्वचा द्वारा स्रावित म्युकस से बनी होती है। शुण्ड तथा कॉलर भाग मिट्टी में घुसने में सहायता करते हैं। सर्वप्रथम शंक्वाकार शुण्ड का अगला नुकीला भाग रेत मे धँस जाता है जिसके पश्चात् पेशीय कुंचन की लहर शरीर पर से होती हुई शुण्ड तक पहुँचती है। फलस्वरूप यह धीरे-धीरे रेंगकर आगे बढ़ता है। पानी एकत्रित होने पर शुण्ड तथा कॉलर फूलकर सख्त हो जाते है और गहराई तक धँसने में सहायता करते हैं।

बैलेनोग्लॉसस का शरीर अधिकतर चमकीला और रंग-बिरंगा होता है। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का रंग अलग-अलग होता है तथा इसकी कुछ जातियाँ स्फुरदीप्त (phosphorescent) होती हैं।

इसका शरीर कोमल, वर्मीकृत तथा बेलनाकार होता है। यह तीन भागों में

बँटा होता है :—पेशीय शंक्वाकार **शुण्ड भाग** (proboscis), उभरा हुआ **कॉलर भाग** (collar), तथा लम्बा **धड़ भाग** (trunk)। नोटोकॉर्ड मुखगुहा की पृष्ठ दीवार से निकलती है और शुण्ड के आधार भाग में स्थित होती है। ग्रसनी में बहुत-से क्लोम-छिद्र होते हैं जो दो पंक्तियों में विन्यसित रहते हैं और एट्रियम में खुलते हैं।

मुख शरीर के प्रतिपृष्ठ तल पर शुण्ड के आधार पर स्थित होता है और कॉलर के स्वतन्त्र किनारे द्वारा छिपा रहता है। मुख सदैव खुला रहता है और मिट्टी में धँसते समय मिट्टी इसके मुख में पहुँचती है। यह मिट्टी आहार-नाल में से होती हुई अन्त में बिल के छिद्र पर जमा होती जाती है।

यद्यपि *बैलेनोग्लॉसस* को फाइलम कॉर्डेटा के उपफाइलम **हेमीकॉर्डेटा** (Hemichordata) में रखा गया है किन्तु इसकी नोटोकॉर्ड वास्तविक नोटोकॉर्ड से अत्यन्त भिन्न है। केवल ग्रसनी या क्लोम-छिद्रों के आधार पर इसे कॉर्डेटा में रखा गया है।

एम्फिऑक्सस का स्वभाव (Habits of Amphioxus)

बैलेनोग्लॉसस समुद्री जल में तैरने वाला एवं तटीय मिट्टी में रहने वाला जन्तु है। यह भूमध्य सागर एवम् उत्तरी समुद्रों में पाया जाता है। इसका शरीर कोमल, पतला तथा दोनों सिरों पर नुकीला होता है जो $1\frac{1}{2}''$ से $2\frac{1}{2}''$ तक होता है। शरीर का अगला $\frac{2}{3}$ भाग लगभग तिकोना होता है जिसके दोनों किनारे आगे बढ़कर **मैटाप्लूरल वलन** (metapleural folds) बनाते हैं। यह मुख से प्रारम्भ होकर शरीर की मध्य रेखा पर **एट्रीओपोर** (atriopore) द्वारा बाहर खुलता है। इसके शरीर पर **पृष्ठ पख** (dorsal fin), **प्रतिपृष्ठ पख** (ventral fin) तथा **पुच्छ पख** (caudal fin) होते हैं।

एम्फिऑक्सस में तीनों प्राथमिक कॉर्डेट लक्षण पाये जाते हैं।

2
हेमीकॉर्डेटा
(Hemichordata)

प्रश्न 3. हेमीकॉर्डेटा के विशिष्ट गुणों का वर्णन एवम् वर्गीकरण कीजिये।
Give characters and classification of Hemichordata.
(Agra 1958, 61, 69 ; Nagpur 60)

सबफाइलम हेमीकॉर्डेटा के विशिष्ट गुण
(General Characters of Subphylum Hemichordata)

हेमीकॉर्डेटा में अत्यन्त आदिम (most primitive) कॉर्डेट रखे गये हैं। प्रारम्भ मे यह केवल *बैलेनोग्लॉसस* द्वारा प्रदर्शित था किन्तु अब इसमें कुछ अन्य प्रजातियाँ भी रक्खी गई हैं तथा अब यह **स्टोमोकॉर्डेटा** (stomochordata) अथवा **एडीलोकॉर्डेटा** (Adelochordata) कहलाता है। इसकी निम्नलिखित विशेपताएँ हैं:

1. ये सरल रचना वाले संघीय तथा अचल अथवा स्वतन्त्रजीवी एवं बिलों मे रहने वाले जन्तु है जो अधिकतर समुद्री जल में पाये जाते है।

2. इनमें पुच्छ, एट्रियम तथा ककाल ऊतक का अभाव होता है।

3. नोटोकॉर्ड शरीर के अगले भाग में मुख के आगे स्थित होती है। यह मुखगुहा की छत से निकलकर शुण्ड के आधार भाग तक फैली रहती है।

4. इनके शरीर मे तीन भाग होते हैं—**शुण्ड, कॉलर** तथा धड़ (proboscis, collar and trunk)।

5. ग्रसनी की दीवार में कई जोड़ी **ग्रसनी विदर** या क्लोम-छिद्र (pharyngeal clefts) होते हैं।

6. **सीलोम** तीन कक्षों में विभाजित होता है जो क्रमश: शरीर के तीनों भागों में स्थित होते है।

7. **रक्त परिवहन तन्त्र** सरल होता है। इसमें केवल एक **पृष्ठ-वाहिनी** (dorsal vessel) तथा एक **प्रतिपृष्ठ-वाहिनी** (ventral vessels) होती है।

8. तन्त्रिका ऊतक एक्टोडर्म में स्थित होता है जो पृष्ठ-तल पर **पृष्ठ-तन्त्रिका-रज्जु** (dorsal nerve cord) तथा प्रतिपृष्ठ-तल पर **प्रतिपृष्ठ-तन्त्रिका-रज्जु** (ventral nerve cord) बनाता है। पृष्ठ-तन्त्रिका-रज्जु का अगला भाग खोखला होता है। इसकी गुहा **तन्त्रिका-गुहा** (neurocoel) कहलाती है।

सबफाइलम हेमीकॉर्डेटा में दो आर्डर है :

आर्डर 1. एण्टेरोप्न्यूस्टा (Enteropneusta)

1. ये वर्मीकृत तथा बिल में रहने वाले जन्तु हैं।

2 इनमें **क्लोम-छिद्रों** अथवा **ग्रसनी-विदरों** (pharyngeal clefts) की

मख्या बहुत अधिक होती है।

3. **आहार-नाल** एक सीधी नली होती है। **गुदा-द्वार** अन्तिम सिरे पर स्थित होता है।

4. शुण्ड तथा कॉलर के बीच एक कम चौड़ा वृन्त भाग पाया जाता है।

5. इनकी एपिडर्मिस रोमयुक्त तथा ग्रन्थिल होती है।

उदाहरण : बैलेनोग्लॉसस (*Balanoglossus*), सैकोग्लॉसस (*Saccoglossus*)।

गण 2. टीरोब्रेंकिया (Pterobranchia)

1. ये अचल तथा नलिका में रहने वाले संघीय जन्तु हैं।

2. इनकी ग्रसनी में या तो केवल एक जोड़ी **क्लोम** छिद्र होते हैं अथवा उनका पूर्ण अभाव होता है।

3. इनकी **आहार-नाल** 'U' के आकार की होती है तथा मुख तथा गुदा-द्वार पास-पास स्थित होते हैं।

4. शुण्ड प्रतिपृष्ठ तल पर चपटी होकर **मुखीय बिम्ब** (buccal disc) बनाती है। इसके आधार से दो या दो से अधिक **संस्पर्शीय भुजाएँ** (tentaculiferous arms) निकलती हैं जिनका उद्गम कॉलर द्वारा ढका रहता है।

उदाहरण : सीफेलोडिस्कस (*Cephalodiscus*), रेब्डोप्ल्यूरा (*Rhabdopleura*)।

प्रश्न 4. निम्नलिखित का वर्गीकरण कीजिये तथा प्रमुख लक्षण बताइये :—

1. सीफेलोडिस्कस

2. रेब्डोप्ल्यूरा।

Give systematic position and features of special interest of the following :

1. Cephalodiscus and

2. Rhabdopleura.

सीफेलोडिस्कस (Cephalodiscus)

सीफेलोडिस्कस एक संघीय व स्थिर जन्तु है जो दक्षिणी गोलार्ध में मिलता है। संघ के चारों ओर जिलेटिन का बना एक शाखान्वित आवरण होता है जो छोटे तन्तुमय प्रवर्धों में उभरा रहता है। इसमें बहुत-सी नालाकार गुहाएँ होती हैं। प्रत्येक गुहा में एक **जन्तुभ** (zooid) स्थित होता है। प्रत्येक जन्तुभ का शरीर शुण्ड, कॉलर तथा धड़ में विभाजित होता है। कॉलर भाग में आठ से सोलह तक भुजाएँ होती हैं जिन पर असंख्य पक्षवत् शाखान्वित संस्पर्शक (tentacles) लगे होते है। आहार-नाल U के आकार
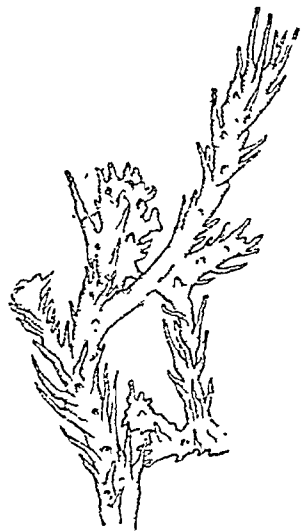
चित्र 6. सीफेलोडिस्कस (*Cephalodiscus*) के संघ का एक भाग

की होती है तथा गुदा-द्वार मुख के समीप स्थित होता है। ग्रसनी में एक जोड़ी **क्लोम-छिद्र** (gill-slits) स्थित होते हैं। तन्त्रिका तन्त्र में एक तन्त्रिका-रज्जु, गुच्छिका कोशिकाएँ (ganglion cells) तथा तन्त्रिका-तन्तु पाए जाते हैं। स्टोमोकॉर्ड या नोटोकॉर्ड ग्रसनी की दीवार से निकलने वाली बेलनाकार छड़ है। वाहिनी तन्त्र में हृदय,
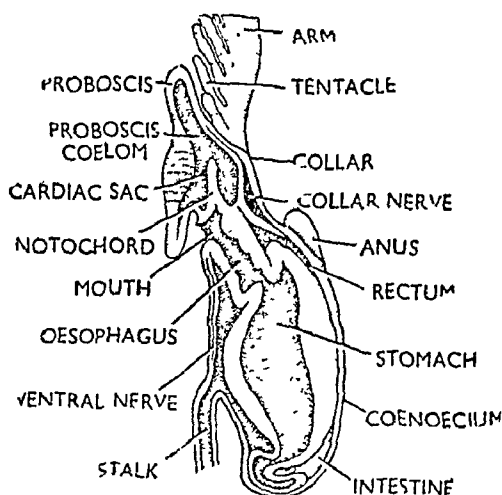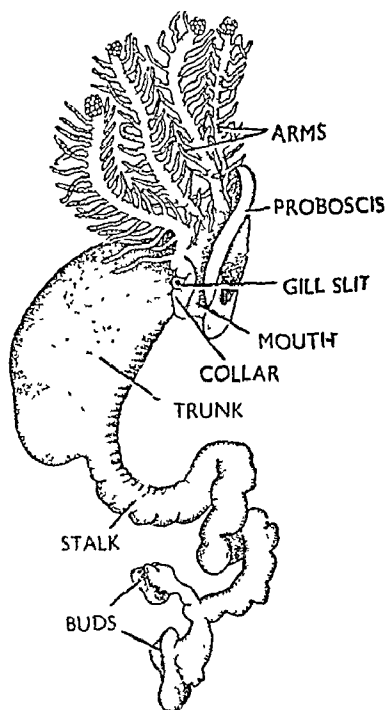
चित्र 7. सीफेलोडिस्कस (*Cephalodiscus*) A. पूर्ण जन्तु B. ऊर्ध्वाधर काट (V.S.)

कार्डियक सैक तथा पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ वाहिनियाँ होती है। सीफेलोडिस्कस की कुछ जातियाँ **उभयलिंगी** होती हैं किन्तु अधिकतर जन्तु **एकलिंगी** ही होते हैं। इनमे कलिकोत्पादन द्वारा अलैंगिक प्रजनन होता है।

रेब्डोप्ल्यूरा (Rhabdopleura)

रेब्डोप्ल्यूरा एक अचल संघीय जन्तु है जो दक्षिणी गोलार्द्ध मे पाया
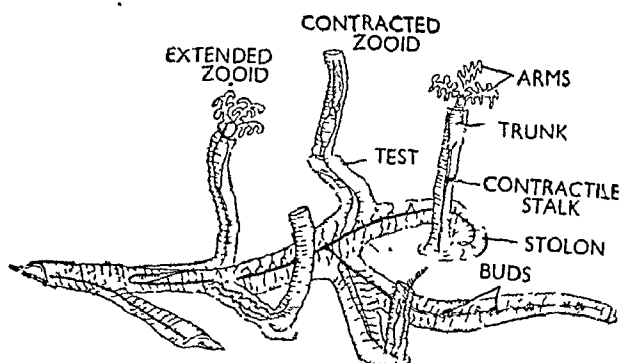
चित्र 8. रेब्डोप्ल्यूरा (*Rhabdopleura*) का संघ

जाता है। इसके जन्तुभ नलिकाओं में बन्द रहते हैं और ये नलिकाएँ विरोहक (stolon) द्वारा जुड़ी रहती हैं। प्रत्येक जन्तुभ का शरीर शुण्ड, कॉलर, धड़ तथा वृन्त मे विभाजित होता है। कॉलर भाग में एक जोड़ी खोखली भुजाएँ होती हैं तथा प्रत्येक भुजा पर दो पंक्तियों में संस्पर्शक लगे रहते हैं। भुजाओं तथा संस्पर्शको मे छड़ के समान कंकाल पाया जाता है। नोटोकॉर्ड, तन्त्रिका तन्त्र तथा रक्त परिवहन तन्त्र सीफेलोडिस्कस के समान होता है। नर तथा मादा जन्तुभ अलग-अलग होते हैं किन्तु एक संघ में दोनों ही लिंगों के जन्तुभ पाये जाते हैं। कलिकोत्पादन द्वारा संघ वृद्धि करता है।
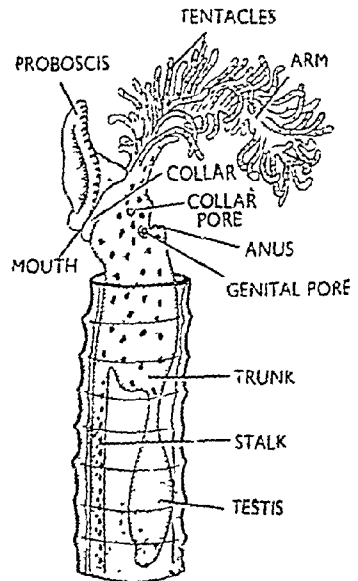
चित्र 9. रेब्डोप्ल्यूरा (*Rhabdopleura*) का एक जन्तुभ

3

बैलेनोग्लॉसस

(Balanoglossus)

फाइलम	—	कॉर्डेटा (*Chordata*)
सबफाइलम	—	हेमीकॉर्डेटा (*Hemichordata*)
ऑर्डर	—	एण्टेरोप्न्यूस्टा (*Enteropneusta*)
टाइप या प्रजाति	—	बैलेनोग्लॉसस (*Balanoglossus*)

प्रश्न 5. बैलेनोग्लॉसस की संरचना में पाये जाने वाले विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कीजिये।

Give salient features in the anatomy of *Balanoglossus*.

(*Agra 1945, 63 ; Allahabad 61 ; Meerut 69 ; Gorakhpur 59, 62, 64 ; Bombay 70 ; Vikram 66*)

बैलेनोग्लॉसस की आन्तरिक रचना का सविस्तार वर्णन कीजिये।

Give a general account of the internal anatomy of *Balanoglossus*. (*Agra 1957, 66 ; Jiwaji 71 ; Rewa 71*)

बैलेनोग्लॉसस में मिलने वाली ढाँचे (कंकाल) सम्बन्धी बनावटों का चित्रित वर्णन करिये।

Give an illustrated account of the skeleton structures in *Balanoglossus*. (*Rajasthan 1972*)

प्रकृति एवम् वास
(Habit and Habitat)

बैलेनोग्लॉसस विश्व के सभी भागों में पाया जाता है और रेत के अन्दर 'U' के आकार के बिलों में रहता है जो त्वचा से स्रावित म्यूकस से बनते हैं।

बाह्य लक्षण (External Features)

आकार एवम् परिमाण (Shape and Size)

बैलेनोग्लॉसस का शरीर कोमल, बेलनाकार एवम् क्रमि के समान होता है तथा रोमकों द्वारा ढका रहता है। विभिन्न जातियों में इसका परिमाण 2–3 cms. से 2 मीटर या इससे अधिक तक होता है। शरीर आकर्षक रंगों का होता है तथा विभिन्न अंगों में अलग-अलग रंग पाये जाते हैं।

बाह्य रचना (External Structure)

शरीर द्विपार्श्वीय सममित तथा तीन भागों में भिन्नित होता है :—

1. शुण्ड
2. कॉलर
3. धड़

1. शुण्ड (Proboscis)—यह अग्रस्थ तथा मुग्दर के समान पेशीयुक्त रचना है जो मध्य-प्रतिपृष्ठीय भाग में स्थित मुख के ऊपर लटकी रहती है।

2. कॉलर (Collar)—यह शुण्ड के ठीक पीछे एक स्पष्ट उभार के रूप में होता है और शुण्ड वृन्त (proboscis stalk) को घेरे रहता है। कॉलर के अगले और पिछले सिरे आगे की ओर निकलकर शुण्ड तथा धड़ को थोड़ा-सा ढक लेते हैं।

3. धड़ (Trunk)—यह शरीर का लम्बा बेलनाकार किन्तु कुछ चपटा पिछला भाग है, जो पुनः तीन भागों मे विभक्त होता है :—(*i*) **क्लोम जनन भाग** (branchiogenital region), (*ii*) **यकृत भाग** (hepatic region) तथा (*iii*) **उदर भाग** (abdominal region)। क्लोम-जनन भाग की पृष्ठ दीवार में **क्लोम-छिद्रों** की दो पंक्तियाँ पायी जाती है जो खाँचों मे स्थित होते है तथा इसकी पार्श्व दीवारें एक जोड़ी लम्बवत् **जनन-उभार** (genital ridges) बनाती हैं। इनमे **जनद** (gonads) स्थित होते हैं।
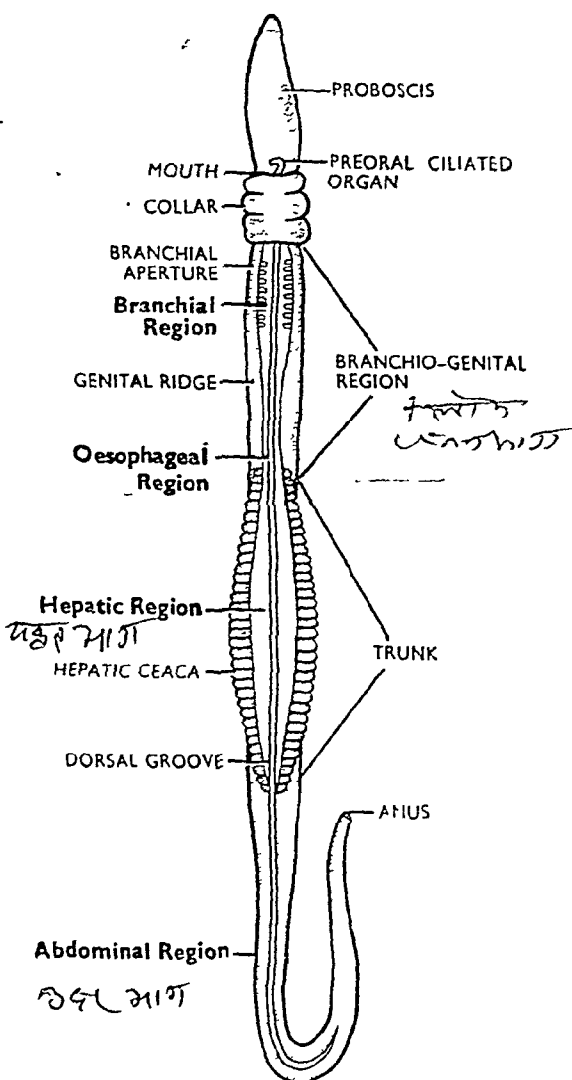
चित्र 10 बैलेनोग्लॉसस (*Balonoglossus*)

आन्तरिक रचना (Internal Anatomy)

त्वचा (Skin)

इसकी देहभित्ति में निम्नलिखित स्तर होते हैं :—

1. एपिडर्मिस (Epidermis)—यह त्वचा का बाहरी स्तर है जो मोटा तथा रोमयुक्त होता है। इसमें असंख्य **म्युकस ग्रन्थि कोशिकाएँ** (muscous gland cells) होती हैं। इनके नीचे **अकोशीय आधार कला** (basement membrane) होती है।

2. पेशीय-स्तर (Muscle layers)—आधार कला के नीचे पेशीय-स्तर होते
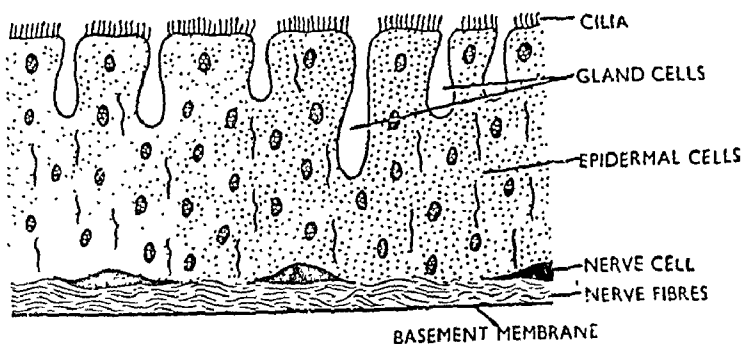
चित्र 11. वैलेनोग्लॉसस (*Balanoglossus*) की त्वचा की खड़ी काट

हैं जिनका विन्यास शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में तथा विभिन्न जातिओं के जन्तुओं में अलग-अलग होता है ।

कंकाल तन्त्र (Skeleton System)

इसके अन्तर्गत **नोटोकॉर्ड, शुण्ड का कंकाल** तथा **क्लोम छड़ें** आती हैं ।

1. नोटोकॉर्ड (Notochord)—यह मुख-गुहा की छत से निकलने वाला खोखला अग्रमुखीय अपवर्ध (preoral diverticulum) है । यह मुख के पीछे से प्रारम्भ होकर शुण्ड के आधार तक पहुँचता है । यह बहुत सक्रिय धानीयुक्त (vacuolated) कोशिकाओं की एक पंक्ति का बना होता है । इसको नोटोकॉर्ड की समजात रचना माना जाता है लेकिन एण्डोडर्म का बना होने तथा शरीर के केवल अगले भाग में पाये जाने के कारण इसको **स्टोमोकॉर्ड** (stomochord) कहा जाता है ।
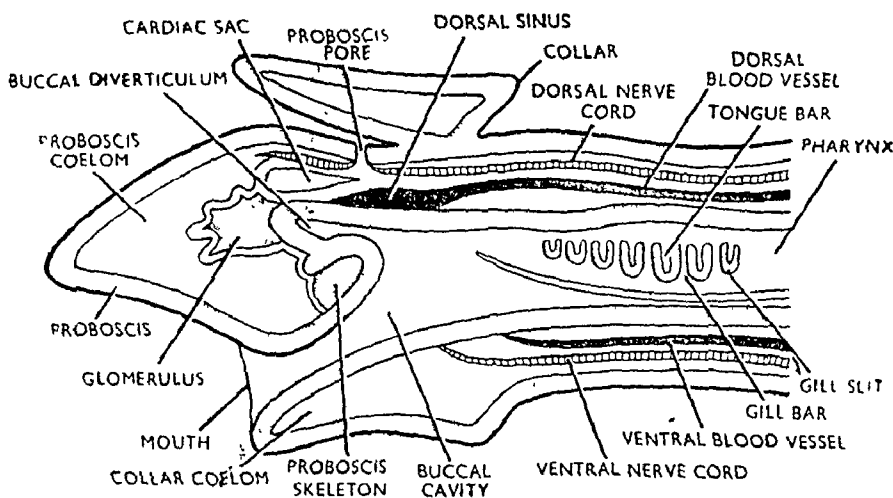
चित्र 12. वैलेनोग्लॉसस (*Balanoglossus*) के अग्रिम भाग का माध्यिक लम्बवत् काट

2. शुण्डीय कंकाल (Proboscis skeleton)—नोटोकॉर्ड के नीचे किन्तु इसके सम्पर्क में **शुण्डीय कंकाल** होता है जिससे दन्ताकार प्रवर्ध निकलकर दो चपटी छड़ों में रूपान्तरित हो जाते हैं । ये मुखगुहा के इधर-उधर स्थित होते हैं ।

3. **क्लोम छड़ें** (Gill-bars)—ये क्लोम-छिद्रों के बीच छड़ों के रूप में स्थित होती हैं तथा ग्रसनी की दीवार को मजबूत करती हैं।

सीलोम (Coelom)

सीलोम पाँच गुहाओं द्वारा प्रदर्शित होता है जो निम्न प्रकार हैं :—

1. **शुण्ड सीलोम** (Proboscis coelom)—यह शुण्ड में पायी जाने वाली गुहा है जो शुण्ड छिद्र (proboscis pore) द्वारा बाहर को खुलती है। पिछले भाग में यह नोटोकॉर्ड द्वारा पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ भागों में बँट जाता है।

2. **कॉलर सीलोम** (Collar coelom)—यह एक जोड़ी गुहाओं से प्रदर्शित होता है जो अलग-अलग छिद्रों द्वारा बाहर को खुलते हैं।

3. **धड़ सीलोम** (Trunk coelom)—यह भी एक जोड़ी गुहाओं द्वारा प्रदर्शित होता है जो शरीर की दाहिनी तथा बाँयी ओर पाये जाते हैं।

कॉलर तथा धड़ की गुहाएँ, एक-दूसरे से सम्बन्धित होती हैं या संयोजी एवम् पेशी तन्तुओं से भरी रहती हैं।

आहार नाल (Alimentary Canal)

मुख शुण्ड के आधार पर प्रतिपृष्ठ तल पर स्थित होता है और कॉलर के स्वतन्त्र किनारे से छिपा रहता है। मुखगुहा कॉलर भाग में स्थित होती है और ग्रसनी में खुलती है। ग्रसनी की पृष्ठ दीवार में **क्लोम-छिद्रों** के असंख्य जोड़े पाये जाते हैं। ग्रसनी गले में खुलती है जो आंत्र (intestine) में खुलता है। इससे एक जोड़ी **याकृत अन्धनाल** (hepatic caeca) बाहर निकले रहते हैं। पीछे की ओर आंत्र शरीर के अन्तिम सिरे पर स्थित गुदाद्वार (anal pore) द्वारा बाहर को खुलती है।

रक्त परिवहन तन्त्र (Blood Vascular System)

इसमें पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ वाहिनियाँ, उनकी शाखाएँ तथा रक्त विवर आते हैं।

1. **पृष्ठ रक्त वाहिनी** (Dorsal blood vessel)—यह स्टोमोकॉर्ड के ठीक ऊपर आधार-कला में स्थित होती है जो कॉलर भाग में **पृष्ठ विवर** (dorsal sinus) में समाप्त हो जाती है। पृष्ठ वाहिनी में रक्त पीछे से आगे की ओर बहता है। पृष्ठ विवर अकुंचनशील दीवारों का बना होता है जिसके पिछले भाग से एक छोटी शाखा निकलकर दो भागों में बँट जाती है और शाखान्वित होकर शुण्ड को रक्त पहुँचाती है। पृष्ठ विवर से आगे की ओर बहुत-सी शाखाएँ निकलकर **केशिका-गुच्छ** (glomerulus) नामक जालक बनाती हैं।

2. **केशिका जालक** नोटोकार्ड के अगले सिरे पर स्थित होता है जो उत्सर्जन का कार्य करता है। इसके पिछले भाग से **अपवाही वाहिनियाँ** (efferent vessels) निकलती हैं जो शाखान्वित होकर दो जालक बनाती हैं। ये प्रतिपृष्ठ वाहिनी से सम्बन्धित होती हैं।

3. **प्रतिपृष्ठ रक्त वाहिनी** (Ventral blood vessel)—यह शरीर के प्रतिपृष्ठ तल पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती है। इसमें रक्त का परिवहन आगे से पीछे की ओर होता है।

4. **आमाशयिक विवर** (Cardiac sac)—यह हृदय के प्रतिपृष्ठ तल पर

थैलेनुमा रचना है जिसकी प्रतिपृष्ठ दीवार पेशीयुक्त होती है। इसके क्रमाकुञ्चन से रक्त शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचता है।

श्वसन तन्त्र (Respiratory System)

इसमें बहुत-से **क्लोम-कोष्ठ** (gill-pouches) होते हैं जो क्लोम-जनन भाग में स्थित होते हैं। प्रत्येक क्लोम-कोष्ठ क्लोम-छिद्र द्वारा अन्दर की ओर तथा **क्लोम-दरार** (gill slit) द्वारा बाहर को खुलता है। क्लोम-दरारें ग्रसनी की पृष्ठ दीवार पर दो पंक्तियों में संयोजित होती हैं। प्रत्येक क्लोम-दरार 'U' के आकार का छिद्र होता है जिसकी दोनों भुजाएँ जीभ के समान रचना द्वारा अलग रहती हैं। प्रत्येक
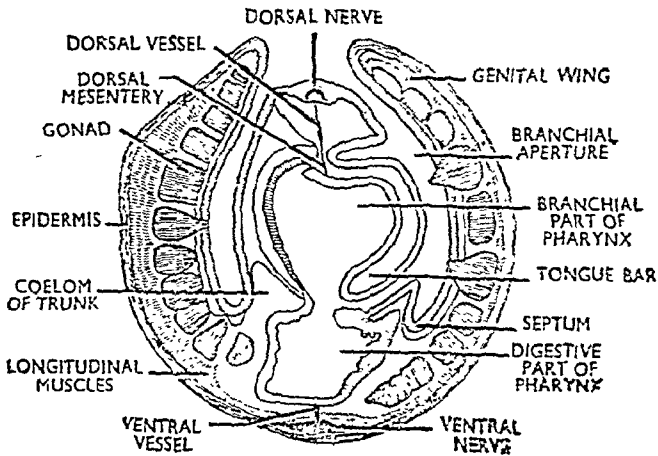
चित्र 13. बैलेनोग्लॉसस (*Balanoglossus*) के क्लोम-जनन भाग का अनुप्रस्थ काट

क्लोम-कोष्ठ में काइटिन की बनी तीन छड़ें होती हैं—मध्य में **प्राथमिक छड़** (primary bar) तथा पार्श्व में दो **द्वितीयक छड़ें** (secondary bars)। प्राथमिक छड़ का दूरस्थ सिरा दो भागों में बँटा रहता है। समस्त छड़ें अनुप्रस्थ संयोजनों द्वारा जुड़ी रहती हैं जो **साइनेप्टीक्यूली** (synapticulae) कहलाते हैं। इनमें काइटिन की छड़ें होती हैं। क्लोम-कोष्ठ में रक्त अधिकता में होता है।

उत्सर्जन तन्त्र (Excretory System)

बैलेनोग्लॉसस में **रोमयुक्त कीपों** (ciliated funnels) के अतिरिक्त उत्सर्गी अंग नहीं होते। ये कॉलर भाग में पाये जाते हैं और शरीर के बाहर खुलते हैं। **कोशिका गुच्छ** (glomerulus) भी उत्सर्गी अंग कहा जाता है।

तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System)

तन्त्रिका तन्त्र में एक पृष्ठीय तथा एक प्रतिपृष्ठीय **तन्त्रिका गुच्छ** होते हैं जो शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एपिडर्मिस में काफी अन्दर धँसे होते हैं। ऐसा समझा जाता है कि तन्त्रिका गुच्छ **तन्त्रिका-तन्तुओं** (nerve fibres) की परत के स्थूलन हैं। कॉलर भाग में पृष्ठ तन्त्रिका गुच्छ एपिडर्मिस से अलग हो जाता है और इसमें एक केन्द्रीय नाल होती है जिसे **न्यूरल नाल** या **न्यूरोसील** या **तन्त्रिका नाल** (neural tube or neurocoel) कहते हैं। यह या तो दोनों सिरों पर खुली होती है अथवा फिर एक बन्द नाल के रूप में होती है। पृष्ठ तथा प्रतिपृष्ठ तन्त्रिका गुच्छ

वलयकों के उद्वर्धो के क्रम से जुड़े रहते हैं। अनेक दीर्घ कोशिकाएँ तन्त्रिका गुच्छो की लम्बाई के साथ स्थित होती है। ये अधिकतर कॉलर भाग में पाई जाती है। विशेष **संवेदी अंग** (sense organs) नही होते किन्तु शुण्ड के आधार भाग में अग्र मुखीय **रोमाभी अंग** (ciliary organs) पाये जाते हैं।

जनन अंग (Reproductive Organs)

नर तथा मादा अग अलग-अलग जन्तुओं मे पाये जाते है तथा आकार और रंग में अलग-अलग होते हैं। **अण्डाशय** तथा **वृषण** सरल एवम् शाखान्वित थैलेनुमा अंग है जो ग्रसनी-जनन भाग मे शरीर के दोनों ओर स्थित होते हैं। इनकी दीवारें **जनन एपिथीलियम** (germinal epithelium) से बनी होती हैं। प्रत्येक रचना एक छिद्र द्वारा वाहर को खुलती है। शुक्राणुओं मे गोलाकार सिर तथा कशाभीय पूँछ होती है किन्तु अण्डे दो प्रकार के होते है। *बैलेनोग्लॉसस* के वर्धन मे **टॉरनेरिया लारवा** (tornaria larva) होता है।

प्रश्न 6. बैलेनोग्लॉसस की सामान्य रचना को प्रदर्शित करते हुए इसके अगले भाग की लम्बवत् काट का सुन्दर एवम् नामांकित चित्र बनाइये।

Give a neat and labelled diagram of the median longitudinal section of anterior part of *Balanoglossus* to illustrate its general anatomy. (*Kanpur 1969 ; Agra 60 ; Vikram 68 ; Allahabad 59 ; Gorakhpur 71*)

बैलेनोग्लॉसस के शरीर के अग्रिम आधे भाग की V.L.S. **का नामांकित चित्र बनाइये (विवरण की आवश्यकता नहीं है)।**

Make a diagram of the V.L.S. through anterior half of the body of *Balanoglossus* and label the various parts. (No description is needed.) (*Vikram 1964 ; Allahabad 70*)

कृपया चित्र 12 देखिये।

प्रश्न 7. बैलेनोग्लॉसस की सजातीयता का वर्णन कीजिए।

Discuss the affinities of *Balanoglossus*.

(*Agra 1956, 57, 58, 59, 61, 65 ; Allahabad 60 ; Raj. 61 ; Ranchi 71 ; Gorakhpur 59, 60, 61 ; Vikram 63 ; Kanpur 68*)

बैलेनोग्लॉसस कॉर्डेट जन्तु है—इस दृष्टिकोण की विवेचना कीजिये।

Discuss the view that *Balanoglossus* is a chordate.

(*Agra 1960 ; Allahabad 51, 55, 58*)

संक्षेप में समझाइये कि बैलेनोग्लॉसस को फाइलम कॉर्डेटा में क्यों रखा गया है तथा इसकी सजातीयताओं का वर्णन कीजिये।

State briefly why *Balaonglossus* has been included in the phylum Chordata and discuss its affinities. (*Agra 1959*)

बैलेनोग्लॉसस का कॉर्डेट्स से सम्बन्ध स्थापित करने वाले मुख्य लक्षणों का वर्णन कीजिये।

Discuss the important features which relate *Balanoglossus* to the chordates. (*Nagpur 1969*)

बैलेनोग्लॉसस एक समुद्री वर्मीकृत जन्तु है जो बिलों में रहने वाले एनिलिड (annelids) के समान दिखाई देता है। समय-समय पर वैज्ञानिकों ने इसको अलग-अलग फाइलमों में रखा है। **गीगेनेबार** (Gegenbaur, 1875) ने इसके लिए **एण्टेरोप्न्यूस्टा** (*Enteropneusta*) गण का निर्माण किया। इससे पहले इसको एनिलिडा (Annelida), **नेमर्टीन** (*Nemertine*) तथा इकाइनोडर्मेटा (Echinodermata) फाइलम के जन्तुओं के साथ रखा गया था किन्तु सेजविक (Sedgwick) तथा हक्सले (*Huxley*) ने *प्रथम बार इसके कार्डेट लक्षणों का अध्ययन किया एवम् बेटसन* (Bateson) ने इसको फाइलम कार्डेटा में रखा। जन्तुओं के निम्न समूहों से *बैलेनोग्लॉसस* की बन्धुता (Affinities) का अध्ययन किया गया है।

1. एनिलिडा से सजातीयता (Affinities with Annelida)

(*A*) **समानताएँ** (Similarities)—**स्पैन्जल** ने निम्नलिखित समानताओं के आधार पर *बैलैनोग्लॉसस* को फाइलम एनिलिडा में रखा :—

(*i*) वर्मीकृत आकृति

(*ii*) बिल बनाकर रहने की आदत

(*iii*) भोजन ग्रहण करने की विधि तथा विमुचन (casting) में समानता

(*iv*) हृदय का आहार-नाल के पृष्ठतल पर स्थित होना

(*v*) रक्त-परिवहन की दिशा मे समानता

(*vi*) तन्त्रिका-तन्त्र मे समानता

(*vii*) *बैलेनोग्लॉसस* के **टॉरनेरिया लारवा** (tornaria larva) तथा एनिलिडा के **ट्रोकोफोर लारवा** (trochophore larva) मे समानता

(*viii*) **ग्रसनी कोष्ठों** (pharyngeal pockets) की एनिलिडा के *पोलीगॉरडियस* (*Polygordius*) के **ग्रासनली कोष्ठों** (oesophageal. pockets) मे समानता।

किन्तु निम्नलिखित भिन्नताओं के आधार पर *बैलेनोग्लॉसस* को एनिलिडा *मे अलग किया गया है :—*

(*B*) **भिन्नताएँ** (Differences)—

(*i*) एनिलिडा समुदाय मे **पृष्ठ तन्त्रिका** (dorsal nerve) की अनुपस्थिति

(*ii*) एनिलिडा मे **क्लोम-दरारों** (gill-slits) का अभाव

(*iii*) *बैलेनोग्लॉसस* के टॉरनेरिया लारवा मे **वृक्कक** (nephridia) का अभाव

(*iv*) दोनों समूहों में **वर्धन-क्रिया** में विभिन्नता।

2. नेमर्टीन से सजातीयता (Affinities with Nemertines)

(*i*) *बैलेनोग्लॉसस* तथा *नेमर्टीन* के भोजन ग्रहण करने एवम् बिल बनाने के स्वभाव मे बहुत समानता है, किन्तु *नेमर्टीन* की शुण्ड बहि:सारी (protrusible) होती है।

(*ii*) *बैलेनोग्लॉसस* में पायी जाने वाली पृष्ठ तन्त्रिका *नेमर्टीन* मे नही पायी जाती तथा *नेमर्टीन* की पार्श्व तन्त्रिकाओं (lateral nerves) का *बैलेनोग्लॉसस* मे अभाव होता है।

अत: समानताओं की अपेक्षा भिन्नताएँ अधिक होने के कारण इसको *नेमर्टीन* से अलग कर दिया गया।

3. फोरोनिडा से सजातीयता (Affinities of Phoronida)

(*A*) **समानताएँ**—

(1) **टॉरनेरिया लारवा** फोरोनिडा के **एक्टीनोट्रोक** (actinotroch) लारवा से मिलता है।

(2) बैलेनोग्लॉसस के ग्रसनी अपवर्ध (oesophageal diverticulae) फोरोनिस (*Phoronis*) के आमाशयिक अपवर्धों के समान हैं।

(3) दोनों में तन्त्रिका-तन्त्र समान होता है।

(4) दोनों में पुनर्जनन होता है।

(*B*) **भिन्नताएँ**—बैलेनोग्लॉसस में पाये जाने वाले कॉर्डेट गुण फोरोनिस में नहीं पाये जाते। अतः इसको फोरोनिडा के साथ नहीं रखा जा सकता।

4. इकाइनोडर्मेटा के साथ सजातीयता (Affinities with Echinodermata)

(*A*) **समानताएँ**—इकाइनोडर्मेटा तथा बैलेनोग्लॉसस की लारवा अवस्थाओं में समानताएँ पायी जाती हैं।

(1) **टॉरनेरिया** तथा **बाइपिन्नेरिया** लारवा में लम्बवत् रोमाभी पट्ट समान होते हैं।

(2) दोनों में शुण्ड छिद्र (proboscis pore) पाया जाता है।

(3) दोनों प्रकार के लारवा का शरीर तीन भागों में बँटा होता है।

(4) टॉरनेरिया लारवा में शुण्ड गुहा के निर्माण को इकाइनोडर्म के **जल-परिवहन तन्त्र** (water vascular system) का प्रारम्भ माना जाता है।
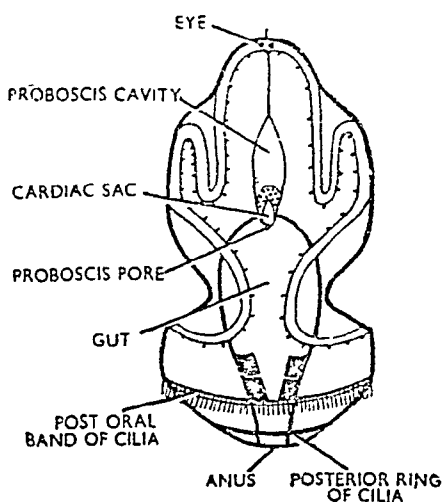
चित्र 14. बैलेनोग्लॉसस का टॉरनेरिया (tornaria) लारवा
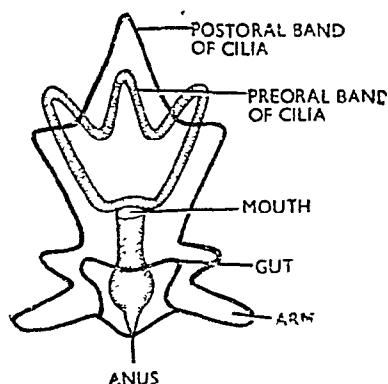
चित्र 15. इकाइनोडर्मेटा का बाइपिन्नेरिया (bipinnaria) लारवा

(*B*) **भिन्नताएँ**—

1. बाइपिन्नेरिया लारवा में नेत्र-बिन्दु (eye-spot) नहीं पाया जाता।

2. बाइपिन्नेरिया लारवा में **अनुप्रस्थ रोमाभी पट्ट** (transverse ciliated band) तथा **शिखर पट्ट** (apical plate) नहीं पाये जाते।

अतः बैलेनोग्लॉसस को इकाइनोडर्मेटा में नहीं रखा जा सकता है।

5. कॉर्डेटा समुदाय के साथ सजातीयता (Affinities with Chordata)

(*A*) **समानताएँ**—निम्नलिखित समानताओं के आधार पर **बेटसन** (Bateson) ने *बैलेनोग्लॉसस* की कॉर्डेट जन्तुओं के साथ बन्धुता पर जोर दिया :—

1. नोटोकॉर्ड (Notochord)—*बैलेनोग्लॉसस* में लगभग नोटोकॉर्ड के समान रचना मुखगुहा की छत से एक पृष्ठ प्रवर्ध के रूप में पायी जाती है। यह धानीयुक्त कोशिकाओं से बनी होती है तथा शुण्ड वृन्त तक पहुँचती है। इसको कॉर्डेट जन्तुओं की वास्तविक नोटोकॉर्ड के समान माना गया है क्योंकि बैलेनोग्लॉसस में नोटोकॉर्ड पृष्ठ रक्त वाहिनी (dorsal blood vessel) के नीचे स्थित होती है जबकि वास्तविक नोटोकॉर्ड इसके ऊपर पायी जाती है। इसके अतिरिक्त वास्तविक नोटोकॉर्ड शरीर की पूरी लम्बाई में पायी जाती है, किन्तु बैलेनोग्लॉसस में यह केवल शुण्ड के आधार भाग में स्थित होती है।

2. पृष्ठ नालाकार तन्त्रिका रज्जु (Dorsal tubular nerve cord)—*बैलेनोग्लॉसस* में पृष्ठ तन्त्रिका रज्जु कॉलर भाग में नोटोकॉर्ड के ऊपर पायी जाती है और खोखली होती है। यह अन्य कॉर्डेट जन्तुओं की नालाकार तन्त्रिका रज्जु (tubular nerve cord) के समान मानी जा सकती है, लेकिन *बैलेनोग्लॉसस* मे एक ठोस प्रतिपृष्ठ तन्त्रिका रज्जु भी पायी जाती है जिसके समस्त पिछले भाग मे कोई गुहा नहीं होती।

3. क्लोम छिद्र या क्लोम दरारें (Gill slits)—इसके धड़ भाग के अगले हिस्से में बहुत-सी क्लोम दरारें जोड़ों में स्थित होती हैं जिनके बीच में काइटिन की बनी क्लोम छड़ें होती हैं। ये *एम्फीऑक्सस* तथा अन्य कॉर्डेट जन्तुओं की क्लोम दरारों के समान होती हैं किन्तु इनमें निम्नलिखित अन्तर पाये जाते हैं :—

(1) बैलेनोग्लॉसस में ये शरीर के पृष्ठ भाग में पायी जाती हैं किन्तु अन्य कॉर्डेट जन्तुओं में ये शरीर की पार्श्व दीवारों में स्थित होती हैं।

(2) दोनों में क्लोम-छड़ों का विन्यास अलग-अलग होता है।

(3) दोनों में रक्त-सम्भरण अलग-अलग होता है।

4. सीलोम (Coelom)—*बैलेनोग्लॉसस* में सीलोम की उपस्थिति एवं उसके निर्माण की विधि अन्य कॉर्डेट जन्तुओं के समान है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त अध्ययन से पता चलता है कि यद्यपि *बैलेनोग्लॉसस* अन्य नॉनकॉर्डेट फाइलमों के साथ समानताएँ प्रदर्शित करता है किन्तु कॉर्डेट समानताएँ सबसे अधिक प्रभावी हैं, अतः इसको कॉर्डेट के **पूर्वज** के रूप में माना जाता है जो आदिम कॉर्डेट के रूपान्तरित समूह को प्रदर्शित करता है। अतः हेमीकॉर्डेटा को सरलतम कॉर्डेट माना जाता है।

प्रश्न 8. हेमीकॉर्डेटा के सामान्य गुणों को बताइये तथा बैलेनोग्लॉसस की सजातीयताओं का वर्णन कीजिये।

Give general characters of Hemichordata and discuss the affinities of *Balanoglossus*. (*Agra 1956*)

कृपया प्रश्न 3 व 7 देखिये ।

प्रश्न 9. कॉर्डेटा के विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख करिये तथा बैलेनोग्लॉसस को इस फाइलम में रखने के कारण बताइये ।

Describe the characteristic features of chordata and give reasons for including *Balanoglossus* in this phylum. (*Agra 1970*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये ।

जीव-रसायन
(BIOCHEMISTRY)

1

कार्बोहाइड्रेट्स
(Carbohydrates)

प्रश्न 1. (a) कार्बोहाइड्रेट्स के रासायनिक संघठन एवम् आण्विक संरचना का वर्णन कीजिये।

(b) मोनोसैकेराइड्स, डाइसैकेराइड्स तथा पोलीसैकेराइड्स क्या हैं ? प्रत्येक के उदाहरण दीजिये एवम् उनके जैविक महत्त्व का उल्लेख करिये।

(a) Describe the chemical composition and molecular structure of carbohydrates.

(b) What are monosaccharides, disaccharides and polysaccharides ? Give examples of each and describe their biological importance. (*Rajasthan 1972*)

कार्बोहाइड्रेट्स जीव-द्रव्य या प्रोटोप्लास्ट के सामान्य, किन्तु अति आवश्यक भाग हैं जो जीवों की अनेक महत्वपूर्ण जैविक-क्रियाओं में सक्रिय भाग लेते हैं और पादपों, कीटों व क्रस्टेशिया का कंकाल व सूक्ष्म जीवों की वाह्य भित्ति का निर्माण करते हैं। पादपों के संग्रह-अंगों तथा प्राणियों के यकृत एवम् पेशियों में ये अतिरिक्त भोजन के रूप में संचयित रहते हैं। सभी जीवों में उपापचय क्रियाओं के लिए आवश्यक ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट्स के आक्सीकरण से प्राप्त होती है। मांस-भक्षी प्राणियों को छोड़कर अन्य सभी प्राणी, यहाँ तक कि मनुष्य भी विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक ऊर्जा की पूर्ति उनके भोजन में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट्स से ही पूरी करते हैं। किन्तु उपर्युक्त वर्णित विभिन्न क्रियाओं के लिए आवश्यक ऊर्जा एक ही प्रकार के कार्बोहाइड्रेट से नहीं मिलती वरन् इसके लिए विभिन्न प्रकार के कार्बोहाइड्रेट्स की आवश्यकता होती है।

संरचना (Structure)

ये carbon, hydrogen व oxygen के यौगिक हैं जो क्रमश: 1 : 2 : 1 के समानुपात में होते हैं, अतः इनको कार्बोहाइड्रेट्स (carbohydrates) कहते हैं। जल-विश्लेषण द्वारा ये शर्कराओं (ग्लुकोस) व जल में विश्लेपित हो जाते है। स्टार्च या माँड कोशिकीय द्रव में अविलेय या अघुलनशील होते हैं जबकि अधिकांश शर्कराएँ इसमें घुलित होती हैं। ग्लुकोस जीवित कोशिकाओं में ग्लाइकोजन के रूप में संग्रहित रहता है।

वर्गीकरण (Classification)

सामान्यत: जीव-द्रव्य मे पाये जाने वाले कार्वोहाइड्रेट्स को तीन वर्गो मे बाँटा जा सकता है :—

1. मोनोसैक्केराइड्स
2. डाइसैक्केराइड्स
3. पोलीसैक्केराइड्स ।

1. मोनोसैक्केराइड्स (Monosaccharides)—ये सरल शर्कराएँ हैं जिनमें केवल एक ही मोनोसैक्केराइड अणु होता है। ये **ट्राइग्रोस**—triose (3 कार्वन परमाणु वाली), **टेट्रोस**—tetrose (4 कार्वन परमाणु वाली), **पेन्टोज**—pentose (5-कार्वन परमाणु वाली) तथा **हैक्सोस**—hexose (6-कार्वन परमाणु वाली), आदि है। इनमे से केवल पेन्टोस व हैक्सोस ही सर्वसामान्य रूप मे पाई जाती हैं।

(*i*) **पेन्टोस** (Pentoses)—यह 5-कार्वन परमाणु वाली शर्करा है जो **ribose** व **deoxyribose** के रूप मे न्युक्लिक-अम्लों मे पायी जाती है।
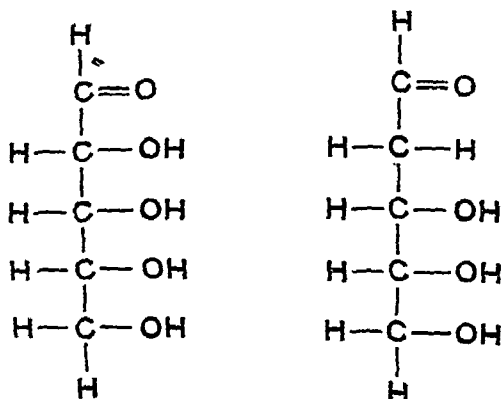
D-राइबोस (Ribose) डिऑक्सीराइबोस (Deoxyribose)

(*ii*) **हैक्सोस** (Hexoses)—ये 6-कार्वन परमाणु वाली शर्करा है जो **ग्लुकोस** (glucose), **फ्रक्टोस** (fructose) तथा **गैलेक्टेस** (galactase), आदि है। इनका स्वाद मीठा होता है और ये पानी मे घुलनशील होती है। इनमे एल्कोहलिक किण्वन होता है। ये ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है तथा अन्य सभी कार्वोहाइड्रेट्स के लिए उपादान (raw material) का कार्य करती है। भोजन के रूप मे शरीर के अन्दर पहुँचे सभी कार्वोहाइड्रेट्स सर्वप्रथम ग्लुकोज मे ही जल-विश्लेपित होते है।

(*a*) **ग्लुकोस**—इसे grape-sugar या dextrose भी कहते हैं जो फलो व शहद मे फ्रक्टोस के साथ-साथ मिलती है। शरीर मे यह रुधिर तथा पाचन के समय आंत्र मे भी पायी जाती है। यह मधु-मेह के रोगियो के मूत्र मे अधिकता से पायी जाती है। जल मे यह α व β ग्लुकोस का साम्यावस्था मिश्रण बनाती है। कोशिकीय उपापचय मे इसका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। शरीर मे पहुचे समस्त कार्वोहाइड्रेट्स रुधिर द्वारा ग्लुकोस के रूप मे ही अवशोपित करके विभिन्न कोशिकाओ मे पहुँचाये जाते हैं।
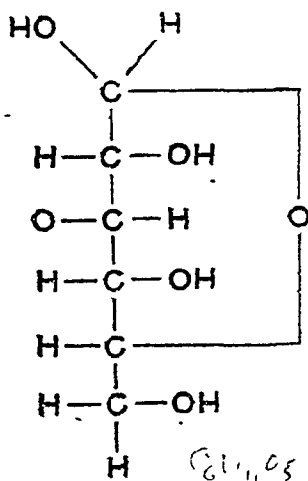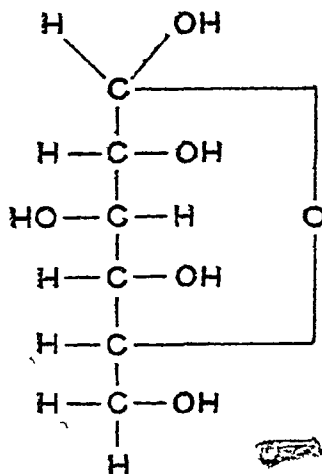
β-D-Glucose α-D-Glucose

(*b*) **फ्रक्टोस** (Fructose)—फ्रक्टोस या फ्रूट-शुगर (fruit sugar) को **लेव्युलोस** (levulose) भी कहते हैं। इसकी संरचना भी ग्लुकोस के ही समान होती है किन्तु इसके रासायनिक गुण कुछ भिन्न होते हैं और यह उतनी ही सरलता से ऊतकीय कोशिकाओं द्वारा उपयोग में नहीं लाया जा सकता। ग्लुकोस एवम् फ्रक्टोस में यह भिन्नता उनके संरचना-सूत्र में —OH ग्रुप की स्थिति के कारण होती है।

(*c*) **गैलेक्टेस** (Galactase)—यह दुग्ध-शर्करा या लैक्टोस में ग्लुकोस के साथ पाया जाता है। पाचन के समय इसका प्रत्येक अणु, ग्लुकोस व गैलेक्टेस के एक-एक अणु में विश्लेपित हो जाता है। शरीर मे ग्लुकोस की भाँति ही इसका भी
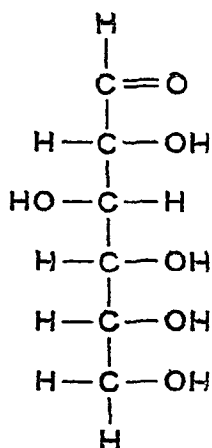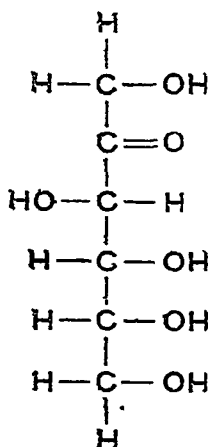
D-ग्लुकोस (D-Glucose)	D-फ्रक्टोस (D-Fructose)	D-गैलेक्टेस (D-Galactase)
H	H	H
C=O	H—C—OH	H—C=O
H—C—OH	C=O	H—C—OH
HO—C—H	HO—C—H	HO—C—H
H—C—OH	H—C—OH	HO—C—H
H—C—OH	H—C—OH	H—C—OH
H—C—OH	H—C—OH	H—C—OH
H	H	H
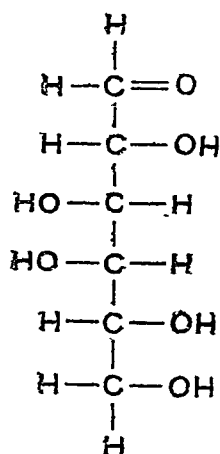
उपयोग होता है। यह तीव्र गति से अवशोषित होती है किन्तु ग्लाइकोजन के निर्माण में यह अन्य मोनोसैकेराइड्स की अपेक्षा निम्न कोटि की होती है।

2. **डाइसैक्केराइड्स** (Disaccharides)—ये मोनोसैकेराइड्स के दो अणुओं के संघनन से बनते है तथा इसके फलस्वरूप जल का एक अणु (H_2O) बाहर निकलता है। इनका मूलानुपाती सूत्र $C_{12}H_{22}O_{11}$ है। पादपों में पाये जाने वाले सक्रोस व माल्टोस तथा प्राणियों में पाया जाने वाला लैक्टोस डाइसैक्केराइड्स के ही उदाहरण हैं। सभी डाइसैक्केराइड्स शर्कराएँ हैक्सोस शर्कराओ के संघनन से बनती है :—

$$\underset{\text{Glucose}}{C_6H_{12}O_6} + \underset{\substack{\text{Fructose}\\ \text{or}\\ \text{Glucose}}}{C_6H_{12}O_6} \rightarrow C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O$$
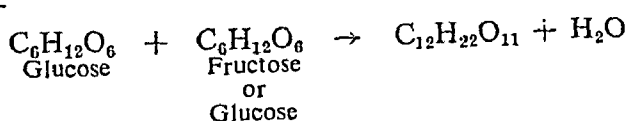
(*i*) **सक्रोस** (Sucrose)—सक्रोस, जिसे cane sugar भी कहते हैं, फलों, गन्ने, शकरकन्दी व चुकन्दर, आदि मे बहुतायत से पाया जाता है। यह अत्यधिक मीठा, क्रिस्टलीय व जल मे सरलता से घुलने वाला होता है। जल-विश्लेषण द्वारा यह ग्लुकोस व फ्रक्टोस में विघटित हो जाता है।

(*ii*) **लैक्टोस** (Lactose)—लैक्टोस, जिसे milk sugar भी कहते है, दूध मे पाया जाता है तथा दूध पीने वाले शिशुओं को मिलने वाला यही एकमात्र कार्बोहाइड्रेट है। यह पादपों में नही पाया जाता।

(*iii*) **माल्टोस** (Maltose)—यह स्वतन्त्र रूप से नहीं मिलता। यह *amylase* या *ptyalin* एन्जाइमों द्वारा माँड या ग्लाइकोजन पर क्रिया के फलस्वरूप बनता है। *Maltase* नामक ऐन्जाइम की उपस्थिति में यह ग्लुकोस के दो अणुओं में विश्लेषित हो जाता है।

3. **पोलीसैक्केराइड्स** (Polysaccharides)—ये जटिल शर्कराएँ है जो मोनोसैक्केराइड्स (glucose) के अनेक अणुओं के सघनन से बनते हैं तथा इसके फलस्वरूप जल के उतने ही अणु बाहर निकलते है। स्टार्च या माँड, **सेलूलोस** तथा **ग्लाइकोजन** पोलीसैक्केराइड्स शर्कराओं के उदाहरण है। इनको सामान्य समानुपाती सूत्र $(C_6H_{10}O_5)_n$ द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। माँड व ग्लाइकोजन क्रमशः पादप प्राणि-कोशिकाओं मे पाये जाते हैं जबकि सेलूलोस का पाया जाना पादपों का विशिष्ट गुण है।

(*i*) **स्टार्च या माँड** (Starch)—यह दो दीर्घ बहुलक (long polymer) अणुओं का मिश्रण है। यह आलू, अनाज व अन्य कई पौधों मे कणों के रूप मे पाया जाता है किन्तु प्राणियों में इसका कोई महत्त्व नहीं है।

(*ii*) **ग्लाइकोजन** (Glycogen)—यह प्राणियों के शरीर मे सचयित भोजन के रूप मे पाया जाता है। यह ग्लुकोस के अनेक अणुओं का बहुलक है और संचित ऊर्जा का अति महत्त्वपूर्ण भण्डार है। यद्यपि यह सभी ऊतकों व अंगों में पाया जाता है किन्तु मुख्य रूप से यह पेशी-तन्तुओं व यकृत-कोशिकाओं मे ही सचित रहता है। यह पानी में घुलनशील होता है किन्तु जीव-द्रव्य मे यह कोलॉइड अवस्था में होता है।

(*iii*) **सेलूलोस** (Cellulose)—यह सैकड़ों मोनोसैक्केराइड्स अणुओं का बना होता है। इसका प्राणियों में कोई महत्त्व नही होता किन्यु ट्युनिकेट प्राणियों

की भित्ति सेलूलोस की बनी होती है। यह कोशिका भित्ति के निर्माण में भाग लेता है। इसके अतिरिक्त कोशिकीय कंकाल में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

काइटिन (Chitin) भी एक प्रकार का पौलीसैक्केराइड है जो कि कीटों व क्रस्टेशियन्स का बाह्य:कंकाल बनाता है।

कार्बोहाइड्रेट्स के कार्य (Functions of Carbohydrates)

1. ये ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं। श्वसन के समय ये आक्सीजन के साथ मिलकर CO_2 एवम् H_2O में टूट जाते हैं तथा इस क्रिया में ऊर्जा निकलती है जो ऊतकीय-कोशिकाओं द्वारा उपयोग में ले ली जाती है।
2. ये ईंधन के शीघ्र एवम् सरलता से उपलब्ध स्रोत है।
3. ये शरीर में संचयित रहते हैं।
4. ये जीव-द्रव्य के मूल घटकों व अन्य कार्बनिक यौगिकों का कार्बन-ढाँचा बनाते है।

2
लिपिड्स
(Lipids)

प्रश्न 2. लिपिड्स का वर्गीकरण करिये तथा प्रत्येक ग्रुप के लक्षणों एवम् कार्यों का उल्लेख करिये ।

Classify lipids giving characters and functions of each group.

लिपिड (lipid) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम Bloor नामक जीव-रसायन वैज्ञानिक ने उस वर्ग के पदार्थों के लिए किया था जो पानी में अविलेय या अघुलित रहते हैं किन्तु ether, chloroform, carbon disulphide तथा गर्म alcohols में विलेयशील या घुलनशील होते हैं । इनके अन्तर्गत वास्तविक वसाएँ (true fats), मोम (wax), फॉस्फोलिपिड्स (phospholipids), कैरोटिनॉइड्स (carotenoids) तथा स्टिरोल्स (sterols), आदि आते हैं ।

कार्बोहाइड्रेट्स की भाँति वास्तविक वसाएँ (true fats) भी C, H और O के यौगिक हैं किन्तु इनमें ऑक्सीजन परमाणुओं की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है ।

$$
\begin{array}{l}
CH_3CH_2CH_2\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O\boxed{H \quad HO}-\overset{H}{\underset{|}{\overset{|}{C}}}-H \\
CH_3CH_2CH_2\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O\boxed{H \; + \; HO}-\underset{|}{\overset{|}{C}}-H \quad \Longrightarrow \\
CH_3CH_2CH_2\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O\boxed{H \quad HO}-\underset{H}{\underset{|}{C}}-H
\end{array}
$$

Glycerol

$$
\begin{array}{l}
CH_3CH_2CH_2\,\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O-\overset{H}{\underset{|}{\overset{|}{C}}}-H \\
CH_3CH_2CH_2\,\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O-\underset{|}{C}-H \\
CH_3CH_2CH_2\,\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O-\underset{H}{\underset{|}{C}}-H
\end{array}
$$
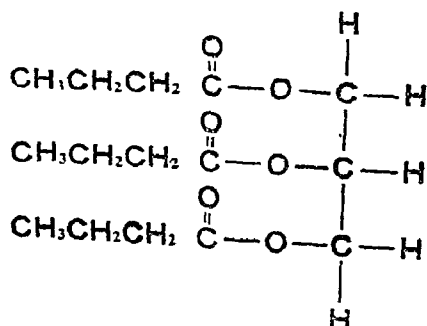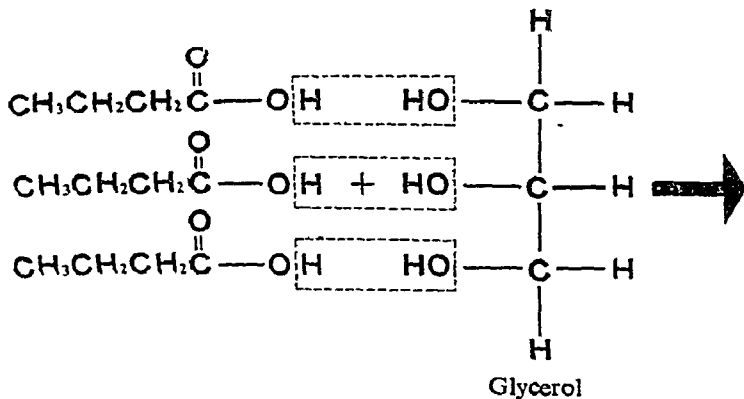
Tributyrin (a fat oil in butter)

ये वसा-अम्लों (fatty acids) तथा ट्राइहाइड्रिक एल्कोहलों (trihydric alcohols) के एस्टर (esters) हैं।

लिपिड्स का वर्गीकरण
(Classification of Lipids)

लिपिड्स निम्न प्रकार के होते हैं :—

1. सरल लिपिड्स (Simple lipids)
   A. वसाएँ व तेल (Oils and fats)
   B. मोम (Waxes)
2. जटिल लिपिड्स (Complex lipids)
   A. फॉस्फोलिपिड्स (Phospholipids)—लेसीथीन्स (lecithins), सिफेलीन्स (cephalins) तथा स्फाइनोमाइलीन (sphinomyelin)
   B. ग्लाइकोलिपिड्स (Glycolipids) या ग्लूकोलिपिड्स (Glucolipids)
   C. क्रोमोलिपिड्स (Chromolipids)—कैरोटिनॉइड (carotenoid) व अन्य सम्बन्धित रजक (pigments)
   D. अमीनोलिपिड्स (Aminolipids) तथा सल्फोलिपिड्स (Sulpholipids)
3. व्युत्पन्न लिपिड्स (Derived lipids)
   A. संतृप्त तथा असंतृप्त उच्च वसा-अम्ल (Saturated and unsaturated higher fatty acids)
   B. उच्च मोनोहाइड्रिक एल्कोहल (Higher monohydric alcohols)
   C. स्टिरोइड्स (Steroids) तथा स्टिरोन्स (Sterons)
4. अवर्गीकृत लिपिड्स (Unclassified lipids)
   टोकोफिरोल्स (Tocopherols)—Vit. E तथा Vit. K

1. सरल लिपिड्स (Simple Lipids)

सरल लिपिड्स वसा-अम्लों तथा एल्कोहलों के यौगिक हैं।

A. वसाएँ (Fats)—ट्राइग्लिसराइड्स (triglycerides) प्राकृतिक वसाएँ हैं जो ग्लिसरॉल तथा वसा-अम्लो से बनती हैं। ये जल की अपेक्षा हल्की होती हैं तथा इनका आपेक्षिक गुरुत्व (specific gravity) 0·86 के लगभग होता है। ये ठोस व
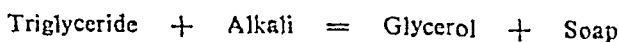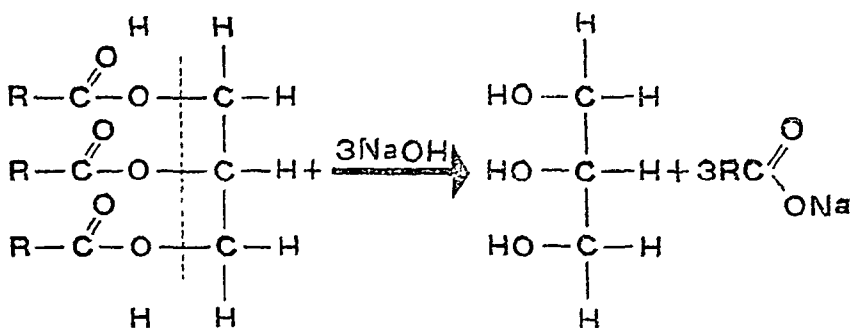
तरल दोनों अवस्थाओं में मिलती है। ठोस लिपिड्स **वसाएँ** (fats) तथा तरल लिपिड्स **तेल** (oils) कहलाते हैं। क्षारकों (alkalies) के साथ गर्म करने पर जल-विश्लेपण (hydrolysis) के फलस्वरूप इनमें **साबुनीकरण** (saponification) हो जाता है।

जल-विश्लेषण होने पर triglycerides, ग्लिसरॉल (glycerol) व वसा-अम्लों (fatty acids) में विघटित हो जाते हैं। जल-विश्लेपण *lipase* नामक एन्जाइम की उपस्थिति में होता है।
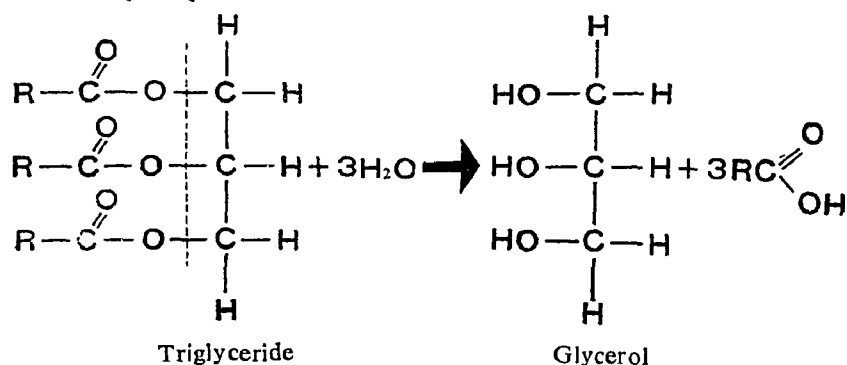
B. मोम (Waxes)—मोम सरल लिपिड हैं जिनमे एक अणु वसा-अम्ल (fatty acid) का तथा एक अणु उच्च आण्विक भार वाली मोनोहाइड्रिक एल्कोहल (monohydric alcohol) का होता है।

उदाहरण—मधुमक्खी का मोम। यह hexacosonol या triacontanol द्वारा palmitic acid के एस्टरीकरण (esterification) के फलस्वरूप बनता है। मोम रसायन-मूलक रूप से अक्रिय (inert) तथा वायुमण्डलीय आक्सीकरण के लिए रोधी होते हैं। ये पादपों के विभिन्न अगों व सूक्ष्म जीवों का रक्षात्मक आवरण बनाते है।

2. जटिल लिपिड्स (Complex Lipids)

A. फॉस्फोलिपिड्स या फॉस्फेटाइड्स (Phospholipids or phosphatides)—ये वसा अम्लों के nitrogen व phosphorus युक्त glycerides हैं। जैव रूप से ये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण यौगिक हैं। ये सभी जीवित कोशिकाओं मे पाये जाते है और उनके सामान्य रूप से कार्य करने के लिए अति आवश्यक है।

(*i*) **लेसिथीन्स** (Lecithins)—ये mono-amino-mono-phospholipids हैं। ये तन्त्रिका ऊतक व अण्डे के पीतक में प्राय: cholesterol के साथ मिलते है। Palmitic acid, stearic acid, oleic acid, linoleic acid, linolenic acid तथा arachidonic acid, आदि लेसिथीन्स मे सामान्य रूप से पाये जाने वाले वसा-अम्ल है। किन्तु एक समय में इनमें से केवल कोई दो वसा-अम्ल ही लेसिथीन के एक अणु में होते है। असतृप्त वसा-अम्लों से बनने के कारण लेसिथीन्स अत्यधिक अस्थिर होते है और इनका सरलता से आक्सीकरण (oxidation) या हाइड्रोजनीकरण (hydrogenation) हो जाता है। ये जल में कोलॉयडीय निलम्बन (cololidal suspension) बनाते है।

लेसिथीन्स की कोशिकाओं की प्रवेश्यता या पारगम्यता (permeability) व

रसाकर्षी तनाव (osmotic tension), आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ये वसाओं की अपसंतृप्ति क्रिया (desaturation) में भी भाग लेते हैं और वसा के उपापचयन में मध्यग का कार्य करते हैं। **कोलीन** (choline) जो कि लेसिथीन का एक घटक है, acetylcholine से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होता है।

(*ii*) **सिफेलीन्स** (Cephalins)—इनकी रचना भी बहुत कुछ लेसिथीन्स के ही समान होती है किन्तु इनमें लेसिथीन के choline radical के स्थान पर amino-ethanol radical होता है। सिफेलीन्स में पाये जाने वाले वसा-अम्ल भी भिन्न होते हैं। सिफेलीन्स कुछ लिपोप्रोटीन्स (lipoproteins) की रचना में भाग लेते हैं और इनकी रुधिर का थक्का बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

(*iii*) **स्फाइनोमाइलीन** (Sphinomyelin)—इसमें ग्लिसरॉल नहीं होता और यह जल-विश्लेपण के फलस्वरूप दो अणु क्षारक (base) के और एक अणु वसा-अम्ल (fatty-acid) का बनाता है। यह मस्तिष्क, तन्त्रिकाओं व माइलीन आवरण (myelin sheath) का एक महत्त्वपूर्ण घटक है।

B. ग्लाइकोलिपिड्स (Glycolipids)—इनमें वसा-अम्लों के अतिरिक्त nitrogen व carbohydrate के radicals भी होते हैं। ये तन्त्रिका-ऊतक के श्वेत-पदार्थ के महत्त्वपूर्ण घटक हैं, किन्तु ये स्प्लीन (spleen) व अण्डे के पीतक में पाये जाते हैं। **Phrenosin, serosin, nervone** तथा **oxynervone** ग्लाइकोलिपिड्स के उदाहरण हैं।

C. क्रोमोलिपिड्स (Chromolipids)—वसाओं के इस वर्ग के अन्तर्गत केरोटिनॉइड्स (carotenoids) व अन्य सम्बद्ध रंजक आते हैं। Carotene ($C_{40}H_{56}$) एक provitamin-A है जो जन्तुओं की संचयित वसा में पाया जाता है।

3. व्युत्पन्न लिपिड्स (Derived Lipids)

व्युत्पन्न लिपिड्स के अन्तर्गत सरल व जटिल लिपिड्स तथा कुछ अन्य पदार्थों, जैसे sterids, fatty aldehydes, ketones, alcohols, essential oils, hydrocarbons, आदि के जल-विश्लेषित उत्पाद आते हैं। किन्तु इनमें से sterids ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्युत्पन्न लिपिड्स हैं।

स्टिरिड्स (Sterids)—इनके अन्तर्गत **स्टिरॉइड्स** (steroids) व **स्टिरोल्स** (sterols) आते हैं। ये पादपों, जन्तुओं व सूक्ष्मजीवों में व्यापक रूप से पाये जाते हैं। ये मोम के समान लिपिड्स हैं जो स्वतन्त्र रूप से भी मिलते हैं और वसा-अम्लों के एस्टरों (fatty acid esters) के रूप में भी। ये वलय-संरचना (ring-structure) वाले होते हैं। **Ergosterol, stigmasterol, spinasterol** तथा **sitosterol,** आदि पादपों से मिलने वाले तथा **cholesterol** जन्तुओं में पाये जाने वाले sterids के उदाहरण हैं।

Steroids एड्रिनल कॉर्टेक्स (adrenal cortex) व नर एवम् मादा जनदों द्वारा स्रावित होने वाले हारमोन हैं। एड्रिनल कॉर्टेक्स द्वारा स्रावित स्राव में corticosterone, desoxycorticosterone, adrenosterone, आदि हारमोन होते हैं। Testosterone, androsterone, dehydro-androsterone नर हारमोन तथा esterogenic hormones तथा progesterone मादा हारमोन हैं।

Ergosterol
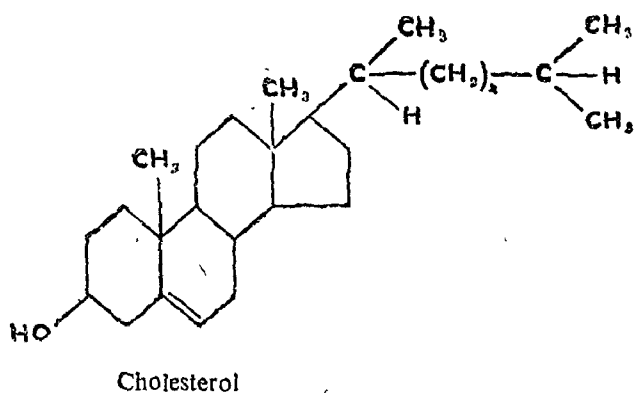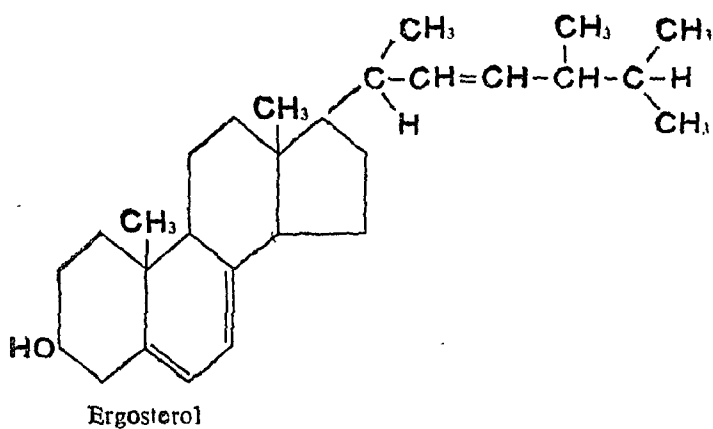
Cholesterol

चित्र 1. Erg sterol व cholesterol के संरचना सूत्र

3
प्रोटीन
(Proteins)

प्रश्न 3. जीवधारियों के शरीर में पाये जाने वाले प्रोटीन्स की संरचना एवम् उनके महत्त्व का वर्णन कीजिये।

Describe the composition, structure and significance of proteins in the body of living organisms.

प्रोटीन अधिक आण्विक भार वाले अत्यधिक जटिल रासायनिक यौगिक हैं। ये carbon, hydrogen, oxygen, nitrogen, sulphur तथा phosphorous के यौगिक हैं जो जीवधारियों में उनके शरीर के मुख्य घटक के रूप में पाये जाते हैं। इसी कारण Berzelius (1938) ने इन यौगिकों को प्रोटीन (protein) का नाम दिया (Protein : Gr., *proteios*, प्रथम—first)। ये कोशिकाओं के घटकों का संरचनात्मक ढाँचा बनाते हैं तथा कोशिकीय जीव-द्रव्य में प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले ठोस पदार्थ हैं। ये केन्द्रक में न्युक्लिओप्रोटीन्स (nucleoproteins) के रूप में पाये जाते हैं तथा कोशिका-विभाजन व आनुवंशिकता में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जीवधारियों के शरीर में होने वाली समस्त रासायनिक क्रियाओं का नियमन प्रोटीन्स द्वारा ही होता है। इस प्रकार के प्रोटीन्स एन्जाइम्स (enzymes) कहलाते हैं। एन्जाइम्स के अतिरिक्त कुछ हारमोन भी प्रोटीन के ही बने होते हैं। बहुत-से पादपों के बीजों में प्रोटीन्स, अमीनो-अम्लों के रिजर्व (reserve) के रूप में रहते हैं।

संघटन (Composition)—प्रोटीन्स सर्वाधिक जटिल रचना वाले रासायनिक यौगिक हैं। ये carbon, hydrogen, oxygen तथा nitrogen के यौगिक हैं और प्रायः sulphur भी इनमें होती है तथा कभी-कभी phosphorus भी इनकी संरचना में भाग लेता है। इनमें पाये जाने वाले सामान्य तत्त्वों का अनुपात निम्नलिखित तालिका में दिया गया है :—

Carbon	50%–55%
Oxygen	21%–24%
Nitrogen	13%–17%
Hydrogen	लगभग 7%
Sulphur	0·2%–7%

कुछ प्रोटीन्स में उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त iron, iodine, आदि भी होते हैं।

संरचना (Structure)

प्रोटीन्स अमीनो-अम्लों (amino-acids) की शृंखलाओं से बने अधिक

आण्विक भार वाले बहुलक (पोलीमर—polymer) हैं। अतः अमीनो-अम्ल प्रोटीन्स के संरचनात्मक एकक (building blocks) हैं। अमीनो-अम्ल कार्बनिक अम्ल हैं जिनमें carboxyl (—COOH) ग्रुप के साथ-साथ एक amino ($-NH_2$) ग्रुप भी होता है। Carboxyl-ग्रुप अम्लीय गुणधर्मी होता है जबकि amino-ग्रुप क्षारकीय गुणधर्मी होता है। अमीनो-अम्लों का सामान्य संरचनात्मक सूत्र निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं :—

$$R-\underset{NH_2}{\overset{COOH}{\underset{|}{\overset{|}{C}}}}-H \quad \text{या} \quad NH_2-\underset{H}{\overset{R}{\underset{|}{\overset{|}{C}}}}\begin{matrix} {/\!\!/}O \\ \diagdown OH \end{matrix}$$
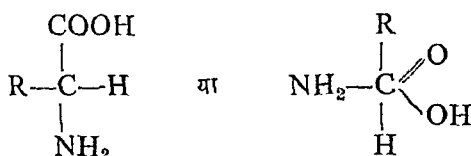
उपर्युक्त सूत्र मे R पार्श्व शृंखला को प्रदर्शित करता है जिसके आधार पर विभिन्न अमीनो-अम्लों को पहिचाना जा सकता है।

प्रोटीन्स में अमीनो-अम्ल क्रमशः अपने amino तथा carboxyl-ग्रुप द्वारा एक-दूसरे से संयोजित रहते हैं। इस प्रकार के बॉण्ड (bond) को **पेप्टाइड बॉण्ड** (peptide bond) या **पेप्टाइड बन्धता** (peptide linkage) कहते हैं। एक पेप्टाइड बन्धता के निर्माण में जल का एक अणु उत्पन्न होता है। दो अमीनो-अम्लों के शृंखलन को **डाइपेप्टाइड** (dipeptide), तीन अमीनो-अम्लों के शृंखलन को **ट्राइ-पेप्टाइड** (tripeptipe) तथा अनेक अमीनो-अम्लों के शृंखलन को **पोलीपेप्टाइड** (polypeptide) कहते है। अतः अनेक अमीनो-अम्लों के शृंखलन से बनी शृंखला को **पोलीपेप्टाइड शृंखला** (polypeptide chain) कहते है जो कि प्रोटीन के समानार्थक है।

$$\underset{\text{Glycine}}{H_2N-\underset{H}{\overset{R}{C}}-C\begin{matrix}{/\!\!/}O\\ \diagdown OH\end{matrix}} + \underset{\text{Glycine}}{H_2N-\underset{H}{\overset{R}{C}}-C\begin{matrix}{/\!\!/}O\\ \diagdown OH\end{matrix}} \Rightarrow \underset{\text{Glycyl glycine}}{H_2N-\underset{H}{\overset{R}{C}}-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-\overset{H}{N}-\underset{H}{\overset{R}{C}}-C\begin{matrix}{/\!\!/}O\\ \diagdown OH\end{matrix}}$$
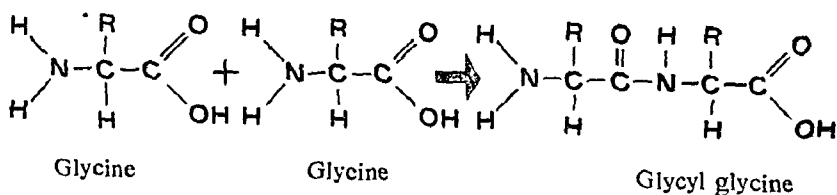
चित्र 2. पेप्टाइड बन्धता या शृङ्खला का निर्माण (Formation of peptide linkage)

अभी तक 25 अमीनो-अम्लों का निश्चित रूप से पता लग चुका है। क्योंकि प्रत्येक प्रोटीन में सैकड़ों अमीनो-अम्ल होते हैं जो एक निश्चित समानुपात एवम् एक विशेष अनुक्रम मे शृंखलाबद्ध होते है, अतः 25 अमीनो-अम्लों के विभिन्न समानुपात एवम् क्रम में शृंखलाबद्ध होने से बने प्रोटीन की संख्या असीमित होती है।

प्रोटीन में अमीनो-अम्लों के रैखिक विन्यास को **प्राथमिक संरचना** (primary structure) कहते हैं। किन्तु प्रोटीन के अणु में अमीनो-अम्लों की लम्बी शृंखला कई प्रकार से विन्यसित हो सकती है। यह या तो सीधे रैखिक क्रम में अथवा विभिन्न क्रमों में एक गेंद के रूप में अथवा फिर कुण्डलित होकर हेलिक्स (helix) के रूप में विन्यसित होते हैं। अमीनो-अम्लों के इस प्रकार के विन्यासों को प्रोटीन्स की **द्वितीयक संरचना** (secondary structure) कहते हैं। पोलीपेप्टाइड शृंखला के हेलिक्स के रूप में कुण्डलन को **α-helix** कहते हैं। α-helix की स्थिरता हेलिक्स के क्रमिक कुण्डलों के बीच बने बहुत-से हाइड्रोजन बाण्डों (hydrogen bonds) के

कारण होती है। कुछ प्रोटीन्स के α-helix और अधिक वलनों के फलस्वरूप अपेक्षाकृत अधिक संघनित संरचना बनाते हैं। इस अतिरिक्त वलयन को **तृतीयक संरचना** (tertiary structure) कहते हैं। एक्स-रे विवर्तन अध्ययनों द्वारा विदित हुआ है कि प्रोटीन्स की तृतीयक संरचना विशिष्ट प्रकार की होती है। α-helix का विशिष्ट वलयन निकट सम्पर्क में स्थित क्षेत्रों में स्थापित अनेक रासायनिक बलों द्वारा स्थिरीकृत रहता है।

कुछ प्रोटीन्स में एक से अधिक पोलीपेप्टाइड शृंखलाएँ होती हैं। इस प्रकार के प्रोटीन्स **चतुष्टक संरचना** (quaternary structure) वाले कहलाते है। हीमोग्लोबिन (haemoglobin) चतुष्टक संरचना प्रदर्शित करता है। इसमें अमीनो-अम्लों की चार शृंखलाएँ होती हैं जिनमें से दो α-शृंखलाएँ तथा अन्य दो β-शृंखलाएँ होती हैं।

गोलाकार एवम् तन्तुवत् प्रोटीन अणु (Globular and fibrous protein molecules)—प्रोटीन-अणु दो आकृतियों गोलाकार अथवा तन्तुवत् होते हैं। उदाहरणार्थ **globulin** तथा **albumin** गोलाकार प्रोटीन्स के और **keratin, elastin, collagen** तथा **fibrin,** आदि तन्तुवत् प्रोटीन्स के उदाहरण है जबकि **actine** गोलाकार व तन्तुवत् दोनों रूपों में स्थित होता है किन्तु यह कुछ विशेष
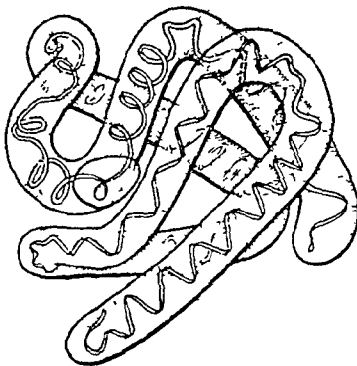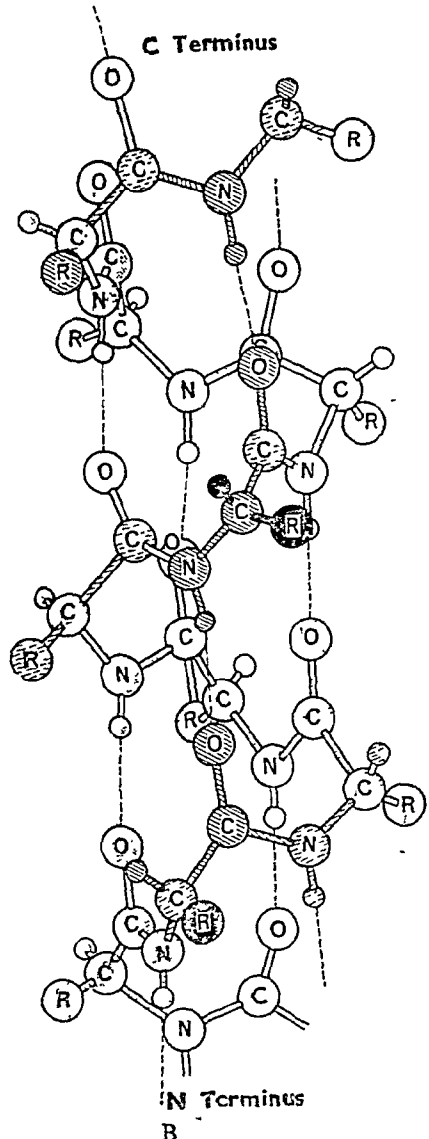
A B

चित्र 3. मायोग्लोबिन का एक अणु—A. मायोग्लोबिन अणु की सामान्य संरचना ; B. मायोग्लोबिन अणु के α-helix की आण्विक संरचना (A molecule of myoglobin—A. Gross structure of molecule ; B. molecular structure of α-helix of myoglobin molecule)

यौगिकों की सान्द्रता पर निर्भर करता है।

गोलाकार प्रोटीन्स (globular proteins) के α-helix में एक निश्चित क्रम में वलित एक अथवा अधिक पोलीपेप्टाइड शृंखलाएँ होती हैं। ये हाइड्रोजन बाण्डों तथा संसक्त बलों (cohesive forces) द्वारा बंधित रहती है जैसे **मायोग्लोबिन**। ये प्रोटीन्स जल, तनु सान्द्रता वाले लवण के घोल, तनु अम्लों या तनु क्षारकों, आदि किसी न किसी एक विलायक में अवश्य ही विलेयशील होते हैं। गोलाकार प्रोटीन्स को सरलता से विकृत किया जा सकता है तथा माध्यम की pH को समंजित करने पर इनके अणु अवलित होकर यादृच्छिक शृंखलाएँ बनाते हैं। **तन्तुवत् प्रोटीन्स** (fibrous proteins) में α-helices एक-दूसरे के चारों ओर कुण्डलित होकर तन्तु के समान संरचना बनाते हैं। Collagen ग्रुप में कोलेजन तन्तु तीन पोलीपेप्टाइड शृंखलाओं का बना होता है तथा प्रत्येक शृंखला मे अमीनो-अम्लों के तीन भिन्न एकक होते हैं।

प्रोटीन का महत्त्व (Significance of Proteins)
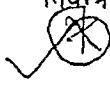
प्रोटीन्स जीवधारियों के शरीर में पाये जाने वाले अत्यधिक महत्त्वपूर्ण यौगिक है जिनका शरीर-क्रियात्मक महत्त्व निम्न प्रकार है :—

1. **प्रोटीन्स जीवित संरचनाओं, जीवधारियों एवम् स्पीशीज को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।** इसे **जीव-रासायनिक व्यक्तित्व** (biochemical individuality) भी कहते हैं। प्रोटीन के व्यक्तित्व को **रुधिराधान** (blood transfusion) प्रयोगों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। किसी एक स्पीशीज के प्राणियों का रुधिर दूसरी स्पीशीज के प्राणियों के परिसंचरण तन्त्र (circulation) में आधानित (transfused) नहीं किया जा सकता। यही नहीं, एक ही स्पीशीज के विभिन्न जीवों के रुधिर-प्रोटीन्स भी समान नही होते।

2. **प्रोटीन्स की विभिन्न जैव-क्रियाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।** ये अम्लो व क्षारों दोनों से समान रूप से क्रिया करके जीव-द्रव्य मे इनकी अधिकता को निष्प्रभावी करते हैं। ये जीव-द्रव्य में H^+ या OH^- आयनों को एकत्रित होने से रोकते है।

3. **प्रोटीन्स का उच्च रासायनिक विभव** होने के कारण ये अनेक पदार्थो के साथ शीघ्रता से प्रतिक्रिया करते है। अतः ये एन्जाइम्स की भाँति कार्य करते है और जीवधारियों की लगभग समस्त जैव क्रियाओं को उत्प्रेरित करते है।

4. प्रोटीन्स कोशिकाओं व उसके अंगकों की बाह्य सीमा बनाते है और इस प्रकार कोशिका द्रव्य में से बाहर जाने वाले व अन्दर प्रवेश करने वाले पदार्थो पर नियन्त्रण रखते हैं।

प्रश्न 4. प्रोटीन्स के आधुनिक वर्गीकरण का वर्णन करो।
Give recent classification of proteins.

संरचना, घुलनशीलता एवम् स्कन्दनता (coagulability) के आधार पर प्रोटीन्स का विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है किन्तु इगलिश स्कूल ऑफ फिजिओलॉजिस्ट्स के आधुनिक वर्गीकरण के अनुसार प्रोटीन्स को तीन वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है :—

1. सरल प्रोटीन्स (Simple proteins)
2. सम्बद्ध या जटिल या यौगिक प्रोटीन्स (Conjugated, complex or compound proteins)

3. व्युपन्न प्रोटीन्स (Derived proteins)

1. सरल प्रोटीन्स (Simple Proteins)

इस प्रकार के प्रोटीन्स जल-विश्लेपण के फलस्वरूप केवल अमीनो-अम्ल बनाते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं :—

A. आसुत या डिस्टिल्ड जल में घुलनशील प्रोटीन्स (Proteins soluble in distilled water)—ये निम्न प्रकार के होते हैं :—

(*a*) **एल्ब्युमिन्स** (Albumins)—ये आसानी से पानी में घुल जाते हैं। ये तनु अम्लों व तनु क्षारकों द्वारा जल में से अवक्षेपित हो जाते हैं। ये Na_2SO_4 जैसे उदासीन (neutral) लवण द्वारा तनिक अम्लीय विलयन को संतृप्त करने से या $(NH_4)_2SO_4$ जैसे अम्लीय लवण द्वारा भी अवक्षेपित हो जाते हैं। तीव्र अम्लों व क्षारों की उपस्थिति में ये घुलनशील **मेटाप्रोटीन्स** (metaproteins) में परिवर्तित हो जाते हैं। एल्ब्युमिन, प्रकृति में व्यापक रूप से पाये जाते हैं, जैसे अण्डे की सफेदी का एल्ब्युमिन, रुधिर के सीरम का एल्ब्युमिन, सोयाबीन एल्ब्युमिन, ल्युकोसीन (leucosin—wheat proteins—गेहूँ का प्रोटीन), लेग्युमेलिन (legumalin—proteins of pulses—दालों का प्रोटीन) तथा फेसिओलिन (phaseolin—protein of kidney-bean—मोठ का प्रोटीन), आदि।

(*b*) **स्यूडोग्लोब्युलिन्स** (Pseudoglobulins)—इस प्रकार के प्रोटीन्स जल में घुलनशील होते हैं जो $(NH_4)_2SO_4$, जैसे अम्लीय लवण द्वारा घोल को 1/4–3/4 भाग तक संतृप्त करने पर ही अवक्षेपित हो जाते हैं। ये प्रकृति में विरलता से ही मिलते हैं। दूध के पनीर-जल का स्यूडोग्लोब्युलिन इसका उदाहरण है। ये गर्म करने पर स्कन्दित हो जाते हैं।

(*c*) **प्रोटएमीन्स** (Protamines)—ये समक्षारीय प्रोटीन्स हैं जो जल, तनु अम्लों व तनु अमोनियम हाइड्रॉक्साइड में अत्यधिक घुलनशील होते हैं। ये खनिज-अम्लों (mineral salts) के साथ क्रिस्टलीय लवण तथा अधिक अम्लीय प्रोटीन्स के साथ अघुलित लवण बनाते हैं। ये गर्म करने पर स्कन्दित नहीं होते। ये प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले प्रोटीन्स में सरलतम प्रोटीन्स हैं जिनका आण्विक भार कम होता है। प्रोटएमीन्स को परिपक्व शुक्राणुओं से पृथक् किया जा सकता है तथा विचार है कि ये उनके केन्द्रक में स्थित होते हैं।

(*d*) **हिस्टोन्स** (Histones)—ये अधिक आण्विक भार वाले समक्षारीय प्रोटीन्स हैं। ये जल व तनु खनिज लवणों में घुलनशील होते हैं किन्तु अमोनियम हाइड्रॉक्साइड में ये अघुलित होते हैं।

2. डिस्टिल्ड पानी में अविलेय या अघुलित प्रोटीन्स (Proteins insoluble in distilled water)—ये निम्न प्रकार के होते हैं :—

(*a*) **ग्लुटेलिन्स** (Glutelins)—ये डिस्टिल्ड जल व उदासीन लवण घोल में अघुलित होते हैं किन्तु तनु क्षारों में ये घुलनशील होते हैं। ये एकमात्र रूप से धान्य-बीजों में पाये जाते हैं।

(*b*) **प्रोलएमीन्स** (Prolamines)—ये जल में अघुलनशील होते हैं किन्तु तनु क्षारों व 60–80% एल्कोहल में घुलनशील होते हैं। ये केवल पादपों में ही पाये जाते हैं। ग्लिआडिन (gliadin : wheat—गेहूँ), जीन (zein : maize—

मक्का), होरडीन (hordein : barley—जौ), आदि इस प्रकार के उदाहरण हैं।

(c) ग्लोब्युलिन्स (Globulins)—इस प्रकार के प्रोटीन्स जल में अघुलनशील होते हैं किन्तु ये NaCl जैसे उदासीन लवणों के तनु घोल में शीघ्रता से घुल जाते हैं। ये गर्म करने पर स्कन्दित हो जाते हैं। तनु अम्लों की उपस्थिति से इनमें स्कन्दन शीघ्रता से होता है। अण्डे का ग्लोब्युलिन या अण्डे के पीतक का **विटालीन** (egg globulin or vitallin of egg-yolk), रुधिर-प्लाज्मा का **फाइब्रीनोजन** (fibrinogen of blood plasma) तथा पेशियों के **मायोजन** या **माइसिनोजन** (myogen and myesinogen of muscles), आदि जन्तुओं में पाये जाने वाले प्रोटीन्स के उदाहरण हैं। **लेग्युमिन** (legumin : peas—मटर), **ट्युबेरिन** (tuberin : potatoes—आलू) तथा **इडेस्टिन** (edestin : wheat—गेहूँ), वनस्पति प्रोटीन्स के उदाहरण है।

B. सरल तन्तुवत् प्रोटीन्स (Simple fibrous proteins)—इस प्रकार के प्रोटीन्स की आण्विक संरचना तन्तु के समान होने के कारण ये ठण्डे पानी या अन्य किसी ठण्डे विलायक में अघुलनशील होते हैं। इनको **स्क्लेरोप्रोटीन** (scleroproteins) भी कहते है। ये एकमात्र रूप से केवल जन्तुओं के शरीर में ही पाये जाते हैं। सरल तन्तुवत् प्रोटीन्स के उदाहरण निम्न प्रकार हैं :—

(*i*) **केराटिन** (Keratins)—ये त्वचा के बाह्य स्तर तथा बालों, परों, सींगों, खुर व नखों में पाये जाते है। ये अपच्य (indigestible) होते हैं।

(*ii*) **कोलेजन** (Collagen)—कोलेजन प्रोटीन्स टैण्डन (tendons), एपोन्युरोसिज (aponeuroses), ड्यूरामेटर (duramater) तथा फेशिया (fascia) के श्वेत तन्तुमय सयोजी ऊतक मे पाये जाते है। ये अस्थि व कार्टिलेज का आधार-पदार्थ बनाते हैं। इनका पाचन बहुत धीरे-धीरे होता है।

(*iii*) **इलास्टिन** (Elastin)—यह लिगामेण्ट्स व रुधिर वाहिनियों के पीले-लचीले ऊतक मे मिलता है। इलास्टिन लचीली कार्टिलेज के आधार-पदार्थ में भी मिलता है। यह अघुलनशील होता है तथा इसका पाचन कठिन होता है।

(*iv*) **फाइब्रोइन** (Fibroin)—यह रेशम में मिलता है।

2. सम्बद्ध या जटिल प्रोटीन्स (Conjugated or Complex Proteins)

इस प्रकार के प्रोटीन्स किसी सरल प्रोटीन के किसी अप्रोटीनीय पदार्थ से सम्बद्ध होने से बनते हैं। अप्रोटीनीय भाग को **व्यतिरिक्त वर्ग** या **प्रोस्थेटिक ग्रुप** (prosthetic group) कहते है। उदाहरणार्थ हीमोग्लोबिन मे प्रोटीन-ग्लोब्युलिन आइरन युक्त पोर्फिन (porphin) यौगिक, **हीम** (haeme) से सम्बद्ध होता है। प्रोस्थेटिक ग्रुप के आधार पर सम्बद्ध प्रोटीन निम्न प्रकार के होते हैं :—

1. क्रोमोप्रोटीन (Chromoproteins)—इस प्रकार के प्रोटीन्स में सरल प्रोटीन किसी रंजक के साथ सम्बद्ध होता है, जैसे **हीमोग्लोबिन** (haemoglobin), **साइटोक्रोम्स** (cytochromes) तथा **फ्लेवोप्रोटीन्स** (flavoproteins)।

2. ग्लाइकोप्रोटीन्स (Glycoproteins)—इसमें सरल प्रोटीन्स कार्बोहाइड्रेट्स के साथ सम्बद्ध होते है, जैसे लार में पाया जाने वाला **म्युसिन** (mucin) तथा पित्त-रस का **हिपेरिन** (heparin)।

3. न्युक्लिओप्रोटीन्स (Nucleoproteins)—इस प्रकार के प्रोटीन्स में सरल

प्रोटीन के अणु न्युक्लीक अम्लों से सम्बद्ध होते हैं। ये **प्रोटएमीन्स** (protamines) या हिस्टोन्स (histones) होते हैं। कोशिकाओं के केन्द्रक का क्रोमेटिन पदार्थ न्युक्लिओप्रोटीन्स का ही बना होता है।

4. लिपोप्रोटीन्स (Lipoproteins)—ये सरल प्रोटीन्स व लिपिड्स के परस्पर सम्बद्ध होने से बनते हैं। इस प्रकार के प्रोटीन्स मस्तिष्क, प्लाज्मा, अण्डों व दूध में पाये जाते हैं।

5. फॉस्फोप्रोटीन्स (Phosphoproteins)—ये phosphoric acid, ortho- या pyrophosphate से सम्बद्ध होने पर बनते हैं। ये तनु क्षारकों में घुलनशील होते हैं और अम्लों के मिलाने पर अवक्षेपित हो जाते हैं। अण्डों का **ovovitelline** तथा दूध के **caseinogen** व **casein** फॉस्फोप्रोटीन्स के उदाहरण हैं।

3. व्युत्पन्न प्रोटीन्स (Derived Proteins)

व्युत्पन्न प्रोटीन्स वास्तव में किसी पूर्वस्थित प्रोटीन के जल-विश्लेपण या स्कन्दन द्वारा प्राप्त होते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं :—

1. मेटाप्रोटीन्स (Metaproteins)—ये जटिल प्रोटीन्स के जल-विश्लेषण द्वारा बनते हैं जैसे पाचक एन्जाइम्स, अम्ल व क्षारों की प्रक्रिया द्वारा। **अम्ल-मेटाप्रोटीन्स** (acid-metaproteins), **क्षार-मेटाप्रोटीन्स** (alkali-metaproteins), **प्रोटिओसिस** (proteoses) या **एल्व्युमिनोसिस** (albuminoses), **पेप्टोन्स** (peptones) तथा **पेप्टाइड्स** (peptides), आदि इस प्रकार के उदाहरण हैं।

2 स्कन्दित प्रोटीन्स (Coagulated proteins)—ये सामान्य प्रोटीन्स को गर्म करने से बनते हैं।

प्रश्न 5. प्रोटीन्स के सामान्य गुणों का उल्लेख करिये।
Describe the general properties of proteins.

प्रोटीन्स के सामान्य गुण निम्न प्रकार से हैं :—

A. भौतिक गुण (Physical Properties)

(*i*) **कोलायडीय अवस्था** (Colloidal state)—प्रोटीन्स कोलायड अवस्था में होते हैं। इनके अणु बड़े आकार के होते हैं जिनके कारण ये प्लाज्मा मेम्ब्रेन में से पारित नहीं हो सकते।

(*ii*) **घुलनशीलता** (Solubility)—प्रोटीन्स बड़े दीर्घ अणुओं वाले कोलायड हैं, अतः ये पानी में गन्दला विलयन बनाते हैं। ये एल्कोहल में अघुलनशील होते हैं किन्तु अम्लों की एक निश्चित सान्द्रता में ये अवक्षेपित हो जाते हैं।

B. रासायनिक गुण (Chemical Properties)

(*i*) **उभयधर्मी गुण** (Amphoteric properties)—प्रोटीन्स उभयधर्मी होते हैं। इनका स्वभाव क्षारकीय विलयनों (घोलों) के प्रति अम्लीय तथा अम्लीय घोलों के प्रति क्षारकीय होता है और उनके साथ यौगिक बनाते हैं।

(*ii*) **स्कन्दन** (Coagulation)—गर्म करने पर प्रोटीन्स स्कन्दित हो जाते हैं किन्तु भिन्न-भिन्न प्रोटीन्स के लिए स्कन्दन तापमान अलग-अलग होता है।

(iii) प्रकाशीय गुणधर्म (Optical property)—ग्लाइसीन के अतिरिक्त अन्य सभी अमीनो-अम्ल प्रकाशिक रूप से सक्रिय होते हैं। अधिकांश प्रोटीन्स **laevo-**

rotatory होते हैं किन्तु कुछ सम्बद्ध प्रोटीन्स, जैसे **हीमोग्लोबिन** तथा **न्युक्लिओ-प्रोटीन्स** **dextro-rotatory** होते हैं।

(*iv*) **जल-विश्लेषण** (Hydrolysis)—प्रोटीन्स को तनु खनिज अम्लों के साथ reflex condenser में उबालने पर इनके अणु क्रमिक रूप से सरल प्रोटीन्स में विघटित होकर अन्त में अमीनो-अम्लों में टूट जाते हैं। जल-विश्लेपण की यह क्रिया निम्न पदों में पूर्ण होती है :—

Proteins → Proteoses → Peptones → Amino-acids

(*v*) **वर्ण अभिक्रिया** (Colour reaction)

(*a*) **बाइयूरेट अभिक्रिया** (Biuret reaction)—समस्त प्रोटीन्स कास्टिक सोडा तथा तनु कॉपर सल्फेट घोल की एक बूंद के साथ **बाइयूरेट टेस्ट** (biuret test) देते हैं और गुलाबी-बैंगनी रंग देते है।

(*b*) **मिलन अभिकर्मक** (Millon's reagent)—तीव्र नाइट्रिक एसिड में घुले हुए पारे के साथ प्रोटीन्स सफेद अवक्षेप बनाते हैं जो गर्म करने पर लाल रंग का हो जाता है। यह अभिक्रिया **tyrosine** नामक अमीनो-अम्ल की उपस्थिति के कारण होती है।

(c) **रोजनीम अभिक्रिया** (Rosenheim's reaction)—एक भाग प्रोटीन में एक बूंद formaldehyde की डालकर उसे अच्छी प्रकार हिलाइये। अब इसमें एक भाग पानी मिलाइये। तीव्र sulphuric acid को धीरे-धीरे मिलाने पर यह विलयन के ऊपर एक पृथक् स्तर बना लेता है तथा इन दोनों स्तरों के मिलने के स्थान पर एक आकर्षक नील-रोहित (purple) वर्ण आभासित होता है। फैरिक क्लोराइड घोल की एक बूंद मिलाने पर यह वर्ण और अधिक गहरा हो जाता है।

(*d*) **जैन्थोप्रोटीइक अभिक्रिया** (Xanthoproteic reaction)—तीव्र HNO_3 प्रोटीन्स के साथ सफेद अवक्षेप बनाता है। यह बाद में पीले रंग का हो जाता है और क्षार के मिलाने पर नारंगी रंग का हो जाता है। यह phenyl radical की उपस्थिति के कारण होता है।

(*e*) **डाइजो-अभिक्रिया** (Diazo reaction)—प्रोटीन्स मन्द क्षारीय माध्यम में diazo-benzene sulphuric acid के मिलाने पर लाल रंग का अवक्षेप बनाते हैं। यह histidine या tyrosine की उपस्थिति के कारण होता है।

(*f*) **ग्लाइऑक्सिलिक एसिड अभिक्रिया या हॉपकिन्स-कोल अभिक्रिया** (Glyoxylic acid reaction or Hopkin's-Cole reaction)—प्रोटीन व ग्लाइ-ऑक्सिलिक एसिड के मिश्रण में तीव्र sulphuric acid के मिलाने पर दोनों स्तरों के बीच मे नील-रोहित रिंग (purple ring) बनता है। रिंग tryptophan की अभिक्रिया के कारण बनता है।

4

एन्जाइम्स
(Enzymes)

प्रश्न 6. एन्जाइम्स की परिभाषा लिखिये। इनकी रासायनिक प्रकृति एवम् कार्य-विधि का वर्णन करिये।

Define enzymes. Give their chemical nature and mode of working.

पोषण में एन्जाइम्स की भूमिका का वर्णन कीजिये।

Describe the role of vitamins in nutrition. (*Delhi 1971*)

एन्जाइम्स प्रोटीन के बने अधिक आण्विक भार वाले कार्बनिक पदार्थ हैं जो ऊष्मह्य* (thermolabile) व pH संवेदी होते हैं और सरलता से रोधी हो जाते हैं। ये समस्त जीवों में होने वाली विभिन्न जीव-सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं के विशिष्ट उत्प्रेरक (specific catalysts) हैं जो विभिन्न रासायनिक क्रियाओं की गति को तीव्र करते हैं। अतः एन्जाइम्स वे **जीव उत्प्रेरक** (biocatalysts) हैं **जो स्वयं परिवर्तित हुए बिना रासायनिक प्रतिक्रियाओं की गति को तीव्र करते हैं।**

एन्जाइम्स की रासायनिक प्रकृति
(Chemical Nature of Enzymes)

एन्जाइम्स जटिल प्रकार के प्रोटीन हैं जिनके गुण एवम् लक्षण सामान्यतः प्रोटीन्स के समान ही होते है। अतः ये अति सान्द्रता वाली एल्कोहल में अविलेय या अघुलनशील होते है और ऐलकेलॉयडी प्रतिकारकों (alkaloidal reagents) के साथ अवक्षेप बनाते हैं। Sodium chloride तथा ammonium sulphate, आदि उदासीन लवणों के अति सान्द्रता वाले जलीय घोलों या विलयनों में भी एन्जाइम अवक्षेप के रूप में पृथक् हो जाते हैं। अधिकतर एन्जाइम्स जल, लवणों के अल्प-सान्द्रता वाले विलयनों तथा ग्लिसरीन व एल्कोहल के अल्प-सान्द्रता वाले जलीय घोलों में घुलनशील होते है।

एन्जाइम प्रोटीन के बने होते है। अतः उदासीन घोलों को pH पर इनके स्वतन्त्र —NH_2 तथा —COOH ग्रुप, जो पार्श्व शृंखला के रूप मे होते है —NH_3^+ तथा —COO^- मे परिवर्तित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त histidine के imidazole ring पर भी धनात्मक (positive) आवेश आ जाता है। ये परिवर्तित समूह घोल के अन्य आयनों पर शक्तिशाली स्थिर-विद्युत आकर्षण उत्पन्न करते है जिससे ये आयन एन्जाइम से बँध सके। इससे ज्ञात होता है कि एन्जाइम सक्रियता

* ऐसे पदार्थ, जो ताप मे तनिक परिवर्तन से भी प्रभावित हो जाते हैं।

माध्यम के pH पर निर्भर करती है क्योंकि pH के कारण एन्जाइम अणु के चार्ज-वितरण मे परिवर्तन हो जाता है।

यद्यपि *pepsin* तथा *ribonuclease,* आदि एन्जाइम प्रोटीन के बने होते हैं किन्तु कुछ एन्जाइम्स मे इनके अणु का कुछ भाग नॉन-प्रोटीन (non-protein) पदार्थ का बना होता है। एन्जाइम के प्रोटीन तथा नॉन-प्रोटीन भाग क्रमशः **एपोएन्जाइम** (apoenzyme) तथा प्रोस्थेटिक ग्रुप (prosthetic group) कहलाते है तथा इस प्रकार के एन्जाइम को **होलोएन्जाइम** (holoenzyme) कहते है। होलोएन्जाइम के घटकों को एपोएन्जाइम (apoenzyme) तथा एक विसरणशील भाग, सहएन्जाइम या कोएन्जाइम (coenzyme) मे पृथक् किया जा सकता है। कुछ एन्जाइम्स की सक्रियता उनसे लगे हुए आयनों (ions) पर निर्भर करती है। ऐसे आयनो को dialysis द्वारा विलय किया जा सकता है। इस प्रकार के आयन **सक्रियकारक** (activators) कहलाते है।

कार्य-विधि (Mode of Working)

एन्जाइम्स की कार्य-विधि के अन्तर्गत होने वाले मुख्य रासायनिक परिवर्तन निम्न प्रकार के होते हैं :—

1. जल-विश्लेषण (Hydrolysis)—इस क्रिया के अन्तंगत पदार्थो के अणु जल के अणु को ग्रहण करने के पश्चात् अपेक्षाकृत छोटे अणुओं मे विघटित हो जाते हैं—जैसे proteins जल-विश्लेषण द्वारा क्रमवत् proteoses, peptones, polypeptides तथा अन्त मे amino-acids मे परिवर्तित हो जाते है। इसी प्रकार disaccharides तथा lactose का monosaccharides मे परिवर्तन भी जल-विश्लेषण के ही उदाहरण है।

जीवित कोशिकाओ मे निर्जलीकरण की भी उतनी ही सम्भावनाएँ है जितनी कि जल-विश्लेषण की होती है। अतः glucose निर्जलीकरण के फलस्वरूप amino-acids मे बहुलीकृत हो जाता है और ऊतक-कोशिकाओ मे निर्जलीकरण के फलस्वरूप पुनः प्रोटीन अणुओं मे सश्लेषित हो जाते है।

2. कार्बोक्सिलहरण (Decarboxylation)—इसके अन्तर्गत —COOH ग्रुप विलग होता है और CO_2 का निर्माण होता है। Pyruvic acid, *decarboxylase* एन्जाइम द्वारा acetaldehyde तथा CO_2 मे विघटित हो जाता है।

$$CH_3COOH \rightleftarrows CH_3CHO + CO_2$$
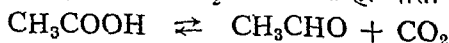
उपर्युक्त प्रतिक्रिया मे Vit. B_1 का pyrophosphoric ester सहएन्जाइम या कोएन्जाइम (coenzyme) का कार्य करता है। बैक्टीरिया-पाचन (bacterial digestion) मे कुछ अमीनो-अम्ल (amino-acids) CO_2 के एक अणु के क्षय के फलस्वरूप amines मे परिवर्तित हो जाते है :—

Histidine → Histamine
Ornithine → Putrescine
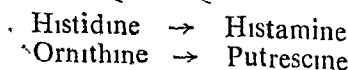
3. ऑक्सीकरण व अवकरण (Oxidation and reduction)—उपापचय क्रिया के समय खाद्य-पदार्थो के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न होती है। Glucose के एक ग्राम अणु (gram molecule) के H_2O व CO_2 मे ऑक्सीकरण के फलस्वरूप 4·1 cals. ऊर्जा उत्पन्न होती है।

सदव ही ऑक्सीकरण की क्रिया के अन्तर्गत एक पदार्थ का ऑक्सीजन क्षय

अथवा हाइड्रोजन ग्रहण द्वारा अवकरण होता है। ऑक्सीजन क्षय द्वारा अवकृत पदार्थ **ऑक्सीजन-दाता** (oxygen-donor) कहलाते है तथा इस प्रकार ऑक्सीकृत पदार्थ **ग्राहक** (acceptor) कहलाते हैं। हाइड्रोजन ग्रहण द्वारा अवकृत पदार्थ **हाइड्रोजन-ग्राहक** (hydrogen-receptor) तथा अवकारक पदार्थ **हाइड्रोजन-दाता** (hydrogen-donor) कहलाते हैं, जैसे :—

(*i*) RCHO → RCOOH

(*ii*) RCH_2OH → RCHO

उपर्युक्त प्रथम उदाहरण में aldehyde ऑक्सीजन-ग्राहक है तथा दूसरे उदाहरण में alcohol हाइड्रोजन-दाता है किन्तु दोनों ही उदाहरणों में या तो ऑक्सीजन ग्रहण करने अथवा फिर हाइड्रोजन के निकलने के फलस्वरूप पूर्ण ऑक्सीकरण होता है।

एन्जाइम की सक्रियता का अभिनियन्त्रण करने वाले कारक (Factors Governing Enzyme Action)

एन्जाइम की मात्रा के अतिरिक्त कुछ ऐसे रासायनिक एवम् भौतिक कारक भी हैं जो एन्जाइम की सक्रियता को प्रभावित करते है। ये कारक निम्नलिखित है :—

1. pH—यह देखा गया है कि एन्जाइम विभिन्न pH वाले घोलों में अलग-अलग प्रकार से प्रक्रिया करते है। किन्तु प्रत्येक प्रक्रिया का अपना एक अनुकूलतम मान (optimun value) होता है। यह इसके **समविद्युत्-बिन्दु** (iso-electric point) के निकट होता है। समविद्युत् बिन्दु उसको कहते है जिस पर किसी प्रक्रिया में होने वाले परिवर्तन एक-दूसरे के सन्तुलन में रहते है।

2. ताप (Temperature)—प्रत्येक एन्जाइम का एक अनुकूलतम तापमान (optimum temperature) होता है। अनुकूलतम ताप से नीचे ताप मे प्रत्येक 10° की वृद्धि होने पर रासायनिक प्रतिक्रिया की गति दुगुनी होती जाती है। इस तथ्य को **Van't Hoff** ने ज्ञात किया था। प्रत्येक तापमान एकक के परिवर्तन के फलस्वरूप अभिक्रिया की गति में प्रतिवर्तन को उस प्रतिक्रिया या अभिक्रिया का **ताप गुणांक** (temperature coefficient) कहते हैं। इसको θ_{10} द्वारा प्रदर्शित करते हैं। अधिकांश एन्जाइम उत्प्रेरित अभिक्रियाओं मे निम्न ताप पर θ_{10} लगभग 2 होता है किन्तु तापमान के बढ़ने के साथ यह क्रमिक रूप से कम होकर 1 रह जाता है। एन्जाइम्स 10–50°C के बीच सक्रिय होते हैं किन्तु 60°C से अधिक ताप पर ये विकृत या नष्ट हो जाते हैं।

3. किण्व भोज सान्द्रता (Substrate concentration)—अन्य परिस्थितियों को स्थिर रखने पर एक निश्चित सान्द्रता के पहुँचने तक किण्व भोज की सान्द्रता में वृद्धि एन्जाइम उत्प्रेरित प्रतिक्रिया को प्रभावित करती है और अन्तिम उत्पादों के निर्माण में वृद्धि होती है। एक निश्चित बिन्दु पर पहुँचने पर एन्जाइम संतृप्त हो जाता है और किण्व भोज की सान्द्रता में और अधिक वृद्धि का अन्तिम उत्पादों के निर्माण की गति पर कोई प्रभाव नहीं होता।
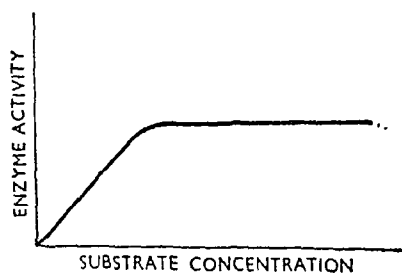
चित्र 4 किण्व भोज की सान्द्रता का एन्जाइम सक्रियता से सम्बन्ध (Relation of substrate concentration to enzyme activity)

4. **सक्रियकारक** (Activators)—ये अकार्बनिक उत्प्रेरक हैं जो उत्प्रेरकों (catalysts) की सक्रियता को प्रभावित करते है। ये अधिकांशतः धात्विक आयन (metallic ions) तथा प्रोएन्जाइम सक्रियकारक (proenzyme activators) हैं। उदाहरणार्थ थ्रोम्बिन (thrombin) की सक्रियता calcium ions पर तथा ATP की अभिक्रियाएँ Mg^{++} ions की सान्द्रता पर निर्भर करती है। *Proteoses* या पाचक एन्जाइम कोशिकाओं द्वारा निष्क्रिय अवस्था में स्रावित किये जाते हैं और इनको **zymogen** या **proenzyme** कहते है।

5. **निरोधक** (Inhibitors)—निरोधक एन्जाइम्स की सक्रियता में अवरोध उत्पन्न करते हैं। Cl, As, Fe, Cu तथा Hg के आयन कुछ सामान्य निरोधक है। इन आयनों की एन्जाइम्स द्वारा प्रक्रिया करने वाले पदार्थो से अधिक बन्धुता होती है। अतः ये जीव-द्रव्य में स्थित प्रोटीन्स को अवक्षेपित कर देते है और कोशिकाएँ मृत्युग्रस्त हो जाती है।

प्रश्न 7. एन्जाइम्स क्या है? उनके विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख करते हुए एन्जाइम्स का वर्गीकरण करिये।

What are enzymes? Describe their characteristics and classification.

एन्जाइम्स जीवित ऊतकों के वे जीव-उत्प्रेरक (biocatalysts) **हैं जो रासायनिक प्रतिक्रियाओं की गति में वृद्धि करते हैं किन्तु प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उनमें कोई स्पष्ट परिवर्तन नहीं होता।** ये अधिक आण्विक भार वाले प्रोटीन पदार्थ हैं जो ऊष्महृत (thermolabile) व pH सवेदी (pH sensitive) होते हैं और सरलता से अवरुद्ध हो जाते हैं। ये जीव प्रतिक्रियाओं के विशिष्ट उत्प्रेरक हैं।

एन्जाइम्स के विशिष्ट लक्षण (Characteristics of Enzymes)

1. समस्त एन्जाइम्स जीवित कोशिकाओं (पादप एवम् प्राणियों) के उत्पाद है, अतः इनको **जीव-उत्प्रेरक** (biocatalysts) कहते है। ये अकार्बनिक उत्प्रेरकों से अधिक शक्तिशाली होते हैं।

2. एन्जाइम्स रासायनिक प्रतिक्रिया की गति को बढ़ाने के अतिरिक्त कभी-कभी प्रारम्भ भी करते हैं। विसंक्रमणित माँड का घोल अनिश्चित समय तक अपरिवर्तित रहता है किन्तु *amylase* की थोड़ी-सी मात्रा मिलाने पर यह शीघ्र ही माल्टोज (maltose) में परिवर्तित हो जाता है।

3. एन्जाइम-क्रिया एन्जाइम की मात्रा पर अधिक निर्भर नहीं करती क्योंकि इसकी थोड़ी-सी मात्रा भी अनिश्चित काल तक प्रतिक्रियाओं को उत्प्रेरित करने में समर्थ होती है। किन्तु यह भी एक तथ्य है कि एन्जाइम की मात्रा जितनी अधिक होती है, रासायनिक प्रतिक्रिया की गति भी उतनी ही तेज होती है।

4. यह देखा गया है कि कुछ समय उपरान्त एन्जाइम की सक्रियता समाप्त हो जाती है। ऐसा या तो पर्यावरण में उत्पन्न परिवर्तनों के फलस्वरूप अथवा एन्जाइम की सक्रियता के समाप्त होने या फिर एन्जाइम में रासायनिक परिवर्तनों के फलस्वरूप होता है।

5. एन्जाइम्स मे **प्रतिवर्ती प्रतिक्रिया** को प्रेरित करने की क्षमता होती है। उदाहरणार्थ वसा को विघटित करने वाला *lipase* एन्जाइम ethyl butyrate को butyric acid तथा ethyl alcohol में जल-विश्लेपित कर देता है। इस क्रिया के

अविरत होते रहने पर पुन: ethyl butyrate निर्मित हो जाता है :—

$$C_3H_7COOC_2H_5 + H_2O \rightleftharpoons C_3H_7COOH + C_2H_5OH$$

Butyric acid Ethyl alcohol
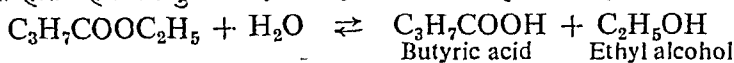
6. एन्जाइम्स अस्थिर यौगिक हैं जो जल, dilute glycerol, sodium chloride के घोल तथा dilute alcohol में घुलित होते हैं।

7. Ammonium sulphate के संतृप्त घोल तथा alcohol की अधिकता में एन्जाइम्स अवक्षेप बनाते हैं।

8. एन्जाइम्स कोलॉयडी पदार्थ हैं जो विसरण करने में असमर्थ होते हैं।

9. एन्जाइम्स 60°C से अधिक ताप पर नष्ट हो जाते है तथा कम ताप पर इनकी सक्रियता में कमी आ जाती है। प्रत्येक एन्जाइम की अनुकूलतम सक्रियता के लिए एक विशिष्ट ताप होता है जो प्राय: 25°C–45°C के बीच होता है। जीवों के शारीरिक ताप पर एन्जाइम्स की सक्रियता अधिकतम होती है।

9. उचित क्रिया के लिए कुछ एन्जाइम्स को एक सहएन्जाइम या कोएन्जाइम (अकार्बनिक आयन या सक्रियकारक) की आवश्यकता होती है। अत: pancreatic *amylase* को फॉस्फेट आयनों की तथा माँड को विघटित करने वाले लार रस के एन्जाइस को Cl^- आयनों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के पदार्थ **सहएन्जाइम्स** या **कोएंन्जाइम्स** (coenzymes) कहलाते है। Zn, Co, Mn तथा Mg, आदि के धात्विक आयन भी कुछ *peptidases* एन्जाइम्स को सक्रिय बनाते हैं। कुछ अन्य एन्जाइम्स को अपनी क्रिया के लिए विशिष्ट उत्प्रेरकों की आवश्यकता होती है। न्युक्लिओटाइड्स के फॉस्फेट ग्रुप *nucleins* के विघटन में उत्प्रेरक का कार्य करते हैं।

10. *Trypsin*, आदि कुछ एन्जाइम क्षारकीय माध्यम में, *pepsin* आदि एन्जाइम अम्लीय माध्यम में तथा *lipase*, आदि कुछ अन्य एन्जाइम्स उदासीन (neutral) माध्यम में क्रिया करते हैं। किन्तु papaya का *papin* एन्जाइम क्षारकीय एवम् अम्लीय दोनों प्रकार के माध्यमों में क्रिया करता है।

11. सभी एन्जाइम्स को क्रिया के लिए घोल में H-ions की एक निश्चित सान्द्रता की आवश्यकता होती है। अत: *pepsin* को अनुकूलतम सक्रियता के लिए HCl के 0·2% घोल की आवश्यकता होती है। उदासीन घोल में *pepsin* निष्क्रिय रहता है।

12. एन्जाइम्स की क्रियाएँ विशिष्ट प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ *amylase* माँड से तथा *pepsin* केवल प्रोटीन्स से ही क्रिया करता है।

एन्जाइम्स का वर्गीकरण (Classification of Enzymes)

कार्यो के अनुरूप एन्जाइम्स को निम्न पाँच वर्गों में बाँटा गया है :—

1. Hydrolases—ये जल-विश्लेपक पाचक एन्जाइम हैं जो उन कोशिकाओं के बाहर क्रिया करते है जो दीर्घ अणुओं के लघु अणुओं में विघटन से सम्बद्ध होती है, जैसे *amylases*, *saccharases*, *proteinases*, *lipases*, आदि। इस वर्ग के अन्तर्गत कुछ ऐसे एन्जाइम भी आते हैं जो कोशिकाओं के अन्दर क्रिया करते हैं और उस क्रिया की पूर्ति के लिए जल की आवश्यकता होती है, जैसे *deaminases*, *arginases*, *carbonic anhydrases*, आदि। *Hydrolases* एन्जाइम निम्न प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **Proteolytic**—ये proteins को peptones तथा peptides में विघटित करते हैं—जैसे, *pepsin, renin, trypsin* तथा *erepsin* ।

(*ii*) **Sucrolytic**—ये शर्करा अणुओ का सरल अणुओं में जल-विश्लेषण करते है, जैसे *lactase, fructase* तथा *galcatase* ।

(*iii*) **Lipolytic**—ये लिपिड्स तथा उदासीन वसाओं पर क्रिया करके उनको glycerol मे विघटित करते है, जैसे *lipase* ।

(*iv*) **Amylolytic**—ये मॉड का जल-विश्लेषण करके maltose मे परिवर्तित कर देते है ।

(*v*) **Nucleolases**—ये nucleic acid का nucleotides में विघटन करते हैं जो पुन: *nucleotidases* द्वारा nucleosides मे जल-विश्लेपित कर दिये जाते है ।

(*vi*) **Amidases**—ये urea, arginine तथा purines को विघटित करते हैं, जैसे *urase, arginase* तथा *purinamidase* ।

(*vii*) **Invertases**—ये disaccharides को monosaccharides में परिवर्तित करते है, जैसे *invertase* तथा *maltase* ।

2. Demolases—ये आक्सीकरण, अवकरण तथा कार्वोक्सिलहरण द्वारा अणुओं को विघटित करते है, जैसे *dehydrogenases, carboxylases, oxidases, catalases* तथा *carbonic anhydrase* । ये निम्न प्रकार के होते है :—

(*i*) **Oxidases**—ये आक्सीकरण या अन्त.कोशिकीय एन्जाइम है जो श्वसन एवम् उपापचय के समय ऊतक-कोशिकाओं मे आक्सीकरण परिवर्तन उत्पन्न करते है ।

(*ii*) **Dehydrogenases**—ये एक यौगिक से दूसरे यौगिक को H^+ ions का स्थानान्तरण करते है और इस प्रकार एक ही समय में आक्सीकरण एवम् अवकरण की क्रिया को पूर्ण करते है ।

(*iii*) **Decarboxylases**—ये यौगिकों में से carboxyl ग्रुप को विलग करके CO_2 निर्मित करते है :

$$CH_3CO.COOH \rightarrow CH_3CHO + CO_2$$
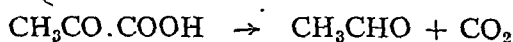
(*iv*) **Carbonic anhydrases**—ये carbonic acid को CO_2 तथा H_2O में विघटित करते है ।

(*v*) **Catalases**—ये विभिन्न जीव-रासायनिक प्रतिक्रियाओं में होने वाले उत्प्रेरकीय परिवर्तनों को सक्रिय करते है ।

(*vi*) **Autolytic or intracellular**—ये ऊतक-कोशिकाओ मे उपापचय की anabolic व catabolic क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है ।

3. Coagulating enzymes—ये विभिन्न पदार्थों को जमाने का कार्य करते है, जैसे (*i*) *coagulase* पेशियों में paramyosinogen तथा myosinogen को paramyosin तथा myosin मे परिवर्तित कर देता है, तथा (*ii*) rennin विलेय calcium caseinogen को अविलेय calcium caseinate मे परिवर्तित कर देता है ।

4. Isomerases—ये अणुओं में परमाणुओं के विन्यास में परिवर्तन करते हैं और इस प्रकार एक समावयव (isomer) से दूसरा समावयव वनता है, जैसे

phosphohexose isomerase तथा *triose phosphate isomerase* । Triose phosphate isomerase, carbohydrates के lactic acid में निर्वात विघटन के समय 3-phosphoglyceraldehyde को dihydroxyacetone phosphate में परिवर्तित कर देता है ।

(*v*) **Synthetases**—ये दो अलग-अलग अणुओं के सम्मिलन से एक नया पदार्थ बनाते हैं । इसके लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो ATP के विघटन से प्राप्त होती है । उदाहरणार्थ acetyl coenzyme A (CoA) synthetase की उपस्थिति में निम्नलिखित प्रतिक्रिया होती है :—

Adenosine triphosphate (ATP)+Acetate+CoA →
Adenosine monophosphate (AMP)+Acetyl CoA
+pyro-phosphate (PP)
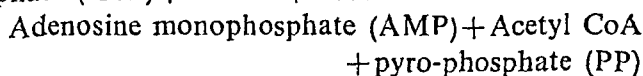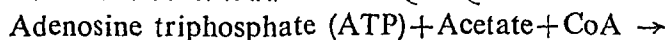
प्रश्न 8. एन्जाइम-क्रिया की विधि का वर्णन करिये ।

(b) एन्जाइम्स के मुख्य वर्गो एवम् उनके विशेष लक्षणों का उदाहरण सहित उल्लेख करिये । (*Delhi 1972*)

(a) Discuss the mechanism of enzyme action.

(b) Mention the major classes of enzymes and their characteristics. Give examples.

अनेक वैज्ञानिकों द्वारा एन्जाइम-क्रिया की व्याख्या की गई है तथा उसके सम्बन्ध में अनेक वाद प्रस्तुत किये गये हैं किन्तु **एन्जाइम किण्व भोज कॉम्प्लैक्स प्राक्कल्पना** (enzyme substrate complex hypothesis) ही सार्वजनिक रूप से मानी जाने वाली प्राक्कल्पना है ।

एन्जाइम किण्व भोज कॉम्प्लैक्स प्राक्कल्पना
(Enzyme Substrate Complex Hypothesis)

यह प्राक्कल्पना **Henri** द्वारा प्रस्तुत की गई थी और **Michaelis** व **Meuten** ने इस प्राक्कल्पना को गणितीय रूप प्रदान किया । इस प्राक्कल्पना के अनुसार एन्जाइम अपने किण्व भोज के साथ मिलकर एक अस्थायी माध्यम कॉम्प्लैक्स बनाता है जिसे एन्जाइम **किण्व-भोज कॉम्प्लैक्स** (enzyme substrate complex) कहते हैं । यह कॉम्प्लैक्स तेजी से विघटित होकर प्रतिक्रिया उत्पाद (reaction products) और वास्तविक एन्जाइम बनाता है । इसको निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है :—

$$E + S \underset{K_2}{\overset{K_1}{\rightleftarrows}} ES \xrightarrow{K_3} E + P$$

(एन्जाइम) (किण्व-भोज) (कॉम्प्लैक्स) (एन्जाइम) (उत्पाद)
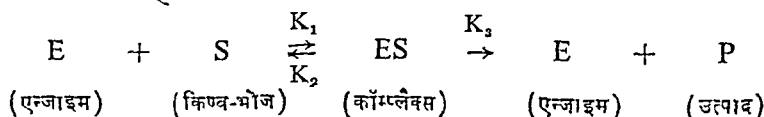
एन्जाइम का विशिष्ट कार्य उस प्रतिक्रिया के पूर्ण होने के लिए आवश्यक ऊर्जा की मात्रा में कमी करना है जिससे सामान्य शारीरिक ताप पर भी वह प्रतिक्रिया उचित गति से क्रिया करने में समर्थ होती है ।

एन्जाइम्स का वर्गीकरण एवम् लक्षण
(Classification and Characteristics of Enzymes)

कृपया प्रश्न 7 देखिये ।

5

विटामिन्स
(Vitamins)

प्रश्न 9. विटामिन्स के प्राप्तिस्थान एवम् कार्यों पर एक निबन्ध लिखिये।

Write an essay on the occurrence and functions of vitamins.

विटामिन्स कार्बनिक यौगिक है जिनकी अल्प मात्रा ही उपापचय क्रियाओं को सामान्य रूप से चलाने के लिए काफी होती है। जन्तुओं में विटामिन्स का संश्लेषण करने की क्षमता नहीं होती, अतः इनके लिए ये एकमात्र रूप से अपने आहार मे पाये जाने वाले विटामिन्स पर ही निर्भर करते हैं। अब तक ज्ञात विटामिन्स की संख्या काफी अधिक है किन्तु मनुष्य के लिए इनमे से केवल 10–12 विटामिन्स के महत्त्व को निश्चित रूप से स्थापित किया गया है। इस प्रकार के विटामिन A, C, D, E, K तथा B-complex हैं। इनमे से विटामिन A, D, E तथा K वसाओं में घुलनशील होते है, जबकि vit. B-complex जल में घुलनशील होता है।

1. Vitamin A या antikeratinizing vitamin or B Ioninol—Vitamin A अत्यधिक असंतृप्त एल्कोहल है जो तेलों व वसाओं में घुलनशील होता है। यह अधिकतर जन्तुओं से उपलब्ध होता है, जैसे यकृत, मक्खन, क्रीम तथा अण्डों का पीतक, आदि। कॉड, शार्क, मेक्रेल व हेलिबट नामक मछलियों के लीवर ऑयल में vit. A प्रचुरता से मिलता है। मानव शरीर में यह गाजर, सलाद, आदि पौधों के हरे, लाल व नारंगी रंग के भागों में पाये जाने वाले **केरोटीन** (carotene) रंजक से व्युत्पन्न किये जाते हैं। β-carotene जल में घुलनशील होता है जो छोटी आंत्र मे vit. A में परिवर्तित हो जाता है :—

$$\underset{\text{B-carotene}}{C_{40}H_{56}} + 2H_2O \rightarrow \underset{\text{Vitamin A}}{2C_2OH_{29}OH}$$
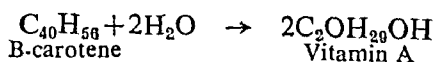
Vitamin A पर ऊष्मा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु यह आक्सीकरण द्वारा अथवा देर तक सूर्य के प्रकाश में रखने पर नष्ट हो जाता है। अतः सब्जियो को खुले वर्तन में देर तक रखकर पकाने से vit. A नष्ट हो जाता है।

कार्य (Functions)—Vit. A निम्न कार्यों के लिए अति आवश्यक होता है :—

(*i*) वृद्धि (growth)।

(*ii*) एपिथीलियल ऊतक के समाकलन को बनाये रखने के लिए।

(*iii*) जनन अंगों के समाकलन एवम् समुचित रूप से कार्य करने में ।

(*iv*) स्टिरोल उपापचय (sterol metabolism) तथा तन्त्रिका-कोशिकाओं व तन्त्रिका-तन्तुओं के ऊतकों के विशिष्ट संश्लेपण में इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

न्यूनता के प्रभाव (Effects of deficiency)—शरीर में Vitamin A की न्यूनता होने पर निम्नलिखित विकार उत्पन्न होते हैं :—

(*i*) **मन्दित वृद्धि** (Retarded growth)—शरीर की वृद्धि मन्द हो जाती है । शरीर का वजन धीरे-धीरे कम होता चला जाता है । ऐसा यकृत, वृक्कों, आदि अंगों के अपक्षय के कारण होता है ।

(*ii*) **डर्मेटोसिस** (Dermatosis)—Vit. A की कमी होने पर किरेटिनीकरण के कारण त्वचा खुश्क व शल्कीय हो जाती है । किरेटिन विशेष रूप से लैक्रिमल ग्रन्थियों (lachrymal glands), मीबोमियन ग्रन्थियों (meibomian glands), लार ग्रन्थियों (salivary glands) व योनि (vagina), आदि रचनाओं द्वारा बनता है ।

(*iii*) **जीरोपथैल्मिया** (Zeropthalmia)—किरेटिनीकरण (keratinization) के फलस्वरूप कॉर्निया (cornea) तथा कन्जंक्टाइवा (conjunctiva) शुष्क होकर सूज जाते हैं । नेत्रों की इस अवस्था को ही जीरोथैल्मिया कहते हैं । इसके परिणामस्वरूप कार्निया का घातक रूप से अपकर्षण होता है और अन्त में जख्म हो जाते हैं ।

(*iv*) **रतौंधी** (Night-blindness)—Vit. A की कमी के कारण ही मनुष्य में रतौंधी नामक रोग हो जाता है जिसके फलस्वरूप वह मन्द प्रकाश में देखने में असमर्थ होता है । रेटिना में vit. A, प्रोटीन के साथ मिलकर **visual purple** बनाता है । यह प्रकाश की फोटो-रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप **visual yellow** में परिवर्तित हो जाता है और अन्त में विघटित हो जाता है जिससे vit. A पुनः मुक्त हो जाता है :—

$$\begin{array}{l} \text{Vitamin A} + \text{Protein (opsin)} \rightarrow \text{Visual purple} \\ \qquad\qquad \text{Vitmin A} \leftarrow \text{Visual yellow} \end{array} \Big\} \text{ in presence of light}$$
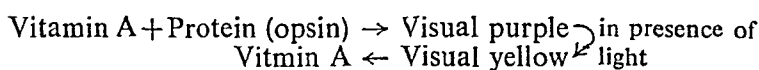
(*v*) **संक्रमण के प्रति प्रभाव्यता** (Susceptibility to infection)—Vit. A की कमी से श्वसन पथ तथा आमाशयान्त्र की एपिथीलियम का अपघटन एवम् किरेटिनीकरण हो जाता है जिससे इसमें जख्म हो जाते हैं और संक्रमण के प्रति अधिक प्रभाव्य हो जाता है ।

(*vi*) **वृक्क या रीनल-संक्रमण** (Renal infection)—Vit. A की कमी होने पर वृक्कों की व्यावृत नलिकाओं (convoluted tubules) की कोशिकाओं में रसधानीभवन (vacuolization) व कैल्सिकरण (calcification) तथा संग्रह नलिकाओं (collecting tubules) की कोशिकाओं में सूजन आ जाती है तथा हाइपरलेसिया (hyperlasia) व शल्कीभवन (cornification) हो जाता है जिससे यूरिया का निर्जलीकरण कम होता है ।

(*vii*) **जनन तन्त्र** (Reproductive system)—Vit. A की कमी से वृषण व अण्डाशयों का अपघटन होने लगता है । कभी-कभी इसके फलस्वरूप नपुंसकता भी आ जाती है ।

2. Vitamin D या antirachitic vitamin—Vit. D ही एकमात्र कारक है जो कैल्शियम-फॉस्फोरस के उपापचय के नियमन से सम्बद्ध होता है। यह Sword fish, halibut, mackerel, cod तथा salmon नामक मछलियों के लीवर-ऑयल में प्रचुरता से पाया जाता है। अण्डे के पीतक (योक) में भी इसकी थोड़ी-बहुत मात्रा होती है।

Vit. D एक स्टिरोल (sterol) है और यह वसा में घुलनशील होता है। यह अत्यधिक स्थिर होता है। यह न तो आक्सीकरण द्वारा ही और न ही उबालने पर नष्ट होता है।

कार्य (Functions)—Vit. D कैल्शियम के अवशोषण में अभिवृद्धि करता है और मूत्र के साथ इसके उत्सर्जन को रोकता है। अस्थियों के सामान्य रूप से निर्माण मे इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

न्यूनता के प्रभाव (Effect of deficiency)—भोजन में vit. D की कमी होने पर बच्चों मे **रैकिटिस या रिकेट्स** अर्थात् सूखा रोग (rachitis or rickets) नामक रोग हो जाता है। अस्थियो में calcium phosphate के अनियमित रूप से निक्षेपण के कारण अस्थियाँ कोमल हो जाती है। लम्बी अस्थियाँ मुड़ जाती हैं तथा वक्ष पार्श्व से चपटा हो जाता है।

किशोर नारियों में Vit. D की कमी होने पर **osteomalcia** नामक रोग हो जाता है। श्रोणि-मेखला तथा पसलियों का कोमल होना, जबड़ो की अस्थियों का विकृत होना और दाँतों का गलित होना, आदि इसकी कमी के विशिष्ट लक्षण है।

3. Vitamin E या Tocopherol or fertility vitamin—यह वसा में घुलनशील विटामिन है जो वनस्पति तेलों, जैसे बिनौला, सोयाबीन, आदि में तथा सलाद व अल्फाएल्फा (alfalfa) की पत्तियों मे प्रचुरता से मिलता है।

Vitamin E की शरीर में होने वाले ऑक्सीकरण एवम् अवकरण परिवर्तनों में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह अत्यधिक अस्थिर या अस्थायी होता है। यह कोशिकाओं के परिपक्वन एवम् भिन्नन से सम्बद्ध होता है। इसकी कमी होने पर पुरुष व स्त्री दोनों में बन्ध्यता उत्पन्न हो जाती है। पुरुषों में इसकी कमी के कारण शुक्राणु एवम् शुक्रजनक नलिकाएँ नष्ट हो जाती है किन्तु स्त्रियों में इसकी कमी होने पर निषेचन के कुछ दिन बाद भ्रूण मृत्युग्रस्त हो जाता है।

4. Vitamin K या Phylloquinone or Antihemorrhagic vitamin—Vit. K एक जटिल प्रकार का असंतृप्त हाइड्रोकार्बन है जो वसा मे घुलनशील होता है। यह क्षारों (alkalies), प्रकाश व उच्च ताप के प्रति अत्यधिक सवेदनशील होता है।

कार्य (Functions)—यह प्रोथ्रोम्बिन (prothromin) तथा रुधिर का थक्का बनाने के लिए अति आवश्यक होता है।

5. Vitamin B-complex—यह पानी में घुलनशील होता है जिसके अन्तर्गत **thiamine (B_1), riboflavin (B_2), nicotinic acid** या **niacin, folic acid, pyridoxine (B_6), anti-pernicious cyanocobalamine anemia (B_{12}),**

pantothenic acid, inositol, para-aminobenzoic acid, biotin तथा **choline,** आदि विटामिन्स आते हैं।

(*i*) **थायामिन** (Thiamine–B_1)—यह carbohydrate के उपाचपय में एक महत्त्वपूर्ण कारक है क्योंकि थायामिन पाइरोफॉस्फेट (thiamine pyrophosphate) पाइरुविक अम्ल (pyruvic acid) के कार्बोक्सिकरण (carboxylation) में सह-एन्जाइम्स का कार्य करता है। इसकी कमी से रक्त व ऊतकों में पाइरुविक अम्ल एकत्रित हो जाता है जिससे मनुष्य में **बेरी-बेरी** (beri-beri) तथा जानवरों में **पोलीन्यूराइटिस** (polyneuritis) नामक रोग हो जाता है। अत: इसे **एण्टीन्यूराइटिक** (antineuritic) या **एण्टीबेरीबेरी** (antiberiberi) विटामिन भी कहते हैं। यह बीजों, बिना छिलका उतरे धान्यों, जई (oat), सेम, सन्तरे के रस, टमाटर, दूध व अण्डे में प्रचुरता से मिलता है।

(*ii*) **राइबोफ्लेविन** (Riboflavin—B_2)—यह बहुत-से एन्जाइमों का व्यतिरिक्त वर्ग या प्रोस्थेटिक ग्रुप (prosthetic group) बनाता है। ये riboflavin-ribose phosphate (FMN) तथा riboflavin adenine dinucleotide (FAD) हैं। राइबोफ्लेविन युक्त एन्जाइम्स **फ्लेवोप्रोटीन्स** (flavoproteins) कहलाते हैं। ये कोशिकीय श्वसन में भाग लेने वाली अनेक एन्जाइमेटिक अभिक्रियाओं में सह-एन्जाइम के रूप मे कार्य करते है। अत: राइब्रोफ्लेविन (riboflavin) अप्रत्यक्ष रूप से कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन्स के उपापचय का नियमन करता है और जन्तुओं की वृद्धि के लिए अति आवश्यक है। इसकी कमी होने पर **ग्लोसाइटिस** (glossitis—जीभ में सूजन), **कीलोसिस** (cheilosis—होठों का फटना व सूजन), आँखों की सूजन व **सीबोरीक डर्मेटाइटिस** (seborrheic dermatitis—त्वचा का फटना), आदि रोग हो जाते है। यह पादपों, जन्तुओं व सूक्ष्म जीवों, आदि सभी मे प्रचुर मात्रा मे मिलता है, जैसे यकृत, वृक्क, दूध, अण्डा, गेहूँ, चना, दालें, पालक, हरे साग, सलाद, प्याज व यीस्ट, आदि।

(*iii*) **निकोटिनिक अम्ल या नियासिन** (Nicotinic acid or niacin)—यह पाइरिडिन न्यूक्लिओटाइड्स (pyridine nucleotides) का अवयव है जो कोशिकाओं में सहएन्जाइम्स द्वारा होने वाली ऑक्सीकरण-अवकरण अभिक्रियाओं में पूरोवर्ती (precursor) का कार्य करता है। अत: यह कार्बोहाइड्रेट्स एवम् अमीनो-अम्लों के ऑक्सीकरण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी न्यूनता से मनुष्य में **पीलेग्रा** (pellagra) नामक रोग हो जाता है, जिससे त्वचा खुश्क, शल्कीय व रंजित हो जाती है और पाचन-तन्त्र, तन्त्रिका-तन्त्र एवम् मस्तिष्क ठीक प्रकार से कार्य नहीं करते।

(*iv*) **फोलिक अम्ल** (Folic acid)—यह न्युक्लीक-अम्लों (nucleic acids) की उपापचय क्रियाओं में भाग लेता है अर्थात् यह deoxyribonucleic acid के कुछ अवयवों के सश्लेषण में भाग लेता है। इसकी कमी होने पर मनुष्य में **रक्ताल्पता** (anemia) नामक रोग हो जाता है।

(*v*) **विटामिन B_6—पाइरिडॉक्सीन या पाइरिडॉक्सामीन या पाइरिडॉक्साल** (Vitamin B_6-Pyridoxine or pyridoxamine or pyridoxal)—Vitamin B_6 उपर्युक्त तीन रूपों मे मिलता है। Pyridoxine, **फॉस्फोरिलेटेड** पाइरि-

डॉक्साल (phosphorylated pyridoxal) के रूप में क्रियाशील होता है जो विकार्बनन (decarboxylation), अमीनो-अम्लों के अमाइनी-परिणमन (transamination of amino-acids), वसा-अम्लों के उपापचयन तथा साइस्टीन (cysteine) व हाइड्रॉक्सी-अमीनो-अम्लों (hydroxy-amino-acids) के अमाइनी परिणमन सहित अनेक एन्जाइम क्रियाओं में सहएन्जाइम का कार्य करता है। मनुष्य में इसकी न्यूनता से होने वाले प्रभावों का अध्ययन नहीं किया गया है किन्तु चूहों में इसकी कमी होने पर **डर्मेटाइटिस** (*dermatitis*) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। यह दूध, सब्जियों, फलो व दालों मे काफी मात्रा में मिलता है।

(*vi*) **विटामिन B_{12}—सायनोकोबालएमीन** (Vitamin B_{12}—cyanocobalamine)—यह R.B.Cs. के सामान्य वर्धन के लिए अति आवश्यक है। यह न्युक्लीक अम्लों एवम् न्युक्लिओप्रोटीन्स के संश्लेषण में भाग लेता है। इसकी कमी होने पर **रक्ताल्पता** (anemia) हो जाती है। यह यकृत, गाय व सुअर के माँस, पेशियों, आदि में पाया जाता है।

(*vii*) **पेन्टोथिनिक अम्ल** (Pantothenic acid)—यह बहुत-सी एसिटाइलेशन (acetylation) क्रियाओं में सहएन्जाइम का कार्य करता है और सहएन्जाइम-A (coenzyme-A) का प्रमुख भाग बनाता है। इसकी कमी होने से शरीर में पाइरुविक अम्ल का उपयोग कम हो जाता है और यह शरीर की सामान्य वृद्धि को प्रभावित करता है।

(*viii*) **इनोसिटोल** (Inositol)—इसकी कमी होने पर बाल झड़ने लगते हैं, डर्मेटाइटिस रोग हो जाता है, वृद्धि ह्रसित हो जाती है तथा दुग्ध-निर्माण क्षीण हो जाता है।

6. Vitamin C or Ascorbic acid or Antiscorbutic vitamin—Vitamin C लगभग सभी ताजे फलों व सब्जियों में मिलता है किन्तु सन्तरा, नींबू, टमाटर, कच्चे अंगूर व अमरूद में यह बहुत अधिक मात्रा में होता है। यह माँस, अण्डे, धान्यों व दूध में भी पाया जाता है।

Vitamin C कोलेजन (collagen) युक्त सभी आन्तर-कोशिकीय पदार्थों के निर्माण के लिए आवश्यक है। यह शरीर में रोगों के प्रति प्रतिरक्षा उत्पन्न करता है और शरीर की वृद्धि मे सहायक होता है। यह कुछ ऐरोमेटिक अमीनो-अम्लों (aromatic amino-acids) के उपापचयन के लिए आवश्यक है।

शरीर में Vitamin C की कमी होने पर **स्कर्वी** (scurvy) नामक रोग हो जाता है जिसके फलस्वरूप मसूड़े सूजकर लाल हो जाते हैं और इनमें से खून बहने लगता है। त्वचा, म्युकस झिल्लियों तथा पेशियों, आदि से रुधिर-स्राव होने लगता है। अस्थियाँ लचीली न रहकर कड़ी हो जाती हैं। यह एड्रिनोकॉर्टिकल कार्य (adrenocortical function) के लिए आवश्यक है।

प्रश्न 9. मानव शरीर में जल में घुलनशील विटामिन्स की भूमिका का उल्लेख करिये।

Explain the role of water-soluble Vitamins in the mammalian body.

(*Baroda 1965*)

(*iv*) **हीमो-कोरियल** (Haemo-chorial)—इसमें गर्भाशय की एपिथीलियम, संयोजी ऊतक तथा एन्डोथीलियम रुधिर केशिकाएँ क्षतिग्रस्त हो जाती है जिसके फलस्वरूप भ्रूण की कोरिग्रोनिक एपिथीलियम मातृ रुधिर के सीधे सम्पर्क मे ग्रा जाती है तथा रुधिर ग्रकुरो के स्थूलित ट्रोफोब्लास्ट मे बनी लेकुनी (lacunae) को संवाहित करता है। उदाहरण—**मनुष्य**।

(*vi*) **हीमोएण्डोथीलियल** (Haemo-endothelial)—इस प्रकार के प्लैसेन्टा में गर्भाशय की एपिथीलियम, गर्भाशय का संयोजी ऊतक, मातृ रुधिर केशिकाग्रों की एण्डोथीलियम तथा भ्रूण की ट्रोफोब्लास्टिक एपिथीलियम क्षतिग्रस्त हो जाती है जिसके फलस्वरूप भ्रूण केशिकाएँ मातृ रुधिर मे स्वतन्त्रतापूर्वक पड़ी रहती है। उदाहरण—**शशक**।

3. कॉण्ट्रा-डेसिडुएट (Contra-deciduate)—इस प्रकार के प्लैसेण्टा में भ्रूण ग्रंकुरों एवम् गर्भाशय की क्रिप्ट्स मे इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होता है कि जन्म के समय ऐलेण्टोइक प्लैसेन्टा का कुछ भाग पीछे रह जाता है तथा गर्भाशय की दीवारों द्वारा ग्रवशोपित कर लिया जाता है। उदाहरण—**मोल** (Moles) तथा **बेण्डीकूट** (Bandicoots)।

3
टिप्पणियाँ
(Short Notes)

1. ऐलेण्टॉयस (Allantois) (*Raj. 1962 ; Agra 64 ; Nagpur 69*)

प्रश्न 3 देखिये ।

2. एम्निओन (Amnion) (*Gorakhpur 1966, 68*)

कृपया प्रश्न 3 देखिये ।

3. ब्लास्टोपोर (Blastopore)

(*Agra 1959, 66 ; Vikram 67 ; B.H.U. 69*)

प्रत्येक कॉर्डेट का अण्डा भ्रूणीय वर्धन के समय वारम्वार विभाजनों के फलस्वरूप एक वहुकोशीय किन्तु एकस्तरीय रचना बनाता है जिसे **ब्लास्टूला अवस्था** (blastula stage) कहते हैं । इसके अन्दर ब्लास्टोसील नामक गुहा होती है जिसकी छत कोशिकाओ की एक परत की बनी होती है । अन्तर्गमन के फलस्वरूप एक-स्तरीय ब्लास्टूला द्वि-स्तरीय गैस्ट्रूला मे परिवर्तित हो जाता है । आंत्रकन्दरा के निर्माण के कारण अव यह प्यालेनुमा हो जाता है । गुहा एक चौड़े मुख द्वारा बाहर को खुलती है जो धीरे-धीरे सँकरा होता जाता है। इस छिद्र को **ब्लास्टोपोर** (blastopore) कहते है । मेढक मे ब्लास्टोपोर एक गोल छिद्र के समान दिखाई देता है जिसमे से सफेद मैक्रोमीयर्स बाहर झाँकते हुए दिखाई देते हैं । जन्तुओ के कुछ समूहों मे ब्लास्टोपोर प्रौढ मे गुदा-द्वार के रूप मे बना रहता है किन्तु अन्य समूहो मे यह न्यूरल नाल के साथ सम्बन्ध बनाकर न्युरेन्ट्रिक नाल (neurenteric canal) बनाता है जो वाद मे लुप्त हो जाती है ।

BEGINNING OF GASTRULATION

GASTRULA UNDER FORMATION
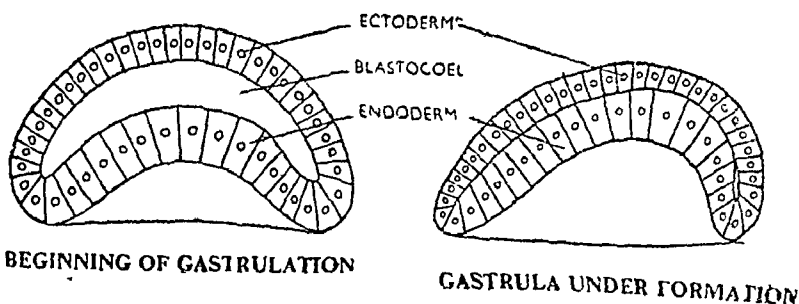
चित्र २५. ब्लास्टोपोर को निरूपित करते हुए गैस्ट्रूला की अनुप्रस्थ काट

ब्लास्टोपोर की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी विन्दु पर माइक्रोमीयर्स का अन्तर्गमन होता है जिससे आंत्रकन्दरा नामक गुहा बनती है तथा इसी स्थान से भ्रूण-कोशिकाओ का भिन्नन आरम्भ होता है। यह भ्रूण का मध्य अक्ष बनाता है ।

4. विदलन या क्लीवेज (Cleavage) *(Bombay 1965)*

कृपया प्रथम भाग का प्रश्न 1 देखिये।

5. कोरियो-ऐलेण्टोइक प्लैसेण्टा (Chorio-allantoic placenta) *(Indore 1965)*

कृपया प्रश्न 10 देखिये।

6. भ्रूण कलाएँ एवम् उनके कार्य (Foetal Membranes and their Functions) *(Raj. 1961, 64)*

कृपया प्रश्न 9 देखिये।

7. मेंढक में गैस्ट्रूलेशन (Gastrulation in Frog) *(Gorakhpur 1960 ; Punjab 65)*

गैस्ट्रूलेशन वह क्रिया है जिसमें भावी क्षेत्रों की कोशिकाएँ स्थानान्तरण तथा पुनर्विन्यास की क्रिया के फलस्वरूप अपनी निश्चित स्थिति पर पहुँचती हैं। परिणामस्वरूप एकस्तरीय ब्लास्टूला प्रारम्भ में द्विस्तरीय तथा बाद में त्रिस्तरीय गैस्ट्रूला में परिवर्तित हो जाता है। ये परिवर्तन स्वनिर्धारित तथा एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। ये क्रियाएँ निम्नलिखित हैं :—

1. एपिबोली (Epiboly)—इसमें ब्लास्टुला के पृष्ठतल पर स्थित माइक्रोमीयर्स तेजी से विभाजित होकर मैक्रोमीयर्स के ऊपर फैलना प्रारम्भ कर देते हैं और एक छोटे-से क्षेत्र को छोड़कर इन्हें चारों ओर से आच्छादित कर लेते हैं। इस स्थान को **योक-प्लग** (yolk-plug) कहते हैं।

2. अन्तर्गमन (Invagination)—पृष्ठतल पर भावी नोटोकॉर्ड के पिछले किनारे के कुछ पीछे तथा ग्रे क्रिसेन्ट के निचले किनारे के साथ माइक्रोमीयर्स तथा मैक्रोमीयर्स बीच में अन्दर की ओर बढ़कर एक अर्धचन्द्राकार खाँच बनाते हैं। यह **आंत्र-कन्दरा** की प्रारम्भिक अवस्था को प्रदर्शित करती है। इसकी पृष्ठ दीवार अन्तर्गमन करती हुई माइक्रोमीयर्स की तथा निचली सतह बड़े मैक्रोमीयर्स (एण्डोडर्म कोशिकाओं) की बनी होती है। आंत्र-कन्दरा (archenteron) के द्वार को **ब्लास्टोपोर** (blastopore) कहते हैं। इसका ऊपरी ओष्ठ अग्र कॉडल माइक्रोमीयर्स या एक्टोडर्म कोशिकाओं का बना होता है। बाद में अन्तर्गमित क्षेत्र पार्श्व से बढ़कर ब्लास्टोपोर के पार्श्व ओष्ठों का निर्माण करता है।

3. अन्तर्वलन (Involution)—प्राणी ध्रुव की माइक्रोमीयर्स कोशिकाओं का ब्लास्टोपोर के ओष्ठों पर से अन्दर की ओर स्थानान्तरण जारी रहता है। अन्तर्गमित माइक्रोमीयर्स ब्लास्टोसील की ओर बढ़ती जाती है जिससे यह गुहा छोटी होती जाती है तथा आंत्र-कन्दरा वृद्धि करती जाती है। ब्लास्टोपोर के दोनों पार्श्व ओष्ठ अधरतल पर मिलकर प्रतिपृष्ठ ओष्ठ का निर्माण करते हैं। अतः अब ब्लास्टोपोर एक पूर्ण गोलाकार छल्ले का रूप धारण कर लेता है। ओष्ठों के संकुचन पर इसका क्षेत्र छोटा होता जाता है और अन्त में यह एक छोटे-से छिद्र के रूप में रह जाता है। साथ ही यह पश्च सतह की ओर घूम जाता है।

4. प्रतिपृष्ठ अवसरण (Ventral divergence or rotation)—एपिबोली के फलस्वरूप माइक्रोमीयर्स वर्धी-ध्रुव की ओर स्थानान्तरित होती हैं और इस प्रकार ब्लास्टोपोर को भी वर्धी-ध्रुव की ओर धकेलती जाती हैं। यह भ्रूण का पश्च सिरा होता है। इन परिवर्तनों के साथ ही कोशिकाएँ मध्य-प्रतिपृष्ठ रेखा के दोनों ओर

पृष्ठ सतह की ओर बढ़ती है जिसमे गेस्ट्रूला क्षैतिज अक्ष पर घूम जाता है।

5. अभिसरण (Convergence)—अभिसरण मे कोशिकाएँ स्थानान्तरित होकर एक निश्चित क्षेत्र पर एकत्रित हो जाती है। मीजोडर्मल कोशिकाओ की गति तथा ब्लाटोपोर का सकुचन अभिसरण क्रिया प्रदर्शित करते हैं। न्यूरोएक्टोडर्म (neuro-ectoderm) पृष्ठ सतह पर पहुँचकर मेड्यूलरी फोल्ड (medullary fold) बनाती है।

उपर्युक्त क्रियाओ के सम्मिलित प्रभाव से गैस्ट्रूला का निर्माण पूर्ण होता है। इसका बाहरी स्तर **एक्टोडर्म** तथा अन्दर का स्तर **मीजो-एक्टोडर्म** का बना होता है।

NOTOCHORD
ARCHENTERON
NEURAL PLATE
ANT
POST.
BLASTOCOEL
ENDODERM
EPIDERMIS
MESODERM

NEURAL PLATE
NOTOCHORD
ARCHENTERON
ANT
POST
ENDODERM
BLASTOCOEL
EPIDERMIS
MESODERM
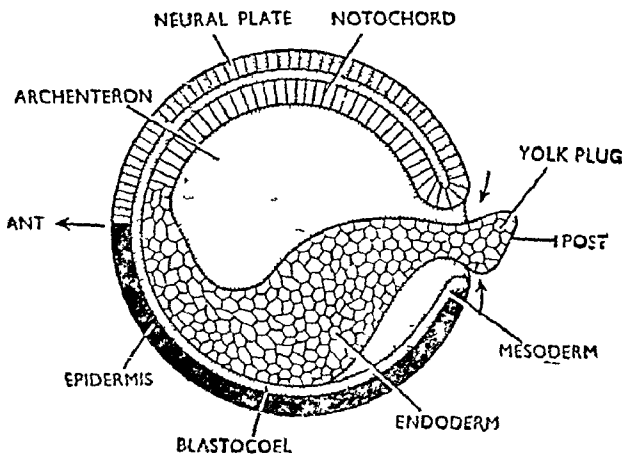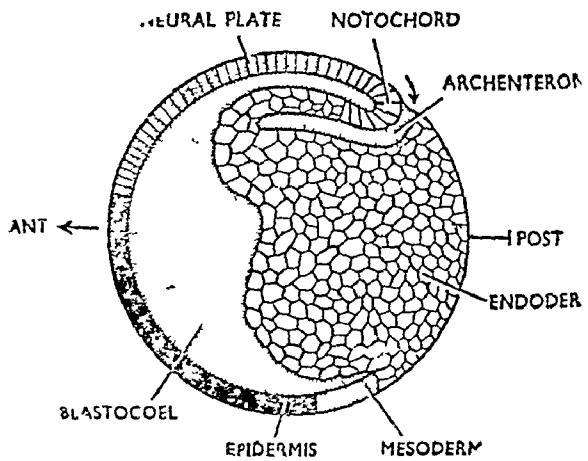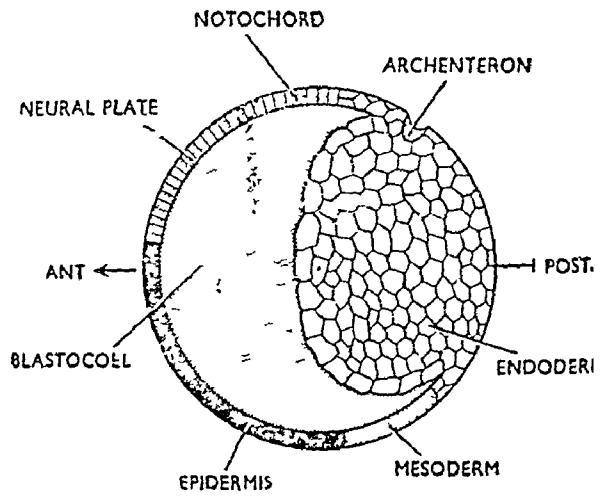
चित्र २६ मेढक के भ्रूण मे गैस्ट्रुलेशन (gastrulation in frog's embryo)

8. जर्मिनल डिस्क (Germinal Disc) *(Gorakhpur 1964)*

कृपया प्रश्न 1 देखिये ।

9. हेनसन नोड (Hensen's Node) *(Indore 1967)*

कृपया प्रश्न 2 देखिये ।

10. मेड्युलरी प्लेट (Medullary Plate) *(Agra 1964 ; Vikram 64)*

सभी क्रेनिएट्स में मस्तिष्क एवम् स्पाइनल कॉर्ड या रीढ़रज्जु भ्रूण के पृष्ठतल पर स्थित एक्टोडर्म के एक विशिष्ट क्षेत्र से बनते हैं। विशिष्ट कोशिकाओं के इस क्षेत्र को **न्यूरल प्लेट** (neural plate) या **मेड्युलरी प्लेट** (medullary plate) कहते है। कोशिकाओं की विभेदी वृद्धि तथा इनके स्थानान्तरण के फलस्वरूप मेड्युलरी प्लेट के सिरे एक जोड़ी पुटकों में निकल आते हे और न्यूरल फोल्ड कहलाते हैं। ये अन्दर की ओर वृद्धि करते है और मध्यरेखा पर मिलकर न्यूरल नाल का निर्माण पूर्ण करते हैं जो अब सिकुड़कर एक्टोडर्म से अलग हो जाती है और एक्टोडर्म की सतह पूर्ण हो जाती है।
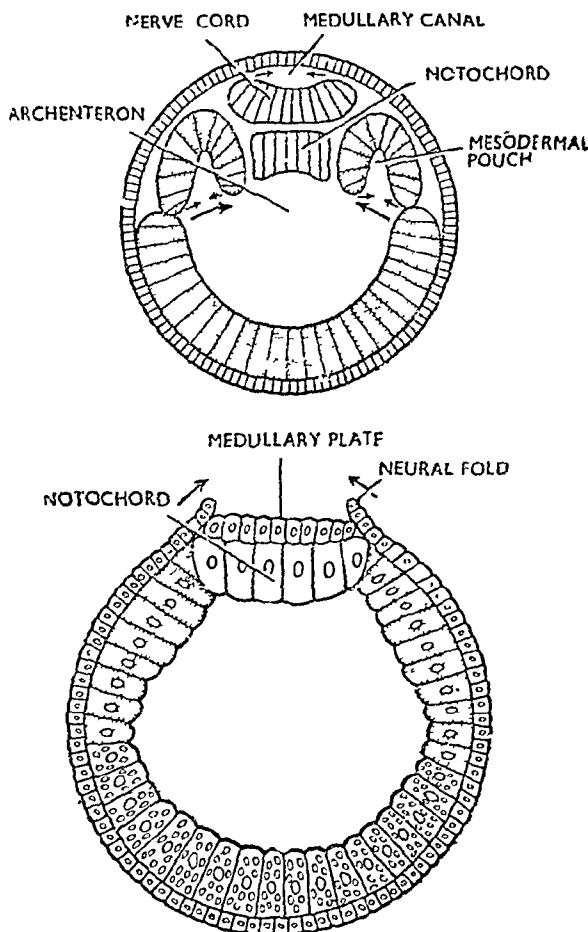
चित्र २८. मेड्युलरी प्लेट (medullary plate)

11. आदि रेखा (Primitive Streak)

(Agra 1961, 63 ; Gorakhpur 61 ; Vikram 68)

कृपया प्रश्न 2 देखिये ।

12. मुर्गी के अण्डे की संरचना (Structure of Hen's Egg) *(B.H.U. 1966)*

कृपया प्रश्न 1 व चित्र 1 देखिये ।

13. योक सैक प्लेसैण्टा (Yolk Sac Placenta) *(Karnatak 1966)*

कृपया प्रश्न 10 देखिये ।

कोशिका जीव-विज्ञान
(CYTOLOGY)

अध्याय 1

सूक्ष्मदर्शिकी या माइक्रोस्कोपी (Microscopy)

प्रश्न 1. कोशिकाओं एवम् उनके घटकों के अध्ययन के लिए प्रयोग में आने वाले विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मदर्शियों का संक्षेप में वर्णन करिये। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से किस प्रकार भिन्न होता है ?

Give a brief account of different kinds of microscopes used in studying cells and cell constituents. How does an electron microscope differ from a light mircoscope ? (*Delhi 1972*)

कोशिकाएँ जीवित संरचनाएँ या जीवन की इकाई हैं जिनमें से अधिकांश इतने सूक्ष्म आकार की होती हैं कि इनको सामान्य दृष्टि द्वारा नहीं देखा जा सकता। कोशिका एवं उसके विभिन्न घटकों के अध्ययन के लिए कितने ही प्रकार के प्रकाशीय उपकरणों (optical instruments) का विकास किया जा चुका है। ये उपकरण निम्न प्रकार है :—

1. प्रकाश सूक्ष्मदर्शी (Light Microscope)
2. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (Electron Microscope)
3. X-रे सूक्ष्मदर्शी (X-ray Microscope)
4. प्रावस्था वैषम्य-सूक्ष्मदर्शी (Phase Contrast Microscope)
5. व्यतिकरण सूक्ष्मदर्शी (Interference Microscope)
6. ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी (Polarisation Microscope)
7. अल्ट्रावायलेट तथा प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शी (Ultraviolet and Fluorescent Microscope)

1. प्रकाश सूक्ष्मदर्शी (Light microscope)—यह सरलतम रचना वाला सूक्ष्मदर्शी है जो सामान्य रूप से प्रयोग में लाया जाता है। सभी जीव-वैज्ञानिक इस सरलतम रचना वाले सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग करके ही अध्ययन आरम्भ करते है। प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में तीन लैंस प्रणालियाँ होती हैं :—

1. कन्डेन्सर (Condenser)
2. अभिदृश्यक लैंस (Objective lens)
3. नेत्रिका लैंस (Eyepiece lens)

1. **कन्डेन्सर** (Condenser)—यह प्राकृतिक या लैम्प के प्रकाश को संकलित करके स्पेसिमेन पर फोकस करता है।

2. **अभिदृश्यक लैंस** (Objective lens)—यह प्रतिविम्ब वनाकर इसे आवर्धित करता है।

3. **नेत्रिका लैंस** (Ocular lens or eyepiece lens)—यह प्रतिविम्ब का

पुनः प्रतिबिम्ब बनाकर प्रतिबिम्ब को और अधिक आवर्धित करता है। इसमें प्रयोग मे आने वाले लैंस अवर्णी या एक्रोमेटिक (achromatic), कन्डेन्सर अविपथी लैंस (aplanatic lens) तथा नेत्रिका लैंस (ocular or eyepiece lens) प्रतिकारी होते है। प्रकाश सूक्ष्मदर्शी की विभेदन-क्षमता सीमित होती है और इसके द्वारा किसी वस्तु का 450 गुणा आवर्धन प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु oil immersion द्वारा ·25μ तक की वस्तुओं को देखना सम्भव है।

2. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (Electron microscope)—इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की आवर्धन-क्षमता (magnification) बहुत अधिक होती है। इसके द्वारा हम अतिसूक्ष्म जैविक रचनाओं (biological ultra-structure) का प्रत्यक्ष अध्ययन कर सकते हैं। इसकी आवर्धन-क्षमता इतनी अधिक होती है कि इसके द्वारा कोशिका के सूक्ष्मतम अंगकों तक के चित्र-लेखन की समर्थता होती है। इसमें प्रदीपन कारक (illuminating agent) प्रकाश न होकर छोटी तरंगदैर्घ्य वाले इलेक्ट्रॉन होते हैं।

वैसे तो इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की रचना काफी जटिल होती है किंतु प्रतिबिम्ब बनाने वाले भाग प्रकाश सूक्ष्मदर्शी की अपेक्षा अधिक जटिल नही होते। क्योंकि इलेक्ट्रॉन्स केवल निर्वात (vacuum) में ही लम्बी दूरी तय कर सकते हैं अतः इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी को निर्वात में बन्द रखा जाता है।

इलेक्ट्रॉन के स्रोत के रूप में महीन सूई के आकार के कैथोड (cathode) को प्रयोग में लाया जाता है। इससे इलेक्ट्रॉन्स की एक पतली धारा निकलती है। Electromagnetic condenser lens द्वारा धारा को संग्रहीत करके स्पेसिमेन पर फोकस किया जाता है। स्पेसिमेन में से पारित होने के पश्चात् इलेक्ट्रॉन्स को विद्युत्-चुम्बकीय **अभिदृश्यक लैंस** (objective lens) द्वारा पुनः संग्रहीत कर लिया जाता है जो अब एक आवर्धित प्रतिबिम्ब बनाता है। प्रतिबिम्ब (image) का और अधिक आवर्धन अब विद्युत्-चुम्बकीय **प्रक्षेपित्र लैंस** (projector lens) द्वारा ही सम्भव होता है जो कि प्रतिबिम्ब को **प्रदीप्तिशील अन्वेषण पर्दे** (fluorescent viewing screen) या **फोटोग्राफिक प्लेट** (photographic plate) पर प्रक्षिप्त करता है। प्रक्षेपित्र लैंस (projector lens) में धारा का समायोजन करके प्रतिबिम्ब को फोकस कर लिया जाता है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा किसी भी स्पेसिमेन के वास्तविक आकार से 100,000 गुना बड़ा आवर्धन प्राप्त किया जा सकता है।

यद्यपि इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार के फलस्वरूप कोशिकाओं की विभिन्न संरचनाओं के अध्ययन में अत्यधिक योगदान मिला है किन्तु इनके द्वारा अध्ययन करने में दो समस्याएँ सामने आती है—(*i*) इलेक्ट्रॉन के निर्वात (vacuum) प्रणाली में से पारित होने के कारण अध्ययन सामग्री का पूर्णतया शुष्क होना आवश्यक है, तथा (*ii*) इलेक्ट्रॉन्स की दुर्बल वेधन क्षमता के कारण अध्ययन सामग्री अत्यधिक महीन (0·1μ या इससे पतली) होनी चाहिये।

3. X-रे सूक्ष्मदर्शी (X-ray microscope)—यद्यपि X-रे सूक्ष्मदर्शी इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के सिद्धान्त पर ही कार्य करता है किन्तु यह इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। इसमे प्रदीप्ति के लिए X-रे तरंगों का उपयोग किया जाता है। X-रे तरंगों की तरंग-दैर्घ्य अति छोटी किन्तु इनकी वेधन-क्षमता (penetration power) बहुत अधिक होती है। अतः इसके द्वारा अपेक्षाकृत मोटे सेक्शनों को जलीय वाष्प (water vapour) या गैस के पर्यावरण मे रखकर सरलतापूर्वक अध्ययन करना सम्भव है। इसके अतिरिक्त X-रे तरंगों में विद्युत् चार्ज (electric charge) के

अभाव के कारण इनको सरल परावर्ती दर्पणों (simple reflecting mirrors) द्वारा भी फोकस किया, जा सकता है ।
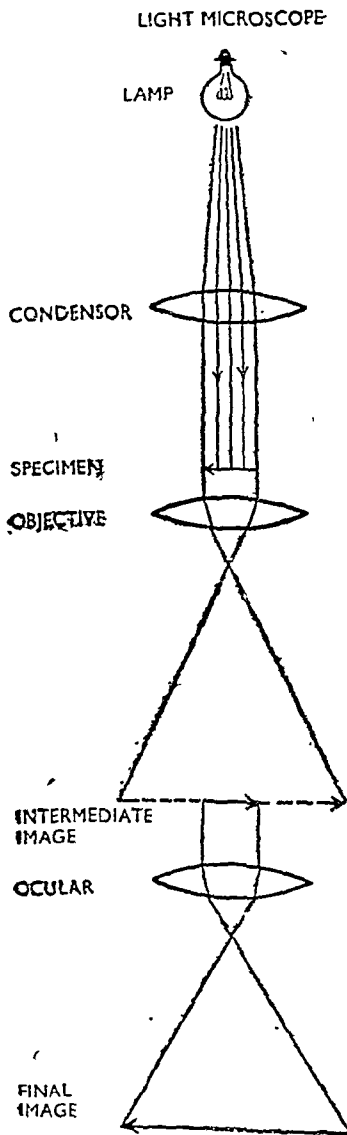
चित्र 1·1. प्रकाश सूक्ष्मदर्शी की प्रकाशीय प्रणाली (Optical system of light microscope)
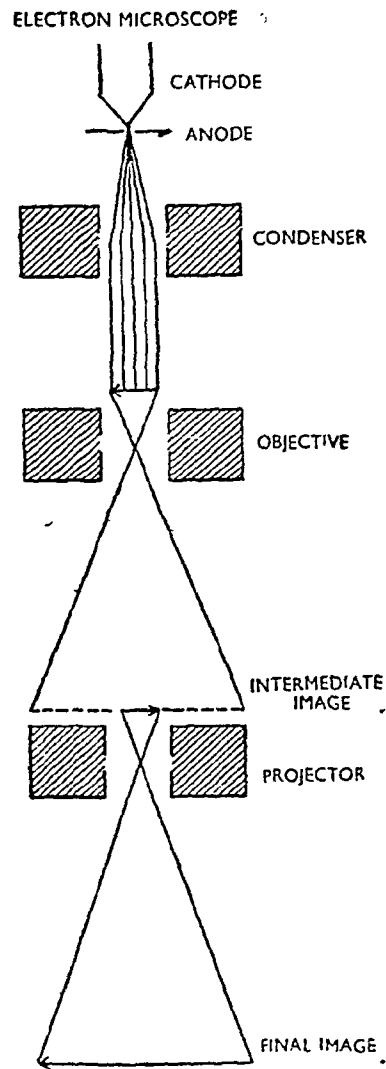
चित्र 1·2. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की लैंस प्रणाली (Lens system of electron microscope)

X-रे सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन करने के लिए रचना को फोटोग्राफिक प्लेट तथा X-रे धारा के स्रोत के बीच रखकर फिल्म पर रचना का प्रतिबिम्ब लिया जाता है। X-रे तरंगों की एक पतली धारा स्पेसिमेन या रचना में से पारित की जाती है

जिसका विवर्तन (diffraction) फोटोग्राफिक प्लेट पर अंकित हो जाता है। विवर्तन के प्रतिरूप संकेन्द्रीय वलयों या धब्बों के रूप में प्रतीत होते हैं जो स्पेसीमेन या रचना की विभिन्न संरचनाओं या बिन्दुओं के बीच की दूरी ज्ञात करने में सहायक होते है।

X-रे सूक्ष्मदर्शी किसी वस्तु के शुष्क पदार्थ (dry matter) के परिमाणात्मक निर्धारण तथा क्रिस्टलीय संरचनाओ के विश्लेषण के उपयोग में लाया जाता है। X-रे सूक्ष्मदर्शी की उपयोगिता क्रिस्टलीय संरचनाओं या अणुओं तक ही सीमित है तथा इसके द्वारा केवल परिरक्षित सामग्री का ही अध्ययन किया जा सकता है।

4. प्रावस्था-वैषम्य सूक्ष्मदर्शी (Phase contrast microscope)—प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा कोशिका समाग (homogeneous) प्रतीत होती है। अतः उसके द्वारा अध्ययन करने के लिए कोशिका को अभिरंजित करना अति आवश्यक है। अभिरंजन से पूर्व स्थिरीकरण (fixation), निर्जलीकरण (dehydration), अन्तःस्थापन (embedding) एवम् सेक्शन काटना आवश्यक है। इन प्रक्रियाओं के अन्तर्गत कोशिका में कुछ संरचनात्मक एवम् रासायनिक परिवर्तन आ जाते है। किन्तु **प्रावस्था-वैषम्य एवम् व्यतिकरण सूक्ष्मदर्शिकी** (phase contrast and interference microscopy) ने सजीव कोशिका के अध्ययन को सुलभ बना दिया है। अतः इस सूक्ष्मदर्शी द्वारा सजीव कोशिकाओं का अध्ययन सम्भव हो सका है। यह प्रावस्था की विपमताओं (phase differences) को दीप्ति की विविधताओं (variations in brightness) में परिवर्तित कर देता है और कोशिकाओं को घूसर (grey) रंग की विभिन्न कान्तियों में देखा जा सकता है।

चित्र 1·3. प्रावस्था-वैषम्य सूक्ष्मदर्शी (Phase contrast microscope)

प्रावस्था-वैषम्य सूक्ष्मदर्शी प्रकाश सूक्ष्मदर्शी का सरल रूपा-

न्तरण है। इसमें सूक्ष्मदर्शी के अभिदृश्यक (objective) में वलयकार प्रावस्था प्लेट (annular phase plate) तथा कन्डेन्सर में वलयाकार डायाफ्राम (annular diaphragm) लगा दिया जाता है। जब प्रकाश को लैंसों में से प्रवाहित किया जाता है तो कुछ किरणें तो सीधी प्रवाहित हो जाती हैं तथा शेष किरणें पार्श्विक रूप से विवर्तित (diffracted) हो जाती हैं। इस प्रकार प्रकाश की विवर्तित किरणें प्रत्यक्ष प्रकाश से अलग होकर तीक्ष्ण वैषम्य वाला प्रतिविम्ब बनाती हैं। प्रावस्था में होने वाला यह अन्तर व्यतिकरणों के फलस्वरूप होता है।
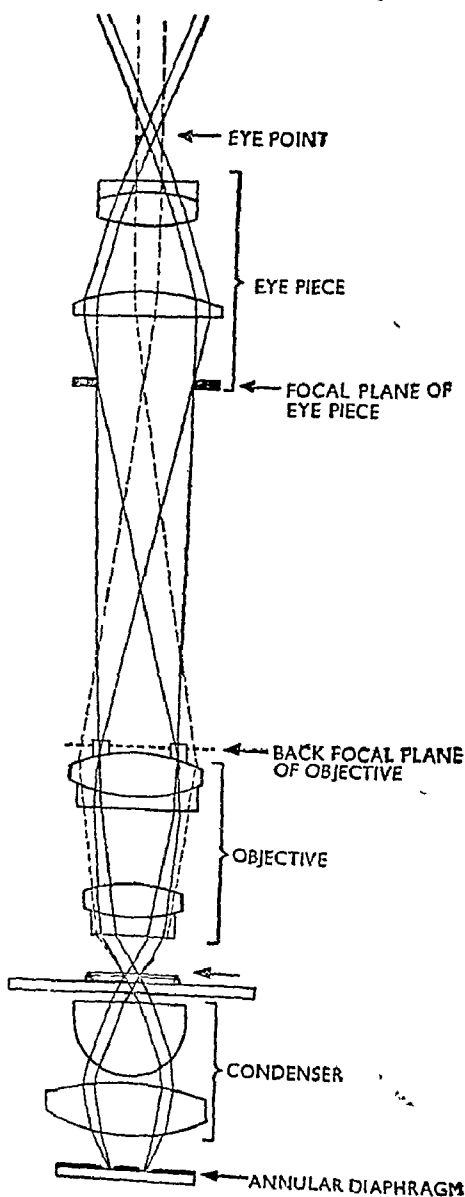
प्रावस्था-वैपम्य सूमक्ष्दर्शी द्वारा जीवित कोशिकाओं एवम् ऊतकों का अध्ययन किया जाता है; यह कोशिकीय माध्यम में संवर्धित कोशिकाओं के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी है तथा इसके द्वारा जीवित कोशिकाओं पर विभिन्न रासायनिक एवम् भौतिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्थायीकरण एवम् अभिरंजन की विभिन्न विधियों द्वारा प्रेरित संरचनात्मक परिवर्तनों के निरीक्षण में भी यह उपयोग में लाया जाता है।

5. व्यतिकरण सूक्ष्मदर्शी (Interference microscope)—यह भी प्रावस्था-वैपम्य सूक्ष्मदर्शी के ही नियम पर कार्य करता है किन्तु इसके अनुप्रयोग एवम् लाभ अधिक विस्तृत हैं। व्यतिकरण सूक्ष्मदर्शी द्वारा विभिन्न कोशिकीय अवयवों के प्रकाशीय प्रावस्था कलान्तर तथा अपवर्तनांक में होने वाले सूक्ष्म किन्तु अविरत परिवर्तनों को ज्ञात करना सम्भव है। इसके अतिरिक्त यह प्रावस्था की विविधताओं को इस प्रकार के स्पष्ट वर्णो में परिवर्तित कर देता है कि जीवित कोशिका एक अभिरंजित रचना के समान प्रतीत होने लगती है।

व्यतिकरण सूक्ष्मदर्शी में एक ही स्रोत से प्रवाहित होने वाला प्रकाश दो धाराओं में विभाजित हो जाता है। इनमें से एक धारा अभिदृश्यक (objective) में से पारित होती है किन्तु दूसरी धारा लक्ष्य (object) के वाहर से होती हुई निकल जाती है। वाद में दोनों धाराएँ एक-दूसरे से व्यतिकृत (interfere) हो जाती हैं।

व्यतिकरण सूक्ष्मदर्शी द्वारा किसी रचना या लक्ष्य की मोटाई ज्ञात की जा सकती है। ज्ञात वर्तनांक वाले दो माध्यमों के प्रकाशीय प्रावस्था अन्तरों की अनुक्रमिक माप द्वारा शुष्क पदार्थ एवं जल की मात्रा का मापन किया जाता है और कोशिका में लिपिड, न्युक्लीक अम्ल एवं प्रोटीन के अंश की मात्रा को निर्धारित किया जा सकता है।

6. ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी (Polarisation microscope)—कुछ ऊतकों एवम् कोशिकाओं के घटक ध्रुवण प्रकाश (polarized light) में अलग-अलग विशेषताएँ प्रदर्शित करते हैं। घटकों के इसी विभेदात्मक व्यवहार को आधार मानकर ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी का निर्माण किया गया है।

प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में ध्रुवण उपतन्त्र लगाने पर ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी वन जाता है। ध्रुवण उपतन्त्र के अन्तर्गत **ध्रुवण** या **पोलेराइजर** (polariser) तथा **विश्लेषक** या **एनेलाइजर** (analyzer) होते हैं। एनेलाइजर तथा पोलेराइजर दोनों ही ध्रुवित फिल्म (polarized film) की चादर अथवा कैल्साइट के वने निकोल प्रिज्म (nicol prism of calcite) के वने होते हैं। ध्रुवक उपमंच कन्डेन्सर (substage condenser) के पीछे लगाया जाता है जिससे ध्रुवण प्रकाश स्पेसिमेन पर केन्द्रित होता है। विश्लेषक को अभिदृश्यक लैंस के ऊपर रखा जाता है तथा इसको सरलता

से घुमाया जा सकता है। स्पेसिमेन को विशेष घूमने वाले मंच पर घुमाया जा सकता है तथा जब वह विश्लेषक तथा ध्रुवक के साथ $\pm 45°$ का कोण बनाता है तो इस प्रकार प्राप्त द्विग्रपवर्तिता (birefringence) अत्यन्त चमकीली होती है। द्विग्रपवर्तिता कई प्रकार की होती है, जैसे **क्रिस्टलीय द्विग्रपवर्तिता** (crystalline birefringence), **आकारिक द्विग्रपवर्तिता** (form birefringence) तथा **विकृति द्विग्रपवर्तिता** (strain birefringence)।

ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी आणविक अथवा मिसेली अभिविन्यास (molecular or micellar orientation) को पहचानने तथा मापने में, विभाजन के समय कोशिकाओं मे माइटोटिक तर्कु (mitotic spindle) एवं अन्य जैविक तन्तुओं के अध्ययन मे तथा विभिन्न पदार्थो की आकृति-निर्धारण के उपयोग में लाया जाता है।

7. अल्ट्रावायलेट तथा प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शी (Ultraviolet and fluorescence microscope)—अल्ट्रावायलेट तथा प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शी प्रकाश की किरणों को छोटी तरंग-दैर्घ्य (wavelength) वाली किरणों में परिवर्तित कर देते हैं जिससे उनकी विभेदन क्षमता (resolving power) उतनी ही अधिक बढ़ जाती है। कम *तरंग-दैर्घ्य वाला प्रकाश प्राप्त करने के लिए काँच के लैंस के स्थान पर किसी अन्य* पदार्थ का प्रयोग किया जाता है जिसमें से छोटे तरंग-दैर्घ्य वाली प्रकाश की किरणें पारित हो जाती हैं। संगलित स्फटिक काँच (fused quartz) इस कार्य के लिए सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है किन्तु फ्लोराइट (flourite) अथवा लिथियम फ्लोराइड भी उपयोग में लाये जा सकते है।

अल्ट्रावायलेट सूक्ष्मदर्शी के अनेक रूपान्तरण कोशिका में पाये जाने वाले पदार्थो के परिमाणात्मक आकलन के काम में लाये जाते हैं, जैसे जीवित या स्थायीकृत कोशिका मे न्युक्लीओप्रोटीन्स की मात्रा का आकलन रूपान्तरित अल्ट्रावायलेट सूक्ष्मदर्शी द्वारा किया जाता है।

उपर्युक्त सूक्ष्मदर्शियों के अतिरिक्त **अतिसूक्ष्मदर्शी** (ultramicroscope) तथा **स्पेक्ट्रमी प्रकाशमापी** (spectrophotometer) सूक्ष्मदर्शियों के अन्य उदाहरण हैं।

प्रकाश सूक्ष्मदर्शी एवम् इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में अन्तर
(Differences between Light Microscope and Electron Microscope)

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी प्रकाश सूक्ष्मदर्शी के सिद्धान्त पर कार्य करता है और इसमे प्रदीपनकारक प्रकाश न होकर छोटी तरग-दैर्घ्य वाले इलेक्ट्रॉन्स होते है जो किसी कैथोड से इलेक्ट्रॉन्स की धारा के रूप मे प्रवाहित किये जाते हैं। प्रकाश सूक्ष्मदर्शी तथा इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी मे निम्नलिखित अन्तर होते है :—

1. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में इलेक्ट्रॉन्स के स्रोत के रूप में तन्तु या महीन सूई के आकार के कैथोड को प्रयोग में लाया जाता है।

2. इलेक्ट्रॉन्स की धारा को स्पेसिमेन पर संग्रहित एवम् फोकस करने के लिए इसमें एक (electro-magnetic condenser lens) होता है जबकि प्रकाश सूक्ष्मदर्शी मे concave mirror या biconvex lens प्रकाश कन्डेन्सर (*light condenser*) का कार्य करता है।

3. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में अभिदृश्यक लैंस (objective lens) electromagnetic substance का बना होता है जबकि प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में सरल achromatic lens होता है।

4. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में प्रतिबिम्ब प्रदीप्तिशील अन्वेषण पर्दे (fluorescent viewing screen) या फोटोग्राफिक प्लेट (photographic plate) पर बनता है।

5. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में प्रदीपनकारक इलेक्ट्रॉन की धारा होती है जबकि प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में यह कार्य प्रकाश द्वारा पूर्ण होता है।

6. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में प्रतिबिम्ब मुख्य रूप से इलेक्ट्रॉन्स के प्रकीर्णन के फलस्वरूप बनता है जबकि प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में प्रतिबिम्ब का निर्माण स्पेसिमेन के विभिन्न भागों द्वारा प्रकाश के अवशोषण की मात्रा पर निर्भर करता है।

7. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा निर्मित प्रतिबिम्ब प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा निर्मित प्रतिबिम्ब के समान न होकर यह स्पेसिमेन में विभिन्न परमाणुओं की स्थिति को प्रदर्शित करता है जो संकेन्द्रीय वलयों या धब्बों के रूप में विवर्तित हो जाते हैं।

अध्याय 2

जीवद्रव्य
(Protoplasm)

प्रश्न 2. जीवद्रव्य क्या है ? इसकी भौतिक प्रतीति एवं रासायनिक संगठन का वर्णन कीजिये।

What is protoplasm ? Describe its physical and chemical nature. *(Poona 1965 ; Jiwaji 72)*

जीव-द्रव्य की संरचना, संगठन एवं गुणों का उल्लेख कीजिये।

Give an account of the structure, ·composition and properties of protoplasm. *(Vikram 1968)*

जीव-द्रव्य को सर्वप्रथम कॉर्टाई (Corti) ने सन् 1772 में देखा था। **पर्कंजी** (Purkinji) ने सन् 1840 में तथा **वोन मोल** (Von Mohl) ने सन् 1846 में इसको जीवद्रव्य (Protoplasm : *protos*, primitive ; *plasma*, substance) का नाम दिया। यह रंगहीन, अर्ध-द्रवीय (semiliquid), श्लेष्मीय (gelatinous) पदार्थ है जो जीवधारियों (living beings) की कोशिकाओं में पाया जाता है। **थॉमस हक्सले** (Thomas Huxley) ने सन् 1868 मे इसे जीवधारियों का प्रारम्भिक तथा आधारभूत पदार्थ माना। अतः यह जीवन का भौतिक आधार माना जाता है क्योंकि जीवधारियों की प्रक्रियाएँ स्वयं जीवद्रव्य की विशेषताएँ हैं।

संगठन (Constitution)

भौतिक प्रतीति (Physical Appearance)

भौतिक दृष्टिकोण से जीवद्रव्य लसलसा, अर्ध-तरल, रंगहीन, अर्ध या पूर्ण पारदर्शी व जैली के समान पदार्थ है। इसमें वहुत-सी छोटी-छोटी कणिकाएँ (granules), बूंद (droplets), रिक्तिकाएँ (vacuoles) तथा विभिन्न आकार की रचनाएँ पायी जाती हैं। कुछ वैज्ञानिको के अनुसार यह रिवर्सिबिल कोलॉयड (reversible colloid) या क्रिस्टेलोकोलॉयड (crystallo-colloid) भी कहा जाता है। अतः इसकी सघनता (consistency) वदलती रहती है। इस कारण यह **सोल** तथा **जैल** (sol and gel) दो अवस्थाओं मे पाया जाता है। पानी के सम्पर्क में आने पर जीवद्रव्य एक अर्ध-पारगम्य (semi-permeable) झिल्ली वना लेता है।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार, जीवद्रव्य कार्बनिक तथा अकार्वनिक यौगिकों तथा गैसों का पानी में घोल है। कार्वनिक पदार्थो (प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, इत्यादि) के अणु पानी में निलम्वित होकर कोलॉयडल घोल (colloidal solution) वनाते है। प्रोटीन के अणु इसके अन्दर निश्चित कतारे बनाये रहते है जो **माइसेलीज**

(micelles) कहलाती हैं। ये विभिन्न प्रकार से समायोजित होती हैं और उसी के अनुरूप जीवद्रव्य को दानेदार (granular), जालदार (reticular) अथवा कोष्ठित (alveolar) आकृति प्रदान करती हैं।

रासायनिक संगठन (Chemical Constitution)

जीवद्रव्य की रासायनिक रचना का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसमें 55% से अधिक पानी तथा 25% से कम यौगिक पदार्थ होते हैं। विभिन्न यौगिक सरलता के लिए दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—**कार्बनिक यौगिक** (organic compounds) तथा **अकार्बनिक यौगिक** (inorganic compounds)। ये 9 : 1 के अनुपात में पाये जाते हैं।

जीवद्रव्य में लगभग 34 तत्त्व मिलते हैं किन्तु लगभग 12 तत्त्व सदैव ही विद्यमान रहते हैं। ये 12 तत्त्व निम्नलिखित हैं :—

(1) ऑक्सीजन (Oxygen)	65·76%
(2) कार्बन (Carbon)	10·22%
(3) हाइड्रोजन (Hydrogen)	10%
(4) नाइट्रोजन (Nitrogen)	3%
(5) गन्धक (Sulphur)	2%
(6) फासफोरस (Phosphorus)	
(7) पोटाशियम (Potassium)	
(8) मैग्नीशियम (Magnesium)	
(9) सोडियम (Sodium)	
(10) कैल्शियम (Calcium)	
(11) आयरन (Iron)	
(12) क्लोरीन (Chlorine)	

इनके अतिरिक्त कुछ तत्त्व नाममात्र को पाये जाते हैं किन्तु उनकी उपस्थिति भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है जितनी किसी अन्य तत्त्व की।

I. कार्बनिक यौगिक (Organic Compounds)

1. प्रोटीन (Proteins)—प्रोटीन केवल जीवद्रव्य में पाये जाते हैं जो इसका ढाँचा (framework) बनाते हैं। ये कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन के यौगिक हैं। इसके अतिरिक्त प्रोटीन में फॉस्फोरस, सल्फर, मैग्नीशियम तथा आयरन भी थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। प्रोटीन के अणु पानी में कोलॉयडल घोल बनाते हैं। प्रोटीन का प्रत्येक अणु विभिन्न प्रकार के ऐमीनो अम्लों (amino-acids) के बहुत-से अणुओं के मिलने से बनता है। प्रोटीन अणु रासायनिक विघटन (chemical decomposition) के फलस्वरूप अम्लों में टूट जाते हैं। प्रोटीन तीन प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **सरल प्रोटीन** (Simple proteins)—ये प्रोटीन केवल ऐमीनो-अम्लों के बने होते हैं, जैसे एल्ब्युमिन तथा ग्लोब्युलिन (albumin and globulin)।

(*ii*) **संयुग्मी प्रोटीन्स** (Conjugated proteins)—ये वे साधारण प्रोटीन हैं जो और पदार्थों के साथ मिल जाते हैं। ये दूसरे पदार्थ या यौगिक **व्यतिरिक्त वर्ग** (prosthetic group) कहलाते हैं। न्यूक्लिओ-प्रोटीन्स संयुग्मी प्रोटीन हैं जिनमें प्रोटीन्स न्यूक्लीक अम्ल के साथ संयुग्मित हो गये हैं।

(*iii*) **व्युत्पन्न प्रोटीन्स** (Derived proteins)—व्युत्पन्न प्रोटीन जमे हुए या अल्प जल-विश्लेषित (coagulated or partly hydrolysed) प्रोटीन हैं, जैसे—**प्रोटीओसेज, पेप्टोन्स तथा पोलीपेप्टाइड्स** (proteoses, peptones and polypeptides)।

कोशिका की जैविक क्रियाओं के नियमन के लिए प्रोटीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। शरीर की अधिकतर रचनाएँ इन्हीं के द्वारा बनती हैं।

2. कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates)—ये कार्बन, ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन के यौगिक हैं जिनमें हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन 2 : 1 के अनुपात में पाये जाते हैं। कार्बोहाइड्रेट शर्करा (sugar) तथा स्टार्च (starch) के रूप में पाये जाते हैं। ये जलीय विश्लेषण (hydroylsis) कर ग्लूकोस (glucose) बनाते हैं। कार्बोहाइड्रेट मोनो-सैकराइड, डाइ-सैकराइड तथा पॉली-सैकराइड (mono, di and poly-saccharides) के रूप में मिलते हैं। रासायनिक विघटन पर कार्बोहाइड्रेट ऊष्मा व ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। केन्द्रक क्रोमेटिन अर्थात् न्युक्लीक अम्लों (nuclear chromatin) का मुख्य अंश पेण्टोज (pentose) नामक शर्करा से बना होता है। **सेलूलोस, ग्लूकोस** तथा **स्टार्च** इसके मुख्य उदाहरण हैं।

3. लिपिड (Lipids)—ये कार्बन, हाइड्रोजन, तथा ऑक्सीजन के यौगिक हैं किन्तु इनके एक अणु में हाइड्रोजन की मात्रा कार्बोहाइड्रेट के एक अणु की अपेक्षा अधिक होती है। अत: ये जारण कर कार्बोहाइड्रेट की तुलना में अधिक गर्मी एवम् ऊर्जा प्रदान करते हैं। ये पानी में अघुलनशील किन्तु कार्बनिक यौगिकों में घुलनशील हैं। लिपिड को चार श्रेणियों में बाँटा गया है :—

(*i*) **सरल लिपिड** (Simple lipids)—ये फैटी अम्लों तथा ग्लिसरोल (fatty acids and glycerol) के यौगिक हैं जो **वसा** (fats) तथा **तेलों** (oils) के रूप में मिलते हैं। वसा ठोस होते हैं तथा तेल 20°C पर द्रवीय अवस्था में पाये जाते हैं। जल-विश्लेषण के फलस्वरूप लिपिड के एक अणु से 3 अणु फैटी अम्लों के तथा एक अणु ग्लिसरोल का बनता है।

(*ii*) **जटिल लिपिड** (Complex lipids)—जटिल लिपिड फैटी अम्लों तथा ग्लिसरोल के अतिरिक्त कुछ अन्य यौगिकों के मिलने से बनते हैं, जैसे—**लेसिथीन** (Lecithin) तथा **नरवोन** (Nervon)।

(*iii*) **स्टीरॉयड** (Steroids)—ये पित्त रस, Vitamin D तथा हारमोन्स में पाये जाने वाले जटिल यौगिक हैं। इन्हें पित्तीय अम्ल भी कहते हैं। उदाहरण—**कोलीस्टेरोल** (cholesterol)।

(*iv*) **कैरोटिनॉयड्स** (Carotenoids)—ये लाल तथा नारंगी रंग के कणों के रूप में मिलते हैं, जैसे—Vit. A, **अण्डे के योक के रंग-कण** तथा **कैरोटिन** (carotene)।

4. न्यूक्लीक अम्ल (Nucleic acids)—न्यूक्लीक अम्ल केन्द्रक के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग हैं। ये केन्द्रक के nucleolus, गुणसूत्रों तथा जीन्स में पाये जाते हैं। ये अत्यन्त जटिल कार्बनिक यौगिक हैं। इनके अणु बहुत बड़े तथा लम्बे होते हैं और प्रत्येक अणु बहुत-से एककों (units) का बना होता है जो **न्यूक्लिओटाइड** (nucleotides) कहलाते हैं।

प्रत्येक न्युक्लिओटाइड में एक अणु शर्करा (sugar—pentose), एक अणु फॉस्फोरिक अम्ल (phosphoric acid) तथा एक अणु नाइट्रोजिनस क्षार (nitrogen-containing base) के होते हैं। ये क्षार चार प्रकार के होते हैं। इनमें दो **प्यूरिन** (purines) तथा दो **पाइरिमिडिन** (pyrimidin) होते हैं। दोनों प्यूरिन : एडिनिन (adenin) 'A' तथा ग्वानिन (guanin) 'G' हैं तथा दोनों पाइरिमिडिन : साइटोसिन (cytosine) 'C' तथा थाइमिन (thymin) 'T' हैं।

केन्द्रक में दो न्यूक्लीक अम्ल पाये जाते हैं :—

(*i*) डीऑक्सी-राइवो-न्यूक्लीक अम्ल (Deoxyribonucleic acid—DNA)

(*ii*) राइवो-न्यूक्लीक अम्ल (Ribonucleic acid—RNA)

DNA में पेन्टोज-शर्करा डीऑक्सीराइवोस (Deoxyribose), फॉसफोरिक अम्ल, दो प्यूरिन तथा दो पाइरिमिडिन होते हैं। इनका एक-एक अणु मिलकर एक न्यूक्लिओटाइड वनाता है। DNA का एक अणु दो स्पाइरल स्ट्रैण्ड (spirally coiled strands) का बना होता है जो एक-दूसरे पर लिपटे रहते हैं। प्रत्येक स्ट्रैण्ड के वाहरी भाग में शर्करा तथा फॉसफोरिक अम्लों के अणु एकान्तरित क्रम में विन्यसित होते हैं। दोनों स्ट्रैण्ड अन्दर की ओर एक-दूसरे से क्रमवद्ध अनुप्रस्थ पट्टियों द्वारा जुड़े रहते हैं। प्रत्येक पट्टी प्यूरिन तथा पाइरिमिडीन के एक-एक अणु के मिलने से वनती है। प्रत्येक पट्टी दोनों स्ट्रैण्ड के एक-एक न्यूक्लीओटाइड को प्रदर्शित करती है अर्थात् एक स्ट्रैण्ड का एक न्यूक्लीओटाइड दूसरे स्ट्रैण्ड के एक न्यूक्लीओटाइड से प्यूरिन-पाइरिमिडिन के द्वारा जुड़ा रहता है। एक न्यूक्लीओटाइड का साइटोसिन सदैव दूसरे स्ट्रैण्ड के ग्वानिन से तथा एडिनिन थाइमिन से जुड़ता है। DNA के एक अणु में 20,000 तक न्युक्लीओटाइड तथा हजारों coils हो सकते हैं। DNA में लगे हुए क्षारों का क्रम इसमें छिपी सूचनाओं (coded informations) को प्रदर्शित करता है। अतः DNA अणु ही कोशिका की क्रियाओं का नियमन करता है। इन सूचनाओं को ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक भेजते हैं।

RNA की रचना भी DNA के समान होती है। RNA में केवल एक ही स्ट्रैण्ड होता है तथा इसके न्यूक्लीओटाइड में राइवोस (ribose) नामक शर्करा होती है। इसके अतिरिक्त इसमें थाइमिन के स्थान पर यूरेसिल (uracil) होता है। RNA के अणु DNA से बनते हैं तथा उसकी वास्तविक प्रतिलिपि (true copy) होते हैं। अतः DNA अणु एक प्रतिमान (model) के समान कार्य करता है। DNA से बना RNA या तो न्यूक्लिओलस में इकट्ठा कर लिया जाता है या तुरन्त ही कोशिकाद्रव्य में चला जाता है जहाँ पर यह प्रोटीन बनाने में सहायता करता है।

5. एन्जाइम्स (Enzymes)—ये जटिल प्रकार के प्रोटीन हैं जो जीवद्रव्य, रक्त तथा पाचन-तन्त्र में पाये जाते हैं। ये कार्वनिक उत्प्रेरक (organic catalysts) के समान कार्य करते हैं क्योंकि ये शारीरिक क्रियाओं की गति में वृद्धि कर देते हैं। ये सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते है और इन पर तापक्रम के परिवर्तन का प्रभाव अति शीघ्र होता है। एन्जाइम ऑक्सीकरण, जल-विश्लेषण (hydrolysis) तथा पदार्थों के संश्लेषण (synthesis of substances) का नियमन करते हैं। ये हारमोन
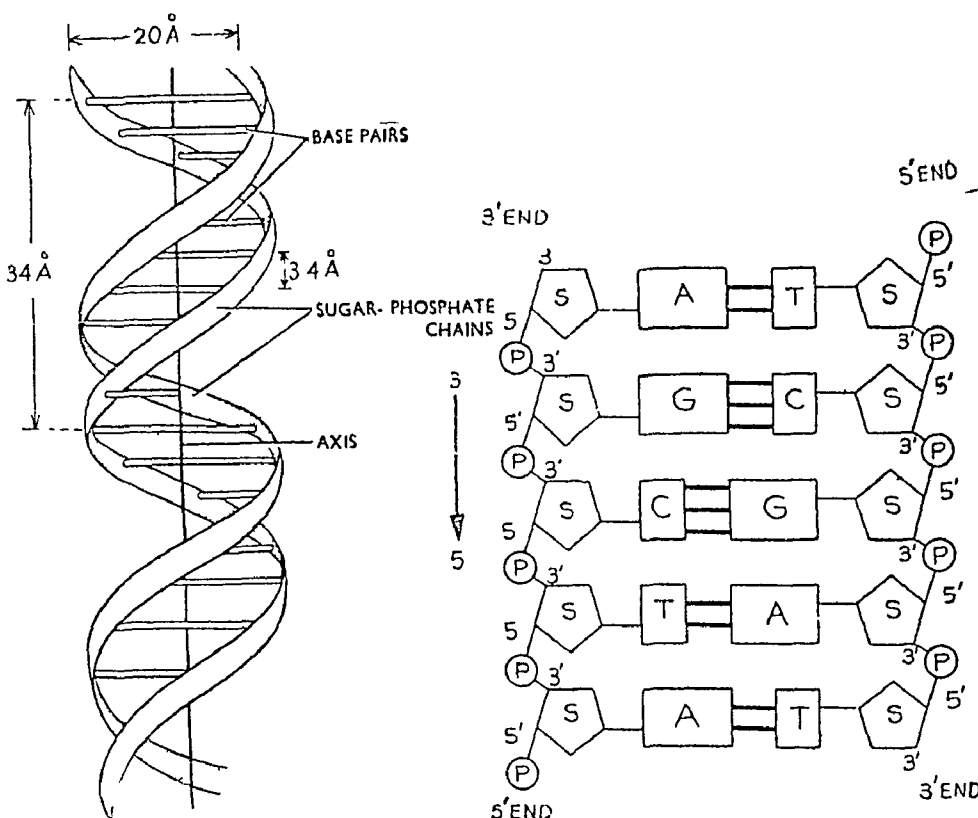
चित्र 2·1. DNA अणु का चित्रीय निरूपण
(Diagrammatic representation of DNA molecule)

उत्पन्न करते है तथा पसीना निकलने की क्रिया को नियमित रखते हैं। एक एन्जाइम एक ही प्रकार की क्रियाओं का नियमन करता है। एन्जाइम के उदाहरण इस प्रकार है—**ट्रिप्सिनोजन** (trypsinogen), **इन्वरटेज** (invertase), **एमाइलेज** (amylase) तथा **लाइपेज** (lipase) इत्यादि।

6. हारमोन्स (Hormones)—हारमोन भी जटिल कार्बनिक यौगिक हैं जो नलिकाविहीन ग्रन्थियों (ductless glands) के कोशिकाद्रव्य से स्रावित होते है। ये शरीर के निश्चित भाग में किन्तु बहुत कम मात्रा में बनते हैं परन्तु इन्हें रक्त के द्वारा क्रियास्थल पर पहुँचाया जाता है। ये अंगों के कार्यो को प्रभावित करते है तथा शरीर की उपापचय क्रियाओं की गति को तीव्र करते हैं। **थायरोक्सिन** (thyroxin), **कॉर्टिन** (cortin) तथा **एड्रीनेलिन** (adrenalin) इत्यादि इसके उदाहरण है।

7. विटामिन्स (Vitamins)—ये कार्बनिक यौगिक जन्तुओं द्वारा स्वयं नहीं बनाये जा सकते ; अत: ये इसी रूप में भोजन के साथ ग्रहण किये जाते है। ये शरीर की वृद्धि, उपापचय तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक हैं। शरीर

में इनकी कमी के कारण वहुत-सी वीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा जन्तु पूर्ण वृद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। अतः भोजन में इनकी पूरी मात्रा का होना अत्यन्त आवश्यक है। अव तक Vitamin A, C, D, E, K तथा Vit. B Complex खोजे जा चुके हैं।

II. अकार्वनिक यौगिक (Inorganic Compounds)

अकार्वनिक लवण जीवद्रव्य का 1% से भी कम भाग वनाते हैं परन्तु ये भी कोशिका के ठीक प्रकार से कार्य करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ये शरीर की उपापचय क्रियाओं तथा पानी में प्रोटीन की मात्रा का नियन्त्रण करते हैं। जीवद्रव्य में वही लवण पाये जाते हैं जो समुद्री पानी में होते हैं। ये सोडियम, पोटाशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा आयरन के क्लोराइड, सल्फेट, फास्फेट, कार्वोनेट, वाइ-कार्वोनेट तथा नाइट्रेट, इत्यादि के रूप में पाये जाते हैं। ये या तो स्वतन्त्र लवणों के रूप में मिलते हैं, अन्यथा प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेट तथा लिपिड्स के साथ संयुक्त यौगिक वना लेते हैं।

III. जल (Water)

जीवद्रव्य में लगभग 90% पानी होता है। यह अकार्वनिक लवणों तथा कुछ *कार्वनिक यौगिकों के लिए घोलक का कार्य करता है। जीवद्रव्य के यौगिक* पानी में घुलित अवस्था में रहते हैं। इसके अतिरिक्त पानी घुलित पदार्थों को शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में भी सहायता करता है। इसके द्वारा ही जीवद्रव्य में सघनता का गुण होता है।

जीवद्रव्य के गुण
(Properties of Protoplasm)

1. जीवद्रव्य के भौतिक गुण

(*i*) जीवद्रव्य प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेट तथा वसा, इत्यादि का पानी में कोलॉयडल घोल है।

(*ii*) यह सोल तथा जेल दो अवस्थाओं में मिलता है।

(*iii*) अधिक ऊँचे तापक्रम पर यह ठोस वन जाता है।

(*iv*) यह विद्युत् के लिए अच्छा या वुरा वाहक (good or bad conductor) नहीं है।

(*v*) पानी के सम्पर्क में आने पर जीवद्रव्य अपने चारों ओर एक पतली जीवद्रव्य झिल्ली वना लेता है।

2. जीवद्रव्य के रासायनिक गुण

(*i*) जीवद्रव्य तनु अम्लों व क्षारों (dilute acids and alkalies) में घुलनशील है किन्तु तीव्र अम्लों (strong acids) के सम्पर्क में आने पर ठोस वन जाता है।

(*ii*) तीव्र एल्कोहलों (strong alcohols) के प्रभाव से भी यह ठोस रूप में आ जाता है।

(*iii*) जीवद्रव्य स्वयं मन्द क्षारीय होता है।

(*iv*) जीवद्रव्य वहुत ही अस्थिर होता है तथा थोड़ा-सा गर्म करने पर अथवा रासायनिक विघटन पर यह CO_2, अमोनिया तथा पानी में टूट जाता है।

3. जीवद्रव्य के जैविक गुण

यद्यपि जीव-द्रव्य कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिकों का मिश्रण है तथापि इसमें स्वयं की कुछ ऐसी विशेपताएँ मिलती है जो इन्हीं पदार्थो को उसी अनुपात मे मिलाने पर बने मिश्रण में नही होतीं। ये विशेषताएँ जीवद्रव्य के जैविक गुण कहलाती हैं तथा यही किसी जीवधारी की भी विशेपताएँ बनाती है। ये विशेपताएँ निम्न है :—

(1) गति या प्रचलन (Movement)
(2) पोषण (Nutrition)
(3) श्वसन (Respiration)
(4) उत्सर्जन (Excretion)
(5) उपापचयन (Metabolism)
(6) वृद्धि (Growth)
(7) सचेतनता (Irritability)
(8) जनन (Reproduction)

प्रश्न 3. कोलॉइड निकाय क्या होता है ? उस प्रमाण का वर्णन कीजिये जिससे यह सिद्ध होता है कि जीवद्रव्य में कोलॉइड निकाय होता है।

What is colloidal system ? Describe the evidence which suggests that protoplasm has a colloidal system. (*Rajasthan 1972*)

कोलॉइड वह **कोलॉइडी विलयन** (colloidal solution) है जिसमें परिक्षिप्त फेज के कण, जो कि द्रव माध्यम में निलम्बित रहते हैं, परिमाण में अणुओं से तो बड़े होते है किन्तु स्थूल कणों से छोटे होते हैं। परिक्षिप्त कणों का आकार 1-200 mμ तक होता है। ये न तो वास्तविक विलयन (true solution) में परिक्षिप्त कणों की भाँति होते हैं और न ही ये निलम्बन (suspension) के रूप में होते हैं। इसकी अपेक्षा ये परिक्षेपण-माध्यम (dispersion medium) में निलम्बित होकर उसे अपारदर्शिता (opacity) प्रदान करते है। क्रीम, मक्खन, जेली, गोंद, साबुन, कुहरा, आदि कोलॉइड्स के कुछ साधारण उदाहरण है।

रचना (Composition)

कोलॉइडी विलयन विषमांगी सिस्टम (heterogeneous system) है जिसमें दो फेज होते हैं—**परिक्षेपण माध्यम** (dispersion medium) तथा **परिक्षिप्त फेज** (dispersed phase)। इसके अतिरिक्त कोलॉइडी विलयन में प्रारूपिक रूप से एक ही प्रकार का विद्युत् चार्ज (electric charge) होता है जिससे कण एक-दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं और इस प्रकार कण परिक्षिप्त प्रावस्था मे रहते है।

वर्गीकरण (Classification)

कोलॉइडी घोल निम्न दो प्रकार के होते है :—

1. द्रव-विरोधी या लायोफोबिक या सस्पेन्सॉइड (Lyophobic or suspensoids)

2. द्रव-स्नेही या लायोफाइलिक कोलॉइड्स (Lyophilic colloids)

1. द्रव-विरोधी या लायोफोबिक कोलॉइड्स (Lyophobic colloids)—इस प्रकार के कोलॉइडी विलयनों में विलेय के परिक्षिप्त कणों तथा परिक्षेपण-माध्यम के मध्य कोई बन्धुता नहीं होती।

2. द्रव-स्नेही या लायोफाइलिक कोलॉइड्स (Lyophilic colloids)—इस प्रकार के विलयनों में विलेय के परिक्षिप्त कणों तथा परिक्षेपण-माध्यम के बीच अत्यधिक बन्धुता पायी जाती है। जब परिक्षेपण-माध्यम जल होता है तो ऐसे लायोफाइलिक कोलॉइड्स को जलस्नेही या हाइड्रोफाइलिक (hydrophilic) कोलॉइड्स कहते हैं।

कोलॉइड्स की विशेषताएँ (Properties of Colloids)

कोलॉइड्स पारभासी या पारदर्शी पदार्थ हैं जिनके boiling तथा freezing points शुद्ध जल के समान होते हैं और ये अस्थायी होते हैं अर्थात् स्थिर रखने पर ये विलयन में से पृथक् नहीं होते।

वैसे तो कोलॉइड्स की अनेक सामान्य विशेषताएँ हैं किन्तु इनकी एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये द्रव या सॉल अवस्था (sol stage) से ठोस या अर्धठोस या जेल अवस्था (gel stage) में परिवर्तित होने में समर्थ होते हैं। जब जिलेटिन को गर्म पानी में डाला जाता है तो यह विलयन के समान प्रतीत होता है। किन्तु यह एक वास्तविक विलयन न होकर एक द्रव कोलॉइडी विलयन सोल (sol) के रूप में होता है। इसमें जिलेटिन परिक्षिप्त फेज में तथा जल परिक्षेपण-माध्यम में होता है। ठण्डा करने पर जिलेटिन पृथक् हो जाता है तथा इसे जेल प्रावस्था कहते हैं। अब जिलेटिन परिक्षेपण-माध्यम के रूप में होता है तथा सूक्ष्म-बिन्दुकों के रूप में स्थित जल परिक्षिप्त फेज को प्रदर्शित करता है। जिलेटिन में यह प्रावस्था प्रतिवर्ती (reversible) होती है। गर्म करने पर जेल पुनः सोल अवस्था में प्रदर्शित हो जाता है। अतः जिलेटिन में यह परिवर्तन ताप के बढ़ने से होता है। अन्य कोलॉइडी सिस्टमों में सोल से जेल में परिवर्तन pH या आयनों के परिवर्तन से अथवा फिर यान्त्रिक विधियों द्वारा सम्भव होता है।

सभी कोलॉइडी सिस्टम प्रतिवर्ती नहीं होते; कुछ सिस्टम ताप, अम्लीयता या क्षारकीयता में अत्यधिक परिवर्तन से नष्ट हो जाते हैं। इन परिस्थितियों में कोलॉइडी कण स्कंदित (coagulate) होकर बड़े कणों में समुच्चयित हो जाते हैं और अन्त में नीचे बैठ जाते हैं। अण्डे की जर्दी गर्म करने पर स्थायी रूप से सोल से जेल में परिवर्तित हो जाती है।

प्रत्येक जीवित कोशिका का आधार-द्रव्य या जीवद्रव्य अविरत रूप से सोल से जेल में तथा जेल से सोल में परिवर्तित होता रहता है। वास्तव में यह जीवत्व की एक अभिव्यक्ति है। ताप को एक निश्चित बिन्दु से अधिक बढ़ाने अथवा फिर कुछ विशेष रासायनिक पदार्थों द्वारा कोशिकीय अवयव स्थायी रूप से सोल अथवा जेल अवस्था में परिवर्तित होकर मृत्युग्रस्त हो जाते हैं।

अध्याय 3

कोशिका
(The Cell)
(L., *Cella*, Compartment)

प्रश्न 4. (अ) संक्षेप में कोशिका सिद्धान्त का वर्णन करिये तथा इसके विकास में विभिन्न वैज्ञानिकों के योगदान का उल्लेख करिये।

(ब) निम्नलिखित की संरचना एवम् कार्यों का सविस्तार वर्णन कीजिये—लाइसोसोम, गॉल्जी बॉडी, एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम।

(a) Describe briefly the cell-theory, mentioning the contributions of important scientists in its development.

(b) Describe the detailed structure and functions of the following—Lysosome, Golgi body, Endoplasmic reticulum.

(*Rajasthan 1972*)

(अ) कोशिका-सिद्धान्त (Cell-Theory)

कोशिका-सिद्धान्त (cell-theory) आधुनिक जीव-विज्ञान-सम्बन्धी व्यापक एवम् मूलभूत सिद्धान्तों में से एक है। आधुनिक कोशिका-सिद्धान्त के अनुसार पादप, प्राणी या बैक्टीरिया, आदि सभी जीव कोशिकाओं एवं कोशिकीय अवयवों से निर्मित होते हैं, सभी नयी कोशिकाएँ पूर्वस्थित कोशिकाओं से ही बनती हैं। सभी कोशिकाओं की रासायनिक संरचना एवम् उपापचय क्रियाओं में मौलिक समानताएँ हैं तथा ये किसी भी जीव की जैविक क्रियाओं एवं संरचनात्मक एककों की इकाई प्रस्तुत करती हैं।

अन्य दूसरे सिद्धान्तों या परिकल्पनाओं के समान ही वर्तमान कोशिका-सिद्धान्त भी समय-समय पर विभिन्न जीव-वैज्ञानिकों के महत्त्वपूर्ण अंशदान के फलस्वरूप आधुनिक रूप ले सका है। **M. J. Schleiden** तथा **Theodor Schwann** (1838–39) नामक दो जर्मन वैज्ञानिकों को कोशिका-सिद्धान्त प्रतिपादित करने का श्रेय मिलता है। **Schleiden** (1938) ने इस सिद्धान्त को पादपों के लिए तथा कुछ समय बाद **Schwann** (1839) ने इसे प्राणियों के लिए परिस्थापित किया। उनके अनुसार कोशिकाएँ जीव हैं तथा समस्त पेड़-पौधे व प्राणी विभिन्न क्रमों में विन्यसित इन कोशिकाओं के केवल संमूहन मात्र हैं। वास्तव में इस सिद्धान्त के प्रतिपादन से कुछ वर्षों पूर्व ही **Dutrochet** (1824) ने यह स्थापित किया था कि कोशिका समस्त जीवों (पेड़-पौधों व जन्तुओं) की संरचनात्मक इकाई के साथ-साथ क्रियात्मक इकाई भी है तथा किसी भी ऊतक की कोशिकाएँ वास्तव में गोलाकार होती हैं और ये एक प्रकार के सरल व आसंजक बलों द्वारा एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं। **Rudolf Virchov** ने यह स्थापित करके कि कोशिकाएँ केवल पूर्ववर्ती कोशिकाओं से ही उत्पन्न होती हैं, कोशिका-सिद्धान्त को सुनिश्चित किया।

(ब) **1. लाइसोसोम (Lysosome)**

कृपया प्रश्न 17 देखिये।

2. गॉल्जी काय (Golgi body)

कृपया प्रश्न 15 देखिये।

3. एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम (Endoplasmic reticulum)

कृपया प्रश्न 16 देखिये।

प्रश्न 5. कोशिका किसे कहते हैं ? कोशिका के विभिन्न अवयवों की सूक्ष्म संरचना प्रदर्शित करते हुए एक स्वच्छ व नामांकित चित्र खींचिये।

What is cell ? Draw a neat and labelled diagram showing the fine contents of various cell inclusions. (*Punjab 1967*)

सामान्य प्राणी कोशिका की संरचना का एक नामांकित चित्र बनाइये। कोशिका के किन्हीं चार अंगकों के कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

Draw a fully labelled figure of generalised cell. Briefly describe the functions of any four organelles of the cell.

(*Luck. 1958*)

किसी प्राणी कोशिका की संरचना का वर्णन कीजिये तथा इसके विभिन्न अवयवों के कार्यों का विवरण दीजिये।

Give an account of the structure of an animal cell and state the functions which are attributed to its component parts.

(*Tribhuvan 1968 ; Luck. 62, 66 ; Gorakhpur 62, 69, 71 ; Madras 66 ; Jiwaji 70, 71 ; Vikram 61 ; Agra 68, 72 ; Calcutta 70 ; Kerala 69 ; Kanpur 71*)

कोशिकाद्रव्य में पाये जाने वाले अवयवों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

Give a brief account of cytoplasmic inclusions. (*Vikram 1964*)

किसी प्राणी-कोशिका का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

Describe briefly an "animal cell". (*Jiwaji 1968*)

किसी सामान्य प्राणि-कोशिका की संरचना का वर्णन कीजिये।

Describe the structure of a generalised animal cell.

(*Meerut 1969 ; Kanpur 72*)

प्राणि-कोशिका की इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्पोपिक रचना का वर्णन कीजिये।

Describe the electron microscopic structure of the animal cell.

(*Jabalpur 1970 ; Jiwaji 73*)

प्राणि-कोशिका की इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी संरचना का चित्र बनाइये। राइबोसोम्स, लाइसोसोम्स व एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम के कार्यों पर टिप्पणी करिये।

Draw the labelled diagram of EM structure of an animal cell. Comment on the functions of ribosomes, lysosomes and endoplasmic reticulum. (*Jabalpur 1972*)

कोशिका (The Cell)

मेटाजोआ जन्तुओं (metazoa animals) का शरीर जीवद्रव्य के बने असंख्य संगठित एकको (organized units) या उपखण्डो (compartments) का बना होता है तथा प्रत्येक उपखण्ड या कोष्ठ **कोशिका** (cell) कहलाता है। कोशिका शब्द (L., *Cella*, compartment) इगलिश वैज्ञानिक **रोबर्ट हुक** (Robert Hook, 1665) द्वारा प्रयोग मे लाया गया था तथा **श्लीडन और श्वन** (Schleiden and Schwann, 1888) ने यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक जीवित जन्तु की रचना असख्य कोशिकाओ से होती है। साधारणतया एक कोशिका की परिभाषा निम्न है :—

"Cell is the smallest and complete expression of the fundamental organization and functions of all living organisms."

"प्रत्येक कोशिका समस्त जीवित जन्तुओं की रचना एवम् कार्यो की सबसे छोटी किन्तु पूर्ण अभिव्यक्ति है।"

एक बहुकोशिकी जन्तु का शरीर बहुत-सी कोशिकाओं के एकीकरण से बना होता है और इनकी सख्या परिवर्तनशील होती है, किन्तु अकोशिक जन्तु (unicellular animals) स्वय कोशिका को प्रदर्शित करते है।

आकृति एवम् परिमाण (Shape and Size)

कोशिकाओ की आकृति एवम् परिमाण (shape and size) विभिन्न जन्तुओं
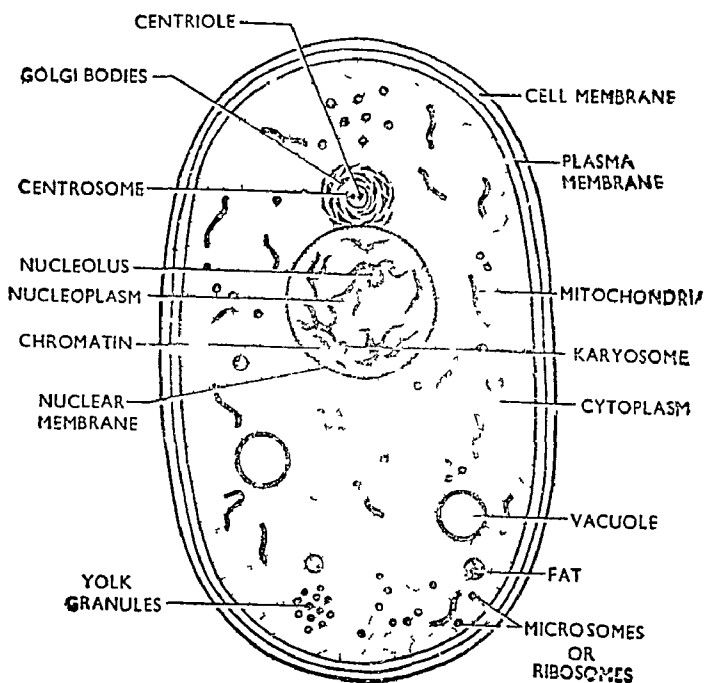
चित्र 3·1. प्रारूपी जन्तु-कोशिका (Typical animal cell)

में तथा एक बहुकोशीय जन्तु के विभिन्न अंगों में भिन्न-भिन्न होता है। अधिकांशतया इनका आकार इनके कार्यों के अनुरूप होता है। साधारणतया जन्तु कोशिका वृत्ताकार (spherical) होती है किन्तु यह बहुभुजाकार (polygonal), घनाकार (cuboid), स्तम्भी (coulmnar) तथा चपटी प्लेट के आकार की या धागे के समान (thread-like) भी हो सकती है।

अधिकांश जन्तु कोशिकाएँ सूक्ष्म, माइक्रोस्कोपिक रचनाएँ है जो सूक्ष्मदर्शी (microscope) के उच्च आवर्धन (high magnification) द्वारा ही देखी जा सकती हैं। बैक्टीरिया की कोशिकाएँ सबसे छोटी होती है तथा योक (yolk) की कोशिकाएँ सबसे बडी होती हैं। साधारणतया इनका आकार 10 से 50μ होता है।

संरचना (Structure)

यद्यपि कोशिकाएँ आकार तथा कार्यों में भिन्न-भिन्न होती है किन्तु फिर भी ये लगभग एक ही आधारभूत (fundamental) रचना प्रदर्शित करती है। रचना के आधार पर एक कोशिका अल्पपारदर्शी (trunslucent) कोशिकाद्रव्य (cytoplasm) का छोटा-सा टुकडा है जिसमे एक केन्द्रक होता है और जो एक पतली कोशिका कला या जीवद्रव्य झिल्ली (plasma membrane) द्वारा बँधा होता है। अतः कोशिका को तीन भागों मे बाँटा जा सकता है :—
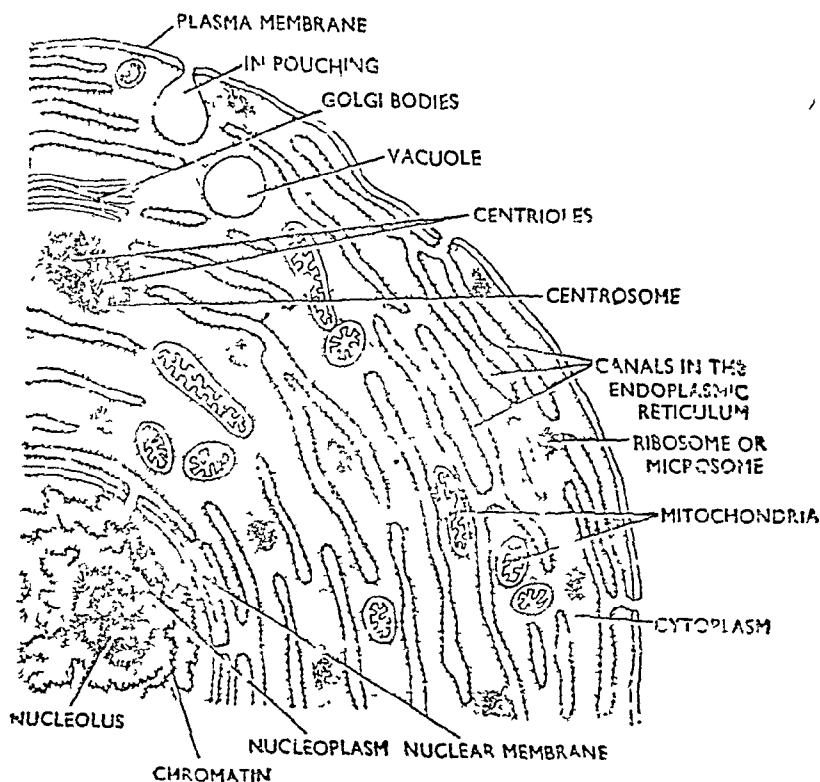
चित्र 6. प्रारूपी जन्तु कोशिका की सूक्ष्मदर्शी संरचना (Structure of typical animal cells as seen through electron microscope)

(1) जीवद्रव्य झिल्ली (Plasma membrane or Cell membrane)
(2) केन्द्रक या नाभिका (Nucleus)
(3) कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)

1. जीवद्रव्य कला (Plasma membrane or cell membrane)—प्रत्येक कोशिका का जीवद्रव्य एक बहुत ही पतली तथा अदृश्य झिल्ली द्वारा बाहरी वातावरण से अलग रहता है। यह झिल्ली **जीवद्रव्य कला** कहलाती है। इसको कोशिका से अलग नहीं किया जा सकता। यह लिपिड अणुओं (lipid molecules) की बनी दोहरी दीवार है जो दो प्रोटीन पर्तों के बीच में रहती है। इसमें स्थान-स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र होते हैं। कोशिका के भीतर जाने वाले पदार्थ या कोशिका से बाहर आने वाले पदार्थ इन्हीं छिद्रों से आते-जाते हैं। जीवद्रव्य कला **अर्धपारगम्य** (semi-permeable) होती है जो केवल एक विशिष्ट आकार तथा परिमाण के अणुओं को ही कोशिका में आने या जाने देती है।

जीवद्रव्य कला कोशिका को निश्चित आकार प्रदान करती है तथा उसकी रक्षा करती है। यह कोशिका को जीवित मशीन का एक भाग बनाती है क्योंकि सभी पदार्थ इसमें से ही होकर आते-जाते हैं।

जीवद्रव्य कला के बाहर एक मजबूत अजीवित पदार्थ की बनी रक्षात्मक पर्त **कोशिका-भित्ति** (cell wall) होती है। यह अधिकांश जन्तु कोशिकाओं में अनुपस्थित होती है किन्तु वनस्पति कोशिकाओं में यह बहुत मोटी तथा सेलुलोस (cellulose) की बनी होती हैं।

2. केन्द्रक या नाभिका (Nucleus)—केन्द्रक कोशिका के लगभग मध्य में पायी जाने वाली मुख्य रचना है जो कोशिका की समस्त जैविक क्रियाओं (vital activities) का नियन्त्रण एवं नियमन करता है। यह साधारणतया गोल या अण्डाकार (spherical or oval) रचना है किन्तु लम्बा, रिबन के आकार का या बहुखण्डीय भी हो सकता है। अधिकतर एक कोशिका में एक ही केन्द्रक होता है किन्तु कुछ कोशिकाओं में वह बहुत-से टुकड़ों के रूप मे होता है या क्रोमेटिन के दानों के रूप में बिखरा होता है। केन्द्रक के चारों ओर एक अर्धपारगम्य **केन्द्रक कला** या **केन्द्रकावरण** (nuclear membrane) होता है जिसके भीतर केन्द्रक रस या नाभिक रस (nuclear sap) भरा होता है। इसे nucleoplasm कहते हैं।

केन्द्रकावरण (Nuclear membrane)—यह एक दोहरा आवरण है जो लिपिड तथा प्रोटीन द्वारा बना होता है। इसकी रचना जीवद्रव्य झिल्ली के समान होती है तथा इसमे भी स्थान-स्थान पर सूक्ष्म छिद्र होते है। इन छिद्रों के द्वारा नाभिका रस कोशिकाद्रव्य में पाये जाने वाले आन्तरद्रव्य जालक (endoplasmic reticulum) से सम्बन्धित होता है।

नाभिका-द्रव्य (Nucleoplasm)—नाभिका-द्रव्य स्पष्ट, पारदर्शी, समांग या समरूप (homogeneous) द्रव्य है जिसकी सघनता (consistency) हमेशा बदलती रहती है। इसमें **केन्द्रक जाल** (nuclear reticulum) तथा **केन्द्रिक** या **न्युक्लिओलस** (nucleolus) पाये जाते है।

(a) **केन्द्रक जालक** (Nuclear reticulum)—यह पतले क्रोमेटिन धागों (chromatin threads) का महीन जाल है जिन पर अपेक्षाकृत मोटे क्रोमेटिन कण (chromatin granules) लगे रहते हैं। इस कारण ये माला के समान दृष्टिगत होते हैं। केन्द्रक विभाजन के समय क्रोमेटिन धागों या छड़ों के

रूप में एकत्रित होते जाते हैं जिन्हें गुणसूत्र या क्रोमोसोम (chromosomes) कहते हैं। ये मुख्य आनुवंशिक वेसिकिल (hereditary vesicles) हैं और आनुवंशिक गुणों को एक जन्तु से दूसरे जन्तु में पहुँचाते हैं। रासायनिक आधार पर क्रोमेटिन न्युक्लिओप्रोटीन्स (nucleoproteins) का बना होता है जिनमें चार मुख्य अवयव होते हैं :—

(*i*) कम अणुभार वाले प्रोटीन (Low molecular weight proteins)—**हिस्टोन** (histone);

(*ii*) एक जटिल प्रोटीन (Complex protein),

(*iii*) डी-ऑक्सीराइवोन्यूक्लीक अम्ल (Deoxy-ribonucleic acid)—DNA;

(*iv*) राइवोन्युक्लीक अम्ल (Ribonucleic acid)—RNA।

DNA तथा RNA का प्रत्येक अणु पेण्टोज (pentose) नामक शर्करा अणु; फासफोरिक अम्ल तथा चार क्षारों (bases) से मिलकर वना होता है।

DNA कोशिका की समस्त क्रियाओं का नियन्त्रण करता है, आनुवंशिक गुणों का नियमन करता है तथा RNA का वनना इसी पर निर्भर होता है। केन्द्रक में पाये जाने वाले क्रोमेटिन दो प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **ऑक्सीक्रोमेटिन या एक्रोमेटिन** (Oxychromatin or Achromatin)—यह क्षारीय रंगों (basic dyes) से हल्का रंग लेता है किन्तु अम्लीय रंगों से गहरा रंग जाता है। यह केन्द्रक जालक के तन्तु वनाता है।

(*ii*) **वेसीक्रोमेटिन या मुख्य क्रोमेटिन** (Basichromatin or Chromatin proper)—वेसीक्रोमेटिन की वन्धुता (affinity) क्षारीय रंगों से होती है। यह रंज्या धागों (chromatin threads) पर लगे हुए क्रोमेटिन कण (chromatin granules) वनाता है। इन्हें **क्रोमोसेन्टर** (chromocentres) भी कहते हैं। ये DNA और RNA के वने होते हैं। अतः ये आनुवंशिक गुणों तथा कोशिकाओं के कार्यो का नियन्त्रण करते हैं।

(b) न्यूक्लिओलस (Nucleolus)—केन्द्रक के अन्दर एक या दो लगभग गोल न्यूक्लिओलाई पाये जाते हैं। ये विशेष प्रकार के क्रोमोसोम के वने होते हैं जिसमें RNA तथा प्रोटीन होते हैं। केन्द्रक-विभाजन (nuclear division) के समय ये लुप्त हो जाते हैं। न्युक्लिओलाई प्रोटीन वनाने में सहायता करते हैं किन्तु इसके अतिरिक्त इनका कार्य निश्चित नहीं है। यह भी माना जाता है कि ये RNA को केन्द्रक से वाहर जाने से पहले संचित रखते हैं तथा आनुवंशिक गुणों के सन्देश कोशिकाद्रव्य में पहुँचाते हैं। ये निम्न प्रकार के हो सकते हैं :—

(*i*) **प्लाज्मोसोम** (Plasmosome)—ऑक्सीक्रोमेटिन से वने न्युक्लिओलस प्लाज्मोसोम कहलाते हैं। ये अम्लीय रंगों से रंगे जा सकते हैं।

(*ii*) **कैरियोसोम** (Karyosome)—यह वेसीक्रोमेटिन का वना होता है।

(*iii*) **एण्डोसोम** (Endosome)—जव केन्द्रक में न्युक्लिओलस स्थिर रूप में (permanently) पाये जाते हैं तो एण्डोसोम कहलाते हैं।

केन्द्रक कोशिका की उपापचय क्रियाओं (metabolic activities) का नियन्त्रण करता है तथा केन्द्रक विभाजन में पूर्ण भाग लेता है। यह आनुवंशिकी एककों (hereditary units) को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचाता है।

3. **कोशिकाद्रव्य या आन्तर-द्रव्य जालक** (Cytoplasmic or endoplasmic reticulum)—जीवद्रव्य कला तथा केन्द्रक के बीच के स्थान में एक रंगहीन, अल्प-पारदर्शी द्रव्य भरा होता है जिसकी सघनता (consistency) परिवर्तनशील होती है। इसको **ग्राउण्ड पदार्थ** (ground substance) या **कोशिकाद्रव्य** कहते हैं। कोशिकाद्रव्य में असंख्य उपसूक्ष्मदर्शी (submicroscopic) धागे के समान रचनाएँ फैली रहती हैं। इनके अतिरिक्त इसमें असंख्य नलिकाओं का जाल-सा फैला रहता है। इन नलिकाओं में से कुछ तो कोशिका-झिल्ली पर खुलती हैं तथा कुछ केन्द्रक-झिल्ली पर खुलती हैं। कुछ नलिकाएँ दोनों से ही जुड़ी रहती हैं। ये सभी नलिकाएँ **आन्तर-द्रवीय जालक** (endoplasmic reticulum) बनाती हैं। इनकी दीवारों पर असंख्य सूक्ष्म दाने, **राइबोसोम** (ribosome) चिपके रहते हैं। कोशिकाद्रव्य में बहुत-सी रचनाएँ पायी जाती हैं जिन्हें **कोशिकाद्रव्यक अन्तर्वेशन** (cytoplasmic inclusions) कहते हैं। ये निम्न हैं :—

(*i*) **सेण्ट्रोसोम** (Centrosome)—सेण्ट्रोसोम लगभग गोलाकार या दीर्घ-गोलाकार रचना है जो केन्द्रक के बहुत समीप तथा लगभग कोशिका के मध्य में स्थित होता है। इसमें एक, दो या अधिक छोटे-छोटे दाने या छड़ों के आकार के **सेण्ट्रियोल्स** (centrioles) होते हैं। इनके चारों ओर हायलाइन साइटोप्लाज्म (hyaline cytoplasm) का भाग होता है। इसे **सेण्ट्रोस्फीयर** (centrosphere) कहते हैं। यह कोशिकाद्रव्य से अलग दृष्टिगत होता है। सेण्ट्रोसोम केन्द्रक-विभाजन के समय मुख्य कार्य करता है। इससे **एस्टर** (aster) तथा **तर्कु** (spindle) बनते हैं।

माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria)—प्रत्येक जीवित कोशिका में माइटो-कॉण्ड्रिया अलग-अलग अथवा झुंडों में पाये जाते हैं। इनकी लम्बाई 2μ से 3μ तक होती है तथा ये छड़ों (rods), गोलों अथवा दानों के आकार के होते हैं। प्रत्येक माइटोकॉण्ड्रिया पर लिपिड तथा प्रोटीन की बनी दो दीवारें होती हैं जिनमें से अन्दर की दीवार व्यावृत्त पर्तो (convoluted folds) में उभरी रहती है। माइटो-कॉण्ड्रिया कोशिका के लिए पावर हाऊस (power house) का कार्य करते हैं। इनमें भोजन के ऑक्सीकरण से ऊर्जा उत्पन्न होती है जो शारीरिक क्रियाओं की पूर्ति में काम आती है। इसके अतिरिक्त इनका सम्बन्ध योक-उत्पादन (yolk formation) तथा कुछ पदार्थों के स्राव से भी बताया जाता है।

(*iii*) **गॉल्जी काय** (Golgi bodies)—गॉल्जी काय केन्द्रक अथवा सेण्ट्रो-सोम के पास स्थित होती हैं। ये मोटी पर्तदार प्लेटों (laminated plates) अथवा मुड़ी हुई छड़ों (coiled rods) के आकार की होती हैं। इनका आकार एवं परि-माण निश्चित नहीं होता। इनमें प्रोटीन तथा वसा की अधिकता होती है। ये स्राव कोशिकाओं (secretory cells) में अधिक मात्रा में पायी जाती हैं। इनका कार्य अभी तक निश्चित नहीं है किन्तु यह माना जाता है कि ये योक बनाने तथा कोशिकाओं के स्राव में सहायता करती हैं।

(*iv*) **माइक्रोसोम या राइबोसोम** (Microsomes or Ribosomes)—ये कोशिकाद्रव्य की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण किन्तु अति सूक्ष्म दाने के समान रचनाएँ हैं जो RNA तथा प्रोटीन की बनी होती हैं। इनका मुख्य कार्य ऐमीनो अम्लों से प्रोटीन बनाना है।

(*v*) **स्राव कणिकाएँ** (Secretory granules)—एन्जाइम तथा स्रावित पदार्थ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में कणिकाओं के रूप में ही पाये जाते हैं।

(*vi*) **लाइसोसोम** (Lysosome)—ये विशेष प्रकार के एन्जाइम से भरी रिक्तिकाएँ (vacuoles) हैं जिनमें कोशिकाओं तथा उनमें पायी जाने वाली रचनाओं के पाचन की क्षमता होती है। अधिकतर भोजन के पाचन के समय या विदेशी पदार्थों के कोशिका के भीतर पहुँच जाने पर उन्हें नष्ट करने के लिए लाइसोसोम फटते हैं किन्तु यदि ये इससे पहले ही फट जायें तो स्वयं कोशिका को ही नष्ट कर देते हैं। अतः इन्हें कोशिका का शत्रु (cell enemy) भी कहा जाता है।

(*vii*) **रिक्तिकाएँ** (Vacuoles)—ये कोशिकाद्रव्य में पाये जाने वाले रिक्त स्थान हैं जो एक निश्चित झिल्ली द्वारा घिरे रहते हैं और पानी से अथवा पानी में घुले हुए पदार्थों से भरे रहते हैं। ये वनस्पति कोशिकाओं में ही अधिकतर पाये जाते हैं और कोशिका के भीतर निश्चित दाव वनाये रखते हैं। फाइलम प्रोटोजोआ के जन्तुओं में खाद्य-रिक्तिकाएँ भी पायी जाती हैं जो भोजन के पाचन में सहायता करती हैं। इनमें कुञ्चनशील रिक्तिकाएँ भी उत्सर्जन में भाग लेती है।

(*viii*) **प्लैस्टिड** (Plastids)—प्लैस्टिड अधिकतर वनस्पति कोशिकाओं में किन्तु कुछ जन्तु कोशिकाओं में भी पाये जाते हैं। हरे रंग के प्लैस्टिड क्लोरोप्लास्ट (chloroplasts) कहलाते हैं। ये रासायनिक क्रियाओं के केन्द्र हैं क्योंकि इनकी उपस्थिति में पौधों में सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में जल तथा CO_2 से स्टार्च वनता है।

(*ix*) **निस्पन्द पदार्थ** (Ergastic substances)—कोशिकाद्रव्य में अनेक अजीवित पदार्थ कणिकाओं, गोलों तथा बूँदों के रूप में पाये जाते हैं। ये वहुधा संचित खाद्य पदार्थ ही होते हैं।

प्रश्न 6. प्राणि-कोशिका का नामांकित चित्र वनाइये।

Give labelled diagram of an animal cell.

(*Vikram 1972 ; Jiwaji 72*)

कृपया चित्र 3·1 देखिये।

प्रश्न 7. कोशिकाद्रव्यक अन्तर्वेशन क्या हैं ? इनका संक्षेप में वर्णन करिये।

What are cytoplasmic inclusions ? Describe them in brief.

(*Jiwaji 1972*)

कृपया प्रश्न 16 देखिये।

अध्याय 4

कोशिका-भित्ति तथा प्लैज्मा झिल्ली
(Cell and Plasma Membrane)

प्रश्न 8. कोशिका-भित्ति की संरचना एवं रासायनिक प्रकृति का वर्णन करिये ।

Describe the structure and the chemical nature of the cell wall.

पादप कोशिकाओं में कोशिका-भित्ति का पाया जाना उनका एक विशिष्ट लक्षण है । यह जीवद्रव्य द्वारा स्रावित मृत पदार्थ की बनी होती है और संवहन या वैस्कुलर पादपों की जनन कोशिकाओं के अतिरिक्त अन्य सभी पादप कोशिकाओं में एक बाह्य आवरण के रूप में स्थित होती है । कोशिका-भित्ति की मोटाई विभिन्न पादपों तथा एक ही पादप की विभिन्न कोशिकाओं में अलग-अलग होती है । यह जीवद्रव्य के चारो ओर एक ढाँचा बनाकर उसे रक्षण और निश्चित आकृति प्रदान करती है और इसी के कारण पादप को यान्त्रिक दृढ़ता मिलती है ।

1. कोशिका-भित्ति की संरचना (Structure of Cell Wall)

पादप कोशिकाओं की कोशिका-भित्ति में तीन मुख्य स्तर होते हैं—**मध्य पटलिका** (middle lamella), **प्राथमिक भित्ति** (primary wall) तथा **द्वितीयक भित्ति** (secondary wall) ।

(*a*) **मध्य पटलिका** (Middle lamella)—यह आन्तरकोशिक मैट्रिक्स है जो संलग्न कोशिकाओं को परिधारित किये रखती है । यह सदैव ही संलग्न कोशिकाओं की प्राथमिक कोशिका-भित्तियों के बीच में मिलती है । यह कैल्शियम एवम् मैग्नीशियम पैक्टेट्स की बनी होती है । इसके अतिरिक्त एक प्रोटीन घटक भी उपस्थित होता है ।

चित्र 4·1. मध्य पटलिका, प्राथमिक एवं द्वितीयक भित्तियों को प्रदर्शित करते हुए कोशिका-भित्ति की सरचना (Structure of cell wall showing middle lamella, primary and secondary walls)

(*b*) **प्राथमिक भित्ति** (Primary wall)—यह वास्त-

विक कोशिका-भित्ति है जो सर्वप्रथम नयी बनी कोशिका में विकसित होती है। यह एक महीन स्तर के रूप में जीवद्रव्य से विकसित होती है और **पेक्टेट्स** व **सेलूलोस** तथा **हेमीसेलूलोस** व **पोलीसैकेराइड्स** की बनी होती है।

(c) **द्वितीयक भित्ति** (Secondary wall)—यह प्राथमिक भित्ति के अन्दर की ओर स्थित होती है। यह केवल पूर्ण वृद्धि प्राप्त कोशिकाओं में विकसित होती है। यह अत्यधिक मोटी एवं दृढ़ होती है और कोशिका को अत्यधिक तनन-सामर्थ्य प्रदान करती है। यह **सेलूलोस, हेमीसेलूलोस** व कुछ अन्य **पोलीसैकेराइड्स** की बनी होती है। इन पदार्थों के अतिरिक्त अकार्बनिक लवण, टैनिन्स, मोम, कैल्शियम यौगिक, सिलिका, लिग्निन, सुबेरिन व क्यूटिन आदि भी द्वितीयक भित्ति में निक्षेपित होते हैं। द्वितीयक भित्ति के अतिरिक्त भीतर की ओर एक अन्य स्तर भी होता है जिसका रासायनिक संगठन द्वितीयक भित्ति से भिन्न होता है। इस स्तर को **तृतीयक स्तर** (tertiary layer) कहते हैं। यह सेलूलोस की बजाय **जाइलम** (xylem) का बना होता है। द्वितीयक भित्ति एवं तृतीयक भित्ति को अलग-अलग स्पष्ट रूप से देखना सम्भव नहीं है और इनको सम्मिलित रूप से **द्वितीयक स्थूलन** (secondary thickening) कहते हैं।

प्लैज्मोडेस्मैटा (Plasmodesmata)—ये संलग्न कोशिकाओं के सम्पर्क स्थानों पर मिलने वाले स्थूलित क्षेत्र हैं। प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा ये गहरी अभिरंजित कायों के रूप मे दृष्टिगत होते हैं। किन्तु इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा ये संलग्न कोशिकाओं की प्लैज्मा झिल्लियों की भीतरी सतह पर बटन के समान स्थूलनों के रूप में दिखायी देते हैं। इन स्थूलनों में महीन कोशिका-द्रव्यक तन्तुक होते हैं जिन्हें **टोनोफाइब्रिल्स** (tonofibrils) कहते हैं। प्लैज्मोडेस्मैटा वाले स्थानों पर प्लैज्मा झिल्लियों के बीच 300–500Å चौड़ा आन्तरकोशिक स्थान होता है जिसमें सघन पदार्थ भरे रहते हैं।

कार्य (Functions)—प्रारम्भ में यह धारणा थी कि **प्लैज्मोडेस्मैटा** आन्तरकोशिक कोशिकद्रव्यक सेतु हैं जिनके द्वारा संलग्न कोशिकाओं के बीच सम्बन्ध बना रहता है। किन्तु इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी अध्ययनों द्वारा ऐसे किसी भी सम्बन्ध का आभास नहीं होता। अब यह माना जाता है कि प्लैज्मोडेस्मैटा कोशिकाओं के आसंजन में सहायक होते हैं और कोशिकाओं को निश्चित आकृति, दृढ़ता एवम् अवलम्बन प्रदान करते हैं।

2. कोशिका-भित्ति की परारचना (Ultrastructure of Cell Well)

प्राथमिक कोशिका-भित्ति मुख्य रूप से **सेलूलोस** की बनी होती है जिस पर द्वितीयक रूप से **पेक्टिन, लिग्निन** एवम् **हेमीसेलूलोस** निक्षेपित होते हैं। सेलूलोस के अणु **डाइसैकेराइड सेलोबिओस** के बहुलक हैं जिनमें से प्रत्येक में ग्लूकोस के लगभग 3000 एकक रैखिक क्रम में विन्यसित होते हैं। प्राथमिक भित्ति के सेलूलोस अणु कोशिकाओं के लम्बवत् अक्ष के साथ अनुदैर्ध्य बण्डलों के रूप में विन्यसित होते हैं जिन्हें **मैक्रोफाइब्रिल्स** (macrofibrils) कहते है। मैक्रोफाइब्रिल्स का व्यास 100–250Å तथा लम्बाई 1μ तक होती है। ये एक $0{\cdot}3\mu$ मोटी अनियमित जाली के रूप में गुँथे रहते हैं। जाली का प्रत्येक फाइब्रिल 250 धागों के समान संरचनाओं का बना होता है जिन्हें **माइक्रोफाइब्रिल्स** (microfibrils) कहते है। प्रत्येक माइक्रोफाइब्रिल में 20 के लगभग **मिसेल** (micelles) होते हैं। प्रत्येक मिसेल में 100 के लगभग सेलूलोस श्रृंखलाएँ होती हैं जो अलग्न व अनियमित क्रम में बिखरी रहती हैं। माइक्रोफाइ-

चित्र 4·2. फाइब्रिल्स का विन्यास : A. प्राथमिक भित्ति में, B. द्वितीयक भित्ति में (Arrangement of fibrils in A. primary wall, B. secondary wall)
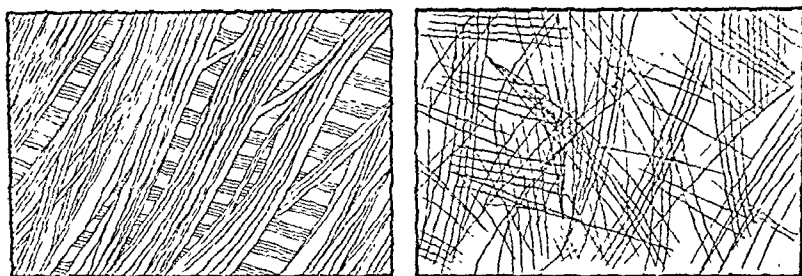
ब्रिल्स के मध्यवर्ती स्थानों में कार्बोहाइड्रेट्स के दूसरे यौगिक, क्यूटिन, सुबेरिन, हेमी-सेलूलोस, पेक्टिन तथा लिग्निन आदि निक्षेपित रहते हैं।
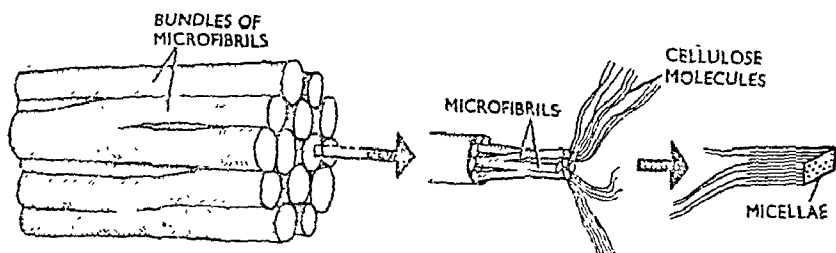
चित्र 4·3. सेलूलोस अणु की परारचना (Ultrastructure of a cellulose molecule)

द्वितीयक भित्ति भी सेलूलोस की बनी होती है तथा इसके मैक्रोफाइब्रिल्स प्राथमिक भित्ति के समान विन्यसित होते हैं किन्तु प्रत्येक मैक्रोफाइब्रिल के माइक्रोफाइब्रिल समान्तर क्रम में अति सघन रूप से विन्यसित होते हैं।

3. कोशिका-भित्ति का स्थूलन (Thickening of the Cell Wall)

परिपक्वन अवस्था में कोशिकाएँ अपने कार्य के अनुरूप रूपान्तरित हो जाती हैं। इस प्रावस्था में सेलूलोस, पेक्टिन, लिग्निन तथा सुबेरिन आदि के निक्षेपित होने के कारण कोशिकाओं में द्वितीयक स्थूलन होता है किन्तु पैरेनकाइमा आदि कुछ कोशिकाओं में स्थूलन नहीं होता। स्थूलित पदार्थ जीवद्रव्य द्वारा समान रूप से स्रावित होता है जिससे भित्ति स्तरित प्रतीत होती है। किन्तु ट्रैकीड्स एवं वैसल्स में **लिग्निन** का निक्षेपण विशेष प्रतिरूपों के रूप में होता है जिसके फलस्वरूप भित्ति का कुछ भाग अस्थूलित रह जाता है। इस प्रकार का स्थूलन निम्न प्रकार का होता है :—

1. **वलयाकार** (Annular)—इस प्रकार के स्थूलन में लिग्निन वास्तविक कोशिका-भित्ति से अन्दर एक से ऊपर एक वलयों के रूप मे निक्षेपित होती है।

2. **सर्पिल** (Spiral)—इसमें स्थूलन सर्पिल पट्टी के रूप में होता है।

3. **सीढ़ीनुमा** (Scalariform)—इस प्रकार के स्थूलन में लिग्निन सीढ़ी के डण्डों के समान निक्षेपित होती है जिससे कोशिका-भित्ति सीढ़ी के समान प्रतीत होती है।

4. जालिकावत् (Reticulate)—इसमें स्थूलन जाल के रूप में होता है जिससे कोशिका-भित्ति में स्थान-स्थान पर अस्थूलित भाग रह जाते हैं।

5. गर्तित (Pitted)—इस प्रकार के स्थूलन में कोशिका-भित्ति की समस्त भीतरी सतह समान रूप से मोटी हो जाती है और स्थान-स्थान पर कुछ अस्थूलित क्षेत्र या गुहाएँ शेप रह जाती हैं जिन्हें **गर्त** (pits) कहते हैं। गर्त दो प्रकार के होते हैं—**सरल** व **परिवेशित**।

(*i*) **सरल गर्त** (Simple pits)—इस प्रकार के गर्तों की गुहा समान रूप से स्थूलित होती है। परिवेशित गर्तों की द्वितीयक भित्ति के ऊपर मिलने वाली महराव के समान रचनाओं का सरल गर्तों में अभाव होता है। पृष्ठीय रूप से देखने पर ये वृत्ताकार, अण्डाकार, पंचकोणीय, अनियमित या दीर्घाकार प्रतीत होते हैं। सरल गर्त जीवित व निर्जीव दोनों प्रकार की कोशिकाओं मे मिलते हैं किन्तु काष्ठ पैरेन-काइमा, फ्लोएम पैरेनकाइमा, सहकोशिकाएँ तथा रेशों में अधिकता से मिलते हैं। ये एन्जियोस्पर्म के वैसल्स एवं ट्रैकीड्स में भी मिलते हैं। दृढ़ कोशिकाओं (stone cells) में ये महीन शाखित सरणियों के रूप में दृष्टिगत होते है और संलग्न कोशि-काओं की ल्यूमेन में सम्वन्ध स्थापित करते है।
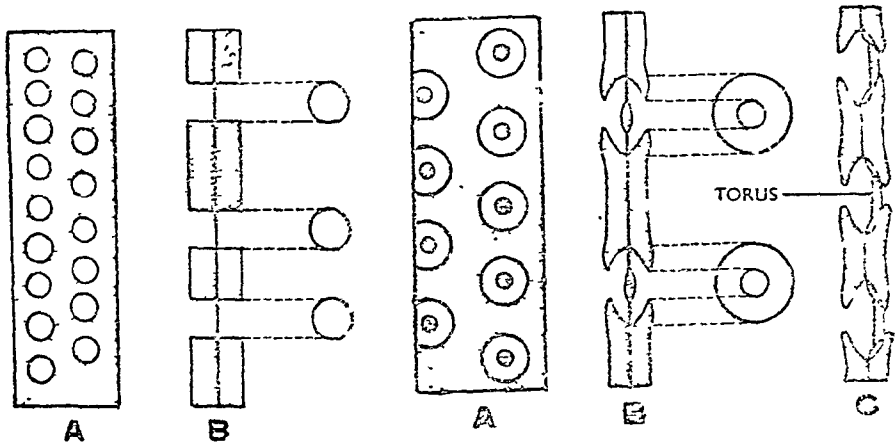
चित्र 4.4. कोशिका-भित्ति में सरल गर्त :
A. पृष्ठीय दृश्य मे
B. सेक्शन में
(Simple pits in cell wall :
A. In surface view
B. In section)

चित्र 4·5. कोशिका-भित्ति में परिवेशित गर्त :
A. पृष्ठ सतह से देखने पर
B. सेक्शन में
(Bordered pits in cell wall :
A. In surface view
B. In section)

(*ii*) **परिवेशित गर्त** (Borderd pits)—इस प्रकार के गर्तों की गुहा समान व्यास की न होकर भित्ति के समीप चौड़ी तथा कोशिका की ल्यूमेन की ओर कीप के समान सँकरी होती है। इस प्रकार के गर्त **परिवेशित गर्त** (bordered pits) कहलाते है। इन गर्तों मे कोशिकाओं का स्थूलित पदार्थ ल्यूमेन की ओर वृद्धि करके गर्त के चारों ओर एक महराव-सी वना लेता है। गर्तों को वंद करने वाली झिल्ली केन्द्रीय भाग मे कुछ स्थूलित सी होकर **टोरस** (torus) वनाती है। पृष्ठ दृश्य मे परिवेशित गर्त अण्डाकार या वृत्ताकार प्रतीत होते हैं। परिवेशित गर्त जिम्नोस्पर्म के ट्रैकीड्स तथा एन्जियोस्पर्म के ट्रैकीड्स एवं वैसल्स में वहुलता से मिलते है।

कार्य (Functions)—गर्तो में से द्रव पदार्थो का विसरण होता है। सजीव कोशिकाओं में ये जीवद्रव्य के विसरण में भी सहायक होते हैं। परिवेशित गर्तो में टोरस के बंद होने तथा खुलने के कारण यह पदार्थों के विसरण का नियमन करता है।

कोशिका-भित्ति की रासायनिक प्रकृति
(Chemical Nature of the Cell wall)

उच्च पादपों की कोशिका-भित्ति के विभिन्न स्तरों की रासायनिक संरचना में भिन्नता होती है। **सेलूलोस, हेमीसेलूलोस, पेक्टिन** तथा **लिग्निन** कोशिका-भित्ति के मुख्य घटक है। इनके अतिरिक्त **क्यूटिन, सुबेरिन, म्यूसिलेज, खनिज लवण** व अन्य पदार्थ भी कोशिका-भित्ति में निक्षेपित होते हैं।

1. सेलूलोस (Cellulose)—यह कोशिका-भित्ति में सर्वाधिक मात्रा में मिलने वाला कार्बनिक पदार्थ है। यह कोशिकाद्रव्य द्वारा स्रावित होता है और कोशिका-भित्ति का ढाँचा बनाता है। कवकों को छोड़कर यह अन्य सभी पादपों के कोमल भागों में मिलता है। काष्ठ मे यह 41-48% तक होता है। सामान्य रूप से पादपों द्वारा निर्मित कुल कार्बनिक पदार्थ का 1/3 भाग सेलूलोस होता है। सेलूलोस कोमल, प्रत्यास्थ तथा पारदर्शी पदार्थ है जो जल के लिए पारगम्य होता है।

रासायनिक रूप से सेलूलोस एक पोलीसैकेराइड कार्बोहाइड्रेट है जिसका सामान्यीकृत सूत्र $(C_6H_{10}O_5)_n$ है। सेलूलोस कई प्रकार से महत्त्वपूर्ण होता है। यह शाकाहारी प्राणियों का मुख्य आहार है। कृत्रिम रेशम, सूत, सेलूलॉयड, गन कॉटन आदि सेलूलोस से ही बनाये जाते हैं।

2. हेमीसेलूलोस (Hemicellulose)—कुछ पादपों के बीजों (खजूर, आइवरी नट) में सेलूलोस से मिलता-जुलता एक अन्य अविलयशील कार्बोहाइड्रेट होता है जिसे **हेमीसेलूलोस** कहते है। यह अतिरिक्त स्तरों के रूप में निक्षेपित होकर कोशिका-भित्तियों को अत्यधिक कठोर एवं दृढ बना देता है। यह पानी में अघुलनशील होता है किन्तु क्षारो में सरलता से घुल जाता है। यह उपयुक्त एन्जाइम की प्रक्रिया द्वारा भोजन में रूप में उपयोग में आता है। यह प्राथमिक एवं द्वितीयक भित्तियों का मुख्य घटक है। द्वितीयक भित्तियों मे इसकी मात्रा 25–40% होती है।

3. पेक्टिन (Pectin)—यह संलग्न कोशिकाओं को जोड़ने में सीमेंट का कार्य करता है। कोमल एवं अकाष्ठीय ऊतकों की मध्य पटलिका पेक्टिक पदार्थों की बनी होती है। पेक्टिन कैल्शियम पेक्टेट के रूप में मिलता है। विभिन्न पादपों तथा एक ही पादप के विभिन्न भागों की प्राथमिक भित्तियों में पेक्टिन की मात्रा अलग-अलग होती है। आलू, चुकंदर, सेब तथा साइट्रस कुल के फलों के छिलकों में पेक्टिन अत्यधिक मात्रा मे होती है। पेक्टिन के अधिक मात्रा में होने पर कोशिका-भित्ति प्रत्यास्थ (elastic) हो जाती है, जैसे कोलेन्काइमा मे। यह अचार-मुरब्बों के अस्तमन मे काम आती है। इसका औषधियों के निर्माण तथा उद्योग में भी प्रयोग होता है।

कोशिका-भित्ति में रासायनिक परिवर्तन
(Chemical Changes in the Cell Wall)

मोटाई मे वृद्धि के समय लिग्निन, क्यूटिन, सुबेरिन, काइटिन तथा खनिजों

के निक्षेपण के कारण कोशिका-भित्ति में अनेक रासायनिक परिवर्तन होते हैं।

1. काष्ठीभवन (Lignification)—यह सेलूलोस की वास्तविक कोशिका-भित्ति में लिग्निन के स्तरों के निक्षेपित होने से अथवा फिर सेलूलोस के लिग्निन में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है। काष्ठीभवन या तो पूर्ण लम्बाई में होता है अथवा फिर आंशिक रूप से होता है। लिग्निन एक कठोर व जटिल पदार्थ है तथा लिग्निनकृत कोशिकाएँ मृत एवं मोटी भित्ति की होती हैं। इस प्रकार की भित्तियाँ जल के लिए पारगम्य होती हैं। काष्ठीभवन प्राय: **ट्रैकीड्स, काष्ठ वाहिनियों** तथा **फ्लोएम रेशों** में मिलता है। इसका कार्य पादप को यान्त्रिक शक्ति प्रदान करना है।

2. क्यूटिनीकरण (Cutinization)—इसमें सेलूलोस तथा पेक्टिक पदार्थ **क्यूटिन** में रूपान्तरित हो जाते हैं। क्यूटिन एक मोम के समान पदार्थ है जो तने, पत्तियों तथा अनेक फलों के चारों ओर सतत आवरण बनाता है। यह अपारगम्य होता है और पौधों की सतह से जल के वाष्पीकरण को रोकता है।

3. सुबेरिनीकरण (Suberinization)—यह **सुबेरिन** के निक्षेपण के कारण होता है। यह काम कोशिकाओं की भित्तियों में होता है। सुबेरिन पानी के लिए अपारगम्य होता है और जल के वाष्पीकरण को रोकता है। शीशियों व बोतलों में काम आने वाली कॉर्क की भित्तियाँ सुबेरिनीकृत होती हैं।

4. खनिजीभवन (Mineralization)—इसमें कोशिका-भित्ति में विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ अन्तर्भरित हो जाते हैं। सिलिका, रेत के कण, कैल्शियम कार्बोनेट, कैल्शियम ऑक्जलेट आदि खनिज पदार्थ सामान्य रूप से कोशिका-भित्ति में निक्षेपित रूप में मिलते हैं। सिलिका मुख्य रूप से विभिन्न घासों, गेहूँ, मक्का तथा गन्ने की पत्तियों तथा *इक्वीसिटम* के तनों में मिलता है। कैल्शियम ऑक्जेलेट के रवे अनेक पौधों में मिलते हैं। बरगद तथा इण्डिया रबर की पत्तियों में कैल्शियम कार्बोनेट के रवे अंगूर के गुच्छों के रूप में होते हैं।

5. काइटिनीकरण (Chitinisation)—कुछ शैवाल तथा अधिकांश कवकों की भित्तियाँ काइटिन की बनी होती है। यह काइटिन के निक्षेपण के कारण होता है। उच्च पादपों में काइटिन नहीं मिलता। वास्तव में काइटिन प्राणि-जगत् का एक विशिष्ट पदार्थ है। कीटों में यह उनका बाह्य कंकाल बनाता है।

6. श्लेष्मकीय पदार्थ (Mucilaginous change)—श्लेष्मकीय पदार्थ सेलूलोस के म्यूसिलेज या श्लेष्म में रूपान्तरण से बनते हैं। पानी का शोषण करने पर श्लेष्म फूलकर एक श्यान पदार्थ बनाता है। इसमें जल को रोके रखने की क्षमता होती है। यह मरुस्थलीय पादपों की माँसल पत्तियों, चाइना रोज की पत्तियों तथा भिण्डी के फूलों में बहुलता से मिलता है।

प्रश्न 9. द्रव्य झिल्ली या प्लैज्मा झिल्ली की संरचना, स्वभाव एवं कार्यों का वर्णन करिये।

Describe the structure, nature and functions of plasma membrane. (*Jiwaji 1971*)

कोशिका के कोशिकाद्रव्य के बाह्य सीमान्त जो कि भीतर प्रवेश करने वाले तथा बाहर निकलने वाले अणुओं एवं आयनों पर नियन्त्रण रखकर कोशिकाद्रव्य और बाह्य वातावरण के बीच आयनिक सान्द्रता (ionic concentration) के अन्तर को

वनाये रखता है, को प्लैज्मा झिल्ली (plasma membrane) कहते हैं।

अतः प्लैज्मा मैम्ब्रेन वह रचना है जो पादप एवम् प्राणियों की समस्त कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य का वाह्य सीमान्त वनाती है। पादप कोशिकाओं में यह कोशिका-भित्ति (cell wall) तथा कोशिकाद्रव्य के वीच स्थित होती है किन्तु प्राणी कोशिकाओं में एकमात्र रूप से यही वाह्य सीमान्त मैम्ब्रेन वनाती है। प्लैज्मा मैम्ब्रेन को प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखना सम्भव नहीं।

संरचना (Structure)—प्लैज्मा मैम्ब्रेन अति महीन, लचीली तथा अर्ध-पारगम्य झिल्ली है। वहुधा इसकी मोटाई 75Å होती है किन्तु विभिन्न कोशिकाओं में इसकी मोटाई अलग-अलग होती है। प्लैज्मा मैम्ब्रेन एक द्विस्तरीय रचना है। इसकी एक पर्त प्रोटीन अणुओं की तथा दूसरी पर्त लिपिड अणुओं की होती है। दोनों स्तरों की लिपिड की पर्त एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में होती हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा प्लैज्मा मैम्ब्रेन एक त्रिस्तरीय रचना प्रदर्शित करती है :—

1. 20–25Å मोटा प्रोटीन का वाह्य स्तर।
2. 30–35Å मोटा फोस्फोलिपिड का मध्य स्तर।
3. 20–25Å मोटा प्रोटीन का आन्तरिक स्तर।

प्लैज्मा मैम्ब्रेन की प्रस्तावित त्रिस्तरीय रचना जिसमें दोनों ओर प्रोटीन की पर्तें होती हैं तथा मध्य में लिपिड की पर्त होती है, **Robertson** के अनुसार **यूनिट मैम्ब्रेन** (Unit membrane) कहलाती है।

रासायनिक संगठन (Chemical Structure)

प्राणि कोशिकाओं की प्लैज्मा झिल्ली प्रोटीन्स, लिपिड तथा कुछ मात्रा में कार्वोहाइड्रेट्स की वनी होती है। R.B.C. की प्लैज्मा झिल्ली में 20–40% लिपिड्स, 60–80% प्रोटीन्स तथा 5% कार्वोहाइड्रेट्स होते है। यकृत कोशिकाओं की प्लैज्मा झिल्ली में 40% लिपिड, 80% प्रोटीन्स तथा 1% से कम. कार्वोहाइड्रेट्स होते हैं। लिपिड घटक **लेसीथिन, कोलिस्टेरॉल** तथा **सेफैलिन** नामक फास्फोलिपिड होते हैं। प्लैज्मा झिल्ली के प्रोटीन्स का आण्विक भार वहुत अधिक होता है। R.B.C. की प्लैज्मा झिल्ली से पृथक् हुए प्रोटीन्स **टेक्टिन्स** (tektins) कहलाते हैं। ये पेशी कोशिकाओं के **एक्टिन्स** (actins) के समान होते है। R.B.C. की प्लैज्मा झिल्ली तथा यकृत कोशिकाओं में **हेक्सोज, हेक्सोल ऐमीन, फ्यूकोस** तथा **सिएलिक एसिड** नामक कार्वोहाइड्रेट्स होते हैं।

प्लैज्मा झिल्ली की आण्विक संरचना

(Molecular Structure of Plasma Membrane)

प्लैज्मा झिल्ली की आण्विक संरचना के सम्वन्ध में विभिन्न प्रकार के अनेक मॉडल प्रस्तुत किये गये हैं किन्तु इनमें से सर्वाधिक मान्य मॉडल **डेनियल** (Daniel) का है। इसके अनुसार प्लैज्मा झिल्ली लिपिड के दुहरे स्तर की वनी होती है जिसमें प्रोटीन्स के दो स्तरों के वीच फॉस्फोलिपिड्स का द्विआण्विक स्तर होता है। प्लैज्मा झिल्ली में फॉस्फोलिपिड अणु अरीय रूप से दो समान्तर श्रृंखलाओं में विन्यसित होते हैं।

फॉस्फोलिपिड्स के दोनों स्तरों के **अध्रुवीय जलविरागी सिरे** (nonpolar hydrophobic ends) एक-दूसरे के सम्मुख स्थित होते हैं जवकि इनके **ध्रुवीय जल-**
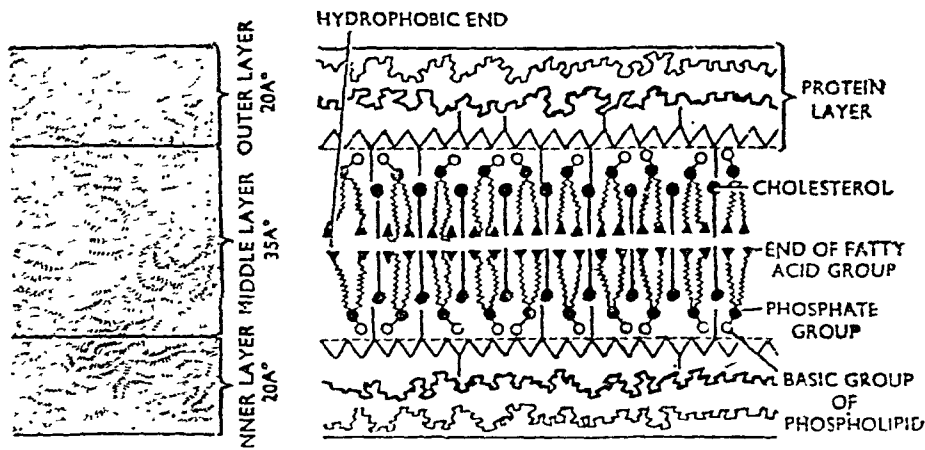
चित्र 4·6. प्लैज्मा झिल्ली की आण्विक संरचना (Molecular structure of plasma membrane)

प्रिय सिरे (polar hydrophilic ends) प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट अणुओं से सम्बद्ध होते हैं। प्रत्येक प्रोटीन अणु के साथ 50–70 लिपिड अणु सम्बद्ध रहते हैं। फॉस्फोलिपिड्स का प्रत्येक स्तर कोलीन या एथेनोलएमीन के समान क्षारों के एक स्तर में भिन्नित होता है जो कि फॉस्फेट वर्गों से सम्बन्धित होता है तथा फॉस्फेट वर्ग वसा अम्लों की दुहरी शृंखला से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक दो फॉस्फोलिपिड अणुओं के बीच कोलिस्टेरोल का एक अणु होता है।

Roderick A. Capaldi ने मार्च 1974 में यूनिट मैम्ब्रेन में प्रोटीन के लिपिड अणुओं का एक भिन्न विन्यास प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार लिपिड अणु एक महीन किन्तु दुहरे स्तर में इस प्रकार विन्यसित होते हैं कि इनके जलप्रिय सिरे (hydrophilic ends) झिल्लियों की ऊपरी सतह तथा निचली सतह बनाते हैं और
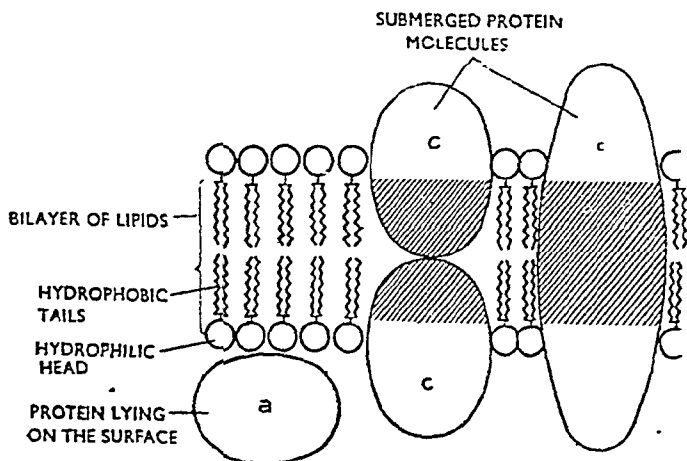
चित्र 4·7. प्लैज्मा झिल्ली की संरचना (Structure of plasma membrane)

इनके **जलविरागी सिरे** (hydrophobic tails) झिल्ली के अन्दर धँसे रहते हैं। लिपिड स्तर झिल्लियों का ढाँचा बनाता है जिसमें प्रोटीन अणु दो भिन्न क्रमों में विन्यसित रहते हैं—(1) प्रोटीन्स के कुछ अणु एकमात्र रूप से भीतरी सतह के बाहर की ओर निकट सम्पर्क में स्थित होते हैं। इस प्रकार के प्रोटीन्स **बाह्य प्रोटीन्स** (extrinsic proteins) कहलाते हैं। (2) कुछ प्रोटीन्स झिल्ली की सतह को वेधकर लिपिड के दुहरे स्तर में आंशिक या पूर्ण रूप से सन्निहित रहते हैं। प्लैज्मा झिल्ली में प्रोटीन्स का संयोजन झिल्ली की विशिष्टता को निर्धारित करता है।

कोशिका की सतह पर स्थित विशिष्ट संरचनाएँ
(Special Structures at Cell Surface)

कोशिका की सतह के विभिन्न भाग अवशोपण, स्राव, द्रव अभिगमन तथा अन्य कार्यिकीय प्रक्रियाओं के लिए विशेषीकृत होते हैं। ये निम्न प्रकार से हैं:—

1. सूक्ष्मांकुर या माइक्रोविलाई (Microvilli)—ये प्लैज्मा झिल्ली के सूक्ष्म अन्तर्वलन हैं। ये आंत्र की दीवार की कोशिकाओं, वृक्क की दूरस्थ संवलित नलिकाओं की एपिथीलियल कोशिकाओं, पित्ताशय, गर्भाशय, योक-सैक तथा यकृत-कोशिकाओं में मिलते है। इनकी उपस्थिति के फलस्वरूप अवशोपण सतह में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। आंत्र कोशिकाओं में इनका बाहुल्य होता है। आंत्र की एक कोशिका में 3000 तक माइक्रोविलाई होते है।

2. डेस्मोसोम्स (Desmosomes)—डेस्मोसोम्स दो संलग्न कोशिकाओं की प्लैज्मा झिल्लियों मे वृत्ताकार स्थूलनों के रूप में दिखायी देते हैं। ये झिल्लियाँ
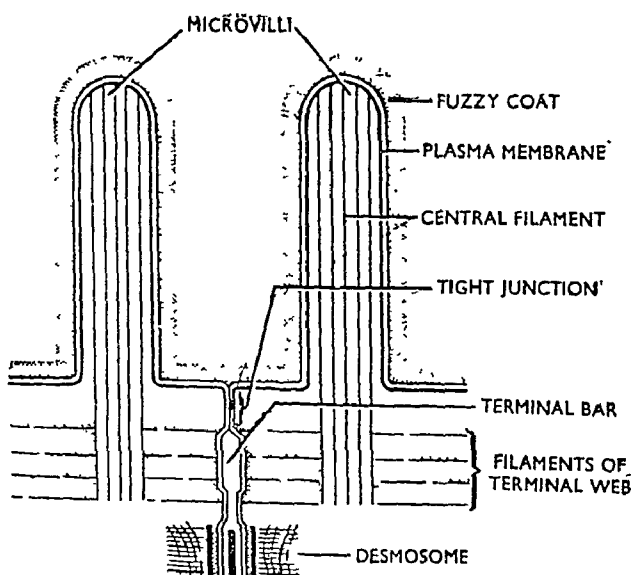
चित्र 4·8. माइक्रोविलाई, टर्मिनल बार तथा डेस्मोसोम के प्रदर्शन हेतु प्लैज्मा झिल्ली का अत्यधिक आवर्धित दृश्य (Highly magnified view of plasma membrane to show microvilli, terminal bar and desmosome)

300–500Å चौड़े आन्तरकोशिकी स्थान द्वारा एक-दूसरे से पृथक् रहती हैं। स्थूलन प्लैज्मा झिल्ली के ठीक नीचे आन्तरकोशिकी प्लाक (intracellular plaque) के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इन स्थानों पर कोशिकाद्रव्य के टोनोफाइब्रिल्स अभिसारित होते हैं। ये आन्तरकोशिकी अवलम्बन तथा कोशिकीय आसंजन प्रदान करते हैं।

3. हेमीडेस्मोसोम्स (Hemidesmosomes)—ये संरचना में डेस्मोसोम्स के समान होते हैं किन्तु आकार में उनके आधे होते हैं। इनका शेष अर्धभाग कोलेजन फाइब्रिल्स का बना होता है।

4. पटीय डेस्मोसोम (Septate desmosomes)—ये पटों के समान अनुप्रस्थ जंक्शन हैं जो 150–200Å चौड़े आन्तरकोशिक स्थान द्वारा पृथक् दो संलग्न कोशिकाओं की प्लैज्मा झिल्लियों में पाये जाते हैं। इनके पट समान्तर रूप से स्थित होते हैं और यूनिट मैम्ब्रेन की वाह्य सतह से सम्बन्धित होते हैं।

5. टर्मिनल बार (Terminal bars)—ये भी डेस्मोसोम्स के समान दो संलग्न कोशिकाओं की प्लैज्मा झिल्लियों में मिलने वाले स्थूलन हैं किन्तु इनमें टोनोफाइब्रिल्स का अभाव होता है। इनको **मध्यस्थ जंक्शन** (intermediary junctions) भी कहते हैं।

6. इण्टरडिजिटेशन्स (Interdigitations)—कुछ विशेष कोशिकाओं में इण्टरडिजिटेशन्स की उपस्थिति के कारण प्लैज्मा झिल्लियों में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध विकसित हो जाते हैं। डेस्मोसोम्स की उपस्थिति के कारण इनकी संरचना और भी अधिक जटिल हो जाती है।

चित्र 4·9. इण्टरडिजिटेशन्स के प्रदर्शन हेतु दो संलग्न कोशिकाओं की प्लैज्मा झिल्ली का एक भाग (A portion of plasma membrane of adjacent cells showing interdigitations)

प्लैज्मा झिल्ली के कार्य (Functions of Plasma Membrane)

प्लैज्मा झिल्ली के अनेक कार्य हैं किन्तु इनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य कोशिकाओं में से बाहर व अन्दर की ओर पदार्थों के प्रवाह का नियमन करना है। विभिन्न पदार्थों का कोशिका में प्रवेश करना एवं बाहर निकलना इसके वरणात्मक गुणों पर निर्भर करता है। प्लैज्मा झिल्ली के निम्नलिखित गुणों के आधार पर इसकी क्रिया-विधि का वर्णन किया जा सकता है :—

1. पारगम्यता (Permeability)—प्लैज्मा झिल्ली कोशिका के अन्तरंग द्रव

एवं वाह्य वातावरण के वीच एक महत्वपूर्ण रोधक का कार्य करती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पदार्थों के अणु इसमें से होकर ही कोशिकाद्रव्य में प्रवेश करते हैं अथवा इससे वाहर निकलते हैं। इसके वरणात्मक स्वभाव के कारण समस्त पदार्थों के अणु इसमें से होकर नहीं निकल सकते। केवल कुछ निश्चित आकार वाले अणु ही प्लैज्मा झिल्ली में से पारित हो सकते हैं। अतः यह कोशिका के अन्दर तथा उससे वाहर आने वाले पदार्थों का नियमन करती है। इसीलिए प्लैज्मा झिल्ली अर्ध-पारगम्य कहलाती है। प्लैज्मा झिल्ली की पारगम्यता समय-समय पर K^+ आयन की सान्द्रता के अनुरूप वदलती रहती है। निम्नलिखित विधियों द्वारा विभिन्न पदार्थ प्लैज्मा झिल्ली में से होकर कोशिकाद्रव्य में प्रवेश करते हैं :—

(*i*) **रसाकर्षण** (Osmosis)—रसाकर्षण द्वारा कोशिकाएँ प्रायः जल का अवशोषण करती हैं। जल तथा अन्य पदार्थों का आदान-प्रदान घुलित अवस्था में ही होता है। प्लैज्मा मैम्ब्रेन अर्धप्रवेश्य होता है। इसमें से घोलक तो दोनों ओर विसरित हो जाता है किन्तु घुलित नहीं। रसाकर्षण के फलस्वरूप घोलक तनु घोल वाले माध्यम से सान्द्रता वाले माध्यम की ओर अधिक गति से विसरित होता है तथा विपरीत दिशा में इसका विसरण उतना ही कम होता है। विसरण की क्रिया उस समय लगभग रुक जाती है जव दोनों ओर के घोलों की सान्द्रता समान हो जाती है किन्तु कोशिकाओं में यह अवस्था कभी भी नहीं आती क्योंकि अवशोषित जल रासायनिक क्रियाओं के उपयोग में आ जाता है।

(*ii*) **फैगोसाइटोसिस** (Phagocytosis)—इस क्रिया के अन्तर्गत कोशिका की प्लाज्मा मैम्ब्रेन ठोस पदार्थों के कणों का परिग्रहण करती है। *अमीवा* इसी विधि द्वारा भोजन ग्रहण करता है। इसी प्रकार श्वेत रुधिर कणिकाएँ रुधिर में से वाह्य कणों का परिग्रहण करती हैं।

(*iii*) **पिनोसाइटोसिस** (Pinocytosis)—अधिक आणविक भार वाले पदार्थ जैसे प्रोटीन इत्यादि जो रसाकर्षण द्वारा प्लैज्मा मैम्ब्रेन में से कोशिकाद्रव्य में नहीं पहुँच सकते, पिनोसाइटोसिस द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। इस विधि के अन्तर्गत प्लैज्मा
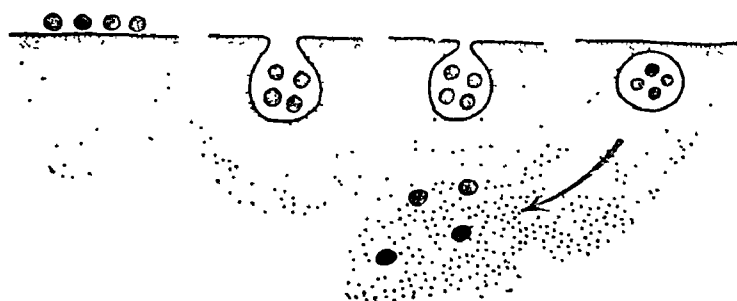
चित्र 4·10. पिनोसाइटोसिस का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of the process of pinocytosis)

मैम्ब्रेन सूक्ष्मरिक्तिकाओं अथवा अन्तर्वेशनों में प्रवर्धित हो जाती है। ये रिक्तिकाएँ वाह्य वातावरण से तरल पदार्थों को ग्रहण करने के पश्चात् चिटक कर मुक्त रूप से कोशिकाद्रव्य में तैरने लगती हैं।

(*iv*) **निष्क्रिय अभिगमन** (Passive transport)—निष्क्रिय अभिगमन के अन्तर्गत विभिन्न पदार्थों के कण अथवा अणु प्लैज्मा मैम्ब्रेन से विसरण विधि द्वारा कोशिका के अन्तर्गत विसरित होते हैं। रसाकर्षण के अन्तर्गत पानी के अणुओं के अर्धपारगम्य झिल्ली से होकर गुजरने की क्रिया निष्क्रिय अभिगमन का उदाहरण है। इस क्रिया में ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती।

(*v*) **सक्रिय अभिगमन** (Active transport)—इस विधि में अणुओं की गति सान्द्रण शक्ति के विपरीत दिशा में होती है अर्थात् अणु कम सान्द्रता वाले क्षेत्र से अधिक सान्द्रता वाले क्षेत्र की ओर गति करते हैं। अतः सक्रिय अभिगमन में अणुओं एवम् आयनों को गति के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिससे वे प्रसरण बल (diffusion force) के प्रभाव को नष्ट कर सकें। अणुओं के प्रसरण की यह क्रिया **सक्रिय अभिगमन** कहलाती है।

2. तल तनाव (Surface tension)—क्योंकि लिपिड में घुलनशील पदार्थ कोशिका-कलाओं में से सरलता से पारित हो जाते हैं, अतः ऐसा प्रकल्पित किया जाता है कि ये लिपिड की बनी होती हैं। लिपिड से निर्मित होने के कारण कोशिका-कला का तल-तनाव बहुत अधिक होना चाहिये किन्तु कोशिका-कला का तल-तनाव कम होता है जिससे यह स्थापित किया गया है कि लिपिड स्तर बाहर की ओर प्रोटीन की पर्त से आस्तारित होता है।

3. विद्युत् गुण (Electrical property)—लिपिड अणुओं से निर्मित होने के कारण कोशिका-कला अत्यधिक विद्युत् प्रतिरोधक होती है।

प्रश्न 10. (अ) कोशिका कला की संरचना का संक्षेप में वर्णन करिये।

(ब) लाल रुधिर कणिकाओं के संदर्भ में समपरासरी, अल्पपरासरी तथा अतिपरासरी विलयनों का स्पष्टीकरण करिये।

(स) सक्रिय अभिगमन क्या है? उदाहरण द्वारा समझाइये। सजीवों में इसके महत्त्व का वर्णन करिये।

(a) Describe briefly the structure of cell membrane.

(b) Explain the terms isotonic, hypotonic and hypertonic solutions in connection with red blood corpuscles. What would happen if red blood corpuscles are placed in each of the above solutions? Explain the results.

(c) What is active transport? Give an example. Describe its importance in living organisms. *(Raj. 1972)*

(अ) प्लैज्मा झिल्ली की संरचना (Structure of Plasma Membrane)

कृपया प्रश्न 9 देखिये।

(ब) समपरासरी, अल्पपरासरी तथा अतिपरासरी विलयन (Isotonic, Hypotonic and Hypertonic Solutions)

कोशिकाएँ सदैव ही सरल माध्यम में रहती हैं। जोहड़ों व झीलों में रहने वाले एककोशिकीय जीवों के चारों ओर यह माध्यम स्वच्छ पानी तथा समुद्री जीवों में लवणीय जल होता है तथा बहुकोशिकीय जीवों में आन्तरिक द्रव (रुधिर तथा लिम्फ) होता है। इस तरल को प्रायः बहिःकोशिकीय तरल कहते हैं। प्लैज्मा झिल्ली

वहि.कोशिकीय एवं अंतराकोशिकीय तरल पदार्थो के वीच एक सम्वन्ध स्थापित करती है।

(1) **समपरासरी विलयन** (Isotonic solution)—जव कोशिका के वाहर चारों ओर स्थित तरल का परासरण दाव कोशिका के भीतर के तरल के परासरण दाब के बराबर होता है तो ऐसे विलयन को **समपरासरी विलयन** कहते है। इस प्रकार के विलयन मे रखने पर कोशिका पर किसी प्रकार का प्रभाव नही पड़ता।

(2) **अल्पपरासरी विलयन** (Hypotonic solution)—जब वाह्यकोशिकी विलयन कोशिका के अन्दर के तरल की अपेक्षा कम सान्द्रित हो अर्थात् इसमे जल की मात्रा अधिक हो, ऐसे विलयन को **अल्पपरासरी विलयन** कहते हैं। अल्पपरासरी विलयन मे कोशिका को रखने पर यह जल का अन्तःशोषण करके फूल जाती है और जल लवणों की कम सान्द्रता से उच्च सान्द्रता की ओर प्रवाहित होने लगता है। यह क्रिया **अन्तःपरासरण** (endosmosis) कहलाती है।

(3) **अतिपरासरी विलयन** (Hypotonic solutions)—जब कोशिका के वाहर के विलयन में लवणों की सान्द्रता अधिक तथा जल की सान्द्रता कम होती है तो इसे **अतिपरासरी विलयन** कहते हैं। अतिपरासरी विलयन में कोशिका को रखने पर जल कोशिका में से बाहर की ओर प्रवाहित होने लगता है।

लाल रुधिर कणिकाओं में परासरण (Osmosis in R.B.C.)—R.B C. की सामान्य अवस्था एवं आकृति के लिए इनको समपरासरी विलयन में रखना आवश्यक है। प्लैज्मा तथा लिम्फ R.B.C. के लिए समपरासरी हैं। NaCl का 0·9% विलयन स्तनधारियों की R.B.Cs. के लिए समपरासरी होता है। अत: इस विलयन मे R.B.Cs. अपनी सामान्य आकृति एवम् आकार बनाये रखती है।

रुधिर की एक बूंद को आसवित जल की एक बूंद में रखने पर R.B.Cs. जल का अवशोषण करके फूल जाती है और अन्त मे फट जाती है। आसवित जल अल्पपरासरी विलयन है जिसमें जल की सान्द्रता R.B.Cs. की अपेक्षा अधिक होती है। इसी प्रकार 0·9% से कम सान्द्रित विलयन स्तनियों की R.B.Cs. के लिए

In Isotonic Solution

In Hypertonic Solution

In Hypotonic Solution

चित्र 4·11. लाल रुधिर कणिकाओ मे परासरण : A. समपरासरी विलयन में, B. अल्पपरासरी विलयन मे, C. अतिपरासरी विलयन मे (*Osmosis in red* blood cells : A. in isotonic solution, B. in hypotonic solution, C. in hypertonic solution)

अल्पपरासरी है। इस दशा में जल उच्च सान्द्रता से निम्न सान्द्रता की ओर प्रवाहित होकर कोशिका के अन्दर प्रवेश करता है। जल के कोशिका में विसरित होने के कारण प्लैज्मा झिल्ली फूलकर अन्त में फट जाती है।

R.B.Cs. को NaCl के 10% विलयन में रखने पर इनसे शीघ्र ही जल का क्षय हो जाता है और ये सिकुड़ जाती हैं। वास्तव में 10% विलयन R.B.Cs. के लिए अतिपरासरी विलयन है अर्थात् विलयन में पानी की सान्द्रता कोशिकाद्रव्य की अपेक्षा अधिक होती है। अतः जल R.B.Cs. से विसरित होकर बाहर निकल आता है और कोशिकाएँ आकुंचित हो जाती हैं। कोशिकाओं के आकुंचन की इस क्रिया को **जीवद्रव्यकुंचन** (plasmolysis) कहते हैं।

(स) सक्रिय अभिगमन (Active Transport)

सान्द्रता प्रवणता के विपरीत अणुओं के परिचालन को **सक्रिय अभिगमन** (active transport) कहते हैं। इसके अन्तर्गत अणु या आयन निम्न सान्द्रता से उच्च सान्द्रता की ओर प्रवाहित होते हैं। अणुओं के इस परिचालन की तुलना ऊँचाई की ओर जल के चढ़ने से की जा सकती है। स्वाभाविक है कि इस प्रकार के अभिगमन में विसरण बल के प्रभाव को निष्क्रिय करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता

चित्र 4·12. पोटेशियम आयनों द्वारा सक्रिय अभिगमन का प्रदर्शन। चित्र में काले विन्दु पोटेशियम आयनों को, वृत्त सोडियम आयनों को तथा बड़े वृत्त पोटेशियम वाहक को प्रदर्शित करते हैं।

A. कोशिका-कला से आसंजित पोटेशियम वाहक, B. पोटेशियम वाहक पोटेशियम आयन के साथ एक कॉम्प्लेक्स बनाता है, C. प्लैज्मा झिल्ली की वाह्य सतह से कॉम्प्लेक्स भीतरी सतह की ओर स्थानान्तरित हो जाता है। अन्दर प्रवेश करने के बाद कॉम्प्लेक्स K^+ आयन को कोशिका के आंतरांग में छोड़ देता है और कोशिका से ऊर्जा प्राप्त करता है और सोडियम वाहक में परिवर्तित हो जाता है।

(Diagrammatic representation of the process of active transport demonstrating the take up of potassium ions when they are in higher concentration inside the cell. Solid particles in the figure represent potassium ions, hollow particles represent sodium ions and the bigger circles represent potassium carriers.

A. Potassium carrier attached on the outer surface of cell membrane : B. Potassium carrier forms a compound with potassium ion ; and C. The complex migrates from the outside wall of the membrane to the inside wall where it picks up the potassium ions to the interior of the cell and receives energy from the cell, thereby it is converted into a sodium carrier.)
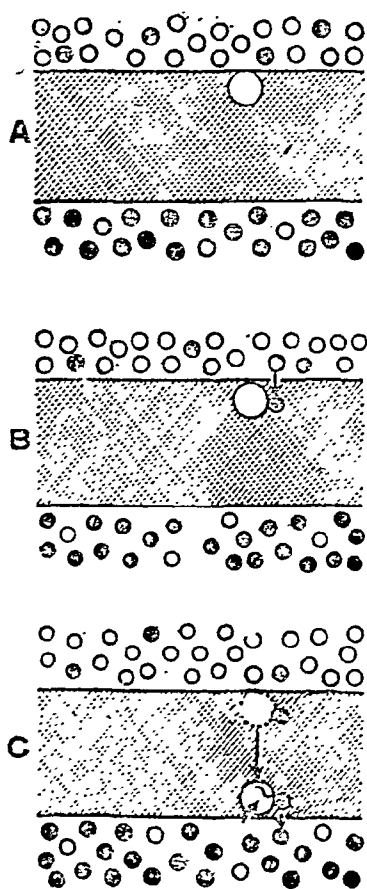
होती है। इसको निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

वृक्क-नलिकाओं को फीनोल रेड के विलयन में रखने पर कुछ समय बाद रंजक कोशिकाओं में से पारित होकर नलिकाओं की ल्यूमेन में निक्षेपित हो जाता है। कुछ ही समय में ल्यूमेन में रंजक की सान्द्रता नलिकाओं के चारों ओर माध्यम से अधिक हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि रंजक कोशिका में से होकर एक निम्न सान्द्रता से उच्च सान्द्रता की ओर प्रवाहित होता है।

क्रिया-विधि (Mechanism)—ऐसा प्रकल्पित किया जाता है कि **वाहक अणु** (carrier molecule) जो कि प्लैज्मा झिल्ली का घटक है, एक **वाहित** (transportant) का वरण करके **carrier transportant complex** बनाता है। वाहक प्रोटीन, लिपिड या एन्जाइम कुछ भी हो सकता है। उदाहरणार्थ प्लैज्मा झिल्ली की बाहरी सतह से पोटेशियम आयन लेकर वाहक अणु कोशिका के अन्दर पहुँचाता है। यह माना जाता है कि वाहित अणु में वाहक अणु के साथ मिलने पर उपापचयी परिवर्तन होते हैं। वाहक अणु वाहित अणु को लेकर प्लैज्मा झिल्ली की भीतरी सतह पर पहुँचता है। वहाँ वाहित अणु को छोड़ देता है और ATP से ऊर्जा ग्रहण कर पुनः बाहरी सतह की ओर अग्रसित होता है जिससे कि एक नया K-अणु ग्रहण कर सके।

महत्त्व (Significance)—सक्रिय अभिगमन कोशिका के अन्दर निश्चित आयनिक सान्द्रता तथा निश्चित **परासरणी दाब** (ionic concentration and osmotic pressure) बनाये रखने में सहायता करता है।

प्रश्न 11. सक्रिय अभिगमन से आप क्या समझते हैं? उचित उदाहरणों की सहायता से प्राणि-कोशिका में इस क्रिया एवं इसकी क्रिया-विधि का संक्षेप में वर्णन करिये। सजीवों में इसके महत्त्व का वर्णन करिये।

What do you understand by active transport? Describe in brief the process and its mechanism in animal cell with suitable examples. Describe its importance in living organisms. *(Raj. 1972)*

कृपया प्रश्न 10 देखिये।

प्रश्न 12. कोशिका कला की संरचना का वर्णन करिये। कोशिका में झिल्लियों से बने विभिन्न अंगकों का वर्णन करिये।

Give the structure of cell membrane. Describe briefly the various organelles in a cell made up of membranes. *(Delhi 1972)*

प्लैज्मा झिल्ली की संरचना (Structure of Plasma Membrane)

कृपया प्रश्न 19 देखिये।

प्लैज्मा झिल्ली से बने कोशिकीय अंगक
(Cell Organelle made up of Plasma Membrane)

कोशिका के कुछ अंगक झिल्लियों के बने होते हैं। इन झिल्लियों को **यूनिट मेम्ब्रेन्स** कहते हैं और ये संरचना में प्लैज्मा झिल्लियों के समान होते हैं। ये अंगक निम्न प्रकार से हैं :—

1. एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम, 2. गॉल्जी उपकरण, 3. माइटोकॉण्ड्रिया 4. लाइसोसोम, तथा 5. केन्द्रकावरण।

सविस्तार संरचना के लिए प्रश्न 12 से 17 देखिये।

अध्याय 5

कोशिका अंगक
(Cell Organelle)

माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria)

प्रश्न 12. माइटोकॉण्ड्रिया का वर्णन करिये। कोशिका की क्रियाओं में इसके महत्त्व पर टिप्पणी करिये।

Give an account of mitochondria. Comment on its role in cell activities. (*Nagpur 1969 ; Jiwaji 73*)

माइटोकॉण्ड्रिया की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।

Discuss the structure and functions of mitochondria.

(*Delhi 1973 ; Shree Venkateshvar 72*)

माइटोकॉण्ड्रिया (mitochondria) सजीव कोशिका के महत्त्वपूर्ण अंगक हैं और जो सामान्यत: कोशिका के **'पॉवर हाउस'** कहलाते हैं।

आकारिकी (Morphology)

माइटोकॉण्ड्रिया छोटी कणिकाओं, महीन तन्तुओं या छोटी शलाकाओं के रूप में दिखायी देते हैं। इनका आकार 0·2–5μ तक तथा संख्या 500–1500 तक होती है। इनका आकार परिवर्तनशील होता है और ये कोशिकाद्रव्य में गति करते रहते हैं अथवा फिर कुछ विशेष क्षेत्र तक ही सीमित होते हैं।
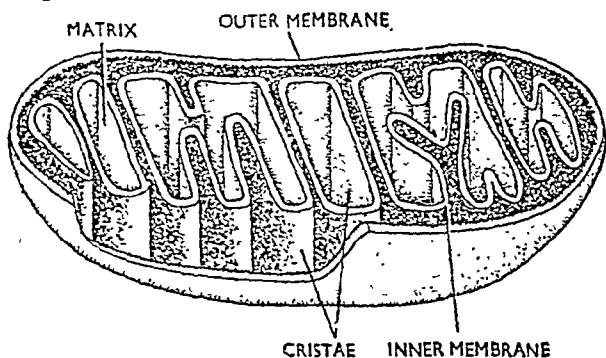
चित्र 5·1. माइटोकॉण्ड्रिओन का सेक्शन (Mitochondrion in section)

माइटोकॉण्ड्रिया की परारचना (Ultrastructure of Mitochondria)

प्रत्येक माइटोकॉण्ड्रिओन में दो झिल्लियाँ तथा दो कक्ष होते हैं :—

1. वाह्य झिल्ली (Outer membrane)—यह 60Å मोटी होती है और माइटोकॉण्ड्रिओन को चारों ओर से परिवन्वित करती है। इसकी एण्डोप्लैज्मिक रेटी-

कुलम के समान त्रिपटलीय संरचना होती है और स्पष्ट रूप से यह एण्डोप्लैजिमक रेटीकुलम की झिल्लियों से समजातता प्रदर्शित करती है।

2. भीतरी झिल्ली (Inner membrane)—यह भी लगभग 60Å मोटी होती है और बाह्य झिल्ली के अन्दर की ओर स्थित होती है तथा 60–80Å चौड़े स्थान द्वारा उससे पृथक् रहती है। यह माइटोकॉण्ड्रिया की गुहा में उद्रेखों या पटों के रूप में प्रक्षिप्त रहती है। उद्रेखों या पटों को **माइटोकॉण्ड्रियल क्रैस्ट या क्रिस्टी** (mitochondrial crests or cristae) कहते हैं। क्रैस्ट भीतरी गुहा को अनेक परस्पर सम्बन्धित कक्षों में विभाजित कर देते हैं।

3. बाह्य कक्ष (Outer chamber)—यह माइटोकॉण्ड्रिया के दोनों कक्षों तथा क्रैस्ट (crests) के क्रोड (core) के बीच का स्थान है। यह 60–80Å चौड़ा होता है।

4. भीतरी कक्ष (Inner chamber)—यह भीतरी झिल्ली द्वारा परिबन्धित स्थान है। यह काफी चौड़ा स्थान है जिसमें समांगी **माइटोकॉण्ड्रियल मैट्रिक्स** (mitochondrial matrix) भरा रहता है।

मैट्रिक्स छोटे अणुओं तथा विलयशील प्रोटीन्स से युक्त उच्च सान्द्रता वाला जेल के समान पदार्थ है। इसमें कुछ महीन तन्तुक या कणिकाएँ भी होती हैं। कणिकाएँ Mg^{++} तथा Ca^{++} के आयनों को बन्धित करने वाले स्थान हैं। मैट्रिक्स माइटोकॉण्ड्रिओन से सतत होता है।

भीतरी झिल्ली तथा क्रैस्ट्स (crests) पर 80–100Å आकार के अनेक कण
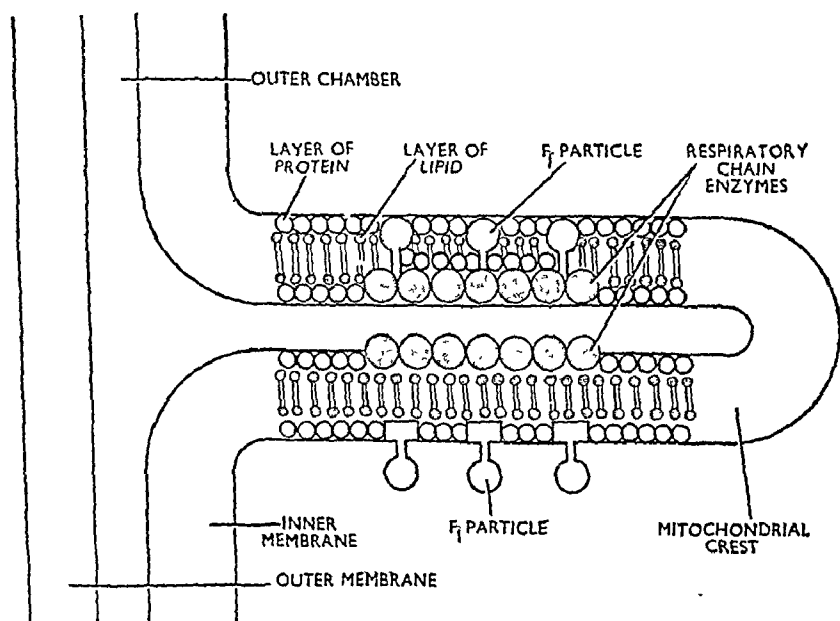
चित्र 5·2. माइटोकॉण्ड्रियल क्रैस्ट की आण्विक संरचना के प्रदर्शन हेतु माइटोकॉण्ड्रिओन की संरचना (Ultrastructure of mitochondrion to show the molecular organization of mitochondrial crest)

लगे रहते हैं। ये एक छोटे-से वृन्त द्वारा झिल्ली से आसंजित रहते हैं। इन कणों को F_1 कण (F_1 particles) कहते हैं। प्रत्येक माइटोकॉण्ड्रिओन में इनकी संख्या 10^4–10^5 तक होती है। ये ATP synthese के पुंज हैं जो ऑक्सीकरण एवम् फॉस्फोरिलीकरण में भाग लेते हैं। ये कण भीतरी झिल्ली की मोटाई में स्थित होते हैं और केवल विशेष कृतियों में ही दृष्टिगत होते हैं जबकि इनको अल्प परासरी विलयन में रखा जा सकता है।

संरचना में विविधता (Variations in Structure)

माइटोकॉण्ड्रिया में क्रैस्ट की आकृति, आकार एवम् विन्यास में अत्यधिक विविधता देखने को मिलती है। बहुधा माइटोकॉण्ड्रियल क्रैस्ट्स (crests) की संख्या एवम् आकार का माइटोकॉण्ड्रिओन की ऑक्सीकरणी या उपापचयी सक्रियता से समन्वय होता है। इनमें से कुछ विविधताएँ निम्न प्रकार से हैं :—

(*i*) क्रैस्ट्स (crests) **अनुदैर्घ्य अक्ष** के समान्तर होते हैं जैसे न्यूरॉन्स तथा रेखित पेशी कोशिकाएँ।

(*ii*) माइटोकॉण्ड्रिओन के लम्बे अक्ष के **लम्बवत्**।

(*iii*) मैट्रिक्स के अन्दर **संकेन्द्रीय** रूप से विन्यसित जैसे स्पर्मेटिड्स में।

(*iv*) अन्तर्ग्रथित होकर **बिलाई** के रूप में जैसे *अमीबा* में।

(*v*) परस्पर सम्बन्धित कक्ष बनाते हुए **वेसीकल्स के जालक** के रूप में जैसे मनुष्य की W.B.C. तथा पैराथाइरॉयड ग्रन्थि की कोशिकाओं में।

(*vi*) नलिकाकार क्रम में विन्यसित जैसे एड्रिनल ग्रन्थियों की कोशिकाएँ।

क्रिस्टी में प्रक्षेपी सबयूनिट भी निक्षेपित रहते हैं जो इलेक्ट्रॉन अभिगमन प्रणाली के एन्जाइम-अणुओं को निरूपित करते हैं। क्रिस्टी की संख्या एवं आकार प्रत्यक्ष रूप से माइटोकॉण्ड्रिया की दक्षता को प्रभावित करते हैं। अन्तरा-झिल्लीमय स्थान तथा माइटोकॉण्ड्रिया के खोखले भीतरी स्थान में एक सघन कणिकीय तरल भरा रहता है जिसे **माइटोकॉण्ड्रियल मैट्रिक्स** (mitochondrial matrix) कहते हैं। सामान्य रूप से मैट्रिक्स समांगी होता है किन्तु इसमें विभिन्न घनत्व के कण भी निक्षेपित हो सकते हैं।

कुछ प्रोटोजोअन प्राणियों तथा गाइना पिग की अन्याशयी कोशिकाओं की माइटोकॉण्ड्रियल झिल्ली की भीतरी सतह से अनेक छोटी-छोटी कणिकाएँ लगी रहती हैं। गाइना पिग के उपवास की स्थिति में इन कणिकाओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार **पारसन्स** (Parsons) ने चूहे की कोशिकाओं में क्रिस्टी की सतहों पर कुछ सबयूनिटों को देखा है। प्रत्येक सबयूनिट में 30–35Å व्यास तथा 45–52Å लम्बाई का **वृन्त** (stem) होता है। ये एक-दूसरे से 100Å की दूरी पर स्थित होते हैं।

रासायनिक संगठन (Chemical Composition)

रासायनिक रूप से माइटोकॉण्ड्रिया में 70% प्रोटीन्स तथा 25–30% लिपिड्स होते हैं। लिपिड्स के कुल भार का 90% फॉस्फोलिपिड तथा शेष 10% कोलिस्टेरोल, कैरोटिनॉयड, विटामिन E तथा अकार्बनिक पदार्थ होते हैं। माइटोकॉण्ड्रिया के मैट्रिक्स में गन्धक, कॉपर तथा आयरन के यौगिकों का भी पता चला है। इनके अतिरिक्त *साइटोक्रोम ऑक्सीडेज, साइटोक्रोम रिडक्टेज, ट्रांसएमिनेज, सहएन्जाइम्स ऑक्टेनो-ऑक्सीडेज तथा वसा अम्ल ऑक्सीडेज* आदि श्वसन एन्जाइन भी माइटोकॉण्ड्रिया में

मिलते हैं। ये मैट्रिक्स के अन्दर भी होते हैं और सीधे झिल्लियों से लगे हुए भी।

प्रकृति (Nature)

माइटोकॉण्ड्रिया अत्यधिक लचीले होते हैं और ऊष्मा, कार्बन डाइऑक्साइड, अम्ल, वसा विलायक, पोटाशियम परमैंग्नेट तथा परासरण दाब में परिवर्तन से शीघ्र ही प्रभावित हो जाते हैं। इनमें विभाजन एवं समेकन की क्रियाओं को भी देखा गया है।

कार्य (Functions)

माइटोकॉण्ड्रिया की कार्य-विधि एक विवादास्पद विषय है किन्तु इनके जैविक महत्व के सम्बन्ध में तनिक मात्र भी सन्देह नहीं है। वैज्ञानिकों ने माइटोकॉण्ड्रिया के निम्नलिखित कार्यो का उल्लेख किया है :—

1. श्वसन या भोजन का ऑक्सीकरण (Respiration or oxidation of food)—माइटोकॉण्ड्रिया में भोजन का ऑक्सीकरण होता है, अतः इनमें भोजन के ऑक्सीकरण के लिए अनेक एन्जाइम होते है। ऑक्सीकरण के अन्तर्गत माइटोकॉण्ड्रिया भोज्य पदार्थ में संचित स्थितिज ऊर्जा को गतिज ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं जो कोशिका की विभिन्न क्रियाओं के पूर्ण करने के लिए उपयोग में आती है।

ऊर्जा की अतिरिक्त मात्रा एडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट (ATP) के रूप में संचित रहती है जो आवश्यकता के अनुसार विभिन्न शारीरिक क्रियाओं के सम्पादन हेतु परिमुक्त होती रहती है। इसी कारण माइटोकॉण्ड्रिया कोशिका के **'पावर हाउस'** कहलाते हैं।

2. स्राव (Secretion)—**Horning** ने माइटोकॉण्ड्रिया का जाइमोजन कणिकाओं (zymogen granules) के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है। उसके अनुसार इनमें प्रोटिओलाइटिक एन्जाइम (proteolytic enzyme) होते हैं जो संलयी (lytic) एवम् संश्लेषण क्रियाओं का नियमन करते हैं।

3. वसा का उपापचय (Metabolism of fat)—**Wothon** के अनुसार माइटोकॉण्ड्रिया का वसा के उपापचय से सम्बन्ध होता है। **Benslay** ने भी इसी प्राक्कल्पना का समर्थन किया है। ऐसा समझा जाता है कि माइटोकॉण्ड्रिया में कोशिका के लिए वसा की अतिरिक्त मात्रा संचित रहती है तथा अंकुरण करते हुए बीजों में ये डायस्टेटिक क्रिया (diastatic activity) में सहायक होते है।

4. **Lavi** तथा **Chevremont** के अनुसार मायोफिब्रिल्स माइटोकॉण्ड्रिया से विकसित होते है।

प्रश्न 10. माइटोकॉण्ड्रिया को कोशिका के "पावर हाउस" क्यों कहते हैं? श्वसन क्रिया में दो मुख्य रासायनिक पथ कौन-कौन से हैं?

Why are mitochondria called the "power houses" of the cell? What are the two main chemical pathways in respiration?

(Agra 1969 ; Saurasthra 73)

माइटोकॉन्ड्रिया को सामान्यतः कोशिका के **पावर हाउस** कहते हैं क्योंकि इनमें उपापचय क्रियाओं के वे रासायनिक पथ पूर्ण होते हैं जिनके अन्तर्गत ऊर्जा उत्पन्न होती है जो विभिन्न शारीरिक क्रियाओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लायी जाती है। ऊर्जा के उत्पादन के समय होने वाली विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं का

सामूहिक अध्ययन **उपापचय पथ** (metabolic pathway) या **श्वसन चक्र** (respiratory cycle) के अन्तर्गत किया जाता है।

माइटोकॉण्ड्रिया में होने वाले श्वसन पथ या श्वसन चक्र को दो पदों में बाँटा जा सकता है :—

1. ग्लाइकोलिसिस या अनॉक्सी श्वसन
2. क्रैब्स चक्र या ऑक्सी श्वसन

1. ग्लाइकोलिसिस या अनॉक्सी श्वसन (Glycolysis or anaerobic respiration)।

ग्लाइकोलिसिस के अन्तर्गत स्थितिज ऊर्जा युक्त ग्लुकोस के 6-कार्बन परमाणु वाले अणु का विभिन्न लघु अणुओं में विघटन होता है तथा एक ग्लुकोस अणु के विघटन से 24 cal. ऊर्जा निकलती है जो एडिनोसीन ट्राइफोस्फेट (ATP) के दो अणुओं में संचित रहती है। यह प्रक्रिया अनेक विशिष्ट एन्जाइम्स एवम् सहकारकों द्वारा उत्प्रेरित एवम् नियन्त्रित होती है।

ग्लाइकोलिसिस की क्रिया ग्लूकोस के फॉस्फेट ग्रुप से फॉस्फोरिलीकरण (phosphorylation) के साथ प्रारम्भ होती है जिसके फलस्वरूप glucose-1-phosphate का निर्माण होता है। यह glucose-6-phosphate में तथा इसके
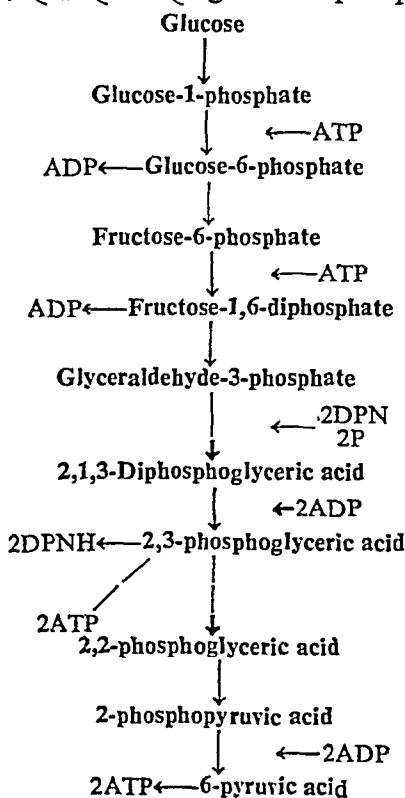
चित्र 5.3. ग्लूकोस का अनॉक्सी श्वसन (Anaerobic glycolysis of glucose)

पश्चात् fructose 6-diphosphate में परिवर्तित हो जाता है। फॉस्फोरिलीकरण की अनेक प्रक्रियाओं के पश्चात् यह trioses के दो अणुओं में विभक्त हो जाता है। इन क्रियाओं के पूर्णचक्र में ग्लूकोस के एक अणु के साथ ATP के दो अणु उपयोग में आते हैं तथा ATP के चार अणु बनते हैं। इस प्रकार ATP के दो अणु अतिरिक्त मात्रा में होते है जो विभिन्न कोशिकीय क्रियाओं की पूर्ति के काम आते हैं। इस पूर्ण प्रक्रम को चित्र 5·3 द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

ऑक्सी श्वसन या क्रैब्स चक्र (Aerobic respiration or Krebs cycle)

ऑक्सी श्वसन या क्रैब्स चक्र के अन्तर्गत ग्लाइकोलिसिस के फलस्वरूप तथा
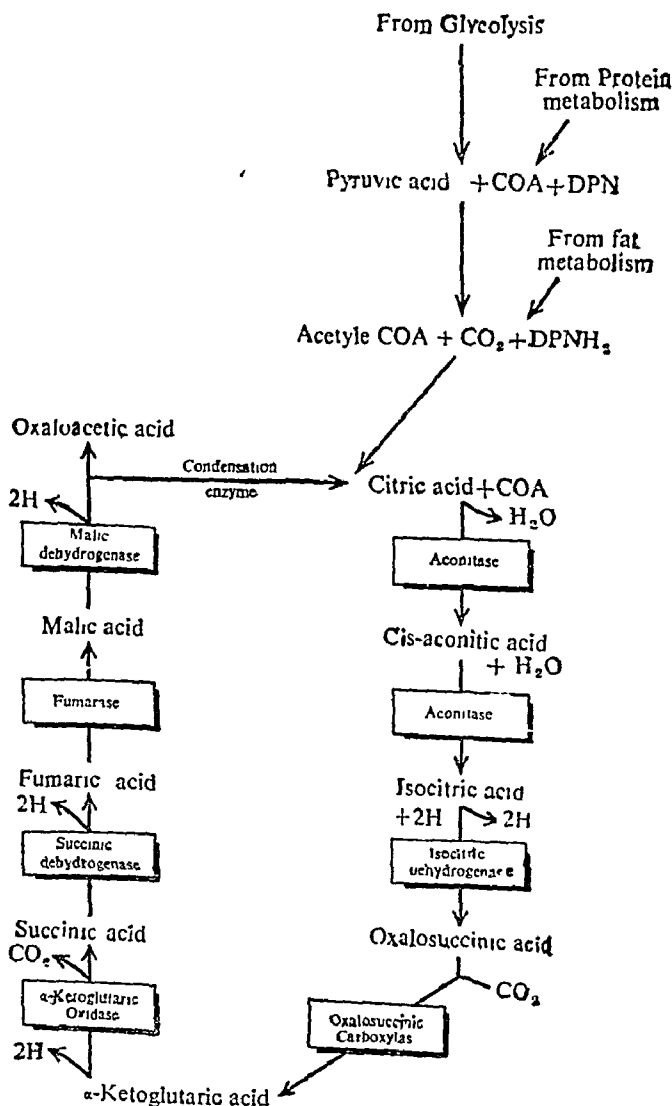
चित्र 5·4. क्रैब्स-चक्र के विभिन्न पदों का चित्रीय अनुरेखण

वसा एवम् प्रोटीन के जल-विश्लेपण के अन्तिम उत्पादों का ऑक्सीजन की उपस्थिति में ऑक्सीकरण होता है जिससे CO_2 तथा जल उत्पन्न होता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि ऑक्सी श्वसन विभिन्न खाद्य पदार्थों के उपापचय का अन्तिम सर्वनिष्ठ पद है जिसके अन्तर्गत इनमें ऑक्सीजन की उपस्थिति में विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप ये CO_2 तथा जल में ऑक्सीकृत हो जाते हैं।

इस चक्र में **LTPP** (lipothiamid pyrophosphate) तथा **CoA** (coenzyme A) नामक दो सहएन्जाइम्स की उपस्थिति आवश्यक है। इन एन्जाइम्स की उपस्थिति में पाइरुविक अम्ल के अपचयन (reduction) के फलस्वरूप acetyl coenzyme A, CO_2 तथा हाइड्रोजन के दो परमाणु बनते हैं। हाइड्रोजन के परमाणु इलेक्ट्रॉन परिवहन प्रणाली (electron transport system) को पारित कर दिये जाते हैं जिसके अन्तर्गत पहले तो ये DPN को और उसके बाद साइटोक्रोम्स को पहुँचते हैं। Acetyl coenzyme A, oxaloacetic acid से प्रक्रिया करके citric acid बनाता है। Citric acid में अनेक परिवर्तन होते हैं जिसके फलस्वरूप अन्तिम उत्पाद के रूप में oxaloacetic acid निर्मित होता है। यह acetyl coenzyme A की उपस्थिति में पुनः इसी प्रक्रिया चक्र को प्रारम्भ करता है। इसमें होने वाली प्रक्रियाओं का चित्र 5·4 के रूप में प्रतिपादन किया जाता है।

Citric acid, cisaconitic acid में परिवर्तित हो जाता है जो isocitric acid में बदल जाता है। ऑक्सीकरण के फलस्वरूप isocitric acid, oxalocitric acid में तथा उसके बाद α-ketoglutaric acid में बदल जाता है। α-ketoglutaric acid में डिकार्बोक्सिलीकरण के फलस्वरूप यह ऑक्सीकृत होकर succinic acid बनाता है। Succinic acid में से जल का एक अणु निकलने के कारण यह fumaric acid में बदलकर अन्त में oxaloacetic acid में परिवर्तित हो जाता है।

उपर्युक्त पूर्ण चक्र में पाँच जोड़ी हाइड्रोजन परमाणु उत्पन्न होते हैं जो इलैक्ट्रॉन परिवहन प्रणाली द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं जिसके फलस्वरूप ATP के 36 अणु बनते हैं।

अतः हम देखते हैं कि ग्लुकोस के एक अणु के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप ATP के 38 अणु (2 ATP अणु निर्वात् श्वसन चक्र में तथा 36 अणु क्रैब्स चक्र में) उत्पन्न होते हैं जो ADP में परिवर्तित होकर 456 cal. ऊर्जा परिमुक्त करते हैं।

यह श्वसन शृंखला माइटोकॉण्ड्रिया में पूर्ण होती है तथा विभिन्न क्रियाओं की इस शृंखला में ATP के 38 अणु (ऊर्जायुक्त यौगिक) उत्पन्न होते है। ये अणु ऊर्जा के आगार हैं जो ATP में बदलकर 456 cal. ऊर्जा परिमुक्त करते है। इसलिए माइटोकॉण्ड्रिया को कोशिका के पावर हाउस कहते है।

प्रश्न 15. गॉल्जी काय तथा माइटोकॉण्ड्रिया की रचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।

Explain the structure of Golgi bodies and mitochondria along with their function. (*Jiwaji 1971*)

गॉल्जी उपकरण की रचना एवम् कार्यों का वर्णन कीजिये।

Give an account of the structure and functions of Golgi apparatus. *(Jabalpur 1970, 72 ; Delhi 74)*

गॉल्जी काय एवम् माइटोकॉण्ड्रिया की संरचना एवम् कार्यों का वर्णन करिये।

Explain the structure of Golgi bodies and mitochondria along with their functions. *(Agra 1971 ; Jabalpur 72)*

गॉल्जी उपकरण या गॉल्जी काय

(Golgi Apparatus or Golgi Bodies)

प्राणियों एवम् पेड़-पौधों की कोशिकाओं में एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम से सम्बद्ध समतल झिल्लियों (यूनिट मैम्ब्रेन्स) के गुच्छे मिलते हैं। इनकी खोज सर्वप्रथम **Camilo Golgi** ने की थी और इसीलिए इनको **गॉल्जी उपकरण** (Golgi apparatus), **गॉल्जी काय** (Golgi bodies) या **गॉल्जी कॉम्प्लेक्स** (Golgi complex) कहते हैं।

उपस्थिति एवम् स्थिति (Occurrence and Localization)

गॉल्जी कम्प्लैक्स या काय बैक्टीरिया एवम् माइक्रोप्लैज्मा को छोड़कर अन्य सभी प्राणी एवम् पादप कोशिकाओं में मिलते हैं। विभिन्न जीवों की कोशिकाओं में ही नहीं अपितु एक ही कोशिका में भी सक्रियता की विभिन्न प्रावस्थाओं में गॉल्जी काय अत्यधिक आकारिक भिन्नता प्रदर्शित करता है। पादप कोशिकाओं एवम् अकशेरुकियों में गॉल्जी उपकरण समस्त कोशिकाद्रव्य में विसरित अवस्था में होता है और इसे **डिक्टिओसोम** (dictyosome) कहते हैं। डिक्टिओसोम्स में रिक्तिकाएँ नहीं होतीं।

विन्यास (Orientation)

गॉल्जी कॉम्प्लैक्स में सिस्टर्नी के चट्टे या स्टैक इस प्रकार से ध्रुवीकृत होते हैं कि इनका समीपस्थ सिरा एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम या केन्द्रकावरण से तथा दूरस्थ सिरा स्रावी वेसीकल्स के निर्माण से सम्बद्ध होता है।

संरचना (Structure)

विभिन्न जन्तुओं की कोशिकाओं तथा एक ही कोशिका की विभिन्न प्रावस्थाओं में भी गॉल्जी काय स्थिति, आकार एवम् रचना में अत्यधिक भिन्नता प्रदर्शित करता है। पूर्ण परिपक्व एवम् सक्रिय कोशिकाओं में गॉल्जी कॉम्प्लैक्स सुविकसित होता है जबकि निष्क्रिय एवम् वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होने वाली कोशिकाओं में यह ह्रसित होता है।

परारचना (Ultrastructure)

पूर्ण परिपक्व गॉल्जी काय में निम्नलिखित तीन घटक स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं :—

1. चपटे कोष या सिस्टर्नी (Flattened sacs or cisternae)
2. बड़ी रिक्तिकाएँ (Large vacuoles)
3. सूक्ष्म वेसिकल्स के गुच्छे (Clusters of minute vesicles)

1. चपटे कोष या सिस्टर्नी (Flattened sacs or cisternae)—ये समान्तर बण्डलों में विन्यासित लम्बी नलिकाओं या फिलामेण्ट्स के रूप में होते हैं। ये अकणि-

कीय एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम के सदृश होते हैं। सिस्टर्नी गॉल्जी कॉम्प्लैक्स का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग हैं।
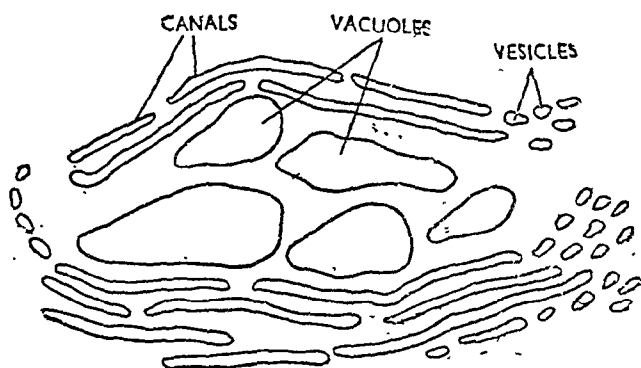
चित्र 5·5. नलिकाओं, रिक्तिकाओं तथा वेसीकल्स को प्रदर्शित करते हुए गॉल्जी कॉम्प्लैक्स की रचना (Structure of Golgi complex showing canals, vacuoles and vesicles)

2. बड़ी रिक्तिकाएँ (Large vacuoles)—ये बड़ी, विस्तृत व गोलाकार रिक्तिकाएँ हैं जो सिस्टर्नी के किनारों पर पायी जाती हैं। ये चपटे कोषों के विस्तारण से बनती हैं जिनमें कोषों की दोनों झिल्लियाँ एक-दूसरे से काफी दूर हटकर चौड़ी हो जाती हैं। इनको गॉल्जी कॉम्प्लैक्स के नैगेटिव प्रतिबिम्ब (negative image) के लिए उत्तरदायी समझा जाता है।

3. वेसीकल्स (Vesicles)—ये 600 Å आकार की सूक्ष्म बिन्दुओं के समान संरचनाएँ हैं। इनका सिस्टर्नी की परिधि से घनिष्ठ सम्पर्क होता है तथा ये उनसे मुकुलन द्वारा अथवा कोषों के सिरों से आकुंचन द्वारा वर्धित होते हैं।

गॉल्जी कम्प्लैक्स की परारचना (ultrastructure) से ज्ञात होता है कि प्लैज्मा झिल्ली के समान इसकी झिल्लियाँ भी यूनिट मैम्ब्रेन होती हैं। प्रत्येक झिल्ली 60–70Å मोटी तथा लिपिड एवम् प्रोटीन अणुओं की बनी होती है। मूल रूप से गॉल्जी कॉम्प्लैक्स फास्फोलिपिड्स, प्रोटीन्स तथा क्षार एवम् अम्लीय फॉस्फेट्स का बना होता है। गॉल्जी उपकरण की दोनों सतहें अलग-अलग रूप से अभिरंजित होती हैं।

कार्य (Functions)

यद्यपि गॉल्जी कॉम्प्लैक्स के कार्यों को लेकर पहले अनेक प्रतिवाद थे किन्तु अब निम्नलिखित कार्यों में इसका योगदान समझा जाता है :—

1. श्रावी वेसीकल्स का निर्माण (Formation of secretory vesicles)—कणिकीय एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम के राइबोसोम प्रोटीन्स का संश्लेषण करते हैं। ये एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम के सिस्टर्नी की गुहा में प्रवेश करके गॉल्जी उपकरण में पहुँचते हैं जहाँ इनको संचित कर लिया जाता है। गॉल्जी कॉम्प्लैक्स द्वारा सरल शर्कराओं से संश्लेपित कार्बोहाइड्रेट्स प्रोटीन्स के साथ मिलकर ग्लाइकोप्रोटीन बनाते हैं। जब गॉल्जी सिस्टर्नी एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम से सम्बद्ध

नही होते तव प्रोटीन्स के परिवहन के लिए एक अन्य विधि काम में लायी जाती है। इस विधि में कणिकीय एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम संश्लेषित प्रोटीन्स से युक्त मसृण वेसीकल्स (smooth vesicles) को मुक्त कर देती है। ये वेसीकल्स गॉल्जी कॉम्प्लैक्स की ओर परिचलन करके इसके सिस्टर्नी से समेकित हो जाते हैं। वेसीकल्स मे स्थित प्रोटीन्स सिस्टर्नी के द्विकस्थान में संचित होते रहते है। इसके वाद छोटे-छोटे वेसीकल्स सिस्टर्नी के दूरस्थ सिरों से कलिकाओं के रूप मे मुकुलन द्वारा अलग होते हैं। इन वेसीकल्स मे स्रावी उत्पादन होते है और **स्रावी वेसीकल्स** (secretory vesicles) या **जाइमोगन कणिकाएँ** (zymogen granules) कहलाते हैं। ये कणिकाएँ सतह की ओर चलकर कोशिका की सतह पर फट जाती हैं और अपनी अन्तर्वस्तुओं को मुक्त कर देती हैं।
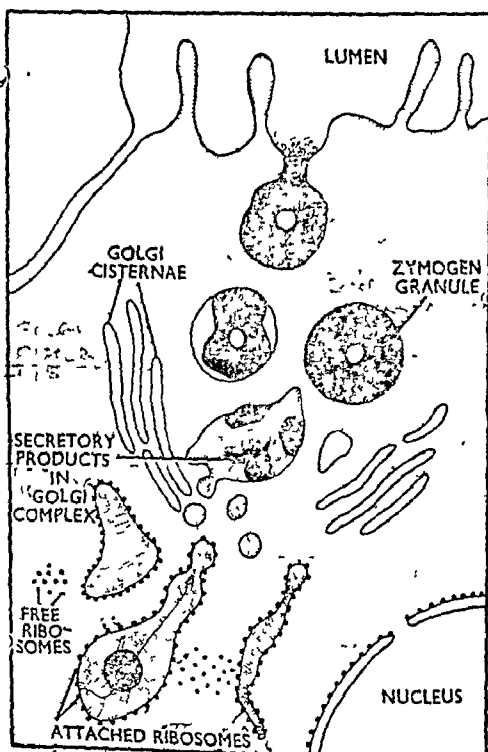
चित्र 5·6. गॉल्जी कॉम्प्लैक्स द्वारा स्रावी वेसीकल्स का निर्माण (Formation of secretory vesicles by Golgi complex)

कोशिकाओं की प्रकृति के अनुरूप स्रावी वेसीकल्स में विभिन्न प्रकार के पदार्थ होते हैं। ये पदार्थ लिपिड्स, पित्त, पीतक, पाचक एन्जाइम्स तथा हारमोन्स आदि हैं।

2. यौगिकों का अवशोषण एवम् संग्रह (Absorption and storage of compounds)—गॉल्जी कॉम्प्लेक्स iron, copper तथा gold आदि के यौगिकों का अवशोषण करता है। यह लिपिड्स, आदि कार्वनिक यौगिकों के अवशोषण, संग्रह तथा सम्भवतया इनके रूपान्तरण से भी सम्बद्ध होता है। **Kirkman** तथा **Severighans** के अनुसार गॉल्जी कॉम्प्लैक्स संघनन झिल्लियाँ हैं जो उत्पादों को जल की क्षति के पश्चात् विन्दुकों या कणों में परिवर्तित कर देती हैं।

3. एन्जाइम्स एवम् हारमोन्स का स्राव (Secretion of enzymes and hormones)—**Cajal** (1914) ने गॉल्जी कॉम्प्लैक्स तथा गॉब्लेट कोशिकाओं (Goblet cells) मे स्राव की सक्रियता के बीच आकारिकी सम्बन्ध को अनुरेखित किया। इस दृष्टिकोण को इस तथ्य से भी काफी बल मिलता है कि गॉल्जी कॉम्प्लैक्स स्राव कोशिकाओं में सुविकसित रूप से पाये जाते हैं। ये पदार्थ लिपिड्स (lipids), योक (yolk), पित्त (bile), एन्जाइम्स (enzymes) तथा हारमोन्स (hormones), आदि हैं। **Palay** (1958), व अन्यों ने पैंक्रियास की एक्जोक्राइन

कोशिकाओं में जाइमोजन कणों (zymogen granules) के निर्माण में इनके सम्बन्ध का पता लगाया है।

4. हारमोन्स का उत्पादन (Production of hormones)—Cowdry ने यह सुस्थापित किया कि एण्डोक्राइन कोशिकाओं में गॉल्जी कॉम्प्लैक्स हारमोन्स के स्राव में सहायता करता है, क्योंकि गॉल्जी उपकरण के क्षतिग्रस्त होने पर इनमें हारमोन के स्राव की कमी हो जाती है।

5. एक्रोसोम का निर्माण (Formation of acrosome)—शुक्राणुजनन के समय गॉल्जी कॉम्प्लैक्स **एक्रोसोम** (acrosome) का निर्माण करता है जो परिपक्व शुक्राणु में एक टोपी-नुमा रचना के रूप में होता है और इसमें लिपोलाइटिक एन्जाइम होते हैं। लिपोलाइटिक एन्जाइम निषेचन के समय अण्डाणु की मैम्ब्रेन को
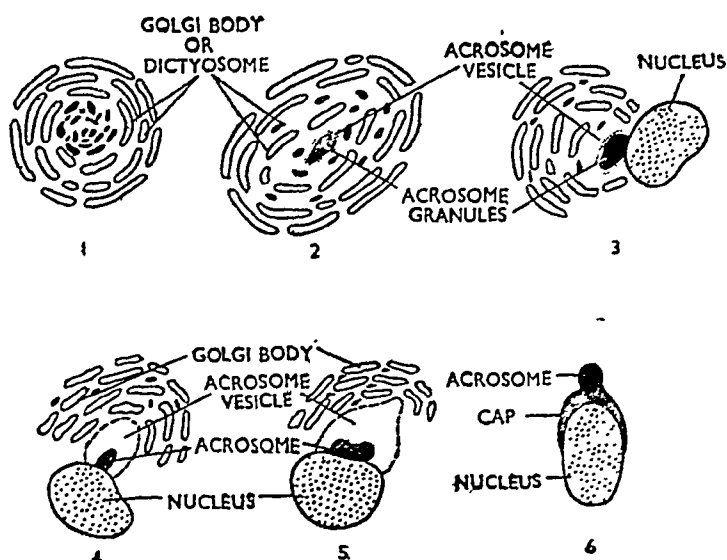
चित्र 5·7. शुक्राणु में एक्रोसोम का निर्माण
(Formation of acrosome in a sperm)

घोलकर अण्डाणु को वेधने में सहायता करते हैं। एक्रोसोम का निर्माण एन्जाइम से भरे हुए वेसीकल्स के विकसित होने के साथ प्रारम्भ हो जाता है। वेसीकल्स या तो परस्पर मिलकर एक बड़ा वेसीकल बनाते हैं अथवा फिर ये झुण्डों के रूप में विन्यसित हो जाते हैं। ये केन्द्रक-कला के साथ मिलकर एक्रोसोम का निर्माण करते हैं।

6. कार्बोहाइड्रेट्स का संश्लेषण (Synthesis of carbohydrates)—जिस प्रकार राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण का स्थान हैं ठीक उसी प्रकार गॉल्जी उपकरण को सरल कार्बोहाइड्रेट्स से जटिल कार्बोहाइड्रेट्स का स्थान माना जाता है। पेक्टिक पदार्थ (कार्बोहाइड्रेट) गॉल्जी उपकरण द्वारा ही स्रावित होता है।

7. गॉल्जी उपकरण ATP उत्पन्न करने के लिए माइटोकॉण्ड्रिया को उत्प्रेरित करता है। ATP श्वसन चक्र, तंत्रिका संचारण तथा न्यूक्लीक अम्लों एवं प्रोटीन संश्लेषण में काम आता है।

माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria)

कृपया प्रश्न 14 देखिये ।

प्रश्न 16. माइटोकॉण्ड्रिया, गॉल्जी कॉम्प्लैक्स, एण्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम तथा लाइसोसोम की परारचना एवम् कार्यों का वर्णन करिये ।

Give an account of ultrastructure of mitochondria, Golgi complex, endoplasmic reticulum and lysosome and describe their functions in brief. (*Punjab 1969 ; Raj. 72*)

माइटोकॉण्ड्रिया की परारचना
(Ultrastructure of Mitochondria)

कृपया प्रश्न 14 देखिये ।

गॉल्जी कॉम्प्लैक्स की परारचना
(Ultrastructure of Golgi Complex)

कृपया प्रश्न 15 देखिये ।

एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम की परारचना
(Ultrastructure of Endoplasmic Reticulum)

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन करने पर एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम आधार दृश्य या मैट्रिक्स में फैली हुई नलिकाओं या सरणियों की एक विस्तृत प्रणाली प्रतीत होती है । ये सरणियाँ भी केन्द्रकावरण या प्लैज्मा मैम्ब्रेन के समान मौलिक रचना वाली मैम्ब्रेन्स द्वारा परिवन्धित रहती हैं । कभी-कभी ये मैम्ब्रेन्स आन्तरिक कोशिका मैम्ब्रेन से लेकर वाह्य केन्द्रकावरण मैम्ब्रेन तक विस्तृत होती हैं और इस प्रकार वाह्य वातावरण से केन्द्रक तक सरणियों की एक विस्तृत प्रणाली वनाती हैं । इनमें से कुछ मैम्ब्रेन्स समतल (smooth) होती हैं किन्तु कणिकाओं के निक्षेपित होने के कारण रूक्ष हो जाती हैं । ये मैम्ब्रेन की वाह्य सतह पर सघन तथा नियमित क्रम में विन्यसित होती हैं । इनको **राइवोसोम्स** (ribosomes) कहते हैं । विभिन्न कोशिकाओं तथा एक ही कोशिका की विभिन्न सक्रिय अवस्थाओं में एण्डोप्लैज्मिक
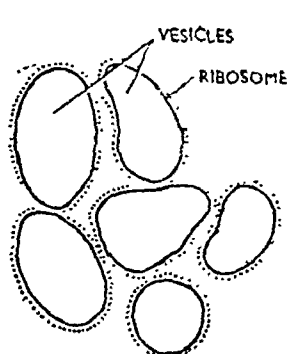
चित्र 5·8. एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम में वेसीकल्स (Vesicles in endoplasmic reticulum)
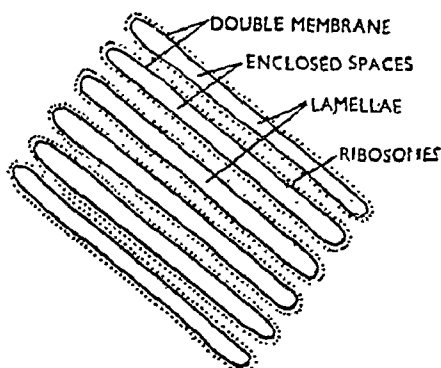
चित्र 5·9. एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम में सिस्टर्नी (Cisternae in endoplasmic reticulum)

रेटीकुलम में अत्यधिक भिन्नता पायी जाती है।

एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम के आकार, आकृति, गुणों एवम् कोशिका की अन्य रचनाओं से साहचर्य के आधार पर इसको निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

1. वेसीकल्स (Vesicles)—ये 25–500 mμ की लगभग गोलाकार, वृत्ताकार या अण्डाकार रचनाएँ हैं।

2. सिस्टर्नी (Cisternae)—ये लम्बे, पतले तथा चपटे लैमिलर वेसीकल्स हैं जो 40–50 mμ मोटे तथा केन्द्रक के चारों ओर क्रमिक स्तरों के रूप में समान्तर कतारों में विन्यसित रहते हैं।

चित्र 5·10. एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम की नलिकाएँ (Tubules in endoplasmic reticulum)

3. नलिकाएँ (Tubules)—ये 50–100 mμ मोटी अनियमित रूप से शाखित नलिकाएँ हैं जो मुख्य रूप से रेटीना की रंजक एपिथीलियम कोशिकाओं तथा स्टेरॉयड्स के संश्लेपण में सक्रिय कोशिकाओं में पायी जाती हैं।

इनका विन्यास विभिन्न कोशिकाओं में भिन्न-भिन्न होता है। ये स्तनधारियों की याकृत कोशिकाओं में समान्तर तथा अग्न्याशय कोशिकाओं में अनियमित रूप से विन्यसित होती हैं। रेखित पेशी कोशिकाओं में ये नलिकाओं के जालक के रूप में होती हैं।

एक पूर्णतया विभेदीकृत कोशिका में एण्डोप्लैज्मिक प्रणाली अनेक उप-प्रणालियों में विभाजित होती है।

1. केन्द्रक-आवरण (Nuclear envelope)—यह केन्द्रक के चारों ओर सिस्टर्नी या लैमेली के रूप में पाया जाता है जिसमें अनेक छिद्र होते हैं।

2. कोशिका-द्रव्यात्मक एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम (Cytoplasmic endoplasmic reticulum)—यह जालक, कणात्मक या रुक्ष रूप में (RNA कणिकाओं के साथ) तथा गॉल्जी कॉम्प्लैक्स से सम्बद्ध समतल या कणात्मक (RNA कणिकाओं के बिना) रूप में पाया जाता है।

एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम के प्ररूप (Types of Endoplasmic Reticulum)

एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम दो प्रकार के होते हैं :—

1. अकणिकीय या मसृण एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम (Agranular or smooth endoplasmic reticulum)—इस प्रकार के रेटीकुलम की झिल्लियाँ मसृण अर्थात् राइबोसोम रहित होती हैं। मसृण एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम उन कोशिकाओं में मिलता है जो प्रोटीन संश्लेपण में भाग नहीं लेतीं, जैसे वसा कोशिकाएँ, अन्तराली कोशिकाएं, ग्लाइकोजन का संचय करने वाली कोशिकाएँ तथा पेशी कोशिकाएँ।

2. **कणिकीय या रुक्ष एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम** (Granular or rough endoplasmic reticulum)—इस प्रकार के रेटीकुलम की झिल्लियों में राइबोसोम कण निक्षेपित होते हैं। रुक्ष एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम प्रोटीन संश्लेषण में सक्रिय रूप से भाग लेने वाली कोशिकाओं में मिलता है।

एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम से सम्बद्ध एन्जाइम्स (Enzymes associated with endoplasmic reticulum)—एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम की झिल्लियों में अनेक एन्जाइम्स निक्षेपित होते हैं जो कोशिका की संश्लेषी सक्रियताओं के लिए आवश्यक होते है। ये एन्जाइम NADH-cytochrome-C, reductase, NADH-diaphorase, stearases, Mg-activated ATPase, glucose-6-phosphatases तथा nucleotide diphosphate आदि हैं। एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम के एन्जाइम्स के निम्नलिखित कार्य है :—

(*i*) वसा अम्लों का संश्लेषण।
(*ii*) ग्लिसराइड्स तथा फॉस्फोलिपिड्स का संश्लेषण।
(*iii*) स्टिरॉइड्स का जीव-संश्लेषण।
(*iv*) प्लैज्मोजन का उपापचय।
(*v*) L-एस्कॉर्बिक एसिड का संश्लेषण।
(*vi*) एरिल तथा स्टिरॉइड संश्लेषण।
(*vii*) ऐरोमैटिकीकरण तथा हाइड्रॉक्सिलीकरण।
(*viii*) UDP यूरोनिक एसिड उपापचय।
(*ix*) UDP ग्लूकोस डाइफॉस्फोरिलीकरण।

एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम के कार्य
(Functions of Endoplasmic Reticulum)

1. यह कोशिकाद्रव्य में जालक के रूप में फैलकर कोशिका के कोलॉयडी मैट्रिक्स को यान्त्रिक अवलम्बन प्रदान करता है।

2. कोशिका के विभिन्न भागों में पदार्थों की सान्द्रता बनाये रखता है एवम् आदान-प्रदान पर नियन्त्रण रखता है।

3. एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम कोशिका के विभिन्न पदार्थों के संचरण के लिए परिवहन तन्त्र के समान कार्य करता है।

4. एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम पर लगे हुए राइबोसोम कण प्रोटीन संश्लेषण का कार्य करते हैं।

5. कोशिका में पूर्ण होने वाली विभिन्न उपापचय क्रियाओं तथा एन्जाइम्स की क्रियाओं के लिए ये झिल्लियाँ अतिरिक्त सतह प्रदान करती हैं।

6. याकृत कोशिकाओं में अकणिकीय एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम ग्लाइकोजन के उपापचय से सम्बन्धित होता है।

7. इससे कोशिका की झिल्लियों से निर्मित अन्य रचनाओं की उत्पत्ति होती है।

8. एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम की झिल्लियाँ कोशिका में ATP के संश्लेषण स्थान हैं। ATP कोशिका की समस्त उपापचयी क्रियाओं तथा पदार्थों के परिवहन के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है।

9. यह केन्द्रक से कोशिकाद्रव्य में स्थित विभिन्न अंगकों को आनुवंशिक पदार्थ के पारित होने में भी सहायता करता है और इस प्रकार प्रोटीन्स, वसाओं तथा कार्बोहाइड्रेट्स के पाचन का नियमन करता है।

प्रश्न 17. लाइसोसोम, राइबोसोम तथा सेण्ट्रोसोम की संरचना एवम् कार्यों का वर्णन करिये।

Describe the structure and functions of lysosomes, ribosomes and centrosome. (*Nagpur 1969* ; *Jiwaji 69* ; *Delhi 70*)

1. लाइसोसोम्स (Lysosomes)

सर्वप्रथम **de Duve** (1955) ने लाइसोसोम्स को कोशिकाद्रव्यात्मक कणों के रूप में देखा था जो माइटोकॉण्ड्रिया तथा माइक्रोसोम्स से पूर्णतया भिन्न होते हैं। लाइसोसोम्स मुख्य रूप से प्राणि कोशिकाओं में पाये जाते हैं किन्तु ये कुछ पादप कोशिकाओं में भी पाये जाते हैं। ये गोलाकार या अनियमित आकृति के होते हैं और इनका आकार 0·1–8μ होता है। कुछ कोशिकाओं में इनका आकार विशेष रूप से दीर्घ होकर 5μ तक भी होता है।

संरचना (Structure)

संरचनात्मक रूप से लाइसोसोम्स गोलाकार स्थान हैं जो एसिड फॉस्फेट्स, ऊतकों को घोलने वाले एन्जाइम्स तथा फेरिटिन कणिकाओं (feritin granules) की प्रचुर मात्रा से परिपूर्ण एक सघन द्रव से भरे रहते हैं जो एक बाह्य झिल्ली द्वारा परिबन्धित रहते हैं। यह झिल्ली रासायनिक रूप से लिपोप्रोटीन के स्तरों की बनी होती है जो प्लैज्मालेमा की यूनिट मैम्ब्रेन के स्तरों के समान विन्यसित होते हैं। इसका भीतरी भाग लगभग ठोस या अत्यधिक सघन प्रतीत होता है। कभी-कभी यह एक अत्यधिक संघनित **बाह्य क्षेत्र** (outer zone) तथा एक कम संघनित **भीतरी क्षेत्र** (inner zone) और एक कम संघनित **भीतरी मध्य क्षेत्र** (inner central zone) में भिन्नित होता है।

चित्र 5·11. लाइसोसोम्स में पाये जाने वाले विभिन्न एन्जाइम (Representation of various enzymes in a lysosome)
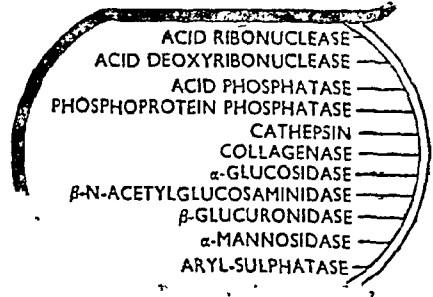
लाइसोसोम्स बहुरूपी होते हैं तथा इनके अवयव पाचन अवस्था के अनुरूप बदलते रहते हैं। लाइसोसोम्स को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(*i*) पाचक रसधानियों से युक्त लाइसोसोम्स, (*ii*) वसा आदि अपच पदार्थों की अवशिष्ट कायों से युक्त लाइसोसोम्स। विभिन्न क्रियात्मक एवम् रोगजनक अवस्थाओं में नष्ट होती हुई कोशिकाओं में दीर्घ लाइसोसोम्स या **साइटोलाइसोसोम्स** (cytolysosomes) भी देखे गये हैं। साइटोलाइसोसोम acid hydrolyses से परिपूर्ण होते हैं।

लाइसोसोम्स के उद्भव के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। समझा जाता है कि ये या तो गॉल्जी काय से अथवा फिर पिनोसाइटोसिस द्वारा बाह्य कोशिकीय रूप से विकसित होते हैं।
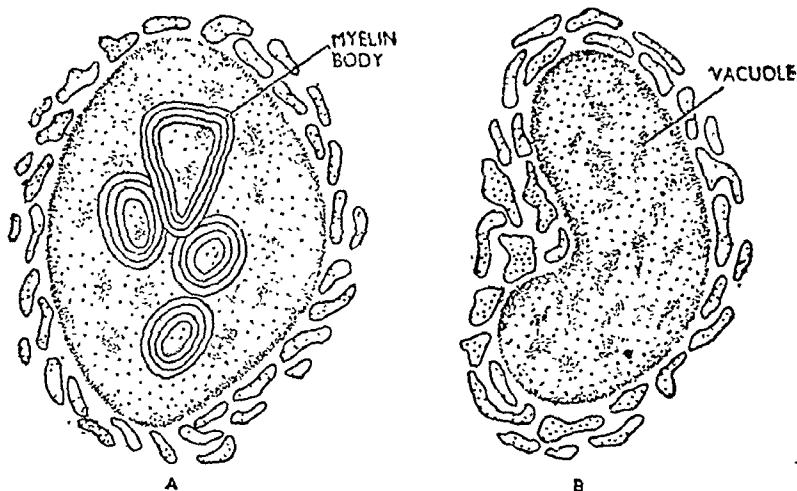
चित्र 5·12. चूहे की वृक्क-कोशिकाओं में पाये जाने वाले दो प्रकार के लाइसोसोम्स (Two different types of lysosomes in the kidney cell of rat)

कार्य (Functions)

ऐसा प्रकल्पित किया जाता है कि लाइसोसोम्स ऊतक विश्लेषक एन्जाइमों (tissue hydrolysing enzymes) से भरी हुई रसधानियाँ हैं। इनमें उपस्थित एन्जाइम्स पोलीसैकेराइड शर्करा, प्रोटीन तथा न्यूक्लीक अम्लों के अणुओं के विघटन को उत्प्रेरित करते हैं। अतः लाइसोसोम्स (*lyso*, lytic : पाचक ; *soma*, body : काय) खाद्य पदार्थों के अन्तरा-कोशिकीय पाचन में सहायता करते हैं। कोशिका में द्रव भोजन के अवशोषण के फलस्वरूप बनी पिनोसाइटिक रिक्तिकाएँ तथा भोजन के ठोस कणों के अन्तर्ग्रहण से बनी फैगोसाइट रिक्तिकाएँ जब लाइसोसोम के सम्पर्क में आती हैं तो लाइसोसोम फटकर उनमें ऊतक विश्लेषक या ऊतक पाचक एन्जाइम स्रावित करते हैं जिससे उनका पाचन होता है। इस प्रकार की पाचन क्रिया को अन्तःद्रव्य **परिस्रवण** या एण्डोसाइक्लोसिस (endocyclosis) कहते हैं। ये पाचक

चित्र 5·13. लाइसोसोम की क्रिया का चित्रीय अनुरेखण (Diagrammatic representation of the action of lysosome)

एन्जाइम्स लाइसोसोम्स के अन्दर इसलिए बन्द रहते हैं ताकि स्वयं कोशिकीय अवयवों की पाचन से रक्षा की जा सके क्योंकि लाइसोसोम के फटने पर इनसे पाचक एन्जाइम परिमुक्त हो जाते हैं जो कोशिकीय अवयवों का ही पाचन कर लेते हैं। अतः इनको suicide bags भी कहा जाता है।

लाइसोसोम ऊतक की मृत्युग्रस्त कोशिकाओं को हटाने का कार्य भी करते हैं।

इन कोशिकाओं के लाइसोसोम आकार में वृद्धि करके फट जाते हैं जिससे एन्जाइम कोशिका में मुक्त होकर उसको समाप्त कर देते हैं।

राइबोसोम (Ribosomes)

राइबोसोम अतिसूक्ष्म कण हैं जो समस्त सजीव कोशिकाओं में एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम की झिल्लियों से लगे हुए अथवा फिर कोशिकाद्रव्य में छितरे हुए मिलते हैं। ये कोशिका में प्रोटीन्स का संश्लेषण करते हैं, अतः इनको 'कोशिका का इन्जिन' भी कहते हैं।

चित्र 5·14. राइबोसोम के सबयूनिट (Subunit of ribosome)

राइबोसोम 250Å×150Å आकार की चपटी व गोलाभ रचनाएँ हैं। ये दो प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **70S राइबोसोम** जो बैक्टीरिया में मिलते हैं, तथा

(*ii*) **80S राइबोसोम** जो यूकेरियोटिक कोशिकाओं में मिलते हैं।

परारचना (Ultrastructure)

प्रत्येक राइबोसोम एक दरार द्वारा दो भागों में बँटा हुआ प्रतीत होता है। 70S राइबोसोम के 50S तथा 30S तथा 80S राइबोसोम के 60S तथा 40S दो सबयूनिट होते हैं। इनमें से बड़ा सबयूनिट गुम्बद के समान होता है और छोटा सबयूनिट बड़े सबयूनिट की चपटी सतह पर एक टोपी के रूप में होता है। बड़े सबयूनिट एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम की झिल्ली से लगे रहते हैं और ट्रान्सफर RNA (*t*RNA) के लिए स्थान प्रदान करते हैं। छोटे सबयूनिट संदेशात्मक या मैसेन्जर
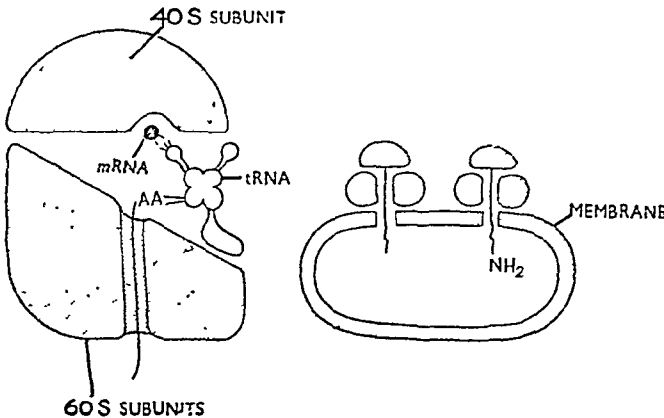
चित्र 5·15. A. राइबोसोम की परारचना, B. एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम की झिल्ली से राइबोसोम्स का आसंजन (A. Ultrastructure of ribosome, B. attachment of ribosomes on the membrane of endoplasmic reticulum)

RNA (*m*RNA) को अभिग्रहण करते हैं। दोनों सबयूनिटों को विभक्त करने वाली दरार समान्तर रूप से एण्डोप्लैज्मिक रेटीकुलम की झिल्ली से जुड़ी रहती है।

मैग्नीशियम की सान्द्रता राइबोसोम्स की प्रतीति को प्रभावित करती है। Mg की सान्द्रता में वृद्धि करने पर राइबोसोम के दोनों सबयूनिट परस्पर मिलकर डिमर (dimer) बनाते है और सान्द्रता कम करने पर प्रत्येक राइबोसोम दो सब-

चित्र 5·16. राइबोसोम्स पर Mg^{++} ऑयनों की सान्द्रता का प्रभाव (Effect of Mg^{++} ion concentration on ribosomes)
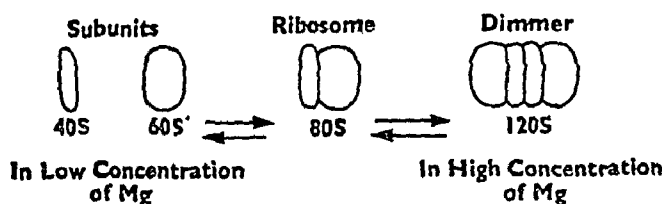
यूनिटों में पृथक् हो जाता है। किन्तु ये परिवर्तन अस्थायी होते हैं क्योंकि जैसे ही Mg की सामान्य सान्द्रता पुनः स्थापित हो जाती है तो डिमर पुनः दो राइबोसोम में बदल जाता है अथवा फिर सबयूनिट मिलकर राइबोसोम बनाते हैं।

रासायनिक संगठन (Chemical Composition)

राइबोसोम RNA तथा प्रोटीन के बने होते हैं। अनुमान है कि RNA एवं प्रोटीन दोनों ही समान मात्रा में होते है। 70S राइबोसोम में 65% RNA तथा 80S राइबोसोम में यह 45% होता है। प्रोटीन्स राइबोसोम के चारों ओर परिमीय भाग में तथा RNA भीतरी भाग में स्थित होता है तथा दोनों सबयूनिटों में अन्तर्ग्रंथित रहता है। RNA विशिष्ट रंजकों द्वारा अभिरंजित करने पर प्रत्येक राइबोसोम एक ताराकार काय के समान प्रतीत होता है जिसकी (4–6) भुजाएँ एक सघन अक्ष मे धँसी रहती है। अनुमान है कि प्रोटीन एवं RNA अणु स्थिर-वैद्युत् बलों द्वारा RNA के फॉस्फेट समूहों तथा प्रोटीन के ऐमीनो समूहों के बीच बॉण्ड्स द्वारा अथवा मैग्नीशियम के साथ जटिल यौगिक बनाकर या फिर दोनों प्रकार के सम्बन्धों द्वारा एक-दूसरे से बँधे रहते है।

राइबोसोमल RNA (Ribosomal RNA)—यह तीन विभिन्न रूपों में होता है। कशेरुकियों मे ये 28S, 18S तथा 5S प्रकार के होते हैं। 28S राइबोसोमल RNA राइबोसोम्स के 60S सबयूनिटों में स्थित होता है तथा इसका आण्विक भार $1{\cdot}5-1{\cdot}8\times10^6$ daltons होता है। राइबोसोमल RNA अत्यधिक वलित तन्तु के रूप में होता है जो खोलने पर लगभग 7000Å लम्बा होता है। सम्भवतः प्रोटीन अणु इसी *m*RNA तन्तु से जुड़े रहते हैं।

राइबोसोमल RNA (28S तथा 18S) के कुल भार का 60% कुण्डलित विन्यास प्रदर्शित करता है किन्तु इसमें वाटसन-क्रिक के DNA मॉडल के समान क्षारों के क्रम का अभाव होता है। राइबोसोमल RNA में मेथिल (methyl) वर्गो की एक विशिष्ट संख्या होती है।

5S राइबोसोमल RNA में प्रायः 120 के लगभग न्यूक्लिओटाइड्स होते हैं। बहुधा यह ट्रान्सफर RNA के समान होता है और क्लोवर लीफ मॉडल (clover leaf model) को प्रदर्शित करता है। इसका कार्य अज्ञात है।

राइबोसोमल प्रोटीन्स (Ribosomal proteins)—राइबोसोम्स के प्रोटीन अवयव अत्यधिक जटिल होते हैं। अब तक लगभग 50 प्रोटीन्स पृथक् किये जा चुके हैं। सबयूनिटों के निष्क्रिय क्रोड कणों (core particles) में अपघटन के फलस्वरूप प्रत्येक कण से कुछ प्रोटीन्स मुक्त हो जाते हैं। इनको **विभक्त प्रोटीन्स** (split proteins—SP) कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। नीचे दिये गये चित्र में इनको A तथा B द्वारा प्रदर्शित किया गया है :—
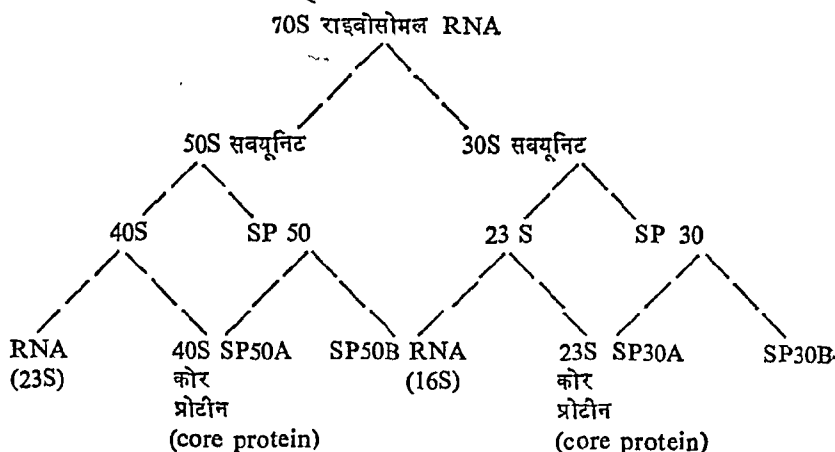
चित्र 5·17. राइबोसोम के वियोजन के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के प्रोटीन्स के निर्माण का चित्रीय निरूपण (Diagram to illustrate the results of dissociation of ribosome and the formation of different types of proteins)

अम्लीय व क्षारीय विभक्त प्रोटीन्स को 40S कोर प्रोटीन्स तथा 23S RNA के साथ मिलाने पर राइबोसोम के प्रकार्यक सबयूनिट पुनः निर्मित हो जाते हैं। किन्तु पुनः संघटन की यह क्रिया अत्यधिक विशिष्ट प्रकार की होती है।

RNA किस प्रकार प्रोटीन से जुड़ा रहता है, इसके बारे में कोई निश्चित मत नहीं है। अनुमान है कि ये स्थिर वैद्युत् बलों द्वारा RNA से फॉस्फेट वर्गों तथा प्रोटीन के ऐमीनो वर्गों के बीच निर्मित लवण बॉण्डों के अथवा मैग्नीशियम के जटिल यौगिक बनाकर या फिर दोनों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप जुड़े रहते हैं।

राइबोसोम का जीवांत-जनन (Biogenesis of Ribosomes)

न्यूक्लिओलस (केन्द्रिक) की अनुपस्थिति के करण बैक्टीरिया में राइबोसोम कोशिकाद्रव्य में स्थित होते हैं। *राइबोसोमल* RNA जीनोम (genome) के विशिष्ट सिस्ट्रॉन्स से संश्लेषित होते हैं। किन्तु यूकेरियोट्स में यह क्रिया जटिल प्रकार की होती है तथा *राइबोसोमल* RNA न्यूक्लिओलस में संश्लेपित होता है। प्रारम्भ में न्यूक्लिओलर गुणसूत्र से न्यूक्लिओलर संगठक से 45S RNA निर्मित होता है। यही 45S RNA 28S तथा 18S *राइबोसोमल* RNA का पूर्ववर्ती होता है :—
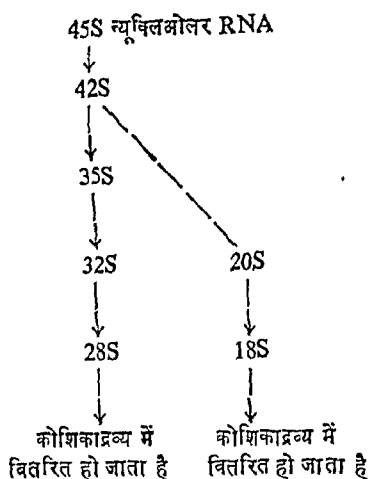
चित्र 5·18. न्यूक्लिओलर RNA के 28S तथा 18S राइबोसोमल RNA में परिवर्तन की विभिन्न प्रावस्थाएँ (Stages involved in the conversion of 45S nucleolar RNA into 28S and 18S ribosomal RNA)

सर्वप्रथम 45S न्यूक्लिओलर RNA अणुओं का मेथिलीकरण होता है (अर्थात् $C-CH_3$ वर्ग जुड़ता है)। विभिन्न पदों के पश्चात् प्रत्येक मेथिलीकृत अणु 32S तथा 18S RNA में विभक्त हो जाता है। प्रत्येक पद में अणु के अमेथिलीकृत भाग का क्षय होता है। 18S अणु तुरन्त ही कोशिकाद्रव्य में पहुँच जाते हैं। 32S अणु कुछ समय तक न्यूक्लिओलस में रहते हैं और इसके बाद विचलित होकर 28S RNA बनाते हैं।

राइबोसोमल प्रोटीन का संश्लेषण न्यूक्लिओलस में होता है तथा कोशिकाद्रव्य में संश्लेषित होने वाले प्रोटीन भी न्यूक्लिओलस में एकत्रित होते रहते हैं। यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि 45S RNA प्रोटीन संश्लेषण करने वाले 80S राइबोन्यूक्लिओप्रोटीन (RNP) के कणों से सम्बद्ध होता है। न्यूक्लिओलस के अन्दर राइबोसोमल सबयूनिटों के परिपक्वन के अन्तर्गत इनकी संरचना तन्तुकीय से कणिकीय हो जाती है।

कार्य (Functions)—राइबोसोम्स का प्रोटीन्स के संश्लेषण में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। *m*RNA तथा *t*RNA की सहायता से ये कोशिकाद्रव्य में से ऐमीनो अम्लों का वरण करके लम्बी पोलीपेप्टाइड शृंखलाएँ बनाते हैं।

3. सेण्ट्रोसोम (Centrosome)

सेण्ट्रोसोम एक गोलाकार काय है जो केन्द्रक की बाह्य सतह पर कोशिका के केन्द्रीय भाग में स्थित होता है। कभी-कभी इसकी स्थिति अग्रस्थ या अक्षीय भी होती है। इसमें दो तर्क्वाकार या गोल व बेलनाकार काय होती हैं जिन्हें **सेण्ट्रिओल** (centrioles) कहते है तथा इसके चारों ओर पारदर्शी कोशिकाद्रव्य का प्रदेश होता है जिसे **सेण्ट्रोस्फियर** (centrosphere) कहते हैं। प्राय: गॉल्जी उपकरण एवम् माइटोकॉण्ड्रिया भी सेण्ट्रोसोम के चारों ओर एक किरीट के रूप में स्थित होते हैं। कभी-कभी गॉल्जी कॉम्प्लैक्स की झिल्लियाँ सेण्ट्रिओल्स के सम्पर्क में स्थित होती है।

प्रत्येक सेण्ट्रिओल 1500Å तक मोटा और 3,000 से 20,000Å लम्बा होता है। इसमें तन्तुओं से बने नलिकाओं के 9 समूह होते हैं। ये एक केन्द्रीय अक्ष के चारों ओर एक वृत्त में विन्यसित रहते हैं। नलिकाओं के प्रत्येक समूह में तीन द्वितीयक तन्तुक (secondary fibres) होते हैं। प्रत्येक द्वितीयक नलिका लगभग 250Å व्यास की होती है।

चित्र 5·19. सेण्ट्रिओल की रचना
(Structure of centriole)

कार्य (Functions)—(1) सेण्ट्रिओल्स तर्कु के निर्माण में भाग लेते हैं। अतः कोशिका-विभाजन में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। (2) ये रोमकों व कशाभों की आधार कणिकाएँ बनाते हैं। (3) स्पर्मेटिड में स्थित दूरस्थ कशाभ शुक्राणु के कशाभ का अक्षीय तन्तुक बनाता है। इसके केन्द्रीय अक्ष में आधार कणिकाओं में मिलने वाली केन्द्रीय नलिका का अभाव होता है।

अध्याय 6

लवक या प्लैस्टिड (Plastids)

प्रश्न 18. प्लैस्टिड (लवक) क्या है ? इनकी प्रकृति, संरचना एवं परिवर्धन का वर्णन कीजिये ।

What are plastids ? Describe the nature, structure and development of plastids. *(Jiwaji 1972)*

प्लैस्टिड बड़े आकार की कोशिकाद्रव्यक संरचनाएँ हैं जो अधिकांश पादप-कोशिकाओं में छितरे हुए मिलते हैं। अपरिपक्व प्लैस्टिड **प्रोप्लैस्टिड** (proplastids) कहलाते है। प्लैस्टिड की उपस्थिति एवम् अनुपस्थिति के आधार पर जीवधारियों को पादप एवम् प्राणिजगत् में विभक्त किया गया है।

प्लैस्टिड्स का वर्गीकरण (Classification of Plastids)

वर्णक की उपस्थिति या अनुपस्थिति के अनुरूप प्लैस्टिड **क्रोमोप्लास्ट्स** (chromoplasts) एवम् **ल्यूकोप्लास्ट्स** (leucoplasts) प्रकार के होते हैं :—

1. क्रोमोप्लास्ट्स (Chromoplasts)—ये दो प्रकार के होते हैं—(A) प्रकाश-संश्लेषण मे सक्रिय रूप से भाग लेने वाले, तथा (B) प्रकाश-संश्लेषण के लिए निष्क्रिय क्रोमोप्लास्ट्स।

A. प्रकाश-संश्लेषण के लिए सक्रिय क्रोमोप्लास्ट्स (Photosynthetically active chloroplasts)—ये निम्न प्रकार से हैं :—

(*i*) **क्लोरोप्लास्ट्स**—हरे प्लैस्टिड (chloroplasts)—इनमें हरे वर्णक क्लोरोफिल *a* तथा *b* होते हैं।

(*ii*) **फीओप्लास्ट्स** (Phaeoplasts)—ये भूरे या पीले प्लैस्टिड हैं जिनमें **फ्युकोजेन्थिन** (fucoxanthin) नामक भूरा वर्णक होता है।

(*iii*) **रोडोप्लास्ट्स** (Rhodoplasts)—ये लाल प्लैस्टिड है जिनमें *फाइकोएरिथ्रिन* नामक लाल वर्णक होता है।

(*iv*) **नीले-हरे क्रोमोप्लास्ट** (Blue-green chromoplasts)—इनमें क्लोरोफिल के अतिरिक्त **फाइकोसायनिन** (phycocyanin), **फाइकोएरिथ्रिन** (phycoerythrin) तथा **कैरोटिनॉयड्स** (carotenoids) होते है।

(*v*) **प्रकाश-संश्लेषी बैक्टीरिया के क्रोमोप्लास्ट्स** (Chromoplasts of photosynthetic bacteria)—इनमें क्लोरोफिल के समान वर्णक **बैक्टीरियोक्लोरफिल** (bacteriochorophyll) होता है। इस प्रकार क्रोमोप्लास्ट नील-रोहित व अनील-रोहित बैक्टीरिया मे मिलते है।

B. प्रकाश-संश्लेषण के लिए निष्क्रिय क्रोमोप्लास्ट्स (Photosynthetically inactive chromoplasts)—ये फूलों, फलों तथा पौधों के अन्य भागों में मिलते हैं और इनको विभिन्न रंग प्रदान करते हैं। इनमें कैरोटिनॉयड्स व जेन्थोफिल वर्णक होते हैं किन्तु क्लोरोफिल का अभाव होता है।

2. ल्यूकोप्लास्ट्स (Leucoplasts)—इनमें वर्णक का अभाव होता है और इनमें भोजन संचित रहता है। ये निम्न प्रकार के होते हैं :—

(*i*) एमिलोप्लास्ट्स (Amyloplasts)—इनमें माँड संचित रहता है। ये ट्यूबर्स, बीजपत्र तथा भ्रूणपोष में मिलते हैं।

(*ii*) इलाओप्लास्ट्स (Elaioplasts)—इनमें तेल संचित रहता है। ये एक-बीजपत्री पौधों तथा *ऑर्किडेसी* व *लिलिएसी* कुल के पौधों की एपिडर्मल कोशिकाओं में मिलते हैं।

(*iii*) एलियूरोप्लास्ट्स (Aleuroplasts)—ये प्रोटीन्स का संचय करने वाले प्रोटीनोप्लास्ट्स तथा *हेलोबोरस* (*Helloborus*) की एपिडर्मल कोशिकाओं एवम् *रिसिनस* (*Ricinus*) के बीजों में मिलते हैं।

संरचना (Structure)

यहाँ पर केवल क्लोरोप्लास्ट की संरचना का वर्णन करेंगे क्योंकि केवल इन्हीं का सविस्तार अध्ययन किया गया है।

वितरण (Distribution)—क्लोरोप्लास्ट (हरित लवक) केन्द्रक के चारों ओर अथवा कोशिका-भित्ति से सटे हुए मिलते हैं। कुछ कोशिकाओं में ये समांगी रूप से कोशिकाद्रव्य में वितरित रहते हैं।

आकार एवम् आकृति (Size and shape)—क्लोरोप्लास्ट्स विभिन्न आकृतियों के होते हैं। ये गोलाभ, विम्बाभ या अण्डाभ प्रकार के होते हैं। कुछ मुग्दर के समान होते हैं। शैवालों में क्लोरोप्लास्ट्स सर्पिल पट्टी, कॉलर के समान, प्यालेनुमा या तारक के समान होते हैं।

प्रत्येक जाति में क्लोरोप्लास्ट (हरित लवकों) का आकार अलग-अलग होता है किन्तु एक ही प्रकार की कोशिकाओं में यह सदैव नियत होता है। उच्च पादपों में इनका व्यास 4–6μ तथा मोटाई 1–3μ होती है।

संख्या (Number)—विभिप्न पादप कोशिकाओं में क्लोरोप्लास्ट की संख्या निश्चित होती है। उच्च पादपों में 20–40 क्लोरोप्लास्ट तथा शैवालों की प्रत्येक कोशिका में बड़े आकार का केवल एक क्लोरोप्लास्ट होता है। *रिसिनस कम्युनिस* (*R. communis*) की पत्ती के प्रत्येक वर्ग मिमी० में लगभग 400,000 क्लोरोप्लास्ट होते हैं।

रासायनिक संगठन (Chemical composition)—क्लोरोप्लास्ट के रासायनिक संघटन से ज्ञात होता है कि यह मुख्य रूप से प्रोटीन्स, लिपिड्स, क्लोरोफिल, कैरोटिनॉयड्स, RNA व DNA का बना होता है। इसमें माँड कण तथा ऑस्मोलिक बिन्दुक भी उपस्थित होते हैं।

प्रोटीन्स पटलिकाओं (लैमेली) तथा झिल्लियों की संरचना में भाग लेते हैं। ये स्ट्रोमा में विभिन्न प्रकार के विशिष्ट एन्जाइमों के रूप में भी होते हैं और

मांड-संश्लेषण की क्रिया को उत्प्रेरित करते हैं। लिपिड्स मुख्य रूप से फॉस्फोलिपिड्स, वसाओं, स्टिरोल्स तथा मोम के रूप में होते हैं। कार्बोहाइड्रेट्स मुख्य रूप से मांड तथा शर्करा के फॉस्फेट्स के रूप में होते हैं किन्तु इनकी मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है।

क्लोरोफिल क्लोरोप्लास्ट का एक मुख्य घटक है। रासायनिक रूप से क्लोरोफिल एक **पोर्फिरिन** (porphyrin) है जो प्राणियों के लाल वर्णक, हीमोग्लोबिन तथा साइटोक्रोम्स के समान होता है। क्लोरोफिल में Fe के स्थान पर Mg होता है।

कैरोटिन्स व जेन्थोफिल्स कैरोटिनाइड्स हैं जो Vit. A से सम्बद्ध होते हैं। RNA प्लैस्टिड के मुख्य शुष्क भार का 2-3% होते हैं। DNA भी अल्प मात्रा में उपस्थित होता है। क्लोरोप्लास्ट्स में कुछ साइटोक्रोम्स, Vit. K व E, फाइटोफैरिटिन, तथा Fe, Cu, Mn व Zn के परमाणु भी होते हैं। कुछ एन्जाइम्स क्लोरोप्लास्ट में मिलते हैं।

परारचना (Ultrastructure)

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि क्लोरोप्लास्ट्स के चारों ओर **दोहरी सीमक बाह्य झिल्ली** (double limiting outer membrane) होती है। प्रत्येक सीमक झिल्ली 40—60Å मोटी होती है और माइटोकॉन्ड्रिया के समान तीन स्तरों की बनी होती है। दोनों झिल्लियों के बीच 25—27Å चौड़ा स्थान होता है। क्लोरोप्लास्ट्स के अन्दर स्थित अंतर्वेश विषमांगी होते हैं जो प्रोटीनी **मैट्रिक्स या स्ट्रोमा** तथा **ग्रैना** के बने होते हैं।

1. **मैट्रिक्स या ग्रैना** (Matrix or grana)—स्ट्रोमा क्लोरोप्लास्ट का भीतरी मैट्रिक्स है जो इसकी गुहा में भरा रहता है। स्ट्रोमा में सूक्ष्म कणिकाएँ (175 Å व्यास की), मांड के कण (प्रकाश-संश्लेषी मांड) तथा ऑस्मोफिलिक बिन्दुक होते है। हरे शैवालों में मांड-संश्लेषण से सम्बद्ध ***प्रोभुजक या पाइरीनॉएड*** *(pyrenoids)* तथा कैरोटिनॉएड कणिकाओं से युक्त एक दृक्-बिन्दु (eye spot) भी होते हैं।

2. **ग्रैना** (Grana)—स्ट्रोमा में प्लैस्टिड के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई अनेक क्लोरोफिल युक्त तथा द्विक् झिल्ली की **पटलिकाएँ** (लैमेली : lamallae) होती हैं। अधिकांश क्लोरोप्लास्ट्स में पटलिकाएँ (lamellae) स्थूलित डिस्क के समान **ग्रैना-लैमेली** (grana-lamellae) तथा महीन अंतराग्रैना (intergrana)—**स्ट्रोमा-लैमेली** (stroma-lamellae) में भिन्नित होते हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा ये सघन व चपटे या बेलनाकार डिस्क के समान संरचनाओं के समान प्रतीत होते हैं। इनको **ग्रैना** (grana) कहते हैं। प्रत्येक ग्रैनम डिस्क या बिम्बों के एक चट्ट का बना होता है। प्रत्येक ग्रैनम का व्यास 0·200—0·600μ होता है और एक क्लोरोप्लास्ट में 40—60 ग्रैना होते हैं तथा प्रत्येक द्विक् सीमक झिल्ली का बना होता है। निम्न पादपों में लैमेली (पटलिकाएँ) ग्रैना में भिन्नित नहीं होतीं तथा रंजक समान रूप से लैमेली की पूर्ण सतह पर वितरित रहते हैं।
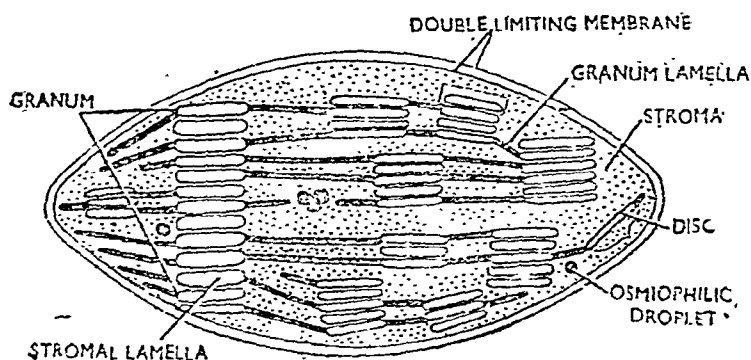
चित्र 6·1. पादप-क्लोरोप्लास्ट के अनुप्रस्थ सेक्शन की अतिसूक्ष्मदर्शी रचना (Submicroscopic structure of the plant chloroplast as seen in cross-section)

प्रत्येक ग्रैनम में कुछ से 50 तक डिस्क-के समान अध्यारोपित झिल्लीमय कक्ष होते हैं। इनको थिलाकॉएड्स (thylakoids) कहते हैं। थिलाकॉएड्स निजी
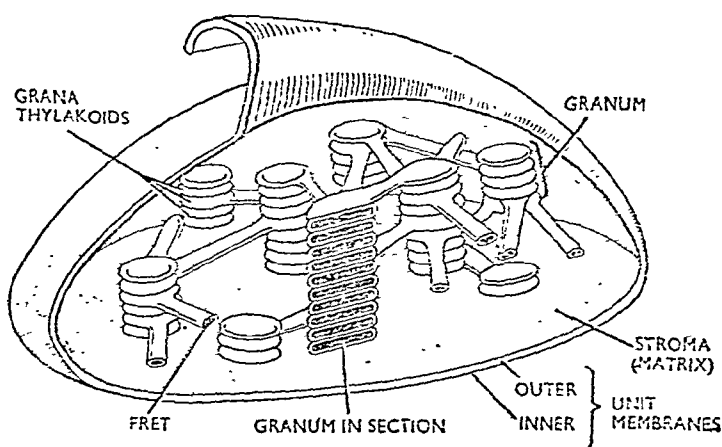
चित्र 6·2. क्लोरोप्लास्ट का त्रिविम दृश्य (Three-dimensional view of Chloroplast)

झिल्लियों द्वारा स्ट्रोमा या मैट्रिक्स से पृथक् रहते हैं। प्रत्येक डिस्क या थिलाकॉएड में एक विस्तृत द्विकस्थान होता है जिसे कोष्ठक (loculus) कहते हैं। कोष्ठक 100Å–300Å चौड़ा होता है। निकटवर्ती ग्रैना शाखामिलनी नलिकाओं द्वारा परस्पर संबंधित होते हैं। इनको **स्ट्रोमा लैमेली** (stroma lamellae) कहते हैं। **Weier** (1967) ने इन शाखामिलनी नलिकाओं को फ्रेट्स (frets) कहा।

Frey एवं **Wyssling** (1953), **Hodge** (1955) तथा **Calvin** (1959) आदि ने क्लोरोप्लास्ट की संरचना के आण्विक मॉडल प्रस्तुत किए हैं। लैमेली (पटलिकाओं) का अंतराग्रैनम भाग जलीय प्रोटीन एवं लिपिड के क्रमिक स्तरों का बना होता है। ग्रैना या थिलाकॉएड्स में लैमेली (पटलिकाएँ) द्विशाखित हो जाते हैं और
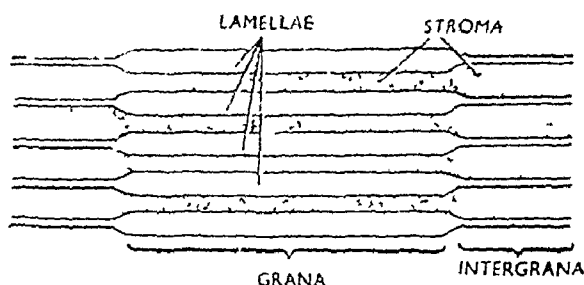
चित्र 6·3. क्लोरोप्लास्ट के ग्रैनम की अतिसूक्ष्मदर्शी सरचना (Submicroscopic structure of a granum of chloroplast)

दोनों शाखाएँ इस प्रकार सान्निध्य हो जाती हैं कि इनके फॉस्फोलिपिड स्तर द्विपर्णी (bifoliar) संरचना प्रस्तुत करते है। क्लोरोफिल एक आण्विक स्तर के रूप में लिपिड तथा प्रोटीन स्तरों के अंतरापृष्ठों पर इलेक्ट्रॉन ग्राही एवं इलेक्ट्रॉन दाता के बीच सन्निहित रहता है। अब यह सुस्थापित हो गया है कि क्लोरोफिल अणुओं का जल-रागी पॉर्फिरिन सिर जलीय प्रोटीन में तथा इसकी वसा-रागी फाइटोल पूंछ लिपिड के स्तर में स्थित होती है। कैरोटिनॉयड अणु क्लोरोफिल अणुओं के साथ लिपिड स्तर में विन्यसित रहते हैं।
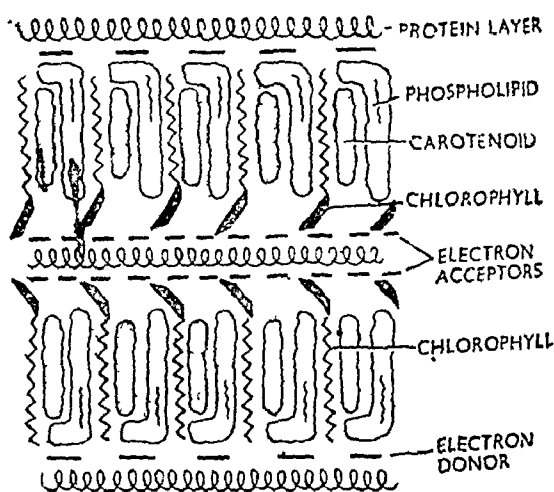
चित्र 6·4. लैमेला ग्रैनम की आण्विक संरचना (Molecular structure of a lamella granum)

क्वान्टासोम संकल्पना (Quantasome Concept)

Park एवं **Pon** (1963) ने ग्रैना के थिलाकॉयड या कक्षों की भीतरी सतह के इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी अध्ययन द्वारा प्रस्तावित किया है कि ये झिल्लियाँ सहक्रिस्टलीय (paracrystalline) कणों की बनी होती हैं जिन्हें **क्वान्टासोम** (quantasomes) कहते हैं। क्वान्टासोम लगभग 200Å लम्बे तथा 100Å मोटे होते है। **Park** एवं **Beggins** (1964) के अनुसार प्रत्येक क्वान्टासोम चार सबयूनिटों का बना होता है।

Branton एवं **Park** (1967) के अनुसार थिलाकॉएड्स में तीन प्रकार की झिल्लियाँ होती हैं :

1. क्वान्टासोम कणों से युक्त झिल्ली।
2. सघन रूप से निचित कणोंयुक्त झिल्ली।
3. रुक्ष सतह तथा कुछ कणों या कण रहित झिल्ली।

उपर्युक्त संकल्पनाओं के अनुसार क्वान्टासोम तथा छोटे कण थिलाकॉएड की झिल्ली के अन्दर स्थित होते हैं। अब यह सुनिश्चित हो गया है कि प्राथमिक प्रकाशिक अभिक्रिया क्वाटासोम्स (प्रकाश-संश्लेषी यूनिट) में स्थित प्रकाश रासायनिक केन्द्र में पूर्ण होती है। प्रत्येक प्रकाश-संश्लेपी यूनिट अर्थात् क्वान्टासोम कई सौ क्लोरोफिल व अन्य वर्णकों के अणुओं का बना होता है। ये सामूहिक रूप से सूर्य की प्रकाश ऊर्जा को बन्दी बनाकर क्वान्टासोम के अन्दर स्थित प्रकाश-रासायनिक अभिक्रिया के केन्द्र को पहुँचाते हैं।

एक क्वान्टासोम में क्लोरोफिल व अन्य वर्णकों के 230 अणु होते हैं। अभिक्रिया केन्द्रक का आवश्यक भाग क्लोरोफिल *a* तथा कैरोटिनॉयड वर्णकों के कुछ अणुओं का बना होता है। प्रकाश-संश्लेपी यूनिट के अन्य वर्णक अणुओं की अपेक्षा ये अत्यधिक सक्रिय स्थिति में विन्यसित होते हैं। प्रकाश-संश्लेपण की क्रिया में दो प्रणालियाँ भाग लेती हैं—सहायक या वर्णक I (pigment I) तथा मुख्य या वर्णक II (pigment II) प्रणाली। सर्वप्रथम वर्णक II प्रणाली प्रकाश ऊर्जा को अवशोपित करती है और उसके बाद यह अभिक्रिया केन्द्र में वर्णक I प्रणाली को स्थानांतरित कर दी जाती है।

प्लैस्टिड्स के कार्य (Functions of Plastids)

1. क्लोरोप्लास्ट CO_2 व H_2O से प्रकाश-संश्लेपण द्वारा कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण करके सूर्य की गतिज ऊर्जा को स्थितिज या रासायनिक ऊर्जा के रूप में बंधित करते हैं।

2. विचार है कि क्लोरोप्लास्ट में क्रैब्स चक्र तथा वसा अम्लों के संश्लेपण के लिए एन्जाइम होते हैं संभवत: ये प्रोटीन संश्लेपण में भी भाग लेते हैं।

3. क्रोमोप्लास्ट्स में विभिन्न वर्णक होते हैं जो फलों, फूलों तथा संचायक अंगों को नाना प्रकार के रंग प्रदान करते हैं।

4. एमिलोप्लास्ट्स, लेइओप्लास्ट्स तथा प्रोटीनोप्लास्ट्स आदि ल्यूको-प्लास्ट्स संचायक अंगों का कार्य करते हैं।

प्लैस्टिड का उद्भव एवं परिवर्धन (Origin and Development of Plastids)

प्लैस्टिड केवल पूर्वस्थित काय से ही विकसित होते हैं जो वास्तव में परिपक्व प्लैस्टिड न होकर द्विक् झिल्ली द्वारा परिसीमित विशेप प्रकार की अभिन्नित रचनाएँ हैं जो **प्रोप्लैस्टिड** (proplastids) कहलाती हैं। ये **मूल प्लैस्टिड** (stem plastids) हैं जिनसे विभिन्न प्रकार के प्लैस्टिड विकसित होते हैं। परिवर्धन के समय प्रोप्लैस्टिड आकार में वृद्धि करते हैं और इनकी भीतरी झिल्ली अन्दर की ओर वेसीकल के समान अनेक रचनाओं में विकसित हो जाती है। झिल्ली से पृथक् होने पर वेसीकल पुंजित होकर परिपक्व प्लैस्टिड बनाते हैं। इस प्रकार **अपरिपक्व लैमेलर प्लैस्टिड्स** या ल्यूकोप्लास्ट्स निर्मित होते हैं जो प्रकाश की उपस्थिति में क्लोरोप्लास्ट में रूपांतरित हो जाते हैं। रात्रि या अंधकार के समय वेसीकल्स गुच्छों, डिस्क या संकेन्द्री वलयों के रूप में विकसित होते हैं। इनको **प्रोलैमेलर बॉडीज** (prolamellar bodies) कहते हैं। कभी-कभी वेसीकल्स क्रिस्टलीय संरचना बनाते हैं। इस प्रकार के प्लैस्टिड विशिष्ट प्रकार के क्रोमोप्लास्ट्स या प्रोटीनोप्लास्ट्स में रूपान्तरित हो जाते हैं।
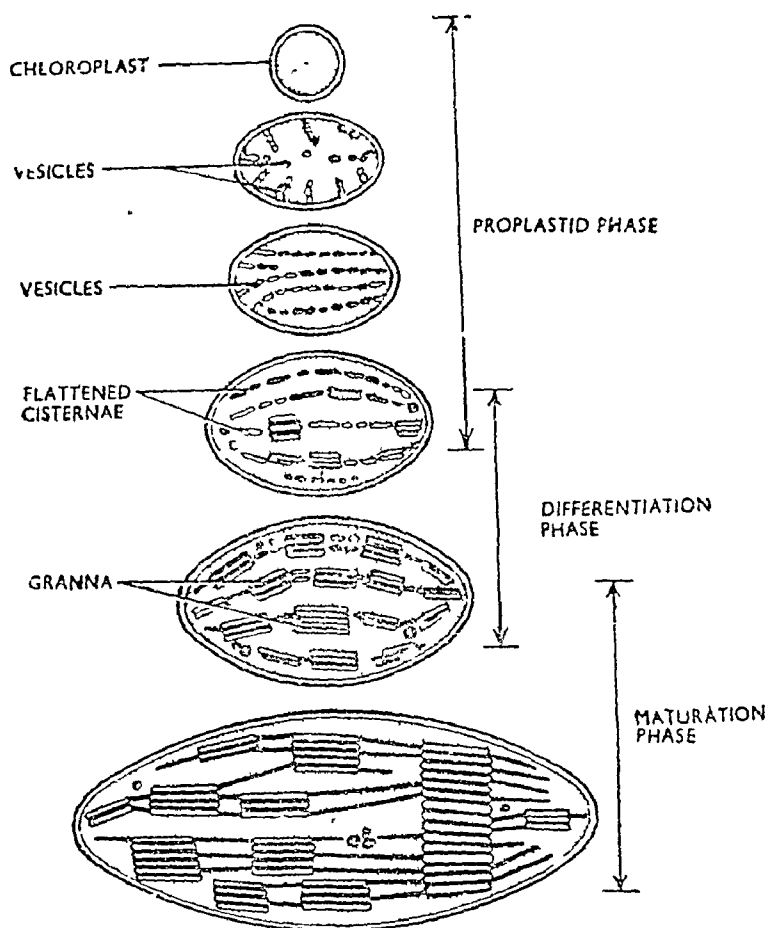
चित्र 6·5. प्रकाश की उपस्थिति में प्रोप्लैस्टिड से क्लोरोप्लास्ट का परिवर्धन (Development of a proplastid into chloroplast in the presence of light)

प्रश्न 19. क्लोरोप्लास्ट क्या है ? इनकी संरचना का वर्णन करिये। क्लोरोप्लास्ट में होने वाली प्रकाश-संश्लेषण क्रिया की आधुनिक संकलपना का वर्णन करिये।

What are chloroplasts ? Describe their structure. Discuss the modern concept of photosynthesis taking place in chloroplasts.

क्लोरोप्लास्ट की संरचना (Structure of Chloroplast)

कृपया प्रश्न 18 देखिए।

प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis)

प्रकाश-संश्लेपण का समीकरण निम्न प्रकार से है :

$$nCO_2 + nH_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} (CH_2O)_n + nO_2$$
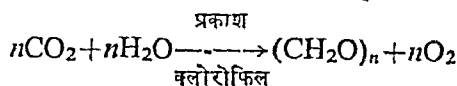
इस समीकरण से स्पष्ट है कि प्रकाश-संश्लेषण में CO_2 व जल से

कार्बोहाइड्रेट्स निर्मित होते हैं और O_2 बाहर निकलती है। प्रकाश संश्लेपण के फलस्वरूप विलयशील शर्कराएँ बनती है। ये माँड या अन्य पोलीसैकेराइड के कणों के रूप में क्लोरोप्लास्ट या ल्यूकोप्लास्ट्स में संचित रहती है।

आधुनिक संकलपना के अनुसार प्रकाश-संश्लेपण दो अवस्थाओं में पूर्ण होता है—**प्रकाश अवस्था** (light phase) तथा **अंधकार या अप्रकाशिक अवस्था** (dark phase)। प्रकाश अवस्था में प्रकाश क्लोरोफिल द्वारा अवशोपित होकर उपयोग में लाया जाता है। इसे **प्रकाश-रासायनिक अभिक्रिया** (photochemical reaction) या **हिल अभिक्रिया** (Hill reaction) कहते हैं। अप्रकाशिक अभिक्रिया के लिए प्रकाग की आवश्यकता नहीं होती और यह ताप-संवेदी होती है। इस अभिक्रिया को **ब्लैकमैन अभिक्रिया** (Blackman reaction) भी कहते है।

प्राथमिक प्रकाश-रासायनिक अभिक्रिया (Primary Photochemical Reaction)

अब यह सुनिश्चित हो गया है कि वर्णक I (pigment I) का क्लोरोफिल *a* अणु एक क्वान्टम प्रकाश अवशोपित कर प्रकाश-उत्तेजित (photoexcited) हो जाता है। फलस्वरूप इससे एक इलेक्ट्रॉन मुक्त होकर **फैरिडॉक्सिन** (ferredoxin) द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। फैरिडॉक्सिन को सतत रूप से इलेक्ट्रॉन प्रवाहित करने के लिए ऑक्सीकृत क्लोरोफिल अणु द्वारा किसी अन्य स्रोत द्वारा इलेक्ट्रॉन्स ग्रहण करना आवश्यक है। इलेक्ट्रॉन्स का यह प्रवाह प्लास्टोक्वीनोन्स (plastoquinones) तथा साइटोक्रोम्स के माध्यम से वर्णक II (pigment II) के प्रकाश-उत्तेजित क्लोरोफिल अणुओं से होता है। ऑक्सीकृत क्लोरोफिल अणु H_2O के विघटन से एक इलेक्ट्रॉन ग्रहण करके अपचित अवस्था में लौट आता है। इसमें इलेक्ट्रॉन्स क्लोरोफिल अणुओं को नही लौटाये जाते तथा H_2O से अणुओं का प्रवाह एकदिशिक होता है। इसे **अचक्रीय प्रकाशिक फॉस्फोरिलीकरण** (noncyclic photophosphorylation) कहते है। **चक्रीय प्रकाशिक फॉस्फोरिलीकरण** (cyclic photophosphorylation) में ऑक्सीकृत क्लोरोफिल *a* (pigment I) अणु H_2O से इलेक्ट्रॉन्स ग्रहण करने की वजाय इसके उत्तेजित होने पर इससे मुक्त होने वाले इलेक्ट्रॉन्स को ही कुछ विशेष वाहक यौगिकों के माध्यम से पुनः ग्रहण करके निम्नतम अवस्था में लौट आता है।

अचक्रीय प्रकाशिक फॉस्फोरिलीकरण (Noncyclic Photophosphorylation)

यह अभिक्रिया समस्त हरे पादपों में होती है। इसके अंतर्गत वर्णक I तथा वर्णक II दोनों ही प्रणालियों के क्लोरोफिल अणु प्रकाश अवशोषित करते हैं। इस अभिक्रिया में NADP से $NADP.H_2$ के निर्माण में सतत रूप से प्रयोग में आने वाले इलेक्ट्रॉन्स की पूर्ति जल के अणुओं द्वारा होती है। इसके विभिन्न पद निम्न प्रकार से हैं :—

1. वर्णक II (accessory pigment) का एक क्लोरोफिल अणु एक क्वान्टम प्रकाश अवशोषित करता है। अब उच्च ऊर्जा स्तर तक उत्तेजित इलेक्ट्रॉन क्लोरोफिल अणु से मुक्त हो जाता है और यह प्रणाली एक अर्धचालक (semiconductive) की भाँति कार्य करती है। इस प्रकार इलेक्ट्रॉन के क्षय की पूर्ति निम्नतम ऊर्जा स्तर पर जल के OH^- आयनों से प्राप्त इलेक्ट्रॉन्स द्वारा होती है। OH^- आयन जल के विघटन के कारण जल में उपस्थित होते हैं ($H_2O \rightleftharpoons H^+ + OH^-$)। इलेक्ट्रॉन्स के स्थानांतरण के वाद OH मूलक जल व ऑक्सीजन वनाते है ($4OH \rightarrow 2H_2O + O_2$).

2. उच्च ऊर्जा स्तर वाला इलेक्ट्रॉन अब प्लास्टोक्वीनोन को अपचित करता है।

3. यह इलेक्ट्रॉन साइटोक्रोम्स की एक शृंखला (जैसे cyt. *b* 6 तथा cyt. *f*) से गुजरता है और इसकी ऊर्जा ADP से ATP के निर्माण में काम आती है।

4. इस प्रकार निम्नतम ऊर्जा स्तर पर पहुँचा इलेक्ट्रॉन वर्णक I (pigment I) के उत्तेजित क्लोरोफिल अणु के निम्नतम ऊर्जा स्तर में प्रवेश करता है। इससे पूर्व वर्णक I का क्लोरोफिल अणु एक क्वान्टम प्रकाश अवशोषित करता है और उत्तेजित इलेक्ट्रॉन अर्धचालक (semi-conductor) प्रदेश में प्रवेश करता है।
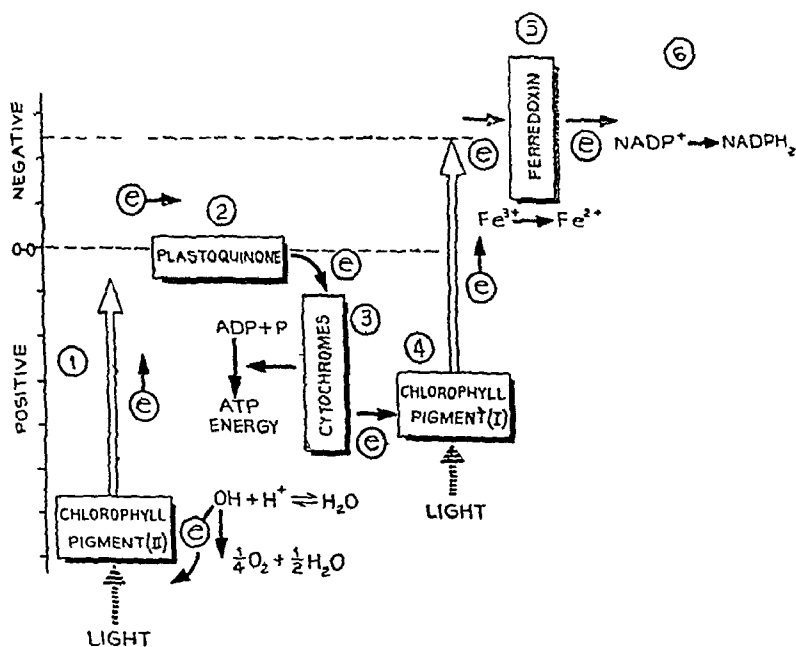
चित्र 6·6. अचक्रीय प्रकाशिक फॉस्फोरिलीकरण के विभिन्न पद (Stages involved in non-cyclic photophosphorylation)

5. वर्णक I (pigment I) के क्लोरोफिल अणु का इलेक्ट्रॉन अत्यधिक उच्च ऊर्जा स्तर पर पहुँच कर फैरिडॉक्सिन को अपचित करता है।

6. फैरिडॉक्सिन NADP को $NADPH_2$ में अपचित करता है।

चक्रीय फॉस्फोरिलीकरण (Cyclic Phosphorylation)

आर्नोन (Arnon, 1967) के अनुसार कुछ विशेष परिस्थितियों में चक्रीय प्रकाशिक फॉस्फोरिलीकरण भी होता है। इस अभिक्रिया में केवल वर्णक I प्रणाली ही भाग लेती है, अतः इसमें न तो जल का प्रकाशिक अपघटन होता है और न ही O_2 उत्पन्न होती है। इसके विभिन्न चरण निम्न प्रकार है :

1. वर्णक I के क्लोरोफिल अणु द्वारा प्रकाश अवशोषित करने पर इसका एक इलेक्ट्रॉन उच्च ऊर्जा स्तर पर उत्तेजित हो जाता है।

2. यह इलेक्ट्रॉन Vit. K या अन्य सहकारक (cofactor) को स्थानांतरित हो जाता है।

3. यह इलेक्ट्रोन अब FAD (flavoprotein) को $FADH_2$ में अपचित करता है।
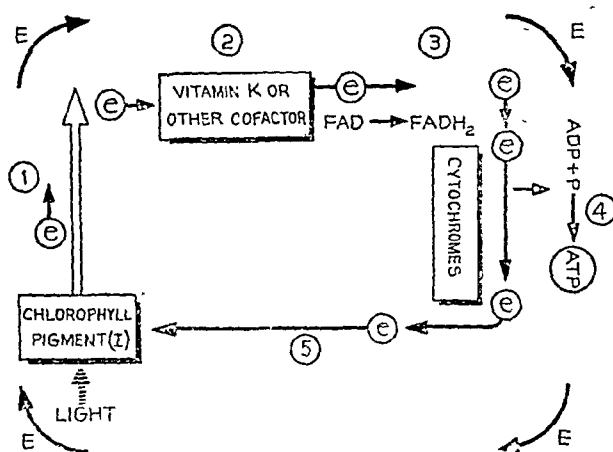
चित्र 6·7. चक्रीय प्रकाशिक फॉस्फोरिलीकरण के विभिन्न पद (Stages involved in cyclic photophosphorylation)

4. यहाँ से इलेक्ट्रॉन माइटोकॉन्ड्रिया के समान साइटोक्रोम श्रृंखला को स्थानांतरित हो जाता है और चक्रीय फॉस्फोरिलीकरण पूर्ण हो जाता है। जैसे-जैसे इलेक्ट्रॉन के ऊर्जा स्तर में कमी होती है। यह ऊर्जा ADP से ATP का निर्माण करती है।

5. इस प्रकार निम्नतम ऊर्जा स्तर वाला इलेक्ट्रॉन वर्णक I (pigment system I) के निम्नतम ऊर्जा स्तर वाले क्लोरोफिल अणु को लौटा दिया जाता है। वास्तव में इलेक्ट्रॉन्स के प्रवाह का यह क्रम तब तक सतत रूप से चलता रहता है जब तक कि क्लोरोफिल अणुओं को सूर्य की ऊर्जा मिलती है।

$NADP.H_2$ तथा ATP के निर्माण के साथ प्रकाश-संश्लेषण की प्रकाश-अपघटन क्रिया पूर्ण हो जाती है।

अप्रकाशिक प्रावस्था या कार्बन स्थिरीकरण का पथ
(Dark Phase or Path of Carbon Fixation)

प्रकाशिक अभिक्रिया में प्रकाश की ऊर्जा द्वारा जल का H_2 एवं O_2 में अपघटन होता है और ATP तथा $NADP.H_2$ का निर्माण होता है। अप्रकाशिक अभिक्रिया में ATP की ऊर्जा निम्न तीन प्रतिक्रियाओं की पूर्ति में काम आती है :—

1. एक 5-कार्बन शर्करा, रिबूलोज (Ribulose), उच्च ऊर्जा वाला फॉस्फेट ग्रहण करके रिबूलोज डाइफॉस्फेट बनाती है।

2. यह यौगिक अब CO_2 व H_2O से प्रतिक्रिया करके तुरंत ही दो 3-कार्बन वाले अणुओं—फॉस्फोग्लिसरिक एसिड, में विघटित हो जाता है। प्रकाशिक अभिक्रिया में निर्मित ATP तथा $NADP.H_2$ उपयोग में आकर ट्राइओज फॉस्फेट (triose phosphate) नामक शर्करा बनाते हैं। वास्तव में 3-phosphoglyceric acid कैब चक्र या कार्बन चक्र में भाग लेता है। इस चक्र में प्रकाश अभिक्रिया में संश्लेपित ATP के दो अणु तथा $NADP.H_2$ भाग लेते हैं। अंत में बने शर्करा अणु मांड कणों के रूप में पौधों द्वारा संचित कर लिये जाते हैं।

अध्याय 7

केन्द्रक
(Nucleus)

प्रश्न २०. अन्तरावस्था केन्द्रक की संरचना का वर्णन कीजिये।
Describe the structure of interphase nucleus.

(Jiwaji 1971 ; Gauhati 1973)

केन्द्रक कोशिका का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है जो समस्त कोशिकीय क्रियाओं का नियमन करता है। कोशिका के जीवन काल में केन्द्रक की दो अवस्थाएँ होती है : (i) अन्तरावस्था या उपापचयी प्रावस्था, तथा (ii) विभाजन प्रावस्था।

आकार एवं आकृति (Shape and size) : अन्तरावस्था केन्द्रक को **उपापचयी केन्द्रक** (metabolic nucleus) तथा **विश्रामी केन्द्रक** (resting nucleus) भी कहते हैं। अभिरंजित कोशिका में यह गहरे रंग की गोलाभ काय के समान प्रतीत होता है जो एक निश्चित स्थिति को धारण किये रहता है। इसकी आकृति आन्तरिक पर्यावरण या इसकी सक्रियता की अवस्था के अनुरूप वदलती रहती है। यह गोलाकार, वृत्ताकार, वेलनाकार, प्रिज्मीय, शाखित या पालिमय हो सकता है।

विभिन्न जीवों की कोशिकाओं, एक ही जीव की विभिन्न कोशिकाओं तथा एक ही कोशिका की विभिन्न अवस्थाओं में अन्तरावस्था केन्द्रक का आकार अलग-अलग होता है। बहुधा केन्द्रक का आकार गुणसूत्रों की संख्या पर निर्भर करता है। केन्द्रक के आकार एवं कोशिकाद्रव्य की मात्रा मे एक निश्चित समानुपात होता है। इसको **न्यूक्लिओ-साइटोप्लैज्मिक** सूचक (NP) द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं :

$$NP = \frac{V_n}{V_c - V_n}$$

जिसमें V_n = केन्द्रक का आयतन

V_c = कोशिकाद्रव्य का आयतन

संरचना (Structure) : केन्द्रक की अन्तरावस्था में उसके निम्नलिखित भाग स्पष्ट दिखाई देते है :

(*i*) केन्द्रकीय झिल्ली
(*ii*) केन्द्रकद्रव्य
(*iii*) केन्द्रक जालक या क्रोमेटिन जालक
(*iv*) केन्द्रिक या न्यूक्लिओलस
(*v*) क्रोमोसेन्टर

1. केन्द्रकीय झिल्ली या न्यूक्लिओलेमा (Nuclear membrane or nucleolemma) : केन्द्रकीय झिल्ली केन्द्रकीय पदार्थ को परिवंधित करके उसे कोशिकाद्रव्य से पृथक् करती है। संरचना में यह प्लैज्मा झिल्ली के समान होती

है। यह दो यूनिट मैम्ब्रेन्स की बनी होती है। दोनों मैम्ब्रेन्स एक **परिकेन्द्रकी द्विकस्थान** (perinuclear space) द्वारा एक-दूसरे से पृथक् रहती हैं। प्रत्येक मैम्ब्रेन लगभग 90Å मोटी होती हैं तथा इनके बीच का परिकेन्द्रकी द्विकस्थान 100–300Å चौड़ा होता है। केन्द्रकीय झिल्ली की यूनिट मैम्ब्रेन्स लिपिड व प्रोटीन की बनी होती है।

केन्द्रकीय झिल्ली में 400Å व्यास के अनेक छिद्र होते हैं। इन छिद्रों के उपांत पर दोनों कलाएँ या मैम्ब्रेन एक-दूसरे से सतत रहते हैं। प्राय: इन छिद्रों के आर-पार एक महीन झिल्ली दिखायी देती है। बहुधा इन छिद्रों के चारों ओर इलेक्ट्रॉन से परिपूर्ण कणिकाएँ होती हैं जो कभी-कभी पॉकेट्स के रूप में कोशिकाद्रव्य में प्रक्षिप्त होती हैं। ये **ब्लेब्स** (blebs) कहलाती हैं। जटिल छिद्रों से युक्त इस प्रकार की झिल्ली को **पोर कम्पलेक्स** (pore complex) कहते हैं। ये छिद्र केन्द्रक तथा कोशिकाद्रव्य के बीच पदार्थों के आदान-प्रदान में सहायक होते हैं।

लगभग समस्त कोशिकाओं में केन्द्रकीय झिल्ली एंडोप्लाज्मिक रेटीकुलम की झिल्लियों से संबंधित होती है। अनुमान है कि यह एंडोप्लाज्मिक रेटीकुलम से व्युत्पन्न होती है।

2. **केन्द्रकद्रव्य या कैरियोलिम्फ** (Nucleoplasm or karyolymph) : यह पारदर्शी व अर्धतरल आधार पदार्थ है। क्रोमेटिन जाल इसमें निलंबित रहता है। यह प्रोटीन्स, फॉस्फोरस तथा कुछ न्यूक्लीक अम्लों (RNA) का मिश्रण है। अनेक जल-अपघटनीय एन्जाइम्स जैसे राइबोन्यूक्लीएज, क्षारीय फॉस्फेटेज तथा डाइपेप्टीडेज आदि भी केन्द्रकद्रव्य में मिलते हैं।

3. **केन्द्रक जालक या क्रोमेटिन जालक** (Nuclear reticulum or
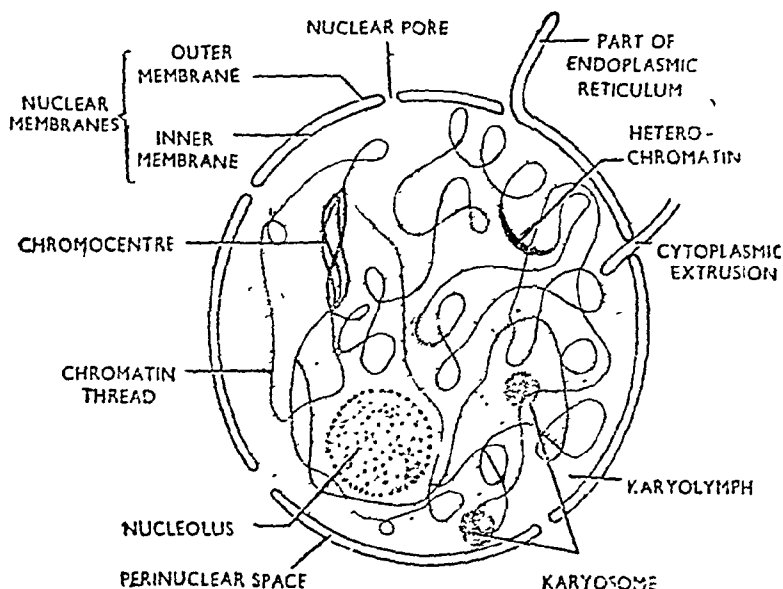
चित्र 7·1. एक प्ररूपी अन्तरावस्था केन्द्रक की संरचना (Structure of a typical interphase nucleus)

chromatin net) : केन्द्रक के केन्द्रक रस में महीन व्यावर्तित धागों का जाल होता है जिन्हें **क्रोमोनेमेटा** (chromonemata) तथा इस जालक को **केन्द्रकीय** या **क्रोमेटिन** जाल कहते है। क्रोमेटिन जाल गुणसूत्रों की अन्तरावस्था को प्रदर्शित करता है जो कोशिका विभाजन के समय आकुंचित होकर स्पष्ट गुणसूत्रों के रूप में विन्यसित हो जाते है।

क्रोमेटिन दो प्रकार का होता है—महीन धागों के समान क्रोमेटिन लिनन जो अल्पअभिरंजित होता है और **यूक्रोमेटिन** (euchromatin) कहलाता है। कुछ विशेष स्थानों पर क्रोमेटिन संघनित होता है और रंजकों द्वारा गहरा अभिरंजित होता है। इसे **हेटरोक्रोमेटिन** (heterochromatin) कहते है। हेटरोक्रोमेटिन क्षेत्र क्रोमेटिन के वे क्षेत्र हैं जो अन्तरावस्था (interphase) तथा पूर्वावस्था (prophase) में संघनित हो जाते है किन्तु यूक्रोमेटिन की भाँति ये अन्त्यावस्था (telophase) में खुलते नहीं।

यूक्रोमेटिन रंजकों के प्रति विभिन्न बंधुताएँ प्रदर्शित करता है। क्रोमेटिन का लिनन जोकि अल्प अभिरंजित धागों के रूप मे होता है **एक्रोमेटिन** (achromatin) का बना होता है (और अम्लीय रंजकों से अभिरंजित होता है) तथा लिनन पर उपस्थित गहरे अभिरंजित कण (क्रोमोमीयर्स) **बेसिक्रोमेटिन** (basichromatin) के बने होते है।

कभी-कभी केन्द्रक के विस्तृत क्षेत्र बेसिक फ्युशिन (basic fuschin) द्वारा गहरे अभिरंजित हो जाते है। इनको **क्रोमोसेन्टर** (chromocentres) या **कैरियोसोम** (karyosomes) कहते हैं।

केन्द्रक की परिधि में विशेष लिंग क्रोमेटिन काय **या बार काय** (bar bodies) पायी जाती है। ये स्तनधारियों की कोशिकाओं विशेषकर मादा में अधिक सामान्य रूप से पायी जाती हैं। प्रायः इनकी संख्या गुणसूत्रों के सेटों की संख्या पर निर्भर करती है। सामान्यतः गुणसूत्रों के एक द्विगुणित सेट के लिए एक लिंग-क्रोमेटिन काय होती है।

भौतिक भिन्नन (Physical Differentiation)

गुणसूत्र क्रोमेटिन के बने होते है। क्रोमेटिन **यूक्रोमेटिन** तथा हेटरोक्रोमेटिन में भिन्नित होता है।

यूक्रोमेटिन (Euchromatin)—क्रोमेटिन पदार्थ जो केन्द्रकीय विभाजन के समय संघनित हो जाता है और अन्त्यावस्था (telophase) में महीन धागों के रूप में फैल जाता है तथा अंतरावस्था (interphase) मे केन्द्रकीय जालक के रूप में रहता है, **यूक्रोमेटिन** (euchromatin) कहलाता है। यह क्षारीय रंजकों द्वारा अभिरंजित होता है। यह आनुवंशिकी रूप से सक्रिय पदार्थ है जिसमें काफी मात्रा में DNA होता है।

हेटरोक्रोमेटिन (Heterochromatin)—कुछ गुणसूत्र या विशेष गुणसूत्रों के कुछ भाग कोशिका विभाजन की सभी अवस्थाओ मे संघनित रहते है और गहरे अभिरंजित क्षेत्रों के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इन क्षेत्रों को **हेटरोक्रोमेटिन क्षेत्र** (heterochromatic regions) या **हेटरोक्रोमेटिक** (heterochromatin) कहते हैं।

हेटरोक्रोमेटिन यूक्रोमेटिन से न केवल प्रगटन में ही भिन्न होता है बल्कि इस-की संरचना, रासायनिक संगठन तथा स्वभाव में भी अन्तर होता है। हेटरोकोमेटिन

आनुवंशिक रूप से निष्क्रिय होता है। यह RNA के संश्लेषण में कोई भाग नही लेता। किन्तु कोशिका की उपापचयी क्रियाओं, न्यूक्लीक एसिड के जीवसंश्लेपण तथा युग्मसूत्री अवस्था (zygotene) में समजात गुणसूत्रों के प्रारम्भिक आकर्षण में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

स्त्रियों में X-गुणसूत्रों में से कोई एक, *ड्रोसोफिला* का Y-गुणसूत्र तथा अन्य जन्तुओं के लिंग गुणसूत्रों मे हेटरोक्रोमेटिन की प्रचुर मात्रा होती है।

4. केन्द्रिक या न्यूक्लिओलस (Nucleolus)—प्राय: द्विगुणित गुणसूत्र में दो केन्द्रिक, युग्मकों में एक केन्द्रिक तथा एम्फिबीयन्स के अंडक में सैकड़ों की संख्या में केन्द्रिक होते है। न्यूक्लिओलस का आकार कोशिका की संश्लेपी क्रियाओं पर निर्भर करता है। प्रोटीन संश्लेषण में व्यस्त कोशिकाओं में न्यूक्लिओलाई बड़े आकार के होते हैं।

प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा न्यूक्लिओलस समांग संगति की एक गोलाभ काय के रूप में होता है जिसमें कुछ रिक्तिकाएँ भी होती हैं। सजीव कोशिकाओं के अध्ययन के समय रिक्तिकाओं को न्यूक्लिओलस से कोशिकाद्रव्य में परिगमन करते हुए देखा गया है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा इसमें कुछ विशिष्ट स्थानों को कुछ स्पष्ट देखा जा सकता है। बड़े न्यूक्लिओलाई के चारों ओर **क्रोमेटिन कण** (chromatin granules) देखे गये है जो न्यूक्लिओलस के अन्दर **आन्तर न्यूक्लिओलर शाखन** (inter-nucleolar ramifications) भेजते हैं। न्यूक्लिओलस का अंतरंग **कणिकीय** (granular) तथा **तन्तुकी** (fibrillar) भागों में भिन्नित होता है। ये दोनों राइबो-न्यूक्लिओप्रोटीन्स के बने होते हैं। कणिकीय भाग राइबोसोम्स के पूर्वगामी को तथा तन्तुकी भाग कणिकीय भाग के पूर्वगामी को प्रदर्शित करता है। कोशिका-रासायनिक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि न्यूक्लिओलस के विभिन्न भाग निम्न क्रम में परस्पर सम्बन्धित होते हैं।

Nuclelar DNA → fibrillar portion → granular portion

न्यूक्लिओलस मुख्यत: RNA एवम् प्रोटीन्स का बना होता है। प्रोटीन्स एक-मात्र रूप से **फॉस्फोप्रोटीन्स** होते हैं तथा RNA क्षार अनुक्रम एवम् संगठन में राइबो-सोमल RNA के समान होता है। न्यूक्लिओलस में DNA का भी एक वलय होता है जो न्यूक्लिओलस से सम्बद्ध गुणसूत्रों के हेटरोक्रोमेटिन क्षेत्रों को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त *एसिड फॉस्फेटेज, न्यूक्लिओसाइड फॉस्फोरिलेज* तथा DPN संश्लेपी एन्जाइम भी मिलते हैं।

न्यूक्लिओलस एक व्यवस्थित काय के रूप में नहीं होता। पूर्वावस्था (prophase) के अन्त तक यह लुप्त हो जाता है और अन्त्यावस्था (telophase) के अन्त तक पुन: प्रकट हो जाता है। यह कुछ विशेप गुणसूत्रों के विशिष्ट क्षेत्रों से निर्मित होता है। न्यूक्लिओलस के निर्माण से सम्बद्ध गुणसूत्रों को **न्यूक्लिओलर गुणसूत्र** (nucleolar chromosomes) कहते हैं तथा वे क्षेत्र जो न्यूक्लिओलस के पुन: सगठन में भाग लेते है **न्यूक्लिओलर संगठक** (nucleolar organizer) कहलाते हैं। इनमें 18S तथा 28S *राइबोसोमल* RNA के जीन होते हैं।

न्यूक्लिओलस का एक भाग सदैव स्थायी रहता है। इसे **न्यूक्लिओलेमा** (nucleolemma) कहते हैं। यह क्रोमेटिन (DNA) के एक लूप के रूप में होता है जो न्यूक्लिओलर गुणसूत्र के न्यूक्लिओलर संगठक क्षेत्र से विस्तारित रहता है।
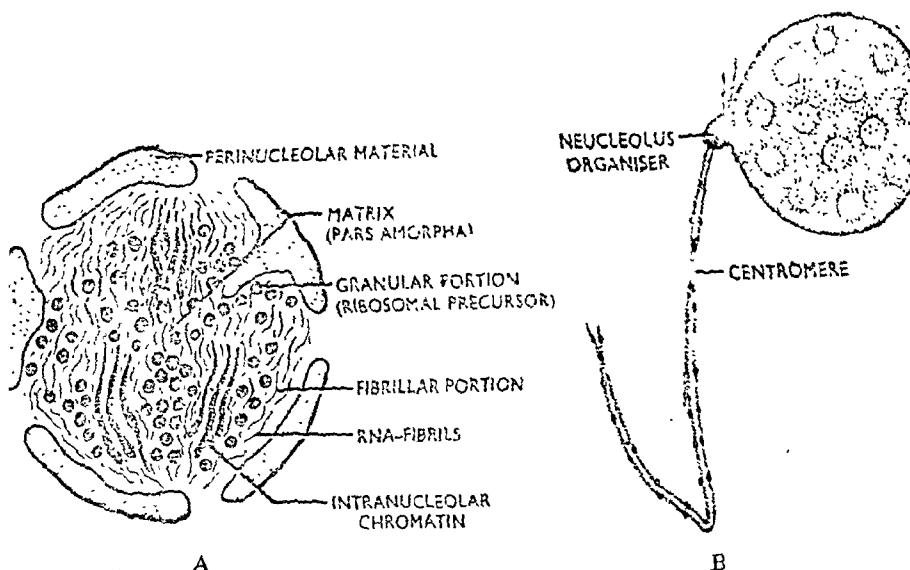
चित्र ७·२. न्यूक्लिओलस की संरचना एवम् निर्माण : A. संरचना ; B. न्यूक्लिओलस का निर्माण (Structure and formation of nucleolus : A. Structure ; B. Formation of nucleolus)

पूर्वावस्था (prophase) में न्यूक्लिओलस के लुप्त होने पर क्रोमेटिन लूप अपने संगत गुणसूत्र के न्यूक्लिओलर क्षेत्र में निर्वातित हो जाता है। अन्त्यावस्था (telophase) में न्यूक्लिओलस के पुन:निर्मित होने पर DNA लूप अकुण्डलित हो जाता है और तन्तुकी व कणिकीय पदार्थ इसको चारों ओर से आच्छादित कर लेते हैं।

न्यूक्लिओलस राइबोसोम्स के जीवात्-जनन से सम्बद्ध होता है। RNA न्यूक्लिओलस से निकलकर कोशिकाद्रव्य में आ जाता है और राइबोसोम्स में रूपान्तरित हो जाता है। इसके अतिरिक्त न्यूक्लिओलस कोशिका भाजन में भी महत्त्वपूर्ण होता है। दोनों न्यूक्लिओलाई में से किसी एक के क्षतिग्रस्त होने पर कोशिका का विभाजन नहीं हो पाता।

5. क्रोमोसेन्टर (Chromocentres)—कुछ कोशिकाओं के अन्तरावस्था में कुछ ऐसे विस्तृत क्षेत्र होते हैं जो शेष क्रोमेटिन की अपेक्षा अधिक गहरे अभिरंजित होते हैं। वास्तव में ये गहरे अभिरंजित क्षेत्र विषमवर्णी क्षेत्र (हेटरोक्रोमेटिक) हैं जो अपक्व संघनन की ओर उद्धत होते हैं। केन्द्रक में एक या अनेक क्रोमोसेन्टर होते हैं। अत: क्रोमोसेन्टर केन्द्रक के कुछ या समस्त विषमवर्णी क्षेत्र को प्रदर्शित करता है। ड्रोसोफिला (*Drosophila*) की लार ग्रन्थि की कोशिकाओं के केन्द्रकों में क्रोमोसेन्टर अधिक स्पष्ट होता है। क्रोमोसेन्टर्स तथा क्रोमोमीयर्स में मुख्य अन्तर मुख्य रूप से इनके आकार एवम् स्वभाव में होता है।

अध्याय 8

गुणसूत्र
(Chromosomes)

प्रश्न 21. गुणसूत्रों की संरचना एवम् कायिकी का वर्णन कीजिये।
Describe the structure and physiology of chromosomes.
(*Karnatak 1966 ; Gorakhpur 71*)

गुणसूत्रों की संरचना एवम् कार्यों पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
Write a short essay on the structure and functions of chromosomes. (*Meerut 1967, 71 ; Gorakhpur 73*)

गुणसूत्रों की संरचना एवम् कार्यों के सम्बन्ध में एक निबन्ध लिखिये।
Write a short essay on the structure and functions of chromosomes. (*Gorakhpur 1973*)

गुणसूत्र (Chromosomes)

गुणसूत्र गहरे अभिरंजित जीवद्रव्यक काय हैं जो केन्द्रक में स्थित होते हैं। ये कोशिका विभाजन की मध्यावस्था (metaphase) के समय गुणसूत्र स्पष्ट रचनाओं के समान प्रतीत होते हैं। अन्तरावस्था में ये क्रोमेटिन के महीन धागों के गुंथे हुए जाल के समान प्रतीत होते हैं। गुणसूत्रों का विशिष्ट गुण उनका संगठन, व्यक्तित्व एवम् कार्य है। गुणसूत्रों में स्वतः द्विगुणन की क्षमता होती है और अनेक विभाजनों के बाद भी ये अपनी आकारिक एवम् क्रियात्मक विशिष्टताएँ बनाये रखते हैं।

गुणसूत्र संख्या (Chromosome Number)

किसी भी जाति के जीवों में गुणसूत्रों की संख्या नियत होती है किन्तु विभिन्न जातियों के जीवों में इनकी संख्या अलग-अलग होती है। इसलिए विभिन्न जातियों में जातिवृत्तीय एवम् वर्गीकीय सम्बन्धों को निर्धारित करने में इनका विशेष महत्त्व है। कुछ सामान्य जन्तुओं एवम् पादपों की गुणसूत्र संख्या निम्न प्रकार से है।

Animals :

1. *Paramecium aurelia*	30–40
2. *Hydra vulgaris*	32
3. *Ascaris lumbricoides*	24
4. *Homo sapiens*	46
5. *Equus caballus*	64
6. *Drosophila melanogaster*	8

Plants :

1. *Raphanus*	18
2. *Brassica*	18
3. *Allium cepa*	16

आकारिकी (Morphology)

आकार एवम् आकृति (Shape and Size)

कोशिका विभाजन के समय ये क्रोमेटिन पदार्थ की निश्चित रूप से संघटित कार्यों के रूप में दृष्टिगत होते है जो कोशिका भाजन के समय पुनः अपनी वास्तविक स्थिति में लौट आते हैं। गुणसूत्र $1\mu–30\mu$ लम्बे तथा $0{\cdot}2\mu–2\mu$ व्यास के होते है।

कोशिका विभाजन की मध्यावस्था (metaphase) तथा पश्चावस्था (anaphase) में संघनित होने के कारण इनको स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ये सीधे शलाकाकार, कुंडलित या सर्पिल, वंकिक तथा तन्तुमय होते हैं। ये पूर्ण लम्बाई में समान मोटाई के होते है अथवा फिर एक या अधिक स्थानों पर संकीर्ण होते हैं। कुछ गुणसूत्रों में ट्रेवेन्ट्स, घुन्डियों या सैटलाइट के रूप में अतिरिक्त संरचनाएँ होती है। गुणसूत्रों का आकार प्राथमिक संकीर्णन में स्थित सेन्ट्रोमीयर की स्थिति पर निर्भर करता है।

संरचना (Structure)

संरचनात्मक रूप से प्रत्येक गुणसूत्र में निम्नलिखित भाग होते हैं :—

(*a*) **पेलीकल**, (*b*) **मैट्रिक्स** तथा (*c*) **क्रोमोनेमेटा**।

(*a*) **पेलिकल** (Pellicle)—यह गुणसूत्र पदार्थ के चारों ओर स्थित वाह्य आवरण है। यह अक्रोमेटिक पदार्थ से बने अति महीन आवरण के रूप में होता है।

डार्लिगटन (Darlingtion, 1935) तथा **रिस** (Ris, 1945) के अनुसार गुणसूत्र के चारों ओर पेलिकल का अभाव होता है।

(*b*) **मैट्रिक्स** (Matrix)—यह गुणसूत्र का आधार पदार्थ है जिसमें क्रोमोनेमेटा (chromonemata) होते हैं। यह भी नॉनजैनेटिक पदार्थ का वना होता है।

(*c*) **क्रोमोनेमेटा** (Chromonemata)—प्रत्येक गुणसूत्र के मैट्रिक्स में दो समान व कुंडलित धागों के समान **क्रोमोनेमेटा** (chromonemata) होते हैं। दोनों क्रोमोनेमेटा दृढ़बद्ध रूप से कुंडलित होकर लगभग 800A मोटे एक धागे के समान प्रतीत होते हैं। प्रत्येक क्रोमोनेमेटा 8 सूक्ष्म तंतुकों (microfibrils) का वना होता है जिनमें से प्रत्येक DNA का दुहरा कुंडल होता है।

चित्र 8·1. समसूत्री विभाजन की पश्चावस्था में गुणसूत्र की संरचना (Structure of chromosome at anaphase stage of mitosis)

क्रोमोमीयर्स (Chromomeres)

क्रोमोनेमेटा पर समान दूरी पर गहरे हरे रंग के क्रोमोमीयर्स स्थित होते हैं। संलग्न क्रोमोमीयर्स के वीच के महीन व अल्परंजित भाग **इन्टर-क्रोमोमीयर्स** (inter-chromomeres)

कहलाते हैं। किसी एक गुणसूत्र में क्रोमोनेमेटा पर क्रोमोमीयर्स की स्थिति सदैव नियत होती है। अर्धसूत्री पूर्वावस्था की जाइगोटीन अवस्था में समजात गुणसूत्रों का एक-एक क्रोमोमीयर युग्मन करता है।

प्रारम्भ में यह अनुमान था कि आनुवंशिक यूनिट या जीन्स इन क्षेत्रों में स्थित होते हैं। किन्तु आधुनिक खोजों के अनुसार क्रोमोमीयर्स क्रोमोनेमा तन्तुओं के उन विशिष्ट क्षेत्रों को प्रदर्शित करते हैं जहाँ पर कि तन्तु कुंडलित होकर जटिल व सघन क्रोमेटिन पदार्थ बनाते हैं।

गुणसूत्रों में विशिष्ट प्रदेश (Different Regions in Chromosomes)

(A) **सेन्ट्रोमीयर** (Centromere)—प्रत्येक गुणसूत्र में क्रोमोनेमेटा पर एक संकीर्णन के रूप में एक छोटी व अस्थायी रचना होती है जिसे **सेन्ट्रोमीयर** (centromere), **प्राथमिक संकीर्णन** (primary constriction) या **काइनेटोकोर** (kinetochore) कहते हैं। एक ही प्रकार के गुणसूत्रों में इसकी स्थिति सदैव नियत रहती है। कोशिका-विभाजन में गुणसूत्र इसी स्थान द्वारा तर्कु तन्तुओं से जुड़े रहते हैं। सेन्ट्रोमीयर की अनुपस्थिति में गुणसूत्र तर्कु पर समुचित रूप से व्यवस्थित नहीं हो पाते और पृथक्करण के समय ध्रुव पर पहुँचने में असमर्थ रहते हैं। गुणसूत्र के विभाजन के साथ सेन्ट्रोमीयर भी विभाजित हो जाता है। सेन्ट्रोमीयर के दोनों ओर गुणसूत्र के भागों को **भुजाएँ** (arms) कहते हैं। सेन्ट्रोमीयर की स्थिति के अनुसार गुणसूत्र की भुजाएँ समान या असमान होती हैं।
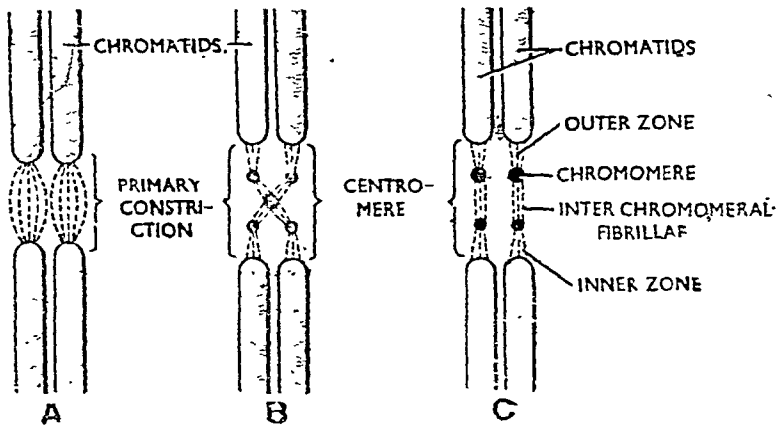
चित्र ८·२. सेन्ट्रोमीयर की संरचना (Structure of Centromere)

वहुधा एक गुणसूत्र पर एक ही सेन्ट्रोमीयर होता है किन्तु कभी-कभी एक से भी अधिक सेन्ट्रोमीयर होते हैं। सेन्ट्रोमीयर्स की संख्या के आधार पर गुणसूत्र निम्न प्रकार के होते हैं :—

1. एक सेन्ट्रोमीयर वाले **मोनोसेन्ट्रिक** (monocentric)
2. दो सेन्ट्रोमीयर वाले **डाइसेन्ट्रिक** (dicentric)
3. दो से अधिक सेन्ट्रोमीयर वाले **पोलीसेन्ट्रिक** (polycentric)
4. विना सेन्ट्रोमीयर वाले **एसेन्ट्रिक** (acentric)
5. गुणसूत्र की पूरी लम्बाई में फैले हुए अस्पष्ट **सेन्ट्रोमीयर** वाले (diffused or non-located)।

सेन्ट्रोमीयर की स्थिति के अनुसार गुणसूत्रों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है।

1. अन्तःकेन्द्री या टेलोसेन्ट्रिक (Telocentric)—ये शलाकाकार गुणसूत्र हैं जिनमें सेन्ट्रोमीयर सिरे पर स्थित होता है। अतः ऐसे गुणसूत्र में केवल एक भुजा होती है। (चित्र 8·3 A)

2. अग्रबिन्दु या एक्रोसेन्ट्रिक (Acrocentric)—ये भी शलाकाकार गुणसूत्र हैं जिनमें सेन्ट्रोमीयर सिरे के समीप स्थित होता है। इनमे एक भुजा अधिक लम्बी होती है और दूसरी बिन्दु के समान प्रतीत होती है (चित्र 8·3 B)।

3. उपमध्यकेन्द्री या सबमेटासेन्ट्रिक (Submetacentric)—इनमें सेन्ट्रोमीयर मध्य बिन्दु से कुछ हटकर होता है जिससे दोनों भुजाएँ असमान लम्बाई की होती हैं।
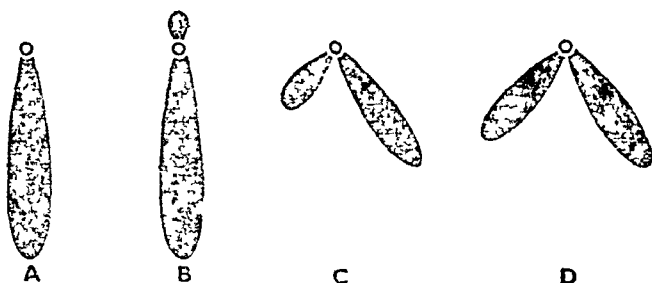
चित्र ८·३. सेन्ट्रोमीयर की स्थिति को प्रदर्शित करते हुए चार प्रकार के गुणसूत्र
(Four different types of chromosomes showing the different positions of centromere)

4. मध्यकेन्द्री (Metacentric)—ये V के समान गुणसूत्र हैं जिनमे सेन्ट्रोमीयर गुणसूत्र के मध्य मे स्थित होता है और दोनो भुजाएँ समान लम्बाई की होती है।

B. द्वितीयक संकीर्णन (Secondary constriction)—कभी-कभी गुणसूत्र की एक या दोनो भुजाओं पर प्राथमिक संकीर्णन के अतिरिक्त एक द्वितीयक संकीर्णन होता है। अन्तरावस्था मे यह क्षेत्र न्यूक्लिओलस के सम्बद्ध होता है और न्यूक्लिओलस के निर्माण मे भाग लेता है। गुणसूत्र मे इसकी स्थिति का पता एक अल्प अभिरजित प्रकीर्णन क्षेत्र से चलता है।

C. सैटेलाइट (Satellite)—जब सेन्ट्रोमीयर गुणसूत्र के किसी सिरे के समीप होता है तो अग्र सिरे पर संकीर्णन से आगे का घुण्डीनुमा भाग सैटलाइट कहलाता है। सैटलाइट एक महीन क्रोमेटिन तन्तु द्वारा शेप गुणसूत्र से जुड़ा रहता है। किसी विशेष गुणसूत्र में सैटलाइट का आकार एवम् आकृति सदैव स्थायी होते हैं।

D. टेलोमीयर्स (Telomeres)—ये गुणसूत्र के विशिष्ट सिरे है जो क्रियात्मक भिन्नन एवम् ध्रुवता प्रदर्शित करते हैं। खण्डित सिरों वाला गुणसूत्र टेलोमीयर का परिवर्धन कर गुणसूत्री खण्डों को इससे जुड़ने से रोकता है।

परारचना (Ultrastructure)

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा गुणसूत्र की तन्तुकी संरचना का पता चलता है। इसके सम्बन्ध मे दो मत व्यक्त किये गये है :—

1. बहुरज्जुकी संकल्पना (Multistranded concept)—इस मत के अनुसार DNA व प्रोटीन अणु गुणसूत्रों के संघटक एकक है। प्रत्येक DNA अणु दुहरा हेलिक्स

है जिसके दोनों स्ट्रैण्ड सर्पिल रूप से कुंडलित होते हैं। प्रत्येक स्ट्रैण्ड में अनेक न्यूक्लिओटाइड phosphate sugar वर्गों द्वारा शृंखलाबद्ध रहते हैं। दोनों स्ट्रैण्ड के न्यूक्लिओटाइड्स नाइट्रोजिनस क्षारों द्वारा जुड़े रहते हैं तथा दोनों DNA अणु अपने सम्बद्ध प्रोटीन्स सहित सूक्ष्म तन्तुक या माइक्रोफाइब्रिल (microfibril) बनाते हैं। माइक्रोफाइब्रिल लगभग 60-100Å मोटे होते हैं। चार माइक्रोफाइब्रिल (DNA के आठ हेलिक्स) सामूहिक रूप में अर्धक्रोमेटिड (half chromatid) बनाते हैं और दो अर्धक्रोमेटिड मिलकर एक क्रोमेटिड (chromatid) तथा दो क्रोमेटिड मिलकर एक गुणसूत्र (chromosome) बनाते है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक गुणसूत्र में DNA के 32 हेलिक्स होते हैं और इसका व्यास लगभग 1600Å होता है।
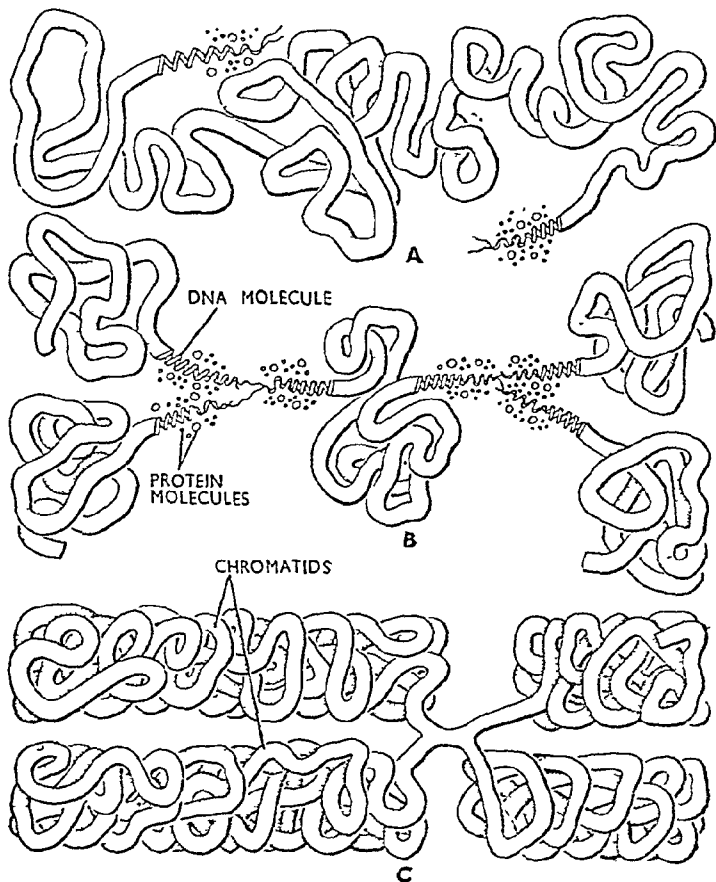
चित्र ८·४. गुणसूत्रों की परारचना (Ultrastructure of chromosomes: A and B. एकरज्जुकी (unistranded), C. बहुरज्जुकी (multistranded)

2. **एकरज्जुकी संकल्पना** (Unistranded concept)—इस संकल्पना के अनुसार प्रत्येक गुणसूत्र एकल माइक्रोफाइब्रिल का बना होता है जिसमें केवल एकल DNA का दुहरा हेलिक्स अणु व उससे सम्बद्ध प्रोटीन होते हैं। **Dupraw** (1965) ने क्रोमेटिड की संरचना के लिए **folded fibre model** प्रस्तुत किया है।

इस संकल्पना के अनुसार DNA अणु के चारों ओर न्यूक्लिओप्रोटीन्स लिपटे रहते है और DNA व प्रोटीन तन्तु एक-दूसरे के चारों ओर कुंडलित होकर 250–300Å मोटे तन्तु बनाते हैं। गुणसूत्र के दोनों क्रोमेटिड्स के DNA-प्रोटीन अणु सेन्ट्रोमीयर में गुणसूत्र के एक अप्रतिकृत तन्तु द्वारा जुड़े रहते है (चित्र 8·4)।

Folded fibre model की विभिन्न रासायनिक विश्लेपणों द्वारा पुष्टि की गयी है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी अध्ययनों द्वारा भी इसी संकल्पना की पुष्टि होती है। **Cairus** (1963) तथा **Sasak** (1966) के अनुसार स्तनधारियो की कोशिकाओं के केन्द्रक में 1 mm. से 2·2 cm. तक लम्बे DNA अणु होते है। इस मॉडल द्वारा इस मत को भी समर्थन मिलता है कि गुणसूत्र की पुनरावृत्ति DNA संश्लेषण के फलस्वरूप होती है।

रासायनिक प्रकृति (Chemical nature)—गुणसूत्र एक विशेष रासायनिक पदार्थ क्रोमेटिन (chromatin) के बने होते है। क्रोमेटिन विशेष न्यूक्लिओ-प्रोटीन (nucleo-proteins) से बने होते है। क्रोमेटिन में दो प्रकार के प्रोटीन तथा दो प्रकार के न्यूक्लीक अम्ल होते है। ये इस प्रकार हैं—कम भार वाले प्रोटीन, अधिक भार वाले जटिल प्रोटीन, डी-ऑक्सीराइबोन्यूक्लीक अम्ल (DNA), तथा राइबो-न्यूक्लीक अम्ल (RNA)। प्रोटीन बहुलक (polymer) है जो 20 या अधिक सरल ऐमीनो अम्ल अणुओं के मिलने से बनते है। DNA तथा RNA न्यूक्लिओ-टाइड्स (nucleotides) के चार सरल एकको के रासायनिक अनुबन्धन से बने होते हैं। प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड अणु मे फॉस्फोरिक अम्ल, पाँच कार्बन अणु वाली शर्करा (pentose), डी-ऑक्सी-राइबोस अथवा राइबोस तथा चार प्रकार के क्षारीय अणुओं में से एक होता है। इन चार क्षारों में से दो प्यूरीन (purine) तथा दो पाइरेमिडिन (pyramidines) होते है। DNA तथा RNA के दोनों प्यूरीन क्रमशः एडेनिन (adenine) एवम् ग्वानिन (guanine) तथा DNA के दोनों पाइरेमिडिन—साइटोसिन (cytosine) तथा थायमिन (thymine) होते है। DNA भी एक दीर्घ अणु (macromolecule) है जिसमे न्यूक्लिओटाइड के 30,000 तक एकक एक-दूसरे से जुड़े रहते है। **वाटसन तथा क्रिक** (Watson and Crick) के अनुसार DNA का प्रत्येक अणु double helix spiral के रूप में होता है जिसमें दो वलयक (strands) होते है जो एक-दूसरे पर मुडे हुए पड़े रहते है। एक वलयक मे उपस्थित क्षार दूसरे वलयक के क्षारों की स्थिति नियत करते है क्योंकि पाइरिमिडिन का एक अणु प्यूरिन के एक निश्चित अणु से जुड़ता है। सदैव ही एडिनिन, थाइमिन से तथा ग्वानिन, साइटोसिन से सम्बन्धित होता है। समस्त आनुवंशिक संदेश DNA के अणुओं मे सञ्चित रहते है।

RNA तथा DNA में कुछ भिन्नताएँ होती हैं। RNA में डी-ऑक्सी-राइबोस के स्थान पर राइबोस नामक शर्करा के अणु होते है तथा इनका चौथा क्षार थाइमिन न होकर यूरेसिल (uracil) होता है। RNA एक दूत या सन्देश-वाहक के समान कार्य करता है। यह DNA में सञ्चित सन्देशों को उन स्थानों तक पहुँचाने का कार्य करता है जहाँ पर किसी विशेष कार्य के लिए विशेष एन्जाइम का बनना आवश्यक है। एन्जाइम का निर्माण RNA अणु की उपस्थिति तथा निरीक्षण में होता है। अत: RNA, DNA के सन्देशों को कार्य-रूप मे परिणत करता है।

गुणसूत्रों की कार्यिकी
(Physiology of Chromosomes)

गुणसूत्र आनुवंशिक वाहक कहलाते हैं। ये DNA अणुओं के स्ट्रैण्ड के बने होते हैं जिनमें विभिन्न लक्षणों के विकास एवं कोशिकाओं की विभिन्न उपापचय क्रियाओं के लिए संदेश निहित रहते हैं। एन्जाइम विभिन्न प्रकार्यों में समन्वय बनाये रखते हैं। ये प्रोटीन के जटिल अणुओं के बने होते हैं। प्रोटीन्स के इन अणुओं के संश्लेषण की सूचना नाइट्रोजिनस क्षारों के अनुक्रम के रूप में DNA अणुओं में निहित रहती है। ये संदेश त्रिक कूट (triplet code) के रूप में निहित रहते हैं अर्थात् तीन नाइट्रोजिनस क्षारों का अनुक्रम एक यूनिट बनाता है जिसमें केवल एक विशिष्ट प्रकार के ऐमीनो एसिड के लिए संदेश निहित होता है, जैसे AAA में केवल Phenylamine के संश्लेषण के लिए संदेश निहित होता है। DNA अणु से किसी विशेष प्रोटीन के संश्लेषण के लिए गुणसूत्रों के विभिन्न भागों में स्थित DNA अणु निम्न प्रकार के RNA का संश्लेषण करते हैं :—

1. DNA से mRNA का अनुलेखन—mRNA अणुओं का संश्लेषण DNA के उस विशिष्ट भाग से होता है जिसमें उस विशिष्ट प्रोटीन के संश्लेषण के लिए सूचना निहित रहती है। इन अणुओं में नाइट्रोजिनस क्षारों का अनुक्रम उस गुणसूत्र के समान होता है जिससे ये संश्लेषित होते हैं सिवाय इसके कि इनमें थाइमीन के स्थान पर यूरेसिल होता है।
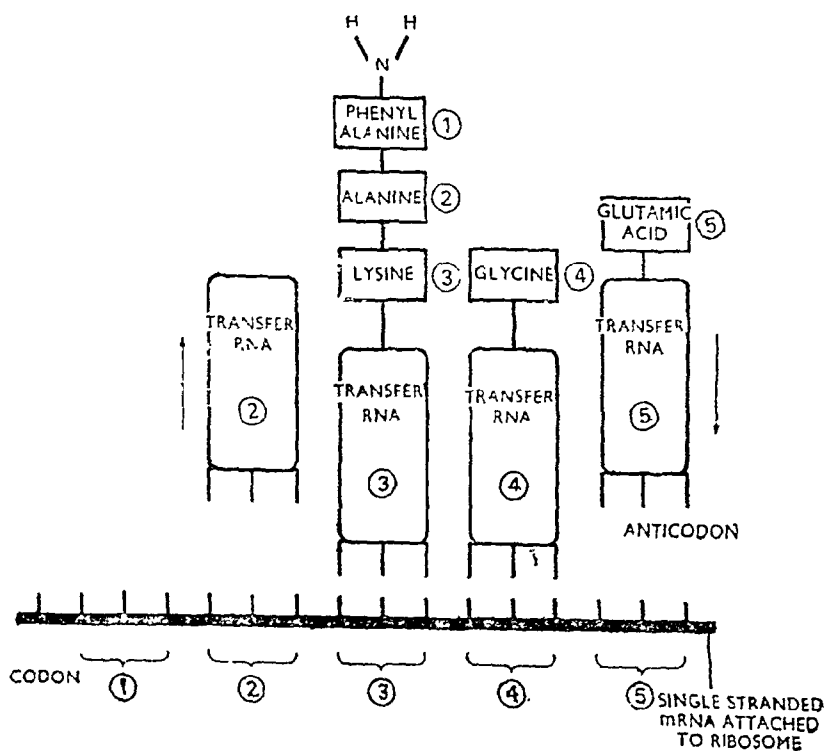
चित्र ८·५. प्रोटीन का जैव-संश्लेषण (*Protein biosynthesis*)

2. DNA से mRNA का अनुलेखन—*t*RNA गुणसूत्र के विशिष्ट भाग मे स्थित DNA से संश्लेपित होता है ।

3. *r*RNA का अनुलेखन (राइबोसोमल RNA)—यह गुणसूत्र के न्यूक्लिओलर सगठक क्षेत्र से निर्मित होता है। यह न्यूक्लिओलस में सचित रहता है। कुछ रूपान्तरणो के बाद इसको राइबोसोम्स के सश्लेपण के लिए कोशिकाद्रव्य मे भेज दिया जाता है। राइबोसोम प्रोटीन-सश्लेपण के स्थान है।

प्रोटीन संश्लेषण (Protein synthesis)—केन्द्रक मे से निकलकर कोशिकाद्रव्य में आने पर *m*RNA अणु राइबोसोम्स से चिपक जाते है। इस प्रकार अनेक राइबोसोम *m*RNA के एक ही अणु से आसजित होकर **पोलीराइबोसोम** (polyribosome) बनाते है। *t*RNA अणु भी केन्द्रक मे से कोशिकाद्रव्य में आ जाते है। यहाँ से ये विशिष्ट सक्रियित नाइट्रोजिनस क्षारो का चयन करके *m*RNA अणु की ओर अग्रसर होते है। एन्टीकोडोन (anticodon) को प्रदर्शित करने वाला विशिष्ट क्षार अनुक्रम युक्त *t*RNA अणु *m*RNA अणु के विशिष्ट कोडोन भाग से ही संलग्न होता है। प्रथम *t*RNA अणु द्वारा धारण किया हुआ ऐमीनो अम्ल द्वितीय *t*RNA अणु के ऐमीनो अम्ल को स्थानान्तरित हो जाता है और यही क्रम बराबर चलता रहता है। अपने ऐमीनो अम्लो को देने के बाद *t*RNA अणु राइबोसोम से मुक्त हो जाते है। अन्तिम कोडोन तक पहुँचने तक यह प्रक्रिया सतत रूप से होती रहती है और पोलीपेप्टाइड शृखला का निर्माण पूर्ण हो जाता है।

इस प्रकार गुणसूत्र में स्थित विभिन्न जीन्स उसमें निहित सदेशों को प्रेपित करते है और जीवो की उपापचय क्रियाओ का नियमन करते है और विशिष्ट लक्षणों को विकसित करते है।

प्रश्न 22. विशेष प्रकार के गुणसूत्रों का वर्णन कीजिये ।

Write an account of special types of chromosomes.

(Jiwaji 1973)

विशेष प्रकार के गुणसूत्र

1. लैम्पब्रुश गुणसूत्र (Lampbrush Chromosomes)

पीतकयुक्त अण्डे देने वाले कुछ पृष्ठवशियो की डिम्ब-कोशिकाओं के केन्द्रकों में सर्वाधिक दीर्घ आकृति वाले गुणसूत्र पाये जाते है। इनका आकार इतना अधिक बड़ा होता है कि इनको सामान्य दृष्टि द्वारा भी आसानी से देखा जा सकता है। अर्धसूत्री विभाजन के समय प्रोफेज की डिप्लोटीन प्रावस्था मे इनकी लम्बाई मे अत्यधिक वृद्धि होती है तथा सेण्ट्रोमीयर क्षेत्रो के अतिरिक्त इनके मुख्य अक्ष से अरीय रोम या लूप निकले रहते है। लूपो की उपस्थिति के कारण गुणसूत्र ब्रुश के समान प्रतीत होते है। इसी कारण इन्हे **लैम्पब्रुश गुणसूत्र** (lampbrush chromosomes) कहते है। कुछ अपृष्ठवशियों की शुक्राणु-कोशिकाओ में भी लैम्पब्रुश गुणसूत्र देखे जा सकते है। मछली, पक्षियो तथा एम्फीबिया के लैम्पब्रुश गुणसूत्रो ने ही वैज्ञानिकों का सर्वाधिक ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

लैम्पब्रुश गुणसूत्र मे DNA तथा प्रोटीन का बना हुआ एक **मुख्य अक्ष** (main axis) होता है। अतः यह भी DNA तथा प्रोटीन का बना होता है। लूप के अक्ष के चारो ओर RNA तथा प्रोटीन से निर्मित मैट्रिक्स होता है जिसके कारण यह रोयेदार प्रतीत होता है। लूप के आधार पर अभिरंजित क्रोमोमीयर्स के संचित होने के कारण

गुणसूत्र का अक्ष कुंडलित प्रतीति के समान दृष्टिगत होता है। इन बिन्दुओं पर एक ओर मैट्रिक्स स्थूलित होकर स्थूल निवेश (thick insertion) बनाता है तथा इसका दूसरी ओर का पतला सिरा महीन निवेश (thin insertion) कहलाता है। लूप-अक्ष अत्यधिक लचीला तथा 30–50Å मोटा होता है।
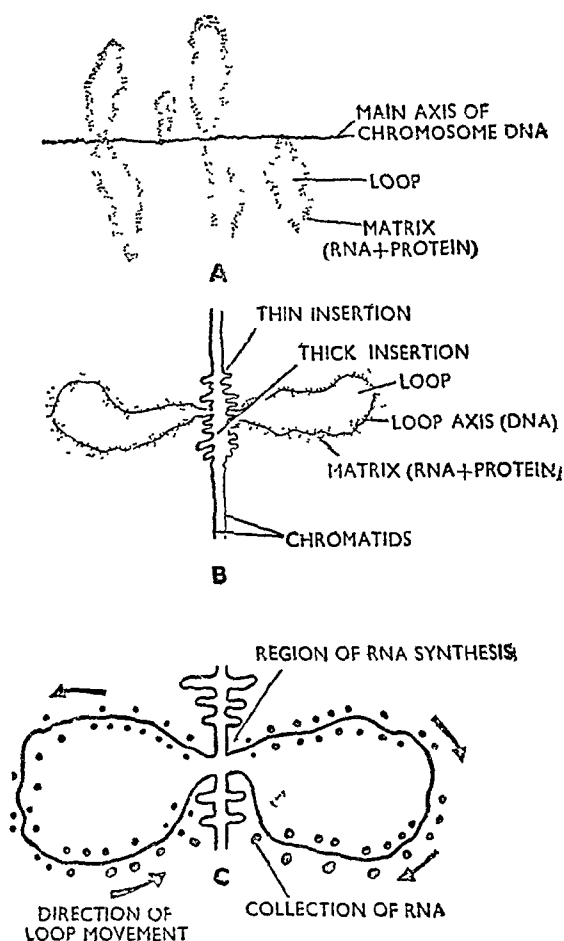
चित्र ८.६· लैम्पब्रुश गुणसूत्र—A. सामान्य रचना, B. विस्तृत रचना, C. लैम्पब्रुश गुणसूत्र के एक लूप में RNA-संश्लेपण (Lampbrush chromosome—A. Gross structure, B. detailed structure, C. synthesis of RNA in loop of lampbrush chromosome)

लैम्पब्रुश गुणसूत्रों के लूप RNA व प्रोटीन के संश्लेपण तथा योक (yolk) के निर्माण से सम्बद्ध होते है। अतः लूप क्रोमेटिन पदार्थ हैं जो केवल लूप अवस्था में ही संश्लेपात्मक रूप से सक्रिय होते हैं तथा अंडक द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं।

2. पोलीटीन गुणसूत्र (Polytene Chromosomes)

पोलीटीन गुणसूत्र भी दीर्घ आकृति वाले गुणसूत्र हैं जो आर्डर डिप्टेरा के कुछ कीटों के लारवाओं की लार ग्रन्थियों, माल्पीघियन नलिकाओं, आहारनाल के एपि-

थीलियल स्तर की कोशिकाओं तथा वसा पिण्डों में पाये जाते हैं। सर्वप्रथम **Balbiani** (1881) ने इनकी खोज की थी किन्तु **Kostoff** (1930) द्वारा पुन: इनके प्रकाश में आने से पूर्व इनके कोशिकानुवंशिकी महत्त्व को नहीं पहचाना जा सका। लार ग्रन्थियों में पाये जाने वाले पोलीटीन गुणसूत्र अपने दीर्घाकार के कारण सुगमता से अध्ययन किये जा सकते हैं।

Drosophila melanogaster में पाये जाने वाले पोलीटीन गुणसूत्र सामान्य दैहिक गुणसूत्र की अपेक्षा एक हजार गुना अधिक बड़े होते हैं। इसमें चार क्रोमेटिड वाले पोलीटीन गुणसूत्र की लम्बाई 2000μ होती है जबकि सामान्य दैहिक गुणसूत्र की लम्बाई केवल 7·5μ होती है।

पोलीटीन गुणसूत्र बहुवलयक रचनाएँ हैं जो बहुत से तन्तुओं के बने होते हैं। गुणसूत्रों में 9 या 10 बार क्रमिक रूप से द्विगुणित होने से पोलीटीन गुणसूत्रों का निर्माण होता है। द्विगुणन के फलस्वरूप बने समस्त क्रोमेटिड्स पोलीटीन गुणसूत्रों में बँटी हुई रस्सी के धागों के समान पड़े रहते हैं। तन्तु इतने महीन होते हैं कि स्पष्टतया दृष्टिगत नहीं होते। प्रत्येक तन्तु को **गुणसूत्र** माना जा सकता है। वलयकों के पुन: द्विगुणन की प्रक्रिया को **एण्डोमाइटोसिस** (endomitosis) कहते हैं। इस प्रकार एण्डोमाइटोसिस के फलस्वरूप बड़ी संख्या में बने क्रोमोनेमेटिक वलयक साथ-साथ पड़े रहते हैं तथा उनके सेण्ट्रोमीयर्स निकट सम्पर्क में स्थित होते हैं। एक दीर्घ आकार वाले पोलीटीन गुणसूत्र में 512 से कई हजार तक क्रोमोनेमेटिक वलयक होते हैं।
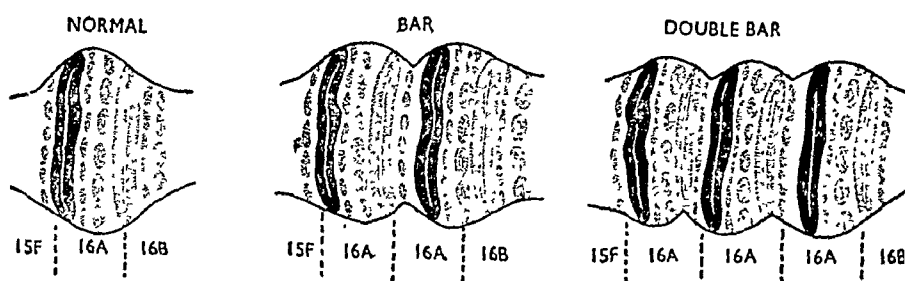
चित्र ८·७. पट्टिकाओं व आन्तरिक पट्टिकाओं को प्रदर्शित करते हुए ड्रोसोफिला की लार ग्रन्थियों के पोलीटीन गुणसूत्र (Polytene chromosome of salivary gland of *Drosophila* showing bands and interbands)

पट्टिकाएँ तथा आन्तर पट्टिकाएँ (Bands and interbands)—पोलीटीन गुणसूत्रों पर अनुप्रस्थ रूप से विन्यसित एक विशिष्ट प्रतिरूप प्रदर्शित होता है जिसमें गहरे रंग की पट्टिकाएँ (bands) तथा हल्के रंग की आन्तर-पट्टिकाएँ (interbands) फल्जन-नेगेटिव (fulgen-negative) होती है। पट्टिकाएँ क्रोमोनेमेटा पर विन्यसित क्रोमोमीयर्स से निर्मित होती हैं जो गुणसूत्र के अक्ष के लम्बवत् स्थित होते हैं। पट्टिकाएँ मोटाई तथा कुछ अन्य विशिष्ट लक्षणों में एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। क्योंकि ये गुणसूत्र पर निश्चित रूप से विन्यसित होती हैं, अत: इनकी सहायता से गुणसूत्र का सही-सही चित्रण किया जा सकता है। कोशिका विभाजन के समय ये समजात गुणसूत्रों की समान पट्टिकाओं से संलग्न होती हैं। पट्टिकाएँ आनुवंशिकी रूप से सक्रिय होती हैं तथा इनमें DNA प्रचुरता में होता है। इसके अतिरिक्त RNA तथा क्षार प्रोटीन के भी अंश पाये जाते हैं। अभी तक आन्तर पट्टिकाओं का इतने
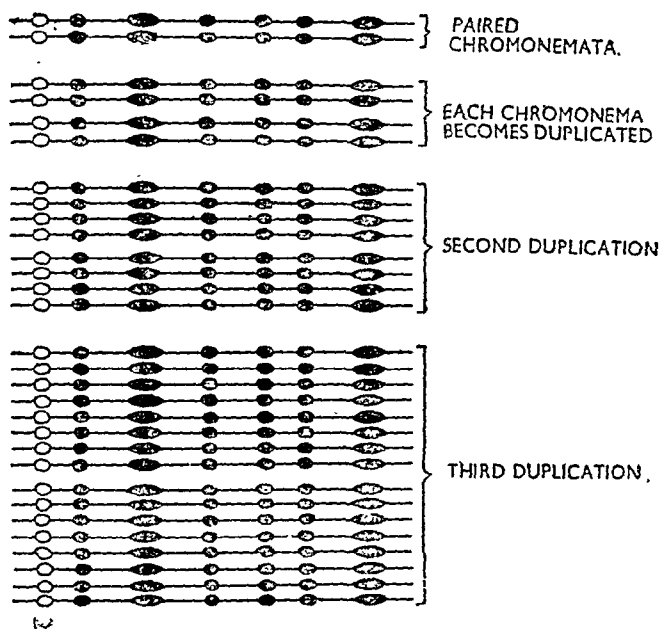
चित्र ८·८. पोलीटीन गुणसूत्र के निर्माण की सम्भावित प्रक्रिया का विधिवत् निरूपण (Schematic representation of possible mechanism of formation of polytene chromosomes)

गूढ़ रूप से अध्ययन नहीं हुआ है किन्तु ऐसा समझा जाता है कि ये भी आनुवंशिक रूप से सक्रिय होती हैं।

३. वाल्बियेनाई वलय (Balbiani Rings)

1881 में जीन्स एवम् गुणसूत्रों के परस्पर सम्बन्ध का अध्ययन करते समय देखा गया कि कुछ स्थानों पर दीर्घ गुणसूत्र (giant chromosome) की रचना पफों (puffs) के कारण अथवा फिर पार्श्व विस्तारणों से बने लूपों के कारण परिवर्तित हो गयी है। इस प्रकार बने पफ (puffs) वाल्बियेनाई वलय (Balbiani rings) या गुणसूत्र पफ (chromosomal puffs) कहलाते हैं।

पफ गुणसूत्र के चारों ओर बड़े-बड़े वलय बनाते हैं। ऐसा प्रकल्पित किया जाता है कि ये क्रोमोनेमेटा के अकुण्डलन के फलस्वरूप बनते हैं जो संलगित लूपों की शृंखला के रूप में निकले रहते हैं। इनकी उपस्थिति से गुणसूत्र की मोटाई में वृद्धि हो जाती है जो अब एक रोएँदार रचना के समान प्रतीत होता है।
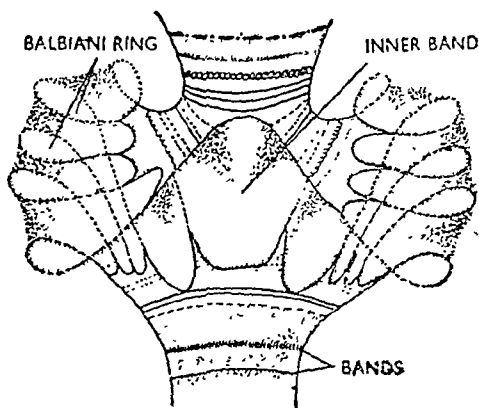
चित्र ८·९. ड्रोसोफिला के दीर्घ गुणसूत्र के वाल्बियेनाई वलय (Giant chromosome of *Drosophila* showing Balbiani ring)

पफों का निर्माण विशिष्ट जीन्स के नियन्त्रण में एक विशेष समय पर ही होता है। ये RNA संश्लेषण से सम्बद्ध होते हैं क्योंकि DNA एवम् प्रोटीन के अतिरिक्त इनमें RNA भी प्रचुर मात्रा में होता है। RNA की अधिक सान्द्रता के कारण पफ गुणसूत्रों की उपापचय क्रियाओं से सम्बद्ध होते हैं।

पफ ड्रोसोफिला की लार ग्रन्थियों के दीर्घ गुणसूत्रों के अतिरिक्त डिप्टिरन्स (Dipterans) के विभिन्न ऊतकों के गुणसूत्रों में भी देखे गये हैं।

4. अधिसंख्य गुणसूत्र (Supernumerary Chromosomes)

कुछ पेड़-पौधों व जन्तु-कोशिकाओं में गुणसूत्रों की सामान्य संख्या के अतिरिक्त एक या अधिक सम्बद्ध गुणसूत्र भी देखे गये हैं। इस प्रकार के गुणसूत्र हेटेरोक्रोमेटिन के बने होते हैं तथा बहुत छोटे व आनुवंशिक रूप से अक्रिय होते हैं। सामान्यत: केन्द्रक में इनकी उपस्थिति का जीव की लक्षण अभिव्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु अधिक संख्या में होने पर ये जीव की उर्वरता एवं ओज को कम करते हैं।

प्रश्न 23. गुणसूत्रों की संरचना एवं पुनरावृत्ति का वर्णन करिये।
Describe the structure and replication of chromosomes.
(*Jiwaji 1972, 73*)

संरचना (Structure)

कृपया प्रश्न २० देखिये।

गुणसूत्रों की पुनरावृत्ति (Replication of Chromosomes)

गुणसूत्रों की परारचना से ज्ञात होता है कि ये DNA अणुओं के 16 दुहरे हैलिक्स का बना होता है जो प्रोटीन्स की सहायता से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। अत: गुणसूत्रों की पुनरावृत्ति वास्तव में DNA अणुओं की पुनरावृत्ति है। यह इससे भी सिद्ध होता है कि कोशिका विभाजन से ठीक पहले कोशिका में DNA की मात्रा कोशिका विभाजन के फलस्वरूप बनी सन्तति कोशिकाओं से दुगुनी होती है।

DNA की पुनरावृत्ति में सर्वप्रथम DNA अणु के दोनों स्ट्रैण्ड अवलित होकर पृथक् हो जाते हैं। पृथक्करण इनके क्षार युग्मों के हाइड्रोजन बॉण्डों की विमुक्ति के फलस्वरूप होता है। अब प्रत्येक पृथक् हुआ स्ट्रैण्ड न्यूक्लिओप्लाज्म से अनुपूरक नाइट्रोजिनस क्षारों का चयन करता है। उदाहरण के लिए एडिनीन (A) सदैव थाइमीन (T) से, साइटोसीन (C) ग्वानीन (G) से तथा ग्वानीन (G) साइटोसीन (C) का चयन करके युगल बनाते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि किसी पुराने स्ट्रैण्ड में नाइट्रोजिनस क्षारों का अनुक्रम A A T G G G A C T होने पर नयी बनी शृंखला T T A C C C T G A होगी।

नये बने क्षार युगल शर्करा व फॉस्फेट अणुओं द्वारा एक-दूसरे से जुड़ते चले जाते हैं और DNA के नये अनुपूरक स्ट्रैण्ड का निर्माण पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक DNA अणु अपनी प्रतिलिपि बनाता है।

अध्याय 9

जीन्स
(Genes)

प्रश्न 24. जीन की संरचना एवं कार्यों का आधुनिक दृष्टिकोण से उल्लेख कीजिये।

Give recent views about the structure and function of Gene.

जीन संरचना एवं जीन अभिव्यक्ति की आधुनिक संकल्पना पर निबन्ध लिखिये।

Write an essay on the modern concept of gene-structure and gene-expression.

(*Karnatak 1966 ; Delhi 72 ; Meerut 69, 70*)

जीन क्या है ? इसके कार्यों का वर्णन करिये।

What is Gene ? Describe its functions. (*Meerut 1974*)

जीन्स आनुवंशिकी यूनिट हैं जो गुणसूत्र के क्रोमोनेमा में एक रैखिक अनुक्रम में विन्यसित होते हैं। मेन्डल (Mendel) ने इनको कारक (factors) या निर्धारक (determiners) की संज्ञा दी। **Johannsen** ने इन मेन्डेलियन कारकों को **जीन** कहा। **Watson** एवं **Crick** (1953) तथा **Wilkins** (1962) के अनुसार जीन की परिभाषा निम्न प्रकार है :—

> जीन एक दीर्घ अणु या C, H, N, O तथा P का बड़ा मूलक है जो एक अविभेदित प्रोटीनस तन्तु, क्रोमोनेमा, से जुड़ा रहता है और बिना किसी परिवर्तन के एक कोशिका से दूसरी कोशिका में और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पारित होता रहता है और एक विशिष्ट समलक्षणी विशेषता के लिए उत्तरदायी होता है।

उपर्युक्त परिभाषा से जीन की निम्नलिखित विशेषताओं का आभास होता है :—

1. जीन्स C, H, N, O तथा P के बने जटिल यौगिक या दीर्घ अणु हैं।
2. जीन्स गुणसूत्रों में स्थित होते हैं।
3. जीन्स विशिष्ट लक्षणों वाले क्रियात्मक यूनिट हैं।
4. इनमें स्वयं को यथार्थ रूप से अनुलिपिकरण करने का सामर्थ्य होता है।
5. ये अत्यधिक स्थायी रचनाएँ हैं जो मेन्डल के आनुवंशिकी के नियमों का पालन करते है।
6. इनमें परिवर्तन होते हैं।

जीन्स की आकारिकी (Morphology of Genes)

जीन्स अतिसूक्ष्म रचनाएँ है जिनका आकार 15 $m\mu \times 100$ $m\mu$ होता है। ये बेलनाकार या छड़-नुमा माइक्रोयूनिट है।

जीन्स की रासायनिक संरचना (Chemical Nature of Genes)

साइटोलॉजी के क्षेत्र में नवीनतम खोजों के अनुसार जीन्स DNA अणुओं से संबंधित होते है। कोशिका विभाजन के अध्ययन, बैक्टीरियल रूपान्तरण, वाइरस अनुसंधान तथा अतरावस्था मे कोशिकाओं में DNA की मात्रा से इसके पक्ष में प्रमाण मिलते है।

DNA अणु एक दीर्घ अणु है जिसका आण्विक भार कई लाख तक होता है। यह दो लम्बे स्ट्रैण्ड का बना होता है जो एक-दूसरे के चारों ओर सर्पिल रूप से कुंडलित रहते है। प्रत्येक स्ट्रैण्ड में 33,000 तक सरल यूनिट होते है। जो एक-दूसरे से जुड़कर एक लम्बा स्ट्रैण्ड बनाते है। प्रत्येक यूनिट **न्यूक्लिओटाइड**
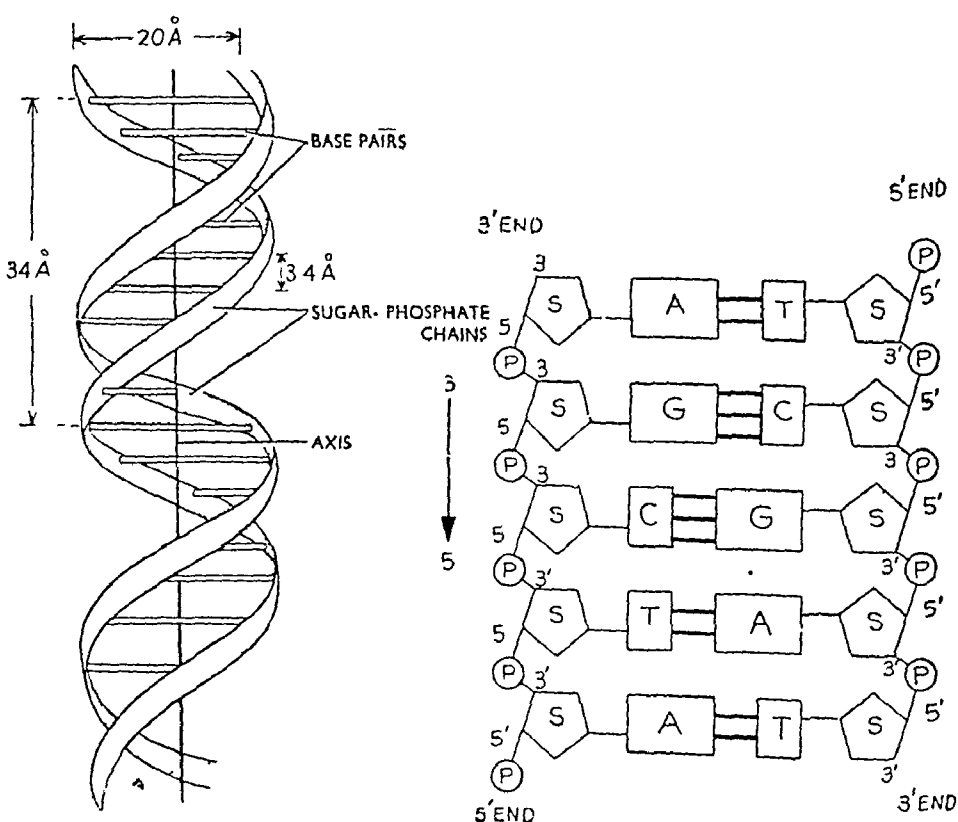
चित्र ६·१. DNA अणु की संरचना (Structure of DNA Molecule)

A. DNA अणु का वाटसन एवं क्रिक का मॉडल (Watson and Crick Model of DNA molecule)

B फॉस्फेट, शर्करा तथा क्षार अणुओं के प्रदर्शन हेतु DNA अणु के एक भाग का आवर्धित दृश्य (A part of DNA molecule enlarged to show the arrangement of phosphate, sugar and nitrogenous base molecules)

Phosphate—Sugar—Adenine NH_2

Adenine HC

CH

CH

O

O CH_2

$HO-\overset{\overset{O}{\|}}{\underset{\underset{O^-}{|}}{P}}-O-CH_2-CH$ —— CHOH

Sugar

Phosphate
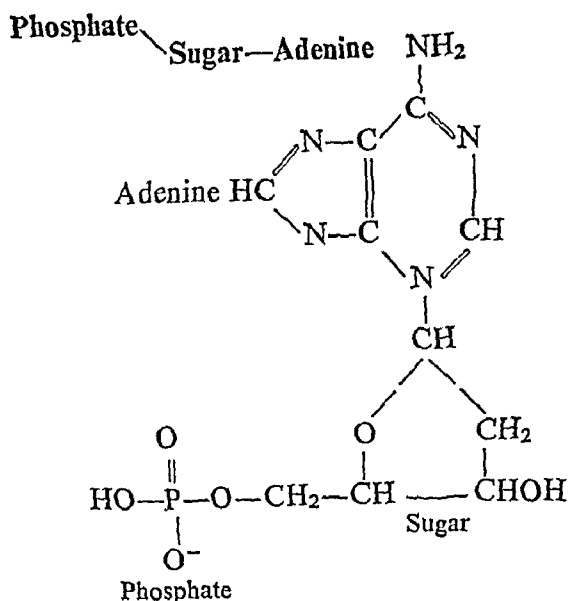
चित्र ९·३. DNA का एक न्यूक्लिओटाइड
(A nucleotide of DNA—deoxyadenylic acid)

DNA में निम्नलिखित चार प्रकार के न्यूक्लिओटाइड्स होते हैं :—

1. Deoxyadenylic acid
2. Deoxyguanylic acid
} प्यूरीन न्यूक्लिओटाइड्स

3. Deoxythymidylic acid
4. Deoxycytidylic acid
} पिरिमिडीन न्यूक्लिओटाइड्स

न्यूक्लिओटाइड्स अपने फॉस्फेट मूलक द्वारा परस्पर जुड़कर एक शृंखला या स्ट्रैण्ड बनाते हैं। दोनों स्ट्रैण्ड के न्यूक्लिओटाइड्स भी हाइड्रोजन वाण्ड की सहायता से अपने नाइट्रोजिनस क्षारों द्वारा जुड़े रहते हैं। यह ध्यान रहे कि सदैव ही एक स्ट्रैण्ड के न्यूक्लिओटाइड्स का एडिनीन (प्यूरीन) थाइमीन (पिरिमिडीन) से तथा ग्वानीन (प्यूरीन) साइटोसीन (पिरिमिडीन) से जुड़ता है।

जीन की आण्विक संरचना (Molecular Structure of Gene)

रासायनिक रूप से जीन DNA का बना होता है किन्तु DNA के कौन-से भाग से जीन का निर्माण होता है? **Benzen** ने DNA अणु व जीन के पारस्परिक सम्बन्ध का निम्न प्रकार वर्णन किया है :—

1. रैकॉन (Recon)—यह DNA का सूक्ष्मतम यूनिट है जो क्रॉसिंग ओवर (जीन-विनिमय) तथा पुनः संयोजन करने में समर्थ होता है। रैकॉन DNA के एक न्यूक्लिओटाइड जोड़े जितना छोटा होता है।

2. म्यूटॉन (Muton)—यह DNA का वह सूक्ष्मतम यूनिट है जिसमें उत्परिवर्तन हो सकता है।

3. सिस्ट्रॉन (Cistron)—यह फलन का यूनिट है। यही वास्तविक जीन है जिसमें अनेक न्यूक्लिओटाइड होते हैं और यह एन्जाइम की पोलीपेप्टाइड शृंखला का संश्लेपण करने में समर्थ होता है।

4. कम्पलॉन (Complon)—यह पूरकीकरण का यूनिट है। यह सिस्ट्रॉन को प्रतिस्थापित करने का कार्य करता है। कुछ एन्जाइम्स में यह दो या अधिक पोलीपेप्टाइड शृंखलाओं का बना होता है जो एक-दूसरे की पूरक होती हैं।

5. ओपेरॉन (Operon)—यह ओपरेटर जीन संरचना जीन्स के अनुक्रम का संयोग है जो एक-साथ मिलकर एक यूनिट की भाँति कार्य करते हैं। ओपेरॉन का प्रभाव संकली व दमनक दोनों ही प्रकार का होता है।

6. रेप्लिकॉन (Replicon)—यह पुनरावृत्ति का यूनिट है। अनेक रेप्लिकॉन मिलकर एक गुणसूत्र का निर्माण करते हैं।

जीन फलन (Gene Function)

जीन्स मुख्यत: एन्जाइम्स के द्वारा कार्य करते हैं जो उपापचय के विभिन्न पदों का नियमन करते हैं। एन्जाइम्स एक प्रकार के प्रोटीन हैं जो ऐमीनो अम्लों की पोलीपेप्टाइड शृंखला के बने होते हैं। अब तक २० से अधिक ऐमीनो अम्लों का पता लग चुका है। इनके विभिन्न अनुक्रमों में विन्यसित होने से अलग-अलग प्रकार के प्रोटीन बनते हैं। किसी पोलीपेप्टाइड शृंखला में ऐमीनो अम्लों के अनुक्रम को जीन्स की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है। क्योंकि जीन्स में जैनेटिक कोड (DNA अणु में स्थित नाइट्रोजिनस क्षारों का त्रिक अनुक्रम) के रूप में संदेश निहित रहते हैं। एन्जाइम्स की क्रिया-विधि का गुणसूत्रों की कायिकी के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है।

दात्र कोशिका अरक्तता (Sickle cell anemia)—जीन्स की क्रिया-विधि को नीग्रो जाति के मनुष्यों में पाये जाने वाले दात्र कोशिका अरक्तता नामक रोग से भली प्रकार समझा जा सकता है। इस रोग में ऑक्सीजन की कमी होने पर R.B.Cs. दराती के समान हो जाते हैं। इस रोग का आण्विक आधार हीमोग्लोबिन में ऐमीनो अम्ल अणुओं के विन्यास में अन्तर है। हीमोग्लोबिन एक प्रोटीन है जिसमें लगभग 600 अणु चार पोलीपेप्टाइड शृंखलाओं में विन्यसित रहते हैं। इनमें से दो α-शृंखलाएँ तथा अन्य दो β-शृंखलाएँ होती हैं। HbA (सामान्य हीमोग्लोबिन) में β-पोलीपेप्टाइड शृंखला का छठा ऐमीनो अम्ल अणु ग्लूटेमिक एसिड (glutamic acid) होता है जबकि HbS (असामान्य हीमोग्लोबिन) में यह वेलीन (valine) होता है।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि 600 में से केवल एक ऐमीनो अम्ल के

परिवर्तन से ही हीमोग्लोबिन के गुणों में परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। यह परिवर्तन शृंखला के एक विशेष ऐमीनो अम्ल का कूटीकरण करने वाले नाइट्रोजिनस क्षार में परिवर्तन के फलस्वरूप सम्भव होता है।

एक जीन एक एन्जाइम सिद्धान्त (One gene one enzyme theory)—**Beadle** एवम् **Tatum** ने *न्यूरोस्पोरा* (Neurospora) में जीन क्रिया का अध्ययन किया है। यह कवक बाओटिन (biotin) नामक प्रोटीन तथा शर्करा, सरल यौगिक तथा अमोनिया के संवर्धन में समुचित रूप से वृद्धि करता है। किन्तु इसके कोशिका-द्रव्य का विश्लेषण करने पर इसमें 20 प्रकार के ऐमीनो अम्ल मिलते हैं जो या तो स्वतन्त्र रूप से होते है अथवा फिर सम्बन्धित अवस्था में प्रोटीन्स, प्यूरीन्स, पिरिमिडीन्स, DNA तथा RNA इत्यादि के रूप में होते हैं। क्योंकि ये पदार्थ संवर्धन माध्यम में नही थे अत: इनका संश्लेषण *न्यूरोस्पोरा* कवक द्वारा ही हुआ है।

न्यूरोस्पोरा के बीजाणुओं को म्यूटाजन से अभिक्रियत करने के बाद इनमें से कुछ न्यूनतम संवर्धन में वृद्धि करने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि इनको एक अन्य पदार्थ **आर्जिनीन** (arginine) की आवश्यकता होती है। किन्तु इनको आर्जिनीन युक्त संवर्धन में रखने पर ये सामान्य रूप से वृद्धि करते हैं। इस प्रकार के बीजाणुओं मे कुछ जीन्स के उत्परिवर्तन होते हैं जो आर्जिनीन का संश्लेषण करने के लिए आवश्यक एन्जाइम्स का निर्माण करने में असमर्थ रहते हैं। अब यह सुस्थापित हो गया है कि आर्जिनीन के सश्लेषण में सात एन्जाइम भाग लेते हैं और प्रत्येक एन्जाइम एक अलग जीन द्वारा उत्पन्न होता है :
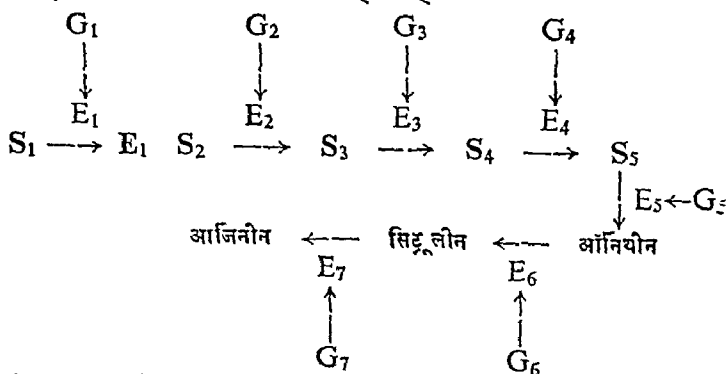
चित्र ६·४. न्यूरोस्पोरा मे S पदार्थ से आर्जिनीन नामक ऐमीनो अम्ल के संश्लेषण के विभिन्न पद। उपर्युक्त चित्र मे S_1, S_2, S_3... पदार्थ को, E एन्जाइम को तथा G जीन को निरूपित करते हैं।
(Biosynthetic pathway of the stepwise conversion of a substance S into an amino acid arginine in *Neurospora* S_1, S_2, S_3 . represent substance, E enzyme and G gene)

उपर्युक्त विवरण से **एक जीन एक एन्जाइम या एक जीन एक पोलीपेप्टाइड** शृंखला का स्पष्टीकरण होता है।

प्रश्न 25. म्यूटॉन, रेकॉन एवम् सिस्ट्रॉन क्या हैं ?
What are mutons, recons and cistrons ? (*Raj. 1973*)

कृपया प्रश्न 24 देखिये।

अध्याय 10

न्यूक्लीक अम्ल
(Nucleic Acids)

प्रश्न 26. DNA एवं RNA पर निबंध लिखिये।
Write an essay on DNA and RNA.

(*Saurashtra 1973*; *Jabalpur 72*)

DNA एवं RNA की संरचना का वर्णन करिये।
Describe the structure of DNA and RNA. (*Jabalpur 1973*)

DNA व RNA कोशिका में किस स्थान पर मिलते हैं ? इनकी संरचना एवं कार्यों में क्या अंतर है ?

Where in a cell do DNA and RNA occur ? How do they differ in structure and function ? (*Sri Venkat 1973*)

प्रत्येक जीवित कोशिका में DNA (डिग्रॉक्सी-राइवोन्यूक्लीक एसिड) तथा RNA (राइवोन्यूक्लीक एसिड) नामक दो प्रकार के न्यूक्लीक एसिड पाये जाते हैं। DNA एकमात्र रूप से केन्द्रक में पाया जाता है जबकि RNA मुख्य रूप से कोशिकाद्रव्य में पाया जाता है। DNA की कुछ मात्रा माइटोकॉण्ड्रिया एवम् क्लोरोप्लास्ट में भी पायी जाती है। ये प्रोटीन-संश्लेपण का कार्य करते हैं तथा समस्त जीवों से उनके आनुवंशिक संघटन का नियमन करते हैं।

न्यूक्लीक अम्ल 5 कार्बन परमाणु वाली शर्करा पेण्टोज, फॉस्फोरिक एसिड तथा नाइट्रोजनयुक्त क्षारों जैसे एडिनीन (adenine), ग्वानीन (guanine), साइटोसीन (cytosine), थाइमीन (thymine) तथा यूरेसिल (uracil) आदि के यौगिक हैं।

प्रत्येक न्यूक्लीक एसिड एक वहुलक यौगिक है जिसका प्रत्येक अणु हजारों एककों का वना होता है। ये एकक न्यूक्लिओटाइड (nucleotides) कहलाते हैं जो एक वलयक में विन्यसित रहते हैं। प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड में पेण्टोज का एक अणु, फॉस्फोरिक एसिड का एक अणु व कोई एक क्षारक होता है।

स्थिति (Location)

केवल पादप वाइरसों को छोड़कर जिनमें आनुवंशिक पदार्थ DNA न होकर RNA होता है, DNA समस्त सजीव कोशिकाओं में पाया जाता है। प्रत्येक कोशिका में DNA मुख्य रूप से DNA में सान्द्रित रहता है और प्रोटीन के साथ मिलकर क्रोमेटिन जाल का निर्माण करता है। माइटोकॉन्ड्रिया व क्लोरोप्लास्ट्स में भी DNA लेशमात्र होता है।

आकारिकी (Morphology)

DNA अत्यधिक आण्विक भार वाला दीर्घ अणु है जिसका आण्विक भार

कई लाख तक होता है।

आकृति (Shape)—प्रोकेरिओटिक कोशिकाओं में DNA लम्बे व सर्पिल रूप से कुण्डलित अशाखित तन्तुओं के समान होता है। प्रोकेरिओटिक कोशिकाओं के माइटोकॉन्ड्रिया तथा लवकों में DNA वृत्ताकार आकृति का होता है।

HOH$_2$C 5 O H 4 H H 1 H 3 2 OH OH H

चित्र १०·१. डिऑक्सीराइबोज शर्करा (Deoxyribose sugar)
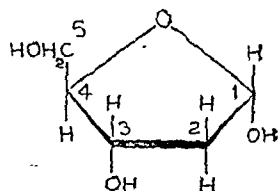
रासायनिक संघटन (Chemical composition)—रासायनिक विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि DNA तीन भिन्न प्रकार के यौगिकों का बना होता है :

(*i*) शर्करा—यह डिऑक्सीराइबोज (deoxyribose) शर्करा होती है।

(*ii*) फॉस्फोरिक एसिड।

(*iii*) **नाइट्रोजिनस क्षार** (Nitrogenous bases)—ये नाइट्रोजनमय कार्बनिक यौगिक हैं जो संख्या में चार होते हैं—(*i*) एडिनीन, (*ii*) थाइमीन, (*iii*) साइटोसीन, तथा (*iv*) ग्वानीन। ये दो प्रकार के होते हैं :—

(*a*) **प्यूरीन्स**—ये दो रिंग वाले नाइट्रोजनमय यौगिक हैं। एडिनीन व **ग्वानीन** प्यूरीन्स हैं और इनको क्रमशः A तथा G द्वारा निरूपित करते हैं।

ADENINE

GUANINE
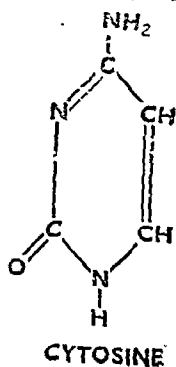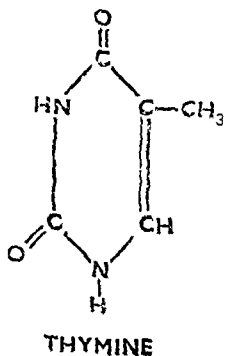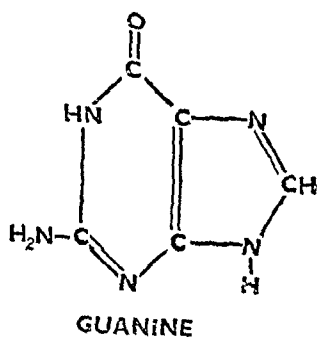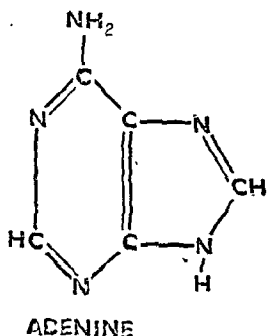
THYMINE

CYTOSINE

चित्र १०·२. एडिनीन, ग्वानीन, साइटोसीन व थाइमीन के संरचना सूत्र (Structural formulae of adenine, guanine, cytosine and thymine)

(*b*) **पिरिमिडीन्स** (Pyrimidines)—**साइटोसीन** तथा **थाइमीन** पिरिमिडीन्स। ये एक रिंग वाले यौगिक हैं। इनको C तथा T द्वारा निरूपित करते हैं।

DNA के रासायनिक विश्लेषण से तीन मूलभूत तथ्यों का पता चलता है :

(*i*) DNA अणु में प्यूरीन व पिरिमिडीन अवयव सदैव समान मात्रा में होते हैं।

(*ii*) एडिनीन (A) की मात्रा थाइमीन (T) के तथा साइटोसीन (C) की मात्रा ग्वानीन (G) के बराबर होती है।

(*iii*) विभिन्न वर्गों के जीवों के DNA में क्षार अनुपात A+T/G+C अलग-अलग होता है किन्तु एक ही जाति के विभिन्न जीवों में यह मात्रा सदैव नियत होती है। DNA का यह अनुपात जीवों की जातियों को निर्धारित करने में सहायक होता है।

आण्विक संरचना—वाट्सन एवं क्रिक मॉडल (Molecular structure—Watson and Crick's Model)—**वाटसन एवं क्रिक** ने DNA का मॉडल प्रस्तुत किया। वाटसन एवं क्रिक के मॉडल से न केवल DNA की रासायनिक संरचना का ज्ञान होता है बल्कि इसके द्वारा द्विगुणन की क्रिया का भी पता चलता है।

DNA एक दीर्घ अणु है जो कई हजार यूनिटों या मोनोमीयर्स का बना होता है। ये यूनिट **न्यूक्लिओटाइड** कहलाते हैं। प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड में एक अणु डिऑक्सीराइबोज का, एक अणु फॉस्फोरिक एसिड का और किन्हीं चार नाइट्रोजिनस क्षारों में से एक क्षार होता है। एक नाइट्रोजिनस क्षार डिऑक्सीराइबोज के एक अणु के साथ मिलकर एक **न्यूक्लिओसाइड** (nucleoside) बनाता है। चार नाइट्रोजिनस क्षारों के लिए चार प्रकार के न्यूक्लिओसाइड्स होते हैं और इस प्रकार चार प्रकार के न्यूक्लिओटाइड होते हैं। ये न्यूक्लिओटाइड निम्न प्रकार से हैं :
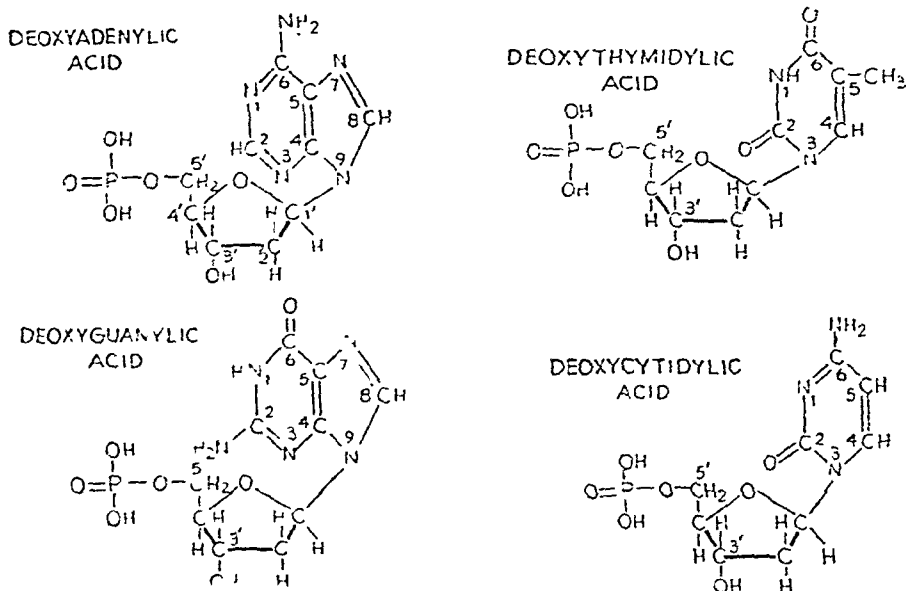
चित्र १०·५. चार प्रकार के न्यूक्लिओटाइड्स के संरचना सूत्र (Structural formulae of four types of nucleotides)

1. **Deoxyadenylic acid :** Adenine+Deoxyribose+Phosphoric acid

2. **Deoxyguanylic acid :** Guanine+Deoxyribose+Phosphoric acid
3. **Deoxycytidylic acid :** Cytosine+Deoxyribose+Phosphoric acid
4. **Deoxythymidylic acid :** Thymine+Deoxyribose+Phosphoric acid

न्यूक्लिओटाइड में फॉस्फोरिक एसिड का अणु एस्टर-बंधता द्वारा डिऑक्सीराइबोज अणु के 5वें कार्बन परमाणु से जुड़ा रहता है। संलग्न न्यूक्लिओटाइड्स परस्पर जुड़कर शर्करा-फॉस्फेट शृंखला बनाते हैं। फॉस्फेट अणु अगले न्यूक्लिओटाइड के डिऑक्सीराइबोज के तीसरे कार्बन परमाणु से जुड़ा रहता है। नाइट्रोजिनस क्षार डिऑक्सीराइबोज के प्रथम कार्बन परमाणु से जुड़ा होता है। ये पोलीन्यूक्लिओटाइड शृंखला के अनुदैर्घ्य अक्ष के समकोण उन्मुख रहते हैं और एक-दूसरे के ऊपर स्थित रहते हैं।
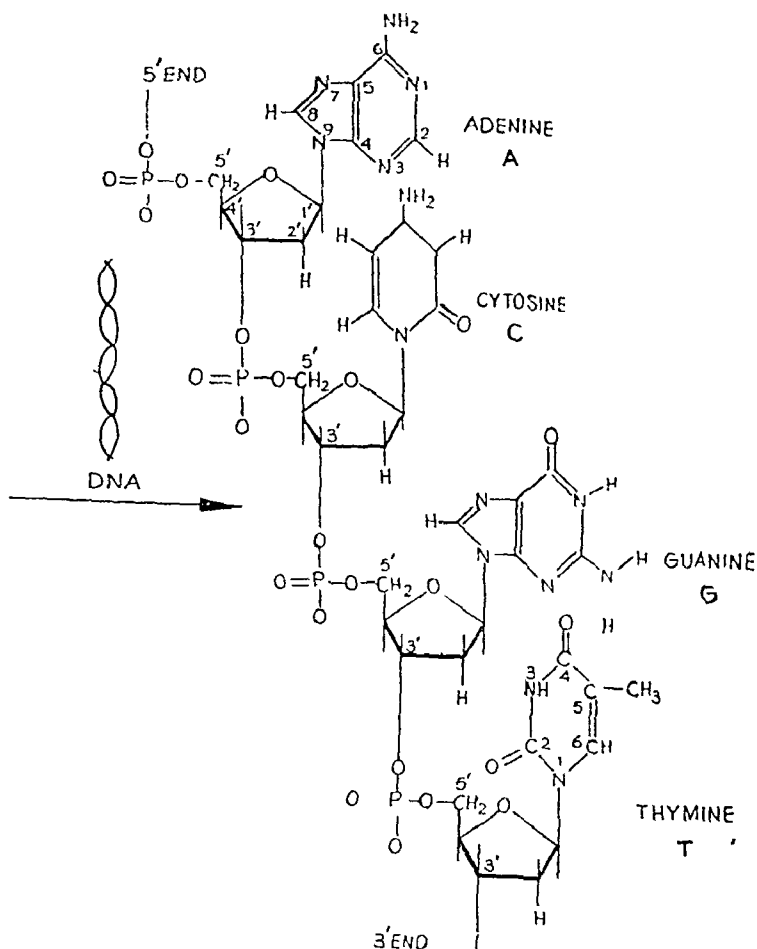
चित्र १०४. DNA की पोलीन्यूक्लिओटाइड शृंखला में न्यूक्लिओटाइड्स की बंधता (Linking of nucleotide in a polynucleotide chain of DNA)

पोलीन्यूक्लिओटाइड श्रृंखला के एक सिरे की शर्करा का C–3 तथा दूसरे सिरे की शर्करा का C–5 किसी भी न्यूक्लिओटाइड से बंधता नहीं करता। इनको क्रमशः 3′ तथा 5′ सिरे कहते हैं। यह श्रृंखला सीधी न होकर कुंडलिनी के रूप में होती है।

वाटसन एवं **क्रिक** के अनुसार DNA अणु में ऐसी दोनों पोली-न्यूक्लिओटाइड श्रृंखलाएँ एक-दूसरे के विम्मुख दिशा में इस प्रकार विन्यसित होती हैं कि एक का 3′–सिरा दूसरी के 5′–सिरे के साथ स्थित होता है। इस प्रकार की रचना में प्रत्येक श्रृंखला या स्ट्रैण्ड में न्यूक्लिओटाइड्स के फॉस्फेट समूह डिऑक्सीराइबोज के बाहर की ओर स्थित होते हैं और नाइट्रोजिनस क्षार अन्दर की ओर उन्मुख रहते हैं। दोनों श्रृंखलाओं के नाइट्रोजिनस क्षार संलग्न क्षारों के ऑक्सीजन व नाइट्रोजन परमाणुओं के बीच हाइड्रोजन बॉण्डों द्वारा बंधित रहते हैं। क्षारों में युग्मन की विशिष्ट विशेषता यह है कि :—

(*i*) **प्यूरीन्स** (एडिनीन व ग्वानीन) **पिरिमिडीन्स** (साइटोसीन व थाइमीन) से युग्मन करते हैं, तथा

(*ii*) **एडिनीन सदैव थाइमीन** से और **साइटोसीन, ग्वानीन** से युग्मन करता है।
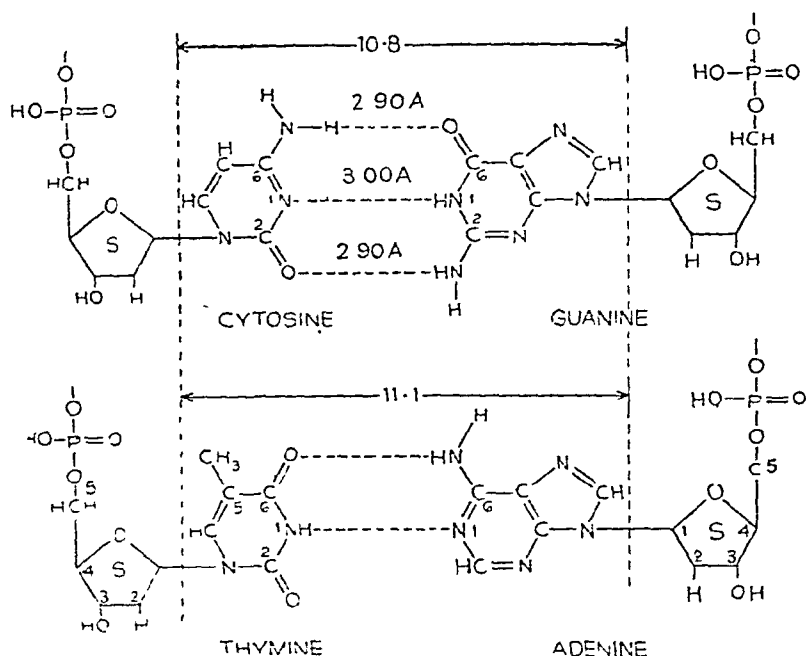
चित्र १०·६. DNA के न्यूक्लिओटाइड्स में हाइड्रोजन बाण्डों द्वारा क्षारों का युग्मन (Pairing of base pairs through bonding in the nucleotide of DNA)

दोनों श्रृंखलाओं या स्ट्रैण्ड के शर्करा अणुओं की दूरी 11Å होती है।

नाइट्रोजिनस क्षारों को शर्करा के C_1 परमाणुओं से जोड़ने वाले वाण्ड सदैव 51° का कोण बनाते हैं।

इस प्रकार DNA में दो पूरक शृङ्खलाएँ एक-दूसरे के चारों ओर कुण्डलित रहती है। प्रत्येक हेलिक्स का एक प्रतिवर्तन लगभग 34Å होता है। इसमें न्यूक्लिओटाइड्स के 10 युगल होते हैं और नियमित क्रम से 3·4Å की दूरी पर स्थित होते हैं। DNA हेलिक्स की पूरी लम्बाई में एक संकीर्ण खाँच तथा एक चौड़ी खाँच होती हैं। संकीर्ण खाँच (narrow groove) युग्मित अणुओं के बीच की दूरी को तथा चौड़ी खाँच क्रमिक प्रतिवर्तनों के बीच के द्विक्स्थान को निरूपित करती है।
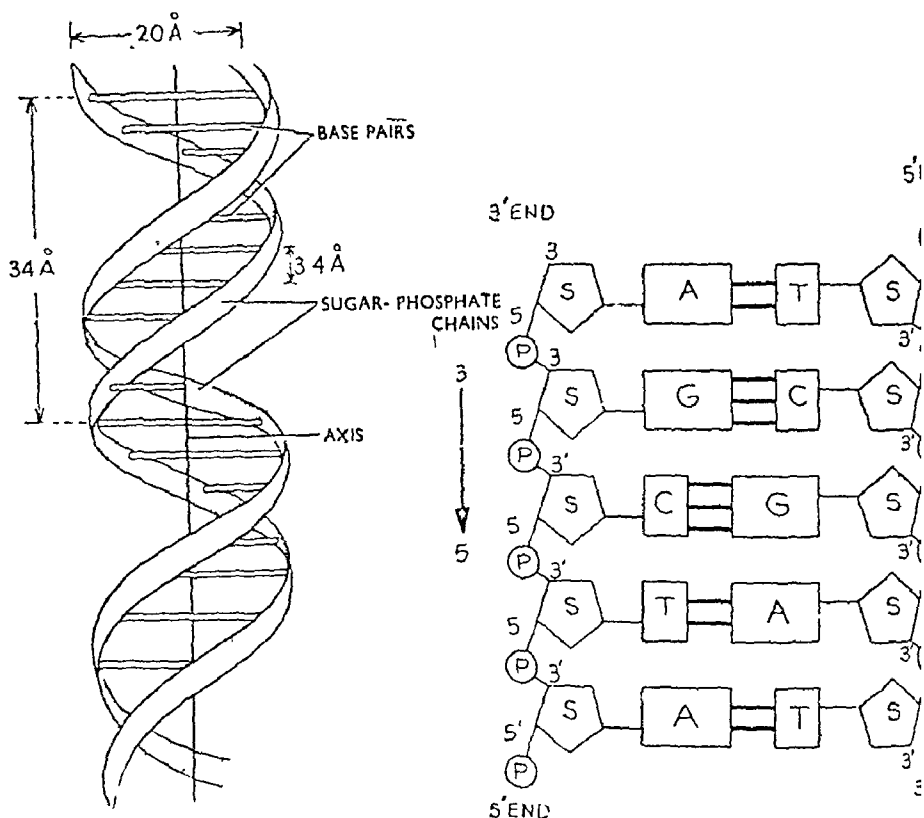
चित्र १०·६. DNA अणु का वाटसन एवं क्रिक मॉडल (Watson and Crick's model of DNA molecule)

नवीनतम खोजों से **वाटसन** एवम् **क्रिक** द्वारा प्रस्तावित DNA अणु के मॉडल को पूर्ण समर्थन मिला है। X-रे विवर्तन अध्ययनों, इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी, गलनांक तथा एन्जाइम-पाचन अध्ययनों से प्रमाणित होता है कि इस प्रकार की दोनों शृङ्खलाएँ न्यूक्लिओटाइड्स की प्यूरीन या पिरिमिडीन बन्धताओं द्वारा दुहरी अवस्था में रहती हैं। इन अध्ययनों से यह भी ज्ञात होता है कि प्रत्येक क्रॉस-बन्धता (cross-linkage) हाइड्रोजन परमाणु द्वारा एक पिरिमिडीन व एक प्यूरीन के बीच बन्धता के फलस्वरूप बनती है। हाइड्रोजन बॉण्ड आपेक्षिक रूप से दुर्बल

होते हैं और सरलता से टूट जाते हैं। विश्लेषण विधियों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि DNA की संरचना में भाग लेने वाला प्रत्येक प्यूरीन DNA अणु में मिलने वाले पिरिमिडीन के समानुपात में मिलता है अर्थात् DNA के एक स्ट्रैण्ड में ऐडिनीन की मात्रा DNA के दूसरे स्ट्रैण्ड में थाइमीन की मात्रा के बराबर होती है। अतः DNA के सर्पिल सीढ़ी के समान अणु के डण्डे प्यूरीन-पिरिमिडीन के चार संयोगों A–T, T–A, G–C तथा C–G के बने होते हैं। ये संयोग विभिन्न अनुक्रमों में विन्यसित होकर कोड (code) बनाते हैं। ये कूटलेखन (coding) ही आनुवंशिकी की वास्तविक क्रिया का नियमन करते हैं।

DNA की पुनरावृत्ति (Replication of DNA)

DNA पुनरावृत्ति की क्रिया को वाटसन एवम् क्रिक के DNA मॉडल द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है। पुनरावृत्ति के समय DNA अणुओं के न्यूक्लिओटाइड्स हाइड्रोजन बॉण्डों के टूटने के कारण विपरीत हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप DNA की दोनों शृङ्खलाएँ अकुण्डलित होकर पृथक् हो जाती हैं। क्योंकि दोनों स्ट्रैण्ड के नाइट्रोजिनस क्षारों के हाइड्रोजन बॉण्ड बहुत दुर्बल होते हैं अतः इनके पृथक्करण के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार पृथक् हुई शृङ्खलाएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं अर्थात् अगर प्रथम शृङ्खला का आंशिक डण्डा A हो तो दूसरी शृङ्खला का आंशिक डण्डा T होगा और अगर प्रथम शृङ्खला का आंशिक डण्डा C हो तो दूसरी का G होगा। एक बार पृथक्करण के पूर्ण होने पर पृथक् हुई शृङ्खलाओं के न्यूक्लिओटाइड्स कोशिका में से अपने न्यूक्लिओटाइड्स या पूर्ववर्ती को आकर्षित करना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार अकुण्डलन एवम् बॉण्ड के टूटने से पृथक् हुआ प्रत्येक पूरक न्यूक्लिओटाइड विस्थापित हो जाता है। वाटसन एवम् क्रिक संकल्पना के अनुसार सदैव A मूलक T से तथा G, C से युग्मित होता है। हाइड्रोजन बॉण्डों द्वारा न्यूक्लिओटाइड्स के निश्चित क्रम में आसंजित होने पर संलग्न शर्करा मूलक अपने फॉस्फेट अवयवों द्वारा परस्पर जुड़ जाते हैं। इस प्रकार मूल शृङ्खला के समान एक नयी शृङ्खला का निर्माण होता है। इस प्रकार DNA अणु की प्रत्येक शृङ्खला एक मॉडल या साँचे का कार्य करती है जिस पर इसकी पूरक शृङ्खला का संश्लेपण होता है।

Meselson एवम् **Stahl** के अनुसार DNA अणु के किसी एक सिरे पर जैसे ही दोनों स्ट्रैण्ड्स का पृथक्करण शुरू होता है, पृथक् हुए स्ट्रैण्ड तुरन्त ही अपने पूरक खण्डों का संश्लेषण शुरू कर देते हैं। अतः DNA के वास्तविक स्ट्रैण्ड के पृथक्करण तथा नये स्ट्रैण्ड्स के संश्लेषण की क्रियाएँ साथ-साथ होती हैं। इसके फलस्वरूप पुनरावृत्ति के अन्त में DNA के दो सन्तति अणुओं का संश्लेपण होता है तथा प्रत्येक में एक स्ट्रैण्ड जनक या मूल DNA का होता है और दूसरा स्ट्रैण्ड संश्लेषित होता है। अतः दोनों DNA अणु एक-दूसरे की प्रतिकृति (replica) होते है।

DNA का जैविक महत्त्व (Biological Significance of DNA)

1. DNA पुनरावृत्ति की क्रिया अत्यधिक यथार्थ एवम् परिशुद्ध होती है।
2. DNA पर्याप्त रूप से स्थायी रचना है तथा इसमें म्युटेशन एवम् आनुवंशिकी सम्बन्धी परिवर्तनों की सम्भावनाएँ बहुत कम होती हैं।
3. DNA में जीव-सम्बन्धी समस्त सूचनाएँ संकलित रहती हैं।

4. DNA में उपर्युक्त सूचनाओं को किसी लक्षण या कार्य विशेष के रूप में संचारित करने की क्षमता होती है।
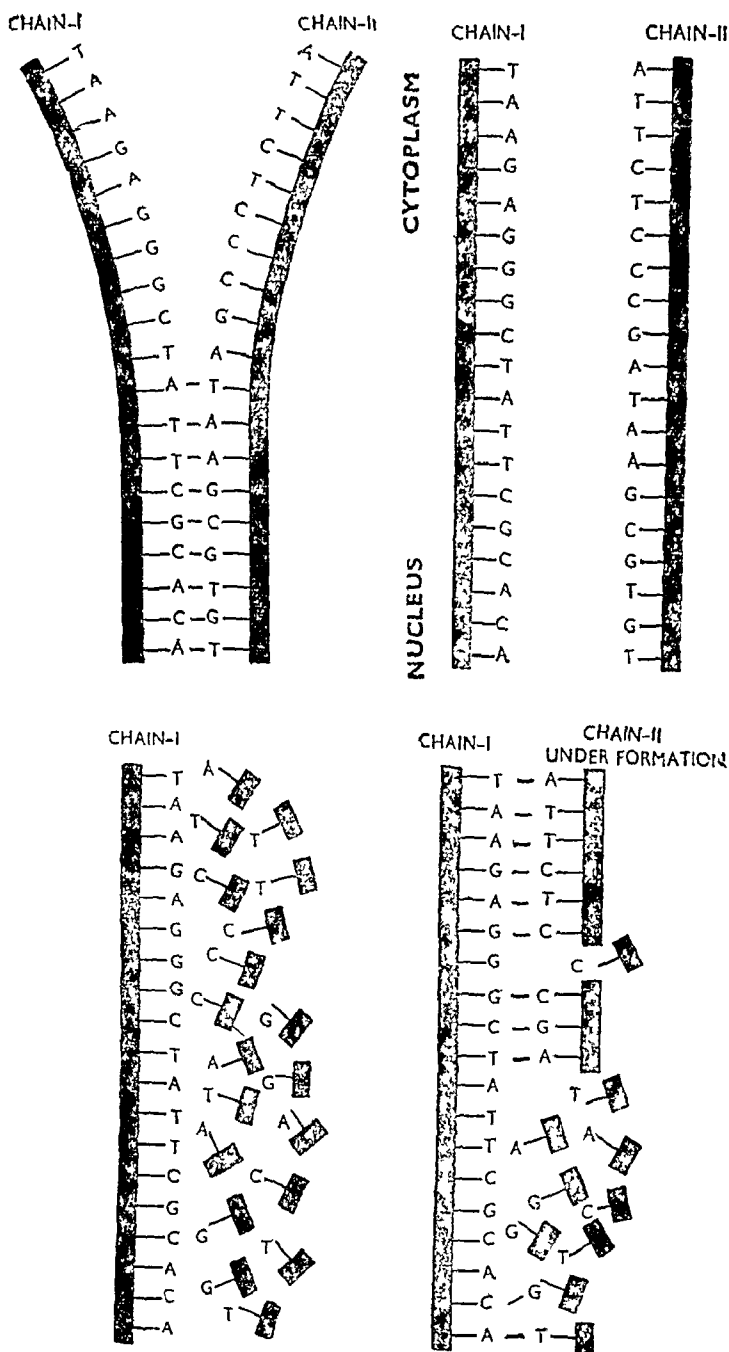
चित्र १०·७. DNA की पुनरावृत्ति (Replication of DNA)

राइवोन्यूक्लीक एसिड—RNA (Ribonucleic Acid)

स्थिति (Location)—RNA न्यूक्लिओलस में संचित रहने के अतिरिक्त कोशिकाद्रव्य व राइवोसोम्स में भी वितरित रहता है।

रासायनिक संघटन (Chemical composition)—RNA भी रैखिक क्रम में विन्यसित अनेक न्यूक्लिओटाइड्स से निर्मित एक दीर्घ अणु है। DNA की भाँति RNA भी शर्करा, फॉस्फोरिक अम्ल तथा नाइट्रोजिनस क्षार का बना होता है किन्तु यह निम्न वातों में DNA से भिन्न होता है :—

(*i*) इसमें डिऑक्सीराइवोस के स्थान पर राइवोस शर्करा होती है।

(*ii*) DNA में मिलने वाले चारों नाइट्रोजिनस क्षारों में से RNA में तीन क्षार तो समान होते हैं किन्तु इनमें से चौथा थाइमीन न होकर यूरेसिल होता है। यद्यपि RNA में भी न्यूक्लिओटाइड्स का विन्यास एवं अनुक्रम DNA की भाँति होता है किन्तु RNA के अणु में केवल एक स्ट्रैण्ड होता है। स्थिर रहने के लिए यह स्ट्रैण्ड दुर्वल हाइड्रोजन वॉण्डों के द्वारा स्वयं के ऊपर ही वलित रहता है।

कोशिकाद्रव्य में तीन प्रकार के RNA का पता चला है :—

1. सन्देशवाहक RNA या *m*RNA
2. राइवोसोमल RNA या *r*RNA
3. ट्रांसफर RNA या *t*RNA

1. केन्द्रकीय (nuclear) **RNA अथवा संदेशवाहक RNA** (Messenger RNA अथवा *m*RNA)—जैसा कि नाम से आभासित होता है यह केन्द्रक के अन्दर पाया जाता है तथा कोशिका में विद्यमान RNA के कुल भार का लगभग 10 प्रतिशत होता है। यह DNA के दोनों वलयकों में से किसी एक पर पूरक वलयक के रूप में वनता है। इसमें एक महत्त्वपूर्ण वात यह है कि DNA के दोनों वलयकों
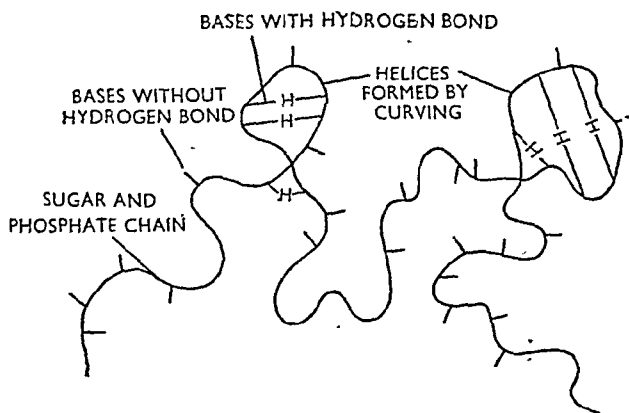
चित्र १०·८. RNA के वलयक में क्षारकों का युग्मन (Base pairing within a single strand of RNA)

में से केवल एक ही वलयक *m*RNA संश्लेपण के लिए फर्मे का कार्य करता है। इसीलिए प्रत्येक *m*RNA अणु में क्षारकों के वितरण का विन्यास DNA के उस भाग के समान होता है जिसकी प्रत्याकृति के रूप में यह वनता है। अन्तर केवल इतना है कि *m*RNA में DNA का थाइमीन यूरेसिल द्वारा विस्थापित हो जाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि विशिष्ट DNA में संकलित संदेशों की प्रतिलिपि *m*RNA में प्रदर्शित रहती है।

केन्द्रक में संश्लेषित होने के पश्चात् *m*RNA कोशिकाद्रव्य में विसरित होकर कुछ राइबोसोम्स की सतह पर निक्षेपित हो जाता है। इसकी उपस्थिति में राइबोसोम्स प्रोटीन संश्लेषित करते है। प्रोटीन अणु के निर्माण के समय विभिन्न ऐमीनो अम्लों के परस्पर संयोजित होने की क्रिया मे *m*RNA अणु फर्मे के समान कार्य करता है और इस प्रकार DNA में सचित संदेशों को प्रोटीन के रूप में परिवर्तित कर देता है।

इसी कारण **Jacob** तथा **Monod** ने RNA को संदेशवाहक RNA (*m*RNA) की संज्ञा दी। *m*RNA में निम्नलिखित विशेषताएँ होती है :—

(*i*) इसकी कार्य-क्षमता काफी अधिक होती है।

(*ii*) इसमें क्षारकों का विन्यास उस RNA अणु के समान होता है जिसकी प्रत्याकृति के रूप में यह बनता है।

(*iii*) यह प्रोटीन-संश्लेषण में फर्मे का कार्य करता है।

(*iv*) यह आपेक्षिक रूप से अधिक स्थायी नहीं होता तथा कुछ ही प्रेपणों के पश्चात् विघटित हो जाता है किन्तु इसकी स्थिरता मुख्य रूप से कोशिका के स्वभाव पर निर्भर करती है।

2. राइबोसोमल RNA (Ribosomal RNA)—राइबोसोमल RNA (*r*RNA) राइबोसोम्स में संचित रहता है। यह कोशिका में RNA के कुल भार का लगभग 80% होता है। यद्यपि *r*RNA राइबोसोम्स में संचित रहता है किन्तु इसका संश्लेपण केन्द्रक में गुणसूत्रो के न्यूक्लिओलस के सम्पर्क वाले विशिष्ट क्षेत्रों मे होता है। अत: *r*RNA DNA के उस सीमित क्षेत्र का समरूपी प्रतिलेखन प्रदर्शित करता है जो कि कोशिकाद्रव्य में विसरित होने से पूर्व न्यूक्लिओलस में केन्द्रित हो जाता है। न्यूक्लिओलस से कोशिकाद्रव्य में विसरित होकर यह राइबोसोम में सचित हो जाता है और राइबोसोम के कुल भार का लगभग 60% भाग बनाता है। राइबोसोमल RNA व अन्य प्रकार के RNA अणुओं में आकार एवम् क्षारो के विन्यास में भिन्नता होती है। इसमें ग्वानीन तथा साइटोसीन अपेक्षाकृत अधिकता में होते है किन्तु RNA अणुओं में पाये जाने वाले अन्य प्रकार के विरल क्षारको का अभाव होता है। *E. coli* के राइबोसोमल RNA का रासायनिक संगठन निम्न प्रकार है :—

आणविक भार : $\cdot 55 \times 10^6$

एडीनीन	21	क्षार
यूरेसिल	19	
ग्वानीन	36	
साइटोसीन	23	

बैक्टीरिया में 10–200 तक जीन्स राइबोसोमल RNA के संश्लेपण से सम्बद्ध होते है जबकि उच्च पृष्ठवंशियों में इनकी संख्या 200–2000 तक होती है। राइबोसोमल RNA के अणु अधिक आण्विक भार वाले (लगभग 455) तथा लम्बे एककों के रूप में संश्लेपित होते है। तदुपरान्त ये छोटे-छोटे खण्डों में टूट जाते हैं और न्यूक्लिओलस में इनका मिथाइलीकरण होता है। इसके पश्चात् ये क्षारीय

प्रोटीन्स में संयोजित होकर राइबोसोम्स में पहुँच जाते है।

राइबोसोमल RNA का वास्तविक ज्ञान नहीं है किन्तु प्रोटीन संश्लेपण में यह अति आवश्यक होता है। *m*RNA से सम्बन्वित होकर *r*RNA पोलीराइबोसोम्स वनाते हैं जो कि प्रोटीन संश्लेषण के सक्रिय स्थान हैं।

2. विलेय (soluble) RNA **या अन्तरण** (transfer) RNA (*t*RNA)—अन्तरण RNA या *t*RNA, RNA का विशेष समूह है जो विशिष्ट ऐमीनो अम्लों तथा ATP से अत्यधिक वन्धुता प्रदर्शित करता है। इसे **संश्लिष्ट RNA**—*s*RNA (synthetic) RNA) या **अनुकूलित RNA** (adaptor RNA) भी कहते हैं। यह कोशिका में स्थित RNA के कुल भार का लगभग 10 प्रतिशत होता है तथा इसका संश्लेषण गुणसूत्रों के विशिष्ट क्षेत्रों में होता है। प्रत्येक *t*RNA अणु में केवल एक पोलीन्यूक्लिओटाइड शृंखला होती है। यह मध्य से मुड़ी हुई होती है तथा इसकी दोनों भुजाएँ एक-दूसरे के साथ कुण्डलित होती है। *t*RNA के मोड़ पर तीन अयुग्मित या एकल न्यूक्लिओटाइड्स होते हैं जिनमें *m*RNA से युग्मित होने के लिए विशेप सदेश संहित रहता है। शृंखला के एक सिरे पर ग्वानोसीन अवशेप तथा दूसरे सिरे पर साइटोसीन-साइटोसीन-एडिनीन का क्षार अनुक्रम होता है जिसमें
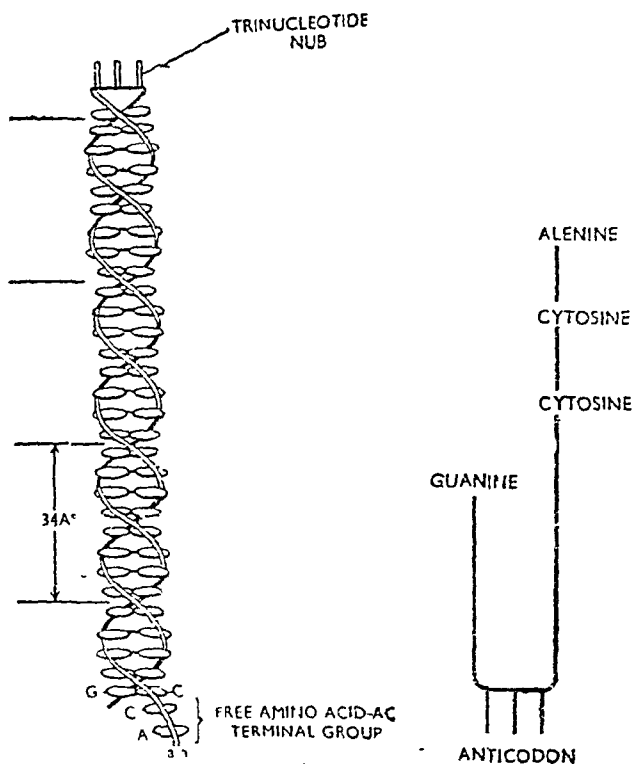
चित्र १०·९. *t*RNA अणु (molecule of *t*RNA) एक शृंखला के रूप में। यह मध्य से मुड़ा हुआ है तथा इसके दोनों सिरे एक-दूसरे पर कुंडलित हैं। मोड़ पर तीन एकल न्यूक्लिओटाइड्स हैं तथा शृंखला के एक सिरे पर G तथा दूसरे सिरे पर A–C–C क्रम मे क्षारक विन्यसित हैं।

ऐमीनो अम्ल होते है।

*t*RNA के प्रत्येक अणु में क्षार अनुक्रम DNA के अपने विशिष्ट जीन के क्षार अनुक्रम का सम्पूरक होता है। संश्लेषण के पश्चात् *t*RNA में कुछ विशिष्ट स्थानों से सम्पूरक क्षार एन्जाइम्स किया द्वारा रूपान्तरित हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप *t*RNA में विरल न्युक्लिओटाइड्स का निर्माण होता है। DNA फर्मे से अलग होने के पश्चात् *t*RNA के समस्त अणुओं मे तीन न्यूक्लिओटाइड्स (A–C–C) का एक ही प्रकार का अनुक्रम जुड़ जाता है।

Escherichia coli में *t*RNA को निर्मित करने वाले विशेष जीन्स गुणसूत्रों पर छितरे रहते हैं, जबकि *Bacillus subtilis* में ये गुणसूत्रों पर झुण्डों मे स्थित होते हैं। बैक्टीरिया में 40–80 जीन्स तथा ड्रोसोफाइला में 55 जीन्स *t*RNA संश्लेषण से सम्बद्ध होते हैं। विभिन्न जातियों में तथा विभिन्न ऐमीनो अम्लों के लिए *t*RNA अणुओं की सामान्य रचना पूर्णतया समान होती है। प्रत्येक *t*RNA अणु का आण्विक भार 25,000 होता है तथा इसके अग्र सिरे पर A–C–C न्यूक्लिओटाइड्स लगे होते हैं। किन्तु विभिन्न *t*RNA अणुओं की विशिष्ट संरचना मे विशेष अन्तर पाया जाता है तथा प्रोटीन्स मे ऐमीनो अम्लों के समावेशन की सूचना RNA में संहित रहती है।

जैविक रूप से सक्रिय प्रथम न्यूक्लीक अम्ल अणु ऐलेनीन—*t*RNA यीस्ट से पृथक् किया गया था। इसमें निश्चित अनुक्रम में विन्यासित 77 न्यूक्लिओटाइड्स होते हैं। चित्र नं० 10·10 में *t*RNA का **Coverleaf** प्रतिरूप प्रदर्शित किया गया है।

*t*RNA की त्रिविम (three-dimensional) संरचना का अभी सही ज्ञान नही है, किन्तु **Coverleaf** प्रतिरूप से हमें *t*RNA के अनेक गुणों का पता चलता है, जैसे इसके कुछ न्यूक्लिओटाइड्स का एन्जाइम्स द्वारा जल-विश्लेषण अथवा रासायनिक प्रभावों के प्रति अभिगम्यता। यह अभिगम्यता *t*RNA के कुछ न्यूक्लिओटाइड्स द्वारा ही प्रदर्शित होती है। इसके शेष क्षेत्र यथेष्ट रूप से प्रतिरोधी होते
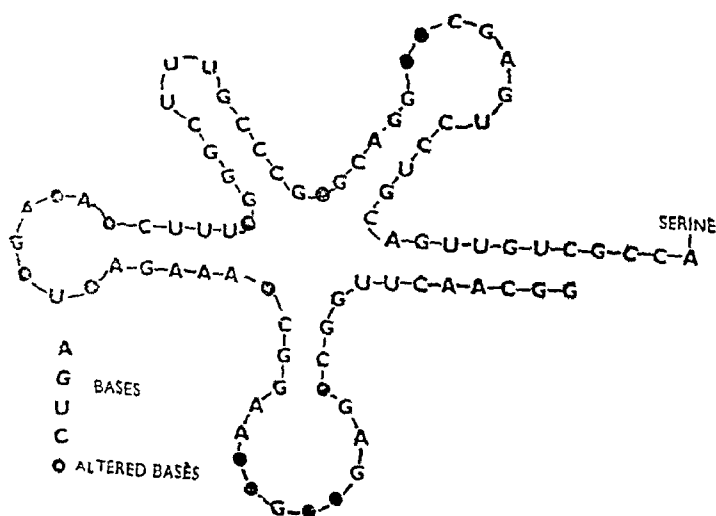
चित्र १०·१०. *t*RNA का Coverleaf प्रतिरूप (Coverleaf model of *t*RNA)

हैं । **Coverleaf** प्रतिरूप के अनुसार *t*RNA शृंखला के 77 न्यूक्लिओटाइड्स में से केवल लगभग आधे ही **वाटसन-क्रिक** के क्षार-युग्मन सिद्धान्त (एडिनीन-यूरेसिल तथा ग्वानीन-साइटोसीन) द्वारा युग्मित हो सकते हैं । *t*RNA में असाधारण न्यूक्लिओसाइड्स भी होते हैं । यीस्ट के *t*RNA में कुछ असाधारण न्यूक्लिओसाइड्स इस प्रकार है—इनोसिन (inosine—I), स्यूडोयूरिडीन (pseudouridine—ψ), राइबोथाइमिडीन (ribothymidine—T), 1-मिथाइलिनोसिन (1-methylinosine—MeI), 1-मिथाइलग्वानोसीन (1-methylguanosine—MeG), N-2-डाइमिथाइलग्वानोसीन (N-2-dimethylguanosine—DiMeG) तथा 5-6-डाइहाइड्रो-यूरिडीन (5-6-dihydrouridine—DiHU) ।

*t*RNA प्रोटीन-संश्लेषण में दो प्रकार से कार्य करता है । यह कोशिकाद्रव्य में से एक विशेष ऐमीनो अम्ल को ग्रहण करता है तथा *m*RNA द्वारा निश्चित अनुक्रम में राइबोसोम्स से जुड़ जाता है ।
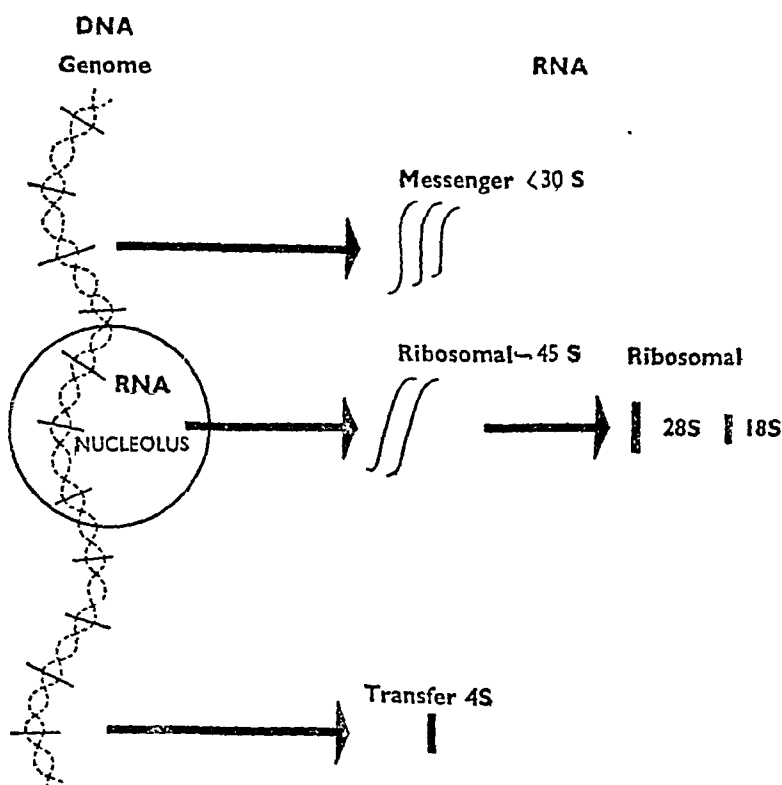
चित्र १०·११. विभिन्न RNA अणुओं के संभावित संश्लेपण स्थानों का चित्रीय निरूपण (Diagram depicting the possible sites of synthesis of different types of RNA molecules)

DNA एवं RNA में अंतर (Differences Between DNA and RNA)

डिऑक्सीराइवोन्यूक्लीक एसिड	राइवोन्यूक्लीक एसिड
1. यह गुणसूत्रों से मिलता है और मुख्य रूप से DNA में सांद्रित रहता है।	1. यह मुख्यतः कोशिकाद्रव्य में मिलता है किन्तु इसकी कुछ मात्रा न्यूक्लिओलस व केन्द्रकद्रव्य में तथा गुणसूत्रों में भी मिलती है।
2. यह सर्पिल रूप से कुण्डलित दो कुण्डलिनियों का वना होता है। दोनों कुंडलिनियाँ (स्ट्रैण्ड) विम्मुख दिशाओं में एक-दूसरे के चारों ओर कुण्डलित रहती हैं।	2. यह एक स्ट्रैण्ड का वना होता है। कभी-कभी यह स्ट्रैण्ड हाइड्रोजन वॉण्डों द्वारा स्वयं के ऊपर कुंडलित रहता है।
3. DNA में डिऑक्सीराइवोज शर्करा होती है।	3. RNA में राइवोज शर्करा होती है।
4. DNA में एडिनीन व ग्वानीन (प्यूरीन्स) तथा साइटोसीन व थाइमीन (पिरमिडीन्स) नामक नाइट्रोनिजस क्षार होते हैं।	4. RNA में थाइमीन के स्थान पर यूरेसिल होता है।
5 DNA में पिरिमिडीन्स व प्यूरीन्स समान मात्रा में होते हैं।	5. RNA में पिरिमिडीन्स व प्यूरीन्स का समान मात्रा में पाया जाना आवश्यक नहीं।
6. DNA आनुवंशिक पदार्थ है जिसमें विभिन्न कोशिकीय एवं जैविक क्रियाओं के लिए सूचनाएँ निहित रहती हैं।	6. RNA प्रोटीन संश्लेषण में भाग लेता है।
7. DNA में क्षार संघटन $A/T = G/C = 1$ होता है।	7. ऐसा नहीं होता।

प्रश्न 27. न्यूक्लीक अम्लों में मिलने वाले कार्वनिक क्षारों के नाम वताइये। इनमें से कौनसे (*i*) DNA में मिलते हैं, (*ii*) RNA में मिलते हैं, तथा (*iii*) DNA व RNA दोनों में मिलते हैं ?

DNA की एक शृंखला के क्षारों का अनुक्रम ज्ञात होने पर क्या हम दूसरी शृंखला के क्षारों के अनुक्रम को निर्धारित कर सकते हैं और कैसे ?

Name five organic bases present in various nucleic acids. Which of these can be found (*i*) in DNA only, (*ii*) in RNA only, and (*iii*) in both DNA and RNA ?

If the bases in one chain of DNA are known can we predict the sequence of bases in the other chain ? How ? (*Rajasthan 1972*)

न्यूक्लीक अम्लों में निम्नलिखित नाइट्रोजिनस क्षार होते हैं :—

(*i*) एडिनीन
(*ii*) थाइमीन
(*iii*) साइटोसीन
(*iv*) ग्वानीन
(*v*) यूरेसिल

DNA एवम् RNA में उपस्थित नाइट्रोजिनस क्षार (Nitrogenous bases present in DNA and RNA)—उपर्युक्त क्षारों में से एडिनीन, साइटोसीन, तथा ग्वानीन DNA एवम् RNA दोनों में मिलते हैं किन्तु थाइमीन केवल DNA में

मिलता है। इससे स्पष्ट है कि DNA में एडिनीन, थाइमीन, साइटोसीन तथा ग्वानीन होते हैं। RNA में थाइमीन नहीं होता तथा इसके स्थान पर यूरेसिल होता है।

DNA अणुओं में क्षार-अनुक्रम (Base sequence in DNA molecules)—प्रत्येक DNA अणु में दो पूरक स्ट्रैण्ड्स होते हैं जो एक-दूसरे के चारों ओर कुण्डलित रहते हैं। प्रत्येक स्ट्रैण्ड न्यूक्लिओटाइड्स की बारम्बार बन्धता से बनता है। दोनों स्ट्रैण्ड्स (शृंखला) के न्यूक्लिओटाइड्स अपने-अपने नाइट्रोजिनस क्षारों द्वारा एक-दूसरे से बन्धित रहते हैं। सदैव ही एडिनीन थाइमीन से और साइटोसीन ग्वानीन से युग्मन करता है। अतः यदि एक स्ट्रैण्ड में नाइट्रोजिनस क्षारों का अनुक्रम ज्ञात हो तो दूसरे स्ट्रैण्ड में नाइट्रोजिनस क्षारों का अनुक्रम निर्धारित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि एक स्ट्रैण्ड में नाइट्रोजिनस क्षारों का अनुक्रम AATACGCCGT हो तो पूरक स्ट्रैण्ड में क्षारों का अनुक्रम TTATGCGGCA होगा।

प्रश्न 28. इसके पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करिये कि जैनेटिक या आनुवंशिक सूचनाएँ DNA द्वारा पारगत होती है।

Give evidence that genetic informations are transmitted by DNA. *(Rajasthan 1973)*

DNA आनुवंशिक सूचनाओं के लिए टेप का कार्य करता है जिसमें समस्त जीव-क्रियाओं के संदेश निहित रहते है और इनको एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में पारगत करता है। बैक्टीरिया, वाइरस, बैक्टीरियल वाइरस तथा मोल्ड (molds) पर किये गये अनुसन्धानों से पर्याप्त प्रमाण मिले है कि DNA एक आनुवंशिक पदार्थ है जो आनुवंशिक सूचनाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पारगत करता है।

1. बैक्टीरिया पर रूपान्तरण प्रयोग द्वारा प्रमाण
(Evidence from Transformation Experiment on Bacteria)

(*A*) सर्वप्रथम **Griffith** (1920) ने प्रमाणित किया कि DNA आनुवंशिक पदार्थ है। न्यूमोनिया रोग के बैक्टीरिया—न्युमोकोकस में उसने दो भिन्न स्ट्रेन्स का पता लगाया :—

(*i*) उग्र विभेद (Virulent Strain)—इसको चूहे में अन्तःक्षिप्त करने पर यह न्यूमोनिया उत्पन्न करता है। इस विभेद के जीवों में चारों ओर प्रोटीन का वाह्य खोल होता है।

(*ii*) अनुग्र विभेद (Nonvirulent strain)—चूहे में अन्तःक्षिप्त करने पर यह न्यूमोनिया रोग उत्पन्न नहीं करता। इसके चारों ओर प्रोटीन का खोल नहीं होता।

(*a*) उग्र विभेद के खोलयुक्त बैक्टीरिया को 60°C तक गर्म करने पर ये मृत हो जाते हैं और चूहे को संक्रमित करने में समर्थ नहीं होते।

(*b*) किन्तु मृत बैक्टीरिया को खोलरहित अनुग्र बैक्टीरिया के साथ चूहे में अन्तःक्षिप्त करने पर संक्रमण के कारण चूहे मर जाते हैं।

(*c*) मृत चूहों के रुधिर से सजीव उग्र खोलयुक्त बैक्टीरिया को पृथक् करना सम्भव है। ये रूपान्तरित बैक्टीरिया काफी स्थिर होते हैं जिनको पुनः परीक्षण के
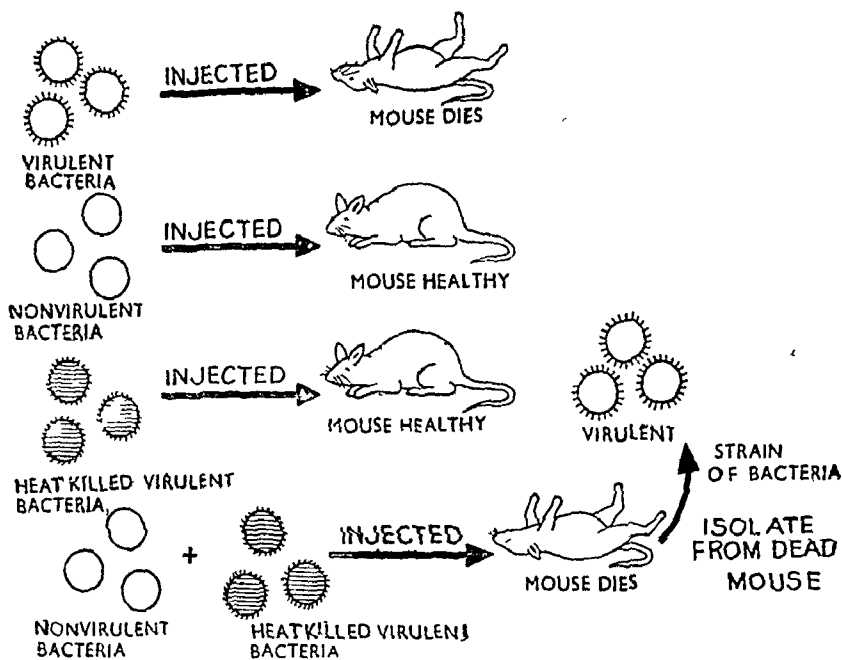
चित्र १०·१२. न्यूमोनिया वैक्टीरिया में आनुवंशिक रूपान्तरण (Genetic transformation in pneumonia bacteria)

लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इन रूपान्तरित वैक्टीरिया को गर्म करके मृत किये गये वैक्टीरिया से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं पाया गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मृत वैक्टीरिया से अनुग्र सजीव बैक्टीरिया में कोई ऐसा पदार्थ पारगत होता है जो उसे दूसरे विभव मे रूपान्तरित कर देता है। बाद में इन प्रयोगों को चूहे के शरीर के बाहर ब्रॉथ (broth) तथा ऐगार की पेट्रीडिश में मानक सूक्ष्मजैविकी संवर्धन विधि द्वारा भी किया गया है।

(*B*) **Avery, MacLeod** तथा **McCarty** (1944) नामक तीन वैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण परीक्षण द्वारा उस रासायिनक पदार्थ को पृथक् किया जो अनुग्र वैक्टीरिया को उग्र वैक्टीरिया में रूपान्तरित करता है। यह पदार्थ **DNA** था। एक पेट्रीडिश मे ऐगार व सूक्ष्मजैविकी संवर्धन माध्यम में न्युमोकोकाई (*Pneumococci*) : अनुग्र वैक्टीरिया (टाइप II) का संवर्धन तैयार किया। इसके बाद उग्र विभव (टाइप III) के खोलयुक्त वैक्टीरिया को पीसकर पोषक माध्यम में मिलाया। कुछ घण्टो के बाद वैक्टीरिया के नये संवर्धन में उग्र विभव के वैक्टीरिया (टाइप III) विकसित हो गये। यह रूपान्तरण स्थायी था तथा रूपान्तरित टाइप III वैक्टीरिया ने गुणन करके टाइप III के सन्तति बैक्टीरिया उत्पन्न किये।

(*C*) रूपान्तरण के और अधिक प्रमाण वैक्टीरिया के विभिन्न विभवों के पुनर्योजन से प्राप्त हुए है। यदा-कदा दो वैक्टीरिया एक-दूसरे के समीप आकर एक कोशिकाद्रव्यक सेतु (cytoplasmic bridge) द्वारा जुड़ जाते है। कोशिकाद्रव्य सेतु में से होकर एक वैक्टीरिया का DNA दूसरे बैक्टीरिया में पहुँच जाता है।
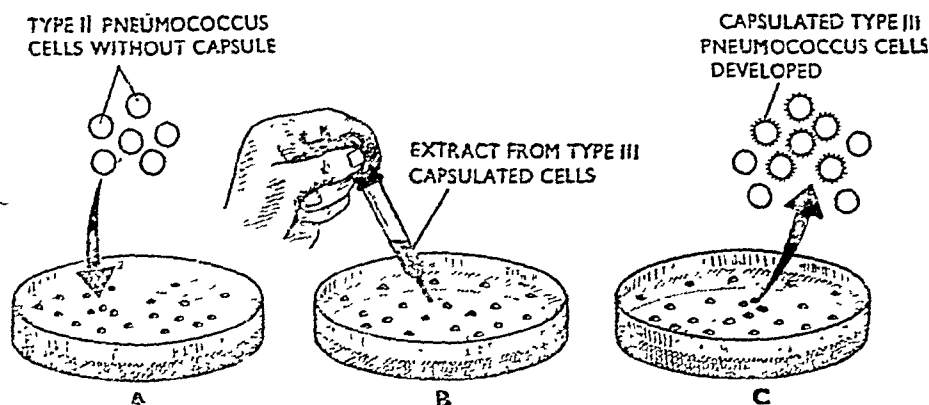
चित्र १०·१३. न्यूमोकोकस वैक्टीरिया के अनुग्र विभव का उग्र विभव में रूपान्तर
(Transformation of nonvirulent strain of *Pneumococcus* bacteria to virulent strain)

प्राय: दाता वैक्टीरिया के DNA का कुछ अंश ही ग्राही वैक्टीरिया में पहुँचता है। यह देखा गया है कि अन्तरित DNA की मात्रा अन्तरित आनुवंशिक सूचनाओं के समानुपाती होती है।

कोशिकाद्रव्यक सेतु के निर्मित होने के वाद वैक्टीरिया को अलग-अलग समय पर waring blender में रखने पर पता चला कि DNA की भिन्न मात्रा कोशिकाद्रव्यक सेतु में से होकर अन्तरित होती है। DNA की मात्रा तथा अन्तरित आनुवंशिक प्रति-चित्र की लम्बाई में समानुपात से स्पष्ट होता है कि आनुवंशिक सूचनाएँ DNA में केन्द्रित होती हैं।

2. वाइरस व जीवाणुभोजी से प्रमाण
(Evidence from Virus and Bacteriophage)

Hershey तथा Chase द्वारा waring blender का प्रयोग : वैक्टीरियल वाइरसों के अध्ययन से यह प्रमाणित हो चुका है कि DNA आनुवंशिक सूचनाओं का वाहक है क्योंकि जनक वाइरस एवम् सन्तति वाइरस के वीच DNA ही एक-मात्र रासायनिक शृंखला या कड़ी का कार्य करता है। वैक्टीरिया का संक्रमण करने वाले वाइरस **वैक्टीरियोफेग** (bacteriophage) या **जीवाणुभोजी** या **फेग** (phage) कहलाते हैं। इसमें प्रोटीन से वना एक शीर्ष (head) होता है जिसमें DNA वन्द रहता है और एक पूंछ होती है। यह भी प्रोटीन की वनी होती है।

जीवाणुभोजी पूंछ के सिरे द्वारा वैक्टीरियल कोशिका से चिपक जाता है। इसका शीर्ष एवम् पूंछ वैक्टीरियल कोशिका के वाहर रह जाते हैं और DNA वैक्टीरियल कोशिका में अन्तरित हो जाता है। Waring blender में संक्रमित वैक्टीरिया को रखकर हिलाने से जीवाणुभोजी का शीर्ष एवम् पूंछ अलग हो जाते हैं। वैक्टीरियल कोशिका के अन्दर वाइरसी—DNA (viral DNA) या जीवाणु-भोजी का DNA (DNA of bacteriophage) स्वयं को द्विगुणित करना प्रारम्भ कर देता है और इस प्रकार वड़ी संख्या में नये वाइरसी—DNA स्ट्रैंण्ड वन जाते हैं। इनमें से प्रत्येक अपने चारों ओर प्रोटीन का खोल वना लेता है। जीवाणुभोजी द्वारा संक्रमण के लगभग २० मिनट वाद वैक्टीरियल कोशिका फट जाती है और

100 के लगभग जीवाणुभोजी मुक्त होकर वाहर आ जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि प्रोटीन की बजाय कोई अन्य ऐसा पदार्थ है जो कि नये जीवाणुभोजी कणों के निर्माण के लिए आवश्यक एवम् महत्त्वपूर्ण होता है। जीवाणुभोजी से वैक्टीरिया में प्रवेश
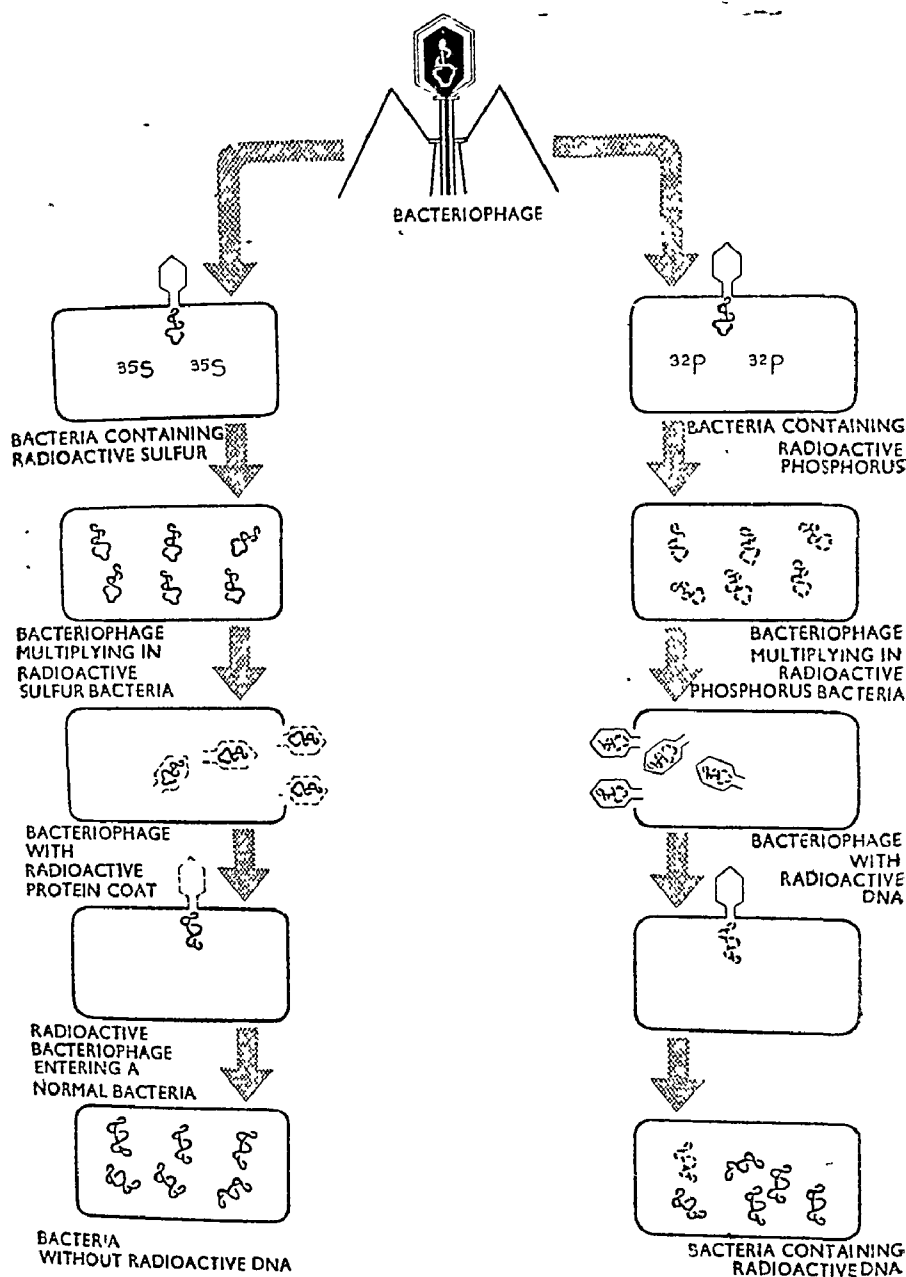
चित्र १०·१४. Hershey एवम् Chase द्वारा Waring Blender द्वारा यह प्रदर्शित करना कि DNA एक आनुवंशिक पदार्थ है।

करने के बाद बहुगुणित करने वाला यह पदार्थ केवल DNA है। इसे गन्धक व फॉस्फोरस के अंकिक अणुओं द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है।

Hershey एवम् **Chase** ने *1950* में *एशरिकिआ कोली* (*Escherichia coli*) में जीवाणुभोजी या फेग T_2 के अन्तरण द्वारा यह प्रयोग किया। उसने दो प्रकार के फेग,कण विकसित किये—एक प्रकार के फेग रेडियोएक्टिव गन्धक (35S) वाले बैक्टीरिया में विकसित किये गये तथा दूसरी प्रकार के फेग रेडियो-एक्टिव फॉस्फोरस (32P) वाले बैक्टीरिया में वर्धित किये गये। उन्होंने देखा कि रेडियोएक्टिक गन्धक के माध्यम में वृद्धि करने वाले फेग के प्रोटीन खोल में केवल रेडिओएक्टिव ऐमीनो अम्ल होते हैं। इसी प्रकार रेडियोएक्टिव फॉस्फोरस माध्य में वृद्धि करने वाले फेग में केवल रेडियोएक्टिव DNA होता है। सामान्य बैक्टीरिया को दोनों प्रकार के रेडियोएक्टिव फेग से अलग-अलग संक्रमित किया गया। कुछ समय पश्चात् waring blender में इस निलम्बन को मथकर इनके प्रोटीन खोल को अलग कर दिया गया। 15-20 मिनट बाद देखा गया कि बैक्टीरियल कोशिकाएँ फट गयी हैं और फेग मुक्त हो गये हैं। परीक्षण करने पर पता चला कि रेडियोएक्टिव फॉस्फोरस माध्यम में वृद्धि करने वाले फेग कणों ने अपना 85% रेडियोएक्टिव फॉस्फोरस बैक्टीरियल कोशिकाओं में पारगत कर दिया है जबकि रेडियोएक्टिव गन्धक माध्यम में वृद्धि करने वाले फेग कणों द्वारा बैक्टीरियल कोशिकाओं में गन्धक की तनिक मात्रा भी पारगत न हो पायी। लगभग 80% रेडियो-एक्टिव गन्धक वाइरसी अवशेषों में पायी गयी। इन परिणामों से स्पष्ट है कि (i) गन्धक का उपयोग प्रोटीन्स के निर्माण में किया गया, और (ii) क्योंकि प्रोटीन वाइरस का खोल बनाते हैं जो संक्रमण के समय बैक्टीरियल कोशिका के बाहर रह जाता है, समस्त प्रोटीन में स्थित समस्त रेडियोएक्टिव गन्धक वाइरसी अवशेषों में बाहर रह जाती है। DNA में फॉस्फोरस होता है किन्तु गन्धक नहीं होती, अतः रेडियोएक्टिव फॉस्फोरस की अधिकांश मात्रा बैक्टीरियल कोशिका के अन्दर मिलती है। इससे स्पष्ट है कि वाइरसी DNA ने बैक्टीरियल कोशिकाओं में प्रवेश करने के बाद बहुगुणित होकर सन्तति फेग कणों का निर्माण किया। इससे प्रमाणित होता है कि DNA आनुवंशिक पदार्थ है।

3. बैक्टीरिया में पारक्रमण प्रयोग द्वारा प्रमाण
(Evidence from Transduction Experiment in Bacteria)

फेग द्वारा DNA के एक छोटे-से खण्ड के एक बैक्टीरियम कोशिका से दूसरी में स्थानान्तरण की क्रिया को **पारक्रमण** (transduction) कहते हैं। बैक्टीरियल कोशिकाओं में विकसित होते समय कभी-कभी फेग अपने अन्दर बैक्टीरियल गुणसूत्र के DNA का कुछ भाग बन्द कर लेते हैं। इसके बाद फेग पोषक कोशिका से मुक्त होकर नयी बैक्टीरियल कोशिका का संक्रमण करता है। नयी पोषक कोशिका को संक्रमित करने पर यह अपने DNA के साथ-साथ पुरानी पोषक कोशिका के गुणसूत्र के खण्ड को भी अन्तरित कर देता है। गुणसूत्र का यह खण्ड नयी पोषक कोशिका के गुणसूत्र के साथ क्रॉसिंग ओवर करता है और पुरानी पोषक कोशिका के जीन्स का समावेशन करता है। क्योंकि केवल DNA अन्तरित होता है, अतः इससे सिद्ध होता है कि जीन्स DNA के बने होते हैं।
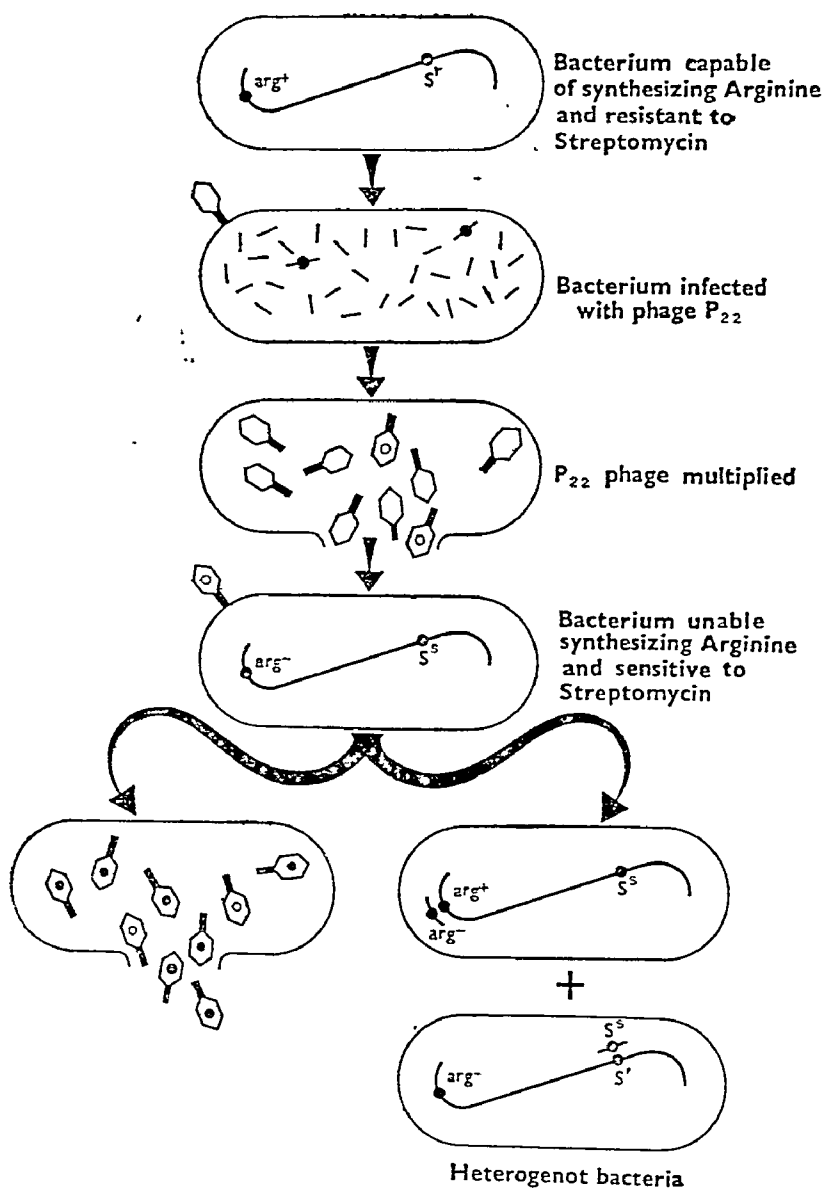
चित्र १०·१५. बैक्टीरिया में पारक्रमण (Transduction in bacteria)

4. परावैंगनी प्रकाश द्वारा प्रमाण (Evidence from Ultraviolet Light)

न्यूक्लीक अम्ल तेजी से परावैंगनी प्रकाश अवशोषित करते हैं तथा सर्वाधिक अवशोषण 260 millimicrons वाली तरंग-दैर्घ्य किरणों का होता है। विभिन्न जीवों में सर्वाधिक उत्परिवर्तन भी परावैंगनी प्रकाश की 260 millimicrons तरंग-दैर्घ्य किरणों द्वारा होता है। परावैंगनी प्रकाश की ऊर्जा के एक यूनिट द्वारा उत्पन्न उत्परिवर्तनों तथा परावगनी प्रकाश की तरंग-दैर्घ्य जिस पर कि ऊर्जा को

प्रवाहित किया जाता है, की तुलना करने पर उत्परिवर्तनों का एक **क्रिया स्पैक्ट्रम** (action spectrum) प्राप्त होता है। उत्परिवर्तन उत्पन्न करने वाले इस क्रिया स्पैक्ट्रम तथा न्यूक्लीक अम्लों के अवशोषण स्पैक्ट्रम में एक प्रकार का पारस्परिक समन्वय होता है। इस प्रपंच को इस प्रकार समझा जा सकता है कि जीन्स न्यूक्लीक अम्लों के बने होते हैं, तथा न्यूक्लीक अम्लों द्वारा परावैंगनी प्रकाश ऊर्जा के अवशोषण के कारण उत्परिवर्तन विकसित होते हैं तथा अवशोपित प्रकाश ऊर्जा के न्यूक्लीक अम्ल के अणु में परिवर्तन के फलस्वरूप एक उत्परिवर्तित या म्युटेण्ट जीन उत्पन्न होता है।

Fraenkel-Conrat एवम् **Stanley** ने कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में अनुसंधान करते समय पादप वाइरस से न्यूक्लीक अम्लों एवम् प्रोटीन्स को पृथक् किया। इन दोनों पदार्थों को पुनः मिलाने पर ये पुनः संयोजित होकर वाइरस के रूप में पुनः सक्रिय हो गये। अब ये वाइरस पुनः पौधे का संक्रमण कर एक विशिष्ट रोग को उत्पन्न करने में समर्थ थे।

संकर वाइरसों के निर्माण से भी इसकी पुष्टि होती है कि DNA एक आनुवंशिक पदार्थ है। संकर वाइरस को एक स्ट्रेन वाले वाइरस के न्यूक्लीक अम्ल तथा दूसरे स्ट्रेन के वाइरस के प्रोटीन को मिलाकर विकसित किया गया था। यह संकर प्रोटीन वाले वाइरस के सीरम-गुण तथा न्यूक्लीक अम्ल वाले वाइरस की वाइरसी सक्रियता को प्रदर्शित करता है। कुछ और परीक्षणों द्वारा **Fraenkel-Conrat** इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि केवल पृथक् किये हुए न्यूक्लीक अम्ल में ही वाइरसी सक्रियता होती है।

अध्याय 11

आनुवांशिक कूट या जैनेटिक कोड (Genetic code)

प्रश्न 29. आनुवंशिक कूट पर एक निवन्ध लिखिये।
Write an essay on genetic code.

आनुवंशिक कूट या जैनेटिक कोड (Genetic Code)

परिभाषा (Definition) : प्राय: DNA को आनुवंशिक सूचनाओं या संदेशों से निहित टेप कहा जाता है जिसमें नाइट्रोजिनस क्षारों के अनुक्रमों के रूप में आनुवंशिक संदेश होते है। यह विभिन्न प्रकार के प्रोटीन्स का संश्लेषण एवं निर्देशन करके समस्त जैव क्रियाओं पर नियन्त्रण रखता है। प्रोटीन्स ऐमीनो अम्लों के दीर्घ अणु है जो विशिष्ट अनुक्रमों में एक-दूसरे से संयोजित रहते है। यद्यपि विभिन्न क्रियाओं के लिए जीवों के शरीर में असंख्य प्रोटीन होते हैं किन्तु इनके निर्माण में केवल २०-२२ ऐमीनो अम्ल ही भाग लेते हैं। स्पष्ट है कि प्रोटीन्स के लक्षणों एवं प्रकृति में अन्तर ऐमीनो अम्लों के विभिन्न अनुक्रमों में विन्यास के कारण होते हैं।

नाइट्रोजिनस क्षारों का रैखिक विन्यास प्रोटीन अणु में विभिन्न ऐमीनो अम्लों के अनुक्रम को निर्धारित करता है। DNA अणु में केवल चार नाइट्रोजिनस क्षार होते हैं—**एडिनीन** (A), **थाइमीन** (T), **साइटोसीन** (C) तथा **ग्वानीन** (G)। इसका अर्थ हुआ कि DNA मे स्थित चारों नाइट्रोजिनस क्षारों का अनुक्रम विभिन्न प्रकार के प्रोटीन्स के संश्लेषण का नियमन करता है।

इस सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये है कि किस प्रकार DNA के विभिन्न क्षारों मे अन्तर (जोकि RNA मे पूरक क्षारों के रूप में अनुलेखित किये जाते हैं) प्रोटीन अणु में ऐमीनो अम्लों की विशिष्ट स्थिति को निर्धारित करते है। इन सिद्धान्तों मे से **F. H. C. Crick** द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त ही सर्वाधिक मान्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक ऐमीनो अम्ल के लिए तीन नाइट्रोजिनस क्षारों का एक अनुक्रम या त्रिक कूट (triplet code) होता है। अत: **आनुवंशिक कूट या जैनेटिक कोड DNA अणुओं में स्थित नाइट्रोजिनस क्षारों का वह अनुक्रम है जिसमें प्रोटीन अणुओं के संश्लेषण के लिए संदेश निहित रहते हैं।** न्यूक्लिओटाइड्स के उस ग्रुप को जिसमें किसी एक ऐमीनो अम्ल के लिए कूट या संदेश होता है, **कोडॉन** (*Codon*) कहते है।

स्पष्टीकरण (Explanation)

आनुवंशिक कूट की कार्य-प्रणाली को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। यह प्रकल्पित करो कि DNA में किसी स्थान पर तीन नाइट्रोजिनस क्षार AAA अनुक्रम में उपस्थित है। DNA स्ट्रैण्ड द्वारा निर्मित *m*RNA में उस स्थान के संगत नाइट्रोजिनस क्षारों का UUU अनुक्रम होगा। यह

अनुक्रम phenylalanine नामक ऐमीनो अम्ल का वरण करेगा। अतः DNA में AAA अनुक्रम या mRNA में UUU अनुक्रम एक **कोडॉन** (codon) को निरूपित करता है।

त्रिक् कूट (Triplet Code)—**Gamow** ने 1954 में तीन-अक्षरीय कूट की सम्भावना प्रकट की। DNA व RNA में कुल चार न्यूक्लिओटाइड्स होते हैं और लगभग २० ऐमीनो अम्लों के विन्यास का कूट (code) इनके विन्यास पर आधारित होता है। अगर यह मान लिया जाये कि प्रत्येक कूट केवल एक न्यूक्लिओटाइड का बना होता है तो इससे कुल चार कूट (codes) बनेंगे जो केवल 4 ऐमीनो अम्लों के विन्यास को नियन्त्रित कर सकते हैं। अगर प्रत्येक कूट को दो न्यूक्लिओटाइड्स का बना हुआ माना जाये तो (4×4=16) केवल 16 कूट (codes) बनेंगे। ये भी 20 ऐमीनो अम्लों के लिए पर्याप्त नहीं है। तीन न्यूक्लिओटाइड्स के बने कूट से (4×4×4=64) 64 कूट शब्द बनते हैं। ये बीस ऐमीनो अम्लों के लिए आवश्यकता से अधिक हो जाते हैं। अतः **Gamow** की तीन-अक्षरीय कूट की सम्भावना सही है। त्रिक कूट के विभिन्न संयोगों को निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

SECOND BASE

FIRST BASE	U	C	A	G	THIRD BASE
U	UUU } Phe	UCU } Ser	UAU } Tyr	UGU } Cys	U
	UUC	UCC	UAC	UGC	C
	UUA } Leu	UCA	UAA } Ochre (terminator)	UGA Terminator	A
	UUG	UCG	UAG } Amber (terminator)	UGG Try	G
C	CUU } Leu	CCU } Pro	CAU } His	CGU } Arg	U
	CUC	CCC	CAC	CGC	C
	CUA	CCA	CAA } Gln	CGA	A
	CUG	CCG	CAG	CGG	G
A	AUU } Ileu	ACU } Thr	AAU } Asn	AGU } Ser	U
	AUC	ACC	AAC	AGC	C
	AUA	ACA	AAA } Lys	AGA } Arg	A
	AUG } Met	ACG	AAG	AGG	G
G	GUU } Val	GCU } Ala	GAU } Asp	GGU } Gly	U
	GUC	GCC	GAC	GGC	C
	GUA	GCA	GAA } Glu	GGA	A
	GUG	GCG	GAG	GGG	G

चित्र १०·१५. 64 त्रिक संयोजनों एवम् उनके संगत ऐमीनो अम्लों से बना आनुवंशिक कूट (Genetic code, consisting of 64 triplet combinations and their corresponding amino acids)

1. एकक कूट (Singlet code) : एक अक्षर वाले शब्द ($1 \times 4=4$ न्यूक्लिओटाइड्स)

A C G U

यद्यपि एकक कूट देखने में अति सरल प्रतीत होता है किन्तु 22 ऐमीनो अम्लों के कूट के लिए पर्याप्त नहीं है।

2. द्विक् कूट (Doublet code)—दो अक्षर वाले शब्द ($4 \times 4=16$ न्यूक्लिओटाइड्स)

AA	AC	AG	AU
CC	CA	CG	CU
GG	GA	GC	GU
UU	UA	UG	UC

द्विक् कूट भी अपर्याप्त है क्योंकि इससे भी ऐमीनो अम्लों के केवल 16 कूट बनेंगे।

3. त्रिक् कूट (Triplet code)—तीन अक्षर वाले शब्द ($4 \times 4 \times 4=64$ न्यूक्लिओटाइड्स)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कई त्रिक् कूटों में एक ही प्रकार के अक्षर है किन्तु इनका अनुक्रम भिन्न प्रकार का है और इनमें भिन्न ऐमीनो अम्लों के कूट होते हैं। अतः त्रिक् (Triplet) में अक्षरों का विन्यास किसी विशिष्ट ऐमीनो अम्ल के कूट को निर्धारित करने के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

यद्यपि DNA अणु में नाइट्रोजिनस क्षारों के अनुक्रम के रूप में संदेश कोडित रहते हैं किन्तु कूट अक्षरों को प्रायः DNA की अपेक्षा RNA द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता है। RNA के क्षार DNA के क्षारों से केवल एक बात में भिन्न होते हैं कि इनमें थाइमीन (T) के स्थान पर यूरेसिल (U) होता है।

आनुवंशिक कूट की खोज (Discovery of Genetic Code)

पहले त्रिक् कूट का अस्तित्व एक कल्पना मात्र था, किन्तु 1961 में **Nirenberg** तथा **Mathali** ने प्रयोगों द्वारा इसके अस्तित्व को प्रमाणित किया। उन्होंने RNA का संश्लेषण करने में सफलता पायी जिसमें केवल एक क्षार-यूरेसिल के अणु थे। इसे **polyuridylic** (poly-U) अणु की संज्ञा दी गयी। संश्लेपित poly-u को बीस ऐमीनो अम्लों व आवश्यक ATP सहित **एशरिकिया कोली** से निष्कासित प्रोटीन-संश्लेषी एन्जाइम्स-युक्त कोशिका-मुक्त प्रणाली में रखा। कुछ समय बाद phenylalanine की बन्धता से एक छोटा-सा तथा प्रोटीन के समान अणु निर्मित हुआ।

इसके तुरन्त बाद वैज्ञानिकों ने अनेक RNA संयोग प्राप्त किये जिनमें से कुछ रासायनिक संश्लेषण तथा कुछ प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त हुए थे।

आनुवंशिक कूट का कूटवाचन (Deciphering of the Genetic Code)

त्रिक् कूट के अस्तित्व की खोज के बाद अनेक शोधकार्यों के फलस्वरूप सभी बीस ऐमीनो अम्लों के त्रिक् कूटों को सुस्थापित करने में सफलता मिली है। विभिन्न ऐमीनो अम्लों के कोडॉन यूनिटों को निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गया है :—

बीस ऐमीनो अम्लों का त्रिक आनुवंशिकी कूट
(Triplet Genetic Code for 20 Amino acids)

Amino acid	Abbreviation	DNA Code	*m*RNA transcription
1. Alanine	ala	CGA, CGG CGT, CGC	GCU, GCC GCA, GCG
2. Arginine	arg	GCA, GCT, GCC, TCT, GCG, TCC	CGU, CGA, CGG. AGA, CGC, AGG,
3. Asparagine	asn	TTA, TTG	AAU, AAC
4. Aspartic acid	asp	CTA, CTG	GAU, GAC
5. Cysteine	cys	ACA, ACG	UGU, UGC
6. Glutamine	gln	GTT, GTC	CAA, CAG
7. Glutamic acid	glu	CTT, CTG	GAA, GAG
8. Glycine	gly	CCA, CCG CCT, CCC	GGU, GGC GGA, GGG
9. Histidine	his	GTA, GTG	CAU, CAC
10 Isoleucine	ilu	TAA, TAG	AUA, AUU
11. Leucine	leu	AAT, AAC, GAA, GAG, GAT, GAA	UUA, UUG, CUU CUC, CUA, CUG
12. Lysine	lys	TTT, TTC	AAA, AAG
13. Methionine	met	TAT, TAC	AUA, AUG
14. Phenylamine	phe	AAA, AAG	UUU, UUC
15. Proline	pro	GGA, GGG, GGT, GGC	CCU, CCC CCA, CCG
16. Serine	ser	AGA, AGG, AGT, AGC, TCA, TCG	UCU, UCC, UCA, UCG, AGU, AGC
17. Threonine	thr	TGA, TGG, TGT, TGC	ACU, ACC ACA, ACG
18. Tryptophane	try	ACT, ACC	UGA, UGG
19. Tyrosine	tyr	ATA, ATG	UAU, UAC
20. Valine	val	CAA, CAG, CAT, CAC	GUU, GUC, GUA, GUG
21. Terminating triplets		ATT, ATC	UAA, UAG

कूट का अपह्रास (Degeneracy of the Code)

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि अधिकांश ऐमीनो अम्लों (केवल दो को छोड़कर) को एक से अधिक कोडॉन द्वारा पेप्टाइड श्रृंखला में इनके विशिष्ट स्थानों की ओर निर्देशित किया जा सकता है। कूटीकरण की इस गुणित प्रणाली को अपह्रसित प्रणाली (degenerate system) कहते हैं। यह जीवों के हानिकारक उत्परिवर्तनों से सुरक्षा प्रदान करती है, याद्दच्छिक उत्परिवर्तनों के प्रभाव को कम करके लक्षणसनष्टियों का स्थायीकरण करती है और क्षारों के युग्मन में होने वाली त्रुटियों को कम करती है।

निरर्थक कोडॉन (Nonsense Codons)

उपर्युक्त तालिका में दो कोडॉन ऐसे हैं जो 20 ज्ञात ऐमीनो अम्लों में से किसी को भी कोडित नहीं करते। इन कोडॉन को निरर्थक कोडॉन कहते हैं। ये UAA तथा UAG हैं।

किन्तु इनको निरर्थक कोडॉन कहना भ्रांतियुक्त होगा क्योंकि ये आनुवंशिक संदेशों के कोडीकरण को प्रारम्भ करने एवम् रोकने में सहायक होते हैं। इस क्रिया को विन्दुगत (punctuation) तथा निरर्थक कोडॉन को संकेत या सिग्नल (signal) कहते हैं।

संकेत किसी संदेश के कोडॉन के बीच स्थित न होकर दो अभिलक्षकी (functional) जीन्स के बीच स्थित संदेश को आरम्भ या समाप्त करते हैं। इस प्रकार के विशेष त्रिक को दो विशिष्ट tRNAs द्वारा पहचाना जा सकता है। इनमें ऐमीनो अम्लों का अभाव होता है और ये प्रोटीन श्रृंखला की वृद्धि को रोकते हैं।

बैक्टीरिया तथा फेग में methionine को कोडित करने वाला AUG कोडॉन एक समारंभन कोडॉन (initiation codon) का कार्य करता है। यह प्रायः N-terminal सिरे पर पाया जाता है।

कूटों का अतिव्यापन एवम् अनतिव्यापन (Overlapping and non-

AUU				
UU	G			
U	GC			Overlapping codons
	GCA			
	CA	U		
	A	UC		
		UCG		
		CG	A	
		G	AC	
			ACC	
AUU	GCA	UCG	ACC	Non-overlapping codons

overlapping codes)—प्रारम्भ में जैनेटिक कोड या आनुवंशिक कूट में अपह्रसिता का मिलना एक विवादास्पद विषय था। अतः अतिव्यापी अनुक्रम वाला एक त्रिक् कूट प्रस्तुत किया गया। अतिव्यापी कूट के अन्तर्गत कोडॉन की संख्या को कम करके बीस तक किया जा सकता है। किन्तु अब अनतिव्यापी त्रिक् कूट के अस्तित्व के पक्ष में अनेक प्रमाण उपलब्ध है।

कूट की सार्वत्रिकता (Universality of code)—जैनेटिक कोड या आनुवंशिक कूट सार्वत्रिक रूप से पेड़-पौधों व जन्तुओं सभी में पाया जाता है।

महत्त्व (Significance)—आनुवंशिक कूट का मानव समष्टि में अत्यधिक महत्त्व है। इसके द्वारा कुछ आनुवंशिकी प्रश्नों का समाधान करने तथा जीन क्रिया एवम् उत्परिवर्तनों की प्रक्रिया को समझने में सहायता मिली है।

अध्याय 12

प्रोटीन संश्लेषण
(Protein Synthesis)

प्रश्न 30. कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया का वर्णन करिये। अनुलेखन एवम् स्थानान्तरण का स्पष्टीकरण करते हुए इस क्रिया के विभिन्न पदो का अनुलेखण करिये।

Describe the process of protein synthesis in the cell. Trace all the steps in the process clearly explaining the terms transcription and translations. *(Rajasthan 1973*

प्रोटीन्स दीर्घाकार अणु है जिनमें विभिन्न अनुक्रमों मे विन्यसित सैकड़ो ऐमीनो अम्लों से निर्मित लम्बी श्रृंखलाएँ होती है। ऐमीनो अम्लों के अणु परस्पर पेप्टाइड बॉण्डो द्वारा संयोजित रहते हैं तथा इस प्रकार से बनी श्रृंखला को पेप्टाइड श्रृंखला (peptide chain) कहते है। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते है कि प्रोटीन अणु कोवेलेण्ट पेप्टाइड बॉण्डों (covalent peptide bonds) द्वारा संयोजित ऐमीनो अम्लों के अणुओं द्वारा निर्मित पोलीपेप्टाइड श्रृंखला के बने होते है।

यद्यपि प्रोटीन अणु में ऐमीनो अम्लों के अणुओं की संख्या कई सौ तक होती है किन्तु ये केवल बीस प्रकार के ही होते है। विभिन्न प्रकार के प्रोटीन्स का निर्माण इन ऐमीनो अम्लों के भिन्न-भिन्न प्रकार से विन्यास के फलस्वरूप होता है। इसीलिए प्रोटीन्स के गुण ऐमीनो अम्लों की संख्या एवम् उनके क्रमिक विन्यास पर निर्भर करते है। श्रृखला में विन्यसित सैकड़ों ऐमीनो अम्लों में से किसी एक ऐमीनो अम्ल के परिवर्तन से ही प्रोटीन की क्रिया में परिवर्तन हो जाता है। अभी तक केवल कुछ ही प्रोटीन्स में ऐमीनो-अम्लों के पूर्ण अनुक्रम का सही पता चल सका है।

प्रोटीन्स विभिन्न प्रकार से कार्य करते है। कोशिका के जीवन के लिए आवश्यक समस्त भौतिक एवम् रासायनिक क्रियाओं से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। किन्तु जीव मे होने वाली असंख्य जीव-रासायनिक क्रियाओं के उत्प्रेरण के लिए एन्जाइम्स के रूप में कार्य करना इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया जीवित कोशिकाओं में पूर्ण होती है। किसी प्रोटीन विशेष के संश्लेषण में निश्चित प्रकार के विभिन्न ऐमीनो अम्लों के अणु निश्चित सख्या में किसी निश्चित क्रम मे विन्यसित होते है। प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया गुणसूत्र के DNA अणु में उपस्थित आनुवशिक सूचना द्वारा नियन्त्रित होती है। DNA अणु में उपस्थित क्षारों का विन्यास प्रोटीन में ऐमीनो अम्लों के अणुओं के क्रम को निर्धारित करता है।

प्रथम दृष्टि में यह लगभग असम्भव-सा ही प्रतीत होता है कि DNA अणु में विन्यसित चार प्रकार के क्षार 20 किस्म के ऐमीनो अम्लों के अणुओं के विन्यास

का निर्धारण किस प्रकार कर सकते हैं ? DNA न्यूक्लिओटाइड्स के एक या दो क्षारों द्वारा निर्मित कूट-तन्त्र (code system) 20 ऐमीनो अम्लों के संयोजन के लिए पूर्ण सूचनाएँ नहीं वना सकता किन्तु निश्चित ही त्रिक कूट (triplet code) अर्थात् तीन क्षारों द्वारा संगठित कूट से ($4^3=64$) 64 प्रकार के संयोजन प्राप्त किये जा सकते हैं जिनके द्वारा ऐमीनो अम्लों के विन्यास के लिए पर्याप्त सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं। प्रयोगशाला में संचालित विभिन्न प्रयोगों द्वारा त्रिक् कूट की उपस्थिति की पुष्टि होती है।

संक्षिप्त रूप से प्रोटीन संश्लेपण की क्रिया में *m*RNA का निर्माण DNA या DNA के उस भाग से होता है जिसमें किसी विशिष्ट प्रोटीन के निर्माण हेतु ऐमीनो-अम्ल अनुक्रम की सूचना अनुलेखन (transcription) सहित होती है। इस प्रकार से निर्मित *m*RNA, DNA के किसी एक वलयक का पूरक होता है। यह नवनिर्मित *m*RNA केन्द्रक में से निकलकर कोशिकाद्रव्य में पहुँचकर राइवोसोम्स से संयुक्त हो जाता है। *m*RNA से संयुक्त होने पर राइवोसोम्स **पोलीराइवोसोम्स** (polyribosomes) या **पोलीसोम्स** में परिवर्तित हो जाते हैं। पोलीराइवोसोम्स वे सक्रिय क्षेत्र है जहाँ न्यूक्लिओटाइड्स के अनुक्रम के अनुरूप ऐमीनो अम्लों के अणुओं का विन्यास होता है। *m*RNA तथा राइवोसोम्स अपने सम्पूरक क्षारों द्वारा
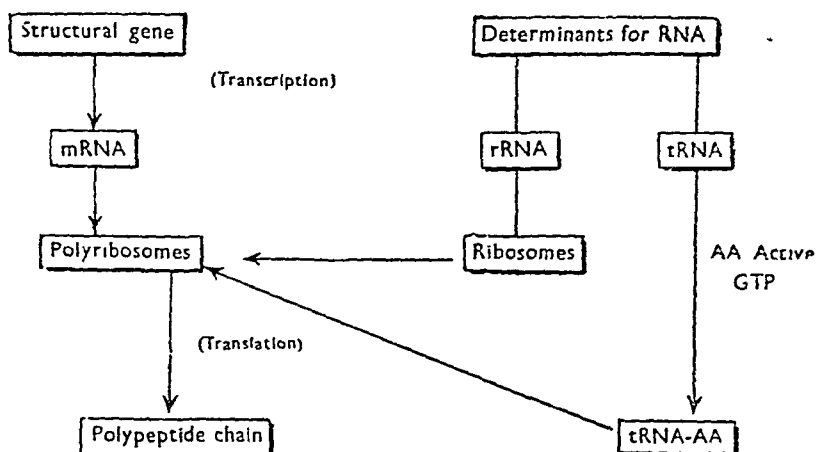
चित्र १२·१. प्रोटीन संश्लेपण की कार्य-विधि का चित्रीय निरूपण (*Diagrammatic representation of the process of protein synthesis*)

परस्पर सम्वन्वित होते हैं। *t*RNA का निर्माण भी DNA के विशिष्ट क्षेत्रों में होता है। इसके सूक्ष्म अणु कोशिकाद्रव्य से उत्प्रेरित ऐमीनो अम्लों को ग्रहण करके पोलीराइवोसोम्स पर पहुँचते हैं। अपने ऐमीनो अम्ल अणु सहित प्रत्येक *t*RNA अणु *m*RNA से संयुक्त हो जाता है। *t*RNA में भी एक समुचित ट्राइन्यूक्लिओटाइड अनुक्रम होने के कारण यह क्षार-युग्मन विधि द्वारा *m*RNA में एक निश्चित स्थान ग्रहण कर लेता है। सिन्थेटेसिज (synthetases) नामक अनेक एन्जाइम *t*RNA अणुओं से उचित ऐमीनो अम्लों के युग्मन का नियन्त्रण करते हैं। ऐमीनो-अम्लों के युग्मन के फलस्वरूप पोलीपेप्टाइड श्रृंखला का निर्माण होता है जो ऐमीनो-अम्लों के क्रमिक संयोजन से आकार में वढ़ती है। ऐमीनो अम्लों के संयोजन की क्रिया भी उचित **सिन्थेटेज एन्जाइम** (synthetase enzyme) द्वारा नियन्त्रित

होती है।

प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया को निम्नलिखित पदों में बाँटा जा सकता है :—

1. DNA से *m*RNA **का अनुलेखन** (Transcription of *m*RNA from DNA)—हम यह जानते है कि किसी विशिष्ट प्रोटीन के निर्माण हेतु ऐमीनो-अम्लों के एक निश्चित अनुक्रम मे संयोजन से सम्बन्धित जीन सन्देश DNA अणु मे संहित होते है। ये आवश्यक सूचनाएँ *m*RNA अणुओं को संचारित कर दी जाती है। *m*RNA अपने-अपने DNA अणुओं से प्रतिकृत होते है। प्रतिलिपिकरण की यह क्रिया RNA **पोलीमरेज** (RNA polymerase) नामक एन्जाइम की उपस्थिति में होती है। इस क्रिया में DNA अणुओं के वलयक फर्मे के समान कार्य करते है। DNA अणुओं में जीन-सूचनाएँ न्यूक्लिओटाइड्स क्षारकों के त्रिक् संकेतों (triplet code of nucleotide bases) के रूप मे संचित होती हैं। अतः ये सदेश *m*RNA मे भी त्रिक-सकेतों के रूप में संचारित किये जाते हैं।
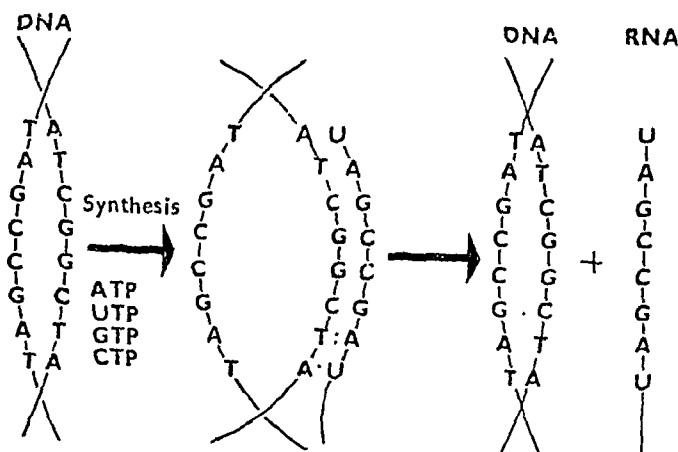
चित्र १२·२. DNA से *m*RNA के प्रतिलेखन की क्रिया का चित्रीय निरूपण
(Process of transcription of *m*RNA from DNA)

2. **पोलीराइबोसोम्स का निर्माण** (Formation of polyribosomes)—DNA द्वारा संश्लेषित *m*RNA कोशिकाद्रव्य मे विसरित हो जाता है जहाँ यह राइबोसोम्स को सरलता से उपलब्ध होता है। कोशिकाद्रव्य में स्थित स्वतन्त्र राइबोसोम्स प्रोटीन संश्लेषण में असमर्थ होते हैं, अर्थात् ये निष्क्रिय अवस्था में होते हैं। ये *m*RNA से संयुक्त होने पर ही उत्प्रेरित होते है। 70S प्रकार के बहुत-से राइबोसम्स *m*RNA के एक अणु से संयुक्त होकर एक प्रकार का समूह या झुण्ड-सा बनाते है। *m*RNA अणु पर होने वाले ऐसे समूहन को **पोलीराइबोसोम** या **पोलीसोम** कहते हैं। पोलीराइबोसोम में राइबोसोम्स की संख्या 7, 8 या इससे भी अधिक होती है। पोलीराइबोसोम्स, प्रोटीन संश्लेषण मे अत्यधिक सक्रिय होते है। पोली-राइबोसोम्स अस्थायी रचनाएँ हैं क्योंकि *m*RNA अणु स्वयं भी अस्थायी होता है जो पोलीपेप्टाइड की एक शृखला के निर्माण के बाद विच्छिन्न हो जाता है। इसके विच्छिन्न होने के फलस्वरूप समस्त राइबोसोम्स सूक्ष्म स्वतन्त्र एककों के रूप में विमुक्त हो जाते है। ये *m*RNA के एक नये वलयक पर विन्यसित होकर एक नया
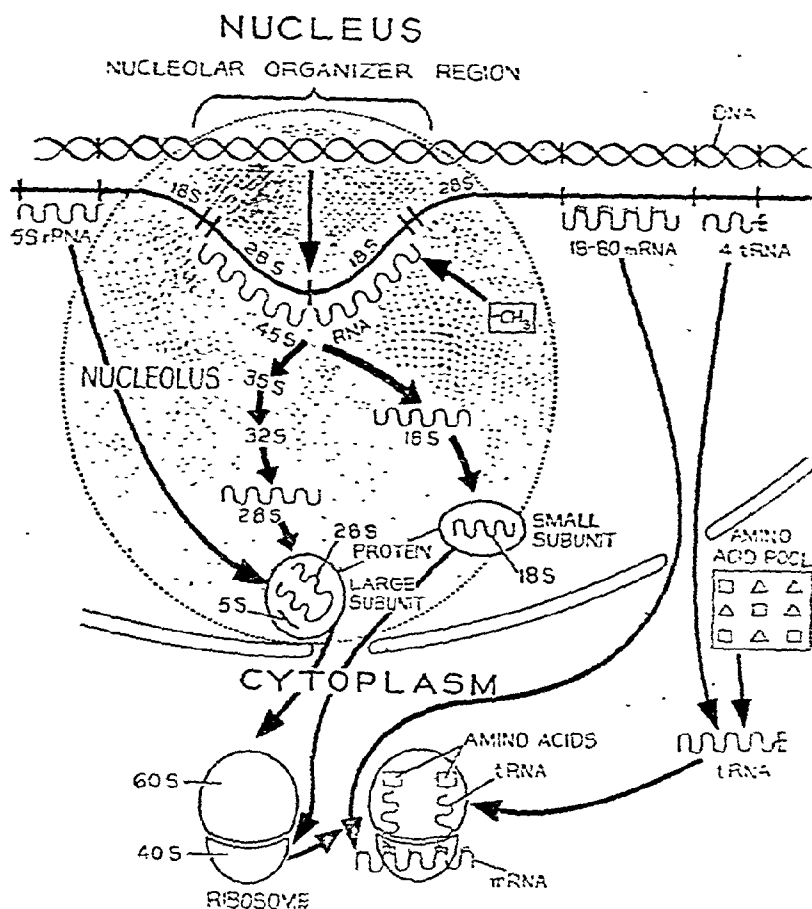
चित्र १२·२. विभिन्न प्रकार के RNA की उत्पत्ति एवम् राइबोसोम्स के निर्माण की क्रिया का सारांश (Summary of the process of production of different types of RNA and formation of ribosomes)

पोलीराइबोसोम बनाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि प्रोटीन संश्लेषण में पोलीराइबोसोम्स ही सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, न कि राइबोसोम्स।

3. **ऐमीनो अम्लों का उत्प्रेरण (Activation of amino acids)**—कोशिकाद्रव्य में ऐमीनो अम्ल निष्क्रिय अवस्था में होते हैं तथा ये प्रोटीन संश्लेषण करने में असमर्थ होते हैं। अतः इनको ऊर्जा द्वारा उत्प्रेरित किया जाता है। ये ATP द्वारा उत्प्रेरित होते हैं। ATP के अणु ऐमीनो अम्लों से संयुक्त होकर अत्यधिक सक्रिय ऐमीनो एसिड फॉस्फेट-एडिनाइल कॉम्प्लेक्स (amino acid phosphate-adenyl-complexes) बनाते हैं। ये ऐमीनो-एसिल एडिनिलेट्स (amino-acyl adenylates) कहलाते हैं। उत्प्रेरण की क्रिया का नियमन विशिष्ट एन्जाइम्स द्वारा होता है। प्रायः समस्त परिस्थितियों में इनकी विशिष्टता बनी रहती है। साधारणतया प्रत्येक ऐमीनो अम्ल के लिए एक विशिष्ट एन्जाइम होता है। अतः जितने प्रकार के ऐमीनो अम्ल होते हैं उतने ही प्रकार के एन्जाइम होते हैं। उत्प्रेरण की क्रिया को

निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है :—

$$AA + ATP \underset{\text{एन्जाइम}}{\overset{\text{AA उत्प्रेरण करने वाला}}{\rightleftarrows}} \underbrace{AMP \sim AA}_{\text{एमिनोएसिल एडिनिलेट}} + PP$$
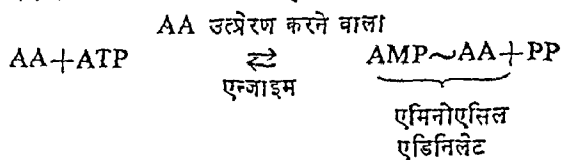
जिसमें AA —ऐमीनो-अम्ल
ATP —एडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट
AMP—एडिनोसीन मोनोफॉस्फेट
PP —पाइरोफॉस्फेट

को प्रदर्शित करता है।

4. उत्प्रेरित ऐमीनो अम्लों का *t*RNA से संयोजन (Attachment of activated amino-acid with tRNA)—एन्जाइम्स से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण ऐमीनो-अम्ल पोलीपेप्टाइड शृंखला को निर्मित करने के लिए पोली-राइबोसोम्स तक पहुँचने में असमर्थ होते हैं। उत्प्रेरित ऐमीनो अम्ल *t*RNA अणुओं से संयोजित हो जाते हैं। ये संयोजन **एमिनोएसिल ट्रान्सफर RNA सिन्थेटेसिज** (aminoacyl transfer synthetases) नामक एन्जाइम द्वारा होते हैं। इस प्रकार
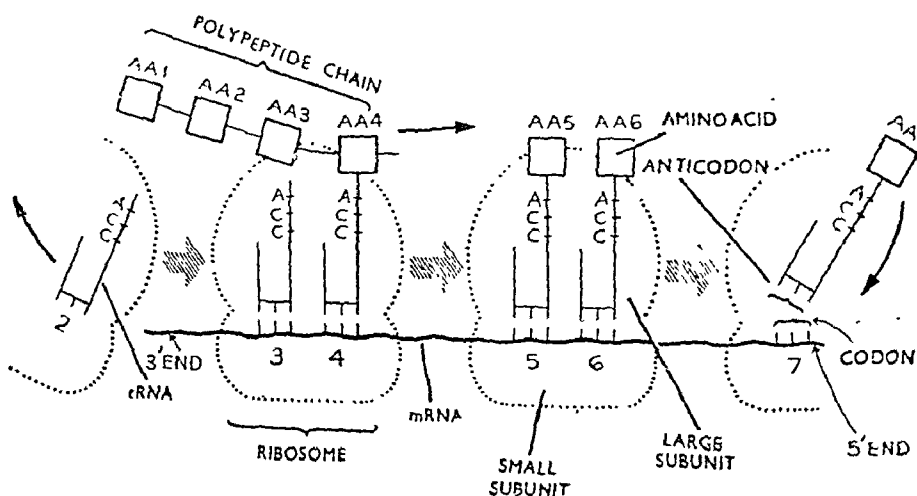
चित्र १२·४. प्रोटीन संश्लेषण का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of the process of protein synthesis)

से बने उत्पाद को **ऐमीनो-एसिड ट्रान्सफर RNA कॉम्प्लेक्स** (amino-acid transfer RNA complex) कहते हैं। इस अभिक्रिया को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है :—

$$AMP \sim AA + tRNA \underset{\text{enzyme}}{\overset{\text{AAtRNA synthetase}}{\rightleftharpoons}} \underbrace{AA \sim tRNA}_{\text{aminoacyl transfer RNA complex}} + \underbrace{AMP}_{\text{adenosine monophosphate}}$$
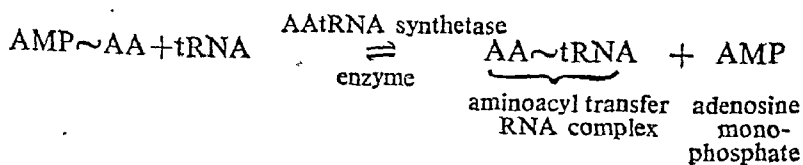
यह ध्यान देने योग्य एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि एक विशेप प्रकार के एन्जाइम्स उपयुक्त RNA अणुओं से ही संयोजित होते हैं।

5. ऐमीनो अम्लों का समावेशन (Incorporation of amino-acids of coding)—*t*RNA अणु उत्प्रेरित ऐमीनो-अम्लों को ग्रहण करके पोलीराइवोसोम्स को स्थानान्तरित कर देते हैं। ऐमीनो अम्ल के अणु *m*RNA अणु से प्रत्यक्ष रूप से संयोजन नहीं करते। इनकी वजाय इनमें ऐमीनो अम्ल से युक्त *t*RNA अणुओं द्वारा संयोजन होता है जो क्षार-युग्मन विधि द्वारा राइवोसोम पर *m*RNA अणुओं से युग्मन करते हैं। इसके वाद पेप्टाइड वॉण्ड या वन्धों द्वारा ऐमीनो अम्ल संयोजित
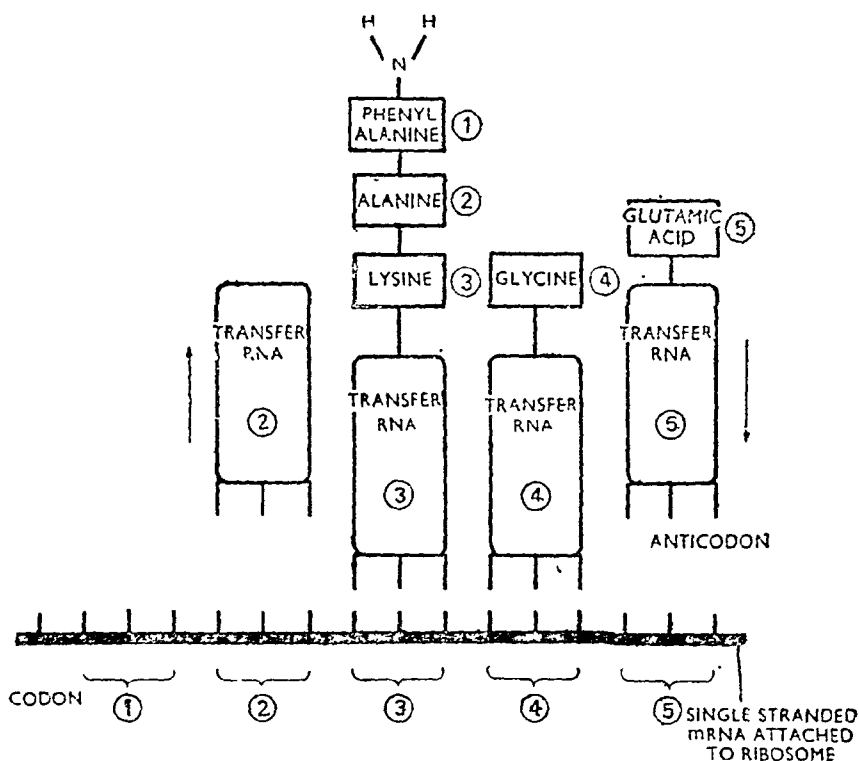
चित्र १२·५. पोलीराइवोसोम पर पोलीपेप्टाइड शृंखला के वर्धन का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of the growth of a polypeptide chain on the surface of ribosome)

होकर पेप्टाइड शृंखला का निर्माण करते हैं। तदुपरान्त *t*RNA अणु विमुक्त हो जाते हैं जो पुनः ऐमीनो अम्लों को ग्रहण कर लेते हैं। दो विशेप प्रकार के एन्जाइम्स तथा अत्यधिक ऊर्जा युक्त ग्वानोसीन ट्राइफॉस्फेट—GTP (guanosine triphosphate) इस क्रिया से सम्वद्ध होते हैं। प्रथम *t*RNA अणु पर स्थित ऐमीनो अम्ल पेप्टाइड वॉण्ड द्वारा एक अन्य *t*RNA अणु पर स्थित ऐमीनो अम्ल में संयोजित हो जाता है। ऐमीनो अम्ल के लुप्त होने पर प्रथम *t*RNA राइवोसोम से मुक्त हो जाता है। इसके वाद अनुक्रमिक पदों में संयोजित ऐमीनो अम्ल शृंखला राइवोसोम पर पहुँचे नये *t*RNA अणुओं को अन्तरणित कर दी जाती है। पेप्टाइड शृंखला के

पूर्ण होने पर (जबकि और अधिक *m*RNA का स्थानान्तरण होना सम्भव नहीं होता) राइबोसोम *m*RNA से पृथक् हो जाता है, तथा पोलीपेप्टाइड श्रृंखला अन्तिम *t*RNA अणु से विमुक्त हो जाती है। इसके साथ ही अन्तिम *t*RNA भी राइबोसोम से मुक्त हो जाता है।

प्रोटीन श्रृंखला का संश्लेषण पोलीपेप्टाइड श्रृंखला के ऐमीनो अम्ल सिरे से प्रारम्भ होता है जो दो ऐमीनो अम्ल प्रति सेकण्ड की दर से कार्बोक्सिल (carboxyl) छोर की ओर प्रगति करता है।

यद्यपि प्रोटीन संश्लेषण क्रिया के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा व लिखा जा चुका है किन्तु इस क्रिया के सम्बन्ध में विस्तृत एवम् पूर्ण जानकारी का अभी तक अभाव है। अभी भी यह ज्ञात नहीं हो सका है कि DNA के वलयकों में से कौन-सा वलयक *m*RNA निर्माण के लिए फर्मे का कार्य करता है तथा किस प्रकार से DNA वलयक पर निर्मित एक RNA अणु अपने निकटवर्ती अणु से पृथक् होता है।

पिछले कुछ वर्षों में कोशिका से पृथक् किये गये विभिन्न अणुओं एवम् रचनाओं के उपयोग द्वारा DNA, RNA तथा प्रोटीन अणुओं का संश्लेषण करना सम्भव हुआ है किन्तु इस प्रकार संश्लेषण क्रिया की गति जीवित कोशिका में होने वाली संश्लेषण क्रिया की गति की अपेक्षाकृत काफी धीमी होती है।

अध्याय 13

प्रोटीन संश्लेपण का आनुवंशिक नियन्त्रण
(Genetic Control of Protein Synthesis)

प्रश्न 31. प्रोटीन संश्लेषण के आनुवंशिक नियन्त्रण का उल्लेख करिये ।

Give an account of the genetic control of protein syntnesis.

कोशिका के अन्दर प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया एक अति महत्त्वपूर्ण प्रपंच है क्योंकि सजीवों की विभिन्न उपापचय क्रियाओं तथा आकारिक लक्षणों का नियन्त्रण प्रोटीन संश्लेषण के नियमन द्वारा होता है । प्रोटीन संश्लेषण का नियन्त्रण दो स्तरों पर होता है :—

1. आनुवंशिक सूचनाओं के अनुलेखन के समय तथा
2. स्थानान्तरण के स्तर पर ।

1. अनुलेखन स्तर पर प्रोटीन संश्लेषण का आनुवंशिक नियन्त्रण
(Genetic Control of Protein Synthesis at Transcription Level)

अनुलेखन के अन्तर्गत DNA से *m*RNA अणु का निर्माण होता है । यह मात्रात्मक व गुणात्मक दोनों प्रकार से प्रोटीन संश्लेषण को प्रभावित करता है । किसी भी समय संश्लेषित प्रोटीन की प्रकृति DNA अणु में नाइट्रोजिनस क्षारों के अनुक्रम तथा उससे अनुलेखित *m*RNA पर निर्भर करता है । *m*RNAs में न्यूक्लिओटाइड्स के क्रम को परिवर्तित करने वाला कोई भी उपापचयी उद्दीपन संश्लेषित प्रोटीन के सामान्य स्पैक्ट्रम को परिवर्तित कर देता है ।

2. स्थानान्तरण स्तर पर प्रोटीन संश्लेषण का आनुवंशिक नियन्त्रण
(Genetic Control of Protein Synthesis at Translation Level)

स्थानान्तरण *m*RNA द्वारा संश्लेषित प्रोटीन की मात्रा को निर्धारित करता है । *m*RNA में स्थित ऐमीनो अम्लों के अनुक्रम का प्रोटीन में ऐमीनो अम्लों के विशिष्ट अनुक्रम के रूप में स्थानान्तरण राइबोसोम्स के माध्यम से होता है तथा इसमें विशिष्ट ऐमीनो अम्ल धारण करने वाले *t*RNA अणु भाग लेते हैं ।

1961 में **Jacob** तथा **Monod** ने प्रोटीन संश्लेषण के नियमन का मॉडल प्रस्तुत किया विशेषकर जिसमें प्रेरण (induction) या दमन (repression) की क्रियाएँ भाग लेती हैं । इस मॉडल के फलस्वरूप ही ओपेरॉन के सिद्धान्त को प्रतिपादित करना सम्भव हो सका है ।

ओपेरॉन सिद्धान्त को सर्वप्रथम E. coli में प्रोटीन संश्लेपण के लिए प्रति- पादित किया गया था । शुरू में इसका प्रेक्षण β-**galactosidase enzyme** प्रणाली में किया गया था । ओपेरॉन में संरचनात्मक जीन्स की एक शृंखला होती है जिनकी अभिव्यक्ति एक ऑपेरेटर (operator) द्वारा नियन्त्रित होती है । संरचनात्मक जीन्स *m*RNAs के निर्माण के लिए उत्तरदायी होते हैं जो पोलीराइबोसोम्स से संयोजित होकर विशिष्ट प्रोटीन्स बनाते हैं ।

प्रेरण द्वारा नियमन (Regulation by Induction)

Jacob तथा Monod की परिकल्पना के अनुसार β-galactosidase उत्पन्न करने वाले जीन्स एक मिश्र प्रणाली (composite system) ओपेरॉन के भाग हैं। ओपेरॉन अनेक संरचनात्मक जीन्स का बना होता है और एक नियामक जीन द्वारा नियन्त्रित रहता है। अनुमान है कि नियामक जीन एक प्रोटीन निर्मित करता है जिसे दमनक (repressor) कहते हैं। दमनक तथा ओपेरेटर जीन मिलकर पूरे ओपेरॉन की क्रिया का दमन करते हैं। जब प्रेरणक galactoside, दमनक (repressor) से मिलता है तो यह नियामक जीन (regulator gene) के ओपेरेटर जीन पर प्रभाव को निष्क्रिय करता है। इसके फलस्वरूप प्रणाली पुनः प्रेरित हो जाती है और संरचनात्मक जीन अनुलेखित होकर β-galactosidase इत्यादि एन्जाइम व प्रोटीन का निर्माण करते हैं।

दमन द्वारा नियमन (Regulation by Repression)

कुछ विशेष एन्जाइम्स के जैव संश्लेषण का दमन करके उपापचय को नियन्त्रित किया जा सकता है। ग्लूकोस में वृद्धि करते हुए *E. Coli*, isoleucine से threonine का संश्लेषण करते हैं। Isoleucine की अतिरिक्त मात्रा को संवर्धन में मिलाने पर कोशिकाओं द्वारा isoleucine का संश्लेषण रुक जाता है। यह threonine से α-keto-butyrate के विऐमीनीकरण के प्रारम्भिक उपापचयी पद को रुद्ध करके isoleucine के संश्लेषण को रोकता है। अवरोधन की इस क्रिया को पुनर्भरण अवरोध (feedback inhibition) कहते हैं। Isoleucine की अतिरिक्त मात्रा के कारण आनुवंशिक दमन अब कोशिका द्वारा isoleucine के संश्लेषण के लिए उपापचय के विभिन्न एन्जाइम्स का संश्लेषण रोक देता है। आनुवंशिक दमन को Jacob एवम् Monod की परिकल्पना द्वारा समझा जा सकता है। सम्भवतः यहाँ नियामक जीन (regulator gene) एक निष्क्रिय दमनक प्रोटीन या अपदमनक (एपोरिप्रेसर : aporepressor) निर्मित करता है जिसके लिए एक उपापचयज (metabolite), सहदमनक (कोरिप्रेसर : corepressor) की आवश्यकता होती है (isolucine)। सहदमनक (corepressor) अपदमनक (aporepressor) की उपस्थिति के कारण प्रकार्यक हो जाता है और ओपेरेटर को बंधित करके ओपेरॉन का दमन करता है।

Jacob एवम् Monod की परिकल्पना के आधुनिक दृष्टिकोण को निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है :—

1. किसी विशिष्ट एन्जाइम के संश्लेषण का कूट डिऑक्सीराइबोन्यूक्लिओटाइड्स के अनुक्रम के रूप में जीन में संहित रहते हैं।

2. यह अनुक्रम *m*RNA को अनुलेखित हो जाता है।

3. *m*RNA उस राइबोसोम से जुड़ जाता है जिसे tRNA द्वारा विशिष्ट ऐमीनो-अम्ल स्थानान्तरित होते हैं।

4. इस अभिक्रिया का नियन्त्रण *m*RNA संश्लेषण के स्तर पर होता है जो नियामक जीन्स (regulator genes) द्वारा संश्लेषित दमनकों (repressors) द्वारा नियन्त्रित रहता है।

5. दमनक (repressors) नियामक जीन्स (regulator genes) के साथ मिल जाते हैं। ओपेरेटर दमनक (*repressor*) का चयन करके उससे बन्धित हो जाता है। इस समस्त प्रकार्यक यूनिट को ओपेरॉन कहते हैं।

6. अनुमान है कि दमनक में ओपेरेटर को बंधित करने एवम् जीन नियन्त्रण

की क्रिया के नियन्त्रण का सामर्थ्य विशिष्ट छोटे आण्विक यौगिकों, **कार्यकरों** (effectors) पर निर्भर करता है। ये पुनर्भरण प्रणाली के संकेत हैं तथा जीवक्रिया कोशिकीय प्रकार्यकों (cellular functions) से समन्वित होते हैं।

7. उपर्युक्त दशा में कार्यकर (effector) दमनक को उद्दीपित करके प्रोटीन संश्लेषण को अवरोधित करता है अथवा फिर दमनक (repressors) के प्रभाव का अवरोधन करके संगत प्रोटीन के संश्लेपण को प्रेरित करता है।

कोशिका विभाजन
(Cell Division)

प्रश्न 32 किसी जन्तु-कोशिका में समसूत्रण विभाजन का वर्णन कीजिये।

Give an account of mitosis in animal cell.

(*Gorakhpur 1961 ; Agra 57 ; Luck. 65, 66, 70 ; Karnatak 68*)

समसूत्रण विभाजन क्या है ? समसूत्रण विभाजन में गुणसूत्रों के व्यवहार का उल्लेख करिये।

What is mitosis ? Describe in detail the behaviour of chromosomes during mitoic cycle. (*Punjab 1964*)

समसूत्रण विभाजन की विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख कीजिये। समसूत्रण के महत्त्व पर एक नोट लिखिये।

Explain the different stages which take place during mitotic cell division. Add a note on the significance of mitosis.

(*B.H.U. 1961*)

माइटोसिस के बारे में सविस्तार लिखिये। इसके महत्त्व को समझाइये।

Write in detail what you know about mitosis. Discuss its significance. (*Jabalpur 1970*)

प्रत्येक जीवित कोशिका निश्चित आकार धारण करने के पश्चात् विभाजित होती है। कोशिका विभाजन तीन प्रकार का होता है :—

1. असूत्री (Amitosis)—यह कुछ आदिम (primitive) एककोशीय जन्तुओं में ही पाया जाता है।

2. समसूत्री (Mitosis)—समस्त दैहिक कोशिकाएँ इसी विधि द्वारा विभाजित होती हैं।

3. अर्धसूत्री या मीओसिस (Meiosis)—यह विभाजन जनन कोशिकाओं में युग्मक या गैमीट (gametes) बनने के समय होता है।

समसूत्री विभाजन
(Mitosis or Karyokinesis)

'समसूत्री कोशिका विभाजन में केन्द्रक का क्रोमेटिन (chromatin) दो सन्तति कोशिकाओं में बराबर-बराबर बँट जाता है।' वृषण तथा अण्डाशय की कोशिकाओं को छोड़कर शरीर की लगभग सभी कोशिकाएँ इसके द्वारा विभाजित होती हैं। अतः इसे दैहिक कोशिका विभाजन (somatic cell division) भी कहते हैं। पूर्ण विभाजन काल में केन्द्रक बहुत-से जटिल किन्तु सुनिश्चित पदों से गुजरता है। अतः समसूत्री विभाजन का निम्न पदों में अध्ययन किया जा सकता है :—
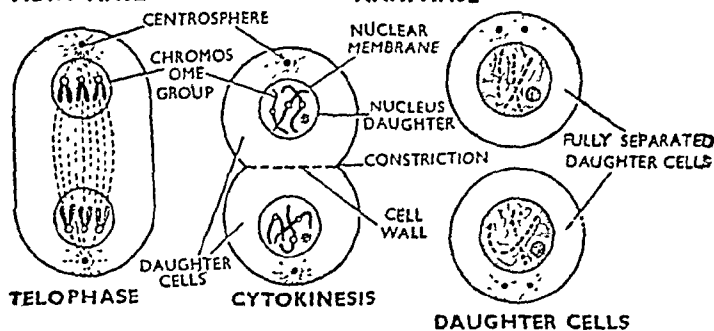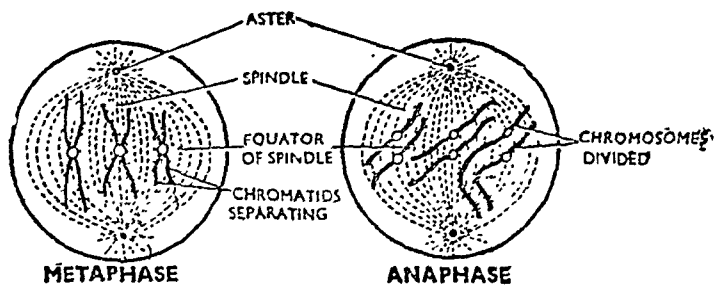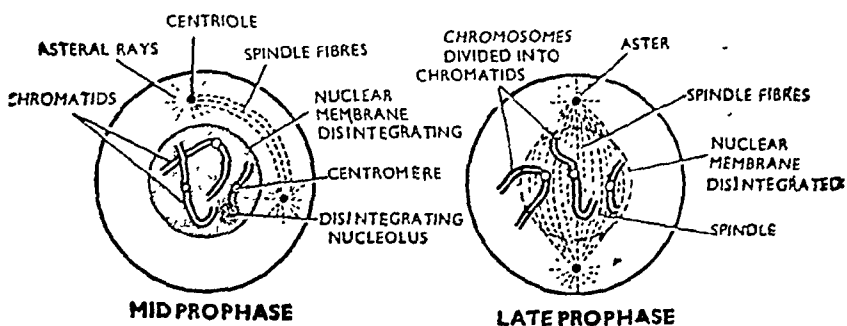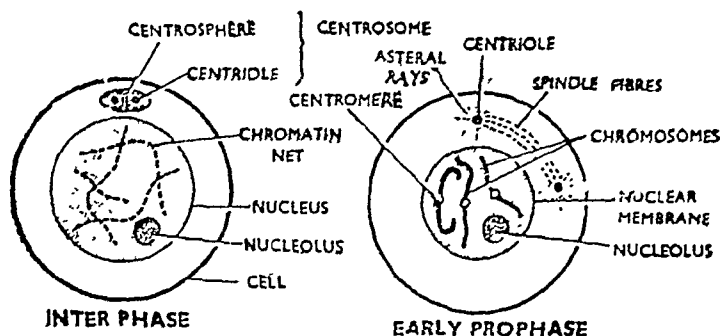
चित्र १४·१. समसूत्री कोशिका विभाजन का चित्रीय निरूपण
(Diagrammatic representation of mitotic cell division)

लेते हैं। स्पिण्डल टूटकर समाप्त हो जाता है। तारा रश्मियाँ लुप्त हो जाती हैं और न्यूक्लिग्रोलस तथा क्रोमोसेण्टर पुनः बन जाते हैं। अन्त में गुण-सूत्रों के चारों ओर केन्द्रक-कला (nuclear membrane) बन जाती है। इस प्रकार एक केन्द्रक से दो सन्तति केन्द्रक (daughter nuclei) बन जाते हैं।

6. द्रव्यपरिवर्तन या साइटोकाइनेसिस (Cytokinesis)—टीलोफेज की अन्तिम अवस्था में कोशिका के मध्य भाग में एक छिछली खाई बननी प्रारम्भ हो जाती है जो धीरे-धीरे गहरी होती जाती है और अन्त में कोशिका-द्रव्य को दो भागों में विभाजित कर देती है। इस भाँति साइटोकाइनेसिस के अन्त में एक कोशिका से दो कोशिकाएँ बन जाती हैं।

समसूत्री विभाजन का महत्त्व (Significance of Mitosis)

1. समसूत्री विभाजन के फलस्वरूप एक कोशिका से दो कोशिकाएँ बनती हैं जो गुण तथा आकार में समान होती हैं।

2. किसी कोशिका के कुल गुणसूत्रों की संख्या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक समान रहती है अर्थात् समसूत्रण में गुणसूत्र अपने विशिष्ट गुणों के साथ दो बराबर भागों में बँट जाते हैं।

3. इस विभाजन द्वारा कोशिकाओं के आनुवंशिक गुण (hereditary characters) सन्तति कोशिकाओं में पहुँच जाते हैं।

4. कोशिका विभाजन से जन्तु आकार में बढ़ते हैं।

प्रश्न 33. समसूत्रण से क्या अभिप्राय है? समसूत्री चक्र में गुणसूत्रों के व्यवहार का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

What is mitosis? Describe in detail the behaviour of chromosomes during mitotic cycle.

समसूत्री विभाजन
(Mitosis)

समसूत्री विभाजन या समसूत्रण विभाजन, विभाजन या पुनरावृत्ति की वह क्रिया है, जिसके अन्तर्गत दैहिक कोशिका दो सन्तति कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है तथा सन्तति कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या मूल कोशिका के समान होती है। इस क्रिया में अनेक जटिल किन्तु नियमित एवम् सुनिश्चित पद होते हैं जिनके अन्तर्गत गुणसूत्रों का व्यवहार एवम् उनमें होने वाले परिवर्तनों में विशिष्टता पायी जाती है। इन परिवर्तनों का निम्नलिखित पदों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है :—

1. विरामावस्था या इण्टरफेज (Interphase)—इण्टरफेज में केन्द्रक विभाजन के लिए तैयारी करता है। इस समय गुणसूत्र एक-दूसरे से गुथे रहते हैं तथा केन्द्रक जालक बनाते हैं। अतः इनको अलग से पहचानना सम्भव नहीं। इस प्रावस्था में DNA न्यूक्लीक अम्लों का संश्लेपण होता है और क्रोमेटिन पदार्थ आयतन में द्विगुणित हो जाता है।

2. पूर्वावस्था या प्रोफेज (Prophase)—इण्टरफेज में DNA संश्लेषण के फलस्वरूप प्रत्येक गुणसूत्र में DNA के चार वलयक हो जाते हैं। प्रत्येक क्रोमेटिड
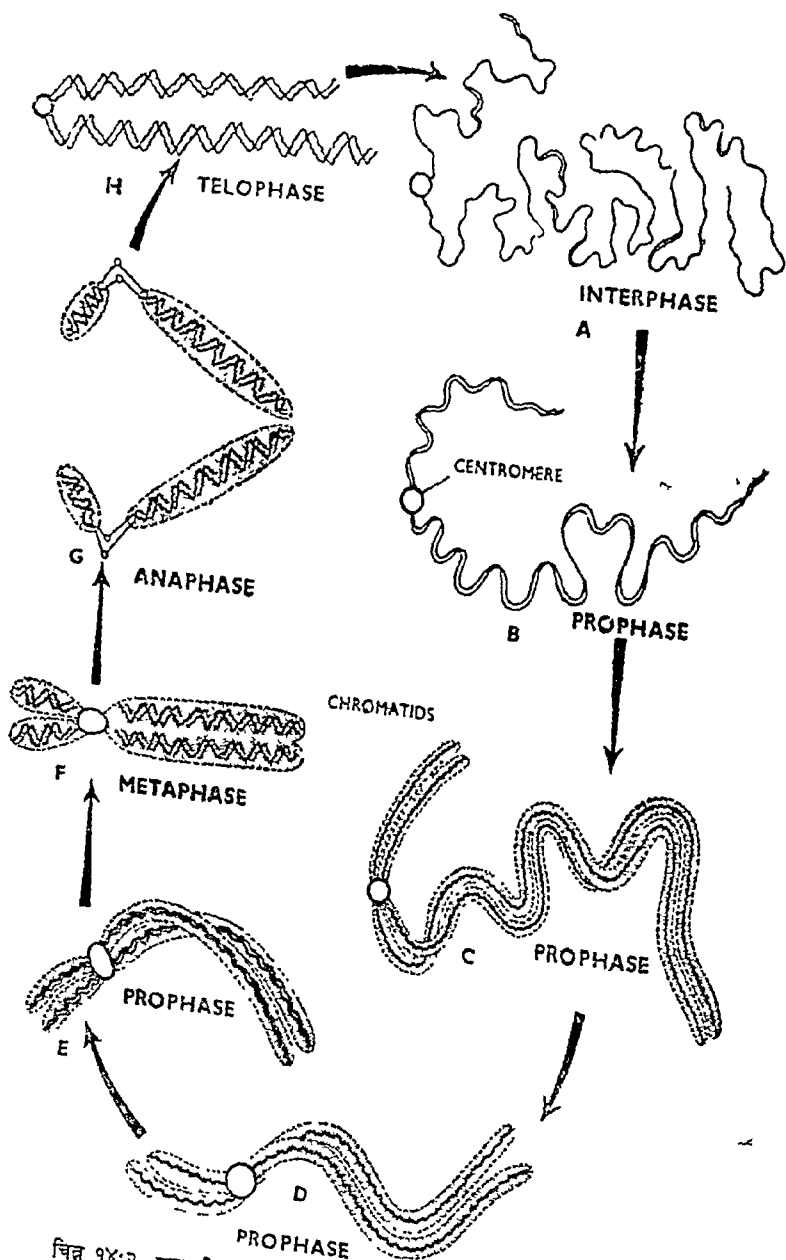
चित्र १४·२. समसूत्री विभाजन के अन्तर्गत गुणसूत्रों में होने वाले परिवर्तन

के दोनों DNA वलयक जो कि पहले अलग-अलग सूक्ष्म चक्रों द्वारा कुण्डलित थे अब संघनित होने लगते हैं और एक-दूसरे के चारों ओर लिपट जाते हैं। गुणसूत्रों का संघनन एक क्रमिक क्रिया है जो प्रोफेज के अन्त तक पूर्ण होती है। संघनन के फलस्वरूप गुणसूत्र छोटे एवम् मोटे हो जाते हैं तथा निश्चित आकृति धारण कर लेते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र में एक माध्यिक लम्बवत् विघटन दृष्टिगत होता है जिसके फलस्वरूप बने दोनों अर्धभाग, युगल **क्रोमेटिड्स** (sister chromatids) कहलाते हैं। प्रोफेज के प्रारम्भ में युगल क्रोमेटिड्स का पृथक्करण अस्पष्ट होता है किन्तु इसके मध्य में ये स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होने लगते हैं। परन्तु इनका सेण्ट्रोमीयर अभी विभाजित नहीं होता। प्रोफेज के अन्तिम काल के गुणसूत्र तर्कु की ओर परिचालित होने लगते हैं, सेण्ट्रियोल्स विमुख ध्रुवों की ओर बढ़ने लगते हैं तथा गुणसूत्र कुछ तर्कु-तन्तुओं से जुड़ जाते हैं।

इस प्रावस्था में गुणसूत्रों के RNA तथा फॉस्फोलिपिड अवयवों में अत्यधिक वृद्धि होती है।

3. मध्यावस्था या मेटाफेज (Metaphase)—इस प्रावस्था में गुणसूत्र मध्यवृत्तीय रेखा पर पहुँचकर अरीय रूप से मध्यवृत्तीय रेखा पर विन्यसित हो जाते हैं। गुणसूत्रों का संघनन पूर्ण हो जाता है तथा प्रत्येक गुणसूत्र के क्रोमेटिड्स एक-दूसरे के समान्तर स्थित हो जाते हैं। अब ये तर्कु-तन्तुओं से जुड़ जाते हैं। इनके सेण्ट्रोमीयर मध्यवृत्तीय रेखा की ओर उन्मुख रहते हैं तथा भुजाएँ मुक्त रूप से कोशिकाद्रव्य में निकली रहती हैं।

अन्त में प्रत्येक गुणसूत्र का सेन्ट्रोमीयर दो सेन्ट्रोमीयर में विभाजित हो जाता है तथा प्रत्येक सन्तति सेण्ट्रीमीयर एक क्रोमेटिड से जुड़ा रहता है।

4. पश्चावस्था या ऐनाफेज (Anaphase)—इस प्रावस्था में सन्तति सेण्ट्रो-मीयर एक-दूसरे से दूर हट जाते हैं तथा क्रोमेटिड्स पृथक् होकर ध्रुवों की ओर खिंचने लगते हैं। ऐनाफेज के समाप्त होने तक क्रोमेटिड समूह अपने-अपने ध्रुव पर पहुँच कर सेण्ट्रियोल्स पर दो अलग-अलग समूह बनाते हैं। पृथक् हुए क्रोमेटिड्स कुण्डलन के पश्चात् नये व्यक्तिगत गुणसूत्र बनाते हैं।

5. अन्त्यावस्था या टीलोफेज (Telophase)—इस प्रावस्था में प्रत्येक समूह के गुणसूत्र फैलकर लम्बे एवम् पतले हो जाते हैं और धागों के समान रचनाएँ बना लेते हैं।

अतः समसूत्री कोशिका विभाजन के अन्तर्गत गुणसूत्रों का द्विलिपिकरण तथा इस प्रकार बने दोनों क्रोमेटिड्स का स्वतन्त्र गुणसूत्रों के रूप में परिवर्तन गुणसूत्रों से सम्बन्धित मुख्य घटनाएँ हैं।

प्रश्न 34. अर्धसूत्री कोशिका-विभाजन का सविस्तार वर्णन कीजिये तथा इसके महत्त्व का उल्लेख करिये।

Give a detailed account of the meiotic type of cell division and explain its significance.

(*Luck. 1957, 63, 65, 71 ; Raj. 62 ; Patna 69 ; Kanpur 68*)

वर्तमान दृष्टिकोण के अनुसार अर्धसूत्री कोशिका विभाजन में होने वाली मुख्य घटनाओं का वर्णन करिये।

Describe the succession of events in meiosis according to recent view. *(Luck. 1955, 63, 65, 71)*

अर्धसूत्री कोशिका-विभाजन के अन्तर्गत गुणसूत्रों के व्यवहार का वर्णन कीजिये। कारण बताइये कि अर्धसूत्री कोशिका-विभाजन केवल जनन-कोशिकाओं में ही क्यों होता है ?

Describe briefly the behaviour of chromosomes during the meiotic division of a cell. How do you explain the occurrence of meiosis only in germ cells ? *(Gorakhpur 1957)*

अर्धसूत्री कोशिका विभाजन
(Meiotic or Reduction Division)

अर्धसूत्री कोशिका विभाजन एक अत्यन्त जटिल प्रकार का कोशिका विभाजन है जो केवल जनन-कोशिकाओं (reproductive cells) में युग्मक या गैमीट बनने के समय होता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप एक कोशिका से चार सन्तति कोशिकाएँ बनती हैं और प्रत्येक सन्तति-कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या पैतृक कोशिकाओं की अपेक्षा आधी होती है। अर्धसूत्री विभाजन की पूर्ण प्रक्रिया को समसूत्री विभाजन के समान ही चार प्रावस्थाओं में बाँटा जा सकता है, किन्तु एक विभाजन में ये प्रावस्थाएँ दो बार दोहराई जाती हैं तथा प्रथम विभाजन की पूर्वावस्था (prophase) अपेक्षाकृत बहुत लम्बी होती है।

प्रथम पूर्वावस्था (First prophase)—प्रत्येक विभाजन की पूर्वावस्था अपेक्षाकृत बहुत लम्बी, परिवर्तित एवम् जटिल होती है। इसको निम्न पाँच अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है :—

(*i*) तनुसूत्रावस्था या लेप्टोटीन (Leptotene stage)
(*ii*) युग्मसूत्रावस्था या जाइगोटीन (Zygotene stage or Synaptotene stage)
(*iii*) स्थूल सूत्रावस्था या पैकीटीन (Pachytene stage)
(*iv*) द्वि-सूत्रावस्था या डिप्लोटीन (Diplotene stage)
(*v*) डायकाइनेसिस (Diakinesis)

(i) तनु-सूत्रावस्था या लेप्टोटीन (Leptotene)—अर्धसूत्रण द्वारा विभाजित होने वाली कोशिका व उसका केन्द्रक अन्य कोशिकाओ की अपेक्षा बड़े होते है। इसमें क्रोमोसोम्स की संख्या द्विगुणित होती है। इस अवस्था में गुणसूत्र लम्बे पतले धागे के समान दृष्टिगत होते है और अनियमित रूप मे जुड़े रहते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र की आकृति मणिमय (beaded) होती है क्योंकि इस पर बहुत-सी दानेदार कणिकाएँ **क्रोमोमियर्स** (chromomeres) लगी रहती है। समसूत्रण विभाजन के समान प्रत्येक गुणसूत्र लम्बाई में बँटा नही रहता किन्तु एक धागे के समान होता है।

(ii) युग्म सूत्रावस्था या जाइगोटीन या साइनेप्टोटीन (Zygotene or synaptotene)—इस अवस्था का प्रारम्भ सजातीय गुणसूत्रों (homologous chromosomes) में आकर्षण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई गति के साथ होता है।

फलस्वरूप एक जोड़ी के दोनों सजातीय गुणसूत्र एक-दूसरे के समीप आकर युग्मित (paired) हो जाते हैं। इस प्रकार बने युग्मित जोड़े को **द्वि-संयोगी** (bivalent) कहते हैं। सजातीय गुणसूत्रों का युग्मन अत्यन्त उचित एवम् ठीक-ठीक क्रिया है, जिसमें दो गुणसूत्रों के बीच युग्मन एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक-एक कणिका या क्रोमोमियर को लेकर होता है।

(iii) स्थूल सूत्रावस्था या पेकीटीन (Pachytene)—पेकीटीन कोशिका-भाजन की स्थिर अवस्था है। इस अवस्था में द्विसंयोगी के दोनों गुणसूत्र सिकुड़कर और भी छोटे तथा मोटे हो जाते हैं और अब अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक द्विसंयोगी के दोनों सजातीय गुणसूत्र एक-दूसरे पर लिपटे रहते हैं और प्रत्येक गुण-सूत्र लम्बवत् दो अर्धसूत्रों (chromatids) में बँटने लगता है, किन्तु विभाजन स्पष्ट नहीं हो पाता।

(iv) द्वि-सूत्रावस्था या डिप्लोटीन (Diplotene)—प्रत्येक गुणसूत्र में अब दो अर्धसूत्र स्पष्ट हो जाते हैं जिससे बाइवेलेण्ट में चार अर्धसूत्र हो जाते हैं। इस समय एक-दूसरे पर लिपटे हुए गुणसूत्र अलग होना प्रारम्भ कर देते हैं, किन्तु ये एक या एक से अधिक स्थानों पर जुड़े रह जाते हैं। इन स्थानों को **किएज्मेटा** (chiasmata) कहते हैं। किएज्मा पर कमजोर अर्धसूत्रों के टूटने एवम् पुन: जुड़ने से सजातीय गुणसूत्रों की अर्धसूत्रों में अदला-बदली हो जाती है। इस क्रिया को पारगति या विनिमय या **क्रासिंग ओवर** (crossing over) कहते हैं।

(v) डायकाइनेसिस (Diakinesis)—इसमें केन्द्रक कला तथा न्यूक्लिओलस (nucleolus) नष्ट हो जाते हैं। अर्धसूत्रों का अलग होना पूर्ण हो जाता है और प्रत्येक अर्धसूत्र और भी अधिक मोटा एवम् स्पष्ट हो जाता है। इससे किएज्मा अर्धसूत्रों के सिरों की ओर पहुँच जाते हैं। साथ ही **केन्द्रक तर्कु** (nuclear spindle) बनकर लगभग तैयार हो जाता है।

2. प्रथम मेटाफेज (First Metaphase)—इस अवस्था में गुणसूत्र तर्कु की मध्य रेखा पर आकर इस प्रकार लगते हैं कि बाइवेलेण्ट के दोनों गुणसूत्रों के सेण्ट्रोमीयर एक-दूसरे की विरुद्ध दिशा में तथा मध्य रेखा से बराबर दूरी पर स्थित होते हैं।

3. प्रथम ऐनाफेज (First Anaphase)—तर्कु के धागों के सिकुड़ने से सजातीय गुणसूत्र अपने-अपने अर्धसूत्रों के साथ विपरीत ध्रुवों की ओर जाने लगते हैं। इससे अगुणित या हैप्लॉयड (haploid) गुणसूत्रों के दो समूह बन जाते हैं, किन्तु प्रत्येक गुणसूत्र में दो अर्धसूत्र होते हैं। एक चतुष्ट (tetrad) के दो डायड (diad) में बँटने की इस क्रिया को **वियोजन** (disjunction) कहते हैं। इसके फलस्वरूप पूर्वावस्था की जाइगोटीन में पास आये गुणसूत्र अलग हो जाते हैं।

4. प्रथम टीलोफेज (First Telophase)—इस अवस्था में गुणसूत्रों के प्रत्येक समूह के चारों ओर एक-एक केन्द्रक-कला बन जाती है। साथ ही कोशिका भी दो भागों में बँट जाती है। इस प्रकार दो कोशिकाएँ बनती हैं और प्रत्येक में सजातीय गुणसूत्र संख्या में एक-एक होते हैं तथा कुल गुणसूत्र पैतृक कोशिका की अपेक्षा संख्या में आधे होते हैं।

5. विरामावस्था (Interphase)—अर्धसूत्रण के फलस्वरूप बनी दोनों
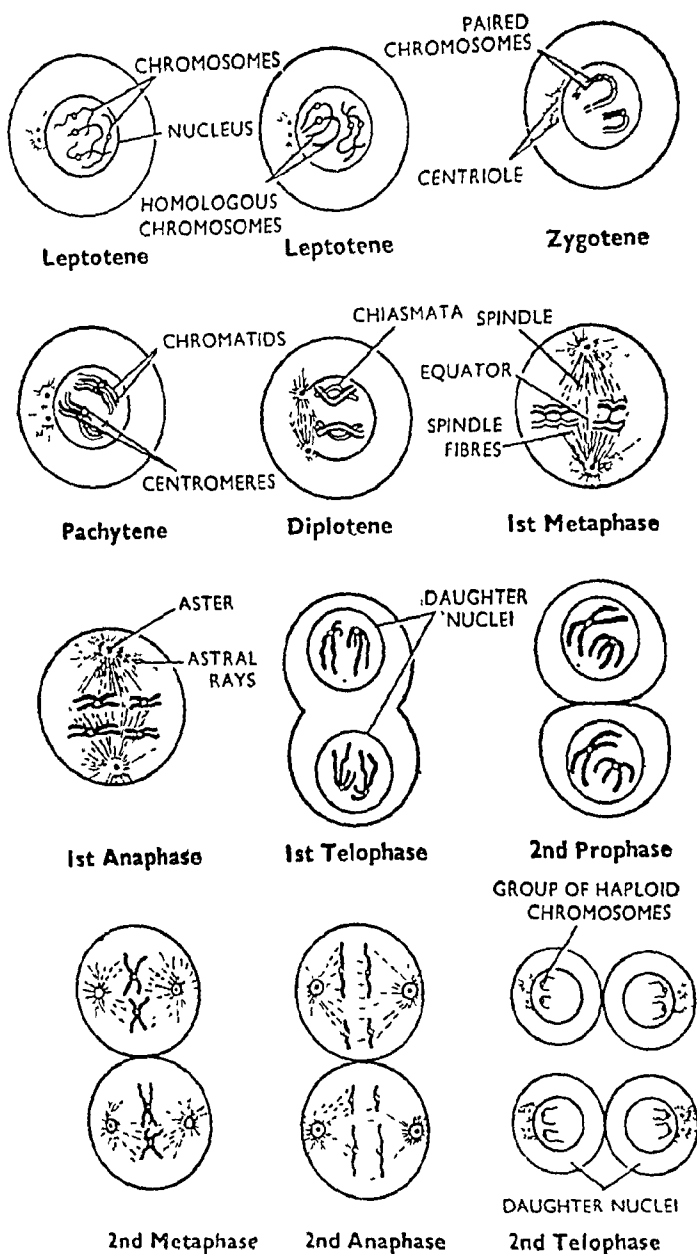
चित्र १४·३. अर्धसूत्री कोशिका-विभाजन का चित्रीय निरूपण (meiosis)

कोशिकाएँ इस अवस्था में विश्राम करती हैं। इसकी अवधि (duration) विभिन्न कोशिकाओं में भिन्न-भिन्न होती है। कभी-कभी विरामावस्था होती नहीं और कोशिकाएँ प्रथम टीलोफेज से द्वितीय प्रोफेज में सीधे ही बिना परिवर्तन के पहुँच

जाती हैं। विरामावस्था में केन्द्रक कला बन जाती है और गुणसूत्र सुलझ कर केन्द्रक बना लेते हैं।

6. द्वितीय प्रोफेज (Second Prophase)—इस अवस्था में दोनों सन्तति कोशिकाओं की केन्द्रक कला नष्ट हो जाती है और तर्कु (spindle) बनना प्रारम्भ हो जाता है। साथ ही अर्धसूत्र स्पष्ट हो जाते हैं।

7. द्वितीय मेटाफेज (Second Metaphase)—प्रत्येक गुणसूत्र के दोनों क्रोमेटिड इतने स्पष्ट हो जाते हैं कि वे अब केवल सेन्ट्रोमीयर द्वारा जुड़े हुए दृष्टिगत होते हैं तथा एक-दूसरे के समान्तर होते हैं। अब ये तर्कु की मध्य रेखा की ओर बढ़ना आरम्भ कर देते हैं और अन्त में मध्य रेखा पर व्यवस्थित हो जाते हैं।

8. द्वितीय ऐनाफेज (Second Anaphase)—प्रत्येक गुणसूत्र का सेन्ट्रोमीयर दो भागों में बँट जाता है जिससे उसके दोनों अर्ध-सूत्र दो स्वतन्त्र गुणसूत्र बना लेते हैं। ये अब तर्कु के भागों के सिकुड़ने से ध्रुवों की ओर जाने लगते हैं।

9. द्वितीय टीलोफेज (Second Telophase)—ध्रुव पर पहुँचकर गुणसूत्र सुलझ जाते हैं तथा उनके चारों ओर केन्द्रक कला बन जाती है जिससे प्रत्येक कोशिका में पुनः दो केन्द्रक बन जाते हैं। इसके साथ ही कोशिका कला बनने से प्रत्येक कोशिका एक बार दो कोशिकाओं में बँट जाती है।

इस प्रकार अर्धसूत्री विभाजन के पूर्ण होने से एक कोशिका से चार सन्तति कोशिकाओं का निर्माण होता है तथा प्रत्येक सन्तति कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या पैतृक कोशिका में पाये जाने वाले गुणसूत्रों की अपेक्षा आधी होती है।

अर्धसूत्रण का महत्त्व (Significance of Meiosis)

(*i*) लैंगिक विधि द्वारा जनन करने वाले जन्तुओं के जीवन-इतिहास में अर्धसूत्रण एक महत्त्वपूर्ण एवम् तर्कसंगत कदम है। इसके द्वारा जन्तु की दैहिक कोशिकाओं (somatic cells) में गुणसूत्रों की संख्या पीढ़ी-दर पीढ़ी समान रह पाती है।

(*ii*) अर्धसूत्रण के फलस्वरूप एक डिप्लॉयड कोशिका से चार हैप्लॉयड कोशिकाएँ बनती हैं जो युग्मक (gametes) बनाती हैं। फलस्वरूप प्रत्येक युग्मक में गुणसूत्रों की संख्या पैतृक कोशिका की अपेक्षा आधी होती है। निषेचन के समय एक नर तथा एक मादा युग्मक समेकित हो जाते हैं जिससे कि जाइगोट में गुणसूत्रों की संख्या पुनः दुगनी (diploid) हो जाती है। अतः अर्धसूत्रण एक ऐसा पग है जिससे युग्मकों के मिलने से बने जाइगोट में गुणसूत्रों की संख्या वही रहती है जो उस जन्तु के शरीर की किसी भी कोशिका में होती है तथा जाइगोट से बने जन्तु में भी गुणसूत्र उसी संख्या में होते हैं। अतः अर्धसूत्रण निषेचन के फलस्वरूप गुणसूत्रों की संख्या को बढ़ने से रोकता है और इस प्रकार जाति की विशेषता को बनाये रखता है।

(*iii*) अर्धसूत्रण की क्रिया में क्रॉसिंग ओवर (crossing over) होता है जिसके फलस्वरूप सजातीय गुणसूत्रों के अर्ध-सूत्रों में अदला-बदली हो जाती है जिससे मातृ तथा पितृ गुणों का पुनः संयोग हो जाता है और आनुवंशिक गुणों के नये-नये संयोग बनते हैं। अतः अर्धसूत्रण के फलस्वरूप बने हुए सभी युग्मक समान नहीं होते, जिनमें जीन्स (genes) के नये-नये संयोग होते हैं तथा इससे जन्तुओं के विकास क्रम में सहायता मिलती है।

प्रश्न 35. अर्धसूत्री कोशिका-विभाजन को प्रदर्शित करने के लिए नामांकित चित्र बनाइये। यह समसूत्री विभाजन से किस प्रकार भिन्न होता है ?

Draw labelled diagrams to show the meiotic type of cell division. In what essential features does this differ from the mitotic type of cell division ? *(Luck. 1964 ; Madras 66, 68)*

समसूत्री एवम् अर्धसूत्री कोशिका विभाजन की तुलना कीजिये।

Compare mitosis and meiosis. *(Meerut 1967 ; Kerala 73)*

समसूत्री विभाजन (*Mitosis*)	अर्धसूत्री कोशिका विभाजन (*Meiosis*)
1. समसूत्री विभाजन जन्तु की समस्त दैहिक कोशिकाओं (somatic cells) में होता है।	1. अर्धसूत्री कोशिका विभाजन केवल जनन कोशाओं (reproductive cells) में युग्मकों के बनते समय होता है।
2. विभाजन की पूरी क्रिया एक ही क्रम में पूरी हो जाती है।	2 यह दो उत्तरोत्तर विभाजनों में पूर्ण होती है। समसूत्रण में होने वाली प्रावस्थाएँ अर्ध-सूत्री विभाजन में दो बार दोहराई जाती हैं।
3. इसमें केवल समरूप अथवा समसूत्री विभाजन ही होता हैं।	3. प्रथम विभाजन विषमरूप (heterotypic) अथवा ह्रास विभाजन (reduction division) होता है। द्वितीय कोशिका विभाजन समरूप (homeotypic) अथवा समसूत्री विभाजन (mitotic division) होता है।
पूर्वावस्था या प्रोफेज (Prophase)	
4. प्रोफेज के पूर्ण होने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है और यह प्रावस्थाओं में भिन्नित नहीं होती।	4. प्रथम प्रावस्था अपेक्षाकृत काफी अधिक समय में पूर्ण होती है और यह लेप्टोटीन, जाइगोटीन, पैकीटीन, डिप्लोटीन तथा डायकाइनेसिस आदि अवस्थाओं में भिन्नित होती है।
5. गुणसूत्र (chromosomes) लम्बवत् दो भागों में बँट जाता है जिसमें दो पतले धागों के समान अर्धसूत्र या क्रोमेटिड (chromatids) होते हैं।	5. पूर्वावस्था या प्रोफेज के आरम्भ में गुण-सूत्र लम्बाई में बँटा नहीं होता किन्तु एक धागे के समान होता है।
6. इसमें गुणसूत्र जोड़े नहीं बनाते।	6. इसमें सजातीय गुणसूत्र एक दूसरे के समीप आकर युग्मित हो जाते हैं।
7. क्रोमेटिड्स plectonemic क्रम में कुण्डलित होते हैं।	7. प्रत्येक युग्मित जोड़े के गुणसूत्र paranemic क्रम में एक-दूसरे के चारों ओर लिपटे रहते हैं।
8. गुणसूत्रों का दोहरा होना (doubling) प्रोफेज की प्रारम्भिक अवस्था में पूर्ण हो जाता है।	8. गुणसूत्र का दोहरा होना प्रोफेज की पैकीटीन (pachytene) अवस्था में होता है।

समसूत्री विभाजन (*Mitosis*)	अर्धसूत्री कोशिका विभाजन (*Meiosis*)
9. इसमें गुणसूत्रों का विनिमय या क्रॉसिंग ओवर (crossing over) नहीं होता।	9. इसमें गुणसूत्रों का विनिमय या क्रॉसिंग ओवर तथा किएज्मेटा (chiasmata) का निर्माण पैकीटीन प्रावस्था में होता है जिसके अन्तर्गत सजातीय गुणसूत्रों (homologous chromosomes) के अर्धसूत्रों (chromatids) में अदला-बदली होती है।
10. न्यूक्लिओलस (nucleolus) एवम् केन्द्रक-कला (nuclear membrane) प्रोफेज के समाप्त होते-होते लुप्त हो जाते हैं तथा मध्यावस्था में तर्कु (spindle) का निर्माण पूर्ण हो जाता है।	10. न्यूक्लिओलस एवम् केन्द्रक-कला प्रोफेज के अन्तिम क्षणों (डायकाइनेसिस) में लुप्त होती हैं तथा तर्कु का निर्माण पूर्ण हो जाता है।
मध्यावस्था या मेटाफेज (Metaphase)	
11. इस प्रावस्था में प्रत्येक गुणसूत्र द्वयक (dyad) होता है और इसमें दो अर्धसूत्र (chromatids) होते हैं।	11. इसमें गुणसूत्र चतुष्टक (tetrad) के रूप में होते हैं। प्रत्येक चतुष्टक में चार अर्धसूत्र होते हैं।
12. प्रत्येक द्वयक के सेण्ट्रोमीयर्स (centromeres) मध्यवृत्तीय पट्टी (equatorial plate) पर तथा भुजाएँ छोरों की ओर उन्मुख होती हैं।	12 चतुष्टक मध्यवृत्तीय पट्टी पर इस प्रकार विन्यसित होते हैं कि उनके सेण्ट्रोमीयर्स ध्रुवों की ओर मध्यवृत्तीय पट्टी से समान दूरी पर स्थित होते हैं तथा इसकी भुजाएँ मध्यवृत्तीय पट्टी की ओर होती हैं।
13. प्रत्येक द्विसंयोजी (bivalent) में सेण्ट्रोमीयर्स दो में विभाजित हो जाता है और द्वयक (dyads) अलग हो जाते हैं।	13. इसमें सेण्ट्रोमीयर विभाजित नहीं होते किन्तु सजातीय गुणसूत्र द्वयकों में अलग हो जाते हैं।
पश्चावस्था या एनाफेज (Anaphase)	
14. पश्चावस्था में अलग हुए गुणसूत्र एकल होते हैं।	14. इसमें गुणसूत्र द्विसंयोजी (bivalent) होते हैं तथा प्रत्येक में दो अर्धसूत्र (chromatids) होते हैं।
15. गुणसूत्र अपेक्षाकृत लम्बे एवम् कम मोटे होते हैं।	15. गुणसूत्र छोटे तथा काफी मोटे होते हैं।
अन्त्यावस्था या टीलोफेज (Telophase)	
16. प्रत्येक समसूत्री विभाजन में अन्त्यावस्था या टीलोफेज अवश्य होती है तथा इसके पश्चात् द्रव्य-परिवर्तन या साइटोकाइनेसिस (cytokinesis) की क्रिया होती है।	16. अर्धसूत्री कोशिका विभाजन में अन्त्यावस्था का होना आवश्यक नहीं क्योंकि कभी-कभी केन्द्रक पश्चावस्था से सीधा द्वितीय पूर्वावस्था (second prophase) में प्रवेश कर जाता है।

समसूत्री विभाजन (*Mitosis*)	अर्धसूत्री कोशिका विभाजन (*Meiosis*)
17. समसूत्री विभाजन के फलस्वरूप प्रत्येक कोशिका से दो कोशिकाएँ बनती हैं।	17. इसमें प्रत्येक कोशिका से चार कोशिकाएँ बनती हैं।
18. इस प्रकार बनी सन्तति कोशिकाएँ द्विगुणित (diploid) होती हैं और इनमें गुणसूत्रों की संख्या मातृ-कोशिका के समान होती है।	18. इसमें सन्तति कोशिकाएँ अगुणित (haploid) होती है, अतः प्रत्येक सन्तति कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या मातृ-कोशिका की अपेक्षा आधी होती है।
19. सन्ततिकोशिकाएँ एक-दूसरे के तथा मातृ-कोशिका के समान होती हैं।	19. सन्तति कोशिकाएँ एक दूसरे से तथा मातृ-कोशिका से भिन्न होती हैं।

प्रश्न 36. आप कितने प्रकार के कोशिका विभाजनों से परिचित है ? किसी प्राणी की जनन कोशिकाओं में होने वाली क्रिया का वर्णन कीजिये।

How many types of cell divisions you are familiar with ? Give details of the type which occurs in the germ cells of an animal.

(*Agra 1969*)

प्राणि-जगत् में जन्तुओं के जीवन-चक्र की निश्चित अवस्थाओं मे मुख्य रूप से दो प्रकार की विभाजन क्रियाएं—समसूत्री तथा अर्धसूत्री होती है, किन्तु कुछ आदिम जन्तुओं, जैसे *अमीबा* आदि में **असूत्री कोशिका विभाजन** (amitotic cell division) भी होता है। जनन कोशिकाएँ अर्धसूत्री विभाजन द्वारा लैंगिक कोशिकाएँ बनाती हैं।

अर्धसूत्री विभाजन (Meiosis)

कृपया प्रश्न 34 देखिये।

प्रश्न 36. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिये :—

(a) कोशिका विभाजन की प्रेरणा का स्रोत क्या है,
(b) ATP ऊर्जा का स्रोत है,
(c) समसूत्री एनाफेज, अर्धसूत्री एनाफेज से किस प्रकार भिन्न है,
(d) असेचन जनन वन्ध्यता से बचने का एक साधन है, तथा
(e) कोशिका किस प्रकार अपने आनुवंशिक लक्षणों को वंशागत करती है ?

Explain the following :
(a) What makes the cell divide,
(b) ATP is the reservoir of energy,
(c) How mitotic anaphase differs from meiotic anaphase,
(d) Parthenogenesis is an escape from sterility, and
(e) How does a cell pass its traits ? (*Agra 1969 ; Meerut 69*)

(a) **कोशिका विभाजन की प्रेरणा का स्रोत क्या है ?**

यह एक स्वाभाविक प्रश्न है कि कोशिका किस प्रकार विभाजन के लिए प्रेरित होती है तथा कभी-कभी विभाजित होती हुई कोशिकाओं में विभाजन बीच में ही

क्यों रुक जाता है ? अगर हम किसी स्वच्छन्द कोशिका के रूप में एककोशिकीय जीव अमीबा को लें तो हम देखते हैं कि यह भोजन ग्रहण करके वृद्धि करता है और एक निश्चित आकार पर पहुँचकर विभाजन करता है। इसके विपरीत अगर अमीबा को भूखा रखा जाये तो यह सिकुड़ जाता है और इसमें विभाजन रुक जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कोशिका विभाजन द्वारा कोशिकाद्रव्य एवम् केन्द्रक पदार्थ की मात्रा में एक स्थायी अनुपात बनाये रखा जाता है। इससे स्पष्ट है कि कोशिका-विभाजन की क्रिया न्यूक्लिओप्लाज्म की मात्रा द्वारा नियन्त्रित रहती है। इसकी व्याख्या इस तथ्य द्वारा भी की जा सकती है कि केन्द्रक कोशिका की विभिन्न क्रियाओं का नियमन करता है किन्तु यह कोशिकाद्रव्य की एक निश्चित मात्रा का नियमन ही दक्षता से कर सकता है, इसकी अतिरिक्त मात्रा का नहीं।

विभाजन प्रारम्भ करने के लिए कोशिका को ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट्स के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विभाजन की ओर अग्रसर होने वाली कोशिका अपने कोशिका-द्रव्य में विभाजन से पूर्व कार्बोहाइड्रेट्स को संचित कर लेती है। अतः वे कारक जो कोशिका को ऊर्जा प्रदान करने वाले खाद्य पदार्थों को संग्रह करने के लिए प्रेरित करते हैं, कोशिका को विभाजन के लिए भी उत्प्रेरित करते हैं। किन्तु अभी भी कोशिका विभाजन को प्रेरित करने वाले निश्चित स्रोतों का पूर्ण ज्ञान नहीं है।

(b) ATP ऊर्जा का स्रोत है

समस्त जीवों में खाद्य पदार्थों में संचित स्थितिज ऊर्जा को विमुक्त करने एवम् उसे गतिज ऊर्जा में परिवर्तित करने के लिए क्रियाएँ अवश्य होती रहती हैं। विमुक्त हुई ऊर्जा उन प्रक्रियाओं में तुरन्त उपयोग में आ जाती है जिनके पूर्ण होने में ऊर्जा आवश्यक होती है। किन्तु एक पूर्ण पोषित जीव में खाद्य पदार्थों के विघटन से उत्पन्न ऊर्जा समस्त शारीरिक क्रियाओं की पूर्ति में उपभोग में आने वाली ऊर्जा की मात्रा की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। अतः आवश्यकता से अधिक ऊर्जा विशेष कार्बनिक यौगिकों में परिवर्तित कर ली जाती है। कार्बनिक फॉस्फेट यौगिकों में PO_4 समूह ऊर्जा युक्त बॉण्डों द्वारा जुड़े रहते हैं और विघटित होने पर अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा निष्कासित करते हैं।

इन ऊर्जा के आगार फॉस्फेट युक्त कार्बनिक यौगिकों में से सर्वाधिक प्रमुख एवम् महत्त्वपूर्ण यौगिक एडिनोसिन ट्राइफॉस्फेट (adenosine triphosphate—ATP) कहलाता है। यह तीन फॉस्फेट समूह वाला यौगिक है। इसके फॉस्फेट बॉण्ड ऊर्जा के आगार होते हैं। ATP*ase* एन्जाइम की उपस्थिति में इसका तीसरा अथवा अन्तिम फॉस्फेट बॉण्ड टूट जाता है जिससे 12,000 कैलोरी ऊर्जा उत्पन्न होती है तथा ATP एडिनोसिन डाइफॉस्फेट (adenosine diphosphate—ADP) में अवकृत हो जाता है।

$$\text{ATP} \xrightarrow{\text{ATPase}} \text{ADP} + \text{P} + \text{energy (12,000 cal.)}$$
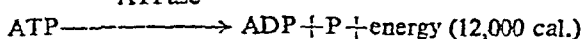
ATP $\rightleftharpoons$ ADP परिवर्तन की क्रिया प्रतिवर्ती होती है। किसी कार्बनिक स्रोत से ऊर्जा मिलने पर ADP पुनः ATP में बदल जाता है और स्वतन्त्र ऊर्जा देने के लिए तैयार रहता है। अतः

$$\text{ADP} + \text{P} + \text{energy (12,000 cal.)} \rightarrow \text{ATP}$$
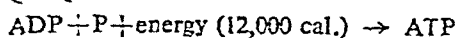
ATP को स्वतन्त्र ऊर्जा संग्राहक कहा जा सकता है क्योंकि कोशिका में

समय पर उत्पन्न होने वाली ऊर्जा ATP में संग्रहित कर ली जाती है जो आवश्यकतानुसार विभिन्न चयापचय क्रियाओं के लिए सरलता से प्राप्त हो जाती है।

शरीर में होने वाली विभिन्न क्रियाओं जैसे प्रोटीन अथवा कार्बोहाइड्रेट संश्लेषण, पेशी संकुचन तथा अन्य कोशिकीय क्रियाओं पर किये गये प्रयोगों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ATP ऊर्जा संग्राहक है।

पेशी संकुचन की क्रिया द्वारा ATP के ऊर्जा संचायक तथा ऊर्जा प्रदायक होने की सत्यता पर प्रकाश डाला जा सकता है। पेशी संकुचन क्रिया में **एडिनोसिन ट्राइफास्फेट** (ATP) तथा **क्रीयेटिन फास्फेट** (creatine phosphate) नामक पदार्थ ऊर्जा प्रदान करते है। संकुचन क्रिया प्रारम्भ होने पर ATP, ADP में बदल जाता है और 12,000 cal. ऊर्जा स्वतन्त्र करता है। यह ऊर्जा संकुचन के समय उपयोग में आती है। ADP क्रियेटीन फास्फेट से PO_4 तथा ऊर्जा लेकर पुन: ATP में परिवर्तित हो जाता है।

(c) समसूत्री ऐनाफेज तथा अर्धसूत्री ऐनाफेज में भिन्नताएँ

कृपया प्रश्न 35 देखिये।

(b) असेचन जनन बन्ध्यता से बचने का एक साधन है

अनिपेचित अण्डे अर्थात् बिना शुक्राणु के समेकन के अण्डे के वर्धन को **असेचन जनन** कहते हैं। अत: असेचन जनन को लैंगिक जनन का रूपान्तरित स्वरूप कहा जा सकता है। असेचन जनन दो प्रकार का हो सकता है :—

(*i*) **अगुणित असेचन जनन** में अण्डजनन के फलस्वरूप बना अण्डा शुक्राणु से समेकन किये बिना ही भ्रूण में वर्धित हो जाता है। यह क्रिया शुक्राणु के न मिलने पर ही होती है। (*ii*) **द्विगुणित असेचन जनन** को सामान्य लैंगिक प्रजनन विधि से थोड़ा-सा विस्थापित माना जा सकता है। इसमें या तो अर्धसूत्री विभाजन नहीं हो पाता या ध्रुवकाय अण्डे से समेकित हो जाती है। जन्तु के जीनोटाइप अथवा पर्यावरण के प्रभाव के कारण अर्धसूत्री विभाजन बीच में अवरुद्ध हो सकता है। दो असमान जीनोटाइप वाली जातियों के संकरों के गुणसूत्रों मे युग्मन न होने के कारण अर्धसूत्री विभाजन नहीं हो पाता। अत: इन संकरों में गैमीट निर्माण का प्रश्न ही नही उठता और इनमें लैंगिक विधि द्वारा प्रजनन हो ही नही सकता। इन संकरों की जाति तभी बनी रह सकती है और वृद्धि कर सकती है जबकि ये असेचन जनन द्वारा प्रजनन प्रारम्भ कर दें। शहद की मक्खी एवम् ततैयों में जहाँ असेचन जनन तथा लैंगिक जनन में एकान्तरण पाया जाता है, असेचन जनन को जलवायु का प्रभाव माना जा सकता है।

इसी प्रकार अगुणित असेचन जनन द्वारा अगुणित जीवों की जाति में भी प्रजनन हो सकता है और वे अपनी जाति स्थिर बनाये रख सकते है। इनमें लैंगिक जनन नहीं हो सकता क्योंकि इनमें गुणसूत्रों के केवल एक सैट के उपस्थित होने के कारण गुणसूत्रों में युग्मन एवम् गैमीट निर्माण नहीं हो सकता और गैमीट न बनने पर लैंगिक जनन का प्रश्न ही नही उठता। अत: इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि असेचन जनन जनन-चक्र में एक प्रकार का अनुकूलन है जिससे जाति की अविच्छिन्नता को बनाये रखा जा सकता है तथा जहाँ और जब लैंगिक प्रजनन सम्भव नहीं होता, इस विधि का सहारा लिया जा सकता है।

प्रश्न 37. प्राणि कोशिका की संरचना एवम् समसूत्री विभाजन का वर्णन कीजिये।

Describe the structure and mitotic division of animal cell.

(*Meerut 1973*)

प्राणि कोशिका की रचना
(Structure of Animal Cell)

कृपया प्रश्न 6 देखिये।

समसूत्री कोशिका विभाजन
(Mitotic Cell Division)

कृपया प्रश्न 32 देखिये।

अध्याय 15

जनन
(Reproduction)

युग्मकजनन या गैमीटोजेनेसिस (Gametogenesis)

प्रश्न ३८. शुक्राणु की परिपक्वन क्रिया एवम् इसके महत्त्व का वर्णन कीजिये।

Describe the process of maturation of sperm and its significance.

स्परमेटिड्स के शुक्राणुओं में रूपान्तरण का उल्लेख करिये।

Describe the metamorphosis of spermatids into spermatozoa. *(Karnatak 1972)*

शुक्राणुजनन का उल्लेख करिये।

Describe spermatogenesis. *(Jiwaji 1972)*

शुक्राणुजनन (Spermatogenesis)

नर-जन्तु के वृषण की जनन-कोशिकाओं के परिपक्वन की विधि को शुक्राणु-जनन (spermatogenesis) कहते हैं। इसके फलस्वरूप शुक्राणुओं का निर्माण होता है। इस पूर्ण क्रिया को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. गुणन प्रावस्था (Multiplication phase)
2. वृद्धि प्रावस्था (Growth phase)
3. परिपक्वन प्रावस्था (Maturation phase)

1. गुणन प्रावस्था (Multiplication phase)—वृषण की शुक्रजनन नलिकाओं (seminiferous tubules) को आस्तारित करने वाली जर्मिनल एपिथीलियम (germinal epithelium) की प्रारम्भिक जनन-कोशिकाएँ (primordial germ cells) **प्राथमिक जनन कोशिकाएँ** (primary germ cells) कहलाती हैं। गुणन अवस्था में प्राथमिक जनन कोशिकाएँ समसूत्री विभाजन द्वारा बार-बार विभाजित होती हैं जिससे बहुत-सी कोशिकाएँ बन जाती हैं। विभाजन के फलस्वरूप बनी ये कोशिकाएँ शूक्राणु कोशिकाजन या स्परमेटोगोनिया (spermatogonia) कहलाती हैं। प्रत्येक स्परमेटोगोनिया में गुणसूत्रों की संख्या 2N होती है।

2. वृद्धि प्रावस्था (Growth phase)—इस प्रकार बनी स्परमेटोगोनिया पोषक पदार्थ एकत्रित करके आकार में बढ़ती जाती हैं। पूर्ण परिपक्व स्परमेटोगोनिया प्राथमिक शुक्राणु कोशिका या **प्राइमरी स्परमेटोसाइट** (primary spermatocyte) कहलाती हैं।

3. परिपक्वन प्रावस्था (Maturation phase)—प्रत्येक प्राथमिक शुक्राणु कोशिका (primary spermatocyte) में पहला परिपक्वन विभाजन (first maturation division) होता है। यह अर्ध-सूत्री विभाजन (reduction division) होता है जिसके फलस्वरूप दो कोशिकाएँ बनती हैं। प्रत्येक कोशिका के गुणसूत्रों

की संख्या प्राइमरी स्परमेटोसाइट की अपेक्षा आधी होती है। इस प्रकार बनी दोनों कोशिकाएँ **द्वितीयक शुक्रांणु कोशिकाएँ** (secondary spermatocytes) कहलाती हैं। कुछ समय पश्चात् प्रत्येक सेकेण्डरी स्परमेटोसाइट पुनः विभाजित होता है किन्तु यह विभाजन समसूत्री (mitotic) होता है। यह **द्वितीयक परिपक्वन विभाजन** (secondary maturation division) कहलाता है। इस प्रकार एक स्परमेटो-गोनिया से चार कोशिकाएँ बनती हैं। ये **पूर्व-शुक्राणु** या स्परमेटिड (spermatids) कहलाती हैं। इनमें गुणसूत्रों की संख्या आधी होती है। अन्त में प्रत्येक पूर्व-शुक्राणु में रूपान्तरण (metamorphosis) होता है। इससे गोल पूर्व-शुक्राणु कोशिकाएँ लम्बी हो जाती हैं और इनके पिछले सिरों पर पूँछ के समान रचना बन जाती है
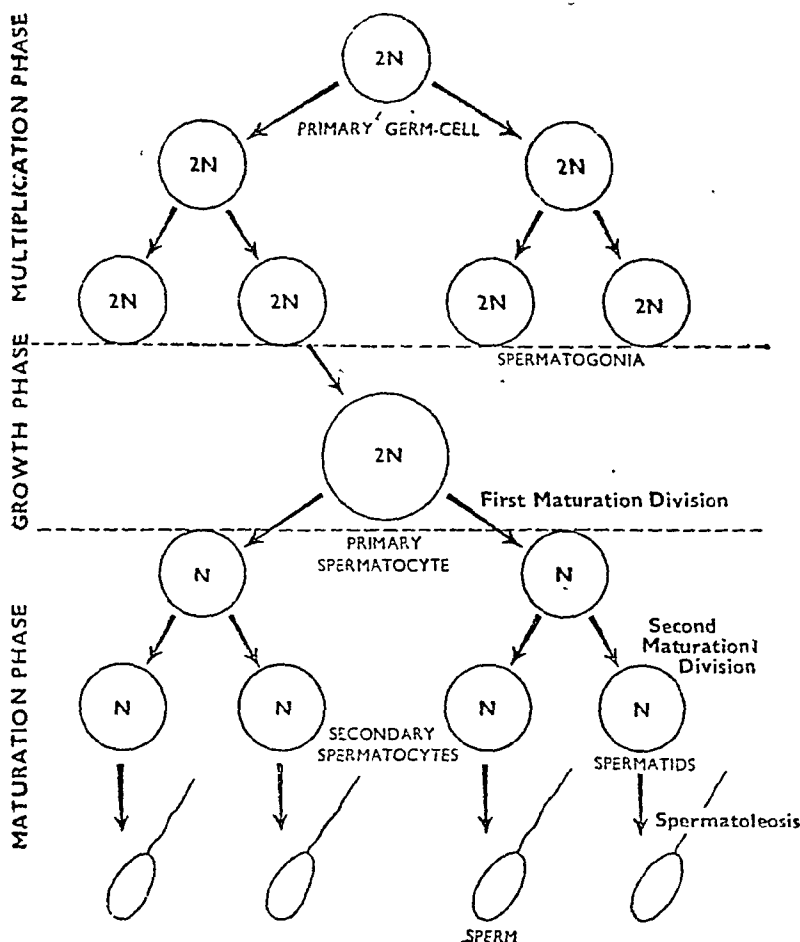
चित्र १५·१. शुक्राणु-जनन (Spermatogenesis)

जिससे ये सरलता से तैर सकें। इस प्रकार बनी रचनाएँ शुक्राणु (spermatozoa) कहलाती हैं।

शुक्राणु-जनन का महत्त्व (Significance of Spermatogenesis)

शुक्राणु-जनन के फलस्वरूप बने शुक्राणुओं में गुणसूत्रों की संख्या पैतृक

कोशिकाओं से आधी होती है ; अतः शुक्राणु-जनन कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या को कम करने में सहायता करता है। इसके फलस्वरूप एक कोशिका से चार शुक्राणुओं का निर्माण होता है।

प्रश्न 39. अण्डजनन की क्रिया का वर्णन कीजिये।

Describe the process of Oogenesis. *(Nagpur 1967)*

अण्डजनन (Oogenesis)

मादा जन्तुओं के अण्डाशय को आस्तारित करने वाली जर्मिनल एपिथीलियम (germinal epithelium) की जनन-कोशिकाओं की परिपक्वन प्रक्रिया को अण्ड-जनन (oogenesis) कहते हैं। इसके फलस्वरूप एक कोशिका से एक डिम्ब या अण्डा (ovum) बनता है जिसमें गुणसूत्रों की संख्या जनन-कोशिकाओं से आधी होती है। अण्डजनन की पूर्ण प्रक्रिया को तीन प्रावस्थाओं में बांटा जा सकता है :—

1. गुणन प्रावस्था (Multiplication phase)
2. वृद्धि प्रावस्था (Growth phase)
3. परिपक्वन प्रावस्था (Maturation phase)

1. गुणन प्रावस्था (Multiplication phase)—अण्डाशय को आस्तारित करने वाली **प्रारम्भिक जनन कोशिकाएँ** (primary germ cells) समसूत्रण विभाजन द्वारा विभाजित होकर संख्या में बढ़ती हैं। इस प्रकार बनी कोशिकाएँ **ऊगोनिया** (oogonia) कहलाती हैं।

2. वृद्धि प्रावस्था (Growth phase)—गुणन अवस्था में बनी ऊगोनिया पोषक पदार्थ एकत्रित करके आकार में बढ़ती हैं। निश्चित आकार ग्रहण करने के पश्चात् ये विभाजन के लिए तैयार हो जाती हैं। प्रत्येक कोशिका अब **प्राथमिक डिम्ब कोशिका** (primary oocyte) कहलाती है।

3. परिपक्वन प्रावस्था (Maturation phase)—प्राथमिक डिम्ब-कोशिका में प्रथम परिपक्वन विभाजन (first maturation division) होता है। यह विभाजन अर्धसूत्री (meiotic) होता है। इसके फलस्वरूप गुणसूत्र दो बराबर समूहों में बँट जाते हैं और दो अलग-अलग कोशिकाओं में चले जाते हैं। इनमें से प्रत्येक में गुणसूत्रों की संख्या आधी होती है। इनमें से एक कोशिका छोटी होती है तथा **प्रथम ध्रुव कोशिका** (first polar body or first polocyte) कहलाती है। बड़ी कोशिका **द्वितीयक डिम्ब कोशिका** (secondary oocyte) होती है। उत्तर-पूर्व डिम्ब कोशिका में द्वितीय परिपक्वन विभाजन (second maturation division) होता है। यह विभाजन समसूत्री होता है। इसके फलस्वरूप भी एक छोटी कोशिका द्वितीयक डिम्ब-कोशिका से अलग होती है। यह छोटी कोशिका **द्वितीय ध्रुव कोशिका** (second polocyte) कहलाती है तथा बड़ी कोशिका प्रौढ़ अण्डा (mature ovum) बनाती है। प्रथम ध्रुव-कोशिका भी कभी-कभी दो कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है। तत्पश्चात् ध्रुव-कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं।

अण्डजनन का महत्त्व (Significance of oogenesis)—अण्डजनन के फलस्वरूप बने अण्डों के गुणसूत्रों की संख्या पैतृक कोशिका या प्रथम जनन-कोशिका की अपेक्षा आधी होती है। गुणसूत्रों की संख्या में यह कमी निषेचन द्वारा होने वाली वृद्धि को समायोजित (balance) कर देती है और निषेचित अण्डे तथा उससे बने जन्तु में पुनः गुणसूत्रों की पैतृक संख्या आ जाती है।
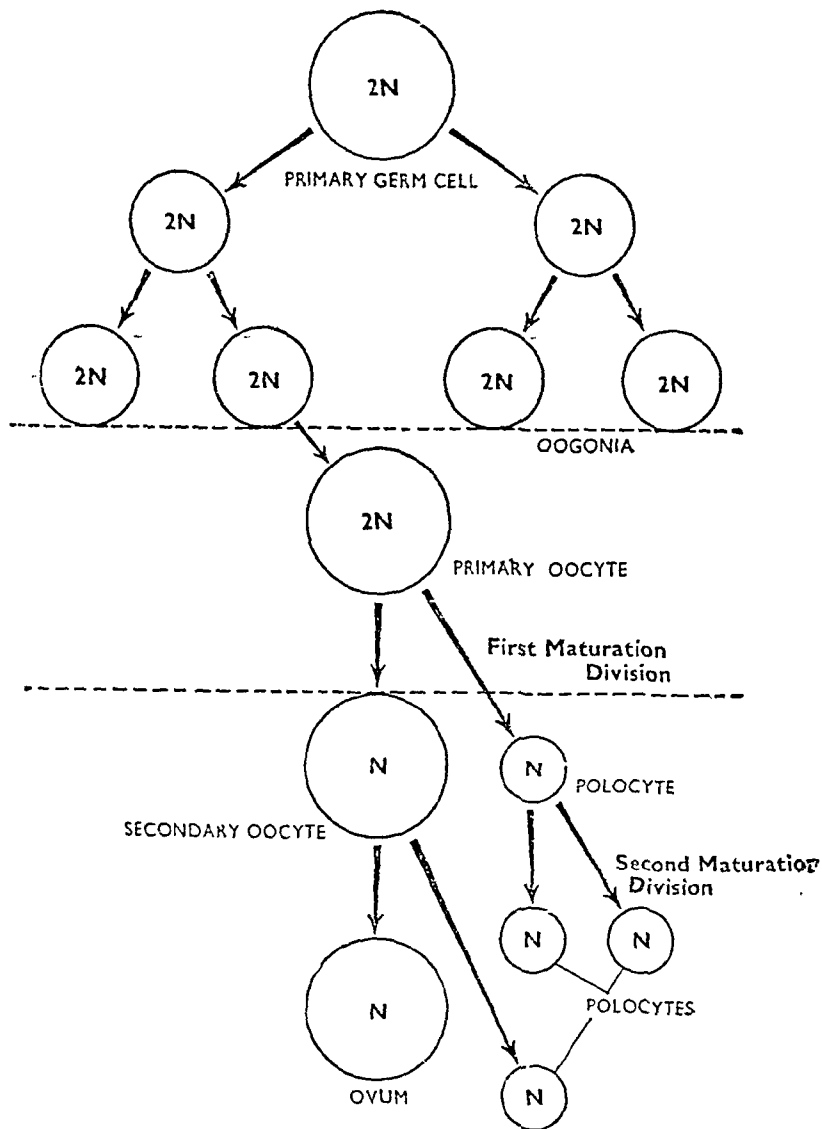
चित्र १५·२. अण्डजनन (Oogenesis)

प्रश्न 50. अण्डजनन क्रिया का उल्लेख करिये तथा वताइये कि यह शुक्राणु-जनन से किस प्रकार भिन्न होती है ?

What is gametogenesis ? Describe spermatogenesis and state how it differs from oogenesis. (*Meerut 1967 ; Poona 66 ; Agra 70*)

युग्मकजनन (Gametogenesis)

युग्मकजनन भ्रूणीय एपीथीलियम (germinal epithelium) की कोशिकाओं के परिपक्वन की वह क्रिया है जिसके फलस्वरूप जनन-कोशिकाओं से युग्मक या जनन एकक (gametes or reproductive units) अर्थात् अण्डे तथा शुक्राणु वनते हैं। नर

में शुक्राणुओं के बनने की क्रिया शुक्राणुजनन (spermatogenesis) तथा मादा में अण्डे बनने की क्रिया अण्डजनन (oogenesis) कहलाती है।

शुक्राणुजनन (Spermatogenesis)

कृपया प्रश्न 38 देखिये।

शुक्राणुजनन एवम् अण्डजनन में भिन्नताएँ (Differences Between Spermatogenesis and Oogenesis)

शुक्राणुजनन (*Spermatogenesis*)	अण्डजनन (*Oogenesis*)
1. शुक्राणुजनन के फलस्वरूप एक स्पर्मेटोसाइट (spermatocyte) से चार पूर्वशुक्राणु (spermatids) बनते हैं।	1. अण्डजनन के फलस्वरूप एक प्राथमिक डिम्ब कोशिका (primary oocyte) से केवल एक ही अण्डा बनता है।
2. ऐसा कुछ नही बनता।	2. अण्डजनन में दो या तीन ध्रुव-कोशिकाएँ (polocytes) बनती हैं।
3. शुक्राणु मातृ-कोशिका से चार समान कोशिकाएँ बनती हैं और चारो ही जनन एकक (reproductive units) होतो है।	3. ऊसाइट का विभाजन बराबर नही होता। इसमें से एक कोशिका में लगभग समस्त कोशिकाद्रव्य आ जाता है जो द्वितीयक ऊसाइट बनाता है तथा पुन: विभाजित होता है। छोटी कोशिकाएँ पोलर बॉडी या ध्रुव कोशिकाएँ बनाती हैं।

प्रश्न 41. अण्डजनन क्रिया का उल्लेख करिये तथा बताइये कि यह शुक्राणुजनन से किस प्रकार भिन्न होता है।

Describe the process of oogenesis and point out how it differs from spermatogenesis. (*Nagpur 1967*)

कृपया प्रश्न 39 तथा 40 देखिये।

प्रश्न 42. सी-अरचिन (Sea urchin) में निषेचन क्रिया का वर्णन करिये तथा इसके महत्त्व पर नोट लिखिये।

Describe fertilization in Sea-urchin and add a note on its significance. (*Delhi 1972*)

निषेचन (Fertilization)

अगुणित नर एवम् मादा गैमीटों के केन्द्रकों (pronuclei) के समेकन के फलस्वरूप बने द्विगुणित युग्मनज या जाइगोट (zygote) की क्रियाओं को **निषेचन** (fertilization) कहते हैं।

निषेचन की क्रिया के अन्तर्गत नर एवम् मादा गैमीटों के मिलन (केरियोगैमी) के साथ-साथ इनके कोशिकाद्रव्य का समेकन (प्लाज्मोगैमी) भी होता है। मेटाजोअन प्राणियों (metazoans) मे गैमीटों के समेकन के फलस्वरूप अण्डा वर्धन के लिए उत्प्रेरित होता है तथा उनके केन्द्रकों के समेकन के फलस्वरूप नये जीव की समस्त कोशिकाएँ पितृ एवम् मातृ जीवों के आनुवंशिक गुणों के वाहकों से सम्पन्न होती है। अण्डाणु एवम् शुक्राणु दोनों ही अगणित (haploid) रचनाएँ है जिनमें

N-गुणसूत्र होते हैं। शुक्राणु सक्रिय व चल होता है और इसके पिछले सिरे पर पुच्छ या कशाभ (flagellum) होता है, जबकि अण्डाणु (ovum) अचल (nonmotile) होता है तथा इसके कोशिकाद्रव्य में ड्यूटोप्लाज्म (deutoplasm), योक के रूप में संग्रहित खाद्य पदार्थ, की प्रचुर मात्रा होती है।

निम्न अपृष्ठवंशियों में निषेचन शरीर के बाहर होता है और इसे बाह्य **निषेचन** (external fertilization) कहते हैं। उच्च अपृष्ठवंशियों तथा पृष्ठवंशियों में निषेचन शरीर के अन्दर होता है और इस प्रकार के निषेचन को **आन्तरिक निषेचन** (internal fertilization) कहते हैं। और अधिक विकसित प्राणियों में निषेचन तथा इसके पश्चात् भ्रूण का विकास मादा के जनन पथ (genital tract) में होता है। सी-अरचिन में निषेचन बाह्य होता है तथा शुक्राणु एवम् अण्डाणु जल में स्खलित होते हैं।

निषेचन की क्रिया (Process of Fertilization)

निषेचन एक विशिष्ट क्रिया है जिसमें एक जाति का शुक्राणु अपनी ही जाति के अण्डाणु के अतिरिक्त किसी दूसरी जाति के अण्डाणु के साथ निषेचन नहीं करता। निषेचन की क्रिया को निम्न तीन पदों में बाँटा जा सकता है:—

1. शुक्राणु का अण्डाणु की ओर परिचालन (Movement of sperm towards ovum)—चाहे निषेचन बाह्य हो या आन्तरिक सर्वप्रथम शुक्राणु अण्डाणु की ओर आकर्षित होता है। सी-अर्चिन में शुक्राणु अण्डाणु की ओर आकर्षित नहीं होते वरन् ये घटनावश ही अण्डाणु की सतह से टकराते हैं। किन्तु कुछ प्राणियों में शुक्राणु अण्डाणु द्वारा स्रावित विशेष रासायनिक यौगिकों द्वारा आकर्षित होते हैं।

अण्डाणु के चारों ओर स्थित जेली के समान पदार्थ **फर्टिलाइजिन** (fertilizin) नामक प्रोटीन स्राव उत्पन्न करता है तथा शुक्राणु **एण्टीफर्टिलाइजिन** (antifertilizin) नामक एक अन्य रासायनिक स्राव उत्पन्न करते हैं। फर्टिलाइजिन शुक्राणु की सतह पर स्थित एण्टीफर्टिलाइजिन से क्रिया करता है और शुक्राणु को अण्ड-झिल्ली से चिपकने में सहायता करता है। अधिकांश प्राणियों के शुक्राणु पुच्छ द्वारा प्रचलन करते हैं।

2. शुक्राणु का अण्डाणु में प्रवेश (Penetration of sperm into ovum)—निषेचन की क्रिया एकमात्र रूप से एक रासायनिक क्रिया है। अण्डाणु की सतह से चिपकने के पश्चात् शुक्राणु लाइटिक प्रकार के पाचक एन्जाइम स्रावित करता है जो अण्डाणु को आच्छादित करने वाली फोलिकल कोशिकाओं की परत को घोलकर एक पथ बनाते हैं और शुक्राणु का एक्रोसोम तन्तु अण्डाणु की जेली व विटेलाइन झिल्ली (vitelline membrane) में से अन्दर की ओर खिचता हुआ चला जाता है। अब एक्रोसोम तन्तु का सिरा अण्डे के कोशिकाद्रव्य की झिल्ली के सम्पर्क में आ जाता है।

3. अण्डाणु की शुक्राणु के प्रति प्रतिक्रिया (Reaction of the egg for the sperm)—शुक्राणु के एक्रोसोम तन्तु के सम्पर्क में आने पर अण्डाणु का कोशिकाद्रव्य आगे की ओर उभर कर **निषेचन कोन** (fertilization cone) बनाता है। अण्डाणु के कोशिकाद्रव्य तथा शुक्राणु के बीच सम्बन्ध स्थापित होने के बाद वर्धित कोन धीरे-धीरे अवकलित हो जाती है जिससे शुक्राणु का शीर्ष अण्डाणु में खिचता चला जाता है। पृष्ठवंशियों के अण्डों मे कोशिकाद्रव्यात्मक उभार नहीं पाया

RECEPTION CONE
SPERM
OVUM
HAPLOID NUCLEUS OF OVUM
CENTROSOME
HAPLOID SPERM NUCLEUS
NUCLEUS OF OVUM
SPERM NUCLEUS
ASTERS
NUCLEUS OF OVUM

PATERNAL NUCLEUS
MATERNAL NUCLEUS
PATERNAL CHROMOSOMES
MATEANAL CHROMOSOMES
SPINDLE
CHROMOSOMES FROM SPERM
ASTER
CHROMOSOMES FROM OVUM
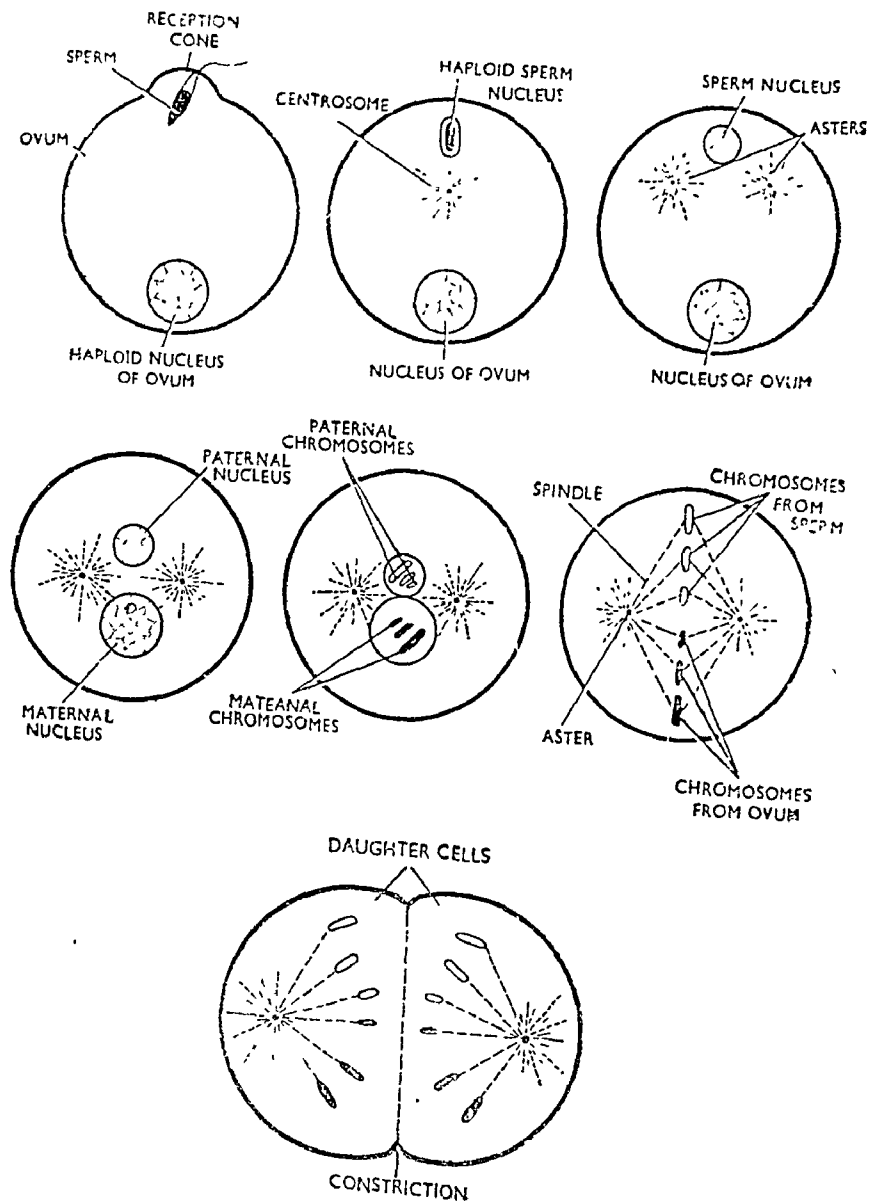
चित्र १५·३. निषेचन क्रिया (Process of fertilization)

जाता । साथ ही अण्डे के कोशिकाद्रव्य के परिमीय भाग में अनेक कॉर्टिकल परिवर्तन (cortical reactions) आरम्भ हो जाते हैं । ये परिवर्तन शुक्राणु के अण्डाणु के साथ चिपकने वाले स्थान से आरम्भ होकर अण्डाणु की पूरी सतह पर फैल जाते है । ये परिवर्तन अण्डाणु के कॉर्टेक्स या पेरिविटेलिन स्थान (perivitelline space) की संरचना विशेषकर कॉर्टिकल कणिकाओं (cortical granules) को प्रभावित करते हैं । निषेचन के तुरन्त बाद प्लाज्मालेमा के दोनों स्तर एक-दूसरे से तथा अण्डाणु की सतह से पृथक् होकर **निषेचन मैम्ब्रेन** (fertilization membrane) बनाते हैं । कॉर्टिकल कणिकाएँ पैपिला के समान प्रक्षेपों में विकसित हो जाती हैं जो

अण्डाणु के चारों ओर एक नया **हायलाइन स्तर** (hyaline layer) बनाती हैं।

अण्डाणु के अन्दर शुक्राणु की प्रतिक्रिया (Behaviour of sperm within the ovum)—वैसे तो पूर्ण शुक्राणु अण्डाणु के अन्दर प्रवेश करता है किन्तु सी-अर्चिन में शुक्राणु का केवल शीर्ष एवम् मध्य भाग ही अण्डाणु के भीतर प्रवेश करते हैं तथा इसकी पुच्छ विटेलिन मैम्ब्रेन के बाहर रह जाती है। शुक्राणु का इसके बाद का व्यवहार अण्डाणु की परिपक्वता की प्रावस्था पर निर्भर करता है। सी-अरचिन में दोनों ध्रुव काय (polar bodies) निषेचन से पूर्व अलग हो जाती हैं। शुक्राणु की झिल्ली विलीन हो जाती है जिससे केन्द्रक, सेण्ट्रोसोम तथा माइटोकॉन्ड्रिया विमुक्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् शुक्राणु का केन्द्रक अण्डाणु के केन्द्रक से मिलने के लिए तुरन्त ही अग्रसर होता है।

जब शुक्राणु अण्डाणु के कोशिकाद्रव्य में प्रवेश करता है उस समय इसका एक्रोसोम आगे की ओर होता है तथा इसके पीछे केन्द्रक व सबसे पीछे सेण्ट्रोसोम स्थित होता है। किन्तु शीघ्र ही केन्द्रक व सेण्ट्रोसोम इस प्रकार घूमते हैं कि सेण्ट्रो-सोम केन्द्रक से आगे आ जाता है और अब केन्द्रक 180° पर घूमता है और आगे की ओर आकर उस स्थान की ओर अग्रसर होता है जहाँ कि इसका अण्डाणु-केन्द्रक या मादा पूर्वकेन्द्रक (pronucleus) से समेकन होना होता है। साथ ही शुक्राणु केन्द्रक या नर **पूर्वकेन्द्रक** (male nucleus) फूलकर वेसिकल के समान हो जाता है। इसका क्रोमेटिन पदार्थ अकणिकीय हो जाता है तथा सेण्ट्रोसोम के चारों ओर एस्टर (aster) बन जाता है।

इसी बीच मादा पूर्वकेन्द्रक या अण्डाणु केन्द्रक भी समेकन के स्थान की ओर गति करता है जो कि अण्डाणु के केन्द्र में स्थित होता है। इसकी यह गति सम्भव-तया आकर्षण बल के फलस्वरूप होती है। अन्त में नर एवम् मादा पूर्वकेन्द्रकों के समेकन के समय दोनों केन्द्रकों का केन्द्रकावरण सम्पर्क-बिन्दु पर टूट जाता है जिससे दोनों केन्द्रकों के पदार्थ परस्पर मिल जाते हैं और इनके चारों ओर एक उभयनिष्ठ केन्द्रकावरण का निर्माण हो जाता है। सी-अरचिन के निषेचित अण्डे में विदलन के समय केन्द्रकावरण विलीन हो जाता है और मातृ एवम् पितृ जीवों के गुणसूत्र वियो-जित होकर एक्रोमेटिक तर्कु (achromatic spindle) की मध्यवृत्तीय रेखा (equator) पर विन्यसित हो जाते हैं।

निषेचन का महत्त्व (Significance of fertilization)—निषेचन के निम्न-लिखित परिणाम होते हैं :—

(*i*) शुक्राणु अण्डे के भीतर पहुँचकर द्वितीयक डिम्ब-कोशिका (secondary oocyte) को द्वितीयक परिपक्वन विभाजन (secondary maturation division) के लिए उत्तेजित करता है।

(*ii*) अण्ड-कोशिका का कोशिकाद्रव्य रंजक-कणिकाओं (pigment granu-les) में गति उत्पन्न करता है जिससे निषेचन पथ (fertilization tract) स्पष्ट हो जाता है।

(*iii*) अण्ड-कोशिका और शुक्राणु-कोशिका में केवल एक-एक सेण्ट्रियोल होता है। निषेचन के फलस्वरूप जाइगोट-कोशिका में दो सेण्ट्रियोल आ जाते हैं जिससे तर्कु बनना आरम्भ हो जाता है।

(*iv*) इसके फलस्वरूप जाइगोट में गुणसूत्रों की संख्या दुगुनी हो जाती है।

(*v*) अण्डे की परिधि में पुनः परिवर्तन होता है जिससे अन्य शुक्राणु निषेचित

अण्डे में नहीं आते ।

(*vi*) निषेचन के फलस्वरूप विटेलाइन झिल्ली अण्डे से अलग हो जाती है, जिससे अण्डा इसके अन्दर घूम सकता है ।

(*vii*) उपापचय क्रियाओं (metabolic activities) की गति में वृद्धि होती है ।

(*viii*) ध्रुव-कोशिकाओं के बनने से अण्ड कोशिका में जो कोशिकाद्रव्य की कमी होती है वह शुक्राणु के कोशिकाद्रव्य द्वारा पूर्ण कर दी जाती है ।

(*ix*) अण्डे का नया अक्ष बन जाता है ।

प्रश्न 31. अमैथुन जनन या अनिषेक-जनन से आप क्या समझते हैं ? उदाहरण देकर अपने उत्तर की पुष्टि कीजिये ।

Explain what you mean by parthenogenesis ? Illustrate with examples. (*Agra 1964 ; Aligarh 55 ; Punjab 67 ; Tribhuwan 69 ; Magadh 69 ; Vikram 69 ; Jiwaji 69*)

प्राकृतिक अनिषेक जनन पर एक निवन्ध लिखिये ।

Write an essay on natural parthenogenesis. (*Shivaji 1971*)

कम-से-कम दो उदाहरण देते हुए प्राकृतिक अनिषेक-जनन की साइटोलॉजी पर प्रकाश डालिये ।

Give an account of the cytology of natural parthenogenesis giving at least two examples. (*Gujrat 1972*)

अमैथुन जनन या अनिषेक-जनन
(Parthenogenesis)

जन्तु-जगत् के विभिन्न जन्तुओं में उत्पादन या जनन की विभिन्न विधियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. अलैंगिक जनन (asexual reproduction)
2. लैंगिक जनन (sexual reproduction)

लैंगिक जनन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :—

(i) गुणसूत्रों की संख्या में कमी—जिसके फलस्वरूप युग्मक बनते हैं ।

(ii) निषेचन की क्रिया (Process of fertilization)—इसमें नर तथा मादा युग्मकों का संयुग्मन होता है और जाइगोट बनता है । जाइगोट में गुणसूत्रों की संख्या पैतृक कोशिकाओं के बराबर होती है ।

लॉक्ट (Loct) नामक वैज्ञानिक ने देखा कि कुछ विशेष परिस्थितियों में निषेचन पूर्ण नहीं हो पाता और यदि इस दशा में निषेचित अण्डे को उत्तेजित किया जाये तो यह प्रौढ़ जन्तु बन जाता है । इस अवस्था में शुक्राणु का कोई महत्त्व नहीं रह पाता । परिवर्धन (development) के ये उदाहरण अमैथुन जनन के अन्तर्गत आते हैं ।

अमैथुन जनन (parthenogenesis) ग्रीक भाषा से लिया गया है (Gr., *Parthenos,* virgin ; *genesis,* origin) । अतः अनिषेचित अण्डे का बिना शुक्राणु की सहायता के ही वृद्धि करना अमैथुन जनन (parthenogenesis) कहलाता है । बहुत-से जन्तु समुदायों में अमैथुन जनन कभी-कभी पाया जाता है, किन्तु कुछ जन्तुओं में यह हमेशा ही पाया जाता है । कुछ जीवों में अमैथुन जनन तथा लैंगिक जनन एक के बाद एक क्रम से होते हैं अतः अमैथुन जनन दो प्रकार का होता है :—

1. पूर्ण अमैथुन जनन (Complete parthenogenesis)
2. चक्रीय अमैथुन जनन (Cycle parthenogenesis)

1. पूर्ण अमैथुन जनन (Complete parthenogenesis)—इस प्रकार के जनन में नर जन्तु नहीं पाये जाते; अतः मादा जन्तु अमैथुन विधि द्वारा जाति की वृद्धि करता है।

2. चक्रीय अमैथुन जनन (Cyclic parthenogenesis)—इस प्रकार के जनन में मादा जन्तु एक या एक से अधिक बार अमैथुन विधि से वृद्धि करता है किन्तु इसके पश्चात् एक बार लैंगिक जनन होता है। अतः अमैथुन और लैंगिक पीढ़ियाँ एक के बाद एक क्रम से होती हैं।

द्विगुणित अनिषेक जनन तथा अगुणित अनिषेक जनन
(Diploid Parthenogenesis and Haploid Parthenogenesis)

वीजमान (Weisman) का यह अनुमान था कि जो अण्डे अमैथुन जनन द्वारा वृद्धि करते है उनमें अर्धसूत्री विभाजन (meiosis) नहीं होता किन्तु अगुणित अण्डे भी इस विधि द्वारा वृद्धि करते हुये देखे गये हैं; अतः इस आधार पर अमैथुन प्रजनन को दो भागों में बाँटा गया है :—

1. द्विगुणित अनिषेक जनन (Diploid parthenogenesis)
2. अगुणित अनिषेक जनन (Haploid parthenogenesis)

1. द्विगुणित अनिषेक जनन (Diploid parthenogenesis)—द्विगुणित अनिषेक जनन में अण्डों का अर्धसूत्री विभाजन नहीं होता ; अतः प्रत्येक अण्डे में गुणसूत्रों की संख्या $2n$ होती है। चूंकि इनमें कोई अर्धसूत्री विभाजन नहीं होता, अतः इनमें एक ही ध्रुव कोशिका (polocyte) बनती है या दूसरी ध्रुव-कोशिका अण्डे के साथ समेकित हो जाती है। उदाहरणार्थ—फाइलोक्जेरा (*Phylloxera*) तथा एफिड्स (*Aphids*)।

(*i*) अधिकतर अनिषेक जनन वाह्य परिस्थितियों के प्रभाव से ही होता है, जैसे—भोजन, तापक्रम, इत्यादि। इस कार के प्रजनन को वैकल्पिक (facultative) कहते हैं।

(*ii*) कुछ जन्तुओं में यह निश्चित रूप से पाया जाता है। इसमें नर एवम् मादा लैंगिक पीढ़ियाँ, अमैथुन पीढ़ी के पश्चात् आती हैं और फिर अमैथुन पीढ़ी आती है। अह अनिवार्य अमैथुन जनन (obligatory parthenogenesis) कहलाता है।

(*iii*) कुछ अन्य जन्तुओं में [जैसे कीट (insects) एवम् निमेटोड] नर जन्तु होते ही नहीं, अतः मादा केवल अमैथुन जनन द्वारा ही अपनी जाति की वृद्धि करती है।

एफिड (*Aphid*) तथा फाइलोक्जेरा (*Phylloxera*) में **मोर्गन** (Morgan) ने द्विगुणित अनिवार्य अमैथुन जनन (diploid obligatory parthenogenesis) का पूर्ण विवेचन किया है। उसने अनुमान लगाया कि इसमें नर जन्तु लैंगिक विधि द्वारा नही बन सकते क्योंकि उसमें मादा की अपेक्षा एक '*X*' गुणसूत्र (*X*-chromosome) कम होता है, अर्थात् नर में $(2X-X)$ तथा मादा में $2X$ गुणसूत्र होते हैं, अतः नर केवल अमैथुन विधि द्वारा ही बनते हैं। शरद ऋतु में मादा से दो प्रकार के अण्डे उत्पन्न होते हैं :
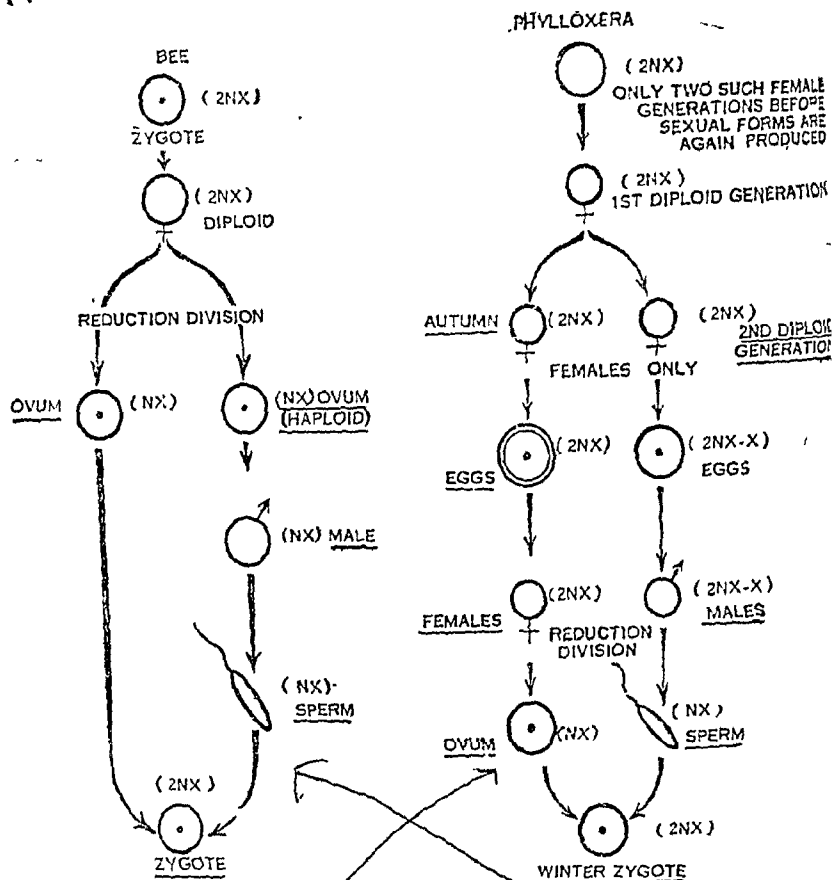
चित्र १५·४. द्विगुणित अनिषेक जनन के उदाहरणार्थ फाइलोक्जेरा का जीवन-इतिहास

चित्र १५·५. अगुणित अनिषेक जनन के उदाहरणार्थ शहद की मक्खी का जीवन-इतिहास

(i) बड़े अण्डे—जिनमें $2NX$ गुणसूत्र होते हैं और ये मादा जन्तु बनाते हैं। इनमें बने अण्डों में गुणसूत्र NX नम्बर में होते हैं।

(ii) छोटे अण्डे—इनमें गुणसूत्रों की संख्या $(2NX-X)$ होती है। ये नर जन्तु बनाते है और इनमें दो प्रकार के शुक्राणु बनते हैं जिनमें से आधों में गुणसूत्र NX होते हैं तथा दूसरे आधों में N गुणसूत्र होते हैं। N गुणसूत्र वाले शुक्राणु abnormal होते हैं और तुरन्त नष्ट हो जाते हैं किन्तु NX गुणसूत्र वाले शुक्राणु निषेचन के पश्चात् मादा जन्तु बनाते है। अत: इस लैंगिक विधि से नर बन ही नहीं सकते।

2. अगुणित अनिषेक जनन (Haploid parthenogenesis)—यह शहद की मक्खी (honey-bee), ततैये (*wasps*) तथा चीटियों (ants) में पाया जाता है। इसमें मादा सदैव द्विगुणित (*diploid*) होती है तथा नर अगुणित (haploid)। मादा सदैव निषेचित अण्डों से बनती है तथा नर सदैव ही अनिषेचित अण्डों से अमैथुन जनन द्वारा बनता है। अत: नर सदैव अगुणित होते हैं।

अनुग्राही तथा आग्राही अमैथुन जनन
(Facultative and Obligatory Parthenogenesis)

जब अमैथुन जनन किन्ही विशेष परिस्थितियों के प्रभाव से होता है और जन्तु के जीवन-इतिहास में नियमित रूप से नहीं पाया जाता है तो यह अनुग्राही अमैथुन जनन (facultative parthenogenesis) कहलाता है। किन्तु जब यह जीवन-इतिहास में कम से कम एक वार निश्चित रूप से पाया जाता है और लैंगिक तथा अमैथुन दोनों विधियाँ एक के पश्चात् एक होती हैं है तो यह **आग्राही अमैथुन जनन** (obligatory parthenogenesis) होता है।

अमैथुन जनन के लिए उत्तेजन
(Stimulus to Parthenogenesis)

कुछ परिस्थितियों में अण्डे विना उत्तेजना के ही तथा विना शुक्राणु के ही वृद्धि करने लगते हैं, किन्तु कुछ परिस्थितियों में उत्तेजन अत्यन्त आवश्यक है। कुछ उत्तेजनाएँ निम्न हैं :—

(*i*) अण्डों को सूई द्वारा छिद्रित करना (piercing with needle),

(*ii*) अण्डों पर रासायनिक पदार्थों की क्रिया द्वारा,

(*iii*) शुक्राणु द्वारा जो केवल उत्तेजना पहुँचाने के अतिरिक्त और कोई प्रभाव नहीं डालता, जैसे—इकाइनोडर्म अण्डों का ऐनेलिड शुक्राणुओं से निषेचन तथा सी-अरचिन में अण्डों का सितारा मछली के शुक्राणुओं द्वारा निषेचन।

अमैथुन जनन से लाभ व हानियाँ
(Advantages and Disadvantages of Parthenogenesis)

लाभ (Advantages)—

(*i*) इसमें जर्मप्लाज्म (germplasm) व्यर्थ नहीं जाता क्योंकि आवश्यकता से अधिक अण्डे तथा शुक्राणु नहीं बनते। अत: प्रौढ़ अवस्था पूर्णतया भोजन लेने तथा जनन से ही सम्बन्धित रहती है।

(*ii*) म्युटेशन (mutation) द्वारा उत्पन्न लाभदायक जीन्स पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसी रूप में बने रहते हैं क्योंकि गैमीट बनते समय इनमें कोई क्रॉसिंग ओवर (crossing over) नहीं होता।

(*iii*) इस प्रकार बनी सन्तति पूर्णतया जनकों के समान होती है। अत: अमैथुन जनन के फलस्वरूप बनी सन्तति में आपसी भिन्नताएँ कम हो जाती हैं।

(*iv*) इससे गुणसूत्रों के triploid तथा aneuploid configuration स्थापित हो जाते हैं।

(*v*) अगुणित अनिषेक जनन लिंग निर्धारण (sex determination) के गुणसूत्री सिद्धान्त (chromosomal theory) को सिद्ध करता है।

हानियाँ (Disadvantages)—

इस विधि द्वारा जनन में जीन्स के नये संयोगों (combinations) के लिए कोई अवसर नहीं मिलता जिससे अच्छे गुणों की वृद्धि तथा बुरे गुणों की उपेक्षा नहीं हो सकती। फलस्वरूप इन जन्तुओं मे परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन कम होता जाता है और धीरे-धीरे जाति नष्ट होने लगती है।

टिप्पणियाँ
(Short Notes)

1. असूत्री विभाजन (Amitosis) *(Kerala 1973)*

यह प्रत्यक्ष कोशिका-विभाजन है जिसके द्वारा जीव अलिंगी जनन करते हैं। यह मुख्य रूप से बैक्टीरिया व प्रोटोजोआ इत्यादि अकोशिकीय जीवों में होता है। असूत्री कोशिका-विभाजन में केन्द्र के द्विखण्डित होने के बाद कोशिकाद्रव्य भी विभाजित हो जाता है।
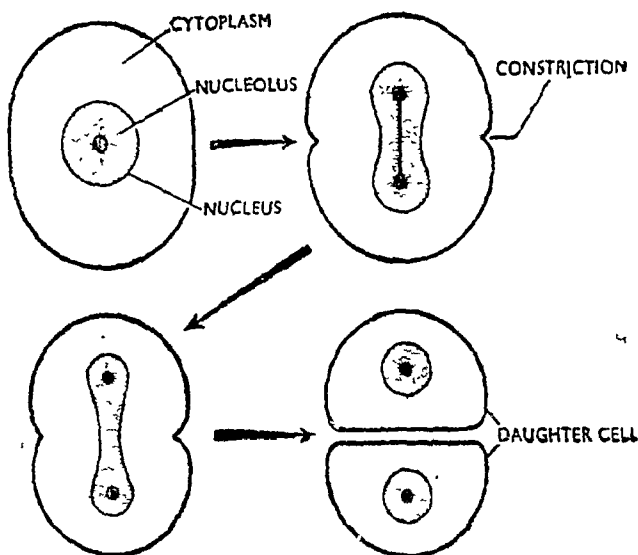
चित्र १६·१. असूत्री विभाजन (Amitosis)

असूत्री विभाजन के प्रारम्भ में केन्द्रक लम्बा हो जाता है। अब केन्द्रक के मध्य में एक संकीर्णन या अवतलन विकसित होता है। केन्द्रक के मध्य के संकीर्णन के बनने के कारण यह मुग्दर के समान प्रतीत होता है। संकीर्णन वृद्धि करके केन्द्रक को दो भागों में बाँट देता है। ठीक इसी समय कोशिकाद्रव्य भी दो समान भागों में विभक्त हो जाता है। असूत्री विभाजन के समय केन्द्रक में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं होती।

2. सक्रिय अभिगमन (Active Transport) *(Jiwaji 1973)*

कृपया प्रश्न 11 देखिये।

3. ATP (एडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट) *(Agra 1971 ; Sri Venkat 72)*

कोशिका में नाना प्रकार की रासायनिक क्रियाएँ होती हैं जिनमें से कुछ

endergonic होती हैं (ऐसी क्रियाओं के पूर्ण होने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है) तथा अन्य *exergonic* होती हैं (इन क्रियाओं के फलस्वरूप ऊर्जा विमुक्त होती है। एक अभिक्रिया के अन्तर्गत विमुक्त हुई ऊर्जा अन्य दूसरी अभिक्रिया के पूर्ण होने के उपयोग में आ जाती है किन्तु इसके लिए एक ऊर्जित मध्यग (energised intermediate) का होना आवश्यक है जो ऊर्जा को ऊष्मा के रूप में लुप्त होने से रोककर उसे एक अभिक्रिया में स्थानान्तरित कर सकता हो। एडिनोसीन ट्राइफॉस्फेट (Adenosine triphosphate—ATP) ऐसा ही ऊर्जित मध्यग है।

ATP एक न्यूक्लिओटाइड है जो purine-adenine का बना होता है। यह ribose से बन्धित होता है जिससे तीन linear phosphate groups जुड़े रहते हैं। ये high energy bonds से सम्बद्ध होते हैं। इसका रासायनिक सूत्र निम्न प्रकार है :—
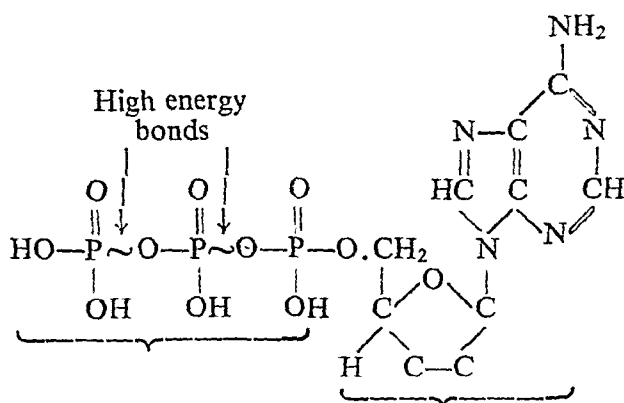
ATP अति अस्थिर यौगिक है। जब कभी कोशिका को किसी रासायनिक अभिक्रिया की पूर्ति के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है तो ATP एक फॉस्फेट अणु की क्षति के फलस्वरूप एडिनोसीन डाइफॉस्फेट—ADP (adenosine diphosphate) में विघटित हो जाता है। ATP के ADP में परिवर्तन के फलस्वरूप 800 calories ऊर्जा विमुक्त होती है।

$$\text{ATP} \rightarrow \text{ADP} + \text{P} + \text{energy (800 calories)}$$
$$\text{Energy} + \text{ADP} \rightarrow \text{P} + \text{ATP}$$
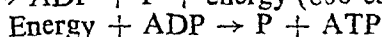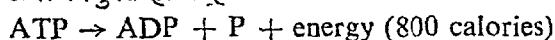
ठीक इसी प्रकार ATP के एक अणु के संश्लेपण के लिए एक अणु ADP तथा 800 calories की आवश्यकता होती है। ADP भी अस्थिर यौगिक है जो जल-विश्लेपण के फलस्वरूप AMP (adenosine monophosphate) में विघटित हो जाता है। ये उपर्युक्त सभी यौगिक केवल फॉस्फेट ग्रुपों की संख्या के आधार पर ही एक दूसरे से भिन्न होते हैं। जैसा कि नामों से आभासित है *tri* तीन फॉस्फेट ग्रुपों —p~p~p को, di दो फॉस्फेट ग्रुपों —p~p को तथा mono एक फॉस्फेट ग्रुप को adenosine ribose से जुड़ा हुआ प्रदर्शित करता है।

Fritz Lipmann (1941) ने खोज की कि ATP कोशिका की 'energy currency' है जो कोशिकाओं में अति सामान्य रूप से पाया जाता है। कोशिकीय उपापचय की वे समस्त रासायनिक अभिक्रियाएँ जिनको ऊर्जा की आवश्यकता होती है, ATP से ही ऊर्जा की पूर्ति करती हैं। यह स्वतन्त्र रूप से एक कोशिका से दूसरी

कोशिका मे नही जा सकता। अतः ऊर्जा से परिपूरित इन अणुओं का निर्माण उन्ही स्थानों पर होता है जहाँ कि इनकी आवश्यकता होती है।

4. जीवाणुभोजी (Bacteriophage) (*Sri Venkat 1970*)

बैक्टीरिया या जीवाणुओं में परजीवी के रूप में रहने वाले वाइरस **जीवाणुभोजी** (bacteriophage) या फेज (phage) कहलाते हैं। वाइरस पर प्रथम शोध-कार्य **F. W. Twort** (1915) तथा **F. H. d'Herelle** ने किया था किन्तु **d'Herelle** ने इन्हें बैक्टीरिओफेज (जीवाणुभोजी) की संज्ञा दी (फेज बैक्टीरिया के वास्तविक परजीवी है जो पोपक के शरीर के बाहर जीवित रहने या जनन करने में असमर्थ होते है।

संरचना (Structure)

जीवाणुभोजी सूक्ष्मतम एवम् सरलतम सरचना वाले जीव हैं जिन्हें केवल इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखना सम्भव है। *E. coli* का T_4 phage 65×95 mμ तक होता है।

ये देखने में टेडपोल के समान प्रतीत होते हैं और दो भागों में भिन्नित होते हैं—(*i*) एक गोल या बहुभुजाकार शीर्ष (head or capsid) तथा एक पतली व कुंठित पूंछ (tail)। पूँछ पर आसंजन करने वाले कई तन्तु (fibres) होते है जिनके द्वारा ये बैक्टीरिया से आसंजन करते है।
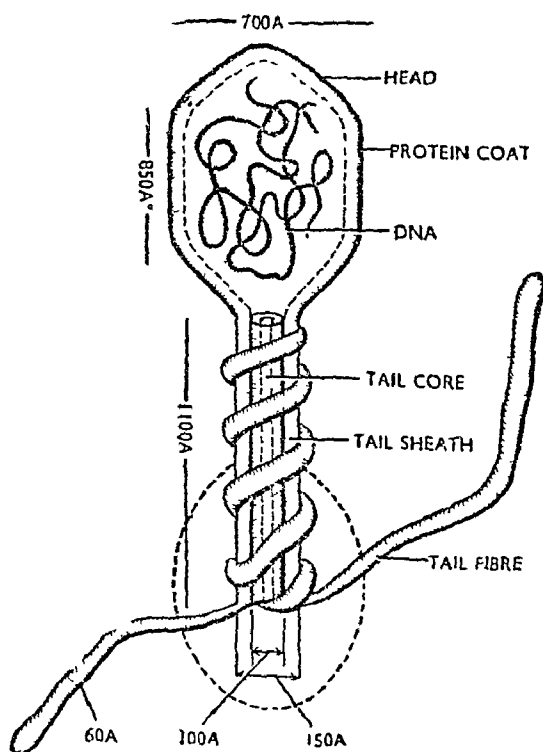
चित्र १४·२. बैक्टीरियोफेज (Bacteriophage)

प्रत्येक फज कण के चारों ओर प्रोटीन का खोल होता है और शीर्ष या

केप्सिड के मध्य में DNA स्थित होता है। यदि DNA और प्रोटीन को कोशिकाओं का केन्द्रक एवम् कोशिकाद्रव्य मान लिया जाये तो स्पष्ट है कि फेज में कोशिका कला का अभाव होता है। कुछ वैज्ञानिक इनको जैविक जीव न कहकर जैविक पदार्थ ही कहना उचित समझते हैं।

जनन (Reproduction)

फेज केवल वैक्टीरियल कोशिकाओं में जनन करते हैं। संक्रमण के फलस्वरूप फेज पूँछ की सहायता से वैक्टीरियम कोशिका से चिपक जाता है तथा पूँछ द्वारा स्रावित एन्जाइम्स द्वारा उस स्थान की वैक्टीरियम भित्ति के घुलने पर DNA कोशिका में अन्तरित कर दिया जाता है। फेज का प्रोटीन कोट कोशिका के बाहर ही रह जाता है। DNA फेज का आनुवंशिक पदार्थ है। कुछ मिनट के अन्दर ही जीवाणुभोजी का DNA वैक्टीरिया की जैविक क्रियाओं पर नियन्त्रण कर उसे फेज कणों के संश्लेषण के लिए उत्प्रेरित करता है। नवनिर्मित DNA अपने चारों ओर प्रोटीन का खोल निर्मित कर नये फेज बनाता है। लगभग 20 मिनट के अन्दर एक फेज कण से 100 फेज बन जाते हैं और एक घण्टे में 10 लाख। अब वैक्टीरियल कोशिका फट जाती है (लयन—Lysis) और मुक्त हुए फेज नयी वैक्टीरियल कोशिकाओं का संक्रमण करते हैं। इस चक्र को **लयन चक्र** (lytic cycle) तथा फेज कणों को **उग्र फेज** (virulent phage) कहते हैं।

लयजनक चक्र (Lysogenic cycle)—संयत फेज (temperate phages) कुछ विशेष स्थितियों में पोषक का सक्रमण करते हैं किन्तु इसको किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते। इनका DNA वैक्टीरियल DNA से समावेशित हो जाता है। इन समाकलित फेज कणों को **प्रोफेज** (prophages) तथा समावेशित DNA वाले वैक्टीरिया को **लयजनक वैक्टीरिया** (lysogenic bacteria) कहते हैं। प्रोफेज पोषक के आनुवंशिक पदार्थ की पुनरावृत्ति के साथ समन्वय करते हुए प्रतिकृत करते हैं किन्तु यह फेग के पदार्थ का नियमन नहीं करता। अतः पोषक वैक्टीरियल कोशिका न केवल जीवित रहती है बल्कि फेज कणों को उत्पन्न करने के सामर्थ्य को भी आनुवंशिक रूप से पारगत करती है। लयजनक वैक्टीरिया उनमें उपस्थित अन्य फेज कणों से संक्रमण के लिए प्रतिरक्षित होते हैं। संयत फेज (temperate phage) भी असंयत फेज में परिवर्तित होकर वैक्टीरियल कोशिका का लयन करते है।

फेजों में पुनर्योजन (Recombination in Phages)

Max तथा **Mary—Delbruck** (1948) के अनुसार फेज कणों में पुनर्योजन होते हैं। दो भिन्न प्रकार के फेज—T_2 एवम् T_4' को वैक्टीरिया के संवर्धन में रखने पर T_2 तथा T_4' दोनों के सन्तति फेज कणों के अतिरिक्त कुछ T_2' तथा T_4' कण भी प्राप्त हुए थे। फेज कणों में पुनर्योजन को पादप एवम् प्राणियों के लैंगिक जनन के तुल्य माना जा सकता है।

आनुवंशिक अनुप्रयोग (Genetic Applications)

जीवाणुभोजियों का आनुवंशिक शोध में विशेष महत्त्व है। सरलतम संरचना एवम् द्रुत गति से जनन के कारण ये आनुवंशिक अध्ययन के लिए अति महत्त्वपूर्ण पदार्थ हैं।

फेज का आनुवंशिक तन्त्र मूल रूप से उच्च जीवों के समान होता है। फेज

के आनुवंशिक पदार्थ मे उत्परिवर्तन के कारण इसमें उत्परिवर्तक (mutants) अधिकता में मिलते है। साथ ही फेज के आनुवंशिक पदार्थ मे पुनर्योजित होने की क्षमता होती है।

फेज यह प्रमाण प्रस्तुत करता है कि DNA एक आनुवंशिक पदार्थ है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में आनुवंशिक लक्षणों को पारगत करता है। **Hershey** तथा **Chase** ने फेज DNA को रेडियोधर्मी फॉस्फोरस (P^{32}) तथा इसके प्रोटीन को रेडियोऐक्टिव सल्फर (S^{35}) से अंकित करके प्रमाणित किया। यह देखा गया कि केवल P^{32} ही अगली पीढ़ी में वंशागत होता है। इससे स्पष्ट होता है कि DNA ही एकमात्र आनुवंशिक पदार्थ है।

5. बार बॉडी (Bar Body) *(Sri Venkat 1970)*

मानव व अन्य स्तनधारियों तथा ड्रोसोफिला की मादा कोशिकाओं के विरामावस्था केन्द्रक में गहरी अभिरंजित अत्यधिक संघनित लिंग क्रोमेटिन को **Barr** तथा **Bartman** ने 1949 में **बार बॉडी** (bar body) की संज्ञा दी। यह दो X गुणसूत्रों में से उस एक गुणसूत्र को प्रदर्शित करता है जो क्रोमेटिन में संघनित रहता है। यह केवल मादा जीवों (जिनमें मादा XX होती है) में मिलता है। यह हेटरोक्रोमेटिन का बना होता है। बार बॉडीज केवल विश्रामावस्था तथा पूर्वावस्था में स्पष्ट दिखायी देती है किन्तु कोशिका-विभाजन की अन्य अवस्थाओं में स्पष्ट दिखायी नहीं देतीं क्योंकि यूक्रोमेटिन गहरे अभिरंजित गुणसूत्रों का रूप ले लेता है। हेटरोक्रोमेटिन के संघनन का कारण इन क्षेत्रों में विभेदी कुण्डलन है।

बार बॉडी का उपयोग लिंगसूचक के रूप में किया जाता है क्योंकि यह केवल मादा में होता है और नर में अनुपस्थित रहता है। किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं। टर्नर सिन्ड्रोम (Turner's syndrome) को प्रदर्शित करने वाली मादाओं में बार बॉडी नही होती और क्लाइनफेल्टर सिन्ड्रोम (Klinefelter's syndrome) वाले नर जीवों में बार बॉडी उपस्थित होती है। समस्त स्त्रियों के ल्यूकोसाइट्स में बार बॉडी एक छोटी घुन्डी के समान प्रतीत होती है जो एक पतले तन्तु द्वारा केन्द्रक से जुड़ी रहती है। इनको **drum-sticks** कहते हैं। क्योंकि बार बॉडीज हेटरोक्रोमेटिन की बनी होती हैं, ये आनुवशिक रूप से निष्क्रिय होती है।

6. कोशिकान्तरंगक (Cell Inclusions) *(Patna 1974)*

कृपया प्रश्न 5 देखिये।

7. कोशिका कला या प्लैज्मा झिल्ली
(Cell Membrane or Plasma Membrane)

(Jabalpur 1973 ; Sri Venkat 72)

कृपया प्रश्न 9 देखिये।

8. कोशिका सिद्धान्त (Cell Theory)

कृपया प्रश्न 4 देखिये।

9. सेन्ट्रोसोम (Centrosome) *(Agra 1970 ; Meerut 71 ; Punjab 71)*

सेन्ट्रोसोम एक गोलाकार काय है जो केन्द्रक की बाह्य सतह के समीप स्थित होता है। यह तर्कु के समान दो सेन्ट्रिओल्स का बना होता है जिनके चारों ओर पारदर्शी कोशिकाद्रव्य, सेन्ट्रोस्फीयर (centrosphere) होता है। इसे कोशिका का केन्द्र भी कहते हैं।

सेन्ट्रिओल्स समस्त प्राणी-कोशिकाओं तथा कुछ निम्न पादपों में पाये जाते हैं। यह कोशिका का ज्यामितीय केन्द्र या फिर अक्षीय या अग्रस्थ होता है। गॉल्जी उपकरण एवम् माइटोकॉन्ड्रिया सेन्ट्रिओल्स के चारों ओर स्थित होकर एक मुकुट-सा बनाते हैं।

परारचना (Ultrastructure)

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी मे सेन्ट्रिओल 1200–1500Å व्यास तथा 3000–20,000Å लम्बाई के गोलाकार सिलिण्डर के समान प्रतीत होता है। इसमें तन्तुकरहित एक केन्द्रीय अक्ष होता है जिसके चारो ओर नलिकाओं या तन्तुओ के नौ समूहों का एक चक्र होता है। तन्तुओं के प्रत्येक समूह मे तीन **द्वितीयक तन्तु** (secondary fibres) होते हैं। प्रत्येक तन्तु या नलिका का व्यास 250Å तथा दीवार 45Å मोटी होती है। तन्तु एक-दूसरे से सम्बन्धित होते है। तन्तुओं के समूहो के चारो ओर की झिल्ली प्लैज्मा झिल्ली के समान यूनिट मैम्ब्रेन की बनी होती है।

चित्र १४·३. सेण्ट्रिओल (Centriole)
A. अनुप्रस्थ काट मे,
B. अनुदैर्घ्य काट मे
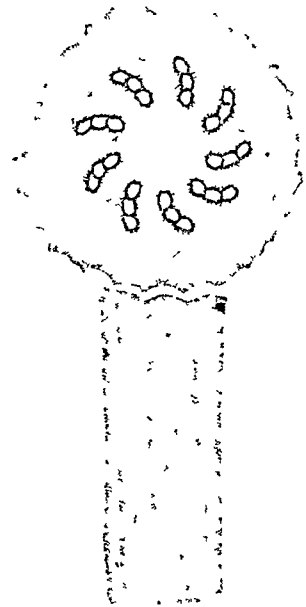
सेन्ट्रिओल्स का उद्भव (Origin of centrioles)—तर्कु के निर्माण में भाग लेने वाले सेन्ट्रिओल्स वलयाकार सरचनाओं के रूप मे पूर्वस्थित सेन्ट्रिओल से विकसित होते है। ये धीरे-धीरे लम्बे होकर बेलनाकार रचना का रूप ले लेते हैं।

आधार काय या काइनेटोसोम का निर्माण करने वाले सेन्ट्रिओल्स कोशिका-द्रव्य के अग्रस्थ भाग में स्थित **पूरोवर्ती फाइब्रोग्रेनुलर पदार्थ** (precursor fibro-granular material) के उत्तरोत्तर एकत्रित होने से बनते हैं।

कार्य (Functions)

1. कोशिका-विभाजन के समय तर्कु (spindle) का निर्माण करने मे सेन्ट्रिओल की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

2. पक्ष्मों एवम् कशाभ के काइनेटोसोम, सेन्ट्रिओल से ही विकसित होते है।

3. स्पर्मेटिड मे उपस्थित दो सेन्ट्रिओल मे से दूरस्थ सेन्ट्रिओल शुक्राणु के कशाभ का अक्षीय तन्तु (axial filament) बनाता है तथा स्वयं उसके काइनेटोसोम के समान कार्य करता है।

10. क्लोरोप्लास्ट (Chloroplast)

कृपया प्रश्न 18 देखिये।

11. गुणसूत्र (Chromosome) *(Jiwaji 1971)*

कृपया प्रश्न 21 देखिये।

12. डिऑक्सीराइबोन्यूक्लीक एसिड (DNA)

(Punjab 1967 ; Kanpur 70 ; Jiwaji 71 ; Sri Venkat. 72)

कृपया प्रश्न 26 देखिये।

13. डेस्मोसोम्स (Desmosomes)

कृपया प्रश्न 9 देखिये।

14. डाएकाइनेसिस (Diakinesis)

कृपया प्रश्न 3 देखिये।

15. इलेक्ट्रॉन अभिगमन प्रणाली (Electron Transport System)

कृपया प्रश्न 14 देखिये।

16. यूक्रोमेटिन (Euchromatin)

कृपया प्रश्न 20 देखिये।

17. एन्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम (Endoplasmic Reticulum)

(Osmania 1973 ; Raj. 70 ; Saurashtra 73)

कृपया प्रश्न 16 देखिये।

18. निषेचन (Fertilization)

कृपया प्रश्न 42 देखिये।

19. गॉल्जी उपकरण (Golgi complex)

(Meerut 1971 ; Jabalpur 73 : Gorakhpur 73)

कृपया प्रश्न 15 देखिये।

20. जीन (Gene) *(Delhi 1973)*

कृपया प्रश्न 24 देखिये।

21. आनुवंशिक कूट (Genetic Code)

कृपया प्रश्न 29 देखिये।

22. प्रोटीन संश्लेषण का आनुवंशिक नियन्त्रण (Genetic Control of Protein Synthesis)

कृपया प्रश्न 31 देखिये।

23. महागुणसूत्र (Giant Chromosome) *(Jabalpur 1973)*

कृपया प्रश्न 22 देखिये।

24. ग्लाइकोलिसिस (Glycolysis)

कृपया प्रश्न 14 देखिये।

25. युग्मकजनन (Gametogenesis) *(Gorakhpur 1973)*

कृपया प्रश्न 42 देखिये।

26. हेटेरोक्रोमेटिन (Heterochromatin)

कृपया प्रश्न 20 देखिये।

27. हेटेरोपिक्नोसिस (Heteropyknosis)

कोशिका विभाजन की विश्रामावस्था एवम् पूर्वावस्था में अधिकांश गुणसूत्री पदार्थ अकुण्डलित होकर अल्परंजित महीन धागों के रूप में होता है। किन्तु कुछ गुणसूत्र या उनके अंश संघनित रहते हैं और अभिरंजकों द्वारा गहरे अभिरंजित

होते हैं। इस परिघटना को **हेटेरोपिक्नोसिस** (heteropycnosis) कहते हैं। अतः **हेटेरोपिक्नोसिस कुछ गुणसूत्रों या उनके विशिष्ट भागों का वह गुण है जिसके द्वारा ये अधिक संघनित रहते हैं और केन्द्रकीय चक्र में अन्य गुणसूत्रों या उनके भागों की अपेक्षा अधिक गहरे अभिरंजित होते हैं।**

हेटेरोपिक्नोसिस अनेक जातियों के लिंग-गुणसूत्रों का विशिष्ट लक्षण है किन्तु इसे कुछ अन्य गुणसूत्रों में भी देखा जा सकता है। समस्त स्तनधारियों व ड्रोसोफिला के मादा जन्तुओं में दो X-गुणसूत्रों में से एक में हेटेरोपिक्नोसिस की क्रिया होती है। इस क्रिया में पूरा गुणसूत्र भी भाग ले सकता है या फिर यह मध्यनिविष्ट अथवा फिर सिरों पर ही होती है।

जब हेटेरोपिक्नोटिक गुणसूत्र गहरे अभिरंजित होते हैं तो इस क्रिया को **धनात्मक हेटेरोपिक्नोसिस** (positive heteropyknosis) कहते हैं, किन्तु *Bufo arenarum* में गुणसूत्र **ऋणात्मक हेटेरोपिक्नोसिस** (negative heteropyknosis) प्रदर्शित करते हैं।

28. समगुणसूत्र (Isochromosomes)

इस प्रकार के गुणसूत्रों की दोनों भुजाओं में समान जीन-विन्यास होता है। ये सेन्ट्रोमीयर पर से गुणसूत्र के विच्छिन्न होने के बाद समान जीन-विन्यास वाले सजातीय गुणसूत्रों के दो टेलोसेन्ट्रिक खण्डों के पुनः संयोग से बनते हैं।
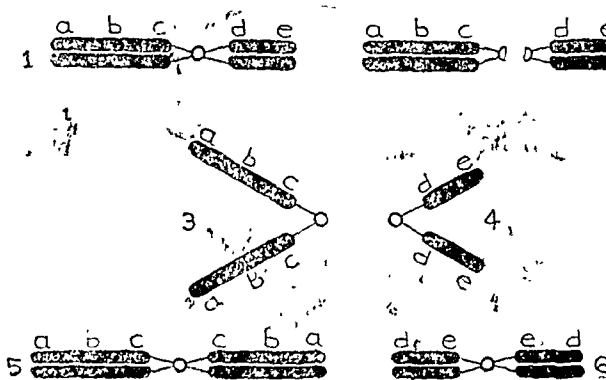
चित्र १४·४. समगुणसूत्र के निर्माण की विधि
(Process of formation of isochromosome)

अर्धसूत्री कोशिका-विभाजन की जाइगोटीन प्रावस्था में सजातीय गुणसूत्र युग्मों में आ जाते हैं। विकिरण के फलस्वरूप द्वयक (diad) के सेन्ट्रोमीयर पर से विच्छिन्न होने पर गुणसूत्रों के दो खण्ड बनते हैं। इनमें से प्रत्येक खण्ड सेन्ट्रोमीयर के एक भाग का बना होता है। इस पर दो सजातीय गुणसूत्रों के दो समान खण्ड होते हैं अर्थात् प्रथम गुणसूत्र खण्ड में जीनविन्यास ABC है और दूसरे द्वयक में DE (चित्र 14·4)। दोनों द्वयक खण्डों में से प्रत्येक एक गुणसूत्र का निर्माण करता है जिसकी दोनों भुजाएँ बराबर लम्बाई की होती हैं और जीन-विन्यास भी समान होता है।

29. अन्तरावस्था (Interphase)

कृपया प्रश्न 32 देखिये।

30. केरिओसोम या केन्द्रककाय (Karyosome)

कृपया प्रश्न 20 देखिये ।

31. केरियोटाइप (Karyotype) (*Madras 1966*)

किसी जीव, जाति, जीन्स अथवा समूह के गुणसूत्रों के एक सैट की उन भौतिक अथवा आकारिक विशेषताओं को **केरियोटाइप** कहते हैं जिनके द्वारा यह अन्य जीवों के गुणसूत्र सैटों से भिन्न होने के कारण पहचाने जा सकते हैं। केरियोटाइप के अन्तर्गत एक सैट मे गुणसूत्रों की संख्या, एक सैट के गुणसूत्रों के आकार मे आपेक्षिक सम्बन्ध, गुणसूत्रो की संरचना, उनके व्यवहार तथा आन्तरिक संरचना एवम् संघटन का अध्ययन किया जाता है । इन भौतिक लक्षणों के अतिरिक्त कोशिका-विभाजन के समय उनमे आकुचन तथा कुण्डलन की मात्रा मे भिन्नता भी किसी जीव के गुणसूत्रो को पहचानने में सहायक होती है ।

विभिन्न समूहों के जीवों मे पायी जाने वाली समानताओं को स्थापित करने में भी केरियोटाइप सहायक सिद्ध होता है । यह एक सर्वविदित सत्य है कि जीवों मे गुणसूत्रों की एक निश्चित सख्या होती है, अत: यह विभिन्न पेड़-पौधो एवम् जन्तुओ को वर्गीकरण मे स्थिति तथा जाति-इतिहास को ज्ञात करने में सहायता करता है। किसी जीव के केरियोटाइप को उसके गुणसूत्र समूह के चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है जिसको **इडियोग्राम** (idiogram) कहते है । इडियोग्राम में सजातीय गुणसूत्रो के युगलों को इस प्रकार विन्यसित किया जाता है कि सबसे बड़े गुणसूत्र सबसे पहले तथा छोटे गुणसूत्र क्रमानुसार उसके बाद आते है ।

32. क्रैब्स चक्र (Krebs Cycle) (*Jabalpur 1973*)

कृपया प्रश्न 14 देखिये ।

33. लैम्पब्रुश गुणसूत्र (Lampbrush Chromosomes) (*Jiwaji 1971 ; Sri Venkat. 70*)

कृपया प्रश्न 22 देखिये ।

34. लाइसोसोम (Lysosome) (*Nagpur 1969 ; Jiwaji 69 ; Delhi, 70, 73*)

कृपया प्रश्न 17 देखिये ।

35. अर्धसूत्री विभाजन (Meiosis) (*Indore 1967 ; Agra 72*)

कृपया प्रश्न 35 देखिये ।

36. मध्यावस्था गुणसूत्र (Metaphase Chromosomes)

कृपया प्रश्न 21 देखिये ।

37. सन्देशवाहक RNA (*m*RNA)

कृपया प्रश्न 26 देखिये ।

38. माइटोकॉन्ड्रिया (Mitochondria) (*Gorakhpur 1971, 73 ; Lucknow 71 ; Meerut 71 ; Osmania 73 ; Ravishankar 71*)

कृपया प्रश्न 13 देखिये ।

39. समसूत्रण (Mitosis) (*Raj. 1963 ; Patna 69*)

कृपया प्रश्न 32 देखिये ।

40. समसूत्री तर्कु (Mitotic Spindle) (*Kerala 1967, 68 ; Rajasthan 79*)

समसूत्री तर्कु एक तर्क्वाकार तन्तुमय रचना है जो समसूत्रण विभाजन के प्रोफेज के अन्तिम काल या मेटाफेज के प्रारम्भ में कोशिका के कोशिकाद्रव्य में बनता है। यह कोशिकाद्रव्य में दोनों सेण्ट्रियोल्स के बीच फैले हुए तन्तुओं के एक बण्डल के रूप में विकसित होता है। तन्तु प्रोटीन के पुनर्गठन के फलस्वरूप बनते हैं।

तर्कु का निर्माण केन्द्रकावरण के बाहर इसके विलुप्त होने के लगभग साथ-साथ ही प्रारम्भ होता है जो मेटाफेज के प्रारम्भ में पूर्ण हो जाता है। विमुख ध्रुवों पर स्थित दोनों सेण्ट्रियोल्स को मिलाने वाली मध्य रेखा तर्कु के अक्ष को प्रदर्शित करती है। तर्कु-तन्तु इस अक्ष के समान्तर विन्यसित होते हैं। तर्कु का मध्य अक्ष मध्यवृत्तीय रेखा (equator) कहलाता है। मेटाफेज प्रावस्था में गुणसूत्र तर्कु की मध्यवृत्तीय रेखा पर विन्यसित होते हैं।

तर्कु-तन्तु तीन प्रकार के होते हैं :—

1. अविरत तन्तु (Continuous fibres)—ये तर्कु के एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक फैले रहते हैं।

2. गुणसूत्री तन्तु (Chromosomal fibres)—ये तर्कु के एक ध्रुव से गुणसूत्र के सेण्ट्रोमीयर तक स्थित होते हैं।

3. अन्तःक्षेत्रीय तन्तु (Interzonal fibres)—ये पृथक् होते हुए क्रोमेटिड्स के सेण्ट्रोमीयर्स के बीच स्थित होते हैं।

भौतिक रूप से तर्कु-तन्तु लचीली जेली के समान पदार्थ के बने होते हैं किन्तु इनका रासायनिक संगठन SH समूहों द्वारा संयोजित प्रोटीन श्रृंखलाओं का होता है। एनाफेज प्रावस्था में इनके आकुंचन के फलस्वरूप गुणसूत्र ध्रुवों की ओर खिचते हैं)

चित्र 40. तर्कु की संरचना
(Structure of spindle)

41. न्यूक्लिओलस (Nucleolus)

(Delhi 1970)

न्यूक्लिओलाई गोलाकार या अण्डाकार काय हैं जो प्रत्येक प्राणि कोशिका में विभाजन की इण्टरफेज प्रावस्था में दृष्टिगत होते हैं। ये प्रोफेज में विलुप्त होकर टीलोफेज में पुनः दृष्टिगत होते हैं। सामान्यतः कोशिका में न्यूक्लिओलाई की संख्या गुणसूत्र समूहों की संख्या पर निर्भर करती है। अतः दैहिक कोशिकाओं में दो तथा युग्मकों के न्यूक्लिओलाई या गैमीट्स में केवल एक न्यूक्लिओलस होता है किन्तु एम्फीबियन डिम्बकोशिकाओं या ऊसाइट्स में इनकी संख्या कई सौ तक होती है।

यह समझा जाता है कि न्यूक्लिओलाई का गुणसूत्रों के क्रोमोसेण्टर से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है किन्तु White (1954) के अनुसार क्रोमोसेण्टर तथा न्यूक्लिओलाई के बीच कोई सम्बन्ध नहीं होता।

संरचना (Structure)—आकारिक रूप से प्रत्येक न्यूक्लिओलस दो भागों में भिन्नित होता है : **पार्स एमोर्फा** (pars amorpha) तथा **न्यूक्लिओलेमा** (nucleolemma)। पार्स एमोर्फा न्यूक्लिओलस का अमणिभ भाग है जो केन्द्रक विभाजन की

प्रोफेज प्रावस्था में लुप्त हो जाता है। न्यूक्लिओलेमा न्यूक्लिओलस का स्थायी भाग है जो केन्द्रक विभाजन के पूर्ण चक्र में बना रहता है। न्यूक्लिओलाई में RNA तथा क्षारीय फॉस्फेट्स एन्जाइम प्रचुर मात्रा में होते हैं।

उद्भव (Origin)—न्यूक्लिओलस गुणसूत्रों के प्रत्येक अगुणित समूह के किसी एक गुणसूत्र से किसी निश्चित क्षेत्र में निर्मित होता है, किन्तु अन्य गुणसूत्र भी इसके निर्माण में भाग लेते हैं। ऐनाफेज के अन्तिम काल में एक विशिष्ट आकार एवम् घनत्व वाली कणिकाएँ झुण्ड में एकत्रित होकर गुणसूत्र समूह के किसी एक गुणसूत्र से जुड़ जाती हैं। बाद में ये परस्पर समेकित होकर प्रौढ़ न्यूक्लिओलस बनाते हैं।

कार्य (Functions)

1. समसूत्रण विभाजन के लिए न्यूक्लिओलाई महत्त्वपूर्ण हैं। दो में से एक न्यूक्लिओलस की अनुपस्थिति से ही कोशिका-विभाजन स्थायी रूप से रुक जाता है।
2. ये केन्द्रक एवम् कोशिका-द्रव्य की परस्पर क्रिया से सम्बद्ध होते हैं।
3. ये प्रोटीन संश्लेषण में सहायक होते हैं।
4. ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में आनुवंशिक सूचनाओं की वंशागति में माध्यम का कार्य करते हैं।

42. न्यूक्लिओप्रोटीन्स (Nucleoproteins) *(Delhi 1970)*

न्यूक्लिओलस केन्द्रक के मुख्य एवम् सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक हैं। ये न्यूक्लीक एसिड्स एवम् प्रोटीन्स के यौगिक हैं। केन्द्रक में उपस्थित प्रोटीन्स विशिष्ट प्रकार के होते हैं जिनको दो वर्गों में बाँटा जा सकता है: **basic proteins** तथा **non-histone or acid proteins**।

1. बेसिक प्रोटीन्स (Basic proteins)—ये कम आण्विक भार वाले प्रोटीन हैं जिनका आण्विक भार 200–12000 के बीच होता है। इनका स्वभाव क्षारीय होता है। क्षार प्रोटीन्स की मात्रा DNA की मात्रा के समानुपाती होती है तथा इनका DNA के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। **प्रोटएमीन्स** (protamines) तथा **हिस्टोन्स** (histones) केन्द्रक में पाये जाने वाले मुख्य प्रोटीन्स हैं। हिस्टोन्स व्यापक रूप से पाये जाते हैं तथा **लाइसीन और आर्जीनीन** (lysine and argenine) के बने होते हैं। ये क्रोमेटिन पदार्थ के कुल भार का 55 प्रतिशत होते हैं। प्रोटएमीन्स का वितरण सीमित होता है तथा ये मुख्य रूप से मछलियों के शुक्राणुओं में पाये जाते हैं। इनमें आर्जीनीन प्रचुरता में पाया जाता है।

2. नॉन-हिस्टोन या अम्लीय प्रोटीन्स (Non-histone or acidic proteins)—नॉन-हिस्टोन प्रोटीन्स स्वभाव में अम्लीय होते हैं। ये गुणसूत्रों के अवशिष्ट प्रोटीन्स को ही प्रदर्शित करते है। इनमें **ट्रिप्टोफेन** (tryptophan) तथा **टाइरोसीन** (tyrosine) होते हैं। नॉन-हिस्टोन प्रोटीन्स में ट्रिप्टोफेन की मात्रा हिस्टोन्स की अपेक्षा बहुत अधिक होती है जो कोशिका की क्रियात्मक अवस्था पर निर्भर करती है। नॉन-हिस्टोन प्रोटीन्स केन्द्रक की विशिष्ट उपापचय क्रियाओं का नियमन करते हैं।

गुणसूत्रों या क्रोमेटिन पदार्थ में स्थित न्यूक्लिओप्रोटीन्स विभिन्न न्यूक्लीक अम्लों के संयोजित होने के लिए ढांचे का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त न्यूक्लिओ-हिस्टोन्स गुणसूत्रों के बनाये रखने तथा उनके गुणन से तथा न्यूक्लिओ-नॉनहिस्टोन्स केन्द्रक की विशिष्ट उपापचय क्रियाओं से सम्बद्ध होते हैं।

43. **ओपेरॉन (Operon)** (*Kerala 1973*)
कृपया प्रश्न 24 देखिये।

44. **प्रोटोप्लाज्म या जीवद्रव्य (Protoplasm)** (*Agra 1969 ; Lucknow 69, 71*)
कृपया प्रश्न 2 देखिये।

45. **असेचन जनन (Parthenogenesis)**
(*Agra 1960, 64 ; Allahabad 66 ; Patna 67 ; Gorakhpur 59 ; Vikram 62, 64, 68 ; Bhagalpur 63, 69 ; Jiwaji 68, 73 ; Kerala 67, 69 ; Lucknow 68 ; Rajasthan 68 ; Ravishankar 71 ; Jabalpur 73*)
कृपया प्रश्न 43 देखिये।

46. **पिनोसाइटोसिस (Pinocytosis)** (*Jiwaji 1972*)
कृपया प्रश्न 9 देखिये।

47. **आवस्था विपर्यासी सूक्ष्मदर्शी (Phase Contrast Microscope)** (*Kerala 1973*)
कृपया प्रश्न 1 देखिये।

48. **पोलीटीन गुणसूत्र (Polytene Chromosomes)** (*Gorakhpur 1971 ; Agra 71 ; Delhi 74*)
कृपया प्रश्न 22 देखिये।

49. **ध्रुव काय (Polar Body)** (*Delhi 1973 ; Meerut 72*)
कृपया प्रश्न 41 देखिये।

50. **प्रोटीन संश्लेषण (Protein Synthesis)** (*Delhi 1974*)
कृपया प्रश्न 30 देखिये।

51. **राइबोसोम्स (Ribosomes)** (*Delhi 1970 ; Madras 66 ; Jiwaji 71, 72*)
कृपया प्रश्न 17 देखिये।

52. **राइबोन्यूक्लीक एसिड (RNA)**
(*Punjab 1967 ; Raj. 70 ; Gorakhpur 73 ; Madras 66 ; Ranchi 70 ; Kanpur 71 ; Karnatak 72 ; Shivaji 71*)
कृपया प्रश्न 26 देखिये।

53. **प्लैज्मा झिल्ली का पारगम्यता में महत्त्व (Role of Permeability of Plasma Membrane)** (*Agra 1971*)
कृपया प्रश्न 56 देखिये।

54. **विशेष गुणसूत्र (Special Chromosomes)** (*Jiwaji 1972*)
कृपया प्रश्न 22 देखिये।

55. **शुक्रजनन (Spermatogenesis)** (*Jabalpur 1973*)
कृपया प्रश्न 38 देखिये।

56. **यूनिट मैम्ब्रेन (Unit Membrane)** (*Delhi 1973*)
कृपया प्रश्न 9 देखिये।

57. **वाटसन एवम् क्रिक मॉडल (Watson and Crick Model)** (*Delhi 1973*)
कृपया प्रश्न 2 देखिये।

आनुवंशिकी या जैनेटिक्स

(HEREDITY OR GENETICS)

1
मेण्डेलिज्म
(Mendelism)

प्रश्न 1. उचित उदाहरणों की सहायता से मेण्डल के नियमों का उल्लेख कीजिये।

Describe Mendel's laws of inheritance with the help of suitable examples.

(*Gorakhpur 1961, 69, 71 ; Punjab 66 ; Poona 66 ; Madras 66 ; Meerut 70, 72 ; Kerala 68 ; Agra 66 ; Bombay 65 ; Lucknow 62 ; Jiwaji 72 ; Jabalpur 72*)

मेण्डेलिज्म एवम् इसके महत्त्व पर एक निबन्ध लिखिये।

Write an essay on Mendelism and its applications.

(*Kanpur 1970 ; Agra 72 ; Kanpur 68, 70*)

मेण्डल के प्रथम नियम का वर्णन कीजिये। उदाहरण द्वारा इसे समझाइये तथा इसके महत्त्व का उल्लेख भी कीजिये।

Explain the first law of Mendel. Explain it by means of an example and mention its application. (*Kanpur 1971*)

किसी जन्तु की सन्तति अपनी बहुत-सी विशेषताओं में अपने माता-पिता के समान होती है अर्थात् सन्तानों में अपने माता-पिता के गुण ही पाये जाते हैं जो एक पीढी से दूसरी पीढी में बिना परिवर्तन के पहुँचते रहते हैं। विज्ञान की वह शाखा जो इन आनुवंशिक गुणों के वंशानुक्रमण (inheritance) से सम्बन्धित है—**आनुवंशिक विज्ञान** (science of genetics) कहलाती है। इस विज्ञान की नींव प्रसिद्ध आस्ट्रियन पादरी **ग्रीगर जॉन मेण्डल** (Gregor John Mendel, 1822–84) ने डाली थी। इसके द्वारा प्रतिपादित नियमों (principles) को **मेण्डेलिज्म** के नाम से पुकारा जाता है।

मेण्डल का कार्य—मेण्डल ने अपना कार्य मटर के पौधे (*Pisum sativum*) के संकरण से प्रारम्भ किया। मटर के पौधों के विभिन्न गुणों को अलग-अलग लेकर उसने लगभग आठ वर्षों तक प्रयोग किये। उसकी कार्य-प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं :—

1. उसने पौधों के विभिन्न गुणों को एकक मानकर प्रयोग किये तथा पूर्ण पौधे को एक नहीं माना जैसा कि इससे पहले के वैज्ञानिक करते आये थे। अतः अपने प्रयोगों मे उसने एक या दो पूर्णतः भिन्न गुणों के वंशानुक्रमण का अध्ययन किया।

2. उसने विभिन्न पीढियों की सन्तति का लेखाबद्ध हिसाब रखा।

3. प्रयोग में लिये गये पदार्थ तथा गुणों के लिए उसकी पसन्द तथा छँटाव भी कमाल का था।

मेण्डल ने लगभग आठ वर्ष तक जंगली मटर (*Pisum sativum*) के पौधे पर प्रयोग किये। मटर के लाल तथा सफेद फूलों में उसने **पर-परागण** (cross-pollination) किया तथा देखा कि इस प्रकार बने बीजों से जो पौधे उगते हैं उनमें केवल लाल फूल ही निकलते हैं सफेद नहीं। इन पौधों से स्वयं-परागण (self-pollination) द्वारा बने बीजों को जब उगाया गया तो पौधों पर लाल तथा सफेद दोनों प्रकार के फूल लगे ; किन्तु इनमें लाल फूल वाले पौधों की संख्या सफेद वालों से लगभग तीन गुनी थी। इन प्रयोगों को लगभग आठ वर्षों तक दुहराने पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यद्यपि लाल व सफेद दोनों अलग रंग हैं किन्तु साथ आने पर लाल रंग सफेद रंग को छिपा देता है क्योंकि लाल रंग (dominant) सफेद रंग (recessive) से अधिक प्रबल है जिससे पहली पीढ़ी में केवल लाल रंग के फूल बनते हैं किन्तु दूसरी पीढ़ी में ये दोनों रंग कुछ मात्रा में अलग हो जाते हैं जिससे इनमें कुछ सफेद फूल भी निकलते हैं।

मेण्डल के प्रयोग को इस प्रकार दिखाया जा सकता है :—
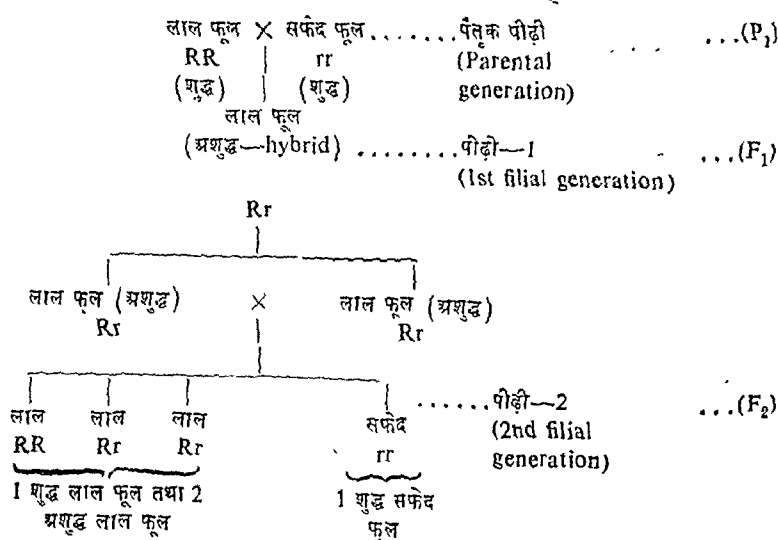
चित्र 1. मेण्डल के प्रयोग के लेखा का चित्रीय निरूपण

मेण्डल ने उपर्युक्त निरीक्षण का निम्न प्रकार से विवेचन किया :—

1. पुष्पों का सफेद व लाल रंग एक जोड़ी विपरीत गुण (contrasting or alternative characters) हैं जो गैमीट कोशिकाओं के कोशिका द्रव्य (cytoplasm) में किसी न किसी रूप में अवश्य पाये जाते हैं। मेण्डल ने ऐसी रचनाओं को फैक्टर (factor) या यूनिट (unit) का नाम दिया। इसके अनुसार प्रत्येक गुण के लिए एक-एक यूनिट होता है जो आनुवंशिक गुणों को माता-पिता से सन्तान में ले जाता है। यदि लाल रंग को R से इंगित किया जाये और सफेद रंग को r से तो युग्मज में RR, Rr या rr में से कोई भी दो यूनिट एक साथ आ सकते हैं। इनके बीच वाला संकर (hybrid) है जिसमें लाल व सफेद दोनों रंग

के यूनिट एक साथ उपस्थित हैं किन्तु इसमें केवल लाल फूल ही आते हैं। इसका कारण यह है कि लाल रंग सफेद रंग को दबा लेता है। अतः R के निमित्त (लाल रंग) r के निमित्त (सफेद रंग) को दबा लेता है या R प्रभावी (dominant) है तथा r अप्रभावी (recessive) है। मेण्डल ने इसे एक नियम माना और इसे प्रधानता का नियम (Law of dominance) कहा।

2. मेण्डल ने देखा कि यदि F_1 संकरों का स्वयं-परागण किया जाये तो इससे बने हुए बीजों के उगने पर लाल तथा सफेद फूलों वाले पौधे उगते हैं जिनमें 3 : 1 का अनुपात होता है, परन्तु इन तीन लाल फूल वाले पौधों में केवल एक शुद्ध है तथा शेष दो संकर हैं क्योंकि तीसरी पीढ़ी में इनमें से केवल एक से लाल फूल वाले पौधे बनते हैं तथा शेष दो से सफेद तथा लाल दोनों प्रकार के फूलों वाले पौधे बनते हैं।

अतः उसने कहा कि संकर बनने पर यद्यपि दोनों यूनिट एक साथ आ जाते हैं और पहली बार उनमें से केवल एक ही दिखाई देता है, जर्मप्लाज्म (germ-plasm) में दोनों यूनिट अलग-अलग रहते हैं और गैमीट बनने पर एक-दूसरे से अलग (segregate) हो जाते हैं। दो विपरीत गुणों (alternative characters) के इस प्रकार अलग-अलग हो जाने (segregation) की क्रिया मेण्डल के सिद्धान्त की विशेषता है और मेण्डल का दूसरा नियम है। इसे पार्थक्य का नियम (Law of segregation) कहते हैं।

3. मेण्डल ने कुछ प्रयोगों में एक से अधिक गुणों की आनुवंशिकी का एक साथ अध्ययन किया। उसने मटर के बीजों के दो विपरीत गुणों को एक साथ लिया :—

(*i*) गोल व पीले, (*ii*) झुर्रीदार व हरे

उसने देखा कि इस प्रकार के पौधों में परसेचन से बने पहली पीढ़ी के सभी बीज गोल तथा पीले होते हैं, किन्तु दूसरी पीढ़ी में चार प्रकार के बीज बनते हैं :—

1. गोल पीले 9
2. पीले झुर्रीदार 3
3. हरे गोल 3
4. हरे झुर्रीदार 1
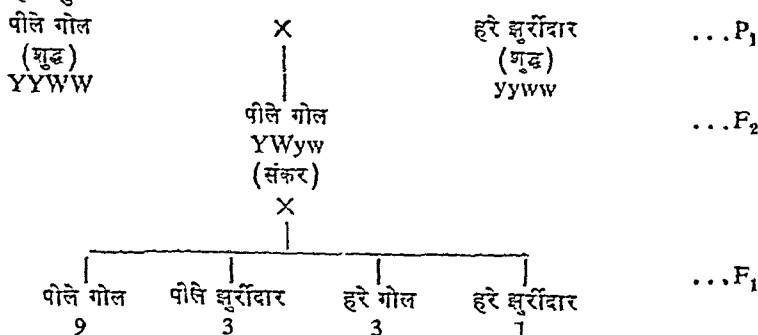
चित्र 2. द्विसंकर प्रयोग के लेखा का चित्रीय निरूपण

F_1 पीढ़ी की सन्तति के गुणों को हम निम्न चार्ट द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं :—

उपर्युक्त चार्ट का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि पीले गोल तथा पीले झुर्रीदार में 9 : 3 का एवम् हरे गोल तथा हरे झुर्रीदार में 3 : 1 का अनुपात है।
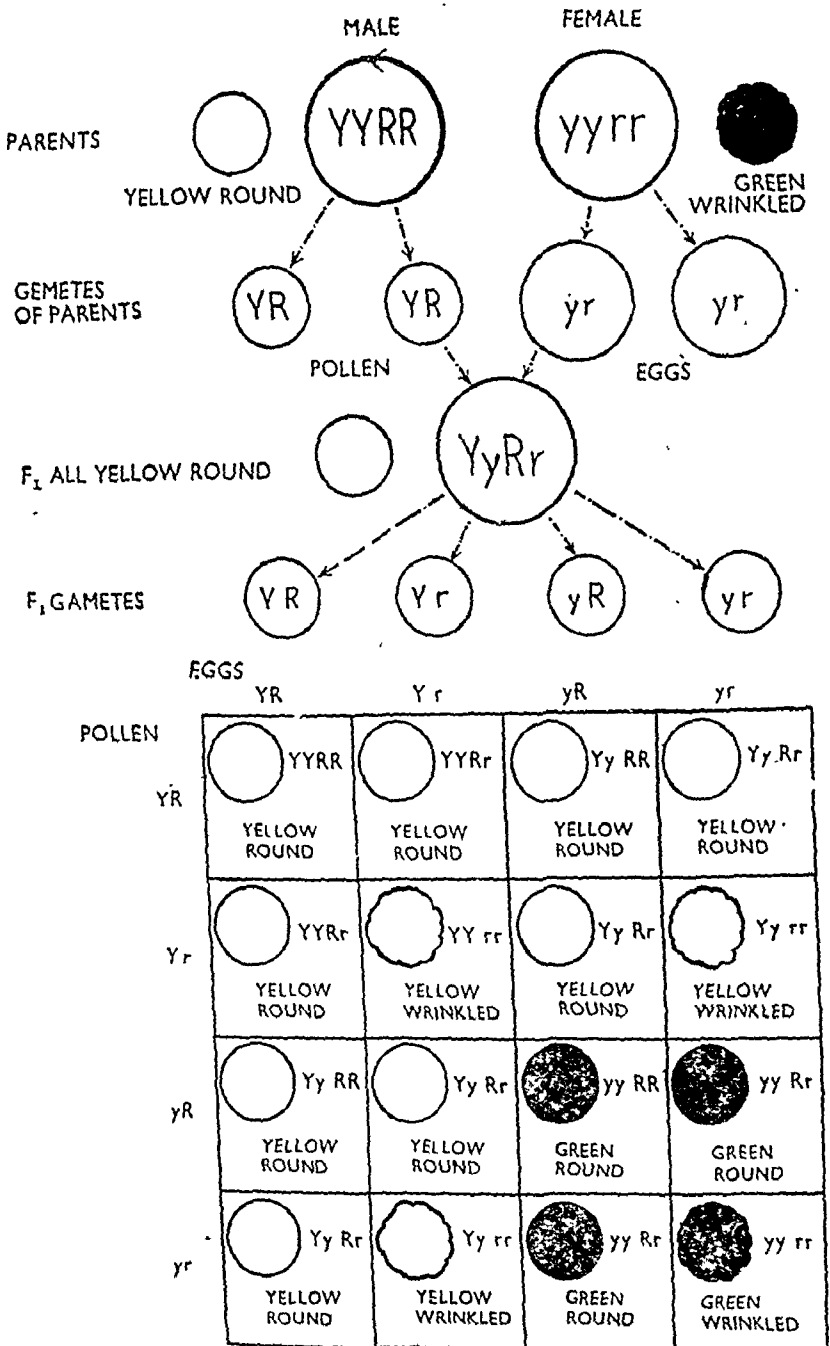
चित्र 3. मटर के पौधों में द्विगुण प्रसंकरण (Dihybrid cross in pea plants)

इस प्रकार बने 16 पौधों में से केवल चार शुद्ध होते है।

इस परीक्षण से मेण्डल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विपरीत गुणों की एक जोडी दूसरे गुणों की जोडियों से किसी भी प्रकार सम्बन्वित नहीं होती तथा युग्मक बनने पर विभिन्न संयोगों में युग्मकों में पहुँचती है, जैसे पीले और हरे रंग की जोड़ी गोल व झुर्रीदार जोड़ी से बिल्कुल स्वतन्त्र है। संकर पौधों में एक बार आने के पश्चात् ये जोड़ियाँ किसी भी प्रकार सम्बन्धित होकर युग्मकों में पहुँच सकती हैं। पीला रंग गोल या झुर्रीदार गुण के साथ आ सकता है। यही कारण है कि द्वितीय पीढ़ी में पीले गोल, पीले झुर्रीदार, हरे गोल तथा हरे झुर्रीदार बीज बनते है किन्तु उनका अनुपात 9 : 3 : 3 : 1 होता है।

इस नियम को मेण्डल ने **स्वतन्त्र संव्यूहन का नियम** (Law of independent assortment of gametes) का नाम दिया है। मेण्डल के नियमों का निम्न प्रकार से संक्षेप में वर्णन किया जा सकता है :—

1. प्रधानता का नियम (Law of dominance)—इस नियम के अनुसार जन्तुओं के गुणों को जोड़ों (pairs) में बाँटा जा सकता है और प्रत्येक जोड़ी के दोनों गुण इस प्रकार सम्बन्धित होते है कि अगर दोनों गुण एक साथ ही जन्तु में उपस्थित हों तो उनमें से एक ही प्रौढ़ जन्तु में दृष्टिगत होता है। यह गुण **प्रभावी** गुण (dominant) कहलाता है तथा दूसरा गुण जो अपना प्रभाव प्रदर्शित नहीं कर सकता अप्रभावी गुण (recessive character) कहलाता है।

2. पार्थक्य का नियम (Law of segregation)—एक जोड़ी के गुण युग्मक बनने के समय अलग हो जाते हैं अर्थात् युग्मक में साथ रहने पर भी ये गुण मिलकर समाप्त नहीं हो जाते वरन् अपना अस्तित्व बनाये रखते है।

3. स्वतन्त्र संव्यूहन का नियम (Law of independent assortment)—जब दो जन्तु दो या दो से अधिक गुणों में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, उनमें एक गुण के वंशानुसंक्रमण पर दूसरे गुणों की उपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मेण्डेलिज्म का आर्थिक महत्त्व (Economic importance of Mendelism)—लगभग तीन दशाब्दियों तक मेण्डल का कार्य ब्रून् नेच्युरल हिस्ट्री सोसाइटी (Brünn Natural History Society) में ऐसे ही बिना किसी महत्त्व के पड़ा रहा। किन्तु de Vries, Correns तथा Tschermak नामक तीन वैज्ञानिकों ने इसके कार्य के महत्त्व को समझा और उसके नियमों को **'मेण्डल के आनुवंशिकी नियम'** के नाम से प्रचलित किया। तब से इन नियमों का नस्लों के सुधार में व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है। मुर्गी पालन में इसके नियमों से मुर्गियों एवम् अण्डों की नस्ल सुधारने में सहायता ली जाती है। संकरण द्वारा घोड़ो व कुत्तों की अनेक नस्लें उत्पन्न की गई है तथा अनाज की अनेक रोग-रोधी एवम् रतुआ-रोधी किस्में विकसित की गई हैं। सुजनन विज्ञान (eugenics) भी मेण्डेलिज्म पर ही आधारित है।

प्रश्न 2. मेण्डल के नियमों का उल्लेख कीजिये।

मटर के गोल एवम् पीले बीजों का मटर के हरे एवम् झुर्रीदार बीजों के साथ संकरण किया गया। F_1 पीढ़ी के सभी मटर के बीज पीले एवम् गोल थे। F_2 पीढ़ी की फीनोटाइप का अनुपात ज्ञात कीजिये।

State the laws of Mendel.

Yellow and round peas are crossed with green and wrinkled peas. All the peas in F_1 generation are yellow and round. Work out the phenotype ratio of F_2 generation. *(Nagpur 1967)*

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

प्रश्न 3. उदाहरण सहित मेण्डल के द्विसंकरण अनुपात का उल्लेख कीजिये।

Explain with suitable examples "Mendelian dihybrid ratio."

(Poona 1965)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

प्रश्न 4. ढोरों में सींगों की अनुपस्थिति (P) सींगों की उपस्थिति (p) पर प्रभावी है।

एक साँड का तीन गायों के साथ मैथुन कराया गया। सींगयुक्त गाय 'A' से सींगविहीन बछड़ा उत्पन्न होता है। किन्तु सींगयुक्त गाय 'B' से सींगयुक्त बछड़ा उत्पन्न होता है तथा सींगविहीन गाय 'C' से भी सींगयुक्त बछड़ा पैदा होता है। चारों पैतृक जन्तुओं की जीनोटाइप ज्ञात कीजिये।

इस प्रयोग में उपयुक्त आनुवंशिक सिद्धान्तों का विवरण दीजिये।

In cattles, hornless condition (P) is dominant over horned (p).

A certain bull is bred to three cows. With *Cow A* which is horned a hornless calf is produced ; with *Cow B* also horned, a horned calf is produced ; with *Cow C* which is hornless, a horned calf is produced. What are genotypes of the four parents ?

Explain the genetic principle involved in the experiment.

(Poona 1967)

(*i*) गाय A के साथ—गाय A (सींगो वाली) तथा साँड के मैथुन से सीग-विहीन बछड़ा पैदा होता है, अर्थात्

सीगयुक्त गाय × साँड
↓
सीगविहीन बछड़ा

क्योंकि सीगो की उपस्थिति अप्रभावी गुण (recessive character) है, अतः सीग वाली गाय pp होगी। बछड़ा सीगविहीन है अतः इसमे दो प्रकार के गुणो की उपस्थिति की सम्भावना है (*i*) PP अथवा (*ii*) Pp। किन्तु गाय A में pp जीन्स है अतः बछड़ा विषमयुग्मज (heterozygote) होगा एवम् इसमें Pp जीन्स उपस्थित होगे। फलस्वरूप साँड सीगविहीन होगा। यह समयुग्मज या विषमयुग्मज हो सकता है। अतः इसमे PP या Pp जीन्स होनी चाहिएँ।

सीगयुक्त गाय × सीगविहीन साँड
pp | Pp अथवा PP
↓
बछड़ा सीगविहीन
Pp

(*ii*) गाय B के साथ—सीगों वाली गाय B। उसी साँड (सींगविहीन) के साथ मैथुन के फलस्वरूप सीगों वाला बछड़ा बनता है। सीगों वाला बछड़ा बनने से

यह स्पष्ट होता है कि साँड विषमयुग्मज है। अतः उसमें Pp जीन्स पाये जाते हैं।

सींगयुक्त गाय × सींगविहीन साँड
↓
बछड़ा सींगयुक्त

सींगयुक्त बछड़ा—pp.

सींगयुक्त गाय—pp.

अतः सींगविहीन साँड Pp होगा।

सींगयुक्त गाय × सींगविहीन साँड
pp | Pp
↓
सींगयुक्त बछड़ा
pp

(*iii*) गाय C के साथ—सींगविहीन गाय C सम अथवा विषमयुग्मजी हो सकती है अर्थात् यह PP अथवा Pp हो सकती है। इसके साथ विषमयुग्मजी सींग-विहीन साँड (Pp) मैथुन करता है। इसके फलस्वरूप बना बछड़ा सींगयुक्त होता है। यह अप्रभावी है, अतः बछड़ा समयुग्मजी होगा। यह तभी सम्भव है जबकि गाय भी विषमयुग्मजी हो। अन्य परिस्थितियों में अर्थात् दोनों गाय तथा साँड के सम-युग्मजी अथवा दोनों में से एक के समयुग्मजी तथा दूसरे के विषमयुग्मजी होने पर ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। अतः

सींगविहीन गाय × सींगविहीन साँड
Pp | Pp
↓
सींगयुक्त बछड़ा
pp

इन सभी प्रयोगों से मेण्डल के आनुवंशिकता के निम्न नियम प्रदर्शित होते हैं :—

(*i*) प्रधानता का नियम (Law of dominance)

(*ii*) पृथक्करण का नियम (Law of segregation)

नियमों के लिए कृपया प्रश्न 1 देखिये।

प्रश्न 5. मेण्डल के पृथक्करण के नियमों का उल्लेख कीजिये।

यदि लम्बाई युग्म विकल्पी 'T' से तथा बौनापन युग्म विकल्पी 't' से प्रदर्शित किये जायें तो बताइये कि निम्न संकरणों में जनकों से किस-किस प्रकार के युग्मक बनेंगे तथा उनसे उत्पन्न सन्तति में लम्बे एवम् बौनों का क्या अनुपात होगा।

(i) State Mendel's law of segregation.

(ii) Let the allele for tallness be represented by 'T' and the allele for dwarfness by 't'. What will be the gametes produced by the parents and the height of the offsprings (tall and dwarf) from each of the following crosses :

(*a*) Tt×tt

(*b*) TT×Tt

(*c*) Tt×Tt

(*i*) **पृथक्करण का नियम** (Law of segregation)—
कृपया प्रश्न 1 देखिये।

(*ii*) ज्ञात है— लम्बा—T
बौना—t

(*a*) Tt×tt **में संकरण :**

	T	t
t	Tt	tt
t	Tt	tt
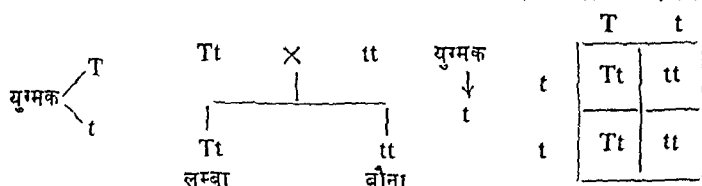
अत: लम्बे तथा बौने दोनों प्रकार के जीव समान संख्या में बनते हैं।

	T	t
T	TT	Tt
T	TT	Tt
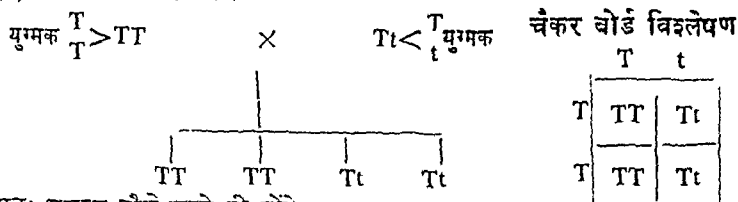
अत: समस्त पौधे लम्बे ही होंगे।

युग्मक—लम्बे समयुग्मजी पौधों से केवल एक ही प्रकार के युग्मक बनते हैं क्योंकि सभी में T जीन्स उपस्थित है। लम्बे विषमयुग्मजी पौधों से दो प्रकार के युग्मक बनते है। इनमें से आधों में T तथा शेष आधों मे t होगा।

अत: समस्त पौधे लम्बे होंगे किन्तु इनमें से आधे समयुग्मजी तथा शेष विषययुग्मजी होंगे।

चैकर बोर्ड विश्लेषण

	T	t
T	TT	Tt
t	Tt	Tt
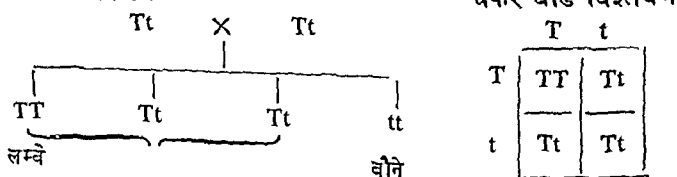
अत: लम्बे : बौने 3 : 1 के अनुपात में होंगे।
दोनों पैतृक पौधो से दो प्रकार के युग्मक बनते है :—

50% युग्मक—T
50% युग्मक—t

अत: लम्बे एवम् बौने पौधे 3 : 1 के अनुपात में बनते हैं। किन्तु तीन लम्बों में से केवल एक ही समयुग्मजी होता है, शेष दो विषमयुग्मजी होते है।

प्रश्न 6. फलमक्खी में सीपिया नेत्र, लाल नेत्र से अप्रभावी है और वक्र पंख सीधे पंख से अप्रभावी है। यदि शुद्ध-वंशीय सीपिया नेत्र-युक्त सीधे पंख वाली मक्खी का जनन-संभोग शुद्ध-वंशीय लाल नेत्र वाली वक्र पंखधारी मक्खी के साथ कराया जाये तो F_1 पीढ़ी में कितने समलक्षणी उत्पन्न होंगे ? यदि F_1 पीढ़ी की दो मक्खियों

का जनन-सम्भोग कराया जाये तो F_2 पीढ़ी में कौन-से समलक्षणी तथा किस अनुपात में उत्पन्न होंगे तथा F_2 पीढ़ी में कितने प्रकार के समजीवी उत्पन्न होंगे ?

In the fruit fly, sepia eye is recessive to red eye, and curved wing is recessive to straight wing. If a pure-breeding sepia-eyed, straight-winged fly is mated with a pure-breeding red eyed, curved-winged fly, what phenotypes will appear in the F_1 generation ; If F_1 flies are allowed to mate, what phenotypes will occur in the F_2 generation and in what ratio ? And how many different genotypes will occur in F_2 generation ? *(B.H.U. 1969)*

ज्ञात है कि फलमक्खी मे—

लाल नेत्र—प्रभावी RR
सीपिया नेत्र—अप्रभावी rr
सीधा पंख—प्रभावी SS
वक्र पंख—अप्रभावी ss
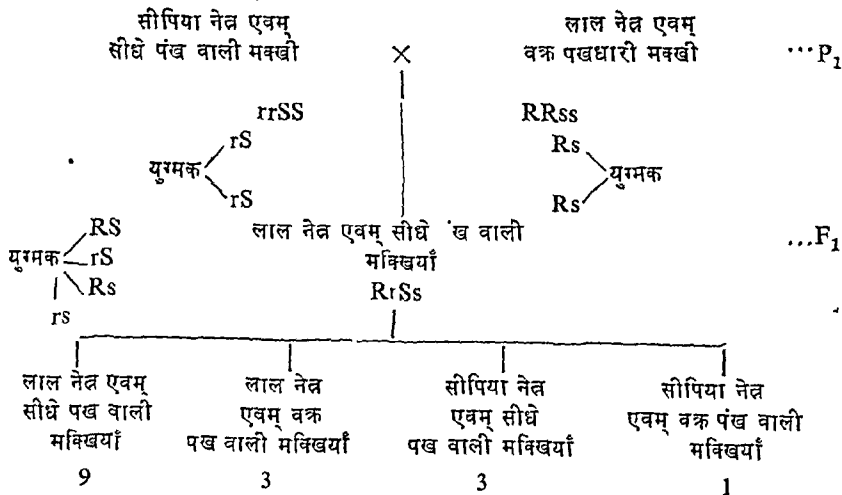
	RS	rS	Rs	rs
RS	RS RS	RS rS	RS Rs	RS rs
rS	RS rS	rS rS	rS Rs	rS rs
Rs	RS Rs	rS Rs	Rs Rs	Rs rs
rs	RS rs	rS rs	Rs rs	rs rs

लाल नेत्र तथा सीधे पंख वाली मक्खियाँ (RS)—9
लाल नेत्र तथा वक्र पंख वाली मक्खियाँ (Rs)—3
सीपिया नेत्र तथा सीधे पंख वाली मक्खियाँ (rS)—3
सीपिया नेत्र व वक्र पंख वाली मक्खियाँ (rs)—1

अतः F_2 पीढ़ी में उपर्युक्त चार प्रकार की समलक्षणी मक्खियाँ उत्पन्न होती हैं किन्तु समजीनता (genotype) के आधार पर इसमें 9 प्रकार की मक्खियाँ उत्पन्न होती हैं—

1. RRSS–1
2. RRSs–2
3. RRss–1
4. RrSS–2
5. RrSs–4
6. Rrss–2
7. rrSs–2
8. rrss–1
9. rrSS–1

प्रश्न 7. स्वतन्त्र संव्यूहन के नियम का उल्लेख कीजिये।

State the law of independent assortment. (*B.H.U. 1965*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

2

सहलग्नता एवम् क्रॉसिंग ओवर

(Linkage and Crossing-over)

प्रश्न 8. सहलग्नता की क्रिया का वर्णन कीजिये तथा इसके महत्त्व को समझाइये।

Describe the process of linkage and give its significance.

(*Kerala 1967 ; Punjab 69 ; Gorakhpur 71*)

सहलग्नता (Linkage)

बेटसन तथा **पन्नेट** (Bateson and Punnett, 1906) ने जामनी फूल तथा लम्बे परागकण के गुण वाले मटर के पौधों का लाल फूल तथा गोल परागकण वाले मटर के पौधों के साथ संकरण करने पर पाया कि द्वितीय फीलियल पीढ़ी (second filial generation) में मेण्डल के अनुसार 9 : 3 : 3 : 1 के अनुपात में सन्तति पौधे नहीं बनते अपितु उनमें 14 : 1 : 1 : 3·5 का अनुपात है। इनमें पैतृक संयोग (parental combinations) नये संयोगों से सात गुने हैं। अतः मेण्डल का **स्वतन्त्र संव्यूहन का नियम** इस संकरण में प्रयोग में नहीं आता।

बेटसन तथा **पन्नेट** ने पैतृक संयोगों की अधिकता को देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि एक ही पैतृक पौधे से आने वाले समस्त गुणों के युग्म विकल्पियों (alleles) में एक साथ ही युग्मक में लाने की प्रवृत्ति होती है तथा वे नयी पीढ़ियों मे एक साथ ही वंशागत होते है। इसी प्रकार दो भिन्न-भिन्न पैतृक पौधों से आने वाले गुणों के युग्मक-विकल्पियों की प्रवृत्ति अलग-अलग युग्मकों में पहुँचने की होती है। अतः ये नयी पीढ़ियों में स्वतन्त्रतापूर्वक अलग-अलग वंशागत होते हैं। युग्म-विकल्पियों की प्रथम विशेषता को **संलग्नता** (coupling) तथा दूसरी विशेपता को **विलग्नता** (repulsion) कहा गया है। **मारगन** (Morgan) के अनुसार संलग्नता तथा विलग्नता एक ही क्रिया के दो पहलू हैं तथा यह **सहलग्नता** (linkage) कहलाती है। अत. **"सहलग्नता** (linkage) **सहलग्न जीन्स** (linked genes) **की वह विशेषता है जिसके अनुसार वे वंशानुक्रमण की क्रिया में साथ-साथ ही वंशागत होते हैं।"**

मारगन के अनुसार सहलग्नी जीन्स (linked genes) अपने मूल संयोगों में इसलिए रहते हैं क्योंकि वे एक ही गुणसूत्र पर लगे होते हैं। सहलग्नता की यथार्थता (strength of linkage) सहलग्नी जीन्स के बीच की दूरी पर निर्भर करती है। सहलग्नी जीन्स के बीच की दूरी बढ़ते जाने पर उनके साथ-साथ वंशागत होने के अवसर कम होते जाते है।

अब तो यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि प्रत्येक जीव में हजारों जीन्स होते हैं। किन्तु प्रत्येक जीव में गुणसूत्रों की संख्या सीमित होती है। अतः प्रत्येक गुणसूत्र में कई सौ जीन्स स्थित होते हैं। एक जोड़ी गुणसूत्रों पर स्थित समस्त युग्मविकल्पी (alleles) एक **सहलग्न समूह** (linkage group) बनाते हैं। अतः एक जीव में जितने जोड़ी गुणसूत्र पाये जाते हैं उतने ही सहलग्न समूह होते हैं।

द्विसंकरण (dihybrid cross) में पैतृक संयोगों की अधिकता का विवेचन करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। **बेटसन** (Bateson, 1930) ने यह माना कि पतृक एवम् अपैतृक संयोगों की संख्या में भिन्नता युग्मकों की गुणन दर (multiplication rate) में भिन्नता के कारण है। पैतृक संयोगों वाले युग्मकों में तेजी से गुणन होता है जबकि अपैतृक संयोगों वाले युग्मकों का गुणन अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है। लेकिन बेटसन का यह सिद्धान्त उचित नहीं है क्योंकि युग्मकों में कोई गुणन क्रिया नहीं होती। मारगन ने कहा है कि पैतृक संयोग जीन्स के एक ही गुणसूत्र पर स्थित होने के कारण होते हैं तथा जीन्स के अपैतृक या नये संयोग गुणसूत्रों के टूटने एवम् टूटे हुए टुकड़ों के पुनः मिलने के कारण होते हैं।

सहलग्नता के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं :—

1. ड्रोसोफिला (Drosophila)

सलेटी रग के शरीर तथा अपविकसित पंख वाली जंगली *ड्रोसोफिला* का
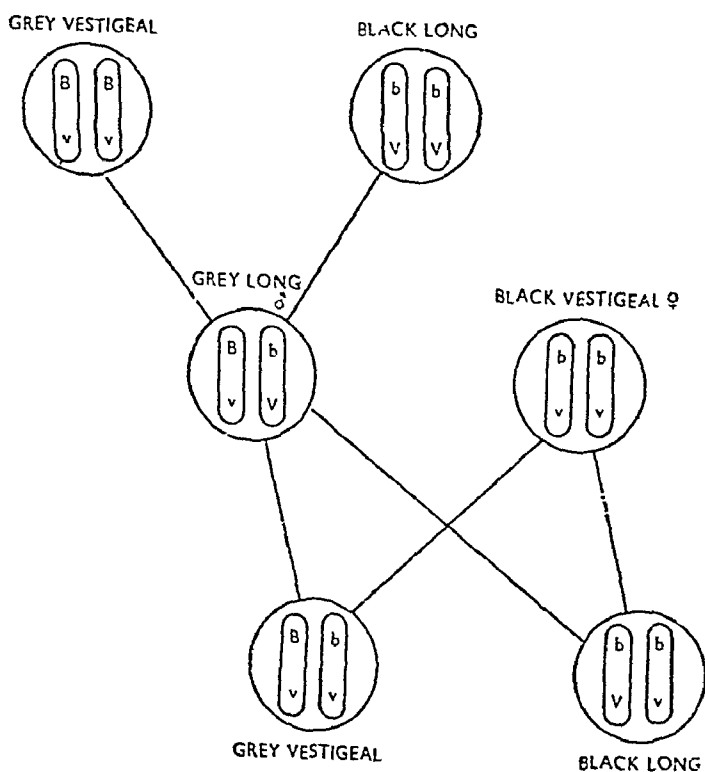
चित्र 4. ड्रोसोफिला में पूर्ण सहलग्नता
(Complete linkage in *Drosophila*)
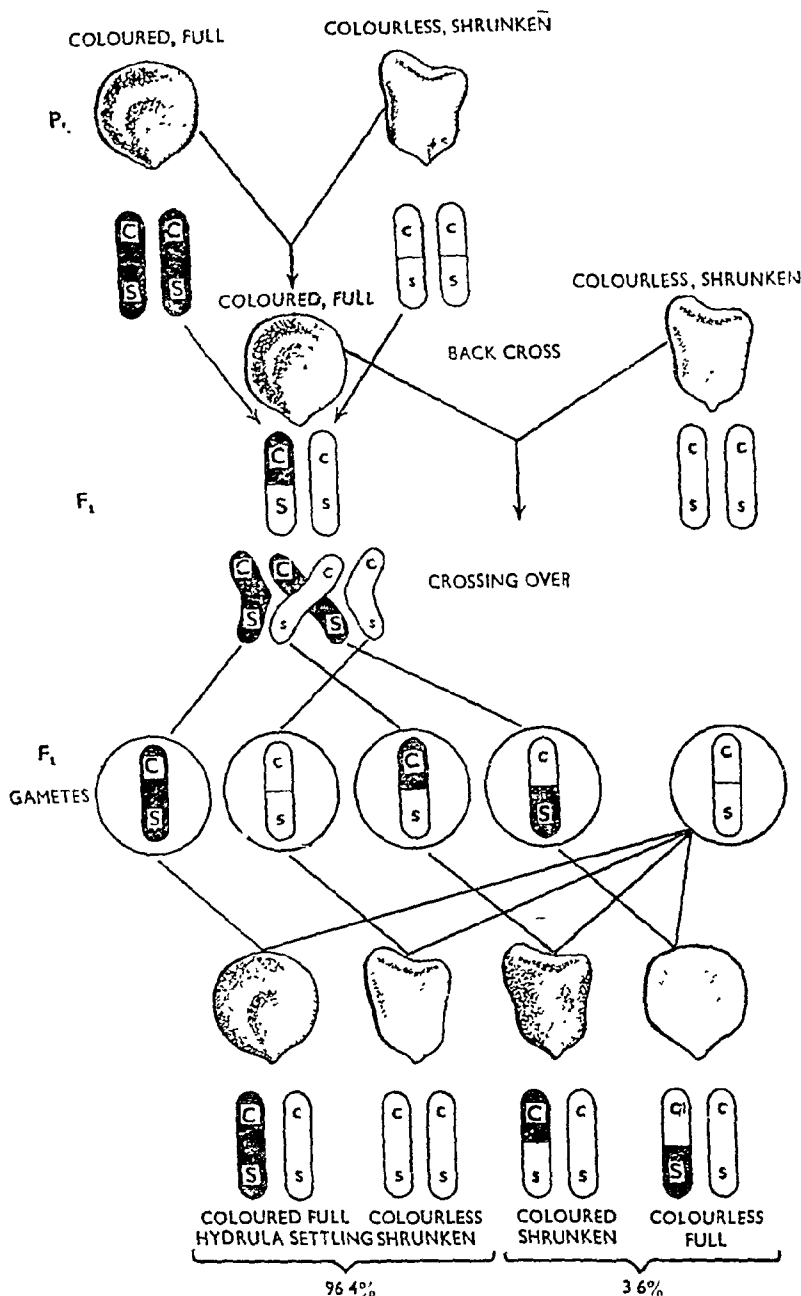
चित्र 5. मक्का में अपूर्ण सहलग्नता तथा क्रॉसिंग ओवर
(Incomplete linkage and Crossing over in maize)

मैथुन जब काले शरीर तथा लम्बे पंखों वाली ड्रोसोफिला के साथ किया गया तो F_1 पीढ़ी के समस्त जन्तुओं का शरीर सलेटी रंग का था तथा उनके पंख लम्बे एवम् पूर्ण विकसित थे। जब यह F_1 पीढ़ी का नर संकर ड्रोसोफिला अप्रभावी मादा के

साथ संकर (cross) करता है तो दो प्रकार के जन्तु बराबर संख्या में बनते हैं।

इस संकरण में केवल पैतृक संयोग बनते हैं और जीन्स अलग नहीं होते, अतः यह **पूर्ण सहलग्नता** (complete linkage) कहलाती है।

2. मक्का (Maize)

जब रंगीन तथा पूरी तरह भरे हुए बीजों वाले मक्का के पौधों एवम् रंगहीन तथा संकुचित बीजों वाले पौधों में संकरण किया जाता है तो F_1 पीढ़ी में केवल रंगीन तथा भरे हुए बीज वाले पौधे ही बनते हैं। इस पीढ़ी के मादा संकर पौधों को जब रंगहीन तथा संकुचित बीज वाले पौधों के परागकणों से संसेचित किया जाता है तो चार प्रकार के बीजों वाले पौधे बनते हैं जो इस प्रकार हैं :—

(1) रंगीन तथा भरे हुए (coloured and full) बीजों वाले पौधे
(2) रंगहीन तथा संकुचित (colourless and shrunken) बीजों वाले पौधे } 96·4%

(3) रंगीन तथा संकुचित (coloured and shrunken)
(4) रंगहीन तथा भरे हुए (colourles and full) } 3·6%

प्रयोगों से यह ज्ञात होता है कि पैतृक संयोग 96·4% बने तथा अपैतृक संयोग केवल 3·6% ही थे। ये नये अपैतृक संयोग इसलिए सम्भव हुए क्योंकि कुछ युग्मकों में इन गुणों के जीन्स एक-दूसरे से अलग हो गये अतः ये अपूर्ण सहलग्नता प्रदर्शित करते हैं।

सहलग्नता की यथार्थता (strength of linkage) के आधार पर सहलग्नता दो प्रकार की होती है :—

1. पूर्ण सहलग्नता (Complete linkage)—यह केवल उन्हीं स्थितियों में होती है जब सहलग्न जीन्स बहुत समीप स्थित होते हैं। समीप स्थित होने के कारण इनके अलग होने की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं।

2. अपूर्ण सहलग्नता (Incomplete linkage)—अपूर्ण सहलग्नता उन्हीं स्थितियों में सम्भव होती है जब सहलग्न जीन्स युग्मक बनते समय गुणसूत्रों के टूटने के कारण अलग हो जाते हैं और इन टुकड़ों के विनिमय (exchange) के फलस्वरूप नये संयोग बनकर युग्मकों में पहुँचते हैं। किन्तु इस विनिमय की सम्भावनाएँ बहुत कम होती हैं। इसी कारण पैतृक संयोगों की संख्या अपैतृक संयोगों की अपेक्षा अधिक होती है।

सहलग्नता का गुणसूत्री सिद्धान्त (Chromosomal theory of linkage)—इस सिद्धान्त के अनुसार—

(1) सहलग्न गुणों (linked characters) के जीन्स एक ही जोड़ी के गुणसूत्रों पर स्थित होते है।

(2) जीन्स की सहलग्नता रैखिक (linear) होती है।

(3) गुणसूत्र पर समीप स्थित जीन्स में सहलग्नता अधिक होती है तथा जैसे-जैसे उनकी दूरी बढ़ती जाती है उनकी सहलग्नता कम हो जाती है।

क्रॉसिंग ओवर (Crossing Over)

प्रश्न 9. क्रॉसिंग ओवर प्रक्रिया का वर्णन कीजिये एवम् इसका उपयोग बताइये।

Describe the mechanism of crossing over and mention its utility. (*Gorakhpur 1969*)

क्रॉसिंग ओवर से आप क्या समझते हैं और वंशानुक्रम में वह क्या कार्य करता है ?

What do you understand by crossing over and what part does it play in heredity ? (*Agra 1970*)

मेण्डल के नियमों के सत्यापन तथा आलम्बन के लिए विभिन्न जन्तुओं तथा पौधों पर प्रयोग करते समय **मॉरगन** (Morgan) ने देखा कि एक ही गुणसूत्र पर उपस्थित समस्त जीन्स में एक साथ ही रहने की प्रवृत्ति होती है। ये जीन्स सहलग्न
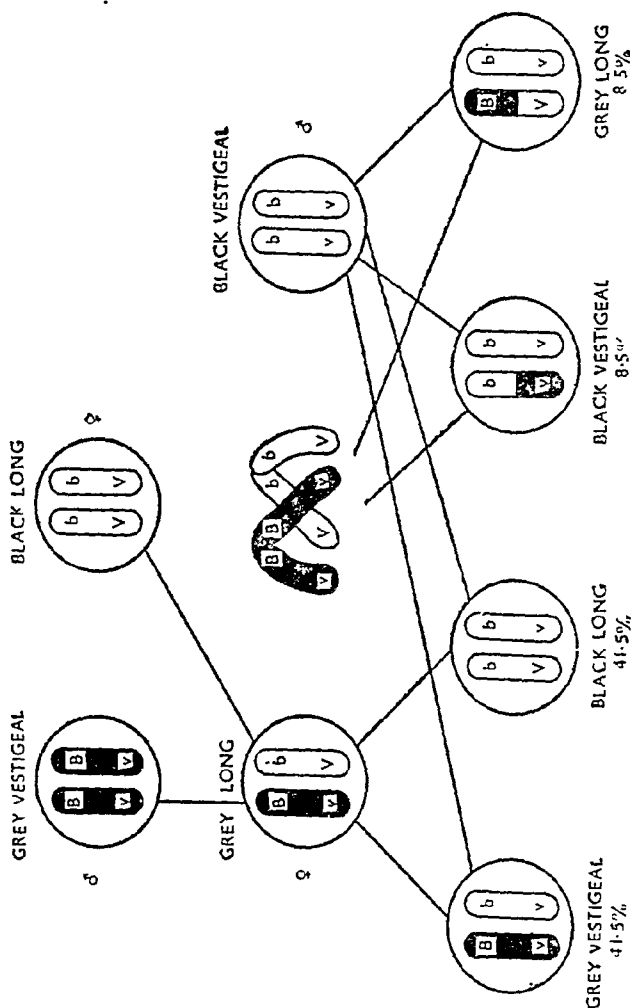
चित्र 6. ड्रोसोफिला में सहलग्नता तथा क्रॉसिंग ओवर की गुणसूत्री व्याख्या
(Diagrammatic representation of linkage and Crossing over in *Drosophila*)

जीन्स (linked genes) तथा इनका यह गुण सहलग्नता (linkge) कहलाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर एक गुणसूत्र जन्तु के जीवन पर्यन्त पूर्ण रहे तो उस पर उपस्थित

सभी जीन्स सदैव एक साथ रहने चाहिएँ अर्थात् सहलग्नता सदैव ही पूर्ण होनी चाहिए एवम् सहलग्न जीन्स कभी अलग नहीं होने चाहिएँ किन्तु यह देखा गया है कि ये जीन्स सदैव एक साथ नहीं रहते क्योंकि युग्मक बनते समय कुछ स्थितियों में ये जीन्स अलग हो जाते हैं। फलस्वरूप किन्हीं दो गुणों के पैतृक तथा अपैतृक दोनों प्रकार के संयोग बनते हैं। ये नये अपैतृक संयोग सहलग्न जीन्स के अलग होने के कारण बनते हैं। सहलग्न जीन्स के इस प्रकार अलग होने की क्रिया को **क्रॉसिंग ओवर** (crossing over) कहते हैं। अपैतृक संयोग वाले जीव **क्रॉस ओवर संतति** (cross over progeny) बनाते हैं। **मॉरगन के अनुसार—समजात गुणसूत्रों** (homologous chromosomes) **के भागों के विनिमय के फलस्वरूप सहलग्न जीन्स के अलग होकर पुनः नये संयोग बनाने की क्रिया क्रॉसिंग ओवर** (crossing over) **कहलाती है।**

उदाहरण—*ड्रोसोफिला* (*Drosophila*)।

सलेटी रंग तथा कम विकसित पंखों वाली *ड्रोसोफिला* तथा काले रंग तथा लम्बे पंखों वाली *ड्रोसोफिला* मक्खियों के बीच मैथुन होने पर F_1 पीढ़ी की समस्त *ड्रोसोफिला* केवल सलेटी रंग की तथा लम्बे पंखों वाली होती हैं। लेकिन जब F_1 पीढ़ी की मादा मक्खियों तथा अप्रभावी गुण वाली नर मक्खियों में मैथुन होता है तो चार प्रकार की मक्खियाँ बनती हैं :—

(*i*)	सलेटी रंग तथा अविकसित पंखों वाली (grey bodied and vestigeal winged)	41·5%	83% नान-क्रॉस ओवर (non-cross over)
(*ii*)	काले रंग तथा लम्बे पंखों वाली (black bodied and long winged)	41·5%	
(*iii*)	काले रंग तथा अविकसित पंखों वाली (black bodied and vestigeal winged)	8.5%	17% क्रॉस ओवर (cross over)
(vi)	सलेटी रंग तथा लम्बे पंखों वाली	8.5%	

इस प्रयोग से विदित होता है कि लगभग 17% युग्मकों तथा मक्खियों में गुणसूत्रों का विनिमय होता है।

क्रॉसिंग ओवर की प्रक्रिया (Mechanism of crossing over)—समजात गुणसूत्रों (homologous chromosomes) के टुकड़ों अथवा भागों के विनिमय द्वारा क्रॉसिंग ओवर की क्रिया होती है। असममूत्रण कोशिका भाजन (reduction division) के समय गुणसूत्रों मे व्यवहार का सूक्ष्मदर्शी से अध्ययन करने पर इस अवस्था में सहलग्न जीन्स के व्यवहार को भली भाँति समझा जा सकता है। असमसूत्रण की पूर्वावस्था (prophase) मे समजात गुणसूत्र (जिनमें से एक माता तथा दूसरा पिता की ओर से होता है) एक-दूसरे के समीप आकर **युग्मसूत्रावस्था** (zygotene stage) में युग्मित हो जाते हैं। युग्मन अत्यन्त ही परिशुद्ध (precise) होता है तथा गुणसूत्रों के समान भाग युग्मन के समय प्रत्येक बिन्दु पर सही प्रकार से युग्मित होते हैं। **स्थूलसूत्रावस्था** (pachytene) में युग्मित जोड़े या द्विसंयोजी का प्रत्येक गुणसूत्र लम्बवत् दो अर्धसूत्रों में विभाजित हो जाता है। अतः गुणसूत्रों के एक जोड़े में अब चार अर्धसूत्र होते हैं। **द्विसूत्रावस्था** (diplotene stage) में जब युग्मित गुणसूत्र अलग होना प्रारम्भ करते हैं तो अर्धसूत्र एक या अधिक स्थानों पर एक-दूसरे से जुड़े रह जाते हैं। इन स्थानों पर अर्धसूत्रों के टुकड़ों में विनिमय हो जाता है। अर्धसूत्रों के जुड़े रहने के स्थान **किएज्मा** chiasma) कहलाते हैं।
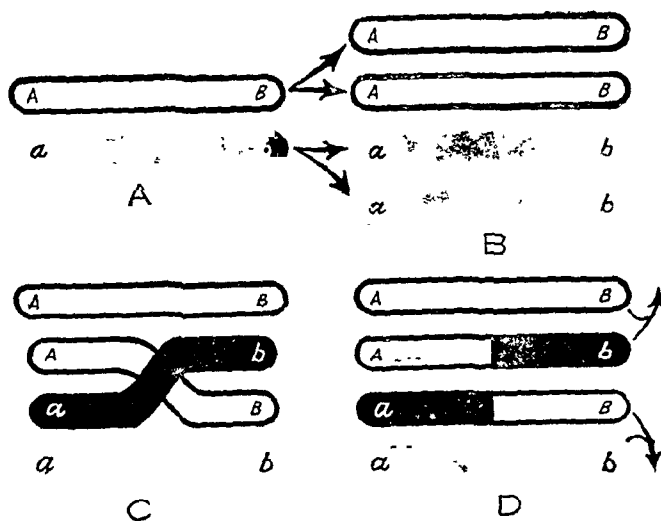
चित्र 7. क्रॉसिंग ओवर का चित्रीय निरूपण
(Diagrammatic representation of crossing-over)

प्रत्येक किएज्मा पर द्विसंयोजी (bivalent) के अन्दर वाले दोनों अर्धसूत्र टूटकर पुन: जुड़ जाते हैं, किन्तु इस जुड़ने से उनके टुकड़ों की अदला-बदली हो जाती है। फलस्वरूप एक द्विसंयोजी के चार अर्धसूत्रों में से बाहर के दो अपनी मूल अवस्था में होते हैं किन्तु अन्दर के दोनों अर्धसूत्रों में खण्डों की अदला-बदली हो जाती है, अत: क्रॉसिंग ओवर की मुख्य विशेषता यह है कि चार अर्धसूत्रों में से केवल दो में ही खण्डों का आदान-प्रदान होता है। अत: प्रत्येक गुणसूत्र का एक अर्धसूत्र अपनी मूल अवस्था में रहता है और यह पैतृक संयोग प्रदर्शित करता है। गुणसूत्र के दूसरे अर्धसूत्र में क्रॉसिंग ओवर के कारण अपैतृक संयोग बनते हैं।

क्रॉसिंग ओवर का साइटोलॉजिकल प्रमाण (Cytological evidence of crossing over)—**स्टर्न** (Stern) क्रॉसिंग ओवर की प्रक्रिया को सूक्ष्मदर्शी द्वारा प्रदर्शित करने में सफल हो गया। उसको *ड्रोसोफिला* का एक ऐसा प्रभेद या स्ट्रेन मिला जिसमें X-जोड़ी के दोनों गुणसूत्र एक-दूसरे से तथा गुणसूत्र के अन्य जोड़ों से पूर्णतया भिन्न होते हैं। इस स्ट्रेन में एक X-गुणसूत्र पर Y-गुणसूत्र का एक भाग लगा हुआ था जिससे वह L के आकार का होता है तथा दूसरा X-गुणसूत्र दो समान भागों में टूटा हुआ था। इस प्रकार की मादा को दो लिंग-सहलग्नी म्युटेशन (sex-linked mutations) के लिए विषमजात (heterozygous) बताया गया। ये लिंग-सहलग्नी म्युटेशन X-गुणसूत्र पर स्थित होते हैं।

नेत्र का कार्नेशन रंग (cr) नेत्र के लाल रंग (Cr) का अप्रभावी म्युटेण्ट है। इसी प्रकार कम चौड़े या बार के समान नेत्र (bar-shaped eyes) (B) प्रारूपी गोल नेत्रों (b) के ऊपर प्रभावी है। कार्नेशन रंग तथा बार के समान नेत्रों वाली *ड्रोसोफिला* की विषमजात मादा (crB) में टूटे हुए X-गुणसूत्र पर cr तथा B जीन्स उपस्थित थे तथा दूसरे X-गुणसूत्र पर जिससे Y-गुणसूत्र का कुछ भाग जुड़ा हुआ था प्रारूपी युग्मविकल्पी (normal alleles) Cr लाल रंग की आँखों तथा (b) गोल आँखों के जीन्स उपस्थित थे। इस विषमजात मादा को ऐसे नर के साथ

मैथुन कराया गया जिसमे दोनो जीन्स अप्रभावी थे अर्थात् जिस पर cr कार्नेशन रंग तथा b गोल आँखों के जीन्स थे। इसके फलस्वरूप चार प्रकार की सन्तति बनी जो निम्न प्रकार है :—

(*i*) कॉर्नेशन तथा बार crB/crb
(*ii*) लाल तथा गोल Crb/crb
(*iii*) कार्नेशन तथा गोल crb/crb
(*iv*) लाल तथा बार CrB/crb

इन चारो जातियो की मादाओ का सूक्ष्मदर्शी से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक मादा मे पिता की ओर से आने वाला X-गुणसूत्र प्रारूपी था किन्तु
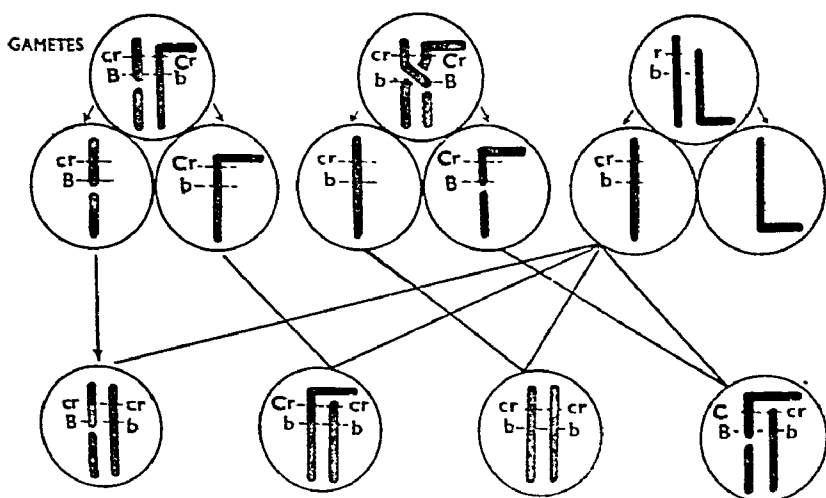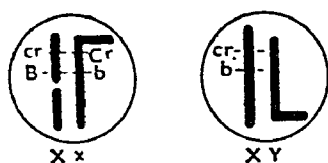
चित्र 8 ड्रोसोफिला मे क्रॉसिग ओवर का साइटोलॉजिकल प्रदर्शन

इसका दूसरा साथी जो मादा मक्खी मे आया था चारों प्रकार की मक्खियों में अलग-अलग प्रकार का था। सन्तति के एक समूह में X-गुणसूत्र दो भागों में टूटा हुआ था। दूसरे समूह मे उस पर Y-गुणसूत्र का एक भाग जुड़ा हुआ था। ये दोनों समूह नॉन-क्रॉस ओवर (non cross over) जातियाँ प्रदर्शित करते हैं। शेष दो क्रॉस ओवर समूहो मे X-गुणसूत्र मे क्रॉसिग ओवर होने के फलस्वरूप X-गुणसूत्र या तो पूर्ण था अथवा दो भागो में बँटा था तथा इसके एक खण्ड पर Y-गुणसूत्र चिपका हुआ था। बार तथा लाल आँखों वाली मक्खियों में X-गुणसूत्र दो खण्डों में टूटा हुआ था तथा उसके ऊपरी खण्ड पर Y-गुणसूत्र चिपका हुआ था। कारनेशन एवम् गोल आँखों वाली मक्खियों मे X-गुणसूत्र पूर्ण था। अतः ये साइटोलॉजिकल अवलोकन जैनेटिक सम्भावनाओ के अनुरूप है।

क्रॉसिग ओवर की किस्में (Kinds of crossing over)—अर्धसूत्रण

कोशिका-भाजन की क्रिया में गुणसूत्र की लम्बाई में किएज्मेटा की संख्या भिन्न-भिन्न हो सकती है। इनकी संख्या गुणसूत्र की लम्बाई पर निर्भर करती है। अगर गुणसूत्र पर केवल एक ही किएज्मा बनता है तो **एकक क्रॉसिंग ओवर** होता है, दो किएज्मा होने पर **युग्म क्रॉसिंग ओवर** (double crossing over) तथा दो से अधिक किएज्मा होने पर यह **गुणित क्रॉसिंग ओवर** (multiple crossing over) कहलाता है।

क्रॉसिंग ओवर को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting crossing over)—क्रॉसिंग ओवर की आवृत्ति तथा किएज्मा बनने की आवृत्ति पर वायुमण्डलीय तथा शारीरिक क्रियात्मक कारकों का प्रभाव पड़ता है। मादा *ड्रोसोफिला* की आयु बढ़ने के साथ किएज्मा बनने की आवृत्ति कम हो जाती है। तापक्रम बढ़ने पर किएज्मा निर्माण की आवृत्ति बढ़ जाती है। कुछ रासायनिक पदार्थों का भी किएज्मा के निर्माण पर प्रभाव पड़ता है। जीन्स के बीच की दूरी का किएज्मा बनने पर सबसे अधिक प्रभाव होता है। दूरी बढ़ने पर अधिक संख्या में किएज्मा बनने की सम्भावना रहती है।

क्रॉसिंग ओवर का महत्त्व (Significance of crossing over)—क्रॉसिंग ओवर के निम्न महत्त्व हैं :—

(*i*) क्रॉसिंग ओवर से सिद्ध होता है कि जीन्स पंक्तिबद्ध होते हैं।

(*ii*) इसकी सहायता से गुणसूत्रों के सहलग्नता मानचित्र (linkage maps) बनाना सम्भव हो सका है। *ड्रोसोफिला* तथा मक्का के गुणसूत्रों के सहलग्नता मानचित्र तैयार किये जा चुके हैं।

प्रश्न 10. सहलग्नता एवम् क्रॉसिंग ओवर का साइटोलॉजिकल दृष्टि से वर्णन कीजिये।

Discuss briefly linkage and crossing over from cytological point of view. (*Karnatak 1966, 71 ; Meerut 71 ; Shivaji 71*)

कृपया प्रश्न 8 तथा 9 देखिये।

3
लिंग-निर्धारण
(Sex-determination)

प्रश्न 11. लिंग-निर्धारण के गुण-सूत्री सिद्धान्त का वर्णन कीजिये।

Explain chromosomal theory of sex-determination.

(*Madras 1967* ; *Kerala 67* ; *Kanpur 69*)

लिंग-निर्धारण (Sex-determination)

अधिकांश जीवों में नर तथा मादा दो प्रकार के जन्तु होते हैं। जीवों की यह विशेषता लिंग (sex) कहलाती है। सन्तान नर होगी अथवा मादा ? वैज्ञानिकों के सम्मुख यह जटिल प्रश्न था। बीसवीं सदी से पहिले हजारों परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की गयीं किन्तु उनमें से कोई भी पूर्ण तथा सार्थक एवम् वैज्ञानिक नहीं थी। बीसवीं सदी में McClung (1962) ने लिंग-निर्धारण का **गुणसूत्री सिद्धान्त** (Chromosomal theory of sex-determination) प्रस्तुत किया।

लगभग समस्त पृथग्लिंगी जन्तुओं में गुणसूत्र लिंग-निर्धारण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। प्रत्येक जीव के गुण-सूत्र दो प्रकार के होते हैं :—

(*i*) **अलिंगसूत्र या ऑटोसोम** (Autosomes)—ये दैहिक गुणों का नियन्त्रण करते हैं।

(*ii*) **लिंग गुणसूत्र** (Sex-chromosomes)—लिंग गुणसूत्र जीवधारियों के लिंग का निर्धारण करते हैं। ये असमगुणसूत्र (odd chromosomes) या X तथा Y-गुणसूत्र कहलाते हैं।

जीवधारियों के विभिन्न समूहों में लिंग-निर्धारण के लिए गुणसूत्रों के कई संयोजन पाये जाते हैं :—

1. लगभग अभिन्नित लिंग-गुणसूत्र
(Apparently undifferentiated sex-chromosomes)

यह लिंग-निर्धारण का सबसे आदिम प्रकार का प्रक्रम है जिसमें लिंग-गुणसूत्र अलग नहीं होते तथा लिंग-निर्धारण वाले जीन्स अलिंग गुणसूत्रों या ऑटोसोम्स पर ही स्थित माने जाते हैं।

2. XX-XY या Lygaeus type

(A) मादा समयुग्मज तथा नर विषमयुग्मज (Female homozygous and male heterozygous)—अधिकांश जन्तुओं में X-गुणसूत्र में मादा लिंग-निर्धारण के लिए तथा Y-गुणसूत्र में नर लिंग-निर्धारण के लिए जीन्स उपस्थित माने जाते हैं। मादा जन्तु में XX-गुणसूत्र होते है। अतः यह समयुग्मज लिंग कहा जाता है। इससे उत्पन्न समस्त अण्डाणुओं में एक-एक X-गुणसूत्र होता है।

नर जन्तुओं में X तथा Y या XY-गुणसूत्र होते हैं। अतः इससे दो प्रकार के शुक्राणु बनते हैं। लगभग 50% शुक्राणुओं में X-गुणसूत्र तथा शेष 50% शुक्राणुओं मे Y-गुणसूत्र होते हैं। X-गुणसूत्र वाले शुक्राणु द्वारा अण्डाणु का निषेचन होने पर मादा जन्तु बनता है किन्तु Y-गुणसूत्र वाले शुक्राणु से नर युग्मज बनता है। अतः मादा को एक X-गुणसूत्र माता से तथा दूसरा X-गुणसूत्र पिता से मिलता है जबकि नर को X-गुणसूत्र माता से तथा Y-गुणसूत्र पिता से मिलता है।
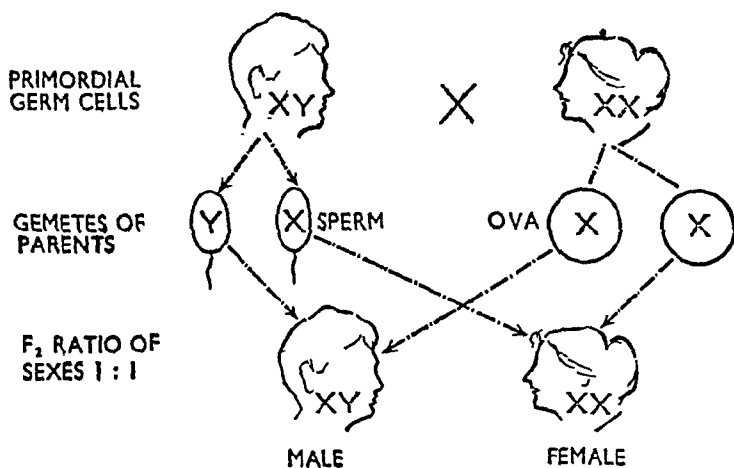
चित्र 19. मनुष्य में XX-XY विधि द्वारा लिंग-निर्धारण
(XX-XY mechanism of sex-determination in man)

अधिकांश जन्तुओं में X तथा Y-गुणसूत्र देखने में भिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे ड्रोसोफिला में X-गुणसूत्र लम्बा व छड़ के समान तथा Y-गुणसूत्र अपेक्षाकृत छोटा एवम् अंकुश के समान (hooked) होता है। XX-XY लिंग-निर्धारण प्रक्रम में निम्न किस्में पायी जाती हैं :—

(*i*) **वास्तविक XX-XY प्रकार**—उदाहरण : ड्रोसोफिला, मनुष्य, इत्यादि।

(*ii*) **X तथा Y-गुणसूत्र ऑटोसोम्स से जुड़े हुए**—इस प्रक्रम में लिंग गुणसूत्र अर्थात् X–Y गुणसूत्र ऑटोसोम्स के एक जोड़े के साथ जुड़ जाते हैं तथा उन्हीं के साथ-साथ युग्मकों में पहुँचते हैं।

(*iii*) **X तथा Y-गुणसूत्र का खण्डों में बँटा होना**—कुछ जीवधारियों में X अथवा Y या दोनों ही गुणसूत्र दो या दो से अधिक गुणसूत्रों में टूट जाते हैं जैसे टीनोडेरा (*Tenodera*), मेण्टिस (*Mantis*) तथा स्टेगोमेण्टिस (*Stegomantis*), इत्यादि में X-गुणसूत्र दो खण्डों में बँटा होता है। अतः इनमें मादा में $X_1X_1X_2X_2$ गुणसूत्र तथा नर में X_1X_2Y गुणसूत्र होते हैं।

अकोला नामक कीट में—नर कीट में 26 गुणसूत्र—$20+5X+Y$ तथा मादा कीट में 30 गुणसूत्र$=20+5X+5X$ होते हैं।

नर से दो प्रकार के शुक्राणु बनते हैं।

(*i*) $10+5X$

(*ii*) $10+Y$

किन्तु मादा से सेवल $10+5X$ प्रकार के अण्डाणु ही उत्पन्न होते हैं।

(A) मादा असमयुग्मज तथा नर समयुग्मज (Female heterozygous and male homozygous)—मुर्गा, मुर्गी, कुछ पक्षियो, मछलियों, पतिंगों तथा तितलियों, इत्यादि मे मादा जन्तु **असमयुग्मज** होता है, अतः इसमें X तथा Y-गुणसूत्र होते हैं। नर जन्तु समयुग्मज होता है और इसमे XX-गुणसूत्र पाये जाते है। मादा से उत्पन्न अण्डाणु दो प्रकार के होते है जबकि नर से केवल एक प्रकार के ही शुक्राणु बनते है।

अण्डाणु (*i*) X-गुणसूत्र वाले
(*ii*) Y-गुणसूत्र वाले

शुक्राणु केवल X-गुणसूत्र वाले।

अतः X-गुणसूत्र वाले अण्डों के ससेचन पर नर बनते है तथा Y-गुणसूत्र वाले अण्डाणुओ के ससेचन से मादा जन्तु उत्पन्न होते है।

3. XX-XO or Protenor type

यद्यपि लिग-निर्धारण का XX-XY प्रक्रम अधिकांश जन्तुओं में मिलता है किन्तु **McClung** ने नर टिड्डे के वृषाणुओ मे अर्धसूत्रण (meiosis) कोशिका विभाजन का अध्ययन करते हुए देखा कि इसकी कोशिकाओं मे दस जोडी ऑटोसोम्स है तथा केवल एक जोडा-विहीन अर्थात् अकेला गुणसूत्र था। अतः इसमे 21 गुणसूत्र थे। इसके विपरीत मादा मे ग्यारह जोडी गुणसूत्र होते हैं। अतः समस्त अण्डाणुओं मे ग्यारह गुणसूत्र पाये जाते है किन्तु शुक्राणु दो प्रकार के बनते है। आधे शुक्राणुओं मे ग्यारह तथा आधे शुक्राणुओ मे केवल दस गुणसूत्र ही होते है। शुक्राणुओं मे पाये जाने वाले अतिरिक्त गुणसूत्र को X-गुणसूत्र कहा गया। ग्यारह गुणसूत्रो वाले शुक्राणु द्वारा ससेचित होने पर अण्डाणु मादा जन्तु बनाता है, लेकिन दस गुणसूत्रो वाले शुक्राणु अण्डाणु से मिलने पर नर बनाते है। अतः लिंग-निर्धारण का यह प्रक्रम XX-XO कहलाता है और XY प्रक्रम मे Y-गुणसूत्र की हानि से विकसित हुआ पाया जाता है।

उदाहरण—**एल्पाइन टिड्डा** (*Gonophocerus*)।
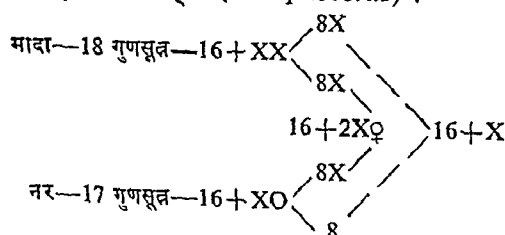
लिग निर्धारण का यह प्रक्रम आर्थोप्टेरा तथा हेटरोप्टेरा आर्डर के कीटों में भी पाया जाता है।

4. मादा द्विगुणित तथा नर अगुणित या हाइमेनोप्टेरन प्रकार (Female diploid and male haploid or hymenopteran type)

शहद की मक्खी, ततैये तथा अन्य हाइमेनोप्टेरन कीटों मे तीन प्रकार के जन्तु पाये जाते है :—

(*i*) **द्विगुणित रानियाँ** (Diploid queens)—ये ससेचित अण्डों से बनती है तथा इनमे जनन अंग क्रियाशील एवम् पूर्ण विकसित होते है। ये द्विगुणित होती है।

(*ii*) **द्विगुणित श्रमिक** (Diploid worker)—ये भी संसेचित द्विगुणित अण्डों से बनती है किन्तु इनमें जनन अंग विकसित नहीं होते ।

(*iii*) **अगुणित नर या ड्रोन्स** (Haploid male or drones)—नर जन्तु असंसेचित अगुणित अण्डों से अनिषेक जनन द्वारा (parthenogenetically) बनते हैं । इनमें नर जनन अंग होते हैं तथा इनमे गुणसूत्रों की संख्या रानी की अपेक्षा आधी होती है ।

चीटियों, ततैये तथा शहद की मक्खियों में नर सदैव ही असंसेचित अण्डों से अनिषेक जनन द्वारा बनते है किन्तु मादा सदैव ही ससेचित अण्डों से बनती हैं । इनकी कुछ जातियों मे द्विगुणित तथा अगुणित जननों का एकान्तरण पाया जाता है । इनमे द्विगुणित ससेचित नर पीढी तथा अगुणित अनिषेक मादा पीढी मे एकान्तरण होता हैं । कुछ अन्य जातियों में नर जन्तु पाये ही नही जाते तथा मादा जन्तु अनिषेक जनन द्वारा पीढी दर पीढी बनते रहते हैं। अतः इस लिंग-निर्धारण प्रक्रम में मादा सदैव द्विगुणित होती है तथा नर अगर उपस्थित होते है तो अगुणित होते हैं ।

5. लिंग-गुणसूत्रों तथा ऑटोसोम्स का अनुपात (Ratio of Sex-chromosomes and Autosomes)

प्रारम्भ में नर लिंग-निर्धारण के जीन्स Y-गुणसूत्र पर स्थित माने जाते थे । अतः Y-गुणसूत्र को लिग-निर्धारण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता था । लेकिन **C. B. Bridge** ने *ड्रोसोफिला* मे मध्यलिंगी जीवों (intersexes) मे अवियोजन (nondisjunction) का अध्ययन करते समय देखा कि X-गुणसूत्र लिग-निर्धारण मे कोई भाग नहीं लेता । इससे स्पष्ट होता है कि X-गुणसूत्रों की संख्या द्वारा ही लिग-निर्धारण होता है क्योंकि मादा मे 2X-गुणसूत्र होते है तथा नर में केवल एक ही । Bridge ने **जीन संतुलन सिद्धान्त** (Genic balance theory) या **अनुपात सिद्धान्त** (ratio theory) का प्रतिपादन किया । इसके अनुसार X-गुणसूत्रों तथा ऑटोसोम्स का अनुपात लिग-निर्धारण करता है । X-गुणसूत्र पर उपस्थित जीन्स से जन्तु में मादा लक्षण आते हैं तथा ऑटोसोम्स पर उपस्थित जीन्स से नर लक्षण बनते हैं । 2A : 2X गुणसूत्रों से मादा तथा 2A : X से नर बनते हैं ।

यद्यपि *ड्रोसोफिला* मे X तथा ऑटोसोम्स के अनुपात द्वारा लिंग-निर्धारण होता है किन्तु यह प्रक्रम समस्त जीवों के लिए लागू नही है । **Cosswig** के अनुसार *Platypoecilus* मे Y-गुणसूत्र तथा ऑटोसोम्स के अनुपात द्वारा लिग-निर्धारण होता है ।

प्रश्न 12. एक वर्णान्ध पुरुष का सामान्य स्त्री (जिसके सभी सम्बन्धी सामान्य दृष्टि वाले है) से विवाह होने पर इसकी सभी सन्तान सामान्य दृष्टि वाली होती हैं । इसके विपरीत सामान्य पुरुष तथा वर्णान्ध स्त्री से उत्पन्न पुत्रियाँ वर्णान्ध नहीं होतीं । इसमें निहित आनुवंशिक नियम का उल्लेख कीजिए ।

When a colourblind man is married to a woman of normal vision (whose relations are all of normal vision) all their children are with normal vision. In a reciprocal marriage none of the daughters are colourblind. Explain the genetic principle involved.

(*Poona 1967*)

I. वर्णान्ध पुरुष तथा सामान्य स्त्री
(Colourblind man and Normal woman)

वर्णबोध (colour vision) लिंग-सहलग्नी (sex-linked) गुण है जिसके जीन्स X-गुणसूत्र पर स्थित होते हैं तथा Y-गुणसूत्र पर इसके युग्म-विकल्पी (allele) का अभाव होता है। मनुष्य में X तथा Y-लिंग गुणसूत्र हैं। स्त्रियों में XX तथा पुरुषों में XY-गुणसूत्र पाये जाते हैं। इसका अर्थ है कि स्त्रियों में वर्णबोध के लिए दो किन्तु नर में केवल एक ही जीन पाया जाता है। सामान्य वर्णबोध प्रभावी (dominant) गुण है तथा वर्णान्धता अप्रभावी (recessive) होती है। अतः स्त्री केवल तभी वर्णान्ध हो सकती है जब उसके दोनों X-गुणसूत्रों में वर्णान्धता के लिए अप्रभावी जीन्स हों किन्तु पुरुष में केवल एक ही जीन होने पर भी वर्णान्धता आ जाती है।

सदैव ही पुरुषों में X-गुणसूत्र माता से तथा Y-गुणसूत्र पिता से आता है, जबकि स्त्री को माता एवम् पिता दोनों से ही X-गुणसूत्र मिलता है।

वर्णान्ध पुरुष की सामान्य स्त्री से शादी होने पर उनकी समस्त संतति में, सामान्य वर्णबोध का गुण मिलता है अर्थात् सभी बच्चे सामान्य होते हैं। इनकी उपस्थिति का इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है :—

वर्णान्ध पुरुष में वर्णान्धता के लिए जीन X-गुणसूत्र में स्थित होता है तथा Y-गुणसूत्र खाली होता है। सामान्य स्त्री के दोनों X-गुणसूत्रों पर सामान्य वर्णबोध के लिए जीन्स पाये जाते हैं। इनसे उत्पन्न समस्त लड़कों को X-गुणसूत्र माता से मिलता है जिस पर सामान्य वर्णबोध के लिए जीन होता है। अतः समस्त लड़के सामान्य होते हैं क्योंकि वर्णान्ध पिता से उन्हें Y-गुणसूत्र मिलता है जिस पर वर्ण-

चित्र 10. मनुष्य में वर्णान्धता की पैतृागति
(Interitance of colourblindness in man)
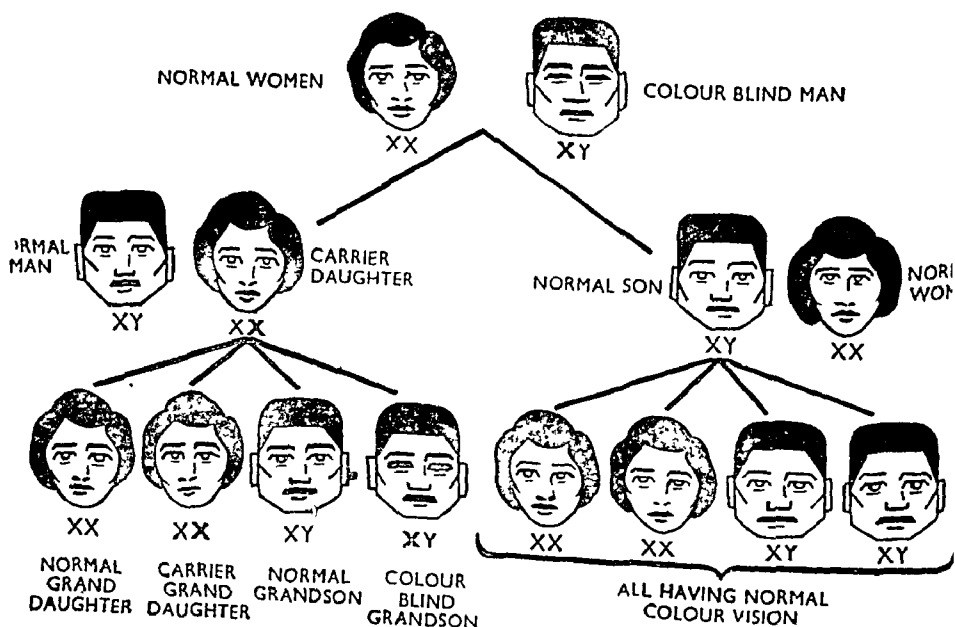
वोध के लिए जीन नहीं होता। समस्त लड़कियों को सामान्य गुण वाला X-गुणसूत्र माता से तथा वर्णान्धता वाला X-गुणसूत्र पिता से मिलता है। लेकिन सामान्य वर्णवोध वर्णान्धता पर प्रभावी है, अतः समस्त लड़कियाँ देखने में सामान्य होती हैं किन्तु उनमें वर्णान्धता के लिए भी जीन होता है।
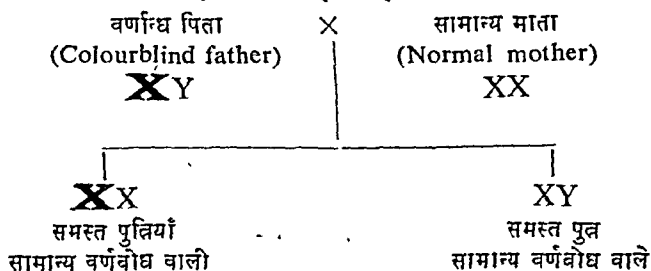
II. वर्णान्ध स्त्री तथा सामान्य पुरुष

(Colourblind woman and Normal man)

इस दशा में स्त्री में पाये जाने वाले दोनों X-गुणसूत्रों पर वर्णान्धता के लिए अप्रभावी जीन्स होते हैं जबकि पुरुष में एक ही X-गुणसूत्र होता है और उस पर सामान्य गुण के लिए प्रभावी जीन्स होते हैं। इनसे उत्पन्न सन्तति की समस्त लड़कियों को पिता से सामान्य X-गुणसूत्र प्राप्त होता है किन्तु माता से अप्रभावी वर्णान्धता की जीन वाला X-गुणसूत्र मिलता है। अतः ये सभी देखने में सामान्य होते हैं किन्तु इनमें वर्णान्धता के लिए जीन अवश्य उपस्थित होते हैं। समस्त पुत्रों को X-गुणसूत्र माता से मिलता है जिस पर वर्णान्ध अप्रभावी जीन होता है। अतः समस्त पुत्र वर्णान्ध होते हैं।

4
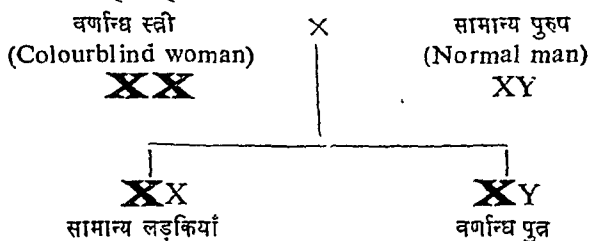
सैजिनिकी व सौपरिवेशिकी

(Eugenics and Euthenics)

13. सैजिनिकी एवम् सौपरिवेशिकी पर टिप्पणी लिखिये ।

Write notes or eugenics and euthenics. (*Agra 1972*)

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मेण्डल के कार्य के पुनः प्रकाश में आने पर वैज्ञानिकों ने विभिन्न पौधों व जन्तुओं पर उसके नियमों का परीक्षण किया। ये नियम कुछ पौधों व पालतू जानवरों की नस्ल सुधारने में सहायक हुए तो उनका ध्यान मनुष्य जाति की ओर आकर्षित हुआ । वे सोचने लगे कि क्या ये नियम मनुष्य जाति के विकास व सुधार मे भी सहायक हो सकते हैं ? आनुवंशिकी की इस शाखा को जो मनुष्य जाति के सुधार, विकास व उन्नति से सम्बन्ध रखती है, **सैजिनिकी** (eugenics) कहते हैं । इस ओर सर्वप्रथम 1885 ई० मे इंगलैण्ड के एक वैज्ञानिक फ्रान्सिस गाल्टन का ध्यान गया था । गाल्टन ने अनेक अंग्रेज वंशों के इतिहास का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि बाहरी शारीरिक लक्षणों की तरह मानसिक क्षमता, विद्वत्ता, चरित्रबल भी आनुवंशिकता के विषय हैं । उसके कुछ निष्कर्ष उसे मेण्डल के कार्य का ज्ञान न होने के कारण गलत निकले ।

सैजिनिकी व सौपरिवेशिकी (Eugenics and Euthenics)—मानव जाति की उन्नति के दो मार्ग हैं—प्रथम, पहले से ही पैदा हुए व्यक्तियों के आनुवंशिक गुण को सुधारने से । यह व्यक्ति को उसके अनुकूल वातावरण में रखने तथा उसके बुद्धि-चातुर्य व गुणों का शिक्षा एवम् प्रशिक्षण द्वारा पूर्ण विकास करने से सम्भव है । मानव समाज को इस प्रकार सुधारने व मनुष्य जाति के विकास व उन्नति को **सौपरिवेशिकी** कहते है । द्वितीय मार्ग आगे आने वाली सन्तानों के गुणों को सुधारना है। यह अच्छे वंशागत लक्षणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशागति द्वारा पहुँचाना है । इसके लिए केवल मानसिक व शारीरिक तौर पर स्वस्थ व्यक्तियों को ही शादी की आज्ञा देना आवश्यक है ।

सैजिनिकी की दो विधियाँ हैं —

(अ) प्रतिबन्धित उपाय

(ब) रचनात्मक उपाय

(अ) प्रतिबन्धित उपाय

1. आप्रवसन नियन्त्रण—देश में बीमार, अवांछित तथा अन्य प्रकार के दोषपूर्ण व्यक्तियों एवम् उनके रिश्तेदारों को आने से रोका जाय । इसके लिए आप्रवसन के नियमों का कड़ाई से पालन होना चाहिये ।

2. विवाह प्रतिबन्ध—विभिन्न समाजों में विवाह-शादी सम्बन्धी नियम बने हुए हैं जिनका दृढ़ता से पालन होना चाहिये । बहुत-से देशों में शारीरिक व मानसिक दुर्बलता, उन्मादी व जड़ बुद्धि वाले व्यक्तियों, शराबियों तथा रति रोगों से ग्रस्त

व्यक्तियों को शादी का अधिकार नहीं है। इस प्रकार से आने वाली पीढ़ियाँ इन विकारों से बच जाती हैं।

3. लिंग-सहलग्न लक्षणों को अलग करना—कुछ बीमारियाँ लिंग-सहलग्न लक्षण हैं। इनमें हीमोफीलिया (haemophilia), वर्णान्धता (colour-blindness) और रतौंधी (night-blindness) मुख्य हैं। इन रोगों के जीन अप्रभावी (recessive) तथा लिंग-सहलग्न (sex-linked) होते हैं। ये रोग अधिकतर पुरुषों में पाये जाते हैं। हीमोफिलिया के रोगी के खून में थक्का बनाने की क्षमता नहीं होती। अगर एक बार चोट लगने के कारण खून निकलना आरम्भ हो जाय तो फिर यह रुकता नहीं। अत्यधिक रुधिर निकल जाने के कारण अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है। इस रोग का जीन लिंग-सहलग्न है और अप्रभावी है। स्त्री में XX-गुणसूत्र होते हैं और पुरुष में XY। X-गुणसूत्र स्त्रीलिंग-निर्धारक तथा Y-गुणसूत्र पुरुष-निर्धारक होता है। यह रोग X-गुणसूत्र में अवगुण होने के कारण होता है। Y-गुणसूत्र में खून का थक्का बनाने का जीन नहीं होता। अतः स्त्री ही इस रोग के वाहक का कार्य करती है।

इसी प्रकार वर्णान्धता तथा रतौंधी भी लिंग-सहलग्न लक्षण हैं। यह रोग भी X-गुणसूत्र में कुछ अवगुण होने के कारण होता है। सहजीन आँखों के दृष्टि-पटल मे उपस्थित वर्ण-सुग्राही (colour-sensitive) कोशिकाओं के निर्माण में सहायक होता है। इस जीन के बिना मनुष्य को लाल व हरा रंग देख पाना सम्भव नहीं। इस रोग में भी स्त्री वाहक का कार्य करती है। इसमें स्वस्थ X गुणसूत्र अवगुण (X) गुणसूत्र पर प्रभावी (dominant) होता है। स्त्री में सदा ही XX गुणसूत्र होते हैं। अगर इसमे X(X) [(X) अवगुण सूत्र को दिखाता है] गुणसूत्र हों तो भी यह रोग स्त्री में लुप्त रहता है क्योंकि इसमे अवगुण वाला (X) गुणसूत्र अप्रभावी है तथा स्वस्थ X गुणसूत्र प्रभावी। ऐसा बहुत ही कम होता है कि दोनों अप्रभावी (X)(X) गुणसूत्र एक साथ स्त्री में आ जायें। ऐसा होने पर स्त्री वर्णान्धता की रोगी होती है। दूसरी तरफ मनुष्य में XY गुणसूत्र होते हैं। अतः जब भी अवगुण वाला (X) गुणसूत्र पुरुष में आयेगा तो वह वर्णान्धता से रोगग्रस्त होगा। इसलिए पुरुषों में ही यह रोग अधिकांश पाया जाता है। इसी प्रकार रतौंधी भी पुरुषों में ही अधिकतर पायी जाती है।

इन रोगों से बचने का सबसे अच्छा उपाय ऐसे रोगियों को समाज से दूर रखना है। ऐसे रोगियों को शादी इत्यादि करने से रोका जाय तो अच्छा है।

4. अनुर्वरीकरण (Sterilization)—यह दोषपूर्ण जीन-द्रव्य को दोष-रहित जीव-द्रव्य से मिलने से रोकने का उग्र उपाय है। इस क्रिया द्वारा जनक पिण्डों से आने वाले अण्डाणु या शुक्राणु वाहिनियों को शल्य क्रिया द्वारा निकाल दिया अथवा बन्द कर दिया जाता है। ऐसा करने से दोषपूर्ण जीन-द्रव्य स्वस्थ जीन-द्रव्य से मिलने से बच जाता है। इस प्रकार ऐसे व्यक्तियों को जो लिंग-सहलग्न लक्षण वाले रोगों से रोगग्रस्त होते हैं शादी करने की आज्ञा दे दी जाती है किन्तु वे सन्तानोत्पादक अंगों से वंचित कर दिये जाते हैं।

(ब) रचनात्मक उपाय

ये निम्नलिखित हैं :—

1. उचित जीवन-साथी खोजना (Selection of proper mate)—सदैव ही निरोगी, बुद्धिमान् एवम् बलवान् माता-पिता के बच्चे नीरोगी, बुद्धिमान एवम्

बलवान् होते हैं। अतः शादी केवल उन्हीं स्त्री-पुरुषों के बीच हो जिनके परिवार में कभी कोई आनुवंशिक बीमारियाँ (hereditary diseases) न हुई हों।

2. सामाजिक प्रतिबन्धों को हटाना (Removal of social hindrances)—बहुत-से सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिबन्धों के कारण विभिन्न जाति के स्त्री-पुरुषों में विवाह सम्बन्ध नहीं होता। इसके कारण बहुत-सा अच्छा जर्म प्लाज्म (germ plasm) आपस में मिलने से रह जाता है। इस प्रकार धनाभाव, इत्यादि से भी इसी प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। मनुष्य जाति की उन्नति के लिए इस प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं होने चाहिएँ।

3. अच्छे जर्म प्लाज्म को नष्ट होने से रोकना (Prevention of the wastage of good germplasm)—अधिक आयु में शादी होने के कारण बहुत-सा अच्छा जर्म प्लाज्म व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। अधिकांश विद्वान्, राजनीतिज्ञ एवम् अन्य विशेषज्ञ शादी ही नहीं करते। कभी-कभी अनुपयुक्त परिस्थितियों में उचित जर्म प्लाज्म नष्ट हो जाता है तथा उचित अवसरों के अभाव में वह अपनी योग्यता प्रदर्शित नहीं कर पाता। लड़ाई के समय बहादुर मनुष्य मर जाते है। इस प्रकार की समस्त कमियों को दूर करके सभी मनुष्यों को उचित वातावरण व परिस्थितियाँ प्रदान करनी चाहिएँ ताकि उनका जर्म प्लाज्म अपने गुणों को पूरी तरह प्रदर्शित कर सके (*i.e.* to get the best of the good germplasm)। सैंजिनिकी की इस शाखा को **euthenics** कहते हैं।

टिप्पणियाँ
(Short Notes)

1. युग्मविकल्पी (Alleles) *(Madras 1971)*

प्रत्येक जीव में गुणसूत्र तथा जीन्स युगलों (pairs) या युग्मों (duplicate) में होते हैं। प्रत्येक युगल के गुणसूत्र (इनमें से एक मातृ तथा दूसरा पितृ से प्राप्त होता है) **सजातीय गुणसूत्र** (homologous chromosomes) कहलाते हैं तथा उस युगल के जीन अर्थात् दो वैकल्पिक जीन जो कि सजातीय गुणसूत्रों पर एक ही विन्दु पर स्थित होते हैं, **युग्मविकल्पी** (alleles) या ऐलीलोमोर्फिक जीन (allelomorphic genes) कहलाते हैं। युग्मविकल्पी (alleles) वास्तविक जीन में उत्परिवर्तन या म्युटेशन (mutation) के फलस्वरूप विकसित होते हैं। अतः विभिन्न जीवों में एक ही जीन विभिन्न प्रकार से तथा विभिन्न सीमाओं तक उत्परिवर्तित या म्युटेट हो सकता है। अतः ये समस्त उत्परिवर्तित जीन्स उन्हीं विन्दुओं पर स्थित होंगे जिन पर कि मूल या पितृ जीन्स उपस्थित होते है। इसीलिए ये समस्त उत्परिवर्तित जीन्स युग्मविकल्पी (alleles) या **गुणित युग्मविकल्पी** (multiple alleles) कहलाते है। युग्मविकल्पियों की गुणित सीरीज की कुल संख्या में से केवल दो युग्म-विकल्पी ही किसी प्राणी में निरूपित होते है और गैमीट में केवल एक ही युग्म-विकल्पी निरूपित होता है। युग्मविकल्पी सामान्य जीन से प्रभावी या अप्रभावी रूप में सम्बद्ध होते है। जब युग्मविकल्पी युगल का एक जीन दूसरे के प्रति प्रभावी होता है तो इसे **प्रभावी जीन** कहते है तथा युगल का दूसरा अप्रभावी लक्षण **अप्रभावी जीन** कहलाता है।

2. पूर्वजता या ऐटाविज्म (Atavism) *(Vikram 1962)*

पूर्वजता एक प्रकार से पुनरोद्भवन की क्रिया है जिसके अन्तर्गत जीवधारी अपने पूर्वजों के स्थान पर अपने दादा-परदादाओं के साथ समानता प्रदर्शित करते हैं। मेण्डल के आनुवंशिक सिद्धान्तों के संस्थापन के पूर्व इन समानताओं की उत्पत्ति की व्याख्या नहीं की जा सकी थी किन्तु अब इनको मेण्डल के सिद्धान्तों द्वारा पूर्णतया समझाया जा सकता है। पूर्वजों के अनेक कारकों के सन्तति में पृथक्करण होने की क्रिया की मेण्डल के पृथक्करण सिद्धान्त द्वारा व्याख्या की जा सकती है। समस्त जीवधारियों में ये अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाते तथा गुप्त अवस्था में रहते हैं किन्तु उचित संकरण के माध्यम द्वारा पुनः सम्मिश्रित होकर ये सन्तति में पूर्वजों के समान लक्षण विकसित कर लेते है।

3. द्विसंकरण क्रॉस (Dihybrid Cross) *(Ranchi 1970)*

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

4. प्रभाविता (Dominance) *(Bombay 1969)*

विभिन्न प्रयोगों के समय मेण्डल ने देखा कि किन्हीं दो विकल्पी लक्षणों (contrasting characters), जैसे लम्बे व बौने तथा श्वेत व लाल, आदि के साथ-साथ सन्तति जीवों में उपस्थित होने पर उनमें से केवल एक ही लक्षण स्वयं को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। उदाहरणार्थ लाल पुष्पों वाले पौधों तथा श्वेत फूलों वाले पौधों को क्रॉस (cross) करने पर F_1 पीढ़ी के समस्त पौधे लाल पुष्प धारण करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि लाल रंग ने श्वेत रंग को आच्छादित कर लिया है जो कि लाल रंग की उपस्थिति के कारण स्वयं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ है। अत: हम कह सकते हैं कि लाल रंग **प्रभावी** (dominant) तथा श्वेत रंग **अप्रभावी** (recessive) है और इस प्रपंच को **प्रभाविता** (dominance) कहते हैं। मेण्डल के अनुसार पेड़-पौधों व प्राणियों में अधिकांश लक्षण प्रभावी व अप्रभावी होते हैं। इसी तथ्य के आधार पर मेण्डल ने **प्रधानता का नियम** (law of dominance) प्रतिपादित किया। यद्यपि यह नियम अधिकांश विकल्पी लक्षणों में उपयुक्त सिद्ध हुआ है किन्तु फिर भी यह सार्वजनिक रूप से लागू नहीं होता।

5. जीनी संरचना या जीनोटाइप (Genotype) *(Bombay 1969)*

जीनोटाइप वह जीन घटन (gene constitution) है जो किसी जीव को अपने जनकों (parents) से प्राप्त होता है, जैसे मटर के लम्बे पौधे में लम्बापन इसके पूर्ण जीनोटाइप के केवल एक युग्मविकल्पी जोड़े (allelic pair) को प्रदर्शित करता है। इसके अन्तर्गत गुणसूत्रों पर स्थित समस्त जीन आते हैं। *ड्रोसोफिला* में कुल 8 गुणसूत्र होते हैं तथा इन गुणसूत्रों में स्थित समस्त जीन इसका जीनोटाइप बनाते हैं।

6. गाइनैंड्रोमोर्फिज्म (Gynandromorphism)

(B.H.U. 1965 ; Nagpur 69)

जीवों का लिंग-निर्धारण प्राय: गुणसूत्रों द्वारा होता है किन्तु लिंग-हारमोन भी लिंग-सन्तुलन को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं जब गुणसूत्र अथवा हारमोन का सन्तुलन अव्यवस्थित हो जाता है जिसके फलस्वरूप लिंग मध्यक (sex-intergrades) विभिन्न अनुपात में बनते हैं। लिंग मध्यकों में नर तथा मादा लक्षणों का सम्मिश्रण मिलता है तथा ये इन्टरसैक्स (intersexes) कहलाते हैं।

जिन जन्तुओं में लिंग-हारमोन्स का अभाव होता है उनके शरीर के किसी भी भाग में लिंग-गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन होने पर दृश्यरूपी लिंग-मोजेक (phenotypic sex-mosaic) का निर्माण होता है। लिंग मोजेक से शरीर के कुछ भाग में नर तथा शेष भाग में मादा लक्षण पाये जाते हैं। ये जन्तु गाइनैंड्रोमोर्फ कहलाते हैं। गाइनैंड्रोमोर्फ प्राय: उन सभी जन्तुओं में मिलते हैं जिनमें नर तथा मादा जनन-अंग अलग-अलग जन्तुओं में होते हैं। इस प्रकार के जन्तु कीटों एवम् ड्रोसोफिला में मिलते हैं। द्विपार्श्व सममित गाइनैंड्रोमोर्फ *ड्रोसोफिला* में अधिकता से मिलते हैं जिसमें शरीर का आधा भाग नर तथा दूसरा आधा भाग मादा होता है। प्राय: मादा जन्तुओं से ही गाइनैंड्रोमोर्फ बनते हैं जिनमें प्रारम्भ में अर्थात् जायगोट

में 2 X-गुणसूत्र होते हैं किन्तु प्रथम समसूत्रण कोशिका भाजन के समय बनी दो पुत्री कोशिकाओं में से किसी एक में एक X-गुणसूत्र नष्ट होकर कोशिका द्रव्य मे मिल जाता है। फलस्वरूप भ्रूण की द्वि-कोशीय अवस्था में जायगोट की एक कोशिका मे 2 X-गुणसूत्र तथा दूसरी में X-गुणसूत्र रह जाते हैं। अतः इन दो कोशिकाओं से बने जन्तुओं के दोनों अर्धभागों में से एक में नर तथा दूसरे में मादा लक्षण पाये जाते हैं।

इसी प्रकार मादा के शरीर में किसी विशेष स्थान पर Y-गुणसूत्र की हानि होने पर नर ऊतक के समूह भी देखे जा सकते हैं जो शरीर पर छोटे-छोटे समूहों (patches) के रूप में दृष्टिगत होते हैं।

गोल्डस्मिथ (Goldschmidt) ने रेशम के कीड़े में गाइनैंड्रोमोर्फ के निर्माण की नयी विधि का अध्ययन किया। वर्धन के समय अण्डाणु में एक के स्थान पर दो केन्द्रक आ जाते है तथा केन्द्रक अलग-अलग शुक्राणुओ द्वारा संसेचित हो जाते है। अगर इन दो शुक्राणुओं में से एक में X तथा दूसरे में Y-गुणसूत्र हों तो इस द्वि-केन्द्रीय अण्डाणु से ससेचन के पश्चात् बने जीव के शरीर का कुछ भाग नर तथा शेष भाग मादा लक्षणो वाला होगा।

7. विषमयुग्मज (Heterozygote)

कोई भी जीव या युग्मज दो जनकों (पितृ एवम् मातृ) से अपने जीन-पूरक (gene complements) प्राप्त करता है। यह क्रिया आनुवंशिकी द्वारा पूर्ण होती है। जब किसी एक लक्षण के लिए दोनों जनकों से आये जीन समान होते है तो ऐसा जीव उस विशेष लक्षण के लिए **समयुग्मज** (homozygous or homozygote) कहलाता है किन्तु अगर ये जीन्स एक-दूसरे के समान नहीं है तो ऐसा जीव उस लक्षण के लिए **विषमयुग्मज** (heterozygous or heterozygote) कहलाता है। उदाहरण के लिए अगर मटर के पौधे मे लम्बेपन के युग्मविकल्पी युगल के दोनों जीन 'T' हों तो यह समयुग्मी (homozygous) कहलाता है किन्तु T व t जीन्स की उपस्थिति मे भी वास्तव मे पौधा तो लम्बा ही होगा किन्तु लम्बेपन के लिए यह **विषमयुग्मज** (heterozygote) होगा।

8. विषमयुग्मजी (Heterozygous) *(Gorakhpur 1967)*

कृपया टिप्पणी 7 देखिये।

9. अपूर्ण प्रभाविता (Incomplete Dominance) *(Punjab 1971)*

मेण्डल के प्रधानता के नियम (law of dominance) के अनुसार जीवों के विकल्पी गुणों को जोड़ों में बाँटा जा सकता है तथा प्रत्येक जोड़ी के दोनों गुण—प्रभावी (dominant) एवम् अप्रभावी (recessive), इस प्रकार सम्बन्धित होते है कि F_1 पीढी में जोडी के दोनों गुणों में से केवल एक ही गुण दृष्टिगत होता है किन्तु विभिन्न पेड-पौधों व प्राणियों पर किये गये अन्वेषणों के फलस्वरूप ऐसे अनेक उदाहरण सामने आये जो मेण्डल के प्रधानता के नियम का परिपालन नही करते। उन सभी उदाहरणों मे F_1 पीढ़ी के सन्तति जीव अपने मातृ या पितृ जनकों में से किसी एक के भी समान न होकर दोनों जनकों के गुणों के विभिन्न सम्मिश्रण प्रस्तुत करते हैं या फिर ये मध्यग होते हैं।

ऐसे सभी जीव, जिनमें F_1 **पीढ़ी के संकर या हाइब्रिड दो समयुग्मी जनकों में क्रॉस के फलस्वरूप बनते हैं और दोनों जनकों के मध्यग लक्षण प्रदर्शित**

करते हैं, अपूर्ण प्रभावी (incomplete dominance) की क्रिया को प्रदर्शित करते हैं।

Four o'clock पौधा (*Mirabilis jalapa*) तथा Andalusian fowl अपूर्ण प्रभाविता के सामान्य उदाहरण हैं। Four o'clock पौधों में दो रंग के पुष्प पाये जाते हैं—लाल तथा श्वेत। समयुग्मी लाल पुष्प वाले तथा श्वेत पुष्प वाले पौधों के F_1 संकर (hybrids) सदैव ही गुलाबी रंग के होते हैं अर्थात् ये दोनों जनकों के मध्यग लक्षण को प्रदर्शित करते हैं। इन गुलाबी रंग के पुष्पों वाले पौधों का आपस में क्रॉस करने पर इनसे 1 : 2 : 1 के अनुपात में लाल, गुलाबी व श्वेत पुष्पों वाले पौधे बनते हैं।
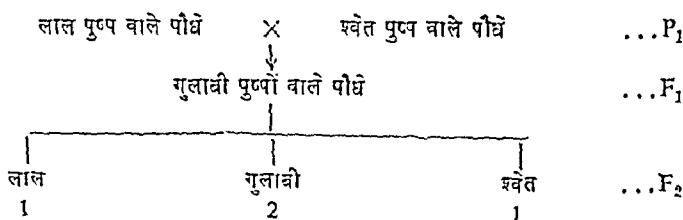
उपर्युक्त परिणामों से यह स्पष्ट हो जाता है कि *Mirabilis jalapa* के पौधे में लाल व श्वेत दोनों रंगों के जीन्स होने पर यह गुलाबी रंग के पुष्प धारण करेगा। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि न तो लाल रंग ही और न ही श्वेत रंग प्रभावी या अप्रभावी हैं तथा दोनों जीन अपूर्ण रूप से स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार के समस्त उदाहरण अपूर्ण प्रभाविता को प्रदर्शित करते हैं तथा ऐसे जीन **मध्यग जीन** (intermediate genes) कहलाते हैं।

इसी प्रकार **Andalusian fowls** में काले पंख वाले मुर्गों का श्वेत रंग से अलंकृत पंख वाले मुर्गों से क्रॉस करने पर F_1 पीढ़ी के सकर (hybrids) नीले पंखों वाले होते हैं। जब F_1 पीढ़ी के सकरो का आपस मे क्रॉस किया जाता है तो इनसे 1 : 2 : 1 के अनुपात मे काले, नीले व श्वेत पख वाले मुर्गे विकसित होते हैं।

10. स्वतन्त्र संव्यूहन (Independent Assortment) *(Bombay 1969)*

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

11. प्लैज्माजीन्स (Plasmagenes) *(Agra 1970)*

प्लैज्माजीन्स कुछ जीवो के कोशिका द्रव्य में पायी जाने वाली वे रचनाएँ हैं जिनमें स्वत: सन्तनन की क्षमता होती है। ये केन्द्रक में पाये जाने वाले जीन्स के समान ही किन्तु उनके बिना हस्तक्षेप के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशागत होते हैं। स्वत: सन्तनन करने वाली इन कायों मे स्थिरता, म्युटेशन की क्षमता तथा जीवों के लक्षणों को प्रभावित करने के गुण पाये जाते हैं किन्तु इनके कोशिका द्रव्य में स्थित होने के सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ हैं। किन्तु मातृ लक्षणों के प्रभाव को प्रदर्शित करने वाले परीक्षण इनकी उपस्थिति की पुष्टि करते हैं।

Ephestia kuhniella मॉथ में लारवा की त्वचा में रंजक की उपस्थिति मातृ जीन्स द्वारा प्रभावित रहती है। सामान्य गहरे रंग की त्वचा वाले मॉथ में AA जीन्स पाये जाते है तथा इसके अप्रभावी म्युटेण्ट मॉथ में aa genes होते हैं। aa मादा तथा Aa नर में संकरण से बने लारवा में से 50% लारवा की त्वचा gene A के प्रभाव से गहरे रंग की होती है। इसके विपरीत Aa मादा व aa नर में

संकरण से बने समस्त लारवा की त्वचा गहरे रंग की होती है।
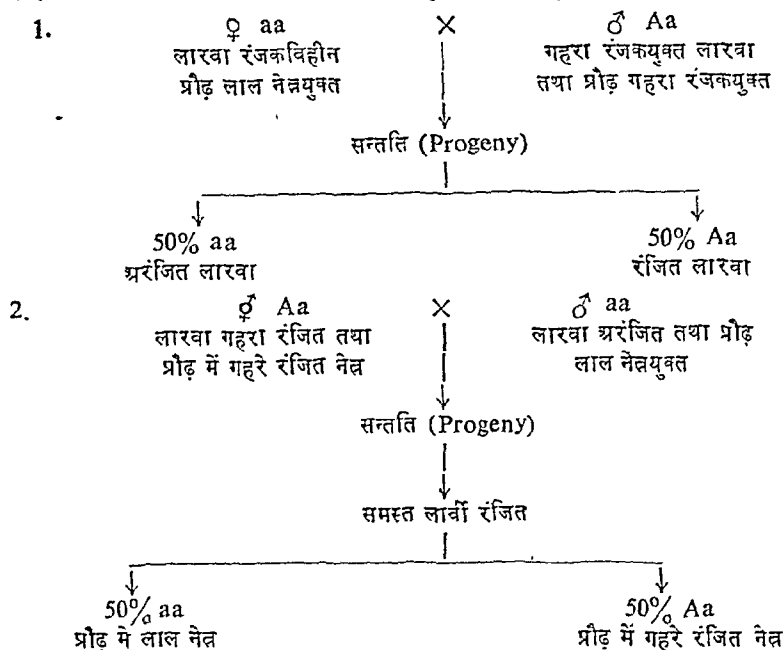
पारस्परिक संकरण का यह उदाहरण प्रभावी मातृ लक्षण के प्रभाव को प्रदर्शित करता है। मातृ एवम् पितृ जनन कोशिकाओं (अण्डाणु तथा शुक्राणु) द्वारा समान मात्रा में आनुवंशिक पदार्थ संतति में पहुँचता है किन्तु अण्डे द्वारा लाया हुआ कोशिका द्रव्य शुक्राणु की अपेक्षा कई गुना अधिक होता है। इससे आभासित होता है कि कोशिका द्रव्य मे कुछ विशेष कारक होते हैं जो लारवा की त्वचा में रंजक की उपस्थिति का नियन्त्रण करते हैं।

ड्रोसोफिला में CO_2 के प्रति संवेदनशीलता तथा kappa particles की वंशागति कोशिका द्रव्यात्मक आनुवंशिकता को प्रदर्शित करती है।

12. गैमीटों की शुद्धता (Purity of Gametes) (*Bombay 1969*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

13. लिंग निर्धारण (Sex Determination) (*Kanpur 1970*)

कृपया प्रश्न 11 देखिये।

14. लिंग सहलग्न आनुवंशिकी (Sex-linked inheritance)

(*Kanpur 1970 ; Agra 72*)

लिंग गुणसूत्र (Sex chromosomes) प्राथमिक रूप से लिंग-निर्धारण से सम्बद्ध होते हैं किन्तु अधिकांशत: X-गुणसूत्र पर तथा कभी-कभी Y-गुणसूत्र पर भी कुछ विशेष प्रकार के जीन्स होते हैं जो प्राणियों के दैहिक लक्षणों का नियमन करते हैं। इन लक्षणों की वंशागति गुणसूत्रों की वंशागति पर निर्भर करती है। इन लक्षणों को **लिंग-सहलग्न लक्षण** (sex-linked characters) कहते हैं तथा इनकी वंशागति को *लिंग-सहलग्न वंशागति (sex-linked inheritance)* कहते हैं।

लिंग-सहलग्न वंशागति की क्रिया समस्त जीवित प्राणियों में होती है किन्तु

इसका सर्वाधिक उपयुक्त उदाहरण श्वेत नेत्र वाली ड्रोसोफिला मक्खी है।

Morgan ने लाल नेत्रों वाली *ड्रोसोफिला* का संवर्धन तैयार करते समय अचानक एक श्वेत नेत्रों वाली नर मक्खी को देखा। उसने श्वेत नेत्र वाली नर मक्खियों तथा लाल नेत्रों वाली मादा मक्खियों का समागम करने पर देखा कि F_1 पीढी की समस्त सन्तति मक्खियाँ (नर एवम् मादा दोनों) लाल नेत्रों वाली हैं। F_2 पीढी में लाल एवम् श्वेत नेत्रों वाली *ड्रोसोफिला* मक्खियाँ 3 : 1 के अनुपात में थीं किन्तु इसमे सबसे अद्भुत घटना F_2 पीढी की समस्त नर मक्खियों में श्वेत नेत्रों का पाया जाना था। लाल नेत्रों वाली मक्खियों में मादा एवम् नर मक्खियाँ 2 : 1 के अनुपात मे थीं। इन परिणामों के आधार पर **Morgan** ने यह निष्कर्ष निकाला कि नेत्र के रंग का निर्धारण करने वाला जीन X-गुणसूत्र पर स्थित होता है। मादा मे दो X-गुणसूत्र होते हैं। अतः श्वेत नेत्र वाली मादा तभी उत्पन्न हो सकती है जबकि इसके दोनों X-गुणसूत्रों मे नेत्र के श्वेत रंग के दोनों अप्रभावी जीन उपस्थित हों। नर मे केवल एक X-गुणसूत्र होता है तथा Y-गुणसूत्र मे इसके सजातीय जीन का अभाव होता है। अतः इसमे उपस्थित नेत्र के श्वेत रंग का एकल अप्रभावी जीन अपने प्रभाव को अभिव्यक्त करता है।
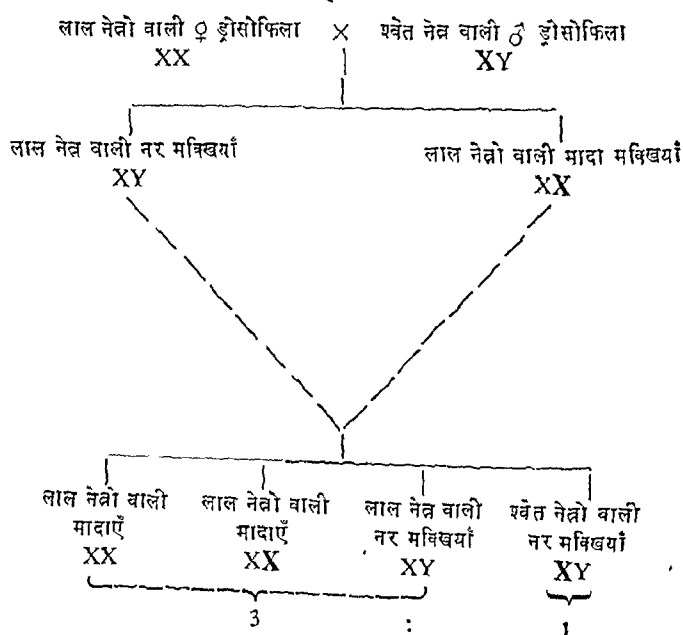
मनुष्य मे भी लिंग-सहलग्न जीन अनेक लक्षणों का नियमन करते हैं। वर्णान्धता (colourblindness) तथा हीमोफिलिया आदि मनुष्य में पाये जाने वाले अनेक लिंग-सहलग्न लक्षणों के कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

15. टेस्ट क्रॉस (Test Cross)

(*Kanpur 1971*)

पेड़-पौधों व प्राणियों के समस्त वंशागत होने वाले लक्षणों के जीन-विश्लेपण के लिए समागम (mating) या क्रॉसिंग की एक निश्चित विधि का अनुगमन किया जाता है। प्रथम पग के अन्तर्गत एक, दो या अधिक लक्षणों में भिन्न जनकों में

समागम द्वारा अध्ययन किया जाता है। दूसरे पग के अन्तर्गत F_1 पीढ़ी के हाइब्रिड्स (hybrids) में स्वयं जनन कराया जाता है। इसे **Sib cross** कहते हैं किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ विशेष लक्षणों के अध्ययन हेतु F_1 पीढ़ी के हाइब्रिड्स का समयुग्मी अप्रभावी (homozygous) से क्रॉस या समागम कराया जाता है।

अतः इस प्रकार के क्रॉस को, जिसके अन्तर्गत F_1 **पीढ़ी के विषमयुग्मजी जीवों** (heterozygous individuals) **का समयुग्मजी अप्रभावी जीवों** (homozygous recessive individuals) **से समागम कराया जाता है, टेस्ट क्रॉस** (test cross) **कहते हैं** तथा इस प्रकार बनी सन्तति **टेस्ट क्रॉस पीढ़ी** (test cross generation) कहलाती है। एक संकर या मोनोहाइब्रिड (monohybrid) क्रॉस होने पर इसकी टेस्ट क्रॉस सन्तति में जीनोटाइप व फीनोटाइप दोनों ही रूप से 1 : 1 का अनुपात होता है।

सलेटी शरीर तथा अविकसित पंख वाली जंगली *ड्रोसोफिला* तथा काले शरीर व लम्बे पंखों वाली *ड्रोसोफिला* के क्रॉस से उत्पन्न F_1 हाइब्रिड या संकर की नर मक्खी को डबल अप्रभावी जीन वाली मादा से क्रॉस करने पर इससे सलेटी शरीर व अविकसित पंखों वाली तथा काले शरीर व लम्बे पंखों वाली सन्तति-मक्खियाँ 1 : 1 के अनुपात में उत्पन्न होंगी।

विकास
(EVOLUTION)

1
जैविक विकास
(Organic Evolution)

प्रश्न 1. विकास का क्या अर्थ है ? क्या आप यह समझते हैं कि आधुनिक जीव का निर्माण नहीं अपितु विकास हुआ ? जीवाश्म विज्ञान, तुलनात्मक शरीर-रचना तथा अवशेषी अंग इस समस्या का कहाँ तक समाधान प्रस्तुत करते हैं ?

What is evolution ? Do you suggest that the present forms of life are evolved and not made ? How far do the science of paleontology, comparative anatomy and vestigeal organs help to solve this problem ? (*Vikram 1964*)

जैविक विकास के प्रमाणों का विवरण दीजिये ।

Discuss the evidence in favour of organic evolution.
(*Agra 1960, 62 ; Lucknow 60 ; Gorakhpur 61 ; Kanpur 69, 71 ; Meerut 72*)

जैविक विकास के सिद्धान्त के समर्थन में प्रस्तुत सिद्धान्तों पर संक्षिप्त निवन्ध लिखिये ।

Write a short essay on the evidences in support of the theory of organic evolution. (*Agra 1964 ; Vikram 68 ; Indore 67 ; Banaras 65 ; Rewa 71 ; Punjab 66 ; Ravishanker 65*)

जैविक विकास के विभिन्न प्रमाणों में से किन्हीं तीन का पूर्ण उल्लेख कीजिये ।

Discuss fully any three of the various evidences in favour of the idea of organic evolution. (*Poona 1969 ; Agra 67*)

जैविक विकास के समर्थन में तुलनात्मक शरीर-रचना तथा भ्रूणिकी द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का पूर्ण उल्लेख कीजिये ।

Discuss evidences from comparative anatomy and embryology in favour of organic evolution.
(*Gorakhpur 1968 ; Agra 50 ; Lucknow 50 ; Meerut 69 ; Patna 64*)

जैविक विकास के भौगोलिक एवम् जीवाश्म विज्ञान के प्रमाणों का विवरण दीजिये ।

Give an account of the geographical and paleontological evidences of evolution. (*Gorakhpur 1960 ; Bombay 69*)

जैविक विकास का क्या अर्थ है ? इसके समर्थन में तुलनात्मक शारीरिकी एवम् शरीर-रचना विज्ञान द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का उल्लेख कीजिये ।

What is organic evolution? Describe the evidences of organic evolution from comparative morphology and comparative anatomy. *(Kanpur 1971)*

जैविक विकास के समर्थन में शारीरिक एवम् भ्रूणिकी द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का उल्लेख कीजिये।

Write an account of the morphological and embryological evidences in support of organic evolution. *(Allahabad 1970)*

जैविक विकास के समर्थन में जीवाश्म विज्ञान तथा भ्रूणिकी द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का उल्लेख करिये।

Describe the palaeontological and embryological evidences of organic evolution. *(Kanpur 1970)*

कार्बनिक विकास के पक्ष में भ्रूण विज्ञान तथा जीवाश्म विज्ञान से प्रमाण दीजिये।

Discuss evidences from embryology and palaeontology in favour of the theory of organic evolution. *(Jabalpur 1972)*

प्रारम्भ मे यह विश्वास किया जाता था कि सृष्टि का निर्माण तथा जीवो की उत्पत्ति किसी महान् शक्ति द्वारा केवल छ: दिन मे की गई है तथा उस समय से समस्त जीवधारी बिना किसी परिवर्तन के अपने प्रारम्भिक रूप में ही चले आ रहे है।

किन्तु उपर्युक्त परिकल्पना वैज्ञानिकों को सन्तुष्ट नहीं कर सकी। उन्होंने पृथ्वी पर पाये जाने वाले जीवों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी, पृथ्वी का वायुमण्डल एवम् उस पर पाये जाने वाले जीव सभी परिवर्तनशील है। जीवों की आधुनिक सृष्टि करोड़ों वर्षों के अनवरत परिवर्तनों का ही फल है। पृथ्वी पर सर्वप्रथम अत्यन्त सरल रचना वाले जन्तुओं का निर्माण हुआ। धीरे-धीरे उनमे परिवर्तन होते गये तथा जीवों की रचना में जटिलता आती गई। आज भी जो जीव उपस्थित हैं वे भी धीरे-धीरे परिवर्तन के फलस्वरूप नवीन रूप धारण कर लेगे। इस विकास की क्रिया को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं—'**जटिल जीवों का विकास सरल रचना वाले जीवों से हुआ।**' जीवों में होने वाले ये परिवर्तन **जैविक विकास** (organic evolution) के अन्तर्गत आते है।

सर्वप्रथम कुछ चीनी तथा मिस्र के वैज्ञानिकों ने जैविक विकास के सम्बन्ध मे कुछ अनुमान प्रस्तुत किये थे किन्तु **एरिस्टोटल** (Aristotle, 384–322 B.C.) ने जीवों का रचना की जटिलता के आधार पर **श्रेणीकरण** किया। स्पंज, कीड़े तथा स्नेल, इत्यादि सर्प, चूहे तथा बिल्ली, इत्यादि की अपेक्षा रचना के आधार पर निम्न कोटि के माने गये। इसके पश्चात् भी बहुत-से वैज्ञानिकों ने जैविक विकास का समर्थन किया किन्तु 18वीं शताब्दी में **चार्ल्स डारविन** (Charles Darwin) ने जैविक विकास को प्रथम बार सिद्धान्त का स्वरूप प्रदान किया।

जैविक विकास के प्रमाण
(Evidences in favour of Organic Evolution)

प्रारम्भ में जैविक विकास का सिद्धान्त कल्पनामात्र ही था क्योंकि यह इतनी धीमी क्रिया है कि प्रकृति में इसको होते देखना असम्भव है। साथ ही प्राचीन काल

में हमारा अध्ययन क्षेत्र इतना संकुचित था कि उसके द्वारा भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये जा सकते थे। आधुनिक युग में जन्तु-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन से जैविक विकास के पक्ष में कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं :—

1. शारीरिक तथा तुलनात्मक शरीर-रचना से विकास के प्रमाण
2. जीवाश्म विज्ञान से विकास के प्रमाण
3. वर्गीकरण विज्ञान से विकास के प्रमाण
4. संयोजी जीवों से विकास के प्रमाण
5. भ्रूण विज्ञान से विकास के प्रमाण
6. जीवों के भौगोलिक वितरण से विकास के प्रमाण
7. शरीर-क्रिया विज्ञान या फिजिओलॉजी से विकास के प्रमाण
8. आनुवंशिकी से विकास के प्रमाण

1. शारीरिक तुलनात्मक शरीर-रचना से विकास के प्रमाण (Evidences from morphology and comparative anatomy)—कशेरुक-दण्डियों के विभिन्न समूहों के समस्त जन्तुओं में कशेरुक दण्ड (vertebral column), स्पाइनल कॉर्ड (spinal cord), छिद्रयुक्त गलकोष (perforated pharynx), इत्यादि समस्त विशेषताएँ पाई जाती हैं। इतनी अधिक समानता अचानक ही नहीं हो सकती। अतः स्पष्ट है कि समस्त कशेरुक दण्डी जन्तु एक ही पूर्वज से विकसित हुए हैं।

समजात अंग (Homologous organs)—आधुनिक जन्तुओं की रचना का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि विभिन्न वातावरण में रहने वाले जन्तुओं में कुछ अंग ऐसे होते हैं जो मूल रचना तथा उद्भव (fundamental structure and origin) में समान होते हैं; किन्तु कार्यों के अनुरूप वाह्य रचना में भिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे मनुष्य का हाथ, घोड़े की अगली टाँग, चमगादड़ तथा चिड़िया का पंख एवम् सील का फिलपर (flipper)। ऐसे अंग **समजात अंग** (homologous organs)
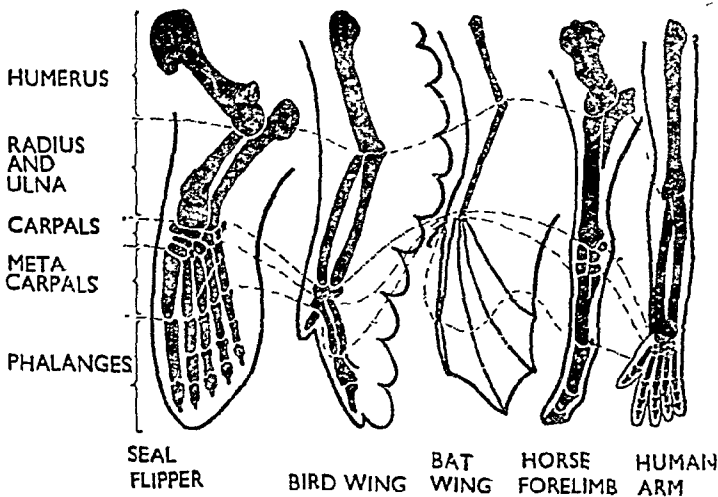
चित्र 1 पृष्ठवंशियों की भुजा में समजातीयता
(Homology in the Arm of Vertebrates)

कहलाते हैं तथा यह समानता **समजातता** (homology) कहलाती है। समजातता यह प्रमाणित करती है कि इन जन्तुओं का विकास एक ही प्रकार के पूर्वजों से हुआ है।

समवृत्ति अंग (Analogous organs)—इसके विपरीत कुछ जन्तुओं में एक ही कार्य करने के कारण विभिन्न प्रकार की रचनाएँ भी आकार में समान दृष्टिगत होती हैं जैसे पक्षियों, चमगादड़, टैरोडेक्टाइल (Pterodactyle—an extinct reptile) तथा तितली में पंख उड़ने का कार्य करते हैं और एक समान दृष्टिगत होते है किन्तु उनका उद्भव अलग-अलग होता है। पक्षियों में अग्र पादों पर पिच्छों (feathers के लगे होने से पंख बनते हैं, चमगादड़ के पंख हाथ की अंगुलियों तथा धड़ के बीच फैली हुई त्वचा से बनते है तथा टेरोडैक्टाइल में एक अंगुली तथा धड़ के बीच फैली हुई त्वचा से बनते हैं। अतः इन जन्तुओं में पंखों का विकास अलग-अलग प्रकार से तथा अलग-अलग पूर्वजों से हुआ है। ये अंग **समवृत्ति अंग** (analogous organs) कहलाते हैं तथा अंगों की यह समरूपता **समवृत्तिता** (analogy) कहलाती है।

अवशेषी अंग (Vestigeal organs)—जन्तुओं में अनेक ऐसी रचनाएँ भी पायी जाती हैं जो शरीर के लिए अनावश्यक हैं। ये अंग **अवशेषी अंग** (vestigeal organs) कहलाते है और यह प्रमाणित करते है कि किसी समय में इन जन्तुओं के पूर्वजों में ये क्रियाशील रहे होंगे और उनके लिए उपयोगी होंगे किन्तु परिवर्तनों के फलस्वरूप अब जन्तु के लिए उनका कोई उपयोग नहीं। अतः अवशेषी अंग भी जैविक विकास को प्रमाणित करते है। मनुष्य में लगभग 180 अवशेषी अंग पाये जाते हैं।

2. जीवाश्म-विज्ञान से विकास के प्रमाण (Evidences from Palaeontology)—जीवाश्म विज्ञान मे प्राचीन काल के जन्तुओं एवम् पेड़-पौधों के अवशेषों का अध्ययन किया जाता है। इनके अवशेष चट्टानों में चिह्न के रूप में अंकित रहते हैं और **जीवाश्म या फॉसिल्स** (fossils) कहलाते हैं। जीवाश्म में पूर्ण जन्तु या उसके कुछ भाग अथवा उसके पैरों या हाथों के निशान संरक्षित हो सकते हैं।

जीवाश्म चट्टानों में पाये जाते हैं। अधिकतर जन्तुओं के कठोर भागों के ही जीवाश्म बनते हैं और कोमल अंग नष्ट हो जाते हैं। प्राणियों के अश्मीभवन के साथ-साथ इनके आस-पास की मिट्टी भी चट्टानों में परिवर्तित हो जाती है और इस प्रकार जीवाश्मयुक्त चट्टानों का निर्माण होता है। जब इस प्रकार की चट्टानों की खुदाई की जाती है या आँधी एवम् पानी के प्रभाव से ऊपरी चट्टानें नष्ट हो जाती है तब जीवाश्म की चट्टानें दृष्टिगत होती हैं। विशेष विधि द्वारा इन चट्टानों की आयु ज्ञात की जा सकती है जिससे इनमें पाये जाने वाले जीवाश्मों की आयु का भी ज्ञान हो जाता है। जीवाश्मों को चट्टानों की आयु के अनुसार विन्यसित करने पर ज्ञात होता है कि जीवों मे विकास की क्रिया हुई है। पहले सरल रचना वाले जन्तु बने जो बाद मे जटिल होते गये। जीवाश्मों के अध्ययन के आधार पर पृथ्वी के आरम्भ से अब तक के समय को युगों मे बाँटा गया है और प्रत्येक युग को कालों में। इस प्रकार एक भौतिकी समय-सारणी (geological time-table) बनायी गयी है जिसमे प्रत्येक युग एवम् काल के जन्तुओं व पेड़-पौधों का वर्णन भी मिलता है। जीवाश्मों के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गये है :—

(1) प्राचीन काल का कोई भी जन्तु या पौधा आधुनिक जन्तुओं या पौधों

के समान नहीं है।

(2) प्राचीन काल के जीव अपेक्षाकृत सरल रचना वाले हैं तथा ये जीवित जन्तुओं के अविकसित संघों के जीवों से मिलते-जुलते हैं।

(3) जीवाश्मों की रचना में धीमी तथा क्रमिक जटिलता दृष्टिगत होती है अर्थात् प्रारम्भिक अवशेष सरल रचना वाले थे तथा आधुनिक अवशेष आधुनिक जीवों के लगभग समान हैं।

(4) यह देखा गया है कि एक युग में नवीन प्रकार के जीव बनना प्रारम्भ करते हैं, अगले युग में उनकी संख्या में वृद्धि होती है तथा धीरे-धीरे आगे आने वाले युगों में उनका ह्रास होता है।

(5) जन्तुओं में स्तनधारी तथा पौधों में बीज वाले पौधे (angiosperms) सबसे आधुनिक जीवाश्म हैं।

कुछ जीवों के विकास की जीवाश्म कथा जीवाश्मों के रूप में संग्रहित की जा सकी है। घोड़े, मनुष्य एवम् हाथी के विभिन्न जीवाश्मों को युगों के अनुसार विन्यसित करने पर उनके विकास का पूर्ण इतिहास तैयार किया गया है।

अतः जीवाश्म यह सिद्ध करने में सहायक हैं कि प्राचीन काल से ही जीव-विकास हो रहा है। दुर्भाग्य से जीवाश्म विज्ञान पूर्ण नहीं है। अभी तक केवल घोड़े, हाथी तथा मनुष्य के विकास की पूर्ण शृंखला प्राप्त हुई है, अन्य जीवों की नहीं। इसके कई कारण हैं। समस्त जीव जीवाश्मों में परिवर्तित नहीं होते। समस्त जीवाश्म पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किये जा सकते। प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण समस्त स्थानों पर पृथ्वी को खोदना सम्भव नहीं तथा खुदाई में बहुत-से जीवाश्म टूट कर नष्ट हो जाते हैं। साथ ही जीवाश्म विज्ञान, विज्ञान की आधुनिक शाखा है। आशा है कि भविष्य में किसी अन्य जीव के विकास की पूर्ण शृंखला प्राप्त करना सम्भव हो सके।

3. वर्गीकरण विज्ञान से विकास के प्रमाण (Evidences from Taxonomy)—वर्गीकरण में समान रचना तथा आकार वाले समस्त जीवों को एक साथ एक जाति में रखा जाता है। एक जाति के समस्त जीव आपस में समान होते हैं किन्तु दूसरी जाति के जीवों से भिन्न होते है। तथापि कुछ जातियों में ऐसी समानताएँ होती हैं जिनके आधार पर ये जातियाँ एक वंश या जीनस में रखी जाती हैं। इसी प्रकार कई समान गुण वाले वंश एक फैमिली बनाते हैं; फैमिली आर्डर में, आर्डर क्लास में तथा क्लास, फाइलम में संगठित किये जाते हैं। समस्त फाइलम भी रचना की जटिलता के आधार पर विन्यसित किये गये हैं। वर्गीकरण की इस विधि से समस्त जन्तुओं तथा समस्त पेड़-पौधों का वंश-वृक्ष (family-tree) तैयार किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि समस्त जीव एक ही प्रकार के मूल पूर्वजों से बने हैं तथा विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के जीवों का निर्माण हुआ है किन्तु फिर भी उनमें कुछ मूल गुण पाये जाते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी समय ये जीव समान रहे होंगे और परिस्थितियों के प्रभाव से इनमें परिवर्तन हो गए हैं।

वंश-वृक्ष को देखने से ज्ञात होता है कि मनुष्य, समस्त स्तनधारी, पक्षी, सर्प, छिपकली, मेंढक तथा मछलियाँ, इत्यादि एक ही समूह वर्टिब्रेटा (vertebrata) में रखे गए हैं, यद्यपि देखने में ये एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं। इसका कारण है

कि इनमें कुछ ऐसी समानताएँ (जैसे नोटोकार्ड, क्लोम-दरारें, खोखला तन्त्रिका तन्त्र, इत्यादि) पायी जाती हैं जिनके आधार पर यह माना जा सकता है कि विभिन्न समूहों में एक-दूसरे से कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा होगा। वर्गीकरण में इन जन्तुओं के समूह को इस प्रकार विन्यसित किया गया है कि उनमें आकारिक जटिलता बढ़ती जाती है। मत्स्य समुदाय सबसे नीचे है अतः यह सबसे अधिक सरल है। एम्फिबिया इनसे अधिक जटिल हैं। रेप्टीलिया, एम्फीबिया से, ऐवीज रेप्टीलिया तथा स्तनधारी पक्षी समुदाय से अधिक जटिल हैं। अन्य शब्दों में, हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि एम्फिबिया संवर्ग का विकास मत्स्य संवर्ग से, रेप्टिलिया संवर्ग का एम्फिबिया संवर्ग से तथा ऐवीज का रेप्टिलिया संवर्ग से विकास हुआ है।

4. संयोजी जीवों से विकास के प्रमाण (Evidences from Connecting links)—वर्गीकरण में कुछ जीव ऐसे मिलते हैं जिनमें कुछ लक्षण एक वर्ग के तथा अन्य लक्षण दूसरे वर्ग के होते हैं। पेरिपेटस (Peripatus) नामक जन्तु में एनिलिडा तथा आर्थ्रोपोडा दोनों संघों के लक्षण पाये जाते हैं। इसी प्रकार प्रोटोथीरिया समूह (prototheria) के इकिडना नामक जन्तु में स्तनधारियों तथा रेप्टीलिया संवर्ग दोनों ही के लक्षण पाये जाते हैं। इसी प्रकार आरकिओप्टेरिक्स (Archaeopteryx) नामक जीवाश्म पक्षी में रेप्टीलिया संवर्ग के गुण भी दृष्टिगत होते हैं। इनसे यह स्पष्ट होता है कि स्तनधारियों तथा पक्षियों का विकास रेप्टीलिया संवर्ग या उसी के समान जन्तुओं से हुआ है।

5. भ्रूणिकी से विकास के प्रमाण (Evidences from Embryology)—भ्रूण विज्ञान में हम जीवों की विभिन्न वर्धन अवस्थाओं का अध्ययन करते हैं। यह देखा गया है कि समस्त जन्तुओं के भ्रूणों में अत्यधिक समानता होती है। मेंढक का टेडपोल लारवा मछली से मिलता है। मेंढक के ही नहीं वरन् रेप्टिलिया संवर्ग, पक्षी संवर्ग तथा स्तनधारियों के भ्रूण प्रारम्भ में मछली के समान होते हैं। सभी में क्लोम दरारें, क्लोम, नोटोकॉर्ड, इत्यादि पाई जाती हैं। प्रारम्भ में सभी का हृदय द्विकक्षीय होता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि समस्त वर्टीब्रेटा समूह का विकास मछली या मछली के समान पूर्वजों से हुआ है।

मनुष्य के भ्रूण विकास में देखा गया है कि उसका भ्रूण पहले मछली से, फिर एक एम्फीबियन से और फिर एक रेप्टाइल से मिलता-जुलता होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक जीव अपने भ्रूण विकास में उन समस्त अवस्थाओं से गुजरता है जिनसे कभी उसके पूर्वज धीरे-धीरे विकसित होकर बने होंगे। इसी के आधार पर हीकेल (Haeckel) नामक वैज्ञानिक ने पुनरावर्तन सिद्धान्त (recapitulation theory) प्रतिपादित किया। इसके अनुसार प्रत्येक जीव अपने भ्रूण-विकास में अपनी जाति के जातीय विकास की कथा को दोहराता है (ontogeny recapitulates phylogeny)।

6. जीवों के भौगोलिक वितरण से विकास के प्रमाण (Evidences from Geographical Distribution of Organisms)—यह देखा गया है कि समान जलवायु वाले (geographically similar) विभिन्न द्वीपों तथा महाद्वीपों में पाये जाने वाले जीव-जन्तु तथा पेड़-पौधे अलग-अलग होते हैं, जैसे दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, तथा एशिया के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में पाये जाने वाले पौधे और जन्तु भिन्न हैं। आस्ट्रेलिया में केवल मार्सुपिएलिया (marsupialia) समूह के स्तनधारी

(जैसे कंगारू) ही वहाँ के आदिवासी हैं। अन्य स्तनधारी वहाँ मनुष्यों द्वारा ले जाये गये हैं। ये जन्तु दुनिया के अन्य किसी भूभाग पर नहीं पाये जाते। इन जन्तुओं की विशेषता है कि ये अर्धविकसित बच्चों को जन्म देते हैं जो बाद में माता के उदर में पाये जाने वाले एक थैले में सुरक्षित रखे जाते हैं। इनमें स्तन ग्रन्थियाँ होती हैं जिनसे बच्चे दूध के रूप में अपना भोजन ग्रहण करते हैं। इनमें से कुछ जन्तु तो भेड़िये, गिलहरी तथा चूहे, इत्यादि के समान ही दिखाई देते हैं।

भौमिक कथा से ज्ञात होता है कि पहले आस्ट्रेलिया महाद्वीप एशिया से जुड़ा हुआ था। किसी कारणवश यह एशिया से अलग हो गया। इनके अलग-अलग होने के समय समस्त पृथ्वी पर इन मार्सुपिएलिया जन्तुओं का ही साम्राज्य रहा होगा। अलग होने के पश्चात् दोनों महाद्वीपों में अलग-अलग रूप से जैव विकास हुआ। एशिया भूभाग में यूथीरिया श्रेणी के जन्तुओं ने इन्हें नष्ट कर दिया परन्तु आस्ट्रेलिया में ये मांसाहारी यूथीरिया नहीं पहुँच सके। फलस्वरूप वहाँ पर मार्सुपिएलिया सुरक्षित रह कर विकसित होते रहे और उनकी कई जातियाँ बन गयी।

7. शरीर-क्रिया-विज्ञान या फिजिओलॉजी से विकास के प्रमाण (Evidences from Physiology)—जिस प्रकार निकट सम्बन्धी जीवों में रचनात्मक समानता पाई जाती है उसी प्रकार उन रचनाओं की क्रियाओं में भी समानता होती है। समस्त जीवों में, चाहे वह मछली, मेंढक, साँप, बिच्छू हों या मॉस, फर्न या बैक्टीरिया ; शारीरिक क्रियाओं के लिए शक्ति ग्लाइकोलाइसिस तथा क्रेब चक्र (glycolysis and Kreb's cycle) के अन्तर्गत होने वाली रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप ही प्राप्त होती है। लगभग समस्त जीवधारियों की आहार-नाल में भोजन-पाचन के लिए समान पाचक रस होते हैं और सभी में पाचन-क्रिया भी समान होती है। इससे यह ज्ञात होता है कि जीवन का विकास विभिन्न दिशाओं में हुआ है।

रुधिर की रासायनिक तथा भौतिक रचना की तुलना भी जैव विकास को प्रमाणित करती है। विभिन्न जन्तुओं के रुधिर से हीमोग्लोबिन (haemoglobin) के रवे बनाकर उनके तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनुष्य के हीमोग्लोबिन के रवे चिम्पैन्जी के रवों से मिलते हैं।

8. आनुवंशिकी से विकास के प्रमाण (Evidences from Genetics)—वंशानुक्रमण की विधि जैव विकास के प्रमाण प्रस्तुत करती है। जीवों के जीन्स (genes) में होने वाली विभिन्नताएँ (variations) तथा उत्परिवर्तन (mutations), उनमें पाया जाने वाला पृथक्करण (isolation) तथा आपस में जनन, इत्यादि की क्रियाएँ नई जातियों के निर्माण मे मदद करती हैं। उदाहरण के लिए गेहूँ की तीन जातियाँ (T. monococcum, T. durum, T. vulgare) पाई जाती हैं जो गुण-सूत्रों की संख्या के गुणन के फलस्वरूप बनती हैं।

प्रश्न 2. जैविक विकास के समर्थन में शरीर-क्रिया-विज्ञान एवम् भ्रूणिकी द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का उल्लेख करिये।

Give evidences from physiology and embryology of animals to support the theory of organic evolution. (*Jiwaji 1971*)

शरीर-क्रिया विज्ञान (physiology) जैविक विकास के समर्थन में ठोस प्रमाण

प्रस्तुत करता है। अमीबा से लेकर स्तनधारियों तक के समस्त प्राणियों में जीव-द्रव्य की एकरूपी संरचना एवम् इसकी उपस्थिति तथा इसकी मूल क्रियाओं में समानता का पाया जाना एक सर्वनिष्ठ एवम् मूलपूर्वज (decent) का एक अत्यधिक निर्णयात्मक प्रमाण है। जैविक ऑक्सीकरण (biological oxidations) के फलस्वरूप उत्पन्न ऊर्जा के आगार के रूप में ATP का व्यापक रूप से पाया जाना भी जीवों के एक सर्वनिष्ठ एवम् मूलपूर्वज से विकसित होने की यथार्थता को प्रमाणित करता है। इसी प्रकार ट्रिप्सिन (trypsin), आदि पाचक एन्जाइम एवम् एमाइलेज (amylase) भी प्राणि-जगत् के विभिन्न फाइलमों के प्राणियों में पाये जाते हैं। अति आदिम एवम् सरलतम रचना वाले प्राणियों से लेकर अत्यधिक जटिल रचना वाले एवम् सर्वाधिक विकसित प्राणियों तक मे खाद्य पदार्थों के आक्सीकरण की रासायनिकी (chemistry) तथा उससे सम्बद्ध एन्जाइम भी समान ही होते हैं।

ऐसा ही हारमोन्स के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। थाइरॉयड हारमोन जैव विकास की दृष्टि से विभिन्न स्तर के समस्त पृष्ठवंशियों में क्रियात्मक एवम् संरचनात्मक रूप से सर्वव्यापी समानता प्रदर्शित करता है।

रुधिर की रासायनिक तथा भौतिक रचना की तुलना भी जैव विकास को प्रमाणित करती है। विभिन्न जन्तुओं के प्लाज्मा प्रोटीन्स मे समानता का अध्ययन antigen-antibody technique द्वारा किया जाता है। इसके अध्ययन के लिए शशक या गाइना पिग (Guinea pig) के शरीर मे बारम्बार मनुष्य के सीरम के इन्जेक्शन लगाये जाते हैं। मनुष्य के सीरम मे उपस्थित प्रोटीन्स वाह्य पदार्थों के समान कार्य करते है जिसके फलस्वरूप शशक के रुधिर मे एण्टीबॉडीज (antibodies) बन जाती है। इस प्रकार उत्पन्न एण्टीबॉडीज (antibodies) की यह विशेषता है कि ये सदैव ही मनुष्य के एण्टीजन (antigens) से प्रतिक्रिया करती है। शशक के शरीर से एण्टीबॉडीज प्राप्त करने के लिए उसके शरीर से रुधिर निकाल कर उसका थक्का बनने दिया जाता है। थक्का बनने के बाद पानी के समान एक द्रव शेष रह जाता है जिसे सीरम कहते है। इसी सीरम मे एण्टीबॉडीज स्थित होते है। इस सीरम का अति तनु सान्द्रता वाला सेम्पल भी मनुष्य के रुधिर मे अवक्षेप बनाता है। किन्तु अन्य पृष्ठवशियों के रुधिर के साथ यह इतनी बहुलता से तथा साफ अवक्षेप नही बनाता जिसके लिए अधिक सान्द्रता वाले सीरम की आवश्यकता होती है। प्राणियों में परस्पर सम्बन्ध का अवक्षेप की मात्रा से सीधा सम्बन्ध होता है। निकट सम्बन्धित प्राणियों का सीरम अवक्षेप बनाने में असमर्थ होता है जबकि विभिन्न वर्गो के पृष्ठवशियों का सीरम अधिक अवक्षेप बनाता है।

अवक्षेप परीक्षणों द्वारा यह सुस्थापित हो गया है कि समस्त स्तनधारियों के रुधिर प्रोटीन्स मूल रूप से समान होते है किन्तु इनके आपसी सम्बन्ध मे भिन्नता होती है जिसका परीक्षण एण्टीबॉडीज की तनुता एवम् उनके अवक्षेप बनाने की क्षमता पर निर्भर करता है। रुधिर परीक्षणों के आधार पर वनमानुस या कपि (great apes) मनुष्य के निकटतम सम्बन्धी है। बिल्ली, कुत्ते व भालू मे अन्य स्तनधारियों की अपेक्षा आपस मे अधिक समानता होती है। रुधिर परीक्षणों द्वारा यह भी सुस्थापित हो गया है कि पक्षी रेप्टाइल्स के तथा इकाइनोडर्म प्राणी कॉर्डेट प्राणी के अधिक निकट सम्बन्धी है।

भ्रूणिकी से प्रमाण
(Evidences from Embryology)

कृपया प्रश्न 1 देखिये ।

प्रश्न 3. जीवाश्म विज्ञान से विकास के प्रमाण पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।

Write a short essay on palaeontological evidences of evolution. (*Lucknow 1962, 68 ; Gorakhpur 67*)

जैविक विकास में जीवाश्मों के अध्ययन के महत्त्व का वर्णन कीजिये ।

Discuss the importance of the study of fossils in organic evolution. (*Karnatak 1966*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये ।

डार्विनिज्म (Darwinism)

प्रश्न 4. प्राकृतिक वरणवाद का विवरण दीजिये । इस सिद्धान्त की क्या आलोचना है । नियो-डार्विनिज्म से आप क्या समझते हैं ?

Discuss the theory of Natural Selection. What is the criticism against this theory ? What do you understand by Neo-Darwinism. (*Raj. 1962*)

डार्विन ने स्पीशीज के निर्माण की क्या व्याख्या की ?

How did Darwin explain the formation of species ? (*Agra 1965*)

डार्विन के प्राकृतिक वरणवाद का विवरण दीजिये ।

Give an account of Darwin's theory of Natural Selection. (*Agra 1963 ; Jabalpur 70 ; Luck. 65, 67 ; Indore 66 ; Gorakhpur 65 ; Ranchi 63 ; Rewa 72 ; Vikram 72*)

जैविक विकास से आप क्या समझते हैं ? डार्विन के जैविक विकास के सिद्धान्त का वर्णन कीजिये ।

What do you understand by Organic Evolution ? Explain clearly Darwin's theory of Organic Evolution. (*Luck. 1967 ; Magadh 63*)

डार्विन के स्पीशीज की उत्पत्ति के सिद्धान्त पर निबन्ध लिखिये ।

Write an essay on Darwin's theory of Origin of Species. (*Luck. 1960 ; Bombay 65 ; Jiwaji 70*)

प्राकृतिक वरणवाद पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।

Write a short essay on Natural Selection. (*Raj. 1967 ; Karnatak 71*)

डार्विनिज्म की मूलभूत संकल्पना तथा प्राकृतिक वरणवाद की आधुनिक स्थिति बताइये ।

State the fundamental concepts of Darwinism and present position of Natural Selection hypothesis. (*Karnatak 1966*)

डार्विनिज्म पर एक निवन्ध लिखिये ।

Write an essay on Darwinism. (*Ranchi 1971*)

प्राकृतिक वरणवाद के सिद्धान्त में डार्विन के योगदान का उल्लेख करिये तथा इस सिद्धान्त की आधुनिक स्थिति पर प्रकाश डालिये ।

Explain Darwin's contribution to the theory of Natural Selection with a note on its present solution. (*Bombay 1970*)

चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin, 1809–1882) ब्रिटेन का एक मुख्य प्रकृतिवादी वैज्ञानिक (naturalist) हुआ है जिसने प्राकृतिक अध्ययन के पश्चात् विकासवाद तथा जैविक विकास की विधि की अति सुन्दर तथा सरल विधि से प्रमाण सहित व्याख्या की है । सन् 1837 में, जब वह केवल 22 वर्ष का ही था, उसने बीगल (Beagle) नामक ब्रिटिश लड़ाकू जहाज पर संसार की यात्रा की थी । यात्रा के दौरान विभिन्न देशों में उसने असंख्य जीवों को देखा था तथा बहुत-से जीव एकत्रित भी किये । उनके अध्ययन से उसने देखा कि जीवों में बहुत-सी भिन्नताएँ तथा समानताएँ पाई जाती हैं । इन भिन्नताओं में से कुछ वंशागतिशील (heritable) होती हैं तथा इनके कारण जन्तुओं की नई किस्में बन जाती हैं ।

डार्विन ने यह भी देखा कि मनुष्य अक्सर सुन्दर एवम् विशेष लक्षण वाले कबूतरों को ही अण्डे देने देते है । ऐसे ही अच्छी किस्म के गाय तथा साँड के उचित संयोग से अधिक दूध देने वाली गायें उत्पन्न की जाती है तथा अच्छी किस्म के जन्तुओं को ही मनुष्य संरक्षण प्रदान करते हैं । डार्विन ने सोचा कि यही छँटनी प्रकृति में भी सम्भव होनी चाहिये । प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **माल्थस** (Malthus) का जनसंख्या सिद्धान्त पर विवेचन पढ़ने पर उसे अपने सिद्धान्त का समर्थन मिला ।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर डार्विन ने **'प्राकृतिक वरण के द्वारा जीवों का विकास'** (Origin of Species by Natural Selection) नामक पुस्तक में जैविक विकास की क्रिया को सोदाहरण प्रस्तुत किया तथा समझाया कि किस प्रकार प्राणी अपने को वातावरण के अनुकूल बनाकर जीवित रहते हैं और सन्तान उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत जो जीव अपने को प्रकृति के अनुकूल नहीं बना पाते, वे कुछ समय पश्चात् नष्ट हो जाते हैं । अतः प्रकृति में एक प्रकार की छँटनी हुआ करती है । डार्विन के इस सिद्धान्त को **प्राकृतिक वरणवाद** (Theory of Natural Selection) कहते हैं । यह निम्न तथ्यों पर आधारित है :—

1. जीवों में सन्तानोत्पत्ति की प्रचुर शक्ति (Enormous fertility in the Organisms)—समस्त जीवधारियों मे सन्तानोत्पत्ति की स्वाभाविक इच्छा तथा अपार क्षमता होती है । एक खरगोश वर्ष मे चार बार बच्चे देता है तथा हर बार चार या छः बच्चे उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक शिशु खरगोश भी छः माह की आयु में बच्चे उत्पन्न करने लगता है । इसी प्रकार एक समुद्री सिप्पी प्रतिवर्ष 60,000,000 अण्डे देती है । एक एसकेरिस 27,000,000 अण्डे उत्पन्न करती है । अगर समस्त अण्डों से बच्चे निकल आयें और समस्त बच्चे जीवित रहें तो कुछ ही वर्षो में पृथ्वी पर खाली स्थान नहीं प्राप्त हो सकेगा ।

किन्तु जीवों के समस्त अण्डों से बच्चे नहीं बन पाते तथा समस्त बच्चे भी वयस्क अवस्था तक नहीं पहुँच पाते एवम् समस्त व्रयस्क भी जीवित नहीं रह पाते जैसे सिप्पियों के अण्डों को मछलियाँ, आदि जन्तु खा जाते हैं तथा शेष बचे अण्डों से निकले बच्चे अन्य जन्तुओं का आहार बनते हैं । इस प्रकार प्राणियों की संख्या में

कोई विशेष अन्तर नहीं होने पाता।

2. **जीवन-संघर्ष** (Struggle for Existence)—हम देखते हैं कि प्राणियों में जनन की असीम क्षमता होने पर भी उनकी संख्या लगभग स्थिर रहती है। इससे स्पष्ट है कि जीवित रहने के लिए अधिक से अधिक भोजन एवं सुरक्षित स्थान प्राप्त करने के लिए प्राणियों में संघर्ष होता है। इसी को **जीवन-संघर्ष** कहते हैं। इस संघर्ष के फलस्वरूप केवल वही जीव जीवित रह पाते हैं जो इस संघर्ष में सफल होते हैं। कमजोर जीव नष्ट हो जाते हैं।

3. **समर्थ का जीवत्व** (Survival of the Fittest) **या प्राकृतिक निर्वाचन** (Natural Selection)—डार्विन के अनुसार जीवन-संघर्ष में वही प्राणी सफलता प्राप्त करते हैं जिनकी रचना उस वातावरण में रहने के अत्यन्त उपयुक्त हो। इसके विपरीत जिन प्राणियों की रचना वातावरण के अनुकूल नहीं होती वे कुछ समय पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। लाभदायक भिन्नताएँ या लक्षण सन्तान द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचती रहती हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी एकत्रित होती जाती हैं जिससे प्रत्येक वर्तमान पीढ़ी के जीव भूत पीढ़ी के जीवों की अपेक्षा वातावरण के अधिक अनुकूल होते हैं। प्राकृतिक संघर्ष में वातावरण के अनुकूल प्राणियों के जीवित रहने तथा प्रतिकूल प्राणियों के नष्ट होने को ही **प्राकृतिक वरण** (natural selection) कहते हैं। जीवधारियों में ये परिवर्तन एकत्रित होकर नयी जातियों का विकास करते हैं।

4. **भिन्नता तथा आनुवंशिकता** (Variation and Heredity)—जीवित रहने के लिए समस्त प्राणियों को समान संघर्ष नहीं करना पड़ता। कुछ प्राणी अन्य प्राणियों की अपेक्षा उस वातावरण के अधिक उपयुक्त होते हैं। फलस्वरूप उन्हें जीवित रहने के लिए दूसरों की अपेक्षा कम संघर्ष करना पड़ता है। ये सभी गुण आनुवंशिकता द्वारा सन्तान में आ जाते हैं ताकि वे भी उस वातावरण के लिए उतने ही उपयुक्त हो सकें। अतः प्राकृतिक वरण के फलस्वरूप उत्पन्न भिन्नताएँ आनुवंशिकता द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचती रहती हैं।

5. **जीवधारियों में वातावरण के साथ अनुकूलन** (Adaptations to the Environment)—किसी भी स्थान का वातावरण सदैव परिवर्तित होता रहता है। अतः इस वातावरण में रहने के लिए जीवधारियों में भी अपने आप को बदलने की क्षमता का होना अत्यन्त आवश्यक है; अन्यथा वे नष्ट हो जायेंगे। मीसोजोइक युग के रेप्टाइल्स इसका अत्यन्त रोचक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। मीसोजोइक युग में वातावरण में अचानक परिवर्तन होने पर समस्त विशालकाय रेप्टाइल्स नष्ट हो गये किन्तु छोटे-छोटे जन्तुओं ने अपने को वातावरण के अनुरूप बदल लिया।

6. **नई जातियों की उत्पत्ति** (Origin of New Species)—डारविन ने बताया कि वातावरण से संघर्ष करने के कारण प्रत्येक जीव अपने पूर्वजों से भिन्न होता है। यही भिन्नताएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी एकत्रित होती रहती हैं और एक समय ऐसा आता है जब नये बने जन्तु अपने पूर्वजों से इतने भिन्न हो जाते हैं कि उनको नई जाति का स्थान दिया जाता है। उदाहरण के लिए शेर, चीता तथा तेंदुआ, इत्यादि स्वभाव तथा रचना में एक-दूसरे से काफी मिलते-जुलते हैं अर्थात् किसी समय इनके पूर्वज समान रहे होंगे, किन्तु वातावरण का अधिकतम लाभ उठाने के लिए इनमें परिवर्तन आते गये और धीरे-धीरे ये परिवर्तन इतने अधिक हो गये कि तीनों ने अलग-अलग

जातियों का निर्माण किया। प्राकृतिक वरण के आधार पर नई जातियों का बनना ही डार्विनवाद का उद्देश्य है।

प्राकृतिक वरणवाद की डार्विन तथा वैलेस (Darwin and Wallace) ने साथ-साथ व्याख्या की तथा वैलेस ने इसकी मूलभूत विशेषताओं को निम्न चार्ट के रूप में प्रदर्शित किया :—

वैलेस का चार्ट (Wallace's Chart)

तथ्य	परिणाम
(*i*) प्रत्येक जीव में सन्तानोत्पत्ति की अपार शक्ति (*ii*) प्राणियों की सख्या मे स्थिरता	जीवन संघर्ष
(*iii*) जीवन संघर्ष (*iv*) विभिन्नता तथा आनुवशिकता	समर्थ का जीवत्व
(*v*) समर्थ का जीवत्व (*vi*) वातावरण मे परिवर्तन	नयी जातियों की उत्पत्ति

डार्विनवाद के प्रति आपत्ति (Objection to Darwinism)

डार्विन का प्राकृतिक वरणवाद इतना युक्तिसगत था कि लगभग सभी वैज्ञानिकों ने उसका समर्थन किया किन्तु बाद में इसके प्रति निम्न आपत्तियाँ प्रस्तुत की गयी :—

1. डार्विन ने सूक्ष्म तथा धीमी गति से होने वाले परिवर्तनों पर अधिक जोर दिया लेकिन उसने किसी भी अंग के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में महत्ता पर कोई प्रकाश नही डाला।

2. डार्विनवाद अवशेषी अंगों की उपस्थिति तथा अंगों के प्रयोग में लाने या न लाने के प्रभाव का उल्लेख नहीं करता।

3. डार्विन ने दैहिक तथा भ्रूणीय परिवर्तनों में कोई अन्तर नहीं किया।

4. विभिन्न जातियों मे कुछ अन्तर बिल्कुल भी अनुकूली महत्त्व के नहीं होते लेकिन जीन्स में कुछ परिवर्तन है जो किसी भी कारण अचानक ही उत्पन्न हो जाते है। इन परिवर्तनों की उपस्थिति तथा आनुवशिकी के कारण डार्विन द्वारा नहीं दिये गये।

5. इन आनुवशिक गुणों वाले जन्तु जब दूसरे ऐसे जन्तुओं के साथ मैथुन करते है जिनमे ये लक्षण नही होते तो इन दोनों के सम्मिश्रण से गुणों का प्रभाव कम क्यों नही हो जाता ?

6. डार्विन का सिद्धान्त समर्थ के जीवत्व का उल्लेख तो करता है किन्तु समर्थ की उत्पत्ति (origin of fittest) नहीं बतलाता।

7. डार्विनवाद समन्वित रचनाओं (coordinated structures) की उत्पत्ति तथा वृद्धि का उल्लेख नहीं करता।

8. प्राकृतिक चयन (natural selection) किसी अंग या रचना के अति-विशिष्टीकरण (over-specialisation) को नहीं बतलाता जिसके फलस्वरूप कुछ जातियाँ नष्ट हो गई हैं।

9. डार्विन के लिंग-चयन (sexual selection) सिद्धान्त के प्रति सर्वाधिक आपत्ति उठाई गई है। इसके अनुसार मादा सुन्दर तथा आकर्षक नर को पसन्द करती हैं जबकि नर की ओर से कोई चयन नहीं होता।

10. डार्विन का **पैनजेनेसिस वाद** (pangenesis theory) अब पूर्णतया अमान्य है।

नियो-डार्विनिज्म (Neo-Darwinism)

डार्विन के विकासवाद में कुछ कमियाँ थीं जिनको डार्विन स्वयं भी दूर न कर सका। डार्विन ने बताया कि केवल उपयोगी परिवर्तन ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाते देखे गये हैं। इसी प्रकार वातावरण के प्रभाव से जीवों में परिवर्तन किस प्रकार होते हैं तथा क्या वे अंग जिनका विकास अभी हो ही रहा है विकसित होने से पहले भी उतने ही उपयोगी थे जितने विकास के पश्चात् ?

डार्विन के विकासवाद के नवीन सिद्धान्तों के अनुसार नयी जातियाँ पुरानी जाति के जीन्स (genes) में परिवर्तन होने पर बनती हैं। जीन्स में परिवर्तन होने पर उनके आनुवंशिक गुणों में भी परिवर्तन आ जाते हैं। ये परिवर्तन म्यूटेशन (mutations) कहलाते हैं। एक बार म्युटेशन होने के पश्चात् ही उनमें प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त लागू हो सकता है।

प्रश्न 5. नियो-डार्विनिज्म पर एक निबन्ध लिखिये।

Write an essay on Neo-Darwinism.

डार्विन का नई जातियों की उत्पत्ति का सिद्धान्त, जीवों में जीवन-संघर्ष एवम् समर्थ का जीवत्व (survival of the fittest) के फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्नता एवम् प्राकृतिक निर्वाचन (natural selection) पर आधारित है। डार्विन के समय इस सिद्धान्त के व्यावहारिक स्वरूप एवम् प्रत्यक्ष उपागम (direct approach) के फलस्वरूप इसे पर्याप्त समर्थन मिला तथा आधुनिक अन्वेषणों के आधार पर इसमें किये गये कुछ परिवर्तनों तथा विस्तरणों के फलस्वरूप अभी भी यह सिद्धान्त व्यापक रूप से मान्य है। इन्हीं आधुनिक सिद्धान्तों को **नियो-डार्विनिज्म** कहते हैं।

नियो-डार्विनिज्म के अनुसार जीवों में होने वाले जीव-विकास सम्बन्धी परिवर्तनों के पाँच मुख्य वाद हैं :—

1. **विभिन्नताएँ** (Variations)
2. **उत्परिवर्तन या म्युटेशन** (Mutations)
3. **प्राकृतिक वरण** (Natural selection)
4. **जैनेटिक अपसरण** (Genetic drifts)
5. **जातियों का पृथक्करण** (Isolation of Species)

1. **विभिन्नताएँ** (Variations)—डार्विन के जीवन काल में लैंगिक

जनन के समय जीन्स के पुन: व्यवस्थित होने के कारण होने वाली जैनेटिक विभिन्नताओं का बहुत अल्प ज्ञान था। अर्धसूत्री विभाजन के फलस्वरूप दोनों प्रकार के गैमीटों (नर व मादा) मे मातृ एवम् पितृ गुणसूत्रों के सिनैप्सिस या अन्तर्ग्रथन (synapsis) तथा पुनर्विन्यास के समय जीन्स का आकस्मिक संव्यूहन होता है। जीन्स का इस प्रकार से संव्यूहन भी नई जातियों (विशेषकर वृहत् जीन्स निकाय-युक्त अधिक संख्या वाले जीवो मे) के विकसित होने का एक कारण है। अर्धसूत्री विभाजन के समय जीन्स के क्रॉसिंग ओवर के फलस्वरूप भी विभिन्नताएँ उत्पन्न होती है।

2. उत्परिवर्तन या म्युटेशन (Mutations)—जीन्स या DNA अणु की संरचना मे होने वाले किसी भी उस परिवर्तन को जो इसके प्रभाव मे परिवर्तन उत्पन्न करता है, म्युटेशन या उत्परिवर्तन (variation) कहते हैं। म्युटेशन के फलस्वरूप जीवो मे या तो उग्र परिवर्तन होते है अथवा फिर ये इतने उपेक्ष्य होते हैं कि इनको जीवों मे देखना सम्भव नही। म्युटेशन की दो विशेषताएं है :

1. ये जीवों मे यदा-कदा ही होते हैं।
2. अधिकांश म्युटेशन हानिकारक होते हैं।

जीन्स मे होने वाले उत्परिवर्तनो या म्युटेशन की कोई निश्चित दर नही है। कुछ जीन्स प्रत्येक 2000 गैमीटो के निर्माण के बाद उत्परिवर्तित (mutate) हो जाते है तथा कुछ ऐसे भी जीन्स हैं जो लाखों कोशिकीय विभाजनों के पश्चात् भी उत्परिवर्तित नही होते। उत्परिवर्तित जीन्स के पुन: सामान्य जीन्स मे उत्परिवर्तन की भी उतनी ही सम्भावनाएँ है। अधिकांश म्युटेशन जीवों के लिए हानिदायक या घातक होते है किन्तु ऐसा जीवो में होने वाले सभी म्युटेशन के सम्बन्ध मे नही कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त किसी भी युग्म विकल्पी का प्रभाव पूर्ण रूप से लाभप्रद या हानिकारक न होकर केवल आपेक्षिक ही होता है।

अब प्रश्न उठता है कि जीवो मे यदा-कदा ही म्युटेशन होने के कारण ये जीवो के उद्विकास मे किस प्रकार सहायक होते हैं। इसका उत्तर बड़ा सरल है। जीवो मे म्युटेशन होने के असख्य अवसर है। प्रत्येक गैमीट मे हजारों जीन्स होते है तथा विभिन्न जातियों की प्रत्येक पीढ़ी मे गैमीटें उत्पन्न करने वाले लाखों-करोड़ों जीव होते है। इसके अतिरिक्त जीवो के विकास-क्रम मे अनेक पीढ़ियाँ उत्पन्न होती है। इसीलिए यद्यपि कोई भी एक जीन यदा-कदा ही उत्परिवर्तित होने पर भी जीन्स की अत्यधिक सख्या, जीवों की अत्यधिक सख्या तथा विभिन्न पीढ़ियो के लिए उपलब्ध पर्याप्त समय, सभी मिलकर जीवो मे होने वाली विभिन्नताओं के लिए यथेष्ट अवसर प्रदान करते है।

3. प्राकृतिक वरण (Natural Selection)—प्राकृतिक वरण के अन्तर्गत वे सभी भौतिक एवम् जैव कारक (physical and biotic factors) आते है जो किसी जीव मे होने वाले परिवर्तन के समय एवम् दिशा को निर्धारित करते है। वास्तव मे प्राकृतिक वरणवाद कोई पक्षपात नही करता किन्तु यह स्पष्ट है कि केवल वही जीव जीवित रहने मे समर्थ होते है जो किसी विशेष वातावरण मे रहने के अनुकूल होते है और वे जीव जो उस वातावरण मे रहने के अनुकूल नहीं होते कुछ समय बाद नष्ट हो जाते है। अत: प्राकृतिक वरण (natural selection) एक सर्जनात्मक प्रक्रम है जिसके द्वारा लाभप्रद विभिन्नताओ एवम् म्युटेशन वाले ऐसे

जीव, जिनकी रचना उस वातावरण में रहने के अत्यन्त उपयुक्त हो, जीवित रहने में समर्थ होते हैं। प्राकृतिक वरण की क्रिया को निम्नलिखित उदाहरणों की सहायता से समझाया जा सकता है :

किसी भी भौतिक पर्यावरण में एक विशेष समय में समुदाय के जीवों की एक निश्चित संख्या में सामान्य जीन होते हैं जबकि शेष जीव म्युटेण्ट (mutant) होते हैं, अर्थात् म्युटेण्ट जीन्स इस प्रकार सम्मिलित होते हैं कि इनको धारण करने वाले जीव जनकों से भिन्न होते हैं। इस समुदाय के जीन निकाय (gene pool) में स्थिरता आने पर अर्थात् उस समुदाय के जीवों के जीनोटाइप में जब और अधिक परिवर्तन न हों तो यह निम्निलिखित स्थितियाँ प्रदर्शित करता है :—

1. म्युटेशन सम्बन्धी सन्तुलन (Mutational equilibrium)
2. आकस्मिक मैथुन (Random mating)
3. समस्त जीनोटाइप को जीवित रहने एवम् जनन के समान अवसर (Equal chances for all genotypes to live and reproduce)

किन्तु किसी भी जीव-समुदाय की रचना सदैव नियत एवम् स्थायी नहीं होती, क्योंकि इनके जेनेटिक कोड (genetic code), गुणसूत्रों के पुनर्विन्यास एवम् पुनः संयोगों में नियमित रूप से परिवर्तन होते रहते हैं। मैथुन के लिए असमान अवसर तथा जीवित रहने के लिए पर्याप्त संयोगों के अभाव के कारण केवल अति-जीवनोपयोगी लक्षणों वाले प्राणी ही जीवित एवम् स्थिर रहने में समर्थ होते हैं और अन्य जीव मृत्युग्रस्त हो जाते हैं। अतः पर्यावरण या जैव कारकों के फलस्वरूप होने वाला प्राकृतिक वरण सदैव ही जीवों में एक प्रकार का वरणात्मक प्रभाव बनाये रखता है जिसके फलस्वरूप जीवों में कुछ उत्परिवर्ती परिवर्तन (mutational changes) सुस्थापित हो जाते हैं।

4. जैनेटिक अपसरण (Genetic drifts)—ये अकाल, महामारी तथा पृथक्-करण के फलस्वरूप संख्या में ह्रसित जीव-समुदाय में सुनियोजित रूप से प्रजनन के उदाहरण हैं। ऐसे समुदाय में अनुक्रमित पीढ़ियों की संरचना निर्धारित करने में संयोग की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सैद्धान्तिक रूप से नये म्युटेशन के लिए सम-युग्मजी जीव प्रायः मर जाते हैं जबकि विषमयुग्मजी तथा सामान्य समयुग्जी जीव सुचारु रूप से जीवित रहने में समर्थ होते है। किसी अन्तराप्रजनन वाले छोटे जीव-समुदाय में जीव विषमयुग्मजी जीनों के युगल वरण या चयन की अपेक्षा संयोग द्वारा एक अथवा दूसरे युग्मविकल्पी के लिए समयुग्मजी होने का प्रयत्न करते हैं। इसके फल-स्वरूप कुछ अलाभकारी लक्षण समयुग्मजी जीवों में एकत्रित हो जाते हैं जिसके कारण ऐसे जीव जीवित रहने में असमर्थ होने के कारण लुप्त हो जाते हैं। अतः स्वाभाविक रूप से जीवों में उत्पन्न नये उत्परिवर्तन या म्युटेशन क्रमिक रूप से जीव-समुदाय में से लुप्त होते जाते हैं। किन्तु संयोग की भी अपनी भूमिका है जो कभी-कभी ऐसे जीवों को बनाये रखने में सहायता करता है।

उपर्युक्त जैनेटिक अपसरण सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक हैं क्योंकि इनको द्वीपों व भौगोलिक रूप से पृथक् प्रदेशों में सामान्य रूप से देखा जा सकता है। जब कोई जाति अविरत रूप से वृद्धि करती है तो उस प्रदेश के सीमान्त में रहने वाले जीव-समुदाय का कुछ भाग उस प्रदेश से लगे नये क्षेत्रों में पहुँच जाता है। इस प्रकार नये प्रदेशों में पहुँचे जीवों की संख्या तो कम होती है किन्तु ये जीव मूल समुदाय के जीवों से आनुवंशिक रूप से भिन्न होते हैं। जीवों के इन छोटे

समुदायो मे जीवो की कम सख्या के कारण प्राकृतिक वरण इनको प्रभावित करने मे असमर्थ होता है। अतः इस प्रकार के वृद्धि करते हुए छोटे समुदायों मे जैनेटिक अपसरण या सयोग जीवो मे होने वाले विकास एवम् परिवर्तनों को निर्धारित करते हैं।

5. पृथक्करण (Isolation)—डार्विन के समय से ही किसी जाति के जीवो के मनोवैज्ञानिक, क्रियात्मक या भौगोलिक कारकों के प्रभाव के अन्तर्गत अनेक समुदायो मे पृथक्करण या वियोजक के महत्त्व का ज्ञान था और अभी भी इन कारको को जीवो के विकास मे महत्त्वपूर्ण कारक माना जाता है।

भौगोलिक पृथक्करण के अन्तर्गत पर्वत, नदियाँ, सागर तथा विभिन्न प्रदेशो के बीच अत्यधिक दूरी, आदि प्राकृतिक उपरोध आते हैं जो विभिन्न प्रदेशों के समान जीवो मे अन्तराप्रजनन को रोकते है। क्रियात्मक उपरोव (physical barriers) विभिन्न जातियो के व्यक्तित्व को बनाये रखते हैं क्योकि क्रियात्मक कारक विभिन्न जातियो के जीवो मे अन्तराप्रजनन को रोकते है।

अतः जीवो के अनुकूली स्वभाव के कारण विभिन्न पर्यावरणों या अलग-अलग प्राकृतिक वासो मे रहने वाले जीवों पर प्राकृतिक वरण के प्रभाव के कारण नई जातियाँ विकसित होती है। प्रारम्भ में तो ये परिवर्तन क्रमिक होते है किन्तु बाद मे ये जातियाँ उपजातियो मे विभक्त हो जाती हैं।

लैमार्क का विकासवाद

(Lamarck's Theory on Evolution)

प्रश्न 6. लैमार्कवाद पर निबन्ध लिखिये।

Write an essay on Lamarckism. (*Nagpur 1969 ; Ranchi 70*)

जीन बैप्टिस्टे डी लैमाक (Jean Baptiste de Lamarck) नामक फ्रास के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने सन् 1809 मे सर्वप्रथम विकास का एक वाद या मत प्रस्तुत किया। उसका मत था कि जीवो के रहन-सहन, स्वभाव एवम् विकास पर वातावरण का प्रभाव पडता है। वातावरण मे परिवर्तन होने पर जीवों को अपने आपको उन परिवर्तनो के अनुरूप ढालने की आवश्यकता होती है। अतः उनमे नयी आदते आती हैं। उन आदतो के प्रभाव से कुछ अग अपना कार्य करना बन्द कर देते है और धीरे-धीरे छोटे होकर लुप्त हो जाते है तथा कुछ की कार्यक्षमता बढ जाती है जिससे उनका आकार बढ़ता जाता है। साथ ही कुछ नये अग भी बनने लगते है जो वातावरण के अनुकूल होते है। ये अग सन्तानो मे पहुँचते है और इस प्रकार नये जीवो का निर्माण होता है।

लैमार्क के विकासवाद की निम्न विशेषताएँ है :—

1. वातावरण का प्रभाव (Environmental effect)—प्रत्येक जीवधारी पर वातावरण मे होने वाले परिवर्तनो का प्रभाव पड़ता है और यह प्रभाव उनकी रचना तथा स्वभाव मे परिवर्तन उत्पन्न कर देता है।

2. अंगों का उपयोग में आना या न आना (Use and disuse of organs and structures)—किसी विशेष वातावरण मे कोई विशेष अंग अधिकाधिक उपयोग मे आता है, अतः यह विकसित होता जाता है और आकार मे बढता जाता है। इसी प्रकार जिन परिस्थितियो मे जो अंग उपयोग मे नही आते वे धीरे-धीरे

आकार में घटते जाते हैं और अन्त में नष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी ये अवशेषी अंगों (vestigeal organs) के रूप में प्रदर्शित रहते हैं।

3. उपार्जित गुणों की वंशागति (Inheritance of acquired characters)—वातावरण के प्रभाव से अंगों के उपयोग अथवा निरुपयोग से पैदा हुए परिवर्तन सन्तति में पहुँचा दिये जाते हैं। अतः ये परिवर्तन पीढ़ी-दर-पीढ़ी सन्तानों में पहुँच जाते हैं और सन्तति में भी उपयोग तथा निरुपयोग से ये परिवर्तन अधिकाधिक प्रभावशाली होते जाते हैं और अन्त में कुछ इस प्रकार के जीव बन जाते हैं जो प्रारम्भिक पैतृक जीवों से पूर्णतया भिन्न होते हैं। ये नये गुण वाले जन्तु नयी जाति का निर्माण करते हैं।

अपने मत के समर्थन में उसने बहुत-से उदाहरण प्रस्तुत किये जिनमें से मुख्य उदाहरण जिराफ का है। लैमार्क के मतानुसार आज के लम्बी गर्दन एवम् टाँगों वाले जिराफ का विकास छोटी गर्दन वाले तथा छोटे कद के पूर्वजों से हुआ है। आजकल जिराफ अफ्रीका के रेगिस्तानों में पाया जाता है तथा इसके पूर्वज अफ्रीका के घने जंगलों में रहते थे और जमीन पर उगी घास खाते थे। वातावरण में शुष्कता आने पर मैदानों की घास सूखने लगी। अब इन्हें पेट भरने के लिए पेड़-पौधों की पत्तियों पर निर्भर होना पड़ा। अतः इन्हें अपनी पिछली टाँगों पर खड़े रहकर, अगली टाँगें जमीन से ऊपर उठाकर तथा गर्दन को लम्बी करके पत्तियों को खाना पड़ता था। इन भागों की विभिन्न रचनाओं पर इसका प्रभाव पड़ा तथा पिछली टाँगें एवम् गर्दन धीरे-धीरे लम्बी होने लगीं। आजकल मरुस्थल में रहने वाला लम्बी गर्दन वाला जिराफ इन्हीं परिवर्तनों का फल है।

इसी प्रकार उसने अंगों के निरुपयोग के उदाहरण प्रस्तुत किये। उसके अनुसार साँप में टाँगों का अभाव वातावरण के प्रभाव के कारण है। झाड़ियों में रेंगकर चलने तथा बिलों में घुसने में उसकी टाँगें बाधा उत्पन्न करती थीं। अतः धीरे-धीरे ये छोटी होती गई और अन्त में हजारों पीढ़ियों के पश्चात् वे पूर्णतया नष्ट हो गई। इसी प्रकार मनुष्य के बाह्य कान को हिलाने वाली पेशियाँ पूर्ण विकसित नहीं होतीं और कान हिलाया-डुलाया नहीं जा सकता जबकि खरगोश, हाथी, कुत्ते, इत्यादि में बाह्य कान अपने आप हिल-डुल सकता है। ये अपूर्ण विकसित अंग **अवशेषी अंग** (vestigeal organs) कहलाते हैं।

लैमार्कवाद के अपवाद (Objections to Lamarckism)

1. बहुत-से वैज्ञानिक वातावरण के प्रभाव से उत्पन्न परिवर्तनों को वंशागत (heritable) नहीं मानते। **वीजमान** (Weismann) के अनुसार दैहिक गुणों में वंशानुक्रमण की क्षमता नहीं होती। केवल वे ही गुण सन्तति में पहुँच सकते हैं जो जीवधारी के जनन-द्रव्य (germ plasm) में होते हैं।

2. **वीजमान** ने 80 पीढ़ियों तक चूहों की पूँछ काटी किन्तु फिर भी 81वीं पीढ़ी में चूहों की पूँछ थी जिससे यह सिद्ध हुआ कि दैहिक गुण पित्रागत नहीं होते। इसी प्रकार यह भी देखा गया कि अन्धे पिता की सन्तान अन्धी नहीं होतीं। यदि किसी पीढ़ी में पैतृक जीवों का कोई अंग नष्ट कर दिया जाय तो वह सन्तान में अपने पूर्ण रूप में क्यों बन जाता है?

3. अनवरत प्रयोग से आँखें क्यों खराब हो जाती है?

इसी प्रकार लैमार्कवाद के उपयोग व निरुपयोग के सिद्धान्त के विरोध में

अनेक उदाहरण रखे गये । किन्तु आधुनिक परिकल्पना के अनुसार वायुमण्डल द्वारा प्रेरित वे परिवर्तन सन्तति मे जाने सम्भव है जो पैतृक जीवो के जनन-द्रव्य के जीन्स मे अपना प्रभाव उत्पन्न कर देते है ।

प्रश्न 6. (अ) लैमार्क एवम् डार्विन व वैलेस के विकासवाद के सिद्धान्तों की मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन करिये ।

(ब) छोटी गर्दन वाले पूर्वजों से लम्बी गर्दन वाले वर्तमान जिराफ के विकास की आप उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर किस प्रकार व्याख्या करेंगे ?

(स) प्रत्येक सिद्धान्त की कमियों का उल्लेख करिये ।

(a) Explain briefly the essential points of the evolutionary theories of (i) Lamarck, and (ii) Darwin and Wallace.

(b) How could the evolution of giraffes from short-necked ancestors be explained in terms of each of these two theories ?

(c) Mention the weakness of each theory. (*Rajasthan 1972*)

(a) लैमार्क एवम् डार्विन व वैलेस के विकासवाद के सिद्धान्त (Theories of Evolution of Lamarck and Darwin and Wallace)

कृपया प्रश्न 6 तथा 4 देखिये ।

(b) जिराफ में लम्बी गर्दन का विकास (Evolution of Long Neck in Giraffe)

यद्यपि **लैमार्क** (Lamarck) एवम् **डार्विन** (Darwin) दोनों ने ही जिराफ मे लम्बी गर्दन के विकास के सम्बन्ध मे व्याख्या की है किन्तु इन दोनो के स्पष्टीकरण मे अन्तर है । **लैमार्क के उपार्जित अंगों की वंशागति के सिद्धान्त** (Lamarck's theory of inheritance of characters) के अनुसार जिराफ के पूर्वज सम्भवत. छोटी गर्दन वाले थे जिनके कारण इनको वृक्षो की पत्तियों तक पहुँचने के लिए अपनी गर्दन को फैलाना पड़ता था । अत. उनको लम्बी गर्दन की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसके फलस्वरूप इन्होने ऐसी सन्तति को जन्म दिया जिनकी गर्दन अपेक्षाकृत अधिक लम्बी थी । किन्तु इन लम्बी गर्दन वाले सन्तति जिराफों को भी भोजन की खोज मे वृक्षो की पत्तियों तक पहुँचने के लिए अपनी गर्दन को ऊपर की ओर फैलाना पड़ता था । इसी कारणवश आगे आने वाली पीढ़ियो में गर्दन क्रमिक रूप से लम्बी होती गई जिसके फलस्वरूप वर्तमान जिराफ का विकास सम्भव हो सका ।

डार्विन का प्राकृतिक वरणवाद (Darwin's theory of natural selection) के अनुसार जिराफ मे लम्बी गर्दन का विकास एक दूसरी विधि के अनुसार हुआ है क्योंकि डार्विन के अनुसार जीवो मे भिन्नताएँ पायी जाती हैं। उसके अनुसार जिराफ के पूर्वजो की गर्दन विभिन्न लम्बाई की थी और उनकी गर्दन में यह भिन्नता वशागत थी । जीवन-सघर्ष (अन्तर्जातीय स्पर्धा) तथा प्राकृतिक वरण के फलस्वरूप लम्बी गर्दन वाले सन्तति जिराफ जीवित रहने मे समर्थ रह सके क्योंकि वे सरलतापूर्वक वृक्षों से पत्तियाँ तोड़ सकते थे जबकि भोजन के अभाव में छोटी गर्दन वाले पूर्वज कुछ काल के अन्दर लुप्त हो गये ।

(c) **लैमार्क व डार्विन के सिद्धान्तों की कमियाँ (Weaknesses in the Theories of Lamarck and Darwin)**

कृपया प्रश्न 6 व 4 देखिये ।

मनुष्य का उद्भव एवं विकास
(Origin and Evolution of Man)

प्रश्न 7. होमो सेपियन्स के उद्भव एवम् विकास का वर्णन कीजिये ।

Discuss the origin and evolution of Homo sapiens.

(*Baroda 1963*)

मानव के विकास के समर्थन में जीवाश्म सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का विवरण दीजिये ।

Discuss the palaeontological evidence in support of evolution of man. (*Karnatak 1966, 70*)

आधुनिक मनुष्य **होमो सेपियन्स** (*Homo sapiens*) के उद्गम एवम् विकास के लिए मानव-विज्ञानवेता (anthropologists) ने अपरिमित अध्ययन किया है। अब तक प्राप्त तुच्छ जीवाश्म अभिलेखों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि मानव विकास की कथा आज से लगभग 25 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका के किसी स्थान पर आरम्भ हुई जहाँ इन्होंने किसी अमानवीय या अवमानवीय (subhuman) जीव के क्रमिक रूपान्तरण से मानवीय स्वरूप ग्रहण किया। अत: इनके पूर्वज चूहे या श्रूज (shrews) की तरह के प्राणी माने जाते हैं जो वृक्षों पर रहते, कीड़े-मकोड़े खाते तथा अपनी अंगुलियों की सहायता से वृक्षों पर चढ़ते थे। अब से लगभग 58 लाख वर्ष पूर्व इओसीन (Eocene) काल में इन पूर्वजों से बन्दरों का उद्गम हुआ था तथा इसके लगभग 25 लाख वर्ष पश्चात् ओलाइगोसीन तथा मायोसीन में इन्हीं पूर्वजों से कपि (ape) तथा मनुष्य का विकास हुआ। अत: प्रारम्भ में मानव कपि से बहुत कुछ मिलता-जुलता था। लेकिन प्लाओसीन काल (Pliocene) से मायोसीन (Miocene) तक के जीवाश्म अभिलेखों के अपूर्ण होने के कारण मानव के पूर्वज तथा विकास का सही ज्ञान अभी भी अस्पष्ट है। तथापि चीन, अफ्रीका तथा यूरोप में पाये गये अवशेषों के आधार पर मानव विकास की निम्न कथा प्रस्तुत की गई है :—

प्रोकॉन्सल (Proconsul)—ये मनुष्य के प्राचीनतम जीवाश्म हैं जो आज से लगभग 25 लाख वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर आये थे। ये मनुष्य **कपिरूप** (ape-like) थे। इनकी अगली भुजाएँ टाँगों से छोटी थीं तथा इनका मस्तिष्क छोटा एवम् आधुनिक मनुष्य की अपेक्षा सरल एवम् अल्पविकसित था। टाँगों के लम्बी, चौड़ी तथा मजबूत होने, श्रोणि मेखला के चौड़ा होने तथा हाथों एवम् खोपड़ी में धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप आधुनिक मानव का निर्माण हुआ। अत: प्रोकॉन्सल एवम् आधुनिक मनुष्य के बीच विकास की निम्न अवस्थाओं के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं :—

अफ्रीकी मानव या आस्ट्रेलोपिथीसिनी (Australopithecinae)—दक्षिणी अफ्रीका के प्लेस्टोसीन युग के चूने के निक्षेपों से प्रागैतिहासिक मनुष्यों के कई जीवाश्म प्राप्त हुए हैं जो **प्लेसियनथ्रोपस** (*Plesianthropus*), **पेरेन्थ्रोपस** (*Paranthropus*), **आस्ट्रेलोपिथीकस** (*Australopithecus*), इत्यादि हैं। यद्यपि इन्हें अलग-अलग जेनरा (genera) में रखा गया है तथापि ये सभी समान लगते हैं

तथा **आस्ट्रेलोपिथीकस** के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। इनमें कपि तथा मानवीय गुणों का सम्मिश्रण मिलता है। अतः ये **कपि-मानव** (ape-men) भी कहलाते हैं। ये खड़े होकर केवल पैरों या पिछली टाँगों पर चलते थे तथा इनकी श्रोणि मेखला आधुनिक मानव की श्रोणि मेखला से मिलती-जुलती थी। इनकी कपाल गुहा का आयतन 600 cc. था। ये मानव आज से 17 लाख वर्ष पहिले जीवित थे।

केनियापिथिकस (*Kenyapithecus*) नामक प्रागैतिहासिक मनुष्य के जीवाश्म 1948 में अफ्रीका की विक्टोरिया झील के समीप प्राप्त हुए है। ये मानव लगभग 14 लाख वर्ष पुराने कहे जाते है।

जिंजैन्थ्रोपस (*Zinjanthropus*) नामक प्रागैतिहासिक मानव के अवशेष **लीके** (Leakey) नामक वैज्ञानिक को 1959 मे अफ्रीका से प्राप्त हुए है। ये मानव लगभग 17 लाख वर्ष पुराने है तथा विकास में आस्ट्रेलोपिथीकस से कुछ आगे हैं। ये लगभग 5 फीट लम्बे थे तथा सीधे चलते थे। इनकी कपाल गुहा 615 c.c. थी। ये मनुष्य के निकटतम सम्बन्धी कहे जाते है। जीवाश्मों से ज्ञात होता है कि इन्हे पत्थरों के औजार बनाने का भी ज्ञान था।

जावा मनुष्य (Jawaman) **या पिथेकेन्थ्रोपस** (Pithecanthropus)—इस प्रागैतिहासिक मनुष्य के जीवाश्म डुबोइस (Dubois) को 1891 मे जाव से प्राप्त हुए थे। ये प्रथम मानव कहे जाते हैं और आजकल *Homo erectu erectus* के नाम से पुकारे जाते हैं। मनुष्य की यह जाति लगभग समस्त संसार मे फैली हुई थी क्योंकि इसके जीवाश्म चीन तथा अफ्रीका से भी प्राप्त हुए है। इनकी खोपडी लम्बी तथा नीची थी। इनका माथा छोटा, भौहें मोटी, नाक चपटी तथ जबडे भारी एवम् सामने को उभरे हुए थे। ये सीधे खड़े होकर चल सकते थे इनकी कपाल गुहा लगभग 900 c.c तक थी। ये पत्थरों के औजार बनाना जान थे तथा आग का उपयोग भी करते थे। अनुमान है कि आज से लगभग 6 लाख व पूर्व ये पृथ्वी पर रहते थे।

पेकिंग मानव (Peking man) **या सिनैन्थ्रोपस** (*Sinanthropus*)—र रचना मे बहुत कुछ जावा मनुष्य के समान था किन्तु कुछ अधिक बुद्धिमान था क्यों इसकी कपाल गुहा लगभग 1075 c.c. थी। यह अपेक्षाकृत अधिक सभ्य था। इस जीवाश्म पाई नामक चीनी वैज्ञानिक ने 1924 मे चीन में देखे थे। यह *Sinanthro pus pekinensis* या *Homo erectus pekinensis* भी कहलाता है। पेकि मानव शिकार करते तथा माँस खाते थे।

डिजेटिस विशाल मानव (Dijetis giant man) या **मेगैन्थ्रोपस पेलिओ जावानिकस** (*Meganthropus palaeojavanicus*)—इस विशाल मानव के केव जबडो के कुछ भाग ही मिले है। इसका निचला जबडा अति विशाल था तथ गोरिल्ला के जबड़े से लगभग दुगुना लम्बा व मोटा था। इसमे ठोड़ी (chin) क अभाव था जिसके आधार पर इसे मानव माना गया है।

टरनिफाइन मानव या एटलाण्टिक मानव (Ternifine or Atlantic ma या **पिथेकैन्थ्रोपस मौरीटेनिकस** (*Pithecanthropus mauritanicus*)—इस जा के जीवाश्म 1954 मे पेलिकास, टरनिफाइन तथा अल्जीरिया, इत्यादि स्थानों से प्रा हुए है। इनका निचला जबडा जावा-मानव के समान ही था। अतः यह माना जा है कि ये जावा तथा पेकिंग मनुष्यो के निकट सम्बन्धी है जो अफ्रीका मे फै हुए थे।

हीडेलबर्ग मानव (Heidelberg man) या **होमो हीडेलबरजेनसिस** (*Homo heidelbergensis*)—इस मानव का केवल जवड़ा ही जर्मनी के हीडेलवर्ग के समीप से पाया गया है। यह द्वितीय ग्रान्तर-हिम युग से कुछ पहिले पाया जाता था। इसको नियेनडर्थल मानव का पूर्वज माना जाता है।

नियेनडर्थल मानव (Neanderthal man) या **होमो नियेनडर्थलेन्सिस** (*Homo neanderthalensis*)—इस मनुष्य के जीवाश्म जर्मनी में पाये गये थे ग्रौर ग्रनुमान किया जाता है कि ये यूरोप, एशिया तथा उत्तरी ग्रफ्रीका में फैले हुए थे। ये तृतीय ग्रान्तर-हिम युग तथा ग्रन्तिम हिम युग में पृथ्वी पर रहते थे। ये छोटे कद (5 फीट) तथा मजबूत शरीर वाले थे। इनका शीर्ष स्थूल, दाँत वड़े तथा भौंहें ग्रपेक्षाकृत कम चौड़ी थीं। इनकी कपाल गुहा वड़ी (लगभग 1450 mm.) थी किन्तु इनका मस्तिष्क उतना जटिल नहीं था। ये सुन्दर तथा उपयोगी हथियार वनाते, शिकार करते, माँस खाते, वेदी वनाते तथा मुर्दों को सामाजिक रीति के ग्रनुसार गाड़ते थे। ये गुफाग्रों में रहने लगे थे, ग्रत: ये 'early cavemen' भी कहे जाते हैं।

होमो हेविलिस (*Homo habilis*) या **सिनैन्थ्रोपस लेन्शियानेन्सिस** (*Sinanthropus lantianensis*)—इस प्रागैतिहासिक मनुष्य एवम् इसी के समान कुछ ग्रन्य जातियों के जीवाश्म पिछले कुछ वर्षों में प्राप्त हुए हैं। ये ग्राज से लगभग दो लाख वर्ष पूर्व ग्रफ्रीका में रहते थे। रचना, स्वभाव तथा रहन-सहन में ये ग्राधुनिक मनुष्य के समान थे। ये कोई भाषा भी वोलते थे।

क्रो-मैगनॉन मानव (Cro-Magnon man) या **होमो सेपियन्स** (*Homo sapiens*)—ये ग्राधुनिक मानव के निकटतम सम्वन्धी हैं ग्रत: इनसे वहुत ग्रधिक मिलते हैं। इनके जीवाश्म टेलियोलिथिक युग से प्राप्त हुए हैं। लगभग 50 हजार वर्ष पूर्व ये ग्रविकृतम संख्या में मिलते थे जो यूरोप की काकेशियाई जाति से मिलते-जुलते हैं। ये लम्वे व चौड़े चेहरे वाले तथा शारीरिक एवम् मानसिक दृष्टि से पूर्ण विकसित थे। इनकी भौंहें हल्की तथा कपाल गुहा का ग्रायतन लगभग 1600 c.c. था। ये शिकार करने व हथियार वनाने में निपुण थे ग्रौर पशु-पालन एवम् खेती करना भी जानते थे। भोजन पका कर खाते थे तथा छोटे-छोटे परिवारों में रहते थे। ये चित्रकारी एवम् ग्रन्य कलाग्रों में भी पारंगत थे। 12000 B.C. के लगभग मनुष्य की ग्राधुनिक जाति ने इनका स्थान ले लिया।

ग्राधुनिक मानव (*Modern man*) **होमो सैपियन्स सैपियन्स** (Homo sapiens sapiens)—ग्राधुनिक मानव के विकास को ग्रभी दस हजार वर्ष से भी कम समय हुग्रा है। ये विकास की उच्चतम सीढ़ी प्रदर्शित करते हैं। ये विभिन्न प्रकार की जटिल मशीनों का निर्माण एवम् प्रयोग करते हैं। स्वर तथा भाषा के माध्यम से ग्रपने विचारों का ग्रादान-प्रदान करते हैं। ग्राधुनिक युग में तो ये समस्त प्राकृतिक शक्तियों पर विजय पाने का प्रयास कर रहे हैं। ग्राधुनिक मानव की तीन जातियाँ (races) Mongoloid, Negroid तथा Caucasoid हैं।

उपर्युक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनुष्य स्वयं भी एक ग्रतिविकसित पशु ही है। यद्यपि ग्रभी तक इसके जीवाश्म ग्रभिलेख ग्रपूर्ण ही हैं किन्तु वैज्ञानिकों का यह दृढ़ विश्वास है कि निकट भविष्य में वे इसके जीवाश्मों की एक पूर्ण शृंखला को प्राप्त करने में ग्रवश्य ही सफल होंगे। इसके पश्चात् इस तथ्य

में शंका की कोई बात नहीं रहेगी कि मानव का विकास किसी अमानव या अपमानव जीव से ही हुआ है ।

घोड़े की वंशावली या घोड़े का विकास
(Pedigree or Evolution of Horse)

प्रश्न 8. घोड़े की वंशावली का वर्णन कीजिये ।

Give an account of fossil history of horse. (*Vikram 1969*)

घोड़े की पितृ श्रेणी पर एक निबन्ध लिखिये ।

Write an account of the ancestry of horse. (*Jabalpur 1972*)

जैविक विकास के पक्ष में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं । उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाण जीवाश्मों से प्राप्त होता है । अनेक जीवों के विकास की पूर्ण वंशावली भौमिक चट्टानों में जीवाश्मों के रूप में अंकित है किन्तु हाथी, घोड़े तथा मानव की विकास कथा ही पूर्णरूप से ज्ञात हो पायी है ।

घोड़े का विकास आज से लगभग चालीस लाख वर्ष पूर्व इओसीन युग में प्रारम्भ हुआ माना जाता है । इस बीच में घोड़े की आकृति एवम् संरचना में होने वाले समस्त परिवर्तनों पर भौगोलिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव था । हरे-भरे दलदली मैदानों के घास के मैदानों में परिवर्तित हो जाने के फलस्वरूप घोड़े की पादांगुलियों की संख्या कम होती गई । तेज भागने के लिए टाँगें लम्बाई में बढ़ीं तथा भूमि पर उगी घास खाने के लिए स्वभावत: गर्दन लम्बी होती चली गई । प्राप्त भोजन के रूप में परिवर्तन होने के कारण चबाने के लिए चर्वणक दन्तों पर दन्तशिखर विकसित हुए । इसकी पूर्ण विकास कथा को निम्न पाँच पदों में बाँटा गया है :—

1. इओहिप्पस (Eohippus)—घोड़े के आदि पूर्वज **इओहिप्पस** या हायरेकोथीरियम (Hyracotherium) माने जाते हैं जो प्रारम्भिक इओसीन युग में यूरोप तथा अमेरिका के जंगलों में रहते थे । ये लोमड़ी के समान थे, तथा इनकी ऊँचाई लगभग 11 इंच थी । इनकी गर्दन छोटी तथा दाँतों की सख्या 44 थी । ये जंगल की हरी कोमल पत्तियाँ खाते थे । इनके अग्रपादों में चार-चार तथा पश्चपादों में तीन-तीन पूर्ण पादांगुलियाँ थीं । अग्रपादों में प्रथम पादांगुली पूर्णतया अनुपस्थित थी किन्तु पश्चपादों में प्रथम तथा पाँचवीं पादांगुलियाँ अति ह्रसित अवस्था में उपस्थित थीं ।

इओसीन के अन्तिम काल में पाये जाने वाले घोड़ों के जीवाश्म **ओरोहिप्पस** (Orohippus) कहलाते है । यद्यपि ये पूर्णतया इओहिप्पस के समान थे किन्तु इनके अग्रपादों में अन्तिम (पाँचवीं) पादांगुलियों का पूर्ण अभाव था । अत: अग्रपादों मे अब केवल तीन अगुलियाँ ही शेष थी ।

2. मीजोहिप्पस (Mesohippus)—ओलाइगोसीन (Oligocene) युग की चट्टानों में मिले घोडों के जीवाश्म भेड के बराबर लम्बे थे । ये मीजोहिप्पस कहलाते है । इनके अग्रपादों मे केवल तीन अंगुलियाँ थीं तथा पश्चपाद में भी दोनों ह्रसित पादांगुलियों के समाप्त होने से केवल तीन पादांगुलियाँ ही रह गई थीं । तीनों पादांगुलियाँ भूमि तक पहुँचती थी किन्तु मध्य पादांगुलियाँ सबसे लम्बी थीं तथा यही शरीर का समस्त भार वहन करती थी ।

3. मेरीकिप्पस (Merychippus)—मायोसीन (*miocene*) युग मे
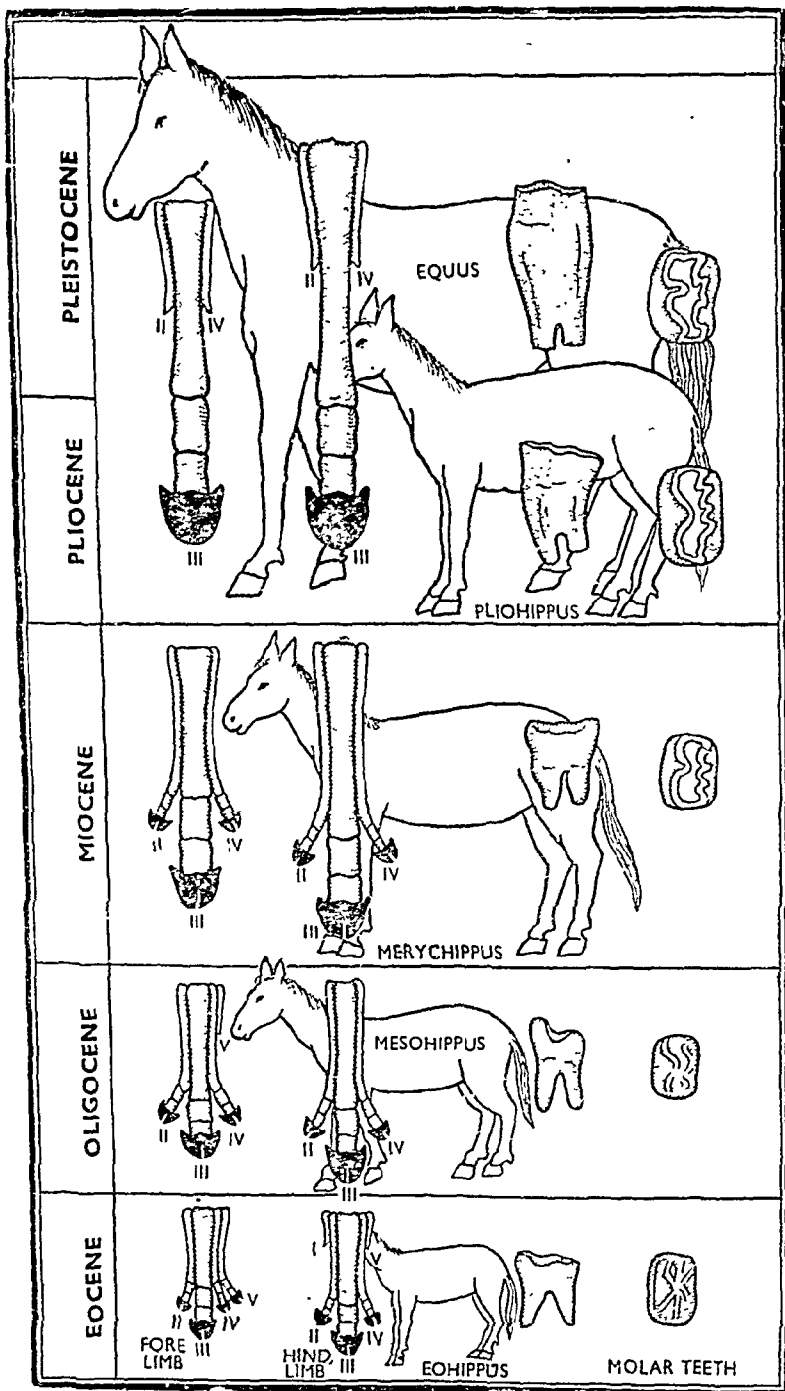
चित्र 2. घोड़े की वंशावली की चित्र-कथा
(Pedigree or evolution of *Horse*)

मीजोहिप्पस मेरीकिप्पस घोड़ों द्वारा विस्थापित कर दिये गए। ये गधों के समान थे तथा इनकी पार्श्व अंगुलियाँ अल्पविकसित थी। इनके अग्र एवम् पश्चपादों में तीन-तीन पादांगुलियाँ थीं किन्तु इनके दन्त लम्बे शिखर वाले तथा पूर्णतया सीमेन्टयुक्त थे जो कोमल पत्तियों के स्थान पर सख्त पौधों को चबाने के उपयुक्त थे।

4. प्लायोहिप्पस (Pliohippus)—प्लायोसीन युग में प्लायोहिप्पस पाये जाते थे। ये टट्टू के बराबर थे तथा लगभग 40 इंच लम्बे थे। दोनों अग्र एवम् पश्चपादों में केवल एक-एक (बीच वाली) पादांगुलि विकसित थी। द्वितीय एवम् चतुर्थ पादांगुलियाँ ह्रसित अवस्था मे थी। ऊपरी जबड़े के चर्वणकों के शिखर आधुनिक घोड़ो के समान थे।

5. इक्वस (Equus)—आधुनिक घोड़ा **इक्वस** (equus) कहलाता है। यह प्लीस्टोसीन (pleistocene) युग में विकसित हुआ तथा आज तक उसी रूप में चला आ रहा है। इसमें केवल तृतीय पादागुलियाँ भूमि तक पहुँचती हैं तथा शरीर का पूर्ण भार वहन करती है। इसके चर्वणकों पर शिखर अति लम्बे होते है तथा इन पर इनेमल के बने अति जटिल किरीट (ridges) होते है जो घास चबाने के अनुरूप होते हैं। ये लगभग 60 इंच लम्बे तथा मजबूत शरीर वाले होते हैं।

अत. विकास के फलस्वरूप अधिक बुद्धिमान, लम्बे, तेज दौड़ने वाले तथा घास खाने वाले घोडे का विकास हुआ। आजकल केवल एशिया तथा अफ्रीका में ही घोडो की जंगली जाति इक्वस मिलती है।●

प्रश्न 8 (अ) इक्वस के विकास-क्रम का वर्णन कीजिये।

Describe the evolutionary history of Equus.

(*Karnatak 1972*)

कृपया प्रश्न 8 देखिये।

2
विभिन्नतायें
(Variations)

प्रश्न 9. विभिन्नताओं से क्या तात्पर्य है ? विभिन्नताओं की किस्मों का वर्णन कीजिये तथा विकास में उनके महत्त्व पर प्रकाश डालिये ।

Explain what is meant by variations. Describe various kinds of variations and discuss their relative importance in the phenomenon of evolution. (*Lucknow 1963*)

विभिन्नतायें (Variations)

औसत या मध्यमान से विचलन की क्रिया **भिन्नता** कहलाती है । जैविक विकास का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप बनने के लिए समस्त जन्तु एवम् पेड़-पौधों में परिवर्तन होते रहते हैं । ये परिवर्तन इतने अधिक होते हैं कि एक ही माता-पिता के समस्त बच्चे भी समान नहीं होते । निकट सम्बन्धी जीवों में पाये जाने वाले ये अन्तर **विभिन्नतायें** (variations) कहलाते हैं । भिन्नतायें तथा अनुवांशिकता जैविक विकास के दो स्वरूप हैं अर्थात् वायुमण्डल के प्रभाव से जीवों में परिवर्तन होते हैं तथा ये परिवर्तन आनुवंशिकी द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी सन्तानों में पहुँचते जाते हैं जिसके फलस्वरूप नयी किस्म के जीव उत्पन्न होते है । डार्विन ने इन्हीं के आधार पर **'जाति के उद्भव'** (origin of species) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया ।

विभिन्नताओं की किस्में (Kinds of Variations)

ये निम्न प्रकार के है :—

1. दैहिक तथा जर्मिनल विभिन्नतायें
2. सतत तथा असतत विभिन्नतायें
3. मेरिस्टिक तथा स्वतन्त्र विभिन्नतायें

1. दैहिक तथा जर्मिनल विभिन्नतायें (Somatic or somatogenic and germinal or blastogenic variations)—दैहिक विभिन्नतायें जीवों के शरीर पर वायुमण्डल के प्रभाव से उत्पन्न होती हैं । ये जीवधारियों के शरीर में होने वाले स्थानीय परिवर्तन हैं जो आनुवंशिक नहीं होते अर्थात् ये माता या पिता से सन्तान में नहीं पहुँचते अपितु उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाते है । इन परिवर्तनों को **उपार्जित विभिन्नतायें** (acquired variations) कहते हैं । खिलाड़ियों की अधिक विकसित पेशियाँ, दुर्घटनावश किसी अंग का शरीर से अलग होना, चीन की

युवतियों मे पैरों का छोटा होना तथा उष्ण-कटिबन्धीय प्रदेशों में रहने वाले यूरोप के निवासियों की त्वचा का धूप से झुलसना, इत्यादि दैहिक विभिन्नताओं के उदाहरण है।

लेमार्क का "**उपार्जित गुणों की आनुवंशिकी**" का सिद्धान्त इन उपार्जित विभिन्नताओं के एक पीढ़ी से दूसरी पीढी में पहुँचने पर आधारित है। लेकिन **वीजमान** ने यह सिद्ध किया कि ये विभिन्नतायें आनुवंशिक नही होतीं।

जर्मिनल विभिन्नतायें जीवधारियों के जर्मप्लाज्म (germplasm) में पायी जाती हैं, क्योंकि युग्मक जर्मप्लाज्म से बनते हैं तथा ये युग्मक संयुग्मन के पश्चात् युग्मज (zgyote) बनाते है। युग्मज वृद्धि करके प्रौढ़ जन्तु में परिवर्तित होता है। अत: जर्मप्लाज्म में होने वाले समस्त परिवर्तन पीढ़ी दर पीढ़ी सन्तानों में पहुँचते रहते है। जर्मिनल विभिन्नतायें जीवों में जन्म से पायी जा सकती है अथवा उनके जीवन-काल मे कभी भी प्रदर्शित हो सकती है। यद्यपि दैहिक तथा जर्मिनल विभिन्नताओं मे अन्तर पूर्णतया स्पष्ट नही है क्योंकि कभी-कभी तो लगातार कई पीढियों तक वंशागत होने पर दैहिक विभिन्नतायें जर्मिनल विभिन्नताओं मे परिवर्तित हो जाती है।

2. सतत तथा असतत विभिन्नतायें (Continuous and discontinuous variations)—**सतत विभिन्नतायें** सूक्ष्म परिवर्तन हैं जो मध्यमान की अपेक्षा घटती-बढती रहती है। अत: इन परिवर्तनों के फलस्वरूप जीवों में बहुत कम भिन्नताये होती है। क्योंकि सतत विभिन्नतायें घटती तथा बढती रहती है, अत: ये **धन एवम् ऋण विभिन्नतायें** भी कहलाती है। **डार्विन** ने इनको **विचल विभिन्नताओं** (fluctuating variations) का नाम दिया तथा इनको जैविक विकास तथा जातियों की उत्पत्ति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बताया क्योंकि उसका मत था कि यही विचल विभिन्नतायें पीढी दर पीढी एकत्रित तथा संपरिवर्तित होकर नयी जातियाँ बनाती है। विचल विभिन्नताये सदैव ही प्रकृति मे दृष्टिगत होती है किन्तु यह देखा गया है कि विभिन्नताये मध्यमान से जितनी कम विचलित होती है उतने ही अधिक जीवों में इनको देखा जा सकता है। इसके विपरीत मध्यमान से ये जितना अधिक विचलित होती है उतने ही कम जीवों मे पायी जाती है।

असतत विभिन्नतायें (discontinuous variations) जीवों में अचानक ही प्रस्थापित (introduce) होती है तथा ये अपेक्षाकृत बड़ी या अधिक स्पष्ट होती हैं। ये सामान्य की अपेक्षा काफी अधिक विचलित होती है तथा मध्यमान की अपेक्षा घटती-बढती नही रहती अपितु पूर्णतया नये रूप में दृष्टिगत होती है। अत: ये परिवर्तन **म्यूटेशन** (mutations) भी कहलाते हैं। ये अधिकतर स्थिर तथा वंशागत होते है और पीढ़ी-दर-पीढी पारेषित होते रहते है। असतत विभिन्नताएँ प्रकृति में बहुत कम मिलती है तथा इनका कोई निश्चित काल-चक्र नही होता। मनुष्य के हाथ-पैरों में छः अंगुलियों का होना, बछड़े मे सींग का न होना, गुलाब में काँटों का न होना, जापानी मुर्गो मे लम्बी पूँछ का होना, बिल्ली के बच्चे मे पूंछ का न होना, इत्यादि म्यूटेशन के उदाहरण हैं। **ह्यू गो डी वेरीज** के अनुसार ये भिन्नताएँ जाति के उद्भव एवम् विकास मे महत्त्वपूर्ण होती है।

3. मेरिस्टिक तथा स्वतन्त्र भिन्नताएँ (Meristic and substantiv

variations)—जीवधारियों में अंगों की संख्या की पुनरावृत्ति से उत्पन्न विभिन्नताएँ **मेरिस्टिक विभिन्नताएँ** कहलाती हैं। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—हाथ या पैरों में पाँच के स्थान पर छ: अंगुलियों का पाया जाना, मनुष्य में बारह के स्थान पर तेरह पसलियों की उपस्थिति तथा सितारा मछली में पाँच के स्थान पर छ: भुजाओं का पाया जाना, इत्यादि।

जीवधारियों अथवा उनके शरीर के किसी भी भाग के आकार, परिमाण अथवा रंग में होने वाले परिवर्तन **स्वतन्त्र विभिन्नताएँ** (substantive variations) कहलाते हैं। जैसे नेत्रों का रंग, बालों का रंग, नाक, आँख या कान का आकार, शरीर की लम्बाई, पौधों की लम्बाई, पौधों की पत्तियाँ, इत्यादि के रूप एवम् रंग में भिन्नताएँ।

इसी प्रकार से आकारिक, शरीर-क्रियात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा पारिस्थितिक विभिन्नताएँ भी होती हैं। **आकारिक विभिन्नताएँ** (morphological variations) जीवों अथवा उनके अंगों के आकार तथा संरचना में होने वाले परिवर्तन हैं। **शरीर-क्रियात्मक विभिन्नताएँ** किसी अंग के कार्यों में अन्तर को प्रदर्शित करती हैं। **मनोवैज्ञानिक विभिन्नताएँ** जीवों के मानसिक गुणों में पाई जाने वाली भिन्नताएँ हैं तथा वातावरण में अन्तर होने के कारण उत्पन्न विभिन्नताएँ **पारिस्थितिक विभिन्नताएँ** कहलाती हैं।

विभिन्नताओं के कारण (Causes of Variations)

दैहिक विभिन्नताओं के कारण तो स्पष्ट हैं ही क्योंकि ये वातावरण के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं किन्तु जर्मिनल विभिन्नताओं के कारण पूर्णतया स्पष्ट नहीं हैं। विभिन्नताओं के कुछ ज्ञात कारण निम्न हैं :—

1. **वातावरण** (Environment)—वातावरण का जीवधारियों के शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसमें अन्तर आने पर तुरन्त ही जीवों की शारीरिक रचना प्रभावित हो जाती है। यही नहीं, उनकी कार्य-प्रणाली में भी परिवर्तन आ जाते हैं।

2. **अन्तर्निहित प्रवृत्ति** (Inherent tendency)—जीवधारियों में एक-दूसरे से भिन्न होने की प्रवृत्ति पायी गई है। समस्त जीवधारियों की रचना का आधारभूत पदार्थ जीव-द्रव्य है जो रासायनिक दृष्टिकोण से विभिन्न प्रकार के कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिकों के अणुओं का बना होता है। इन अणुओं में सदैव ही रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। अत: किन्हीं भी समान परिस्थितियों में दो जीवों का समान मिलना अति कठिन है। रचना के आधार पर अगर वे समान हैं तो भी स्वभाव, कायिकी या मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनमें कुछ अन्तर अवश्यम्भावी हैं।

3. **द्वैत जनकता** (Dual parentage)—**वीजमान** का मत था कि दो जनकों (अर्थात् माता-पिता) से उत्पन्न होने के कारण उनकी सन्तानें ठीक उनके समान न होकर कुछ भिन्न अवश्य होती हैं। उसका कथन था कि प्रत्येक जीव को अपने जर्मप्लाज्म का 1/2 माता-पिता से, 1/4 अपने दादा-दादी से, 1/8 अपने परदादा-परदादी, इत्यादि से प्राप्त होता है अर्थात् प्रत्येक जीव में अपने माता तथा पिता की ओर के दोनों वंशों का सम्मिश्रण होता है, अत: इनका एक समान होना असम्भव ही है।

4. **अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ** (Endocrine glands)—अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से उत्पन्न हारमोन जीवों के वर्धन एवम् भिन्नन को प्रभावित करते हैं तथा इन क्रियाओं

का नियमन भी करते हैं। अतः इनकी मात्रा अथवा कार्य में थोड़ा-सा अन्तर होने पर जीवधारियों के विभिन्न शारीरिक एवम् मानसिक गुणों में भिन्नताएँ आ जाती हैं। अतः अन्तःस्रावी ग्रन्थियों द्वारा कई प्रकार की दैहिक तथा जर्मिनल विभिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

विभिन्नताओं का आनुवंशिक आधार
(Genetic Basis of Variations)

1. क्रोमोसोम विपथन (Chromosomal Aberrations)

गुणसूत्रों की संख्या, उनकी संरचना तथा विन्यास में होने वाले परिवर्तन नये गुणों वाले जीवों की उत्पत्ति करते हैं। ये परिवर्तन अधिकतर अर्धसूत्रण कोशिका-भाजन के समय होते हैं। ये क्रोमोसोम विपथन निम्न प्रकार से हो सकते हैं :—

1. गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन

(A) गुणसूत्रों के जोड़ों (sets) की संख्या में परिवर्तन—

(*i*) **मूलसंख्यकता** (Haploidy)—गुणसूत्रों के एक सैट की कमी होने की क्रिया मूलसंख्यकता कहलाती है। अतः इन जीवों में गुणसूत्रों की संख्या पैतृक जीवों की अपेक्षा आधी रह जाती है (n)।

(*ii*) **बहुगुणितता** (Polyploidy)—इसमें गुणसूत्रों के सैट की संख्या में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप द्विगुणित जन्तु में 2n गुणसूत्रों के स्थान पर 3n या 4n हो जाते हैं।

(B) गुणसूत्रों के एक सैट में गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन—

(*i*) **मोनोसोमिक** (Monosomic)—गुणसूत्रों के एक सैट में से एक गुणसूत्र की कमी होने पर मोनोसोमिक जीव बनते हैं। इनमें गुणसूत्रों (2n—1) की संख्या में कमी हो जाती है।

(*ii*) **पॉलीसोमिक** (Polysomic)—गुणसूत्रों के एक सैट में से कोई विशेष गुणसूत्र दो के स्थान पर तीन या चार की संख्या में पाया जाता है। अतः इनमें गुणसूत्रों (2n+1) की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

गुणसूत्रों की संख्या में ये परिवर्तन अर्धसूत्रण कोशिकाभाजन के समय किसी एक जोड़े के गुणसूत्रों से अलग न होकर एक ही कोशिका में साथ चले जाने से उत्पन्न होते हैं। इसके फलस्वरूप बनी दो पैतृक कोशिकाओं में से एक में एक सैट के दोनों गुणसूत्र आ जाते हैं तथा दूसरे में इस जोड़े का एक भी गुणसूत्र नहीं होता, अतः एक कोशिका में गुणसूत्र (n+1) होंगे तथा दूसरी में (n—1)।

II. गुणसूत्रों में आकारिक परिवर्तन

(A) एक गुणसूत्र में कुछ जीन्स की कमी या अधिकता—

(*i*) **न्यूनता** (Deficiency)—गुणसूत्र का कुछ भाग टूटकर गिरने पर उस भाग में उपस्थित जीन्स का अभाव हो जाता है।

(*ii*) **द्विरावृत्ति** (Duplication)—एक जोड़े के दोनों गुणसूत्रों में से एक गुणसूत्र का कुछ भाग टूटकर दूसरे गुणसूत्र से चिपक जाता है। फलस्वरूप एक गुणसूत्र में इन जीन्स का अभाव हो जाता है तथा दूसरे में इनकी पुनरावृत्ति हो जाती है।
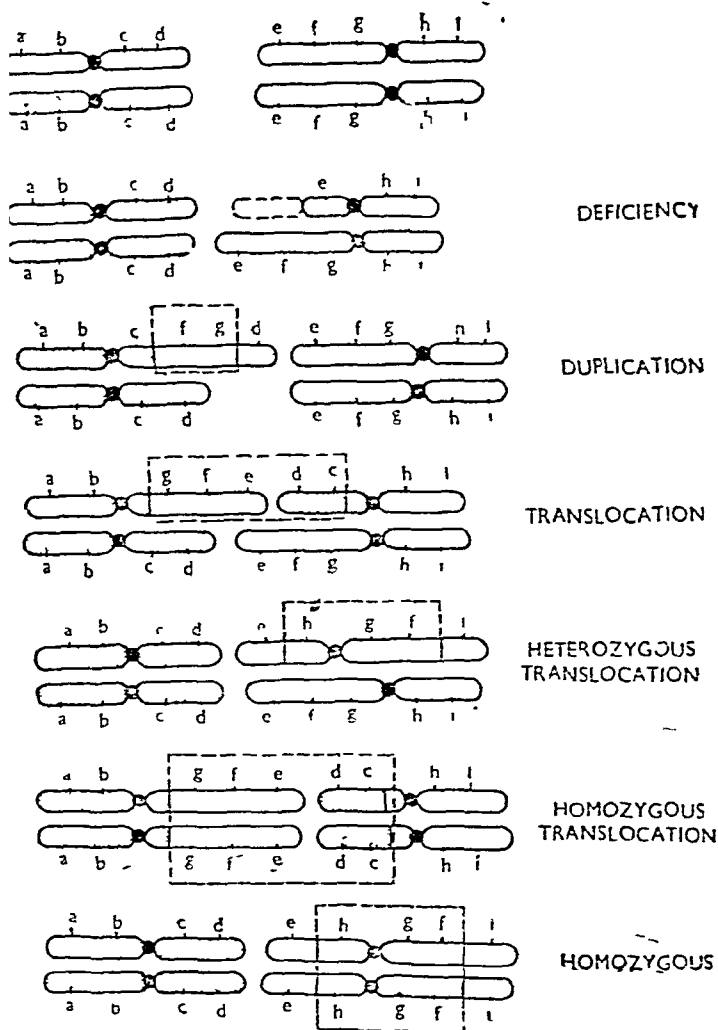
चित्र 3. गुणसूत्रों मे आकारिक परिवर्तन

(*B*) जीन्स के विन्यास में परिवर्तन—

(*i*) स्थानान्तरण (Translocation)—किन्हीं दो असमजात गुणसूत्रों (non-homologous chromosomes) में कुछ भागों के विनिमय या आदान-प्रदान से नये प्रकार के गुणसूत्रों का निर्माण होता है।

(*ii*) प्रतिलोमीकरण (Inversion)—एक ही गुणसूत्र में उसका कुछ भाग 180° पर घूम जाता है जिससे उस गुणसूत्र में जीन्स के विन्यास का क्रम बदल जाता है तथा फलस्वरूप नये प्रकार का गुणसूत्र बन जाता है।

2. जीन म्युटेशन (Gene Mutation)

जीन म्युटेशन भी भिन्नन में मुख्य भाग लेता है। ये जीन्स में होने वाले

परिवर्तन हैं जो सन्तति में पहुँच सकते हैं। किन्तु यह तभी सम्भव है जब जीन म्युटेशन जनन कोशिकाओं के गुणसूत्रों में होता है। भ्रूण के वर्धन के समय होने वाले प्रभावी म्युटेशन तुरन्त ही अपना प्रभाव प्रदर्शित कर देते हैं किन्तु अप्रभावी म्युटेशन तभी अपना प्रभाव प्रदर्शित कर सकता है जबकि उसका साथी जीन भी उसी प्रकार म्युटेशन द्वारा परिवर्तित हो गया हो।

निष्कर्ष

विभिन्नताएँ किसी भी स्वभाव की हों तथा किसी भी प्रकार से उत्पन्न हुई हों, ये स्पष्ट या अस्पष्ट रूप में जैविक विकास की क्रिया को अवश्य प्रभावित करती हैं। विभिन्नताएँ तथा आनुवंशिकी जैविक विकास के मूल साधन हैं।

3
म्युटेशन
(Mutations)

प्रश्न 10. म्युटेशनवाद पर निवन्ध लिखिये।

Write an essay on mutation theory.

(*Meerut 1969 ; Karnatak 70*)

यह माना जाता है कि जीन्स अत्यन्त स्थिर (stable) रचनाएँ हैं। एक प्रभावी युग्म विकल्पी (allele) पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक निश्चित प्रभाव उत्पन्न करता है। इसी प्रकार इसका अप्रभावी युग्मविकल्पी भी होमोजाइगस अवस्था में इसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता है। किन्तु कभी-कभी इन जीन्स या जीन्स ग्रहण करने वाले गुणसूत्रों में परिवर्तन हो जाते हैं और नया बना गुणसूत्र अपने पैतृक गुणसूत्र से भिन्न हो जाता है। अगर यह परिवर्तन बहुत बड़ा होता है तो इसके फलस्वरूप बनी कोशिका नष्ट हो जाती है किन्तु सूक्ष्म परिवर्तन समस्त सन्तति कोशिकाओं में पहुँच जाते हैं। जीवधारियों के जर्मप्लाज्म या आनुवंशिक पदार्थ (hereditary material) में होने वाले परिवर्तन **म्युटेशन** (mutations) कहलाते हैं।

1901 में **ह्यूगो डी व्रीज** ने इवनिंग प्रिमरोज (Evening primrose—*Oenothera lamarckiana*) का अध्ययन करने पर सर्वप्रथम यह सम्भावना प्रकट की थी कि किसी जाति में नये प्रकार के आनुवंशिक गुण अचानक ही दिखाई दे सकते हैं। लेकिन म्युटेशन का वास्तविक अध्ययन 1910 में **मॉरगन** (Morgan) से प्रारम्भ होता है। उसने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में *ड्रोसोफिला* पर प्रयोग करते हुए हजारों **लाल आँखों वाली ड्रोसोफिला** में कुछ **श्वेत आँखों वाली नर** मक्खियाँ भी देखीं। इन श्वेत आँखों वाली नर मक्खियों का उसी स्टाक की लाल आँखों वाली मादा के साथ **मैथुन** कराने पर कुछ श्वेत आँखों वाली मादा मक्खियाँ उत्पन्न हुई। **मॉरगन** ने कहा कि आँखों के रंग में यह परिवर्तन जीन म्युटेशन के कारण होता है।

म्युटेशन दो प्रकार के होते हैं :—

I. क्रोमोसोम म्युटेशन या क्रोमोसोम में आकारिक परिवर्तन
(Chromosomal Mutations or Structural Changes in Chromosomes)

A. एक गुणसूत्र में कुछ जीन्स की कमी या अधिकता

(*i*) न्यूनता (Deficiency)—गुणसूत्र का कुछ भाग टूट कर गिरने पर उस भाग में उपस्थित जीन्स का अभाव हो जाता है।

(*ii*) द्विरावृत्ति (Duplication)—एक जोड़े के दोनों गुणसूत्रों में से एक गुणसूत्र का कुछ भाग टूट कर दूसरे गुणसूत्र से चिपक जाता है। फलस्वरूप एक गुणसूत्र में इन जीन्स का अभाव हो जाता है तथा दूसरे में इनकी पुनरावृत्ति हो जाती है।

B. गुणसूत्र में जीन्स के विन्यास में परिवर्तन

(*i*) स्थानान्तरण (Translocation)—किन्हीं दो असमजात गुणसूत्रों (non-homologous chromosomes) में कुछ भागों के विनिमय या आदान-प्रदान से नये प्रकार के गुणसूत्रों का निर्माण होता है।

(*ii*) प्रतिलोमीकरण (Inversion)—एक ही गुणसूत्र में उसका कुछ भाग 180° पर घूम जाता है, उस गुणसूत्र में जीन्स के विन्यास का क्रम बदल जाता है, तथा फलस्वरूप नये प्रकार का गुणसूत्र बन जाता है।

II. जीन म्युटेशन (Gene Mutations)

DNA अणुओं के रासायनिक संघटन में किसी भी कारण से परिवर्तन होने पर अगर उनसे उत्पन्न प्रभाव में अन्तर आता है तो ये परिवर्तन **जीन म्युटेशन** (gene mutations) कहलाते हैं। ये पीढ़ी-दर-पीढ़ी सन्तानों में पहुँचते हैं। ये रूपान्तरित जीन **युग्म विकल्पी** (alleles) या **म्युटेन्ट जीन** (mutant genes) कहलाते हैं।

जीन म्युटेशन दो प्रकार का होता है। वायुमण्डल के प्रभाव के कारण स्वयं उत्पन्न म्युटेशन **स्वतोत्परिवर्तन** (spontaneous mutations) कहलाते हैं। ये अधिकतर कॉस्मिक विकिरण (cosmic radiation) के कारण होते हैं। म्युटेशन बाह्य कारणों द्वारा प्रेरित भी किये जा सकते हैं। ये **प्रेरित म्युटेशन** (induced mutations) कहलाते हैं।

म्युटेशन के कारक (Factors affecting mutations)—म्युटेशन अचानक ही उत्पन्न हो जाते हैं। इनकी आवृत्ति तापक्रम तथा आयु पर निर्भर करती है। उच्च तापक्रम पर इनकी गति तीव्र हो जाती है। जन्तु के लिंग का भी इस पर प्रभाव पड़ता है। नर *ड्रोसोफिला* के X-गुणसूत्र में म्युटेशन की आवृत्ति अधिक होती है। X-rays, γ-rays तथा बहुत-से रासायनिक पदार्थों द्वारा भी म्युटेशन को प्रेरित किया जा सकता है।

म्युटेशन की किस्में (Types of Mutations)

सभी म्युटेशन जीवों में दृष्टिगत रचनात्मक परिवर्तन (visible structural changes) नहीं उत्पन्न करते। कुछ म्युटेशन शरीर-क्रियात्मक परिवर्तन उत्पन्न करते हैं जिनका प्रभाव अंगों के कार्य पर होता है। इसी प्रकार कुछ म्युटेशन जीवधारियों के जीवनकाल को प्रभावित करते हैं। म्युटेशन का प्रभाव भी अलग-अलग होता है। ये लाभदायक भी हो सकते हैं और हानिकारक भी।

1. **प्रभावी दृष्टिगत म्युटेशन** (Dominant visible mutations)—ये म्युटेशन प्रभावी होने के कारण विषमयुग्मज अथवा समयुग्मज दोनों अवस्थाओं में अपना प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। अतः इनको पहिचानना अत्यन्त सरल है। ये अप्रभावी दृष्टिगत म्युटेशन की अपेक्षा कम संख्या में मिलते हैं।

2. **माध्यमिक दृष्टिगत म्युटेशन** (*Intermediate visible mutations*)—

ये म्युटेशन विषमयुग्मज अवस्था में अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं, अतः विषमयुग्मज में ही पहिचाने जा सकते हैं। इनमें से बहुत-से म्युटेन्ट जीन्स का प्रभाव बहुत कम होता है, अतः इन्हें माध्यमिक कहना सम्भव नहीं। **जेन्थोमेटोसिस** (xanthomatosis) नामक बीमारी उत्पन्न करने वाला जीन होमोजाइगस अवस्था में ही यह बीमारी उत्पन्न कर सकता है। अतः इसे अप्रभावी जीन माना जाता था, किन्तु अब यह देखा गया है कि इस जीन के विषमयुग्मज हैटेरोजाइगस अवस्था में होने पर **हाइपरकोलीस्टेरोलीमिया** (hypercholesterolemia) नामक बीमारी उत्पन्न होती है। अतः यह जीन अपूर्ण प्रभावी (incomplete recessive) भी कहलाता है।

3. लिंग-सहलग्न दृष्टिगत म्युटेशन (Sex-linked visible mutations)—हैटेरोगैमेटिक लिंग अर्थात् नर में इन म्युटेन्ट जीन्स को पहिचानना अत्यन्त सरल है क्योंकि नर जन्तुओं में X-गुणसूत्र में होने वाला कोई भी जैनिक परिवर्तन (genic modification) अपने को प्रदर्शित कर सकता है। नर की जनन कोशिकाओं में होने वाला अप्रभावी म्युटेशन उसकी नर एवम् मादा दोनों सन्तानों में दृष्टिगत नहीं हो सकता। इसी प्रकार मादा के X-गुणसूत्र में होने वाले अप्रभावी परिवर्तन उससे उत्पन्न मादाओं में दृष्टिगत नहीं हो पाते अपितु समस्त नर जीवों में इन गुणों को देख पाना सम्भव है।

4. ऑटोसोमल अप्रभावी दृष्टिगत म्युटेशन (Autosomal recessive visible mutations)—इन म्युटेशन को ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है। उभयलिंगी जीवों में इन्हें सरलता से पहिचाना जा सकता है। ये केवल समयुग्मजी जीवों में ही अपने को प्रदर्शित कर सकते हैं। विषमयुग्मजों में प्रभावी जीन के उपस्थित होने के कारण इनका प्रभाव नष्ट हो जाता है।

5. घातक म्युटेशन (Lethal mutations)—इनको पहिचानना और भी कठिन है। कुछ घातक म्युटेशन विषमयुग्मजी जीवों में ही देखे जा सकते हैं। किन्तु अधिकतर घातक म्युटेशन अप्रभावी होते हैं तथा इनका प्रभाव अलग-अलग होता है। कुछ म्युटेशन प्राण-घातक भी हो सकते हैं।

6. घातक म्युटेशन (Detrimental mutations)—इस प्रकार के म्युटेशन सबसे अधिक होते हैं किन्तु इन्हें पहिचानना अत्यन्त कठिन है। ये भी अधिकतर अप्रभावी ही होते हैं। यदि यह प्रभावी हानिकारक जीन *ड्रोसोफिला* में X-गुणसूत्र पर स्थित हो तथा इसकी उपस्थिति से 20% जीवों की मृत्यु हो जाती हो तो इसका अर्थ होगा कि विषमयुग्मजी होने का मादा पर कोई प्रभाव नहीं होगा किन्तु समस्त नर जन्तुओं में वह जीन उपस्थित होगा जिनमें से 20% नर जन्तुओं की मृत्यु होनी सम्भव है। अतः एक या दो जीवों को देखकर इन म्युटेशन का पता लगाना सम्भव नहीं अपितु बहुत-से जीवों के एक स्टाक पर बार-बार प्रयोग करने के पश्चात् ही इन जीन्स एवम् म्युटेशन्स का ज्ञान हो सकता है।

हानिकारक म्युटेशन (Harmful mutations)—यद्यपि म्युटेशन जैविक विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है किन्तु अधिकांश म्युटेशन्न हानिकारक तथा अप्रभावी होते हैं। मनुष्य में पाये जाने वाले म्युटेशन जैसे हीमोफीलिया, डायबेटीज, एल्केप्टोन्यूरिया, वर्णहीनता, एनिरिडिया (aniridia), इत्यादि म्युटेशन हानिकारक तथा अप्रभावी हैं।

दैहिक म्युटेशन (Somatic mutations)—ये म्युटेशन शरीर के किसी भी

भाग मे उत्पन्न हो सकते हैं और केवल उसी भाग मे परिवर्तन उत्पन्न करते है। ये सन्तान मे नही पहुँच पाते तथा जीन की मृत्यू के साथ समाप्त हो जाते हैं। अतः इस प्रकार उत्पन्न म्युटेशन कभी भी वशागत नही हो पाते। भ्रूण मे होने वाला कोई भी दैहिक परिवर्तन बाद मे मोजेक (mosaic) बना लेता है।

प्रतिवर्त्य म्युटेशन (Reversible mutations)—म्युटेशन की क्रिया प्रतिवर्त्य होती है। अगर A gene म्युटेशन के पश्चात् a मे परिवर्तित हो गया हो तो a पुन. A मे परिवर्तित हो सकता है। छोटी आन्त्र मे पाये जाने वाले वैक्टीरिया स्ट्रैप्टोमाइसिन के प्रभाव से मर जाते है किन्तु उनमे से कुछ परिवर्तित होकर इस प्रकार के वैक्टीरिया बना लेते हैं जो स्ट्रैप्टोमाइसिन की अनुपस्थिति मे जीवित नही रह सकते।

4

पृथक्करण
(Isolation)

प्रश्न 11. पृथक्करण क्या है ? पृथक्करण के विभिन्न कारकों का वर्णन कीजिये तथा पृथक्करण का महत्त्व समझाइये।

What is isolation ? Describe the various isolating agents and the importance of isolation.

पृथक्करण (Isolation)

किसी जाति विशेष के जीवों के छोटी-छोटी इकाइयों या समूहों या उपजातियों में विभक्त होने की क्रिया को **पृथक्करण** (isolation) कहते हैं। इसके फलस्वरूप इन समूहों के जन्तु आपस में जनन-क्रिया करने में असमर्थ हो जाते हैं और धीरे-धीरे अलग-अलग जातियों में बदल जाते हैं। अत: **"पृथक्करण किसी एक जाति के जीवों के दो उपजातियों में अथवा एक उपजाति के अपनी जाति के जीवों से अलग होने की क्रिया है।"** पृथक्करण प्राकृतिक अवरोधों (natural barriers) के कारण होता है। ये अवरोध भौतिक, यान्त्रिक, शारीरिक-क्रियात्मक तथा मनोवैज्ञानिक हो सकते हैं।

पृथक्करण की किस्में अथवा पृथक्करण के कारक
(Kinds of Isolation and Isolation Agents)

पृथक्करण के निम्नलिखित कारक हैं :—

1. भौगोलिक पृथक्करण (Geographical isolation)
2. अधिक दूरी के कारण पृथक्करण (Isolation due to sheer distance apart)
3. जलवायु पृथक्करण (Climatic isolation)
4. यान्त्रिक पृथक्करण (Mechanical isolation)
5. पारिस्थितिक पृथक्करण (Ecological isolation)
6. शारीरिक-क्रियात्मक पृथक्करण (Physiological isolation)
7. जैविक पृथक्करण (Biotic isolation)
8. जनन पृथक्करण (Reproductive isolation)
9. युग्मक पृथक्करण (Gametic isolation)
10. संकर का जीवित न रहना (Hybrid inviability)
11. संकर-वन्ध्यता तथा संकर-विभंग (Hybrid sterility and hybrid breakdown)
12. मनोवैज्ञानिक पृथक्करण (Psychic isolation)

1. भौगोलिक पृथक्करण (Geographical isolation)—यह सबसे मुख्य पृथक्करण कारक है जिसके फलस्वरूप एक जाति छोटी-छोटी उपजातियों या अलग-अलग समूहों में बँट जाती है। पर्वत शृंखलाएँ, नदियाँ, मरुस्थल, वन, स्थल-सेतु, जल-मार्ग, इत्यादि विभिन्न भौगोलिक या भौतिक अवरोध हैं जो एक ही जाति के जीवों को आपस में मिलने से रोकते हैं जिससे वे छोटी-छोटी इकाइयों या उपजातियों में बँट जाती हैं। इनकी आपसी भिन्नताएँ अवरोधों की क्षमता तथा पृथक्करण की अवधि पर निर्भर करती हैं। हवाई द्वीपसमूह में लैण्ड-स्नेल (land-snail) का वितरण भौगोलिक पृथक्करण का अति उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। Ohio नामक द्वीप-समूह में ज्वालामुखी शैलमालाओं के बीच वनस्पतियुक्त घाटियाँ हैं किन्तु इन पर्वतों के ऊपरी भाग बंजर है। प्रत्येक घाटी में अलग-अलग प्रकार की वनस्पति तथा लैण्ड-स्नेल की अलग-अलग उपजातियाँ पायी जाती है। इनमें भिन्नताएँ घाटियों की एक-दूसरे से दूरी पर निर्भर करती हैं।

2. अधिक दूरी के कारण पृथक्करण (Isolation due to sheer distance apart)—किसी एक जाति के सदस्य बहुत बड़े क्षेत्र मे दूर-दूर तक फैले होने तथा उस प्रदेश में कोई भी भौगोलिक अवरोध न होने पर भी एक-दूसरे से अलग रह जाते है क्योंकि वे इतनी अधिक दूरी चलकर एक-दूसरे से नहीं मिल सकते। अतः किसी बड़े क्षेत्र के एक भाग में उपस्थित एक जाति के जीवों में आपस में ही जनन होता रहता है और वे उस क्षेत्र के दूसरे भू-भाग में उपस्थित जीवों में नहीं मिल पाते। उत्तरी अमेरिका के विस्तृत क्षत्र **होलार्कटिका** (Holarctica) भाग में स्तनधारी जीव केवल दूरी के कारण समूहों या उपजातियों में वँट गये, यद्यपि वहाँ कोई प्राकृतिक या भौगोलिक अवरोध नही है।

3. जलवायु पृथक्करण (Climatic isolation)—भौगोलिक अवरोध न होने पर भी किसी विस्तृत क्षेत्र के विभिन्न भागों में अलग-अलग जलवायु पाई जाती है। जलवायु में भिन्नता होने के कारण एक भू-भाग के जीव दूसरे भू-भाग पर नहीं पहुँचते जिसके फलस्वरूप उनमे अपनी जलवायु के अनुकूल परिवर्तन होते रहते है और इस प्रकार एक ही जाति के समान जीव भिन्नताओं के कारण उपजातियों एवम् समूहों मे बँट जाते है। तापक्रम, नमी, जल मे घुलित लवणों की सान्द्रता तथा भूमि की विभिन्नता, इत्यादि कुछ मुख्य जलवायु कारक हैं। ये जीवों की उपापचय क्रियाओं को प्रभावित करते है जिनके फलस्वरूप शारीरिक-क्रियात्मक विभिन्नताएँ उत्पन्न होती है। उत्तरी तथा दक्षिणी केप-कॉड (Cape-Cod) का समुद्री जल इसके उपयुक्त उदाहरण हैं।

4. यान्त्रिक पृथक्करण (Mechanical isolation)—आकार तथा परिमाण, इत्यादि में अन्तर होने के कारण विभिन्न जातियों के जीवों में जनन क्रिया नहीं हो पाती। अतः वे साथ-साथ रहते हुए भी अलग-अलग होते है।

5. पारिस्थितिक पृथक्करण (Ecological isolation)—जीवों की पारिस्थितिक प्रकृति एवम् स्वभाव में अन्तर होने के कारण आपसी जनन नही हो पाता। अतः वे एक-दूसरे से अलग हो जाते है।

6. शारीरिक-क्रियात्मक पृथक्करण (Physiological isolation)—किसी-किसी जाति के जीवों में शारीरिक-क्रियात्मक भिन्नताएँ उत्पन्न हो जाने के कारण उपजातियाँ बन जाती हैं जो बाद में नई जातियाँ बनाती है। *ड्रोसोफिला* की कुछ जातियों की मक्खियों में आपस में मैथुन नहीं हो पाता क्योंकि *ड्रोसोफिला*

में मैथुन के पश्चात् योनि की म्युकस मैम्ब्रेन फूल जाती है। अगर मैथुन एक ही जाति की मक्खियों में होता है तो कुछ घण्टों पश्चात् यह सूजन कम हो जाती है किन्तु अगर मैथुन दो विभिन्न जाति की मक्खियों में होता है तो यह सूजन कई दिन तक रहती है। अतः संसेचित अण्डे अण्डरोपण न होने के कारण मादा के शरीर में ही मर जाते हैं।

7. जैविक पृथक्करण (Biotic isolation)—प्रत्येक भू-खण्ड पर अनेक प्रकार के तथा अनेक जातियों के जन्तु एवम् पेड़-पौधे होते हैं। अतः किसी भी क्षेत्र में एक जाति के सदस्य दूसरी जातियों के सदस्यों से सम्बन्धित होते हैं। अतः उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का दूसरी जाति के जीवों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। किसी क्षेत्र के समस्त जीव उस क्षेत्र का **जैविक वातावरण** (biotic environ ment) बनाते हैं। अलग-अलग क्षेत्रों का जैविक वातावरण भी भिन्न-भिन्न होता है। अतः इसके द्वारा भी जीवधारी एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं।

8. जनन पृथक्करण (Genetic isolation)—मैथुन अंगों में परिवर्तन हो जाने से भी एक जाति के सदस्य उपजातियों में विभाजित हो जाते हैं। यह देखा गया है कि बहुत अधिक समानता रखने वाली जातियों के सदस्यों में भी मैथुन क्रिया सम्भव नहीं होती क्योंकि उनके मैथुन अग अलग-अलग प्रकार के होते हैं। कीटों में मैथुन अंग ताले-कुंजी के सिद्धान्त पर बने होते हैं। जिस प्रकार एक ताले में एक निश्चित प्रकार की चाबी ही लग सकती है इसी प्रकार एक जाति के कीटों की मादाओं में उसी जाति के नर कीटों के मैथुन अंगों से ही मैथुन होता है। अतः थोड़ी-सी भिन्नता होने पर भी मैथुन नहीं हो पाता और जीवों में जनन-पृथक्करण हो जाता है। इसके फलस्वरूप नयी जातियाँ बन जाती हैं।

9. युग्मक पृथक्करण (Gametic isolation)—विभिन्न जातियों में युग्मक पृथक्करण के कारण आन्तर प्रजनन नहीं होता। एक जाति के शुक्राणु दूसरी जाति की मादाओं के जनन-पथ या जनन-अंगों में जीवित रहने में असमर्थ होते हैं। जीवित रहने पर ये निषेचन करने में समर्थ नहीं होते।

10. संकर का जीवित न रहना (Hybrid inviability)—कभी-कभी एक जाति के शुक्राणु दूसरी जाति की मादा के जनन-अंगो में जीवित रहने तथा निषेचन करने में समर्थ होते है किन्तु इस प्रकार से बना युग्मज या तो वर्धन करने में असमर्थ होता है अन्यथा भ्रूण कुछ समय पश्चात् ही मर जाता है। अतः यह आपस में सम्बन्धित उपजातियों मे आन्तर-जनन क्रिया को निरुत्साहित करता है।

11. संकर-वन्ध्यता तथा संकर-विभंग (Hybrid sterility and hybrid break-down)—कभी-कभी यह भी देखा गया है कि दो विभिन्न जातियों में मैथुन के फलस्वरूप बना युग्मज जीवित रहने तथा वर्धन करने में समर्थ होता है किन्तु यह स्वयं बहुत कम सन्तानोत्पत्ति कर सकता है या फिर वन्ध्य होता है। गधे एवम् घोड़े के आन्तर-जनन के फलस्वरूप उत्पन्न खच्चर बाँझ होता है क्योंकि गैमीट बनाने के समय इसमें गुणसूत्र युग्मित नहीं हो पाते।

12. वर्धन गति में भिन्नता से पृथक्करण (Isolation due to changes in the development rhythm)—एक ही जाति के जन्तुओं के जीवन में परि-वर्तन होने पर उनकी वर्धन गति में अन्तर हो जाता है जिससे नयी जातियाँ तथा उपजातियाँ बनती है।

13. मनोवैज्ञानिक पृथक्करण (Psychic isolation)—सभी जन्तुओं में केवल अपनी ही जाति के जन्तुओं के साथ मैथुन करने की इच्छा होती है। अतः विभिन्न जातियों के जन्तु एक-दूसरे की भिन्न मैथुन विधियों तथा घोंसले बनाने की विधियों में भिन्नता होने के कारण एक-दूसरे से मैथुन करने में असमर्थ होते हैं।

निष्कर्ष—अतः पृथक्करण जैविक विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारक है। इसके कारण जातियाँ उपजातियों में बँट जाती हैं तथा इनमें उत्पन्न परिवर्तन अपनी पैतृक जाति के साथ आन्तर-जनन न होने के कारण आपस में मिलकर अप्रभावी नहीं हो पाते अपितु इनका प्रभाव बना रहता है। अतः पृथक्करण से बनी नयी जातियों का भविष्य सुनिश्चित होता है।

सिम्पसन (Simpson, 1965) का कथन है कि पृथक्करण अत्यन्त हानिकारक है क्योंकि इसके कारण **पृथक्करण पाश** (isolation traps) बन जाते हैं। अतः एक पाश के जन्तु दूसरे पाश के जन्तुओं से मिलने में असमर्थ होने के कारण नष्ट हो जाते हैं।

5

जन्तुओं का भूवैज्ञानिक वितरण

(Geological Distribution of Animals)

प्रश्न 15. भूपटल के भूवैज्ञानिक विभाजनों पर निबन्ध लिखिए तथा प्रत्येक विभाग के प्रबल जीवाश्मों के उदाहरण दीजिए।

Write an essay on geological division of the earth's crust with the predominant fossil contents of each.

(Rajasthan 1967 : Meerut 69)

भूपटल के विभिन्न भूवैज्ञानिक विभाजनों का वर्णन कीजिये तथा प्रत्येक विभाग के मुख्य जीवाश्मों के उदाहरण दीजिये।

Describe the various geological divisions of earth's crust giving examples of the chief fossils found in each. *(Rajasthan 1963)*

भूपटल का प्राचीन इतिहास कुछ मुख्य विभागों में बाँटा गया है। ये विभाग कल्प (era) कहलाते हैं। प्रत्येक कल्प जन्तुओं के विकास की मात्रा तथा वितरण को प्रदर्शित करता है। प्रत्येक कल्प पुन: कालों (epochs) में विभाजित किया गया है। प्रत्येक काल जन्तुओं के एक समूह का ह्रास प्रदर्शित करता है। भू-पटल के इतिहास को निम्नलिखित पाँच कल्पों में बाँटा गया है :—

1. आरकिओजोइक कल्प या आद्यकल्प (Archeozoic era)—आरकिओजोइक कल्प सबसे प्राचीन कल्प है जिसका प्रारम्भ भू-पटल के निर्माण के साथ माना जाता है। उस समय चट्टानें तथा पर्वत बन चुके थे तथा भूमि के कटाव (erosion) तथा तलछटीकरण (sedimentation) की क्रियाएँ भी प्रारम्भ हो चुकी थीं। अत: इस कल्प में चूने के पत्थर, लोहे के खनिज, ग्रेफाइट तथा शुद्ध कार्बन के जमाव दृष्टिगत होते हैं। इस कल्प में विध्वंसकारी एवम् ज्वालामुखी क्रियाओं की अधिकता थी जिस कारण जीवाश्मों का निर्माण नहीं हो सका, किन्तु यह माना जाता है कि इस कल्प में जीव अवश्य ही उपस्थित थे।

2. प्रोटीरोजोइक कल्प या प्राजीवकल्प (Proterozoic era)—यह कल्प लगभग एक हजार करोड़ (one billion) वर्षों का है जिसकी विशेषता तलछट का अत्यधिक मात्रा में जमा होना है। इसमें समुद्री शैवाल (algae), बैक्टीरिया, कवचीय प्रोटोजोआ, स्पंज की कण्टिकाएँ, जैली-फिश, कोरल, ब्रेकिओपोड तथा आर्थ्रोपोड, इत्यादि जन्तुओं के अपूर्ण अवशेष प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि इस कल्प में अकशेरुकी जन्तु पाये जाते थे किन्तु शरीर कोमल होने के कारण वे जीवाश्मों में

कल्प (Era)	काल (Period)	युगान्तर (Epoch)	अवधि (Duration in million years)	काल के प्रारम्भ होने से अन्त तक का समय (in million years)	प्राणीजात (Animal fauna)
सीनोजोइक कल्प (स्तनधारी कल्प) (Coenozoic)	चतुर्थ काल (Quaternary period)	आधुनिक	0·011	0·011	मनुष्य का युग (age of man)।
		प्लीस्टोसीन	1	1	वृहदाकार स्तनधारियों के जीवाश्म तथा मनुष्य का सामाजिक विकास दृष्टिगत होता है।
	तृतीय काल (Tertiary period)	प्लायोसीन	12	13	मनुष्य के समान कपि जाति से मानव जाति का विकास।
		माइओसीन	13	25	मनुष्य के समान कपियों का विकास तथा स्तनधारी विकास की चरम सीमा पर।
		ओलाइगोसीन	11	36	आदिम स्तनधारियों के जीवाश्म, एन्थ्रोपोइड कपि (anthropoid apes) तथा अन्य वर्गों के स्तनधारियों का उदय।
		इओसीन	22	58	जरायुजी (placental) खुर वाले मांसभक्षी जीवों का विकास।
		पैलियोसीन	5	63	आदिम स्तनधारियों के जीवाश्म।
मीसोजोइक कल्प (रेप्टाइल्स कल्प) (Mesozoic)	क्रीटेशियस काल (Cretaceous period)	—	72	135	कुछ डायनासोर्स (dinosaurs) तथा दन्तयुवत पक्षियों का विलुप्तीकरण ; डायनोसॉर्स का चरम विकास ; आधुनिक पक्षियों एवम् आदिम स्तनधारियों का उद्भव।
	जुरेसिक काल (Jurassic period)	—	46	181	डायनोसॉर्स में विभिन्नता एवम् उनके द्वारा विशालाकृति ग्रहण करना; दन्तयुवत पक्षियों एवम् कीटभक्षी मार्सुपिअल्स का उद्भव।
	ट्राइयेसिक काल (Triassic period)	—	49	230	प्रथम डायनोसॉर, टेरेसॉर तथा प्रोटोथीरिया का उदय तथा आदिम एम्फिबिया का विलुप्तीकरण।

पेलियोजोइक कल्प (Palaezoic era)	पर्मियन काल (Permian period)	—	50	280	एम्फीवियन जन्तुओं की संख्या में कमी ; आदिम रेप्टाइल्स की उपस्थिति एवम् स्तनधारियों के समान रेप्टाइल्स का उद्भव ; आधुनिक कीटों का विकास।
	कार्बन काल (Carboniferous period)	पेनिसिल्वेनियन (Pennsylvanian)	40	320	प्रथम रेप्टाइल्स का उद्विकास ; प्राचीन एम्फीवियन्स की अधिकता ; कीटों की संख्या में वृद्धि एवम् ट्राइलोबाइट्स का विलुप्तीकरण।
		मिसिसीपियन्स (Mississippians)	25	345	प्राचीन शार्क मछलियों की संख्या में वृद्धि ; सी-लिली की अधिकता।
	डेवोनियन काल (Devonian period)	—	60	405	ऑस्ट्रेकोडर्म मछलियों का विलुप्तीकरण ; मछलियों की अधिकता ; द्विश्वासी मछलियों (lung fishes) एवम् शार्क का प्रभावी काल, एम्फीबिया का प्रारम्भ।
	सिल्युरियन काल (Silurian period)	—	20	425	ऑस्ट्रेकोडर्म मछलियों का प्रभावी काल; मछलियों व द्विश्वासी मछलियों का उद्भव, प्रथम स्थलचर जीवों का विकास समुद्री अरेकनिड जन्तुओं की अधिकता तथा पंख-विहीन प्राथमिक कीटों का उद्विकास; मौलस्का श्रेणी के जन्तुओं की उपस्थिति।
	ऑर्डोविशियन काल (Ordovician period)	—	75	500	प्रारम्भिक कवच-युक्त मछलियों, कोरल, कीड़ों, ट्राइलोबाइट्स, मौलस्क तथा इकानोडर्म समूहों की अधिकता।
	कैम्ब्रियन काल (Cambrian period)	—	100	600	केवल अकशेरुकी जन्तुओं की उपस्थिति ; ट्राइलोबाइट्स एवम् ब्रेकियोपोड प्रभावी ; प्रथम समुद्री जीवाश्मों की प्राप्ति ; स्थलचर जीवो का अभाव।
प्रोटीरोजोइक कल्प (Proterozoic era)	—	—	1800	2000	कोमल शरीर वाले अकशेरुकी जन्तुओं की उपस्थिति ; समुद्री प्रोटोजोआ की अधिकता ; जीवाश्मों का अभाव।
आर्कियोजोइक कल्प (Archeozoic era)	—	—	2000	1600	चट्टानों के रूप मे जमे कार्बनिक पदार्थों से जीवोत्पत्ति।

परिवर्तित न हो सके। अतः इस कल्प के जीवाश्म रिकार्ड बहुत कम हैं।

3. पैलियोजोइक कल्प या पुराजीव कल्प (Palaeozoic era)—पुराजीव कल्प की अवधि लगभग 36 करोड़ वर्ष है। इस कल्प में ही सर्वप्रथम पूर्ण जीवाश्म प्राप्त होते हैं। इसको निम्न कालों में बाँटा गया है :—

(*i*) **कैम्ब्रियन काल** (Cambrian period)—यह पैलियोजोइक कल्पों का सबसे प्राचीन काल प्रदर्शित करता है। इस काल में आधुनिक युग के लगभग समस्त संघों के जन्तुओं के **जीवाश्म** मिलते हैं किन्तु कॉर्डेटा संघ के जीवाश्मों का अभाव है, जिससे ज्ञात होता है कि इस युग में कार्डेट जन्तुओं का उद्भव एवम् विकास प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस काल के समुद्री जीवों के जीवाश्म भी अधिकता से प्राप्त है। अधिकतर आदिम श्रिम्प के समान (shrimp-like) क्रस्टेशियन, कुछ अरेक्निड के समान जीवों, कुछ शंख, ब्रैकियोपोड, सीफेलोपोड, ट्राइलोबाइट्स, कोरल, स्पंज तथा इकाइनोडर्म के जीवाश्म मिलते है। कैम्ब्रियन काल के जीवाश्मों से किसी नये जन्तु समूह के उद्भव का आभास नहीं मिलता अपितु उस समय उपस्थित जीवों का विस्थापन प्रदर्शित होता है। ये नये बने जीव आदिम जीवों की अपेक्षा वातावरण के अधिक अनुकूल थे।

(*ii*) **आर्डोविशियन काल** (Ordovician period)—इस काल में आस्ट्रेकोडर्म एवम् जबड़े-विहीन तथा पंख-विहीन समुद्र-तल पर रहने वाली मछलियों के जीवाश्मों की अधिकता मिलती है।

(*iii*) **सिल्यूरियन काल** (Silurian period)—सिल्यूरियन काल में प्रथम बार स्थलचर जन्तु दृष्टिगत होते हैं। ये अरेकनिडा जाति के जन्तु थे। इनके अतिरिक्त मछलियो तथा मछलियों के समान जन्तुओं की अधिकता थी।

(*iv*) **डेवोनियन काल** (Devonian period)—इस काल में आस्ट्रेकोडर्म मछलियों से विभिन्न प्रकार की मछलियों का उद्भव एवम् विकास प्रदर्शित होता है। स्वच्छ ताजे जल के निक्षेपणों से प्रथम जबड़े वाले जन्तुओं **प्लेकोडर्म** (placoderm) के जीवाश्म प्राप्त होते हैं। इसी काल मे शार्क मछलियो तथा बोनी मछलियों के विकास के प्रमाण मिलते हैं। डेवोनियन काल के लगभग मध्य में द्विश्वासी मछलियाँ (lung-fishes), पालिमय पखों वाली मछलियाँ (lobe-finned fishes), फिन-रेज वाली मछलियाँ (ray-finned fishes) भी विकसित हो चुकी थीं। अतः डेवोनियन काल **मछलियों का युग** (Age of fishes) कहलाता है। डेवोनियन काल के अन्त में प्रथम स्थलचर कशेरुक-दण्डियों का विकास होता है। ये जन्तु **स्टेगोसिफेलियन्स** (Stegocephalians) कहलाते हैं।

(*v*) **कार्बन काल** (Carboniferous period)—कार्बन काल में एम्फिबियन जन्तुओं के जीवाश्म अधिकता से मिलते हैं। वास्तव मे कार्बनकाल **एम्फिबिया का युग** कहलाता है। साथ ही मूल रेप्टाइल्स (stem reptiles)—**सीमोरिया** (Seymouria) भी इस काल में पाये जाते हैं। इसी काल में दो कीट समूहों का भी विकास हुआ है।

(*iv*) **परमियन काल** (Permian period)—इस काल में रेप्टाइल्स श्रेणी के जन्तुओं का विकास एवम् मूल रेप्टाइल्स से अपसरण हुआ है। इसी काल में स्तनधारी जन्तुओं के समान रेप्टाइल्स—पेलिकोसोरिया एवम् थिरेप्सिडा (pelycosauria

and therapsida) भी विकसित हुए हैं।

4. मीसोजोइक कल्प (Mesozoic era)—मीसोजोइक कल्प लगभग 1670 लाख वर्ष का है। यह करीव 2300 लाख वर्ष पूर्व प्रारम्भ होकर लगभग 630 लाख वर्ष पूर्व समाप्त हुआ है। यह कल्प **रेप्टाइल कल्प** (Age of reptiles) कहलाता है क्योंकि इस कल्प में क्लास रेप्टाइल के जन्तु विकास की चरम सीमा पर थे तथा लगभग समस्त भू-मण्डल पर फैले हुए थे किन्तु इस कल्प के अन्त तक ये लुप्त (extinct) हो गये थे। यह कल्प तीन कालों मे बाँटा गया है :—

(*i*) **ट्राइएसिक काल** (Triassic period)—इस काल में आदिम रेप्टाइल्स से डायनोसॉर्स (dinosaurs) तथा टेरोसोर्स (pterosaurs) रेप्टाइल्स का विकास हुआ। इसी काल में रेप्टाइल्स जलीय, स्थलीय एवम् वायवीय जीवन के अनुरूप रूपान्तरित हुए। स्तनधारियों के समान रेप्टाइल्स से स्तनधारी जन्तुओं का विकास हुआ। अकशेरकी जन्तुओं में स्नेल, वाइवाल्व तथा सी-अरचिन जन्तुओं के समूहों की संख्या में वृद्धि हुई।

(*ii*) **जुरैसिक काल** (Jurassic period)—जुरैसिक काल में डायनोसोर जन्तुओं ने विशालाकृति धारण की। इनकी लम्वाई 100 फीट तथा वजन 40 टन तक पहुँच गया था। इस काल मे प्राथमिक या आदिम स्तनधारियों के जीवाश्म भी प्राप्त होते है। मध्य जुरैसिक काल मे मोनोट्रीम (monotremes) तथा मार्सुपिअल (marsupials) जन्तु पाये जाते हैं। इसी काल के अन्तिम समय में क्लास एवीज का उद्भव एवम् विकास हुआ। लेकिन अन्त तक क्लास मैमेलिया एवम् एवीज अस्पष्ट ही रहीं। स्नेल, वाइवाल्व तथा समुद्री अरचिन (sea urchins), इत्यादि मे रचनात्मक जटिलता उच्चतम कोटि तक पहुँच गयी थी।

(*iii*) **क्रिटेशियस काल** (Cretaceous period)—इस काल में रेप्टाइल्स का विलुप्तीकरण प्रारम्भ हो गया था तथा काल के अन्त तक कुछ रेप्टाइल्स समूह समाप्त हो चुके थे। दन्तयुक्त पक्षियों—**आर्किओप्टेरिक्स** (*Archeaeopteryx*) तथा **आर्किआर्निथीज** (*Arthaeornithes*) के जीवाश्म इस काल में पाये जाते हैं। इस काल में रेप्टाइल्स का विकास चरम सीमा पर पहुँच चुका था तथा आधुनिक पक्षियों का विकास प्रारम्भ हुआ था। इस काल में श्रू के समान सूक्ष्म वृक्षवासी जन्तुओं से आधुनिक विकसित जरायुजी स्तनधारियों का विकास हुआ।

5. सीनोजोइक कल्प (Coenozoic era)—सीनोजोइक कल्प लगभग 700 लाख वर्ष लम्वा है तथा यह तृतीय एवम् चतुर्थ (tertiary and quaternary) कालो मे बाँटा गया है। यह साधारणतया स्तनधारी कल्प (age of mammals) कहलाता है।

(*i*) **तृतीय काल** (Tertiary period)—यह काल लगभग 62,000,000 वर्षो का है और **पैलियोसीन** (Palaeocene), **इओसीन** (Eocene), **ओलाइगोसीन** (Oligocene), **माइओसीन** (Miocene) तथा **प्लायोसीन** (Pliocene) में विभाजित किया गया है। इस काल में स्तनधारी जन्तुओं का विकास एवम् विभिन्न समूहों मे परिसरण (divergence) हुआ है। तृतीय कल्प के प्रारम्भ में पाये जाने वाले आदिम स्तनधारी जन्तुओ से आधुनिक स्तनधारियों का विकास हुआ। प्लायोसीन के बाद के काल में घोड़े, हाथी तथा कुछ कार्नीवोरा (carnivora) वर्ग के जन्तुओं के

जीवाश्म प्राप्त होते है। प्रथम कपि माइओसीन में विकसित हुए। आधुनिक पक्षी भी इसी काल में विकसित हुए।

(*ii*) **चतुर्थ काल** (Quaternary period)—यह अन्तिम दस लाख वर्ष का काल है जो **प्लीस्टोसीन** (Pleistocene) तथा आधुनिक (Recent) कालों में बाँटा गया है। इस काल के जीवाश्म आधुनिक स्तनधारियों एवम् पक्षियों से मिलते-जुलते हैं। मैमथ (mammoth) तथा स्लॉथ (sloth), इत्यादि प्लीस्टोसीन काल में जीवाश्म बने तथा लगभग उसी काल में मानव का विकास हुआ।

जीवाश्म
(Fossils)

प्रश्न 13. जीवाश्म क्या हैं ? प्रकृति में इनका निर्माण किस प्रकार होता है ? किन्हीं दो जीवाश्मों के नाम लिखिये तथा बताइये कि वे किन चट्टानों से तथा किन क्लास से संम्बन्धित हैं ?

What are fossils ? How are these formed in nature ? Name any two fossils and mention in each case the rock and the class to which it belongs. (*Agra 1966*)

जीवाश्मों के महत्त्व पर एक निबन्ध लिखिये ।

Write an essay on the importance of fossils.

(*Allahabad 1965*)

जीवाश्म (Fossils)

भूपटल की विभिन्न पर्तों में संचित जन्तुओं एवम् पेड़-पौधों के अवशेष या शेष चिह्न (remains or traces) जीवाश्म (fossils) कहलाते हैं। शब्द fossil लेटिन भाषा के *fossilium* से बना है जिसका अर्थ है—'खोद कर निकाली गई वस्तु।' अतः प्रारम्भ में जीवाश्म भूमि से खोद कर निकाले गये अवशेषों के लिए प्रयोग में लाया गया था किन्तु आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार वह कोई पदार्थ जिससे किसी काल या युग में रहने वाले जीवों की उपस्थिति का प्रमाण मिलता हो जीवाश्म कहे जाते हैं। सर चार्ल्स लायल (Sir Charles Lyell) की व्याख्या के अनुसार—"जीवाश्म किसी जन्तु अथवा पौधे के शरीर या शरीर के शेष चिह्न हैं जो प्राकृतिक कारणों द्वारा संचित रूप में प्राकृतिक चट्टानों में पाये जाते हैं।" अतः जीवाश्म में सम्पूर्ण जीव संचित रह सकते हैं जो किन्हीं कारणों से असीम भूतकाल में बर्फ में दबकर संचित हो गये थे। इसके अतिरिक्त जीवों के ढाँचों, कदमों के चिह्नों अथवा शरीर के किसी भाग के अवशेष के रूप में भी पाये जा सकते हैं। कभी-कभी जीवाश्म पत्थर के अन्दर पत्ती के चिह्न के रूप में भी होते हैं।

जीवाश्म-निर्माण (Formation of Fossils)

जीवाश्मीभवन या अश्मीकरण (fossilization or petrifaction) की कई विधियाँ है तथा जीवाश्मीभवन की क्रिया अधिकतर जीवाश्म की प्रकृति पर निर्भर करती है।

1. पदचिह्नों का परिरक्षण (Preservation of footprints or trails)—

नम भूमि पर चलते समय उस पर जन्तुओ के पदचिह्न बन जाते है। नम भूमि के सूखकर सख्त होने पर चट्टानो का निर्माण होता है तथा इन्ही के साथ इन पर बने हुए चिह्न भी संचित हो जाते है। सन् 1948 मे पिट्सबर्ग (Pittsburg) के समीप पेनिसिलवेनियन काल की चटटानो से एक एम्फिबियन जन्तु के परिपथ चिह्न प्राप्त हुए है जिनसे उसके शरीर के आकार तथा शरीर के अनुपात का ही अनुमान नही होता अपितु प्रचलन स्वभाव का भी ज्ञान होता है।

2. शरीर के सख्त कंकालीय भागों का परिरक्षण (Preservation of hard skeletal parts of the body)—जन्तुओ के सख्त भाग तथा कशेरुकी जन्तुओ के अस्थिमय कंकाल भाग जैसे अस्थियाँ, दन्त तथा खोल, इत्यादि बिना किसी आकारिक परिवर्तन के अपनी मूल अवस्था मे परिरक्षित हो जाते है। इन परिवर्तित अवशेषो से जन्तु की अंग-स्थिति तथा प्रचलन शैली का अनुमान लगाया जा सकता है। अस्थियो पर पडे निशान पेशियो की स्थिति एवम् आकार को प्रदर्शित करते है।

3. अश्मीकरण (Petrifaction)—जन्तु तथा पौधो के कोमल भाग जैसे ऊतक, पेशियो, इत्यादि का परिरक्षण मूल ऊतक के अणुओ को खनिज अणुओ के द्वारा विस्थापित करने से होता है। विस्थापित खनिज कैल्शियम कार्बोनेट, सिलीका, आयरन पायराइट या गन्धक, इत्यादि हो सकते हैं। विस्थापन की क्रिया में ऊतक का एक-एक अणु विस्थापित खनिज के अणुओ द्वारा विस्थापित कर दिया जाता है। यह क्रिया इतनी अच्छी प्रकार से होती है कि जीवाश्मो मे ऊतक की सूक्ष्म रचना मे भी परिवर्तन नही होता। 300,000,000 वर्ष पुरानी शार्क मछली की पेशी इस रूप मे परिरक्षित हुई है कि उसके न केवल मायोफाइब्रिल्स ही अपितु उनकी अनुप्रस्थ पट्टियाँ भी सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखी जा सकती है। ऐरिजोना के अश्मीभूत जंगलो क जीवाश्म अश्मीभवन का अति उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते है।

4. साँचे अथवा ढाँचे (Moulds or casts)—जन्तु एवम् पौधो के प्राकृतिक साँचे उनके चारो ओर के पदार्थ या मिट्टी के सख्त होने पर बनते है। ढाँचा बनने के पश्चात् जीव समाप्त हो जाता है और ये अवशेष प्रस्राव द्वारा हटा दिये जाते है जिससे खोखले ढाँचे बचे रह जाते है। इस विधि द्वारा फँसे हुए जन्तु के बाह्य लक्षणो का पूर्ण आभास हो जाता है। इस प्रकार कोमल शरीर वाले जन्तुओं जैसे जैली-फिश, कीटो के पंख तथा पत्तियो, इत्यादि का परिरक्षण हो जाता है। कभी-कभी साँचा दूसरे खनिज पदार्थो से भर जाता है जिसके सख्त होने पर जन्तु का पूरा ढाँचा तैयार हो जाता है। अत इस ढाँचे से जन्तु की बाह्य आकृति का अनुमान लगाया जा सकता है किन्तु इसकी आन्तरिक रचना का ज्ञान नही हो पाता।

5. कभी-कभी कोमल शरीर वाले कीट, क्रस्टेशियन तथा मकड़े इत्यादि तेलीय-शेल (oil-shale), ऐम्बर (amber) अथवा एसफाल्ट (asphalt), इत्यादि के अन्दर परिरक्षित हो जाते है।

6. कभी-कभी सम्पूर्ण जन्तु अथवा उसका कंकाल बर्फ मे जम जाता है और विशेष रूप से अच्छे जीवाश्म बनते है। **मैमोथ** (mammoth) तथा **ऊनी राइनोसिरोस** (wooly rhinoceros), इत्यादि साइबेरिया तथा अलास्का के बर्फीले मैदानों मे पाये गये है।

जीवाश्मो के निर्माण एवम् परिरक्षण के लिए यह अति आवश्यक है कि सम्पूर्ण जन्तु लगभग अपने अंगो सहित बनती हुई चट्टानो के पदार्थ मे धँस जाएँ।

चट्टानों का निर्माण अधिकतर समुद्र के तल पर ही होता है अथवा भूमि पर ज्वालामुखी पर्वतों के लावा तथा हवा द्वारा छुड़ाकर लायी हुई मिट्टी से होता है । **पोम्पाइ** शहर (Pompeii) में रहने वाले अधिकांश स्त्री-पुरुष ज्वालामुखी की राख में जीवाश्म बन गये ।

जीवों के अवशेष वाली तलछटी चट्टानों का निर्माण नदियों द्वारा बहाकर लाई गई मिट्टी के समुद्र तल पर एकत्रित होने पर होता है । समुद्र तल पर एकत्रित यह मिट्टी एक के ऊपर एक पर्तों में जमा हो जाती है । नदी के बहाव में मिट्टी व पानी के साथ आये हुए जीव इन जमावों में धँसकर एकत्रित होते रहते हैं । मिट्टी में धँसने के पश्चात् इनमें से अधिकांश जन्तु सड़कर नष्ट हो जाते हैं । अतः उनका कोई निशान बाकी नहीं रहता । लेकिन विशेष अनुकूल स्थिति में ये संचित जीव जीवाश्म के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं । इसी प्रकार अजीवित जन्तु एवम् उनके भाग भी पानी के साथ बहकर इन मिट्टी के जमावों में एकत्रित हो जाते हैं जिन पर पुनः मिट्टी की पर्तें एकत्रित होती रहती हैं । धीरे-धीरे हजारों वर्ष पश्चात् जन्तुओं के शरीर के कठोर भागों का पदार्थ खनिज पदार्थों द्वारा एक-एक अणु करके विस्थापित कर दिया जाता है । अन्त में शरीर की समस्त रचनाएँ खनिज पदार्थ द्वारा विस्थापित कर दी जाती हैं । इस प्रकार जीवाश्म का निर्माण पूर्ण होता है तथा जन्तु की जीवित रचनाएँ खनिज पदार्थ में उतर आती हैं । कालान्तर में ये मिट्टी के जमाव चट्टानों में परिवर्तित हो जाते हैं और अपने साथ जीवाश्म को संचित करते हैं । जब ये चट्टानें खुदाई द्वारा या वायु तथा जल के प्रभाव से बाहर आती हैं तो उनके साथ जीवाश्म भी दृष्टिगत होते हैं ।

जीवाश्म का महत्त्व (Significance of Fossils)

1. जीवाश्मों की उपस्थिति द्वारा चट्टानों की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है ।

2. जीवाश्मों के अध्ययन से प्राचीनकाल में भूमि तथा जल की सीमाओं का निर्धारण किया जा सकता है ।

3. किसी काल में होने वाले तापक्रम तथा नमी के परिवर्तन भी पौधों के जीवाश्मों द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होते हैं ।

4. जीवाश्म का अध्ययन जैविक विकास के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करता है ।

7
टिप्पणियाँ
(Short Notes)

1. उपार्जित लक्षण (Acquired Characters)
(*Gorakhpur 1962 ; Patna 68*)

कृपया प्रश्न 3 देखिये।

2. अनुकूली विकीरण (Adaptive Radiation)
(*Karnatak 1966 ; Delhi 72*)

कृपया प्रश्न 9 देखिये।

3. प्रव्रजन के अवरोध (Barriers to Migration)
(*Raj. 1962 ; Gorakh. 66 ; Vikram 68*)

कृपया प्रश्न 15 देखिये।

4. विकास में समरूपता (Convergence in Evolution) (*Agra 1964*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

5. योजक कड़ियाँ (Connecting Links) (*Nagpur 1968*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

6. विच्छिन्न वितरण (Discontinuous Distribution)
(*Rajasthan 1967 ; Agra 63 ; Gorakhpur 66, 67 ; Karnatak 70*)

कृपया प्रश्न 10 देखिये।

7. जीवाश्म (Fossils) (*Gorakhpur 1962 ; Agra 70 ; Allahabad 70 ; Jiwaji 71 ; Rewa 72*)

कृपया प्रश्न 13 देखिये।

8. समजात संरचनायें (Homologous Structures)
(*Indore 1966 ; Vikram 72*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

9. समजातता एवम् समवृत्तिता (Homology and Analogy)
(*Magadh 1963*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

10. उपार्जित लक्षणों की वंशागति (Inheritance of Acquired Characters)
(*Gorakhpur 1967*)

कृपया प्रश्न 3 देखिये।

11. पृथक्करण (Isolation) *(Jabalpur 1970)*

कृपया प्रश्न 11 देखिये।

12. भूविज्ञानी अभिलेखों की अपूर्णता (Imperfection of Geological Records) *(Rajasthan 1961, 64, 66)*

जीवाश्म जैविक विकास के पक्ष में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। हक्सले (Huxley) ने तो यहाँ तक कह दिया है कि "जीवाश्म विज्ञान कुछ जन्तुओं के उद्भव एवम् विकास के लेख्य (documents) उपस्थित करता है।" कुछ जन्तुओं जैसे घोड़े तथा हाथी, इत्यादि के जीवाश्म अभिलेख इतने पूर्ण हैं कि उनको विन्यसित करने पर उनकी वंशावली या जीवाश्म इतिहास तैयार किया जा सकता है। अभाग्यवश ये जीवाश्म अभिलेण पूर्ण नहीं हैं तथा वहुत-से प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक कारक जीवाश्मीभवन की क्रिया में वाधक होते हैं। इनमें से कुछ मुख्य कारक निम्नलिखित हैं :—

1. प्रायः जन्तुओं के शरीर के कठोर भाग ही जीवाश्म में परिवर्तित हो पाते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में कोमल शरीर वाले अपृष्ठवंशियों का ही उद्विकास हुआ था जिनके शरीर जीवाश्म नहीं वन सके। फलस्वरूप प्रारम्भिक जीवों के जीवाश्म प्रचुर संख्या में नहीं मिलते।

2. क्योंकि शरीर के केवल कठोर भाग ही जीवाश्मों में रूपान्तरित होते हैं अतः ये अपूर्ण होते हैं तथा इनसे जन्तु का पूर्ण अनुमान नहीं लग पाता।

3. शरीर के कठोर भाग भी विशेष अनुकूल परिस्थितियों में ही जीवाश्म में वदलते हैं। जन्तुओं के आस-पास की समस्त मिट्टी चट्टानों में परिवर्तित होने पर ही इनके जीवाश्म वन सकते हैं।

4. जीवाश्मयुक्त समस्त चट्टानें प्राप्त नहीं हो पातीं। ये भूमि में दवी रह जाती हैं तथा मनुष्य को इनका ज्ञान नहीं हो पाता। भूमण्डल के समस्त क्षेत्र की खुदाई करना भी सम्भव नहीं है क्योंकि पृथ्वी के अधिकांश धरातल पर जीवों एवम् वनस्पतियों का निवास है।

5. जीवाश्मयुक्त चट्टानें टूटकर तथा अन्य कारणों से नष्ट हो जाती हैं।

6. जीवाश्मों में परिवर्तित होने से पहिले ही जन्तुओं या पौधों को अन्य जन्तु खा जाते हैं।

7. अनेक भौतिक, रासायनिक तथा यान्त्रिक शक्तियों द्वारा जन्तुओं के मृत शरीर सड़-गल कर नष्ट हो जाते हैं। नदी के वहाव में परिवर्तन, ज्वालामुखी के फटने तथा भूमिगत धाराओं के प्रभाव के कारण पूर्ण जीवाश्म नहीं वन पाते।

यद्यपि जीवाश्म अभिलेख अपूर्ण हैं किन्तु इनसे कई जन्तुओं के विकास का पूर्ण इतिहास प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार वहुत-से ऐसे जीवों के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं जो दो समुदायों के वीच योजक कड़ियाँ वनाते हैं। यह आशा की जाती है कि भविष्य में अन्य जीवाश्मों के मिलने पर कुछ और जीवों की वंशावली तैयार की जा सकती है जिससे यह विज्ञान की महत्त्वपूर्ण शाखा का रूप धारण कर सके।

13. उत्परिवर्तन (Mutation) *(Magadh 1963 ; Bhagalpur 63 ; Agra 63, 64; Gorakhpur 62 ; Lucknow 64 ; Vikram 67, Jabalpur 70)*

कृपया प्रश्न 7 देखिये।

14. नियो-डार्विनिज्म (Neo-Darwinism) *(Karnatak 1970)*

कृपया प्रश्न देखिये।

15. प्राकृतिक वरणवाद (Natural Selection)

(Punjab 1964 ; Patna 68 ; Vikram 72)

कृपया प्रश्न 2 देखिये।

16. जैविक विकास (Organic Evolution) *(Magadh 1963)*

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

17. जैविक विकास में जीवाश्म-विज्ञान एवम् उसका महत्त्व (Palaeontology and its Importance in the Study of Organic Evolution)

(Jiwaji 1971)

कृपया प्रश्न 13 देखिये।

18. विभिन्नताएँ (Variations) *(Jiwaji 1971 ; Jabalpur 70)*

कृपया प्रश्न 9 देखिये।

19. अवशेषी अंग (Vestigeal organs)

(B.H.U. 1965 ; Punjab 67 ; Bombay 65)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

20. जन्तु-भौगोलिक प्रदेश (Zoo-geographic Regions)

(Agra 1970 ; Patna 68)

कृपया प्रश्न 10 देखिये।

प्राणि-भूगोल

(ZOO-GEOGRAPHY)

अध्याय 1

प्राणी-भूगोल
(Zoo-geography)

प्रश्न 1. संसार के प्रमुख जन्तु-भौगोलिक प्रदेशों की सीमाएँ बताते हुए उनका वर्णन कीजिये। ओरिएण्टल परिमण्डल में पाये जाने वाले प्राणिजात के नाम लिखिये।

Describe the principal zoo-geographical regions of the world with their boundaries and name the fauna of Oriental Region.

(*Agra 1961, 67, 73 ; Allahabad 57, 60 ; Gorakhpur 61, 64, 70 ; Meerut 72 ; Kanpur 70 ; Rajasthan 72 ; Vikram 72*)

जन्तु-भौगोलिक प्रदेशों तथा उनके विशिष्ट प्राणिजात पर एक निबन्ध लिखिये।

Write an essay on zoo-geographical regions with their characteristic fauna. (*Patna 1969 ; Indore 67 ; Jiwaji 70, 71 ; Gorakhpur 71 ; Kanpur 69*)

संसार के जन्तु-भौगोलिक प्रदेश कौन-कौन-से हैं ? आस्ट्रेलियन प्रदेश के विशिष्ट प्राणिजात का वर्णन कीजिये।

What are the major zoo-geographical regions of the world ? Describe characteristic fauna of Australian region.

(*Allahabad 1969 ; Agra 61, 72 ; Jabalpur 73 ; Jiwaji 72*)

पृथ्वी के धरातल के विभिन्न भागों में पाये जाने वाले महत्त्वपूर्ण प्राणिजात का वर्णन कीजिये।

Describe the important fauna of the various divisions of earth's crust. (*Kanpur 1969 ; Raj. 69 ; Agra 67 ; Vikram 69*)

भूमण्डल असंख्य प्रकार के जन्तुओं एवम् पेड़-पौधों से घिरा हुआ है। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि इनका वितरण समस्त भूमण्डल पर समान नहीं है। इनकी प्रत्येक जाति के वितरण का निश्चित क्षेत्र होता है तथा उसी क्षेत्र में यह सबसे अधिक सुविधा एवम् सरलता से रह सकती है। जन्तुओं एवम् वनस्पति के वितरण के आधार पर **A. R. Wallace** ने भूमण्डल के तल को 6 प्रदेशों में बाँटा है। प्रत्येक प्रदेश में जन्तुओं के विशेष जेनेरा (genera) तथा स्पीशीज (species) पाये जाते हैं। प्रत्येक प्रदेश **परिमण्डल** (realm) भी कहलाता है तथा इसमें पाये जाने वाले जन्तुओं को प्राणिजात (fauna) कहा जाता है। परिमण्डल निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :—

1. पेलिआर्कटिक परिमण्डल
2. निआर्कटिक परिमण्डल

3. नियोट्रॉपिक परिमण्डल
4. ओरिएण्टल परिमण्डल
5. इथिओपिअन परिमण्डल
6. ऑस्ट्रेलियन परिमण्डल

1. पेलिआर्कटिक परिमण्डल (Palearctic Realm or Palearctic Region)

(अ) भौगोलिक सीमा (Geographical limits)—पेलिआर्कटिक परिमण्डल के अन्तर्गत यूरेशिया महाद्वीप आता है जिसमें चीन, जापान, अफ्रीका, साइबेरिया, सहारा मरुस्थल का उत्तरी भाग, भूमध्यसागरीय प्रदेश, मन्चूरिया, सम्पूर्ण एशिया, आइसलैण्ड (Iceland) तथा हिमालय के उत्तर का समस्त भाग आता है। यह सबसे बड़ा परिमण्डल है किन्तु इसकी सीमाएँ निश्चित नहीं हैं।

(ब) प्राणिजात (Fauna)—पेलिआर्कटिक प्रदेश में निम्न प्रकार के प्राणिजात पाये जाते हैं :—

मछलियाँ—स्वच्छ पानी में पायी जाने वाली अशल्क मछलियाँ (catfishes), कार्प (carps), साल्मन (salmons), स्टर्जियन्स (sturgeons) तथा लेम्प्रे (lampreys)।

एम्फीबियन्स—सैलेमेण्डर (Salamanders), नेक्टयूरस (*Necturus*), प्रोटियस (*Proteus*), साइरन (*Siren*), एम्फियुमा (*Amphiuma*), ब्यूफो (*Bufo*), हायला (*Hyla*), राना (*Rana*) तथा रेहकोफोरस (*Rhacophorus*) इत्यादि।

रेप्टाइल्स—घड़ियाल या एलिगेटर (Alligator), गीको (Geckos), कछुए (*Testudo* and *Trionyx*, etc.), वैरेनस (*Varanus*) तथा टिफ्लोप्स (Typhlops) इत्यादि।

पक्षी—बाज (Hawks), सारस या बगुला (Herons), कोयल या कोकिला (Cuckoos), उल्लू (Owls), कठफोड़वा (Wood-peckers), लवा या भारद्वाज पक्षी (Larks), कबूतर (Dove), बस्टर्ड्स (Bustards) तथा पेल्ली (Pellae) इत्यादि।

स्तनधारी—छछूँदर (Mole), टाल्पा (Talpa), चमगादड़ (Bat), भेड़ (Sheep), बकरी (Goat), गिलहरी (Squirrels), उड़ने वाली गिलहरी (Flying squirrels), जंगली रीछ (Wild bear), रेनडियर (Reindeer), ऊँट (Camel), रीछ (Bear), भेड़िये (Wolves), हेजहॉग (Hedgehog) तथा ऊदबिलाव (Beaver) इत्यादि।

2. निआर्कटिक परिमण्डल (Nearctic Realm)

(अ) भौगोलिक सीमा (Geographical limits)—निआर्कटिक परिमण्डल में उष्ण कटिबन्धीय प्रदेश के ऊपर का उत्तरी अमेरिका का भाग, ग्रीनलैण्ड, न्यूफाउण्डलैण्ड तथा मैक्सिको का पठार इत्यादि प्रदेश आते हैं। इनमें बड़े घने जंगल, छोटे मरुस्थल, खुले मैदान तथा कुछ पर्वत-शृंखलाएँ हैं।

(ब) प्राणिजात (Fauna)

मछलियाँ—लेपिडोस्टियस (*Lepidosteus*); पोलिडोन (*Polydon*), कमान मछली (Bowfish), चूपक मछली (Sucker-fish) इत्यादि।

एम्फीबियन्स—ब्यूफो (*Bufo*), राना (*Rana*), हायला (*Hyla*) तथा सेलामेन्डर्स (Salamanders)।

रेप्टाइल्स—फिनोसोमा (*Phrynosoma*), घड़ियाल, हीलोडरमा (*Helo-*
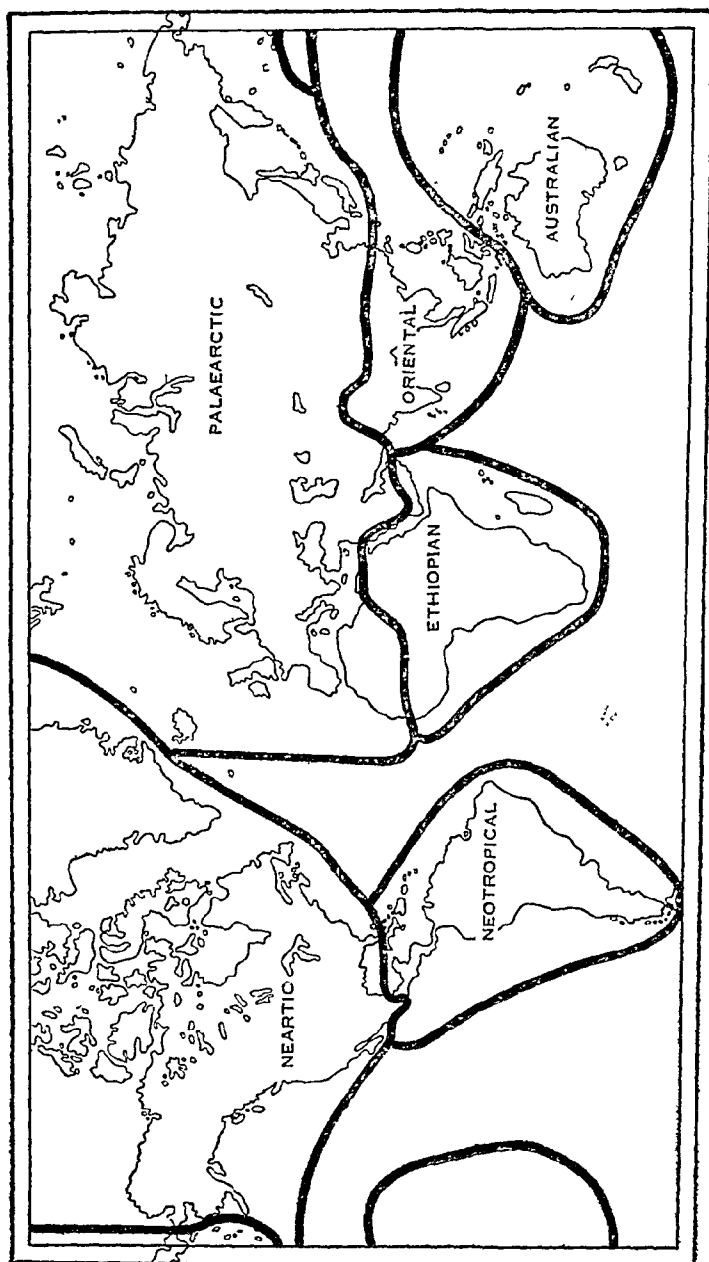
चित्र १·१. विश्व के विभिन्न प्राणि-भौगोलिक प्रदेश
(Different zoo-geographical regions of world)

derma), कोरल सर्प तथा पिट-वाइपर (Pit-viper) तथा कस्तूरी कछुआ (Musk-turtle)।

पक्षी—नीलकंठ (Jays), पेरूपक्षी (Turkeys), गौरैया, चटक चिरैया (Passerine), हवासील, एक प्रकार की बड़ी बत्तख (Pelicán), कोयल, कठफोड़वा (Wood-peckers), भनभनाने वाली चिड़ियाँ (Humming birds) तथा हँसने वाली चिड़ियाँ (Mocking birds) इत्यादि।

स्तनधारी—ओपोसम्स (Opossums), वर्जीनिया का हिरन (Virginian deer), गुलो, (Gulo), उड़ने वाली गिलहरी (flying squirrels), केनेडा का साही (Canadian porcupine), खरगोश (Lepus) तथा चमगादड़ इत्यादि।

3. नियोट्रॉपिकल परिमण्डल (Neotropical Realm)

(अ) भौगोलिक सीमा (Geographical limits)—इसके अन्तर्गत दक्षिणी अमेरिका, मध्य अमेरिका, मैक्सिको के निचले उष्ण भूभाग तथा दक्षिणी द्वीपसमूह इत्यादि आते हैं। इन दोनों में लम्बे तथा दूर तक फैले हुए जंगल, उन्नत शैल-मालाएँ बड़े घास के मैदान तथा कुछ मरुस्थलीय भाग हैं।

(ब) प्राणिजात (Fauna)

मछलियाँ—अनेक प्रकार की शुद्ध जल में पायी जाने वाली मछलियाँ, अशल्क मछलियाँ; लेपिडोसाइरन (*Lepidosiren*) नामक द्विश्वासी मीन, विद्युत मीन तथा गार-पाइक (Gar-pikes) इत्यादि।

एम्फीबियन्स—मेंढक, न्यूट (Newts), टोड (Toads), पाइपा (*Pipa*), हायला (*Hyla*) तथा ब्युफो (*Bufo*)।

रेप्टाइल्स—घड़ियाल (Alligators), मगर (Crocodile), कछुआ (Turtle) इग्वाना (*Iguana*), अजगर (Boa) तथा रैटल सर्प (Rattle snake)।

पक्षी—शुतुरमुर्ग (Rhea), भनभनाने वाली चिड़ियाँ (Humming birds), क्रौञ्च पक्षी या सारस (Stork), बत्तख, बगुला (Herons), बाज, उल्लू, बटेर, बुलबुल के आकार की प्लवर (Plover), कबूतर, तोता, कठफोड़वा, कौआ, गिद्ध (New-world vultures), किंग-फिशर, या राम-चिरैया (King-fisher), गोटसकर (Goatsucker), हॉर्नबिल (Hornbill) इत्यादि।

स्तनधारी—अधिकतर मारसुपिअल्स ही पाये जाते हैं जैसे ओपोसम्स (Opossums), आर्मेडिलो (Armadillos), स्लॉथ (*Stoths*), चीटी-भक्षी (Ant-eaters), बन्दर, तापिर (Tapirs), चमगादड़, रीछ, हिरन, गिलहरियाँ और बिल्लियाँ इत्यादि।

4. ओरिएण्टल परिमण्डल (Oriental Realm)

(अ) भौगोलिक सीमा—इसके अन्तर्गत एशिया का उष्णकटिबन्धीय प्रदेश आता है। फारस की खाड़ी, ईरान का निचला भाग, भारत, लंका, इन्डो-मलाया तथा इण्डोचीन प्रदेश ओरिएण्टल परिमण्डल के भाग हैं।

(ब) प्राणिजात (Fauna)

मछलियाँ—स्वच्छ जल में पायी जाने वाली सिप्रिनॉयड (Cyprinoids), सिल्युरॉयड (Siluroids), एनाबेण्टिड्स (Anabantids), सिप्रिनोडोण्ट्स (Cyprinodonts) तथा अकेन्थोटैरिजियन (Acanthopterygian) मछलियाँ एवम् सर्प व मीन (Eel) इत्यादि।

एम्फीबियन्स—*सैलेमेण्डर, ब्यूफो, हायला, राना तथा सीसिलियन्स* (*Caecilians*)।

रेप्टाइल्स—अजगर (Python), वाइपर (Viper), *बुन्गेरस* (*Bungarus*), धामन (Dhaman), कोबरा (Cobra), छिपकलियाँ (Geckoes), कछुआ, मगरमच्छ (Crocodile) तथा *गेवियेलिस* (*Gavialis*)।

पक्षी—पक्षियों की वहुत-सी जातियाँ ओरिएन्टल प्रदेश में पायी जाती हैं, जैसे कबूतर, तोता, कठफोड़वा, कौआ, मैना, जंगली मुर्गी, मोर, हार्नबिल, बत्तख, फाख्ता, बुलबुल, बैबलर्स (Babblers), हार्नगाड्ड तथा तीतर (Pheasant)।

स्तनधारी—हिरन, रीछ, ढोर (Cattles), गाय, भैंस, बकरी, हाथी, चूहा, लॉरिस (Loris), टार्सियस (Tarsius), पेड़ों पर रहने वाला छछूँदर, छछूँदर या टापिर (Tapir), बिल्ली, शेर, कुत्ता, चीता, भेड़िया, बन्दर, लीमर (Lemur), सुअर, खरहा, गिलहरी, लकड़बग्घा, गैंडा, तेंदुआ, वनमानुष (Orang-utan) तथा गेलियोपिथेकस (Galeopithecus) इत्यादि।

5. इथिओपियन परिमण्डल (Ethiopian Realm)

(अ) भौगोलिक सीमा—इसके अन्तर्गत अफ्रीका तथा अरब के दक्षिणी, पूर्वी तथा पश्चिमी भाग तथा सहारा के कुछ भाग एवम् मेडागास्कर द्वीप आते हैं। इसके कुछ भाग उष्ण, कुछ समशीतोष्ण एवम् कुछ शीतोष्ण होते हैं। इसमें मरुस्थलीय जंगली तथा मैदानी जलवायु मिलती है। अतः इस परिमण्डल में विभिन्न प्रकार के प्राणिजात पाये जाते हैं।

(ब) प्राणिजात (Fauna)

मछलियाँ—द्विश्वासी मीन (Lung fishes—*Protopterus*), अशल्क मीन, ताजे पानी में पायी जाने वाली मछलियाँ, सिप्रिनोडोन्ट (Cyprinodonts), एनाबेन्टिड्स (Anabantids) तथा ऑफिसिफेलिड्स (Ophicephalids) इत्यादि।

एम्फीबियन्स—*राना, ब्यूफो, सीसिलियन—इक्थिओफिस* (*Ichthyophis*) तथा *साइफोनोप्स* (*Siphonops*) एवम् *जीओट्राइपटीस* (*Geotrypetes*) इत्यादि।

रेप्टाइल्स—कछुए (Turtles and tortoises), मगर, छिपकली, उड़ने वाली छिपकली (Draco), गिरगिट (Chameleon), वैरेनस (Varanus), अन्धा साँप (Typhlops), अजगर (Boa), वाइपर तथा अजगर (Python) इत्यादि।

पक्षी—शुतुरमुर्ग (Ostrich), गिद्ध (Vulture), बगुला (Heron), स्टार्क, गोटसकर (Goatsucker), किंग फिशर (Kingfisher), बया (Weaver-bird), तोता, कबूतर इत्यादि।

स्तनधारी—छछूँदर (Shrew), कपि, बन्दर, गोरिल्ला, वनमानुष (Chimpanzee), कपि (Apes), गैण्डा लकड़बग्घा, गिलहरी, अफ्रीकी बन्दर, गोरावर या जेब्रा (Zebra), जिराफ, हिप्पोपोटेमस (Hippopotamus), गधा, बिल्ली, शेर, चीता, भेड़िया, लोमड़ी, रीछ, हिरन या मृग, भेड़ तथा बकरी इत्यादि।

6. आस्ट्रेलियन परिमण्डल (Australian Realm)

(अ) भौगोलिक स्थिति—इसके अन्तर्गत आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, तस्मानिया, न्यूजीलैण्ड तथा प्रशान्त महासागर में पाये जाने वाले द्वीप आते हैं। यहाँ का मौसम सूखा है और काफी स्थानों पर मरुस्थलीय जलवायु मिलती है। न्यूजीलैण्ड में घनी वनस्पति पायी जाती है।

(ब) प्राणिजात (Fauna)

मछलियाँ—द्विश्वासी मीन (Lung fish)—*नियोसीरेटोडस* (*Neoceratodus*)।

एम्फीबियन्स—*हायला*, *राना* तथा टोड इत्यादि।

रेप्टाइल्स—सर्प तथा छिपकली अधिकता से मिलते हैं। स्फीनोडॉन (*Sphenodon*) केवल न्यूजीलैण्ड में पाया जाता है। मगर, छिपकली, वैरेनस, अन्धा साँप (Typhlops) तथा अजगर इत्यादि भी पाये जाते हैं।

पक्षी—कैसोवरी (Cassowari), इमू (Emu), कबूतर, तोता, शहदभोजी (Honey eater), कूकने वाली चिड़िया (Warblers) इत्यादि।

स्तनधारी—केवल मोनोट्रीम तथा मारसुपियल स्तनधारी ही पाये जाते हैं। *डेसियुरस* (*Dasyurus*), पैरामेलीज (*Perameles*), ऑपोसम (Opossum) तथा बैंडीकूट (Bandicoots), *एकिडना* (*Echidna*) एवम् *ऑर्निथोरिंकस* (*Ornithorhynchus*) इत्यादि।

इस परिमण्डल में चमगादड़, चुहिया तथा आस्ट्रेलियाई कुत्तों के अतिरिक्त अन्य यूथीरियन स्तनधारी नहीं मिलते।

प्रश्न 2. ओरिएण्टल तथा इथिओपियन प्रदेशों के प्राणिजात का विवरण दो।

Give an account of the fauna of Oriental and Ethiopian regions. (*Baroda 1965*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

प्रश्न 3. ओरिएण्टल प्रदेश में पाये जाने वाले प्राणिजात की विशेषताएँ बताइये।

Give the distinctive features of the fauna of Oriental Region. (*Bombay 1965 ; Rajasthan 64*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

प्रश्न 4. आस्ट्रेलियन प्रदेश की सीमाएँ बताइये तथा इसमें पाये जाने वाले प्राणिजात का उल्लेख करिये।

Define the limits of the Australian Region and enumerate its vertebrate fauna. (*Agra 1962*)

आस्ट्रेलियन प्रदेश की मुख्य विशेषताएँ बताइये।

Describe the main features of Australian Region. (*Nagpur 1969*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

प्रश्न 5. भारतीय प्रदेश के प्राणिजात का उल्लेख कीजिये।

Give an account of the typical fauna of Indian Region. (*Poona 1967*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

प्रश्न 6. प्राणियों के भूमि पर वितरण में कौन-कौन-से कारक महत्त्वपूर्ण कार्य करते है ? आस्ट्रेलियन परिमण्डल के प्राणिजात की विशेषताएँ बताइये।

What factors determine the distribution of animals in space ? Give the chief characteristics of Australian fauna. (*Rajasthan 1961*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

प्राणियों के भौगोलिक वितरण को सीमित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिये।

Give an account of the factors that limit the geographical distribution of animals. (*Karnatak 1965*)

विभिन्न अवरोध क्या हैं ? ये जन्तुओं के भूमि पर वितरण को किस प्रकार प्रभावित करते हैं ?

What are the various barriers ? How do these affect the distribution of animals in space ? (*Agra 1953 ; Allahabad 59, 61*)

"प्राणि-भूगोलीय अवरोध" क्या हैं ? प्राणियों के वितरण पर इन अवरोधों के प्रभाव का उल्लेख करिये।

What are "Zoogeographical Barriers" ? Describe the effect of these barriers on the distribution of animals.

(*Allahabad 1970 ; Kanpur 72 ; Calcutta 70*)

जनसंख्या में वृद्धि, भोजन की कमी तथा वदलती हुई प्राकृतिक परिस्थितियाँ जीवों को अपने पुराने स्थान से नये स्थान की ओर स्थानान्तरण करने के लिए मजवूर करती हैं जिससे वे अधिक व अच्छा भोजन प्राप्त कर सकें तथा अधिक उपयुक्त परिस्थितियों में जीवित रहकर जनन कर सकें। किन्तु जीवों का स्थानान्तरण अनेक वाह्य कारकों द्वारा प्रभावित होता है। इन कारकों के कारण जीवों के भूमि पर वितरण में वाधा पड़ती है। अत: ये वाह्य कारक अवरोध या **वाधाएँ** (barriers) कहलाते हैं। ये वाधाएँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं :—

1. भौतिक अवरोध
2. जलवायु अवरोध
3. जैविक विकास

I. भौतिक अवरोध (Physical Barriers)

भौतिक वाधाएँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं :—

1. स्थलाकृति अवरोध
2. जल अथवा भूमि के वड़े भाग
3. समुद्री जल में अशुद्धि एवम् लवणता या खारापन कम होना
4. वानस्पतिक अवरोध

1. स्थलाकृति अवरोध (Topographical barriers)—स्थलीय तथा विशेपकर मैदानी जीवों के वितरण में ऊँची पर्वत-शृङ्खलाएँ स्थलाकृति अवरोध वनाती हैं। मैदानी जीव इन शृङ्खलाओं को पार नहीं कर सकते। इन पर्वत-शृंखलाओं के भूमध्य रेखा के समान्तर होने पर इनका अवरोधी प्रभाव अधिक होता है। **हिमालय** एवम् यूरोप की पहाड़ियाँ इसके उत्तम उदाहरण हैं। हिमालय के उत्तर का समस्त भाग ऊँची वर्फीली चोटियों या हिमशिखरों के रूप में है किन्तु इसके दक्षिण की ओर भारत के उष्ण तथा नम मैदान हैं। अत: हिमालय के उत्तर में प्राणिजात यूरोप के प्राणियों से मिलता-जुलता होता है तथा दक्षिण की ओर का प्राणिजात (fauna) अफ्रीका के उष्ण प्राणिजात (tropical fauna) के समान होता है। उत्तरी भाग में गिव्वन (Gibbons) तथा ऑक्सेनी (Oxeny) पाये जाते हैं तथा दक्षिणी भाग में हाथी तथा चीते इत्यादि मिलते हैं।

2. जल अथवा स्थल के बड़े भाग (Large bodies of water and land)—न उड़ने वाले स्थलचर जन्तुओं के वितरण में जलीय भाग मुख्य अवरोध उत्पन्न करते हैं क्योंकि ये जलीय स्थान जैसे नदी, समुद्र इत्यादि को पार नहीं कर पाते। इसी प्रकार जलीय जन्तु भूमि पार नहीं कर पाते। अगर दो समुद्रों के बीच भू-भाग आ जाये तो एक ओर के समुद्री जीव दूसरी ओर के समुद्र में पहुँचने में असमर्थ हो जाते हैं। जलीय जन्तुओं के वितरण पर जल की लवणता (salinity) का भी प्रभाव पड़ता है क्योंकि एक निश्चित सान्द्रता या लवणता के जल में रहने वाले जन्तु किसी दूसरी सान्द्रता वाले जल में जीवित नहीं रह सकते। शुद्ध जल में रहने वाली मछलियाँ, एम्फिबियन्स तथा रेप्टाइल्स इत्यादि समुद्र को पार नहीं कर सकते। इसी प्रकार समुद्र में रहने वाले कछुए, ह्वेल; तथा सील इत्यादि अलवण जल में जीवित नहीं रह सकते। अतः इनका वितरण सीमित हो जाता है।

3. अशुद्ध तथा समुद्री जल में लवणता की कमी (Impurity and lack of salinity of sea water)—कुछ इकाइनॉयड्स (echinoids), ब्रेकियोपोड (brachiopods), सीफेलोपोड्स (cephalopods), एस्टेरायड्स (asteroids), फोरामिनिफर (foraminifers) तथा स्पंज एवम् कोरल इत्यादि निश्चित सान्द्रता वाले लवणयुक्त समुद्री जल में जीवित रह सकते हैं। अतः मुहानों के पास के अशुद्ध तथा कम सान्द्रता वाले समुद्री जल में ये नहीं रह सकते तथा इनमें से गुजर कर ये दूसरे स्थान पर भी नहीं पहुँच पाते। अतः ये स्थान समुद्री जीवों के लिए अवरोध बनाते हैं।

आस्ट्रेलिया के पूर्वी किनारे की **वृहत् रोधी प्रवाल भित्ति** जीवों के वितरण में पूर्ण अवरोध उत्पन्न करती है। समुद्र की गहराई तथा समुद्री जल का दवाव भी समुद्री जीवों के लिए अवरोध उपस्थित करते हैं। समुद्री सतह पर रहने वाले जीव समुद्र के धरातल पर जीवित नहीं रह सकते। इसी प्रकार समुद्र के धरातल पर अधिक दबाव में रहने वाले जन्तु समुद्र की सतह पर जीवित नहीं रह सकते।

4. वनस्पति अवरोध (Vegetative barriers)—बड़े आकार वाले स्तनधारी जन्तु घने जंगलों में से नहीं गुजर सकते, अतः घने जंगल भी कुछ जन्तुओं के मार्ग में अवरोध उपस्थित करते हैं। वृक्षवासी जन्तु वृक्षों की अनुपस्थिति में अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। वृक्ष केवल स्थानान्तरण में ही सहायक नहीं होते अपितु ये उनको भोजन तथा रक्षात्मक स्थान भी प्रदान करते है। इओसिन (Eocene) युग में प्राइमेट उत्तरी-पश्चिमी अमेरिका में अधिकता से मिलते थे किन्तु सदावहार वृक्षों के पतझड़ी वृक्षों में वदलने पर इओसीन युग के अन्त में समस्त प्राइमेटा विलुप्त हो गये।

II. जलवायु अवरोध अथवा पारिस्थितिक अवरोध (Climatic or Ecological Barriers)

जलवायु अवरोध निम्नलिखित हैं :—

1. तापक्रम
2. नमी
3. प्रकाश

1. तापक्रम (Temperature)—समतापी एवम् विषमतापी दोनों प्रकार के जीवों के वितरण को सीमित करने में तापक्रम महत्त्वपूर्ण कारक है। विषमतापी

जीव अधिक ठण्डे अथवा अधिक गर्म प्रदेशों में जीवित नहीं रह सकते क्योंकि ठण्डे प्रदेशों में उनके जीवद्रव्य के जमने तथा गर्म प्रदेशों में उसके नष्ट होने का भय रहता है। अतः एम्फीवियन्स जन्तु उष्ण तथा समशीतोष्ण प्रदेशों में पाये जाते हैं तथा रेप्टिलियन जन्तु उष्ण एवम् उपोष्ण प्रदेशों में निवास करते हैं। ये जन्तु ध्रुवीय प्रदेशों में नहीं रहते। समतापी जन्तुओं की क्रियाशीलता पर भी तापक्रम का प्रभाव पड़ता है। अतः ध्रुवीय प्रदेशों में रहने वाले पक्षी एवम् स्तनधारी भी उष्ण तथा उपोष्ण प्रदेशों में रहने में समर्थ नहीं हैं।

तापक्रम का अप्रत्यक्ष रूप से भी जीवों के वितरण पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि तापक्रम के अनुसार जलवायु तथा भोज्य पदार्थ भी वदल जाते हैं।

2. नमी (Moisture)—नमी की अधिकता एवम् कमी दोनों ही जन्तुओं के वितरण में वाधक होती हैं। नमी की कमी होने पर मरुस्थलीय परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा इन क्षेत्रों में केवल वे ही जन्तु जीवित रह सकते हैं जिनमें जल-संचय एवम् रक्षण के उपक्रम पाये जाते हैं। इन प्रदेशों के जन्तुओं की त्वचा मोटी तथा मजवूत होती है, शरीर में जल-संचय के लिए विशेष प्रकार के जल-कोष होते हैं। इसी प्रकार अधिक नम जलवायु वाले प्रदेशों में नमी की अधिकता के कारण सभी प्रकार के जन्तु जीवित नहीं रह सकते। नमी भी पौधों के उगने का नियमन करती है तथा यही पौधे जन्तुओं का भोजन वनते हैं। अतः वनस्पति की विभिन्नता के कारण भी सभी जन्तु अधिक नमी वाले भागों में नहीं रह सकते।

3. प्रकाश (Light)—रात्रिचर जन्तुओं के वितरण में सूर्य का प्रकाश अवरोधक का कार्य करता है, क्योंकि रात्रिचर जन्तु दिन के तेज प्रकाश को सहन नहीं कर सकते। इसी प्रकार प्रकाश वाले भागों में रहने वाले जन्तु अन्धकार वाले भागों में नहीं रह सकते। साथ ही प्रकाश का प्रभाव उस क्षेत्र की वनस्पति पर भी पड़ता है। हरे पौधे प्रकाशविहीन क्षेत्रों में नहीं उग सकते।

3. जैविक अवरोध (Biological Barriers)

जैविक अवरोधों के अन्तर्गत शत्रु एवम् योग्य जन्तुओं का पाया जाना या न पाया जाना आता है। कुछ जन्तु विशेष प्रकार के भोजन पर निर्भर करते हैं। अगर उन्हें वही जीव भोजन के लिए न मिले तो कुछ समय पश्चात् उस स्थान के वे जन्तु भूख से मर जायेंगे जिससे जाति की समाप्ति हो जायेगी। कुछ प्रकार के कीट विशेष प्रकार के पौधों से ही भोजन प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार जनन एवम् रक्षा प्राप्त करने के लिए भी ये विशेष प्रकार के पौधों पर ही पहुँचते हैं। निश्चित जीवों या पौधों की अनुपस्थिति में ये जीवित नहीं रह सकते। अतः ये भी जैविक अवरोध उत्पन्न करते हैं।

जन्तुओं की कुछ जातियाँ परजीवी जीवन व्यतीत करती हैं। इसी प्रकार कुछ शिकारी होते हैं जो दूसरे जीवों का शिकार करते हैं। अतः ये जीव दूसरे के लिए अवरोध वन जाते हैं। इनकी उपस्थिति से दूसरी जाति के समस्त जीव लगभग समाप्त हो जायेंगे।

अवरोधों के अतिरिक्त मनुष्य भी एक महत्त्वपूर्ण एवम् उपयुक्त अवरोध वनाते हैं। मनुष्य जन्तुओं की उपस्थिति एवम् वितरण में सहायक होते हैं।

प्रश्न 7. जन्तुओं के "असंतत वितरण" से आप क्या समझते हैं? उचित उदाहरणों सहित समझाइये।

What do you mean by "Discontinuous distribution" of animals ? Explain it with suitable examples.

(*Agra 1950, 65 ; Allahabad 59 ; Lucknow 59*)

जन्तुओं के असंतत वितरण पर निवन्ध लिखिये ।

Write an essay on discontinous distribution of animals.

(*Gorakhpur 1960*)

लगभग समस्त प्रकार की सम तथा विषम परिस्थितियों मे जीव पाये जाते हैं । 20,000 फीट ऊँची पहाडी चोटियो से लेकर समुद्र की अतुल गहराई तक मे जीवों को देखा जा सकता है । स्वच्छ ताजे जल वाले तालावों, पोखरों, नदियों, खाइयों, गड्ढों, गन्धक के झरनों, वर्फीले ध्रुवीय प्रदेशों, सहारा जैसे मरुस्थलीय प्रदेशो एवम् घने उष्ण कटिवन्धीय जंगलों मे भी जन्तु रहते है । किन्तु वास्तव मे सभी स्थानो पर पाये जाने वाले समस्त जीव समान नही होते । परिस्थिति तथा जलवायु के अन्तर के कारण विभिन्न प्रदेशों मे पाये जाने वाले जन्तु एवम् वनस्पति अलग-अलग होते है । किसी एक प्रदेश के जन्तु उस प्रदेश का प्राणिजात (fauna) प्रदर्शित करते है । यद्यपि यह देखा गया है कि समान जलवायु वाले प्रदेशों का प्राणिजात भी समान होता है, किन्तु अधिक दूरी पर स्थित समान या असमान जलवायु वाले प्रदेशों मे कुछ जन्तु ऐसे पाये जाते है जो इन प्रदेशों को जोड़ने वाले वीच के भूभाग मे नही होते । जन्तुओ का इस प्रकार का वितरण **असंतत** या **विच्छिन्न वितरण** कहलाता है । जन्तुओं के विच्छिन्न वितरण के दो कारण माने जाते है :—

1. यह सम्भव हो सकता है कि प्राचीन काल में किसी समय ये जन्तु उस भाग मे समान रूप से फैले हुए थे किन्तु पृथ्वी तल मे परिवर्तन होने पर उनके मार्ग मे कुछ अवरोध उत्पन्न हो गये, जिसके कारण इन भूभागों के जन्तु एक-दूसरे से पूर्णतया अलग हो गये । इन भूभागों को जोडने वाले प्रदेश की जलवायु में परिवर्तन होने पर वहाँ के जन्तु नष्ट हो गये अन्यथा कुछ शिकारी जन्तुओं के आ जाने पर वहाँ के मूल निवासियों का विनाश हो गया ।

2. असतत वितरण का दूसरा कारण यह हो सकता है कि ये दूर स्थित प्रदेश किसी काल मे एक-दूसरे से सम्बन्धित थे अर्थात् दो द्वीप किसी भूभाग द्वारा या दो समुद्र किसी समुद्री सम्बन्ध द्वारा आपस मे जुड़े हुए थे जिसके फलस्वरूप वहाँ के जन्तु स्वतन्त्रता से एक भाग से दूसरे भाग मे पहुँच जाते थे । किन्तु वाद मे ये जोड़ने वाले स्थान नष्ट हो गये जिससे ये स्थान भी अलग-अलग हो गये । इस कारण दो दूर स्थित भूभागों मे भी समान प्रकार के जन्तु पाये जा सकते है ।

असंतत वितरण के उदाहरण (Examples of Discontinuous Distribution)

1. द्विश्वासी मछलियाँ (Lung fishes)—**डिप्नाई** (Dipnoi)

द्विश्वासी मछलियाँ असतत वितरण का रुचिपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। ये तीन जेनेरा (genera) द्वारा प्रदर्शित है तथा तीनो जेनेरा अलग-अलग द्वीपों में पाये जाते है ।

(*i*) प्रोटोप्टेरस (*Protopterus*) अफ्रीका मे

(*ii*) लेपिडोसाइरन (*Lepidosiren*) अमेरिका मे

(*iii*) नियोसेरेटोडस (*Neoceratodus*) आस्ट्रेलिया मे

2. रेटिटी (Ratitae)—न उडने वाले पक्षी (ratitae) भी असंतत वितरण का उदाहरण हैं । ये निम्नलिखित जेनेरा द्वारा निम्न भू-भागो मे पाये जाते है :—

(*i*) शुतुरमुर्ग (Ostrich) अफ्रीका एवम् अरब में,
(*ii*) रीहा (Rhea) अर्जेन्टाइना तथा दक्षिणी ब्राजील में,
(*iii*) कैसोवरी (Cassowary) आस्ट्रेलिया में, तथा
(*iv*) किवी (Kiwi) न्यूजीलैण्ड में।

3. मेटाथीरिया (Metatheria)—आधुनिक मेटाथीरिया आस्ट्रेलिया में फैले हुए हैं किन्तु इनके कुछ जेनेरा जैसे **अमेरिकन अपोसम** तथा **सीनोलेस्टीस** (Opposum and Coenolestes) दक्षिणी अमेरिका में पाये जाते हैं।

4. हाथी तथा बारहसिंगा (Elephants and Antelopes)—अफ्रीका में हाथी तथा बारहसिंगा वनमानुष—चिम्पैंजी तथा गोरिल्ला के साथ-साथ पाये जाते हैं किन्तु दक्षिणी अमेरिका के ब्राजील प्रदेश में समान जलवायु होने पर भी इनमें से कोई भी जन्तु नहीं पाया जाता। इस भाग में टापिर (tapirs), सपुच्छ बन्दर तथा स्लॉथ (sloths) पाये जाते हैं जो हाथी, बारहसिंगा इत्यादि से बिल्कुल भिन्न हैं।

असंतत वितरण का महत्त्व (Significance of discontinuous distribution)—असंतत वितरण जैविक विकास के लिए उपयुक्त प्रमाण प्रस्तुत करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में परिस्थिति, भौतिकी तथा जलवायु में परिवर्तन होने के कारण उस समय के जीवों में भी परिवर्तन हुए जिसके फलस्वरूप नये प्रकार के जीवों का उद्भव एवम् विकास हुआ।

Q. 8. Write short notes on the following:

1. असंतत वितरण (Discontinuous Distribution)

(*Rajasthan 1967 ; Agra 63 ; Gorakhpur 66, 67 ; Karnatak 70*)

कृपया प्रश्न 7 देखिये।

2. प्राणि-भौगोलिक प्रदेश (Zoo-geographic Regions)

(*Agra 1970 ; Patna 68*)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

पारिस्थितिकी
(ECOLOGY)

अध्याय 1

पारिस्थितिक कारक
(Ecological Factors)

प्रश्न 1. पारिस्थितिकी, एवम् स्वपारिस्थितिकी तथा समुदाय पारिस्थितिकी से आप क्या समझते हैं ? विभिन्न वातवरणीय या पारिस्थितिक कारकों का सविस्तार वर्णन कीजिये।

Define the terms ecology, autecology and synecology. Describe the various factors of environment in detail. (*Agra 1972*)

जीव (पेड़-पौधे व जन्तु) व उनके चारों ओर के वातावरण में पारस्परिक सम्बन्व होता है। पेड़-पौधे व जन्तु अपने चारों ओर के वातावरण को प्रभावित करते है और इसी प्रकार वातावरण भी जीव-जन्तुओं व पेड़-पौधों को प्रभावित करता है। जीवों व वातावरण के इस सम्बन्ध को **पारिस्थितिकी** (ecology) कहते हैं।

इकोलोजी शब्द ग्रीक भाषा के **ओईकोस** (oikos : वासस्थान) तथा **लोगोस** (logos : अध्ययन) से व्युत्पन्न हुआ है। अतः इकोलोजी का अर्थ हुआ विभिन्न वासस्थानों का अध्ययन। वास्तव में **पारिस्थितिकी जीव-विज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत प्रकृति की संरचना एवं उसके कार्य का अध्ययन किया जाता है (Oodum 1965)।** हेकल (Haeckel) के अनुसार **पारिस्थितिकी जीव-विज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत जीवों व उनके वाह्य वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।**

पारिस्थितिकी के प्रविभाग
(Subdivisions of Ecology)

1. स्वपारिस्थितिकी या ऑटइकोलोजी (Autecology or Autoecology)

इसके अन्तर्गत एक स्पीशीज (जाति) के जीवों का अपने जीवीय व अजीवीय वातावरण से पारस्परिक सम्बन्वों का अध्ययन किया जाता है। यह किसी वातावरण विशेष में एक ही जाति के जीवों के पोषण, वृद्धि, जनन, परिवर्धन एवम् जीवन-चक्र आदि से सम्बद्ध है।

2. समुदाय पारिस्थितिकी या सिनइकोलोजी (Synecology)

इसके अन्तर्गत किसी एक विशेष वातावरण में रहने वाले विभिन्न जीव-समुदायों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

वातावरणीय या पारिस्थितिक कारक
(Environmental or Ecological Factors)

जीव अपने वातावरण (जीवीय व अजीवीय) पर पूर्णतः आश्रित होते हैं। एक या एक से अधिक प्रकार के वर्गों को प्रभावित करने वाले वातावरण सम्बन्धी कारकों को **पारिस्थितिक कारक या इकोफैक्टर** (ecological factors or eco-factor) कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं—(1) **जलवायु सम्बन्धी,** (2) **स्थलाकृतिक,** (3) **मृदीय,** तथा (4) **जीवीय।**

1. जलवायु सम्बन्धी कारक (Climatic Factors)

(1) ताप (Temperature)—ताप पेड़-पौधों व जन्तुओं के वितरण को प्रभावित करता है क्योंकि यह समस्त जीवों की शरीरक्रियात्मक एवम् उपापचय क्रियाओं को प्रभावित करता है। विभिन्न जीव 10°C से 45°C के बीच अपनी जैव-क्रियाएँ करने में समर्थ होते हैं। किन्तु कुछ जीव (जीवाणु) 0°C से निम्न ताप तथा कुछ 88°C तक उच्च ताप पर जीवित रहने में समर्थ होते हैं। *Portlandia arctica* नामक लैमेलिब्रैंक 0°C से उच्च ताप पर जीवित नहीं रहता। इसी प्रकार *Oscillaria filiformis* स्वच्छ पानी में 85°C तक जीवित रहता है। अतः न्यूनतम व अधिकतम ताप के बीच प्रत्येक पौधे का एक अनुकूलतम (optimum) ताप होता है, जिस पर इसकी उपापचयी क्रियाएँ अधिक तीव्र गति से होती हैं। अत्यधिक निम्न ताप पर ऊतकों की क्षति तथा निर्जलीकरण तथा अधिक उच्च ताप पर कोशिकीय प्रोटीन्स व एन्जाइम्स के नष्ट हो जाने के कारण जीवों की मृत्यु हो जाती है।

अधिकांश जीवों के जनन-सम्बन्धी स्वभाव पर भी ताप का प्रभाव पड़ता है। जनन पदार्थ के परिपक्वन एवम् स्खलन के लिए एक क्रान्तिक (critical) ताप होता है। कुछ प्राणी पूरे वर्ष समान रूप से जनन करते हैं जबकि कुछ ग्रीष्म ऋतु में और कुछ अन्य एकमात्र रूप से शरद ऋतु में जनन करते है जबकि कुछ अन्य वर्ष में दो बार जनन करते हैं—एक बार वसन्त ऋतु में और दूसरी बार शरद ऋतु के आगमन से पूर्व।

जन्तुओं में वृद्धि का भी ताप से सम्बन्ध होता है। कुछ प्राणी एक अनुकूलतम ताप पर तीव्रता से वृद्धि करते हैं। इसी प्रकार ताप का किसी विशेष प्रदेश में रहने वाले जीवों के शरीर के आकार पर भी प्रभाव पड़ता है।

ताप में घट-बढ़ के प्रति जीवों में विभिन्न अनुकूलन देखने को मिलते हैं। जन्तुओ को दो मुख्य वर्गों में बाँटा गया है—**नियततापी** (homiothermic or warm-blooded) तथा **अनियततापी** या (poikilothermic or cold-blooded)। अनियततापी प्राणियों के शरीर का ताप वातावरण के साथ बदलता रहता है। अत्यधिक गर्मी अथवा ठण्ड से बचने के लिए ये भूमि के अन्दर या अन्य सुरक्षित स्थानों में छुपे रहते है अथवा फिर ये स्पोर या सिस्ट बनाते हैं। नियततापी प्राणियों में ताप का नियमन उनकी उपापचय क्रियाओं मे कमी अथवा वृद्धि द्वारा होता है। वातावरण का ताप शरीर के ताप से कम होने पर उपापचय क्रियाओं में वृद्धि होती है क्योंकि ऐसी अवस्था में विकिरण द्वारा शरीर से अधिक ऊष्मा का क्षय होता है।

ताप में अत्यधिक परिवर्तन के कारण अनेक जन्तु अनुकूलतम ताप वाले प्रदेशों की ओर प्रवसन कर जाते हैं। इस प्रकार के प्रवसन को **ऊष्मीय प्रवसन** (thermal migration) कहते हैं।

ठण्डे प्रदेशों मे रहने वाले जन्तु गर्म प्रदेशों वाले जन्तुओं की अपेक्षा अधिक समय तक जीवित रहते है। ये आकार में भी बड़े होते है। कुछ जलीय प्राणी तो ताप मे परिवर्तन के अनुरूप **चक्रान्तरण** (cyclomorphosis) प्रदर्शित करते हैं। शरद् ऋतु में cladocerans का सिर गोलाकार होता है। वसन्त ऋतु में यह टोपनुमा तथा ग्रीष्म ऋतु मे अत्यधिक बड़ा हो जाता है। **जॉर्डन** (Jordan) के अनुसार ठण्डे पानी में रहने वाली मछलियों में वर्टिब्री (vertebrae) की संख्या गर्म प्रदेशों के पानी की मछलियों की अपेक्षा अधिक होती है। इसे **जॉर्डन का नियम**

(Jordan's rule) कहते हैं। **वर्गमेन के नियम** (Bergmann's principle) के अनुसार ठण्डे प्रदेशों में रहने वाले जन्तु आकार में गरम प्रदेशों के जन्तुओं की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं। **एलेन नियम** (Allen's rule) के अनुसार स्तनधारियों की पूंछ, कान, गर्दन एवम् पादों पर ताप का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उष्ण-कटिबन्धीय प्रदेशों के जन्तुओं का रंग ठण्डे प्रदेशों के जन्तुओं की अपेक्षा अधिक गहरा होता है।

2. **प्रकाश** (Light)—प्रकाश वनस्पति व जीव-जन्तु की वृद्धि एवम् वितरण के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारक है। यह पौधों द्वारा प्रकाश-संश्लेषण के लिए आवश्यक है। यह पौधों में फूलों के खिलने एवम् वाष्पोत्सर्जन को भी प्रभावित करता है। प्रकाश जीवों के विभिन्न संरचनात्मक एवम् व्यावहारिक गुणों के साथ-साथ विभिन्न शारीरिक क्रियाओं को भी प्रभावित करता है। प्रकाश की वॉयलट (violet) एवम् अल्ट्रावॉयलट किरणें हानिकारक होती हैं और जीवों में अनेक विकास उत्पन्न करती हैं।

क्योंकि प्रकाश उपापचय क्रियाओं को प्रभावित करता है, अतः इसका जीवों की वृद्धि एवम् परिवर्धन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए सालमन मछली के लारवा केवल पर्याप्त प्रकाश की उपस्थिति में सामान्य रूप से परिवर्धन करते हैं। प्रकाश की अनुपस्थिति में ये सामान्य रूप से परिवर्धन नहीं कर पाते और इनकी मृत्यु दर में असाधारण रूप से वृद्धि हो जाती है।

प्रकाश में रहने वाले जन्तुओं की त्वचा में प्रकाश संवेदी वर्णक उत्पन्न हो जाते हैं। प्रकाश से दूर रहने पर जलीय जन्तुओं की त्वचा के वर्णक लुप्त हो जाते हैं। गुफाओं में रहने वाले ऐम्फिबियन्स मछलियों को प्रकाश में रखने पर इनकी त्वचा में वर्णक विकसित हो जाते हैं। वर्णक जन्तुओं की तीव्र प्रकाश से रक्षा करते हैं।

कुछ जन्तु अपने आस-पास के वातावरण के अनुकूल अपने शरीर का रंग बदलने में समर्थ होते हैं। मेंढक व केमेलिओन्स (chamaleons) इसके जाने-पहचाने उदाहरण हैं। वर्ण परिवर्तन दृश्य उद्दीपनों के फलस्वरूप होते हैं।

कुछ निम्न वर्ग के जन्तुओं में प्रकाश चलन (locomotion) को प्रभावित करता है। *पिन्नोथेरस* (*Pinnotherus*) नामक केंकड़े का नेत्रहीन लारवा तीव्र प्रकाश में अधिक तेजी से चलन करता है। प्रकाश की तरंग-दैर्घ्यों का मक्खियों की गति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। जन्तु व पौधे दोनों ही प्रकाश की अनुक्रिया के फलस्वरूप गति करते हैं। हरे फ्लेजेलेट्स (green flagellates) सदैव प्रकाश के स्रोत की दिशा में गति करते हैं।

रात्रि व दिन की आपेक्षिक अवधि जन्तुओं के प्रवसन को भी प्रभावित करती है। कुछ पक्षियों में उत्तर की दिशा में मौसमी प्रवास वसन्त ऋतु में लम्बी प्रकाशावधि के दिनों द्वारा जनदों में प्रेरित उद्दीपनों के कारण होता है जबकि पतझड़ व ग्रीष्म ऋतु के अन्त में छोटी प्रकाशावधि के दिनों में प्रतिक्रमण के फलस्वरूप ये पक्षी दक्षिण की ओर प्रवसन करते हैं। इसी प्रकार **सालमन** व ईल भी प्रकाशावधि द्वारा प्रभावित होकर ही प्रवसन करते हैं। अनेक पक्षियों व स्तनधारियों में जनन क्रियाएँ वसन्त ऋतु में लम्बी प्रकाशावधि के फलस्वरूप ही उत्प्रेरित होती हैं। कुछ जन्तुओं को लम्बी प्रकाशावधि में रखने पर ये लैंगिक रूप से शीघ्र ही परिपक्व हो जाते हैं। इसी प्रकार मुर्गियों को अधिक प्रकाश में रखने पर इनकी अण्डे देने की क्षमता में वृद्धि होती है।

प्रकाश का जन्तुओं की दैनिक क्रियाओं पर भी प्रभाव पड़ता है। कुछ जन्तु केवल सूर्य निकलते समय, कुछ अन्य प्रातःकाल में, कुछ पूरे दिन तथा कुछ सूर्यास्त के बाद सक्रिय होते हैं।

प्रकाश का सर्वाधिक प्रभाव पौधों पर पड़ता है। प्रकाश पेड़-पौधों में प्रकाश-संश्लेषण, वाष्पोत्सर्जन तथा फूलों के खिलने का नियमन करता है। पौधे भी प्रकाशावधि या दीप्तिकालिका (photoperiodism) का प्रदर्शन करते हैं। विभिन्न पौधों को अलग-अलग अवधि के प्रकाश की आवश्यकता होती है। लिवरवर्ट्स, मॉस, फर्न व कुछ जंगली पौधों के पुष्प कम तीव्र प्रकाश में ही भली प्रकार फलते-फूलते है।

3. **जल** (Water)—जल जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। यह शरीर के कुल भार का 70–90% तक होता है और समस्त उपापचय क्रियाओं में इसकी उपस्थिति आवश्यक है। इसकी विभिन्न जीवों के वितरण एवम् प्रकीर्णन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जल के आधार पर वनस्पति को तीन वर्गो—**जलोद्भिद्** (hydrophytes), **समोद्भिद्** (mesophytes), तथा **मरुद्भिद्** (xerophytes) मे विभक्त किया गया है। जलोद्भिद पौधे पानी में उगते हैं जैसे हाइड्रिला (*Hydrilla*) व वैलिसनेरिया (*Vallisnaria*) आदि। इन पौधों में वायूतक सुविकसित होता है तथा पत्तियों व तने पर क्यूटिन का महीन आवरण होता है। समोद्भिदी पौधे अधिक नमी वाली भूमि में उगते हैं जैसे फसली पौधे, तरकारियाँ, फर्न व मॉस आदि। मरुद्भिदी पौधे शुष्क भूमि में उगते हैं, जैसे केक्टस (*Cactus*) व युक्का (*Yucca*) आदि। पानी के वाष्पीकरण को रोकने या कम करने के लिए ये अत्यधिक रूपान्तरित होते है जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ कण्टकों में रूपान्तरित होती हैं और तना रूपान्तरित होकर प्रकाश-संश्लेषण करता है।

समुद्र, स्वच्छ पानी में या स्थल पर रहने वाले प्राणियों में जल का नियमन एक मुख्य समस्या है।

जलीय जन्तुओं में जल की समस्या (Water problem in aquatic animals)—लवणों की सान्द्रता के आधार पर जलीय माध्यम तीन प्रकार के होते हैं—समुद्री, ज्वारनदमुखी तथा स्वच्छ पानी। तीनों ही प्रकार के जल में रहने वाले जन्तुओं को शरीर के भीतर जल के नियमन की समस्या का सामना करना पड़ता है। स्वच्छ जल में रहने वाले प्राणियों में जल के सम्पर्क में रहने वाली सतहों से जल शरीर के अन्दर विसरित होकर ऊतकों के द्रव को तनु करता है। विभिन्न प्राणियों द्वारा इस अतिरिक्त जल से छुटकारा पाने के लिए अलग-अलग युक्तियाँ काम में लायी जाती है। प्रोटोजोआ में संकुचनशील धानियों द्वारा जल की अतिरिक्त मात्रा को शरीर के बाहर निकाला जाता है। स्वच्छ पानी की मछलियों का बाह्यकंकाल काइटिन के शल्कों का बना होता है जो शरीर के अन्दर पानी के विसरण को रोकता है। ये पानी की अधिक मात्रा युक्त अल्पपरासरी मूत्र स्रावित करता है। इसके विपरीत अधिकांश समुद्री प्राणी का दैहिक द्रव समुद्री जल की अपेक्षा अधिक तनु होता है। अतः ये अधिक मात्रा मे जल ग्रहण करके लवणों का उत्सर्जन करते हैं।

प्रायः जलीय जन्तु लवणों की विशिष्ट सीमा के अन्दर ही जीवित रहने में समर्थ होते हैं। इसी सीमा बन्धन के कारण जलीय जन्तु या तो स्वच्छ पानी में अथवा फिर समुद्री जल में रहते है। ये जल मे लवणों की अल्पमात्रा में ही परि-

वर्तन को सहन कर सकते हैं। इस प्रकार के जन्तुओं को stenohaline कहते हैं। कुछ प्राणी लवण की सान्द्रता में अधिक घट-वढ़ को भी सहन करने में समर्थ होते हैं। इन्हें euryhaline कहते हैं। ज्वारनदमुखी (estuarine) पानी में रहने वाले प्राणी euryhaline होते हैं और लवण की सान्द्रता में अधिक घट-वढ़ को वर्दाश्त कर सकते हैं। **सालमन** व ईल विभिन्न समय पर दोनों प्रकार के माध्यम में रहने में समर्थ होते हैं। **सालमन** मुहाने में से नदी में ऊपर जाकर अण्डे देते हैं। अण्डों से निकलने के वाद लारवा समुद्र में प्रवसन कर जाते हैं और परिपक्व होने पर पुनः नदियों में वापस आ जाते हैं।

स्थलचर प्राणियों में जल की समस्या (Water problem in terrestrial animals)—स्थल पर रहने पर भी स्थलचर प्राणियों को पानी पर वहुत अधिक निर्भर रहना पड़ता है। इन्हें सदैव शुष्कन का भय रहता है और जल का संरक्षण इनकी मुख्य समस्या है।

स्थलचर जन्तुओं में शुष्कन से वचने एवम् पानी के संरक्षण के लिए अनेक युक्तियाँ पायी जाती हैं। नम व कोमल त्वचा वाले प्राणी (जैसे केंचुए, आइसोपोड क्रस्टेशियन्स तथा एम्फिविया) गीली भूमि या नदी-नालों व तालावों के किनारों पर पाये जाते हैं। आर्थ्रोपोड्स के शरीर पर काइटिन का आवरण होता है तथा रेप्टाइल्स का शरीर शल्कों द्वारा ढका रहता है और पक्षियों के शरीर पर पंख व पिच्छ होते हैं। शरीर से क्षय हुए पानी की कमी को पूरा करने के लिए ये जन्तु पानी पीते हैं। मरुस्थलीय प्रदेशों में रहने वाले जन्तुओं के सामने सदैव पानी की समस्या वनी रहती है। अतः पानी के संरक्षण हेतु ये ठोस यूरिक एसिड के रूप में नाइट्रोजिनस पदार्थों का उत्सर्जन करते हैं। शशक, कंगारू, चूहा आदि अपने भोजन से पानी की कमी को पूरा करते हैं। शिकारी जन्तु शिकार के रुधिर से पानी प्राप्त करते हैं। मरुस्थलीय चूहा उपापचय द्वारा उत्पन्न पानी पर निर्भर रहता है। शुष्कन से वचने के लिए कुछ जन्तु ग्रीष्म काल में ग्रीष्म निष्क्रियता की अवस्था में रहते हैं।

4. आर्द्रता (Humidity)—वायु में आद्रता का पेड़-पौधों व जन्तुओं के वितरण एवम् संरचना पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इसका जन्तुओं के जनन एवम् व्यवहार पर भी प्रभाव पड़ता है। मरुस्थलीय प्राणी केवल रात्रि के समय वाहर आते हैं जवकि वायुमण्डल का ताप भी कम होता है और वायु में पर्याप्त नमी होती है।

5. वायु (Wind)—वायु का पेड़-पौधों एवम् जन्तुओं के आकार एवम् आकृति तथा वितरण पर प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। तीव्र वायु के कारण भूमि का अपरदन होता है, वृक्ष उखड़ जाते हैं और शाखाएँ टूट जाती हैं। तेज वायु के कारण पौधों में तेज वाष्पोत्सर्जन वढ़ जाता है और शुष्कन की दशा उत्पन्न हो जाती है।

2. स्थलाकृतिक कारक (Topographical Factors)

स्थलाकृतिक कारकों में ऊँचाई, ढाल, भूमि का खुलाव व पर्वत शृंखलाओं की दिशाएँ आदि सम्मिलित हैं।

वातावरणीय दृष्टि से पर्वतों का वहुत अधिक महत्त्व है। ऊँची पर्वतमालाओं की उपस्थिति से उनके आस-पास की जलवायु वदल जाती है, ये हवाओं को निश्चित दिशाओं में मोड़ती हैं तथा वायु से नमी ग्रहण करने के कारण वर्षा होती है। पर्वतों की चोटियों की ऊँचाई के साथ-साथ ताप, दवाव, वायु की तीव्रता तथा

आर्द्रता में क्रमिक परिवर्तन होता जाता है जो उन स्थानों की वनस्पति एवम् जीव-जन्तुओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

यही नहीं, भूमि की ढाल एवम् खुलाव का भी वनस्पति व जन्तुओं पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, उत्तरी गोलार्ध के दक्षिणी ढलानों पर सूर्य के प्रकाश की सीधी किरणें पड़ती हैं जिसके फलस्वरूप वहाँ उष्ण मरुद्भिदी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके विपरीत तिरछी किरणों के कारण उत्तरी ढलान ठण्डे व नम रहते हैं और इन स्थानों पर आर्द्रतोद्भिद् (hygrophilous) वनस्पति मिलती है।

3. मृदीय कारक (Edaphic Factors)

मृदा की संरचना एवम् संगठन से सम्बन्धित कारकों को **मृदीय कारक** कहते हैं। मृदा में इकोसिस्टम के जीवीय व अजीवीय घटक विशिष्ट रूप से सम्बद्ध होते हैं। मृदा की बनावट, सरन्ध्रता, नमी, पानी को रोके रखने की क्षमता, घुले हुए लवणों की उपस्थिति या अनुपस्थिति या उनकी सान्द्रता अम्लीयता या क्षारीयता, मुक्त ऑक्सीजन की मात्रा आदि इन सभी कारकों का उस स्थान की वनस्पति पर वरणात्मक प्रभाव पड़ता है जो स्वाभाविक रूप से उस स्थान पर मिलने वाले प्राणियों का नियमन करती है। मृत व क्षय होते हुए जीवों (वनस्पति एवम् जन्तु) के शरीर बैक्टीरिया द्वारा अपघटन से ह्यूमस में परिवर्तित हो जाते हैं जो मृदा में न केवल पोषक तत्त्वों व कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि करते हैं बल्कि भूमि द्वारा काफी समय तक जल को सोखकर रखने में सहायक होते हैं। यह पेड़-पौधों की सामान्य वृद्धि के लिए अति आवश्यक है और खाद्य श्रृंखला का प्राथमिक स्तर है।

भूमि में जीवाणु, प्रोटोजोआ, नेमेटोडा, ऐनिलिडा, क्रस्टेशियन्स, बिलों में रहने वाले कीट व अनेक पृष्ठवंशी वास करते हैं। लिजार्ड, सर्प, मोल्स (moles) व अनेक रोडेन्ट्स (rodents) भूमि में बिल बनाकर रहते हैं।

4. जीवीय कारक (Biotic Factors)

पेड़-पौधे व जीव-जन्तु साथ-साथ रहते हुए एक-दूसरे के जीवन को प्रभावित करते हैं और वातावरणीय कारकों को रूपान्तरित करते हैं। ये निम्न प्रकार से हैं :—

(i) पादप व पादप के बीच परस्पर क्रिया
(ii) पादपों व जन्तुओं के बीच परस्पर क्रिया
(iii) जन्तु व जन्तुओं के बीच परस्पर क्रिया
(iv) मनुष्य का वनस्पति एवम् जन्तुओं पर प्रभाव।

स्पर्धा (Competition)—इकोसिस्टम में पेड़-पौधों व जन्तु अपनी पोषण-आवश्यकता, जनन-सहयोग के लिए एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं और इनमें एक प्रकार की स्पर्धा होती रहती है।

अन्तराजातीय स्पर्धा (Interspecific competition) किसी विशिष्ट स्थान में उगने वाले एक ही जाति के पौधों या एक ही जाति के रहने वाले जन्तुओं के बीच होती है। **आन्तरजातीय स्पर्धा** (intraspecific competition) एक ही पारिस्थितिक कर्मकला (ecological niche) में दो या दो से अधिक जातियों के जीवों के बीच होती है। इस प्रकार की स्पर्धा में भोजन की कमी होने पर कोई एक जाति नष्ट हो जाती है।

प्राणियों में भोजन की स्पर्धा के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित सहसम्बन्ध पाये जाते हैं :—

(*i*) **परजीविता** (Parasitism)—यह दो जीवों के बीच सहसम्बन्ध है जिसमें एक जीव **'परजीवी'** दूसरे जीव (पोषक) पर भोजन के लिए आश्रित होता है और इस प्रकार पोषक को कुछ शरीर-क्रियात्मक हानि पहुँचाता है। इस सहसम्बन्ध को **परजीविता** (parasitism) कहते हैं। परजीविता पौधों व पौधों में, पौधों व जन्तुओं में, वाइरस व जन्तुओं में तथा जीवाणुओं व पौधों तथा जन्तुओं में पायी जाती है। ये **बाह्यपरजीवी** व **अन्तःपरजीवी** भी होते हैं।

(*ii*) **सहभोजिता** (Commensalism)—यह दो विभिन्न वर्गों के जीवों के बीच वह सहसम्बन्ध है जिसमें एक दूसरे को बिना हानि पहुँचाये लाभान्वित होता है। ये पूर्ण रूप से एक-दूसरे पर आश्रित नहीं होते और स्वतन्त्र रूप से भी रह सकते हैं।

(*iii*) **सहजीविता** (Symbiosis)—यह दो भिन्न वर्गों के बीच वह सहसम्बन्ध है जिसमें दोनों जीव एक-दूसरे से लाभान्वित होते हैं, जैसे दीमक व फ्लैजेलेट्स। फ्लैजेलेट्स दीमक की आन्त्र में रहते हैं और वहाँ से अपना भोजन प्राप्त करते हैं जबकि दीमक फ्लैजेलेट्स की उपस्थिति के कारण सेलूलोस का पाचन करती है।

(*iv*) **अधिपादपता** (Epiphytism)—अधिपादप वे पौधे हैं जो दूसरे पादपों पर उगते हैं और उनको केवल यान्त्रिक अवलम्बन प्रदान करते हैं। ये स्वपोषित होते हैं और अपना भोजन स्वयं निर्मित करते हैं। अधिपादप शैवाल, फर्न, लाइकेन, मॉस, ऑर्किडस तथा संवहनीय पौधों में भी पाये जाते हैं।

मनुष्य का प्रभाव (Effect of man)—मनुष्य केवल एक प्राणी ही नहीं बल्कि उससे कहीं अधिक है। उसने अनेक विधियों द्वारा प्राकृतिक साधनों का उपयोग किया है। अपनी विभिन्न आवश्यकताओं के लिए उसने वन-के-वन साफ कर दिये, पेड़ों को नष्ट किया, नयी-नयी फसलें उगायीं और अपने मनोरंजन के लिए बाग व वाटिकाएँ लगायीं। इसके फलस्वरूप वे उन स्थानों पर रहने वाले जन्तु को ये स्थान छोड़ने पड़े। यही नहीं, मनुष्य अपने मनोरंजन व आहार के लिए भी जंगली जन्तुओं का शिकार करता है। इसके फलस्वरूप प्राकृतिक वास-स्थानों का स्थान कृत्रिम वासस्थानों ने ले लिया और पेड़-पौधों व जन्तुओं की अनेक जातियाँ विलुप्त हो गयीं।

प्रश्न 2. लीविग के न्यूनतम नियम एवम् शेलफोर्ड के सह्यता के नियम के सन्दर्भ में सीमाकारी कारकों के सिद्धान्तों का वर्णन करिये।

Give an account of the principles pertaining to limiting factors with special reference to Liebig's law of minimum and Shelford's law of tolerance. (*Rajasthan 1974*)

पेड़-पौधों व जन्तुओं, सभी में ताप, आर्द्रता तथा जलीय मध्यम में से लवणों की सान्द्रता आदि विभिन्न वातावरणीय कारणों के प्रति सह्यता की एक सीमा होती है। किसी विशिष्ट क्षेत्र में किसी भी वातावरणीय कारक के सह्यता के उच्चतम स्तर से अधिक अथवा निम्नतम स्तर से कम होने पर यह उस स्थान पर रहने वाले किसी जन्तु वर्ग अथवा जन्तुओं के विभिन्न वर्गों के लिए **सीमाकारी कारक** का कार्य करके उनके वितरण को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, जलीय

माध्यम में लवण की सान्द्रता प्रायः एक सीमाकारी कारक है। **लीबिग** (Liebig) तथा **शेलफोर्ड** (Shelford) ने सीमाकारी कारकों से सम्बद्ध दो नियम प्रतिपादित किये हैं :—

लीबिग-ब्लैकमेन का अल्पता का नियम
(Liebig-Blackmann's Law of Minimum)

Liebig (1840) ने पौधों की वृद्धि एवम् सारभूत तत्वों (essential elements) की उपलब्ध मात्रा के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन करते समय इस बात की खोज की कि अल्प मात्रा में उपभोग में आने वाले तत्त्व भी प्रायः फसलों की पैदावार को सीमित करते हैं। इस प्राक्कल्पना को **लीबिग का अल्पता-नियम** (Liebig's law of minimum) कहते हैं, **जिसके अनुसार पौधों की वृद्धि खाद्य पदार्थों की अल्प मात्रा पर निर्भर करती है।**

Liebig की प्राक्कल्पना सामान्य पर्यावरण के अन्तर्गत पौधों की रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता से सम्बन्धित थी किन्तु उसके पश्चात् के कुछ वैज्ञानिकों द्वारा इस प्राक्कल्पना में समस्त अजैव पर्यावरण तथा जीवित प्राणियों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। ताप, वायुमण्डलीय गैसें, आर्द्रता, प्रकाश की मात्रा आदि अनेक पर्यावरण कारक तथा अन्य कई समान अजैव कारक जीवों के लिए सीमाकारक गुणकों के रूप में कार्य करते हैं। इसी कारण **Blackmann** नामक एक ब्रिटिश जीव-वैज्ञानिक ने अल्पता नियम (law of minimum) एवम् सीमाकारक गुणकों के नियम (law of limiting factors) को समाविष्ट किया। **Blackman** ने प्रकाश-

चित्र १·१. A. लीबिग के अल्पता नियम का लेखाचित्र-प्रदर्शन— इसमें फॉस्फेट की मात्रा का पोटाशियम की तीन भिन्न सान्द्रताओं में उगे पौधों के शुष्क भार के साथ ग्राफ बनाया गया है (Liebig's law of minimum—the amount of phosphate plotted against the dry weight of matter produced at three different levels of the supply of potassium)
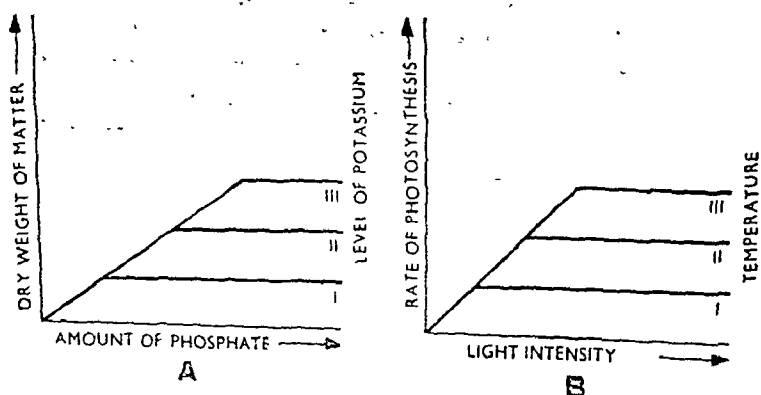
B. ब्लैकमैन का सीमाकारी गुणक-नियम—इसमें प्रकाश-संश्लेषण की गति का तीन भिन्न तापमानों पर प्रकाश की तीव्रता के साथ ग्राफ बनाया गया है। इनमें से प्रत्येक तापमान प्रकाश-संश्लेषण के लिए सीमाकारी गुणक है (Blackmann's law of limiting factor—the rate of photosynthesis plotted against the light intensity at three different temperatures, each of which limits the rate of photosynthesis)

संश्लेषण की गति को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करते समय यह पता लगाया कि प्रकाश संश्लेषण की गति चरम तीव्रता से कार्य करने वाले कारक या गुणक की सान्द्रता द्वारा नियन्त्रित होती है।

सीमाकारी गुणकों तथा पदार्थों पर और अधिक परीक्षणों द्वारा यह पता लगा है कि एक कारक या गुणक की अत्यधिक तीव्रता दूसरे कारक की तीव्रता को प्रभावित करती है। इस प्रक्रिया को **गुणक या कारक परस्पर-क्रिया** (factor interaction) कहते हैं।

शैलफोर्ड का सहिष्णुता नियम (Shelford's Law of Tolerance)

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि जीवों की संख्या एवम् उनकी उपस्थिति पर किसी तत्त्व की बहुत कम मात्रा या कारक की बहुत कम तीव्रता के अतिरिक्त तत्त्व की बहुत अधिक मात्रा या कारक की अत्यधिक तीव्रता का भी प्रभाव पड़ता है। इसका अर्थ है कि किसी भी पदार्थ की कुछ विशेष सीमाओं से कमी या अधिकता जीवों के लिए घातक सिद्ध होती है। उदाहरणार्थ CO_2 हरे पादपों की वृद्धि के लिए अति आवश्यक है। इसकी सान्द्रता मे थोड़ी-सी वृद्धि से हरे पादप की वृद्धि बढ़ जाती है। किन्तु CO_2 की अत्यधिक वृद्धि पौधे के लिए घातक होती है। इसी प्रकार मनुष्य के आहार में arsenic की थोड़ी मात्रा टॉनिक का कार्य करती है किन्तु इसकी मात्रा मे तनिक वृद्धि भी अति घातक सिद्ध होती है।

इस प्राक्कल्पना को, कि कारकों की न्यूनतम एवम् अधिकतम मात्रा का जीवों की वृद्धि पर सीमाकारी प्रभाव होता है, **V. E. Shelford** ने 1913 मे प्रस्तुत किया था। इसी प्राक्कल्पना को **सहिष्णुता-नियम** (law of tolerance) कहते हैं। अतः सहिष्णुता-नियम के अनुसार प्रत्येक पारिस्थितिक कारक, जिसके प्रति जीव अनुक्रिया करता है, का न्यूनतम एवम् अधिकतम सीमाकारी प्रभाव होता है तथा उसकी क्रान्तिक न्यूनतम (critical minimum) से कम या क्रान्तिक अधिकतम (critical maximum) से अधिक तीव्रता होने पर घातक प्रभाव होता है और वह जाति पूर्णतया समाप्त हो जाती है।

क्रान्तिक न्यूनतम तथा क्रान्तिक अधिकतम के बीच की सीमा को **सहिष्णुता सीमा** (limit of tolerance) कहते हैं। इन क्रान्तिक सीमाओं के बीच स्थित कारक की तीव्रता जीव की सहिष्णुता-सीमाओं के अन्दर आती है। किसी जाति विशेष की सहिष्णुता-सीमा मे वृद्धि से उस क्षेत्र से इस परिस्थितियों के बने-रहने तक वह जाति विलुप्त हो जाती है।
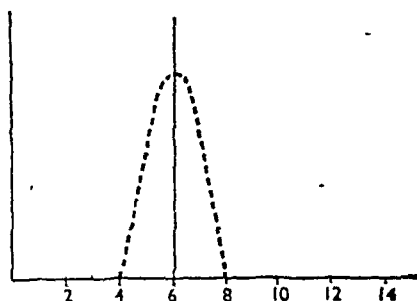
चित्र १·२. सहिष्णुता नियम का लेखाचित्र प्रदर्शन (*Diagrammatic representation of law of tolerance*)

सहिष्णुता नियम के साथ **अनुकूलतम की प्राक्कल्पना** (concept of optimum) को भी समाविष्ट किया गया है। यह सहिष्णुता सीमा के अन्दर वह विन्दु है जिस पर कोई कारक किसी जीव की आवश्यकतानुसार सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। (चित्र 1·2)

कुछ अन्य तथ्यों को भी सहिष्णुता नियम (law of tolerance) के साथ समाविष्ट किया गया है। एक ही पर्यावरण में किसी जन्तु या पादप की सहिष्णुता

की सीमा अगर एक कारक के लिए अति विस्तृत हो तो अन्य किसी कारक के लिए बहुत कम भी हो सकती है। इस दशा में अगर परिस्थितियाँ किसी एक विशेष कारक के लिए अनुकूल नहीं हैं तो अन्य कारकों के लिए भी उस जीव की सहिष्णुता की सीमा कम हो सकती है। उदाहरण के लिए स्वच्छ जल में रहने वाली मछलियों की कुछ जातियों में तापमान के प्रति सहिष्णुता की सीमा अति विस्तृत है जब कि लवण-सान्द्रता के प्रति बहुत-कम है। खारे पानी का तापमान कम करने पर मुहाने पर रहने वाली मछलियों में कम लवण वाले जल या कम खारे पानी के प्रति सहिष्णुता की सीमा कम हो जाती है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले एक ही जाति के विभिन्न जीवों की सहिष्णुता एवम् अनुकूलतम परिस्थितियों की सीमा अलग-अलग होती है। अतः सहिष्णुता-नियम तथा सहिष्णुता की सीमा द्वारा जीवों के भौगोलिक वितरण एवम् एक ही जाति की विभिन्न जीव-संख्याओं में पायी जाने वाली विभिन्नताओं को समझने में सहायता मिलती है।

प्रश्न 3. प्रकाशावधि-प्रभाव पर निबन्ध लिखिये।

Write an essay on photoperiodism. *(Gujrat 1972)*

किसी जीव की सूर्य के प्रकाश की अवधि के प्रति अनुक्रिया को **प्रकाशावधि-प्रभाव** (photoperiodism) कहते हैं तथा सूर्योदय से सूर्य के अस्त होने का समय प्रकाशावधि (photoperiod) कहलाता है। भूमध्य रेखा तथा ध्रुवीय वृत्तों के बीच प्रकाशावधि प्रत्येक ऋतु में अलग-अलग होती है। शीतोष्ण कटिबन्धों में प्रकाशावधि लगभग 6–18 घण्टे के बीच होती है। इन प्रदेशों में ग्रीष्म ऋतु में दिन लम्बे होते हैं किन्तु शरद् ऋतु में ये छोटे होते हैं। भूमध्य प्रदेश में दिन लगभग 12 घण्टे का होता है। किन्तु एक विशेष ऋतु व प्रदेश में प्रकाशावधि सदैव ही स्थिर रहती है। पादपों व जन्तुओं, दोनों में ही प्रकाशावधि एक अति महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिक कारक है जो इनके शरीर-क्रियात्मक व जनन-सम्बन्धी स्वभावों को उत्प्रेरित करता है, जैसे कुछ पौधों में फूलों का खिलना, निर्मोचन, वसा-निक्षेपण, पक्षियों व स्तनधारियों में प्रव्रजन तथा जनन और कीटों में प्रसुप्तावस्था का प्रारम्भ आदि।

पादपों पर प्रकाशावधि का प्रभाव *(Effect of photoperiod on plants)*—पादपों में लम्बी प्रकाशावधि के फलस्वरूप प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया अधिक होती है और ये तेजी से वृद्धि करते हैं। लम्बी प्रकाशावधि के कारण दिन में तापमान अधिक हो जाता है जिसके कारण पादपों में उपापचय क्रियाएँ अधिक तेजी से होती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि पादपों में दिन व रात के समय होने वाली उपापचय क्रियाओं के बीच एक प्रकार का सन्तुलन रहता है। अधिकांश पादपों की जनन क्रियाएँ भी प्रकाशावधि या दिन की लम्बाई के साथ सहसम्बन्धित होती हैं। प्रकाशावधि-अनुक्रिया के आधार पर पादपों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँट सकते हैं :—

1. **Long day plants**—इस प्रकार के पौधे ग्रीष्म ऋतु में, जबकि दिन अधिक बड़े होते हैं, फलते-फूलते हैं और बीज उत्पन्न करते हैं (अर्थात् जब प्रकाशावधि 12 घण्टे से अधिक होती है)।

2. **Short day plants**—इस प्रकार के पौधे वसन्त ऋतु में, जबकि दिन छोटे होते हैं, बीज उत्पन्न करते हैं (अर्थात् जब प्रकाशावधि 12 घण्टे से कम होती है)।

3. Day neutral plants—इस प्रकार के पौधों पर प्रकाशावधि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जन्तुओं पर प्रकाशावधि का प्रभाव (Effect of photoperiod on animals)—अनेक जन्तुओं पर भी प्रकाशावधि का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अनेक पक्षियों व स्तनधारियों में जनन-क्रियाओं में वृद्धि ; पक्षियों, स्तनधारियों व कीटों में प्रव्रजन, पक्षति की सामान्य अवस्था तथा गिलहरियों में भोजन को संग्रहित करने का स्वभाव आदि इसके अत्यन्त उपयुक्त उदाहरण हैं।

1. जनन क्रियाओं में वृद्धि—(Increased reproductive activities)—प्रकाशावधि में वृद्धि से मछलियों, पक्षियों व स्तनधारियों के जनदों में क्रमिक परिवर्धन होता है। अधिकांश जन्तु वसन्त ऋतु में जनन प्रारम्भ करते हैं जिससे उनकी सन्ततियों को अनुकूलतम ऊष्मीय स्थितियाँ मिल सकें। कुछ मछलियाँ लम्बे दिनों के कारण शीघ्र ही प्रौढ़ होकर जनन करना प्रारम्भ कर देती हैं। कुछ समय से प्रकाशावधि एवम् इसके अनुकूल प्रभावों का प्रयोग कुक्कुट-पालन एवम् डेरी-उद्योग में भी किया जाने लगा है। शीत ऋतु में मुर्गियों को कृत्रिम प्रकाश में रखने पर इनके अण्डे देने के स्वभाव को उत्प्रेरित किया जा सकता है। समझा जाता है कि प्रकाश पिट्यूटरी ग्रन्थि को उत्तेजित करता है जिसका स्राव जनदों को उत्तेजित करता है।

2. प्रव्रजन (Migration)—समझा जाता है कि प्रव्रजन करने वाले जन्तुओं जैसे ईल (eels), सालमन (salmons), पक्षियों (birds), स्तनधारियों (mammals), तथा कीटों में भी यह क्रिया प्रकाशावधि के कारण ही होती है। प्रत्येक पक्षी में एक निश्चित प्रकाशावधि के अनुकूल एक आन्तरिक तालबद्धता (rhythm) होती है जिसके फलस्वरूप पक्षी केवल उसी प्रदेश में स्थानान्तरण करता है जहाँ उसे उपयुक्त प्रकाशावधि उपलब्ध होती है।

3. डायापोज या प्रसुप्तावस्था (Diapause)—यह शीत ऋतु में कीटों में वर्धन अवरुद्ध हो जाने वाली प्रावस्था है। U.S.A. के दक्षिणी भागों में पाये जाने वाले Pinkcotton ballworm के लारवा में सितम्बर या अक्टूबर के आने पर वर्धन अवरुद्ध हो जाता है और यह पूरी सर्दियों तक इसी प्रसुप्तावस्था में पड़ा रहता है। वसन्त ऋतु के आगमन पर जबकि दिन अपेक्षाकृत कुछ बड़े हो जाते हैं, यह पुनः सक्रिय हो जाता है। प्रयोगशाला में कृत्रिम प्रकाश में रखने पर देखा गया है कि 13–25 घण्टों की कृत्रिम प्रकाशावधि द्वारा इन लारवाओं को प्रसुप्तावस्था में जाने से रोका जा सकता है।

4. भोजन संग्रहित करने का स्वभाव (Food storing behaviour)—उड़ने वाली गिलहरियों में भोजन संग्रहित करने के स्वभाव का नियन्त्रण प्रकाशावधि द्वारा ही होता है।

5. सर्दियों में पंख व फर (fur) आदि का वर्धन प्रकाशावधि पर ही निर्भर करता है।

प्रकाशावधि-प्रभाव की प्रक्रिया (Mechanism of photoperiodism)—ऐसा प्रकल्पित किया गया है कि दिन की लम्बाई या प्रकाशावधि किसी संवेदी ग्राहक (sensory receptor) के माध्यम से क्रिया करती है। जन्तुओं में नेत्र तथा पादपों की पत्तियों में कुछ विशेष रंजक संवेदी ग्राही हो सकते हैं। प्रकाशावधि द्वारा उत्प्रेरित संवेदी ग्राही एक या अधिक हारमोन्स या एन्जाइम्स प्रणालियों को उत्प्रेरित करते हैं जिनके फलस्वरूप जीवों में क्रियात्मक या व्यवहार सम्बन्धी अनुक्रिया होती है।

अध्याय 2

समष्टि
(Population)

प्रश्न 4. प्राणी समष्टि की सामान्य विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on the general characteristics of animal population.

सामान्य भाषा में 'Population' शब्द का प्रयोग जनसंख्या के लिए किया जाता है किन्तु जैविक दृष्टि से **समष्टि** (population) **एक विशेष प्रदेश में स्थित एक ही जाति या घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित जातियों के जीवों (पेड़-पौधों या जन्तुओं) का एक समुच्चय** (assemblage) है जैसे तालाब में bull-frogs, किसी घासस्थल या मैदान में (grasshoppers तथा वन में चीड़ के वृक्ष।

प्रत्येक समष्टि अनेक गुण प्रदर्शित करती है जो कि किसी एक जीव विशेष के न होकर पूरे समुदाय की वृत्ति को प्रदर्शित करते हैं, जैसे समष्टि घनत्व, जन्म-दर, मृत्यु-दर, वयस वितरण (age distribution), जीवीय विभव (biotic potential), प्रकीर्णन (dispersal), परिक्षेपण दर (dispersion rate) तथा वृद्धि-रूप।

समष्टि घनत्व (Population Density)

किसी निश्चित अवधिकाल के अन्तर्गत प्रत्येक यूनिट क्षेत्र या आयतन में उपस्थित जीवों की संख्या को **समष्टि घनत्व** (population density) कहते हैं, जैसे प्रत्येक वर्गमील में गिलहरियों की संख्या या प्रति एकड़ केंचुओं एवम् वृक्षों की संख्या या फिर प्रति लीटर जल में डायटम्स (diatoms) की संख्या। किन्तु जिस समष्टि में विभिन्न माप या आकार वाले जीव होते हैं उनका घनत्व जीवों के भार (biomass) के रूप में निर्धारित किया जाता है। अतः विभिन्न प्रकार की समष्टि के लिए समष्टि घनत्व का एकक भिन्न-भिन्न होता है। समष्टि घनत्व को अभिव्यक्त करने की दो विधियाँ हैं—अपरिष्कृत घनत्व (crude density) तथा पारिस्थितिक घनत्व (ecological density)। **अपरिष्कृत घनत्व** कुल क्षेत्र या आयतन के प्रत्येक यूनिट या एकक में जीवों की संख्या को प्रदर्शित करता है तथा **पारिस्थितिक घनत्व** उस क्षेत्र या आयतन के उस यूनिट या एकक में जीवों की संख्या है जिसमें कि वास्तविक रूप से जीव रहते हैं।

यद्यपि जन्तुओं के समष्टि घनत्व को ज्ञात करना एक कठिन समस्या है किन्तु फिर भी इसको ज्ञात करने की अनेक विधियाँ प्रस्तुत की गयी हैं :—

1. समष्टि में विभिन्न प्रावस्थाओं वाले समस्त जीवों को गिनना (Total count of the individuals of a population of all the stages)—यह विधि जन्तुओं की अपेक्षा पादपों के लिए अधिक व्यवहारिक है जिसके द्वारा समष्टि घनत्व में जीव के संख्यात्मक रूप का सही ज्ञान होता है।

2. प्रतिचयन विधि (Sampling method)—इस विधि में अनेक सैम्पल लिये जाते हैं तथा प्रत्येक सैम्पल के एक एकक में उपस्थित जीवों की गिनती की जाती है। पैरामीशिया के सघन संवर्धन में पैरामीशिया का समष्टि घनत्व निकालने के लिए निम्नलिखित विधि उपयोग में लायी जाती है। संवर्धन को शीघ्रता से भली-भाँति हिलाइये और पीपेट द्वारा उसमें से 1 c.c. संवर्धन निकाल लीजिये। वाच ग्लास में रखकर इसमें उपस्थित पैरामीशिया को गिन लीजिये। इस विधि को कई बार दोहराइये। सब परिणामों को जोड़कर 1 c.c. में पैरामीशिया की संख्या का औसत निकाल लीजिये।

स्थलीय प्राणियों के लिए सैम्पलिंग की दूसरी विधि प्रयोग में लायी जाती है। जिन जीवों का घनत्व ज्ञात करना होता है उनके वितरण क्षेत्र को छोटे-छोटे सैम्पलिंग यूनिट या क्वाड्रेण्ट्स में विभाजित किया जाता है। सैम्पलिंग यूनिट या क्वाड्रेण्ट का आकार या माप सैम्पल किये जाने वाले जीवों के आकार पर निर्भर करता है। प्रत्येक क्वाड्रेण्ट या सैम्पलिंग यूनिट के आकस्मिक रूप में कई सैम्पल एकत्रित कर लिये जाते हैं। अब सैम्पलिंग क्वाड्रेण्ट्स का क्षेत्र व उसमें पाये जाने वाले प्राणियों की संख्या की गणना कर ली जाती है, जिससे समष्टि का घनत्व ज्ञात कर लिया जाता है।

3. टैग बाँधना तथा पुनर्गणना करना (Tagging and recounting)—इस विधि द्वारा बड़े आकार के जन्तुओं, जैसे गिलहरी व पक्षियों आदि की गणना की जाती है। जन्तुओं को एक निश्चित संख्या में पकड़कर (100) उनको टैग करके छोड़ दिया जाता है। अगले दिन उसी क्षेत्र से पुनः 100 जन्तुओं को पकड़ा जाता है और इन जन्तुओं में टैग किये हुए जन्तुओं की गणना की जाती है। इस प्रकार टैग किये हुए तथा बिना टैग किये गये जन्तुओं के समानुपात द्वारा समष्टि घनत्व ज्ञात कर लिया जाता है। अगर पुनः पकड़े गये जीवों में 20 टैग किये हुए जीव हैं तो उस क्षेत्र में टैग किये गये व बिना टैग किये गये कुल जीवों की संख्या 500 होगी :—

$$\frac{x}{100}=\frac{100}{20}$$

$$\therefore \quad x=\frac{100\times 100}{20}=500$$

जिसमें 20 = पकड़े गये जीवों में टैग जीवों की संख्या

100 = पकड़े गये टैग व बिना टैग किये गये जीवों की कुल संख्या

x = उस क्षेत्र में जीवों की कुल संख्या

अतः किसी स्थान का समष्टि घनत्व ज्ञात करने का सगुणित सूत्र निम्न प्रकार से है :—

$$D=\frac{n/a}{t}$$

जिसमें D = घनत्व

n = जीवों की संख्या

a = क्षेत्र

t = अवधि-यूनिट

जीव-घनत्व के अध्ययन द्वारा समष्टि के सम्पन्न स्वभाव का पता चलता है तथा इससे समष्टि की मृत्यु-दर एवम् जन्म-दर ज्ञात होती है। अतः समष्टि

का घनत्व जन्म-दर, मृत्यु-दर तथा प्रव्रजन पर निर्भर करता है।

जन्म-दर (Birth-rate or natality)—**एक अवधि-यूनिट में किसी समष्टि द्वारा उत्पन्न नये जीवों की औसत संख्या को जन्म-दर कहते हैं।** सर्वोचित रूप से उपयुक्त शरीर-क्रियात्मक कारकों के अन्तर्गत एक अवधि-यूनिट में उत्पन्न होने वाले नये जीवों की अधिकतम संख्या को **अधिकतम जन्म-दर** (maximum birth-rate) या **सम्भाव्य जन्म-दर** (potential natality) कहते हैं। इसका अर्थ है कि जीवों की अधिकतम जन्म-दर शरीर-क्रियात्मक (physiological) कारकों, जैसे लैंगिक रूप से परिपक्व नर एवम् मादा जीव, समष्टि में मादा जीवों का समानुपात तथा एक अवधि-यूनिट में प्रत्येक मादा द्वारा उत्पन्न अण्डों आदि द्वारा निर्धारित होती है। किसी भी समष्टि की अधिकतम जन्म-दर सदैव ही स्थिर रहती है।

वास्तविक या पारिस्थितिक जन्म-दर (Actual or ecological birth rate)—किसी एक अवधिकाल में समष्टि मे नये जीवों की वास्तविक संख्या के योग को वास्तविक या पारिस्थितिक जन्म-दर कहते हैं। यह अधिकतम जन्म दर से काफी कम होती है क्योंकि किसी भी समष्टि मे समस्त मादाएँ समान रूप से जननक्षमता वाली नहीं होती ; न ही उनसे उत्पन्न समस्त अण्डे अण्डभेदन करते हैं और न ही अण्डभेदन के फलस्वरूप निकले समस्त लारवी प्रौढ़ता को प्राप्त होते हैं।

समष्टि में अधिकतम जन्म-दर को ज्ञात करना सरल नहीं है किन्तु वास्तविक जन्म-दर से इसके समानुपात द्वारा समष्टि की वृद्धि-दर को ज्ञात किया जा सकता है।

मृत्यु-दर (Death-rate or mortality)—प्रत्येक अवधि-काल में समष्टि में मरने वाले जीवों की संख्या को **मृत्यु-दर** कहते हैं। **निम्नतम मृत्यु संख्या** (minimum mortality) वृद्धावस्था में जीवों के शरीर में शरीर-क्रियात्मक परिवर्तनों के फलस्वरूप मृत्यु-ग्रस्त होने वाले जीवों की संख्या है। किसी भी समष्टि की मृत्यु-दर, सदैव ही स्थिर रहती है। किन्तु समष्टि की वास्तविक मृत्यु-दर में पारिस्थितिक कारकों व उसके घनत्व के आधार पर भिन्नता पायी जाती है। किसी समष्टि में मृत्यु के संयोग को उत्तरजीविता वक्र (survivorship curve) द्वारा सरलतापूर्वक प्रदर्शित किया जा सकता है। इस वक्र को बनाने के लिए समष्टि के उत्तरजीवियों को काल के साथ आलेखित किया जाता है। उत्तरजीविता वक्र तीन प्रकार के होते हैं :—

चित्र २·१. ओयस्टर, हाइड्रा एवम् मनुष्य की समष्टि का उत्तरजीविता वक्र (Survivorship curve for the populations of oysters, Hydra and man)

(1) जब विभिन्न आयु वाले जीवों की मृत्यु-दर समान होती है तो वक्र (curve) एक **सीधी विकर्ण रेखा** (straight diagonal line) के रूप में होती है।

(2) जब अधिकांश जीव अपना जीवीय विभव पूर्ण कर लेते हैं और वृद्धावस्था में मृत्युग्रस्त होते हैं तो वक्र (curve) अत्यधिक उत्तल

होती है अर्थात् जीवीय विभव के पहुँचने तक यह लगभग क्षैतिज रूप से चलती है और उसके बाद तीव्रता से नीचे की ओर मुड़ जाती है।

(3) जब अधिकांश जीव अपना जीवीय विभव पूर्ण करने से काफी पूर्व ही मृत्युग्रस्त हो जाते हैं तो वक्र अत्यधिक अवतल होती है।

वयस वितरण (Age distribution)—यह विभिन्न वयन वर्गों में समष्टि के जीवों की संख्या है। आपेक्षिक रूप से भिन्न युवा एवम् वृद्ध जीवों की संख्या वाली समष्टियाँ भिन्न मृत्यु-दर, जन्म-दर व अन्य भिन्न पूर्वेक्षण प्रदर्शित करती हैं। विभिन्न आयु वाले जीवों की मृत्यु-दर में भिन्नता होती है तथा जन्म-दर का प्रायः जनन में समर्थ जीवों की संख्या से सहसम्बन्ध होता है।

अतः पारिस्थितिक रूप से तीन वयन वर्ग (age-groups) होते हैं :—

1. पूर्वप्रजननीय (Prereproductive)
2. प्रजननीय (Reproductive)
3. पश्च प्रजननीय (Postreproductive)

उपर्युक्त तीनों पारिस्थितिक वयन वर्गों का अनुपात समष्टि की प्रवृत्ति का सूचकांक प्रस्तुत करता है :—

(*i*) युवा जीवों का अधिक अनुपात तेजी से वृद्धि करती हुई समष्टि को प्रदर्शित करता है।

(*ii*) युवा जीवों का अपेक्षाकृत कम अनुपात कम होती हुई समष्टि को अंकित करता है।

(*iii*) स्थायी समष्टि में उपर्युक्त तीनों वयन वर्गों के जीव समान अनुपात में होते हैं।

जीवीय विभव (Biotic potential)—किसी समष्टि में **वयस वितरण के स्थायी होने तथा सभी पर्यावरण सम्बन्धी परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर समष्टि के वृद्धि करने की संभाव्य क्षमता** (potential ability) **या अन्तर्निहित शक्ति** (inherent power) **को जीवीय विभव** (biotic potential) **या प्रजननीय विभव** (repoductive potential) **कहते हैं।** किसी समष्टि का जीवीय विभव उसके वास्तविक निष्पादन से कहीं अधिक होता है। जीवीय विभव एवम् समष्टि में वृद्धि की वास्तविक दर में अन्तर-पर्यावरण प्रतिरोध (environmental resistance) को प्रदर्शित करता है और प्रजननीय विभव एवम् समष्टि में वृद्धि को रोकता है। प्रकृति में जीवीय विभव एवम् पर्यावरण के बीच स्थित सन्तुलन समष्टि में वृद्धि को निर्धारित करता है।

किसी एक समष्टि विशेष का जीवीय विभव चाहे इसकी संख्या में वृद्धि हो रही हो या कमी हो रही हो अथवा फिर यह स्थिर हो, सदैव ही स्थिर रहता है। तेजी से बढ़ रही जनसंख्या में जीवों की वृद्धि उनके विभव के अन्तर के फल-स्वरूप नहीं होती अपितु यह वृद्धि पर्यावरण प्रतिरोध के निम्न होने के कारण होने वाली उत्तरजीविता में वृद्धि के कारण होती है।

वृद्धि रूप (Growth form)—जब किसी जाति के कुछ जीव एक नये क्षेत्र में पदार्पण करते हैं तो प्रारम्भ में इनकी समष्टि में वृद्धि की गति धीमी होती है (the positive acceleration phase), उसके बाद वृद्धि बहुत तेजी से होती है

जिससे समष्टि में घातक रूप से वृद्धि होती है (the logarithmic phase), और जैसे-जैसे पर्यावरण प्रतिरोध मे वृद्धि होती जाती है समष्टि मे वृद्धि की गति धीमी होती जाती है (negative acceleration) और अन्त मे साम्यावस्था स्थापित हो जाती है। समष्टि मे वृद्धि को **समष्टि वृद्धि वक्र** (population growth curve) द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है जिसमे जीवों की सख्या को अवधि या समय के साथ आलेखित किया जाता है। यह विशिष्ट रूप से 'S' आकृति की होती है। वृद्धि करने वाली सभी समष्टियों मे समष्टि वृद्धि वक्र एक-सी ही होती है।
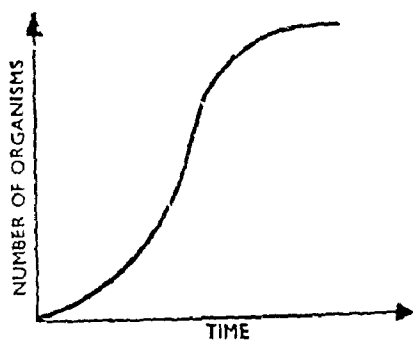
चित्र २·२. समष्टि का वृद्धि वक्र (Population growth curve)

वृद्धि का वृद्धिघातवाद उन जन्तुओं पर लागू होता है जिनका जीवन-चक्र सरल प्रकार का होता है, जैसे प्रोटोजोअन्स। इसके अतिरिक्त यह मनुष्य पर भी लागू होता है।

समष्टि की अतिवृद्धि जीवो को कई प्रकार से प्रभावित करती है, जैसे English sparrow, आदि कुछ पक्षी जो खुले क्षेत्रों मे अण्डे देते है छोटे अथवा सकुचित क्षेत्रो मे अण्डे नही दे पाते। समष्टि की अतिवृद्धि, जीवो की वृद्धि, जीवो के लिए भोजन की उपलब्धि, जनन-दर, मृत्यु-दर, इत्यादि सभी को प्रभावित करती है। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक जीव को एक निश्चित स्थान की आवश्यकता होती है या एक निश्चित क्षेत्र एक जाति के जीवो की एक निश्चित सख्या को ही अवलम्बन प्रदान कर सकता है। इसे उस क्षेत्र की **धारण शक्ति** (carrying capacity) कहते है। अत. **धारण शक्ति** (carrying capacity) एक जाति के जीवो की वह सख्या है जो कुछ विशेष परिस्थितियों मे एक इकोसिस्टम में सफलतापूर्वक रहने में समर्थ होती है।

समष्टि उच्चावचन (Population fluctuations)—एक निश्चित क्षेत्र में किसी समष्टि के स्थापित होने के वाद साम्यावस्था मे पहुँचने पर इसकी संख्या समय-समय पर साम्यावस्था स्तर से कम अथा अधिक होती रहती है। समष्टि मे होने वाला यह उच्चावचन पारिस्थितिक पर्यावरण मे होने वाले परिवर्तनो या अन्तराजातीय और अन्तर्जातीय प्रतिक्रियाओ के फलस्वरूप होता है। समष्टि मे होने वाले कुछ उच्चावचन तो पूर्णतया अनियमित होते है किन्तु कुछ उच्चावचन अत्यन्त नियमित होते है।

कनाडा के snowshoe hare तथा lynx की समष्टि मे नियमित रूप से प्रत्येक 9–10 वर्ष वाद होने वाला उच्चावचन सर्वोचित उदाहरण है। Snowshoe hare की समष्टि की चरम सीमा *lynx* की समष्टि की चरम सीमा से एक वर्ष पूर्व होती है। क्योंकि lynx, snowshoe hare का शिकार करता है, अत: यह स्पष्ट है कि *lynx* cycle, snowshoe hare cycle से सम्बन्धित होता है। इसी प्रकार के उच्चावचन पादपो मे भी देखे गये है।

ऐसा प्रतीत होता है कि साम्यावस्था स्तर से उच्च व निम्न दिशा मे होने

वाला उच्चावचन अधिकांश समष्टियों का एक विशिष्ट गुण है तथा जलवायु-सम्बन्धी नियन्त्रण इसका अति उपयुक्त स्पष्टीकरण है। समष्टि किसी रोग या महामारी व परभक्षण की अनुपस्थिति में भी घटती-बढ़ती रहती है। इसको उस भू-क्षेत्र की धारण-शक्ति से सहसम्बन्धित किया जा सकता है। जब जीवों की संख्या उस भू-क्षेत्र की धारण-शक्ति से अधिक हो जाती है तो अधिकांश जीव मृत्युग्रस्त हो जाते हैं। ऐसा शरीर-क्रियात्मक प्रतिबल द्वारा एड्रिनल हाइपोफिसिस प्रणाली में होने वाले परिवर्तन से उत्पन्न आक्षोभ के फलस्वरूप हो सकता है। ऐसा समझा जाता है कि प्रतिबलों में वृद्धि समष्टि के अत्यधिक वृद्धि तथा उसमें भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा के कारणवश होती है।

समष्टि परिक्षेपण एवम् क्षेत्रीयता (Population dispersion and territoriality)—किसी समष्टि के जीवों की वितरण-विधि को **परिक्षेपण** (dispersion) कहते हैं। किसी भी समष्टि के जीव अपने वितरण-क्षेत्र में लगभग समान रूप से वितरित हो सकते हैं या छोटे-छोटे समूहों में अथवा फिर असमान रूप से वितरित होते हैं। प्रकृति में जीवों का अनियमित वितरण यदा-कदा ही पाया जाता है। इसके विपरीत इनमें समूह बनाकर रहने की प्रवृत्ति बहुलता से पायी जाती है। जीवों में सामूहिक रूप से रहने की प्रवृत्ति प्रायः निम्न कारकों पर निर्भर करती है :—

1. **सामाजिक आकर्षण** (Social attraction)
2. **प्रजननीय प्रवृत्तियों की पूर्ति** (Reproductive urge)
3. **मौसम-सम्बन्धी परिवर्तनों के प्रति अनुक्रिया** (Response to weather changes), तथा
4. **स्थानीय वास-स्थानों में भिन्नताएँ** (Differences in local habitats)

समष्टि के लिए जीवों की सामूहिक प्रवृत्ति लाभप्रद है क्योंकि इसके कारण प्रतिकूल समय में समूह की जीवित रहने की क्षमता बढ़ जाती है तथा यह जनन-प्रवृत्तियों की पूर्ति के लिए अधिक अवसर प्रदान करती है। अधिक व्यावहारिक जटिलताओं वाले प्राणी **आवास क्षेत्र** (home range) तथा क्षेत्रीयता प्रदर्शित करते हैं। इनकी गतिविधियाँ केवल अपने आवास-क्षेत्र तक ही सीमित रहती हैं और वे अपने आवास-क्षेत्र में किसी अन्य प्राणी को आने नहीं देते।

प्राणियों में क्षेत्रीयता का पाया जाना अति जीवनोपयोगी महत्त्व रखता है क्योंकि इस स्वभाव के कारण एक ही समष्टि के समस्त जीव एक ही क्षेत्र में साथ-साथ रहते हैं जिससे उनको उचित मात्रा में भोजन, नीड बनाने के लिए सब आवश्यक सामान, अन्य जीव-समूहों से शिशुओं की रक्षा तथा परिवार की सुरक्षा का अवसर मिलता है।

प्रश्न 5. समष्टि एवम् समुदाय से आप क्या समझते हैं ? आप किसी समष्टि की सघनता को किस प्रकार ज्ञात करेंगे ?

What do you understand by the terms 'population' and 'community' ? How would you determine the density of a given population ? (*Rajasthan 1972*)

समष्टि (Population)

कृपया प्रश्न 4 देखिये।

समुदाय (Community)

कृपया प्रश्न 8 देखिये ।

प्रश्न 6. परिक्षेपण एवम् वृद्धि-प्रतिरूप के सन्दर्भ में समष्टि की कौन-कौन-सी संरचनात्मक विशिष्टताएँ हैं ? समष्टि वृद्धि के कौन-कौन-से महत्त्वपूर्ण भौतिक एवम् जीवीय सीमाकारी कारक हैं ।

What are structural characteristics of a population with reference to dispersion and growth pattern ? What are the important physical and biological limiting factors of population growth.

(*Rajasthan 1973*)

परिक्षेपण (Distribution)

किसी एक समष्टि में जीवों के वितरण की विधि को **परिक्षेपण** कहते हैं। इसके कारण समष्टि की आन्तरिक रचना एवम् गुणों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। किसी समष्टि में जीवों के वितरण के तीन प्रतिरूप देखने को मिलते हैं ।

1. समान वितरण (Uniform distribution)—इस प्रकार के प्रतिरूप में जीव लगभग समान रूप से वितरित होते है। यह प्रतिरूप उन समष्टियों में मिलता है जहाँ जीवों के बीच तीव्र प्रतिस्पर्धा होती है अथवा धनात्मक विरोध (positive antagonism) होता है ।
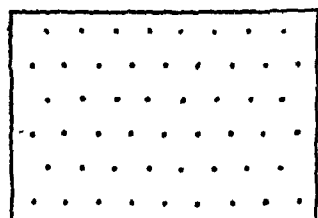
A UNIFORM DISTRIBUTION

2. अनियमित वितरण (Random distribution)—अनियमित वितरण में किसी समष्टि के जीव ना तो पुंजित (aggregate) होकर झुरमुटों में रहते है और न ही ये समान रूप से वितरित होते हैं। अनियमित वितरण यदा कदा ही देखने को मिलता है। यह केवल समान वातावरण में मिलता है और जीवों में झुरमुटों में रहने की प्रवृत्ति नही होती ।

B RANDOM DISTRIBUTION

3. झुरमुट या संपुंजन वितरण (Clumped distribution)—यह जीवों के वितरण का सर्वसामान्य प्रतिरूप है। जीव सपुंजन की विभिन्न अवस्थाएँ प्रदर्शित करते हैं किन्तु एक समष्टि में ये एक विशेष आकार के पुंज बनाकर ही रहते है। जन्तुओं मे ये युगल द्वारा तथा पेड़-पौधो में वनस्पतिक क्लोन या एकपुंजक (clone) द्वारा निरूपित होते हैं। इनके पुंज या समूह एक अथवा विभिन्न आकार के हो सकते है। ये एकसमान, अनियमित या पुंजित (झुरमुट) रूप से वितरित रहते है। अतः सपुंजन वितरण निम्न तीन प्रकार का हो सकता है :—
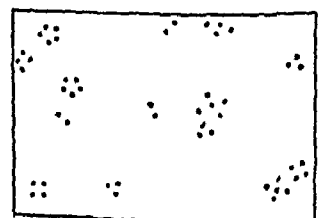
C CLUMPED (Random clumped)

चित्र २·३. समष्टियों में वितरण के विभिन्न प्रतिरूप (Different distribution patterns in populations)

(*i*) **अनियमित संपुंजन** (Random clumped)

(*ii*) **एकसमान संपुंजन** (Uniformly clumped)

(*iii*) **पुंजित संपुंजन** (Aggregated clumped)

उपर्युक्त तीनों प्रकार के संपुंजन वितरण प्रकृति में पाये जाते हैं। झुरमुट या संपुंजन जीवों द्वारा पुंजों में रहने के कारण होता है और यह निम्न बातों पर निर्भर करता है—(*i*) स्थानीय आवास दशा में अन्तर, (*ii*) जलवायु में दैनिक व मौसमी परिवर्तन, (*iii*) जनन-क्रियाएँ, (*iv*) सामाजिक आकर्षण।

पौधों में संपुंजन प्रथम तीन कारकों के फलस्वरूप होता है जबकि जन्तुओं में यह सामाजिक आकर्षण सहित अन्य तीनों कारकों के फलस्वरूप होता है। अतः समष्टि में संपुंजन की मात्रा वासस्थान की प्रकृति, मौसम तथा जनन क्रिया के रूप एवम् सामाजिकता की मात्रा पर निर्भर करती है।

संपुंजन पेड़-पौधों व जन्तुओं दोनों में मिलता है। किन्तु प्राणियों के कुछ विशेष वर्गों में इसने समाजिक संपुंजन का रूप ग्रहण कर लिया है। मधुमक्खी, वास्प, दीमक समाजिक संपुंजन के सर्वोचित उदाहरण हैं।

संपुंजन (clumping or aggregation) के फलस्वरूप समष्टि के जीवों के बीच भोजन व स्थान के लिए स्पर्धा उत्पन्न हो जाती है किन्तु इसमें जीवों को निम्नलिखित लाभ भी हैं :—

(*i*) इसके फलस्वरूप समष्टि के जीवों में प्रतिकूल परिस्थितियों में या अन्य जीवों के आक्रमण के फलस्वरूप भी मृत्यु-दर कम रहती है, क्योंकि जीव-संहति की तुलना में कम पृष्ठीय क्षेत्रफल वातावरण के लिए अनावरित होता है, तथा (*ii*) समष्टि के संपुंजित जीव सूक्ष्म वातावरण (micro-climate) को अपने अनुकूल बना लेते हैं।

संपुंजन के फलस्वरूप जीवों में अतिजीविता मान (*survival value*) को अनेक उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है :—

(*i*) झुण्ड में स्थित पौधे तीव्र वायु के प्रकोप या अपरदन का व्यक्तिगत पौधों की अपेक्षा भली प्रकार सामना कर सकते है।

(*ii*) **ऐली** (Allee) के अनुसार अकेली मछली की अपेक्षा मछलियों के पुंज पानी में विष की एक निश्चित मात्रा को अधिक अच्छी प्रकार सहन करने में समर्थ होते हैं। इसका कारण यह है कि मछलियों द्वारा स्रावित म्यूकस पानी के सूक्ष्म वातावरण को परिवर्तित करके विष के प्रभाव को कम कर देता है। ऐसे पानी में अब अकेली मछली भी जीवित रहने में समर्थ होती है।

(*iii*) मण्डल (colony) के छोटा होने पर पक्षी जनन करने में समर्थ नहीं होते।

किन्तु संपुंजन केवल लाभकारी ही नहीं है क्योंकि इसके कारण अतिसकुंलनता (overcrowding) भी होती है। स्पष्ट है कि अतिसकुलनता तथा अल्पसंकुलनता (over and undercrowding) दोनों ही सीमाकारी कारक है। पुंजन की मात्रा एवम् समष्टि घनत्व का निर्धारण पुंजन द्वारा होता है जो विभिन्न समष्टियों में अलग-अलग होता है।

वृद्धि-प्रतिरूप (Growth Pattern)

समष्टि का आकार एवम् संयोजन सदैव परिवर्तित होता रहता है। आकार एवम् संयोजन दोनों वृद्धि की दर पर निर्भर करते हैं। समष्टियाँ वृद्धि के विशिष्ट प्रतिरूप प्रदर्शित करती हैं जिन्हें **वृद्धि प्रतिरूप** (growth patterns) कहते हैं। मूलरूप से वृद्धि प्रतिरूप दो प्रकार के होते हैं—(*i*) **J-आकार का वृद्धि प्रतिरूप** तथा

(*ii*) S-आकार का वृद्धि प्रतिरूप ।

1. J-आकार का वृद्धि प्रतिरूप (J-shaped growth pattern)—समष्टि के इस वृद्धि प्रतिरूप की निम्न विशेषताएँ होती हैं ।

चक्र-वृद्धि व्याज के समान शुरू में समष्टि के घनत्व में तेजी से वृद्धि होती है किन्तु वातावरणीय प्रतिरोध अथवा अन्य सीमाकारी कारकों के प्रभाव में आने पर यह सहसा रुक जाती है । ये कारक भोजन या स्थान अथवा फिर मौसमी कारक हो सकते हैं या फिर यह जनन काल की समाप्ति के कारण होता है । इस प्रकार के वृद्धि प्रतिरूप में समष्टि का घनत्व उच्चतम सीमा पर पहुँचने पर कुछ समय तक इस स्तर पर स्थिर रहता है और फिर कम होकर **विश्रान्ति दोलन** (relaxation oscillation) उत्पन्न करता है । इसको निम्नलिखित समीकरण द्वारा प्रदर्शित कर सकते है :—

$$\frac{dN}{dt}=rN$$

जिसमें N समष्टि का आकार है और r समष्टि की वृद्धि का गुणांक है ।

चित्र २४. गुलाव के पुष्पों पर रहने वाले वयस्क थ्रिप्स में J-आकार का वृद्धि प्रतिरूप (J-shaped curve as seen in a population of adult thrips living on roses)

इस प्रकार का वृद्धि प्रतिरूप एल्गल ब्लूम्स (algal blooms), कुछ कीटों, वार्षिक पौधों तथा टुण्ड्रा के लेमिंग (lemmings) में देखने को मिलता है। अध्ययनों द्वारा स्पष्ट है कि इस प्रकार का वृद्धि प्रतिरूप केवल मौसमी समष्टियों और अत्यधिक अनुकूल परिस्थितियों मे देखा जाता है ।

2. S-आकार का या सिग्मॉइड वृद्धि प्रतिरूप (S-shaped or sigmoid growth pattern)—इस प्रकार के प्रतिरूप में शुरू में तो समष्टि धीरे-धीरे वृद्धि करती है, उसके बाद तेजी से वृद्धि करती है और उसके बाद वातावरणीय प्रतिरोध
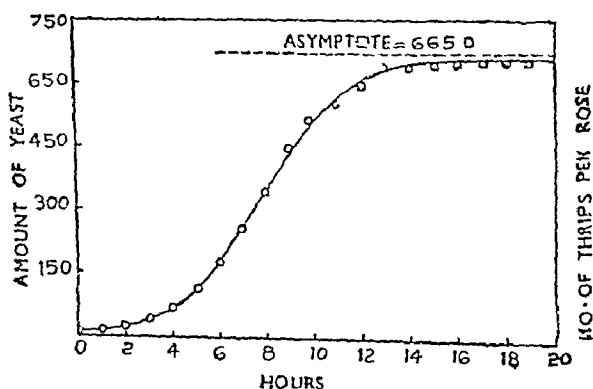
चित्र २·५. यीस्ट सवर्धन द्वारा S-वृद्धि-प्रतिरूप का प्रदर्शन (S-shaped growth pattern exhibited by growth of yeast in culture)

के बढ़ने पर एक सन्तुलन स्तर स्थापित हो जाता है और अब यह क्रमिक रूप से मन्द गति से वृद्धि करने लगती है। इस प्रकार का वृद्धि-प्रतिरूप सामान्य रूप से देखने को मिलता है। काल और समष्टि के घनत्व का ग्राफ बनाने पर समष्टि की वृद्धि S-प्रतिरूप बनाती है। इसे **सिग्मॉइड वक्र** (sigmoid curve) भी कहते हैं। **निकल्सन** (Nicholson 1954) ने इस प्रकार के वृद्धि प्रतिरूप को **घनत्व प्रतिबन्धित** (density conditioned) वृद्धि प्रतिरूप के नाम से सम्बोधित किया है। इसे **वृद्धि-घात प्रतिरूप** (logistic growth pattern) भी कहते हैं। इसे निम्नलिखित समीकरण द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं :—

$$\frac{dN}{dt}=rN\frac{(K-N)}{K}$$

जिसमें $\frac{dN}{dt}$=समष्टि-वृद्धि की दर

r=समष्टि-वृद्धि की नैज (intrinsic) दर

N=सम्भावित आकार (संख्या)

K=समष्टि का उच्चतम सम्भावित आकार

समष्टि वृद्धि का S-प्रतिरूप तीन घटकों का व्युत्पन्न है :—

(*i*) एक अचर दर (r)

(*ii*) समष्टि के आकार का माप (N), तथा

(*iii*) उपलब्ध सीमाकारी कारक के भाग का माप

जीवों की संख्या में तेजी से वृद्धि के फलस्वरूप समष्टि अतिसंकुलित हो जाती है और इस प्रकार यह वातावरणीय प्रतिरोध में वृद्धि करती है। इसके फलस्वरूप जन्म-दर में कमी हो जाती है।

समष्टि वृद्धि के सीमाकारी कारक
(Limiting Factors of Population Growth)

अगर कुछ जीवों को किसी ऐसे नये वास-स्थान में रखा जाये जो विकास एवम् परिवर्धन के अनुकूल हो तो प्रारम्भ में इनकी संख्या धीरे-धीरे और बाद में तेजी से वृद्धि करती है। इसके बाद वृद्धि की दर रुद्ध हो जाती है। इकोसिस्टम के सन्तुलित होने पर समष्टि के जीवों की संख्या में एक निश्चित सीमा के अन्दर उच्चावचन (fluctuation) होता रहता है जिसे **समष्टि का औसत आकार** (average size of population) कहते हैं। इस प्रकार का वृद्धि-प्रतिरूप S-वक्र (curve) बनाता है। प्रश्न उठता है कि वह कौन-सा कारक है जो बढ़ी हुई वृद्धि दर को कम करता है। वास्तव में जीवीय व अजीवीय दोनों ही कारक वृद्धि को प्रभावित करते हैं। ये कारक दो प्रकार के होते हैं—**सघनता निर्भर कारक** (density dependent factors) तथा **सघनता मुक्त कारक** (density independent factors)।

1. अजीवीय कारक (Abiotic factors)—इनके अन्तर्गत जलवायु, ताप, आर्द्रता तथा दैनिक व मौसमी आदि भौतिक वातावरणीय परिवर्तन आते हैं। उदाहरण के लिए शीत ऋतु में प्रथम पाले से कीटों की समष्टियों में अत्यधिक कमी हो जाती है। इसी प्रकार इकोसिस्टम में गन्धक, फॉस्फोरस व प्रकाश की मात्रा सीमाकारी कारक हैं। इसी प्रकार समष्टि की वृद्धि में पोषक तत्त्व भी एक मुख्य

सीमाकारी कारक का कार्य करते है । जलवायु, ताप, आर्द्रता, दैनिक एवम् मौसमी परिवर्तन **सघनता मुक्त कारक** (density independent factors) हैं जबकि पोषण तत्त्व, माध्यम के लवण, वायुमण्डल आदि **सघनता निर्भर कारक** (density dependent factors) है ।

2. जीवीय कारक (Biotic factors)—अजीवी कारकों के अतिरिक्त समष्टि प्रतिरूपों के नियमन पर जीवीय कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है । इसमें अन्तराजातीय (interspecific) तथा अन्तरजातीय (intraspecific) पारस्परिक क्रियाएँ सम्मिलित हैं । परभक्षण, परजीविता तथा स्पर्धा आदि समष्टियों के नियमन में महत्त्वपूर्ण भाग लेते है ।

(1) आन्तरजातीय पारस्परिक क्रिया (Intraspecific interaction)—किसी समष्टि के चरम अवस्था में पहुँचने पर इसकी वृद्धि रुक जाती है और अन्त में यह धीरे-धीरे कम होने लगती है । इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(*i*) जीवों की संख्या में वृद्धि के कारण इनमें सीमित भोजन व स्थान के लिए आन्तरजातीय स्पर्धा शुरू हो जाती है ।

(*ii*) उपलब्ध भोजन की मात्रा में क्रमिक रूप से ह्रास होता चला जाता है ।

(*iii*) उपापचयक अवशिष्ट पदार्थों के एकत्रित होने के कारण वातावरण के सगठन में परिवर्तन हो जाता है । इसके फलस्वरूप वातावरण कुछ विशिष्ट जीवों के रहने के लिए अनुकूल नहीं रहता ।

उपर्युक्त कारकों के फलस्वरूप समष्टि की वृद्धि दर में समय-समय पर उच्चावचन होता रहता है ।

(2) अन्तरजातीय पारस्परिक क्रिया (Interspecific interaction)—विभिन्न जातियों के जीवों की उपस्थिति वातावरण का एक अनिवार्य भाग है । दूसरी जातियों के जीवों की उपस्थिति भोजन, आवास व अन्य कई प्रकार से महत्त्वपूर्ण हो सकती है । जन्तुओं का जन्तुओं से और पौधों का पौधों से पारस्परिक सम्बन्ध होता है । इसी प्रकार अनेक जन्तु पौधों पर और कुछ पादप जन्तुओं पर निर्भर रहते हैं । ये सम्बन्ध दोनों को ही लाभप्रद या हानिकारक, एक को लाभप्रद तथा दूसरे को हानिकारक भी हो सकते है या फिर एक जीव पर तो इसका प्रभाव पड़ता है किन्तु दूसरे पर इस प्रकार के सम्बन्ध का कोई बुरा अथवा अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता ।

सहभोजिता, सहजीविता, परजीविता, परभक्षण, आदि अन्तरजातीय पारस्परिक सम्बन्धों के उदाहरण है ।

कृपया प्रश्न 9 देखिये ।

प्रश्न 7. समष्टि साम्यावस्था से क्या अभिप्राय है ? जीवीय समुदाय में यह किस प्रकार बनी रहती है ?

What is population equilibrium ? How it is maintained by a biotic community ?

(*Agra 1973*)

समष्टि साम्यावस्था
(Population Equilibrium)

समष्टि के वृद्धि प्रतिरूप से ज्ञात होता है कि किसी नये क्षेत्र में पहुँचने पर प्रत्येक समष्टि तेजी से अपने आकार मे वृद्धि करती है और वृद्धि की चरमसीमा पर पहुँच जाती है । इसके पश्चात् उसके आकार में काफी समय तक कोई वृद्धि नहीं होती, वरन् वह अपनी संख्या अपने आप उसी स्तर पर बनाये रखती है या फिर बनाये

रखने का यथासम्भव प्रयत्न करती है। इस प्रकार के वृद्धि प्रतिरूप को सिग्मॉयड (sigmoid) या **S-आकार का वृद्धि प्रतिरूप** (S-shaped growth pattern) कहते हैं। अगर कोई समष्टि अपनी भोजन सम्बन्धी व अन्य आवश्यकताओं एवम् अवशिष्ट हानिकारक पदार्थों की निष्कासन दर में होने वाली वृद्धि तथा स्वयं की वृद्धि दर में ताल-मेल रखते हुए वृद्धि की चरम सीमा पर पहुँचे, तो वह समष्टि अपनी वृद्धि दर को अपरिवर्तित रख कर काफी समय तक अपने को साम्यवस्था में बनाये रखती है। साम्यावस्था स्तर को निम्न प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं :—

$$A = M$$

जिसमें A **संवर्धन** (augmentation) या **विभव जन्म दर** (potential birth rate) को तथा M **मृत्यु दर** को प्रदर्शित करता है। इन परिस्थितियों में जन्म दर कम भी हो सकती है और अधिक भी किन्तु जब तक जन्म दर व मृत्यु दर समान होती हैं समष्टि में साम्यावस्था बनी रहती है।

समष्टि साम्यावस्था के कारण
(Factors of Population Equilibrium)

समष्टि की वृद्धि अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होती है जिसके फलस्वरूप इसके आकार में स्थिरता बनी रहती है। ये कारक दो प्रकार के होते हैं :—

1. घनत्व के स्थायीकारी कारक—ये जैविक कारक हैं।

2. घनत्व के सीमाकारी कारक—ये अजैव कारक हैं।

घनत्व के स्थायीकारी या जैविक कारक (Density stabilizing or biotic factors)—ये जैविक कारक हैं जो एक ही जाति के विभिन्न जीवों या विभिन्न जातियों की समष्टियों में परस्पर क्रिया का परिणाम हैं। ये कारक **स्पर्धा, जनन क्षमता, परभक्षण, उत्प्रवासन** तथा **रोग** आदि हैं।

स्पर्धा (Competition)—एक ही जाति या विभिन्न जातियों की समष्टियों के बीच स्थान, आश्रय एवम् भोजन के लिए स्पर्धा होती है।

स्थान (Space)—प्रत्येक जीव को कम-से-कम इतने स्थान की तो अवश्य ही आवश्यकता होती है जो उसकी भोजन सम्बन्धी व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। विभिन्न जीवों में स्थान की आवश्यकता अलग-अलग होती है तथा इसका जीव के आकार से थोड़ा-बहुत सम्बन्ध होता है।

एक निश्चित आवास क्षेत्र एवम् प्रादेशिकता को प्रदर्शित करने वाले जन्तुओं में स्थान के लिए स्पर्धा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी क्षेत्र में पक्षियों की संख्या में वृद्धि होने पर एक निश्चित सीमा तक तो साथ रहने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उससे अधिक वृद्धि होने पर इनमें स्थान के लिए स्पर्धा शुरू हो जाती है। इस प्रकार समष्टि का घनत्व सीमित रहता है।

भोजन (Food)—भोजन भी एक महत्त्वपूर्ण कारक है जो समष्टि के आकार को सीमित रखता है। किसी क्षेत्र में उपलब्ध खाद्य-पदार्थों की मात्रा स्थिर रहती है जो जीवों की केवल एक निश्चित सख्या के लिए पर्याप्त होती है। उनकी संख्या में उस सीमा से अधिक वृद्धि होने पर खाद्य-पदार्थों की मात्रा में कमी हो जाती है। अतः समष्टि के आकार में वृद्धि के फलस्वरूप जीवों में भोजन के लिए स्पर्धा शुरू हो जाती है। इस प्रकार भोजन भी समष्टि की वृद्धि को एक निश्चित सीमा तक सीमित रखने में सीमाकारी कारक का कार्य करता है।

भोजन व आवास के लिए समष्टि के जीवों या विभिन्न जातियों की समष्टियों

के बीच स्पर्धा के फलस्वरूप उनकी मृत्यु दर में वृद्धि हो जाती है जिससे उस समष्टि की साम्यावस्था बनी रहती है। स्पर्धा के फलस्वरूप जीवों की जन्मदर कम हो जाती है, परभक्षण में वृद्धि होती है तथा जीव अन्य स्थानों को प्रवसन कर जाते हैं।

2. जनन-क्षमता (Reproductivity)—समष्टि के घनत्व का उसकी जनन-क्षमता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह देखा गया है कि पर्याप्त मात्रा में खाद्य-पदार्थों के उपलब्ध होने पर भी जन्म एवम् वृद्धि दर का समष्टि के घनत्व में व्युत्क्रमानुपी सम्बन्ध होता है। समष्टि के आकार में धारण क्षमता से अधिक वृद्धि होने पर इसके शावों (broods) की सख्या तथा प्रत्येक शाव से उत्पन्न अण्डों की संख्या में कमी हो जाती है जिसमे समष्टि की जनन-क्षमता कम हो जाती है। यह एक ही समष्टि के जीवों मे अतिसंकुलता के कारण उत्पन्न विक्षोभ एवम् संघर्ष तथा कम मात्रा मे भोजन उपलब्ध होने के फलस्वरूप होता है। अध्ययनों द्वारा ज्ञात हुआ है कि अनेक समष्टियों के साम्यावस्था पर पहुँचने पर उनकी जन्म दर में कमी आ जाती है। *पैरामीसियम* के संवर्धन में, संवर्धन की मात्रा को कम करने पर पैरा-मीसियम मे द्विविभाजन की दर भी कम हो जाती है। *ड्रोसोफिला* मक्खियों को एक छोटी शीशी में अतिसंकुलन रूप से रखने पर उनकी अण्डे देने की क्षमता कम हो जाती है।

अतः अधिक घनत्व न केवल समष्टि की जनन-क्षमता को कम करता है बल्कि उसके जीवों में जीवित रहने एवम् मैथुन के लिए साथी की खोज के लिए स्पर्धा होती है। इसके फलस्वरूप जीवों में संघर्ष होता है जिससे जीवों की मृत्यु हो जाती है।

स्वजातिभक्षण एवम् परित्यक्ता (desertion) के द्वारा भी समष्टि की वृद्धि सीमित रहती है। समष्टि की वृद्धि का शिशु जीवों के जीवित रहने की क्षमता पर भी प्रभाव पड़ता है।

ड्रोसोफिला के लार्वी को विभिन्न घनत्वों में लेकर भोजन व स्थान की समान दशाओं में परिवर्धन करने पर यह देखा गया है कि लार्वी से विकसित होने वाली वयस्क मक्खियों की सख्या लार्वी के घनत्व के व्युत्क्रमानुपाती होती है।

3. परभक्षण (Predation)—शिकार एवम् परभक्षी जीवों की समष्टियों मे विविधता का एक विचित्र सम्बन्ध देखा गया है। नियन्त्रित प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि परभक्षी एवम् परजीवी अपने शिकार या पोषक की संख्या को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों में भी इसी प्रकार के सम्बन्धों की परिकल्पना की जा सकती है। Mealybug की समष्टि इसका अति उत्तम उदा-हरण प्रस्तुत करती है। लम्बी पुच्छ वाली mealybug की समष्टि मार्च से मई तक साइट्रस कुल के पौधों पर तेजी से वृद्धि करती है किन्तु इनका भक्षण करने वाले कुछ कीटों की वृद्धि के कारण जून या जुलाई के आते-आते इनकी संख्या बहुत कम हो जाती है।

परजीव्याभ (Parasitoids) का परभक्षियो की समष्टि पर वरणात्मक प्रभाव होता है। ये अपनी पोषक समष्टि को नष्ट करने का यत्न करते हैं। इसी प्रकार परजीव्याभ भी परात्परजीवाभियों (hyperparasitoids) द्वारा संक्रमित हो सकते है। ये सभी सम्बन्ध समष्टि के आकार एवं घनत्व को सीमित रखकर समष्टि की साम्यावस्था को बनाये रखते हैं।

4. प्रवसन (Emigration)—प्रवसन भी किसी क्षेत्र मे समष्टि के घनत्व

को सीमित रखने का एक साधन है। बहुधा समष्टि के जीवों द्वारा अतिसंकुलित क्षेत्र से कम संकुलित क्षेत्रों की ओर भारी संख्या में प्रवसन से भी उस स्थान पर समष्टि की साम्यावस्था बनी रहती है। प्रकृति में टिड्डियों, लेमिंग, चूहों, ग्राऊस या तित्तिरि (grouse), हिम शशक आदि में एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर प्रवसन को सामान्य रूप से देखा जा सकता है।

5. रोग (Diseases)—संक्रामक रोगों को भी समष्टि का सीमाकारी कारक माना जा सकता है। किन्तु इनके द्वारा मृत्यु दर में तभी वृद्धि होती है जब ये महामारी का रूप ले लेते हैं जिसके फलस्वरूप कभी-कभी तो समष्टि का आकार साम्यावस्था से भी निम्न स्तर पर आ जाता है। अतिसंकुलन के फलस्वरूप जीवों की सहन शक्ति कम हो जाती है जिससे ये रोगों के प्रति अधिक सुग्राही हो जाते हैं। जन्तुमारी (epizootics) भी केवल समष्टि का अधिक घनत्व होने पर ही फैलते हैं। जन्तुमारी (epizootics) स्तनधारियों में चूहे, लेमिंग, बीवर, गिलहरी, शशक, मोल्स व मृगों के अतिरिक्त पक्षियों, रेप्टाइल्स व मछलियों में भी देखे गये हैं।

6. शरीरक्रियात्मक प्रतिबल (Physiological stress)—चरम प्रकरणों में अतिसकुंलन के शरीरक्रियात्मक प्रतिबल से भी समष्टि की मृत्यु दर में अत्यधिक वृद्धि होती है। प्रयोगात्मक समष्टियों में एड्रिनल के भार में वृद्धि तथा शरीर, वृषण, थाइमस, शिश्नमुण्ड ग्रन्थियों तथा शुक्राशयों के भार में कमी से शरीरक्रियात्मक प्रतिबल को देखा जा सकता है। हिम-शशकों में प्रघात रोग वास्तव में सिन्ड्रोम प्रतिबल की अभिव्यक्ति है जो यकृत के विघटन के कारण होता है जिसके फलस्वरूप आघात स्थिति के समय आवश्यक संचित ग्लाइकोजन की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध नहीं होती। इन परिस्थितियों में किसी भी उत्तेजना या आयास के फलस्वरूप सामान्य हिम-शशक में आक्षेप की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है।

अध्याय 3

समुदाय
(Community)

प्रश्न 8. समुदाय से आप क्या समझते हैं ? इसकी रचना, स्तरण एवम् अवर्तिता का वर्णन करिये।

What do you understand by community ? Discuss its structure, stratification and periodicity.

जीवीय समुदाय (Biotic Community)

किसी वासस्थान या भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न जातियों की समष्टियों के बीच स्थानगत सहसम्बन्ध को **जीवीय समुदाय** (*biotic community*) कहते हैं। यह उस विशिष्ट प्रदेश में पेड़-पौधों व जन्तुओं के विभिन्न वर्गों का एक विषमजातीय समूह है। अतः जीवीय समुदाय विभिन्न जातियों के घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित सदस्यों की छोटी-छोटी इकाइयों का बना होता है। इस प्रकार की प्रत्येक इकाई को **समष्टि** (population) कहते है जो किसी विशेष जीवीय प्रदेश मे रहने वाले एक ही जाति के जीवों को निरूपित करती है।

प्रत्येक जीवीय समुदाय **अनुकूली विकिरण** (adaptive radiation) को प्रदर्शित करता है क्योंकि उस वातावरण के अजीवीय कारको के अभिन्न प्रभाव के कारण विभिन्न समष्टियों के जीवों मे कुछ सामान्य लक्षण विकसित हो जाते हैं। ये अजीवीय कारक है—ताप, प्रकाश तथा अन्य विकिरण, जल, गुरुत्व दाब, हाइड्रोजन-आयन सान्द्रता, मृदा की संरचना, लवण, वायु की धाराएँ, जलीय धाराएँ तथा वायु-मण्डलीय गैसें आदि। जीवीय वातावरण अर्थात् किसी विशिष्ट प्रदेश में रहने वाले पेड़-पौधे एवम् प्राणी भी किसी विशेष समष्टि की सघनता को प्रभावित करते है। इस प्रकार प्रकृति में जीवों व वातावरण, पौधों व पौधों, तथा पौधों व जन्तुओं के बीच पारस्परिक क्रिया होती है। वास्तव में जीव समुदाय इन सभी पारस्परिक क्रियाओं का अन्तिम परिणाम है।

समुदाय प्रमुखता (Community Dominance)

किसी समुदाय की प्रकृति के निर्धारण में उस समुदाय के सभी जीव समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं होते। किसी समुदाय में अनेक जातियों के जीवों के उपस्थित होने पर भी सामान्यतः उनमे से केवल कुछ जातियाँ ही अपनी संख्या, आकार एवम् क्रियाओं द्वारा उस समुदाय का नियमन करती है। इकोसिस्टम में किसी समुदाय के जीव विभिन्न पोषण रीतियो को प्रदर्शित करते है, जैसे **उत्पादक** (producers), **उपभोक्ता** (consumers) तथा **अपघटक** (decomposers)। इन विभिन्न वर्गों के जीवों में भी कुछ जातियाँ अथवा जातियों के वर्ग मुख्य रूप से ऊर्जा-प्रवाह (*energy flow*) का नियमन करते है। इनको **पारिस्थितिक प्रमुख** (ecological dominants) कहते हैं। उदाहरण के लिए चरागाह में विभिन्न प्रकार के पादप एवम् प्राणी होते है, किन्तु इनमें उत्पादकों में घास प्रमुख होती है जबकि उपभोक्ताओं में मवेशी प्रमुख होते है। वास्तव

में चरागाह में और कई प्रकार के जीव होते हैं किन्तु घास व मवेशी चरागाह को प्रभावित करने वाले प्रमुख जीव हैं। प्राकृतिक समुदायों में तो प्रमुख जातियों की संख्या और भी अधिक होती है। अतः ऐसी जातियाँ जो किसी समुदाय के नियमन में मुख्य भाग लेती हैं, **पारिस्थितिक प्रमुख** कहलाती हैं। समुदाय में से प्रमुख जातियों के निष्कासन से समुदाय में सहसा परिवर्तन हो जाता है। इसके विपरीत अप्रमुख जातियों के निष्कासन का समुदाय पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ता।

इकोटोन एवम् कोर प्रभाव (Ecotone and Edge Effect)

इकोटोन वह स्थान या क्षेत्र है जहाँ दो प्रमुख समुदायों का सम्मिश्रण होता है अथवा यह दो वायोम (biomes) **के बीच की विस्तृत संक्रामी पट्टी है। वन व चरागाह, टुण्ड्रा व कोनिफर वनों तथा नदी व समुद्र के बीच के ज्वारनदी मुख** (estuarine) **संक्रामी क्षेत्रों के उदाहरण हैं।**

अतः इकोटोन वह संकीर्ण संगम स्थान है जो विस्तृत समुदाय प्रदेशों के बीच स्थित होता है। इसमें कुछ जीव तो दोनों प्रदेशों के होते है किन्तु कुछ जातियाँ केवल इकोटोन में सीमित रहती हैं। इसीलिए इकोटोन में किसी भी संलग्न वायोम की अपेक्षा जीवों की सघनता एवम् विभिन्न जातियों की संख्या दोनों ही अधिक होते हैं। इकोटोन की इस प्रवृत्ति को **कोर प्रभाव** (edge effect) कहते हैं। अतः **कोर प्रभाव इकोटोन की वह प्रवृत्ति है जिसके द्वारा यह जातियों की अधिक संख्या एवम् समष्टि की सघनता को बनाये रखता है।** इकोटोन में प्रमुख रूप से या अधिक संख्या में पायी जाने वाली जातियों को **कोर जातियाँ** (core species) कहते हैं।

स्पष्टीकरण—इकोटोन की उपस्थिति समुदायों द्वारा क्रमिक परिवर्तन के कारण सम्भव होती है। इसी प्रकार दो संलग्न वायोम्स को स्पष्ट रूप से पृथक् नहीं किया जा सकता क्योंकि एक संकीर्ण पट्टी या क्षेत्र के द्वारा एक वायोम का दूसरे वायोम से सम्मिश्रण होता है। अतः यह स्वाभाविक है कि इकोटोन में इसके दोनों ओर स्थित समुदायों की अपेक्षा पेड़-पौधों व प्राणियों की जातियाँ अधिक संख्या में होंगी। इकोटोन प्रदेश में कुछ वातावरणीय परिवर्तनों के कारण कुछ नई जातियों के पाये जाने की सम्भावना भी होती है जो एकमात्र रूप से इकोटोन में रहने के अनुकूल होती है।

समुदाय की रचना (Structure of Community)

समुदाय मुख्य रूप से तीन वर्गों का बना होता है जो इकोसिस्टम की मूलभूत इकाइयाँ हैं।

1. उत्पादक (Producers)—ये हरे पादप हैं जो प्रकाश-संश्लेपण द्वारा अपने कार्बनिक भोजन का स्वयं निर्माण करते है। ये दो प्रकार के होते हैं—(*i*) जड़ों वाले व तैरने वाले पादप, तथा (*ii*) सूक्ष्म तैरने वाले पादप या **पादप प्लवक** (phytoplanktons)।

2. उपभोक्ता (Consumers)—ये परपोषित जीव हैं जो उत्पादकों द्वारा निर्मित भोजन का सेवन करते हैं। पोषण विधि के आधार पर ये भी दो प्रकार के होते हैं—(*i*) **शाकाहारी या प्राथमिक उपभोक्ता** जो वनस्पति का सेवन करते हैं और **माँसभक्षी या द्वितीयक उपभोक्ता** जो प्राथमिक उपभोक्ताओं का परभक्षण करते हैं।

3. अपघटक (Decomposers)—ये भी समुदाय का एक महत्त्वपूर्ण घटक हैं। इनमें मुख्य रूप से जीवाणु एवम् कवक सम्मिलित हैं। ये मृतक पेड़-पौधों व जन्तुओं के शरीर पर क्रिया करके जटिल कार्बनिक पदार्थों का सरल पदार्थों में अपघटन करते

हैं। ये तत्त्व उत्पादकों द्वारा पुनः काम में ले लिये जाते हैं।

समुदाय का स्तरण (Community Stratification)

सामान्यतः जीवीय समुदाय ऊर्ध्वाधर (vertically) रूप से विन्यसित या स्तरित होते हैं। किसी माध्यम या अधोस्तर के स्तरों में विभिन्न पादपों व प्राणियों के विन्यास को **स्तरण** (stratification) कहते हैं। स्थलीय व जलीय समुदायों में प्रायः दो मूल स्तर होते हैं।

(1) सूर्य के प्रकाश वाला ऊपरी या सुप्रकाशी क्षेत्र (Upper sunlight or euphotic zone)—इसमें स्वपोषित अर्थात् उत्पादकों की वहुलता होती है।

(2) नीचे का पुनर्योजित उपभोक्ता क्षेत्र (Lower regenerating consumer zone)—इसमें विषमपोषित अर्थात उपभोक्ताओं की बहुलता होती है।

कुछ समुदायों में जटिल स्तरण पाया जाया है जवकि अन्यों में पूर्ण समुदाय में केवल एक स्तरण होता है। उदाहरण के लिए लाइकेन जोकि भूमि पर पपड़ीदार स्तर बनाते है एक स्तरीय समुदाय को प्रदर्शित करते हैं। किन्तु समय के साथ-साथ मौस व शाकीय पौधों के स्थापित होने के बाद एक-स्तरीय समुदाय जटिल समुदाय का रूप ले लेता है। स्तरण के साथ-साथ आवास-स्थानों में वृद्धि होती है जिससे अन्तरा-जातीय स्पर्धा कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप अधिक जातियाँ उपक्षेत्र पर पड़ने वाले सूर्य के प्रकाश का अधिक प्रभावी रूप से उपयोग करने में समर्थ होती हैं। उदाहरण के लिए घासस्थल समुदाय (grassland community) में तीन स्तर—भूमिगत, तलीय व शाकीय (herbaceous) स्पष्ट होते है। भूमिगत स्तर में मुख्य वनस्पति की जड़ें होती है तथा भूमि में अनेक वैक्टीरिया कवक व प्रोटोजोआ तथा केंचुए, कीट, स्कॉर्पिओन, सर्प एवम् रोडेन्ट (rodents) वास करते है। तलीय स्तर या घास स्थल के फर्श पर वनस्पति के आधार भाग सहित घास कुल के अनेक पौधे (runners, suckers and rhizomes) मिलते हैं। जन्तुओं में कीट, मकड़े, लिजार्ड तथा रोडेन्ट प्रमुखता से मिलते है जो वनस्पति सहित समुदाय का तलीय स्तर बनाते है। सवसे ऊपरी या शाकीय भाग स्तर में घासों व शाकीय पौधों के ऊपरी भाग सम्मिलित है। अतः घास स्थल ऊर्ध्वाधर क्रम में विन्यसित विभिन्न स्तरित समुदायों को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार एक वर्षा-प्रचुर वन में तीन भिन्न स्तर होते हैं—**ऊपरी स्तर,** जिसमें लम्बे वृक्षों की शाखाएँ व पत्तियाँ सम्मिलित हैं, शाकीय व क्षुप (herbs) द्वारा निरूपित **मध्यस्तर** तथा फर्श के तल द्वारा निरूपित **निम्नस्तर**। प्रत्येक स्तर का अपना निजी प्राणीजात (fauna) होता है। ऊपरी स्तर में लिजार्ड, वृक्ष मुण्डक (tree frogs), वृक्ष-सर्प (tree snakes), पक्षी तथा वृक्षवासी स्तनधारी वास करते हैं। मध्य स्तर में मकड़े, वनस्पति का सेवन करने वाले कीट वास करते हैं तथा वन के फर्श पर केंचुए, जोंक, कीट, वैक्टीरिया व प्रोटोजोआ मिलते हैं।

वन व घासस्थल की भाँति, जलीय समुदायों में भी वही ऊर्ध्वाधर स्तरण देखने को मिलता है। ये स्तरण प्रकाश की तीव्रता, तरंग अनुदैर्घ्यों का अवशोषण, द्रवस्थैतिक दाब (hydrostatic pressure) व ताप आदि पर निर्भर करता है। **झील में निम्न तीन स्तर सुस्पष्ट रूप से मिलते हैं—**

(*i*) **वेलांचल प्रदेश** (Littoral zone)—यह उथले पानी का प्रदेश है जिसमें सूर्य का प्रकाश नीचे तल को जाता है। इसमें केवल जड़ों वाले पौधे उगते है। इसे **अधितर प्रदेश** (epilimnion) भी कहते हैं।

(*ii*) **उपवेलांचली या सरोवरी जीव-प्रदेश** (Sublittoral or limnetic

zone)—यह खुले पानी का वह प्रदेश है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है। इस प्रदेश में प्लवक (planktones), तरणक (nektones) तथा पटलक (neustons) वास करते हैं। इसे **अधः सर** (hypolimnion) प्रदेश भी कहते हैं।

(*iii*) **गहन प्रदेश** (Protundal zone)—यह झील का सर्वाधिक गहरा भाग है। इसमें सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता।

अधिक गहरी झीलों में एक और प्रदेश होता है। जिसे **वितलीय प्रदेश** (abyssal) कहते हैं। यह 1000 मीटर से अधिक गहराई पर होता है। सामान्यतः झील में तीन तापीय स्तर (thermal strata) होते हैं—सबसे ऊपर का **अधिसर प्रदेश** (epilimnion), अधिक ताप व आक्सीजन की पर्याप्त मात्रा वाला प्रदेश होता है। वायु की धाराओं के कारण इसका जल हिलता-डुलता है। जबकि नीचे का **अधःसर** (hypolimnion) अपेक्षाकृत कम ताप वाला प्रदेश होता है और इसका जल स्थिर रहता है। इन दोनों के बीच में एक और ऊर्ध्वाधर स्तर होता है जिसके ताप में तीव्रता से परिवर्तन होता है। इसे **ताप प्रवण स्तर** (thermocaline) कहते हैं।
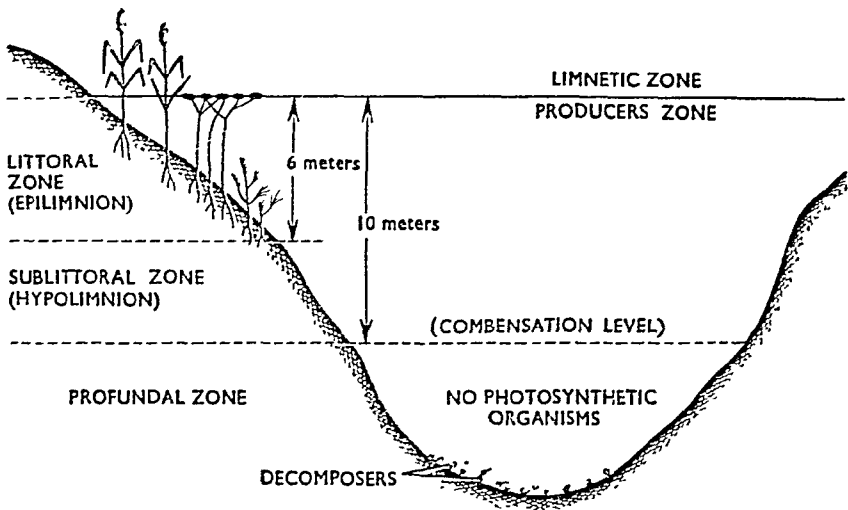
चित्र ३·१. गहरे स्वच्छ पानी की झील के विभिन्न स्तर
(Various zones of a deep fresh water lake)

छोटे तालाव या जोहड़ में गहन प्रदेश (profundal zone) तथा उपवेलांचली (sublittoral) प्रदेश अधिक स्पष्ट नहीं होते तथा वेलांचल प्रदेश (littoral zone) ही मुख्य उत्पादक प्रदेश होता है। किन्तु झीलों में उपवेलांचली (sublittoral) तथा गहन प्रदेश (profundal region) वेलांचल प्रदेश से अधिक विस्तृत होते हैं और इनमें उपवेलांचली प्रदेश मुख्य उत्पादक प्रदेश होता है।

इसी प्रकार समुद्री समुदाय में निम्नलिखित चार प्रदेश होते हैं—

(*i*) **नेरिटांचल या सवेलांची प्रदेश** (Sublittoral or limnetic zone)—यह उथले जल का अन्तराज्वारीय (inter-tidal) प्रदेश है।

(*ii*) **महासागरीय या उपवेलांचली प्रदेश** (Oceanic or sublittoral zone)—सवेलांचली प्रदेश से आगे खुले समुद्र का वह प्रदेश है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है। यह 200 मीटर की गहराई तक सीमित होता है।

(*iii*) **गभीर या आदिनितलीय प्रदेश** (Bathyal or archibenthic zone)—यह 200 मीटर से 1000 मीटर की गहराई का प्रदेश है। इसमें सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता।

(*iv*) **वितल क्षेत्र** (Abyssal zone)—यह 1000 मीटर से अधिक गहराई का प्रदेश है।
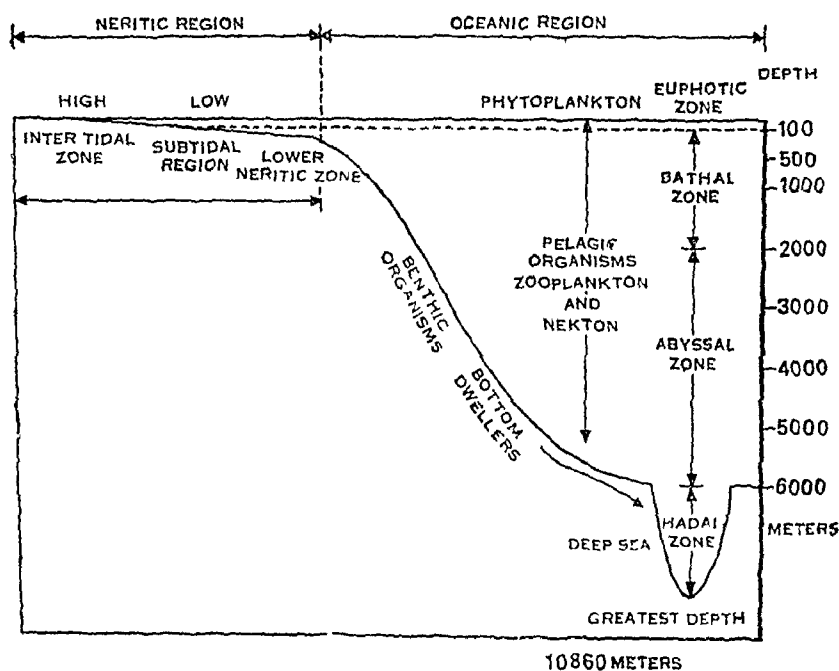
चित्र ३·२. सागरीय समुदाय के विभिन्न स्तर या अनुक्षेत्र
(Different zones of marine community)

समुदाय आवर्तिता (Community Periodicity)

किसी समुदाय के जीवों मे होने वाले आवर्ती परिवर्तनों को **समुदाय आवर्तिता** (community periodicity) कहते है। समुदाय आवर्तिता निम्नलिखित किसी भी कारणवश हो सकती है।

(1) मौसमी या ऋतुनिष्ठ आवर्तिता (Seasonal periodicity)—मौसमी परिवर्तन समुदाय के जीवों में जनन-चक्र के फलस्वरूप होते हैं। समुदाय के विभिन्न जीवों में जनन का समय अलग-अलग होता है। स्थलीय समुदायों मे ताप-परिवर्तन, प्रकाशावधि में भिन्नता, प्रवसन तथा अप्रवसन आदि समुदाय की रचना में परिवर्तन उत्पन्न कर देते है। इन्ही परिवर्तनों के फलस्वरूप जीव शीतनिष्क्रिया एवम् ग्रीष्म-निष्क्रियता करते हैं। विभिन्न ऋतुओं में वर्षा के कारण भी समुदायों मे आवर्तिता होती है। समुद्री समुदायों में आवर्तिता के भी यही कारण हैं।

(2) चांद्र आवर्तिता (Lunar periodicity)—यह केवल समुद्री समुदाय में पायी जाती है। चन्द्रमा के गुरुत्वीय वल से उत्पन्न ज्वार-भाटा उथले जल में रहने वाले जीवों को अत्यधिक प्रभावित करता है। इसका सर्वोचित उदाहरण पोलिकीट्स

(polychaetes) हैं जो प्रत्येक चन्द्र माह (lunar month) में दो बार अण्डजनन करते हैं।

(3) दैनिक अथवा दिवानिश आवर्तिता (Daily or diel periodicity)—इसके अन्तर्गत रात व दिन के साथ जीवों में होने वाले दैनिक परिवर्तन सम्मिलित हैं। प्रकाश-संश्लेषण, फूलों का खिलना, स्टोमेटा का खुलना एवम् बन्द होना आदि पौधों में दिवानिश आवर्तिता के उदाहरण हैं। स्थलीय समुदायों के अनेक प्राणी केवल रात्रि के समय सक्रिय होते हैं जैसे चमगादड़, toot mouse आदि।

झील व सागर, आदि जलीय वास-स्थानों में प्राणिप्लवक (zooplanktons) दिवानिश आवर्तिता को प्रदर्शित करते हैं। कॉपिपॉड (copepods), क्लेडोसेरन्स (cladocerans) व अनेक लार्वी रात्रि के समय पानी की सतह की ओर आ जाते हैं और दिन के समय ये नीचे की ओर चले जाते हैं।

(4) वंशागत आवर्तिता (Inherent periodicity)—इसे pine mouse के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। यह रात व दिन के प्रभाव से मुक्त रहते हुए सक्रियता एवम् निष्क्रियता की विभिन्न अवस्थाएँ दिखाता है।

अध्याय 4

प्राणि-सम्बन्ध
(Animal Relationships)

प्रश्न 9. अन्तराजातीय सम्बन्धों से आप क्या समझते हैं ? सहजीविता से क्या तात्पर्य है ? विशिष्ट उदाहरणों की सहायता से सहजीविता के विभिन्न रूपों का उल्लेख करिये।

What do you understand by interspecific relationships ? What are the various forms of symbiosis and how are they defined ? Give specific examples of each.

अन्तराजातीय सम्बन्ध
(Interspecific Relationships)

अधिकांश प्राणी मुक्त जीवी होते हैं क्योंकि ये उसी प्रदेश में पाये जाने वाले किसी जाति या जातियों के समूहों पर किसी भी प्रकार आश्रित नहीं होते। किन्तु कुछ जीव ऐसे भी होते हैं जो किसी अन्य जाति या जातियों के सदस्यों से विभिन्न प्रकार के सहसम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के सम्बन्धों को **अन्तराजातीय सम्बन्ध** कहते हैं। ये सम्बन्ध एक अथवा दोनों सदस्यों को लाभकारी भी हो सकते हैं और हानिकारक भी, अथवा फिर इस प्रकार के सम्बन्धों का किसी एक सदस्य पर तो प्रभाव पड़ता है किन्तु दूसरे पर नहीं।

अन्तराजातीय सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं—**(1) सहजीविता** (symbiosis), तथा **(2) विरोधिता** (antagonism)। सहजीविता में एक अथवा दोनों जातियाँ इससे लाभ उठाती हैं और किसी भी जाति को कोई हानि नहीं पहुँचती जबकि विरोधिता में कम से कम एक जाति को अवश्य ही हानि पहुँचती है।

सहजीविता (Symbiosis)

दो भिन्न जीवों के बीच सहसम्बन्ध एक अथवा दोनों जीवों के लिए लाभप्रद हो सकता है। इस प्रकार का सहसम्बन्ध भोजन, आश्रय, अध:स्तर या परिवहन के लिए हो सकता है। यह सम्बन्ध सतत (continuous) या क्षणिक (transitory), अविकल्पी (obligate) या विकल्पी (facultative) हो सकता है। दोनों सहजीवी ऊतकों के परस्पर सम्पर्क में आने से ये एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में भी हो सकते हैं अथवा फिर इनमें से एक दूसरे की गुहा में वास करता है या फिर इसकी सतह से चिपका रहता है। सहजीवी सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं—**1. सहोपकारिता** (mutualism), तथा **2. सहभोजिता** (commensalism)

1. सहोपकारिता (Mutualism)

इस प्रकार के सम्बन्ध में दोनों सहजीवी एक-दूसरे से लाभान्वित होते हैं। यह निम्न प्रकार की होती है :—

1. संतत सम्पर्क द्वारा सहोपकारिता (Mutualism with continuous contact)—यह स्थायी प्रकार का सम्बन्ध है जिसमें दोनों सहजीवी परस्पर घनिष्ठ

सम्पर्क में होते है और ये एक-दूसरे पर शरीरक्रियात्मक रूप से निर्भर होते है। इसका सर्वोचित उदाहरण लाइकेन (lichens) हैं। लाइकेन में कवक का मैट्रिक्स होता है जिसमें शैवाल कोशिकाएँ सन्निहित रहती हैं। शैवाल पानी, लवण व संरक्षण के लिए कवक पर आश्रित होता है तथा कवक शैवाल से प्रकाश-संश्लेपण द्वारा निर्मित कार्वनिक भोजन प्राप्त करता है। सहोपकारिता का एक अन्य उदाहरण राइजोवियम (*Rhizobium*) वैक्टीरिया हैं। ये मटर कुल के पौधों की जड़ों में ग्रन्थिकाएँ वनाकर रहते है और पौधों से कार्वनिक भोजन प्राप्त करते हैं। इसके वदले में ये नाइट्रोजन गैस को स्थायीकृत करते हैं जो जड़ों द्वारा अवशोपित कर ली जाती है।

सहोपकारिता का एक अन्य उदाहरण पादप व प्राणी के वीच है जिसमें दोनों के ऊतक एक-दूसरे से परस्पर मिश्रित हो जाते है। एककोशिकी जूक्लोरेली (Zoochlorellae) नामक हरे शैवाल तथा जूजेन्थेली (*Zooxanthellae*) नामक भूरे शैवाल कुछ स्पंजों, सीलेन्ट्रेट्स व मौलस्क के वाह्य ऊतकों में सहजीवी के रूप में वास करते हैं। जूक्लोरेली शैवाल की कोशिकाएँ टर्वेलेरियन कृमि (*Convoluta roscoffensis*) के वाह्य ऊतकों में इतने सघन रूप से उगता है कि यह जन्तु हरे-से-रंग का प्रतीत होने लगता है। शैवाल कोशिकाएँ प्रकाश-संश्लेषण द्वारा आक्सीजन निर्मुक्त करते है और नाइट्रोजन यौगिकों का निर्माण करते हैं। ये दोनों ही पोपक के लिए लाभकारी हैं। इसके वदले शैवाल को अपनी वृद्धि व पोषक तत्वों को ग्रहण करने के लिए एक समुचित अधोस्तर मिलता है।

कुछ शैवाल अपने पोषक के ऊतकों में न रहकर उसकी गुहाओं में वास करते हैं। सेलूलोस का अधिक मात्रा में सेवन करने वाले रूमिनेन्ट्स (ruminants) की आंत्र में सूक्ष्मजीव वास करते है जो सेलूलेस एन्जाइम स्रावित कर पोषक को सेलूलोस के पाचन में सहायता करते है। दीमक अपनी आहार नाल में वास करने वाले एक विशेप प्रकार के फ्लैजेलेट् प्रोटोजोअन्स की सहायता से काष्ठ का पाचन करती है। उपर्युक्त उदाहरणों में सहजीविता दोनों जीवों के लिए लाभप्रद एवम् अविकल्पी (obligatory) है। प्राणियों की आंत्र में मिलने वाले कुछ वैक्टीरिया B-विटामिन्स व कुछ अन्य विशिष्ट पदार्थ निर्मित करते हैं।

कैंव के खोल पर वृद्धि करने वाले कुछ समुद्री स्पंज एवम् सीलन्ट्रेट पोपक की वाह्य सतह पर स्थाई रूप से रहने वाले सहजीवियों के उदाहरण हैं। खोल से आसंजित जन्तु कैंव द्वारा एक से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है जहाँ पर उसे और अधिक भोजन उपलव्ध होता है। इसके वदले में कैंव इन जन्तुओं के कारण ढका रहता है और इस प्रकार उसे आरक्षण मिलता है। इसका जाना-पहचाना उदाहरण सी-ऐनोमोन (ऐडेम्सिया : *Adamsia*) है जो यूपेगुरस (*Eupagurus*) नामक हर्मिट कैंव के खोल पर आसंजित रहता है। हर्मिट-कैंव स्वयं स्नेल के खोल में वास करता है। वास्तव में हरमिट-कैंव स्वयं अपने उपांगों की सहायता से सी-ऐलीमोन को चट्टान पर से हटाकर खोल के ऊपर रख लेता है। कभी-कभी नेरीस (*Nereis*) भी घनिष्ठ सहयोगी के रूप में ख़ोल के अन्दर मिलता है। यह खोल को अन्दर से साफ करता है और कैंव संदंशिकों (pincers) से भोजन छीनकर ग्रहण करता है।

2. असंतत सम्पर्क द्वारा सहोपकारिता (Mutualism without continuous contact)—इस प्रकार की सहोपकारिता में सहजीवी या तो एक-दूसरे के सम्पर्क में ही नहीं आते अथवा फिर यह सम्पर्क क्षणिक होता है। यद्यपि इसमें

दोनों सहजीवों को लाभ पहुँचता है किन्तु पोषण सम्बन्धी आवश्यकता केवल एक की पूर्ण होती है। इसका सर्वसामान्य उदाहरण कुछ पक्षियों व घास मे चरने वाले जन्तुओ के बीच सम्बन्ध द्वारा मिलता है। Cowbird, oxpecker तथा white heron घास स्थलों में चरने वाले जन्तुओं की त्वचा से लगे हुए किलनी एवम् चिचडी आदि वाह्य परजीवियों का भक्षण करते है। इसी प्रकार crocodile-bird क्रोकोडाइल के दाँतों के आस-पास चिपके हुए जोंक का भक्षण करता है।

मक्खियों, मॉथ, तितलियों व पक्षियों द्वारा फूलों मे परागण भी सहोपकारिता का उदाहरण है। कीट व पक्षी पुष्पों से शहद व अन्य उत्पाद ग्रहण करते हे और इनमे परपरागण करते है।

2. सहभोजिता (Commensalism)

जब दो या अधिक जन्तु एक-दूसरे के सम्पर्क में तो रहते है किन्तु इनमें किसी प्रकार का शरीरक्रियात्मक सम्बन्ध नही होता, तो इस प्रकार के जीवों को **सहभोजी** (commensals) तथा इस प्रकार के सम्बन्ध को **सहभोजिता** (commensalism) कहते है। सहभोजिता में एक सहभोजी को तो लाभ पहुँचता है किन्तु दूसरे साथी को न तो कोई लाभ होता है और न ही हानि। सहभोजी को इस सम्बन्ध द्वारा आश्रय, अधःस्तर, परिवहन एवं भोजन प्राप्त होता है। सहभोजिता निम्न प्रकार की होती है।

1. संतत सम्पर्क द्वारा सहभोजिता (Commensalism with continuous contact)—इस प्रकार की सहभोजिता मे सहभोजी स्थायी रूप से एक-दूसरे के सम्पर्क में रहते है। अनेक अधिपादप जैसे आर्किड्स दूसरे वृक्षों की छाल व शाखाओं पर उगते है। ये पादप वृक्ष से केवल अवलम्बन प्राप्त करते है और अपना कार्बनिक भोजन स्वयं सश्लेषित करते है। वृक्ष के ऊतकों से कोई भी सम्बन्ध न होने के कारण ये **बाह्यसहभोजी** (ectocommensals) कहलाते है। कुछ पादप जन्तुओ के शरीर से लगे रहते है। एक हरा शैवाल स्लॉथ (sloths) के लम्बे व खाँच युक्त बालों मे उगता है। शैवाल की बहुलता के कारण स्लॉथ हरे-से रंग का प्रतीत होता है जिससे उसे वृक्षों पर छुपने मे सहायता मिलती है।

अनेक सूक्ष्मजीव जैसे प्रोटोजोआ, सहजीवी बैक्टीरिया तथा कवक पोषक को बिना हानि पहुँचाये उच्च पादपों व जन्तुओं के शरीर के अन्दर ऊतकों व गुहाओं मे वास करते हैं। इनको **अन्तःसहभोजी** (endocommensals) कहते है। इस प्रकार के अनेक सहभोजी जन्तुओ की निचली आंत्र मे रहते है जहाँ ये अपचे भोजन को ग्रहण करते हैं और अपना जीवन-चक्र पूरा करते है किन्तु पोषक को इनकी उपस्थिति का पता नही चलता। मनुष्य के कोलन मे रहने वाला *एशरिकिआ कोली* (*Escherichia coli*) अन्त.सहभोजी का जाना-पहचाना उदाहरण है।

प्राणी जगत् में स्थायी रूप से स्थिर सहभोजी के उदाहरण अपृष्ठवंशियों में मिलते है जो पादपों या अन्य जन्तुओं पर आसंजित रहते है। वाइवाल्व **ओस्ट्रिया** एकमात्र रूप से फ्लोरिडा के तट पर उथले जल मे उगने वाले रेड मेन्ग्रोव की जड़ों पर वृद्धि करता है। कुछ वार्नेकल, (barnacles) व्हेल की पीठ पर वृद्धि करते है और इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाये जाते है।

(2) असंतत सम्पर्क द्वारा सहभोजिता (Commensalism without continuous contact)—इसमें सहभोजी केवल अस्थाई सम्पर्क मे रहते हैं। जन्तु सहभोजी व पादप पोषक में आन्तरायिक सम्पर्क गिलहरियों, वन्दरों, कड़ूक (tree

frogs), सर्पों, पक्षियों, कीटों व अन्य जन्तु प्रदर्शित करते हैं जो आश्रय या जनन के लिए वृक्षों पर आश्रित होते हैं। दो जन्तुओं के बीच सहभोजिता चूपक-मछली (sucker fish) व ह्वेल में देखने को मिलती है। ऐकिनीस (*Echenies*) अपने पृष्ठ चूपक द्वारा शार्क या अन्य दीर्घाकार जलीय जन्तु के निचले भाग से चिपकी रहती है। डैकापोड क्रस्टेशियन, पोलीनॉक्स (*Polynox*), समुद्री एनिलिड कीटोप्टेरस (*Chaetopterus*) की U-ट्यूब में रहता है। यह कृमि के पैरापोडिया की पम्प-क्रिया द्वारा ट्यूब में आने वाले पानी से भोजन के कण व ऑक्सीजन ग्रहण करता है।

कुछ अन्य समुद्री सहभोजी अपने पोषक की जल गुहा में रहते हैं। एक छोटी ऊष्ण कटिबन्धीय मछली फीयरएस्टर (*Fieraster*) सी-कुकुम्बर के क्लोएका (cloaca) में रहती है। प्रायः मछली भोजन की तलाश में बाहर आती रहती है। कुछ जन्तु बड़े व शिकारी जन्तु के निकट सम्पर्क में रहते हुए अपने आप को छुपाये रखते हैं। पायलट मछली (*Nacrates ductore*) शार्क के नीचे उसके साथ-साथ तैरती रहती है किन्तु यह उससे किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं बनाती। इसी प्रकार कुछ मछलियाँ जेली-फिश की अम्ब्रेला के नीचे तथा कुछ अन्य वैलेला (*Valela*) के स्पर्शकों के बीच रहती हैं।

सहजीविता का उपर्युक्त विवरण स्पष्ट रूप से प्राणियों एवम् पादपों में पारस्परिक सहयता को प्रदर्शित करता है। यह इस प्रकार के सम्बन्धों में निर्भरता एवम् विशिष्टता की विस्तृत सीमा को भी प्रदर्शित करता है।

प्रश्न 10. परजीवियों एवम् स्वतन्त्रजीवियों में कौन-कौनसी सामान्य, संरचनात्मक एवम् क्रियात्मक भिन्नताएँ हैं? परात्परजीविता क्या है? परजीविता सरलीकरण से क्या अनुकूली लाभ हैं? परजीवियों में किस प्रकार का ऑक्सीकरण होता है?

What general and structural and functional characteristics distinguish parasites from free-living organisms? What is hyperparasitism? What is the adaptive advantage of parasitic simplification? In what ways are parasites simplified?

परजीविता (Parasitism)

ऐसे जीव को जो अपने से बड़े जीव के शरीर के ऊपर या भीतर रहते हुए उसके ऊतकों से अपना पोषण करता है, **परजीवी** (parasite) कहते हैं। परजीविता एक-पक्षीय सम्बन्ध है क्योंकि परजीवी किसी-न-किसी रूप में पोषक से लाभान्वित होता है। एक प्ररूपी परजीवी पोषक के ऊतक में वास करता है किन्तु इसकी उपस्थिति से पोषक की मृत्यु नहीं होती जबकि एक प्ररूपी परभक्षी शिकार को मारने के बाद खाता है। परजीविता में दुर्बल व असहाय जीव अपने से बलिष्ठ जीव पर आश्रित होता है जबकि परभक्षी सदैव अपने से दुर्बल जीव का शिकार करता है। पोषक के अनुरूप परजीवी में अनेक आकारिक, संरचनात्मक एवम् शरीरक्रियात्मक रूपान्तरण उत्पन्न हो जाते हैं।

परजीविता के रूप (Types of Parasitism)

सामान्यतः परजीवी दो प्रकार के होते हैं :—

(I) **आंशिक परजीवी** (Partial parasites), तथा (2) **स्थायी परजीवी** (Permanant parasites)।

1. आंशिक परजीवी (Partial parasites)—वे जीव जो अपने जीवन-चक्र

का कुछ ही भाग पोषक पर व्यतीत करते हैं, **आंशिक या अस्थायी परजीवी** (partial parasites) कहलाते हैं। उदाहरण के लिए ग्लोकिडियम लारवा के खोलों (shells) पर उपस्थित कण्टकों की सहायता से स्वयं को मछली से आसंजित कर लेता है और इसके बाद मछली की त्वचा में धँस जाता है। कुछ सप्ताहों तक यह इसी स्थिति में रहता है और उसके बाद शिशु प्राणी के रूप में बाहर निकल कर मुक्त रूप से जीवन-यापन करने लगता है। इसका दूसरा उदाहरण हाइमेनॉप्टेरन कीट हैं जो बीटल या कैटरपिलर लारवा के शरीर में अपने अण्डे निक्षेपित कर देते हैं। अण्डों से निकलने वाले लारवा पोषक के शरीर में ही रहकर वृद्धि करके कायान्तरण करते हैं और अन्त में शिशु प्राणी के रूप में बाहर निकल कर मुक्त रूप से रहने लगते हैं।

2. स्थाई परजीवी (Permanent parasites)—वे जीव जो जीवन-पर्यन्त परजीवी बने रहते हैं, **स्थायी परजीवी** कहलाते हैं। पादपों से मिलने वाले स्थायी पर-जीवियों को **पादप परजीवी** (Phytoparasites) तथा प्राणियों में इनको **प्राणी परजीवी** (zooparasites) कहते हैं। प्राणी परजीवी दो प्रकार के होते हैं—**अन्तः परजीवी** (endoparasites) तथा **वाह्यपरजीवी** (ectoparasites)।

(*i*) **अन्तः परजीवी** (Endoparasites)—ये परजीवी पोपक के शरीर के अन्दर वास करते हैं और प्रकृति में व्यापक रूप से पाये जाते हैं। इनमें से अधिकांश परजीवी अपने जीवन-चक्र का एक भाग किसी दूसरे पोपक के शरीर में व्यतीत करते हैं। **लीवर फ्लूक** (liver fluke) इसका सर्वसामान्य उदाहरण है। इसका दूसरा अर्थात् वैकल्पिक पोपक **स्नेल** (snail) है। **टेपवर्म** (tapeworms) व राउण्ड वर्म (round worms) इसके अन्य उदाहरण हैं। ये परजीवी मनुष्य व सुअर, भेड़-बकरी मवेशियों, मछलियों व पक्षियों के सीलोम तथा आहार नाल में वास करते हैं। अनेक प्रोटोजोआ भी अन्तः परजीवी होते हैं। **प्लैज्मोडियम** (*Plasmodium*) मनुष्य के रुधिर का अन्तःपरजीवी प्रोटोजोअन है जो **ऐनोफिलीस** वंश के मादा मच्छर द्वारा एक पोपक से दूसरे पोषक में पहुँचता है।

(*ii*) **वाह्यपरजीवी** (Ectoparasites)—इसमें मुख्य रूप से कीट वर्ग के परजीवी सम्मिलित हैं। **पिस्सू** (fleas) रुधिर चूसने वाले वाह्य परजीवी हैं जो स्तनधारियों के घने बाल या रोयें के बीच रहते हैं। बालों के बीच सरलता से चलने के लिए इनका शरीर पार्श्व से चपटा होता है। वाह्य परजीवी दो प्रकार के होते हैं—(1) रुधिर चूसने वाले, तथा (2) पिच्छों, बालों या त्वचा को कुतरने वाले। किलनियाँ (ticks) भी वाह्यपरजीवी होती हैं। इनमें से कुछ सूजन व जलन उत्पन्न करते है। साइक्लोकीटा (*Cyclochaeta*) नामक प्रोटोजोअन प्राणी मछली का वाह्य-परजीवी है।

लैम्प्रे मछली अपने वृत्ताकार चूपक मुख की सहायता से पोपक के शरीर से चिपक जाती है और अपनी रेतन जिह्वा (rasping tongue) की सहायता से पोपक के शरीर के माँस को खुरच-खुरच कर रुधिर चूसती रहती है।

पादपों में अनेक बैक्टीरिया एवम् कवक परजीवी होते हैं। परजीवी कवक पादपों में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। बैक्टीरिया मनुष्य व अन्य जन्तुओं में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।

परात्परजीविता (Hyperparasitism)

कभी-कभी स्वयं परजीवी पर अन्य जीव परजीवी के रूप में वास करते हैं। इस प्रकार के परजीवियों को **परात्परजीवी** (hyperparasites) कहते हैं। उदाहरण

के लिए नोसेमा नोटाबिलिस (*Nosema notabilis*), टोड-फिश (toad-fish) के मूत्राशय में समान रूप से पाये जाने वाले स्फीरोस्पोरा पोलीमॉर्फा (*Sphaerospora polymorpha*) परजीवी का परात्परजीवी है।

परजीवी अनुकूलन (Parastic Adaptations)

1. अन्त: परजीवियों में एपिडर्मिस का अभाव होता है। इसके स्थान पर क्यूटिकल का अस्तर होता है जो पोषक के पाचक रस से परजीवी की रक्षा करता है।

2. अन्त: परजीवियों में संलग्नता के लिए सुविकसित अंग होते हैं। ट्रिमेटोड्स (फैशियोला) में संलग्न अंग प्यालेनुमा चूषकों के रूप में होते हैं। सेस्टोड्स (टीनिया) में चूषकों के अतिरिक्त स्कोलेक्स के अगले सिरे पर प्लेट के समान रॉस्टेलम (rostellum) होता है। इस पर अन्दर की ओर मुड़े हुए अनेक अंकुश होते हैं। इसी प्रकार हैक्साकेन्थ लारवा में छ: अंकुश होते हैं। संलग्न अंग परजीवी को पोषक की आहार नाल की दीवार से आसंजित होने में सहायता करते हैं। पिस्सू (fleas) व जूँ (lice) आदि वाह्यपरजीवियों में पोषक की वाह्य सतह से चिपकने के लिए सुविकसित नखर होते हैं। हिप्पोबोसिया इक्विना (*Hippobosea equina*) नामक horse-fly के पादों में नखर व आसंजक गद्दियाँ दोनों ही उपस्थित होते हैं।

3. पोषण की परजीवी विधि के कारण अन्त:परजीवियों में चलन की क्षमता अति अल्पविकसित होती है। भोजन के पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने के कारण अन्त: परजीवियों को भोजन की तलाश में इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता। इसके विपरीत वाह्यपरजीवियों में सामान्य चलन अंग होते हैं।

4. पोषक का आन्तरिक माध्यम समान रहने के कारण अन्त:परजीवियों के संवेदी अंग अल्पवर्धित होते हैं। वाह्यपरजीवी सदैव ही वातावरण के सम्पर्क में रहते हैं। अत: इनमें सुविकसित प्रकार के संवेदी अंग होते हैं। अन्त: परजीवियों में संलग्न अंगों से सम्वद्ध तन्त्रिका तन्त्र सुविकसित होता है।

5. अन्त:परजीवियों को सदैव ही पचा हुआ भोजन उपलब्ध होने के कारण इनमें आहार नाल अनुपस्थित होती है अथवा फिर इसमें विभिन्न प्रकार से सरलीकरण होता है। भोजन के पचा हुआ होने के कारण इनमें पाचन ग्रन्थियों का अभाव होता है।

6. अन्त:परजीवियों में जटिल जनन तन्त्र का पाया जाना उनकी विशिष्टता है और ये बहुत अधिक संख्या में अण्डे उत्पन्न करते हैं। अधिकांश परजीवी उभयलिंगी होते हैं। पर-निषेचन की विफलता से बचने के लिए इनमें स्वनिषेचन की क्रिया होती है। भारी संख्या में अण्डे व शुक्राणु उत्पन्न करने के लिए चपटे कृमियों के अण्डाशय व वृषण अत्यधिक सुविकसित होते हैं अथवा फिर इनकी संख्या बहुत अधिक होती है। अण्डपीतक वाहिनी (ovovitelline duct) बहुत लम्बी होती है और अण्डों को संचित करने के लिए गर्भाशय के समान कार्य करती है। टेपवर्म के प्रत्येक खण्ड में इसके निजी जननांग होते हैं।

7. जाति को बनाये रखने के लिए अन्त:परजीवी बड़ी संख्या में अण्डे उत्पन्न करते हैं। एस्केरिस लुम्ब्रिकोइडिस (*Ascaris lumbricoides*) एक समय में 15,000–20,000 तक अण्डे देता है। मनुष्य की आहार-नाल का हुकवर्म, एन्किलोस्टोमा ड्यूओडिनेल (*Ancylostoma duodenale*) प्रतिदिन 25–30,000 अण्डे देता है। टेपवर्म के प्रत्येक देहखण्ड में 30–50,000 अण्डे होते हैं और इसके शरीर में एक

हजार तक खण्ड होते हैं। अन्त:परजीवी को अपनी जाति के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए इतनी बड़ी संख्या में अण्डों का उत्पादन आवश्यक है क्योंकि अण्डों के जीवित रहने के अवसर बहुत कम होते हैं।

अन्त:परजीवियों के जीवन-चक्र में एक से तीन मध्यस्थ पोषक होते हैं और इनमें अनेक लारवा अवस्थाएँ होती हैं। जीवन-चक्र में अनेक लारवा-अवस्थाओं तथा मध्यस्थ पोषकों की उपस्थिति के कारण इनकी सन्तति के निश्चित पोषक तक पहुँचने की बहुत कम सम्भावना होती है। उपर्युक्त बाधाओं को पार कर जाति के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए ही ये इतनी भारी संख्या में अण्डों का उत्पादन करते हैं।

अध्याय 5

इकोसिस्टम (Ecosystem)

प्रश्न 11. इकोसिस्टम से आप क्या समझते हैं ? इकोसिस्टम के विभिन्न घटकों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये ।

What do you understand by ecosystem ? Describe the various components of an ecosystem giving suitable examples.

(Gorakhpur 1971 ; Gujrat 72)

इकोसिस्टम, पारिस्थितिकी की वह मूल क्रियात्मक इकाई है जिसमें जैव समुदाय (biological communities) अपने अजीवित या अजैव (abiotic) पर्यावरण से परस्पर सम्वन्वित होता है । **अतः एक जैव समुदाय अपने अजैव पर्यावरण के साथ एक इकोसिस्टम को प्रदर्शित करता है ।** इकोसिस्टम के अन्तर्गत जीवित तथा अजीवित पर्यावरण दोनों ही सम्मिलित होते हैं, दोनों ही एक दूसरे की विशेपताओं को प्रभावित करते हैं तथा जीवन के अनुरक्षण के लिए दोनों ही अति आवश्यक हैं । इनका पारस्परिक सम्वन्ध इतना घनिष्ठ होता है कि एक के विना दूसरे का कोई महत्त्व नहीं । उदाहरणतया प्राणी-सदृश-भोजी जीव (holozoic animals) अपना भोजन स्वयं वनाने में असमर्थ होते हैं और किसी-न-किसी रूप में पौधों पर निर्भर रहते हैं । पौधों में यद्यपि खाद्य पदार्थों के सश्लेषण की क्षमता होती है किन्तु उनका संश्लेपण अजैव पर्यावरण पर निर्भर करता है । भोजन संश्लेपण में प्रकाश, जल, CO_2, खनिज लवण तथा दूसरे कार्वनिक व अकार्वनिक पदार्थ अति आवश्यक हैं । प्राणियों के उत्सर्जी पदार्थों तथा मरणोपरान्त जीवों के शरीर के क्षय से कार्वनिक व अकार्वनिक पदार्थ भूमि में एकत्रित होते हैं जो पौधों द्वारा उपभोग में लाये जाते हैं ।

जैव व अजैव पर्यावरण की इस परस्पर-निर्भरता के लिए **Tansley** (1935) ने **'इकोसिस्टम'** शब्द का प्रयोग किया था ।

इकोसिस्टम के घटक (Components of Ecosystem)

Odum ने क्रियात्मक रूप से इकोसिस्टम को दो घटकों में विभाजित किया है :—

1. स्वजीवी घटक (Autotrophic component)—इसके अन्तर्गत हरे पादप आते हैं जो सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में वायु व भूमि से अकार्वनिक यौगिक अवशोषित करके कार्वनिक यौगिकों का संश्लेपण करते हैं ।

2. परपोषी घटक (Heterotrophic component)—इसके अन्तर्गत जटिल खाद्य पदार्थों के अवक्रमण, पुनर्विन्यास एवम् उनके उपयोग से सम्वद्ध विघटक जीव आते हैं ।

किन्तु संरचनात्मक या सामान्य दृष्टिकोण के अनुसार इकोसिस्टम को चार घटकों में विभक्त किया गया है :—

1. अजैव पदार्थ (Abiotic substances)
2. उत्पादक (Producers)
3. उपभोक्ता (Consumers)
4. विघटक (Decomposers)

1. अजैव पदार्थ (Abiotic substances)—ये इकोसिस्टम के अजीवित घटक हैं जिनके अन्तर्गत अकार्बनिक तथा कार्बनिक यौगिक सम्मिलित हैं। इकोसिस्टम के अजैव अकार्बनिक घटकों में जल, CO_2, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कैल्शियम तथा फास्फोरस तथा इनके यौगिक जैसे कार्बोनेट, नाइट्रेट, फास्फेट आदि सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ जैसे CO_2, Water एवम् O_2 तो प्रकृति में स्वतन्त्र रूप से पाये जाते हैं तथा अन्य भूमि के अन्दर जल में घुलित रहते हैं तथा कुछ मृतोपरान्त जीवों के शरीर के विघटन के फलस्वरूप बनते हैं।

2. उत्पादक (Producers)—ये इकोसिस्टम के स्वजीवी जीव (हरे पादप) हैं जो सरल अकार्बनिक यौगिकों से जटिल कार्बनिक पदार्थों के रूप में अपना भोजन बनाने में समर्थ होते हैं। इकोसिस्टम के अन्तर्गत छोटे सूक्ष्म पादप (पादप प्लवक—phytoplankton) या जड़ों वाले पेड़-पौधे तथा उथले जल में तैरने वाले पौधे सम्मिलित हैं। पादप प्लवक तालाबों व जोहड़ों में उस गहराई तक पाये जाते हैं जहाँ तक कि प्रकाश की किरणें पहुँच पाती है। ये लगभग सभी प्रकार के जल में पाये जाते हैं। विभिन्न इकोसिस्टम में पाये जाने वाले पेड़-पौधे आकृति एवम् संरचना में अत्यधिक भिन्नता प्रदर्शित करते हैं, जैसे घास (grasses) मैदानों में, वृक्ष जंगलों में तथा तैरने वाले पादप तालाब व झीलों के पानी में पाये जाते हैं।

3. उपभोक्ता (Consumers)—ये परपोषी जीव हैं जो अपने भोजन के लिए उत्पादकों पर आश्रित होते है। ये मुख्यत: एक इकोसिस्टम में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के प्राणी हैं। उपभोक्ताओं को विभिन्न वर्गों में रखा जा सकता है :—

(*i*) शाकाहारी प्राणी इकोसिस्टम के **प्राथमिक उपभोक्ता** (primary consumers) कहलाते हैं। ये केवल वनस्पति का सेवन करते हैं। मृग या शशक वन के, चूहा बगीचों का तथा प्रोटोजोअन्स, क्रस्टेशियन्स तथा मौलस्क जोहड़, तालाब व समुद्र के प्राथमिक उपभोक्ता हैं। कीट, कृन्तक प्राणी तथा जुगाली करने वाले पशु स्थलीय पर्यावरण के मुख्य शाकाहारी उपभोक्ता हैं। प्राथमिक उपभोक्ता **प्राथमिक मांसभक्षी प्राणियों** या **द्वितीय उपभोक्ताओं** का भोजन बनाते हैं।

(*ii*) प्राथमिक मांसभक्षी प्राणी **द्वितीय उपभोक्ता** (secondary consumers) कहलाते हैं। ये शाकाहारी प्राणियों का भक्षण करते हैं, जैसे कुत्ता, बिल्ली, लोमड़ी आदि।

(*iii*) द्वितीयक मांसभक्षी प्राणी (secondary carnivores) या वे प्राणी जो कि मांसभक्षी प्राणियों का भक्षण करते है, **तृतीय उपभोक्ता** (tertiary consumers) कहलाते हैं जैसे शेर, चीता आदि।

एक इकोसिस्टम में उत्पादकों एवम् उपभोक्ताओं के सरलतम सम्बन्ध को **'फूड चेन'** (food chain) कहते हैं तथा उस जटिल सम्बन्ध को जिसमें कि विभिन्न प्रकार के उपभोक्ता एक ही प्रकार के उत्पादक से अपना भोजन ग्रहण करते हैं **'फूड वेब'** (food web) कहते हैं। उदाहरणार्थ लकड़बग्घा, शेर द्वारा छोड़े गये शिकार के अवशेषों को अपना भोजन बनाता है। गिद्ध भी नीचे आकर शेर द्वारा छोड़े

हुए अवशेषों को अपना भोजन बनाते हैं।

4. विघटक (Decomposers)—इकोसिस्टम के इस घटक के अन्तर्गत सूक्ष्म जीव आते हैं जो मृत व क्षय होते हुए पेड़-पौधों व जन्तुओं का भक्षण करते हैं और उनको सरल कार्बनिक यौगिकों में विघटित कर देते हैं। ये सरल यौगिक वायुमण्डल में विमुक्त हो जाते हैं जो उत्पादकों द्वारा खाद्य पदार्थों के संश्लेषण के उपयोग में आते हैं।

Clarke ने इकोसिस्टम में एक अन्य प्रकार के घटक का उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत **परिवर्तक** (transformers) रखे गये हैं। ये विघटित पदार्थों पर प्रतिक्रिया करके उनको विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक एवम् कार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं।

यह आवश्यक नहीं कि किसी एक इकोसिस्टम में उपर्युक्त सभी घटक उपस्थित हों। कुछ इकोसिस्टम में किसी न किसी घटक का अभाव अवश्य ही देखा गया है।

प्रश्न 12. ताल इकोसिस्टम का उदाहरण के रूप में वर्णन करिये।

Discuss pond as an example of ecosystem.

स्वच्छ पानी का ताल या तालाब स्वयं में एक पूर्ण रूप से स्वनियन्त्रित या स्वसंधारित इकोसिस्टम को प्रदर्शित करता है। वास्तव में ताल का जल छिछला व स्थिर होता है जिसमें किसी प्रकार की हलचल नहीं होती। इसमें बहुतायत में वनस्पति व असंख्य सूक्ष्मजीव और बड़े आकार के पेड़-पौधे व जीव-जन्तु होते हैं। ताल के इकोसिस्टम में चारों मूल घटक मिलते हैं जो निम्न प्रकार से हैं :—

1. अजीवीय पदार्थ (Abiotic substances)—ये ताल इकोसिस्टम के अजीवित या निर्जीव घटक हैं जिनमें पानी, कार्बन डाइ-ऑक्साइड, ऑक्सीजन, कैल्शियम, नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस यौगिक तथा ऐमीनो एसिड आदि मूल अकार्बनिक एवम् कार्बनिक पदार्थ सम्मिलित हैं। इन आवश्यक पोषक तत्त्वों की केवल थोड़ी-सी मात्रा ताल के जल में घुलनशील अवस्था में मिलती है तथा शेष पदार्थ तलछट में ठोस पदार्थों के रूप में तथा जीवों के शरीर में संचित रहते हैं। ठोस पदार्थों से पोषक तत्त्वों की मुक्ति की दर सूर्य की ऊर्जा के निवेश, दिन-रात का चक्र, ताप के परिवर्तन तथा अन्य वातावरणीय परिस्थितियाँ दिन-प्रतिदिन के आधार पर ताल के पूरे इकोसिस्टम का नियमन करती हैं।

2. उत्पादक (Producers)—ताल में निम्न प्रकार के उत्पादक पादप मिलते हैं :—

(*i*) **पादप प्लवक** (Phytoplanktons)—ये सूक्ष्म आकार के तैरने वाले पादप शैवाल हैं जो प्रायः ताल में उतनी गहराई तक मिलते हैं जहाँ तक सूर्य का प्रकाश मिलता है। बहुतायात में होने पर इनके कारण ताल के पानी का रंग हरा-सा प्रतीत होने लगता है। ताल के अतिरिक्त झील, गहरे जोहड़ व समुद्र के इकोसिस्टम में भी कार्बनिक भोजन के उत्पादन में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान एवम् मुख्य स्थान होता है। ताल में मिलने वाले पादपप्लवक इस प्रकार हैं—*यूडोरांइना* (*Eudorina*), *वॉल्वॉक्स* (*Volvox*), *क्लॉस्टेरीयम* (*Closterium*), *माइक्रोसिस्टिस* (*Microcystis*), *एनाबीना* (*Anabaena*), *ओसिलेटोरिया* (*Oscillatoria*), *यूग्लीना* (*Euglena*), *सेरेशियम* (*Ceratium*), तथा *मेलोसाइरा* (*Melosira*) आदि।

(*ii*) **तन्तुवत् या रेशेदार शैवाल** (Filamentous algae)—ये भी पानी की
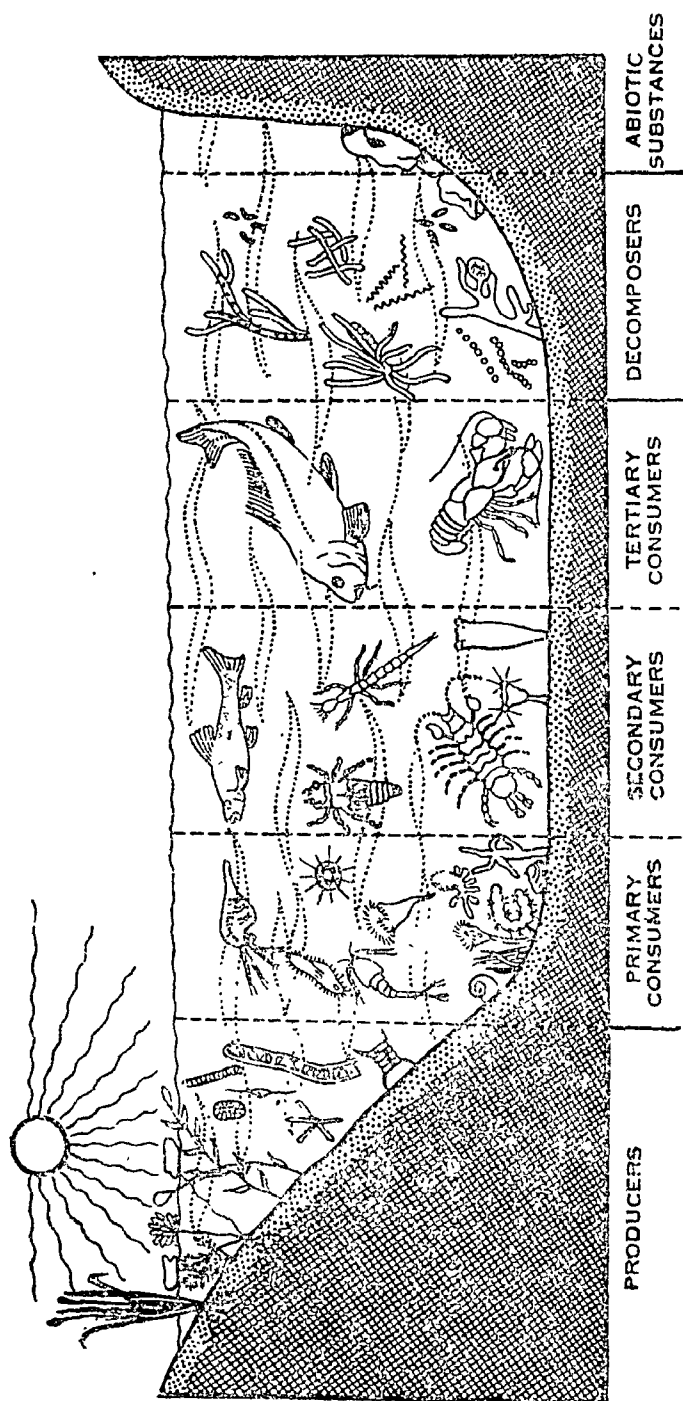
चित्र ५·१. ताल का इकोसिस्टम (Ecosystem of pond)

1. Abiotic substances
2. Producers—phytoplankton
3. Producers—rooted vegetation
4. Primary consumers (herbivores)
5. Secondary consumers (carnivores)
6. Tertiary consumers (secondary carnivores)

सतह पर तैरते हुए मिलते हैं, जैसे *स्पाइरोगाइरा* (*Spirogyra*), *इडोगोनियम* (*Oedogonium*), *कैरा* (*Chara*), *नाइटेला* (*Nitella*) इत्यादि।

(*iii*) **निर्गत पादप** (Emergent plants)—ये *आइपोमिया* (*Ipomea*), *जूसिया* (*Jussiaea*) इत्यादि ताल की सतह पर तैरने वाले पादप हैं। *फ्रैगमाइटस* (*Phragmites*), *टाइफा* (*Typha*) तथा *एकोरस* (*Acorus*) आदि जड़ों वाले पौधे हैं।

(*iv*) **निमग्न पादप** (Submerged plants)—*वैलिसनेरिया* (*Vallisneria*), *पोटेमोजिटोन* (*Potamogeton*), *नायास* (*Naias*) तथा *ओटेलिया* (*Otellia*) इत्यादि पौधों की जड़ें ताल की तली में स्थानवद्ध रहती हैं। *यूट्रिकुलेरिया* (*Utricularia*) तथा *सैरेटोफाइलम* (*Ceratophyllum*) मूलविहीन निमग्न पौधे हैं।

(*v*) **सतह पर तैरने वाले पादप** (Surface floating plants)—ये *पिस्टिया* (*Pistia*), *लेम्ना* (*Lemna*), *वुल्फिया* (*Wolffia*) तथा *आइकॉर्निया* (*Eichornia*) आदि पादप है।

3. दीर्घ उपभोक्ता (Macro-consumers)—ये ताल के प्राणिजात को निरूपित करते हैं। इनको **प्राथमिक उपभोक्ता या शाकाहारी, द्वितीय उपभोक्ता या मांसाहारी** तथा **तृतीयक उपभोक्ता** में विभक्त कर सकते हैं। प्राथमिक उपभोक्ता पादपों का भक्षण करते हैं। ये निम्न प्रकार के होते है :—

(*i*) **प्राणिप्लवक** (Zooplanktons)—ये पानी की तरंगों के साथ-साथ सतह पर तैरते रहते हैं, जैसे डाइनोफ्लेजेलेट्स (dinoflagellates), हेलिओजोअन्स (heliozoans), तथा कॉपिपोड् (copepods) आदि।

(*ii*) **तरणक** (Nektones)—ये स्वच्छंद रूप से तैरने वाले जलीय प्राणी हैं। इनमें सुविकसित प्रकार के चलन अंग होते हैं।

(*iii*) **नितलक** (Benthos)—ये तली पर रहने वाले प्राणी हैं जो तली पर रेंगते हुए अथवा स्थानवद्ध रहते हैं।

शिकारी कीट ताल के **द्वितीय उपभोक्ता** या **मांसाहारी** है तथा गेमफिश (gamefish) तृतीय उपभोक्ता हैं।

4. मृतजीवी जीव (Saprophytic organisms)—तालाव की दलदल एवम् तली पर कवक व मृतजीवी वैक्टीरिया वहुतायत से मिलते हैं। ये मृत पेड़-पौधों व जन्तुओं का अपघटन कर अपना भोजन प्राप्त करते हैं। ताप की अनुकूल परिस्थितियों में अपघटन अधिक तेजी से होता है।

प्रश्न 13. किसी जीव समुदाय या इकोसिस्टम में आहार-शृंखला पर एक निवन्ध लिखिये।

Write an essay on food chain in an ecosystem or community.

वर्णन करिये कि जीव अपनी पोषण-सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए किस प्रकार परस्पर-सम्बन्धित होते हैं।

Describe how organisms are interrelated for their nutritional requirements.

आहार-शृंखला क्या है? किसी स्थलीय समुदाय में आहार-शृंखला का उल्लेख करिये।

What is food chain ? Describe a food chain in a land community. *(Gorakhpur 1972)*

आहार श्रृङ्खला या फूड-चेन
(Food-Chain)

इकोसिस्टम के अन्तर्गत पाये जाने वाले प्राणियों में ऊर्जा-प्रवाह (energy-flow) तथा भोज्य पदार्थों का परिसंचालन होता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते है कि एक इकोसिस्टम के विभिन्न जीव अर्थात् पौधे एवम् प्राणी अपनी पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुसार एक-दूसरे पर आश्रित होते है। इस प्रकार परस्पर सम्बन्धित जीव एक **फूड-चेन** (food-chain) बनाते है। अत: **फूड-चेन जीवों का वह समूह है जिसमें जीव भोज्य एवम् भोजक के रूप में परस्पर सम्बन्धित रहते है तथा जिसमे खाद्य ऊर्जा भोज्य से भोजक को स्थानान्तरित होती है।**

ऊर्जा दो रूपों में पायी जाती है—स्थितिज ऊर्जा (potential energy) तथा गतिज ऊर्जा (kinetic energy)। स्थितिज ऊर्जा विश्रामावस्था में स्थित ऊर्जा है जिसमें कार्य करने की क्षमता होती है। गतिज ऊर्जा वह ऊर्जा है जो स्थितिज ऊर्जा का उपयोग करके किसी क्रिया को पूर्ण करती है। सूर्य ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत है, किन्तु सभी समुदायों के जीव सूर्य की ऊर्जा का उपभोग करने में समर्थ नहीं होते। केवल हरे पेड़-पौधे ही सूर्य की ऊर्जा को स्थितिज ऊर्जा के रूप में परिवर्तित करके संचित रखने में समर्थ होते है। सूर्य की ऊर्जा की सहायता से हरे पादप CO_2 को C में अवकरित करते हैं और कार्बन से ये carbohydrates, fats तथा proteins का निर्माण करते है जो जीवन के लिए आवश्यक ईंधन है। अत: उपर्युक्त यौगिकों में ट्रेप की हुई स्थितिज ऊर्जा पौधों मे संग्रहित रहती है। अत: पादप अन्य समस्त जीवों के लिए **ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत** (primary source of energy) हैं। इसी लिए स्वजीवी (autotrophic) पादपों को उत्पादक (producers) कहते हैं। प्राणी-

चित्र ५·२. एक इकोसिस्टम में सरल प्रकार की फूड-चेन का चित्रीय निरूपण
(Diagrammatic representation of a simple food chain in an ecosystem)
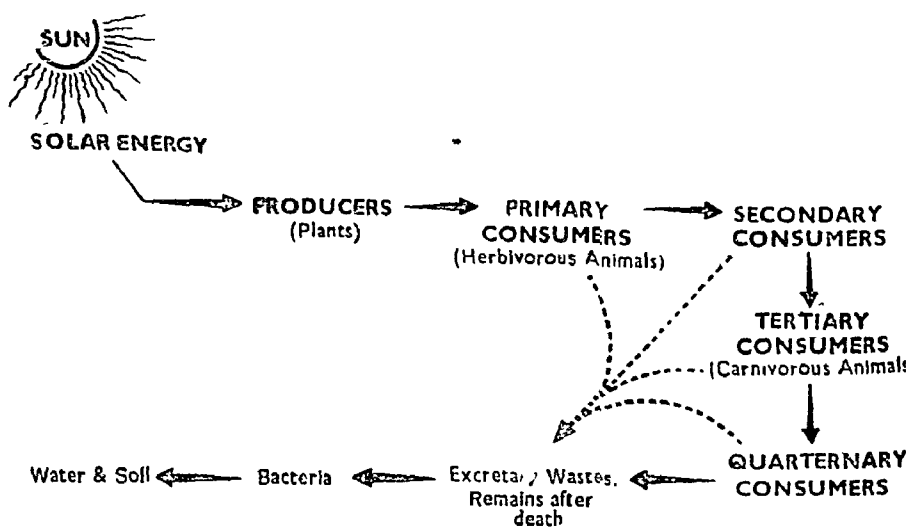
समुदाय में वनस्पति का सेवन करने वाले या **शाकाहारी** (herbivores) प्राणी **प्राथमिक उपभोक्ता** (primary consumers) कहलाते है ।

द्वितीयक उपभोक्ता (secondary consumers) प्राणी प्राथमिक उपभोक्ताओं का शिकार करते हैं । इनके अन्तर्गत **मांसभक्षी** (flesh-eating) तथा सर्वाहारी प्राणी (omnivores) आते हैं ।

प्रत्येक फूड-चेन में पदों की सख्या 4–5 तक ही सीमित होती है और चेन के प्रत्येक पद के अन्तर्गत स्थितिज ऊर्जा का एक बड़ा भाग ऊष्मा के रूप में लुप्त हो जाता है । इससे स्पष्ट है कि जितनी ही फूड-चेन छोटी होगी उतने ही अधिक जीव स्थितिज भोज्य ऊर्जा के प्राथमिक स्रोत पर निर्भर कर सकते हैं । इससे स्पष्ट है कि कम-से-कम पदों वाली फूड-चेन ही सर्वाधिक क्षम (efficient) होती है ।

आहार श्रृङ्खला की किस्में (Kinds of Food Chains)

फूड-चेन पृथक् अनुक्रम न होकर एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धी अनुक्रम है । इस प्रकार के अन्तःपाशक प्रतिरूप को **खाद्य-जाल या फूड-वेब** (food-web) कहते है । फूड-चेन तीन प्रकार की होती है :—

1. परभक्षी चेन (Predator chain)
2. परजीवी चेन (Parasitic chain)
3. मृतजीवी चेन (Saprophytic chain)

1. परभक्षी फूड-चेन (Predator food chain)—यह चेन शाकाहारी प्राणियों से प्रारम्भ होती है तथा प्रत्येक पद के साथ परभक्षी प्राणियों के शरीर का आकार भी बढ़ता जाता है । इसमें शाकाहारी प्राणी **प्राथमिक उपभोक्ता** है तथा परभक्षी प्राणी **द्वितीय** एवम् **तृतीय** उपभोक्ता है तथा फूड-चेन के प्रत्येक पद के साथ परभक्षी के शरीर के आकार में वृद्धि हो जाती है । प्रथम पद के परभक्षी द्वितीय पद के परभक्षियों से छोटे होते है । एक ऐसा तालाब या जोहड़ जिसमें मछलियाँ रहती हैं, परभक्षी फूड-चेन का एक सुन्दर उदाहरण प्रदर्शित करता है । इसमें स्थित पादपप्लवक (phytoplanktons) **उत्पादक** (consumers) हैं तथा इनका सेवन करने वाले प्राणि-प्लवक (zooplanktons) **प्राथमिक उपभोक्ता** (primary consumer) हैं । प्राणि-प्लवक या प्राथमिक उपभोक्ता का सेवन कुछ अपृष्ठवंशियों द्वारा किया जाता है तथा ये मछलियों द्वारा उपभोग में लाये जाते हैं । छोटे आकार की मछलियाँ बड़े आकार की मछलियों द्वारा खाई जाती है ।

2. परजीवी फूड-चेन (Parasitic food chain)—यह भी शाकाहारी प्राणियों से आरम्भ होती है किन्तु इसमें भोज्य ऊर्जा का क्रम बड़े आकार के प्राणियों से छोटे आकार वाले प्राणियों की ओर होता है । अतः बड़े आकार के प्राणी **परपोषी** (host) कहलाते हैं और छोटे आकार के वे प्राणी जिनकी खाद्य-सम्बन्धी सभी आवश्यकताएँ परपोषी द्वारा परिपूर्ण होती है, **परजीवी** (parasites) कहलाते हैं ।

3. मृतजीवी फूड-चेन (Saprophytic food-chain)—इसके अन्तर्गत भोज्य ऊर्जा मृतक प्राणियों एवम् पेड़-पौधों के क्षय होते हुए कार्बनिक पदार्थ से बैक्टीरिया आदि सूक्ष्मजीवों में स्थानान्तरित होती है ।

स्थल समुदाय में फूड-चेन
(Food-chain in a Land Community)

स्थल समुदाय की फूड-चेन (food chain) भी जलीय जीवों की फूड-चेन के

ही समान होती है। इसमें पोषण-सम्बन्धी आवश्यकताएँ मूल रूप से स्वपोषित पादप पूरी करते हैं अर्थात् ये उत्पादकों (producers) को प्रदर्शित करते हैं। अगला पोषण-सम्बन्धी स्तर शाकाहारी प्राणियों (herbivores) या प्राथमिक उपभोक्ताओं (primary consumers) का होता है। पोषण-सम्बन्धी तीसरे, चौथे व पाँचवें स्तरों पर क्रमशः प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक माँसभक्षी उपभोक्ता आते हैं, प्रत्येक पोषण-सम्बन्धी स्तर पर ऊर्जा का ह्रास होने के कारण बायोमास (biomass) भी क्रमिक रूप से निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर कम होता जाता है।

स्थलीय समुदायों के उत्पादक मुख्य रूप से वृक्ष, झाड़ियाँ व घास आदि होते हैं। उत्पादकों के विभिन्न वनस्पति समूहों के अनुरूप उपभोक्ताओं में भी अत्यधिक भिन्नताएँ पायी जाती हैं। न केवल कीट, आदि छोटे जीव ही बल्कि खुर वाले भीमकाय स्तनधारी भी प्राथमिक उपभोक्ताओं के अन्तर्गत आते हैं।

प्रश्न 14. (a) आहार श्रृंखला की परिभाषा दीजिये। विभिन्न प्रकार की खाद्य-श्रृंखलाओं का संक्षेप में वर्णन करिये।

(b) किसी समुदाय में ऊर्जा-प्रवाह का सामान्यकृत चित्र दीजिये।

(a) Define a food chain. Briefly enumerate the kinds of food chains. (b) Draw the generalised energy flow diagram of a community. (*Delhi 1974*)

आहार श्रृङ्खला (Food Chain)

कृपया प्रश्न 13 देखिये।

ऊर्जा प्रवाह का चित्र (Diagram of Energy Flow)

कृपया चित्र ५.२ देखिये।

प्रश्न 15. किसी इकोसिस्टम में ऊर्जा प्रवाह का उल्लेख करिये।

Describe energy flow in an ecosystem.

(*Shivaji 1971 ; Gujrat 71*)

जीव-जगत् अर्थात् पेड़-पौधों व जीव-जन्तुओं का अस्तित्व इकोसिस्टम में ऊर्जा के प्रवाह एवम् पदार्थों के परिसंचरण पर निर्भर करता है। समस्त जैव क्रियाओं के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। भूमण्डल पर पड़ने वाले सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा का लगभग 57 प्रतिशत भाग वायुमण्डल द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। लगभग 36% भाग जल व थल के तापन एवम् जल के वाष्पीकरण में व्यय हो जाता है। पादपों पर केवल 8% प्रकाश पड़ता है जिसका लगभग 80–85% भाग ऊर्जा के रूप में अवशोषित कर लिया जाता है जिसका 50% प्रकाश-संश्लेषण के काम आता है।

पादपों द्वारा यह ऊर्जा कार्बनिक पदार्थों में स्थितिज ऊर्जा के रूप में संचित कर ली जाती है। अतः पादप इकोसिस्टम में उत्पादकों (producers) को निरूपित करते हैं और प्रथम पोषण रीति (trophic level) को प्रदर्शित करते हैं। पादपों द्वारा संचित ऊर्जा समुदाय या इकोसिस्टम के विभिन्न पदों में प्रवाहित होती है। इसे आहार श्रृंखला कहते हैं। आहार श्रृंखला में अधिक-से-अधिक चार पद होते हैं—उत्पादक, प्राथमिक उपभोक्ता, द्वितीय उपभोक्ता तथा तृतीय उपभोक्ता। प्रत्येक पद में श्वसन व अन्य जैव क्रियाओं द्वारा 80–90% गतिज ऊर्जा ऊष्मा के रूप में क्षय हो जाती है।

इकोसिस्टम में ऊर्जा के प्रवाह को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। पादपों पर पड़ने वाले सूर्य के प्रकाश की केवल 2% ऊर्जा कार्बनिक पदार्थों में गतिज ऊर्जा के रूप में बंधित की जाती है। पादपों अर्थात् उत्पादकों द्वारा संचित ऊर्जा को **प्राथमिक उत्पादन** (primary production) कहते हैं। प्रकाश-संश्लेषण
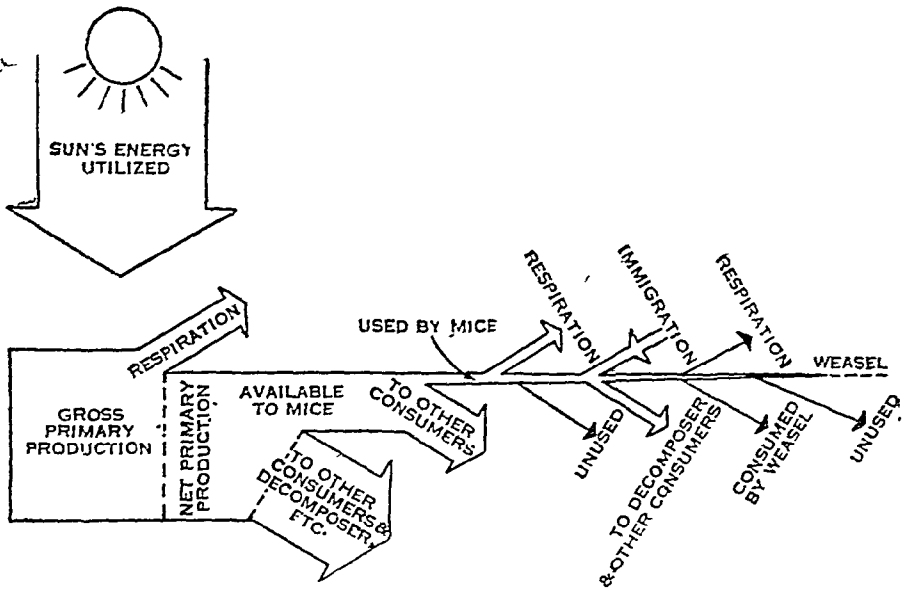
चित्र ५·३. इकोसिस्टम में ऊर्जा-प्रवाह (Diagrammatic representation of energy flow through a food chain or ecosystem. The boxes represent biomass or population mass and the pipes show the path of flow of energy between living units. *The relative size of blocks suggests the quantity of energy flowing through each pipe*)

में बंधित समस्त ऊर्जा को **सकल प्राथमिक उत्पादन** (gross primary production) कहते हैं। इसे **PG** या **A** द्वारा निरूपित करते हैं। उत्पादकों में श्वसन व अन्य जैव क्रियाओं के बाद कार्बनिक पदार्थों में संचित शेष ऊर्जा को **नेट प्राथमिक उत्पादन** (net primary production) कहते हैं। इसे Pn द्वारा निरूपित करते हैं। वास्तव में नेट प्राथमिक उत्पादन भोजन की वह मात्रा है जो पादपों को खाने वाले प्राथमिक उपभोक्ताओं को उपलब्ध होती है। अतः प्राथमिक उपभोक्ता पादपों के रूप में रासायनिक स्थितिज ऊर्जा ग्रहण करते हैं। इसकी अधिकांश मात्रा श्वसन के फलस्वरूप वातावरण में क्षय हो जाती है और केवल थोड़ा-सा भाग ही जीवद्रव्य में गतिज ऊर्जा के रूप में स्थिर होता है। यही क्रम द्वितीय व अन्य पोषण रीतियों (second and other trophic levels) में होता है। अतः एक पोषण रीति से दूसरी पोषण रीति में ऊर्जा के अन्तरण में प्रत्येक पद पर ऊर्जा को एक बड़ी मात्रा ऊष्मा के रूप में बाहर निकल जाती है और इकोसिस्टम में पुनः वापस नहीं आती।

प्रश्न 16. पारिस्थितिक प्ररूप या इकोटाइप पर एक नोट लिखिये।
Write a note on ecotypes.

पारिस्थितिक प्ररूप या पारिस्थितिक प्रजातियाँ
(Ecotypes or Ecological Races)

यह सुपरिचित तथ्य है कि जीव अपने को अनुकूल बनाने के साथ-साथ अपने भौतिक वातावरण को भी रूपान्तरित कर लेते हैं और इस प्रकार ताप, प्रकाश, जल व अन्य भौतिक परिस्थितियों के प्रभाव को कम करते हैं। विभिन्न आवास स्थलों वाले विस्तृत प्रदेश में वितरित जातियों के जीवों पर स्थानीय सूक्ष्म जलवायु (microclimate) का प्रभाव भी पड़ता है। इसीलिए भिन्न वातावरणीय स्थितियों में मिलने वाले एक ही जाति के विभिन्न जीव स्वयं को स्थानीय जलवायु के अनुरूप ढाल लेते हैं और इस प्रकार एक-दूसरे से भिन्न हो जाते हैं। इस प्रकार की स्थानीय स्थितियों के अनुरूप अनुकूलित समष्टियों को इकोटाइप या **पारिस्थितिक प्ररूप** (ecotypes) कहते हैं। अत: पारिस्थितिक प्ररूप जीवों की **स्थानतः अनुकूलित समष्टियां** (locally adapted populations) या **पारिस्थितिक प्रजातियाँ** (ecological races) है।

पारिस्थितिक प्रजातियों में क्रियात्मक अन्तरों के सहवर्ती थोड़े-बहुत आकारिक अन्तर भी हो सकते हैं और नहीं भी। किन्तु इनमें सुनिश्चित रूप से जैनेटिक विभिन्नताएँ होती हैं। अत: इन्हें **जैनेटिक प्रजातियाँ** (genetic races) भी कहते हैं।

इस बात के काफी प्रमाण मिल चुके हैं कि दूर-दूर तक फैली जातियों में जीवों की क्रियात्मक रूप से समान समष्टियाँ नहीं होतीं।

1. 1944 में **Charles Olmsted** ने प्रदर्शित किया कि किसी घास स्थल की विभिन्न समष्टियाँ एक ही प्रकाशवधि के प्रति विभिन्न प्रकार से अनुक्रिया करती हैं।

2. सन 1956 में **McMillan** ने आकारिक रूप से समान दिखने वाली एक ही जाति की प्रेअरी घासों (prairie grasses) को वाटिका में लगाने पर देखा कि प्रेअरी के विभिन्न भागों की घासें प्रकाश के प्रति अलग-अलग प्रकार से अनु-क्रिया करती है और प्रत्येक दशा में इनके वृद्धि एवम् जनन का समय उस क्षेत्र के अनुरूप होता है।

प्रश्न 17. प्राथमिक पारिस्थितिक कारक, बायोम एवम् आहार शृंखला का उदाहरण सहित वर्णन करिये।

Explain primary ecofactors, biomes and food chain with examples. *(Gorakhpur 1971)*

1. प्राथमिक पारिस्थितिक कारक (Primary Ecofactors)

कृपया प्रश्न 1 देखिये।

2. बायोम (Biomes)

कृपया प्रश्न 21 देखिये।

3. आहार शृंखला (Food Chain)

कृपया प्रश्न 13 देखिये।

प्रश्न 18. स्वच्छ पानी के ताल या उष्ण कटिबन्धीय वन में ऊर्जा प्रवाह तथा आहार शृंखला का सविस्तार वर्णन करिये।

Give a detailed account of energy flow and food chains in a fresh water pond or a tropical forest. *(Raj. 1973)*

स्वच्छ पानी के ताल की आहार श्रृंखला
(Food Chain in Fresh Water Pond)

कृपया प्रश्न 12 देखिये।

इकोसिस्टम में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in an Ecosystem)

कृपया प्रश्न 15 देखिये।

प्रश्न 19. पारिस्थितिक पिरैमिड क्या हैं ? जीवों में विभिन्न पोषण रीतियों पर स्थित पिरैमिडी सम्बन्धों का वर्णन करिये।

What are ecological pyramids ? Describe various pyramidal relationships which exist among organisms at different trophic levels.

प्रत्येक इकोसिस्टम की आहार श्रृंखला (food chain) में पोषण की प्रत्येक क्रमिक रीति **पोषण रीति** (trophic level) कहलाती है। इकोसिस्टम में पादप उत्पादक प्रथम पोषण रीति, शाकाहारी द्वितीय पोषण रीति तथा प्राथमिक मांसाहारी तृतीय पोषण रीति बनाते हैं। मुख्य आहार श्रृंखला की अतिरिक्त व पार्श्व श्रृंखलाएँ (जैसे परजीवी) अतिरिक्त पोषण रीतियाँ बनाते हैं। इन सम्बन्धों को त्रिभुजाकार पिरैमिड द्वारा प्रदर्शित करते हैं जिन्हें **पारिस्थितिक पिरैमिड** (ecological pyramids) कहते हैं। पारिस्थितिक पिरैमिड में प्रथम पोषण रीति पिरैमिड का आधार बनाती है और अन्य पोषण रीतियाँ क्रमिक रूप से एक-दूसरे के ऊपर स्थित होकर पिरैमिड का शीर्ष बनाती हैं। पारिस्थितिक पिरैमिड तीन प्रकार के होते हैं—(1) **संख्या का पिरैमिड** (2) **जीवभार का पिरैमिड**, तथा (3) **ऊर्जा का पिरैमिड**।

1. संख्या का पिरैमिड (*Pyramid of numbers*)—यह आहार श्रृंखला की विभिन्न पोषण रीतियों में संख्यात्मक सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। इस प्रकार के पिरैमिड में अधिक बहुतायत से मिलने वाली जातियाँ पिरैमिड के आधार की ओर तथा कम संख्या में मिलने वाली जातियाँ पिरैमिड के शीर्ष की ओर स्थित होती हैं। संख्या के पिरैमिड से ज्ञात होता है कि उत्पादक (शैवाल, डाएटम्स व हरे पादप) सर्वाधिक संख्या में होते हैं और प्राथमिक उपभोक्ता या शाकाहारी अपेक्षाकृत कम संख्या में होते हैं। ये प्राथमिक मांसाहारी या द्वितीय उपभोक्ताओं द्वारा खाये जाते हैं। इनकी संख्या प्राथमिक उपभोक्ताओं की अपेक्षा कम होती है। ये द्वितीय मांसाहारी या तृतीयक उपभोक्ता का भोजन हैं और और भी कम संख्या में मिलते हैं। संख्या के पिरैमिड को घासस्थल, ताल या झील के इकोसिस्टम द्वारा भली प्रकार समझा जाता है।
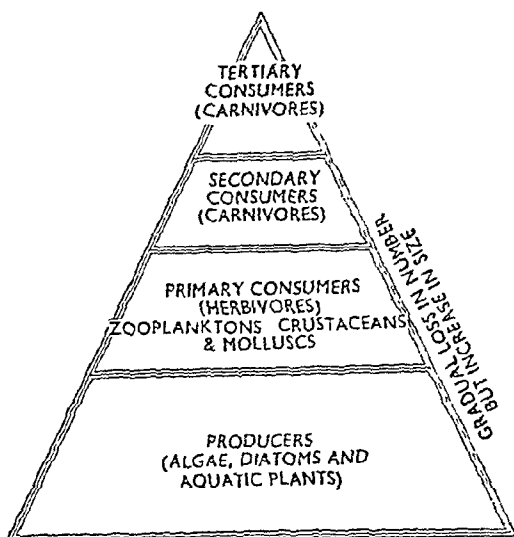
चित्र ५·४. झील के इकोसिस्टम में संख्या का पिरैमिड
(Pyramid of number in a lake ecosystem)

झील के इकोसिस्टम में पिरैमिड के आधार अर्थात् निम्नतम पोषण रीति पर डाएटम्स व शैवाल आदि **उत्पादक** (producers) स्थित होते है। द्वितीय पोषण रीति पर प्राणिप्लवक होते है। ये उत्पादकों की अपेक्षा कम सख्या मे होते है। ये **प्राथमिक उपभोक्ता** (primary consumers) है। तृतीय पोषण रीति पर छोटे आकार की मछलियाँ आदि **द्वितीयक उपभोक्ता** (secondary consumers) या **प्राथमिक मांसाहारी** (primary carnivores) होते है। ये प्राथमिक उपभोक्ताओं की अपेक्षा कम सख्या मे होते है। पिरैमिड के शीर्ष पर **तृतीय उपभोक्ता** (tertiary consumers) या **द्वितीयक मांसाहारी** (secondary carnivores) होते है। ये बड़े आकार की मछलियाँ है जिनकी सख्या गिनी-चुनी होती है। इसी प्रकार शेर घासस्थल मे पिरैमिड के शीर्ष पर तथा उत्पादक (हरे पादप) पिरैमिड का आधार बनाते हैं।

अत. संख्या के पिरैमिड में आधार से शीर्ष की ओर जीवों की संख्या में क्रमिक ह्रास होता जाता है और उनके शरीर के आकार मे वृद्धि होती है।

परजीवियो की आहार श्रृंखला मे संख्या का पिरैमिड उलट जाता है क्योंकि परजीवी अपने पोषक की अपेक्षा आकार मे छोटे होते हैं। उदाहरण के लिए एक ही वृक्ष पर फल खाने वाले अनेक पक्षी वास करते है। इन पक्षियों पर और भी अधिक संख्या में मत्कुण (bugs) व जूं (lice) आश्रित रहते है।

2. **जीवभार का पिरैमिड** (Pyramid of biomass)—इकोसिस्टम में जीवभार अर्थात् जीवों का सजीव भार **जीवभार का पिरैमिड** बनाता है। यह आधार से शीर्ष की ओर प्रत्येक पोषण रीति मे जीव भार में क्रमिक ह्रास प्रदर्शित करता है। स्थलीय वातावरण में उत्पादको अर्थात् वनस्पति का जीवभार सर्वाधिक होता है। यह खाद्य श्रृखला मे प्रथम पोषण रीति को प्रदर्शित करते है। अगली पोषण रीति (trophic level) पर **प्राथमिक उत्पादक** या **शाकाहारी** होते है। उत्पादको का जीवभार प्राथमिक उपभोक्ताओ के जीवभार से कही अधिक होता है। इसी प्रकार **द्वितीय उपभोक्ताओं** या प्राथमिक मासाहारियो का जीव-भार प्राथमिक उपभोक्ताओ से कही कम होता है। इसी प्रकार समुद्र या स्वच्छ पानी के इकोसिस्टम मे पादपप्लवक प्रथम पोषण रीति तथा प्राणिप्लवक द्वितीय पोषण रीति बनाते है। इससे अगली पोषण रीति पर कृमि, मौलस्क व छोटी मछलियाँ आदि **प्राथमिक मांसाहारी** तथा इसके बाद **द्वितीय मांसाहारी** अर्थात् बडी
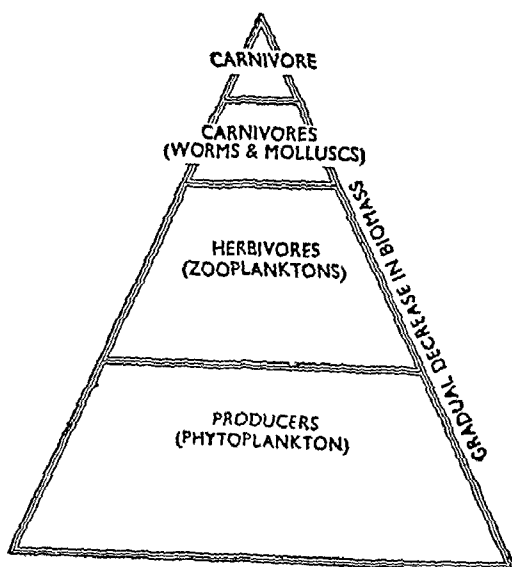
चित्र ५·५. स्थलीय वातावरण मे जीवभार का पिरैमिड (Pyramid of biomass)

मछलियाँ स्थित होती हैं। इस पिरैमिड में भी प्रथम पोषण रीति से उच्चपोषण रीति की ओर जीवभार में क्रमिक ह्रास होता जाता है। परजीवियों में संख्या के पिरैमिड की भाँति जीवभार का पिरैमिड उल्टा होता है। इसी प्रकार निम्न पोषण रीति के जीवों के उच्च पोषण रीति के जीवों की अपेक्षा बहुत अधिक छोटा होने पर भी जीवभार का पिरैमिड उल्टा होता है। उदाहरण के लिए, जहाँ उत्पादक तो बहुत छोटे हों और उपभोक्ता बहुत बड़े, तो ऐसी दशा में किसी एक समय में उपभोक्ताओं का कुल भार उत्पादकों से कहीं अधिक होगा। ऐसी दशा में, यद्यपि उत्पादक पोषण रीति द्वारा उपभोक्ता पोषण रीतियों की अपेक्षा अधिक ऊर्जा प्रवाहित होती है, फिर भी जीवभार में कम होते हुए भी छोटे उत्पादक उपापचय क्रियाओं के तेजी से होने के कारण अधिक उत्पादन करते हैं।

3. *ऊर्जा का पिरैमिड* (Pyramid of energy)—इससे आहार श्रृंखला की प्रत्येक पोषण रीति पर कुल उपलब्ध ऊर्जा का ज्ञान होता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्रत्येक पोषण रीति पर ऊर्जा तथा पदार्थों का क्षय होता है क्योंकि वृद्धि एवम् स्वांगीकरण की क्रियाएँ शत-प्रतिशत दक्ष नहीं होतीं। अतः निम्नतम पोषण रीति (उत्पादक) पर उच्च पोषण रीतियों की अपेक्षा अधिक ऊर्जा उपलब्ध होती है क्योंकि प्रत्येक पोषण रीति पर ऊर्जा की काफी मात्रा का क्षय होता है। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक पोषण रीति पर समय की औसत इकाई में निर्मित कार्बनिक पदार्थ तथा इसमें बन्धित ऊर्जा का ह्रास होता है। इकोसिस्टम की विभिन्न पोषण रीतियों में ऊर्जा के उत्पादन की दर को ऊर्जा के पिरैमिड द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार के पिरैमिड के आधार पर स्वपोषित हरे पादप होते हैं तथा उच्च पोषण रीतियों पर विभिन्न शाकाहारी एवम् मांसाहारी होते हैं।
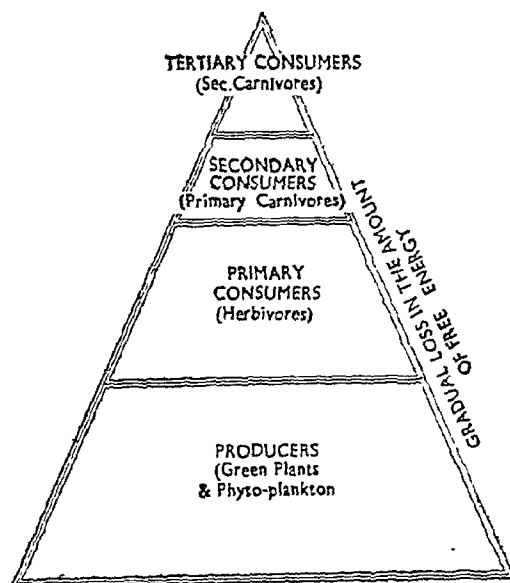
चित्र ५·६. ऊर्जा का पिरैमिड (Pyramid of energy)

अध्याय 6

पारिस्थितिक अनुक्रम (Ecological Succession)

प्रश्न 20. उचित उदाहरणों की सहायता से परिस्थितिक अनुक्रम का वर्णन कीजिये।

With suitable examples give an account of ecological succession ? (*Madras 1974*)

परिस्थितिक अनुक्रम से आप क्या समझते हैं ? परिस्थितिक अनुक्रम के विभिन्न प्रतिरूपो का वर्णन करिये।

What do you understand by ecological succession ? Describe various patterns of succession.

किसी विशेष प्रदेश में समय के एक निश्चित कालांक में विभिन्न समुदायों के नियमित अनुक्रम को पारिस्थितिक अनुक्रम कहते हैं। इकोसिस्टम मे समुदाय का विकास कुछ नवीन जातियो के आगमन के साथ प्रारम्भ होता है। ये जातियाँ धीरे-धीरे कालान्तर मे अधिक विकसित व प्रौढ समुदायो के जीवो द्वारा विस्थापित हो जाती है। इस प्रकार अन्त मे एक स्थिर समुदाय विकसित हो जाता है जिसके जीव स्थानीय परिस्थितियो के साथ एक प्रकार का सन्तुलन-सा बनाये रखते है। उस प्रदेश मे विकसित होने वाले समुदायो की शृखला को **क्रमक या सीरी** (sere) कहते है तथा आपेक्षिक रूप से क्षणिक या मध्यग समुदायो (transitory communities) को **क्रमकी या सीरल अवस्थाएँ** (seral stages) या **नवीन प्रावस्थाएँ** (pioneer stages) तथा अन्तिम स्थायीकृत समुदाय को **चरम अवस्था या क्लाइमेक्स** (climax) कहते हैं।

पारिस्थितिक अनुक्रम का नियम परिस्थितिकी मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका महत्व इसलिए और भी अधिक हो जाता है कि परिस्थितिक अनुक्रम दिशात्मक एवम् पूर्वसूचनीय होता है ; और समुदाय द्वारा भौतिक वातावरण मे परिवर्तनो द्वारा निर्धारित होता है। अन्त मे यह एक स्थायीकृत इकोसिस्टम का रूप ले लेता है जिसमे अधिकतम जीवभार तथा जीवो के बीच सहजीवी क्रियाओ को बनाये रखा जाता है। पारिस्थितिक अनुक्रम के क्रमिक विकास को निम्नलिखित पदो द्वारा समझा जा सकता है।

1. मृदाकणो व कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि तथा विभिन्न स्तरो के विभेदीकरण के फलस्वरूप मृदा का क्रमिक विकास होता है जिससे अन्त मे क्लाइमेक्स समुदाय के लिए उपयुक्त मृदा बनती है।

2. दूसरे चरण मे पादप समुदाय के पौधो की ऊँचाई, सघनता एवम् स्तरणो (strata) मे वृद्धि होती है।

3. तीसरे चरण मे उस प्रदेश मे मृदा के विकास तथा जीव समुदाय के और जटिल होने के साथ-साथ मृदा मे कार्बनिक पदार्थों के निर्माण मे वृद्धि होती है।

4. जैसे-जैसे वनस्पति अधिक सघन होती जाती है समुदाय के विभिन्न जीव अपने सूक्ष्म वातावरण को निर्धारित करने लगते हैं।

5. प्रारम्भिक अनुक्रम के सरल समुदायों का स्थान अब जटिल समुदायों द्वारा ले लिया जाता है।

6. स्थान व पोषक तत्त्वों के लिए अन्तराजातीय एवम् अन्तरजातीय स्पर्धा के कारण नवीन या पॉयनियर (p oneer) अवस्थाओं की समष्टियाँ समय के साथ एक-के-बाद-एक विकसित होकर चरम सीमा पर पहुँचती है और अन्त में लुप्त हो जाती हैं। पादप के विभिन्न जातियों में तथा वातावरण के साथ अनुक्रिया के फलस्वरूप मृदा, नमी व ह्यूमस आदि वातावरणीय रूपान्तरणों का एक अविरत अनुक्रम स्थापित हो जाता है। छोटी व अल्पकालीन पॉयनियर जातियों के स्थान पर पादपों की बड़ी व दीर्घ आयु वाली जातियों के विकसित होने पर वातावरणीय परिवर्तनों की गति मन्द पड़ जाती है।

7. इसके फलस्वरूप समुदायों के आपेक्षिक स्थायित्व में वृद्धि होती है और अन्तिम समुदाय जो कि प्रायः स्थायी होता है, **क्लाइमेक्स** (climax) कहलाता है। क्लाइमेक्स या चरम अवस्था वाले समुदाय में मुख्यतः लम्बी आयु वाले पादप होते हैं जो समुदाय के विभिन्न घटकों तथा अपनी समष्टियों के बीच सन्तुलन बनाये रखते हैं।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि पादप समुदाय स्थायी हो गया है किन्तु किसी भी पदार्थ, जैसे भूमि में कार्बनिक पदार्थों का उत्पादन समान खपत द्वारा सन्तुलित हो जाता है जिससे प्रकट में कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता। इस प्रकार पादप समुदाय वातावरण के साथ गतिज सन्तुलन (dynamic equilibrium) स्थापित कर लेता है।

परिस्थितिक अनुक्रमों की किस्में
(Kinds of Ecologieal Succession)

पारिस्थितिक अनुक्रम निम्न प्रकार के होते हैः—

1. प्राथमिक अनुक्रम (Primary succession)—जब अनुक्रम ऐसे प्रदेश में शुरू होता है जहाँ इससे पूर्व किसी भी समुदाय का वास नही था (जैसे नया अनावरत चट्टानी प्रदेश, रेतीले टिब्बे, नये द्वीप, डेल्टे, सागर तट, ताल या झील आदि) तो ऐसे अनुक्रम को **प्राथमिक अनुक्रम** कहते है। उस प्रदेश मे स्थापित होने वाले प्रथम जीवों (पौधे या प्राणी) को **नवीन** या **पॉयनियर समुदाय** (pioneer community) कहते है।

2. द्वितीय अनुक्रम (Secondary succession)—जब समुदाय का विकास किसी ऐसे क्षेत्र में होता है जहाँ से पूर्वस्थित समुदाय निष्कासित कर दिया गया हो और जीवन के अनुकूल सभी आवश्यक परिस्थितियाँ उपलब्ध हों (जैसे कटा हुआ वन प्रदेश व जुते हुए खेत), तो ऐसे अनुक्रम को **द्वितीय अनुक्रम** कहते हैं। द्वितीय अनुक्रम अपेक्षाकृत अधिक तेजी से विकसित होता है क्योंकि वहाँ थोड़े बहुत जीव पहले से ही उपस्थित होते हैं। साथ ही इस प्रकार का प्रदेश समुदाय के विकास के लिए बंध्य प्रदेश की अपेक्षा अधिक अनुकूल होता है।

अनुक्रम के प्रतिरूप (Patterns of Succession)

आवास-स्थल की प्रकृति एवम् उपलब्ध नमी के आधार पर परिस्थितिक अनुक्रम निम्न प्रकार के होते है :—

1. मरुक्रमक या जीरोसीरी (Xerosere)—यह शुष्क परिस्थितियों में होता है। इसे **शुष्कतारम्भी** (xerarch) भी कहते हैं।

2. जलरम्भी या हाइड्रोसीरी (Hydrosere)—यह जल में होता है। इसे **जलरम्भी** (hydrarch) भी कहते हैं।

3. मध्यक्रमक (Mesosere)—अनुक्रम का यह प्रतिरूप पर्याप्त नमी वाले स्थानों में मिलता है। इसे **मध्यरम्भी** (mesarch) भी कहते हैं।

1. मरुक्रमक (Xeroseres)

मरुक्रमक अनुकमक का सर्वोचित उदाहरण नग्नपहाड़ियों, पहाड़ी ढलानों, रेतीले टिब्बों तथा अन्य स्थानों पर देखने को मिलता है जहाँ पानी की अत्यधिक कमी होती है। मरुक्रमक या जीरोसीरी के विभिन्न पद निम्न प्रकार हैं—

1. क्रिस्टोज लाइकेन अवस्था (Crustose lichen stage)—प्रकाश की सीधी किरणों, अधिक ताप व पानी की अत्यधिक कमी के कारण नग्न चट्टानों पर जड़ वाले पौधों का विकास असम्भव-सा होता है। ऐसी दशा में केवल कुछ सरलतम रचना वाले पौधों का विकास सम्भव होता है। इस प्रकार के अति सफल जीव **क्रस्टोज लाइकेन** (crustose lichens) हैं। ये शुष्कन की उच्चतम सीमा को सहने में समर्थ होते हैं। ये वर्षा ऋतु में पानी की काफी मात्रा को सोखकर तेजी से फलते-फूलते हैं। वायु द्वारा बीजाणुओं व सोरेडिया (soredia) के प्रकीर्णन से ये अन्य चट्टानों पर भी फैल जाते हैं। राइजोकार्पन (*Rhizocarpon*) तथा राइनोडिना (*Rinodina*) इस प्रकार के लाइकेन हैं। इनके द्वारा स्रावित अम्ल द्वारा चट्टानों के विघटन की धीमी व लम्बी प्रक्रिया शुरू होती है। चट्टानों के कणों व मृत लाइकेन के कावनिक पदार्थो के निक्षेपित होने से उच्च प्रकार के लाइकेन की वृद्धि के लिए स्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं।

क्रस्टोज लाइकेन की सक्रियता से जैसे ही थोड़ी-सी मृदा निर्मित होती है उच्च लाइकेन—फोलियोज लाइकन (*foliose lichens*), जैसे डर्मेटोकार्पोन (*Dermatocarpon*), पार्मेलिया (*Parmelia*), अम्बिलिकाना (*Umbilicana*) आदि प्रकट हो जाते है। इनके सुकाय बड़े व पर्णवत् (leafy) होते हैं जो क्रस्टोज लाइकेन को पूर्णत: आच्छादित कर लेते हैं। इसके फलस्वरूप क्रस्टोज लाइकेन धीरे-धीरे नष्ट होकर अन्त में पूर्णत: लुप्त हो जाते हैं। इनके मृत शरीर के क्षय से और अधिक ह्यूमस एकत्रित हो जाता है और मृदा का एक पतला स्तर बन जाता है जिसमें पर्याप्त नमी, चट्टान के कण, धूल के कण तथा लाइकेन के अवशेष होते हैं।

लाइकेन के साथ ही वहाँ कुछ माइट्स (mites) तथा मकड़े भी प्रकट हो जाते हैं जो चट्टानों की दरारों आदि में रहते है।

2. मॉस अवस्था (Moss Stage)—मृदा कणों व ह्यूमस की कुछ मात्रा के एकत्रित होने से उस स्थान का वातावरण मॉस (mosses) की वृद्धि के अनुकूल हो जाता है। अब स्थान-स्थान पर टॉर्टुला (*Tortula*), ग्रिमिया (*Grimmia*), ब्रियम (*Bryum*) तथा बार्फुला (*Barfula*) आदि प्रकट हो जाते हैं। बाद में फ्यूनेरिया (*Funaria*), स्फैगनम (*Sphagnum*) तथा पोलाट्राइकम (*Polytrichum*) आदि मॉस विकसित हो जाते है। इस द्वितीय समुदाय के साथ विभिन्न प्रकार के माइट्स (mites) मकड़े तथा स्प्रिंगटेल्स (springtails) भी सहवास करने लगते हैं।

3. शाकीय अवस्था (Herbaceous stage)—मॉस के पौधों के दूर-दूर तक चादर के रूप में फैलने से अधिक ह्यूमस व मृदा का निर्माण होता है। मॉस के पौधों

द्वारा स्रावित अम्लों के द्वारा और अधिक चट्टानों का विघटन होता है जिससे मृदा की गहराई व खनिज लवणों की मात्रा में वृद्धि होती है। इस प्रकार की मृदा शाकीय पौधों के विकास के लिए सर्वाधिक अनुकूल होती है। सर्वप्रथम अनेक एकवर्षी घासें प्रकट होती हैं। वाद मे द्विवर्षी घासें और उसके वाद वर्षानुवर्षी घासें प्रकट होती हैं। अनेक क्षेत्रों में एण्ड्रोपोगॉन (*Andropogon*) नामक broom sedge प्रमुख घास के रूप में विकसित होती है। इन घासों की जड़ों की सक्रियता के फलस्वरूप चट्टानों का विघटन जारी रहता है और इनके मरने से भूमि में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि होती है।

4. क्षुप अवस्था (Shrub stages)—शाकीय पौधों के फलस्वरूप वातावरण में और अधिक रूपान्तरण होता है जिससे अव परिस्थितियाँ क्षुप व वहुवर्षी काष्ठीय पौधों के अनुकूल हो जाती है और *प्रॉसोपिस* (*Prosopis,*) *कैपारिस* (*Capparis*), *जिजिफस* (*Zizyphus*) तथा *ऐकेशिया* (*Acacia*) आदि पौधे प्रमुख वनस्पति का रूप ले लेते हैं।

क्षुप व झाड़ीनुमा पौधों के आगमन के साथ अव यहाँ विभिन्न प्रकार के जीव जन्तु भी वास करने लगते हैं। ये दोनों परस्पर मिलकर वातावरण को प्रभावित करते है।

5. चरम अवस्था या क्लाइमेक्स वन (Climax forest)—क्षुप पौधों (shrubs) के स्थापित होने के साथ और अधिक मृदा का निर्माण होता है तथा वातावरण में नमी वढ़ जाती है। इस प्रकार की परिस्थितियाँ काष्ठीय वृक्षों के अत्यधिक अनुकूल होती हैं। शुरू मे वृक्ष वौने तथा दूर-दूर पर छितरे हुए होते है किन्तु अन्त मे **क्लाइमेक्स वन समुदाय** सुस्थापित हो जाता है। यह पारिस्थितिक अनुक्रम की श्रृंखलाओं की अन्तिम कड़ी को प्रदर्शित करता है। क्लाइमेक्स समुदाय तथा वातावरणीय परिस्थितियों के सामान्य वने रहने तथा किसी दैविक प्रकोप के कारण उस क्षेत्र में कोई परिवर्तन न होने पर उस प्रदेश का क्लाइमेक्स समुदाय अनिश्चित काल तक स्वयं को वनाये रखता है।

2. जलक्रमक (Hydrosere)

जलक्रमक या जलरम्भी अनुक्रम स्वच्छ पानी के ताल, जोहड़, झील, समुद्री तट तथा डेल्टों व मुहानों पर देखने को मिलता है। इस प्रकार के अनुक्रम को एक नये वने ताल द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है जिसमे जलक्रमक की विभिन्न स्थितियाँ निम्न प्रकार से होती हैं:—

(1) निमग्नावस्था (Hydroseres)—प्रारम्भ में ताल के पानी में पोषक तत्त्व अल्पमात्रा में होते है और यह जीवनविहीन होता है। इस प्रकार के आवास में सर्वप्रथम प्लवक विकसित होते हैं। ये नवीन या **पॉयनियर जातियाँ** (pioneer species) को निरूपित करते है। पादपप्लवक पानी की सतह पर तैरते हुए वृद्धि करके तेजी से अपनी संख्या को वढ़ाते हैं। इनके साथ ही पानी की सतह पर अनेक प्राणिप्लवक विकसित हो जाते है। मृत पादप व प्राणिप्लवकों के शरीर के तल में वैठने से अधःस्तर में कार्वनिक पदार्थ की प्रचुर मात्रा एकत्रित हो जाती है। पानी मे कार्वनिक पदार्थो व खनिज लवणों की वृद्धि के साथ-साथ कुछ जड़ों वाले निमग्न जलोद्भिद पौवे प्रकट हो जाते हैं। *सेरैटोफाइलन* (*Ceratophyllum*), *पोटामेजेटोन* (*Potamogeton*), *वैलिसनेरिया* (*Vallisneria*) व *यूट्रिकुलेरिया* (*Utricularia*) आदि ऐसे पौधों के सामान्य उदाहरण है। इनके मरने एवम् क्षय होने से जलीय

माध्यम मे पोषक तत्त्वो की मात्रा और बढ जाती है। तलछट के जमने व पोषक पदार्थों की वृद्धि के कारण ताल का जल ऊपर उठने लगता है और यह क्रमिक रूप से उथला हो जाता है।

(2) प्लवनावस्था (Floating stage)—जब ताल मे पानी की गहराई केवल 6–8 फीट रह जाती है, प्लवी पौधे (floating plants) प्रकट होना शुरू कर देते है। इस प्रकार के पादप *निलम्बियम (Nelumbium)*, ट्रापा (*Trapa*) तथा
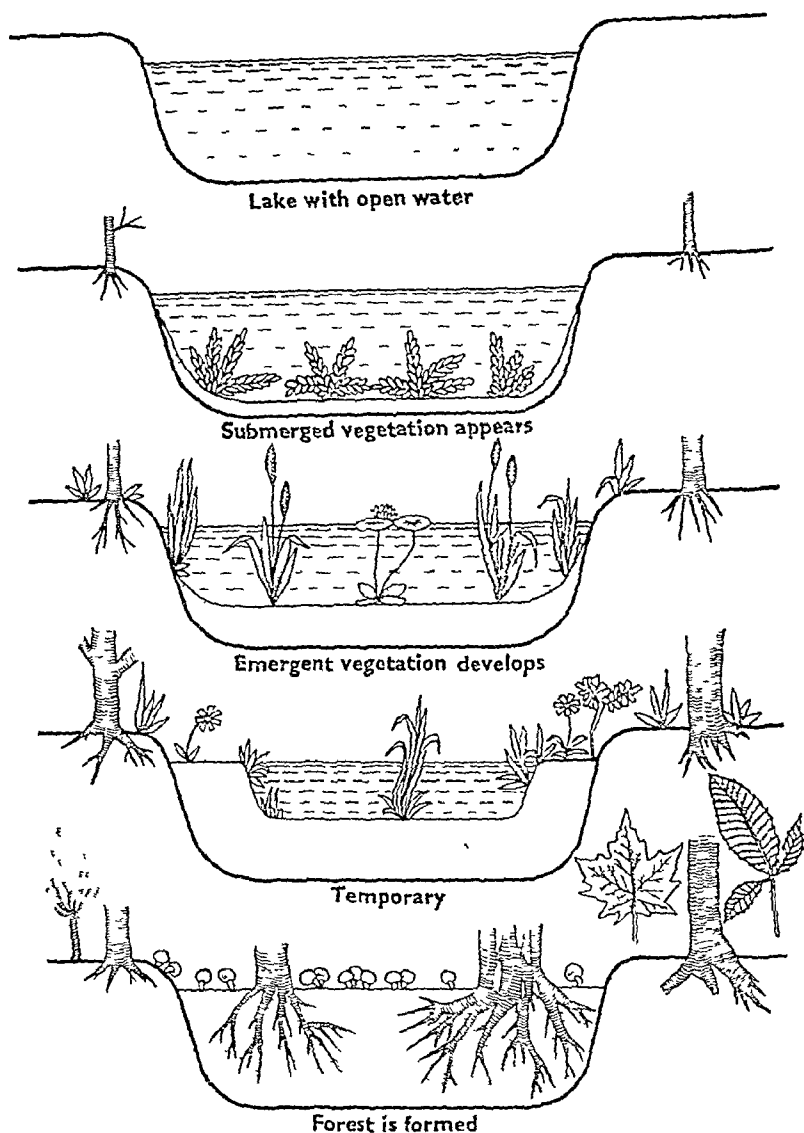
चित्र ६·१. ताल मे पादप अनुक्रम का चित्रीय निरूपण (Diagrammatic representation of plant succession in a pond)

मोनोकारिया (*Monocharia*) आदि है। इनकी जड़ें कीचड़ में धँसी रहती हैं और पत्तियाँ पानी की सतह पर तैरती रहती हैं। कुछ समय बाद लेम्ना (*Lemna*), एजोला (*Azolla*) तथा वुल्फिया (*Wolffia*) आदि मुक्त तैरने वाले पौधे वृद्धि करके पानी की पूरी सतह पर फैल जाते हैं।

(3) नड अनूप अवस्था (Reed swamp stage)—वाष्पीकरण द्वारा जल के उड़ने तथा और अधिक तलछट के एकत्रित होने से ताल का जल उथला हो जाता है। अब ताल का वातावरण मुक्त तैरने वाले व निमग्न पौधों के अनुकूल नहीं रहता। अब टाइफा (*Typha*), रूमैक्स (*Rumex*) तथा सैजिटेरिया (*Saggitaria*) आदि नड अनूप पौधे (reed swamp plants) प्रकट होना शुरू कर देते हैं। ये पौधे तलछट व मृत पादपों के अवशेषों को एकत्रित कर तट का निर्माण करते हैं। बीवर (beavers), कस्तूरी उन्दुर (muskrats) तथा अन्य जन्तु कई प्रकार के पदार्थों को खींच कर ताल में ले जाते हैं। तट से पर्णपाती वनस्पति वायु के साथ उड़कर ताल में एकत्रित होती रहती है तथा चारों ओर की मिट्टी व गाद ताल में भरती रहती है। ताल के तट से वनस्पति के रैफ्ट तैर कर ताल के बीच में आ जाते हैं। इनकी जड़ें विकसित होकर कीचड़ में धँस जाती हैं। इस प्रकार ताल में वनस्पति के अनेक उपद्वीप से बन जाते है जो धीरे-धीरे वृद्धि करके तट पर उगने वाली वनस्पति के सम्पर्क में आ जाते हैं।

(4) कच्छ शाद्वल अवस्था (Marsh-meadow stage)—जैसे-जैसे ताल का जल दलदली भूमि में बदलता जाता है, जलीय पौधे दलदल में उगने वाले पौधों (sedges and rushes) द्वारा विस्थापित हो जाते हैं। और अधिक पानी के वाष्पीकरण के फलस्वरूप कच्छीय शाद्वल (marshy meadow) दलदली पौधों के उपयुक्त नहीं रहता और इनके स्थान पर धीरे-धीरे शाक व क्षुप (herbs and shrubs) पौधे विकसित हो जाते हैं।

(5) वनस्थली अवस्था (Woodland stage)—अनुक्रम के आगे की ओर प्रगत होने के साथ भूमि और अधिक शुष्क हो जाती है तथा रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं जिससे और अधिक मृदा का निर्माण होता है। कालान्तर में छोटे वृक्ष विकसित हो जाते हैं जो अन्त में शाकीय क्षुप वनस्पति का स्थान ले लेते हैं। इस प्रकार पूर्ण विकसित वनस्थल का विकास होता है। वनस्पति में परिवर्तन के साथ जलक्रमक समुदाय के प्राणिजात में भी उसी के अनुरूप परिवर्तन होते हैं और जलीय जन्तुओं के स्थान पर स्थलीय पृष्ठवंशी विकसित हो जाते हैं।

3. मध्यक्रमक (Mesosere)

यह मरुक्रमक तथा जलक्रमक के बीच की अवस्था है जिसमें पर्याप्त मात्रा में नमी होती है। इसकी अनुक्रम शृंखला अपेक्षाकृत बहुत छोटी होती है। इसमें जल-सम्बन्धी परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल होती हैं क्योंकि मरुक्रमक व जलक्रमक दोनों में ही पानी की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति से सम्बन्धित प्रारम्भिक समस्या का इसमें पूर्णतया अभाव होता है।

अध्याय 7

आवास
(Habitat)

प्रश्न 21. मुख्य स्थलीय आवास कौन-कौन से हैं ? प्रत्येक की भौतिक एवम् जैव परिस्थितियों तथा उनकी विशिष्टताओं का वर्णन करिये ।

What are main terrestrial habitats ? What are the physical and biological conditions which characterize each of them ? (*Delhi 1973*)

वायोम्स का संक्षेप में वर्णन करिये ।

Write a brief account of biomes.

वायोम (Biomes)

पृथ्वी पर विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले स्थलीय जैव समुदाय ताप, नमी, भूमि में उपलब्ध लवणीय यौगिक, अन्य जीवों की उपस्थिति तथा अन्य सीमाकारक पारिस्थितिक कारकों के अनुरूप भिन्नता प्रदर्शित करते हैं । इसका अर्थ हुआ कि विभिन्न प्रादेशिक जलवायु का उसमें पाये जाने वाले प्रादेशिक जीव-समूह (जन्तु-वनस्पति समूह) एवम् अधिष्ठानों में पारस्परिक सम्बन्ध होता है जिसके फलस्वरूप प्रत्येक जलवायु प्रदेश अपनी विशेषीकृत जलवायु, वनस्पति एवम् जीवों सहित एक यूनिट प्रदर्शित करता है जिसे **वायोम** (biome) कहा जाता है । अतः वायोम एक बड़ा स्थलीय समुदाय-यूनिट है जिसकी वनस्पति एवम् प्राणिजात अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण सरलतापूर्वक पहचाने जा सकते हैं ।

प्रत्येक वायोम में किसी एक विशेष प्रकार की वनस्पति प्रचुरता में होती है जो लगभग समान रूप से वितरित रहती है, जैसे मैदानों में घास, टैंगा में कोनिफर तथा पर्णपाती वनों में पर्णपाती वृक्ष आदि प्रचुरता से पाये जाते हैं, किन्तु उसी वायोम के विभिन्न प्रदेशों में एक ही जाति के विभिन्न पौधों में भिन्नताएँ पायी जाती हैं । किसी वायोम में प्रचुरता से पायी जाने वाली वनस्पति की प्रकृति उसकी भौतिक परिस्थिति पर निर्भर करती है ।

पादप इकोलोजिस्ट (plant ecologist) के अनुसार एक वनस्पति क्षेत्र एक biome को प्रदर्शित करता है तथा इसमें पाये जाने वाले प्राणियों की किस्में इस क्षेत्र की वनस्पति विशेष एवम् पारिस्थितिक कारकों की पारस्परिक क्रिया पर निर्भर करती हैं । संसार के समस्त भूभाग को निम्नलिखित मुख्य biomes में विभाजित किया जा सकता है :—

1. टुण्ड्रा (Tundra)
2. वन (Forest)
3. चरागाह (Grassland)
4. मरुस्थल (Desert)
5. पर्वत (Mountain)

1. टुण्ड्रा वायोम (Tundra biome)—इसके अन्तर्गत साइबेरिया, यूरोप

तथा उत्तरी अमेरिका के उत्तरी भूभाग सम्मिलित हैं जो उत्तर में ध्रुवीय महासागर एवम् ध्रुवीय प्रदेश तक तथा दक्षिण में वन प्रदेश तक फैला हुआ है। इस बायोम में ग्रीष्म काल केवल 60 दिन का होता है तथा इसी काल में वनस्पति उगती है। वर्ष के शेष महीनों में कड़ाके की सर्दी पड़ती है और भूमि स्थायी रूप से बर्फ द्वारा ढकी रहती है। ग्रीष्म काल में ऊपर की कुछ इंच बर्फ ही पिघल पाती है। यहाँ बहुत कम वनस्पति पायी जाती है तथा अधिकांश क्षेत्र बंजर या वनस्पतिविहीन होते है। लाइकन (lichens), मॉस (mosses), घास (grasses), सेज (sedges) तथा छोटी झाड़ियाँ (low shrubs) आदि इस प्रदेश में पायी जाने वाली वनस्पति है।

प्राणिजात (Fauna)—Reindeer, arctic hare, arctic polar bear, wolves, lemmings, snowy owls, musk ox, ptarmigans तथा ग्रीष्म काल में आने वाले migratory birds, आदि टुण्ड्रा की उग्र ज़लवायु में पाये जाने वाले प्राणी हैं।

2. वन बायोम (Forest biome)—वन बायोम उत्तर से दक्षिण की ओर अथवा उच्च अक्षांश से निम्न अक्षांश की ओर फैले रहते हैं। वन बायोम के अन्तर्गत कई विभिन्न प्रकार के जंगल सम्मिलित है, जैसे कोनिफर जंगल, पर्णपाती वन तथा सदावहार वन।

(*i*) **उत्तरी कोनिफर वन या टैगा प्रदेश** (Northern coniferous forest or Taiga)—यह भूभाग कैनाडा, उत्तरी यूरोप, साइबेरिया तथा उत्तरी अमेरिका के उत्तरी क्षेत्रों द्वारा प्रदर्शित है। इस क्षेत्र की जलवायु भी ठण्डी है किन्तु ग्रीष्म काल काफी गर्म होता है तथा ग्रीष्म ऋतु मे दिन भी काफी लम्बे होते हैं, लेकिन शरद ऋतु का आगमन बड़ी जल्दी होता है। शीत काल में भूमि बर्फ से ढक जाती है। इसी कारण इस प्रदेश में पाये जाने वाले वृक्ष सदावहार तथा कोनिफर होते हैं, जैसे spruce, hemlock, pine, fir तथा tamarack इत्यादि।

प्राणिजात (Fauna)—इस वन प्रदेश में अकशेरुकी प्राणी मुख्यतः कीटों द्वारा प्रदर्शित रहते हैं जैसे wood wasps, bark beetles, pine sawflies ; लेकिन केवल ग्रीष्म काल में ही इनकी बहुलता रहती है। कशेरुकी प्राणी मुख्यतः hylids (amphibians), grouse, crossbills, jayas, woodpeckers (birds); squirrels, beavers, horse, deer, Canadian porcupine, wolves, bears, foxes आदि द्वारा प्रदर्शित रहते है, किन्तु moose, elk तथा antelopes आदि कुछ भीमकाय स्तनधारी भी इस भूभाग में पाये जाते हैं।

(*ii*) **शीतोष्ण पर्णपाती वन** (Temperate deciduous forest)—इसके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में वर्षा अधिक व लगभग समान रूप से होती है। प्रति वर्ष औसत वर्षा 30 इंच से अधिक होती है।

इन भूभागों का तापमान सामान्य होता है तथा ग्रीष्म एवम् शीत ऋतु स्पष्ट होती है। यह भूभाग उत्तरी अमेरिका, यूरोप, जापान व आस्ट्रेलिया के कुछ भागों तथा दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी भागों द्वारा प्रदर्शित है। शीत ऋतु में इस वन-प्रदेश के वृक्षों की पत्तियाँ झड़ जाती है। Oak, maple, beech, walnut, hickory, chestnut तथा basswood इस प्रदेश की मुख्य वनस्पति है।

प्राणिजात (Fauna)—इस वन प्रदेश में लगभग सभी अकशेरुकी फाइला के प्राणी पाये जाते है किन्तु *worms, millipedes, snails, isopods तथा विभिन्न* कीटों के wood-boring larvae व पत्तियों का सेवन करने वाले कीट सामान्य रूप

से पाये जाते है। पृष्ठवंशियों मे मछलियाँ बहुलता से पायी जाती है। इनके अतिरिक्त यह भू-भाग salamanders, frogs, tree frogs (amphibia) ; turtles, lizards व snakes (reptilia) ; wild turkey thrushes, great horned owl, hawks, crested fly-catcher तथा woodpeckers (birds) ; pigs, squirrels raccoons, foxes, bears, dear, opossums तथा bobcats (mammals) द्वारा निरूपित है। पक्षी विशेष रूप से वसन्त एवम् ग्रीष्म ऋतुओं मे बहुलता से पाये जाते है किन्तु शीत ऋतु के आगमन के साथ इनमे से अधिकाश पक्षी दक्षिण की ओर प्रव्रजन कर जाते है।

(*iii*) **उष्ण कटिबन्धीय सदावहार वन** (Tropical rain forest)—इसके अन्तर्गत 200 cms. से अधिक वार्षिक वर्षा वाले इक्वेटर (equator) के समीप निचाई पर स्थित भू-भाग आते है, जैसे दक्षिणी अमेरिका मे अमेजन नदी की घाटी, मध्य अफ्रीका मे कांगो नदी घाटी तथा ओरिनीको (Orinico) तथा जेम्बेसी (Zambesi) नदी की घाटियाँ, भारत मे पश्चिमी घाट, मलाया, बोर्निओ (Borneo), ईस्ट इण्डीज (East Indies), न्युगाइना तथा मध्य अमेरिका के कुछ भाग। इन भू-भागो मे वनस्पति इतनी अधिक होती है कि इस बायोम का अध्ययन करना अथवा उसकी उगने वाली विभिन्न वनस्पतियों का चित्र लेना भी सम्भव नही है। इस बायोम की वनस्पति बडे-बडे पत्तों वाले विशालकाय सदावहार वृक्ष है जिन पर लताएँ आच्छादित रहती है। इनके साथ ही रेंगने वाले पौधे लाएनास (linas), तथा एपिफाइट्स (epiphytes) भी पाये जाते है। इन वनो की जलवायु उष्ण होती है तथा पूरे साल वर्षा होने के कारण आस-पास के पर्यावरण मे सदैव ही नमी वनी रहती है। बहुत अधिक वनस्पति के कारण इन वनों में सदैव ही प्रकाश की कमी रहती है और वायु स्वच्छन्द रूप से बहने मे असमर्थ होती है।

प्राणिजात (Fauna)—इन वनों मे वनस्पति एवम् प्राणिजात दोनों में ही विभिन्न प्रकार के जीव पाये जाते है किन्तु पेड-पौधों या प्राणियों की कोई भी जाति प्रभावी रूप से नही पायी जाती। अपृष्ठवशियो मे worms, land leeches, snails, millipedes, centipedes, scorpions, isopods, spiders, termites, bugs, beetles तथा ants आदि बहुलता से मिलते है। पृष्ठवशियो मे frogs व toads (amphibia) ; geckos, chameleons व agamids (lizards) ; विभिन्न प्रकार के सर्प, humming birds, woodpeckers, fruit-eaters, parrots व hornbills (birds) तथा wild pigs, deer, bison, elephant, tiger, black langur, flying squirrels, gorillas, howling monkeys, flying phalangers, hippopotamus, tapir, leopards तथा scaly anteaters (mammals) बहुलता से मिलते है।

3. घासस्थल या चरागाह बायोम (Grassland biome)—घासस्थल महाद्वीपों के भीतरी भागों जैसे पश्चिमी सयुक्त राज्य अमेरिका व अर्जेनटाइना, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी रूस, व साइवेरिया के प्रेअरी प्रदेशो (prairies) मे पाये जाते है। इस प्रकार के भू-भागों मे 25–75 cms तक वार्षिक वर्षा होती है। इस बायोम मे काफी दूर-दूर तक वृक्षों का अभाव होता है किन्तु लम्बी घासे तथा कही-कही पर झाड़ियाँ भी पायी जाती है। घासस्थलो मे वृक्ष एवम् झाड़ियाँ या तो कही-कही पर और वह भी वहुत कम सख्या मे पायी जाती है अथवा फिर ये सरिताओं एवम् नदियो के किनारो के साथ-साथ मिलती है। घासस्थलो की मिट्टी मे ह्यूमस

(humus) की प्रचुरता होती है और यह अत्यधिक उपजाऊ होती है। यह अनाज, आदि फसलों के लिए अत्यधिक उपयुक्त होती है।

प्राणिजात (Fauna)—Antelopus, hippopotamus, wild beasts, horses, asses, dogs, ground squirrels, cattles आदि घास चरने वाले स्तनधारी पृष्ठवंशी घासस्थलों में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त *Rana*, *Bufo* व limbless amphibians, turtles, tortoises, lizards व snakes (reptiles) तथा दाने चुगने वाले पक्षी भी घासस्थलों में बहुलता से पाये जाते हैं। कीटों में grasshoppers, termites, ants, bees तथा wasps, आदि मुख्य रूप से पाये जाते हैं।

4. मरुस्थल बायोम (Desert biome)—25 cm. से कम वार्षिक वर्षा वाले भू-भाग मरुस्थल वायोम के अन्तर्गत आते हैं। यद्यपि कुछ मरुस्थलों में अधिक वर्षा भी होती है किन्तु ठीक समय पर तथा समान रूप से न होने के कारण वहाँ की जलवायु प्राय: शुष्क रहती है। पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका, उत्तरी व मध्य मैक्सिको, दक्षिण-पूर्वी कैलीफोर्निया, दक्षिण-पश्चिमी टैक्सास, उत्तरी अमेरिका में एरिजोना व निवेदा, दक्षिणी अमेरिका के एटाकामा (Atacama) व अर्जेनटाइना के मरुस्थल, भारत में थार मरुस्थल, चीन का गोबी मरुस्थल, अफ्रीका का सहारा मरुस्थल, दक्षिण अफ्रीका का कालाहारी मरुस्थल, आदि मरुस्थल वायोम के उदाहरण हैं। मरुस्थलों में वनस्पति का अभाव होता है और जल के स्रोतों के आस-पास ही थोड़ी-बहुत वनस्पति उगती है। प्राणी भी बहुत कम संख्या के पाये जाते हैं।

मरुस्थल में उगने वाली वनस्पति तथा वहाँ पाये जाने वाले प्राणियों में कठिन एवम् विषम परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए विशेष अनुकूलन पाये जाते हैं। उत्स्वेदन द्वारा होने वाली जल की हानि को रोकने के लिए अधिकांश मरुस्थलीय पौधों की पत्तियाँ कण्टकों या शल्कों में रूपान्तरित होती हैं।

कैक्टस, काँटेदार झाड़ियाँ तथा वर्षानुवर्षी सरस पत्तियों वाले पौधे मरुस्थली वनस्पति के उदाहरण हैं। मरुस्थल में पाये जाने वाले प्राणियों में जल के संरक्षण हेतु सभी सम्भव युक्तियाँ पायी जाती हैं। कुछ प्राणियों में जल को संग्रहित करके रखने के लिए विशेष अंग पाये जाते हैं तथा अधिकांश प्राणी जल की कमी के कारण अत्यधिक सान्द्रता वाला मूत्र ही उत्सर्जित करते है। उनकी त्वचा कण्टकीय होती है तथा शरीर पर मोटे बाह्यकंकाल का आवरण होता है। *Heloderma*, *Mabuya*, *Uromastix*, spiny skin lizards (*Moloch* व *Phrynosoma*), Rattle snakes, camels, mongoose, कुछ rodents, deer आदि मरुस्थल वायोम में पाये जाने वाले पृष्ठवंशी प्राणी है। Spiders, scorpions तथा insects अपृष्ठवंशी प्राणियों के उदाहरण है।

5. पर्वत-वायोम (Mountain biome)—विभिन्न ऊँचाइयों के कारण पर्वतों पर विभिन्न वायोम्स या इकोसिस्टम के छोटे-छोटे क्षेत्र पाये जाते हैं।

अत: दक्षिणी मैक्सिको में हमें सभी प्रकार के वायोम या इकोसिस्टम देखने को मिलते हैं। कम ऊँचाई पर वहाँ उष्ण कटिबन्धीय वर्षा-वन (tropical rain forests) मिलते हैं तथा जैसे-जैसे ऊपर की ओर जाते हैं, पर्वतों के पूर्वी ढलानों पर स्थित वर्षा-वन एक प्रारूपी पर्णपाती वन के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा इसकी जलवायु पर्णपाती वायोम (deciduous biome) के समान होती है। और अधिक ऊँचाई पर पहुँचने पर दक्षिणी कैनेडा के कोनिफर वन प्रदेश (coniferous

forest zone) की जलवायु के समान कोनिफर वन मिलते हैं। अन्त में टुण्ड्रा के हिमाच्छादित ध्रुवीय प्रदेशों के समान वर्फ से ढकी हुई पर्वतों की वर्फीली चोटियाँ हैं जो सदैव वर्फ से ढकी रहती हैं।

इस प्रदेश में केवल वही प्राणी मिलते हैं जो इस प्रकार के उग्र वातावरण में रहने में समर्थ हों। किन्तु उनके वितरण में भी कुछ असमानता होती है। केवल पक्षियों को छोड़कर जिनमें कि उड्डयन की क्षमता होती है, अन्य पृष्ठवंशी पर्वतों की चोटी पर नहीं पहुँच पाते।

स्थलीय बायोम एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्नित नहीं होते अपितु किन्हीं दो बायोम के बीच **मध्यग क्षेत्र** (intermediate zone) या मिश्रित क्षेत्र अवश्य होता है जिसमें दोनों बायोम के जीव कम किन्तु लगभग समान संख्या में मिलते हैं। ऊँचाई तथा जलवायु में परिवर्तन के कारण बायोम पर अक्षांशों का खास प्रभाव नहीं होता।

प्रश्न 22. मरुस्थलीय प्राणी-समूह एवम् उनकी अनुकूलताओं का वर्णन करिये।

Give an account of desert fauna with special reference to their adaptations. *(Calcutta 1970)*

मरुस्थलीय बायोम की पारिस्थितिक विशेषताओं का वर्णन करिये। प्राणियों में मरुस्थलीय अनुकूलनों का उल्लेख करिये।

Describe ecological features of desert biome. Give an account of the desert adaptations in animals.

मरुस्थल (Desert)

पृथ्वी के उस शुष्क-प्रदेश को मरुस्थल कहते हैं जहाँ सामान्य जीवन के लिए आवश्यक वर्षा एवम् नमी की कमी होती है। ऐसे प्रदेशों में वर्षा की वार्षिक औसत 10–15″ से अधिक नहीं होती। इन क्षेत्रों में वर्षा अनियमित एवम् अनिश्चित होती है और कभी-कभी तो कई-कई वर्षों तक वर्षा होती ही नहीं। वर्षा के आधार पर मरुस्थल निम्न प्रकार के होते हैं :—

1. **कम वर्षा वाले मरुस्थल** (Low rainfall deserts)
2. **शीत मरुस्थल** (Cold deserts)
3. **उष्ण मरुस्थल** (Hot deserts)
4. **बंजर भूमि वाले मरुस्थल** (Low nutrient deserts)
5. **विषैले मरुस्थल** (Toxic deserts)
6. **खारी मरुस्थल** (High salt deserts)

मरुस्थलीय जलवायु (Desert Environment)

मरुस्थलीय जलवायु की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :—

1. पानी की कमी (Scarcity of water)—पानी की कमी या शुष्कता सभी मरुस्थलों की एक मुख्य विशेषता है। ऐसा कम वर्षा और जल के प्राकृतिक स्रोतों के अभाव के कारण होता है।

2. तापमान की पराकाष्ठाएँ (Extremes of temperature)—मरुस्थलीय प्रदेशों में दिन के समय तापमान बहुत अधिक होता है तथा आपेक्षिक आर्द्रता (relative humidity) बहुत कम होती है। तेज झुलसाने वाली असह्य धूप प्राणियों पर सीधी पड़ती है। वातावरण में ताप के विकिरण के कारण रात्रि के समय ताप-

मान बहुत नीचे गिर जाता है। अतः मरुस्थलों में एक ही दिन में ताप की दो पराकाष्ठाएँ देखने को मिलती हैं।

3. अन्धड़ (Dust storms)—नमी के अभाव तथा तापमान की पराकाष्ठाओं के कारण शाम के समय आँधी चलती है।

4. वनस्पति का अभाव (Lack of vegetation)—पानी की कमी के कारण मरुस्थलीय प्रदेशों में पेड़-पौधे भी नहीं उग पाते। वनस्पति केवल उन्हीं इलाकों में उगती है जहाँ थोड़ा-बहुत पानी होता है। इन प्रदेशों के पेड़-पौधे कँटीले तथा गूदेदार होते हैं जिससे ये पानी के अत्यधिक वाष्पीकरण को रोककर उसे संचित करे रखते हैं।

मरुस्थलीय प्राणियों के अनुकूलन (Desert Fauna Adaptations)

मरुस्थलों में रहने वाले प्राणी एवम् पेड़-पौधे वहाँ की उग्र जलवायु के अनुकूल होते हैं। उनमें पाये जाने वाले रूपान्तरण जल-प्राप्ति एवम् उसके संरक्षण, अत्यधिक शीत एवम् उष्णता से आत्मरक्षा तथा भोजन-प्राप्ति से सम्बन्धित हैं।

1. जल-प्राप्ति (Water obtaining)—मरुस्थली स्थितियों का मुख्य एवम् मूलभूत कारण जल की कमी होना है। अतः मरुस्थल में रहने वाले प्राणी जल के सभी सम्भव स्रोतों को उपयोग करने का यत्न करते हैं। (i) अधिकांश मरुस्थलों में जल के सोत होते है। प्राणी ऐसे स्रोतों से जल ग्रहण करके उसे काफी समय तक संरक्षित रखते हैं। इस पानी के उपलब्ध न होने पर इनका जीवित रहना ही दुर्लभ हो जाता है। टर्टल (turtles) एवम् शशक (rabbits) इस प्रकार उपलब्ध जल ग्रहण करने की अपेक्षा सरस व गूदेदार पौधों के पानी का ही उपयोग करते हैं। कुछ प्राणी (चींटियाँ एवम् चूहे) एकमात्र रूप से अपने शरीर में कार्वोहाइड्रेट के उपापचय से उत्पन्न हुए पानी पर ही निर्भर करते है। इनका मूत्र ठोस पदार्थों के रूप में वाहर निकलता है। माँसभक्षी प्राणी अपने शिकार के शरीर में स्थित पानी पर निर्भर करते हैं। कुछ प्राणी पानी की आवश्यकता को पेड़-पौधों को खाते समय उन पर पड़ी ओस की बूंदों द्वारा पूर्ण कर लेते हैं। *Moloch* आदि कुछ लिजार्ड प्राणियों की त्वचा वायु से जल सोख कर अपनी आवश्यकता को पूरा करती है।

2. जल-संरक्षण (Water-conservation)—मरुस्थलीय प्राणियों में वाष्पीकारण द्वारा जल की क्षति रोकने के लिए अनेक विधियाँ तथा शरीर के विभिन्न अंगों में जल को संचित करने के लिए अनेक युक्तियाँ पाई जाती हैं।

(*i*) पसीने के रूप में निकलने वाले पानी को रोकने के लिए मरुस्थलीय प्राणियों की त्वचा मोटी होती है।

(*ii*) ये विशेष प्रकार के स्राव उत्पन्न करते हैं जो शरीर से जल की क्षति को रोकते हैं।

(*iii*) जल के वाष्पीकरण को रोकने के लिए सतह पर शल्क एवम् कण्टक होते हैं।

(*iv*) रेप्टाइल्स एवम् पक्षी अर्ध-ठोस यूरिक एसिड के रूप में मूत्र को त्यागकर जल-संरक्षित रखते हैं।

(*v*) मरुस्थलीय प्राणी वर्ष के केवल उन्हीं दिनों में सक्रिय रहते हैं जबकि जल एवम् भोजन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। शेष काल में ये विलों, आदि में निष्क्रिय होकर पड़े रहते है।

(*vi*) *Dipodomys* तथा *Perognathus*, आदि मरुस्थलीय प्राणी दिन के

समय झुलसाने वाली धूप से बचने के लिए नमी वाले बिलों में रहते हैं। ये रात्रि के समय, जबकि बाहर के वातावरण की नमी बिलों की नमी के बराबर होती है, बिलों से बाहर निकलते है।

(*vii*) *Uromastix* बड़ी आन्त्र में जल को संचित रखता है।

(*viii*) ऊँट आमाशय के रूमन (rumen) में जल को सचित करता है। रूमन की दीवार में विशेष प्रकार की जल-कोशिकाएँ होती है। पानी पीने पर इसका आमाशय तथा जल-कोशिकाएँ पानी से भर जाती है। इस प्रकार सचित किया हुआ पानी कई दिनों के लिए पर्याप्त होता है।

3. सुरक्षा (Defence)—मरुस्थलीय प्राणियों को स्वयं को अत्यधिक गर्मी, शीत और अन्धड़ों से बचाना पड़ता है। इन प्राणियों मे अन्य प्रकार की रक्षात्मक युक्तियाँ पायी जाती है—(1) ये रात्रिचर होते है। इनमें से अधिकांश दिन के समय बिलों में पड़े रहते है और केवल रात्रि के समय ही भोजन के लिए बिलों से बाहर निकलते है। **Desert mongoose** प्रातःकाल होते ही बिल में चला जाता है और रात्रि के समय बाहर निकलता है। (2) इनके शरीर पर मोटा आवरण होता है। (3) **Leaf hoppers** की टाँगे लम्बी होती है जिससे इनका शरीर गर्म रेत के सम्पर्क में नही आता, जैसे *Dipodomys*। (4) मरुस्थलीय बिल्लियों के तलुवो पर मोटी खाल होती है जिसकी सहायता से ये रेत पर तेजी से दौड़ने मे समर्थ होती है।

4. अन्धड़ों से रक्षा (Paotection against sand storms)—रेत व धूल से बचने के लिए मरुस्थलीय प्राणियों मे अनेक प्रकार की युक्तियाँ पायी जाती है—(*i*) अनेक प्राणियों में रेत से बचने के लिए **नासाछिद्र** (nostrils) में कपाट होते है। ऊँट में ये नेत्रों की भाँति बन्द हो सकते हैं। अन्य प्राणियों में ये सूक्ष्म छिद्रों के समान होते हैं। (*ii*) *Mabuya* में निचली पलक अत्यधिक बड़ी और पारदर्शी होती है। नेत्रों को रेत से बचाने के लिए यह पूरे नेत्र पर फैल जाती है। कुछ **lizards** में निचली पलक पारदर्शी होती है और ऊपरी पलक से संयुक्त रहती है। (*iii*) ऊँट मे नेत्र शीर्ष के ऊपर ऊँचाई पर स्थित होते है और लम्बे व घने पक्ष्मो (eye-lashes) द्वारा आरक्षित रहते हैं। (*iv*) प्रायः कान शल्कों या रोमों द्वारा आरक्षित रहते है अथवा फिर इनके कर्ण बन्द प्रकार के होते है (*Phrynocephalus* तथा *Phrynosoma*)।

5. तेजी से दौड़ना (Fast running)—शत्रुओं से बचने के लिए मरुस्थलीय प्राणी रेतीली भूमि पर भी तेजी से भागने मे समर्थ होते है। इसके लिए इनमे निम्नलिखित अनुकूलन होते है :—

(*i*) मरुस्थलों में पायी जाने वाली बिल्ली के तलुवे चौड़े होते है और मोटी त्वचा द्वारा ढके रहते है।

(*ii*) *Phrynocephalus* तथा *Teratoscincus* की अगुलियों मे पार्श्व फ्रिंज (lateral fringes) होते हैं जो रेत मे चलने मे सहायता करते है।

(*iii*) *Scapteira* की अगुलियाँ shovels के रूप में रूपान्तरित होती है।

(*vi*) Ostrich की टाँगों पर चमड़े की माँसीली गद्दियाँ होती हैं।

(*v*) ऊँट के पैरों मे चौड़ी गद्दियाँ होती है।

6. वर्ण (Colour)—मरुस्थलीय प्राणी छद्मावरण द्वारा भी शत्रुओं से अपनी रक्षा करते हैं। शरीर की त्वचा का रंग आस-पास की भूमि के समान भूरा, धूसर

अथवा लाल होता है। वर्णो का यह सम्मिश्रण इन प्राणियों को शिकारी जन्तुओं से सुरक्षा प्रदान करता है। जहरीले जन्तुओं के शरीर का रंग भयावह होता है।

7. **विष** (Poison)—अधिकांश रेतीले प्राणी विषैले होते हैं। *Heloderma punctatum*, Rattle snakes, Trapdoor spider तथा Tarantula spider आदि मरुस्थलों में पाये जाने वाले विषैले जन्तु हैं।

8. **संवेदी अंग** (Sensory organs)—मरुस्थलीय प्राणियों में दृष्टि, घ्राण एवम् श्रवण अंग विशेष रूप से विकसित होते है। ये प्राणि काफी चतुर भी होते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मरुस्थलीय प्राणि-समूह शुष्क जलवायु में रहने के लिए विभिन्न अनुकूलनों का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

जलीय आवास
(Aquatic Habitat)

प्रश्न 23. स्वच्छ जलीय आवास की पारिस्थितिक विशेषताओं एवम् अनुकूलनों का वर्णन करिये। स्वच्छ जलीय प्राणिजात पर एक नोट लिखिये।

Describe the ecological features and adaptations to fresh water habitat. Add a note on fresh water fauna. (*Rajasthan 1974*)

स्वच्छ जलीय आवासों पर एक निबन्ध लिखिये।

Write an essay on fresh water habitats. (*Agra 1973*)

जलीय आवास उस आवास को कहते है जिसमें प्रमुख रूप से जल ही वाह्य व आन्तरिक माध्यम होता है। स्वच्छ जल के आवास की पारिस्थितिकी को **लिम्नोलॉजी** या **सरोविज्ञान** (limnology) कहते हैं। सरलता के लिए स्वच्छ जलीय आवासों को दो वर्गो में बाँटा गया है :—

1. **सरोजीवी** (lentic) या **स्थिरजलीय आवास** जैसे झील, ताल, जोहड़, अनूप (swamp) आदि।

2. **सरितजीवी** (lotic) या **गतिमान जलीय आवास** जैसे सरिता, झरना व नदी आदि।

सरोजीवी आवास में जल का संचरण मन्द गति से तथा क्षैतिज दिशा में न होकर ऊर्ध्वाधर (vertical) दिशा में होता है जबकि सरितजीवी आवास में पानी का संचरण मुख्यत: क्षैतिज दिशा में ही होता है।

स्वच्छ जलीय आवास की विशिष्टताएँ
(Characteristics of Fresh Water Habitat)

समुद्री वातावरण के विपरीत जो कि सदैव स्थिर रहता है स्वच्छ जलीय वातावरण में (ताप, घुली हुई गैसों, प्रकाश तथा भोजन आदि) वातावरणीय कारकों के वदलते रहने से सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। ये कारक निम्न प्रकार से हैं :—

1. **ताप** (Temperature)—स्वच्छ जलीय आवास में ताप के उतार-चढाव का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टीगत होता है। सतह का जल तली के पानी के अपेक्षा मौसम की स्थिति के अनुरूप या तो अधिक गरम अथवा अधिक ठण्डा होता है। ग्रीष्म काल में, विशेषकर बड़ी झीलों में सीधी ताप प्रवणता (steep temperature gradient) या ताप स्तरण (thermal stratification) मिलते है, अर्थात् पानी के ऊपरी स्तर निम्न स्तरों की अपेक्षा अधिक गरम होते हैं। ऊपरी कोष्ण या गरम स्तर को अधिसर (epilimnion) तथा निचले अपेक्षाकृत ठण्डे स्तर को अधःसर

(hypolimnion) कहते है, इन दोनों स्तरों के बीच एक तीसरा स्तर भी होता है जिसे **तापप्रवणस्तर** (thermocline) कहते है। यह स्वच्छ जलीय आवास का तापीय स्तरण (thermal stratification) बनाता है। यह झील के जल में तरंगों, ज्वार या लहरों के अभाव के फलस्वरूप संभव होता है। स्वच्छ जलीय जीवों के तनुतापी (stenothermal : ताप में सीमित उतार-चढ़ाव को सहन करने वाले) होने के कारण ताप इन जीवों के प्रति एक सीमाकारी कारक का कार्य करता है। ताल या जोहड़ में इस प्रकार का तापीय स्तरण नहीं होता। ठण्डे प्रदेशो मे जब शीत ऋतु में सतह के पानी का ताप 0°C तक गिर जाता है तो सतह पर रहने वाले जीव पानी के निचले स्तरों में प्रवसन कर जाते है। क्योंकि झील के तल के पानी का ताप प्रायः 4°C से कम नही हो पाता।

2. आविलता (Turbidity)—पानी में प्रकाश का प्रवेश उसकी आविलता पर निर्भर करता है। आविल पानी की अपेक्षा गहरी झीलों में प्रकाश काफी गहराई तक प्रवेश करता है। अत. आविलता भी एक सीमाकारी कारक का कार्य करती है। यह गहरी झीलों मे प्रकाश को गहराई तक प्रवेश करने से रोकती है और इस प्रकार वनस्पति की प्रकाश-सश्लेपण क्रिया के साथ-साथ जन्तुओ के वितरण को भी प्रभावित करती है।

3. धाराएँ (Currents)—पानी की धारा भी विशेपकर सरिताओं में एक सीमाकारी कारक है। एक साथ भारी मात्रा में जल के बहने से मृदा का अपरदन होता है। धारा की गति मन्द होने पर कालान्तर में काफी मात्रा मे गाद व तलछट आदि तल पर बैठ जाते है। किसी नदी के झील में प्रवेश करने पर वहाँ काफी मात्रा में गाद जम जाती है। गाद व तलछट में पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थ भी होते है जिससे झील या जोहड में जलोद्भिदी पौधे तेजी से अतिक्रमण करते है। गाद के लगातार एकत्रित होने से कच्छीय परिस्थितियाँ (marshy conditions) उत्पन्न हो जाती है। अब वहाँ केवल कच्छ पौधे (marshy plant) ही उग सकते है। कालान्तर मे इनके स्थान पर स्थलीय पौधे विकसित हो जाते है और पूर्णतया एक स्थलीय समुदाय विकसित हो जाता है।

जल की धारा के साथ पादप व प्राणिप्लवक भी बहकर चले जाते हैं जिससे सूक्ष्मजीवों के वितरण पर प्रभाव पड़ता है। पानी की धाराओं की गति का पानी में घुली गैसो के वितरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तेज बहते हुए पानी के स्वच्छ जलीय जन्तुओं के सामने अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है।

4. श्वसन गैसें (Respiratory gases)—किसी भी स्वच्छ जलीय ताल, जोहड़ या झील मे वनस्पति एवम् प्राणिजात की बहुलता मुख्यतः पानी में घुली हुई आक्सीजन एवम् कार्बन डाइ-ऑक्साइड की मात्रा पर निर्भर करती है। जलीय पौधों द्वारा प्रकाश-संश्लेषण के फलस्वरूप जल के ऊपरी स्तरो में घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा आपेक्षिक रूप से अधिक होती है। यह ऑक्सीजन जलीय जन्तुओं को उपलब्ध हो जाती है। CO_2 भी जल में घुली रहती है। यह जलीय पौधों व प्राणियों की उपापचय क्रियाओं मे एवम् उनके मृत शरीर के क्षय होने से उत्पन्न होती है। CO_2 की सान्द्रता में तनिक वृद्धि से प्रकाश-संश्लेपण क्रिया अधिक तेजी से होने लगती है किन्तु एक निश्चित सीमा से अधिक होने पर यह मछली व अन्य जन्तुओं के लिए घातक सिद्ध होती है। अधिक ताप अथवा घुले हुए लवणों का पानी में ऑक्सीजन की मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

5. **जीवजनित लवण** (Biogenic salts)—पानी में घुले हुए वे लवण जोकि जीवन के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं, **जीवजनित लवण** (biogenic salts) कहलाते हैं। इनमें नाइट्रोजन व फॉस्फोरस अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये दोनों ही स्वच्छ जलीय आवास में सीमाकारी कारक का कार्य करते हैं। पादपप्लवकों, विशेषकर नीले-हरे शैवालों की वृद्धि प्रत्यक्ष रूप से पानी में नाइट्रोजन की मात्रा पर निर्भर करती है। इसी प्रकार मछलियों की संख्या पर जल में नाइट्रोजन एवम् फास्फोरस की मात्रा का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। स्वच्छ जलीय आवास मे कैल्शियम की मात्रा 9 mg/litre (मृदु जल में) से 26 mg/litre (कठोर जल में) तक हो सकती है। मौलस्क मृदु जल की अपेक्षा कठोर जल में अधिक संख्या में मिलते हैं। कैल्शियम भी जीवों के लिए अति आवश्यक है क्योंकि यह मौलस्क प्राणियों के खोल के निर्माण में भाग लेता है, यह पादपों व प्राणियों की उपापचय क्रियाओं के लिए अति आवश्यक है, कोशिका कलाओं की पारगम्यता का नियमन करता है, तथा जलीय वातावरण में हाइड्रोजन आयनों की सान्द्रता का नियन्त्रण करता है। इसी प्रकार स्वच्छ जलीय डाएटम्स (diatoms) व स्पजों के लिए सिलिकन (silicon) की उपस्थिति आवश्यक है। लोहा, ताँबा व मैंगनीज की लेश मात्र आवश्यकता होती है जो अनेक जीवों की कुछ विशिष्ट शरीरक्रियात्मक क्रियाओं के लिए अति आवश्यक होते हैं।

स्वच्छजलीय आवास की एक विशिष्टता उसमें रहने वाले प्राणियों के शरीर में परासरणनियमन (osmoregulation) है। प्राणियों के शरीर के द्रव में लवणों की अधिक सान्द्रता होती है, अत: परासरण द्वारा जल शरीर के अन्दर विसरण द्वारा प्रवेश करता रहता है। स्वच्छ जलीय प्रोटोजोअन्स संकुचनशील धानियों द्वारा अतिरिक्त जल को शरीर से बाहर निकालते हैं। मछलियाँ वृक्कों द्वारा अतिरिक्त जल को बाहर निकालती हैं। समुद्री प्राणियों में परासरण नियमन की युक्ति का अभाव होने के कारण ये स्वच्छ जल में जीवित नहीं रह पाते।

सरोजीवी या स्थिरजलीय आवास
(Lentic Habitat)

इसमें स्थिर जल वाले ताल, झीलें, दलदल व अनूप (swamps) सम्मिलित है।

झील (Lake)

झील स्वच्छ व स्थिर जल की एक बड़ी काय है। झील व ताल में केवल यह अन्तर है कि झील काफी विस्तृत प्रदेश में फैली रहती है। बड़ी झील का वातावरण स्थिर रहता है और इसे प्रकाश की उपलब्धता एवम् गहराई के आधार पर तीन पारिस्थितिक प्रदेशों में विभक्त कर सकते हैं :—

1. **वेलांचल** (Littoral zone)—यह झील का तटवर्ती उथले जल वाला प्रदेश है जिस में प्रकाश पूरी गहराई तक प्रवेश करता है। इसमें जड़ों वाले पौधों का बाहुल्य होता है।

2. **सरोवरी जीव प्रदेश** (Limnetic zone)—यह खुले पानी का वह प्रदेश है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पानी के अन्दर प्रवेश करता है। इस प्रदेश में मुख्यत: पादपप्लवक एवम् प्राणिप्लवक वास करते हैं।

3. **अगाध प्रदेश** (Profundal zone)—यह झील के तल पर स्थित वह प्रदेश है जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता और गहन अन्धकार छाया रहता है। यहाँ विषमपोषी जीव वास करते हैं।
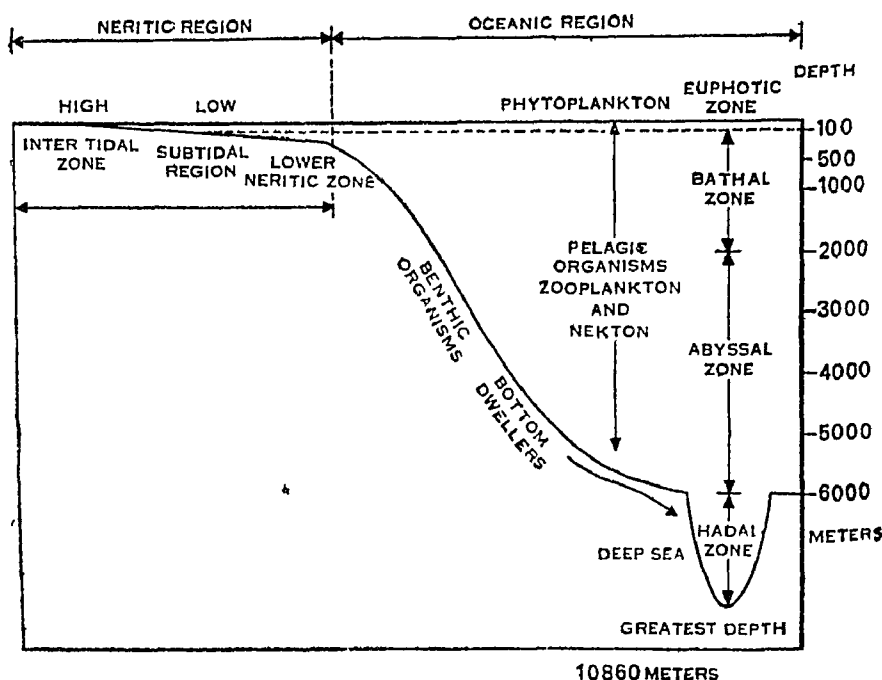
चित्र ७·१. झील के तीन मुख्य प्रदेश
(Three major zones of lake)

वेलांचल एवम् सरोवरी जीव प्रदेश परस्पर मिलकर **सुप्रकाशी प्रदेश** (euphotic zone) बनाते हैं।

शीतोष्ण कटिबन्धों मे विभेदी तापन एवम् शीतलन के फलस्वरूप बड़ी झीलें ग्रीष्म व शीत ऋतुओं मे विभिन्न तापीय स्तर प्रदर्शित करती है। ग्रीष्म काल मे सतह का जल तल के जल की अपेक्षा अधिक कोष्ण या गरम (warm) होता है। इसी के कारण गहरी झीलों मे विभिन्न तापीय प्रदेशो का निर्माण होता है जो निम्न प्रकार से है :

1. अधिसर (Epilimnion)—यह कोष्ण (warm) जल का स्तर है। इस स्तर के जल मे लगातार सचरण होता रहता है तथा वनस्पति भी प्रचुरता मे होती है।

2. अधःसर (Hypolimnion)—यह निचला शीत स्तर है जिसका पानी स्थिर रहता है। इस प्रदेश मे प्रायः वनस्पति का अभाव होता है।

3. तापप्रवरण स्तर (Thermocaline)—यह अधिसर एवं अध.सर के बीच का तापप्रवणता वाला स्तर है।

शीत ऋतु मे अधिसर एवम् अधःसर (epilimnion and hypolimnion) दोनो प्रदेशो का ताप लगभग एक समान हो जाता है और पानी के सचलन से ऑक्सीजन का वितरण सर्वत्र हो जाता है।

झीलो के आकार एवम् गहराई मे काफी भिन्नता होती है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की lake Superior का क्षेत्रफल लगभग 31,000 वर्ग मील है जबकि

साइबेरिया की lake Baikal की अधिकतम गहराई 1700 मीटर के लगभग है। बड़ी झीलों का आवास आपेक्षिक रूप से स्थायी रहता है और इसकी समष्टियाँ (populations) भी अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होती हैं। इसके विपरीत छोटी झीलें ग्रीष्म ऋतु में अनूप (swamps) या शुष्क स्थल बन जाती हैं अथवा फिर वर्षा ऋतु में ये तट से बाहर निकल कर सरिता का रूप ले लेती है। इस प्रकार की झीलें पारिस्थितिक अनुक्रम को प्रदर्शित करती हैं।

झीलों का वर्गीकरण (Classification of Lakes)

उत्पादकता के आधार पर झीलों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है :—

1. मितपोषणी (Oligotrophic)—इस प्रकार की झीलें काफी गहरी होती हैं और इनका जीव समुदाय अल्पता में होता है। इन झीलों का पानी पारदर्शी होता है। इसकी *p*H कम होती है और नाइट्रोजन की मात्रा उपेक्षणीय (negligible) तथा कार्बनिक घटक कम मात्रा में होते हैं। झील की गहराई में काफी मात्रा में जीव-जन्तु पाये जाते हैं।

2. सुपोषणी (Eutrophic)—इन झीलों में पेड़-पौधे व जीव-जन्तु दोनों ही प्रचुर मात्रा में होते हैं। इस प्रकार की झीलें उथले जल वाली होती हैं तथा इनमें फॉस्फोरस, कार्बनिक पदार्थ व पादपप्लवक पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

3. दुष्पोषणी (Dystrophic)—इस प्रकार की झीलें गहरी या उथले जल वाली होती हैं। इनमें ह्यूमस प्रचुरता से होता है किन्तु जल में ऑक्सीजन की कमी होती है। अतः इनमें जीव-जन्तु कम संख्या में मिलते हैं। इन झीलों में प्रायः कीटों के लारवा तथा कुछ अगाध जलीय प्राणी मिलते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि झीलों में ताप, लवणों की सान्द्रता, *p*H तथा ऑक्सीजन की मात्रा में भिन्नता होती है और इसी के अनुरूप इनके जीव-जन्तुओं में भिन्नता होती है।

ताल (Ponds)

ताल उथले जल की काय हैं जिनमें मुख्यतः वेलांचली (littoral) प्रदेश होता है तथा सरोवरी (limnetic) व अगाध (profundal) प्रदेश या तो होते ही नहीं
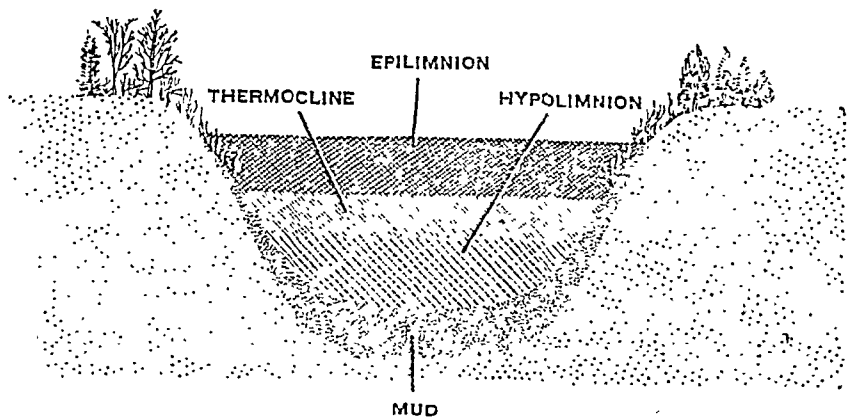
चित्र ७·२. ताल में तापीय स्तरण
(Thermal stratification in pond)

अथवा फिर अल्पविकसित होते हैं। ताल का जल प्रायः शान्त व स्थिर रहता है और वनस्पति बहुतायत से होती है।

तालों की किस्में (Types of Ponds)

ताल निम्न तीन प्रकार के होते है :—

1. सरिता या बडी झीलो से बनने वाले ताल।

2. ताल जो प्रारम्भ से ही छोटे आकार के होते है और इनका झीलों या सरिताओ से कदाचित् कोई सम्बन्ध नही होता, तथा

3. कृत्रिम ताल जो सरिता या बेसिन (basin) पर बाँध बनाकर बनाये जाते है।

मौसमी अवधि (seasonal duration) के आधार पर तरल दो प्रकार के होते है :—

1. अस्थायी ताल (Temporary ponds)—इस प्रकार के ताल प्रत्येक वर्ष थोड़े-बहुत समय के लिए शुष्क हो जाते है। इन तालों मे रहने वाले जीव शुष्कता से बचने के लिए या तो प्रसुप्त अवस्था मे पड़े रहते है अथवा फिर बाहर निकल कर अन्य स्थानो पर चले जाते है। *जब अस्थायी ताल केवल बसन्त ऋतु में* ही अस्तित्व मे आते है तो ऐसे ताल को **बसन्ती ताल** (vernal pond) कहते है। जब ताल मे थोड़ा-बहुत जल तो पूरे वर्ष रहता है किन्तु यह शीतकाल मे जम जाता है तो इसे **ग्रीष्मी ताल** (aestival pond) कहते हे।

2. स्थायी ताल (Permanent ponds)—इस प्रकार के ताल पूरे वर्ष जल से भरे रहते है।

सरोजीवी जीव जात (Lentic Biota)

ताल व गहरी झीलो के **वेलांचली प्रदेश** (littoral zone) में प्राणिजात व वनस्पति-जात दोनो ही अधिकता मे मिलते है। पादपप्लवक, तैरने वाले पादप तथा निर्गत (emerged) एवम् निमग्न (submerged) पादप मुख्य रूप से मिलने वाले वनस्पति-जात हे। शैवाल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवम् बाहुल्य से पाये जाने वाले उत्पादक है। इनके बाद बीजधारी पौधे आते हे। कुछ जलीय घास-फूस भी मिलती है। प्राणिजात मे सभी फाइलमों के स्वच्छ जलीय प्राणी मिलते है।

सरोजीवी जीव-प्रदेश (phytoplanktons) मे डाइनोफ्लेजेलेट्स (dinoflagellates), यूग्लिनाइडी (Euglenoidae) तथा वॉल्वोसिडी (Volvocidae) आदि पादपप्लवक मिलते है। इनमें *Spirogyra*, *Zygnema* नामक तन्तुवत् शैवाल, तथा *Closterium*, *Microcystis*, *Anabaena*, *Fragilaria* आदि शैवाल सम्मिलित हे। प्राणिप्लवको मे मुख्यत: copepods, cladocerans तथा rotifers पाये जाते है। ताल के सरोजीवी प्रदेश मे भी वही मछलियाँ होती है जो कि वेलांचली प्रदेश मे मिलती हें। किन्तु झीलो मे ये केवल सरोजीवी प्रदेश तक ही सीमित रहती है।

प्रकाश के अभाव के कारण अगाध प्रदेश (profundal zone) के जीव अपनी भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओ के लिए वेलाचली व सरोजीवी प्रदेशों पर निर्भर रहते है। यद्यपि इस प्रदेश मे कुछ विशेप प्रकार के जीव ही पाये जाते है किन्तु इस प्रदेश की दलदल मे मृतजीवी बैक्टीरिया व कवको का बाहुल्य होता है। ये जल मे स्थित मृत कार्बनिक पदार्थ को अकार्बनिक पदार्थो मे अपघटित कर देते है जो उत्पादको द्वारा पुन. उपभोग मे आ जाते है। रुधिर चूसने वाले कृमि, क्लैम (clams) तथा फैन्टम लारवी इस प्रदेश मे मिलने वाले प्राणी हें।

पादप-जगत् (Fauna)—सरोजीवी आवास में पानी की सतह पर तैरने वाले निर्गत पौधे जैसे आइपोमिया (*Ipomea*), जुसिया (*Jussiaea*), टाइफा (*Typha*), फ्रैगमाइटिस (Phragmites) आदि सेज ; आइकॉर्निया (*Eicchornia*), लेम्ना (*Lemna*), वुल्फिया (*Wolffia*) तथा पिस्टिया (*Pistia*) आदि सतह पर तैरने वाले पौधे ; वैलिसनेरिया (*Vallisneria*), पोटैमोजिटोन (*Potamogeton*), नायास (*Naias*) आदि जड़ वाले निमग्न पौधे तथा सिरैटोफाइलम (*Ceratophylum*) तथा युट्रिकुलेरिया (*Utricularia*) आदि जड़ रहित निमग्न पौधे सम्मिलित है। इस प्रकार के आवास में वाटर लिली (कमल) भी बहुतायत मे मिलते है। इनकी जड़ें कीचड़ में धँसी रहती है और पत्तियाँ व फूल पानी की सतह पर तैरते रहते हैं। वॉल्वॉक्स (*Volvox*), एनाबीना (*Anabaena*), ओसीलेटोरिया (*Oscillatoria*), क्लॉस्टेरियम (*Closterium*) तथा यूडोरिना (*Eudorina*) आदि सरोजीवी आवास के पादपप्लवक है। स्पाइरोगाइरा (*Spirogyra*), इडोगोनियम (*Oedogonium*), कैरा (*Chara*) तन्तुवत् शैवाल भी इसमें वास करते है।

प्राणि-जात (Fauna)—सरोजीवी आवास में वनस्पति की बहुलता के कारण लगभग सभी फाइलमों के प्राणी मिलते है।

प्रोटोजोआ (Protozoa)— कीचड़ व सड़ती हुई पत्तियों पर अनेक प्रकार के अमीबी वास करते है। एक्टिनोफ्रिस (*Actinophrys*) व एक्टिनोस्फीरियम (*Actinosphaerium*) स्वच्छ जलीय हेलिओजोअन्स, युग्लीना (*Euglena*), पेंडोराइना (*Pandorina*) एवम् यूडोरिना (*Eudorina*) आदि फ्लेजेलेट्स, पैरामीसियम (*Paramecium*), स्टेण्टर (*Stentor*), वॉर्टिसेला (*Vorticella*) आदि सिलियेट्स इस प्रकार के वास में सामान्य रूप से मिलते है। आर्सेला (*Arcella*) तथा डिफ्लुजिया (*Difflugia*) इसमे मिलने वाले खोल युक्त प्रोटोजोआ है।

स्पंज (Sponges)—सरोजीवी आवास मे स्पंज स्पन्जिला (*Spongilla*) द्वारा निरूपित होते है।

सीलेण्टरेट (Coelenterates)—ताल में हाइड्रा को निमग्न आधार से चिपके हुए सामान्य रूप से देखा जा सकता है।

हेलिमन्थीज (Helminthes)—ये टर्वेलेरियन्स द्वारा निरूपित होते है। फ्लूक लारवी व मिरासिडिया भी प्राय: सामान्य रूप से पाये जाते हे।

रोटिफर (Rotifers)—ये ताल व झीलों मे बहुलता से मिलते हैं।

एनिलिड्स (Annelids)—ताल में मिलने वाले जलीय एनिलिड लिमिकोला (*Limicola*), स्टाइलोड्रिलस (*Stylodrilus*), लुम्ब्रिकुलस (*Lumbriculus*) तथा स्टाइलोड्रिलस (*Stylodrilus*) आदि है। हिरूडिनेरिया (*Hirudinaria*) उथले जल में सामान्य रूप से मिलता है।

आर्थ्रोपोड्स (Arthropods)—डैफिनया (*Daphnia*), माय्रोना (*Miona*), क्लेडोसिरा (cladocera) व कोपिपोड्स (copepods) सामान्य रूप से मिलने वाले क्रस्टेशियन हे। मेफ्लाई (mayfly), कैडिसफ्लाई (Caddisfly), बीटल्स (Beetles) तथा ड्रेगनफ्लाई के लारवी भी स्वच्छ जलीय प्राणी हैं। गाइरिनस (*Gyrinus*), हाइड्रोमेट्रा (*Hydrometra*), जलीय स्कॉर्पिओन (water scorpion), वृहत् जल मत्कुण (giant water bug), जलीय स्टिक कीट (water stick insect), वृहत् जल कीट (giant water insect) तथा सिल्वर जल बीटल (silver water beetle) स्वच्छ जलीय कीट है। जलीय मकड़े व माइट्स (aquatic spiders and mites) सरो-

जीवी आवास के अरेक्नीड प्राणी हैं।

मौलस्क (Molluscs)—पाइला (*Pila*), लिम्निआ (*Limnaea*) तथा प्लेनॉर्बिस (*Planorbis*) तथा विविपेरा (*Vivipara*) आदि स्वच्छ जलीय मौलस्क हैं।

कशेरुकी (Vertebrates)—ये सीमित रूप से मिलते हैं। कतला (*Catla*), लेबिओ (*Labeo*) बार्बस (*Barbus*), मीरोपोडस (*Macropodus*), सिर्हाइना (*Cirrhina*), जेम्बुसिया (*Gambusia*) आदि स्वच्छ जलीय मछलियाँ हैं। एनाबास (*Anabas*), क्लेरियास (*Clarias*) तथा ओफिओसेफैलस (*Ophiocephalus*) वायु में श्वास लेने वाली सामान्य मछलियाँ हैं। मेंढक, जलीय सर्प व कछुवे भी सरोजीवी आवास में सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

सरित्जीवी आवास (Lotic Habitat)

सरित्जीवी आवास में धाराएँ, स्रोत एवम् नदियाँ सम्मिलित हैं। यह सरोजीवी आवास से निम्न बातों में भिन्न होता है :—

1. सरितजीवी आवास में जल की धाराएँ होती हैं जबकि सरोजीवी आवास में इनका अभाव होता है।

2. सरित्जीवी आवास में जल की धाराएँ मुख्य सीमाकारी कारक का कार्य करती हैं।

3. सरिताओं व नदियों में स्थल व पानी का परस्पर विनिमय अधिक विस्तृत होता है।

4. सरित्जीवी आवास में ऑक्सीजन समान रूप से वितरित रहती है और इसमें ताप या रासायनिक स्तरण का प्राय: अभाव होता है।

सरिताओं में दो प्रदेश स्पष्ट रूप से मिलते हैं—

1. द्रुत प्रदेश (Rapid zone)—यह उथले पानी का प्रदेश हैं जहाँ पानी की गति अधिकतम होती है। इस प्रदेश में तलछट में वास करने वाले, जड़ वाले पौधों के तने व पत्तियों से आसंजित या अन्य अधोस्तर से आलग्न प्राणी तथा तैरने वाले जन्तु वास करते हैं।

2. कुण्ड प्रदेश (Pool zone)—यह गहरे पानी का प्रदेश है जिसमें जल मन्द गति से बहता है तथा गाद व अन्य पदार्थ तल पर बैठते रहते है। यह बिल बनाकर रहने वाले जन्तुओं को कोमल तल प्रदान करता है।

सरित्जीवी प्राणीजगत (Lotic Fauna)

ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा के कारण सरित्जीवी आवास में नाना प्रकार के प्राणी मिलते हैं। द्रुतगति से बढ़ती हुई सरिताओं में ड्रगनफ्लाई, हॉर्सफ्लाई, मेफ्लाई, स्टोनफ्लाई, बीटल्स तथा ब्लैकफ्लाई के लारवा मिलते हैं। सरिताओं में जलीय सर्प व ग्रिनिड बिटल्स सामान्य रूप से मिलते है। चपटे कृमि व स्नेल दरारों में तथा पत्थरों से चिपके हुए मिलते हैं। भोजन प्रचुर मात्रा में होने के कारण विभिन्न प्रकार की मछलियाँ भी सरित्जीवी आवास में मिलती है जैसे कार्प (*Carps*) कतला (*Catla*), लेबिओ (*Labeo*), मिस्टिस (*Mystis*), ओफियोसेफैलस (*Ophiocephalus*), वालेगो (*Wallago*) तथा सिर्हाइना (*Cirrhina*) आदि।

स्वच्छ जलीय अनुकूलन (Fresh Water Adaptations)

स्वच्छ जलीय प्राणियों में निम्नलिखित अनुकूलन मिलते हैं:—

1. द्रुतगति से बहते हुए पानी में पौधे व प्राणी पत्थरों आदि से स्थायी रूप

से चिपके रहते हैं। शैवाल व मौस प्रायः पत्थरों व लट्ठों से लगे रहते हैं। डायटम्स प्रायः पपड़ी के रूप में मिलते हैं। प्राणियों में स्वच्छ जलीय स्पंज तथा सीलाटरेट्स (हाइड्रा) एवम् ट्रिकोप्टेरा (Trichoptera) के लारवी स्थायी रूप से पत्थरों से चिपके रहते हैं।

2. अवस्तर में चिपकने के लिए कुछ स्वच्छ जलीय प्राणियों में कण्टक व चूषक मिलते हैं। ब्लेफारोसेरा (*Blepharocera*) तथा साइमुलियम (*Simulium*) और कैडिस-फ्लाई *हाइड्रोप्साइकिस* (*Hydropscyches*) के लारवा में सुविकसित कण्टक एवम् चूपक होते हैं *साइमुलियम* में पश्च सिरे पर एक चूपक होता है तथा *वाइविओसेफैला* (*Bibiocephala*) एवम् ब्लेफारोसेरा (*Blepharocera*) में अधर-चूषक एक कतार में पंक्तिवद्ध होते हैं। कैडिसफ्लाई अपने चारों ओर एक जाल बनाती है जो इसे आश्रय प्रदान करने के अतिरिक्त पानी में तैरते हुए जीवों को पकड़ने के लिए ट्रैप का कार्य भी करता है।

3. स्नेल व चपटे कृमियों की अवर सतह चिपचिपी होती है जिसकी सहायता से ये जल निमग्न पदार्थों से आसंजित रहते हैं।

4. धाराओं व नदियों में रहने वाले कीट एवम् मछलियों का शरीर धारा-रेखित होता है। इस प्रकार का शरीर बहते हुए पानी के प्रतिरोध को कम करता है।

5. बहते हुए पानी में रहने वाले अनेक प्राणियों का शरीर चपटा होता है। इस प्रकार का शरीर इनको पत्थरों से नीचे व दरारों में आश्रय प्रदान करने में सहायक होता है। मेफ्लाई एवम् ड्रैगनफ्लाई के निम्फ इसके उदाहरण हैं।

6. बहते हुए पानी में रहने वाले अधिकाँश प्राणी धनात्मक धारानुचलनी (positively rheotactic) होते हैं अर्थात् ये पानी की धारा की दिशा के विरुद्ध तैरने के अनुकूल होते हैं।

7. सरिताओं में रहने वाले अधिकाश जन्तु धनात्मक स्पर्शानुचलन (positively thigmotaxis) होते हैं अर्थात् ये सदैव तल से आसंजन के लिए तत्पर रहते हैं।

8. वेलांचली आवास (ताल व झील) के प्राणी पानी के खराब होने पर या सूखे की स्थिति से बचने के लिए सिस्ट बनाते है। स्वच्छ जलीय प्रोटोजोआ, कोपिपोड्स तथा एनिलिड्स में सिस्ट सामान्य रूप से मिलते है। अनुकूल स्थितियों के आगमन पर ये सिस्ट को तोड़कर वृद्धि करके पुनः प्रौढ़ जन्तु बनाते हैं। स्पज जेम्यूल (gemmules) द्वारा प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हैं।

9. स्वच्छ जलीय प्रोटोजोआ संकुचनशील धानियों द्वारा जल की अतिरिक्त मात्रा को शरीर से बाहर निकालते है। मछलियों में यह कार्य वृक्को द्वारा होता है।

10. जलीय कीटों में श्वसन साइफन के रूप में श्वसन के लिए अनेक रूपान्तरण पाये जाते हैं। मेफ्लाई के लारवा में उदर क्लोम (abdominal gills) तथा ड्रैगनफ्लाई में रेक्टल क्लोम (rectal gills) पाई जाती है।

प्रश्न 24. किसी झील के प्राणी-जात की परिस्थितिकी का वर्णन कीजिये।
Give an account of the ecology of lake fauna. (*Agra 1973*)
कृपया प्रश्न 23 देखिये।

समुद्री आवास (Marine Habitat)

25. समुद्र के वेलांचली प्रदेश के प्राणियों की परिस्थितिकी का वर्णन करिये।

Give an account of the ecology of animals in littoral zone of sea. (*Karnatak 1973*)

समुद्र का **अन्तराज्वारीय** (intertidal) क्षेत्र **वेलांचली प्रदेश** (littoral zone) कहलाता है। विश्व के विभिन्न भागों मे इसका ऊर्ध्वाधर प्रास (vertical range) अलग-अलग होता है जो कि ज्वार परिसर पर निर्भर करता हैं। महासागर के विपरीत जहाँ पर कि परिस्थितियाँ सदैव समान रहती है, वेलांचली प्रदेश की भौतिक-रासायनिक परिस्थितियो मे अत्यधिक विभिन्नता देखने को मिलती है। प्रत्येक 12 घण्टे बाद लगभग 20–25 मिनट के लिए उच्च ज्वार आता है। इसके फलस्वरूप समस्त तटवर्ती क्षेत्र पानी मे डूब जाता हे। इसके साथ ही अनेक प्रकार के जीव भी बहकर तट पर आ जाते हैं। किन्तु ज्वार के लौटने पर इन जीवों को सूर्य के प्रकाश एवम् सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ता है। अत. वेलांचली प्रदेश के वातावरण मे लगातार मौसमी एवम् दैनिक परिवर्तन होते रहते हैं। इन वातावरणीय परिवर्तनों के साथ-साथ समुद्री तट की भू-आकृति का भी जीवों के वितरण पर नियामक प्रभाव पड़ता है। समुद्री तट पर मुख्य रूप से तीन आवासों का प्रभाव पड़ता है—**चट्टानी** (rocky), **रेतीला** (sandy) तथा **दलदली** (muddy)।

ज्वार आवर्तिता तथा विभिन्न प्रकार की वनस्पति एवम् प्राणियो के आधार पर वेलाचली प्रदेश को निम्न चार क्षेत्रो मे बाँटा गया है।

(*i*) **फुहार क्षेत्र** (Spraying zone)—यह भूखण्ड के समीप का क्षेत्र है। इस क्षेत्र के जीवो पर समुद्र की लहरों की फुहार पडती है। अत. इस क्षेत्र मे केवल वे जीव मिलते हें जो इन उग्र परिस्थितियो को सहने मे समर्थ होते है। इस क्षेत्र मे अधिकतर **लाईकेन** (lichens) एवम् **आइसोपोड्स** (isopods) वास करते हें। फुहारी क्षेत्र चट्टानी तटो पर पाया जाता हे।

(*ii*) **अतिवेलांचली क्षेत्र** (Littorine zone)—यह वास्तविक अन्तराज्वारीय क्षेत्र है जहाँ पर जीव प्रत्यावर्ती क्रम मे जलनिमग्न एवम् निर्गत होते रहते है। जलनिमग्न के अवधिकाल मे भिन्नता होती है तथा जीवन के लिए परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत कम उग्र होती है। यह क्षेत्र समुद्र के रेतीले एवम् दलदली तटो पर पाया जाता है।

(*iii*) **बैलेनस क्षेत्र** (Balanoid zone)—यह क्षेत्र मुख्यत: रेतीले व दलदली क्षेत्रो मे मिलता है और इसमे मुख्य रूप से बार्नेकल्स (barnacles) वास करते है।

(*iv*) **उपज्वारीय क्षेत्र** (Subtidal zone)—यह चट्टानी समुद्री तट का वह प्रदेश हे जिसमे चट्टानी कुण्ड होते हे। ये सदैव पानी से भरे रहते है किन्तु इनके पानी का ताप समुद्री जल के ताप से अधिक होता है। इस क्षेत्र मे जीव-जात प्रचुरता मे होते है।

अन्तरज्वारीय चट्टानी तटों का विशिष्ट प्राणीजात
(Characteristic Fauna of Intertidal Rock-shores)

इसमे मिलने वाले जीव अधिकतर **स्थानबद्ध** होते हे। अन्तरज्वारीय चट्टानी तट विभिन्न प्रकार के आवास प्रस्तुत करते है जो निम्न प्रकार से हैं :—

(*i*) **चट्टानी कुण्ड** (Rocky pools)—ये चट्टानो के बीच या चट्टानों के अवतलनो मे पानी से भरे कुण्ड हे। ये सदैव पानी से भरे रहते हैं। इनका पानी प्रत्येक उच्च ज्वार के समय बदलता रहता हे। समुद्री वेलाचली प्रदेश के विभिन्न आवासो की अपेक्षा इसकी वातावरणीय परिस्थितियाँ जीवों के लिए अधिक अनुकूल

होती हैं । स्पंज, हाइड्राइड्स (hydroids), सी-एनीमोन (sea-anemones), ब्रायोजोअन्स (bryozoans), कोपिपोड्स (copepods), एम्फिपोड्स (amphipods), स्नेल (snails), लिम्पेट्स (limpets), मसल्स (mussels) तथा ट्यूनिकेट्स (tunicates) आदि प्राणी इन कुण्डों में पाये जाते हैं ।

(*ii*) **जल-निमग्न चट्टानें** (Submerged rocks)—ये सदैव पानी में डूबी रहती हैं जिन पर शैवाल प्रचुरता से उगते हैं । इन चट्टानों पर अनेक प्रकार के स्थानबद्ध प्राणी वास करते हैं । स्पंज, हाइड्राइड पोलिप्स (hydroid polyps), बिल बनाकर रहने वाले पोलिकीट वर्म (polychaete worms), नेमर्टिन्स (nemertines), एसिडियन्स (ascidians), विभिन्न प्रकार के क्रैब एवम् चट्टानों से चिपकने वाले मौलस्क तथा इकाइनोडर्म प्राणी इन चट्टानों में अधिकता से मिलते हैं ।

(*iii*) **निर्गत चट्टानें** (Emerged rocks)—ये चट्टानें सदैव पानी से बाहर रहती हैं किन्तु इन पर जल की फुहारें पड़ती रहती हैं । इन चट्टानों के समुद्र की ओर की सतह पर लहरों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जबकि दूसरी ओर अर्थात् प्रतिपवन सतह पश्चगामी (receding) लहरों द्वारा गीली रहती है । अत: इन चट्टानों की समुद्र की ओर की सतह पर विभिन्न प्रकार के प्राणी वास करते हैं जबकि दूसरी ओर केवल बार्नेकल्स एवम् मसल्स (barnacles and mussels) मिलते हैं ।

(*iv*) **तटवर्ती अलग्न चट्टानें एवम् पत्थर** (Loose rocks and stones on the shore)—कुछ चट्टानें दृढ़तापूर्वक स्थित नहीं होतीं जिससे इनके नीचे जल रिसता रहता हैं । नमी व संरक्षण के कारण ऐसी चट्टानों के नीचे अनेक प्रकार के प्राणी वास करते है । इनमें से *गैमेरस* (*Gammarus*), *लीजिया* (*Ligia*) तथा *ऑर्केस्टिया* (*Orchestia*) आदि क्रस्टेशियन्स; *नेरीस* (*Nereis*), *कार्सिनस* (*Carcinus*), *हर्मिट क्रैब* (*Hermit crabs*), *सितारा मछली* (*Starfish*), सी-अर्चिन (Sea-urchins) तथा अनेक तटीय मछलियों की बहुलता होती है ।

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि चट्टानी अन्तराज्वारीय क्षेत्र के प्राणियों में आसंजन एवम् सूखे से बचने के लिए विभिन्न युक्तियाँ तथा पोषण की पक्ष्माभी विधि विकसित हो गई है ।

2. अन्तराज्वारीय रेतीले समुद्री तट का विशिष्ट प्राणिजात
(Characteristic Fauna of Intertidal Sandy Sea-shore)

रेतीले समुद्र तट पर पानी के काफी देर तक रुके न रहने के कारण इस क्षेत्र में कुछ ही प्राणी मिलते हैं । समुद्री लहरों द्वारा रेतीले तटों का सदैव अपरदन होता रहता है । कंकड़ियाँ कोमल शरीर वाले जन्तुओं के लिए घातक सिद्ध होती हैं । रेतीले तटों पर आसंजन के लिए उचित अध: स्तर के अभाव में समुद्री घास-पात की काफी कमी होती है अथवा फिर इसका सर्वथा अभाव होता है ।

रेत में रहने वाले अधिकांश समुद्री प्राणी बिल बना कर रहते हैं । इस क्षेत्र में मिलने वाले प्राणी मुख्य रूप से फाइलम आर्थ्रोपोडा (क्रस्टेशियन्स), एनिलिडा तथा इकाइनोडर्मेटा के सदस्य हैं । *लेनिस* (*Lanice*), *अरेनिकोला* (*Arenicola*) तथा *नेफिथस* (*Nephthys*) इस क्षेत्र के सखण्ड प्राणी हैं । । मौलस्क, इकाइनोडर्म तथा होलोथूरियन्स का ऐसे क्षेत्रों में बाहुल्य होता है । रेतीले समुद्री तट पर *बैलेनोग्लॉसस* व *एम्फिऑक्सस* आदि प्रोटोकॉर्डेट्स भी पाये जाते हैं ।

3. अन्तराज्वारीय दलदली समुद्री तट का विशिष्ट प्राणीजात
(Characteristic Fauna of Intertidal Muddy Sea-shores)

दलदली समुद्री तट नदी के डेलटों पर मिलते हैं । इन क्षेत्रों में प्रोटोजोअन्स,

नेमेटोड्स, विल वनाकर रहने वाले एनिलिड (अरेनिकोला, नेफ्थिस, नेरीस आदि), क्रस्टेशियन्स, विल वनाकर रहने वाले एम्फिपोड्स, मसल्स व विल वनाकर रहने वाले अन्य मौलस्क तथा होलोथूरियन्स आदि अत्यधिक सख्या में मिलते है। न्यूडिब्रंक व क्रैव प्राय: रेंगते हुए मिलते हे। एसिडियन्स भी वहुलता से मिलते हैं।

इस क्षेत्र के प्राणी प्राय: कोमल व भंगुर होते है और विल वनाकर रहते हैं। दलदल मे रहने के कारण इनके नेत्र अपविकसित होते हैं।

वेलांचली प्रदेश मे पादपप्लवक तथा प्राणिप्लवक इतनी वहुलता में नही होते जितने कि ये नेरिटांचली (neritic) क्षेत्र तथा खुले समुद्र में होते हैं। इस क्षेत्र के मुख्य उत्पादक वहुकोशिकीय व तन्तुवत शैवाल है जो होल्डफास्ट की सहायता से चट्टानों व तल से आमजित रहते हैं। ये मुख्य रूप से **क्लोरोफाइसी, रोडोफाइसी** तथा **फिओफाइसी** वर्ग के शैवाल है। इन सभी मे क्लोरोफिल होता है जिसकी सहायता से प्रकाश संश्लेषण करते हैं किन्तु अन्तिम दोनों वर्गो में क्लोरोफिल के अतिरिक्त लाल व भूरे रंजक भी होते है। इन को सामान्यत: चट्टानी घास-पात भी कहते है। इनके व वड़े आकार के जन्तुओ के अतिरिक्त इस क्षेत्र मे एककोशिकी शैवाल, तन्तुमय शैवाल, वैक्टीरिया तथा छोटे अकशेरुकी प्राणी भी होते है।

इस क्षेत्र मे सभी वर्गो के प्राणी मिलते हैं किन्तु इनकी पोपण विधि में काफी विभिन्नता होती है। इनमें कुछ सर्वभक्षी होते है और फिल्टर विधि द्वारा पोपण करते हैं। अन्य कुछ अपरद (detritus) व फीडर (feeders) होते हैं। इस क्षेत्र के अधिकांश प्राणी परभक्षी होते हैं। शार्क तथा समुद्री पक्षी इस क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण तृतीयक उपभोक्ता हैं। यद्यपि समुद्री पक्षी एवम् समुद्री कछुए प्रजनन के लिए स्थल पर चले जाते है किन्तु भोजन के लिए ये पुन: समुद्र में लौट आते हैं और समुद्री आहार शृंखला का तृतीयक पोषण स्तर वनाते हैं।

समुद्री जल मे वैक्टीरिया का वाहुलय होता है। इनकी संख्या प्रति मिलीलीटर में 10° तक होती है। प्रोटोजोआ व वैक्टीरिया तथा अन्य सूक्ष्म जीवी अपरद फीडर्स (detritus feeders) को भोजन का ऐकमात्र स्रोत वनाते हैं।

प्रश्न 26. उन आवासों में वास करने वाले विभिन्न प्राणियों के उदाहरण देते हुए विभिन्न प्राणी आवासों का उल्लेख करिये।

Give an account of the various animal habitats with suitable examples of animals in habiting them. (*Jabalpur 1973*)

कृपया प्रश्न 22, 23 तथा 27 देखिये।

प्रश्न 27. समुद्र के अनुक्षेत्र वर्गीकरण पर एक निवन्ध लिखिये।

Write an essay on zonation in the sea. (*Rajasthan 1974*)

स्वच्छ जलीय ताल व भीलो की भाँति समुद्री जल का भी अनुक्षेत्र वर्गीकरण किया जाना सम्भव है। यह अनुक्षेत्रीकरण भौतिक परिस्थितियो मे अन्तर तथा विशिष्ट प्रकार के पाये जाने वाले पादपों एवम् प्राणियो पर आधारित है। समुद्र को दो प्रमुख क्षेत्रो मे वाँटा गया है—**पेलैजिक** (pelagic) तथा **नितलस्थ** (benthic)।

1. पेलैंजिक प्रदेश (Pelagic Region)

यह समुद्री सतह का वह प्रदेश है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है। सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति मे इस प्रदेश के पादप प्रकाश-सश्लेषण करने मे समर्थ होते हैं। इस प्रदेश मे नाना प्रकार के पादप एवम् प्राणी वास करते हैं जिनमे अपने अस्तित्व

को वनाए रखने के लिए एक स्पर्धा बनी रहती है। पैलैजिक प्रदेश निम्नलिखित क्षेत्रों में विभक्त किया गया है :—

1. नेरिटांचली क्षेत्र (Neritic zone)—यह उथले जल का क्षेत्र है जो समुद्री तट से 200 मीटर की गहराई तक फैला रहता है। वास्तव में समुद्री तट धीरे-धीरे ढलवाँ होकर समुद्र में काफी ग्रन्दर तक चला जाता है। इस क्रमिक ढलान को **महाद्वीपीय शैल्फ** (continental shelf) कहते है तथा महाद्वीपीय शैल्फ के ऊपर का उथला जल **नेरिटांचली क्षेत्र** (neritic zone) कहलाता है। महाद्वीपीय शैल्फ के वाद समुद्र का तल एकाएक गहरा होता चला जाता है। नेरिटांचली क्षेत्र को पुनः निम्नलिखित क्षेत्रों में विभाजित किया गया है :—

(*i*) **ग्रतिवेलांचली या ग्रतिज्वारीय क्षेत्र** (Supratidal area)—यह उच्च ज्वार तल से ऊपर की ग्रोर स्थित क्षेत्र है जो पानी के वाहर स्थित होता है।

(*ii*) **ग्रन्तराज्वारीय क्षेत्र** (Intertidal area)—यह समुद्री तट का उच्च व निम्न ज्वार रेखाग्रों के वीच का क्षेत्र है। इसे वेलांचली क्षेत्र (littoral zone) भी कहते हैं। यह पश्चगाली लहरों (receding waves) के फलस्वरूप प्रत्येक दिन दो वार ग्रनावरत होता है।

(*iii*) **उपग्रन्तराज्वारीय क्षेत्र** (Subtidal area)—यह सदैव समुद्री जल में डूबा रहता है।

विभिन्न समुद्री ग्रावासों में ज्वारीय प्रदेश ही प्राणियों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त ग्रावास है। ऐसा माना जाता है कि सर्वप्रथम जीवन का उद्भव समुद्र के इसी उथले जल में हुग्रा होगा। प्रचुर मात्रा में प्रकाश, जल, ग्रॉक्सीजन, कार्वन डाइ-ग्रक्साइड की उपस्थिति तथा जल के कम खारापन के कारण इस क्षेत्र में सघन रूप से वनस्पति उगती है। सघन वनस्पति विभिन्न जन्तुग्रों को ग्राश्रय एवम् भोजन प्रदान करती है। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के शैवाल, कुछ समुद्री घासें, तथा लगभग सभी फाइलमों के जन्तु मिलते है। जन्तु व पादप दोनों ही में ग्रपना ग्रस्तित्व वनाये रखने के लिए उग्र स्पर्धा देखने को मिलती है। ग्रधिकांश प्राणी स्थानवद्ध होते है। साथ ही इनमें लहरों के प्रभाव एवम् सूखे से बचने के लिए कुछ विशेष रक्षात्मक युक्तियाँ भी होती है। इनके चारों ग्रोर कैल्शियम का खोल होता है ग्रथवा फिर चर्मयुक्त त्वचा का ग्रावरण होता है।

2. महासागर प्रदेश (Oceanic zone)—महाद्वीपीय शैल्फ से ग्रागे की ग्रोर का खुले सागर का वह भाग जोकि महाद्वीपीय ढलान के ऊपर स्थित होता है, **महासागर प्रदेश** कहलाता है। इस प्रदेश पर स्थलीय वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रकाश की तीव्रता के ग्राधार पर महासागर प्रदेश को दो क्षेत्रों में विभक्त किया गया है :—

(*i*) **सुप्रकाशी क्षेत्र** (Euphotic zone)—यह खुले सागर की ऊपरी सतह का वह क्षेत्र है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश प्रवेश करकेपौधों को प्रकाश-संश्लेपण के लिए प्रेरित करता है। इसे **प्रदीप्त प्रदेश** (illuminated zone) या **उत्पादक क्षेत्र** भी कहते हे। सामान्य रूप से यह क्षेत्र 100–200 मीटर की गहराई तक फैला रहता है। ग्रध:स्तर के ग्रभाव में इस क्षेत्र में जड वाले पौधों एवम् स्थानवद्ध प्राणियों का सर्वथा ग्रभाव होता है। सुप्रकाशी क्षेत्र में प्राय: तैरने वाले जीव मिलते हैं जैसे शैवाल तथा सूक्ष्मदर्शी प्राणी जैसे रेडिग्रोलेरियन्स तथा फोरामिनीफर। वड़े ग्राकार के प्राणियो में जेली-फिश, मछलियाँ व ह्वेल ग्रादि प्राणी इस प्रदेश में मिलते हैं।
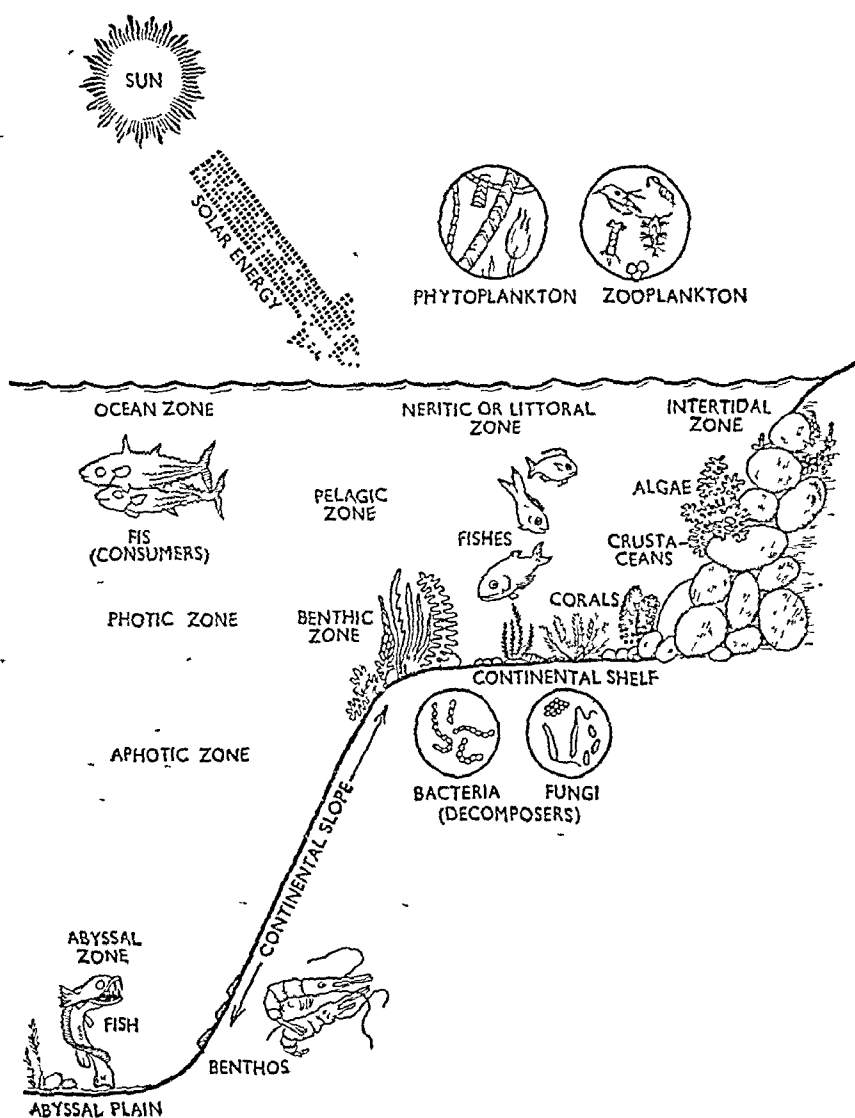
चित्र ७·३ समुद्र के अनुक्षेत्र वर्गीकरण का चित्रीय निरूपण (Diagram illustrating the zonation in the sea)

(*ii*) अप्रकाशी क्षेत्र (Aphotic region)—सुप्रकाशी क्षेत्र के ठीक नीचे कम प्रदीप्त जल का स्तम्भ होता है। और अधिक गहराई में प्रकाश का सर्वथा अभाव होता है जबकि इसके ऊपरी स्तम्भ में इतना अधिक प्रकाश नहीं होता कि वह प्रकाश-संश्लेषण को प्रेरित कर सके। इसीलिए इस प्रदेश में उत्पादक या प्रकाश-संश्लेषी पादप नहीं होते। यहाँ का ताप कम होता है, जल की धाराओं का सर्वथा अभाव होता है तथा जल स्तम्भ का दाब बहुत अधिक होता है। अप्रकाशी क्षेत्र के प्राणी या तो एक-दूसरे का भक्षण करते हैं अथवा फिर सुप्रकाशी प्रदेश से नीचे गिरने वाले

मृत पेड़-पौधों व जन्तुओं के शरीर पर निर्भर रहते हैं। वास्तव में अप्रकाशी प्रदेश अगाध समुद्र को प्रदर्शित करता है और इसे दो क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है :—

(*a*) **गभीर क्षेत्र** (Bathyal zone)—यह 200–2000 मीटर तक गहरा होता है।

(*b*) **वितलीय क्षेत्र** (Abyssal zone)—यह 2000–5000 मीटर तक गहरा होता है।

2. नितलस्थ प्रदेश (Benthic Region)

इसके अन्तर्गत तटवर्ती रेखा से शुरू होकर अत्यधिक गहराई तक का समुद्री तल आता है। इसे दो मुख्य क्षेत्रों में विभक्त किया गया है :—

1. वेलांचली नितलस्थ प्रदेश (Littoral benthal zone)—इसमें समुद्र के ताल का वह क्षेत्र सम्मिलित है जिस तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है। महाद्वीपों के चारों ओर समुद्र की सतह के नीचे महासागर के तल का कुछ भाग एक उथला प्लेटफॉर्म बनाता है जिसे **महाद्वीपीय शैल्फ** (continental shelf) कहते हैं। वेलांचली नितलस्थ प्रदेश महाद्वीपीय शैल्फ के वाह्य उपान्त तक फैला रहता है और लगभग उस गहराई तक स्थित होता है जहाँ पर सागर के सुप्रकाशी एवम् अप्रकाशी क्षेत्र एक-दूसरे से पृथक् होते हैं। इस प्रदेश को दो क्षेत्रों में बाँटा गया है :—

(*i*) **अधिवेलांचली क्षेत्र** (eulittoral zone) तथा **उपवेलांचली प्रदेश** (sublittoral zone)।

(*ii*) **अधिवेलांचली क्षेत्र** (eulittoral zone)—इसमें अन्तरज्वारीय प्रदेश सम्मिलित हैं जिसमें पादप व जन्तु प्रचुरता में मिलते हैं।

(*iii*) **उपवेलांचली क्षेत्र** (sublittoral zone)—इसमें 200 मीटर की गहराई तक का सागर तल सम्मिलित है। इस क्षेत्र का तल कोमल होता है और मुख्य रूप से रेत, कीचड़ एवम् चिकनी मिट्टी का बना होता है। इस क्षेत्र में भी पादप एवम् प्राणियों की बहुलता होती है।

2. गभीर सागर (Deep sea)—यह 200 मीटर से अधिक गहराई का घोर अन्धकार वाला समुद्री तल है। इसे **आदिनितलीय** (archibenthic) तथा **विनितलस्थ** (abyssalbenthic) नामक दो क्षेत्रों में विभक्त किया गया है।

(*i*) **आदिनितलीय क्षेत्र** (Archibenthic zone)—यह उपवेलांचली क्षेत्र के आगे 800–1100 मीटर तक की गहराई तक का क्षेत्र है।

(*ii*) **विनितलस्थ क्षेत्र** (Abyssalbenthic zone)—आदिनितलीय क्षेत्र से नीचे का सागर तल विनितलस्थ क्षेत्र कहलाता है। यह 8000 मीटर या इससे भी अधिक गहराई तक फैला होता है।

प्रश्न 28. अगाध समुद्री प्राणिजात पर एक निबन्ध लिखिये तथा उनमें पाये जाने वाले अनुकूलनों का विशेष रूप से उल्लेख करिये।

Write an essay on the deep sea fauna with special reference to their adaptations.

उचित उदाहरणों की सहायता से गभीर सागर की पारिस्थितिक विशेषताओं का वर्णन करिये। इसमें वास करने वाले प्राणियों के अनुकूली रूपान्तरणों का वर्णन करिये।

Give an account of the ecological features of deep sea with suitable examples. Describe the adaptive modifications of its inhabitants. *(Rajasthan 1972)*

सागर पृथ्वी की कुल सतह का लगभग 2/3 भाग घेरे हुए है। समुद्र के तट पर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के प्राणियों एवम् पादपों के अतिरिक्त तट से कई सौ मील दूर अगाध समुद्र में भी अनेक प्रकार के प्राणियों एवम् पादपों के रूप मे जीवन पाया जाता है। समुद्र की गहराई कई सौ फैदम (fathoms) होती है तथा इतनी गहराई में पानी का दाब बहुत अधिक होता है तथा सूर्य का प्रकाश इतनी गहराई तक पहुँचने मे समर्थ नही होता। इसी के आधार पर समुद्री पर्यावरण को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया गया है :—

1. पेलैजिक क्षेत्र (Pelagic region)—यह समुद्र की 200 मीटर गहराई तक का क्षेत्र है जहाँ कि सूर्य का प्रकाश पहुँचता है।

2. आदिनितलीय क्षेत्र (Archibenthic region)—यह 200–1000 मीटर गहराई तक का समुद्री क्षेत्र है।

3. वितलीय क्षेत्र (Abyssal region)—यह 1000–6000 मीटर गहरा समुद्री क्षेत्र है।

4. गभीर समुद्री क्षेत्र (Deep sea region)—यह 6000–10000 मीटर की गहराई तक का समुद्री क्षेत्र है।

गभीर समुद्री पर्यावरण (Deep Sea Environment)

समुद्र की अगाध गहराई में विशेष प्रकार के जीव निवास करते है जिनमें अद्भुत् प्रकार के पारिस्थितिक लक्षण पाये जाते हैं। अगाध गहराई में सदैव ही जलवायु स्थिर रहती है, तापमान कम होता है, भोजन की कमी रहती है, सदैव ही घोर अन्धकार छाया रहता है तथा जल-धाराओं का अभाव होता है तथा जल का अत्यधिक दाब बना रहता है। इनका उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

1. प्रकाश (Light)—समुद्र में प्रवेश करने वाला प्रकाश विकरित एवम् अवशोषित प्रकार का होता है तथा इतना हल्का प्रकाश भी समुद्र के अधर तल तक अथवा अधिक गहरे पानी में पहुँचने में असमर्थ होता है। अतः वहाँ सदैव ही घोर अन्धकार छाया रहता है।

2. ताप (Temperature)—समुद्र को सतह से तल की ओर तापमान क्रमिक रूप से कम होता जाता है। अतः गभीर समुद्र में तापमान बहुत कम होता है।

3 जलवायु सम्बन्धी या मौसमी परिवर्तन (Climatic conditions or seasonal changes)—जलवायु में होने वाले मौसमी परिवर्तनों का समुद्र के गहरे पानी पर कोई प्रभाव नही पड़ता। अतः वहाँ सदैव ही समान परिस्थितियाँ बनी रहती हैं।

4. दाब (Pressure)—समुद्री जल में प्रत्येक 1000 फैदम की गहराई के लिए 1 टन प्रति वर्ग इंच की दर से दाब बढता ज ता है। इससे स्पष्ट है कि समुद्र की अगाध गहराई मे अत्यधिक दाब बना रहता हैं जिससे सामान्य जीवन प्रभावित होता है।

5. भोजन की कमी (Scarcity of food)—पूर्ण अन्धकार के कारण या सूर्य के प्रकाश के अभाव के फलस्वरूप अगाध समुद्र में पादप नही पाये जाते। वहाँ

पर रहने वाले प्राणी पूर्ण रूप से समुद्र की सतह से नीचे गिरने वाले खाद्य पदार्थ (पादप एवम् प्राणी) पर आश्रित होते हैं।

6. जलधाराओं की अनुपस्थिति (Absence of water currents)—अगाध समुद्र में जलधाराओं का पूर्ण अभाव होता है।

7. अगाध समुद्रों का अधःस्तर या तल तलछट का बना होना है जो अविरत रूप से समुद्र की सतह से नीचे गिरती रहती है।

गभीर समुद्री प्राणिजात (Deep Sea Fauna)

गभीर समुद्री-पर्यावरण जीवन के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है। इतनी अधिक उग्र परिस्थितियाँ होने पर भीं यहाँ का जीवन सुघट्य होता है तथा चारों ओर प्रत्येक स्थान पर जहाँ कि जीवित रहने की सम्भावनाएँ कुछ ही प्रतिशत है, विभिन्न प्रकार के प्राणी निवास करते हैं। अगाध समुद्री पर्यावरण में जीवन के प्रति इतनी अधिक प्रतिकूल परिस्थितियाँ होने पर भी लगभग सभी फाइला (वायु द्वारा श्वसन करने वाले आर्थ्रोपोड प्राणी तथा स्थलीय पृष्ठवंशियों को छोड़कर) के प्राणी अगाध समुद्र में पाये जाते हैं।

1. प्रोटोजोआ (Protozoa)—*नासेलेरिया* (*Nasselaria*), *ऐकेन्थेरिया* (*Acantharia*), आदि रेडियोलेरियन्स आद्य आदिनितलीय क्षेत्र (archibenthic) में तथा फोरामिनीफर (foraminifers) नितलस्थ क्षेत्र (benthic zone) में बहुलता में पाये जाते हैं।

2. पोरीफेरा (Porifera)—क्लास हैक्सैक्टिनेलिडा के ग्लास स्पंज (*हायलोनीमा* : *Hyalonema*, *फेरोनेमा* : *Pheronema* तथा *यूप्लेक्टेला* : *Euplectella*, आदि) एकमात्र रूप से अगाध समुद्र में पाये जाने वाले प्राणी हैं जो अपनी लम्बी मूल कण्टिकाओं (root spicules) द्वारा अधःस्तर से स्थानबद्ध रहते हैं। *क्लडोराइजा* (*Cladorhiza*) तथा *रेडीला* (*Radiella*), आदि कुछ मोनैक्सोनिड स्पंज 5000–6000 मीटर की गहराई मे पाये जाते हैं।

3. सीलेन्टरेटा (Coelenterata)—अश्म प्रवाल (stony corals) तथा सी-पेन व सी-एनीमोन तथा गार्गोनिड्स (gorgonids), आदि मृदु प्रवाल (soft corals), अगाध समुद्र में पाये जाने वाले सीलेन्टरेट-प्राणी हैं।

4. एनिलिडा (Annelida)—अधिकांश एनिलिड प्राणी वेलांचली (littoral) किन्तु नलियों में रहने वाले पोलीकीट प्राणी है, जैसे *अरेनिकोला*, *कीटोप्टेरस* (*Chaetopterus*), *सबैला* (*Sabella*), *सर्पुला* (*Serpula*) आदि। ये प्रायः 4,000 मीटर की गहराई तक पाये जाते हैं।

5. आर्थ्रोपोडा (Arthropoda)—कुछ आर्थ्रोपोड-प्राणी भी वितलीय होते हैं, जैसे **बार्नेकल्स** : Barnacles (*वेरुका* : *Verruca* तथा *स्केल्पेलम* : *Scalpellum*), **आइसोपोड** : Isopods (*यूरिकोपेनो वेल्जिलण्डिया* : *Eurycopeno valzelandia*) तथा **एम्फीपोड्स** : (*Amphipods*) समुद्र के तल पर पाये जाते हैं। **क्रैब्स** (Crabs), **लोब्सटर** (Lobsters) तथा **श्रिम्प्स** (Shrimps) वितलीय जल में सामान्य रूप से पाये जाने वाले आर्थ्रोपोड प्राणी हैं। *लिमूलस* : *Limulus* (किंग क्रैब : King crab) अगाध समुद्र में पाया जाने वाला एकमात्र अरैक्निड प्राणी है।

6. मौलस्का (Mollusca)—मौलस्का की लगभग समस्त क्लासों के प्राणी अतलांत में पाये जाते हैं। काइटन (chitons), लैमेलिब्रेंक्स (lamellibranchs)

तथा गैस्ट्रोपोड्स (gastropods), आदि सभी प्राणी समुद्र में तल पर प्रचुरता से मिलते हैं।

7. इकाइनोडर्मेटा (Echinodermata)—इकाइनोडर्मेटा प्राणी अगाध समुद्र में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। स्टारफिश (starfishes) 2,000 fathoms* की गहराई तथा सी-अर्चिन (sea-urchins) 2,000 से 3,000 fathoms तक की गहराई तक पाये जाते हैं। सवृन्त क्रिनोइड्स (stalked crinoids) एकमात्र रूप से समुद्र के तल पर पाये जाने वाले प्राणी हैं।

8. मछलियाँ (Fishes)—*Chimaera* तथा *Hariotta* अगाध समुद्र में 1200 fathoms तक की गहराई में रहने वाली Holocephali मछलियाँ हैं। *Photostomias, Idiacanthus, Gastrostomus, Cryptoceras, Halieutaea, Bassogigas* तथा *Linophryne* आदि teleostean मछलियाँ अगाध समुद्र में रहने वाली मछलियाँ है। आर्डर Heterosomata की समस्त flat fishes पूर्ण रूप से समुद्र के तल पर पायी जाती हैं।

गभीर अगाध अनुकूलन (Deep-sea Adaptations)

1. आकार (Size)—सामान्य रूप से अगाध समुद्र में रहने वाले प्राणियों का आकार समुद्र की सतह पर रहने वाले अपनी ही जाति के अन्य सदस्यों की अपेक्षा छोटा होता है। *Chimaera* (Holocephali) और *Scapanorhynchus* (Sharks) इस तथ्य का अपवाद है। आकार की सूक्ष्मता की यह विशेषता **अगाध-समुद्री जीवों का बौनापन** कहलाता है। भोजन की अल्पता इनके आकार की सूक्ष्मता का कारण है।

2. आकृति (Shape)—अगाध समुद्र में रहने वाले प्राणियों का शरीर कोमल एवम् पतला होता है क्योंकि समुद्र के तल पर जल के शान्त एवम् निश्चल होने के कारण वहाँ प्राणियों के बीच जीवन के लिए किसी भी प्रकार का संघर्ष नहीं होता। यहाँ लम्बे पादों वाले क्रैब्स (crabs), कोमल व लम्बे वृन्तों वाले क्रिनोइड्स (crinoids) तथा सिलिकायम भंगुर ग्लास स्पंज सामान्य रूप से पाये जाते हैं। हेक्सेक्टिनेलिड्स (Hexactinellids) कोमल व शीशे के समान व रस्सीनुमा मूल कण्टिकाओं द्वारा नर्म सिन्धुपक (ooze) से चिपके रहते है। इसके अतिरिक्त *Chimaera*, *Gigantura* तथा *Gastrostomus* आदि अगाध समुद्र में पायी जाने वाली समुद्री मछलियों की पुच्छ कोडे के समान पुच्छ तन्तु के रूप से होती है। अगाध समुद्र मे पायी जाने वाली कुछ मछलियाँ पार्श्व से इतनी अधिक चपटी होती है कि इनका एक ओर का नेत्र भी दूसरी ओर आ जाता है और शरीर फीते के समान हो जाता है।

3. कंकाल (Skeleton)—अगाध समुद्र में तापमान कम होने के कारण वहाँ रहने वाले प्राणी कैल्शियम का संश्लेषण नहीं कर पाते जिससे उनका कंकाल कोमल व अकैल्सीकृत होता है। इसी कारण अगाध समुद्र मे कैल्सीकृत स्पंजो का पूर्ण अभाव होता है। प्रोटोजोअन्स एवम् कोरल्स का बाह्य ककाल सिलिका का होता है। अगाध समुद्र मे पाये जाने वाले *Scalpellum* नामक बार्नेकल का खोल अकैल्सीकृत तथा अन्यों मे यह भगुर एवम् दुर्बल होता है। अगाध समुद्र में रहने वाले मौलस्का-प्राणियों का खोल भी भंगुर होता है। अगाध-समुद्री मछलियों का

* One fathom is equal to 6 feet.

अन्तःकंकाल भी या तो दुर्बल अथवा फिर पूर्णतया अकैल्शीकृत होता है, जैसे *Chimaera* ।

4. वर्ण (Colour)—प्रकाश के पूर्ण अभाव के कारण अगाध-समुद्री प्राणियों के पूरे शरीर का वर्ण एक समान होता है। ये प्राणी लाल, भूरे, काले, बैंगनी या नीले रंग के होते हैं किन्तु इनमें लाल वर्ण की अधिकता होती है।

5. भोजन एवम् पोषण (Food and feeding)—समुद्र के तल पर वनस्पति नहीं होती। अतः अगाध-समुद्री प्राणियों में भोजन के स्रोत के तीन विकल्प हैं :—

(*i*) ये एक-दूसरे का शिकार करते हैं, या (*ii*) सतह पर रहने वाले प्राणियों के उत्सर्जी पदार्थों पर निर्भर करते हैं, अथवा फिर (*iii*) सतह पर रहने वाले पौधों एवम् प्राणियों पर निर्भर करते हैं जो जल में डूबने के पश्चात् समुद्र के तल पर गिर जाते हैं। अधिकांश अगाध-समुद्री प्राणी परभक्षी होते हैं। परभक्षी प्राणियों के जबड़े शक्तिशाली तथा दाँत मजबूत व नुकीले होते हैं। अगाध-समुद्री मछलियों (*Saccopharynx* तथा *Eurypharynx*) का मुख चौड़ा, जबड़े शक्तिशाली, दन्त-विन्यास सुदृढ़ तथा आमाशय लम्बा व लचीला होता है। इसी लचीलेपन के कारण इनके आमाशय में कभी-कभी स्वयं के आकार से भी बड़े शिकार समा जाते हैं।

खाद्य पदार्थ सतह से समुद्र के तल की ओर बहुत धीमी गति से जाता है जिसकी अधिकांश मात्रा बीच के प्रदेश के प्राणियों द्वारा उपयोग में ले ली जाती है। इसी कारण समुद्र के तल पर खाद्य पदार्थों की एक सीमित मात्रा ही पहुँच पाती है। इसी कारण समुद्र के तल पर विभिन्न प्राणियों की संख्या अधिक नहीं होती। अगाध समुद्र के शाकाहारी प्राणियों की आहार नाल लम्बी किन्तु रेड्युला ह्रासित होता है। साथ ही इनकी उत्सर्जी नाल अधिक लम्बी होती है जिससे ये उत्सर्जी पदार्थों को पोषण स्थान से दूर त्यागते हैं और इनके आस-पास का स्थान साफ-सुथरा बना रहता है।

6. जीवसंदीप्ति (Bioluminescence)—अगाध-समुद्री प्राणियों में प्रकाश उत्पन्न करने की क्रिया प्रचलित रूप से पायी जाती है। मछलियों, क्रस्टेशियन्स, सेफैलोपोड्स, अनेक सीलेन्ट्रेट्स, कुछ स्टार-फिश अर्थात् सितारा मछलियों तथा कुछ ऐनीलिड प्राणियों में यह सामान्य रूप से पायी जाती हैं। इन प्राणियों में प्रकाश उत्पन्न करने वाले अंग या तो कुछ विशेष प्रदेशों (शीर्ष या तुंद के पार्श्व) में स्थित होते हैं अथवा फिर पूरे शरीर पर फैले रहते हैं। जीव-संदीप्ति के दो लाभ हैं—(*i*) **मैथुन के लिए साथी को पहचानना,** तथा (*ii*) **शिकार को अपनी ओर आकर्षित करना।**

7. नेत्र (Eyes)—अगाध-समुद्री प्राणियों में नेत्र या तो होते ही नहीं (क्रैब्स) अथवा फिर अल्पविकसित (पैक्टन—*Pecten*) होते हैं अन्यथा फिर मध्यम प्रकाश को ग्रहण करने के लिए अत्यधिक विकसित होते हैं। कुछ मछलियों (*Gigantura*) में दूरदर्शी नेत्र (telescopic eyes) होते हैं।

8. संवेदी अंग (Sensory Organs)—अगाध समुद्र में पाये जाने वाले क्रस्टेशियन्स में दृष्टि के अभाव की पूर्ति लम्बे संवेदी एण्टिनी करते हैं। सुविकसित दृष्टि वाले प्राणियों में भी ये शरीर से 8–10 गुणा अधिक लम्बे होते हैं। (*Munnipsis longicornis* नामक क्रस्टेशियन आइसोपोड में एण्टिनी शरीर से 8 गुणा तथा श्रिम्प (*Aristaes*) में ये 10–12 गुणा अधिक लम्बे होते हैं। अगाध-समुद्री मछलियों

फिनरेज बहुत अधिक लम्बी होती हैं। *Bathypterois* में अंस पक्षों (pectoral fins) की एक फिन-रे संवेदी तन्तु में तथा *Stylophorus paradoxus* में कॉडल पक्ष (caudal fin) एक लम्बे तन्तु के रूप में आवर्धित होती है। ये रचनाएँ स्पर्श-संवेदी होती हैं तथा आस-पास के जल में होने वाली छोटी-छोटी हलचलों को भी ग्रहण कर लेती हैं।

9. पार्श्व रेखा प्रणाली (Lateral-line system)—अगाध-समुद्री मछलियों में दृष्टि की कमी को पूरा करने के लिए पार्श्व-रेखा प्रणाली सुविकसित होती है।

10. अगाध-समुद्री मछलियों में म्यूकस स्रावित करने वाली ग्रन्थियाँ होती हैं।

वितलीय प्राणी समूह में एकसमानता एवम् स्थायित्व
(Uniformity and Stability of Abyssal Fauna)

अगाध समुद्र में वायुमण्डलीय परिस्थितियाँ लगभग अपरिवर्तित रहती हैं। सम्भवतः युगयुगान्तर तक वहाँ की जलवायु में कोई अन्तर नहीं आता। अतः अगाध समुद्री क्षेत्र में प्रदेश एवम् काल का कोई प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता। समस्त अगाध क्षेत्र में सदैव ही समान परिस्थितियाँ बनी रहती हैं। इसी विषम किन्तु अपरिवर्तित पर्यावरण के कारण जीवों में पारस्परिक संघर्ष लगभग नगण्य होता है अपितु उनकी समस्त शक्ति अपने को प्रतिकूल पर्यावरण के अनुरूप बनाने में केन्द्रीभूत रहती है। फलस्वरूप अगाध जीवों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होते तथा बहुत-से आदिम प्राणी जैसे *Limulus, Lingula* तथा *Amphioxus, Serpulal, Nautilus* इत्यादि अपने प्राचीन स्वरूप में अभी तक विद्यमान हैं जबकि इनके निकट सम्बन्धी जो अगाध में नहीं रहते वे अब जीवाश्म के रूप में ही मिलते हैं। मीसोजोइक युग के stony corals के जीवाश्म अगाध में पाये जाने वाले जीवित stony corals के ही समान हैं। Sea-urchins, तथा coelacanth fishes जिनके बारे में यह अनुमान लगाया गया था कि ये बहुत पहिले ही जीवाश्म में बदल चुके हैं अब भी अगाध समुद्र में जीवित अवस्था में पाये जाते हैं।

अध्याय 8

जीव मण्डल (Biosphere)

प्रश्न 29. जीव मण्डल से आप क्या समझते हैं ? इसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करिये ।

What do you understand by biosphere ? Discuss its main characteristics.

भू-मण्डल का वह समस्त भाग जहाँ पर जीवन उपस्थित होता है, **जीव-मण्डल** (biosphere) कहलाता है । दूसरे शब्दो में **भू-मण्डल का वह भाग जहाँ जीवन उपस्थित होता है, जीव-मण्डल** (biosphere) **कहलाता है ।** वातावरण की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यह सदैव परिवर्तित होता रहता है । भू-मण्डल के भौतिक पर्यावरण पर खगोल-भौतिक, मौसम-सम्बन्धी, भू-वैज्ञानिक तथा भू-रासायनिक शक्तियों का प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु देर-सवेर व किसी-न-किसी रूप में परिवर्तन उत्पन्न हो जाते है । इस सतत परिवर्तन का मूल कारण यह है कि भू-मण्डल स्वय मे एक खुली प्रणाली के समान है । भू-मण्डल से अन्तरिक्ष तथा अन्तरिक्ष से भू-मण्डल में प्रवेश करने वाले पदार्थों की मात्रा उपेक्षणीय होती है किन्तु सदैव ही ऊर्जा का आवागमन होता रहता है । मुख्य रूप से ऊष्मा, प्रकाश, X-किरणों एवम् अल्ट्रावायलट किरणों के रूप मे सूर्य की ऊर्जा अविरत रूप से पृथ्वी पर आती रहती है और भूमि से ऊर्जा की एक वड़ी मात्रा विकिरित होती रहती है । इस प्रकार ऊर्जा के अभिवाह के फलस्वरूप साम्यावस्था को असन्तुलित करने वाले विक्षोभ उत्पन्न हो जाते है । इस प्रकार प्रत्येक असन्तुलन के फलस्वरूप अनेक नये असन्तुलन विकसित हो जाते है जिसके फलस्वरूप पृथ्वी का वातावरण परिवर्तित होता रहता है ।

जीव-मण्डल के भौतिक भाग को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

1. जल-मण्डल (Hydrosphere)—इसमें भू-मण्डल पर स्थित समस्त सागरों, झीलों व नदियों तथा भूमि पर स्थित जल सम्मिलित है ।

2. स्थल-मण्डल (Lithosphere)—इसमें विभिन्न प्रदेशों में ठोस घटक अर्थात् चट्टानें सम्मिलित है ।

3. वायु-मण्डल (Atmosphere)—यह जल-मण्डल एवम् स्थल-मण्डल के चारों ओर गैसीय मेण्टल वनाता है ।

1. जल-मण्डल (Hydrosphere)

जल भू-मण्डल पर मिलने वाले विभिन्न खनिजों की अपेक्षा सर्वाधिक मात्रा में मिलता है। यह पृथ्वी की लगभग 73% सतह को घेरे हुए है । साथ ही यह स्थल-मण्डल एवम् वायु-मण्डल का भी एक महत्त्वपूर्ण घटक है। समस्त जीवों में भी पानी ही सर्वाधिक मात्रा में मिलता है ।

प्रकृति मे पानी के चक्र से सभी भली प्रकार परिचित है। सूर्य की ऊर्जा द्वारा जल वाष्पीकृत होकर वायुमण्डल मे पहुँचता है। अधिक ऊँचाई पर पानी की वाष्प के ठण्डा एवम् सघनित होने से बादल बनते है। यही पानी वर्षा एवम् हिम के रूप मे पुनः जल-मण्डल मे वापस आ जाता है। भूमि पर होने वाली अन्य सभी क्रियाओ की अपेक्षा यही क्रिया सर्वाधिक संस्थूल क्रिया है।
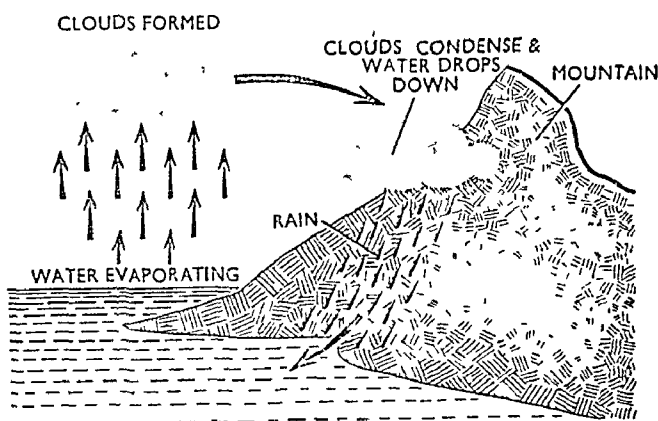
चित्र ८·१. भू-मण्डल पर पानी का चक्र (Global water cycle)

जलीय प्राणी अपने वातावरण से जल ग्रहण करते है और अपने जीवन-काल में ग्रहण किये गये पानी का एक भाग उत्सर्जन द्वारा जल-मण्डल मे वापस कर देते हैं। शेष जल मृत्यु के बाद शरीर के क्षय होने पर वापस लौट जाता है। स्थलीय पेड़-पौधे एवम् जीव-जन्तु जल के भू-मण्डलीय चक्र मे अधिक विस्तारक रूप मे अन्तरस्थापित होते है। ये जीव नदियों, झीलों, ताल, जोहड़ आदि जलाशयों से जल ग्रहण करते है। जीवों द्वारा ग्रहण किये गये जल का कुछ भाग इनके शरीर में रोक लिया जाता है तथा शेष जल का कुछ भाग वाष्प के रूप मे वायु-मण्डल में चला जाता है जहाँ से यह वर्षा के रूप मे जल-मण्डल में लौट आता है। वास्तव मे स्थलीय जीव जल के भू-मण्डलीय चक्र को त्वरित करते है। स्थलीय जीवों की मृत्यु के बाद उनके शरीर के क्षय होने पर उनके शरीर में स्थित जल भी जल-मण्डल मे पहुँच जाता है।

जल एक महत्त्वपूर्ण पोषक पदार्थ होने पर भी मौसम तथा जलवायु के माध्यम से समुद्र मे तथा स्थल पर रहने वाले जीवों को प्रभावित करता है। उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों के सागरो मे जल गुनगुना होकर हलका हो जाता है और ऊपर सतह की ओर चढने लगता है जबकि ध्रुवीय प्रदेशों मे पानी ठण्डा होकर नीचे की ओर जाता है। ऊपर व नीचे की ओर जल का यह विस्थापन तीव्र वायु के साथ मिल कर महासागरीय धाराएँ उत्पन्न करता है। इस प्रकार की धाराएँ न केवल समुद्र के मौसम को प्रभावित करती है वरन् ये वायु एवम् स्थल को भी प्रभावित करती है। अपने तापीय गुण के कारण जल का एक अन्य जलवायु सम्बन्धी प्रभाव होता है। अन्य सभी द्रवो की अपेक्षा पानी सर्वाधिक मन्द गति से गरम या ठण्डा होता है। इसी कारण महासागर सूर्य की ऊष्मा का विशाल आशय है। यही कारण है कि रात्रि के समय महासागरो के ऊपर से बहने वाली ठण्डी हवाएं दिन के समय

ऊष्मा ग्रहण करके गरम हो जाती हैं। इसी प्रकार दिन के समय गरम हुई समुद्री हवाएँ रात्रि के समय महासागरों के जल द्वारा ऊष्मा के अवशोषण के फलस्वरूप ठण्डी हो जाती हैं। स्थल पर इन गरम व सर्द हवाओं के चलने से ही ग्रीष्म व शीत ऋतुओं का आगमन होता है।

ध्रुवीय प्रदेशों में हिम के रूप में स्थित जल का भी भू-मण्डलीय जलवायु पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। भू-भौतिक परिवर्तनों के फलस्वरूप ताप में कुछ डिग्री के परिवर्तन से ही ध्रुवीय हिम कम या अधिक हो जाती हैं। वर्तमान काल में पृथ्वी हिम युग से धीरे-धीरे बाहर आ रही है, और जैसे-जैसे ध्रुवीय हिम पिघल रही है महासागरों में पानी की सतह ऊपर उठ रही है जिसके फलस्वरूप तटीय रेखाएँ धीरे-धीरे जल में डूबती जा रही हैं।

जल-मण्डल के इन सभी परिवर्तनों का प्राणियों पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। ताप, आर्द्रता, वर्षा की मात्रा, वायु तथा लहरें आदि जल द्वारा प्रभावित होने वाले इन कारकों के साथ-साथ स्वयं जल की भी किसी स्थान विशेष में जन्तुओं की प्रकृति एवम् उनकी संख्या को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

स्थल-मण्डल (Lithosphere)

स्थल-मण्डल प्राणियों को न केवल खनिज पोषक सम्भरणित करता है बल्कि यह स्थलीय पौधों व भूमि के अन्दर रहने वाले जन्तुओं के लिए मृदा का रेतीला आधार बनाता है।

जलीय चक्र की भाँति पृथ्वी का शैलीय पदार्थ (rocky material) भी एक अतिकाय चक्र के रूप में परिसंचरण करता है। किन्तु स्थल-मण्डल में परिसंचरण की गति का हजारों, लाखों वर्षों में ही पता चलता है।

इसी भू-मण्डलीय खनिज चक्र का एक प्रक्रम **पटलविरूपण** (diastrophism) है। इसके अन्तर्गत विभिन्न भूविज्ञानिक शक्तियों के माध्यम से पृथ्वी का एक बड़ा भाग ऊपर की ओर उठ जाता है। कभी-कभी पूरे के पूरे महाद्वीप इस प्रकार की मन्द गति से होने वाली पटल विरूपग गतियों द्वारा प्रभावित होते हैं। इसका सर्वोचित उदाहरण पर्वतों का निर्माण है। आज के युग में हिमालय, एण्डीज तथा एल्प्स नवीनतम एवम् उच्चतम पर्वतमालाएँ हैं। इनका निर्माण आज से लगभग 7 करोड़ वर्ष पूर्व लैरामाइड-भूक्रान्ति (laramide revolution) के समय हुआ था। इन प्रदेशों में पृथ्वी की सतह अभी तक भली प्रकार स्थिर नहीं हो पायी है। उच्च पर्वत की उपस्थिति महाद्वीपीय वायु के परिसंचरण में उग्र रूप से रोवक का कार्य करती है। महासागर की नम हवाएँ उच्च पर्वत को पार करने में समर्थ नहीं होतीं। इसके फलस्वरूप पर्वत व समुद्र के बीच के प्रदेश में तो खूब वर्षा होती है जिससे वहाँ की भूमि उपजाऊ बन जाती है, किन्तु इस पर्वत के दूसरी ओर के प्रदेश में मरुस्थलीय एवं शुष्क परिस्थितियाँ विकसित हो जाती हैं।

भूमण्डलीय खनिज-चक्र का दूसरा प्रक्रम **क्रमण** (gradation) है। इसके अन्तर्गत ऊँची भूमि तथा पर्वतों का समतलन है। ये परिवर्तन अपरदन, चट्टानों के विघटन तथा वायु-मण्डल एवम् जलमण्डल द्वारा भूमि के वास्तविक भूवैज्ञानिक सिकन के कारण होते हैं।

क्रमण की अन्य शक्तियाँ रासायनिक होती हैं जो प्राणियों के लिए विशेष महत्त्व की हैं। क्षय की रासायनिक प्रक्रियाएँ मुख्य अपरदन कारक हैं। इनके द्वारा
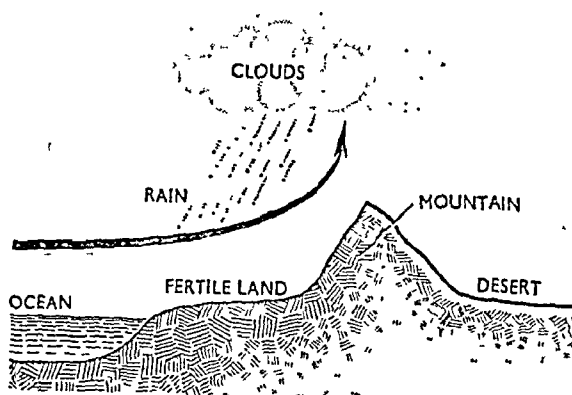
चित्र ८·२. जलवायु पर पर्वत का प्रभाव। पर्वत नमी से भरी समुद्री हवाओं को ऊपर की ओर विक्षेपित करके पर्वत व सागर के बीच के प्रदेश में वर्षा के लिए उत्तरदायी होता है, जिससे इस ओर की भूमि उपजाऊ हो जाती है जबकि दूसरी ओर की भूमि वन्ध्य रहती है (The effect of mountain on climate. A mountain defleets moisture rich ocean winds upward and causes rain to remain confined to the slope facing the ocean. This slope will be fertile but the far slope becomes desert)

बड़े पत्थर छोटे पत्थरों में और उसके बाद रेत के कणों में विघटित हो जाते है। अतः रासायनिक अपरदन की मृदा कणों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके साथ ही जब पानी किसी चट्टान के सम्पर्क में आता है तो यह इसकी कुछ मात्रा को घोल लेता है और खनिज यौगिक नदियों में और वहाँ से सागर मे पहुँच जाते है। इस प्रकार स्थल-मण्डल से जल में घुलकर खनिज-लवण सागरों में एकत्रित होते रहते हैं। अतः प्रारम्भिक सागरों के पानी के खारेपन का एक कारण यह भी हो सकता है। समुद्री पौधे इन खनिजों के आॅयनों व पोषक तत्त्वों का स्वच्छद होकर उपयोग करते है।

वायुमण्डल (Atmosphere)

वायुमण्डल पर पृथ्वी की परिक्रमा का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। गरम विषुवतीय वायु ऊपर की ओर उठती है, ठण्डी ध्रुवीय वायु नीचे की ओर जाती है तथा पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन के फलस्वरूप वायु पार्श्विक दिशा मे विस्थापित हो जाती है। जलीय परिसंचरण की भाँति वायु परिसचरण भी जलवायु को प्रभावित करता है।

वायुमण्डल के रसायनिक चक्र भी प्राणियों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। वायु में 20% आॅक्सीजन, 0·3% CO_2, 77% नाइट्रोजन, जल तथा लेशमात्रा मे अक्रिय गैसे होती हैं। अक्रिय गैसों के अतिरिक्त वायु के अन्य सभी घटक जीवो के लिए कच्चे पदार्थो का कार्य करते है तथा प्रत्येक का भूमण्डलीय चक्र मे निजी महत्त्व है।

आॅक्सीजन चक्र (Oxygen cycle)—वायुमण्डलीय आॅक्सीजन सजीवों के शरीर में श्वसन गैस के रूप मे प्रवेश करती है। आॅक्सीजन शरीर के अन्दर हाइड्रोजन

के साथ मिलकर जल वनाती है जो सजीव के जलीय अवयव का ही एक भाग वन जाता है। जल शरीर के अन्दर ऑक्सीजन व हाइड्रोजन के स्रोत का कार्य करता है। यह संरचनात्मक ऑक्सीजन जीव की मृत्यु के बाद शरीर के क्षय होने पर पुनः वातावरण में वापस चली जाती है। सामान्य रूप से यह मुक्त ऑक्सीजन के रूप मे न जाकर जल या CO_2 के रूप में वातावरण में वापस जाती है। भूमण्डलीय ऑक्सीजन चक्र स्पष्ट रूप से जल व CO_2 चक्रों से सम्वद्ध होता है। हरे पादपों में जल एक कच्चे पदार्थ के रूप में काम आता है और प्रकाश-संश्लेपण के समय O_2 व H_2 में टूट जाता है। हाइड्रोजन भोजन के निर्माण में भाग लेती है और ऑक्सीजन एक उत्पाद के रूप में वायुमण्डल में वापस आ जाती है।

संक्षेप में वायुमण्डलीय ऑक्सीजन श्वसन द्वारा जीवों के शरीर में प्रवेश करती है और केवल प्रकाश-संश्लेपण के द्वारा ही मुक्त रूप में वायुमण्डल में वापस आती है।

कार्वन डाई-ऑक्साइड चक्र (Corbon dioxide cycle)—वायु-मण्डलीय CO_2 ही कार्वन का एकमात्र स्रोत है और जल सहित केवल यही दोनों जीवों की सरचना में ऑक्सीजन के मुख्य स्रोत हैं। CO_2 प्रकाश-संश्लेपण द्वारा जीवों के शरीर में प्रवेश करती है जिसका कि यह एक महत्त्वपूर्ण कच्चा माल है। प्रकाश-संश्लेपण द्वारा यह कार्वनिक पदार्थों का निर्माण करती है जिनका एक भाग श्वसन में काम आ जाता है तथा शेष भाग सजीव पदार्थ के निर्माण में उपभोग में आ जाता है प्रथम अवस्था में यह एक उत्पाद के रूप में वायुमण्डल में वापस आ जाती है और जीव की मृत्यु के वाद उसके शरीर के क्षय होने पर वायुमण्डल मे जाती है।

वायुमण्डल में CO_2 की कमी की पूर्ति जीवों द्वारा श्वसन, निर्जीव पदार्थों के जारण तथा अग्नि द्वारा होती है। वनों में आग द्वारा तथा औद्योगिक ईंधन के जलने से CO_2 का विमुक्त होना वास्तव में कार्वन चक्र की एक चिर-प्रतिक्षित प्रक्रिया है, क्योंकि काष्ठ, कोयला प्रकृतिक गैस, खनिज तेल आदि सभी कार्वनिक यौगिक हैं जिनका निर्माण आदिकाल में प्रकाश-संश्लेपण द्वारा हुआ था।

नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen cycle)—सजीवों में नाइट्रोजन का स्रोत भी वायुमण्डतीय नाइट्रोजन है। किन्तु वायुमण्डल में वहुलता से मिलने वाली नाइट्रोजन एक अक्रिय गैस है और अधिकांश जीव इस मुक्त नाइट्रोजन का उपभोग करने में असमर्थ हैं। यद्यपि स्थलीय जीव श्वसन के समय वायु के साथ काफी मात्रा में नाइट्रोजन ग्रहण करते है किन्तु यह सभी नाइट्रोजन श्वास के साथ वाहर निकाल दी जाती है। वायुवीय नाइट्रोजन का उपभोग मुख्य रूप से केवल कुछ विशेष प्रकार के वैक्टीरिया, जल व भूमि में रहने वाले नीले-हरे शैवाल आदि नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीव कर सकते हैं। ये नाइट्रोजन को अवशोषित कर उसे ऐमीनो ग्रुप-NH_2 में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार स्थिरीकृत नाइट्रोजन पौधों द्वारा उपयोग में ले ली जाती है और वाद में शाकाहारी प्राणियों द्वारा अपने शरीर के निर्माण में उपयोग में आने वाली नाइट्रोजन का एक अन्य स्रोत भूमि व जल में स्थित NO_3^- आयन हैं। पौधे नाइट्रेट आयनों को ऐमीनो ग्रुप में परिवर्तित करते हैं जो पौधों के शरीर से शाकाहारी प्राणियों के शरीर में पहुँच जाती है। पेड़-पौधों व जन्तुओं के मृत शरीर तथा उत्सर्जी पदार्थों के क्षय होने पर नाइट्रोजनी यौगिक NH_3 के रूप में मृदा व जल में वापस चले जाते हैं। नाइट्रीकारी वैक्टीरिया NH_3 को NO_3^- में ऑक्सीकृत कर देते है। जल या भूमि में उत्सर्जित होने पर NO_3^- ऑयन

वातावरण में नाइट्रेट्स की कमी को पूरा करते हैं। नाइट्रोजन की पुनः पूर्ति तीन अन्य विधियों द्वारा भी होती है—(1) पानी द्वारा चट्टानों को घोलने से, (2) मनुष्य द्वारा मृदा में खाद मिलाने से, तथा (3) वायुमण्डल में तड़ित्-विसर्जन द्वारा जिसके फलस्वरूप मुक्त नाइट्रोजन एवम् ऑक्सीजन मिलकर NO_2 बनाते हैं और अनेक मध्यवर्ती क्रियाओं के पश्चात् वर्षा के जल के साथ भूमि पर आने पर नाइट्रेट्स बनते हैं। नाइट्रेट्स केवल हरे पादपों द्वारा ही उपभोग में नहीं आते वरन् विनाइट्रीकारी बैक्टीरिया भी इनका उपयोग करते हैं और अन्त में इसे आणविक नाइट्रोजन के रूप में पुनः वायुमण्डल में वापस भेज देते हैं। इस प्रकार भूमण्डलीय नाइट्रोजन का चक्र पूरा हो जाता है।

अध्याय 9

विकिरण एवम् प्रदूषण
(Radiation and Pollution)

प्रश्न 30. न्यूक्लीय विस्फोट के फलस्वरूप होने वाले 'फाल आउट' या तत्त्व-वर्षा से आप क्या समझते हैं ? इस प्रकार की तत्त्व-वर्षा से जीवों पर पड़ने वाले प्रभाव का उल्लेख करिये ।

What do you understand by "fallout" from nuclear explosions ? Give an account of biological effects of such fallouts.

(Rajasthan 1972)

न्यूक्लीय या रेडियो-ऐक्टिव फाल आउट
(Nuclear fallouts or Radioactive fallouts)

वायुमण्डल में परमाणु बम या हाइड्रोजन बम के विस्फोट के पश्चात् पृथ्वी पर गिरने वाली रेडियो-ऐक्टिव धूल को **न्यूक्लीय या रेडियो-ऐक्टिव फाल आउट** (nuclear or radioactive fallout) कहते हैं । इन विस्फोटों के फलस्वरूप आस-पास का पर्यावरण रेडियो-ऐक्टिव हो जाता है । फाल आउट के अन्तर्गत विखण्डन बमों (fission bombs) के भारी रेडियो-ऐक्टिव तत्त्वों (रेडियो-न्यूक्लीड्स : radio-nucleids) के विखण्डन उत्पाद तथा ताप-न्यूक्लीय बमों (thermonuclear bombs) अर्थात् संलयन बमों (fusion bombs) के विस्फोट के फलस्वरूप उत्पन्न न्यूट्रॉन्स आते हैं ।

रेडियो-ऐक्टिव फाल आउट न्यूक्लीय विस्फोटों के फलस्वरूप होते हैं जो निम्नलिखित किसी भी कारणवश किये जा सकते हैं :—

(1) युद्ध के समय शत्रु के प्रदेश में परमाणु बम या हाइड्रोजन बम का विस्फोट करने से

(2) जल के अन्दर या भूमि पर न्यूक्लीय परीक्षण करने से

(3) बन्दरगाहों, नहरों या खानों को खोदने के लिए (इस प्रकार के विस्फोट शान्ति-कार्यों में किये जाते हैं) ।

पृथ्वी की सतह पर न्यूक्लीय विस्फोट करने पर टनों मिट्टी-धूल व गैसें वायुमण्डल में कई मील ऊपर तक उठ जाती हैं और मशरूम (mushroom) के समान बादल बनाती हैं । ये बादल रेडियो-ऐक्टिव धूल के होते हैं । न्यूक्लीय विस्फोट के फलस्वरूप लगभग 80% रेडियो-ऐक्टिव धूल कुछ ही घण्टों के अन्दर एक रैखिक क्रम में विस्फोट-स्थल के आस-पास बैठ जाती है । लगभग 5% रेडियो-ऐक्टिव धूल परिसर्ती मण्डल या ट्रोपोस्फियर (troposphere) में पहुँच जाती है जहाँ से यह विस्फोट के कुछ सप्ताहों के अन्दर भूमि पर पुनः बैठ जाती है । किन्तु रेडियो-ऐक्टिव धूल का लगभग 15% वायुमण्डल के समतापमण्डलीय प्रदेश या स्ट्रैटोस्फियर (stratosphere) में पहुँच जाता है । वहाँ से रेडियो-ऐक्टिव धूल काफी दूर-दूर तक फैल जाती है और वर्षा के साथ धीरे-धीरे पृथ्वी पर गिरती रहती है । इससे स्पष्ट

है कि रेडियो-एक्टिव धूल की मात्रा विस्फोट-स्थल से दूरी के साथ-साथ कम होती जाती है।

फाल आउट के जैव-प्रभाव (Biological effects of fallouts)—1953 में Bikini-में हुए न्यूक्लीय विस्फोट के फलस्वरूप होने वाले भीषण न्यूक्लीय फाल आउट द्वारा प्रभावित Island of Rongelap के 230 निवासियों व एक जापानी मछुए के अतिरिक्त विश्व के किसी अन्य भाग में मनुष्य या अन्य जीवों पर रेडियो-ऐक्टिव फाल आउट द्वारा होने वाले घातक प्रभावों को नहीं देखा गया है। किन्तु फाल आउट के फलस्वरूप विकिरण द्वारा होने वाले घातक प्रभावों की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि विकिरण का मनुष्य व अन्य जीवों पर घातक व हानिकारक प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। यद्यपि यह प्रभाव तत्कालिक न होकर धीरे-धीरे दृष्टिगत होता है और आगे की पीढ़ियों में वंशागत होकर अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न करता है।

न्यूक्लीय फाल आउट या तत्त्व वर्षा में पाये जाने वाले रेडियोन्यूक्लाइड्स (radionuclides), लोहा, सिलिका व मिट्टी के कणों के साथ संलयन होकर कोलायडी निलम्बन (colloidal suspension) या अविलेय कण बनाते हैं अथवा फिर ये कार्बनिक यौगिकों के साथ मिलकर जटिल यौगिक बनाते हैं। रेडियो-न्यूक्लाइड्स के एक छोटे कण कोलॉयड बनाते है जो पौधों की पत्तियों से चिपक कर विकिरण द्वारा उनके ऊतक को क्षति पहुँचाते हैं। शाकाहारी जन्तुओं द्वारा इनका सेवन करने पर रेडियो-ऐक्टिव पदार्थ उनके शरीर में पहुँच जाते है। यहाँ से रेडियो-न्यूक्लाइड्स दूध व माँस के द्वारा मनुष्य व अन्य जन्तुओं में पहुँच जाते हैं। अतः इनके फलस्वरूप निम्नलिखित रोगों व विकारों की सम्भावना है :—

1 **असामयिक बुढ़ापा** (Premature old age)—कुछ जन्तुओं पर प्रयोग करने पर देखा गया है कि रेडियो-ऐक्टिव विकिरण के फलस्वरूप उनकी जनन-क्षमता क्षीण हो जाती है और वे शीघ्र ही मर जाते है।

2. **ल्यूकीमिया तथा बोन कैंसर** (Leukemia and bone cancer)—Strontium–90 रेडियोएक्टिव तत्त्व है और रसायनिक दृष्टि से यह calcium से मिलता-जुलता है। अस्थियाँ calcium के साथ-साथ strontium–90 का अवशोषण भी तेजी से करती है। पेड़-पौधे भूमि में से जल व अन्य खनिज पदार्थों के साथ इसका अवशोशण करते है। गाय-भैंस व बकरियाँ आदि जब इन पौधों को चरती है तो यह उनके शरीर मे पहुँच जाता है और उनके दूध द्वारा यह मनुष्य के शरीर में पहुँच जाता है। शरीर मे पहुँचने पर यह हड्डियों में एकत्रित होता रहता है और **ल्युकीमिया व बोन कैंसर** नामक घातक रोग उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार Iodine–131 भी एक रेडियो-ऐक्टिव तत्त्व है जो स्थलीय पादपों व जन्तुओ मे अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। यह फुड-चेन (food-chain) के विभिन्न स्तरों से होता हुआ मनुष्य व अन्य जन्तुओं में पहुँचता है। शरीर के अन्दर यह थायरॉइड ग्रन्थि मे एकत्रित हो जाता है। थायरॉक्सिन (thyroxin) के निर्माण मे इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह सिद्ध हो चुका है कि उच्च पृष्ठवंशियों में Iodine–131 की अधिक मात्रा **थायरॉइड कैंसर** (thyroid cancer) के लिए उत्तरदायी है।

3. **महामारियों में वृद्धि** (Spread of epidemics)—प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि रेडियो-एक्टिव विकिरण के फलस्वरूप मनुष्य व अन्य पृष्ठवंशी

जन्तुओं में रोगजनक वैक्टीरिया व वाइरसों (bactria and viruses) के प्रति एण्टीटॉक्सिन्स उत्पन्न करने की क्षमता कम या नष्ट हो जाती है।

4. तन्त्रिका-तन्त्र में विकार (Defects in nervous system)—रेडियो-एक्टिव विकिरण के फलस्वरूप केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र भी प्रभावित होता है और संवेदी तन्त्रिकाएँ अस्वभाविक रूप से उत्तेजित हो जाती हैं।

5. जैनिक घटन या जीन्स में परिवर्तन (Changes in genes or genetic constitution)—फाल आउट के फलस्वरूप होने वाले विकिरण मनुष्य व अन्य जीवों के जैनेटिक घटन में म्यूटेशन या उत्परिवर्तन उत्पन्न करने हैं। जैसा कि हम पढ़ चुके हैं, अधिकांश म्यूटेशन हानिकारक होते हैं जिनका प्रभाव आने वाली पीढ़ियों में स्पष्ट दिखाई देता है। मनुष्य में इसके फलस्वरूप विकृत एवम् विकलांग सन्तानों की उत्पत्ति हो सकती है।

अभी तक न्यूक्लीय विस्फोटों के फलस्वरूप होने वाले प्रभावों को खोजना सम्भव नहीं हो सका है, किन्तु इसमें किंचित्मात्र संशय भी नहीं है कि न्यूक्लीय विस्फोट किसी भी रूप में जीवों के लिए लाभदायक नहीं हैं। इनके घातक प्रभावों की अभी तक खोज न होने का कारण सम्भवतः यह है कि पर्यावरण में रेडियो-न्यूक्लाइड्स की मात्रा प्रकृति की निर्धारित मात्रा से काफी कम है जिससे ये जीवों को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित करने में समर्थ नहीं हैं। किन्तु शान्ति-कार्यों के लिए न्यूक्लीय विस्फोटों के भावी कार्यक्रम को देखते हुए हम कह सकते हैं कि वह दिन दूर नहीं जब वायुमण्डल, सागरों व पृथ्वी पर रेडियो-ऐक्टिव पदार्थों की मात्रा काफी बढ़ जायेगी। अतः फाल आउट के विकिरण द्वारा जीवों की भावी पीढ़ियों को एक सम्भाव्य संकट का सामना करना पड़ेगा।

प्रश्न 31. प्रदूषण पर एक निबन्ध लिखिये। इसके प्रभावों एवम् नियन्त्रण पर प्रकाश डालिये।

Write an essay on pollution. Mention its effects and the measures to control it. *(Rajasthan 1974)*

मृदा, वायु व जल के भौतिक, रासायनिक एवम् जैविक गुणों में होने वाले ऐसे परिवर्तनों को जो मनुष्य के जीवन, उसके रहन-सहन और उसके महत्त्व के अन्य जीवों को प्रभावित करते हैं, **प्रदूषण** कहते हैं। उद्योगीकरण, नगरों के विस्तार व खेतों में कीटनाशी पदार्थों के प्रयोग से न केवल मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, वरन् जीवन भी संकट में पड़ गया है। यही नहीं, प्रदूषण के कारण पिछली दो या तीन दशाब्दियों में ही अनेक जीव-जन्तु विलुप्त हो गये हैं और कतने ही विलुप्तता के कगार पर खड़े हैं। कीटनाशी व अन्य विषैले रासायनिक पदार्थों द्वारा संदूषण के कारण वायु, जल व मृदा रहने के लिए दिन-पर-दिन अनुपयुक्त होते जा रहे हैं।

प्रदूषक (pollutants) ऐसे पदार्थ हैं जो उद्योगों में उपजात में रूप में उत्पन्न होते हैं अथवा फिर मनुष्य द्वारा उपयोग में आने वाले पदार्थों के अवशेष हैं। इकोसिस्टम के आधार पर प्रदूषक पदार्थ दो प्रकार के होते है :—

(1) निम्नीकृत प्रदूषक
(2) अनिम्नीकृत प्रदूषक

(1). निम्नीकृत प्रदूषक (Degradable pullutants)—ये मल, कूड़ा करकट, दि जैव-कार्बनिक पदार्थ हैं जो प्रकृति के द्वारा सरल यौगिकों में अपघटित होते

रहते हैं। प्रायः इन पदार्थों द्वारा प्रदूषण की सम्भावना काफी कम होती है। पर अधिक मात्रा मे होने पर इनके अपघटन की गति धीमी पड़ जाती है और तब ये जल, वायु व मृदा आदि को प्रदूषित कर मनुष्य व अन्य प्राणियों में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं।

(2) अनिम्नीकृत प्रदूषक (Nondegradable pollutants)—ये एल्युमिनियम व अन्य धातुओं के डिब्बे, प्लास्टिक का टूटा-फूटा सामान, पारा, आरसैनिक आदि धातुओ के यौगिक, D.D.T. फिनोलिक शृंखला के कार्वनिक यौगिक हैं। ये या तो निम्नीकृत ही नही होते अथवा फिर निम्नीकरण की गति वहुत मंद होती है। ये पदार्थ जल व मृदा में से खाद्य शृंखला द्वारा विभिन्न जीवों के शरीर में पहुँचकर हानिकारक लक्षण उत्पन्न करते हैं।

वायु प्रदूषण (Air Pollution)

वायु मे 78% नाइट्रोजन, 21% ऑक्सीजन तथा 0·3% CO_2 होती है। वायुमण्डल में ऑक्सीजन के अतिरिक्त अन्य किसी गैस की वृद्धि जीवन के लिए घातक है। पिछले कुछ वर्षो से विश्व के सभी भागों के वैज्ञानिकों का ध्यान वायु के प्रदूषण की ओर आकर्षित हुआ है। कल-कारखानों, ताप-विजलीघरों, वायुयान व मोटर गाड़ियों की वढती हुई संख्या से भारी मात्रा में कार्वन, सल्फर व नाइट्रोजन के ऑक्साइड, धुआँ, धूल, व ठोस पदार्थो के सूक्ष्म कण तथा विपैले कार्वनिक पदार्थ वायुमण्डल मे मिलकर तेजी से वायु का प्रदूषण कर रहे है। सन् 1972 में न्यूयार्क शहर मे प्रतिदिन 3200 टन SO_2, 4200 टन CO तथा 280 टन धूल वायुमण्डल में मिलते रहे। अपने देश मे ही वम्बई शहर में डीजल व पैट्रोल से चलने वाली 3 लाख वसे, मोटर कारे व ट्रक, आदि है। प्रत्येक गैलन पेट्रोल के जलने पर 3 पौण्ड CO, 15 पौण्ड NO व अन्य विपैली गैसें, लैड (lead), अदग्ध हाइड्रोकार्वन (unburnt hydrocarbons) उत्पन्न होते है। ये 8,00,000 से 2,00,000 घनफुट वायु को प्रदूषित करने के लिए पर्याप्त है। आप स्वय ही अनुमान लगा सकते है कि 3 लाख गाड़ियों से उत्पन्न गैसों का वायुमण्डल पर कितना घातक प्रभाव पड़ेगा। ये पदार्थ केवल मनुष्य को ही नही अपितु समस्त जीव-जन्तुओं व पेड-पौधो को प्रभावित करते है। प्रायः देखा गया है कि कारखानो, आदि के आस-पास पेड़-पौधे व वृक्ष पनपने नही पाते और शीघ्र ही मर जाते है।

कारखानो व विजलीघरों की चिमनी से निकली SO_2 श्वसन पट की एपिथीलियम मे क्षोभ व खरास उत्पन्न करती हे। यह फेफड़ों के ऊतकों को भी क्षति पहुँचाती है। चिमनी मे निकली धूल फेफड़ो मे एकत्रित होती रहती है जिससे टी० वी० व केन्सर नामक घातक रोग उत्पन्न हो जाते हे। वायु मे इसकी 0 8–1 ppm (प्रति 10 लाख भाग मे) मात्रा भी वहुत अधिक हानिकारक सिद्ध होती है। मोटर गाड़ियों व चिमनियों से निकली CO भी स्वास्थ्य के लिए वहुत हानिकारक है। इसके अधिक मात्रा में होने पर फेफड़ो मे केन्सर, थकावट, मानसिक विकार आदि रोग हो जाते है। कभी-कभी तो यह मृत्यु का भी कारण होती है। प्रदूषक पदार्थ साहचर्य (synergism) का एक अति उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ये वातावरण मे अन्य पदार्थो के साथ मिलकर विपैले पदार्थ वनाते हैं जिससे इनका प्रभाव और अधिक घातक हो जाता है। उदाहरणार्थ ऑटोमोवाइल एग्जास्ट में निकलने वाले अदग्ध हाइड्रोकार्वन (unburnt hydrocarbons) व नाइट्रोजन

ऑक्साइड सूर्य के प्रकाश में एक-दूसरे से प्रतिक्रिया करके **प्रकाश-संश्लेषी स्मॉग** (photochemical smog) बनाते हैं।

सूर्य का प्रकाश
नाइट्रोजन ऑक्साइड + हाइड्रोकार्बन———→परऑक्सीएसिटिल नाइट्रेट (PAN) + ओजोन (O_3)

इसमें PAN व ओजोन दोनों ही अत्यधिक विषैले पदार्थ हैं जिनके कारण आँखों से पानी निकलने लगता है और सांस लेने में कठिनाई होने लगती है। ये पौधों के लिए भी बहुत हानिकारक हैं। ओजोन (O_3) की उपस्थिति में पत्तियों में तेजी से श्वसन होने लगता है और भोजन की कमी हो जाती है। PAN प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया को रुद्ध करता है और अन्त में भोजन के अभाव में पेड़-पौधे मर जाते हैं। यही कारण है कि बड़े शहरों के आस-पास छोटे पौधे भली प्रकार फल-फूल नहीं पाते। अगर समय रहते इस पर नियन्त्रण नहीं किया गया तो शहरों के आस-पास की वनस्पति पूर्णतः नष्ट हो जायेगी। इसी प्रकार SO_2 मनुष्य के श्वसन पथ में प्रवेश कर ऊतकों की नमी के साथ मिलकर H_2SO_4 बनाती है। H_2SO_4 फेफड़ों के कोमल ऊतकों को क्षति पहुँचाती है। SO_2 पत्तियों की सतह की नमी के साथ मिलकर H_2SO_4 बनाती है जो स्टोमेटा द्वारा प्रवेश कर क्लोरोफिल व ऊतकों को क्षतिग्रस्त करता है। वायु की नमी के साथ मिलकर भी यह H_2SO_4 बनाती है। यह लोहे व अन्य धातुओं से बनी वस्तुओं को सक्षारित कर मनुष्य को आर्थिक हानि पहुँचाता है। सिग्रेट का धुआँ केवल धूम्रपान न करने वालों को ही हानि नहीं पहुँचाता वरन् धूम्रपान न करने वाले मनुष्यों के लिए भी यह हानिकारक होता है।

जल प्रदूषण (Water Pollution)

विश्व में कुल पानी का 93% भाग सागरों में, 4·1% भूमि में, 2% हिम-खण्डों व वर्फ के रूप में और केवल 0·052% जल स्वच्छ पानी की झीलों व नदियों में है। प्रतिवर्ष 37000 घन किलोमीटर पानी पुनः वर्षा के रूप में भूमि पर वापस आता है। इसमें से जल की थोड़ी-सी मात्रा ही मनुष्य के काम आती है। यह पानी उसे झीलों, कुओं व नदियों से प्राप्त होता है। समुद्र का पानी खारा होने के कारण मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं होता। पहाड़ों व मैदानों से पानी जैसे-जैसे समुद्र की ओर बहता है संदूषित होता जाता है। पानी को संदूषित करने वाले प्रदूषक वाहितमल (sewage), घरों का कूड़ा-करकट, उद्योगों व कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ और खेतों व वनों में उपयोग में आने वाले कार्बनिक व अकार्बनिक कीटनाशी है। नदियों व मुहानों में ठोस पदार्थों के जमाव का कोई विषैला प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु ये तलछट के रूप में तल पर रहने वाले मौलस्क प्रणियों के क्लोमों व एनिलिड प्राणियों के शरीर पर एकत्रित होते रहते हैं जिससे इनमें श्वसन क्रिया रुक जाती है और ये मर जाते हैं।

वाहितमल धीरे-धीरे बैक्टीरिया द्वारा ऑक्सीकृत होता रहता है। किन्तु जिन स्थानों पर वाहितमल नदियों मे गिरता है उसके आस-पास पानी सदूषित हो जाता है जिससे आस-पास का पानी पीने से टाइफॉइड, हैजा, पीलिया व पेचिश आदि रोग हो जाते हैं। बड़े शहरों में तो यह समस्या और भी गंभीर हो गई है क्योंकि जहाँ वाहितमल गिरता है वहीं से जल पुनः साफ करके पीने के लिए भेज दिया जाता है। पानी में वाहितमल की अत्यधिक मात्रा का उसमें रहने वाले जीवों पर भी

प्रभाव पड़ता है। वाहितमल व कार्बनिक पदार्थों के ऑक्सीकरण के लिए जल में घुली ऑक्सीजन काम आती है जिससे जल में इसका अभाव हो जाता है और जलीय जीव (पादप व जन्तु) मर जाते है। कारखानों से निकले वहि: पदार्थ (effluents) कागज की मिलों से निकले सल्फाइड व लिग्नाइट, वात्य भट्टियों (blast furnaces) से निकले साइनाइड्स, रेयन व अन्य कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों के मिलने के कारण नदियों का जल इतना अधिक संदूषित हो जाता है कि यह न तो पीने के उपयुक्त रहता है और न ही खेतों के। जलीय जीवों पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और जल मे उगने वाले पौधे तथा उसमें रहने वाले जन्तु मर जाते हैं। इनकी थोड़ी-सी मात्रा से ही मछलियाँ मर जाती है। खेतों में कीटनाशी पदार्थों के प्रयोग से भी पानी प्रदूषित हो जाता है। वर्षा के पानी में घुल कर ये पदार्थ नदियों, झीलों व तालाबों के पानी में पहुँच जाते है जिससे प्राय: हर प्रकार के जीवों पर इन पदार्थों का घातक प्रभाव पड़ता है।

ताप व आण्विक बिजलीघरों में उपकरणों को ठण्डा करने के लिए पानी की बहुत अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। इस पानी के नदियों मे वापस पहुँचने पर वहाँ का ताप बढ़ जाता है जिससे जलीय पौधे व जन्तुओं की वृद्धि रुक जाती है और कभी-कभी उनकी मृत्यु तक हो जाती है।

हमें 70% से अधिक ऑक्सीजन सागरों में उगने वाले पादप-प्लवकों से प्राप्त होती है। सागरों में पादप-प्लवकों का विपुल भण्डार है। इनके द्वारा निर्मित ऑक्सीजन पर ही सागर में रहने वाली मछलियाँ व अन्य जीव-जन्तु जीवित रहते है। नदियों का प्रदूषित जल तेजी से सागरों को भी प्रदूषित कर रहा है। यूरोप की अधिकांश नदियाँ उद्योगों मे निकले वहि: पदार्थों के कारण प्रदूषित हो चुकी हैं। समुद्र मे बड़े-बड़े तेल वाहक चलते है। कभी-कभी इनसे तेल बहकर मीलों तक समुद्र की सतह पर फैल जाता है। इससे समुद्र में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है जिससे समुद्री जीव नष्ट हो जाते हैं। समुद्र के प्रदूषण के कारण अब तक 1000 प्रकार के जीव-जन्तु लुप्त हो चुके हैं। प्रदूषण का यही क्रम चलते रहने पर वह दिन दूर नही जब हमें समुद्रों की विपुल जैविक सम्पदा से वंचित होना पड़ेगा और उस अवस्था में सम्भवत: स्थल पर भी जीवन असम्भव-सा हो जायेगा।

कीटनाशी (Pesticides)—बढती हुई जनसख्या की खाद्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए खेतों में अच्छी व अधिक उपज तथा नगरों में सफाई रखने के लिए दिन-पर-दिन कीटनाशी रासायनिक पदार्थों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। अधिकांश कीटनाशी व पीड़कनाशी पदार्थ क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन (chlorinated hydrocarbons) व कार्बनिक फास्फोरस यौगिक है। D.D.T. ऐसे पदार्थों का उदाहरण है। शुरू में मलेरिया व प्लेग आदि रोगों का नियन्त्रण करने में यह एक वरदान सिद्ध हुआ। अब खेतों मे भी फसलों को कीटों से बचाने के लिए D.D.T. व ऐसे ही अन्य पदार्थों का उपयोग बड़ी मात्रा में किया जाने लगा है। ये पदार्थ अत्यधिक विषैले व स्थायी होते है। इनके अत्यधिक प्रयोग से प्राकृतिक खाद्य-शृंखलाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। ये पदार्थ खाद्य पदार्थों से शाकाहारी जन्तुओं में और उनसे माँसाहारी जन्तुओं में पहुँचकर एकत्रित होते रहते है और विभिन्न रोग उत्पन्न करते है। कभी-कभी तो D.D.T. व अन्य कीटनाशी पदार्थों से संदूषित भोजन को खाने पर मृत्यु तक हो जाती है। कीटनाशी पदार्थ छिड़कने पर फसलों को हानि पहुँचाने वाले कीट ही नहीं मरते वरन् ऐसे कीट भी नष्ट हो जाते है जो

पौधों में पर-परागण करते हैं। खेतों में D.D.T. व दूसरे कीटनाशी पदार्थों को छिड़कने से कैंब व कीट तो नष्ट होते ही हैं, इसके साथ-साथ इनका सेवन करने वाले जन्तु, मेंढक व पक्षी भी मर जाते हैं और प्रकृति में खाद्य-शृंखला का सन्तुलन बिगड़ जाता है जिसका परिणाम कुछ समय बाद और भी अधिक घातक सिद्ध होता है। कीटों में D.D.T. के लिए प्रतिरोधक क्षमता तेजी से विकसित होती है जिसके फलस्वरूप कीटनाशी पदार्थों का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अब और अधिक शक्तिशाली कीटनाशी पदार्थ संश्लेपित किये गये हैं किन्तु इनका मनुष्य व मवेशियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। क्लोरडेन (chlordane) व डाइलड्रिन (dieldrin) D.D.T. से कई गुना अधिक विषैले पदार्थ हैं। ये वाष्प के रूप में श्वास के साथ शरीर में प्रवेश करते हैं। त्वचा के सम्पर्क में आने पर तो इनका प्रभाव और भी अधिक घातक सिद्ध होता है। वर्षा के पानी में घुलकर कीटनाशी नदियों व समुद्र के पानी को दूपित कर देते हैं। इनकी थोड़ी-सी मात्रा जलीय जीवों को नष्ट करने के लिए काफी है।

आजकल घरों में भी मक्खियों, खटमल, कॉकरोच व अन्य जीवों को मारने के लिए फ्लिट व अन्य अपमार्जकों का तेजी से उपयोग बढ़ता जा रहा है। इनके प्रयोग से खाने की वस्तुओं के दूपित होने का भय रहता है। दूसरे इनके अधिक प्रयोग से कीट इनके लिए अधिक प्रतिरोधी होते जाते हैं और तब इनका नियन्त्रण करना काफी कठिन हो जाता है।

ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

ध्वनि भी वातावरण को प्रदूपित करती है। शहरों में अधिक भीड़ के कारण ध्वनि द्वारा प्रदूपण की समस्या और भी गम्भीर हो गई है। ध्वनि से तेज गति वाले विमानों की उड़ान, कारखानों में मशीनों की आवाज, शहरी सड़कों पर मोटर गाड़ियों का शोरगुल व रेडियो इत्यादि ध्वनि-प्रदूपण के स्रोत हैं। डाक्टरों के अनुसार लम्बे समय तक शोर व तीव्र ध्वनि वाले स्थानों में रहने से मनुष्य की श्रवण शक्ति कम हो जाती है, रुधिर-दाब बढ़ जाता है और मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

रेडियोऐक्टिव पदार्थ (Radioactive Substances)

रेडियोऐक्टिव तत्त्वों के बढ़ते हुए प्रयोग से वातावरण में रेडियोऐक्टिविटी या विघटनाभिकता का मुख्य कारण परमाणु अस्त्रों के परीक्षण तथा परमाणु बिजलीघर हैं। वायुमण्डल में परमाणु अस्त्रों के परीक्षण के बाद पृथ्वी पर गिरने वाली विघटनाभिक (रेडियोऐक्टिव) धूल को **रेडियोऐक्टिव फॉल आउट** (radioactive fallout) कहते है। इन विस्फोटों के फलस्वरूप आस-पास का वातावरण रेडियोऐक्टिव हो जाता है। अब परमाणु ऊर्जा का प्रयोग नहरों व खानों को खोदने तथा बिजली बनाने में भी किया जाने लगा है। कोयले व खनिज तेल के भण्डारों के शीघ्र ही समाप्त होने के भय से मानव परमाणु ऊर्जा के विकास में लगा हुआ है। यद्यपि परमाणु ऊर्जा अन्य सभी स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा से सस्ती पड़ती है किन्तु इसमें रेडियोऐक्टिव अपशिष्ट पदार्थों का विसर्जन एक बड़ी समस्या है। प्रायः ऐसे पदार्थों को इस्पात के बक्सों या कंक्रीट ब्लाकों में सीलबन्द करके गहरे समुद्र में डुबो दिया जाता है किन्तु यह समस्या का समाधान नहीं है क्योंकि इस विधि द्वारा समुद्र के पानी का रेडियोऐक्टिव तत्त्वों द्वारा प्रदूपित होने का भय रहता है। परमाणु बिजलीघरों में संयन्त्रों को ठण्डा करने के लिए पानी की बहुत अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। इसके कारण नदियों व समुद्रों का पानी प्रदूपित हो जाता है।

रेडियोएक्टिव विकिरण के घातक प्रभावों को अभी तक निश्चित रूप से नहीं देखा गया है क्योंकि वायुमण्डल में रेडियोऐक्टिव तत्वों की मात्रा सीमित है। फिर भी विकिरण द्वारा होने वाले घातक प्रभावों की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि विकिरण का मनुष्यों व अन्य जीवों पर घातक व हानिकारक प्रभाव धीरे-धीरे दृष्टिगत होता है और आगे की पीढ़ियों में वंशागत होकर अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न करता है।

रेडियोऐक्टिव तत्वों में पाये जाने वाले रेडियोन्यूक्लाइड्स (radionuclides) लोहा, सिलिका व मिट्टी के कणों के साथ संलयन होकर कोलायडीय निलम्बन (colloidal suspension) बनाते हैं अथवा फिर कार्बनिक यौगिकों के साथ मिलकर जटिल यौगिक बनाते हैं। पौधों की पत्तियों से चिपककर विकिरण द्वारा उनके ऊतक को क्षति पहुँचाते हैं। शाकाहारी जन्तुओं द्वारा इनका सेवन करने पर रेडियोऐक्टिव तत्त्व उनके शरीर में पहुँच जाते है और खाद्य-शृंखला के अन्य जन्तुओं व मनुष्यों में पहुँच जाते हैं। इनके फलस्वरूप निम्नलिखित रोगों व विकारों की सम्भावना है :—

(1) असामयिक बुढ़ापा (Premature old age)—कुछ जन्तुओं पर प्रयोग करने पर देखा गया है कि रेडियोऐक्टिव विकिरण के फलस्वरूप उनकी जनन-क्षमता क्षीण हो जाती है और वे शीघ्र ही मर जाते हैं।

(2) ल्यूकीमिया तथा बोन कैंसर (Leukemia and bone cancer)—Strontium-90 रेडियोऐक्टिव तत्त्व है और रासायनिक दृष्टि से यह कैल्शियम से मिलता-जुलता है। अस्थियाँ calcium के साथ-साथ strontium-90 का अवशोषण भी तेजी से करती हैं। पेड़-पौधे भूमि में से जल व अन्य खनिज पदार्थों के साथ इसका अवशोषण करते हैं। गाय, भैंस व बकरियाँ, आदि जब इन पौधों को चरती हैं तो यह उनके शरीर में पहुँच जाता है और उनके दूध द्वारा यह मनुष्य के शरीर मे पहुँच जाता है। शरीर में पहुँचने पर यह हड्डियों में एकत्रित होता रहता है और **ल्यूकीमिया व बोन कैंसर** नामक घातक रोग उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार Iodine-131 भी एक रेडियोऐक्टिव तत्त्व है जो स्थानीय पादपों व जन्तुओं में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। यह फूड-चेन (food chain) के विभिन्न स्तरों से होता हुआ मनुष्य व अन्य जन्तुओं में पहुँचता है। शरीर के अन्दर यह थाइरॉइड ग्रन्थि में एकत्रित हो जाता है। थाइरॉक्सिन (thyroxin) के निर्माण में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह सिद्ध हो चुका है कि उच्च पृष्ठवंशियों में Iodine-131 की अधिक मात्रा **थाइरॉइड कैंसर** (thyroid cancer) के लिए उत्तरदायी है।

(3) महामारियों में वृद्धि (Spread of epidemics)—प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि रेडियोएक्टिव विकिरण के फलस्वरूप मनुष्य व अन्य पृष्ठ-वंशी जन्तुओं में रोगजनक बैक्टीरिया व वाइरसों (bacteria and viruses) के प्रति एण्टीटॉक्सिन्स उत्पन्न करने की क्षमता कम या नष्ट हो जाती है।

(4) तन्त्रिका-तन्त्र में विकार (Defects in nervous system)—रेडियोऐक्टिव विकिरण के फलस्वरूप केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र भी प्रभावित होता है और संवेदी तन्त्रिकाएँ अस्वाभाविक रूप से उत्तेजित हो जाती हैं।

(5) जैनेटिक घटन या जीन्स में परिवर्तन (Changes in genes or genetic constitution)—रेडियोऐक्टिव पदार्थों वाले विकिरण मनुष्य व अन्य

जीवों के जैनेटिक घटन में म्यूटेशन या उत्परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। अधिकांश म्यूटेशन हानिकारक होते हैं जिनका प्रभाव आने वाली पीढ़ियों में स्पष्ट दिखाई देता है। मनुष्य में इसके फलस्वरूप विकृत एवम् विकलांग सन्तानों की उत्पत्ति हो सकती है।

अभी तक रेडियोऐक्टिव विकिरण के फलस्वरूप होने वाले प्रभावों को खोजना सम्भव नहीं हो सका है, किन्तु इसमें किंचित्‌मात्र संशय नहीं कि यह किसी भी रूप में जीवों के लिए लाभदायक नहीं है। इसके घातक प्रभावों की अभी तक खोज न होने का कारण सम्भवत: यह है कि पर्यावरण में रेडियो न्यूक्लाइड्स की मात्रा प्रकृति की निर्धारित मात्रा से काफी कम है जिससे ये जीवों को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित करने में समर्थ नहीं हैं। किन्तु शान्ति कार्यों के लिए न्यूक्लीय विस्फोटों के भावी कार्यक्रम को देखते हुए हम कह सकते हैं कि वह दिन दूर नहीं जब वायुमण्डल, सागरों व पृथ्वी पर रेडियोऐक्टिव पदार्थों की मात्रा काफी बढ़ जायेगी। अत: रेडियोऐक्टिव विकिरण द्वारा जीवों की भावी पीढ़ियों को एक सम्भाव्य संकट का सामना करना पड़ेगा।

नियंत्रण (Control)

रेडियोऐक्टिव तथा अन्य औद्योगिक विषाक्त बेकार पदार्थ को ठिकाने लगाना आज एक बड़ी समस्या है। अभी तक हम समुद्रों को इन पदार्थों से मुक्ति पाने का एकमात्र स्रोत समझते रहे हैं। किन्तु वैज्ञानिकों ने साफ शब्दों में यह चेतावनी दे दी है कि दूषित पदार्थों को मनमाने ढंग से समुद्र में नहीं फेंका जा सकता। अब हमारे सामने उद्योगों से पैदा होने वाले विषाक्त कूड़ा-करकट को फेंकने की समस्या है तो दूसरी ओर उससे पैदा होने वाले समुद्री दूषण का भय। पिछली एक-दो दशाब्दियों में इस दिशा में नयी युक्तियाँ अपनाई गयी हैं।

घरों के वाहित मल व कूड़ा-करकट तथा कारखानों के बेकार व अपशिष्ट पदार्थों से छुटकारा पाने के लिए तीन विधियाँ काम में लायी जाती हैं–(1) अपशिष्ट व बेकार पदार्थों व कूड़ा-करकट को आस-पास के खाली स्थान पर मलवे के रूप में डाल देते हैं अथवा फिर नदियों में इसे विसर्जित कर दिया जाता है, (2) कृत्रिम तालावों अथवा एक अलग स्थान पर इनको सड़ने के लिए डाल दिया जाता है, या (3) फेंकने से पहले रसायन-यांत्रिक विधि द्वारा उपचारित कर इसके विषाक्त प्रभाव को नष्ट कर दिया जाता है। इनमें से प्रथम विधि ही अधिक प्रचलित है क्योंकि यह सरल भी है और कम खर्चीली भी। इसी कारण बड़े-बड़े उद्योग एवम् नगर नदियों के किनारों पर स्थित हैं। किन्तु नगरों में पीने के जल की बढ़ती हुई माँग और वहाँ से विसर्जित होने वाले वाहित मल व कूड़ा-करकट की भारी मात्रा व विषाक्त पदार्थों के कारण यह विधि उपयुक्त नहीं है। इससे पानी दूषित हो जाता है और अनेक प्रकार की महामारियों के फैलने की सम्भावना रहती है। विषाक्त पदार्थों के कारण समुद्र का जल भी दूषित हो जाता है जिससे बड़ी संख्या में जलीय वनस्पति व जीव-जन्तु नष्ट हो जाते हैं। अत: इन पदार्थों को जल में फेंकने से रोकना चाहिये। नगरों के आस-पास भी मलवे को जमा करने पर मनाही होनी चाहिये क्योंकि इससे आस-पास की वायु दूषित हो जाती है। आर्थिक दृष्टि से वातावरण को दूषित होने से रोकने के लिए दूसरी विधि अधिक उपयुक्त है। जैसा कि बताया जा चुका है इस विधि में आबादी से दूर कूड़े-करकट व विषाक्त मलवे को खुले स्थानों पर डाल दिया जाता है या फिर गड्ढों में भर दिया जाता

है। इसके लिए कृत्रिम तालावों का प्रयोग भी किया जाता है। वैक्टीरिया व कवक आदि सूक्ष्म जीवों की क्रिया द्वारा ये पदार्थ सरल व अविषाक्त यौगिकों में अपघटित हो जाते हैं। इसका एक लाभ यह है कि इससे अच्छी किस्म की खाद प्राप्त होती है जो खेतों में उपज बढ़ाने के काम आती है। दिल्ली, बम्बई व कलकत्ता आदि बड़े नगरों में वाहित मल व कूड़ा-करकट की अभिक्रिया के लिए आधुनिक संयत्र लगाये गये हैं। इनकी सहायता से इनके प्रदूषित प्रभाव को समाप्त किया जाता है और दूसरी ओर इनसे उच्च कोटि की खाद प्राप्त होती है।

कारखानों की चिमनियों से निकलने वाली विषाक्त गैसों से वायु के प्रदूषण को रोकने के लिए **यांत्रिक अभिक्रियाओं** (mechanical treatment) द्वारा इनके विषाक्त व घातक प्रभाव को नष्ट करना या कम करना अति आवश्यक है। ताप-बिजलीघरों व अन्य उद्योगों में संयन्त्रों को ठण्डा करने के बाद बाहर निकले गर्म पानी को स्प्रे-पॉण्ड (spray pond) या अन्य साधनों से ठण्डा करके पुनः उपयोग में लाना चाहिये। इस प्रकार नदियों के पानी को तापीय प्रदूषण (thermal pollution) से रोका जा सकता है।

खेतों व फलोद्यानों में कीटनाशी पदार्थों के अधिकाधिक प्रयोग पर नियन्त्रण होना चाहिये। इन पदार्थों द्वारा मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ने के अतिरिक्त मवेशी व आर्थिक महत्त्व के दूसरे जीव-जन्तु भी मर जाते हैं। हमारे देश के कई भागों में D.D.T. व दूसरे कीटनाशी पदार्थों द्वारा विषाक्त धान्यों को खाने से बड़ी संख्या में लोगों के मरने के समाचार मिलते रहते हैं। अतः कीटों से फसलों की रक्षा करने के लिए अब वैज्ञानिकों का ध्यान जैविक-नियन्त्रण की ओर लगा हुआ है। इस दिशा में हानिकारक कीटों को एक्स-रे विकिरण द्वारा वंध्यकरण (sterilization) की विधि बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। कुछ नर कीटों को प्रयोग-शाला में वंध्य करके थोड़े अन्तर पर खेतों में वापस छोड़ दिया जाता है। ये कीट सामान्य कीटों की भाँति मैथुन तो करते हैं पर अण्डों में निषेचन नही होता। धीरे-धीरे कीटों की संख्या में क्रमिक रूप से कमी होती जाती है और अन्त में पूरी जाति नष्ट हो जाती है। **कैमोस्टेरिलेण्ट** (chemosterilants) रसायनों को खेतों में छिड़-कने से भी ये वंध्य हो जाते हैं। पीड़क व कीटों के नियन्त्रण की एक और विधि यह है कि खेतों व फलोद्यानों में इनके प्राकृतिक शत्रुओं को फलने-फूलने दिया जाता है जिससे कुछ ही समय में इनसे मुक्ति मिल जाती है।

घरों में साग-सब्जी व फलों को प्रयोग करने से पहले अच्छी प्रकार धो लेना चाहिये। इस प्रकार D.D.T. व अन्य पदार्थों के प्रभाव से बचा जा सकता है। आजकल घरों व नगरों में कीटों को मारने के लिए तथा नाली व नालों की सफाई के लिए फिलट व D.D.T. का प्रयोग होने लगा है। ये भी स्वास्थ्य के लिए हानि-कारक है। इनके प्रयोग के स्थान पर सफाई की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। नाली व नाले अगर बन्द हों तो ज्यादा अच्छा है क्योंकि एक ओर तो गन्दगी से बचा जा सकेगा और दूसरी ओर D.D.T. व अन्य पदार्थों की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ साबुन, विम, शैम्पू, डिटोल इत्यादि अप-मार्जकों के प्रयोग में तेजी से वृद्धि हुई है। इनके अधिक प्रयोग से कई प्रकार के चर्म रोग हो जाते हैं।

मोटर गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ से वायु के प्रदूषण को रोकने की कोई

ठोस विधि अभी तक विकसित नहीं हो पायी है। इनके द्वारा प्रदूषण का मुख्य कारण बाहर निकलने वाला अदग्ध ईंधन है। इसके लिए ऐसे उपाय करने चाहियें कि गाड़ियों के इंजन में पेट्रोल का पूर्ण दहन हो सके। इससे वायु के प्रदूषण में तो कमी होगी ही, साथ-साथ इंधन में भी बचत होगी।

बड़े शहरों की भीड़-भाड़ व मोटर गाड़ियों के शोर-शराबे से सभी परिचित हैं। मोटर गाड़ियों द्वारा होने वाले शोर से बचने के लिए सड़कों के दोनों ओर वृक्ष लगाने चाहियें। वृक्ष ध्वनि की तरंगों को ग्रहण कर ऊपर वायु-मण्डल में प्रवाहित कर देते हैं। अस्पतालों, स्कूल-कॉलिज व घनी आबादी वाले इलाकों में हार्न बजाना वर्जित होना चाहिये। हवाई अड्डे शहर से जितनी दूर हों उतना ही अच्छा है। इस प्रकार उनकी तीव्र आवाज से काफी हद तक बचा जा सकता है। कारखानों व मशीनों की तीव्र ध्वनि वाले कर्मचारियों को कामों में लगाने के लिए प्लग (plug) देने चाहियें जिससे कानों के ड्रम पर ध्वनि के प्रभाव को कम किया जा सके।

विषाक्त दूषक पदार्थों से मुक्ति की नयी विधि (New method of the disposal of poisonous pollutants)—रेडियोधर्मी व अन्य औद्योगिक विषाक्त बेकार पदार्थों के विसर्जन की एक नयी विधि विकसित की गई है। इस विधि के अनुसार इन व्यर्थ पदार्थों को समुद्र की गहन गहराई में समुद्री धरातल पर स्थित खाइयों में डाला जा सकता है।

आधुनिक भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार पृथ्वी की ऊपरी सतह कई प्लेटों से मिलकर बनी हुई हैं। इन प्लेटों के किनारे एक ओर तो पृथ्वी के मेण्टल में धँसते जाते हैं और दूसरी ओर इनका निर्माण होता रहता है जिससे भूमि का तल समान बना रहता है। समुद्र की गहरी खाइयाँ ऐसे ही भाग हैं जहाँ प्लेट का विनाशशील किनारा पृथ्वी के उदर की गहराइयों में समाया हुआ होता है। इन खाइयों में नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी बहुत अधिक मात्रा में एकत्रित होकर कीचड़ बना लेती है। कहीं-कहीं पर इस कीचड़ की गहराई लगभग 1 किलोमीटर तक होती है। इस कीचड़ में डाले गये विषाक्त दूषक पदार्थ प्रत्येक भूकम्प के झटके के साथ द्रव अवस्था में बदलते हैं और गहरे डूबते जाते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि 60 वर्ष में विषाक्त पदार्थों के पुलन्दे लगभग 1 किलोमीटर गहराई में पहुँच जायेंगे और उनसे समुद्री जल के किसी भी प्रकार विषाक्त होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रदूषण की समस्या अर्थात् जल, वायु व मृदा की हानिकारक पदार्थों से रक्षा, काफी गम्भीर है जिसे हम केवल पारिस्थितिक अध्ययन द्वारा ही हल कर सकते हैं। नये नगर बसाते समय या नये उद्योगों को स्थापित करने से पहले उस स्थान के आस-पास की पारिस्थितिक स्थिति का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि ऐसा करते समय किसी भी प्रकार जीवों में पाया जाने वाला प्राकृतिक सन्तुलन अस्त-व्यस्त नहीं होना चाहिये।

—

अध्याय 8

टिप्पणियाँ
(Short Notes)

1. जीवीय समुदाय (Biotic Community) *(Vikram 1963)*

किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र या प्राकृतिक वास में रहने वाले **जीवीय समुदाय** (biotic community) बनाते है । जीवीय समुदाय विषमजातीय (heterogeneous) होता है क्योकि इसके अन्तर्गत विभिन्न समूहों के जीव (जन्तु एवम् पेड-पौधे) एक साथ किसी विशेष क्षेत्र मे वास करते हैं । एक जाति के समस्त जीव एक एकक (unit) बनाते है । एक ही जाति के समस्त जीव जो एक समजीवी क्षेत्र मे निवास करते है एक जनसमुदाय बनाते है । अत: एक जीवीय समुदाय इस प्रकार के बहुत-से एककों का बना होता है । प्रत्येक एकक **समष्टि** (population) कहलाता है ।

जीवीय समुदाय में अनुकूली विकिरण (adaptive radiation) पाया जाता है क्योंकि एक ही जीवीय क्षेत्र में रहने के कारण विभिन्न समष्टियो के जीवों मे कुछ सामान्य लक्षण दृष्टिगत होते है । ये समानताएँ समान वायुमण्डलीय कारकों के प्रभाव के कारण उत्पन्न होती है । वायुमण्डलीय कारक **अजीवी कारक** (abiotic factors) भी कहलाते है । अजीवी कारकों के अन्तर्गत जल, वायु-दबाव, प्रकाश, तापक्रम, गुरुत्वाकर्षण, हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता तथा अन्य विकिरण, भूमि-गठन (soil-texture), जल में लवणों की सान्द्रता, वायु-तरंगे, जल-धाराएँ, वायुमण्डलीय गैसें, इत्यादि आते है । **जीवीय वायुमण्डल** (biotic environment) के अन्तर्गत पौधे तथा जन्तु आते है । इनकी उपस्थिति भी क्षेत्र विशेष में पायी जाने वाली जाति के जीवो की सख्या को प्रभावित करती है । अत: प्रकृति मे जीवों का वायुमण्डल के साथ, पौधो का पौधों के साथ, जन्तुओं का पौधों के साथ तथा जन्तुओ का जन्तुओं के साथ सघर्ष चलता रहता है तथा जीवीय समुदाय इन समस्त संघर्षो के फलस्वरूप बचे जीवों का समुदाय होता है ।

2. ऐलेन-नियम (Allen's Rule)

यद्यपि तापमान प्राणियों के वितरण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है किन्तु फिर भी गन्धक के गर्म पानी वाले स्रोतों से लेकर उत्तर ध्रुव के बर्फीले प्रदेशों तक प्राणियों का विस्तारण पाया जाता है । तापमान की इन पराकाष्ठाओं में जीवित रहने के लिए प्राणियों में आकारिक, कायिक एवम् व्यावहारिक अनुकूलन पाये जाते है । निम्न तापमान वाले क्षेत्रों में रहने के लिए प्राणियों मे त्वचा के नीचे वसा की पर्त, शरीर पर फर अथवा पिच्छों का आवरण पाया जाता है । पक्षियो तथा स्तनधारियों में इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य आकारिक रूपान्तरण पाये जाते है किन्तु ये इतने अधिक ध्यानाकर्षक एवम् सुस्पष्ट नही होते कि देखने के साथ ही पहचाने जा सके । शीतल जलवायु मे रहने वाले स्तनधारियो एवम् पक्षियो के

शरीर-उपांगों जैसे पुच्छ, कान, पाद तथा चोंच इत्यादि अपेक्षाकृत छोटे अथवा ह्रसित होते है। **Allen** ने कहा कि अगर गर्म जलवायु वाले भूमध्य रेखीय प्रदेशों से लेकर ठण्डे ध्रुवों तक रहने वाले समस्त समतापी जीवों के उपांगों को मापा जाये
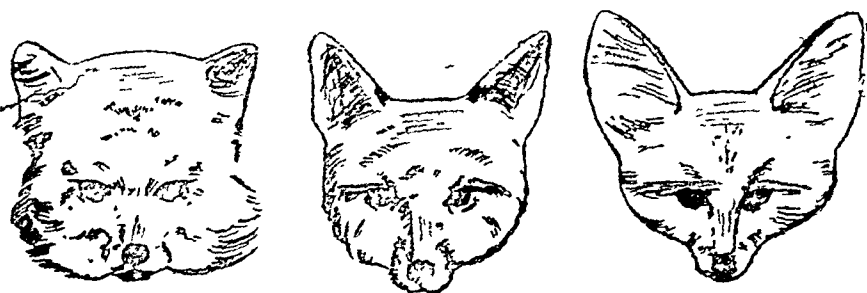
चित्र ८·१. लोमड़ी की विभिन्न जातियों में वाह्य कर्णो के आकार में अन्तर
(Difference in ear size of different species of fox)

तो यह देखा गया है कि उनमें शरीर की अपेक्षा उपांगों का आकार धीरे-धीरे कम होता जाता है। चित्र 8·1 Allen के नियम को प्रदर्शित करता है।

उपर्युक्त चित्र में आदिम लोमड़ी (*Alopex legopus*) शीतोष्ण कटिबन्ध में पायी जाने वाली लोमड़ी (*Vulpes vulpes*) तथा मरुस्थल में पायी जाने वाली लोमड़ी के वाह्य कर्णो में अन्तर का प्रदर्शन किया गया है। एस्कीमो जाति के मनुष्यों के पाद एवम् भुजाएँ धड़ के समानुपात मे छोटी होती है। इसी प्रकार हिमालय में पाये जाने वाले *Gazella pincticanda* के पाद, वाह्य कर्ण व पुच्छ हिमालय की तराई में पाये जाने वाले *Gazella bennettii* के पादों, वाह्य कर्णो व पुच्छ से छोटे होते हैं।

प्रयोगों द्वारा भी ऐलेन-नियम का प्रतिपादन किया गया है। यह देखा गया है कि प्रयोगशाला मे एक ही जाति के जन्तुओं मे से 15·5–20°C के बीच विकसित होने वाले जन्तुओं की पुच्छ 31–33·5°C के बीच विकसित किये गये जन्तुओं की पुच्छ से छोटी होती है। जन्तुओं में छोटे उपांगों का पाया जाना शरीर से ऊष्मा के विकिरण को रोकने तथा शरीर के तापमान को स्थिर बनाये रखने का एक अनुकूलन है।

3. वर्गमेन नियम (Bergmann's Rule)

समतापी प्राणियों (पक्षियों एवम् स्तनधारियों) में तापमान मे परिवर्तनों के प्रति पायी जाने वाली आकारिक भिन्नताओं के साथ-साथ उनके आकार में भी भिन्नता पायी जाती है। **Bergmann** ने यह प्रतिपादित किया कि ठण्डे प्रदेशों में पाये जाने वाले पक्षियों एवम् स्तनधारियों का आकार गर्म प्रदेशों मे पाये जाने वाले पक्षियों एवम् स्तनधारियों की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है। इसी को **वर्गमेन नियम** (Bergmann's rule) कहते हैं। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाते हुए यह देखा ा सकता है कि जैसे-जैसे तापक्रम कम होता जाता है जन्तुओं के आकार में क्रमिक प से वृद्धि होती जाती है। आकार में वृद्धि का स्पष्टीकरण इस प्रकार है। बड़े तुओं में प्रति एकक भार के लिए पृष्ठीय क्षेत्रफल छोटे जन्तुओं की अपेक्षा होता है, अत: उनके शरीर की सतह से विकीर्ण होने वाली ऊष्मा की मात्रा टे जन्तुओं के शरीर की सतह से ऊष्मा के क्षय की अपेक्षा कम होती है। दूसरी

और गर्म प्रदेशों मे जन्तुओं मे बड़े आकार का पाया जाना हानिकर होता है, क्योंकि इन स्थानों के जन्तुओं में शरीर की सतह से ऊष्मा का विकीरण उनके लिए लाभप्रद होता है। अत: गर्म प्रदेशों के जन्तु छोटे आकार के होते है। प्रकृति के अध्ययन से इस नियम को बल मिलता है। उत्तरी ध्रुव में पाये जाने वाले **Polar Bears** तथा **Kodiak bears** शीतोष्ण प्रदेशों में पाये जाने वाले **black bear** से आकार में काफी बड़े होते है। इसी प्रकार दक्षिण ध्रुवीय प्रदेश के **Penguines** 1000–2000 mm. लम्बे होते है जबकि भूमध्य रेखा पर स्थित Galapogos द्वीपसमूह में पाये जाने वाले **Penguines** केवल 490 mm. लम्बे होते हैं।

4. लीबिग-ब्लैकमेन का अल्पता का नियम (Liebig-Blackmann's Law of Minimum)

Liebig (1830) ने पौधों की वृद्धि एवम् सारभूत तत्त्वो (essential elements) की उपलब्ध मात्रा के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन करते समय इस बात की खोज की कि अल्प मात्रा मे उपभोग में आने वाले तत्त्व भी प्राय: फसलों की पैदावार को सीमित करते है। इस प्राक्कथन को **लीबिग का अल्पता-नियम** (Leibig's law of minimum) कहते है, जिसके **अनुसार पौधों की वृद्धि खाद्य पदार्थों की अल्प मात्रा पर निर्भर करती है।**

Liebig की प्राक्कल्पना सामान्य पर्यावरण के अन्तर्गत पौधों की रासायनिक पदार्थो की आवश्यकता से सम्बन्धित थी किन्तु उसके पश्चात् के कुछ वैज्ञानिकों
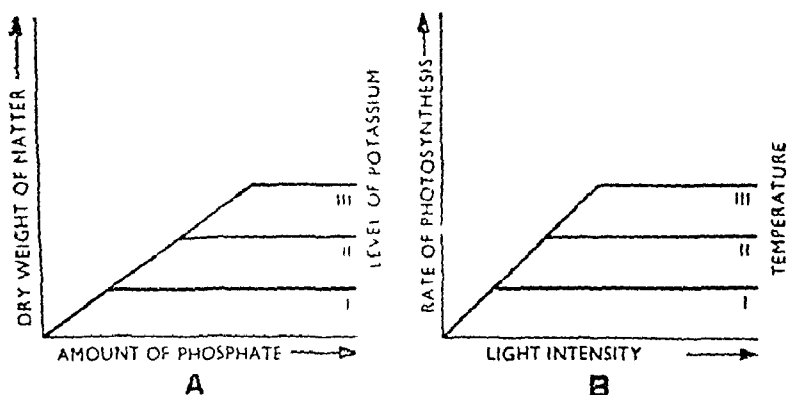
चित्र ८·२. A. लीबिग के अल्पता नियम का लेखाचित्र-प्रदर्शन—इसमे फॉस्फेट की मात्रा का पोटाशियम की तीन भिन्न सान्द्रताओं में उगे पौधो के शुष्क भार के साथ ग्राफ बनाया गया है (Liebig's law of minimum—the amount of phosphate plotted against the dry weight of matter produced at three different levels of the supply of potassium)

B. ब्लैकमेन का सीमाकारी गुणक-नियम—इसमें प्रकाश-संश्लेषण की गति का तीन विभिन्न तापमानों पर प्रकाश की तीव्रता के साथ ग्राफ बनाया गया है। इनमें से प्रत्येक तापमान प्रकाश-सश्लेषण के लिए सीमाकारी गुणक है (Blackmann's law of limiting factor—the rate of photosynthesis plotted against the light intensity at three different temperatures, each of which limits the rate of photosynthesis)